Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री बृहत्

नवीन सुखसागर

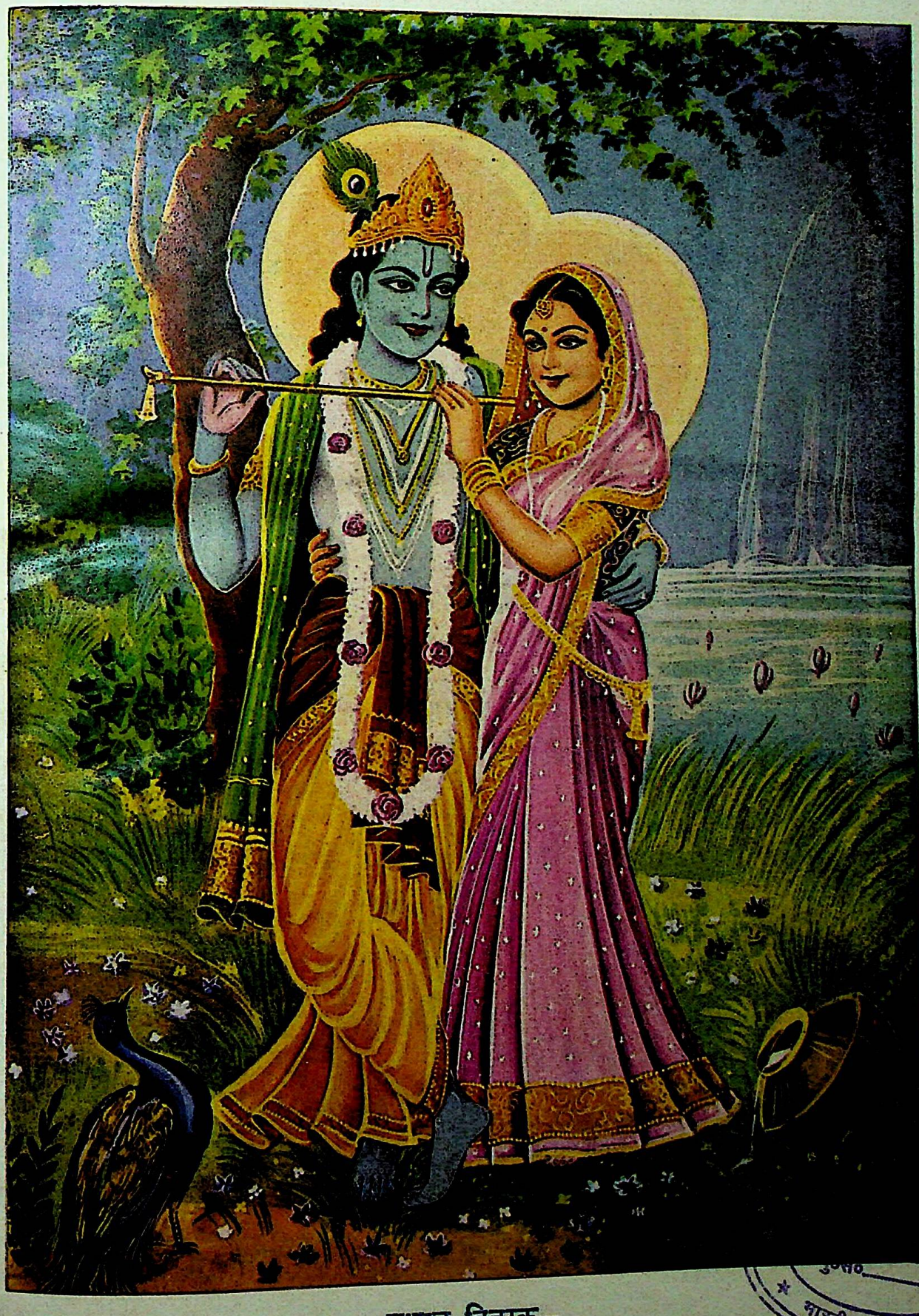

भारती पुस्तकालय

प्रधान वितरक—

श्री गंगा पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी (बनारस)

मूल्य रु० १२) तथा रेलेज १५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

श्री बृहत् नवीन

सुखसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत के १२ स्कंधों का सरल, सुन्दर
और रोचक भाषा में हिन्दी अनुवाद
१५ तिरंगे चित्रों से सुसज्जित

अनुवादक
पं० राजेश दीक्षित

बम्बई
अक्षरों में

प्रकाशक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष—भार्गव बुकडिपो, चौक, वाराणसी

मूल्य रफ १२) सन् १९६१ मूल्य ग्लेज १५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

चतुर्थ संस्करण ५००० प्रतियाँ

प्रधान वितरक

श्री गंगा पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी (बनारस)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठकों से

महर्षि वेदव्यास-रचित श्रीमद्भागवत के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इसमें भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का जीवनचरित बहुत ही विस्तार से वर्णन किया गया है। कहा जाता है कि इसकी रचना कर चुकने पर स्वयं महर्षि वेदव्यासजी को अनुपम शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त हुआ था। फिर इस संसार की मोह-माया में फँसे हुए आजकल के मनुष्यों के लिए यह कितना श्रेयस्कर है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। इसमें सब वेदों का सार और ज्ञान तथा भक्ति का निचोड़ है। इसमें वर्णन की गई कथाएँ और आख्यान बड़े ही मनोरंजक, हृदयग्राही और ज्ञान-वर्धक हैं। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के विविध कार्य-कलाप का सजीव चित्रण है।

मूल श्रीमद्भागवत संस्कृत भाषा में है। उसकी भाषा भी ऐसी-वैसी नहीं। संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वानों को उसे भली भाँति समझने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'सुखसागर' इसी श्रीमद्भागवत का हिंदी अनुवाद है। वैसे तो, इन दिनों हिंदी-जगत् में 'सुखसागर' के बहुत-से संस्करण मौजूद हैं; परंतु उनमें से किसी में श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त बहुत-सी अनर्गल और आडम्बरपूर्ण बातें हैं तो किसी की भाषा उर्दू ढंग के शब्द-विन्यास से भरी हुई है, आदि। इन, तथा ऐसे ही अन्य, दोषों के रहने से उन ग्रंथों का पाठ करने पर पाठकों को वैसा आनन्द नहीं मिलता जैसा मिलना चाहिए।

धार्मिक साहित्य-संबंधी अपने प्रकाशनों के द्वारा हम, समय-समय पर, हिंदी-भाषी जनता की सेवा करते आ रहे हैं। जनता ने सदैव हमारे इस प्रयत्न का स्वागत किया है। सदा की भाँति अपने प्रिय पाठकों की सेवा करने के उद्देश्य से हमने इस 'बृहत् नवीन सुखसागर' को प्रकाशित किया है। श्रीमद्भागवत का यह प्रामाणिक हिंदी रूपान्तर है। इसकी भाषा सरल, परिमार्जित और सुबोध है। साथ ही, इसमें मूल ग्रंथ के भावों को ज्यों का त्यों रखने का प्रयत्न किया गया है। 'सुखसागर' के उपर्युक्त अन्यान्य संस्करणों की त्रुटियों से इसे मुक्त रखने की हमने, अपनी ओर से यथाशक्ति चेष्टा की है। अच्छे कागज पर मोटे टाइपों में यह छापा गया है। हमने इसमें असली आर्ट पेपर पर छपे हुए १४ सुन्दर तिरंगे चित्रों का, बीच-बीच में, समावेश किया है। इससे विषय पाठकों के सामने सुस्पष्ट रूप में मूर्तिमान् हो जायगा। इस ग्रंथ को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने की हमने चेष्टा की है। हम चाहते हैं कि हमारे हिंदी-भाषी धर्म-जिज्ञासु पाठकगण परब्रह्म परमेश्वर के लीलावतार भगवान् श्रीकृष्ण के लोकोत्तर पावन चरित का रसास्वादन अधिक से अधिक संख्या में कर सकें।

यदि इस ग्रंथ के द्वारा पाठकों की कुछ भी सेवा हम कर सके तो हमें परम संतोष और प्रसन्नता होगी। आशा है पाठकवृन्द इस ग्रंथ को अपनाकर हमें, भविष्य में और भी सेवा करने के लिए, प्रोत्साहित करेंगे। शुभमस्तु।

प्रकाशक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भार्गव भूषण प्रेस द्वारा साहित्य सेवा जिनकी प्रेरणा का प्रतिफल है

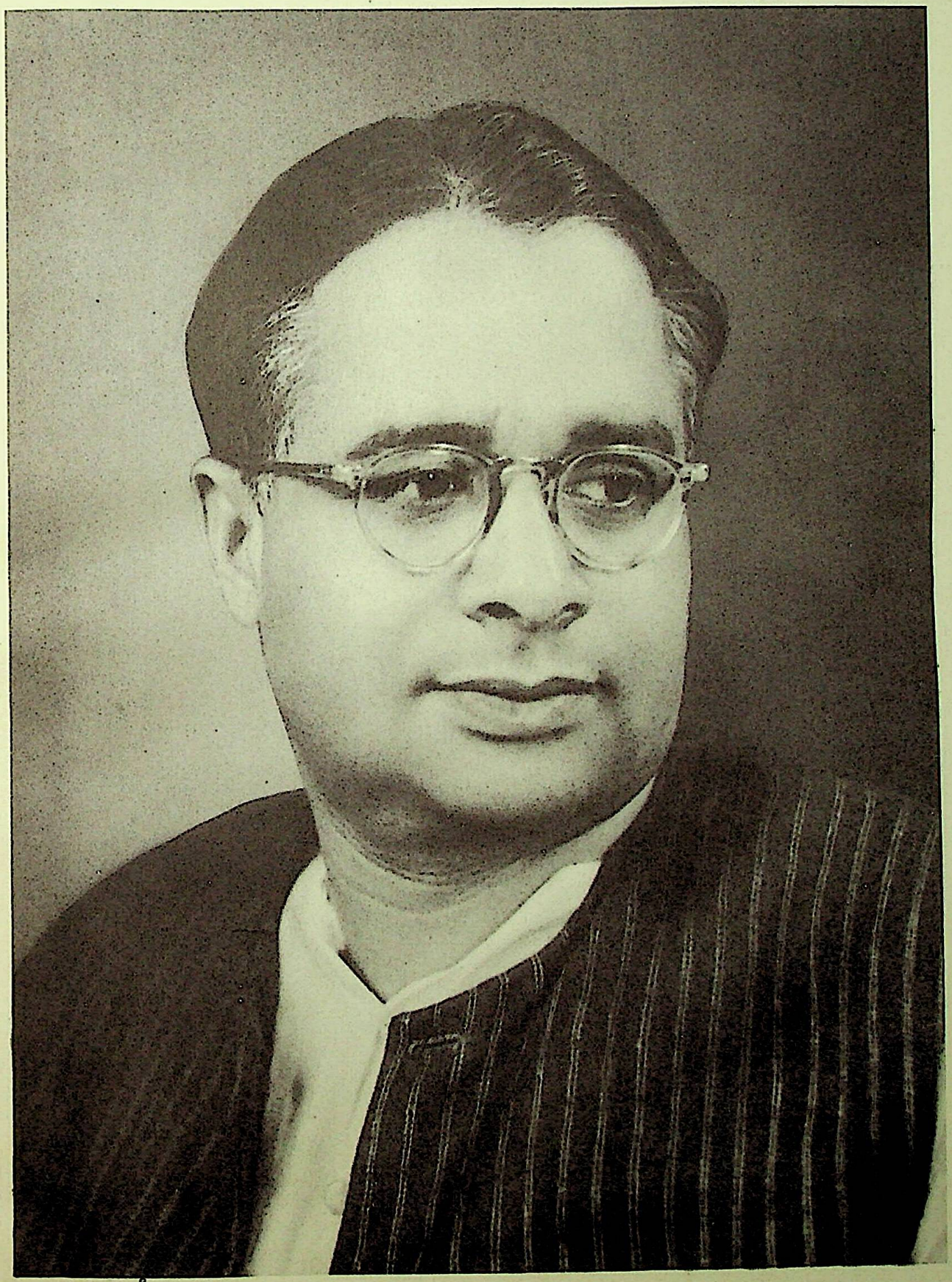

स्व० श्री शम्भूनाथ भार्गव, पप्पाजी.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	श्रीमद्भागवत-माहात्म्य	
१	भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य की कथा	१
२	नारद द्वारा भक्ति को धैर्य बँधाना तथा ज्ञान-वैराग्य की चेतना के लिये प्रयत्नशील होना	५
३	श्री सनत्कुमार द्वारा श्रीमद्-भागवत की सप्ताह-विधि एवं उससे प्राप्त होनेवाले फल का वर्णन	८
४	श्रोताओं को श्री नारायण-दर्शन एवं आत्मदेव ब्राह्मण की कथा	१०
५	धुन्धकारी की मृत्यु तथा सप्ताह पारायण सुनने से मुक्ति	१५
६	श्री सनत्कुमारजी द्वारा सप्ताह-यज्ञ की विधि का वर्णन	१९
	प्रथम स्कन्ध	
१	परब्रह्म परमात्मा का अवतार धारण : वेदव्यासजी द्वारा श्रीमद्भागवत का निर्माण : शृङ्गी ऋषि द्वारा राजा परीक्षित को श्राप एवं अमृत-कथा का भूतल पर प्राकट्य	२४
	कथा प्रारम्भ: शौनकादि ऋषियों द्वारा श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में सूतजी से पूछना तथा सूतजी द्वारा श्रीमद्भागवत की स्तुति का वर्णन	२५
२	शुकदेवजी का तपस्या करने के निमित्त वन में जाना तथा श्री नारदमुनि के उपदेश से आश्रम को लौट आना	२७
३	श्री नारायणजी के अवतारों का वर्णन	३१
४	व्यासजी का जन्म-वृत्तान्त तथा उनके द्वारा पुराणों एवं महा-भारत के निर्माण की कथा	३५
५	नारदजी द्वारा श्री व्यासजी को महापुराण के निर्माण की सलाह तथा अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन	३७
६	नारदजी द्वारा अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त-वर्णन	४१
७	श्री नारदजी द्वारा व्यासजी से चारों श्लोकों का वर्णन तथा श्री व्यासजी द्वारा बदरिका-श्रम में जाकर तप करना एवं श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण करना	४२
८	दुर्योधन का दाह-संस्कार तथा श्री कृष्ण द्वारा राजा युधि-ष्ठिर को राजसूय यज्ञ के लिये प्रेरित करना एवं उन्हें बोध कराने के लिये शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह के समीप ले जाना	४९
९	भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को ज्ञानोपदेश करना	५१
१०	श्री भीष्म पितामह द्वारा भग-वान् श्री कृष्णचन्द्रजी की स्तुति एवं उनके ध्यान में मग्न होकर शरीर त्याग करना	५६
११	राजा युधिष्ठिर का सिंहासना-रूढ़ होना, भीष्म पितामह का अन्त्येष्टि-कर्म, अश्वत्थामा का	

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	परीक्षित को मारने के लिये ब्रह्मास्त्र चलाना तथा श्रीकृष्ण-चन्द्र द्वारा परीक्षित की रक्षा होना, तदुपरान्त द्वारकापुरी को प्रस्थान	५९
१२	श्री कृष्णचन्द्रजी का द्वारकापुरी पहुँचना तथा द्वारकावासियों का हर्ष मनाना	६३
१३	परीक्षित का जन्म, राजा युधिष्ठिर की प्रसन्नता, धृतराष्ट्र-गांधारी का वन-गमन एवं माण्डव्य ऋषि की कथा का वर्णन	६४
१४	अर्जुन का द्वारका से लौटना तथा युधिष्ठिर द्वारा भगवान् श्याम-सुन्दर का हाल पूछना	७२
१५	अर्जुन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र के गोलोक पधारने का वृत्तान्त कहना तथा राजा युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित को राजसिंहासन देकर द्रौपदी एवं भाइयों सहित उत्तराखण्ड को प्रस्थान एवं शरीर त्याग	७५
१६	बैल स्वरूप धर्म तथा गोस्वरूपा पृथ्वी का परस्पर वार्तालाप; वृक्ष की ओट से राजा परीक्षित द्वारा उसका सुना जाना	८०
१७	बैलरूपी धर्म तथा गौरूपी पृथ्वी के पास कलियुग का आना तथा राजा परीक्षित से वार्तालाप करना; राजा परीक्षित का उसे रहने के लिये स्थान बताना	८३
१८	राजा परीक्षित का शिकार खेलने के लिये वन में जाना तथा हृदय में कलियुग का प्रवेश हो जाने के कारण समीक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डालना, समीक ऋषि के पुत्र द्वारा राजा परीक्षित को शाप	८९
१९	राजा परीक्षित को शृङ्गी ऋषि के शाप का समाचार प्राप्त होना तथा गंगातट पर जाकर निवास करना; श्री शुकदेव आदि ऋषि-मुनियों का उस स्थान पर आगमन	९५

द्वितीय स्कन्ध

१	श्री शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित से श्रीमद्भागवत एवं परब्रह्म परमेश्वर के अवतारों का वर्णन	१०३
	श्री शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित को धैर्य प्रदान एवं श्रीमद्भागवत की स्तुति का वर्णन	१०४
२	श्री शुकदेवजी द्वारा हरि-शरणागत भक्तों की श्री नारायणजी द्वारा रक्षा किये जाने का वर्णन	१०९
३	श्री शुकदेवजी द्वारा देवताओं की आराधनासे प्राप्त फलका वर्णन	११३
४	राजा परीक्षित द्वारा परब्रह्म परमेश्वर की कथा एवं कीर्त्तन का बर्णन करने के हेतु श्री शुकदेवजी से प्रार्थना	११५
५	श्री शुकदेवजी द्वारा श्रीमद्भागवत की कथा का प्रारम्भ, ब्रह्मा एवं नारद-संवाद का वर्णन	११६
६	ब्रह्माजी द्वारा नारद से श्री नारायणजी के विराट् रूप का वर्णन	११८
७	पितामह ब्रह्माजी द्वारा प्रभु के चौबीस अवतारों का वर्णन	१२०
८	राजा परीक्षित का श्री शुकदेवजी से धर्म, वेद-पुराण एवं योगाभ्यास के सम्बन्ध में प्रश्न करना	१२३
९	ब्रह्माजी के उत्पन्न होने तथा श्री नारायणजी द्वारा श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोकों के कहे जाने का वर्णन	१२५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१०	पञ्चतत्त्व द्वारा शरीर-निर्माण एवं उसके अङ्गों में देवताओं के निवास का वर्णन	१२७
	तृतीय स्कन्ध	
१	विदुरजी की भक्तराज उद्धव से भेंट, मैत्रेय-विदुर-संवाद, जय-विजय तथा कपिलदेव अवतार का वर्णन, श्री कृष्णजी एवं विदुर आदि का, युधिष्ठिर को राज्य-भाग देने के लिये, दुर्योधन को समझाना	१३०
२	विदुरजी का भक्तराज उद्धव से आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी का समाचार पूछना	१३३
३	उद्धव का विदुरजी से भगवान् श्यामसुन्दर की प्रशंसा तथा स्तुति करना	१३४
४	उद्धवजी द्वारा श्री कृष्णचन्द्रजी की स्तुति एवं उनके वियोग का वर्णन	१३६
५	उद्धवजी का बिदा होना तथा बदरिकाश्रम में पहुँचकर शरीर त्याग करना	१३७
६	विदुरजी का मैत्रेय ऋषि से संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछना	१३८
७	श्री मैत्रेयजी द्वारा भगवान् मुरली-मनोहर की प्रशंसा एवं स्तुति	१४०
८	देवताओं द्वारा श्री नारायणजी की स्तुति का वर्णन	१४१
९	मैत्रेय ऋषि द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन	१४२
१०	ब्रह्माजी द्वारा पंचतत्त्व एवं वृक्षादिकों की उत्पत्ति	१४४
११	ब्रह्माजी द्वारा सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार एवं रुद्र की उत्पत्ति का वर्णन	१४५
१२	ब्रह्माजी द्वारा नारद, वशिष्ठ, अंगिरा आदि ऋषि; राजा स्वायंभुव मनु तथा शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन	१४७
१३	ब्रह्माजी द्वारा जीवों के रहने के लिये स्थान-प्राप्ति के हेतु श्री नारायणजी की प्रार्थना करना तथा श्रीनारायणजी का वाराह अवतार धारणकर पृथ्वी को पाताल से बाहर लाना	१४८
१४	मैत्रेयजी द्वारा वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय के, दिति के गर्भ में वास करने की कथा का वर्णन	१५०
१५	श्री सनत्कुमारजी का वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय को शाप देना तथा उनका दिति के गर्भ में आगमन	१५२
१६	श्री नारायणजी द्वारा श्री सनत्कुमारजी का सम्मान तथा श्री सनत्कुमारजी द्वारा श्री नारायणजी की स्तुति	१५५
१७	हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का दिति के गर्भ से जन्म तथा हिरण्याक्ष का वरुण आदि देवताओं के स्थान पर जाना	१५७
१८	श्री वाराह भगवान् द्वारा हिरण्याक्ष का वध	१६०
१९	ब्रह्माजी सहित सब देवताओं तथा पृथ्वी द्वारा श्री वाराह भगवान् की स्तुति	१६२
२०	मैत्रेय ऋषि द्वारा संसार की उत्पत्ति का वर्णन	१६३
२१	श्री नारायणजी का स्वायम्भुव मनु, शतरूपा तथा कर्दम ऋषि को दर्शन एवं वरदान देना	१६५
२२	स्वायम्भुव मनु द्वारा अपनी कन्या देवहूती का कर्दम ऋषि के साथ विवाह करना	१६७

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२३	कर्दमजी का योगबल से विमान की उत्पत्ति तथा उसमें रहकर देवहूती के साथ विहार करना	१६८
२४	देवहूती के गर्भ से श्री कपिलदेवजी का अवतार तथा कर्दम ऋषि का तपस्या करने के निमित्त वन को प्रस्थान	१७२
२५	कर्दम ऋषि का वन-गमन तथा श्रीहरि का स्मरण करते हुए शरीर त्यागना	१७५
२६	श्री कपिलदेवजी द्वारा प्रकृति के भेद का वर्णन	१७८
२७	श्री कपिलदेवजी द्वारा सांख्य-योग का वर्णन	१८१
२८	श्री कपिलदेवजी द्वारा मनुष्य की उत्पत्ति तथा मृत्यु का वर्णन	१८५
२९	यमदूतों द्वारा पापी जीवों को यमराज के पास ले जाये जाने का वर्णन	१८८
३०	किस पाप के करने से कौन-सा दण्ड मिलता है, इसका वर्णन	१९०
३१	श्री कपिलदेवजी द्वारा नरक भोगने के पश्चात् जीव की स्थिति का वर्णन	१९१
३२	श्री कपिलदेवजी द्वारा तीन प्रकार के ज्ञान का वर्णन	१९४
३३	श्री कपिलदेवजी का पूर्व दिशा में जाना तथा देवहूती का सरस्वती नदी के तट पर मुक्त होना	१९७

चतुर्थ स्कन्ध

१	सती द्वारा दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शरीर-त्याग एवं पार्वती नाम से हिमाचल के घर में पुनर्जन्म-ग्रहण : भक्त ध्रुव एवं राजा पृथु की कथा	२००
	अत्रि मुनि की उत्पत्ति, तपस्या तथा उनके घर चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के जन्म का वृत्तान्त	२०१
२	दक्ष प्रजापति द्वारा श्री शिवजी का तिरस्कार एवं उन्हें शाप देना	२०२
३	सब देवताओं, ऋषियों तथा गन्धर्व आदि का विमानों पर बैठकर दक्ष के यज्ञ में जाना एवं उन्हें सती द्वारा देखा जाना।	२०४
४	सती का अपने पिता के घर पहुँचना तथा यज्ञ में अपने शरीर का त्याग करना	२०७
५	नारदजी का शिवजी के पास पहुँचना तथा सती के शरीर-त्याग एवं गणों के निकाले जाने का वृत्तान्त उन्हें सुनाना	२०८
६	भृगु आदि ऋषि एवं देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना तथा उनसे वीरभद्र का वृत्तान्त कहना	२१०
७	महादेवजी तथा ब्रह्मा आदि देवताओं का दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाना तथा दक्ष का पुनर्जीवित होना	२१२
८	सती का हिमाचल के घर पार्वती-रूप में जन्म लेना तथा उनका शिवजी के साथ विवाह होने का वृत्तान्त	२१४
९	उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का तपस्या के लिये वन-गमन	२१६
१०	श्री नारायणजी का भक्त ध्रुव को दर्शन देना	२२२
११	ध्रुवजी एवं कुबेर में सन्धि तथा ध्रुवजी का अपने पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिये वन को प्रस्थान करना	२२८
१२	ध्रुवजी का अपनी दोनों माताओं-सहित ध्रुवलोक को प्रस्थान	२३०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१३	ध्रुवजी के वंश में राजा अंग के यहाँ बेन की उत्पत्ति	२३२
१४	बेन का सिंहासनारूढ़ होना तथा ऋषि-मुनियों को हरि-भजन करने से रोकना	२३४
१५	राजा पृथु एवं अरुचि के जन्म की कथा	२३८
१६	ज्योतिषियों का राजा पृथु के जन्म-पत्र का फलादेश वर्णन करना	२३९
१७	प्रजा का दुःख दूर करने के लिए राजा पृथु का पृथ्वी पर क्रोध करना	२४०
१८	गोरूप पृथ्वी को दुहकर राजा पृथु का सम्पूर्ण अन्न एवं औषधियों का निकालना	२४२
१९	राजा पृथु का सौ अश्वमेध यज्ञ करना	२४४
२०	राजा पृथु का सब देवताओं को अपने निवास-स्थान पर आमन्त्रित करना	२४६
२१	राजा पृथु का सब राजाओं तथा मनुष्यों से भगवत् भजन के प्रचार के लिये कहना	२४८
२२	राजा पृथु तथा अरुचि का तपस्या करने के हेतु वन-गमन	२५१
२३	राजा पृथु का शरीर-त्याग एवं अरुचि का सती होना	२५१
२४	देवताओं का पृथु की स्तुति एवं विजिताश्व का धर्मपूर्वक राज्य करना	२५२
२५	श्री शिवजी एवं प्रचेताओं का वार्तालाप	२५३
२६	नारद ऋषि की प्रचेताओं के पिता प्राचीनबर्हिष से भेंट	२५५
२७	राजा प्राचीनबर्हिष का उन जीवों का स्वरूप देखना, जिन्हें उसने यज्ञ में बलि दिया था	२५६
२८	राजा पुरञ्जन का सुन्दरी से विवाह तथा विलास करना	२५८
२९	प्रज्वार का अपनी सेना लेकर पुरञ्जन को मारने के लिए जाना	२६१
३०	राजा मलयध्वज की मृत्यु एवं स्त्रीरूपी पुरञ्जन की अपने पूर्वजन्म के मित्र अविज्ञात से भेंट	२६२
३१	श्री नारदजी का अपने योगबल से राजा प्राचीनबर्हिष को एक हिरन सहित बाग को दिखाना	२६६

पञ्चम स्कन्ध

१	राजा प्रियव्रत एवं जड़भरत की कथा तथा सप्तद्वीप, नवखण्ड, चौदह भुवन एवं सम्पूर्ण नरकों का वर्णन	२६९
	राजा परीक्षित का श्री शुकदेवजी से राजा प्रियव्रत का वृत्तान्त पूछना	२७०
२	प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र का राजा होना तथा पूर्वचित्ती नामक अप्सरा से विवाह करना	२७४
३	राजा नाभि के यहाँ ऋषभदेवजी के अवतार की कथा	२७६
४	राजा नाभि का तपस्या के लिए पत्नी-सहित वन में जाना तथा ऋषभदेवजी का राज्य करना	२७७
५	ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को ज्ञान सिखाना : सन्त एवं महात्माओं के लक्षणों का वर्णन	२७९
६	ऋषभदेवजी के चलन द्वारा सरावगी धर्म की उत्पत्ति	२८१
७	भरत का राज्य करना तथा अन्त में तप करने के लिये वन-गमन	२८२
८	हिरण के बच्चे का खोना तथा राजा भरत का उसीके वियोग में शरीर त्याग देना	२८३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
९	राजा भरत का हिरण-शरीर को त्यागकर एक ब्राह्मण-घर में पुनर्जन्म लेना	२८४
१०	राजा रहूगण के कहारों का जड़-भरत को पकड़कर शिविका में लगाना	२८८
११	जड़भरत द्वारा राजा रहूगण को ज्ञानोपदेश	२९०
१२	राजा रहूगण द्वारा मनुष्य-शरीर की प्रशंसा	२९१
१३	जड़भरत द्वारा एक वैश्य के इतिहास का वर्णन	२९२
१४	राजा रहूगण का, ज्ञानोपदेश सुनकर, तपस्या करने के लिए वन में जाना	२९६
१५	श्री शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित से पृथ्वी के विस्तार आदि का वर्णन करना	२९७
१६	श्री शुकदेवजी द्वारा लोकालोक पर्वत का वर्णन	२९८
१७	श्री शुकदेवजी द्वारा गङ्गाजी की महिमा का वर्णन	२९८
१८	प्रत्येक खण्ड में होनेवाली अवतारों की पूजा का वर्णन	३०३
१९	अन्य खण्डों का वृत्तान्त-वर्णन	३०६
२०	सातों द्वीपों की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन	३०८
२१	आकाश एवं सूर्य आदि के विस्तार का वर्णन	३१०
२२	चन्द्रमा एवं मङ्गल आदि ग्रहों का वर्णन	३११
२३	ध्रुवलोक की प्रशंसा	३१२
२४	चौदह लोकों का वर्णन	३१३
२५	शेषजी की महिमा का वर्णन	३१५
२६	नरकों के नाम तथा उनका वर्णन	३१६

षष्ठ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	अजामिल की कथा तथा देवता एवं दैत्यों की उत्पत्ति का वर्णन	३२१
	अजामिल की कथा	३२२
२	श्रीहरि के पार्षदों का श्री नारायणजी के नाम-माहात्म्य का वर्णन करना	३२५
३	यमदूतों द्वारा धर्मराज से अजामिल का वृत्तान्त कहना	३२८
४	प्रचेताओं के यहाँ दक्ष की उत्पत्ति	३३१
५	उसी स्त्री से दस हजार पुत्रों का उत्पन्न होना	३३३
६	दक्ष का साठ कन्याओं की उत्पत्ति करना	३३५
७	बृहस्पति का इन्द्रादि देवताओं से रुष्ट होना	३३९
८	कवच के माहात्म्य का वर्णन	३४०
९	इन्द्र का अपने पुरोहित विश्वरूप का वध करना	३४१
१०	इन्द्रादिक देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाकर हड्डी माँगना	३४४
११	इन्द्र तथा वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन	३४६
१२	वज्र द्वारा वृत्रासुर की मृत्यु	३४८
१३	ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र का पलायन	३४९
१४	श्री शुकदेवजी का वृत्रासुर के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन करना	३५१
१५	नारद तथा अङ्गिरा आदि ऋषियों का राजमन्दिर में पहुँचना	३५३
१६	नारदजी के उपदेश से राजा चित्रकेतु को ज्ञान की प्राप्ति	३५४
१७	पार्वतीजी का राजा चित्रकेतु को शाप देना	३५५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१८	श्री शुकदेवजी का सविता देवता आदि की कथा का वर्णन करना	३५७
१९	श्री शुकदेवजी का पुंसवन नामक व्रत की विधि का वर्णन करना	३६०
	सप्तम स्कन्ध	
१	नृसिंहावतार एवं हिरण्यकशिपु की कथा	३६१
	जय-विजय की कथा	३६२
२	हिरण्यकशिपु की कथा	३६४
३	मन्दराचल पर्वत पर हिरण्यकशिपु का तप करना	३६७
४	ब्रह्माजी का हिरण्यकशिपु को वरदान देना	३६८
५	हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद को विद्याध्ययन के लिए पाठशाला में भेजना	३७०
६	प्रह्लाद का पाठशाला के बालकों को ज्ञानोपदेश करना	३७३
७	बालकों का प्रह्लाद का उपदेश ग्रहण करना	३७५
८	श्री नारायणजी का नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध करना	३७८
९	नृसिंहजी का क्रोध-त्याग तथा प्रह्लाद का उनकी स्तुति करना	३८२
१०	नृसिंहजी की प्रह्लाद पर दया	३८४
११	नारदजी का चारों वर्णों के धर्म का वर्णन करना	३९०
१२	नारदजी का ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का वर्णन	३९३
१३	नारदजी का संन्यास आश्रम के धर्म का वर्णन करना	३९४
१४	नारदजी का गृहस्थाश्रम धर्म का वर्णन करना	३९७
१५	गृहस्थाश्रम का वर्णन	३९९

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	अष्टम स्कन्ध	
१	हरि-अवतार एवं वामन-अवतार की कथा	४०२
	श्री शुकदेवजी का मन्वन्तरों की कथा का वर्णन	४०३
२	गजेन्द्र और ग्राह की कथा	४०४
३	गजेन्द्र का श्री नारायणजी की स्तुति करना	४०६
४	ग्राह को गन्धर्व-शरीर की प्राप्ति	४०७
५	कच्छ अवतार की कथा	४१०
६	श्री नारायणजी का देवताओं को दर्शन देना	४१२
७	क्षीर-समुद्र-मन्थन की कथा	४१५
८	समुद्र से कामधेनु तथा अमृत आदि की उत्पत्ति का वर्णन	४१८
९	मोहिनी अवतार द्वारा दैत्यों से अमृत-कलश लेना	४२२
१०	देवताओं तथा दैत्यों में युद्ध होना	४२५
११	युद्ध में देवताओं की विजय	४२७
१२	श्री शुकदेवजी का मोहिनी-स्वरूप के सौन्दर्य का वर्णन करना	४३०
१३	श्री शुकदेवजी का आठ मन्वन्तरों की कथा का वर्णन करना	४३४
१४	इन्द्र आदि देवताओं का वृत्तान्त	४३५
१५	शुक्राचार्य की कृपा से राजा बलि का पुनः इन्द्रलोक का राज्य प्राप्त करना	४३६
१६	इन्द्र को राज्य दिलाने के लिए अदिति का अपने पति कश्यपजी की सेवा करने का वृत्तान्त	४३८
१७	कश्यपजी के आज्ञानुसार अदिति का व्रत करना	४४०
१८	वामन भगवान् का राजा बलि की यज्ञशाला में आकर तीन पग पृथ्वी का दान माँगना	४४१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१९	राजा बलि का तीन पग पृथ्वी का दान देने के लिए उद्यत होना	४४४
२०	राजा बलि का तीन पग पृथ्वी का संकल्प करना	४४५
२१	वामन भगवान् का अपने विराट्-रूप से दो पग में ऊपर-नीचे के चौदहों लोकों को नाप लेना	४४७
२२	वामनजी का राजा बलि को सुतल लोक का राज्य देना	४४९
२३	राजा-बलि का सुतल लोक में जाकर राज्य करना	४५२
२४	मत्स्यावतार का वर्णन	४५४

नवम स्कन्ध

१	सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं की कथा	४६०
	श्राद्धदेव मनु का वृत्तान्त	४६१
२	श्राद्धदेव की अन्य सन्तानों का वृत्तान्त	४६४
३	श्राद्धदेव मनु की सन्तानों की कथा	४६६
४	राजा अम्बरीष का वृत्तान्त	४७१
५	दुर्वासा ऋषि का राजा अम्बरीष के पास पहुँचना	४७३
६	राजा इक्ष्वाकु का अपने पुत्र पर क्रोध करना	४७५
७	राजा त्रिशंकु का वृत्तान्त	४७८
८	राजा सगर की कथा	४८१
९	गङ्गावतरण की कथा	४८४
१०	श्री रामावतार की कथा	४८७
११	सीताजी को वनवास देने का वृत्तान्त	४८९
१२	कुश के वंश की कथा	४९१
१३	वशिष्ठजी का राजा निमि को शाप देने की कथा	४९२
१४	चन्द्रवंशी राजाओं का वृत्तान्त	४९३
१५	पुरूरवा के वंश का वर्णन	४९७
१६	परशुरामजी द्वारा अपनी माता तथा भाइयों का वध	५००
१७	राजा पुरूरवा के वंश का वर्णन	५०३
१८	राजा नहुष के वंश का वर्णन	५०६
१९	राजा ययाति का बकरी के इतिहास का वर्णन करना	५१३
२०	पुरु के वंश का वर्णन	५१४
२१	राजा वितथ के वंश का वृत्तान्त	५१६
२२	दिवोदास के वंश का वर्णन	५१८
२३	यदुवंशियों का वर्णन	५२२
२४	राजा उग्रसेन आदि के जन्म का वृत्तान्त	५२३

दशम स्कन्ध

१	श्री कृष्णावतार की लीलाएँ राजा परीक्षित का श्री कृष्णावतार की कथा पूछना	५२८
२	श्री कृष्णजी का देवकी के गर्भ में निवास	५३७
३	श्री कृष्ण-जन्म की कथा	५४१
४	कंस का कन्या को पृथ्वी पर पटकना तथा उसका हाथ से छूटकर आकाश में चला जाना	५४४
५	गोकुल में कृष्ण-जन्मोत्सव	५४७
६	पूतना का गोकुल में पहुँचना	५५१
७	कंस का तृणावर्त आदि राक्षसों को भेजना	५५४
८	गर्गजी द्वारा नामकरण-संस्कार एवं श्रीकृष्णजी के बाल-चरित्र की अन्य कथाएँ	५५८
९	ऊखल-बन्धन-लीला	५६९
१०	नलकूबर तथा मणिग्रीव के उद्धार की कथा	५७३
११	नन्दजी का गोकुल छोड़कर वृन्दावन में निवास करना	५७५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१२	अघासुर-वध की कथा	५८०
१३	ब्रह्मा द्वारा ग्वाल-बाल तथा बछड़ों को चुराकर ले जाने की कथा	५८९
१४	ब्रह्मा द्वारा श्री कृष्ण की स्तुति	५९४
१५	श्री बलरामजी द्वारा धेनुक राक्षस का वध	५९७
१६	कालीनाग की कथा	६०२
१७	कालीनाग का पूर्व-वृत्तान्त	६१३
१८	प्रलम्ब राक्षस के वध का वृत्तान्त	६१९
१९	मूँजवन में आग लगने से ग्वाल-बालों का व्याकुल होना	६२१
२०	वृन्दावन की शोभा का वर्णन	६२६
२१	गोपियों की प्रीति का वर्णन	६३०
२२	चीर-हरण की कथा	६३१
२३	ग्वाल-बालों का मथुरा के चौबों से भोजन माँगना	६३७
२४	गोवर्द्धन-पूजा की कथा	६४३
२५	श्रीकृष्णजी के, गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने की कथा	६४७
२६	व्रजवासियों द्वारा श्री कृष्ण-स्तुति	६५२
२७	इन्द्र का श्री कृष्णचन्द्रजी की शरण में आना	६५४
२८	श्री कृष्णजी के वरुण लोक जाने की कथा	६५७
२९	श्री कृष्णजी का वंशी-वादन	६८२
३०	गोपियों द्वारा श्री कृष्णचन्द्रजी की खोज	६८९
३१	श्री कृष्णचन्द्रजी के वियोग में गोपियों का विलाप	६९४
३२	गोपियों के बीच श्री कृष्णचन्द्रजी का प्रकट होना	६९७
३३	महारासलीला का वर्णन	७००
३४	शंखचूड़ की कथा	७०५
३५	गोपियों के विरह का वर्णन	७०८
३६	वृषासुर-वध की कथा	७१५
३७	केशी तथा व्योमासुर-वध की कथा	७२३
३८	अक्रूर का वृन्दावन में पहुँचना	७२६
३९	श्याम तथा बलराम का अक्रूर के साथ मथुरा जाना	७२९
४०	अक्रूर द्वारा श्री कृष्ण के चतुर्भुजी स्वरूप की स्तुति	७३८
४१	अक्रूर तथा श्याम-बलराम का मथुरा पहुँचना	७४०
४२	श्री कृष्णचन्द्रजी का शिव-धनुष को तोड़ना	७४६
४३	श्री श्यामजी तथा बलरामजी द्वारा कुवलयापीड़ हाथी का संहार	७४९
४४	श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी द्वारा चाणूर आदि मल्ल एवं राजा कंस का वध	७५२
४५	श्रीकृष्णचन्द्रजी का उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठाना	७५७
४६	श्री कृष्णजी का गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिए उद्धव को वृन्दावन भेजना	७७२
४७	उद्धव का गोपियों को ज्ञानोपदेश करना	७७९
४८	श्री कृष्णचन्द्रजी का कुब्जा तथा अक्रूर के घर जाना	७९५
४९	अक्रूर का हस्तिनापुर पहुँचकर पाण्डवों का समाचार लाना	७९८
५०	श्री कृष्णजी तथा जरासन्ध के युद्ध की कथा	८०१
५१	कालयवन एवं मुचुकुन्द की कथा	८०९
५२	जरासंध की इच्छा पूर्ण करने के हेतु श्याम-बलराम का पलायन तथा रुक्मिणी की कथा	८१३
५३	रुक्मिणी-हरण की कथा	८१९
५४	जरासन्ध तथा रुक्माग्रज आदि का श्री श्याम-बलराम से युद्ध	८२४
५५	प्रद्युम्न के जन्म का वृत्तान्त	८२८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५६	श्री कृष्णजी का जाम्बवन्ती तथा सत्यभामा से विवाह करने की कथा	८३२
५७	सत्राजित् एवं शतधन्वा के मारे जाने की कथा	८३८
५८	श्री कृष्णजी का कालिन्दी, सत्या, भद्रा तथा लक्ष्मणा आदि से विवाह करने की कथा	८४४
५९	श्री कृष्णजी का भौमासुर को मार-कर सोलह सहस्र एक सौ राज-कन्याओं के साथ विवाह करने की कथा	८५१
६०	श्री श्यामसुन्दर का रुक्मिणीजी से विनोद	८५८
६१	श्री कृष्णजी के वंश का वर्णन	८६१
६२	अनिरुद्ध तथा उषा की कथा	८६५
६३	श्री कृष्णजी तथा बाणासुर के युद्ध का वृत्तान्त	८७३
६४	राजा नृग का वृत्तान्त	८७८
६५	बलरामजी का वृन्दावन में पहुँचना	८८१
६६	पुण्डरीक के मोक्ष की कथा	८८५
६७	बलरामजी द्वारा द्विविद वानर को मारने की कथा	८८९
६८	साम्ब तथा लक्ष्मणा के विवाह की कथा	८९१
६९	नारद को श्री कृष्णजी की माया का दर्शन	८९४
७०	मगध तथा हस्तिनापुर से बुलावा आने का वृत्तान्त	८९७
७१	श्री कृष्णजी का पाण्डवों के पास पहुँचना	९००
७२	जरासन्ध-वध की कथा	९०२
७३	श्री कृष्णजी का राजाओं को मुक्त करना	९०८
७४	युधिष्ठिर के यज्ञ तथा शिशु-पाल-वध की कथा	९१०
७५	दुर्योधन के मान-मर्दन का वृत्तान्त	९१४
७६	शाल्व का द्वारका पहुँचकर उप-द्रव करना	९१५
७७	श्री कृष्णजी का द्वारका में पहुँच-कर राजा शाल्व को मारना	९१७
७८	दन्तवक्त्र तथा विदूरथ-वध की कथा	९२०
७९	बलरामजी द्वारा इल्वल-वध	९२३
८०	सुदामा की कथा	९२६
८१	सुदामा की श्री कृष्णजी से बिदाई	९२९
८२	श्री कृष्णजी की कुरुक्षेत्र-यात्रा तथा वृन्दावनवासियों से मिलन	९३२
८३	द्रौपदी तथा रुक्मिणी आदि का वार्तालाप	९३७
८४	वसुदेवजी का यज्ञ करना	९३८
८५	वसुदेवजी द्वारा श्री कृष्णचन्द्र की स्तुति	९४१
८६	अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण	९४३
८७	श्रीहरि-स्तुति	९४६
८८	भस्मासुर की कथा	९४८
८९	भृगु ऋषि का श्री नारायणजी के वक्षस्थल पर पद-प्रहार करने की कथा	९५१
९०	श्री श्यामसुन्दर की सन्तानों का वर्णन	९५५

एकादश स्कन्ध

१	दुर्वासा आदि ऋषियों का द्वारका जाना	९५९
२	नारदजी द्वारा वसुदेवजी को ज्ञानोपदेश	९६१
३	तीन योगीश्वरों द्वारा राजा जनक को ज्ञानोपदेश	९६६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
४	अवतारों का वर्णन	९६९
५	आठवें तथा नवें योगीश्वरों का ज्ञानोपदेश	९७२
६	ब्रह्मादि देवताओं का श्री श्याम-सुन्दर के पास पहुँचना	९७५
७	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश	९७७
८	दत्तात्रेय द्वारा राजा यदु को ज्ञानोपदेश	९८२
९	दत्तात्रेय द्वारा अपने गुरुओं की कथा का वर्णन	९८६
१०	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश	९९०
११	श्री मुरलीमनोहर द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश	९९१
१२	श्री मुरलीमनोहर द्वारा सत्संग के माहात्म्य का वर्णन	९९३
१३	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव के प्रति धर्म-कर्म आदि का वर्णन करना	९९४
१४	उद्धव का श्री श्यामसुन्दर से वेद-शास्त्रों का हाल पूछना	९९७
१५	श्री श्यामसुन्दर द्वारा अष्ट सिद्धियों का वर्णन	९९९
१६	श्री श्यामसुन्दर द्वारा श्रीमद्-भगवद्गीता के मुख्य ज्ञान का उपदेश	१००२
१७	श्री श्यामसुन्दर द्वारा चारों युगों का वर्णन	१००४
१८	श्री कृष्णजी का उद्धव से वान-प्रस्थ आदि का वर्णन करना	१००६
१९	श्री कृष्णजी का उद्धव से चार प्रंकार के भक्तों का वर्णन करना	१००७
२०	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा माया से छूटने के उपाय का वर्णन	१००९
२१	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा भक्ति उत्पन्न होने के ज्ञान का वर्णन	१०११
२२	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा तत्त्वों का वर्णन	१०१३
२३	श्री कृष्णजी द्वारा ब्राह्मण के इतिहास का वर्णन	१०१५
२४	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा माया एवं आदिपुरुष का वर्णन	१०१८
२५	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा तीनों गुणों के लक्षणों का वर्णन	१०१९
२६	राजा पुरूरवा को गन्धर्व-लोक में प्राप्त ज्ञान का वर्णन	१०२१
२७	श्री मुरलीमनोहर द्वारा पूजा आदि की विधि का वर्णन	१०२३
२८	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा विरक्ति के ज्ञान का वर्णन	१०२५
२९	श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा मन को रोकने के सम्बन्ध में वर्णन	१०२६
३०	यदुवंशियों का नाश एवं व्याध का श्री कृष्णचन्द्रजी के चरण में बाण मारना	१०२९
३१	श्री श्यामसुन्दर का गोलोक-गमन एवं वसुदेव आदि की मृत्यु	१०३२

द्वादश स्कन्ध

१	कलियुग के जीवों का वृत्तान्त, तक्षक का राजा परीक्षित को काटना एवं मार्कण्डेय ऋषि की कथा	१०३४
	श्री शुकदेवजी द्वारा कलियुग के राजाओं का वर्णन	१०३५
२	श्री शुकदेवजी द्वारा कलियुग-वासियों का लक्षण कहना	१०३६
३	श्री शुकदेवजी द्वारा पिछले राजाओं का हाल कहा जाना	१०३८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय	विषय	पृष्ठ
४	श्री शुकदेवजी द्वारा अग्नि, जल तथा वायु आदि का वर्णन	१०४१
५	श्री शुकदेवजी द्वारा श्री नारायणजी की महिमा का वर्णन	१०४२
६	तक्षक सर्प द्वारा राजा परीक्षित को काटने का वृत्तान्त	१०४४
७	सूतजी द्वारा शुभाशुभ कर्मों के फलों का वर्णन	१०४८
८	सूतजी द्वारा मार्कण्डेय ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन	१०४९
९	श्री नारायणजी का मार्कण्डेय ऋषि को महाप्रलय का दृश्य दिखलाना	१०५१
१०	शिव तथा पार्वती का मार्कण्डेयजी के पास जाना	१०५३
११	सूतजी द्वारा शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि का वर्णन	१०५५
१२	सूतजी द्वारा श्रीमद्भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन	१०५८
१३	अठारहों पुराणों का वर्णन	१०५९

श्रीरामचरितमानस आठ काण्ड

१ श्रीरामचरितमानस, भाषा टीका सचित्र तथा सजिल्द (देवदीपिका टीका) आठ काण्ड, क्षेपक सहित, रायल चौपेजी (ग्लेज) मूल्य ३०)

२ श्रीरामचरितमानस सटीक (सचित्र तथा सजिल्द आठ काण्ठ चाँदी के ठप्पे सहित) २२×२९=८ पेजी ग्लेज कागज मूल्य १६)

३ श्रीरामचरितमानस सटीक (सचित्र तथा सजिल्द आठ काण्ड चाँदी के ठप्पे सहित) २२×२९=८ पेजी रफ कागज मूल्य १२)

४ रामायण बतर्ज राधेश्याम रफ मूल्य ८)

५ रामायण बतर्ज राधेश्याम ग्लेज मूल्य १०)

गीता भाषा (लाहौरी)

इसमें गीता सम्पूर्ण १८ अध्याय का सरल हिन्दी भाषा में सुन्दर अनुवाद है। यह बहुत मोटे टाइप में छपी है तथा हरएक अध्याय का माहात्म्य अध्याय के साथ में दिया हुआ है। कुछ उपयोगी पूजा-मन्त्र, आरती व भजन आदि विषयों से परिपूर्ण पुस्तक चाँदी के ठप्पे-सहित सुंदर कपड़े की जिल्द में सभी आबालवृद्ध नर-नारी के बड़े काम की है।

मूल्य ग्लेज कागज ३) रफ कागज २)

पुस्तक मिलने का पता—श्री गंगा पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशकीय निवेदन

"धार्मिक ग्रंथों के प्रकाशन द्वारा धार्मिक जनता की अधिक से अधिक सेवा करते रहें और जहाँ तक संभव हो सके, शुद्ध और प्रामाणिक संस्करणों के प्रकाशन द्वारा, धर्म-प्रेमियों की माँगों को पूरा करते रहें"—सदा से हमारा यही प्रयास रहा है। हम अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह हमारे श्रद्धालु पाठक ही बता सकते हैं। किन्तु हमारे धार्मिक ग्रंथों का जैसा स्वागत जनता ने किया, उससे हमें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है।

उसी प्रोत्साहन के कारण हम 'सुखसागर' का यह संस्करण अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित कर रहे हैं। हमने अन्यान्य संस्करणों की त्रुटियों से इसे मुक्त रखने की एवं शुद्ध, प्रामाणिक और श्रीमद्भागवत का अनुसरणकारी बनाने की पूरी चेष्टा की है।

इस ग्रंथ का महत्त्व कितना है, भगवद्भक्तों और वैष्णवों में इसकी प्रतिष्ठा कितनी है, भक्ति और प्रेम की मधुर स्रोतस्विनी का कैसा अनन्त प्रवाह इस ग्रंथ के द्वारा प्रवाहित हुआ है, हमें इसे कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। माननीय पं० कमलापति त्रिपाठी, भूतपूर्व मन्त्री—गृह शिक्षा एवं सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा लिखित भूमिका से इस ग्रंथ की महिमा का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जायगा।

अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी हमारे आग्रह पर माननीय पंडितजी ने जो विद्वत्तापूर्ण विस्तृत भूमिका लिखने की कृपा की है, उसके लिए हम चिरकाल तक उनके ऋणी तथा आभारी बने रहेंगे। उनकी परिचयात्मक भूमिका के कारण ग्रंथ का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि धर्मप्रेमी जनता द्वारा भक्ति-सुधा से परिपूर्ण इस ग्रंथ का भव्य स्वागत होगा और हमारा यह प्रकाशन भी पहले के प्रकाशनों की भाँति पूर्णतः संतोषप्रद होगा।

पृथ्वीनाथ भार्गव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूमिका

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि काशी का प्रसिद्ध भार्गव भूषण प्रेस बृहत् नवीन सुखसागर का संस्करण प्रकाशित करने जा रहा है। भार्गव भूषण प्रेस, काशी का वह प्रसिद्ध मुद्रणालय है, जिसे दशकों से भारतीय वाङ्मय के अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक ग्रन्थों के प्रकाशन का श्रेय प्राप्त है। हिन्दी भाषा में इस देश के अनेक श्रद्धेय ग्रन्थों का प्रकाशन करके इस प्रेस ने राष्ट्रभाषा में लोक-मंगलकारी साहित्य को प्रकट करने का पुण्य अर्जन किया है। उसके द्वारा सुखसागर के नये संस्करण का प्रकाशन हो, यह उचित ही है। मैं कृतज्ञ हूँ भार्गव भूषण प्रेस के स्वामी बन्धुद्वय श्री पृथ्वीनाथ भार्गव तथा श्री शम्भूनाथ भार्गव का, जिन्होंने कृपा कर मुझसे यह आग्रह किया कि प्रकाशित होनेवाले पवित्र सुखसागर की भूमिका मैं लिख दूँ।

भार्गव बन्धु, न केवल हमारे नगर के प्रतिष्ठित नागरिक और निवासी हैं, प्रत्युत मेरे निकटतम मित्र भी हैं। मेरे लिए उनका आग्रह टालना वैसे भी सम्भव नहीं था कि सुखसागर की भूमिका लिखने के प्रस्ताव ने मुझे उनके आदेश का परिपालन करने के लिए दूसरे और कारणों से भी आकृष्ट किया। मुझे ऐसा भास हुआ कि मेरे सम्मुख इस प्रस्ताव का प्रस्तुत होना भगवान् की अनुकम्पा का ही परिणाम है। संसार की छोटी-मोटी विभिन्न प्रकार की झंझटों और उलझनों में अहर्निश जीवन के प्रत्येक क्षण को व्यय करनेवाले साधारण प्राणी के लिए ऐसे सुयोग का उपस्थित होना, जिसमें वह अनन्त काल-प्रवाह के कुछ क्षणों में संसार के बीच से हटकर भगवान् का भावुक स्मरण कर सके, उसके किसी पुण्य का ही प्रतिफल मानना चाहिए। सुखसागर की भूमिका लिखते हुए जीवन के लिए पलभर ऐसी स्थिति में पहुँच जाना सम्भव है, अतः मैंने सहर्ष इस भार को वहन करने के प्रस्ताव का स्वागत किया।

वैसे तो सुखसागर की भूमिका लिखने का कार्य किसी विद्वान् से ही कराना उचित होता। सुखसागर श्रीमद्भागवत का हिन्दी अनुवाद है। श्रीमद्भागवत संस्कृत-साहित्य में किस उच्च कोटि का ग्रन्थ है, इसे विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है। इस परम श्रद्धास्पद और महान् ग्रन्थ की गणना यद्यपि अष्टादश पुराणों में की जाती है, पर संस्कृत-साहित्य का किञ्चित् परिचय रखनेवाला व्यक्ति भली भाँति जानता है कि श्रीमद्भागवत का सारा स्वरूप—उसकी रचनाशैली, उसकी भाषा, उसमें व्यक्त हुए भाव, भावों में भरी हुई भावुकता, उस भावुकता की भावनामयी पद्यानुबन्धित व्यञ्जना—काव्य-कला का वह अत्यन्त उत्कृष्ट और कमनीय रूप व्यक्त करता है जो इस पावन ग्रन्थ को अनन्यतम विशिष्टता प्रदान करता है। पर इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता केवल साहित्यिक दृष्टि से ही स्वीकार नहीं की जा सकती। इसकी महत्ता तो इस बात में है कि साहित्यिक दृष्टि से उच्चतम कोटि का ग्रन्थ होते हुए यह हमारे वाङ्मय का वह अनमोल और पुनीत रत्न है, जो अपनी किरणों से भारतीय महर्षियों और तत्त्व-वेत्ताओं द्वारा युग-युग से अर्जित समस्त अनुभूतियों और ज्ञान-गरिमा को मानव-जीवन के आकाश में अत्यन्त विमोहक और मर्मस्पर्शी रूप में प्रकीर्ण करने में समर्थ हुआ।

ऐसे ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का भूमिका-लेखन किसी विद्वान् के द्वारा ही होना चाहिए था। कहा जाता है, "विद्यावतां भागवते परीक्षा"। विद्वानों की विद्वत्ता की परीक्षा भागवत में होती है अथवा यह भी कहा जाता है, "विद्या भागवतावधिः"। जब भागवत में विद्या की पराकाष्ठा मूर्त हुई है तो उस ग्रन्थ के अनुवाद की ही सही भूमिका लिखने का अधिकार मुझको नहीं है। पर यह धृष्टता भी करने का साहस इसी विचार से किया कि इस ग्रन्थ की भूमिका लिखते हुए जीवन के कुछ क्षण पवित्र हो जायँगे और फिर उन क्षणों का अविनश्वर प्रभाव मेरे लिए कल्याणकारी ही होगा।

सुखसागर, श्रीमद्भागवत का हिन्दी रूपान्तर होने के नाते, हिन्दी जगत् का बड़ा पुराना और प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सम्भवतः आज से ५० वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का प्रथम बार प्रकाशन हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आस्तिक हिन्दू परिवारों में तो इस ग्रन्थ का अभूतपूर्व प्रचलन है। जिस प्रकार रामचरितमानस कदाचित् प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिन्दू परिवार में सम्पूजित और प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दू परिवारों में प्रायः सर्वत्र ही सुखसागर की प्रति रखी मिल जायगी। भगवान् श्रीराम के चरित्र का मानस में पाठ करके जिस प्रकार हिन्दू शान्ति-लाभ करता है, उसी प्रकार सुखसागर में श्रीकृष्ण की लीलाओं को श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पढ़कर हिन्दू परिवारों में हमारी माताएँ और बहनें विशेष रूप से, महान् पुण्य की प्राप्ति की आशा रखती हैं। मुझे स्वयं स्मरण है कि आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व मैं अपनी माँ के पास बैठा हुआ सुखसागर की गाथाओं को सुनता था। वे बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ कथाएँ बाँचती थीं और हम उसे सुना करते थे। आज भी सनातनधर्मावलम्बी हिन्दू परिवारों में यह पवित्र ग्रन्थ अत्यन्त ही सम्मानित है। फलतः हिन्दी साहित्य के इस ग्रन्थ को लोक-साहित्य का एक अनुपम रत्न मानें तो सर्वथा उचित होगा।

श्रीमद्भागवत के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ उसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं और कुछ उसे बहुत प्राचीन स्वीकार नहीं करते। अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवत के स्थान के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। पर यह विवादास्पद विषय विद्वानों के लिए छोड़ देना ही उचित होगा। यह वह स्थान नहीं है जहाँ इस विषय में चर्चा की जाय अथवा उपर्युक्त प्रश्न के सम्बन्ध में जो मत-मतान्तर हैं उनकी विवेचना में संलग्न हुआ जाय। मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि यह ग्रन्थ इस देश के कोटि-कोटि नर-नारियों के लिए परम पूज्य और पावन ग्रन्थ है जिसके प्रति उनकी निष्ठा और भक्ति-भावना से न जाने कितने आर्त, दुखी और संसार की जटिलताओं से त्रस्त प्राणियों को शान्ति और सन्तोष प्राप्त हुआ है। श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति है तथापि इस विशाल ग्रन्थ में जीवन सम्बन्धी कोई ऐसा तात्त्विक विषय नहीं है जिसका उत्कृष्ट विवेचन न किया गया हो। सृष्टि, स्थिति, प्रलय जैसे विषय से लेकर कर्म-अकर्म और धर्म-अधर्म की समीक्षा, भक्ति और कर्म का आध्यात्मिक निरूपण तथा ज्ञान, वैराग्य की सम्यक् विवेचना की गई है। यद्यपि इन समस्त गूढ़ और शुष्क विषयों की विवेचना भागवतकार ने की है, तथापि इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इन समस्त प्रश्नों का समाधान जिस मर्मस्पर्शी, मनोहारी, मधुर, ललित तथा आकर्षक ढंग से किया गया है, वह ऐसा है जिसका दूसरा उदाहरण संसार की भाषाओं के किसी भी अन्य ग्रन्थ में मिलना कदाचित् कठिन होगा।

भक्तिमार्ग की भूमिका में भगवान् श्रीकृष्ण को केन्द्रबिन्दु में रखकर जीवन की समस्त भावुक वृत्तियों को, जीवन के साध्य मोक्ष और आत्मसाक्षात्कार की ओर कोमलता के साथ प्रेरित करने में श्रीमद्-भागवत् के तत्त्वदर्शी लेखक ने परम सफलता जिस प्रकार प्राप्त की है, उसकी दूसरी मिसाल कहीं ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकती। भारतीय महर्षियों, सिद्धों और विचारकों ने कर्म, भक्ति और ज्ञान के त्रिपथ की रचना, जीवन की सार्थकता और उसके प्रयोजन की सिद्धि के लिए अति प्राचीनकाल से कर रखी है। पर इस त्रिमार्ग का नाम यद्यपि भिन्न है और उसका बाह्य स्वरूप भी भिन्न दिखाई देता है, तथापि इस त्रिवेणी के संगम के बिना जीवन की संसिद्धि सम्भव नहीं होती। लक्ष्य की उपलब्धि इस संगम में अवगाहन करने पर ही सम्भव है। जीव, अपनी अनन्त यात्रा में संलग्न होने पर भले ही एक के बाद दूसरी मंजिल तै करता चले और इन मंजिलों को अलग-अलग त्रिपथ में भले ही विभाजित कर दिया जाय, पर वास्तव में तत्व-दर्शियों की अनुभूति यह बताती है कि यह सारा मार्ग एक ही राजपथ है जिसे तै करने के बाद अडिग यात्री नाम और रूप की भिन्नता की भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भागवत के रचयिता ने कर्म, भक्ति और ज्ञान में उसी एकसूत्रता का दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की है। वस्तुतः कर्म, भक्ति और ज्ञान में कारण, कार्य का सम्बन्ध है। शास्त्रविहित सकाम अथवा निष्काम कर्म से चित्त की शुद्धि होती है, चित्तशुद्धि से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति की पराकाष्ठा आत्म-निवेदन और इष्ट के प्रति सर्वस्व के समर्पण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की वृत्ति का उदय करती है और यह वृत्ति तादात्म्य की उपलब्धि कराती हैं। और तादात्म्य उस चिरन्तन चेतनावस्था को प्रदान करता है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। दूसरी ओर से देखें तो यह कह सकते हैं कि ज्ञान होने पर तत्त्व के प्रति सत्य-निष्ठा और अविचल-भक्ति का उदय होता है और वह भक्ति कण-कण में व्याप्त उस विभूति की सेवा और प्रसन्नता के लिए सत्कर्म में नियोजित करती है जिसके स्नेह में भक्त का हृदय आकुल रहता है।

फलतः श्रीमद्भागवत में त्रिवेणी का यह संगम मनोहर रूप में मूर्त हुआ है। इस ग्रन्थ के रचयिता ने यद्यपि भक्ति को प्रधानता दी है तथापि उसने यह स्वीकार किया है कि व्यक्त और अव्यक्त के मूल में उसके भीतर और बाहर, उसकी परिधि में तथा परिधि का अतिक्रमण करके जो कुछ है, वह एक ही तत्व है और उसके सिवा किसी और का अस्तित्व भी नहीं है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में भागवत के लेखक ने भगवान् के मुख से ब्रह्मदेव को जो उपदेश कराया है उसे देखिए—

'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यद् सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥'

भगवान् अपने ही मुख से अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं—"मेरा ही एकमात्र अस्तित्व है, मेरे सिवा न सत्, न असत्, न स्थूल, न सूक्ष्म, न अज्ञान कुछ भी नहीं है। व्यक्त सृष्टि के रूप में जो दिखाई दे रहा है, वह भी मैं हूँ। जहाँ सृष्टि नहीं है वहाँ भी मैं ही हूँ और सृष्टि, असृष्टि से जो कुछ बच रहता है वह भी मैं ही हूँ। न होने पर भी मुझसे भिन्न जो वस्तु प्रतीत हो रही है और रहने पर भी जिसका भास नहीं होता, वह सब भी मेरी ही माया है। जिस प्रकार पंचमहाभूत सभी शरीरधारी भौतिक पिण्डों में प्रवेश करते हैं तथा पहले से ही उनके कार्य रूप में होने के कारण प्रविष्ट रहने के फलस्वरूप प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही आत्मा के रूप में प्राणियों के शरीर की दृष्टि से उनमें प्रवेश किये हुए भी मैं अपने अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व न रहने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।" इससे ही क्या यह स्पष्ट नहीं है कि श्रीमद्भागवत भक्ति-प्रधान ग्रन्थ होते हुए भी भक्तिमार्ग के द्वारा जीवन को उस परम अद्वैत-साधना की ओर ले जाता है जिसकी सिद्धि का फल ही मोक्ष की उपलब्धि है। योगी के योग के साधनों से जिस तत्त्व का दर्शन होता है और इस तत्त्वदर्शन से उसे जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त होता है और आत्मसाक्षात्कार से उसे जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है और उस ज्ञान के द्वारा हृदय की ग्रन्थि जिस प्रकार खुलती है, संशय और भ्रान्तियाँ जिस प्रकार छिन्न-भिन्न होती हैं और जीवन के बन्धन कटकर जिस प्रकार उसे मोक्ष प्रदान करते हैं, उसी प्रकार भक्तिमार्ग के साधनों से तत्त्वदर्शन और आत्मसाक्षात्कार तथा मोक्ष की उपलब्धि कराना श्रीमद्भागवत का परम लक्ष्य दिखाई देता है। समस्त भागवत को अपनी बुद्धि के अनुसार एकाधिक बार पढ़ जाने के उपरान्त मेरे मन पर यही छाप पड़ी है कि यह अत्यन्त पावन ग्रन्थ समस्त द्वन्द्वों और नानात्व तथा भ्रान्तियों से प्राणी के अन्तश्चेतन को ऊँचे उठाकर 'एकमेवाद्वितीयम्' के उस स्तर पर ले जाने के लिए सचेष्ट है, जहाँ पहुँचकर फिर और कहीं पहुँचने की आवश्यकता नहीं रह जाती। श्रीमद्भागवत की घोषणा है कि—

'यथा ह्यवहितो वह्निः, दारुष्वेकः स्वयोनिषु। नानेव भाति विश्वात्मा, भूतेषु च तथा पुमान्॥'

अर्थात् अग्नि एक होते हुए भी जिस प्रकार विभिन्न प्रकार की लकड़ियों में से प्रकट होने पर अनेक-सी दिखाई देती है, वैसे ही भगवान् आत्म-रूप में एक ही होते हुए भी प्राणियों की अनेकता से अनेक-जैसे जान पड़ते हैं।

एक सीमा तक यह बात सच है कि भक्ति की भावना द्वैत की धारणा पर आश्रित है। इष्ट और उपासक की सत्ता स्वीकार करके ही भक्ति-पथारोहण की वृत्ति अग्रसर होती है। पर यह स्थिति आरम्भिक दशा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक ही सत्य कही जा सकती है। भक्त की भक्ति की चरम स्थिति और अन्तिम पराकाष्ठा तो तब पहुँचती है जब उपास्य और उपासक का भेद सर्वथा मिट जाय। इष्ट का साक्षात्कारमात्र नहीं, प्रत्युत उससे सम्पूर्ण तादात्म्य में ही भक्ति की परिणति होती है। फिर वह स्थिति चेतन को वह रसदशा प्राप्त कराती है जिसमें उसकी समस्त अहमनुभूति विनष्ट हो जाती है और सर्वत्र एकमात्र विभु की व्यक्त और अव्यक्त सत्ता प्रतिष्ठित दिखाई देती है। ऐसी अवस्था में फिर कहाँ रह जायगा नानात्व और भेद की भ्रान्ति तथा भावना और कहाँ रह जायगा उसके लिए उस असत् का अस्तित्व जिसका भान परम चेतन की अक्षय लीला की एक लोल लहरी मात्र है। आखिर ज्ञानी भी अपने मार्ग से इसी चिन्मयी दशा में पहुँचने में सफल होता है और योगी भी अन्ततः अपनी साधना के पथ से इसी तात्विक स्थिति में पहुँचकर अपने बन्धनों से विमुक्त होता है। नानात्व और भिन्नता तथा भेद की भ्रान्ति का मिटना और एकमात्र एकत्व का अनुदर्शन ही मोह और शोक से मुक्त करके चेतन को अपने सहज स्वरूप में प्रतिष्ठित करता है और वह प्रतिष्ठा ही आत्म-ज्ञान की संज्ञा प्रदान करती है। इष्ट और उपास्य के मार्ग से अग्रसर होते हुए यदि उसी उन्मुक्त रसाकाश में पहुँचकर चैतन्य स्थिर हो जाता है और भिन्नता का भान स्वतः विलीन हो जाता है और मुहिं में तुहिं में खड्ग खम्भ में तथा घट-घट में अक्षुण्ण अद्वैत और अविनश्वर राम में रम जाने की स्थिति प्राप्त होती है तो फिर यह कैसे स्वीकार किया जाय कि भक्तिमार्ग का साधन उस द्वैत की ओर उन्मुख करता है जो पूर्ण सत्य पर आश्रित नहीं है।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचार करने की है। द्वैत की भावना यद्यपि अज्ञानमूलक है तथापि द्वैत तत्त्व का सम्पूर्ण नास्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। परम चेतन की निर्विकार सत्ता यद्यपि एकमात्र सत्य है तथापि वह, वह सत्ता है जो निर्विकार भी है, सविकार भी है और निर्विकार तथा सविकार दोनों की सीमा का अतिक्रमण करके और दोनों का समावेश अपने में करके और दोनों में रहकर तथा दोनों के बाहर होकर भी स्थित है। वह अनिर्वचनीय सत्ता है जिसकी अनुभूति या तो उस सत्ता को स्वयं होगी अथवा उसे होती होगी जो उसी में लयीभूत हो। पर इस निर्विकार सत्ता में सृष्टि की प्रतीति और नानात्व की भ्रान्ति भी स्वतः निहित है। यदि ऐसा न होता तो भ्रान्ति होती ही क्यों ? यदि निर्विकारी सत्य का ही एकमात्र अस्तित्व है और उसके सिवा कुछ भी दूसरा नहीं है, तो इस मिथ्या माया और भ्रान्ति का उद्भव हुआ कहाँ से ? जिसका सम्पूर्ण अभाव है उसका भाव हो ही नहीं सकता और न उसकी अभिव्यक्ति हो सकती है और न उत्पत्ति। फलतः यह मानना होगा कि जो पूर्ण है उसमें निर्विकार, सविकार, सबका समावेश है। सृष्टि का तथा उसके साथ प्रपञ्च के समस्त नानात्व की प्रतीति की सारी भ्रान्ति भी उसमें सन्निविष्ट है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अन्तः सृष्टि का प्रयोजन ही क्या है ? यह मान लेना कि सृष्टि आकस्मिक घटना मात्र है, कदाचित् जीवन के प्रति भारतीय विचारधारा के लिए विजातीय दृष्टि है। अहेतुक, निष्प्रयोजन, अकस्मात् सृष्टि का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। भारत की तात्त्विक दृष्टि में ऐसी मान्यता को जिसमें सृष्टि का उद्भव निष्प्रयोजन स्वीकार किया जाता हो, आसुर प्रवृत्ति का द्योतक माना गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों में—

असत्यमप्रतिष्ठं ते, जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्परसम्भूतं, किमन्यत्कामहेतुकम्॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोल्पबुद्धयः। प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥

अर्थात् ऐसे लोग जो सृष्टि को केवल काम-कौतुक से सम्भूत, बिना किसी प्रयोजन के, बिना किसी आश्रय के और बिना किसी हेतु के सहसा सम्भूत हुई मानते हैं, वे इस प्रकार की दृष्टि ग्रहण करके जगत् के विनाश के लिए उग्र पापकर्मों में लिप्त होते हैं। ऐसी दृष्टि को भगवान् ने आसुर प्रवृत्ति की संज्ञा प्रदान की है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फलतः इस देश की संस्कृति और जीवन तथा जगत् के प्रति उसकी दृष्टि ने सृष्टि को उद्देश्यरहित, लक्ष्यहीन और निरर्थक प्रक्रिया स्वीकार नहीं किया। उसने यह भी स्वीकार नहीं किया कि विशुद्ध जड़ किन्तु अनादि भौतिक तत्त्वमात्र ही सत्य है, जो अकारण बिखरा हुआ रहता है और निष्कारण ही कभी परस्पर संयोजित हो उठता है और भौतिक पिण्ड के रूप में सृष्टि का स्वरूप प्रकट हो जाता है, और वहीं से अकारण ही उसमें चेतना का संचार किसी भौतिक अथवा जड़मय प्रक्रिया से ही हो जाता है। उसने तो दूसरी दिशा से विश्व के प्रपञ्च को देखा और देखा इस दृष्टि से कि विधि के सारे विधान के मूल में उसका प्रयोजन निहित है। अद्वैत सत्ता मूलरूप से प्रतिष्ठित है जो अक्षय और सनातन होने के कारण सत् के रूप में स्थित है। यह सत्य-सत्ता जड़ नहीं चिन्मय है। अवश्य ही जो है वह स्वयं ही अक्षुण्ण है। वह स्वयं स्व का आश्रय है और उसके सिवा कुछ भी दूसरा नहीं है। उसकी विभुता और उसकी अनन्यता, उसका अपना वैभव और अपनी विशिष्टता है।

पर प्रश्न यह उठता है कि विभु की अनन्यता में यह अन्यता क्यों भासमान हुई? अन्ततः इसका हेतु क्या है भारतीय विचार-परम्परा के अनुसार इसका उत्तर तत्त्वदर्शियों ने दिया है। अपनी तपश्चर्या और साधना के द्वारा इस गूढ़ रहस्य तक उनकी विचक्षण दृष्टि पहुँचने का प्रयास कर चुकी है। सत्-स्वरूप चिरन्तन सत्य के चेतन में अपनी अनन्यता की अनुभूति की इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ। अद्वैत और परम चैतन्य में अपनी अद्वैतता की अनुभूति की इच्छा उसका सहज गुण है जो निर्गुण में गुण के समन्वय की ओर संकेत करता है। बस, चेतन की इस इच्छा मात्र से, उसके चिदाकाश में अपनी अनन्यता की अनुभूति के लिए अन्य की कल्पना हो उठती है। वह कल्पना ही यह सृष्टि है। जो नित्य है और जो चिरन्तन है, जो अचल, अविनश्वर और सनातन है, जो स्वतः अक्षय और अक्षुण्ण है, वह अपने नित्यत्व की अनुभूति करने के लिए अनुभूति का रूप अनित्य की कल्पनामात्र से अपने में ही सृष्टि के रूप में अनित्य को भासमान करता है। इस प्रकार अनित्य के माध्यम से नित्यत्व की अनुभूति में आनन्द-विभोर होता है। सृष्टि का यही हेतु है। प्रकाश की अनुभूति अन्धकार के बिना नहीं होती और न सत्य की अनुभूति असत्य के बिना हो पाती है। अद्वैत को अद्वैतानुभूति के लिए द्वैत की कल्पना करके ही स्वानुभूति में रत होना पड़ता है। द्वैत केवल कल्पना मात्र है, अतः उसकी सत्ता नहीं। फलतः वह चिरन्तन सत्य भी नहीं है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह मूलतः असत्य है। उसकी प्रतिष्ठा सत्य पर है क्योंकि जो सत्य है उसी की कल्पना के गर्भ से इसका भासमान उद्भव हुआ है।

निष्कर्ष यह निकला कि सृष्टि का हेतु और उसका प्रयोजन यह है कि उसके माध्यम से विश्वात्मा अपने अद्वैतत्व की अनुभूति करे। सृष्टि ने ही नानात्व, पृथक्ता और भिन्नता का प्रादुर्भाव किया है। वह माया है परम चेतन की जिसकी प्रतीति मात्र सत्य है, यद्यपि स्वयं उसकी सत्ता नहीं है। अब इस दृष्टि को हम जीवन के स्तर पर उतारें। मैं हूँ और मेरे सिवा सारा विश्व अपनी विविधता और अनेकरूपता में मुझसे भिन्न भासमान होता है। जीवन का परम लक्ष्य यही है कि वह अपने 'एकमेवाद्वितीयम्' स्वरूप की अनुभूति करे। सर्वत्र व्याप्त एकमात्र चेतन स्वानुभूति के लिए स्वयं द्रष्टा बना और स्वयं ही उसकी अभिव्यक्ति दृश्य के रूप में हुई और दर्शन की प्रक्रिया भी वह स्वयं ही है। 'सोऽहमस्मि', अर्थात् मैं वही हूँ, फिर भी मुझसे भिन्न जगत् की प्रतीति मुझमें हो रही है। इस प्रतीति के बन्धन से मुक्त होकर अपने स्वरूप की अनुभूति और उसी स्थिति में स्थित होना जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में जो पथ, जो मार्ग, जो वृत्ति, जो साधना, जो क्रिया और जो कर्म सहायक हो, वही विधेय और धर्म है और जो लक्ष्य से विमुख करे, उससे दूर ले जाय वही निषिद्ध और अधर्म है। यहाँ एक पहेली और उत्पन्न होती है। 'सोऽहमस्मि' की अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि 'अहम्' की ही परिधि ढह जाय। अहम् की अनुभूति के लिए अहंत्व का ही विनाश और विलोप, क्या यह सचमुच विचित्र पहेली नहीं है? यह पहेली ही हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर उसका समाधान निर्विवाद रूप से इसी पथ में है। 'अहम्' से ही तो 'त्वम्' की सृष्टि होती है और इसीसे पृथक्ता और नानात्व का जन्म होता है। जितना ही 'अहम्' से ऊँचे उठिए उतना ही नानात्व का विलोप होगा और जिस दिन अहंत्व का विलोप होगा उस दिन नानात्व की प्रतीति की पोल भी खुल जायगी। 'यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति' उस एकत्व का अनुदर्शन करायेगी जिसकी अनुभूति के बाद फिर कोई दूसरी भ्रान्ति रह नहीं जाती।

'अहम्' से ही 'त्वम्' और फिर मैं और तुम से राग, द्वेष, लोलुपता और मोह, भोग और अतृप्ति, कामना और वासना का सर्जन होता है। 'अहम्' का अहङ्कार परम चेतन की माया का रूप है जो सत्य को आवृत किये हुए है। 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखम्' यही सत्य-दर्शन में बाधा है। धर्म वही है जो सत्य के इस दर्शन की ओर अग्रसर करे। कर्म हो चाहे भक्ति, चाहे ज्ञान का मार्ग हो, योग हो, तप हो, चाहे साधना का पथ हो, जो लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए पथारूढ़ बनावे, वह सार्थक है; जो उसकी ओर से विमुख और विपथ करे वही निरर्थक और अधर्म है। सृष्टि का हेतु यही है कि चैतन्य उसके माध्यम से, अर्थात् नानात्व और जड़त्व के माध्यम से अपने अद्वैतत्व और अपने चिन्मयत्व की अनुभूति करे। चेतन के इस प्रतिवाद की कल्पना इसी लिए हुई कि मूलवाद अर्थात् 'सोऽहमस्मि' की सिद्धि हो।

श्रीमद्भागवत ने भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया क्योंकि भक्ति जीवन के भावुक तत्त्वों से ओतप्रोत होने के कारण अन्तर का स्पर्श और उसका उन्नयन सरलता से करने में समर्थ होती है। उत्कट मेधा और तीक्ष्ण बौद्धिक स्तर से ऊपर जाकर कठोर तप और साधना के मार्ग से जिन भावों का उद्रेक और उन्मेष होता है, उन्हीं भावों को उद्वेलित करने में भक्ति का मार्ग, वीणा के तन्तु से निकले हुए कोमल और मधुर स्वरों की भाँति, सरलता के साथ सफल होता है। जीवन के भावमय सरोवर में भक्ति उन पुनीत लोल लहरियों को आन्दोलित करने में समर्थ होती है जो प्राणी को इष्ट के चरणों में सम्पूर्ण आत्मनिवेदन के लिए अभिमुख करती है। यह आत्मनिवेदन उस तादात्म्य का बोध कराता है जिसकी उपलब्धि के बाद अपने में और अपने से भिन्न समस्त दृश्य और अदृश्य जगत् में सर्वत्र एकमात्र इष्टदेव व्याप्त दिखाई देता है। बस, वहीं जीवन के लक्ष्य की संसिद्धि हो जाती है।

श्रीमद्भागवत ने श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति का उपदेश किया है और कृष्ण-चरित की पीठिका में भक्ति की परम सिद्धि का दिग्दर्शन कराया है। गोपियाँ भगवान् कृष्ण के प्रेम में विभोर हैं, पर क्या श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम में केवल लास्य और विलास है और क्या भागवत के रचयिता ने इन्द्रियों की पूजा और इन्द्रियों के भोग की तृप्ति का उपदेश किया है? गोपियों के साथ भगवान् के रास में क्या केवल नरनारी के दैहिक और क्षयोन्मुख रूप और लावण्य का आकर्षण मात्र सिद्ध किया गया है? यदि भागवत की उपदेश-सीमा यही हो तो फिर उसे कौन पूज्य मानेगा? पर ऐसी धारणा उसीकी होगी जिसने भक्ति के पथ का रहस्य नहीं समझा। गोपियों का प्रेम और उनकी भक्ति उस आत्मार्पण का प्रमाण उपस्थित करती है जिसके बाद 'अहम्' के अहङ्कार की दीवारें आपसे आप ढह जाती हैं। गोपियों का प्रेम वह प्रेम है जो धरातल से जीवन को ऊँचे उठाकर किसी अनन्त-लोक की विराट्ता में उसे लय कर देता है। उस स्थिति में फिर न तो गोपियों की अपनी अलग सत्ता रहती है और न स्वयं उपास्य श्रीकृष्ण की भिन्न सत्ता रह जाती है। इष्ट और उपासक दोनों एक हो जाते हैं। गोपियाँ स्वयं कृष्ण हो जाती हैं और समस्त विश्व-प्रपञ्च उनके लिए कृष्णमय हो जाता है। यमुना की श्याम लहरियों में कृष्ण की श्यामता उन्हें दिखाई देती है। खिले हुए कमल में श्रीकृष्ण के नेत्रों की रक्ताभा का दर्शन होता है। भ्रमरों के गुञ्जन में कृष्ण की बाँसुरी बजती है। कोयल की कूक में उन्हीं का स्वर सुनाई देता है और खिले हुए कदम्ब के पीत पुष्पों में कृष्ण के पीताम्बर की झलक परिलक्षित होती है। सृष्टि कृष्णमय,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयं गोपिकाएँ कृष्णमय, जो कुछ है वह सब कृष्ण ही कृष्ण ह और गोपियों की उस दशा ने अक्रूर और उद्धव के ज्ञान की खिल्ली उड़ा दी। यह है, भक्त के लिए भक्ति की सम्पूर्ण परिणति।

श्रीमद्भागवत ने इस भक्ति और इस प्रेम के मार्ग को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत किया है उस कलिकाल में जब मानव भ्रान्त है और जो दिखाई देता है उससे पृथक् किसी सत्य को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं है। जब हृदय की भावुकता उपेक्षित हो और जब बौद्धिक स्तर केवल अहंमन्यता का आश्रय लिये हुए हो, उस युग के लिए श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। प्रादुर्भाव हुआ है इसलिए कि जीवन के भाव-जगत् की प्रतिष्ठा पुनः हो सके। मानव को केवल अपने बुद्धि-वैभव से शान्ति प्राप्त नहीं होती। महर्षि कृष्णद्वैपायन को वेदों का विभाजन करने के बाद तथा डेढ़ दर्जन पुराणों को लिखने के पश्चात् भी शान्ति नहीं मिली। शान्ति मिली तब जब उन्होंने श्रीमद्भागवत के द्वारा अपने अन्तर्जगत् में भावमयी भूमिका स्थापित करके उस पर अपनी चेतना की प्रतिष्ठा की। उनकी वही चेतना श्रीमद्-भागवत में मूर्त हुई है। भगवान् श्रीकृष्ण उनके नायक हैं। श्रीकृष्ण के चरित्र में इस देश के महर्षियों ने पूर्ण मानव के परम विकसित रूप की कल्पना की। सनातनधर्मावलम्बी आस्तिक प्राणी उन्हें परमात्मा का अवतार मानते हैं। 'पारावार पूरन अपार, परब्रह्मराशि जसुदा की गोदैं एक बारहि कुरै परी।' अवतारवाद की कल्पना हमारे देश की विचार-परम्परा में अनुपम है। जब सृष्टि को हेतुमयी मान लिया और जब उस लक्ष्य की ओर जगत् का अभिगमन धर्म मान लिया, तब किसी युग में मायावेष्टित समाज का धर्म के पथ से भ्रष्ट होना उस आवश्यकता की सृष्टि करता है जब जीवन पुनः पथारूढ़ बनाया जा सके। परादेवता की परम विभूति का तेज धरित्री पर-आलोकित होकर विपथगामिनी जीवनधारा को धर्मपथ की ओर मोड़ने में समर्थ होता है।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।"

मानव जगत् के लम्बे इतिहास में समय-समय पर ऐसी विभूतियों का अवतरण होता रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में भारतीय ऋषियों ने ऐसे ही परम तेज के अवतरण की कल्पना की है। भगवान् स्वयं अनुकरणीय नहीं हैं। भगवान् जो कुछ करते हैं उसकी नकल कौन कर सकता है और ऋषियों ने श्रीकृष्ण को अपनी समस्त कलाओं के साथ भगवान् के परमावतार के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है। भगवान् का अनुकरण यद्यपि नहीं किया जा सकता तथापि भगवद्वाक्य के रूप में उनका उपदेश जीवन को लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए एकमात्र पथ है। वेद भी भगवद्वाक्य ही हैं। इसी कारण उनका अनुगमन हमारे लिए विधेय घोषित किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से महर्षि व्यास ने गीता के रूप में उपदेशामृत प्रवाहित किया है, जो आज भी भवसमुद्र से जीवन को पार ले जाने के लिए अमोघ पोत के रूप में मानव-जगत् को प्राप्त है। उन्हीं श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश देते हुए श्रीमद्भागवत अवतरित हुआ है। उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं। भगवान् करें हमारा जीवन सुखसागर के तट पर पहुँचकर श्रेय और मंगल की साधना कर सके।

'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'। श्रीमद्भागवत का कृष्ण महातत्त्व है जो सर्वत्र व्याप्त है। उसकी भक्ति हमें 'अहम्' की संकुचित परिधि से निकालकर आनन्दमय, शिवमय, सत्यमय और सौन्दर्यमय अनन्त चिदाकाश में लीन होने में समर्थ करे। शुभम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

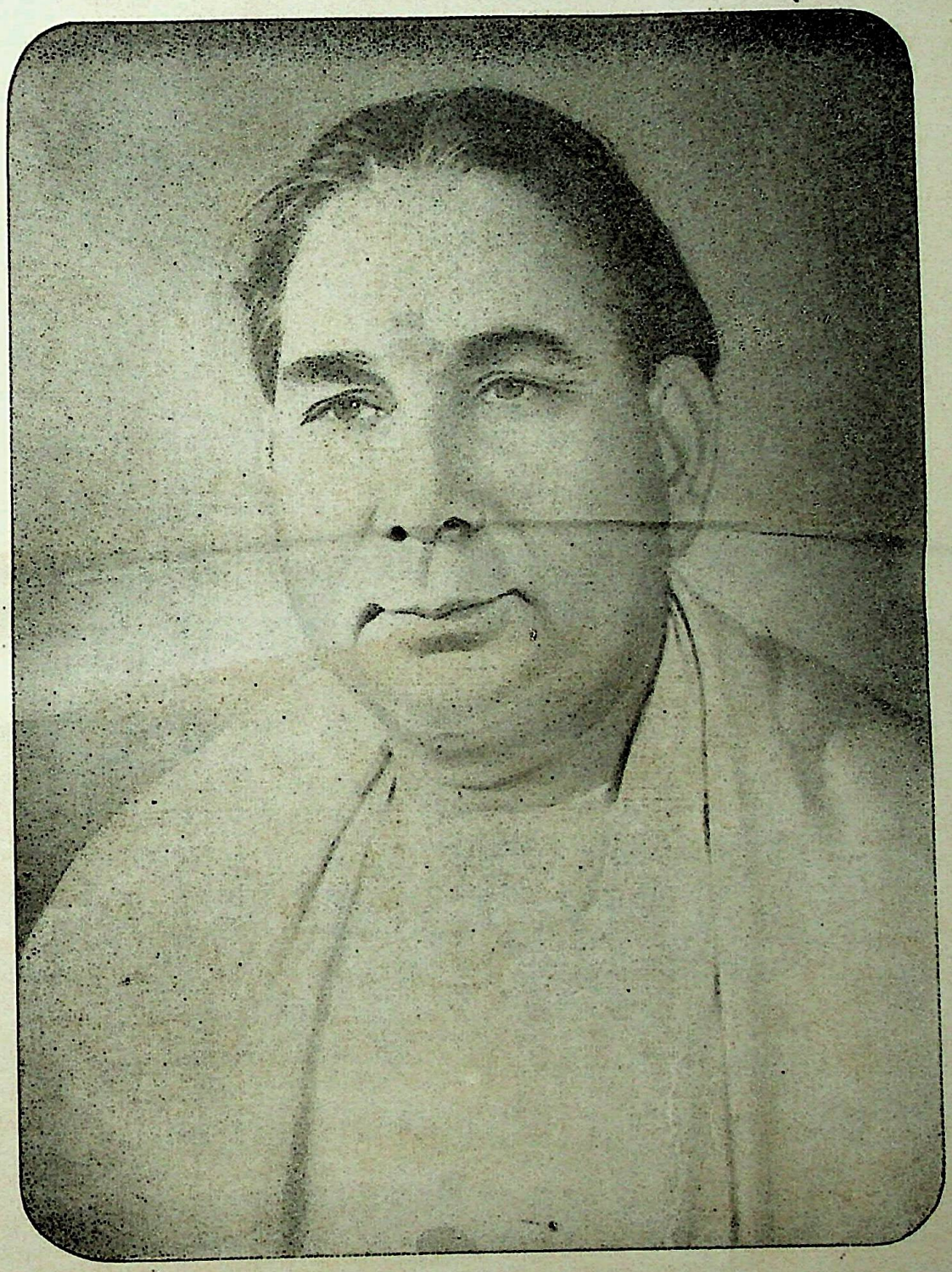

माननीय पं० श्री कमलापति त्रिपाठी
मन्त्री
गृह, शिक्षा, एवं सूचना-विभाग—उत्तर प्रदेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वन्दे नन्दनन्दनं देवं

बृहत् नवीन

सुखसागर

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

पहिला अध्याय

भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य की कथा

एक समय नैमिषारण्य तीर्थ में शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषियों ने श्री वेदव्यासजी के शिष्य तथा पुराणों के ज्ञाता श्री सूतजी से कहा—"हे सूतजी ! अब आप परमप्रभु की किसी ऐसी लीला का वर्णन कीजिए, जो भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य से परिपूर्ण हो। इस घोर कलिकाल में मनुष्य अपने अज्ञान के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि में लिप्त हो, प्रपंचों में ग्रस्त होकर राक्षसों के समान आचरण कर उठे हैं। यही कारण है कि उनका सुख नष्ट हो गया है और वे आठों प्रहर दुःख में ही व्याकुल रहते हैं। हम लोगों की इच्छा है कि आप उनके उद्धार के निमित्त भगवान् के किसी ऐसे चरित्र का वर्णन करें, जिससे उन्हें श्रीभगवत्-चरणों में भक्ति एवं प्रीति उत्पन्न होकर सुख की प्राप्ति हो।"

ऋषियों की बात सुनकर सूतजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे ऋषियो ! आप लोगों ने कलियुगी जीवों के उद्धार के निमित्त जो सुन्दर बात कही है, वह निश्चय ही अत्यन्त श्रेष्ठ है। जो लोग कालरूपी सर्प के मुँह में पड़े हुए हैं, उनके उद्धार के लिए एकमात्र श्रीमद्भागवत की कथा ही है, जिसे भगवान् वेदव्यासजी के पुत्र महामना श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा था। शृङ्गी ऋषि के शाप के कारण राजा परीक्षित जब गंगा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तट पर वास करने लगे, उस समय ऋषि-मुनियों के मध्य उच्च आसन पर बैठे हुए परमहंस श्री शुकदेवजी ने उन्हें श्रीमद्भागवत की परम मनोहर कथा को सुनाना आरम्भ किया था। उसी समय की एक घटना यह भी है कि देवताओं ने अमृत का कलश लिए हुए श्री शुकदेवजी के पास आकर यह कहा—"हे महामुने! इस अमृत-कलश को आप ले लीजिए तथा इसके बदले में आप हम लोगों को श्रीमद्भागवत-कथारूपी अमृत का पान कराइये।" तब देवताओं की बात सुनकर शुकदेवजी ने यह उत्तर दिया—"हे देवताओ! तुम्हारा यह अमृत हमारे किसी काम का नहीं है; क्योंकि इस अमृत को पीने से मनुष्य की आयु केवल देवताओं के समान ही हो सकती है, जब कि ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। इसलिए तुम्हारे अमृत से कहीं अधिक श्रेष्ठ यह भगवत्-चरित्ररूपी कथा का अमृत है, जिसके एक सप्ताह पढ़ने तथा सुनने मात्र से ही जीव अमरत्व-पद पाकर कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। यही नहीं, वह मुक्ति-पद पाकर आवागमन से भी छूट जाता है। अतः इस पर विचार करने के उपरान्त राजा परीक्षित तुम्हारे इस अमृत का परित्याग कर, कथामृत को ही स्वीकार करेंगे; क्योंकि अमृत और कथामृत में उतना ही अन्तर है, जितना कि काँच तथा मणि में होता है।" श्री शुकदेवजी के मुख से यह शब्द सुनकर देवतागण निराश हो लौट गये।

इतनी कथा सुनाने के उपरान्त सूतजी ने ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! सनकादि ऋषीश्वरों ने देवर्षि नारद को श्रीमद्भागवत की (सप्ताह-पारायण) कथा सुनाने के पश्चात् 'कथा-विधि' का भी वर्णन किया था।"

सूतजी के मुख से यह सुनकर शौनकादि ऋषियों ने अपनी शङ्का के समाधान के हेतु बीच ही में प्रश्न किया—"हे सूतजी! महामुनि नारदजी तो किसी एक स्थान पर दो घड़ी से अधिक ठहरते ही नहीं हैं, फिर वे इस 'सप्ताह-पारायण' को सुनने के लिए एक स्थान पर सात दिन तक कैसे ठहरे रहे? श्री सनकादिक का दर्शन भी परम दुर्लभ है, भला उनकी भेंट नारदजी से किस प्रकार हुई तथा यह 'सप्ताह-यज्ञ' किस स्थान पर सम्पन्न हुआ—हमें यह बताने की कृपा और कीजिए।"

ऋषियों की बात सुनकर सूतजी बोले—"हे ऋषियो! एक समय सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ये चारों भाई भ्रमण करते हुए बदरिका-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रम में जा पहुँचे। वहाँ नारदजी पहिले ही से उदास बैठे हुए थे। उन्हें इस प्रकार मलिन देखकर वे नारदजी से पूछने लगे-"हे देवर्षि! आप इस प्रकार उदास होकर यहाँ किस चिन्ता में बैठे हैं, यह हमें बताने की कृपा करें।" तब नारदजी ने चारों ऋषियों को प्रणाम करते हुए कहा—"हे प्रभो! मैं अपनी चिन्ता का कारण आपके सम्मुख प्रकट करता हूँ, उसे ध्यान धरकर सुनें। मैंने काशी, गोदावरी तथा गया आदि सम्पूर्ण तीर्थ किये, परन्तु मैंने सभी स्थानों पर पहुँचकर यह देखा कि कलियुग के प्रभाव से संसारी जीव माया में इस प्रकार लिप्त हैं कि उन्होंने सत्य, तप, आचार, दया एवं दान आदि शुभ कर्मों को त्याग दिया है। सब लोग केवल अपना पेट भरने की चिन्ता में ही लगे हुए हैं। वे झूठ बोलते हैं, पाखंड का आश्रय लेते हैं तथा अपने माता-पिता की सेवा से भी विमुख रहते हैं। पत्नी, साले तथा श्वशुर की आज्ञा का पालन करते हैं तथा धन के लालच में आकर अपनी पुत्रियों को नीच कुल के व्यक्तियों में बेच देते हैं। जहाँ भी देखिए, वहीं म्लेच्छ तथा शूद्रों की वृद्धि दिखाई देती है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अपने धर्म-कर्म से विमुख हो गये हैं। हे प्रभो! मैं सभी स्थानों पर सब लोगों को अपने धर्म से पतित देखकर, जब मथुरापुरी में यमुना-तट पर पहुँचा, तो वहाँ मुझे एक और भी अधिक आश्चर्य की बात दिखाई दी। मैंने देखा--एक युवती स्त्री नदी के तट पर बैठी हुई रो रही है तथा उसके पास ही दो वृद्ध मनुष्य अचेतावस्था में मूर्च्छित पड़े हुए हैं। वह स्त्री चारों ओर सहायता की दृष्टि से देख रही थी। ज्योंही उसने मुझे देखा, त्योंही वह खड़ी होकर मुझसे कहने लगी-"हे महाराज! आप क्षण भर यहाँ ठहरकर मेरा दुःख सुन लीजिए। मैं बड़भागिनी हूँ, जो मैंने यहाँ आपके दर्शन प्राप्त किये हैं।" उस स्त्री की बात सुनकर मैंने उससे पूछा-"तू कौन है और ये जो दोनों पुरुष अचेत पड़े हुए हैं, ये कौन हैं? तू सारा हाल बता।" वह बोली-"हे महाराज! मेरा नाम 'भक्ति' है और ये दोनों जो अचेत पड़े हुए हैं, ये मेरे पुत्र 'ज्ञान' तथा 'वैराग्य' हैं। आप जिन पाँच-सात स्त्रियों को मेरे पास बैठी हुई देख रहे हैं, ये गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियाँ हैं, जो स्त्री-रूप धारण कर यहाँ मेरी सेवा करने के लिए आ उपस्थित हुई हैं। मैंने द्रविड़ देश में जन्म लिया था तथा कर्नाटक देश में मैं सयानी हुई। कुछ दिन तक मैं दक्षिण में रही, फिर गुजरात में पहुँचने पर बूढ़ी हो गई। परन्तु अब जब से वृन्दावन में आई हूँ, तब से मुझे फिर से तरुणावस्था प्राप्त हो गई है। परन्तु कलियुग-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वासियों द्वारा घोर पाप करने के कारण मेरे ये दोनों पुत्र इस प्रकार बूढ़े होकर, यहाँ अचेत हो गिर पड़े हैं। इनमें बोलने की भी सामर्थ्य नहीं रही है। इनके दुःख के कारण मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। आप ही देखिए, यह कितनी लज्जा की बात है, कि पुत्र तो बूढ़े हैं, परन्तु मैं तरुण बनी हुई हूँ! मेरी इस अवस्था को देखकर सांसारिक प्राणी मेरी हँसी करते हैं। अब इस सबका क्या कारण है, वह आप मुझे बताने की कृपा करें।"

नारदजी ने कहा—"हे प्रभो! उस स्त्रीरूपी भक्ति ने जब मुझसे इस प्रकार कहा तो मैंने कुछ विचार करने के उपरान्त उसको उत्तर दिया—"हे भक्ति! घोर कलियुग के आगमन के कारण तेरी तथा ज्ञान एवं वैराग्य की कोई मर्यादा नहीं रही है। इस वृन्दावन में आने के कारण (जहाँ भक्ति प्रधान है) तू तो तरुणावस्था को प्राप्त हो गई, परन्तु तेरे पुत्रों को कलियुग में कोई नहीं मानता। इसी कारण वे बूढ़े तथा निर्बल बने हुए हैं।"

यह सुनकर भक्ति ने पूछा—"यदि यह कलियुग ऐसा ही दुष्ट है तो राजा परीक्षित ने दया करके उसे जीवित क्यों छोड़ दिया था? जिस पर दया दिखाने के कारण सब लोगों का धर्म तथा कर्म नष्ट हो गया, उसको तो मार देना ही हितकर था।" तब मैंने उसे समझाते हुए कहा—"राजा परीक्षित ने कलियुग में एक विशेष गुण देखने के कारण ही उसे जीवित छोड़ दिया था। वह विशेष गुण यह है कि अन्य युगों में सहस्रों वर्षों तक जप, तप, यज्ञ, दान तथा अन्य धर्म कर्म करने से भी जो फल प्राप्त नहीं होता था, वही फल कलियुग में केवल भगवन्नाम का भजन तथा कीर्तन करने से ही सहज में प्राप्त हो जाता है। कलियुग में केवल भजन-कीर्तन से ही प्रसन्न होकर श्री नारायण भुक्ति-मुक्ति प्रदान कर देते हैं। परन्तु दुःख की बात यही है कि कलियुगवासी आदमियों से यह सहज बात भी नहीं बन आती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने-अपने कर्तव्य-कर्म त्याग कर क्रोध, लोभ, मोह तथा अहङ्कार में भर गये हैं। ब्राह्मण तीर्थस्थानों में दान लेकर उसका प्रायश्चित्त नहीं करते। शिक्षा और सत्कर्मों का उनमें लोप होता जा रहा है। इसी प्रकार क्षत्रिय शिक्षा तथा सत्य को त्यागकर, दीन-दुखियों की रक्षा के विरुद्ध उन्हें सताने में ही संलग्न हैं। वैश्यों ने अपने व्यवसाय में ईमानदारी को तिलाञ्जलि दे दी है। वे मिथ्या भाषण तथा व्यवहार के आधार पर केवल धन सञ्चित करने में ही दिन-रात लगे रहते हैं। शूद्रों ने सेवा के स्थान पर उच्च वर्णों का अपमान एवं तिरस्कार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करना ही अपना ध्येय बना लिया है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि कलियुग के इस मोह-पाश से छूटने के लिए मनुष्य को श्रीभगवन्नाम का जप तथा उनके गुणानुवादों का श्रवण एवं स्मरण करना चाहिए। यही मुक्ति का सच्चा मार्ग है।" यह सुनकर भक्ति ने कहा—"हे मुनि! आप धन्य हैं। मैं भी बड़भागिनी हूँ, जो मैंने आज आपके दर्शन प्राप्त किये। आप सबका सङ्कट दूर करते हैं, अतः अब किसी उपाय द्वारा मेरा भी यह सङ्कट दूर कीजिए तथा ज्ञान-वैराग्य को तरुणावस्था प्राप्त कराइये। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करती हूँ।"

दूसरा अध्याय

नारद द्वारा भक्ति को धैर्य बँधाना तथा ज्ञान-वैराग्य की चेतना के लिए प्रयत्नशील होना

देवर्षि नारद ने उस स्त्रीरूपी भक्ति से कहा—"हे भक्ति! तू अपनी सम्पूर्ण चिन्ताओं का परित्याग कर, भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरणारविन्दों का स्मरण कर। उनके स्मरण तथा ध्यान से तेरा सङ्कट दूर हो जायेगा। जिस समय राजा दुर्योधन की सभा में दुःशासन ने साड़ी खींचकर द्रौपदी को नग्न करना चाहा था, उस समय द्रौपदी द्वारा स्मरण करने मात्र पर ही, भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने उसकी लज्जा बचाई थी। जिस समय गजराज का पाँव ग्राह ने पकड़ लिया था, उस समय अपने प्राण बचने की कोई आशा न देखकर गजेन्द्र ने भी श्री नारायण का ही स्मरण किया था। तब भी उन्होंने उसका सङ्कट दूर किया था। हे भक्ति! तू भगवान् वैकुण्ठनाथ को प्राणों से भी अधिक प्रिय है। जिस स्थान पर तेरा वास रहता है, उस स्थान की रक्षा वे त्रिलोकीनाथ स्वयं सदैव करते रहते हैं। सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर में लोग बहुत जप, तप, यज्ञ, दान तथा धर्म करने से ही मुक्ति को प्राप्त करते थे, परन्तु इस कलियुग में केवल तेरी कृपा से ही सब जीवों का उद्धार हो जाता है। यही कारण है, जो आजकल ज्ञानवैराग्य को कोई नहीं पूछता है। फिर भी मैं तेरा संकट दूर करने के लिए, उपाय द्वारा संसार में तेरी महिमा प्रकट किये देता हूँ। जिस प्राणी के हृदय में तेरा वास होगा, उसे यमराज का भय कभी न होगा और वह पापी होने पर भी वैकुण्ठधाम को प्राप्त करेगा। जिन लोगों ने सहस्रों वर्षों तक तप किया था, उन्हींने अब भक्ति को अपनाया है। श्री नारायण जिस पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, उसी को वे अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। इस कारण तू सबसे श्रेष्ठ है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नारदजी की बात सुनकर भक्ति ने पुनः कहा-"हे ऋषि ! आपने जिस प्रकार मुझे धैर्य बँधाया है, उसी प्रकार मेरे पुत्रों को भी-जो मूर्च्छित पड़े हैं-जगाने की कृपा करें।"

नारदजी ने कहा-"हे प्रभो ! इस प्रकार भक्ति का आग्रह देखकर मैंने ज्ञान तथा वैराग्य को बहुत पुकारा, परन्तु उससे न तो वे उठे और न उन्होंने अपनी आँखें ही खोलीं। यह देखकर मैंने वेद-मन्त्र तथा गीता का पाठ आरम्भ किया। उसे सुनकर उनकी आँखें खुल गईं, परन्तु जैसे ही वे उठने को हुए, वैसे ही निर्बलता के कारण फिर अचेत होकर गिर पड़े। उनकी यह अवस्था देखकर मैं अत्यन्त चिन्तित हो गया। उसी समय यह आकाशवाणी हुई-"हे नारद ! तुम इतना शोक मत करो। ये बिना सत्संग के नहीं जगेंगे। अतः तुम्हें उचित है कि तुम इन्हें सत्संग द्वारा उठाने के लिए किसी श्रेष्ठ साधु पुरुष की खोज करो।" हे नाथ ! उस आकाशवाणी को सुनकर, मैं किसी श्रेष्ठ महात्मा को ढूँढ़ता हुआ, यहाँ तक आ पहुँचा हूँ, परन्तु अभी तक मुझे कोई वैसा साधु पुरुष प्राप्त नहीं हुआ है। उसी व्यथा के कारण मैं यहाँ चिन्तित होकर बैठा हुआ था। तब तक आप लोगों ने मुझे अपने दर्शन प्रदान किए हैं। आप लोग ब्रह्मा के पुत्र, परम योगी, महान् ज्ञानी, सदैव बाल्यावस्था को धारण करनेवाले तथा श्रीभगवत्कथारूपी धन को निरन्तर अपने पास रखनेवाले हैं। आपकी तपस्या एवं महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। आपने ही अपनी शक्ति द्वारा वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय को पृथ्वी पर गिरा दिया था। ऐसी सामर्थ्य और किसी में देखने को नहीं मिलती। अतः अब जिस प्रकार आपने मुझे अपने दर्शन प्रदान किए, उसी प्रकार अब भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्य के सङ्कट को भी दूर कर, उन्हें सुख पहुँचाने की कृपा करें। ऐसा करने से चारों वर्णों के लोग आपके यश का गान करेंगे तथा कलियुगवासियों का हृदय भी पवित्र एवं शुद्ध हो जायेगा।"

यह सुनकर श्री सनत्कुमारजी ने कहा-"हे नारद ! तुम अपनी चिन्ता को त्याग दो। भगवान् श्यामसुन्दर के जितने भी दास हैं, तुम उन सब में अधिक श्रेष्ठ हो। तुम्हें भक्ति का दुःख दूर करने के लिए उपाय करना, निश्चय ही उचित है। पहिले भी महात्मा ऋषि-मुनियों ने सांसारिक प्राणियों को वैकुण्ठ लोक तक पहुँचाने के लिए ज्ञान तथा धर्म के अनेक मार्ग बनाये हैं। परन्तु वर्तमान काल में उन कठिन मार्गों पर चलना असंभव-सा है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

क्योंकि उनसे पूर्णरूप से परिचित करानेवाले गुरु का अभाव भी सर्वत्र दृष्टि-गोचर होता है। परन्तु उसको प्राप्त करने के लिए श्रीमद्भागवत सबसे उत्तम तथा सरल साधन है। जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत की कथा को सच्चे मन से श्रवण करता है, उसे वह राह सहज ही प्राप्त हो जाती है। जिस कथा को महामुनि शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को सुनाया था, उसी कथा को श्रवण करने से भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का सङ्कट भी दूर हो जायेगा। क्योंकि श्री नारायण के चरणारविन्दों से प्रेम बढ़ाने के लिए, इससे अधिक सुगम अन्य कोई साधन नहीं है।"

श्री सनत्कुमारजी की बात सुनकर नारदजी बोले—"हे प्रभो! मैंने वेदों तथा गीता के पाठ द्वारा ज्ञान तथा वैराग्य को जगाने का बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु जब उससे भी उनकी मूर्छा नहीं हटी तब वे केवल श्रीमद्भागवत की कथा को सुनकर ही किस प्रकार चेतना प्राप्त कर लेंगे?" सनत्कुमारजी ने कहा—"हे नारद! श्रीमद्भागवत को सम्पूर्ण वेदों का सार समझना चाहिए। उसके एक-एक श्लोक तथा पद में वेदों का अर्थसार इस प्रकार भरा हुआ है, जिस प्रकार दूध में घी विद्यमान रहता है। परन्तु उपाय द्वारा उसमें से निकाले बिना उसका स्वाद दूध में नहीं जाना जा सकता, उसी प्रकार भगवान् वेदव्यासजी ने सम्पूर्ण वेद तथा पुराणों का मन्थन कर उनका तत्त्व श्रीमद्भागवत में भरकर रख दिया है। अतः इस कथा को जो भी स्मरण करते हैं, उन्हें समस्त वेद तथा पुराणों का सार प्राप्त हो जाता है। हे नारद! इसके अतिरिक्त एक बात और भी है, जिसे तुम न जाने इस समय क्यों भूल रहे हो? वह यह है कि श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोक तो स्वयं श्री नारायणजी ने ही ब्रह्माजी को सुनाये थे। ब्रह्माजी ने उन श्लोकों को तुमसे कहा तथा तुमने वे श्लोक वेदव्यासजी से कहे। उन चार श्लोकों के आधार पर ही वेदव्यासजी ने विस्तारपूर्वक श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण किया है। अतः वह कथा सब प्राणियों का दुःख दूर करनेवाली तथा संसाररूपी समुद्र से पार उतारनेवाली है।"

यह सुनते ही नारदजी ने हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभो! आपने बड़ी कृपा करके मुझे आज यह स्मरण दिलाया है। मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मैंने यहाँ आपके दर्शन प्राप्त किये, क्योंकि बिना भाग्य के सत्संग नहीं मिलता है। अब कृपाकर यह और बतलाइये कि इस श्रीमद्भागवतरूपी ज्ञान-यज्ञ को किस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार तथा कहाँ आरम्भ करना चाहिए और यह यज्ञ कितने दिन में सम्पूर्ण हो जाता है ?"

तीसरा अध्याय

श्री सनत्कुमार द्वारा श्रीमद्भागवत की सप्ताह-विधि एवं उससे प्राप्त होनेवाले फल का वर्णन

सनत्कुमारजी ने कहा—"हे नारद ! आपका प्रश्न अत्यन्त सुन्दर है। इस श्रीमद्भागवत-यज्ञ को करने के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान हरिद्वार में गङ्गा का तट है। वहाँ बेल-विटपों से शोभायमान स्थान पर ज्ञान-यज्ञ के इच्छुक अनेक ऋषि-मुनि निवास करते हैं। उस स्थान पर इस ज्ञान-यज्ञ के करने से, ज्ञान तथा वैराग्य तरुण होकर चैतन्यावस्था को प्राप्त कर लेंगे एवं भक्ति का सम्पूर्ण सङ्कट भी दूर हो जायेगा।" नारदजी बोले—"हे प्रभो! आपके चले बिना वह यज्ञ पूरा नहीं हो सकेगा, अतः मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, आप भी वहाँ चलने की कृपा करें।" तब नारदजी का आग्रह स्वीकार कर चारों भाई उनके साथ ही बदरिकाश्रम से चलकर, हरिद्वार में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गंगा तट पर निवास करनेवाले ऋषि-मुनियों से कहा—"हम लोग यहाँ पर श्रीमद्भागवतरूपी यज्ञ प्रारम्भ कर रहे हैं, अतः वह कथामृत जिन्हें पान करना हो, वे सब एकत्रित होकर इस कथा को श्रवण करें।" यह समाचार प्राप्त करते ही भृगु, वशिष्ठ, च्यवन, मेधातिथि, गौतम, परशुराम, विश्वामित्र, मार्कण्डेय, वेदव्यास तथा पाराशर आदि जितने भी ऋषि-मुनि उस तीर्थ में निवास करते थे, वे सब उस स्थान पर आ एकत्रित हुए। उनके अतिरिक्त, सम्पूर्ण वेद, गंगा आदि नदियाँ भी मनुष्य-रूप धारण कर वहाँ एकत्र हुईं। चौदहों भुवनों के निवासी गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग तथा अन्य प्राणी भी आ-आकर उस ज्ञान-यज्ञ में सम्मिलित होने लगे। नारदजी ने सबको सम्मानपूर्वक स्थान दिया। उस समय वैष्णवों, विरक्तों तथा महापुरुषों ने शंखध्वनि के साथ-साथ गम्भीर जयध्वनि की। देवतागण भी अपने विमानों पर बैठ-बैठकर श्रीमद्भागवत की कथा को सुनने के लिए वहाँ आ पहुँचे तथा पुष्प-वर्षा करने लगे। जिस समय सब लोग यह आशा लगाए बैठे थे कि देखें श्री सनकादि तथा श्री नारदजी परब्रह्म परमेश्वर के किस चरित्र की कथा का वर्णन करते हैं, उस समय श्री सनत्कुमारजी ने उच्च स्वर से नारदजी को सम्बोधित कर, यह बात कही—"हे नारद ! हम तुम्हें वह कथा सुनाते हैं; जिसे श्री शुकदेवजी ने राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परीक्षित से कहा था। वह श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा अठारह सहस्र श्लोकों में है। उसके पढ़ने तथा सुनने से मुक्ति हाथ बाँधे हुए सम्मुख खड़ी रहती है। अन्य पुराणों के सुनने तथा सहस्रों अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ करने से जो फल नहीं मिलता, वह श्रीमद्भागवत की कथा सुनने से सहज में प्राप्त हो जाता है। काशी, गया, प्रयाग, कुरुक्षेत्र तथा पुष्कर आदि तीर्थों का स्नान भी इस कथा के श्रवण-फल के तुल्य फलदायक नहीं है। सांसारिक लोगों के सम्मुख अनेक जन्मों का पाप तभी तक गरजता है, जब तक कि वे इस कथा को नहीं सुनते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही कुहरा नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस अमृतरूपी भागवत कथा को सुनते ही सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवत का एक अथवा आधा श्लोक भी पढ़ता है उसकी मुक्ति हो जाती है। जो लोग नित्यप्रति भागवत का पाठ करते तथा दूसरों को पढ़कर सुनाते हैं, उनके करोड़ों जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत की पोथी को सोने के सिंहासन पर धरकर, किसी वैष्णव अथवा साधु को दान करता है, उसे परब्रह्म परमेश्वर अपनी ज्योति में मिला लेते हैं। जिसने मनुष्य-शरीर पाकर श्रीमद्भागवत की कथा नहीं सुनी, उसे धिक्कार है। ऐसे व्यक्ति को चाण्डाल के समान समझना चाहिए। ऐसे पुत्र की अपेक्षा यदि माता बाँझ रहे, तो उसे श्रेष्ठ कहा जायेगा। कलियुग में मनुष्यों से यज्ञ, तप, दान तथा धर्म नहीं होता, क्योंकि उसका मन इनमें नहीं लगता है। ऐसे प्राणियों के उद्धार के लिए ही परब्रह्म श्री नारायणजी ने स्वयं वेदव्यास का अवतार लेकर इस कथा की रचना की है। जो व्यक्ति सात दिन तक इस कथा को मन लगाकर सुनता है, उसे यज्ञ, तप, व्रत, दान आदि सब का फल प्राप्त हो जाता है तथा उसे मुक्ति पदार्थ मिलता है। इस श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में वर्णित ज्ञान को भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के मुख से सुनने के पश्चात् उद्धव ने जब यह जाना कि कलियुग आनेवाला है तब उसने भगवान् श्यामसुन्दर के चरणकमलों का ध्यान धरकर, उनसे यह प्रार्थना की कि हे मुरलीमनोहर! आप तो वैकुण्ठधाम को प्रस्थान कर रहे हैं, अब आपके बाद इन सांसारिक प्राणियों का उद्धार कैसे होगा? उस समय त्रिभुवनपति ने उद्धव से यह कहा—"हे उद्धव! तुम तो बदरिकाश्रम में जाकर तप करो, जिससे तुम्हारी मुक्ति हो जाये। मेरे जाने के पश्चात् श्रीमद्भागवत-रूपी मेरी मूर्ति संसार में विद्यमान रहेगी। जो मनुष्य श्रीमद्भागवत का ध्यान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्वक पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसे अपने हृदय में मेरे दर्शन प्राप्त हो जायेंगे। इस पारायण को सांसारिक दुःखों से छुड़ानेवाला समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु मनुष्य को मायारूपी जाल से छुड़ाने के लिए श्रेष्ठ नहीं है।"

इतनी कथा कहकर, श्री सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! जब श्री सनत्कुमारजी ने श्रीमद्भागवत का पारायण प्रारम्भ किया, तब उस अमृतरूपी कथा के प्रताप से वे दोनों बूढ़े ज्ञान-वैराग्य भी—जो अचेत पड़े थे—तरुणावस्था को प्राप्त कर, चैतन्य हो, उठ बैठे। इस प्रकार भक्ति का सब सङ्कट भी दूर हो गया। उनका दर्शन पाकर सभा में उपस्थित अन्य सब लोग भी श्रीभगवन्नाम का जप तथा कीर्तन कर उठे। हृदय में भक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण उनका भी कलि-प्रभावरूपी सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गया। सब लोग एकाग्रचित्त हो, श्रीमद्भागवत की कथा को श्रवण करने लगे।

चौथा अध्याय

श्रोताओं को श्री नारायण-दर्शन एवं आत्मदेव ब्राह्मण की कथा

सूतजी बोले—"हे शौनकादि ऋषियो! जब सम्पूर्ण वैष्णव तथा ऋषि-मुनि आदि सप्ताह-पारायण के श्रोता कथा सुनकर एकाग्रचित्त हो गये, उस समय पीताम्बरधारी, करधनी, मुकुट, कुण्डल तथा अन्य रत्न-जटित आभूषणों को पहिने, मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाये, श्री घनश्याम श्यामसुन्दर ने त्रिभंगी छवि किए, उद्धव आदि वैकुण्ठवासी भक्तों को साथ लिए, उस ज्ञान-यज्ञ में पधारकर सबको अपने दर्शनों से कृतार्थ किया। उस अमृतरूपी कथा को श्रवण करते समय भक्तजनों के हृदय में जो श्यामल मूर्ति निवास कर रही थी, वही अब साकार रूप धरकर नेत्रों के सामने आ पहुँची। उन मनमोहन का दर्शन प्राप्त कर, सभी ने अपने जीवन को धन्य समझा। सब लोग जय-जयकार करते हुए, उनके ऊपर चन्दन तथा पुष्पों की वर्षा करने लगे। तत्पश्चात् सबने धूप, दीप, नैवेद्य आदि से विधिवत् पूजन कर, शंखध्वनि के पश्चात् उन्हें साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया। उस परम आनन्द को देखकर देवर्षि नारदजी ने श्री सनत्कुमारजी से कहा—"हे प्रभो! आपके द्वारा कही गई कथा को श्रवण कर सब लोगों ने मुक्ति-पद को प्राप्त किया है। इस अमृतरूपी कथा को सुनकर कौन-कौन लोग भव-सागर से पार उतरेंगे, अब यह कहने की कृपा करें।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

श्री सनत्कुमारजी बोले—"हे नारद ! कलियुग के जो मनुष्य अत्यन्त पापी, लालची, मिथ्यावादी, चुगल, कामी तथा परम क्रोधी हैं, वे भी इस सप्ताह-यज्ञ के सुनने से पवित्र होकर मुक्ति-पद को प्राप्त करेंगे। जो कलियुग का प्राणी माता-पिता की सेवा न करने के कारण अपने धर्म से विमुख हुआ हो, जो लोभ में डूबा रहने के कारण मिथ्यावादी, चोर तथा ठग बन गया हो, वह भी इस कथा को सुनने के कारण भव-सागर से पार हो जायेगा। इस सम्बन्ध में हम तुमसे एक पुरानी कथा कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनो—

"दक्षिण दिशा में तुङ्गभद्रा नामक एक नदी है। उस नदी के तट पर बसे हुए एक नगर में आत्मदेव नामक एक विद्वान्, तेजस्वी तथा धर्मात्मा ब्राह्मण निवास करता था। उस ब्राह्मण की पत्नी का नाम 'धुन्धुली' था। वह अत्यन्त कर्कशा थी। दिन-रात सांसारिक माया-मोह में फँसी रहने के कारण वह अपने पति को अत्यन्त दुःख पहुँचाती रहती थी, परन्तु वह ज्ञानी ब्राह्मण उसे 'ईश्वर की इच्छा' समझकर सदैव शान्त बना रहता था। वृद्धावस्था आने पर भी जब उस ब्राह्मण के कोई पुत्र न हुआ, तब उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए व्रत तथा नियम रखना आरम्भ कर दिया। उसने ब्राह्मणों को बहुत-सा स्वर्ण तथा गौएँ दान में दीं। इस पर भी जब उसकी मनोभिलाषा पूर्ण नहीं हुई, तब एक दिन वह अत्यन्त उदास होकर, शरीर त्याग देने की अभिलाषा लिए, घर से निकलकर वन में जा पहुँचा। वहाँ मध्याह्न-काल में प्यास से अत्यन्त व्याकुल हो, वह एक तालाब के किनारे गया तथा वहीं स्नान करने के पश्चात्, जल पीकर, बैठा-बैठा चिन्ता करने लगा। उसी समय भगवद्-इच्छा से एक संन्यासी महापुरुष उस तालाब के निकट आ पहुँचे। आत्मदेव ने उनके तेज को देखकर बड़े सम्मानपूर्वक उन्हें बैठाया। उस समय उस महापुरुष ने आत्मदेव को चिन्तित देखकर पूछा—"हे ब्राह्मण ! तुम इस वन में उदास होकर, किसलिए बैठे हुए हो ? अपनी चिन्ता का कारण हमें बतलाओ।" यह सुनते ही वह ब्राह्मण अपनी आँखों में आँसू भरकर बोल उठा—"हे महाराज ! मैंने पूर्वजन्म में कोई बड़े पाप किये थे, जिनके कारण इस जन्म में मुझे सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई है। पुत्र न होने के कारण पितरों को नरक में जाना पड़ता है। इस दुःख के कारण दुखी होकर मैं यहाँ प्राण देने के लिए आया हूँ। संसार में जिसके पुत्र न हो उस प्राणी का जीवन व्यर्थ है। उसके धन, सम्पत्ति तथा वंश को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धिक्कार देना चाहिए। मैं ऐसा अभागा हूँ कि जिस गौ को मैंने पाला था, वह भी अभी तक बाँझ बनी हुई है तथा जिस वृक्ष को मैंने लगाया था, वह भी फल नहीं देता है। बाजार से मैं जिन फलों को खरीदकर लाता हूँ, वे सूख जाते हैं। इस प्रकार मुझे अपने चारों ओर दुःख ही दुःख दिखाई देते हैं।" इतना कहकर वह ब्राह्मण अत्यन्त विलाप करने लगा। उसकी यह दशा देखकर संन्यासी ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे ब्राह्मण! तू उदास मत हो। मैं तेरे सन्तान के सम्बन्ध में अभी विचार करता हूँ।" यह कहकर उस संन्यासी ने ब्राह्मण की कर्म-रेखा देखी। फिर उस पर विचार करने के उपरान्त कहा—"हे ब्राह्मण! तेरे भाग्य में सात जन्म तक सन्तान नहीं लिखी है, अतः तू यों रो-रोकर अपने प्राण मत दे। यह सम्पूर्ण संसारी माया मिथ्या है। संसार में दुःख के अतिरिक्त सुख किसी को नहीं मिलता। कलि-युग में पुत्र के द्वारा किसी को सुख प्राप्त नहीं होता। कलियुग के लड़के माता-पिता की सेवा न करके, अपनी पत्नी, साले तथा श्वशुर की आज्ञा में रहते हैं। स्त्री-पुत्र तथा भाई आदि सभी अपने स्वार्थ के सङ्गी होते हैं। इतने पर भी माया का यह हाल है कि अन्तिम समय तक सांसारिक प्राणी स्त्री-पुत्रादि में मन लगाये रहकर जगदीश्वर का स्मरण नहीं करते; जिस कारण उन्हें नरक में जाकर घोर यातना उठानी पड़ती है। अतः हे ब्राह्मण! तू भी पुत्र की कामना छोड़कर श्री नारायणजी के चरणों में ध्यान लगा। उसी में तुझको परमानन्द की प्राप्ति होगी।"

संन्यासी की बात सुनकर ब्राह्मण ने कहा—"हे महाराज! इस समय तो मुझे पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान नहीं होता है। आप कृपा कर मुझे एक पुत्र का दान अवश्य दीजिए, अन्यथा मैं यहीं आपके सामने अपने प्राण दे दूँगा।" संन्यासी ने आत्मदेव की जब यह दशा देखी, तो उसे समझाते हुए फिर कहना आरम्भ किया—"हे ब्राह्मण! सन्तान-प्राप्ति के लिए राजा चित्रकेतु ने दस सहस्र विवाह किए थे, फिर भी उन्हें पुत्र का सुख प्राप्त नहीं हुआ। इसी प्रकार अन्य अनेक राजा पुत्र की कामना में मृत्यु को प्राप्त हो गये, परन्तु उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। जो लोग भाग्यहीन होते हैं, उनका उद्यम व्यर्थ जाता है, यह विचार कर तुझे भी सन्तान की इच्छा छोड़ देनी चाहिए।" ब्राह्मण ने यह सुनकर कहा—"हे संन्यासिन्! आप जितना भी ज्ञानोपदेश करते हैं, वह मेरे मन को स्वीकार नहीं होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। आप कृपा कर कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मैं पुत्र का मुख देख सकूँ।" आत्मदेव का इस प्रकार हठ देखकर, संन्यासी ने उसे एक फल देते हुए कहा—" ऐसी ही बात है, तो तू यह फल ले जाकर अपनी स्त्री को खिला देना। परमेश्वर की कृपा से तुझे पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी।" इतना कहकर वह महापुरुष फल देकर एक ओर चला गया। तब ब्राह्मण भी वहाँ से उठकर अपने घर चला आया। घर आने पर आत्मदेव ने अपनी पत्नी को वह फल देते हुए कहा—"इस फल को खाने से तुझे लड़का होगा, अतएव तू इसे ग्रहण कर।" पत्नी से इस प्रकार कहकर जब आत्मदेव घर से बाहर चला गया, तब कुछ देर बाद उसकी स्त्री धुन्धुली की एक सखी उसके पास आ पहुँची। धुन्धुली ने उससे कहा—"हे सखी! मेरे स्वामी ने पुत्र होने के लिए यह फल कहीं से लाकर मुझे दिया है। परन्तु मैं गर्भ रहने के भय से इसे खाना नहीं चाहती हूँ। गर्भवती स्त्री का जी सदैव मचलाता रहता है जिसके कारण वह अच्छी तरह भोजन भी नहीं कर सकती है। गर्भ रह जाने पर मुझे चलने-फिरने में कष्ट होगा तथा घर में ही बैठा रहना पड़ेगा। उस स्थिति में न तो मैं अपनी सखी-सहेलियों से भेंट कर पाऊँगी और न गाने-बजाने का आनन्द ही उठा सकूँगी। गर्भ रहने पर बालक होने के समय की पीड़ा मुझे बर्दाश्त न होगी और यदि कहीं बालक पेट में ही टेढ़ा हो गया, तब तो मेरे प्राण ही जाते रहेंगे। मेरा शरीर कोमल है, उस दुःख को भला मैं कैसे सह सकूँगी? यदि लड़का सकुशल उत्पन्न हो गया, तो भी उसके पालन-पोषण में बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। छोटा बालक अपने मल-मूत्र से वस्त्रों तथा बिछौनों को भ्रष्ट कर देता है। उस दुर्गन्ध में मैं कभी नहीं रह सकूँगी। इन दुःखों को उठाने से तो वे बाँझ अथवा विधवा स्त्रियाँ अच्छी रहती हैं, जिन्हें गर्भ की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती।" इस प्रकार की अनेक बातें अपनी सखी से कहने के बाद उस ब्राह्मणी ने वह फल उठाकर कहीं रख दिया तथा अपने पति से यह झूठमूठ को कह दिया कि मैंने वह फल खा लिया है।

कुछ दिनों के बाद जब उस ब्राह्मणी (धुन्धुली) की बहिन उसके घर आई तो उसे उदास देखकर पूछने लगी—"हे बहिन! इन दिनों तुम बहुत उदास तथा दुर्बल मालूम देती हो, इसका क्या कारण है?" तब धुन्धुली बोली—"मेरे स्वामी ने पुत्र होने के लिए कहीं से एक फल लाकर मुझे खाने को दिया था, परन्तु मैंने गर्भ रहने के दुःख का स्मरण कर, वह फल नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाया तथा उनसे झूठ बोल दिया कि मैंने उसे खा लिया है। अब मैं सोचती हूँ कि गर्भ तो मुझे है नहीं, अतः अपने पति को क्या उत्तर दूँगी ? इसी चिन्ता के कारण मैं सदैव चिन्तित रहती हूँ।" धुन्धुली की बात सुनकर उसकी बहिन ने कहा—"हे बहिन ! यदि यही कारण है तो तू कुछ चिन्ता मत कर। मेरे एक महीने का गर्भ है, अतः तू अपने पति से कह देना कि मेरे गर्भ रह गया है। जब मेरे गर्भ से पुत्र होगा, तब मैं उस लड़के को तुझे दे दूँगी तथा उसे तेरा लड़का कहकर, स्वयं दूध पिला दिया करूँगी। इस प्रकार तेरे पति को कुछ भी पता नहीं चलेगा। वह फल जो रक्खा है, उसे तू अपनी गाय को खिला दे, ताकि कभी किसी की उस पर दृष्टि न पड़ सके।" अपनी बहिन की यह बात सुनकर धुन्धुली अत्यन्त प्रसन्न हो गई। उसने फल को तो गाय को खिला दिया तथा अपनी बहिन को—आत्मदेव से छिपाकर—अपने घर में ही रख लिया। दसवें महीने जब उसकी बहिन के लड़का हुआ तो उसने अपने पति को सूचित कर दिया कि मेरे लड़का हुआ है। आत्मदेव इस समाचार को सुनते ही अत्यन्त प्रसन्न हो गया। उसने ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत-सा दान दिया तथा मंगलाचार मनाये। उधर दूसरे ही दिन धुन्धुली ने अपने पति से कहा—"मेरे दूध नहीं उतरता है। मेरी बहिन के आज से छः महीने पहिले एक बालक हुआ था। वह तभी मर गया, परन्तु उसके स्तनों में बहुत दूध है। अतः मैं चाहती हूँ कि मेरी बहिन यहाँ रहकर मेरे लड़के को अपना दूध पिलाती रहे।" आत्मदेव ने पत्नी की इस बात को स्वीकार कर लिया। तब धुन्धुली की बहिन वहाँ प्रकट में रहकर, उस लड़के को दूध पिलाकर पालने-पोसने लगी। ब्राह्मण ने उस लड़के का नाम 'धुन्धुकारी' रख दिया।

उधर उस फल के कारण गौ भी गर्भवती हो गई थी। अतः जब धुन्धुकारी दो मास का हो गया तो उस गौ ने भी एक मनुष्यरूपी बालक को जन्म दिया। उस बालक के दोनों कान गौ के समान थे, शेष सब शरीर मनुष्यों जैसा ही था। उसे देखकर आत्मदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसका नाम 'गोकर्ण' रखकर अपने लड़के के ही समान जानकर लाड़-चाव से पालन करने लगा। कुछ समय बाद जब दोनों लड़के सयाने हुए, तब गोकर्ण तो पढ़-लिखकर बहुत विद्वान् तथा धर्मात्मा हुआ; परन्तु धुन्धुकारी महामूर्ख, अधर्मी तथा नीच निकला। वह जुआ खेलने लगा; चोरी तथा अन्य कुकर्म करने लगा। वेश्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गमन में जब उसने घर का सब धन समाप्त कर दिया; तब एक दिन वह अपने माता-पिता को मार-पीटकर घर के सब कपड़े तथा बर्तन भी ले गया और उन्हें बेचकर सारा द्रव्य वेश्या को दे आया। अपने पुत्र की यह दशा देखकर ब्राह्मण दुखी होकर रोने तथा विचार करने लगा कि ऐसा पुत्र होने से तो यदि मैं निस्संतान ही रहता तो वह बहुत अच्छा था। अब इस जीवित रहने से तो मृत्यु कहीं अधिक श्रेष्ठ है। वह इन सङ्कटों से छुटकारा तो दिला देगी। उस समय आत्मदेव को दुखी देखकर गोकर्ण ने कहा—"हे पिता! संसार में दुःख के अतिरिक्त सुख किसी को प्राप्त नहीं होता। आप चिन्ता क्यों करते हैं? इस दुनिया में राजा-प्रजा, धनी-निर्धन जितने भी मनुष्य हैं, उन सबको कोई न कोई दुःख लगा हुआ है। सुख तो केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है, जिसने संसारी माया-मोह से मन हटाकर श्री प्रभु के चरणों में अपना चित्त लगाया है। अतएव आप भी अज्ञान छोड़कर, स्त्री-पुत्रादि का मोह त्याग, वन में जाकर भगवद्भजन कीजिए। तभी आपको सुख प्राप्त होगा। संसारी माया-मोह में फँसा रहनेवाला मनुष्य तो नरक को प्राप्त होता है।" गोकर्ण की यह बात सुनकर ब्राह्मण को कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। तब उसने गोकर्ण से कहा—"हे पुत्र! तुमने बहुत श्रेष्ठ सम्मति दी है; परन्तु ज्ञान प्राप्त किए बिना मैं वन में जाकर क्या करूँगा? अतः मेरे उद्धार का जो उपाय हो, उसे भी तुम बतला दो।" यह सुनकर गोकर्ण बोला—"हे पिता! आप संसारी माया-मोह से अपने मन को खींचकर श्रीहरिचरणों में लगाइये तथा वन में अकेले बैठकर परमेश्वर का ध्यान कीजिए। इस साधन से आप मुक्त-पदवी को प्राप्त कर लेंगे।" यह ज्ञान सुनते ही आत्मदेव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने संसारी माया-मोह से अपना मन हटा लिया तथा वन में जाकर, प्रसन्न हो श्री नारायण का स्मरण तथा ध्यान करने लगा। कुछ समय बीतने पर उसने शरीर त्याग कर मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

पाँचवाँ अध्याय

धुन्धकारी की मृत्यु तथा सप्ताह-पारायण सुनने से मुक्ति

सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो! आत्मदेव ब्राह्मण के वन में चले जाने पर, धुन्धकारी ने अपनी माता को मार-पीटकर कहा कि या तो तू गड़ा हुआ धन बतला दे, अन्यथा मैं तुझे जान से मार डालूँगा। यह सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धुन्धुली ने उस समय यह कहकर अपनी जान बचाई कि मैं कल बतला दूँगी। धुन्धुली ने इस प्रकार उस दिन तो अपने प्राण बचा लिए, परन्तु फिर दूसरे दिन यह विचार कर कि घर में और धन तो कहीं गड़ा हुआ है नहीं, मैं बेटे को कहाँ से बतलाऊँगी? वह कुएँ में कूदकर मर गयी। गोकर्ण ने धुन्धकारी का जब यह हाल देखा तो वह वहाँ रहना उचित न जानकर, तीर्थ-यात्रा करने के लिए घर से बाहर निकल पड़ा। वह ऐसा महात्मा तथा ज्ञानी हुआ कि सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, सबको एक समान जानकर दिन-रात ईश्वर भजन के अतिरिक्त अन्य कुछ काम नहीं करता था। उधर गोकर्ण के चले जाने के पश्चात् धुन्धकारी घर में अकेला रहकर चोरी तथा ठगी करके, वेश्या को धन देने लगा। एक दिन वह कहीं से बहुत-सा धन तथा आभूषण चुरा लाया। उसे वेश्या को सौंप कर, वह उसके साथ ही सो गया। उस समय वेश्या के घरवालों ने अपने मन में यह विचार किया कि यह दूसरों का धन चुराकर हमें देता है। यदि यह कभी पकड़ा गया तो इसके साथ ही हम लोग भी दण्ड के भागी बनेंगे। इस कर्म के कारण किसी न किसी दिन यह मारा भी अवश्य जायेगा, अतः उचित यही है कि हम लोग ही इसे यहाँ पर मार डालें। ऐसा विचार करके उन्होंने धुन्धकारी के गले में फाँसी लगाकर, उसे अपने घर में लटका दिया। इतने पर भी जब उसके प्राण नहीं निकले तो उन्होंने जलती हुई लड़कियाँ उसके मुँह पर मार-मारकर उसे मार डाला। तत्पश्चात् घर के भीतर ही एक गड्ढा खोदकर उसे गाड़ दिया। कुछ दिन बीतने पर वेश्या के पड़ोसियों ने वेश्या से जब यह पूछा कि तुम्हारे घर प्रतिदिन आनेवाला धुन्धकारी अब क्यों नहीं दिखाई देता है? तो उसने यह उत्तर दे दिया कि वह व्यापार करने के लिए कहीं बाहर चला गया है। हे ऋषियो! इसे सत्य समझना चाहिए कि वेश्या कभी किसी की मित्र नहीं होती है। वह पहिले तो धन लेती है, पीछे प्राणों को भी ले बैठती है। वह केवल धन लेने से अधिक किसी से प्रीति नहीं रखती। उसकी जिह्वा पर अमृत तथा पेट में हलाहल विष का वास रहता है।

इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होने पर धुन्धकारी प्रेत हो गया। तब उसे गर्मी, बरसात, सर्दी तथा भूख-प्यास बहुत सताने लगी। इधर गोकर्ण ने जब किसी तीर्थ में किसी के द्वारा यह समाचार सुना कि तुम्हारा भाई धुन्धकारी मर गया है और उसकी क्रिया नहीं हुई है, तब उसने गयाजी में जाकर धुन्धकारी का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्राद्ध कर दिया। वह जहाँ-जहाँ भी जिस तीर्थ में जाता, वहीं उसका श्राद्ध कर देता था। सब तीर्थों के करने के बाद जब गोकर्ण अपने घर लौटा और रात्रि को वहाँ सोया तो उसने प्रेतयोनिधारी धुन्धकारी को कभी बैल, कभी हाथी, कभी बकरा, कभी भैंसा, कभी मनुष्य, कभी बड़े तथा कभी छोटे रूप में विविध प्रकार से देखा। गोकर्ण ने मन में धैर्य धारणकर उससे पूछा कि तू भूत, प्रेत अथवा राक्षसों में से कौन है तथा यहाँ किसलिए आया है? अपना सारा हाल मुझे बता। तब उसकी बात सुनकर धुन्धकारी विविध प्रकार से रोने लगा। उसमें बोलने की सामर्थ्य नहीं थी, अतः वह कुछ कहकर नहीं बतला सका। गोकर्ण ने जब यह देखा कि वह रोने के अतिरिक्त बोलता नहीं है, तो उसने मन्त्र पढ़कर जल का एक छींटा उस पर मार दिया। उस जल के पड़ते ही उसकी आवाज निकलने लगी। तब उसने कहा—"हे गोकर्ण! मैं तुम्हारा भाई धुन्धकारी हूँ। मुझे वेश्या ने फाँसी लगाकर मार डाला था, इसलिए मुझे खाने-पीने को कुछ नहीं मिलता है। केवल वायु के बल पर ही जीवित रहता हूँ। अब तुम आ गये हो तो किसी प्रकार से मेरा इस अधम योनि से उद्धार करो।" धुन्धकारी की बात सुनकर गोकर्ण ने पूछा—"मैंने तो तेरे उद्धार के लिए गयाजी तथा अन्य सभी तीर्थों में श्राद्ध किया था, फिर भी तू इस प्रेतयोनि से क्यों नहीं छूटा है?" वह बोला—"तुम सहस्रों श्राद्ध क्यों न करो, परन्तु महापापी होने के कारण मेरी मुक्ति सरल नहीं है। अब तो तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मैं अपने पापों से छूटकर इस अधम योनि से छुटकारा पा सकूँ।" यह सुनकर गोकर्ण ने कहा—"अच्छा तो तू कुछ दिन और धैर्य धारण कर, मैं शीघ्र ही तेरे उद्धार का उपाय करूँगा।" गोकर्ण की बात सुनकर धुन्धकारी वहाँ से हट गया। दूसरे जब नगर के लोग गोकर्ण से भेंट करने के लिए आये, तो उसने सबका यथोचित आदर-सत्कार किया। तदुपरान्त कुछ दिनों बाद उसने योगी, महापुरुष तथा पण्डितों की एक सभा बुलाकर यह पूछा कि मेरा भाई जो प्रेतयोनि में पड़ा हुआ है, उससे उसका उद्धार किस प्रकार हो सकता है? गोकर्ण की बात सुनकर सब लोगों ने विचार करके यह उत्तर दिया कि हे गोकर्ण! तुम सूर्य भगवान् का पूजन तथा ध्यान करो और उन्हीं से इसका उपाय पूछो। वे जो आज्ञा दें, वैसा ही करने से यह संकट दूर हो सकता है। तब गोकर्ण ने पण्डितों को बिदाकर सूर्य का पूजन एवं ध्यान आरम्भ कर दिया। उस पूजा-मन्त्र से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसन्न होकर जब सूर्य भगवान प्रकट हुए, तब उसने हाथ जोड़कर उनसे यह प्रार्थना की कि हे भगवन्! मुझे अब धुन्धकारी की मुक्ति का उपाय बताने की कृपा करें। सूर्य भगवान् ने उसकी प्रार्थना के उत्तर में यह बताया कि तुम श्रीमद्भागवत का सप्ताह-पारायण धुन्धकारी को सुनाओ, उसी से उसकी मुक्ति होगी। इतना कहकर जब सूर्य भगवान् अन्तर्धान हो गये तब गोकर्ण ने पण्डित, योगी तथा महापुरुषों को बुलाकर श्री मद्भागवत का सप्ताह-पारायण यज्ञ आरम्भ कर दिया। उस कथा को सुनने के लिए नगर के बहुत स्त्री-पुरुष, बालक, तरुण, वृद्ध आने लगे। धुन्धकारी भी एक सात गाँठवाले बाँस के ऊपर बैठकर उस कथा को सुनने लगा। एक वैष्णव को श्रोता ठहराकर गोकर्ण ने उस अमृतरूपी कथा का पाठ आरम्भ कर दिया। पहिले दिन सन्ध्या के समय जब कथा समाप्त हुई तथा श्रोतागण उठकर घर जाने लगे, उस समय जिस बाँस पर धुन्धकारी बैठा था, उसकी एक गाँठ फट गई, जिसके कारण भारी शब्द हुआ, दूसरे दिन कथा समाप्त होने पर दूसरी गाँठ फटी। इसी प्रकार सात दिन में, उस बाँस की सातों गाँठें फट गईं। तब उस द्वादशस्कन्ध कथा पारायण के प्रताप से धुन्धकारी ने प्रेतयोनि को छोड़कर दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लिया। उस समय उसकी चतुर्भुजी मूर्ति भगवान् कमला-पति के समान शोभायमान हो रही थी। वह पीताम्बर धारण किए हुए गोकर्ण के पास जा पहुँचा तथा उसे नमस्कार करता हुआ बोला—"हे महाराज! आपने मुझे महान् पापों से छुड़ाकर, मेरा उद्धार किया है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय मुझे इन पापों से मुक्त करनेवाला नहीं था। जो व्यक्ति संसाररूपी कीचड़ में फँसे हुए हैं, वे इस कथारूपी तीर्थ में स्नान कर पवित्र हो जाने के कारण निश्चय ही भव-सागर से पार उतर जायँगे।" इस प्रकार धुन्धकारी गोकर्ण से जब यह कह रहा था, उसी समय वहाँ आकाश से एक सुन्दर विमान उतरा। धुन्धकारी उस विमान में बैठकर वैकुण्ठलोक चला गया।

हे मुनियो! जिस समय यह घटना घटी, उस समय अन्य उपस्थित पण्डितों तथा ऋषि-मुनियों ने गोकर्ण से इस प्रकार पूछा—"हे महाराज! हमें एक भारी सन्देह हो रहा है। वह सन्देह यह है कि हममें से बहुत से लोगों ने श्रीमद्भागवत का सप्ताह-पारायण सुना है, फिर क्या कारण है कि वैकुण्ठ-लोक से विमान अकेले धुन्धकारी के लिए ही आया? हम सब लोगों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए क्यों नहीं आया ? वह तो वैकुण्ठ चला गया, परन्तु हम लोग यहीं क्यों रह गये ?" यह सुनकर गोकर्ण ने उत्तर दिया—"हे भाइयो ! मैं तुम्हारे इस सन्देह को भी दूर किये देता हूँ। इस कथा के फल में केवल इतना ही अन्तर है कि जो मनुष्य मन लगाकर कथा सुनते हैं, उन्हें तो इसका सम्पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, परन्तु जो लोग कथा में बैठे रहने पर भी अपना मन स्त्री-पुत्रादि के मोह में लगाये रहते हैं, उन्हें कथा का वैसा फल नहीं मिलता। मुक्ति तो एकाग्रचित्त होकर कथा सुननेवालों को ही प्राप्त होती है।" यह वचन सुनकर सम्पूर्ण श्रोता लज्जित हो गये। तब उन्होंने गोकर्ण से कहा—"हे महाराज ! अब आप कृपा करके एक सप्ताह तक इस कथा को और सुनाइये ताकि हम लोग एकाग्रचित्त होकर उसे श्रवण करें और भव-सागर के पार जा सकें।" उन लोगों की प्रार्थना सुनकर गोकर्ण ने श्रावण मास में दूसरा पारायण प्रारम्भ कर दिया। उस कथा को बहुत से लोगों ने मन लगाकर सुना, जिसके फल-स्वरूप कथा समाप्ति के दिन वहाँ बहुत से विमान आ उपस्थित हुए। यह दृश्य देखकर श्रोतागण गोकर्ण को साधुवाद देते हुए कहने लगे—"हे प्रभो ! आप ही की कृपा से हम लोगों का उद्धार हुआ है। आप परम धन्य हैं।" तदनन्तर कथा की समाप्ति पर वहाँ भगवान् श्री कृष्ण-चन्द्र ने स्वयं पधार कर दर्शन दिये। वे गोकर्ण को अपने साथ विमान पर बैठाकर गो-लोक को ले गये। अन्य सब श्रोतागण भी विमानों में बैठ-बैठ-कर सदेह वैकुण्ठ जा पहुँचे। हे ऋषियो ! जिस स्थान पर सूर्य तथा चन्द्रमा की भी पहुँच नहीं है, इस कथा के प्रताप से संसारी मनुष्य उस स्थान पर भी पहुँच जाता है। श्रीमद्भागवत कथा के सुनने तथा पढ़ने से जो फल प्राप्त होता है, वह यज्ञ, तप, व्रत, तीर्थ तथा दान आदि करने से भी नहीं मिलता। इसके माहात्म्य को सबसे बढ़कर समझना चाहिए।

छठाँ अध्याय

श्री सनत्कुमारजी द्वारा सप्ताह-यज्ञ की विधि का वर्णन

नारदजी ने सनत्कुमारजी से पूछा—"हे महात्मन् ! अब आप श्रीमद्भा-गवत महापुराण के सप्ताह-यज्ञ-विधि का वर्णन करने की कृपा करें। यह यज्ञ किस प्रकार करना चाहिए तथा इसमें कौन-कौन-सी वस्तुएँ आवश्यक हैं ?" सनत्कुमारजी ने कहा—"हे नारद ! तुमने सुन्दर प्रश्न किया है। सुनो, इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्ताह-पारायण को भाद्रपद (भादों), आश्विन (क्वार), कार्तिक तथा मार्गशीर्ष (अगहन) के महीनों में सुनने का फल अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है। इनके अतिरिक्त जब कभी इच्छा हो तथा श्रेष्ठ कथावाचक पण्डित मिल जावे, तभी इस कथा को सुनना श्रेयस्कर है। शुभ कार्य के लिए समय का कोई बन्धन नहीं है। इस कथा-यज्ञ के लिए श्रेष्ठ मुहूर्त्त का विचार कर, अपने इष्ट-मित्रों को भी कथा सुनने का निमन्त्रण भिजवा देना चाहिए। घर में यदि श्रेष्ठ स्थान हो तो वहाँ, अन्यथा किसी उपवन (बाग) अथवा तीर्थ-स्थान में इस कथायज्ञ को प्रारम्भ करना चाहिए। जिस स्थान पर कथायज्ञ हो, उसे कदली-खम्भ, बन्दनवार तथा चँदोवे आदि से भली प्रकार सुसज्जित कराना चाहिए, जिस प्रकार कि विवाह अथवा यज्ञ आदि में सजावट की जाती है। व्यास (कथा-वाचक) पण्डितों के बैठने के लिए एक ऊँचा तथा श्रेष्ठ सिंहासन रखवा दे तथा जो अन्य लोग कथा-श्रवण करने के लिए आवें, उनके लिए भी उचित आसनों का प्रबन्ध करे। प्रातःकाल से ही व्यास पण्डित को कथा-पाठ आरम्भ कर देना चाहिए। श्रोताओं को कथा सुनने के लिए स्नान तथा सन्ध्या-वन्दनादि से निश्चिन्त होकर कथा प्रारम्भ होने के पूर्व ही आ जाना चाहिए तथा मन लगाकर कथा सुननी चाहिए। कथा के पहिले दिन मुख्य श्रोता (कथा बँच-वानेवाले) को विघ्नहर श्री गणेशजी का पूजन करना चाहिए, ताकि सप्ताह-यज्ञ के बीच किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। कथायज्ञ के साथ ही एक विद्वान् ब्राह्मण को विष्णुसहस्रनाम का वरण देकर, सात दिन के लिए समीप ही बैठा देना उचित है। उस ब्राह्मण को चाहिए कि वह श्री शालग्राम की प्रतिदिन पूजा करे तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ करता हुआ, प्रत्येक नाम के साथ श्री शालग्राम की मूर्ति पर एक-एक तुलसी-दल चढ़ावे। मुख्य श्रोता को पहिले दिन व्यासजी की श्रीमद्भागवत की पोथी का सच्चे मन से पूजन करना चाहिए तथा उस पर यथाशक्ति भेंट (दक्षिणा) रखने के उपरान्त हाथ जोड़कर, इस प्रकार निवेदन करना चाहिए कि हे व्यासजी ! आप साक्षात् भगवान् श्री कृष्ण तथा महामुनि शुकदेवजी के स्वरूप हैं। अब आप मुझे अपना दास समझकर श्रीमद्भागवत यज्ञ को प्रारम्भ कीजिए तथा मेरी मनो-भिलाषा को पूर्णता प्रदान करिए। जब व्यास पण्डित कथा-पाठ प्रारम्भ करें, उस समय अपना चित्त संसारी माया-मोह से हटाकर, उसी में एकाग्र कर देना चाहिए। कथा सुनने के उपरान्त श्री हरिकीर्तन अवश्य करना चाहिए। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

प्रकार जब तक चार घड़ी दिन रहे, तब तक सप्ताह-पर्यन्त कथा सुननी चाहिए। व्यास पण्डित को भी आवश्यक है कि वे कथा-पाठ में शीघ्रता न करें। उन्हें कथा को इस प्रकार कहना चाहिए, जिससे सब लोगों की समझ में भली भाँति आ जाये। मध्याह्न के समय दो घड़ी के लिए कथा-पाठ बन्द कर देना चाहिए तथा उस समय में व्यासजी तथा श्रोताओं को दूध अथवा फलों का थोड़ा-सा आहार कर लेना चाहिए। जब तक सप्ताह-यज्ञ सम्पूर्ण न हो, तब तक सभी श्रोताओं को दिन में एक बार, केवल सन्ध्या के समय भोजन करना चाहिए। यदि सात दिन तक केवल दूध, घी तथा फल खाकर ही निर्वाह किया जा सके तो वह सबसे अधिक उत्तम है। परन्तु पूर्णरूपेण निराहार नहीं रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रोताओं को यह भी आवश्यक है कि वे सात दिन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें तथा मैथुन का सर्वथा परित्याग कर दें। पृथ्वी पर सोना तथा पत्तल में भोजन करना श्रेष्ठ है। कथा के सात दिन दाल, शहद, बासी अन्न, बैगन, तरबूज, मसूर, मोथी, उड़द, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर तथा काशीफल का सेवन नहीं करना चाहिए। ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए जिससे आलस्य आता हो। जब तक कथा सुनें, तब तक किसी से लड़ाई-झगड़ा, क्रोध, चुगली अथवा निन्दा न करें। सप्ताह-यज्ञ के बीच में यदि कोई स्त्री रजस्वला हो जाये, तो उसे उचित है कि वह कथा को श्रवण न करे। म्लेच्छ आदि अपवित्र जाति के लोग सभा के बीच में आकर न बैठें। उन्हें कथा सुनने की इच्छा हो तो सभा से दूर बैठकर सुनें। सभी श्रोताओं को सत्य बोलना तथा सब जीवों पर दया रखना आवश्यक है। कथा के बीच में वार्त्तालाप अथवा अन्य प्रकार से शोर नहीं करना चाहिए। इस सप्ताह-यज्ञ के सुनने से महान् श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है। जो स्त्री बाँझ हो अथवा एक बालक को जन्म देने के उपरान्त उसके दूसरा बालक न हुआ हो अथवा जिसका गर्भपात हो जाता हो, वह यदि इस कथा को मन लगाकर सुने, तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। इस कथा के सुनने के प्रताप से सम्पूर्ण मनोरथ पूरे होते हैं। कथा-समाप्ति पर प्रतिदिन श्रोताओं को तुलसीदल एवं प्रसाद देना चाहिए। जब कथा सम्पूर्ण समाप्त हो जाये, तब आठवें दिन दशम स्कन्ध के श्लोकों अथवा गायत्री मन्त्र की आहुति देकर हवन करना चाहिए। ब्राह्मणों को सुस्वादु भोजन करावे तथा उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार धन, वस्त्र, आभूषण, गौ, पृथ्वी तथा बर्तनों का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दान देना चाहिए। सच्चे मन से उनकी पूजा कर, उन्हें बिदा करना चाहिए। इस कथा को सुनने से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है।"

इतना कहकर श्री सनत्कुमारजी बोले—"हे नारद! यदि तुम्हें सुनने की इच्छा हो तो हम अब फिर श्रीमद्भागवत का दूसरा पारायण प्रारम्भ करें।" यह सुनकर नारदजी ने कहा—"हे महात्मन्! इससे बढ़कर आनन्द की और क्या बात होगी? मेरे भाग्य धन्य हैं, जो आप मुझ पर फिर ऐसी कृपा करना चाहते हैं।" तब नारदजी की प्रार्थना स्वीकार कर, श्री सनत्कुमारजी ने दूसरा पारायण-यज्ञ प्रारम्भ किया। जिस समय समस्त ऋषि-मुनिगण उस सप्ताह-पारायण को सुनने के लिए एकाग्रचित्त होकर बैठे, उसी समय भगवान् वेदव्यास के पुत्र महामना शुकदेवजी तीर्थयात्रा करते हुए वहाँ आ पहुँचे। श्री शुकदेवजी को देखते ही सब लोग उठकर खड़े हो गये तथा श्री सनत्कुमारजी ने भी आगे बढ़कर अत्यन्त सम्मान-सहित उन्हें अपने आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय सप्ताह-यज्ञ की तय्यारी को देखकर श्री शुकदेवजी ने सब श्रोताओं से कहा—"हे महानुभावो! आप लोग इस कथा को चित्त लगाकर सुनें। यह कथा वेदरूपी वृक्ष का फल है। संसार में जो अन्य वृक्ष होते हैं, उनके फलों में गुठली तथा छिलका रहता है, परन्तु यह फल सब ओर से अमृतरूपी रस से भरा हुआ है, अतः इस कथामृत का रसास्वादन बारम्बार करना चाहिए। इस कथा को सर्वप्रथम श्री नारायणजी ने श्री पितामह ब्रह्माजी से कहा था। पितामह ने इसे देवर्षि नारदजी को सुनाया। नारदजी ने मेरे पिता श्री वेदव्यासजी से कहा तथा श्री वेदव्यासजी ने मुझे पढ़ाया है। मैंने इस कथा को राजा परीक्षित को सुनाया था। यह श्रीमद्भागवत महापुराण अठारहों पुराणों में सर्वोत्तम है। साधु-वैष्णवों का यह परम धन है। स्वर्गलोक में तपस्वी जन, ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी, कैलाश में भगवान् शिवशंकर तथा वैकुण्ठलोक में श्री लक्ष्मीजी इसी कथा का पाठ करती हैं।"

इस प्रकार शुकदेवजी श्रोताओं से जब यह कह रहे थे, उसी समय भगवान् वैकुण्ठनाथ ने ब्रह्मा, वरुण, कुबेर आदि देवताओं तथा प्रह्लाद आदि भक्तों के साथ उस कथा-स्थल में पदार्पण किया। उन्हें देखते ही सारी सभा उठकर खड़ी हो गई। सब लोग दण्डवत्-प्रणाम करते हुए, जय-जयकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने लगे। महर्षि नारदजी आनन्दविभोर हो वीणा बजा-बजाकर नाचने-गाने लगे। भक्त उद्धवजी ने मँजीरा तथा देवराज इन्द्र ने मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ कर दिया। उस समय त्रिलोकीनाथजी ने सबको अपनी भक्ति में लीन देखकर प्रसन्न हो, मनवाञ्छित वरदान माँगने लिए कहा। तब प्रभु की वाणी सुनकर नारद आदि ने उनसे हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे श्यामसुन्दर! आपके दर्शनों से अधिक ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे हम लोग आपसे माँगें। यदि आप प्रसन्न ही हैं तो हमें कृपाकर अपने चरणों की भक्ति प्रदान कीजिए।" यह प्रार्थना सुनकर श्री नारायणजी "एवमस्तु" कहकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् सप्ताह-यज्ञ का दूसरा पारायण भी सानन्द सम्पन्न हो गया।

इतनी कथा सुनकर शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषियों ने श्री सूतजी से पूछा—"हे सूतजी! परमहंस श्रीशुकदेवजी ने यह कथा राजा परीक्षित को कब सुनाई थी तथा गोकर्ण एवं सनत्कुमारजी ने कब कही थी—यह हमें और बताने की कृपा करें।" पौराणिक सूतजी ने कहा—"जिस समय श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज द्वारिकापुरी से वैकुण्ठ को पधारे, उसके उन्तीस सौ वर्ष पश्चात् भाद्रपद मास में नवमी के दिन, श्री शुकदेवजी महाराज ने यह कथा राजा परीक्षित को सुनानी आरम्भ की थी तथा एक सप्ताह में वह पारायण-यज्ञ समाप्त हुआ था। उसके दो सौ वर्ष पश्चात् गोकर्ण ने यह सप्ताह-यज्ञ किया। उसके तीन सौ छः वर्ष बीतने के बाद श्री सनत्कुमारजी ने नारदजी को यह कथा सुनाई। उसी कथा का वर्णन हमने तुमसे किया है। इस अमृतमय कथा को जो आदर तथा स्नेह के साथ पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है, उसे सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे ज्यौतिषाचार्यः पण्डित गोविंद प्रसाद दीक्षितात्मज राजेशदीक्षित कृत भाषायां श्रीमद्भागवत माहात्म्यं समाप्तम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

प्रथम स्कन्ध

परब्रह्म परमात्मा का अवतार धारण : वेदव्यासजी द्वारा श्रीमद्भागवत का निर्माण: शृङ्गी ऋषि द्वारा राजा परीक्षित को श्राप एवं अमृत-कथा का भूतल पर प्राकट्य

वन्दना

व्याप्त है जो विश्व में, यह विश्व सब जिसमें रमा है।
स्वर्ग-मस्तक, नाभि-अम्बर, चरण-तल जिसकी—क्षमा है॥
उदर रत्नाकर, भुजाएँ दीखतीं—चारों दिशाएँ।
रोम वृक्षादिक, बनी हैं मेघमालाएँ—शिराएँ॥
नेत्र—रवि, शशि, पवन जिसमें प्राण बनकर बह रहा है।
रात-दिन—पलकें, जिसे जग—जग नियन्ता कह रहा है॥
जो अनल-मुख सृष्टि के प्रत्येक कण में घूमता है।
अरुण अधरों से उषा के, नित्य सबको चूमता है॥
है निखिल ब्रह्माण्ड जिसकी एक कौतुकपूर्ण छाया।
यन्त्रवत् सबको चलाती आ रही जिसकी कि माया॥
सुर, असुर, गन्धर्व, किन्नर, नाग, नर जिसने बनाये।
काल, युग, ऋतु, वर्ष, दिन, जिस कौतुकी ने हैं रचाये॥
गुप्त है, जो, किन्तु सबमें सब जगह दीखा प्रकट बन।
दूर है इस हेतु—दूरी खो रहा अतिशय निकट बन॥
जानकर भी जीव जिसको—जान कुछ पाता नहीं है।
खूब समझा है—समझ में किन्तु जो आता नहीं है॥
वह अनादि, विराट्, भुवनों का नियन्ता—मौन है क्यों?
हम पुकारे जा रहे हैं, पूछता वह—'कौन है?' क्यों?
हाँ, उसीको ही नमन कर, उठ रही यह लेखनी है।
और अब 'राजेश' को, उसकी चमत्कृति देखनी है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

कथा प्रारम्भ : शौनकादि ऋषियों द्वारा श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में सूतजी से पूछना तथा सूतजी द्वारा श्रीमद्भागवत की स्तुति का वर्णन

भगवान् वेदव्यासजी के शिष्य पौराणिक सूतजी ने श्रीमद्भागवत की कथा को अपने गुरु श्री वेदव्यासजी के मुख से उस समय सुना था, जिस समय वे अपने पुत्र श्री शुकदेवजी को पढ़ाते थे। इसके अनन्तर जब श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से इस कथा को कहा—तब भी सूतजी ने उसे सुना था। इसके कुछ दिन बाद श्री सूतजी उस नैमिषारण्य तीर्थ में गये जहाँ शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषि-मुनि निवास करते थे। उस स्थान पर ऋषि-मुनियों के एकत्रित होने का कारण यह था कि वहाँ भगवान् श्यामसुन्दरजी का सुदर्शन चक्र गिरा था अर्थात् उस जगह सुदर्शन चक्र की नेमि शीर्ण हुई थी, इसी कारण उस स्थान का नाम नैमिषारण्य पड़ गया था तथा वह इतना पवित्र था कि वहाँ कलियुग का प्रवेश सम्भव नहीं था। जिस समय श्री सूतजी वहाँ पहुँचे तो समस्त ऋषियों ने उनसे यह प्रार्थना की, "हे सूतजी! आपने श्री वेदव्यासजी के समीप रहकर, उनसे सम्पूर्ण पुराणों को पढ़ा तथा सुना है, अतः आप कृपाकर हमें भी कोई ऐसी कथा सुनाइये, जिससे हम लोगों को कल्याण तथा पुण्य की प्राप्ति हो।" ऋषियों की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! जो आदि निरंकार महाप्रभु चौदह भुवनों की रचना कर, सब जीवों का पालन करते हैं तथा महाप्रलय के समय सब जीवों की चैतन्य आत्मा जिन त्रिभुवनपति की ज्योति में पुनः लीन हो जाती है, जो परब्रह्म अपने तेज से स्वयं प्रकाशित रह कर, ब्रह्मा तथा शङ्कर आदि देवताओं को ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जिनकी माया के बल पर सृष्टि का सम्पूर्ण व्यवहार संचालित होता है, उन्हीं आदि ज्योतिःस्वरूप श्री नारायणजी का सर्वप्रथम ध्यान धरते हुए, महामना श्री वेदव्यासजीका यह कहना है कि यद्यपि यह सम्पूर्ण सांसारिक व्यवहार मिथ्या है, फिर भी उन परमेश्वर की बलवान माया के भुलावे में सब लोग पड़े हुए हैं। उस माया को कोई भुलावा नहीं दे सकता। श्रीमद्भागवत में ऐसे परमधर्म का वर्णन किया गया है, जिसके कारण कपट तथा लोभ आदि समूल नष्ट हो जाते हैं। उसमें ऐसे निर्गुण धर्मों का वर्णन है, जिनके करने से तीनों प्रकार के ताप तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। उस धर्म के पालन करने पर संसारी प्राणी देवता, नवग्रह,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शत्रु एवं मन के संकल्प-विकल्पों के भय से छूटकर कल्याण को प्राप्त करता है। अन्य युगों में वर्षों तक परिश्रमपूर्वक यज्ञ, तप, ध्यान तथा पूजन करने के पश्चात् श्रीभगवान् श्यामसुन्दर के प्रति प्रीति उत्पन्न होती थी, परन्तु कलि-युग में केवल इस अमृतरूपी कथा के पढ़ने तथा सुनने से ही मनुष्य के हृदय में श्री नारायण के श्रीचरणों का बास हो जाता है। अतः श्रीमद्भागवत को सम्पूर्ण वेदों का सार एवं कल्पवृक्ष के समान समझना चाहिए। इस कथा को श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा था। इस प्रकार उस अमृतरूपी कल्पवृक्ष का फल संसार का कल्याण करने के निमित्त श्री शुकदेवजी के मुख से टपक कर, प्रकट हुआ है।"

श्री सूतजी बोले—"हे ऋषियो! इस प्रकार श्री व्यासजी अपने शिष्यों से कहते हैं कि तुम लोग इस अमृतरूपी फल के रस को जिसमें कि छिलका तथा गुठली का नाम भी नहीं है, कानों की राह निरन्तर पान करो। जिस प्रकार संसार में मीठे फलों को तोता काटकर खा लेता है, उसी प्रकार शुक-देवजी ने इस अमृतरूपी कथा को—जो वैकुण्ठ का परम सुख प्रदान करने-वाली है—अत्यन्त मीठी समझकर खा लिया था। तदुपरान्त उन्होंने इसे लोक-कल्याण के हेतु संसार में प्रकट किया था।" श्री सूतजी के मुख से यह इति-हास सुनकर शौनकादिक ऋषियों ने "धन्य-धन्य" शब्द का उच्चारण किया। तदुपरान्त एक दिन प्रातःकृत्य स्नान-पूजा आदि से निवृत्त हो, श्री सूतजी को आदरपूर्वक अपने बीच में बैठाकर इस प्रकार कहा—"हे भगवन्! आप सम्पूर्ण वेद एवं पुराणों के ज्ञाता हैं। अतः आप हम लोगों को अपना शिष्य समझकर, संसार के सम्पूर्ण जीवों को भव-सागर से पार करने वाला, सम्पूर्ण पुराण, वेद एवं शास्त्रों का जो तत्त्व हो, उसका अपने श्रीमुख द्वारा वर्णन कीजिए। जिससे हम लोग भी थोड़े परिश्रम द्वारा अधिक फल को प्राप्त करके, मुक्ति के अधिकारी बन सकें। इसके साथ ही आप हमें यह भी बतलाने की कृपा कीजिये कि जिन परब्रह्म महाप्रभु का केवल नाम लेने मात्र से ही संसारी जीवों का उद्धार हो जाता है, उन्हीं परमेश्वर ने मर्त्य-लोक में आकर देवकी के गर्भ से जो सगुण अवतार लिया, उसका कारण क्या था? श्री बलरामजी के साथ रहकर उन्होंने संसार में कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं तथा जिस समय वे वैकुण्ठ को पधारे, उस समय वे धर्म को किसके हाथों में सौंप गये अर्थात् वह किसकी शरण में रहा—इन सब बातों का भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णन करने की कृपा करें; क्योंकि श्री परब्रह्म परमेश्वर के लीलाचरित्रों को कहने-सुनने से प्राणी चौरासी लाख योनियों के आवागमन से छुटकारा पाकर, भव-सागर के पार उतर जाता है।

दूसरा अध्याय

शुकदेवजी का तपस्या करने के निमित्त वन में जाना तथा नारदमुनि के उपदेश से आश्रम को लौट आना

व्यासजी कहते हैं—"शौनकादि ऋषियों की यह बात सुनकर श्री सूतजी अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने सर्वप्रथम श्री शुकदेवजी के चरणों का ध्यान किया, जिनके सत्संग के कारण उन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को श्रवण किया था। इसके बाद उन्होंने अपने गुरु श्री वेदव्यासजी के चरण-कमलों में मन ही मन दण्डवत् कर, भगवान् श्यामसुन्दर की चतुर्भुज मूर्ति को प्रणाम किया। इस प्रकार अपने आराध्य एवं इष्ट-जनों का स्मरण करने के पश्चात् वे शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषियों को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—हे—ऋषियो! आपने अत्यन्त श्रेष्ठ बात पूछी है। अब मैं आपको श्रीमद्भागवत की वह कथा सुनाता हूँ, जिसमें परम प्रभु श्री श्यामसुन्दरजी की विविध लीलाओं का पवित्र वर्णन है। आप लोग ध्यानपूर्वक उस कथा को श्रवण करें।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! महामना श्री शुकदेवजी जन्म लेने के पश्चात्, यज्ञोपवीत-संस्कार के पूर्व ही, इस संसार को स्वप्नवत् मिथ्या मानकर, भगवान् मुरलीमनोहर की तपस्या करने के निमित्त, घर छोड़कर, वन के लिए चल दिए। उन्होंने अपने मन में यह विचार किया था कि यहाँ रहने से सब लोग मिलकर मेरा विवाह कर देंगे। उस स्थिति में संसारी मोह-माया से मैं छुटकारा नहीं पा सकूँगा, अतः मुझे अभी से वन में जाकर हरि-भजन करना श्रेष्ठ है। जिस समय शुकदेवजी के पिता वेदव्यासजी ने, अपने पुत्र का यह हाल देखा—तो वे उनके स्नेह में व्याकुल होकर, उन्हें घर लौटा लाने के लिए पीछे-पीछे दौड़ पड़े तथा शुकदेवजी को पुकार-पुकार कर कहने लगे कि हे पुत्र! तुम हम लोगों को इस प्रकार छोड़कर कहाँ चले जा रहे हो? कुछ देर ठहरकर हमारी बात तो सुन लो! परन्तु श्री शुकदेवजी संसार से इतने विरक्त हो चुके थे कि उन्होंने क्षणभर ठहरकर अपने पिता व्यासजी को कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर देना भी उचित नहीं समझा। वे निरन्तर आगे बढ़ते चले गये तथा मन में यह विचार करते रहे कि देखो, वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी मेरे पिता इस संसारी मोह-माया में किस प्रकार लिप्त हो रहे हैं? उस समय वन के वृक्षों ने शुकदेवजी की ओर से श्री व्यासजी को इस प्रकार उत्तर दिया—"हे मुने! यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या है। यहाँ कोई किसी का पुत्र अथवा पिता नहीं है। यह शरीर नश्वर है, जो बारम्बार जन्म लेता तथा मृत्यु को प्राप्त होता है। इसके विपरीत जीवात्मा अनश्वर है; वह कभी नहीं मरता। अतः तुम्हें अपने पुत्र के जाने पर इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए।"

वृक्षों की यह बात सुनकर व्यासजी को सन्तोष प्राप्त हुआ, तब वे धैर्य-धारण कर अपने आश्रम को लौट आये। जिस समय शुकदेवजी वन को जा रहे थे, उसी समय मार्ग में कुछ देव-स्त्रियाँ एक तालाब के किनारे नग्नावस्था में स्नान कर रही थीं। जिस समय शुकदेवजी उनके पास होकर निकले, उस समय उन्होंने शुकदेवजी से कोई पर्दा नहीं किया तथा वे उसी प्रकार निश्चिन्त भाव से नङ्गी स्नान करती रहीं; परन्तु कुछ देर बाद उनके पीछे ही पीछे जब वृद्ध व्यासजी उस स्थान पर पहुँचे तो उन स्त्रियों ने लज्जित होकर अपने अङ्गों को वस्त्रों से ढँक लिया। यह गति देखकर व्यासजी ने अपने मन में विचार किया कि देखो, जिस समय मेरा युवा पुत्र शुकदेव इन स्त्रियों के सामने से निकला, उस समय तो ये इसी प्रकार नग्न स्नान करती रहीं; परन्तु अब जब मैं बूढ़ा व्यक्ति, जिसे आँखों से भी कम दिखाई देता है, इनके सामने आया, तो ये मुझे देखकर वस्त्र पहिन रही हैं, इसका क्या कारण है? जिस समय व्यासजी अपने मन में इस प्रकार विचार कर रहे थे, उस समय उन देवाङ्गनाओं ने अपनी अन्तर्ग्राहिनी शक्ति द्वारा उनके मन की बात जान ली। तब उन्होंने व्यासजी को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—"हे मुने! हम आपके मन का संशय दूर किए देती हैं। आपके पुत्र शुकदेवजी परमहंस हैं। उन्हें स्त्री-पुरुष में किसी प्रकार के भेद का ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि उन्हें देखकर हमने कोई लज्जा नहीं की थी। परन्तु आप इस भेद से भली भाँति परिचित हैं, इसीलिए हमने आपको देखकर, लज्जित हो अपने अंगों को वस्त्रों से ढाँक लिया है।" उन स्त्रियों के मुख से यह शब्द सुनकर व्यासजी के मन का सन्देह दूर हो गया। तदुपरान्त वे अपने आश्रम को लौट आये।

सूतजी के मुख से श्री शुकदेवजी की ऐसी प्रशंसा सुनकर, शौनकादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषियों ने अपने मन में विचार किया कि पौराणिक सूतजी हम सब वयोवृद्ध ज्ञानी ऋषि-मुनियों की तुलना में श्री शुकदेवजी को इतना अधिक महत्त्व देकर, प्रशंसा कर रहे हैं, इसका क्या कारण है? हृदय में यह विचार आते ही उन ऋषियों का मुख उदास हो गया। उनकी उस अवस्था को सूतजी ने अपनी ज्ञान-दृष्टि से पहिचान लिया। तब वे उन सबको सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे ऋषियो! श्री शुकदेवजी ने संसार-सागर से पार करनेवाली इस भागवती कथा को अपने श्रीमुख से संसार में प्रकट किया है, अतएव वे ऋषियों के महर्षि तथा गुरुओं के भी गुरु हैं। आप लोग उनकी महत्ता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह न करें।" सूतजी के मुख से यह शब्द निकलते ही सब ऋषि-मुनियों का संशय नष्ट हो गया। तब बोध प्राप्त होने पर वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय सूतजी ने फिर कहना आरम्भ किया—"हे ऋषियो! यदि यहाँ कोई इस बात का सन्देह करे कि जब शुकदेवजी जन्म लेने के बाद ही परमेश्वर का भजन करने के लिए वन को चले गए थे, तो उन्होंने यह किस प्रकार जाना कि केवल भगवत् भजन ही संसार में सार वस्तु है—तो इस शङ्का का समाधान यह है कि ऋषि-मुनियों से ज्ञान-चर्चा के समय ही शुकदेवजी ने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया था और इसीलिए वे तपस्या करने के हेतु वन को चले गये थे। अस्तु—वन में आगे जाने पर श्री शुकदेवजी को देवर्षि नारदजी के दर्शन प्राप्त हुए। उस समय उन्होंने नारदजी से यह प्रार्थना की कि हे महामुने! आप मुझे कोई ऐसा ज्ञान बताने की कृपा कीजिए जिससे मेरा चित्त श्री नारायणजी के चरण-कमलों में भली भाँति लग सके। नारदजी ने उन्हें उत्तर दिया—"हे शुकदेव! यह उपाय तुम्हारे पिता श्री व्यासजी भली भाँति जानते हैं। मैंने उन्हें इसका ज्ञान प्राप्त करा दिया है, अतः तुम उन्हीं के पास जाकर यह ज्ञान प्राप्त करो।" नारदजी की यह बात सुनकर श्री शुकदेवजी आश्रम को वापिस लौट आये तथा अपने पिता श्री व्यासजी के चरण-कमलों में मस्तक रखकर इस प्रकार कहने लगे—"हे पिता! आप मुझे कोई ऐसी विद्या पढ़ाइये, जिससे मुझे श्री नारायणजी के चरण-कमलों में प्रीति उत्पन्न हो।" शुकदेवजी की प्रार्थना सुनकर व्यासजी ने उत्तर दिया—"हे पुत्र! यह ज्ञान श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्राप्त न हो सकेगा, अतः तुम श्रीमद्भागवत की शिक्षा प्राप्त करो।" यह कहकर व्यासजी ने उन्हें श्रीमद्भागवत पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! जिस समय श्री शुकदेवजी भागवत पढ़ते थे तथा मेरे गुरु श्री व्यासजी उन्हें पढ़ाते थे, उस समय मैं भी वहीं उपस्थित रहता था। श्री शुकदेवजी ऐसे महाविरक्त थे कि वे कहीं भी एक क्षण से अधिक नहीं ठहरते थे, परन्तु श्रीमद्भागवत पढ़ने के लोभ में वे बहुत दिनों तक श्री व्यासजी की सेवा में बने रहे। श्री शुकदेवजी परमहंस थे। उनके पास कुछ द्रव्य तो था नहीं, जो वे उसे देने के लिए किसी को अपने पास बुलाते, अतः उन्होंने अपने मन में यह विचार करके श्रीमद्भागवत का पढ़ना आरम्भ किया कि मैं इस कथारूपी परमधन को ऋषि-मुनियों में बाँटा करूँगा।"

इतनी कथा कहकर श्री सूतजी बोले—"हे ऋषियो! इस कथा के सुनने से निष्काम भक्ति की प्राप्ति होती है। निष्काम भक्ति प्राप्त हो जाने पर मनुष्य विरक्त तथा ज्ञानी होकर मुक्त पदवी पर पहुँच जाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह यज्ञ, जप, तप, पूजा, व्रत तथा अन्य शुभ कर्मों को करते समय, उनसे किसी प्रकार के फल की कामना न रक्खे। ऐसे निष्काम कर्म करनेवाले जीव आवागमन से छूटकर भवसागर के पार हो जाते हैं। संसार में भक्ति के समान अन्य कोई धर्म नहीं है। यज्ञ, तप, दान तथा तीर्थ आदि धर्मों द्वारा मनुष्य को बड़े परिश्रम से श्रीभगवत्-चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, परन्तु भक्ति से वह सहज सुलभ हो जाती है। इस कारण मनुष्य को चाहिए कि वह सच्चे मन से श्रीमद्भागवतरूपी अमृत-कथा का श्रवण करे तथा अपने मन को माया-मोह, स्त्री-पुत्रादिक के मिथ्या व्यवहारों से विरक्त कर, श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति करे। जो प्राणी उन ज्योतिःस्वरूप परमप्रभु के चरणों में अपना मन लगाकर उनकी लीला तथा गुणानुवादों को सुनता है, उसके हृदय से काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि का मैल इस प्रकार से छूट जाता है, जिस प्रकार कि निकेल (कलई) करने से लोहे में मुर्चा नहीं लग पाता। हरि-चरणों का वास हो जाने के कारण हृदय पवित्र तथा निर्मल बन जाता है। अतएव अपनी मुक्ति चाहनेवाले मनुष्य को श्रीहरि-कथा सुनने का अभ्यासी बनना चाहिए। श्री परमेश्वर की अत्यन्त कृपा होने पर ही मनुष्य का मन कथा-कीर्तन आदि में लगता है। भक्ति-कीर्तन किये बिना तथा परमेश्वर की कथा सुने बिना मन शुद्ध नहीं होता। जिस प्रकार मनुष्य का स्वभाव राजसी, तामसी तथा सात्विकी—तीन प्रकार का होता है, उसी प्रकार राजसी, तामसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा सात्त्विकी—इन तीनों तरह की देव-पूजा भी होती है। शास्त्रों में तामसी को काष्ठ की, राजसी को धुआँ की तथा सात्त्विकी को अग्नि की उपमा दी गई है। जो सिद्धि अग्नि से प्राप्त होती है—वह काष्ठ अथवा धुएँ से प्राप्त नहीं हो सकती; इसलिए सात्त्विकी भक्ति तथा पूजा करनेवाले ही मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं। संसार में जितने धर्म, यज्ञ, तप तथा व्रत आदि हैं, वे सब परम-पिता परमेश्वर के रूप में इस प्रकार लीन हो जाते हैं, जिस प्रकार बरसाती नदी-नालों का पानी बहकर समुद्र के गर्भ में समा जाता है।"

तीसरा अध्याय

श्री नारायणजी के अवतारों का वर्णन

श्री सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो! संसार में अवतार धारण करनेवाले आदिपुरुष निरङ्कार स्वरूप हैं। सबसे पहिले वे ही थे, मध्य में भी वे ही रहकर महाप्रलय के पश्चात् भी वे ही स्थिर रहते हैं। वे अपने तेज से स्वयं प्रकाशित हैं। अन्य सम्पूर्ण तेजों को उनकी ज्योति की छाया मात्र समझना चाहिए। महाप्रलय के उपरान्त जब उन आदि निरङ्कार ज्योतिःस्वरूप श्री नारायण महाप्रभु की इच्छा फिर से संसार रचने की होती है, उस समय वे अपनी माया-सहित पुरुष अवतार धारण कर शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं। उनके सहस्र नेत्र, सहस्र कान, सहस्र भुजा तथा सहस्र चरण होते हैं, अतः उन्हें विराट् स्वरूप कहा जाता है। उस समय उनकी नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न होता है। उस फूल से ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं, जो कि सृष्टि-रचना का कार्य करते हैं। सब अवतारों का हेतु उन्हीं को समझना चाहिए। उन परब्रह्म परमेश्वर के अवतारों का वर्णन इस प्रकार है। आप लोग ध्यान देकर सुनें—

आदिप्रभु का पहिला अवतार कौमार सर्ग का आश्रय लेकर 'सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार' के रूप में हुआ, जिसमें उन्होंने सदैव ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया तथा वे सदैव पाँच वर्ष की अवस्था धारण किए रहे। दूसरा अवतार 'वाराह' का हुआ, जिसमें वे एकार्णव के जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार कर, उसे पाताल से बाहर निकाल लाये। तीसरा 'यज्ञ-पुरुष' का चतुर्भुजी अवतार लेकर श्री नारायणजी ने राजाओं को यज्ञ करने की विधि बतलाई। चौथा अवतार 'हयग्रीव' था, जिसमें सम्पूर्ण शरीर मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसा, परन्तु मुख घोड़े के समान था। उस अवतार में श्री नारायणजी ने ब्रह्माजी को वेदों का पाठ पढ़ाया। पाँचवाँ अवतार 'नर-नारायण' के रूप में हुआ, उसमें उन्होंने सांसारिक प्राणियों को तपस्या का मार्ग दिखाने के लिए बदरी-केदार में बैठकर अखंड तप किया जिसे वे अभी तक कर रहे हैं। छठवें अवतार में श्री श्यामसुन्दर ने 'कपिल मुनि' का स्वरूप धारण कर अपनी माता को सांख्य-योग का ज्ञानोपदेश दिया। सातवाँ—अत्रि मुनि के घर 'दत्तात्रेय' का अवतार लेकर राजा 'अलर्क' तथा भक्त प्रह्लाद को वेदान्त की शिक्षा दी। आठवाँ अवतार इन्द्र की कन्या चित्रदेवी के गर्भ से 'ऋषभदेव' के रूप में हुआ; उसमें उन्होंने जड़चर्या का मार्ग दिखाया तथा उन अवतारी के पुत्र जयनदेव ने संसार में जैन धर्म को फैलाया। नवाँ अवतार राजा वेणु का शरीर मंथन करने पर 'पृथु' के रूप में हुआ; जिसमें उन्होंने गौरूपी पृथ्वी को दुहकर, उसमें छिपी हुई अन्नादिक औषधियों को निकाला। दसवाँ 'मत्स्यावतार' लेकर परमप्रभु ने राजा सत्यव्रत को सप्तर्षियों-सहित नौका पर बैठाकर ज्ञानोपदेश किया तथा उसे अपनी माया का चमत्कार दिखलाया। ग्यारहवें 'कच्छप' अवतार में श्री नारायणजी ने समुद्र-मंथन के समय अपनी पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किया। बारहवें 'धन्वन्तरि' अवतार में श्री भगवान् अमृत का कलश हाथ में लिए हुए समुद्र से अवतीर्ण हुए तथा समस्त व्याधियों का मूलोच्छेदन करने के लिए चिकित्साशास्त्र का निर्माण किया। तेरहवाँ 'मोहिनी' अवतार, दैत्यों को अपने सौन्दर्य पर मोहित कर, उनसे अमृत का कलश प्राप्त कर लेने के लिए हुआ। उस अवतार में श्री नारायणजी ने देवताओं को अमृत पिलाया। चौदहवाँ अवतार 'नृसिंह' का हुआ। उसमें हिरण्यकशिपु दैत्य का संहार कर, अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। पन्द्रहवें 'वामन' अवतार में राजा बलि से तीन पग पृथ्वी दान में ली। माँगते समय मनुष्य छोटा हो जाता है, इसलिए परम प्रभु ने भी उस दान को माँगते समय अपना स्वरूप छोटा बनाया था। सोलहवें 'हंस' अवतार में सनत्कुमार आदि को ज्ञानोपदेश कर, उनका गर्व नष्ट किया। सत्रहवाँ 'नारद' अवतार धारण कर 'पञ्चरात्र वेद' का निर्माण किया, जिसमें वैष्णव धर्म का सम्पूर्ण वर्णन है। अठारहवाँ 'हरि' अवतार लेकर गजेन्द्र को ग्राह के फन्दे से छुड़ाया। उन्नीसवाँ 'परशुराम' अवतार हुआ, जिसमें इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं का संहार कर, उनकी सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणों को दान में दे दी। बीसवाँ 'राम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

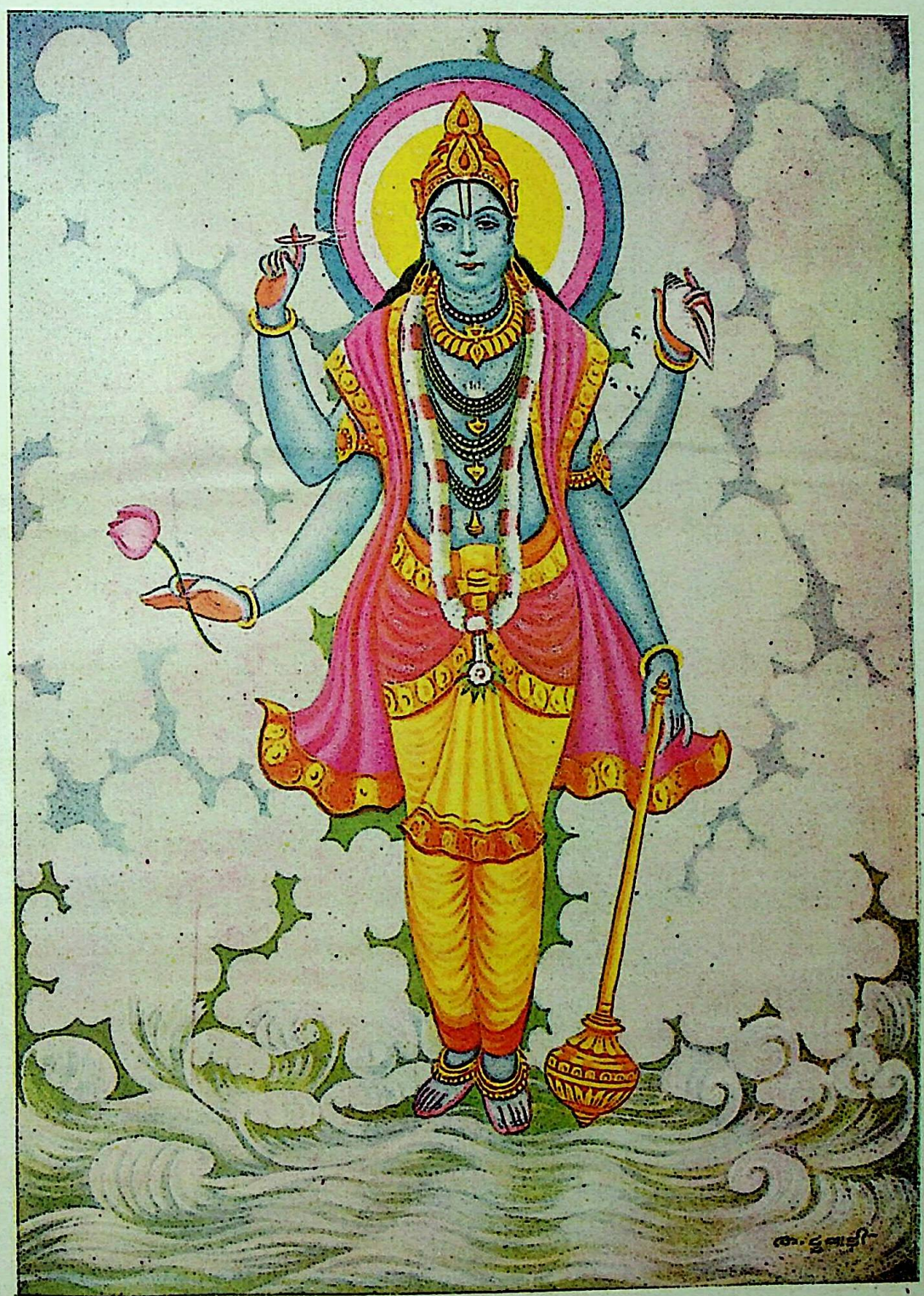

क्षीर सागर में भगवान् विष्णु का प्रकट होना

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्र' अवतार लेकर समुद्र का अभिमान नष्ट किया तथा रावण को वंश-सहित संहारा। इक्कीसवाँ अवतार 'वेदव्यास' रूप में लेकर सब वेदों के भाग करके अठारहों पुराण तथा महाभारत का निर्माण किया। बाईसवाँ 'श्रीकृष्ण' अवतार धारण कर, कंस, कालयवन तथा जरासन्ध आदि अधर्मी राजाओं का संहार कर, पृथ्वी का भार उतारा एवं कलियुग-वासियों को संसार-सागर से पार उतारने के लिए अनेक मनोहारिणी लीलाएँ कीं। तेईसवाँ 'बुद्ध' अवतार हुआ। इस अवतार का कारण यह था कि जब एक समय दैत्यों ने अपने पुरोहित शुक्राचार्य से यह कहा कि देवतागण ही इन्द्रासन के अधिकारी होते हैं, अतः आप हमें कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे हमारा भी उस पर आधिपत्य हो सके तथा हम लोग निष्कण्टक राज्य करें। उस समय शुक्राचार्य ने उन्हें यह सम्मति दी कि देवताओं का राज्य यज्ञ करने के कारण अविचल है अतः तुम लोग भी यज्ञ करो। शुक्राचार्य की यह आज्ञा मानकर समस्त दैत्यों ने देवलोक का राज्य प्राप्त करने की इच्छा से यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय समस्त देवतागण भयभीत होकर श्री नारायणजी के समीप गये तथा बहुत प्रकार से स्तुति करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे नाथ! दैत्य लोग हमसे वैसे ही अधिक बलवान् हैं। अब यज्ञ करने से तो उन्हें और भी विशेष शक्ति प्राप्त हो जायगी। उस स्थिति में हम उन्हें किसी भी प्रकार नहीं जीत सकेंगे। अतः आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे हम लोगों का यह भय नष्ट हो जावे।" देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर आदिपुरुष भगवान् बुद्ध अवतार धारण कर, सेवड़े का रूप बना, मैले कपड़े पहिने हाथ में चँवर लिए हुए उस स्थान पर गये, जहाँ वे दैत्य यज्ञ कर रहे थे। बुद्ध रूपधारी भगवान् को देखते ही दैत्यों ने उनका बहुत सम्मान किया। तत्पश्चात् उनसे पूछा—"आपके हाथ में यह कौन-सी वस्तु है?" बुद्धरूपी भगवान् ने कहा—"यह चँवर है। मनुष्य जिस स्थान पर बैठता है, वहाँ उसके नीचे अनेक छोटे-छोटे कीटाणु दबकर मर जाते हैं, इसलिए प्रत्येक स्थान को झाड़ लेने के बाद ही बैठना चाहिए। इसी कारण हम अपने हाथ में यह चँवर लिए फिरते हैं ताकि यदि कहीं बैठें तो बैठने से पहिले उस स्थान को इससे झाड़ लें।" यह सुनकर दैत्यों ने उनसे दूसरा प्रश्न किया—"आपके कपड़े मैले क्यों हैं?" बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया—"कपड़े धोने से भी उन बहुत से जीवों की हत्या हो जाती है, जो कि कपड़ों में रहते हैं, इसीलिए हमने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कपड़े न धोने का व्रत ले रक्खा है।" नारायणजी की ऐसी बातें सुनकर वे दैत्य मोह को प्राप्त हो गये तथा उनका मन यज्ञ से फिर गया। उन्होंने परस्पर विचार किया कि यज्ञ करने से तो जीवों की हिंसा होगी, उस स्थिति में यज्ञ निष्फल हो जायगा और हमें अधिक पाप भी लगेगा। इसलिए यज्ञ नहीं करना चाहिए। यह निश्चय करके दैत्यों ने यज्ञ करना बन्द कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके धर्म का बल नष्ट हो गया तथा देवतागण अधिक शक्तिशाली हो गये।

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! कलियुग के अन्त में श्री नारायण का चौबीसवाँ अवतार 'कल्कि' नाम से होगा। उस समय वे धर्म की वृद्धि कर, म्लेच्छों तथा अधर्मियों का नाश करेंगे। इन चौबीसों अवतारों में श्री कृष्णावतार सोलहों कलाओं से पूर्ण हुआ है, शेष अवतारों में लीलामय प्रभु अपने कुछ अंशों से ही अवतरित हुए हैं। संसार में जितने भी ऋषि, मुनि, देवता, मनुष्य, जीवधारी तथा जड़-चेतन हैं, उन सबमें उन्हीं परब्रह्म का प्रकाश समझना चाहिए। वे सभी श्री नारायणजी के अंश से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उन आदिपुरुष के अवतारों की कोई गणना नहीं की जा सकती। वे परमेश्वर अपनी माया से इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करते हैं, परन्तु स्वयं उसके वशीभूत नहीं होते। यही कारण है कि संसारी जीवों के दुःखी होने पर भी उन्हें स्वयं किसी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं होता। उनकी लीला, नाम एवं चरित्रों को कोई नहीं जान सकता। जो मनुष्य सदैव उन्हीं के भजन में लीन रहता है तथा उनके सिवाय अन्य किसी का भरोसा नहीं रखता, वही उन्हें कुछ-कुछ पहिचान सकता है। जो व्यक्ति परमेश्वर को जानने के निमित्त संसारी माया-मोह को सर्वथा त्याग देता है, उसी के शरीर में उन परमप्रभु का प्रकाश प्रकाशित होता है। सम्पूर्ण स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् में वे आदिपुरुष भगवान् अपनी सत्ता से व्याप्त हो रहे हैं। परन्तु इस तत्त्व को केवल तत्त्वज्ञाता ही पहिचान पाते हैं। भगवान् वेदव्यास ने सांसारिक प्राणियों को भवसागर से पार उतारने के लिए श्रीमद्भागवत में सम्पूर्ण वेदों का सार तथा परमेश्वर की लीलाओं का रहस्य भर दिया है। इस कथा को उन्होंने हरद्वार में गंगातट पर, ऋषि-मुनियों के बीच बैठकर अपने पुत्र श्री शुकदेवजी को पढ़ाया था। जिस समय आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र महाराज द्वारका छोड़कर वैकुण्ठलोक को पधारे, उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म का सूर्य डूब जाने के कारण संसार से सम्पूर्ण शुभ कर्म नष्ट हो गया था। उस समय श्री व्यासजी ने इस श्रीमद्भागवत का निर्माण कर, संसार में पुनः धर्मरूपी सूर्य को प्रकट कर दिया। हे ऋषियो! जिस समय श्री व्यासजी ने यह कथा श्री शुकदेवजी को पढ़ाई थी, उस समय मैं भी वहीं उपस्थित था। गुरु की दया एवं कृपा से यह अमृतरूपी कथा मुझे याद हो गई। अब वही कथा मैं आप लोगों को सुना रहा हूँ।"

चौथा अध्याय

व्यासजी का जन्म-वृत्तान्त तथा उनके द्वारा पुराणों एवं महाभारत के निर्माण की कथा

इतनी कथा सुनकर शौनकादिक ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन सबमें वृद्ध ऋग्वेदी ऋषि शौनकजी ने श्री सूतजी से कहा—"हे सूतजी! ईश्वर आपकी आयु बहुत बड़ी करें। आपके द्वारा अवतारों का वर्णन सुनकर हमारा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ है। अब हमारी इच्छा है कि आप हमें श्रीमद्भागवत की वह सम्पूर्ण कथा सुनावें, जिसे श्री व्यासजी द्वारा आपने श्रवण किया है तथा जिसमें भगवान् श्यामसुन्दर की सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन है। इस कथा को परम तपस्वी श्री शुकदेवजी ने किस युग में तथा किस स्थान पर राजा परीक्षित को सुनाया था, यह भी हमें बताने की कृपा करें। इस कालरूपी संसार में मृत्यु का कोई ठिकाना नहीं है, फिर भी राजा परीक्षित को सर्प के काटने का भय क्यों हुआ था? हमें एक बड़ा आश्चर्य यह भी है कि जो शुकदेवजी परम विरक्त होने के कारण किसी भी स्थान पर एक क्षण से अधिक नहीं ठहरते हैं, वे ही राजा परीक्षित के पास कथा सुनाने के लिए सात दिन तक कैसे बने रहे? एवं उन कौपीनधारी तथा विभूति लगाये हुए अवधूत स्वरूप श्री शुकदेवजी को राजा परीक्षित ने किस प्रकार पहिचाना होगा?"

ऋषियों की यह बात सुनकर पौराणिक सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! मेरे गुरु भगवान् वेदव्यासजी ने मुनिश्रेष्ठ पाराशर तथा सत्यवती के संयोग से द्वापर युग के अन्त में यह विचार कर अवतार लिया था कि सत्ययुग में मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष, त्रेतायुग में दस सहस्र वर्ष तथा द्वापर युग में एक सहस्र वर्ष की होती थी और जब तक आयु पूर्ण नहीं हो जाती थी, तब तक मनुष्य मृत्यु को प्राप्त नहीं होता था। परन्तु कलियुग में मनुष्य की आयु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल एक सौ बीस वर्ष ही रह जायेगी तथा उसमें भी पाप-कर्म करने के कारण वे इसके भीतर ही मर जायेंगे। उन्होंने यह भी सोचा था कि अन्य युगों में तो मनुष्य दीर्घायु होने के कारण अपना समय वेदाध्ययन, विद्याध्ययन, यज्ञ, जप, दान आदि शुभ कर्मों में व्यतीत करके मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे, परन्तु कलियुग में अल्पायु होने के कारण न तो वे वेदाध्ययन ही कर पावेंगे और न तपस्या ही कर सकेंगे। उनके पास इतना धन भी नहीं होगा, जो वे यज्ञ-दान आदि करके ही संसार-सागर से पार उतरने का उपाय कर सकें। वे कलियुगी जीव संसारी सुखों में डूबे रहकर, स्त्री एवं धन आदि के मोह में मोहित हो, मोक्ष-पद प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अतः केवल हरि-भजन द्वारा ही उनका उद्धार होना संभव हो सकेगा। यह विचार कर ही भगवान् वेदव्यास ने उन्हें भक्ति का सन्देश देने के निमित्त अवतार लिया। एक दिन श्री वेद-व्यासजी सरस्वती नदी के तीर पर पहुँचकर स्नान तथा ईश्वराराधन के पश्चात् अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि देखो ये कलियुग के प्राणी कैसे प्रारब्धहीन तथा मूढ़ हैं, जो सत्सङ्ग द्वारा ईश्वर को पहिचानने का प्रयत्न भी नहीं करते हैं। ज्ञान की बातें सुनकर भी ये उसके अनुसार आचरण नहीं करते। आलस्य में इस प्रकार भरे हुए हैं कि सांसारिक तृष्णा को किसी तरह छोड़ नहीं पाते हैं। अतः मुझे इनके उद्धार का कोई उपाय करना चाहिए। यह विचार कर मेरे गुरु ने वेद के ऋग, यजुः, साम और अथर्व ये चार विभाग कर दिए। ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि अल्पायु होने के कारण कलियुग के मनुष्य यदि सम्पूर्ण वेद को न पढ़ सकें तो वे किसी एक भाग को भली भाँति तो भी पढ़ लेंगे। जब व्यासजी ने चारों वेदों का विभाजन कर दिया तब उन्हें यह ध्यान आया कि शूद्र तथा स्त्री को तो वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं है। इस विचार के आने पर उन्होंने चारों वेदों का सार निकालकर महाभारत तथा सत्रह पुराणों की रचना की। ऐसा इसलिए किया गया ताकि इन्हें पढ़कर तथा सुनकर सभी छोटे-बड़े मनुष्य, शूद्र, स्त्री आदि भी भवसागर से पार उतर सकें। ऋग्वेद का पाठ करनेवाले 'पैल' ऋषि, सामवेद का का पाठ करनेवाले 'जैमिनि' ऋषि, यजुर्वेद का पाठ करनेवाले 'वैशम्पायन' तथा अथर्ववेद का पाठ करनेवाले 'अङ्गिरा' ऋषि हुए। मेरे पिता 'रोमहर्षण' ने महाभारत पुराण को पढ़ा। इन ऋषीश्वरों ने अपने शिष्यों को जो वेद पढ़ाये, उन्हें वेदों की शाखा समझना चाहिए। महाभारत पुराण एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाख श्लोकों का है। उसे सुनने तथा पढ़ने से परम पुण्य की प्राप्ति होती है। वेदों का विभाजन करने तथा महाभारत एवं सत्रह पुराणों का निर्माण करने के बाद भी श्री व्यासजी को अपने हृदय में किसी प्रकार का अभाव खटकने लगा। वे विचार करने लगे कि इतने ग्रंथों का निर्माण करने के पश्चात् भी मेरी आत्मा को शान्ति क्यों नहीं प्राप्त हुई है? अब मैं ऐसा कौन-सा कार्य करूँ, जिससे मेरे मन को धैर्य हो? इस प्रकार सरस्वती नदी के तट पर बैठे हुए श्री व्यासजी जिस समय चिन्तित हो रहे थे, उसी समय देवर्षि नारदजी वीणा बजाते, हरिगुण गाते हुए वहाँ आ पहुँचे। श्री व्यासजी ने उन्हें देखते ही अत्यन्त आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात् सुन्दर आसन पर बैठाकर पाद्य, अर्घ्य आदि से उनका पूजन किया।

पाँचवाँ अध्याय

नारदजी द्वारा श्री व्यासजी को महापुराण के निर्माण की सलाह तथा अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन

व्यासजी को चिन्तित देखकर नारदमुनि ने कहा—"हे व्यासजी! जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी कठिन कार्य के आ पड़ने पर, उसे न कर सकने के कारण व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार आप भी चिन्तित से क्यों दिखलाई दे रहे हैं? आपने वेदों का विभाजन कर, महाभारत तथा सत्रह पुराणों का निमाण किया है, फिर भी आपको बोध क्यों नहीं हुआ? आप मुझे अपनी उदासी का कारण बतलाने की कृपा करें।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर व्यासजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे देवर्षि! आप अन्तर्यामी एवं तत्त्वज्ञानी हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप हरि-भक्त तथा परम प्रवीण हैं, अतः कृपाकर आप मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त हो। इतने सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण करने के बाद भी, न जाने क्या न्यूनता रह गई है, जो अभी तक मेरी आत्मा को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी है। अब स्वयं ही इसका कारण बताने की कृपा करें।"

नारदजी बोले—"हे व्यासजी! जिस प्रकार आपने महाभारत तथा सत्रह पुराणों में परमप्रभु परमेश्वर के गुणानुवादों का संक्षिप्त वर्णन कर, यज्ञ, तप, तीर्थ, दान, व्रत, नियम, युद्ध, देवता तथा संसारी मनुष्यों पर विस्तारपूर्वक लिखा है, उसी प्रकार आपने श्री नारायणजी के चरित्र, लीला, गुण एवं यश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ओतप्रोत किसी परमश्रेष्ठ पुराण का निर्माण नहीं किया है। भगवद्भक्ति के बिना समस्त शास्त्र अपूर्ण हैं। यही कारण है जो आपके चित्त को अभी तक सन्तोष की प्राप्ति नहीं हुई है। परमेश्वर की लीला के अतिरिक्त अन्य पुराणों के पढ़ने-सुनने में परिश्रम अधिक होता है और उसका फल अस्थिर तथा थोड़ा मिलता है। उस फल के कारण सुख की प्राप्ति थोड़े ही दिनों तक होती है तथा प्राणी को बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है। इसके विपरीत श्री नारायणजी के कथा-कीर्तन में चित्त लग जाने पर चित्त को जो फल तथा सुख प्राप्त होता है, वह अनश्वर तथा नित्य होता है। जो संसारी लोग अनेक प्रकार के भय एवं कष्टों से पीड़ित हैं, वे वज्ररूपी हरि-कथा के श्रवण एवं पठन-पाठन से भय से छूट जाते हैं। इसलिए जिस पुराण अथवा कीर्तन में श्री नारायण प्रभु की लीला का विस्तृत वर्णन हो, उसी को सर्वोत्तम समझना चाहिए। जिस प्रकार अनुकूल पवन चलने से नौका अपने लक्ष्य-स्थान पर शीघ्र पहुँच जाती है, उसी प्रकार हरि-भजन एवं कीर्तन द्वारा सांसारिक प्राणी संसार में रहकर मनवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् भवसागर से पार उतर जाते हैं। श्री हरिचरणों में ध्यान लगाने से जैसा सुख प्राप्त होता है, वैसे सुख की प्राप्ति इन्द्र तथा कुवेर आदि देवताओं को भी नहीं होती। अतएव मनुष्यों को उचित है कि वे अपने मन में सन्तोष धारण कर, प्रयोजन-रहित हो, श्री परमेश्वर का भजन तथा स्मरण करते रहें। अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण ही प्राणी को संसार-दुःख उठाना पड़ता है। वही दुःख हरि-भजन करते समय शूली के काँटे के समान हृदय में चुभता रहता है। जो लोग अपने हृदय में श्री हरिचरणों का ध्यान रखते हैं, उन्हें वह काँटा फिर पीड़ा नहीं पहुँचा सकता। वे संसारी माया से छूट जाते हैं और उन्हें यज्ञ, तप, व्रत तथा दान आदि करने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती है। जो लोग यज्ञ, तप, व्रत तथा तीर्थ तो करते हैं, परन्तु अपने हृदय में हरिभक्ति को धारण नहीं करते; वे आवागमन से कभी नहीं छूट पाते हैं। वे अपने शुभ कर्मों द्वारा प्राप्त फल से कुछ दिनों तक सुख भोगने के उपरान्त फिर इसी संसार में जन्म लेते हैं।"

नारदजी ने कहा—"हे व्यासजी! आपने वेद तथा पुराणों में कुछ बातें इस प्रकार से लिखी हैं, जिनका अर्थ संसारी मूर्ख प्राणी अपनी दृष्टि में और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का और समझने लगेंगे। जैसे आपने पितरों का श्राद्ध मांस से करने के लिए लिखा है, उसके आधार पर मांसाहारी लोग, आपके वचनों को प्रमाण मानकर, मांस-भक्षण करना भी आरम्भ कर देंगे। वे यह स्वीकार नहीं करेंगे कि आपका अभिप्राय मांस से केवल यज्ञ तथा श्राद्ध करने का ही है। इस प्रकार की बातों को साधु तथा तपस्वी जन कभी श्रेष्ठ नहीं मानेंगे। जो लोग हंस के समान परमेश्वर के भक्त रहकर, हरि-भजन, हरि-कीर्तन तथा हरि-स्मरण के अतिरिक्त अन्य बातों को नहीं चाहते, उन्हें भी आपकी ऐसी बातें अच्छी नहीं लगेंगी। जिस प्रकार हंस मानसरोवर के किनारे रहकर मोती के दाने चुगते हैं तथा कौआ अशुद्ध स्थानों पर बैठकर विष्ठा आदि अशुद्ध वस्तुएँ खाता है और अपनी बोली के अभिमान में किसी दूसरे पक्षी को अपने समान नहीं समझता; परन्तु हंस उसकी बोली को प्रिय अनुभव नहीं करते। उसी प्रकार जो हंस के समान साधु और वैष्णव जन केवल परमेश्वर के गुणानुवाद एवं चरित्रों को सुनना चाहते हैं, उन्हें भगवान् श्यामसुन्दर की स्तुति एवं लीलाओं से रहित आपके पुराण कदापि प्रिय नहीं होंगे। काकरूपी मनुष्य ही उन बातों को सुनना अधिक पसन्द करते हैं—जिनमें संसारी केलि-क्रीड़ा तथा सुख भरा हुआ होता है। हे व्यासजी! यही कारण है, जो आपके हृदय को सन्तोष प्राप्त नहीं हो रहा है। अब आपको चाहिए कि आप किसी ऐसे पुराण का निर्माण करें, जिसमें परमेश्वर की सम्पूर्ण लीलाओं एवं गुणानुवादों का वर्णन हो तथा जिसके पढ़ने-सुनने से मनुष्यों को पुण्य प्राप्त होकर, मृत्यु के पश्चात् मुक्तपदवी का लाभ हो। ऐसा करने पर ही आपके हृदय को सन्तोष एवं आनन्द की प्राप्ति होगी।"

इतना कहने के उपरान्त नारदजी फिर बोले—"हे व्यासजी! यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो मैं आपसे अपने पूर्व जन्म की कथा कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनें। पूर्वकल्प में मैं एक दासी का पुत्र था। मेरी माता एक वेदज्ञाता ब्राह्मण की सेवा-शुश्रूषा किया करती थी। वह ब्राह्मण साधु एवं सन्तों की सेवा किया करता था। एक समय बरसात के दिनों में उस ब्राह्मण के घर अनेक साधु-महात्मा जन आकर ठहरे। उस ब्राह्मण ने मेरी माता को उनकी सेवा करने के लिये नियुक्त कर दिया। मैं भी बालक होने के कारण अपनी माता के साथ आठों प्रहर उन साधुओं के समीप रहता था। जिस समय वे साधु लोग परस्पर बैठकर परमेश्वर की कथा, कीर्तन एवं गुणा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नुवादों का वर्णन करते थे, उस समय मैं भी उनके पास बैठा-बैठा उन सब बातों को सुनता रहता था। मुझ अज्ञान बालक को उनकी बातें बहुत प्यारी लगती थीं। साधु लोग भी भोजन करने के पश्चात् जो जूठन बचती थी, उसे अपने हाथ से मुझे दे दिया करते थे। मैं उसे बड़े प्रेम से खाता था। चातुर्मास्य बीतने के पश्चात् जब वे लोग जाने लगे, उस समय मैं भी उनके साथ जाने की इच्छा से रोने लगा। तब उन्होंने मेरे ऊपर कृपा करके मुझे दिव्य ज्ञान का उपदेश देते हुए यह कहा कि हम तुझे एक मन्त्र बताये देते हैं। तू उसी को जपा कर। उस मन्त्र के जपने से तुझे आत्मतत्त्व का बोध होगा। ऐसा कहकर उन्होंने मुझे द्वादश अक्षर के मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का उपदेश दिया। तत्पश्चात् वे अपने स्थान को चले गये। मैं उन महात्माओं के आज्ञानुसार उस मन्त्र का जप करता हुआ भगवान् श्री कृष्णचन्द्र, श्री बलरामजी, श्री प्रद्युम्न तथा श्री अनिरुद्ध के चरणकमलों का ध्यान करने लगा। उन साधुओं का उच्छिष्ट भोजन खाने तथा उस मन्त्र के जपने का प्रताप यह हुआ कि मेरे हृदय में ज्ञान उत्पन्न हो गया। तब मैंने वन में जाकर हरि-भजन करने का विचार किया। परन्तु मेरी माता मुझ पर अत्यन्त स्नेह रखती थी तथा क्षणभर के लिए भी मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती थी, इस कारण मैं उसे अकेली छोड़कर कहीं न जा सका। उसी समय अचानक परमेश्वर की यह कृपा हुई कि एक दिन सन्ध्या समय जब मेरी माता ब्राह्मण के लिये गौ का दूध दुहने को जा रही थी, उसी समय एक साँप ने उसे काट लिया। तब उसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। जिस समय अन्य बालकों ने मेरी माता की मृत्यु का समाचार मुझे सुनाया, उस समय मैंने अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर यह विचार किया कि देखो, परमेश्वर की लीला भी कैसी अद्भुत है, जो उसने इस प्रकार मुझे संसारी माया-जाल से अचानक ही छुड़ा दिया है। उस समय मेरी अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी। माता की मृत्यु के पश्चात् मैं उत्तर दिशा की ओर वन को चल दिया तथा अनेक नदी, नाले एवं पर्वतों को नाँघता हुआ एक घने वन में जा पहुँचा। वहाँ बहुत से सिंह, भालू, हाथी आदि हिंसक पशु मुझे दिखाई दिए, परन्तु ईश्वर की कृपा के भरोसे पर मुझे किसी का भय नहीं हुआ। मेरा ध्यान श्रीहरि के चरणों में लगा हुआ था; अतः मुझे किसी प्रकार की भूख-प्यास भी नहीं लगी। जब मैं उस वन में बहुत दूर एक निर्जन स्थान में पहुँचा तो मुझे वहाँ नदी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के तट पर एक पीपल का वृक्ष दिखाई दिया। मैं उसी वृक्ष के नीचे बैठकर श्री परम प्रभु का ध्यान करने लगा। उस ध्यानावस्था में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान् श्यामसुन्दर अपना चतुर्भुजी रूप धारण किये हुए, हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये मस्तक पर किरीट-मुकुट तथा कानों में कुण्डल पहिने, घुँघराले बाल, तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुस्कान तथा अपने मुख के प्रकाश से करोड़ों सूर्यों को भी लज्जित करते हुये, मुझे अपना दर्शन दे रहे हैं। उस सुन्दर स्वरूप को देखते ही मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न हो गया तथा यही इच्छा होने लगी कि मैं इस परम मनोहर रूप को निरन्तर देखता रहूँ। परन्तु कुछ देर पश्चात् जब वह स्वरूप मेरे ध्यान से लुप्त हो गया, उस समय मेरे हृदय को बड़ी पीड़ा हुई और मैं अत्यन्त व्याकुल होकर उस निर्जन वन में विलाप करने लगा। हे व्यासजी! उस समय मेरी अवस्था को देखकर यह आकाशवाणी हुई, "हे नारद! तू चिन्ता को छोड़कर, मेरे भजन में लीन रह। तेरे मन में अधिक प्रीति उत्पन्न करने के लिये मैंने तुझे एक बार अपना दर्शन दिया है। अब तू दूसरे जन्म में फिर मेरा दर्शन पावेगा। तू मेरे निकट के भक्तों में रहेगा तथा मेरी कृपा से तुझे अपने समस्त पूर्व जन्मों का वृत्तान्त भी याद रहेगा।"

छठवाँ अध्याय

नारदजी द्वारा अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त वर्णन

नारदजी बोले—"हे व्यासजी! आकाशवाणी होने के पश्चात् किसी एक अदृश्य शक्ति ने मुझे एक वीणा की भेंट दी। उस वीणा को लेकर मैं श्री भगवन्नाम का कीर्तन करने लगा। जिस समय मैं श्रीहरि-कीर्तन में लवलीन होकर आत्मविभोर हो जाता था, उस समय अपने मन में इस प्रकार सोचा करता था कि श्री नारायणजी ने मुझे दूसरे जन्म में अपना दर्शन देने के लिए कहा है। अब वह शुभ समय कब आयेगा, जब मेरा यह शरीर छूटेगा तथा मैं दूसरा जन्म धारण कर उन अविनाशी प्रभु के मनोहर दर्शन प्राप्त करूँगा? इसी प्रकार इच्छा करते-करते एक समय मेरा शरीरान्त हो गया। उस पंचभौतिक शरीर से पृथक् होने के पश्चात् मैं श्रीहरि का पार्षद हुआ। कल्पान्त में जब श्री नारायणजी प्रलय के जल में शेष-शय्या पर शयन करने लगे तथा उनके हृदय में शयन करने की इच्छा से श्री ब्रह्माजी सम्पूर्ण विश्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को समेटकर, उनके भीतर प्रवेश करने लगे, उस समय मैं भी उनकी श्वास के ही साथ श्री नारायणजी के हृदय-देश में प्रवेश कर गया। एक सहस्र चतुर्युगी समाप्त होने पर ब्रह्माजी ने अपनी निद्रा त्याग कर जब पुनः सृष्टि-रचना का कार्य प्रारम्भ किया, उस समय उनके अँगूठे द्वारा मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदि ऋषियों के साथ ही साथ मेरा भी जन्म हुआ। हे व्यासजी! इस प्रकार त्रिभुवनपति की कृपा के कारण मैं पितामह ब्रह्माजी का पुत्र कहलाया तथा मुझे अपने पूर्व जन्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त याद बना रहा। मैं वैकुण्ठनाथ के दर्शनों की अभिलाषा के कारण संसारी माया-मोह तथा गृहस्थी के बन्धन में नहीं पड़ा; तथा दिन-रात केवल श्रीहरि का भजन ही करता रहा। अब उस हरि-कीर्तन का यह प्रभाव है कि जिस समय मैं श्री श्यामसुन्दर का स्मरण करता हूँ, उसी समय वे परम प्रभु मुझे इस प्रकार दर्शन देते हैं, जैसे किसी का निमन्त्रित किया हुआ अतिथि अचानक आ जाता हो। इस प्रकार मैं जहाँ भी चाहता हूँ, वहीं अपने मनमोहन की त्रिभङ्गी छवि के दर्शन प्राप्त कर लेता हूँ। उस भजन के प्रताप से तीनों लोकों में सर्वत्र मेरी गति है। मैं जहाँ भी चाहता हूँ, वहाँ क्षणभर में पहुँच जाता हूँ। मेरे लिए कहीं भी, किसी भी प्रकार की रोक-टोक नहीं है। अतः हे व्यासजी! आप भी उन परब्रह्म परमेश्वर की लीला तथा गुणों का वर्णन कीजिए, जिससे आपको भी उन श्री श्यामसुन्दर के श्रीचरणों के दर्शनों का लाभ प्राप्त हो सके तथा आपका हृदय उनके चरण-कमलों को छोड़कर किसी दूसरी ओर न जावे।"

सातवाँ अध्याय

श्री नारदजी द्वारा व्यासजी से चारों श्लोकों का वर्णन तथा श्री व्यासजी द्वारा बदरिकाश्रम में जाकर तप करना एवं श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण करना

श्री सूतजी बोले—"हे शौनकादि ऋषियो! अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् नारदजी ने वेदव्यासजी से कहा—"हे व्यासजी! पितामह ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी से चार श्लोकों को सुना था। उन्हीं चार श्लोकों को उन्होंने मुझे सुनाया। अब मैं उन श्लोकों को आपको बताता हूँ। आप उन श्लोकों की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। श्री परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का ज्ञान मनुष्य-तन पाकर ही प्राप्त होता है, क्योंकि पशु-पक्षी आदि जीव खाने-पीने तथा भोग करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानते। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भवसागर से पार उतर गया, उसी का जन्म लेना सफल है। जो प्राणी इस शरीर को पाकर श्री नारायणजी का स्मरण तथा ध्यान नहीं करता, वह चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर अत्यन्त दुःख प्राप्त करता है।" यह कहकर श्री नारदजी ने श्री वेदव्यासजी को उन चार श्लोकों का अर्थ भली भाँति समझाया। तदुपरान्त कहा—"हे व्यासजी! आपको चाहिए कि सर्वप्रथम आप परब्रह्म परमेश्वर के चरणों का ध्यान धरें, जिससे आपका अन्तःकरण पवित्र हो जाय तथा आपके हृदय में भगवान् वैकुण्ठनाथ का चमत्कार निवास करे। इसके पश्चात् आप श्री नारायणजी के गुणानुवाद, स्तुति एवं चरित्रों का वर्णन करें।" इतना कहकर श्री नारदजी वेदव्यासजी से बिदा लेकर चल दिए।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! देवर्षि नारदजी परम धन्य हैं, जिन्होंने संसारी जीवों के कल्याण के निमित्त मेरे गुरु श्री वेदव्यासजी को इस प्रकार उपदेश दिया था। अस्तु, श्री नारदजी की शिक्षा सुनकर श्री व्यासजी सरस्वती नदी में स्नान करने के पश्चात् बदरिकाश्रम में जा पहुँचे। वहाँ जाकर वे श्री नारायणजी के ध्यान में लवलीन हो गये तथा मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि मैं अज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार से उन परब्रह्म परमेश्वर की लीलाओं का वर्णन कर सकूँगा। जिस समय व्यासजी इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, उसी समय उनके हृदय में आदिज्योति का एक प्रकाश चमका; तब श्री व्यासजी ने श्री नारायणजी की कृपा से स्तुति करने की सामर्थ्य पाकर, उन चार श्लोकों को, जिन्हें श्री नारदजी से सुना था, विस्तारपूर्वक लिखना आरम्भ कर दिया। तदनन्तर ग्रन्थ समाप्त होने पर उसका नाम श्रीमद्भागवत महापुराण रखकर, उसे अपने पुत्र श्री शुकदेवजी को पढ़ाया। श्री शुकदेवजी ने उस कथा को राजा परीक्षित को सुनाया, जिसके पढ़ने तथा सुनने से संसारी माया छूट जाती है।"

श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहते हैं—"हे राजन्! कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी दल के एकत्रित होने पर कौरव-पाण्डवों में अठारह दिन तक घोर युद्ध हुआ था। उस युद्ध में बहुत-से-शूरवीर तथा हाथी-घोड़े मारे गये थे। भीमसेन ने अपनी गदा द्वारा धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को मारने के उपरान्त दुर्योधन की जाँघ तोड़कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया था। महाभारत होने से पहिले जिस समय राजा दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर-सहित सब पाण्डवों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा उनकी स्त्री द्रौपदी को छल द्वारा जुए में जीत लिया था, उस समय उसने दुःशासन द्वारा द्रौपदी को बाल खींचते हुए भरी सभा में बुलवाया था तथा उसे नंगी करने एवं अपनी जाँघ पर बैठाने की आज्ञा दी थी, उस समय भीमसेन ने उस अनाचार को देखकर यह प्रतिज्ञा की थी कि भगवान् श्याम-सुन्दर की कृपा से मैं एक दिन इस नीच दुर्योधन की जाँघ तोड़ डालूँगा। अतः महाभारत के युद्ध में श्री कृष्णचन्द्र की कृपा से भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। जिस समय पैर टूट जाने के कारण दुर्योधन घायल होकर रणभूमि में अकेला पड़ा हुआ था, उस समय द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने उसके पास आकर यह कहा—"हे दुर्योधन! हम-तुम बचपन में साथ-साथ खेले हैं। आज तुम्हें शत्रुओं ने जो यह दिन दिखलाया है इसे देखकर मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची है। अब तुम मुझे जो आज्ञा दो, वही कार्य मैं शत्रुओं के प्रति करूँ।" यह सुनकर दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा—"हे भाई! मुझे अपनी जाँघ टूटने, भाइयों तथा पुत्रों के मारे जाने एवं सेनापतियों के वीर-गति को प्राप्त होने का उतना दुःख नहीं है, जितना कि पाण्डवों के जीतने तथा राज्य प्राप्त करने का है। फिर तुम्हारे रहते हुए भी मेरे शत्रु पाण्डव राज्य करें, यह अत्यन्त ही शोचनीय है।" दुर्योधन की यह बात सुनकर अश्वत्थामा ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो मैं आज रात को सोते हुए पाँचों पाण्डवों के मस्तक काटकर तुम्हारे पास लाये देता हूँ। यद्यपि सोते हुए शत्रु को मारना पाप है, फिर भी तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं ऐसा कार्य करने के लिए भी सहर्ष प्रस्तुत हूँ।" दुर्योधन ने कहा—"यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं तुम्हारा बहुत आभारी रहूँगा।" यह सुनकर अश्वत्थामा पाँचों पाण्डवों के मस्तक काट लाने के लिए वहाँ से चल दिया।

जिस समय अश्वत्थामा ने पाण्डवों के मस्तक काटने का विचार किया था, उसी समय अन्तर्यामी भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने उसकी मनोभिलाषा जान ली थी। अतः उन्होंने सन्ध्या के समय पाण्डवों को यह सलाह दी कि तुम लोग आज रात को सरस्वती नदी के किनारे किसी दूसरे डेरे में सो जाओ। पाण्डवों ने उनकी आज्ञा का पालन किया और वे दूसरे डेरे में जाकर सो गये। इधर अश्वत्थामा ने सबसे पहिले कृपाचार्य के पास पहुँचकर इस कार्य के बारे में उनकी सम्मति ली। कृपाचार्य ने उसे इस कार्य को अत्यन्त जघन्य, पापमय तथा निन्द-नीय बताते हुए ऐसा अधर्म न करने की सलाह दी; परन्तु उसने शिवजी के द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त वरदान के घमण्ड में आकर उनका कहना नहीं माना तथा एक प्रहर रात शेष रहने पर कृत्या को साथ ले पाण्डवों के शिविर में जा पहुँचा। वहाँ उसने उस वरदान के प्रताप से रुद्रस्तोत्र का पाठ करके सेना में चारों ओर आग लगा दी तथा पाण्डवों के डेरे में घुसकर, पाण्डवों के धोखे में, वहाँ सोये हुए द्रोपदी के पाँचों पुत्रों का मस्तक काट लिया। तत्पश्चात् प्रातः-काल होने पर वह उन कटे हुए मस्तकों को लेकर राजा दुर्योधन के पास जा पहुँचा तथा उसे उन मस्तकों को देते हुए बोला—"हे राजन्! मैं पाँचों पाण्डवों के मस्तक काट लाया हूँ।" अश्वत्थामा की बात सुनकर दुर्योधन को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदनन्तर वह उन कटे हुए मस्तकों में से एक-एक मस्तक को अपने हाथ में लेकर दबाने लगा। जिस समय अश्वत्थामा ने एक कटे हुए मस्तक को भीमसेन का मस्तक बतलाकर दुर्योधन के हाथ में दिया; उस समय उस मस्तक को दबाने पर दुर्योधन को यह विदित हुआ कि वह मस्तक भीमसेन का मस्तक नहीं है। अतः उसने अश्वत्थामा से कहा—"हे अश्वत्थामा! भीमसेन का मस्तक ऐसा नहीं है, जो मेरे दबाने से टूट जावे। अतः मुझे यह प्रतीत होता है कि तू पाण्डवों के धोखे में, पाण्डवों के ही समान आकृतिवाले द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के मस्तक काट लाया है। तूने व्यर्थ ही इन बालकों का वध करके मेरे वंश को नष्ट किया है।" यह बात कहकर दुर्योधन पहिले हर्ष होने के उपरान्त शीघ्र ही विषाद को प्राप्त हो गया। दुर्योधन की जन्म-पत्री में ऐसे ग्रह पड़े थे कि जिस समय वह हर्ष के उपरान्त विषाद को प्राप्त होगा, तभी उसकी मृत्यु हो सकेगी, सो उस समय यही स्थिति आ जाने से वहीं पर दुर्योधन की मृत्यु हो गई।

सूतजी कहते हैं—"हे ऋषियो! दुर्योधन की मृत्यु देखकर अश्वत्थामा अर्जुन तथा श्री कृष्णचन्द्रजी के भय से अपने प्राण लेकर वहाँ से इस प्रकार भाग खड़ा हुआ, जिस प्रकार कि भगवान् शिवशंकर के भय से भयभीत होकर सूर्य देवता भागे थे। यह कथा विष्णुपुराण में इस प्रकार लिखी है कि एक बार शिवजी ने सुमाली नामक दैत्य की तपस्या पर प्रसन्न होकर, उसे एक अत्यन्त तेजोमय रथ प्रदान किया था। वह रथ ऐसा वेगवान् तथा प्रकाशपूर्ण था कि सूर्य नारायण जिस स्थान पर रात करते थे, उसी स्थान पर पहुँचकर सुमाली दैत्य अपने उस रथ के प्रताप से पुनः प्रकाश फैला दिया करता था। सूर्य-नारायण ने जब यह हाल देखा तो अत्यन्त क्रोध करके उस दैत्य को मार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गिराया। उस स्थिति में सुमाली भगवान् शिवशंकर की शरण में पहुँचकर विलाप करने लगा। शिवजी ने वह करुणा पुकार सुनकर उसे साथ लेकर सूर्यनारायण का पीछा किया। शिवजी को आते देखकर जब सूर्य देवता भयभीत हो भागने लगे, उस समय श्री शिवजी ने अपना त्रिशूल मारकर सूर्य का रथ काशीजी में गिरा दिया। तभी से उस स्थान पर 'लोलार्क' तीर्थ प्रकट हुआ; अस्तु।

जब द्रौपदी ने अपने पुत्रों के मस्तक कटने का समाचार सुना, तब उसने अत्यन्त बिलाप करते हुए यह सौगन्द खाई कि जब तक अश्वत्थामा मारा नहीं जायेगा, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी। राजा युधिष्ठिर तथा अर्जुन आदि पाँचों भाइयों ने भी जब इस समाचार को सुना तो वे भी अत्यन्त दुःखी हुए। उस समय द्रौपदी ने अर्जुन से इस प्रकार कहा—"हे आर्य! मैंने यह शपथ आप ही के भरोसे पर खाई है, अतः आप अश्वत्थामा की मृत्यु अपने अधीन समझें तथा जो उचित जानें, वह कार्य करें।" द्रौपदी की बात सुनकर अर्जुन ने उत्तर दिया—"हे द्रौपदी! तुम धैर्य धारण करो। मैं अश्वत्थामा का मस्तक काटकर अभी तुम्हारे पास लाये देता हूँ। तुम उसके मस्तक पर खड़ी होकर स्नान करना और मेरे हृदय का दाह भी तभी समाप्त होगा।" इस प्रकार द्रौपदी को धैर्य प्रदान कर, अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष उठा लिया तथा श्री कृष्णजी से यह प्रार्थना की कि हे वासुदेव! आप मेरे रथ को शीघ्रतापूर्वक अश्वत्थामा के निकट पहुँचाइये। अर्जुन की बात सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने रथ को ऐसे वेग से हाँका कि वह बात की बात में अश्वत्थामा के समीप जा पहुँचा। उस समय अर्जुन तथा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को आते देखकर अश्वत्थामा ने अपने प्राणों की रक्षा करने के निमित्त, पितामह ब्रह्माजी से प्राप्त ब्रह्मास्त्र को अपने धनुष पर चढ़ाकर अर्जुन को लक्ष्य कर, छोड़ दिया। जिस समय वह ब्रह्मास्त्र दसों दिशाओं को अपनी अग्नि से प्रज्वलित करता हुआ अर्जुन की ओर बढ़ा, उस समय कुन्तीनन्दन अर्जुन ने श्री वासुदेवजी से पूछा—"हे श्यामसुन्दर! यह कैसी प्रबल अग्नि है, जो मेरी ओर "झपटती हुई चली आ रही है?" श्री कृष्णचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"हे पार्थ! यह अश्वत्थामा का चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। इस समय तुम भी उसके ऊपर अपने ब्रह्मास्त्र का प्रहार करो। इसका फल यह होगा कि दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर टकरा जायेंगे और यह अग्नि तुम्हारे पास तक नहीं आ पायेगी। इसके अतिरिक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक बात और भी ध्यान रखने की है कि अश्वत्थामा अपने छोड़े हुए अस्त्र को वापिस बुलाने की सामर्थ्य नहीं रखता है, जब कि तुम ब्रह्मास्त्र को चलाकर फिर उसे लौटाने का मन्त्र भी जानते हो; इसलिए संशयरहित होकर तुम अपने अस्त्र का प्रयोग करो।" श्री श्यामसुन्दर की बात सुनकर अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मास्त्र चला दिया। उस समय दोनों अस्त्र एक दूसरे के समीप जाकर आपस में गुँथ गये। अर्जुन का ब्रह्मास्त्र अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को आगे नहीं बढ़ने देता था; इस कारण अर्जुन पूर्ण रूप से सुरक्षित बने रहे। कुछ देर तक जब यह अस्त्र-युद्ध होता रहा, उस समय श्री श्यामसुन्दरजी ने अर्जुन को पुकार कर फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे पार्थ! तुम शीघ्रता-पूर्वक मन्त्र पढ़कर दोनों अस्त्रों को अपने पास बुला लो, अन्यथा इनकी अग्नि से सारा संसार भस्म हो जायेगा।" आनन्दकन्द श्री व्रजचन्द की यह आज्ञा पाते ही अर्जुन ने दोनों ब्रह्मास्त्रों को मन्त्र पढ़कर अपने पास बुला लिया। तत्पश्चात् अपना रथ आगे बढ़ाकर अश्वत्थामा को पकड़ लिया। जिस समय अर्जुन ने अश्वत्थामा को पकड़ा, उस समय उनके हृदय में यह विचार आने लगे कि यह अश्वत्थामा ब्राह्मण तथा हमारे गुरु का बेटा है, अतः इसे मारना नहीं चाहिए। इस प्रकार मन में दया तथा धर्म के उत्पन्न होने पर अर्जुन ने अश्वत्थामा का मस्तक नहीं काटा। यह देखकर श्री कृष्ण-चन्द्रजी ने धर्म की परीक्षा लेने के विचार से अर्जुन से कहा—"हे अर्जुन! अश्वत्थामा ने सोते हुए बालकों के मस्तक काटे हैं, इससिए यह धर्मच्युत तथा आततायी है। इसके अतिरिक्त तुमने इसका मस्तक काटने की प्रतिज्ञा भी की है, अतः तुम द्रौपदी के हृदय को सन्तोष प्रदान करने के लिए इसे शीघ्रतापूर्वक मार डालो।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियों! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के यह बचन सुन-कर अर्जुन ने कहा—"हे महाराज! आपका कथन सत्य है परन्तु ब्राह्मण को मारना अधर्म कहा गया है, अतः मैं इसका यहाँ पर वध न करके इसे द्रौपदी के पास लिए चलता हूँ। वहाँ पर वह जैसा कहेगी, वैसा किया जायगा।" अर्जुन की इस बात को श्री कृष्णचन्द्रजी ने स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त अर्जुन अश्वत्थामा के हाथ-पैर बाँधकर उसे दौपदी के समीप ले पहुँचे। हरिभक्ता द्रौपदी ने जब अश्वत्थामा की यह दशा देखी तो वह दयार्द्र होकर विलाप करने लगी। उसने श्री कृष्णजी की बहुत प्रकार से स्तुति करने के पश्चात् अर्जुन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से कहा–"हे स्वामी ! आपने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी। अब इस ब्राह्मण को मारने से मरे हुए बालक तो जीवित होंगे ही नहीं इसलिए आप अश्वत्थामा को मुक्त कर दें। यह अपने कर्मों का दण्ड ईश्वर से प्राप्त करेगा। जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों के लिए शोक कर रही हूँ, उसी प्रकार इसके मरने पर इसकी माता 'कृपी' भी अपने पुत्र की मृत्यु के कारण अत्यन्त दुःख प्राप्त करेगी। इस कारण भी इसका मारना उचित नहीं है। एक बात यह भी है कि आपने इसके पिता द्वारा धनुर्विद्या को प्राप्त किया है, अतएव यह भी आपका पूजनीय है। इन सब कारणों पर विचार करके आप इसे मुक्त कर दीजिए।"

द्रौपदी की यह बात सुनते ही राजा युधिष्ठिर, नकुल तथा सहदेव ने भी उस समय प्रसन्न होकर यह कहा कि द्रौपदी का कथन सत्य है। अश्वत्थामा को मारने से ब्रह्महत्या के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होगा। अतएव इसे छोड़ ही देना चाहिए। परन्तु भीमसेन को इन लोगों की बात अच्छी नहीं लगी। वे अपनी गदा को पृथ्वी पर पटकते हुए, अर्जुन से बोले–"हे भाई ! तुमने अश्वत्थामा का मस्तक काटने की प्रतिज्ञा की थी, अतएव तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं करनी चाहिए। तुम जो यह समझते हो कि इसे मारने से ब्रह्महत्या का पाप लगेगा, सो उस सम्बन्ध में मेरा यह कथन है कि सोते हुए बालकों के मस्तक काटने के कारण अब अश्वत्थामा में ब्रह्म अंश नहीं रहा है। धर्मशास्त्रों में लिखा है कि जो व्यक्ति शरण में आए हुए, सोते हुए बालक अथवा स्त्री का वध करता है तथा मतवाले, पागल, हरिभक्त एवं परमहंस को दुःख देता है, उसे आततायी समझकर मारना तथा दण्ड देना राजाओं का धर्म है; अतः ऐसे व्यक्ति को मारने का कोई पाप नहीं लगता है। आततायी छः प्रकार के कहे गये हैं। पहला वह–जो आग लगावे, दूसरा वह–जो विष दे, तीसरा वह–जो गुरु की आज्ञा न माने, चौथा वह–जो ब्राह्मण होकर अधर्म करे, पाँचवाँ वह जो द्विजाति में जन्म लेकर मदिरा पान करे तथा छठवाँ वह–जो अन्य प्राणियों को मारकर अपने कुटुम्ब का पालन करे। ऐसे आततायियों को अवश्य मारना ही धर्म है। इस कारण तुम्हें भी अश्वत्थामा को दण्ड अवश्य देना चाहिए।" भीमसेन की यह बात सुनकर अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा–"हे महाराज ! अब मुझे क्या करना चाहिए ?" तब श्री कृष्णजी ने इस प्रकार उत्तर दिया–"हे अर्जुन ! तुमने जो प्रण किया है उसका तथा भीमसेन के कथन, द्रौपदी के आग्रह, युधिष्ठिर की आज्ञा एवं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदशास्त्रों के वचन का ध्यान रखते हुए कोई ऐसा उपाय करो, जिससे सबको प्रसन्नता भी प्राप्त हो और तुम्हें किसी प्रकार का दोष भी न लगे।" तब श्री कृष्णचन्द्र की बात सुनकर अर्जुन ने अपने मन में विचार किया कि मुझे कोई ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे अश्वत्थामा जीवित तो रहे परन्तु वह मरने से भी अधिक हो जाये। बाल-हत्या के कारण अश्वत्थामा का तेज तो पहिले ही नष्ट हो चुका था। अब अर्जुन ने उसका मस्तक मुँड़वाकर तथा उसे अपनी तलवार की नोक से चीरकर उसके भीतर से वह मणि निकाल ली, जो सदैव उसी में रहती थी। ऐसा करने से अश्वत्थामा जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हो गया। तदनन्तर अर्जुन ने उसे अपने नगर की सीमा से बाहर निकाल दिया। इस प्रकार अर्जुन ने अपने बुद्धि-कौशल से सम्पूर्ण मर्यादाओं का पालन भी बनाये रक्खा।

आठवाँ अध्याय

दुर्योधनका दाह-संस्कार तथा श्री कृष्ण द्वारा राजा युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ के लिए प्रेरित करना एवं उन्हें बोध कराने के लिए शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह के समीप ले जाना

सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! अश्वत्थामा को छोड़ देने के उपरान्त राजा युधिष्ठिर एवं भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की आज्ञा पाकर, दुर्योधनादि के जो शव युद्ध-भूमि में पड़े हुए थे, उन्हें उनके सम्बन्धियों ने उठाकर, उनका विधि-पूर्वक दाह-संस्कार किया। जिस समय भगवान् श्यामसुन्दर के साथ धृतराष्ट्र, पाँचों पाण्डव, कुन्ती, दौपदी एवं गान्धारी आदि स्नान करने के निमित्त गंगा-तट पर पहुँचे, उस समय कौरव एवं पाण्डवों के घर की वे स्त्रियाँ जो विधवा हो गई थीं, अपने-अपने पति के गुणों का वर्णन कर, दारुण विलाप करने लगीं। उनका वह विलाप सुनकर धर्मावतार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त शोकाकुल हुए तथा स्वयं को धिक्कारते हुए इस प्रकार कहने लगे कि अपने स्वजन-सम्बन्धियों को युद्धक्षेत्र में मरवा देने के कारण मुझे जो पाप लगा है कभी भी नहीं छूटेगा। फिर भला इस पाप से मेरा उद्धार किस प्रकार हो सकेगा? मेरे द्वारा महाभारत कराने के कारण हमारे वंश एवं परिवार को सहस्त्रों स्त्रियाँ विधवा होकर रोती तथा हाहाकार मचाती हैं। इनकी आँखों से आँसू गिरने के कारण पृथ्वी की जितनी रेणुका भींगेगी, उतने ही वर्षों तक मुझे नरक में वास करना पड़ेगा। मेरे युद्ध में प्रवृत्त होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, नित्य सहस्रों व्यक्तियों को दान देने-वाला भाई कर्ण, सहस्रों शूर-वीर तथा मेरे वंशज एवं सम्बन्धी स्वजन मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। मुझसे बड़ी भूल हुई, जो मैंने ऐसा महाभारत किया। ऐसे अधर्म से प्राप्त राज्य को मुझे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

राजा युधिष्ठिर की ऐसी बातें सुनकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी श्री वेदव्यास आदि ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों ने उन्हें समझाते हुए कहा-"हे युधिष्ठिर! पूर्वकाल से ही राजागण इसी प्रकार राज्य करते चले आये हैं। पृथ्वी एवं राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए पुत्र पिता को तथा भाई भाई को मार डालता है। जिस प्रकार वे लोग सिंहासनारूढ़ होकर, अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ करने के कारण पापों से मुक्त हो गये, उसी प्रकार तुम्हारा पाप भी अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ करने पर नष्ट हो जायेगा!" भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के मुख से यह वचन सुनकर युधिष्ठिर ने कहा-"हे ज्योतिःस्वरूप! आपका यह कथन केवल मन को समझाने के लिए ही है। यज्ञ करने में तो पशु आदि अनेक जीव और भी हमारे हाथों से मारे जायँगे। जिस प्रकार कोई व्यक्ति कीचड़ से कीचड़ को धोना चाहे तो वह कभी नहीं छूटता, उसी प्रकार हमारे यज्ञ करने से इन विधवा स्त्रियों का सन्ताप कभी नष्ट नहीं होगा। यदि आप यह कहें कि पहिले तो तुमने राज्य लेने के लिए इतना भारी युद्ध किया और अब राज्य करना क्यों नहीं स्वीकार करते हो? तो उस सम्बन्ध में मेरा यह कथन है कि उस समय भी मेरी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी। परन्तु न जाने मेरी बुद्धि को क्या हो गया था, जो वह पलट गई और इस प्रकार यह महाभारत का युद्ध सम्पन्न हुआ। हे घनश्यामजी! मेरा निश्चय है कि अब मैं राजसिंहासन पर कदापि नहीं बैठूँगा।" युधिष्ठिर की बात सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में विचार किया कि युधिष्ठिर मेरे कहने से नहीं मानेंगे, अतः कोई अन्य उपाय करना चाहिए। जिस समय श्री श्यामसुन्दरजी अपने मन में इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों ने उनसे यह प्रार्थना की-"हे व्रजचन्द्र! राजा युधिष्ठिर का मन राज्य-कार्य में नहीं लग रहा है तथा वे इसी चिन्ता में डूबे हुए हैं कि उन्होंने अपने भाई, कुटुम्बी, रिश्तेदार तथा ब्राह्मणों को मारा है। इसलिए आप कृपा कर उनको बोध करा दीजिए।" उनकी बात सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने उत्तर दिया-"हे महानुभावो! राजा युधिष्ठिर मेरे समझाने से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कभी नहीं मानेंगे, अतएव हम लोगों को यह उचित है कि उन्हें साथ लेकर, शरशय्या पर पड़े हुए श्री भीष्म पितामह के पास चलें। उन्हें मेरे दर्शनों की इच्छा भी है। अतः उनकी वह अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी और वे ही युधिष्ठिर को ज्ञानोपदेश करके धैर्य प्रदान भी कर सकेंगे।" यह कहकर श्री कृष्णचंद्रजी ने राजा युधिष्ठिर को अपने पास बुलाकर कहा—"हे धर्मराज! तुम्हारी चिन्ता अभी नष्ट नहीं हुई है। उधर ब्राह्मण कहते हैं कि इस पाप से छुटकारा पाने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। मेरे समझाने से भी तुम्हारे हृदय को बोध नहीं हुआ। अतएव अब तुम हमारे साथ भीष्म पितामह के पास चलो। वे बड़े बुद्धिमान् तथा ज्ञानी हैं, अतः वे जो कुछ आज्ञा दें, तुम उसके अनुसार कार्य करना।" श्री कृष्णचन्द्र की इस बात को राजा युधिष्ठिर ने स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त वे अपने चारों भाई, द्रौपदी, ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनियों-सहित भगवान् श्यामसुन्दर के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ युद्धभूमि में श्री भीष्म पितामह शर-शय्या पर लेटे हुए थे। समस्त ब्राह्मण-मण्डली उनके दाईं ओर बैठ गई तथा पाण्डव बाईं ओर जा बैठे। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र उनके मुख के सम्मुख चरणों के पास आसीन हुए क्योंकि वे जानते थे कि भीष्म पितामह को उनके दर्शनों की अभिलाषा है, अतः यदि वे किसी दूसरी ओर बैठें तो पितामह को घायल अवस्था में करवट लेने में विशेष कष्ट होगा। इस समाचार को पाकर देवर्षि नारद, भरद्वाज, परशुराम आदि बहुत से ऋषि-मुनि भी भीष्म पितामह से ज्ञानोपदेश सुनने के लिए उस स्थान पर आ पहुँचे। उस समय श्री भीष्म पितामह ने भगवान् यशोदा-नन्दन का मानसी पूजन किया।"

नवाँ अध्याय

भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को ज्ञानोपदेश करना

सूतजी बोले—"हे शौनकादि ऋषियो! जब सब लोग यथास्थान बैठ चुके, तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे श्री भीष्म पितामह! राजा युधिष्ठिर का मन राज्यकार्यों में नहीं लगता है। वे कहते हैं कि हमने अपने भाई, कुटुम्बी, सम्बन्धी, स्वजनों तथा ब्राह्मणों को महाभारत के युद्ध में मारा है, अतः जब तक इन सम्पूर्ण पापों से उद्धार नहीं हो जायेगा, तब तक हम राजसिंहासन पर नहीं बैठेंगे। अब इस सम्बन्ध में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपकी जो सम्मति हो उसे प्रदान करने की कृपा करें।" यह सुनकर भीष्म पितामह ने राजा युधिष्ठिर के प्रति राज्यधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म तथा मोक्षधर्म का वर्णन किया। इन धर्मों को 'महाभारत' ग्रन्थ के शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्व में विस्तारपूर्वक कहा गया है। इस ज्ञान को बताने के बाद भीष्म पितामह ने राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार फिर कहना आरम्भ किया—"हे राजन्! तुम्हें बाल्यावस्था से ही दुःख प्राप्त हुआ है। तुम्हारे बाल्यकाल में ही तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हो गया। उस समय तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। कौरवों ने तुम्हें जलाने का उपाय किया। तुम्हारे भाई भीमसेन को मारने के लिए विष का लड्डू बनाकर भेजा। इसके बाद जुए में छल द्वारा तुम्हारे सम्पूर्ण राज्य तथा धन को छीनकर तुम्हें तेरह वर्ष का वनवास भी दिया। उस वनवास की अवधि में तुमने अपने चारों भाइयों तथा स्त्री द्रौपदी सहित अनेक कष्टों को उठाया। यदि तुम यह कहते हो कि धर्मात्मा मनुष्य को कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता तो भला यह बताओ कि तुम पाँचों भाइयों को, जिनमें अर्जुन और भीमसेन अत्यन्त बलवान् हैं तथा तुम्हारी द्रौपदी-जैसी पतिव्रता स्त्री को इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ा। इसके अतिरिक्त जहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के नाम की चर्चा रहती है, वहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, फिर भी तुम्हें यह देखना पड़ा कि साक्षात् परब्रह्म श्री कृष्णचन्द्रजी सदैव तुम्हारे साथ रहे और तुम निरन्तर दुःख ही उठाते रहे। हे राजन्! इन सब बातों को देखते हुए यह विश्वास कर लेना चाहिए कि जो होनहार है, उसे कोई टाल नहीं सकता है। प्रत्येक प्राणी को अपने पिछले जन्म के संस्कारों के वशीभूत होकर दुःख तथा सुख उठाना पड़ता है। परमेश्वर की लीला के इस भेद को कोई नहीं जानता कि वे कब क्या करनेवाले हैं। वे जो चाहते हैं वही होता है, अतः बुद्धिमान् तथा ज्ञानी व्यक्ति वही है जो सुख दुःख को बराबर मान, उसे ईश्वरीय इच्छा समझकर अपने मन में सन्तोष धारण करता है तथा सदैव प्रसन्न बना रहता है। जो लोग नारायण की इच्छा को न समझकर थोड़े ही दुःख में दुखी होकर रो पड़ते हैं, वे भी अन्त में 'नारायण की ऐसी ही इच्छा थी' यह समझकर सन्तोष धारण करते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति को महामूर्ख समझना चाहिए। हे राजन्! मनुष्य के द्वारा चिन्ता तथा परिश्रम करने से कुछ नहीं होता है। होता वही है, जिसे होनहार कहते हैं। इन साक्षात् त्रिलोकीनाथ भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजीके, जो अपना स्वरूप छिपाकर संसार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में विविध प्रकार की लीलाएँ करते रहते हैं, भेद को कोई नहीं जानता है। जो त्रिलोकीनाथ अर्जुन को अपना भक्त जानकर, उसके रथ के सारथी बने, उनकी महिमा तथा प्रशंसा का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ। हे राजन्! जो महापुरुष इन त्रिलोकीनाथ की इच्छा पर निर्भर रहकर अपना जीवन जप, तप, दया आदि शुभ कर्मों में व्यतीत करते हैं, मैं तुमसे उनका वर्णन करता हूँ। उनमें सर्वप्रथम भगवान् शिवशङ्करजी हैं, जो कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं तथा जिन्हें हरि-भजन तथा तप को छोड़कर अन्य कोई लौकिक कार्य नहीं है। दूसरे महानुभाव श्री नारद मुनि हैं, जो आठों प्रहर वीणा बजाते हरि गुणों का वर्णन करते हुए, जहाँ चाहते हैं—भ्रमण करते हैं। ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म के ध्यान के अतिरिक्त उन्हें भी कोई दूसरा काम नहीं है। तीसरे व्यक्ति मुनि कपिलदेवजी हैं, जो गङ्गासागर के संगम पर अकेले बैठे हुए परब्रह्म प्रभु का जप एवं ध्यान किया करते हैं। चौथे श्री शुकदेवजी हैं, जो संसारी मोह-माया-जाल से पृथक् रहकर आठों प्रहर भगवान् वैकुण्ठनाथ की यश-कथा का वर्णन किया करते हैं। पाँचवें राजा बलि हैं, जिन्होंने जब यह देखा कि भगवान् श्यामसुन्दर की इच्छा मुझे राजसिंहासन पर न रहने देने की है, तब उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य श्री भगवान् के वामन अवतार को समर्पित कर दिया। अतः हे युधिष्ठिर! तुम जो अपने मन में यह समझ रहे हो कि मैंने अपने भाइयों, कुटुम्बियों तथा ब्राह्मण को मारा है सो तुम्हें वास्तव में ऐसा नहीं समझना चाहिए। तुम हो कौन और तुमने किया भी क्या है? यह जो कुछ हुआ है, वह सब श्री नारायणजी की इच्छा से ही हुआ है। उन्होंने जब जो चाहा वही किया और भविष्य में भी जब जो चाहेंगे, वही करेंगे। इसलिए हे युधिष्ठिर! तुम अपने मन से इस चिन्ता को निकाल दो तथा जो कुछ हुआ है, उसे श्री नारायणजी की इच्छा समझो, तदुपरान्त यज्ञ करके अपने पाप से निवृत्त हो जाओ। प्रजा का पालन करना तुम्हारा धर्म है। यदि तुम राज्य नहीं करोगे तो तुम्हें और भी अधिक पाप लगेगा।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! जिस समय भीष्म पितामह राजा युधिष्ठिर को समझा रहे थे, उस समय द्रौपदी भी वहीं बैठी हुई उनके उपदेश को सुन रही थीं। जिस समय भीष्म पितामह ने धर्मोपदेश करते हुए यह बात भी कही कि जिस सभा में कोई व्यक्ति अधर्म करने की इच्छा करे, उस समय यदि कोई धर्मात्मा व्यक्ति उस सभा में उपस्थित हो तो उसे यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिए कि वह उस व्यक्ति को अधर्म करने से रोक दे और यदि उसमें रोकने की सामर्थ्य न हो तो स्वयं ही उस सभा से उठकर चला जाये तथा श्री नारायण का ध्यान करे।" भीष्म पितामह के मुख से इन शब्दों को सुनकर द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर तथा अर्जुन की ओर देखकर पहिले तो कुछ मुस्करा दिया। परन्तु फिर मन में लज्जित होकर यह विचार किया कि जिस समय धर्मात्मा भीष्म पितामह के सम्मुख, कौरव-सभा में दुर्योधन ने दुःशासन को मेरा चीर उतारने की तथा मुझे अपनी जाँघ पर बैठने की आज्ञा दी थी, उस समय उस दुर्दशा में भी मेरे प्राण इस शरीर से बाहर क्यों नहीं निकल गये, जो मैं अभी तक जीवित रहकर लोगों को अपना मुख दिखला रही हूँ? इस विचार के आते ही द्रौपदी मन ही मन स्वयं को धिक्कारने लगीं। उस समय द्रौपदी के मलिन मुख को देखकर भीष्म पितामह ने अपनी ज्ञान-दृष्टि द्वारा उसके हृदय के भावों को पहिचान लिया। तब वे द्रौपदी को समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे पुत्री! तुम अपने मन में किसी प्रकार का सोच मत करो क्योंकि वह सब अपराध मेरे ऊपर है। जिस समय कौरव-सभा में मैं बैठा हुआ था तथा दुर्योधन अधर्म करना चाह रहा था, उस समय यदि मैं मना कर देता तो वह उस अधर्म को कदापि नहीं कर सकता था; परन्तु उस समय मुझे कुछ ज्ञान नहीं हो रहा था। हे पुत्री! तुम निश्चय जानो कि उस समय भगवान् श्यामसुन्दर की इच्छा उसी प्रकार की थी। उनकी इच्छा में किसी की बुद्धि अपना कार्य नहीं कर सकती। इसका एक दूसरा कारण यह भी है कि कोई व्यक्ति कितना ही ज्ञानी अथवा धर्मात्मा क्यों न हो, यदि वह अधर्मी के साथ रहता है तो उसके सङ्ग-दोष के कारण ज्ञान नष्ट हो जाता है और समय पर काम नहीं आता। जो लोग अधर्मी का अन्न खाते हैं, उनकी बुद्धि भी वैसी ही अधर्ममय हो जाती है। उन दिनों हम लोग भी अधर्मी दुर्योधन का अन्न खा रहे थे तथा सदैव उसी के साथ रहते भी थे। इस कारण उन दिनों मुझे भी धर्म-अधर्म का विचार नहीं हो रहा था। अब मुझे अधर्मी दुर्योधन का अन्न-जल छोड़े हुए तथा इस शर-शय्या पर सोते हुए छप्पन दिन व्यतीत हो चुके हैं, अतः दुर्योधन के अन्न का विकार एवं संगति का प्रभाव मेरे ऊपर से हट गया है। इसी कारण मुझे आज यह ज्ञान पुनः प्राप्त हुआ है। हे पुत्री! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें 'महाभारत' का एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। तुम उसे मन लगाकर सुनो—

"पिछले युग में राजा शिवि के यहाँ एक परमज्ञानी परमहंस महात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवास करते थे। राजा शिवि बड़े स्नेह एवं सचाई-सहित उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करता था। उस राजा के नगर में रहनेवाले एक ब्राह्मण ने अपनी पुत्री का आभूषण बनवाने के लिए एक सुनार को कुछ सोना दिया। सुनार ने सोने को चुराकर पीतल का आभूषण बना दिया तथा उसके ऊपर सोने का पानी चढ़ाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने उसकी कोई जाँच किए बिना, वह आभूषण अपनी पुत्री को पहिना दिया। जब लड़की उस आभूषण को पहिन-कर अपनी ससुराल में गई, तब उसके पति ने उस पीतल के आभूषण को पहिचानकर अपने मन में बहुत बुरा माना तथा उस लड़की को उसके पिता के घर वापिस भेज दिया तथा उसे फिर कभी अपने घर नहीं बुलाया। यह गति देखकर ब्राह्मण ने राजा के दरबार में जाकर सब कथा कही तथा न्याय की भिक्षा माँगी। तब राजा ने उस सुनार का अपराध सत्य जानकर, उसका सब अन्न तथा धन छीनकर अपने कोष में भिजवा दिया। एक दिन उस सुनार के अन्न से राजगृह में भोजन बनाया गया। उस भोजन का कुछ भाग उन परमहंस महात्मा ने खाया। तब उनके मन में उसका ऐसा प्रभाव उत्पन्न हुआ कि उन्होंने राजा की किसी वस्तु को चुराने का निश्चय कर डाला। उसी निश्चय में उन्होंने रानी के एक अत्यन्त सुन्दर रत्न-जटित हार को महल के उस भाग में से चुरा लिया, जहाँ जाने के लिए उनको किसी प्रकार की मनाही नहीं थी। तदुपरान्त उन्होंने उस हार को एक वस्त्र में लपेटकर अपने पास रख लिया तथा तीन दिन तक भोजन करने के लिए राजमहल में नहीं गये। तीन दिन तक निरन्तर उपवास करने के कारण जब उनके पेट से सुनार के अन्न-भक्षण का प्रभाव नष्ट हो गया, तब उन्हें यह ज्ञान उत्पन्न हुआ कि हा! मैंने यह कैसा दुष्कर्म कर डाला है? इस पाप के कारण तो मुझे नरक लोक की घोर यातना भोगनी पड़ेगी। अब तो मुझे यही उचित है कि इस अधर्म का दण्ड इसी शरीर से यहीं भोग लेना चाहिए, जिससे परलोक का भय न रहे। ऐसा विचार करके वे परमहंस राजा के पास जा पहुँचे तथा उसे अपनी चोरी का सब हाल बता देने के पश्चात् इस प्रकार कहने लगे कि हे पृथ्वीनाथ! आप इस अधर्म के दण्ड-स्वरूप मेरे दोनों हाथ काट डालिए ताकि मैं अपने अधर्म का भोग इसी जन्म में भोग लूँ। परमहंस के यह वचन सुनकर राजा ने उदास होकर पण्डितों से पूछा कि परमहंस का इस प्रकार से चित्त बदल जाने का क्या कारण है, जो इन्होंने पहिले तो हार को चुरा लिया और अब मेरे पास

CC-0.Panjni Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकर इस प्रकार की बात कह रहे हैं ? राजा की बात सुनकर पण्डितों ने अपनी विद्या से विचार करके कहा—"हे राजन् ! जिस दिन इन परमहंस महात्मा ने यह हार चुराया, उस दिन उन्होंने किसी अधर्मी का अन्न खाया होगा। इसी कारण इनकी बुद्धि उस समय नष्ट हो गई थी।" पण्डितों की बात सुनकर राजा ने जब पूछताछ की तो उसे पता लगा कि उस दिन उन्होंने उस पापी सुनार का अन्न खाया था, इसी कारण उनकी बुद्धि पलट गई थी। अतः हे द्रौपदी ! जब केवल एक दिन अधर्मी का अन्न खाने से परमहंस महात्मा तक का ज्ञान नष्ट हो गया तथा उन्होंने चोरी की, तो मैं तो सदैव ही उस अधर्मी दुर्योधन का अन्न खाता और उसके साथ रहता था। अतः उस स्थिति में तेरे ऊपर अधर्म होते देखकर यदि मैंने दुर्योधन को वैसा करने से न रोका तथा अज्ञानी बन चुपचाप बैठा रहा तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है।"

दसवाँ अध्याय

श्री भीष्म पितामह द्वारा भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की स्तुति एवं उनके ध्यान में मग्न होकर शरीर त्याग करना

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—भीष्म पितामह ने पाण्डवों तथा द्रौपदी के प्रति यह ज्ञानोपदेश देकर श्री नारायण का चतुर्भुजी स्वरूप अपने हृदय में धारण कर लिया। तदुपरान्त वे भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की ओर देखते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म ! आप भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए ही अवतार ग्रहण करते हैं। आप जिस प्रकार इस समय मेरे सम्मुख बैठे हुए हैं, कृपा कर उसी प्रकार बैठे रहिए ताकि प्राणों का परित्याग करते समय मेरे हृदय में आपके श्रीचरणों का ध्यान बना रहे। आप सबसे पहिले थे तथा महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होगा। आपकी माया द्वारा ही तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार होता है। आप जन्म-मरण से कोई प्रयोजन न रखकर केवल पृथ्वी का भार उतारने तथा अधर्मी दुष्टों का संहार करने के लिए ही अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं। आपके अवतार लेने का केवल यही कारण है कि संसारी लोग आपकी सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण मनोहर श्यामल मूर्ति का सदैव ध्यान धरते रहें तथा पापों से छूटकर, भवसागर से पार होकर, मुक्ति-पदार्थ को प्राप्त करें। आप अपने भक्तों पर इतनी दया तथा कृपा रखते हैं कि भक्त अर्जुन की प्राण-रक्षा करने के निमित्त आपने उसके रथ का सारथी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनना भी स्वीकार किया तथा स्वयं आगे बैठकर उसे अपने पीछे बैठाया। जिस समय मैं अपने तीखे बाणों को अर्जुन के ऊपर चलाता था, उस समय यदि स्वयं काल भी सामने आता तो वह भी उन बाणों को देख, भयभीत होकर भाग जाता, परन्तु आपने उन कराल बाणों से तो अर्जुन की रक्षा की और स्वयं उनके प्रहार को अपने कोमल शरीर पर सहन किया। उस समय मेरे बाणों द्वारा आपके शरीर पर घाव हो जाने से जो खून के छींटे निकलते थे, वे आपकी साँवली सूरत पर मूँगे के समान शोभायमान लगते थे। उस शोभा का वर्णन किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता। आप अर्जुन को पराक्रम-हीन न होने देने के लिए सदैव उसका उत्साह बढ़ाया करते थे। आपके चन्द्रमारूपी मुख पर बिखरे हुए घुँघराले केश इस प्रकार सुशोभित होते थे, जैसे नीले कमल के ऊपर रस के लोभी भौंरे मँडरा रहे हों। आपके मुखारविन्द पर धूल तथा पसीने की बूँदें इस प्रकार लगती थीं, जैसे पुष्पों के ऊपर ओस की बूँदें झलकती हैं। उस समय आप उस पसीने को अपने पीताम्बर से पोंछकर तथा घोड़ों की रास पकड़कर अर्जुन के रथ को शीघ्रता-पूर्वक मेरी ओर दौड़ाते थे। मैं चाहता हूँ कि आपका वही स्वरूप मेरी आँखों में सदैव बसा रहे तथा आपके कमल के समान कोमल चरण मेरे हृदय से कभी बाहर न होने पावें। हे प्रभु! आप अपने भक्तों का मान इस प्रकार रखते हैं कि महाभारत के युद्ध के समय आपने शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी तथा यह भी कहा था कि मैं शंख बजाने तथा रथ चलाने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करूँगा। इसके विपरीत मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं आपको युद्ध में व्याकुल करके अस्त्र धारण न करा दूँ तो मेरा भी नाम भीष्म नहीं है। सो आपने अपने भक्त का मान रखने के लिए अपने प्रण को छोड़ दिया क्योंकि आप यह भली भाँति जानते थे कि मेरे प्राण भले ही छूट जावें, परन्तु भक्त का मान अवश्य रहना चाहिए।

"हे प्रभु! जिस समय मैंने रथ के पहियों को तोड़कर घोड़ों को मार गिराया तथा रथ की ध्वजा एवं अर्जुन के धनुष को काट दिया, उस समय आप क्रुद्ध होकर, उसी रथ का टूटा हुआ पहिया उठाकर मुझे मारने के लिए दौड़ पड़े थे। उस समय आप ऐसे सुन्दर प्रतीत हो रहे थे, जैसे बिजली को साथ लिए हुए श्यामघटा बड़ी धूम के साथ घिरी चली आई हो। उस दौड़ते समय आपका पीताम्बर पृथ्वी पर गिर पड़ा था, जिसका कारण यह था कि आपको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिज्ञा-भङ्ग करते देखकर पृथ्वी अपने मन में यह सोचने लगी थी कि भगवान् ने मेरा भार दूर करने के लिए अवतार ग्रहण किया है, अतः अब कहीं वे उस प्रण (मेरा भार दूर करने का) को भी इसी प्रण (शस्त्र न उठाने का) की भाँति छोड़ न बैठें। उस समय पृथ्वी के मन की पीड़ा पहिचानकर ही आपने अपने पीताम्बर को गिराकर उसे यह आश्वासन दिया था कि तुझे किसी प्रकार का भय करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रतिज्ञा तो मैंने अपने भक्त का मान रखने के लिए तोड़ी है। तेरा भार अवश्य दूर किया जायेगा। हे श्यामसुन्दर! जिस समय मैं पाण्डवों की सम्पूर्ण सेना का संहार कर देना चाहता था, उस समय आप मुझे घबड़ा देने के लिए सहस्रों रूप धरकर मेरे रथ के चारों ओर छा जाते थे। तब मैं चकित होकर यह नहीं पहिचान पाता था कि इन अनेक रूपों में आपका कौन-सा रूप सत्य है तथा कौनसा रूप माया का है। उस समय आप मुझे व्याकुल देखकर धैर्य बँधाने तथा मेरी प्रशंसा करने लगते थे। जिस समय मैं उन बातों का स्मरण करता हूँ, उस समय मुझे अत्यन्त लज्जा आती है तथा अपने को अपराधी समझकर मैं अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता हूँ। हे दयालु! आप भक्तों को ज्ञान देकर उनका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। अतः आपने मेरी मृत्यु के समय बिना बुलाये ही यहाँ आकर जो अपना दर्शन दिया है, उससे मैं परम धन्य हो गया हूँ। जिस समय मृत्युकाल निकट आता है, उस समय मनुष्य को साठ सहस्र बिच्छुओं के एक साथ डङ्क मारने जैसी पीड़ा होती है। उस स्थिति में बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों का चित्त भी चलायमान हो जाता है तथा वे ज्ञानी होते हुए भी आपका ध्यान करने में असमर्थ हो जाते हैं। उस समय जिस व्यक्ति पर आपकी अत्यन्त कृपा होती है, वही आपके चरण-कमलों का ध्यान धरकर भवसागर से पार हो जाता है। इसलिए मैं यही चाहता हूँ कि आपका यह स्वरूप मेरे नेत्रों में सदैव बसा रहे तथा आपके चरणों में मेरा ध्यान निरन्तर लगा रहे।"

इस प्रकार स्तुति करने के उपरान्त श्री भीष्म पितामह ने ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी को अपने हृदय में स्थित कर लिया, तत्पश्चात् ऋषि-मुनियों को प्रणाम कर अपनी आँखें बन्द कर लीं। फिर योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्याग कर वैकुण्ठधाम में वास किया। उस समय देवताओं ने आकाश-पुष्पों की वर्षा की।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्यारहवाँ अध्याय

राजा युधिष्ठिर का सिंहासनारूढ़ होना, भीष्म पितामह का अन्त्येष्टि-कर्म, अश्वत्थामा का परीक्षित को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र चलाना तथा श्री कृष्णचन्द्र द्वारा परीक्षित की रक्षा होना, तदुपरान्त द्वारकापुरी को प्रस्थान

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा पाण्डवों ने भीष्म पितामह की मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट किया। तत्पश्चात् श्री श्यामसुन्दर ने राजा युधिष्ठिर कोसमझाया—"हे राजन् ! संसार में जैसी मृत्यु भीष्म पितामह ने प्राप्त की है वैसी मृत्यु पाना अन्य लोगों को अत्यन्त दुर्लभ है। संसार में जिसने जन्म लिया है, वह एक दिन मृत्यु को अवश्य प्राप्त होगा। यह विचार कर भीष्म पितामह की मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर संसारी माया-मोह में फँसा रहता है तथा श्रीहरि के भजन से विमुख रहकर अपना जन्म व्यर्थ गँवाता है, उसी की मृत्यु पर आँसू बहाना उचित कहा गया है। श्री भीष्म पितामह भगवद्भक्त तथा परम धार्मिक थे तथा शरीर त्यागने के पश्चात् वे वैकुण्ठलोक को प्राप्त हुए हैं, अतः उनके मरने का शोक नहीं करना चाहिए।" आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र के ऐसे वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने हृदय में धैर्य धारण किया। तदनन्तर उन्होंने श्री मुरलीमनोहर की आज्ञा से भीष्म पितामह का दाहकर्म संस्कार सम्पन्न किया। इसके उपरान्त श्री श्यामसुन्दर तथा ऋषि-मुनियों ने धर्मराज युधिष्ठिर को हस्तिनापुर में लाकर, राजसिंहासन पर बैठाया। उस समय महाभारत के कारण पृथ्वी का भार उतर जाने से श्री कृष्णचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न होकर धर्मराज युधिष्ठिर से इस प्रकार कहने लगे—"हे राजन् ! तुम धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करके अपने आत्मीय तथा पारिवारिक जनों के साथ राज्य-सुख का उपभोग करो एवं तुम्हारे हृदय में जो कुछ शोक है, उसे पूर्णतः नष्ट कर दो।" इस प्रकार राजा युधिष्ठिर को समझाने-बुझाने के उपरान्त श्री घनश्याम श्यामसुन्दर ने उनसे अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराया। उसके कुछ दिनों पश्चात् श्री कृष्णजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे राजन् ! अब हम द्वारकापुरी को जायेंगे।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो ! जिस समय आनन्दकन्द व्रजचन्द्र यशोदानन्दन भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारकापुरी जाने की अभिलाषा कर रहे थे, उसी समय अश्वत्थामा ने अपने मस्तक-मुण्डन तथा मणि निकाल लेने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की लज्जा से क्षुब्ध होकर, राजा युधिष्ठिर-सहित पाँचों पाण्डव भाइयों को नष्ट करने के लिए पुनः ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र पाँचों भाइयों को जलाने के लिए अपने पाँच मुख बनाकर पाण्डवों के समीप आया तथा उसी अस्त्र का एक छोटा-सा अंगारा गर्भवती उत्तरा के पेट में भी घुस गया जिसके कारण उसके उदर में अग्नि की ज्वाला जलने लगी। उत्तरा उस अग्नि की पीड़ा से व्याकुल होकर दौड़ी हुई कुन्ती के पास जा पहुँची। कुन्ती उसे साथ लेकर श्री श्यामसुन्दर के पास गई तथा उनसे उत्तरा के पेट में अग्नि-पीड़ा होने का सब हाल कह सुनाया। उस समाचार को पाकर भक्त-दुख भंजन श्री श्यामजी ने अपने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तुम तो पाण्डवों की रक्षा करो; तदुपरान्त वे स्वयं अंगुष्ठ प्रमाण स्वरूप धारण कर उत्तरा के पेट में चले गये और वहाँ हाथ में गदा लेकर घुमाने लगे। उस समय उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित ने उस साँवली मूर्ति के दर्शन प्राप्त कर उन्हें अपनी माता के पेट में निवास करनेवाला दूसरा बालक समझा। उधर सुदर्शन चक्र द्वारा रक्षा करने के कारण अश्वत्थामा का चलाया हुआ पाँच मुखवाला ब्रह्मास्त्र पाण्डवों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सका, तब वह विवश होकर अश्वत्थामा के पास वापिस लौट गया। यह दशा देखकर अश्वत्थामा ने भी उस अस्त्र की अग्नि को मंत्र-बल से बुझा दिया।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! राजा विराट् की पुत्री उत्तरा अपने कुल के अभिमान के कारण हरि-चरणों में भली भाँति विश्वास तथा स्नेह नहीं रखती थी, इसी कारण उसका अभिमान नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का एक अङ्गारा उसके पेट में चला गया था। तदुपरान्त कुन्ती द्वारा प्रार्थना किए जाने पर श्री श्यामसुन्दर ने उसकी रक्षा की थी। अस्तु, जिस समय श्री कृष्णचन्द्र भगवान् द्वारका जाने लगे, उस समय कुन्ती तथा द्रौपदी-सहित धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल तथा सहदेव उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा इस प्रकार कहने लगे—"हे दीनबन्धु! आपके जाने से हमें अत्यन्त दुःख हो रहा है। अब यहाँ हमारी रक्षा कौन करेगा? हमें आपके चरण-कमलों का दर्शन पाने से जितना सुख मिलता था; उतना आनन्द इस राजसिंहासन के पाने से नहीं है। अब आपके चरण देखे बिना हम लोग किस प्रकार धैर्य धारण करेंगे?" कुन्ती ने कहा—"हे प्रभु! अब तक मैं आपको अपने भाई का पुत्र समझती थी, इसीलिए आपकी महिमा को नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जान सकी। अब मुझे विश्वास हो गया है कि आप परब्रह्म परमेश्वर के अवतार तथा संसारी जीवों की उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश करनेवाले हैं। महाभारत के युद्ध में मेरे पुत्रों ने आपकी कृपा से ही विजय प्राप्त की है। आप सम्पूर्ण ऋषि-मुनि तथा अपने भक्तों को दर्शन देने, उन्हें भवसागर से पार उतारने तथा धर्म की रक्षा करने के लिए ही सगुण रूप धारण करते हैं; अन्यथा आपको क्या आवश्यकता थी जो आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी होकर भी मत्स्य तथा शूकर आदि का अवतार धारण करते? आपने वसुदेव-देवकी के यहाँ जन्म लेकर उन्हें बन्धन से छुड़ाया है तथा मेरे पुत्रों पर जब-जब विपत्ति पड़ी, तभी आपने अपनी कृपा द्वारा हम लोगों का दुःख दूर किया है। मैं ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि आप इस राज्य को दे जाने के बाद हम लोगों को भूल जायेंगे? इसीलिए मैं कहती हूँ कि मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। मुझे उसी विपत्ति एवं वनवास की आवश्यकता है, जिसमें आपका दर्शन निरन्तर होता रहे। जहाँ आपका दर्शन न मिले, वह सुख तथा राज्य किस काम का है? धन पाने से अभिमान बढ़ जाता है, उस समय आपका भजन नहीं बनता। यही कारण है कि आप दीन-दरिद्रों पर अधिक दयालु रहते हैं। मनुष्य के लिए तो वही कर्म सबसे उत्तम है, जिसमें उसे आपका ध्यान बना रहे। राज्य एवं धन पाने से मनुष्य संसारी सुखों में भूलकर परमपिता परमेश्वर से प्रेम करना छोड़ देता है। हे प्रभु! आप सबके स्वामी हैं तथा आपको किसी का भय नहीं है। सूर्य तथा चन्द्रमा आपकी आज्ञा से ही दिन-रात प्रकाशित होते हैं। आप अपने भक्तों पर ऐसी कृपा दिखाते हैं कि यशोदा पर दयालु होकर, आप अपनी इच्छा से ही ऊखल में बँध गये, अन्यथा तीनों लोकों में ऐसा कौन-सा प्राणी है, जो आपकी ओर आँख उठाकर भी देख सके? जहाँ काल भी आपके भय से काँपता है, वहाँ आप यशोदा की छड़ी से भयभीत हो जाते थे। आपने भक्तों को सुख देने के लिए ही संसार में ऐसी लीलाएँ की हैं। अब तो मैं यह चाहती हूँ कि पुत्र, भाई आदि सम्पूर्ण परिवार का ध्यान भुलाकर मेरी प्रीति आठों प्रहर केवल आपके ही चरणों में लगी रहे। हर समय आप ही का ध्यान हृदय में बना रहे, जिससे मैं भी भवसागर से पार उतर जाऊँ।"

इतना कहकर कुन्ती भगवान् श्यामसुन्दर के वियोग के दुःख में व्याकुल होकर रोने लगी। उस समय आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी अपनी माया को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फैलाते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे कुन्ती ! तुम मेरी माता के समान हो। मैं तुम्हें कभी नहीं भुलाऊँगा। मुझे द्वारका से आये बहुत दिन बीत चुके हैं, अतः अब वहाँ जाकर सब लोगों को देखना है। मेरे साथी सात्यकि, ऊधो आदि भी अब घर चलने के लिए शीघ्रता मचा रहे हैं।" श्री श्यामसुन्दर के ये वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"हे भाई ! तुम अपनी सेना तथा शूर-वीरों के साथ श्री कृष्णचन्द्र को यत्नपूर्वक द्वारका में पहुँचा आओ। महाभारत के युद्ध के कारण बहुत-से लोग हमारे शत्रु बन गये हैं, अतः कहीं ऐसा न हो कि मार्ग में कोई शत्रु श्री कृष्णचन्द्रजी को हमारा सहायक जानकर, उपद्रव खड़ा कर बैठे। इसलिए तुम्हें बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।" राजा युधिष्ठिर की ऐसी आज्ञा पाकर अर्जुन ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी के साथ द्वारका जाने की सम्पूर्ण तैयारी कर ली। जिस समय आनन्दकन्द श्री श्यामसुन्दरजी सब लोगों से बिदा लेकर रथ में बैठकर चल दिए, उस समय राजा युधिष्ठिर-सहित समस्त हस्तिनापुरवासी त्रिभुवनपति श्री कृष्णजी के वियोग में विलाप करते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस अवसर पर हस्तिनापुर की स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं कि व्रज की उन गोपियों के धन्य भाग्य हैं, जो त्रिभुवनपति श्री व्रजचन्द्रजी के साथ रासलीला कर अपने जन्म को सफल बनाती थीं। उन रुक्मिणी आदि सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के भी बड़े भाग्य हैं, जो ऐसे मनमोहन स्वामी को पाकर उनके साथ भोग-विलास करती हैं। इस प्रकार स्त्रियाँ अनेक बातें कर-करके श्री श्यामसुन्दरजी के ऊपर पुष्प-वर्षा कर रही थीं। भगवान् नन्द-नन्दन उनकी बातों को सुनकर तथा उनके हृदय के सच्चे प्रेम को अनुभव कर अपनी बंकिम चितवन द्वारा उन्हें देखते हुए एवं सुख प्रदान करते हुए चले जा रहे थे। उस दिन भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी के वियोग में हस्तिनापुर-वासियों को जो दुःख हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान् श्यामसुन्दर ने जब यह देखा कि सब लोग उनके प्रेम में बड़ी दूर तक साथ चले आये हैं, तो उन्होंने अपना रथ खड़ा करके सबको धैर्य प्रदान कर बिदा कर दिया। उस समय सब लोग अत्यन्त पछताते हुए हस्तिनापुर को लौट आये।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बारहवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी का द्वारकापुरी पहुँचना तथा द्वारकावासियों का हर्ष मनाना

सूतजी बोले—"हे ऋषियो ! जब सब लोग हस्तिनापुर को लौट गये, उस समय भगवान् मुरलीमनोहर ने अर्जुन को शीघ्रतापूर्वक रथ चलाने की आज्ञा दी। श्री कृष्णचन्द्रजी की आज्ञा पाकर अर्जुन ने रथ की गति को तीव्र कर दिया। वे विदर्भ देश, कुण्डिनपुर, कुन्तिदेश, पंजाब एवं काश्मीर के मार्ग से होकर आगे बढ़ने लगे। मार्ग में सभी देशों के राजाओं ने वृन्दावनविहारी को भेंटें दीं तथा उनके दर्शन प्राप्त कर अपने जन्म को सफल बनाया। वे सभी लोग श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ होते तथा इस प्रकार कहते थे कि जिन प्रभु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य का अवतार धारण किया है, जिनका दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा, शिव आदि भी लालायित रहते हैं तथा जो देवताओं के ध्यान में भी नहीं आते हैं, उन्हीं महाप्रभु के दर्शन पाकर हम अपना जन्म सफल कर रहे हैं। इससे बढ़कर धन्य भाग्य और क्या हो सकता है ? कुछ लोग कहते थे—"इन्हीं महाप्रभु ने कौरव-पाण्डवों में महाभारत कराकर पृथ्वी का भार हरण किया है। उन यदुवंशियों के धन्य भाग्य हैं, जो इन्हें अपना सम्बन्धी समझकर दिन-रात इनकी सेवा में संलग्न रहते हैं।" इसी प्रकार सब छोटे-बड़े व्यक्ति आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र का यश वर्णन करते थे।"

तीसरे दिन द्वारकापुरी के निकट पहुँचकर जब भगवान् श्री कृष्णजी ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया, उस समय समस्त द्वारकावासी उनका आगमन जानकर अत्यन्त आनन्दित हो उठे। श्री कृष्णजी हस्तिनापुर जाने से पूर्व अपने पुत्र साम्ब तथा पौत्र अनिरुद्ध को द्वारकापुरी की रक्षा करने के निमित्त छोड़ गये थे। वे दोनों—शंखध्वनि सुनते ही अपनी सेना, यदुवंशियों, ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को साथ लेकर गाते-बजाते, मंगलाचार करते हुए श्री जगन्नाथजी को लेने के लिए आगे चल दिए। उन्होंने सम्पूर्ण नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि श्री द्वारकाधीश महाप्रभु द्वारका में पधार रहे हैं, अतः सब लोग अपने-अपने मार्ग, घर तथा दरवाजों पर मंगलाचार करें। इस आज्ञा को सुनते ही द्वारकावासियों ने नगर भर में चन्दनादि की सुगन्ध छिड़कवा दी तथा द्वार-द्वार पर कलश एवं बन्दनवार सुशोभित होने लगे। सभी स्त्रियाँ श्री वृन्दावनविहारी का पूजन करने के लिए सोलह शृंगार सजाये, आरती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ले-लेकर अपने-अपने घर के दरवाजों पर खड़ी हो गईं। अनेक स्त्रियाँ उन बाँकेबिहारी की मधुर छवि को देखने के लिए खिड़की तथा अटारियों पर जा बैठीं। जिस समय मनमोहन, नटनागर, विश्वउजागर श्री बाँकेबिहारी ने त्रिभंगी छवि किए द्वारकापुरी में प्रवेश किया, उस समय छोटे-बड़े सब लोगों ने उनका दर्शन प्राप्त कर, पुष्प-वर्षा की तथा उच्च स्वर से जयजयकार किया। जिस प्रकार मृतक-शरीर में नवीन प्राणों का सञ्चार हो, उसी प्रकार सब लोगों ने नव-जीवन पाकर अत्यन्त हर्ष मनाया। श्रीहरि ने सबसे यथायोग्य दण्डवत-प्रणाम तथा भेंट की। इस प्रकार सबको आशीर्वाद एवं आनन्द देते हुए दीनबन्धु श्री जगन्नाथजी अपने भवन में पहुँचकर माता-पिता के चरणों में गिर पड़े। वसुदेव, देवकी एवं राजा उग्रसेन ने जब पाण्डवों की विजय का समाचार सुना तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय समस्त द्वारकावासियों ने श्री कृष्णचन्द्रजी से कहा—"हे दीनानाथ! आपके बिना हम सब लोग अन्धे के समान हो रहे थे। जिस प्रकार आँखें होते हुए भी अँधेरी रात में चन्द्रमा के बिना कुछ दिखाई नहीं देता, वही हाल हम लोगों का भी था।" जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर चकोर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी को देखकर द्वारकावासी स्त्रियाँ परम प्रसन्न हो गईं। भगवान् श्यामसुन्दर जब रनिवासों में पहुँचे, उस समय रुक्मिणी आदि सब रानियों ने अपने-अपने महल में खड़ी होकर उनका अत्यन्त सम्मान किया। श्री नन्दनन्दन के वियोग में उन्होंने अच्छे गहने तथा कपड़े पहिनना छोड़ रखा था; परन्तु उस दिन सब अपना-अपना नूतन शृङ्गार किए आह्लादित थीं। भगवान् मुरलीमनोहर एक ही समय में अनेक स्वरूप धारणकर उन सबके महलों में गये तथा छोटे-बड़े सभी द्वारकावासियों को अत्यन्त आनन्द प्रदान किया।

तेरहवाँ अध्याय

परीक्षित का जन्म, राजा युधिष्ठिर की प्रसन्नता, धृतराष्ट्र-गांधारी का वन-गमन एवं माण्डव्य ऋषि की कथा का वर्णन

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! अन्य शास्त्र तथा पुराणों के सुनने से तो बहुत दिनों में श्रीहरि के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है, परन्तु जब प्राणी भागवत की कथा सुनने की इच्छा करता है, उसी समय उसके पापों के तीन टुकड़े हो जाते हैं। पहला भाग इच्छा करते समय, दूसरा भाग जाते समय तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा भाग सुनते समय हो जाता है। दूसरे धर्म, यज्ञ, व्रत आदि का तो सम्पूर्ण होने के उपरान्त फल प्राप्त होता है, परन्तु भागवत को जितना सुना जाय, उतना फल तुरन्त प्राप्त हो जाता है। अब आप लोग परीक्षित के जन्म लेने की कथा को सुनें—

हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त होने के पश्चात् राजा युधिष्ठिर को आनन्द-कन्द श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता था। वे दिन-रात उन्हीं के चरण-कमलों का ध्यान धरते हुए राज्य करते थे। जब उत्तरा के पेट से परीक्षित ने जन्म लिया, उस समय वह आँखें खोलकर चारों ओर इस अभिलाषा से देखने लगा कि जिस मनमोहन स्वरूप को मैंने अपनी माता के गर्भ में देखा था, वह कहाँ है? परन्तु इस भेद को कोई जान नहीं सका। राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नान्दीमुख श्राद्ध किया तथा मंगलाचार मनाकर ब्राह्मण एवं याचकों को मुँहमाँगा दान एवं दक्षिणा दी। जब उन्होंने ज्योतिषियों को बुलाकर बालक के जन्म-लग्न का हाल पूछा, उस समय पण्डितों ने विचार करके यह बात कही—"हे राजन्! यह बालक जन्म लेते ही अपनी आँखें खोलकर सबकी परीक्षा ले रहा था, अतः इसका नाम 'परीक्षित' होगा। यह अत्यन्त बलवान्, नीतिज्ञ, प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा होगा। यह अपनी प्रजा को बहुत सुख पहुँचायेगा तथा इस बालक के कारण आपका नाम, यश और कीर्ति भी चारों दिशाओं में अधिकाधिक फैलेगी। यह बुद्धि में बृहस्पति, धैर्य में हिमाचल, गम्भीरता में समुद्र, वीरता में परशुराम, दानियों में आशुतोष शङ्कर, ऐश्वर्य-विलास में इन्द्र तथा सत्य बोलनेवालों में आपके समान होगा। इसकी गणना राज़र्षियों में होगी। यह अधर्मी, पापी एवं कलियुग को दण्ड देकर, अपनी प्रजा का पुत्र के समान पालन करेगा। अन्त समय में एक ऋषि-बालक के श्राप के कारण तक्षक सर्प द्वारा काटे जाने से, इस बालक की गङ्गा-तट पर मृत्यु होगी।"

ज्योतिषियों की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर ने उदास होकर कहा—"हे महानुभावो! आप यह सत्य-सत्य बतलाइये कि किसी ब्राह्मण के क्रोध के कारण तो इस बालक की मृत्यु नहीं होगी? हमारे वंश में साँप के काटे से मृत्यु होना अच्छा माना जाता है, परन्तु किसी महात्मा, ब्राह्मण अथवा साधु-सन्त के शाप अथवा क्रोध के कारण मरना शुभ नहीं गिना जाता।" ज्योतिषी बोले—"हे राजन्! आप यह निश्चय रक्खें कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह बालक आपके वंश में अत्यन्त श्रेष्ठ हरि-भक्त होकर, साधु, ब्राह्मण एवं महात्माओं की सेवा में संलग्न रहेगा। मृत्यु के समय भगवान् श्यामसुन्दर के चरण-कमलों का हृदय में ध्यान रखते हुए ही, यह अपने शरीर का परित्याग करेगा। ऐसा प्रतापी तथा ईश्वर-भक्त आज तक दूसरा कोई व्यक्ति आपके कुल में उत्पन्न नहीं हुआ है। श्रीहरि के चरण-कमलों में इसकी प्रीति बाल्यावस्था से ही रहेगी।" ज्योतिषियों के ये वचन सुनकर, राजा युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए, तदुपरान्त उन्होंने उन्हें बहुत मान-दक्षिणा देकर बिदा किया। इसके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—"हम पाँच भाइयों में श्री नारायणजी ने यह एक ही भाग्यवान बालक दिया है, अतः इसके कारण हमारा नाम संसार में स्थिर बना रहेगा।" यह सुनकर छोटे-बड़े सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजा युधिष्ठिर धर्म एवं नीतिपूर्वक राज्य-कार्य तथा प्रजा का पालन करते थे। वे संसारी माया-मोह से विरक्त होकर दिन-रात यही चिन्ता किया करते थे कि कब परीक्षित सयाना हो और कब वे उसे राजगद्दी पर बैठाकर वन-गमन में जा, हरि-स्मरण कर, अपने परलोक को सुधारें। वे अपने चाचा-चाची (धृतराष्ट्र तथा गान्धारी) जिनके पुत्र महाभारत के युद्ध में मारे गये थे, को सम्मानपूर्वक अपने पास रखकर, उनके आज्ञानुसार राज्य-कार्य करते थे। वे सदैव यह भी ध्यान रखते थे कि धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को किसी प्रकार का दुःख न होने पावे, क्योंकि यदि वे दुखी रहे, तो उन्हें अपने दुर्योधनादि पुत्रों के मारे जाने का शोक और भी अधिक सतावेगा। राजा युधिष्ठिर की सेवा-शुश्रूषा को देखकर धृतराष्ट्र कभी-कभी इस प्रकार कहा करते थे—"हे राजन्! मैं हृदय से यह कभी नहीं चाहता था कि तुम्हारे साथ शत्रुता करूँ, परन्तु न जाने उस समय मेरी बुद्धि क्यों फिर गई थी?" राजा युधिष्ठिर यह सुनकर कहते—"हे चाचा! मैं भी दिन भर युद्ध-क्षेत्र में रहने के बाद सन्ध्या को जब अपने डेरे में आता था, उस समय अपने मन में यही विचार किया करता था कि चार दिन के जीवन के लिए अपने भाई-बन्धुओं को मारना उचित नहीं है। मैं प्रतिदिन यह भी सोचा करता था कि कल से महाभारत बन्द कर दूँगा। परन्तु जब प्रातःकाल सोकर उठता था, उस समय फिर युद्ध की तैयारियाँ करने लगता था; इसलिए यह समझना चाहिए कि सबके भाग्य में इसी प्रकार से मृत्यु लिखी हुई थी। भगवान् की इच्छा में किसी की युक्ति नहीं चलती। ईश्वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने जो चाहा, अन्त में वही होकर रहा।" इस प्रकार राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को बोध कराते रहते थे। उनके राज्य में धर्म की ऐसी महत्ता थी कि भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा से प्रजा के इच्छानुसार वर्षा होती थी तथा असमय में भी वृक्ष फलफूलों से लदे रहते थे। सब लोग अत्यन्त आनंदित रहते थे तथा बकरी एवं बाघ एक ही घाट पर पानी पीते थे।

उन्हीं दिनों की बात है कि श्री विदुरजी एक वर्ष तक तीर्थ-यात्रा करने के उपरान्त जब यमुना-तट पर मैत्रेय ऋषि के आश्रम पर पहुँचे तो ऋषि के द्वारा दुर्योधनादि कौरवों के मारे जाने तथा युधिष्ठिर के राजसिंहासन प्राप्त करने का समाचार सुनकर उन्हें अत्यन्त शोक हुआ। वहीं उन्हें यह भी मालूम हुआ कि राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को अत्यन्त सम्मान एवं स्नेहपूर्वक अपने पास रखते हैं। इन सब बातों को सुनकर विदुरजी ने अपने हृदय में बहुत खेद करते हुए यह विचार किया कि देखो, कितने आश्चर्य की बात है जो इतनी विपत्ति पड़ने, सौ पुत्रों के मारे जाने तथा राज्य छूट जाने पर भी धृतराष्ट्र का मन अभी तक संसारी माया-मोह से विरक्त नहीं हुआ है और वह युधिष्ठिर के ही पास रहना चाहते हैं। अब यदि मैं उन्हें संसारी माया-मोह से छुड़ाने का मार्ग दिखा दूँ तो उत्तम रहेगा। ऐसा विचार कर विदुरजी परमेश्वर की इच्छा पर सन्तोष रखते हुए, हस्तिनापुर के राज-भवन में जा पहुँचे। उन्हें देखकर राजा युधिष्ठिर ने उनका बहुत प्रकार से सम्मान करते हुए हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—"हे विदुरजी! आपने हमारे कुल में जन्म लेकर भगवान् श्री श्यामसुन्दर की कृपा प्राप्त की है। आज आपने दर्शन देकर, अपने श्री चरणों की रज से इस घर को पवित्र कर दिया है। आपके हृदय में श्री बाँकेबिहारी मदनगोपाल का सदैव निवास रहता है। आपने हम पाँचों भाइयों का पुत्रवत् लालन-पालन कर सङ्कट के समय में सहायता पहुँचाई है। जिस समय दुर्योधन ने हम लोगों को लाक्षागृह में जलाकर भस्म कर देना चाहा था, उस समय आपने पहिले से ही वहाँ पर सुरंग खुदवा रक्खी थी और इस प्रकार हमारे प्राण बचाये थे। अब आप कृपाकर यहाँ पधारे हैं, यह हमारे धन्य भाग्य हैं। आप कौन-कौन से तीर्थों में भ्रमण करते हुए आ रहे हैं, यह बताने की कृपा करें। यदि आप प्रभास क्षेत्र में भी गये हों तो हमारे परमहितैषी भगवान् श्यामसुन्दर का कुछ समाचार भी सुनावें; क्योंकि जब से वे हमें राज्य देकर गये हैं, तब से हमने उनका कोई समाचार नहीं पाया है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर महात्मा विदुरजी ने अन्य तीर्थों का वर्णन किया, परन्तु महात्मा श्री कृष्णचन्द्रजी के अन्तर्धान होने तथा यदुवंशियों के मारे जाने का समाचार यह सोचकर नहीं सुनाया कि जब अर्जुन लौटकर आयेगा, तब वह सब हाल स्वयं ही बता देगा। उन्होंने सोचा—यदि इस समय मैं कुछ हाल कहूँगा, तो युधिष्ठिर को दुःख पहुँचेगा। श्रेष्ठ लोगों का यह कहना है कि ऐसी बात किसी के सामने न कहे, जिससे सुननेवाले के मन को दुःख पहुँचे। इसी कारण वे इस सम्बन्ध में चुप रह गये। तदुपरान्त जब विदुरजी महलों में गये तो द्रौपदी आदि स्त्रियों ने उन्हें हरि का भक्त जानकर दण्डवत् किया। हस्तिनापुरवासी लोग भी उनके आगमन का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब विदुरजी ने धृतराष्ट्र के निवास-स्थान में पहुँचकर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को प्रणाम किया, उस समय धृतराष्ट्र उनसे गले मिलकर बहुत देर तक रोते रहे। तदुपरान्त बोले—"हे भाई! तुम्हारे जाने के बाद मेरे ऊपर बहुत सङ्कट पड़ा है। मेरे सब पुत्र मारे गये तथा सिंहासन नष्ट हो गया।" यह सुनकर विदुरजी ने कहा—"हे भाई! भगवान् श्यामसुन्दर की इच्छा इसी प्रकार की थी। उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार ग्रहण किया था, सो इस प्रकार पृथ्वी का भार हटा दिया। अब तुम यह कहो कि राजा युधिष्ठिर तुम्हारे खाने-पीने तथा रहने का प्रबन्ध एवं स्वागत-सत्कार किस प्रकार करते हैं?" धृतराष्ट्र बोले—"हे विदुर! युधिष्ठिर मुझसे अत्यन्त स्नेह करते हैं। वे मुझे अपने पिताके समान तथा गान्धारी को माता के समान समझते हैं। अर्जुन भी हमारा बहुत आदर करता है। केवल भीमसेन ही हमें जब-तब दुर्वचन सुनाता रहता है। वह कहता है—"तुमने ही मेरे खाने के लिए विष के लड्डू भेजे थे तथा तुम्हींने हम पाँचों भाइयों को लाक्षागृह में ठहराकर जला देना चाहा था। अब तुम हमसे अपना पालन चाहते हो? संसार में तुम्हारे समान पापी तथा अधर्मी और कोई नहीं है। हे भाई! भीमसेन की ऐसी बातें मुझसे सहन नहीं की जाती हैं। वह कभी-कभी मुझे ऐसी धमकी भी देता है कि यदि तुम राजा युधिष्ठिर से मेरी बुराई करोगे, तो मैं तुम्हें जान से मार डालूँगा।" धृतराष्ट्र की बातें सुनकर विदुर ने अत्यन्त खेद प्रगट करते हुए मन में विचार किया—देखो, परमेश्वर की माया कैसी प्रबल है कि इतना अनादर होते हुए भी धृतराष्ट्र तथा गान्धारी इस घर को नहीं छोड़ते हैं। जिस प्रकार कोई लालची

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य पुराने कपड़ों का त्याग नहीं करता तथा उसके पास वह चिथड़ा भी सदैव न रहकर, एक न एक दिन नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इनका यह शरीर भी सदैव स्थिर न रहेगा; परन्तु इतने पर भी इस वृद्धावस्था में इनसे अपने शरीर का मोह नहीं छोड़ा जा रहा है। अतः इन्हें ज्ञानोपदेश कर, इनका मन संसार से विरक्त कर देना चाहिए, ताकि ये मुक्ति को प्राप्त कर सकें। ऐसा विचार कर विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा—"हे भाई! सुनो, भीमसेन की कही हुई बातों को सत्य जानकर, तुम्हें राजा युधिष्ठिर के घर में कदापि नहीं रहना चाहिए। तुमने अपने राज्यकाल में अधर्म का आश्रय लेकर भीमसेन को बड़े-बड़े कष्ट दिये थे। तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने भी द्रौपदी का चीर खिंचवाकर उसे भरी सभा में नंगी करवाना चाहा था। भीमसेन को विष देकर पाँचों पाण्डवों को लाक्षागृह में जला देने की योजना भी बनाई ही गई थी। पाण्डवों का सब राज्य-पाट छल द्वारा जुए में जीतकर, उन्हें तेरह वर्षों का वनवास भी दिया गया था। यह सब बातें तुम्हें अवश्य ही भली भाँति याद होंगी। अब तुम उन्हीं के हाथों, इस नाशवान् शरीर का पालन कर रहे हो। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन संसारी मोह-माया में बीता। अब तुम वृद्ध हो गये तथा तुम्हारे सब पुत्र भी मृत्यु को प्राप्त हो चुके। इस पर भी तुम अभी तक राजा युधिष्ठिर के घर में रह-कर कहते हो कि ये लोग हमें अच्छी तरह रख रहे हैं, इससे बढ़कर शोचनीय बात और क्या होगी? हे भाई! मैंने सुना था कि ईश्वर की माया अत्यन्त प्रबल है, सो यहाँ आकर तुम्हें अपनी आँखों से देख लेने के बाद उसे सत्य रूप में पहिचाना है। तुम्हारे सब पुत्र-पौत्र आदि मारे गये, राजगद्दी छूट गई, तुम भी मृत्यु के निकट जा पहुँचे, इतने पर भी तुम उसी भीमसेन के हाथ से रोटी लेकर खाते हो, जिसने तुम्हारे सब पुत्रों को मारा है। क्या तुम्हें इसमें कुछ भी लज्जा नहीं आती? तुम्हारे ऐसे खाने तथा जीवन को धिक्कार है। जिस प्रकार कुत्ता लाठी मारने से भाग जाता है तथा रोटी का टुकड़ा देने पर फिर उसे पास आकर खा लेता है, वैसी ही स्थिति तुम्हारी भी है। हे भाई! वृद्धावस्था आ जाने पर भी तुम्हें जीवन से मोह है तथा तुम्हारा मन संसार से विरक्त नहीं हो रहा है। तुम सदैव अमर नहीं बने रहोगे; इसलिए उचित है कि तुम उत्तराखण्ड में जाकर, श्रीहरि-चरणों का ध्यान करते हुए अपने शरीर को त्याग दो। ऐसा करने से तुम्हें मुक्ति की प्राप्ति होगी। संसार में तो तुम्हारी यह गति हुई, अब अपने परलोक को भी क्यों नष्ट कर देना चाहते हो?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विदुरजी की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा–"हे भाई ! तुम्हारा कहना सत्य है। हम भी यही बात चाहते हैं; परन्तु हम दोनों पति-पत्नी आँखों से अन्धे तथा लाचार हैं। अब तुम्हीं कहो कि हम उत्तराखण्ड तक किस प्रकार पहुँचेंगे ?" विदुरजी बोले–"मैं तुम दोनों को हाथ पकड़कर अच्छी तरह ले चलूँगा। तुम मेरे बड़े भाई हो, अतः तुम्हारी सेवा करना मेरा धर्म है। जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक मैं तुम्हारी भली भाँति सेवा करूँगा।" विदुरजी की यह बात मानकर, धृतराष्ट्र तथा गान्धारी राजा युधिष्ठिर को सूचित किये बिना ही विदुरजी के साथ उत्तराखण्ड को चल दिए। विदुरजी आगे-आगे धृतराष्ट्र का हाथ पकड़े हुए थे तथा पीछे-पीछे गान्धारी अपने पति का हाथ पकड़े हुए चली जा रही थीं। इस प्रकार वे दोनों हरिद्वार में जा पहुँचे।"

सूतजी बोले–"हे ऋषियो ! दूसरे दिन प्रातःकाल के समय जब राजा युधिष्ठिर नित्यकर्म से निवृत्त हो, अपने माता-पिता (धृतराष्ट्र तथा गान्धारी) को प्रणाम करने के लिए उनके निवासस्थान पर पहुँचे, उस समय वे मकान को सूना देखकर अत्यन्त शोक करने लगे। उन्होंने सोचा–"शायद वे लोग किसी कारण मुझसे दुखी होकर कहीं अन्यत्र चले गये हैं अथवा पुत्र शोक में व्याकुल होकर गंगा में डूब मरे हैं।" इस विचार के आते ही वे फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने सञ्जय से पूछा–"हे सञ्जय ! मेरे अन्धे माता-पिता, जिन्होंने मुझे बड़े प्रेम से पाला था वे कहाँ चले गये हैं ? यदि तुम उनका कुछ हाल जानते हो तो मुझे बताओ।" सञ्जय बोला–"हे राजन् ! मुझे यह नहीं मालूम है कि वे लोग कहाँ गये हैं। हाँ, वे विदुरजी से कुछ बातें अवश्य कर रहे थे, सम्भवतः उन्हीं के साथ कहीं चले गये हैं।" सञ्जय की बात सुनकर, राजा युधिष्ठिर अत्यन्त उदास हो, राजसिंहासन पर जा बैठे। उसी समय भगवद्गुणानुवादों का वर्णन करते हुए देवर्षि श्री नारदजी का वहाँ शुभागमन हुआ। राजा युधिष्ठिर ने उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करने के पश्चात् अत्यन्त आदर पूर्वक आसन पर बैठाया। तदनन्तर इस प्रकार कहा–"हे महात्मन् ! मेरे माता-पिता न जाने कहाँ चले गये हैं ? या तो उन्हें वन में कोई हिंसक पशु खा जायेगा अथवा वे किसी कुएँ में गिर कर मर जायेंगे। यदि आपको उनका कुछ हाल मालूम हो तो मुझे बताने की कृपा करें। मैं उन्हें प्रार्थना करके वापिस लौटा लाऊँगा। इस समय उन्हें खाने-पीने का कष्ट हो रहा होगा। आपने भी अत्यन्त कृपा की है जो इस दुःख के समय यहाँ पधार कर, मुझे अपना दर्शन दिया है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सुनकर नारद मुनि ने कहा—"हे राजन्! यह मायारूपी संसार मिथ्या है। संसार में जो उत्पन्न हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। इसीलिए परब्रह्म परमेश्वर ने इसका नाम 'मर्त्यलोक' रक्खा है। तुम धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के जाने का शोक व्यर्थ ही कर रहे हो। क्योंकि दुःख-सुख किसी के अधीन नहीं रहता है। ये दोनों वस्तुएँ परमपिता परमेश्वर के हाथ में ही हैं। जिस प्रकार खेलते समय बहुत से बालक एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं तथा खेल समाप्त हो जाने पर पुनः अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार श्री परमप्रभु नारायणजी इस समस्त संसार को रचकर, फिर गुप्त कर देते हैं। तुम जो उनके खाने-पीने का शोक करते हो, इसे भी परमेश्वर के ही अधीन समझो। जब बालक गर्भ में रहता है, तब उसे खाने को कौन देता है? परमेश्वर ने जिस जीव की जीविका जहाँ बना दी है, वह उसी स्थान पर अपने आप पहुँच जाता है। अतः तुम्हें धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य बैल को नाथकर चाहे जिधर ले जाता है और बैल का कुछ वश नहीं चलता, उसी प्रकार संसारी मनुष्य भी स्त्री, बालक, धन-सम्पत्ति आदि के जाल में मायारूपी रस्सी से बँधे हुए हैं। जब परमेश्वर किसी प्राणी पर दया करके, उसकी भेंट किसी सन्त-महात्मा से करा देता है, तभी वह ज्ञान प्राप्त करके, इस मायारूपी फन्दे से छूटकर, मुक्त-पद पर पहुँचता है। अतः हे राजन्! तुम भी धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। वे दोनों विदुरजी द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त, संसार से विरक्त हो, उन्हीं के साथ हिमाचल पर्वत के दक्षिण ओर सप्तर्षियों के स्थान पर चले गये हैं। वहाँ जाकर श्रीहरि के चरणों का ध्यान करते हुए, वे आज से सातवें दिन अपना शरीर त्याग देंगे। अब उन्होंने संसारी माया के साथ-साथ अपने शरीर का मोह भी छोड़ दिया है। इस समय उन्हें लौटाकर वापिस लाना भी उचित नहीं है। शोक तो उस प्राणी के लिए करना चाहिए जो हरि-भक्ति से विमुख हो; परन्तु जो व्यक्ति संसारी मायामोह से छूटकर परमेश्वर का ध्यान करे, उसके लिए शोच करना व्यर्थ है। हे राजन्! इसलिए तुम भी उनकी कुछ चिन्ता न करके श्री जगदीश्वर को ही सबका रक्षक तथा स्वामी समझो।"

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर को समझाकर नारदजी वहाँ से चले गये। तब राजा युधिष्ठिर को भी धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के चले जाने से जो शोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हुआ था, वह दूर हो गया। देवर्षि नारद के उपदेश के कारण उन्हें संसार का समस्त व्यवहार मिथ्या प्रतीत होने लगा।"

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने श्री सूतजी से पूछा—"हे सूतजी! महात्मा विदुर को धर्मराज का अवतार कहा जाता है। उनकी कथा किस प्रकार है? यह बतलाने की कृपा कीजिए।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! मैं धर्मराज का थोड़ा-सा हाल कहता हूँ, उसे आप लोग ध्यान से सुनें। एक बार माण्डव्य ऋषि को चोरी का मिथ्या दोष लगवाकर किसी राजा ने उन्हें फाँसी दिलवा दी। जब धर्मराज के दूत उस ऋषि को धर्मराज के पास ले गये, उस समय माण्डव्य ऋषि ने धर्मराज से कहा कि हमने अपनी स्मृति में आज तक कोई चोरी आदि बुरा कर्म नहीं किया है, फिर किस पाप के कारण हमें फाँसी दी गई। यह आप बतलाने की कृपा करें। धर्मराज ने उत्तर दिया—"हे ऋषि! आपने बचपन में एक टिड्डी को काँटे की नोंक पर उठाकर मार डाला था, उसी पाप के कारण तुम्हें फाँसी मिली है।" यह सुनकर ऋषि ने कहा—"हे धर्मराज! बाल्यावस्था में पाप-पुण्य का बोध नहीं होता है। उस अज्ञानावस्था में बहुत से अधर्म हो जाते हैं, परन्तु उन पापों का दण्ड इस प्रकार नहीं दिया जाना चाहिए। इस प्रकार आपने मुझ निरपराधी को फाँसी दिलवाकर अनुचित कार्य किया है, इसलिए मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप सौ वर्ष तक दासी पुत्र होकर मर्त्यलोक में वास करें।" सूतजी बोले—"हे ऋषियो! उसी शाप के कारण धर्मराज दासीपुत्र होकर, सौ वर्ष तक संसार में रहे थे। जब तक धर्मराज विदुर का अवतार लेकर संसार में रहे, तब तक सूर्य देवता ने धर्मराज के कार्य का सञ्चालन किया था। यही कारण था जो संसार में जन्म लेकर विदुर हरि-भक्ति परायण बने रहे।"

चौदहवाँ अध्याय

अर्जुन का द्वारका से लौटना तथा युधिष्ठिर द्वारा भगवान् श्यामसुन्दर का हाल पूछना

सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! नारदजी के कहे अनुसार धृतराष्ट्र तथा गान्धारी ने सातवें दिन अपना शरीर त्याग दिया। तब विदुरजी उनका क्रिया-कर्म करने के पश्चात् तीर्थ यात्रा करने चले गये। इधर नारद मुनि द्वारा ज्ञानोपदेश प्राप्त करने के पश्चात् राजा युधिष्ठिर सांसारिक व्यवहारों को मिथ्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझकर उनसे उदासीन हो गये थे तथा सदैव परमेश्वर के ध्यान में लगे रहते थे। उन्हीं दिनों आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी भी द्वारकापुरी छोड़कर गोलोक को पधार गये। उनके वैकुण्ठ चले जाने के पश्चात् राजा युधिष्ठिर को कलियुग के आगमन के लक्षण प्रतीत होने लगे तथा रात्रि में अशुभ स्वप्न दिखाई देने लगे। मनुष्यों के स्वभाव में अधर्म, क्रोध, लोभ तथा कपट का आधिक्य हो गया। पति-पत्नी, पिता-पुत्र तथा भाई-भाई में विरोध बढ़ने लगा। कलियुग के इन लक्षणों को देखकर, एक दिन राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—"हे भाई! प्राणप्रिय श्री श्यामसुन्दरजी को पहुँचाने के लिए अर्जुन द्वारकापुरी गये थे, परन्तु सात महीने बीत जाने पर भी वे अभी तक लौटकर नहीं आये। इसका कुछ कारण मालूम नहीं होता। इधर नारदजी हमसे कह गये हैं कि भगवान् श्यामसुन्दर ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार ग्रहण किया था, सो उन्होंने महाभारत कराकर पृथ्वी का बोझ हल्का कर दिया। अब मर्त्यलोक में उनका थोड़ा कार्य और शेष रह गया है, तत्पश्चात् वे गोलोक धाम को चले जावेंगे। सो हे भाई! आजकल संसार में बढ़ते हुए अशुभ लक्षणों को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह समय अब आ पहुँचा है। जिन भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा से हमने अपने शत्रुओं को परास्त कर यह राजसिंहासन प्राप्त किया है, उनके बिना अब मुझे रात-दिन अपशकुन दिखाई देते रहते हैं। मेरी बायीं भुजा तथा बायीं आँख सदैव फड़का करती है। कभी-कभी शरीर काँपने लगता है तथा हृदय घबरा उठता है। मन में किसी प्रकार के अज्ञात भय का संचार होता रहता है। प्रातःकाल के समय सूर्य की ओर मुख करके सियार रोते हैं तथा दिन में आकाश से तारे टूटते हैं। कुत्ते दिन-रात रोते रहते हैं तथा रात को उल्लू की बोली सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो जाता हूँ। चारों दिशाओं में अँधेरा-सा दीख पड़ता है। इन दिनों भूचाल भी बार-बार आने लगे हैं। पृथ्वी बार-बार डगमगाती है। आकाश में यदि थोड़ा-सा भी बादल हो तो बिजली गिर उठती है। आँधियाँ बड़ी तेजी से चलती हैं तथा आकाश से शोणित की वर्षा होती है। सूर्य का प्रकाश क्षीण हो गया है। नदी एवं नालों का पानी विपरीत दिशा में बह उठा है। अग्निहोत्री लोग जब अग्नि में आहुति डालते हैं, तो अग्नि देवता उसे प्रसन्न होकर ग्रहण नहीं करते। बछड़े अपनी माता गौ का दूध पीकर प्रसन्न नहीं होते। गौएँ अपनी आँखों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से आँसू बहाती हैं। साँड़ों ने गायों से प्रीति करना छोड़ दिया है। देव-मूर्तियों से पसीना निकल उठा है। मेरी सभा में लोग अनावश्यक मिथ्या भाषण कर उठे हैं। मनुष्यों के स्वभाव में क्रोध एवं लोभ की अधिकता हो गई है। आकाश में केतु (पुच्छल तारा) निकल उठा है। साधु-महात्माओं का चित्त हरि-भजन में नहीं लगता। नगर के घरों में मंगलाचार होना समाप्त हो गया है तथा सम्पूर्ण हस्तिनापुर उजाड़ जैसा लगता है। हे भीमसेन! इन लक्षणों से मुझे ऐसा आभास होता है कि हमारे रक्षक तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय भगवान् मुरलीमनोहर वैकुण्ठ लोक को पधार गये हैं।"

जिस समय राजा युधिष्ठिर इस प्रकार चिन्तित हो रहे थे, उसी समय द्वारका से आये हुए अर्जुन ने उनके चरणों में प्रणाम किया। वे हाथ जोड़-कर, उदास हो एक ओर खड़े हो गये। अर्जुन के साथ यह घटना घटी थी कि जिस समय भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी गोलोक को सिधारनेवाले थे, उस समय उन्होंने अपने सारथी दारुक द्वारा अर्जुन को यह सन्देश भिजवाया था कि वे द्वारकापुरी की सब विधवा स्त्रियों, बालकों, बूढ़ों तथा यादवों की सम्पूर्ण वस्तुओं को हस्तिनापुर ले जायँ। अतः उनके परमधाम चले जाने पर जब अर्जुन उन सबको साथ लेकर हस्तिनापुर लौट रहे थे, उस समय हस्तिनापुर के निकट ही, मार्ग में भीलों ने सम्पूर्ण धन लूट लिया। उस समय अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष पर बहुत-से बाण चढ़ाकर मारे, परन्तु उनसे कोई काम नहीं निकला। डाकू लोग सब सामान को लूटकर साफ चले गये। तब अर्जुन ने उदास होकर अपने मन में यह विचार किया कि जिस धनुष बाण के द्वारा मैंने भीष्म पितामह, कर्ण, जयद्रथ जैसे शूर-वीरों पर विजय प्राप्त की, उसीके रहते हुए भी मैं डाकुओं से हार गया, इसका कारण केवल यही प्रतीत होता है कि मेरा वह सब पराक्रम केवल भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा से ही था। अब चूँकि वे जन-मन-रंजन संसार में नहीं रहे हैं, इसीलिए मेरा सब बल, पराक्रम तथा तेज नष्ट हो गया है। इस विचार के आते ही भगवान् श्यामसुन्दर की स्मृति करके, अर्जुन का मुख अत्यन्त मलीन हो गया था।

इधर धर्मराज युधिष्ठिर ने जब उनको इस प्रकार उदास खड़े देखा तो पूछा—"हे अर्जुन! समस्त यदुवंशी, हमारे नाना शूरसेन, मामा वसुदेव, मामी देवकी, राजा उग्रसेन, अक्रूर, बलरामजी, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सम्पूर्ण बालक, भगवान् श्यामसुन्दर, भक्तराज उद्धव तथा अन्य द्वारिकावासी जन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अच्छी तरह तो हैं ? जिन आदि-पुरुष भगवान् ने संसारी जीवों का कल्याण करने के निमित्त यदुकुल में अवतार ग्रहण किया है, वे हमारे प्राण प्यारे वसुदेवनन्दन आनन्द-कन्द श्री कृष्णचन्द्रजी अपनी सुधर्मा सभा में सानन्द तो विराजते हैं ? हे अर्जुन ! तुम बहुत उदास दिखाई देते हो। तुम्हें कोई रोग तो नहीं हो गया है ? तुम जो इतने दिनों द्वारिकापुरी में रहे सो वहाँ किसी ने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर डाला ? वहाँ किसी सभा में तुम्हारा अनादर तो नहीं हुआ ? क्या तुमने किसी को कोई वस्तु देने के लिए कहा था, जो तुम उसे नहीं दे सके हो ? तुमने किसी महात्मा अथवा ब्राह्मण का अपमान तो नहीं किया ? क्या कोई भूखा व्यक्ति तुम्हारे घर से बिना भोजन प्राप्त किए हुए वापिस लौट गया है ? अथवा कोई ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, रोगी अथवा शत्रु तुम्हारी शरण में आया और तुम उसे शरण नहीं दे सके ? इस कारण तुम्हारा मुख उदास हो रहा है ? तुमने किसी रजस्वला स्त्री से मैथुन तो नहीं किया ? तुम किसी छोटे व्यक्ति से युद्ध में तो नहीं हार गये, जिसके कारण तुम्हारा तेज नष्ट हो गया ? क्या तुमने किसी अच्छे भोज्य पदार्थ को उन वृद्ध अथवा बालकों को दिए बिना भक्षण कर लिया है, जो उस समय उसकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे ? अथवा कहीं हमारे प्राणप्रिय श्री श्यामसुन्दर मर्त्यलोक छोड़कर गोलोक धाम को तो नहीं पधार गये हैं, जिसके कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है ? हे अर्जुन ! जो बात हो, उसे शीघ्र प्रकट करो।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के गोलोक पधारने का वृत्तान्त कहना तथा राजा युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित को राजसिंहासन देकर द्रौपदी एवं भाइयों सहित उत्तराखण्ड को प्रस्थान एवं शरीर-त्याग

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो ! राजा युधिष्ठिर की बातों को सुनकर भी अर्जुन मुख से कुछ नहीं बोले। वे भगवान् श्यामसुन्दर के चरणारविन्दों का ध्यान करते हुए इतने रोये कि उन्हें हिचकियाँ आने लगीं। उस समय उनमें कुछ कहने की सामर्थ्य ही नहीं रह गई थी। तत्पश्चात् कुछ देर बीतने पर अर्जुन ने धैर्य धारणकर राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा—"हे पृथ्वीपति ! मैं यह किस तरह कहूँ कि भगवान् श्यामसुन्दर हम लोगों को छोड़कर सदैव के लिए अन्तर्धान हो गये हैं ? मैं उन्हें अभी तक अपना ममेरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाई ही समझता रहा। यदि हम लोग उन्हें परब्रह्म परमेश्वर जानकर, कुछ सेवा कर पाते तो इस अपार भवसागर से पार उतरकर आवागमन से छूट जाते। परन्तु जगदीश्वर की माया ऐसी प्रबल है कि उसमें लिपटे रहने के कारण हम लोग उन्हें उसी प्रकार नहीं पहिचान सके, जिस प्रकार कि एक बार दक्ष प्रजापति के शाप के कारण चन्द्रमा के बहुत दिनों तक समुद्र में रहने पर भी उन्हें मछलियाँ नहीं पहिचान सकी थीं। इस बात को सभी जानते हैं कि चन्द्रमा के पास अमृत रहता है तथा मछलियाँ बड़े-बड़े जलचर जीवों तथा मनुष्यों द्वारा खाये जाने के भय से सदैव अमृत पीने की इच्छा रखती हैं। वे यह चाहती रहती हैं कि यदि हमें अमृत मिल जाय तो फिर हम मृत्यु के भय से निडर हो जावें। परन्तु इस प्रकार की इच्छा रखनेवाली मछलियों ने भी सहस्रों वर्ष तक समुद्र में वास करनेवाले चन्द्रमा को न पहिचानकर, उन्हें केवल एक समुद्री जीव ही समझा। उसी प्रकार हम लोग भी भगवान् श्री कृष्ण-चन्द्रजी को परब्रह्म न जानकर केवल यदुवंशी ही समझते रहे। देखिए, महा-भारत के युद्ध में उनकी सहायता से ही मैंने बड़े-बड़े राजाओं तथा शूर-वीरों को मार गिराया था। परन्तु मैं सदैव यही समझता रहा कि उन्हें मैंने अपने पराक्रम से ही मारा है। अब मुझे इस बात का विश्वास हुआ है कि भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा से ही मैंने उन सब पर विजय प्राप्त की थी। जब से वे मुझे छोड़कर वैकुण्ठ चले गये हैं, तब से मेरा पराक्रम भी क्षीण हो गया है। हे राजन्! मैं वही अर्जुन हूँ, वही मेरे पास धनुष-बाण हैं तथा वही मेरी भुजाएँ हैं, जिनके द्वारा मैंने भगवान् शिवशङ्कर, गन्धर्व, इन्द्र तथा मय नामक राक्षस पर विजय प्राप्त की थी। मैंने युद्ध-क्षेत्र में भीष्म पितामह, कर्ण, जयद्रथ तथा अन्य अनेक शूर-वीरों को मार गिराया। सम्पूर्ण राजाओं को जीतकर मैंने ही यज्ञ के लिए द्रव्य एकत्रित किया तथा मैंने ही अश्वत्थामा के मस्तक से उसकी मणि निकाल ली; परन्तु अब देखिए कि उन्हीं शस्त्रास्त्रों के रहते हुए भी मैं भगवान् श्यामसुन्दर के बिना मार्ग में डाकुओं द्वारा पराजित हुआ। वे लोग उस सम्पूर्ण धन तथा स्त्री आदि को लूटकर ले गये, जिन्हें मैं द्वारका से अपने साथ लाया था। उसी पराजय के कारण मैं उदास हूँ। पहिले हमें जिस किसी स्थान पर विपत्ति का सामना करना पड़ता था, उस स्थान पर उनका सुदर्शन चक्र आकर हमारी रक्षा किया करता था। अब उनके बिना मैं किस प्रकार प्रसन्न रहूँ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे राजन् ! महाभारत के युद्ध में जब कर्ण आदि वीरों ने मुझे मारना चाहा था, उस समय भगवान् श्यामसुन्दर रथ हाँकते-हाँकते मेरे सामने खड़े हो जाते थे तथा मुझे अपने पीछे कर सुरक्षित रखते थे। वे मुझे धैर्य बँधाते हुए कहा करते थे—"हे अर्जुन ! ये भीष्म, कर्ण आदिक सब योद्धा मरे हुए हैं, अतः तू इनसे भयभीत मत हो।" जिस प्रकार कोई किसी साधु-महात्मा का अशुभ चाहे, परन्तु ईश्वर की कृपा से उनका कुछ नहीं बिगड़ता; उसी प्रकार भगवान् श्यामसुन्दर की दया से मेरे शरीर पर अस्त्र-शस्त्र आदि का कोई घाव नहीं लगता था। वे मनमोहन अपनी दृष्टि द्वारा मेरे शत्रुओं का आयुर्बल क्षीण कर देते थे। जब कभी युद्ध करते समय मैं उनसे यह कहता था कि आप रथ को शीघ्रतापूर्वक क्यों नहीं हाँकते हैं, उस समय वे दीनबन्धु मुझे अपना भक्त तथा बालक समझकर, कुछ बुरा नहीं मानते थे।

हे राजन् ! उन्हीं की कृपा के बल पर मैं बड़े-बड़े प्रतापी तथा पराक्रमी राजाओं को नीचा दिखा, मत्स्य बेधकर द्रौपदी को लाया था तथा आपके मना करने पर भी उनका हृदय कौरवों के समक्ष स्पष्ट हो गया था। जिस समय कौरवों द्वारा भेजे गये दुर्वासा ऋषि ने आधीरात के समय वन में आकर हमसे भोजन माँगकर शाप देने की इच्छा प्रकट की थी, उस समय दीनबन्धु श्री कृष्णचन्द्रजी ही हम लोगों को अपना भक्त जानकर उस स्थान पर आ पहुँचे तथा उन्होंने दुर्वासा ऋषि से शाप के स्थान पर आशीर्वाद दिलवाया था। इन बातों को याद कर-करके मेरा हृदय शोक एवं चिन्ता से फटा जाता है। जिस प्रकार किसी मुर्दे को वस्त्र एवं आभूषण पहिनाकर बैठा दिया जाय, वही हाल भगवान् मुरलीमनोहर के चले जाने के उपरान्त मेरा भी समझना चाहिए। हे पृथ्वीवल्लभ ! मैं उनके साथ ही एक थाली में भोजन करता था तथा उन्हीं के साथ एक शय्या पर सोता था। वे परब्रह्म प्रभु होकर भी मेरा इतना सम्मान करते थे। अब उस प्रकार-से कौन अन्य व्यक्ति मेरी रक्षा करेगा ? मुझे कौन उतना सम्मान देगा तथा हम किसके भरोसे पर अब उतना अभिमान कर सकेंगे ? जिस समय श्री कृष्णचन्द्रजी यहाँ महाभारत कराने के उपरान्त द्वारकापुरी में पहुँचे, उस समय उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे कुल के यदुवंशी लोग अत्यन्त बलवान् हैं। मेरे चले जाने के पश्चात् ये लोग संसारी जीवों को बहुत कष्ट देंगे, अतः अपने सामने ही इन सबका नाश भी करा देना चाहिए। ऐसा विचार कर, उन्होंने अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाथों उनका संहार करना अधर्म समझकर, दुर्वासा ऋषि द्वारा शाप दिलवा दिया। उस शाप के कारण छप्पन करोड़ यदुवंशी आपस में ही लड़कर इस प्रकार मर गये, जिस प्रकार कि समुद्र में रहनेवाले बड़े जल-जीव छोटे जीवों को खा जाते हैं। हे धर्मराज! यह समाचार देते हुए मेरे शरीर से प्राण निकल क्यों नहीं जाते कि गोलोक जाते समय भगवान् श्यामसुन्दर ने दारुक सारथी द्वारा मुझे यह सन्देश कहला भेजा था कि तुम द्वारकापुरी की स्त्रियों, बालकों, वृद्धों तथा सम्पत्ति को हस्तिनापुर ले जाना तथा हमारे वियोग का शोक मत करना। हमने तुम्हें जो गीता-ज्ञान बतलाया है, उसके अनुसार शरीर को मिथ्या तथा चैतन्य आत्मा को सत्य जानकर, संसारी मोह-माया से पृथक् रहना। अतः हे पृथ्वीनाथ! अब जीने में कोई आनन्द नहीं है। अब तो इसी में भलाई है कि हम लोग तपस्या में अपने शरीर को गला दें।" इतना कहकर अर्जुन फिर विलाप करने लगे।

अर्जुन के ये वचन सुनकर भीमसेन आदि अपने भाइयों सहित रोते हुए राजा युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा—"हे अर्जुन! अब हम जीवित रहकर क्या करेंगे? यह राजपाट हमारे किस काम आयेगा? अब हम लोगों को भी यहाँ रहना उचित नहीं है। परीक्षित को राजगद्दी देकर, अब हम लोगों को भी बदरी-केदार में चलकर अपना शरीर त्याग देना चाहिए।" धर्मराज युधिष्ठिर की इस बात को सब भाइयों ने स्वीकार कर लिया। जब यह रुदन का शब्द महलों में पहुँचा तथा स्त्रियों को भगवान् श्यामसुन्दर के साकेत धाम पधारने का समाचार मिला, उस समय कुन्ती तथा द्रौपदी आदि ने रो-रोकर ऐसा विलाप किया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुन्ती ने उसी शोक में व्याकुल होकर, भगवान् श्यामसुन्दर के चरण-कमलों का ध्यान धरकर अपना शरीर त्याग दिया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने पुरोहितों को बुलाकर अपने पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठाया। बज्रनाभ नामक एक बालक को, जो भगवान् श्यामसुन्दर के वंश में जीवित बच गया था, धर्मराज युधिष्ठिर ने मथुरा का राज्य प्रदान किया। तत्पश्चात् युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी ने अपने वस्त्र उतारकर, एक-एक कौपीन तथा चादर पहिन ली। इस प्रकार तपस्वियों का वेष बनाकर ये राजमन्दिर से बाहर निकल आये। उस समय जो भी ब्राह्मण तथा याचक उनके सम्मुख आये, उन्हें मुँहमाँगा द्रव्य दान में देकर सब के सब उत्तराखण्ड को चल दिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने गीता में अर्जुन को जो ज्ञान दिया था, उसी पर परस्पर चर्चा करते हुए वे कुछ दिनों तक वन में रहकर भगवान् श्यामसुन्दर का स्मरण तथा तपस्या करते रहे। तत्पश्चात् हिमालय में जाकर श्रीहरि-चरणों का ध्यान धर, द्रौपदी-सहित युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने अपना शरीर गला दिया। उधर विदुरजी ने भी प्रभास क्षेत्र में जाकर अपना शरीर त्याग दिया।

इधर राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् राजा परीक्षित धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उन्होंने अपने न्याय द्वारा सम्पूर्ण प्रजा को प्रसन्न रक्खा तथा तीन बार अश्वमेध यज्ञ करके कलियुग को दण्ड दिया। राजा परीक्षित ने अपना विवाह राजा विराट् की पौत्री से किया। वे दान तथा धर्म-कार्यों में इतना धन व्यय करते थे कि एक बार यज्ञ करते समय उनका सारा ही धन समाप्त हो गया था। उस समय भगवान् श्यामसुन्दर का स्मरण करने से उन्हें बहुत-से धन की प्राप्ति हो गई थी, जिससे उनका यज्ञ भली भाँति सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार तीसरा अश्वमेध यज्ञ करते समय जब राजा युधिष्ठिर को धन की आवश्यकता पड़ी थी, उस समय नारद मुनि श्री श्यामसुन्दर को हस्तिनापुर में लिवा लाये थे। तब उन्होंने राजा युधिष्ठिर को यह बताया था कि हे राजन्! पिछले युग में राजा मरुत् ने ऐसा यज्ञ किया था कि उसके यहाँ ब्राह्मणों को प्रतिदिन स्वर्ण-निर्मित नवीन थाली, लोटा तथा चौकी पर भोजन कराया जाता था। उन जूठे बर्तनों को प्रतिदिन नगर की उत्तर दिशा के एक गड्ढे में फिकवा दिया जाता था। उस यज्ञ के सम्पन्न होने के उपरान्त जितने सोने के बर्तन बच गये वे अभी तक उस नगर की दक्षिण दिशा में गड़े हुए हैं। अतः तुम उन बर्तनों को निकलवाकर अपना यज्ञ सम्पन्न करो। भगवान् श्यामसुन्दर की यह आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर ने उन्हीं बर्तनों को मँगवाकर अपना यज्ञ सम्पन्न किया था। इस प्रकार वे भक्तभयहारी वसुदेव-नन्दन भक्तों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।"

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने पूछा—"हे सूतजी! राजा परीक्षित ने कलियुग को किसलिए दण्ड दिया था, वह कथा हमें सुनाने की कृपा करें।" सूतजी बोले—"हे ऋषियो! जब राजा परीक्षित सातों द्वीपों के राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर चुके, तब उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि महाराज युधिष्ठिर के राज्यकाल तक तो द्वापर युग था, परन्तु अब कलियुग आया है, अतः हम अपने राज्य में कलियुग को नहीं रहने देंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसा विचार कर राजा परीक्षित यह देखने के लिए कि देखें हमारे राज्य में अभी कलियुग आया है या नहीं, दिग्विजय करने के लिए निकल पड़े। वे जिस किसी देश में पहुँचते थे, वहीं के मनुष्यों को धर्म-चर्चा करते तथा परब्रह्म के गुणानुवादों का वर्णन करते हुए पाते थे; क्योंकि उस समय तक वहाँ कलियुग ने प्रवेश नहीं किया था। उन लोगों को देखकर राजा परीक्षित अपने प्रजाजनों से इस प्रकार कहते जाते थे कि आप लोग इसी प्रकार अपने धर्म-कर्म पर स्थिर रहिएगा। जिस देश में भी राजा परीक्षित की सेना पहुँचती थी, उसी देश के राजा महाराज परीक्षित का तेज एवं प्रताप देखकर उनसे आदर के साथ मिलते, भेंट देते तथा बहुत प्रकार से प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहते थे कि हे पृथ्वीपति! हम लोग तो महाराज युधिष्ठिर एवं महामना अर्जुन के समय से ही आपके अधीन चले आ रहे हैं। महाराज परीक्षित यह शब्द सुनकर उन राजाओं का अत्यन्त सम्मान करते थे तथा किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देते थे। जो लोग उनके पूर्वजों तथा पितामहों का यश-गान करते थे, उन्हें वे शिरोपाँव, धन आदि देकर सप्रेम बिदा करते थे। इसी प्रकार दिग्विजय करते हुए राजा परीक्षित कुरुक्षेत्र में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक नदी के किनारे यह दृश्य देखा कि एक वृक्ष के नीचे, एक बैल खड़ा हुआ है। उसके तीन पाँव टूटे हुए हैं तथा वह केवल एक ही पाँव का सहारा लिए हुए है। उसके पीछे ही एक रोती, हाँफती-काँपती हुई दुबली-पतली गाय खड़ी थी। उस समय वे गाय तथा बैल परस्पर कुछ वार्तालाप कर रहे थे। राजा परीक्षित उस बैल तथा गाय का ऐसा हाल देखकर, दयार्द्र हो, एक वृक्ष की ओट में खड़े होकर उनकी बातचीत सुनने लगे। उसी समय उन्हें यह दिखाई दिया कि कुछ दूरी से एक श्याम रंगवाला भयानक शूद्र राजा का वेष बनाये हुए, उस गाय तथा बैल की ओर दौड़ा चला आ रहा है।"

सोलहवाँ अध्याय

बैलस्वरूप धर्म तथा गोस्वरूपा पृथ्वी का परस्पर वार्तालाप; वृक्ष की ओट से राजा परीक्षित द्वारा उसका सुना जाना

सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो! उस बैलरूपी धर्म ने गायरूपी पृथ्वी से पूछा—"तुझे ऐसा क्या कष्ट है, जो तू रो रही है? यदि तुझे मेरे तीनों पैर टूट जाने का दुःख हो तो इसका कारण केवल यही है कि कलियुग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में पापी मनुष्य बहुत उत्पन्न हो गये हैं। उन्होंने धर्म को त्याग दिया है तथा संसार से शुभ कर्म उठ गये हैं। कलियुग के लोग दामाद से रुपया लेकर, अपनी कन्या का विवाह करते हैं तथा उन्होंने अपने पुत्र का पालन करना इस विचार से छोड़ दिया है कि तरुण हो जाने पर वह उनसे झगड़ा करने लगेगा। ब्राह्मण वेद पढ़ने में आलस्य कर उठते हैं तथा शूद्र वेद-पुराणों को पढ़ने की इच्छा रखते हैं। क्षत्रियों ने भी ब्राह्मणों की सेवा करना तथा प्रजा की रक्षा करना छोड़ दिया है। राजाओं ने प्रजा से दोनों फसलों का लगान लेना आरम्भ कर दिया है। यदि कुछ लगान शेष रह जाता है, तो वे उसे वसूल करने के लिए प्रजा को बहुत तङ्ग करते हैं। यदि तू इस कारण रो रही हो कि तुझ पर अपने श्रीचरणों को रखनेवाले भगवान् श्यामसुन्दर अब गोलोक को सिधार गये हैं, अतः कलियुग के राजा अधर्मी होकर तेरे ऊपर अत्याचार करेंगे—तो तू अपने मन का वह हाल भी मुझसे कह।"

बैल की यह बात सुनकर गौ ने कहा—"तुम सब बातों को जानते हुए भी, मुझसे इस प्रकार क्यों पूछ रहे हो? जिस कारण तप, क्षमा तथा दया-रूपी तुम्हारे तीन पाँव टूट गये, केवल एक सत्य का पाँव रह गया, उसी कारण मैं भी रो रही हूँ। धर्म तथा दया से ही मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। जब मनुष्य ने दया, धर्म तथा क्षमा को छोड़ दिया है, तब वह परमेश्वर को किस प्रकार पहिचान सकेगा? वह यह भी नहीं जान सकेगा कि धर्म करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। लोग कहते हैं कि हमारा मन संसार से विरक्त नहीं होता, उसका कारण यही है कि बिना ज्ञान प्राप्त हुए संसारी मोह-माया का छूटना अत्यन्त दुष्कर है। मैं चारों वर्णों के मनुष्यों तथा राजाओं के लिए शोक कर रही हूँ; क्योंकि कलियुग के आने पर इन सबको दुःख प्राप्त होगा। मेरा अधिक रोना इसलिए भी है कि वृन्दावनविहारी आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी, जो अपने चरण-कमलों द्वारा मेरे ऊपर शंख, चक्र, गदा तथा पद्म के चिह्न बनाया करते थे, अब वैकुण्ठलोक को पधार गये हैं। संसार में ऐसा कौन-सा जीव है, जिसे उन श्री मुरलीमनोहर के अन्तर्धान हो जाने का दुःख न हुआ हो? भगवान् श्यामसुन्दर में जो छत्तीस गुण थे उन्हें मैं तुमसे कहती हूँ। वे गुण ये हैं—सत्य बोलना, आचार से रहना, हृदय में धैर्य धारण करना, क्षमाशील रहना, संसारी माया-मोह से विरक्त होना, ईश्वर जो कुछ दे उसी में सन्तोष प्राप्त करना, मधुर वचन बोलना, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखना, सब छोटे-बड़ों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को समान मानकर किसी का निरादर न करना, किसी के दुर्वचन सुनकर बुरा न मानना, किसी कार्य में शीघ्रता न करना, सुनी हुई बात को स्मरण रखना, अपने कहे हुए वचन को कभी न भूलना, ज्ञान को स्थिर रखना; मन में वैराग्य धारण कर स्त्री तथा पुत्रों से अधिक मोह न करना, धन प्राप्त कर किसी से अभिमान की बात न कहना, अधिक बलशाली होने पर भी निरभिमानी बने रहना, सबसे श्रेष्ठ होना, सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता बनना, पराये दुःख को देखकर स्वयं भी दुःख का अनुभव करना, किसी से भय न मानना, यदि कोई अपना दुःख कहे तो उसे ध्यानपूर्वक सुनना, भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों की बात जानना, अपने हृदय का भाव किसी के सामने प्रकट न कर समुद्र के समान गम्भीर बने रहना, धर्म की ओर से विमुख न होना, धर्म तथा वेद की रक्षा करना, संसार में ऐसी कीर्ति अर्जित करना जिससे सब लोग भला कहें, शीलवान् रहना, किसी प्राणी को दुःख न पहुँचाना, दीनों की इच्छा को पूर्ण करना, जगदीश्वर का ध्यान धरते रहना, तीनों लोकों में अपने से अधिक बलवान् किसी को न समझना, साधु-ब्राह्मण एवं सन्तों का स्वागत-सत्कार करना तथा परोपकार में रत रहना। हे बैलरूपी धर्म ! भगवान् श्यामसुन्दर में यद्यपि ये सभी गुण विद्यमान थे, फिर भी उन्हें किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं था। इन छत्तीस गुणों के अतिरिक्त भी वे और बहुत-से शुभ कर्मों को धारण करते हैं। जिस समय मैं उनका स्मरण करती हूँ, उस समय मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। देखो, जिस लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण देवता तथा संसारी जीव कठिन जप-तप करते हैं, वही लक्ष्मी कमलवन को त्याग कर सदैव उन्हीं भगवान् मुरलीमनोहर की सेवा में संलग्न रहती है। उन्हीं श्यामसुन्दर की दासी मैं भी हूँ। जिस समय द्वापर युग के अन्त में तुम्हारे दो पाँव टूट गये थे तथा मैं कंस आदि राजाओं द्वारा अधर्म किए जाने के कारण अत्यन्त दुखी हो गई थी, उस समय भगवान् वैकुण्ठनाथ ने यदुकुल में अवतार ग्रहण कर मेरा तथा तुम्हारा शोक दूर किया था तथा अपनी परम पावन कीर्ति को सम्पूर्ण विश्व में फैलाया था। ऐसे परोपकारी का वियोग किसे सहन होगा ?" इस प्रकार गायरूपी पृथ्वी धर्मरूपी बैल से बातें कर रही थी तथा राजा परीक्षित छिपकर खड़े हुए, उन्हें सुन रहे थे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्रहवाँ अध्याय

बैलरूपी धर्म तथा गौरूपी पृथ्वी के पास कलियुग का आना तथा राजा परीक्षित से वार्तालाप करना; राजा परीक्षित का उसे रहने के लिए स्थान बताना

सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! जिस समय का यह प्रसंग है, उसी समय रथ पर सवार वह शूद्र भी, जो राजा के समान वेष बनाये हुए था तथा अपने साथ बहुत-सी सेना लिए हुए था, काले वस्त्र तथा मुकुट को धारण किए हुए, हाथ में डण्डा लिए, उस गाय तथा बैल के पास आकर रथ से उतर पड़ा। तत्पश्चात् वह गाय तथा बैल को अपने पाँव की ठोकर मारकर धमकाने लगा। उसके भयानक रूप को देखकर वे दोनों अत्यन्त भयभीत हो गये। उस समय गाय रोने लगी तथा बैल ने डरकर मल-मूत्र कर दिया। उस अधर्म को राजा परीक्षित अधिक देर तक नहीं देख सके। वे अपने धनुष पर बाण चढ़ाये हुए सामने आ पहुँचे तथा अत्यन्त क्रोध करके उस नृपवेषधारी शूद्र से कहने लगे—"अरे नीच ! मैं सातों द्वीपों का राजा हूँ। तू किस देश का राजा है जो हमारे राज्य में रहकर, राजाओं-जैसा वेष बनाये हुए मेरी प्रजा को दुःख दे रहा है ? राजाओं का यह धर्म कभी नहीं है कि वे अपनी प्रजा को कष्ट पहुँचावें। त्रिलोकीनाथ भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज साकेत धाम को पधार गये हैं तथा गाण्डीव धनुष-धारी मेरे पितामह महामना अर्जुन भी वैकुण्ठ सिधार गये हैं, सम्भवतः ऐसा समझकर ही तू पृथ्वी को राजा-विहीन जानकर गाय तथा बैल को कष्ट पहुँचा रहा है ? तू ऐसा अधर्म करना छोड़ दे, अन्यथा मैं तुझे अभी मारे डालता हूँ।"

राजा परीक्षित की यह बात सुनकर वह शूद्र भयभीत हो, एक ओर खड़ा हो गया। तदनन्तर राजा ने बैल से पूछा—"हे वृषभ ! तुम कौन हो ? तुम्हारे ये तीन पाँव किसने तोड़े हैं ? तुम कोई देवता तो नहीं हो, जो मुझे भ्रम में डालने के लिए यहाँ आये हो ? मैंने अपने राज्य में तुम्हारे समान दुखी किसी को नहीं देखा है। परन्तु अब तुम शोक मत करो। मेरे आ जाने से तुम्हारा सब भय नष्ट हो गया है। अब मैं तुम्हारे कष्ट को दूर कर दूँगा।" बैल से ये शब्द कहकर परीक्षित ने गाय से भी कहा—"हे गो ! तुम रोओ मत; मैं अधर्मी तथा पापियों को दण्ड देने के लिए प्रस्तुत हूँ। जिस राजा के देश में प्रजा कष्ट पाती है, उसके ये चार गुण नष्ट हो जाते हैं—(१) उसकी कीर्ति नहीं रहती, (२) आयु कम रह जाती है, (३) ज्ञान नष्ट हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है तथा (४) परलोक बिगड़ता है। इसलिए राजाओं को यह चाहिए कि वे अपने राज्य में निवास करनेवाले दुखी जनों का दुःख दूर कर दें। जो राजा इस धर्म को धारण करता है, उसे फिर किसी प्रकार का जप-तप करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह विचार कर अब मैं संसारी जीवों को दुःख देनेवाले इस शूद्र को मार डालूँगा।" पृथ्वी से इतनी बात कहकर राजा परीक्षित ने बैल से फिर पूछा—"तुम्हारे पाँव किसने तोड़े हैं, यह तुम मुझे बतलाओ। मैं उसके हाथ कटवा लूँगा। मैं भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज का दास हूँ। यदि तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूँगा, तो मेरे वंश को दोष लगेगा। यदि कोई देवता भी मेरे राज्य में आकर किसी को दुःख पहुँचाना चाहे, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ, फिर किसी मनुष्य की क्या शक्ति है जो मेरी प्रजा को किसी प्रकार का दुःख पहुँचा सके?"

राजा परीक्षित की बात सुनकर बैलरूपी धर्म ने अपना मस्तक नीचा करके कहा—"हे राजन्! महाराज पाण्डु के वंश के राजा इसी प्रकार धर्मात्मा होते आये हैं। उनके राज्य में कभी किसी ने दुःख नहीं पाया। आपके पितामह अर्जुन ऐसे धर्मात्मा तथा हरि-भक्त थे कि त्रिलोकीनाथ भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी स्वयं उनके रथ के सारथी बने। अतः आपको भी यही उचित है कि आप दरिद्र तथा दुखी लोगों का सदैव ध्यान रक्खें। मैं वेद-शास्त्रों के वचन के कारण लाचार हूँ। मैं स्वयं यह नहीं जानता कि मुझे किसने कष्ट पहुँचाया है। ऐसी स्थिति में मैं किसका नाम बताऊँ? मैं जिसका नाम बताऊँगा, उसके प्रति तुम संकोच करोगे। इसलिए यही समझ लो कि मैं अपने प्रारब्ध का फल भोग रहा हूँ। संसार में यह बात पूर्णरूपेण प्रकट है कि सब प्राणी अपने-अपने अधर्मों के कारण दुःख प्राप्त करते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि दुःख अपने मन के सङ्कल्प-विकल्पों के कारण होता है। इसके विपरीत कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य को सुख-दुःख परमेश्वर की इच्छा से प्राप्त होता है। परन्तु इस बात पर यों विचार करना चाहिए कि जो पूर्णब्रह्म परमेश्वर अपनी इच्छा से सब जीवों को उत्पन्न करते हैं, वे किसी को दुःख क्यों देना चाहेंगे? अतः इस सम्बन्ध में त्रिभुवनपति श्री नारायणजी को दोष लगाना उचित नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य अधर्म करने के कारण दुःखरूपी दण्ड पाता है। सो इस सम्बन्ध में मुझे यही कहना है कि अधर्म करना भी मनुष्य के वश की बात नहीं है;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्योंकि मनुष्य की इच्छा-शक्ति के कारण ही सब काम नहीं हो जाते हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि दुःख तो शत्रु द्वारा प्राप्त होता है, मित्र कभी दुःख नहीं पहुँचाता, सो इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि शत्रु उत्पन्न करना भी प्राणी के ही अधीन रहता है; क्योंकि जब तक प्राणी अपनी माता के गर्भ में रहता है, तब तक उसका कोई शत्रु नहीं होता। बड़ा होने पर अन्य लोगों से विरोध करके वह स्वयं ही अपने शत्रु उत्पन्न कर लेता है। इन सब बातों पर विचार करने के कारण मैं किसी को अपना शत्रु कहकर उसका नाम नहीं बतला सकता। उसे आप अपनी बुद्धि से ही समझ लें।"

राजा परीक्षित ने बैलरूपी धर्म द्वारा इन ज्ञानपूर्ण बातों को सुनकर अपने हृदय को पवित्र कर, भगवान् श्यामसुन्दरजी के चरण-कमलों का ध्यान किया। उस समय उन्हें यह अपने-आप विदित हो गया कि बैल के रूप में धर्म, गौ के रूप में पृथ्वी और राजा का वेष बनाये हुए शूद्र के रूप में कलियुग यहाँ उपस्थित है तथा इसी कलियुग ने धर्म के पाँव तोड़े हैं और पृथ्वी को दुखी किया है। इस पृथ्वी के स्वामी तथा रक्षक पृथ्वीनाथ श्री कृष्णचन्द्रजी जो परलोक सिधार गये हैं, उन्हीं के दुःख में पृथ्वी व्याकुल हो रही है। पापी का नाम लेने से पाप लगता है तथा धर्मात्मा का नाम लेने पर पुण्य होता है, यही विचार करके बैलरूपी धर्म ने अपने शत्रु कलियुगरूपी पापी का नाम नहीं बताया था। राजा परीक्षित को यह भी ज्ञात हो गया कि पहिले धर्म के चार पाँव—तप, सत्य, दया एवं क्षमा—स्थिर थे; परन्तु कलियुग में पाप अधिक बढ़ जाने के कारण उसके तप, दया एवं क्षमारूपी तीन पाँव टूट गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यों में अहङ्कार भर गया है। वे मदिरा-पान तथा पर-स्त्री-गमन करने लगे हैं। धर्म का जो सत्यरूपी केवल एक पाँव शेष बचा है, उसे भी यह कलियुग अब तोड़ देना चाहता है। इन बातों का ज्ञान होते ही, राजा परीक्षित ने बैल तथा गाय को तो धैर्य बँधाया, फिर अत्यन्त क्रोधपूर्वक तलवार उठाकर कलियुग को मारने के लिए दौड़ पड़े। जब कलियुग ने यह देखा कि यह धर्मात्मा राजा क्रोधावेश में मेरे प्राण लेना चाहता है और मुझमें इससे युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं है; तब वह अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त राजा परीक्षित के चरणों पर गिर पड़ा तथा हाथ जोड़कर विनती करने लगा। राजा ने जब उसे शरण में आया हुआ जाना, तब वे दया तथा धर्म का विचारकर द्रवीभूत हो गये। उन्होंने अपनी तल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वार को नीचा कर लिया। तत्पश्चात् वे कलियुग से कहने लगे—"हे कलियुग! जहाँ तक मेरे पितामह राजा युधिष्ठिर तथा महामना अर्जुन का राज्य था, वहाँ तक तुझे प्रवेश नहीं करना चाहिए। तू अधर्मी तथा पापी लोगों का साथी है। अतः तू जिस देश में रहेगा, उस देश के राजा का मन धर्म से विमुख हो जायेगा। तू लालच, अहङ्कार, झूठ, कपट, कलह, काम, क्रोध एवं मोह से परिपूर्ण है, अतः भरतखण्ड में जहाँ तक मेरा राज्य है, वहाँ तक तू मत रह; ताकि मेरे राज्य के सब लोग बराबर धर्म-कर्म करते रहें। इस भरत-खण्ड में जप, तप, यज्ञ, दान, धर्म, व्रत एवं परमेश्वर का पूजन करने के कारण मनुष्य इस संसार में अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करने के पश्चात् मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं। उन्हें कभी किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। यदि ऐसे स्थान पर तू रहेगा और अपना उपद्रव मचायेगा, तो यहाँ के लोग भी पापी तथा अधर्मी हो जायेंगे। इसलिए तू मेरी आज्ञानुसार कार्य कर, अन्यथा तेरे प्राण बचना कठिन है।"

राजा परीक्षित की इस आज्ञा को सुनकर कलियुग ने हाथ जोड़कर विनय करते हुए कहा—"हे राजन्! आप धर्मात्मा एवं न्यायकर्ता हैं, अतः अब आप मेरी प्रार्थना पर भी कुछ ध्यान दीजिए। पितामह ब्रह्माजी ने सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलियुग—इन चार युगों को बनाकर प्रत्येक युग की अवधि निश्चित कर दी है। इनमें सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर तो अपनी अवधि को पूर्ण कर चुके हैं। अब अब मैं कलियुग ही शेष रह गया हूँ। मेरे शासन करने का समय अब प्रारम्भ हुआ है और ऐसी स्थिति में आप मुझे यह आज्ञा दे रहे हैं कि मैं आपके राज्य में निवास न करूँ। आपका राज्य सातों द्वीपों में फैला हुआ है। अतः अब आपही मुझे बताइये कि मैं कहाँ जाऊँ। इसके अतिरिक्त आप यह भी स्मरण रक्खें कि पितामह ब्रह्माजी ने चारों युगों की जो अवधि निश्चित कर रक्खी है, वह किसी प्रकार भी मिटाये नहीं मिट सकता। हे पृथ्वीनाथ! इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। वह यह कि आपने मेरे अवगुणों की ओर तो विचार कर लिया, परन्तु मेरे गुणों की ओर अभी दृष्टिपात नहीं किया है। मुझमें एक गुण सबसे अधिक है, वह मैं आपसे निवेदन करता हूँ। सत्य-युग में, यदि किसी राज्य में कोई एक मनुष्य भी पाप करता था तो उसका दण्ड राज्य के सब लोगों को भोगना पड़ता था। त्रेता में एक मनुष्य के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधर्म करने पर उसका फल गाँव भर को मिलता था। इसी प्रकार द्वापर में एक व्यक्ति के अधर्म करने पर पूरे परिवार को उस पाप का भागी बनकर दण्ड उठाना पड़ता था; परन्तु कलियुग में जो मनुष्य पाप करता है, मैं केवल उसी को पकड़कर उसके पाप करनेवाले अंग को ही दण्ड देता हूँ। अन्य युगों में मानसी पाप करने पर भी मनुष्य को उसका दण्ड भोगना पड़ता था। परन्तु मेरे युग (कलियुग) में मानसी पाप होता ही नहीं है। हाँ, मानसी पुण्य का फल अवश्य मिलता है। अब आप ही सोचिए कि मेरा यह कितना बड़ा गुण है।"

कलियुग की यह बात सुनकर भी जब राजा परीक्षित को उस पर दया नहीं आई, तब कलियुग इस प्रकार फिर कहने लगा—"हे सम्राट्! इसके अतिरिक्त मुझमें एक बड़ा गुण और भी है। वह यह कि सत्ययुग में मनुष्य को अपना परलोक सुधारने के लिए दस सहस्र वर्षों तक तपस्या करनी पड़ती थी, तब कहीं उसकी मनोभिलाषा पूर्ण होती थी। त्रेता युग में बहुत-सा द्रव्य व्यय करने के उपरान्त सहस्रों वर्षों तक जब यज्ञ किये जाते थे, तब मनुष्य का परलोक सुधरता था। इसी प्रकार द्वापरयुग में सौ वर्षों तक श्री नारायणजी का पूजन एवं ध्यान करने पर मनुष्य का परलोक सुधरता था; परन्तु मेरे राज्य में यदि कोई व्यक्ति सच्चे हृदय से एक क्षण के लिए भी भगवान् श्यामसुन्दर का ध्यान करता है तथा उनकी लीला-कथाओं को सुनता है, तो वह अनेक जन्मों के पापों से छूटकर उसी समय अपना मनोरथ प्राप्त कर लेता है।"

कलियुग के इस गुण को सुनकर राजा परीक्षित को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय कलियुग ने फिर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे महाराजाधिराज! अब आप कृपाकर मुझे जीवन-दान दीजिए तथा ऐसा स्थान बताइये, जहाँ जाकर मैं निवास कर सकूँ। मैं इस समय आपके भय से भयभीत हो रहा हूँ, अतः आप जो भी आज्ञा देंगे, मैं उसी के अनुसार कार्य करूँगा।" जब कलियुग ने इस प्रकार बहुत प्रार्थना की तब राजा ने उसे दीन जानकर अपने हृदय में इस धर्म का विचार किया कि शरण में आये हुए व्यक्ति को कभी मारना नहीं चाहिए। ऐसा सोचकर राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा—"हे कलियुग! मैं तुम्हें रहने के लिए स्थान बताता हूँ। जिस जगह मनुष्य जुआ खेलते हों, जहाँ मदिरा बिकती हो, जिस स्थान पर वेश्या रहती हो तथा जहाँ जीवहिंसा होती हो, वहाँ जाकर तुम अपना निवास करो।" राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परीक्षित की यह आज्ञा सुनकर कलियुग ने फिर विनम्रता से कहा—"हे राजन्! इन चार स्थानों में ही मेरा पूरा परिवार न रह सकेगा; अतः आप मुझे कुछ स्थान और भी बताइये।" राजा परीक्षित दयालु होकर बोले—"जिस कृपण व्यक्ति के पास धन तथा स्वर्ण हो; परन्तु वह उसे दान तथा धर्म के कार्यों में न लगाता हो, वहाँ जाकर भी तुम रह सकते हो। इन पाँच स्थानों के अतिरिक्त यदि किसी अन्य स्थान पर तुम प्रवेश करोगे, तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।"

तब कलियुग ने राजा परीक्षित को धर्मात्मा और बलवान् देखकर अपने मन में इस प्रकार सोचा—"अभी राजा की यह आज्ञा मान लेनी चाहिए। इसके पश्चात् राजा का मन जब किसी अवसर पर धर्म से फिरेगा, तब मैं अवसर पाकर अपना कार्य-साधन कर लूँगा।" यह विचार कर कलियुग 'जो आज्ञा' कह, राजा से बिदा लेकर उन स्थानों में निवास करने के लिए चला गया, जो राजा परीक्षित ने उसे रहने के लिए बताये थे।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता हो, उसे इन पाँच स्थानों से सदैव दूर रहना चाहिए। किसी राजा को तो ये कार्य कभी भी नहीं करने चाहिए, क्योंकि वह प्रजा का स्वामी होता है। अस्तु, कलियुग के जाने के उपरान्त राजा परीक्षित ने उस बैल के टूटे हुए तीनों पाँवों को अपने धर्म द्वारा ठीक कर दिया तथा गाय को भी विविध प्रकार से धैर्य बँधाया। तब बैलरूपी धर्म तथा गौरूपिणी पृथ्वी भी अपने-अपने स्थान को चले गये। राजा परीक्षित भी वहाँ से लौटकर अपने घर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को यह सब संवाद सुनाया। राजा परीक्षित की बात सुनकर सब लोगों ने प्रसन्न होकर कहा—"हे राजन्! आपने बहुत अच्छा कार्य किया है। इससे आपके राज्य में कलियुग का प्रवेश नहीं हो सकेगा।" तदनन्तर राजा परीक्षित ने अपने सम्पूर्ण राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि प्रत्येक व्यक्ति जीवहिंसा, मद्यपान, वेश्यागमन तथा जुए से दूर रहे। इसके अतिरिक्त सभी लोग अपने द्रव्य में से कुछ धन दान में दिया करें। जो व्यक्ति देवता, साधु-सन्त, ब्राह्मण, गौ, वेद तथा शास्त्रों को नहीं मानेगा तथा उपर्युक्त पाँचों निषिद्ध कार्यों में से कोई कार्य करेगा, उसका सम्पूर्ण धन तथा अन्न छीन लिया जायेगा और वह शासकीय दण्ड का भागी बनेगा। महाराज परीक्षित द्वारा की गई इस घोषणा का यह प्रभाव हुआ कि सब लोग अधर्म करना छोड़कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धार्मिक कार्यों में अपना मन लगाने लगे। इस प्रकार राजा परीक्षित धर्म की वृद्धि करते हुए हस्तिनापुर का राज्य करने लगे। वे सदैव आनन्दकन्द व्रज-चन्द्र श्री श्यामसुन्दर के चरित्रों को सुनते तथा उन्हीं के चरणों में अपना ध्यान लगाये रहते थे। उनके राज्य में सम्पूर्ण प्रजा भी अपने धर्म पर दृढ़ रहकर आनन्द का उपभोग करती थी।"

अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित का शिकार खेलने के लिए वन में जाना तथा हृदय में कलियुग का प्रवेश हो जाने के कारण समीक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डालना। समीक ऋषि के पुत्र द्वारा राजा परीक्षित को शाप

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"जब तक राजा परीक्षित ने शासन किया, तब तक उनकी न्याय-नीति एवं धर्मपरायणता के कारण कलियुग ने उनके राज्य में प्रवेश नहीं किया। राजा परीक्षित रथ पर आरूढ़ होकर प्रजा की देखभाल करने के लिए चारों दिशाओं में भ्रमण करते तथा एकच्छत्र राज्य करते थे। उन्होंने कलियुग की कोई चिन्ता न करके उसे पड़ा रहने दिया।"

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से कहा—"हे सूतजी! आप परब्रह्म प्रभु की लीलाओं का वर्णन करने में सब भाँति श्रेष्ठ तथा योग्य हैं। आपने हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करके यह अमृतरूपी कथा-रस पिलाया है। आपका सत्सङ्ग प्राप्त कर हम लोगों का जीवन भी धन्य हो गया। यदि आप यह कहें कि तुम लोग ऋषि-मुनि हो, इसलिए तुम्हारा जन्म वैसे ही सुधर जायेगा तो इस सम्बन्ध में आप यह निश्चय जानिये कि जो सुख सत्सङ्ग से प्राप्त होता है, वह स्वर्ग तथा वैकुण्ठ में भी कभी नहीं मिलता है। अब आप कृपा कर हमें वह कथा सुनाइये, जिस प्रकार कि राजा परीक्षित ने अपने शरीर का परित्याग किया था।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"हे ऋषियो! जब राजा परीक्षित वृद्धावस्था को प्राप्त हुए, तब एक दिन उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि घर में जीव-हिंसा करना मना है, अतः हमने उसे त्याग रक्खा है; परन्तु वन में जाकर शिकार खेलना राजाओं का धर्म है, क्योंकि शिकार करने के बहाने वह अनेक देशों का भ्रमण कर लेता है। दूसरी बात यह भी है कि जो हिरन बूढ़ा हो गया हो उसे शिकार में अवश्य मारना चाहिए। राजा लोग सदैव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ऐसा ही करते आये हैं, अतः हमें भी शिकार खेलने के लिए वन में अवश्य जाना चाहिए।" ऐसा निश्चय कर एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने के लिए वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बहुत-से जीवों को मारा। मध्याह्न के समय जब उन्होंने एक घायल हिरन के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया तब अपने साथियों से अलग होकर वे बहुत दूर जा पहुँचे। और आगे चलने पर राजा परीक्षित को धूप के कारण बहुत जोर की प्यास लगी। तब राजा पानी ढूँढ़ने के लिए वन में चारों ओर भ्रमण करने लगे। घूमते-घूमते वे उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ समीक ऋषि का आश्रम बना हुआ था। समीक ऋषि ऐसे महापुरुष थे कि बछड़े द्वारा दूध पीते समय गौ के थन से जो दूध नीचे टपकता था उसी को पीकर दिन-रात ईश्वर का भजन किया करते थे। राजा उस आश्रम को देखते ही ऋषि के पास जा पहुँचे। समीक ऋषि उस समय परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो अपनी आँखें बन्द किए बैठे थे। राजा ने उनके पास जाकर कहा—"हे ऋषि! मैं अभिमन्यु का पुत्र राजा परीक्षित हूँ। इस समय मुझे बहुत जोर की प्यास लग रही है, अतः आप कृपा कर मुझे थोड़ा-सा जल पिला दें।" राजा ने इस प्रकार कई बार पानी की माँग की, परन्तु उस समय समीक ऋषि ब्रह्माण्ड में प्राण चढ़ाए हुए परमेश्वर के ध्यान में ऐसे लीन हो रहे थे कि उन्हें अपने शरीर का भी कुछ ध्यान नहीं रह गया था। अतः राजा के शब्द उनके कान में नहीं पड़े और वे ज्यों के त्यों चुपचाप बैठे रहे। उस समय जीव-हिंसा करने के कारण राजा के हृदय में कलियुग प्रवेश कर गया था, अतः उसने राजा से बदला लेने का यह उपयुक्त अवसर जान-कर अपना कपट-जाल फेंक दिया। उसके कारण भूख-प्यास की अधिकता में वे धर्मात्मा तथा हरिभक्त राजा भी क्रोध के शिकार बन गये। तब उन्होंने अपने मन में इस प्रकार का विचार किया कि देखो, मैं सातों द्वीपों का राजा हूँ तथा प्यास से व्याकुल होने के कारण इस ऋषि के आश्रम पर आ पहुँचा हूँ; परन्तु इस ऋषि ने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर यह समाधि का ढोंग रच लिया है। अतः मुझे इसको कुछ दण्ड देना चाहिए। दण्ड देने का विचार आते ही जब राजा ने यह सोचा कि मैं पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ, अतः इस ब्राह्मण को किस प्रकार से दण्ड दूँ, तभी उन्हें उस जगह एक मरा हुआ सर्प पड़ा दिखाई दे गया। उस मरे हुए सर्प को देखते ही राजा ने यह निश्चय किया कि इस मरे हुए सर्प को ही मुनि के गले में डाल देना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिए। इस प्रकार दण्ड-व्यवस्था पूरी हो जायेगी; ऐसा विचारकर राजा ने घोड़े से नीचे उतरकर उस मरे हुए सर्प को अपने धनुष की नोंक पर उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया। ऋषि तो ध्यान-मग्न थे ही, उन्हें गले में सर्प पड़ने का कुछ भी आभास नहीं हुआ और वे पहिले की भाँति ज्यों के त्यों निश्चिन्त बैठे रहे।

हे ऋषियो ! राजा ने उस स्थान से लौटने के बाद घर आकर जब अपने मस्तक से सोने का मुकुट उतारा, तो उन्हें फिर से ज्ञान प्राप्त हुआ। तब वे अत्यन्त शोकाकुल हो अपने मन में विचार करने लगे कि देखो, इस सोने के मुकुट में कलियुग का निवास था, इसीलिए मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी। इसके अतिरिक्त मैंने वन में जाकर जो जीव-हत्या की, उसका भी यह प्रभाव हुआ कि मैंने अज्ञानी बनकर ध्यान-मग्न ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। इससे यह प्रतीत होता है कि कलियुग ने मुझसे अपना बदला ले लिया है। अब मुझे इस पाप से किस प्रकार छुटकारा मिलेगा ? जब कोई व्यक्ति श्री नारायणजी से विमुख होकर गौ तथा ब्राह्मणों को दुःख पहुँचावे, उस समय यह समझ लेना चाहिए कि उसके बुरे दिन आ गये हैं। मैंने आज ब्राह्मण को दुःख पहुँचाया है, इससे मुझे ज्ञात होता है कि मेरी भी आयु तथा धन की हानि शीघ्र हो जायेगी।

इस प्रकार राजा परीक्षित अपने घर में बैठे हुए शोक कर रहे थे। उधर समीक ऋषि ज्यों के त्यों ध्यान में बैठे रहे। राजा के जाने के कुछ देर पश्चात् जब कुछ ऋषि-बालक खेलते-खेलते समीक ऋषि के पास पहुँचे तो वे ऋषि के गले में पड़े हुए मरे सर्प को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने यह सब हाल समीक ऋषि के पुत्र शृङ्गी ऋषि से, जो उस समय कौशिकी नदी के तीर पर अन्य लड़कों के साथ खेल रहा था, कहा। शृङ्गी ऋषि को ब्रह्माजी का यह वरदान प्राप्त था कि उसका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा। अस्तु, बालकों द्वारा इस समाचार को सुनकर वह क्रोध में भर गया। उसकी आँखों से अङ्गारे बरसने लगे तथा सारा शरीर क्रोध के मारे काँपने लगा। उसी क्रोध में उसने शीघ्रतापूर्वक नदी के जल में अपने हाथ-पैरों को धोया तत्पश्चात् सीधे हाथ में पानी लेकर यह शाप दिया कि जिस राजा परीक्षित ने मेरे ध्यान-मग्न पिता के गले में मरा हुआ सर्प डाला है उसकी आज से सातवें दिन तक्षक सर्प के काटने से मृत्यु हो जावे। इस प्रकार राजा परीक्षित को शाप देने के पश्चात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसने अपने साथियों से कहा–"महाराज श्री कृष्णचन्द्रजी जब से गोलोकवासी हुए हैं तब से कलियुग के राजा धन एवं राज्य के मद में अन्धे होकर ब्राह्मणों को दुःख देने लगे हैं। जिस प्रकार कोई मनुष्य द्वार की रक्षा करने के लिए कुत्ता पाले, परन्तु वह कुत्ता उसी मनुष्य को काटकर यज्ञ के थाल में अपना मुँह डालना आरम्भ कर दे, उसी प्रकार ये राजा लोग ब्राह्मणों के आशीर्वाद एवं कृपा के द्वारा राजगद्दी प्राप्त करने के पश्चात् ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों को ही कष्ट देते हैं। धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर एवं अर्जुन के कुल में यह परीक्षित ऐसा अधर्मी राजा हुआ है कि उसने अभिमान में भरकर मेरे पिता के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। इसीलिए मैंने भी उसे अपनी सामर्थ्य दिखलाने के हेतु यह शाप दे दिया है।" इस प्रकार लड़कों से बातें कर शृङ्गी ऋषि राजा परीक्षित को दिए हुए शाप का समाचार सुनाने के लिए अपने पिता समीक ऋषि के पास जा पहुँचा। वहाँ जब उसने अपने पिता को ध्यान-मग्न तथा उनके गले में पड़े हुए मृतक सर्प को देखा तब उसने साँप को उनके गले से निकालकर पिता का नाम ले-लेकर जोर-जोर से रोना शुरू किया। उसके रोने का शब्द सुनने के कारण समीक ऋषि ने अपनी समाधि खोल दी तथा उन्होंने अपने पुत्र से रोने का कारण पूछा। तब शृङ्गी ऋषि ने उन्हें सब हाल कह सुनाया। उस बात को सुनकर समीक ऋषि ने अपने पुत्र से पूछा–"हे पुत्र! तूने राजा को कोई शाप तो नहीं दिया है?" शृङ्गी ऋषि ने उत्तर दिया–"यह अधर्म करने के कारण मैंने राजा को यह शाप दिया है कि वह आज से सातवें दिन तक्षक सर्प द्वारा काटे जाने से मृत्यु को प्राप्त हो।" शृङ्गी ऋषि के ये वचन सुनकर समीक ऋषि अत्यन्त उदास हो गये। तत्पश्चात् वे क्रोध करके अपने पुत्र से बोले–"अरे मूर्ख! तूने बहुत बुरा काम किया है। तूने ऐसे धर्मात्मा राजा को शाप दिया है, जिसके राज्य में अभी तक कलियुग प्रवेश नहीं कर पाया था। कौरवों एवं पाण्डवों के वंश में यही एक ऐसा राजा बचा था, जिसकी रक्षा स्वयं भगवान् वासुदेव ने उसकी माता के पेट में जाकर की थी तथा जिसके राज्य में हम सब ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आदि अत्यन्त आनन्द-पूर्वक रह रहे थे। उस राजा के राज्य में पशु-पक्षी भी दुखी नहीं थे। बकरी और बाघ उसके न्याय के कारण एक घाट पर पानी पीते थे। तूने थोड़े-से अपराध के कारण उसे बहुत बड़ा दण्ड दिया है। तूने उसके अवगुण को तो ग्रहण किया, परन्तु गुणों पर ध्यान नहीं दिया। परीक्षित के बाद जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा होंगे, वे सब अधर्मी होंगे। उनके राज्य में कलियुग सर्वत्र प्रवेश पाकर मनुष्यों से पाप-कर्म करायेगा। अरे! वह राजा परीक्षित मेरे स्थान पर आया था तो मुझे उसका भोजनादि से सत्कार करना चाहिए था। यह कितनी लज्जा की बात है कि मैं उसे थोड़ा-सा जल भी नहीं पिला सका? तूने ऐसे वैष्णव राजा को शाप देकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के प्रति अपराध किया है। उस धर्मात्मा राजा की मृत्यु के पश्चात् सब लोग वर्णसङ्कर हो जायेंगे। इस पाप की जड़ तू ही है। साधु-सन्तों का तो यह धर्म है कि वे गुणों को ग्रहण करते हैं तथा अवगुणों की ओर ध्यान भी नहीं देते हैं।

समीक ऋषि ने पुत्र से इस प्रकार कहने के उपरान्त परम प्रभु का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना की—"हे प्रभो! मेरे अज्ञानी बालक से बहुत बड़ा अपराध हो गया है। आप उसे कृपा कर क्षमा कर दें। जो राजा गौ तथा ब्राह्मणों की रक्षा करता है उसको मारने का पाप दस ब्राह्मणों के मारने के समान होता है। राजा के बिना देश में बहुत-से चोर तथा पापी उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए राजा को मारनेवाला चोर तथा अधर्मियों को बढ़ानेवाला होता है।" इस प्रकार ऋषि ने परमेश्वर की प्रार्थना करके अपने मन में यह निश्चय किया कि राजा परीक्षित के पास इस शाप का समाचार भेज देना चाहिए, ताकि वह अपना परलोक सुधारने का कोई उपाय कर सके। यद्यपि इस बात को सुनकर संसारी लोग शृङ्गी ऋषि को बुरा अवश्य कहेंगे, परन्तु फिर भी मुझे उस धर्मात्मा राजा को अपनी मुक्ति का उपाय ढूँढ़ लेने के लिए अवश्य सूचित कर देना चाहिए। ऐसा निश्चय कर समीक ऋषि ने अपने 'कुर्मुक' नामक शिष्य को यह आज्ञा दी कि तू राजा परीक्षित के पास जाकर उनको मेरा आशीर्वाद कहना। तत्पश्चात् उन्हें यह बताना कि शृङ्गी ऋषि ने आपको सात दिन के भीतर तक्षक के काटने से मृत्यु होने का शाप दिया है, अतः आप इस अकाल-मृत्यु के पूर्व ही अपनी मुक्ति का कोई उपाय ढूँढ़ लें।"

इतनी कथा कहकर सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे महानुभावो! जो राजा परीक्षित अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से बचा तथा जिसने धर्म एवं पृथ्वी की रक्षा करने के निमित्त कलियुग को अपने वश में कर लिया, वही एक ब्राह्मण के शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया। ब्राह्मणों का ऐसा ही माहात्म्य है। राजा परीक्षित की मृत्यु के पश्चात् कलियुग ने सब जगह अपना प्रवेश कर लिया। राजा परीक्षित ने कलियुग का गुण समझकर ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसे प्राणदान दे दिया था; परन्तु उसके अवगुणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। जो व्यक्ति धर्मात्मा तथा हरि-भक्त होते हैं वे गुणों की ओर ही देखते हैं, अवगुणों पर कभी ध्यान नहीं देते। स्वर्ग, वैकुण्ठ, इन्द्रलोक तथा संसार में सत्सङ्ग के समान कोई सुख नहीं है तथा त्रैलोक्याधिपति भगवान् श्यामसुन्दर के भेद एवं चरित्रों को ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता भी नहीं जान सकते हैं, फिर अन्य किसी प्राणी की क्या सामर्थ्य है जो वह उन्हें पहिचान सके?"

शौनकादि ऋषि यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सूतजी की प्रशंसा करते हुए कहा—"हे सूतजी! आप परम धन्य हैं जो श्री नारायण के चरित्र एवं उनकी अद्भुत लीलाओं की अमृतरूपी कथा को हम लोगों को, कानों की राह पिलाकर कृतार्थ कर रहे हैं। आपकी जितनी भी प्रशंसा की जाये वह कम है।"

ऋषियों के ये शब्द सुनकर सूतजी बोले—"हे ऋषियो! वास्तव में आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया है, जो आप-जैसे ज्ञानी-विज्ञानी ऋषि-मुनि भी मेरी इस प्रकार प्रशंसा कर रहे हैं। मेरा जन्म ब्राह्मण तथा शूद्रा के संयोग से हुआ था, परन्तु आप-जैसे महात्मा जनों की संगति प्राप्त कर मेरे मन का सम्पूर्ण शोक नष्ट हो गया है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भक्त-भय-भंजन, जन-मन-रञ्जन श्री नारायण परम प्रभु की कथा को सुनता है तथा उनके नाम का स्मरण एवं कीर्तन करता है, उसी का जन्म लेना सफल है। तीनों लोकों को तारनेवाली महिमामयी गंगाजी जिन परम प्रभु के चरणों की धोवन हैं, उन त्रिभुवनपति का स्मरण करनेवाले तथा उनकी कथा को कानों से सुननेवाले व्यक्ति की प्रशंसा कौन कर सकता है? जितनी देर तक मनुष्य परब्रह्म परमेश्वर के गुणानुवादों को सुनता है तथा उनके नाम का स्मरण करता है, उतने काल तक उसका आयुर्बल क्षीण नहीं होता। ऐसे परम प्रभु के गुणानुवादों का वर्णन करने की मेरी सामर्थ्य कहाँ है? जिस प्रकार पक्षी अपने सम्पूर्ण पराक्रम से उड़ान भरकर भी अनन्त आकाश का अन्त नहीं पा सकता, उसी प्रकार ब्रह्मा, शिव आदि देवता तथा ऋषि-मुनि जन अपने ज्ञान एवं सामर्थ्य भर उन अनन्त, अपार, परम प्रभु का ध्यान एवं स्मरण करते हैं, परन्तु कोई भी उनका अन्त नहीं जान पाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा परीक्षित को शृङ्गी ऋषि के शाप का समाचार प्राप्त होना तथा गङ्गातट पर जाकर निवास करना; श्री शुकदेव आदि ऋषि-मुनियों का उस स्थान पर आगमन

सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! जिस समय राजा परीक्षित मृगया से लौटकर अपने किये हुये अधर्म के विचार में चिन्तित बैठे हुए इस प्रकार सोच रहे थे कि मेरे पीछे जो राजा होंगे वे मेरे अधर्म का हाल सुनकर ऋषियों तथा ब्राह्मणों का अनादर करने में नहीं डरेंगे। अतः मेरे इस पाप के कारण यदि वे ऋषि मुझे शाप दे देते अथवा किसी अन्य प्रकार से मेरे प्राण निकल जाते तो मुझे विशेष दुःख न होता, क्योंकि उस स्थिति में अन्य राजा ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों की सामर्थ्य का अनुमान कर उन्हें दुःख तो नहीं पहुँचाते। जिस समय राजा इस प्रकार सोच रहे थे उसी समय समीक ऋषि के शिष्य कुर्मुक ने उनके पास पहुँचकर कहा—"हे राजन् ! समीक ऋषि ने आपको आशीर्वाद देने के अनन्तर यह कहलाया है कि जिस समय आप उनके आश्रम में पहुँचे थे, उस समय श्रीहरि के ध्यान में मग्न रहने के कारण उन्हें आपके पधारने तथा जल माँगने का कोई ज्ञान नहीं हुआ था। आपने क्रोध करके उनके गले में जो मरा हुआ सर्प डाल दिया था, इसके लिए उन्होंने कुछ बुरा नहीं माना है। अपितु वे आपको पानी न पिलाने के कारण अत्यन्त लज्जित हैं। परन्तु उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि ने अपने अज्ञानवश आपको यह शाप दिया है कि आज से सातवें दिन आप तक्षक सर्प के काटने से मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे; इसलिए आप अपनी मुक्ति का कोई उपाय सोच लें, जिससे यह कर्म की फाँसी छूट जाय।"

कुर्मुक के ये शब्द सुनकर राजा परीक्षित को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे बन्धु ! शृङ्गी ऋषि ने यह शाप देकर मेरे ऊपर अत्यन्त कृपा की है। मैं काम एवं क्रोध के वशीभूत होकर मायारूपी समुद्र में डूब रहा था, सो उन्होंने इस प्रकार मुझे बाहर निकाल लिया है। मुझे आज तक यह ध्यान ही नहीं था कि माया-मोह से विरक्त होकर श्री नारायणजी का स्मरण करना चाहिए। परन्तु आज इस शाप के भय से मुझे विरक्ति प्राप्त हो गई है। अब तुम जाकर ऋषिराज से मेरी विनयपूर्वक दण्डवत् कह देना तथा उन्हें यह भी बता देना कि मैं इस दण्ड को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ; परन्तु वे मेरे अपराध को हृदय से क्षमा कर दें।" इतना कहकर राजा ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस शिष्य को दक्षिणा में बहुत-सा धन तथा रत्नादि देकर बिदा कर दिया। तदुपरान्त राजा को यह खेद होने लगा कि इस अधर्म के बदले यदि मेरे प्राण तुरन्त निकल जाते तो वह अधिक ठीक रहता। इस पापी शरीर को सात दिन तक और जीवित रहने की क्या आवश्यकता थी? अच्छा हो कि मैं अब मृत्यु पर्यन्त सात दिनों तक अन्नजल को ग्रहण न करूँ; क्योंकि जिस शरीर से श्री परब्रह्म परमेश्वर का भजन तथा स्मरण न हो सके, वह शरीर किसी काम का नहीं होता है।

इस प्रकार विचार कर राजा परीक्षित स्त्री, पुत्र, राज्य एवं धन आदि का मोह त्यागकर श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न हो गये। उन्होंने फिर सोचा—संसारी माया में पड़े हुए मेरा इतना समय व्यर्थ चला गया तथा मेरा मन विषयों से विरक्त नहीं हुआ। आज से सातवें दिन जब मैं तक्षक सर्प के काटने से मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा, उस समय यह राज्य तथा धन स्वयं ही मेरा साथ छोड़ देगा। अतएव उचित यही है कि मैं पहले ही इन सबका मोह त्याग तीनों लोकों को तारनेवाली श्री गङ्गाजी के तट पर निवास कर, सात दिन तक श्री परब्रह्म प्रभु का भजन तथा स्मरण करके अपना परलोक बना लूँ। संसार में जिसने जन्म लिया है वह एक-न-एक दिन मृत्यु को अवश्य प्राप्त होता है। इन्द्र आदि देवता भी सदा अमर नहीं रहते। संसार में रहकर जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार सुख-दुःख भोगकर चौरासी लाख योनियों में जन्म लेता है। अतः मुझे इन सात दिनों में ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे मैं आवागमन से छूटकर भवसागर से पार उतर जाऊँ।

इन सब बातों पर भली भाँति विचार करने के पश्चात् अपने चौदह वर्षीय पुत्र जनमेजय को राजतिलक करके सिंहासन पर बैठा दिया। तत्पश्चात् मन्त्रियों को राज्य-कार्य सौंपकर जनमेजय से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! तुम गौ तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना एवं प्रजा को किसी प्रकार का दुःख मत पहुँचाना।" इतना कहकर राजा परीक्षित ने अपना मन संसारी माया-ममता से विरक्त कर राजसी वस्त्राभूषणों को उतार डाला। तत्पश्चात् वे एक कौपीन धारण कर गङ्गातट पर जा पहुँचे। उस समय राजा ने ब्राह्मणों को बहुत-सा धन दान में दिया तथा राज्य एवं परिवार के मोह को इस प्रकार त्याग दिया, जैसे कोई वमन करने के पश्चात् उसे देखता तक नहीं है। इस संवाद को सुनकर समस्त रानियाँ तथा नगर के स्त्री-पुरुष विलाप करते हुए राजा के पीछे-पीछे गङ्गा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तट पर जा पहुँचे। वहाँ रानियों ने राजा परीक्षित को सुनाकर इस प्रकार कहा—"हे महाराज! आपके वियोग का दुःख हम किस प्रकार सहन कर सकेंगी?" तब राजा ने उन्हें व्याकुल देखकर कहा—"पत्नी को वही कार्य करना चाहिए जिसमें उसके पति के धर्म का पालन होता हो। उसे पति के धर्म-कर्म में विघ्न नहीं डालना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने सबको समझा-बुझाकर बिदा कर दिया और किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। फिर राजा हरिद्वार में गंगा के तट पर कुशासन पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ गये तथा अपने मन में यह सङ्कल्प करने लगे कि मेरी आयु के जो सात दिन शेष रह गये हैं उनमें मैं किसी प्रकार का अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। राजा का यह हाल जिसने भी सुना वह बहुत दुखी हुआ। इधर राजा परीक्षित भगवान् श्री श्यामसुन्दर के चरणारविन्दों का ध्यान धरकर अपने मन में विचार करने लगे कि ये सात दिन यदि सत्संग में व्यतीत होते तो बहुत अच्छा था। राजा के शाप का समाचार सुनकर तथा संसारी माया-मोह से विरक्त होने का संवाद पाकर ऋषि-मुनि भी अत्यन्त उदास हो गये थे। उनमें से अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पाराशर, परशुराम, मेधातिथि, देवल, पिप्पल्यायन, भरद्वाज, गौतम, मैत्रेय, अगस्त्य, वेदव्यास, विश्वामित्र, कात्यायन, वामदेव तथा जमदग्नि आदि अनेक ऋषि तथा महात्मागण राजा परीक्षित को धर्मात्मा समझकर उनसे भेंट करने के लिए गंगा-तट पर आ पहुँचे। राजा ने उन्हें देखते ही दण्डवत् की तथा पाद्य-अर्घ्य आदि से सबका विधिवत् पूजन कर श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। तदनन्तर राजा ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—"हे महाराज! आप लोगों में से यदि किसी एक महात्मा का भी दर्शन प्राप्त हो जाये, तो प्राणी आवागमन से छूटकर भवसागर से पार उतर जाता है। मेरा अहोभाग्य है जो आप सबने कृपाकर मुझे मृत्यु से पूर्व अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है। हे प्रभो! जिस प्रकार आप सब पधारे हैं, उसी प्रकार दया करके सात दिन तक यहाँ और ठहरिये। आप लोगों के यहाँ रहने से मेरा मन संसारी मोह-माया की ओर नहीं जायेगा तथा आप लोगों का सत्संग पाकर आठों प्रहर श्री परब्रह्म प्रभु की चर्चा एवं स्मरण में ही बीतेंगे। आप लोग निष्काम भाव से मेरा भला सोचकर ही यहाँ पधारे हैं, अतः आप लोग कृपा कर मुझे कोई ऐसा उपाय भी बताइये जिसे मैं इन सात दिनों के भीतर करके आवागमन से छूट जाऊँ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा परीक्षित की बात सुनकर उनमें से एक ऋषि ने कहा–"हे राजन्! तीर्थ-स्नान का बहुत पुण्य कहा गया है, अतः तुम वही करो।" दूसरे ऋषि ने कहा—"यहाँ सभी ब्राह्मण एकत्रित हैं, अतः तुम यज्ञ करो। उससे तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायेंगे।" तीसरे ने कहा–"यदि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य हो तो उसे ब्राह्मणों को दान कर दो। दान से अधिक अन्य कोई धर्म नहीं है। वह तुम्हें मुक्ति दे सकेगा।" चौथे ऋषि बोले–"देवताओं का पूजन तथा मन्त्र-जप करने से सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं, अतः तुम्हारे लिए वही श्रेयस्कर है।" इस प्रकार सभी ऋषियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा को अनेक उपाय बताये, परन्तु किसी की बात सर्वोत्तम नहीं ठहरी। उस समय राजा परीक्षित ने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की–"हे ऋषिवरो! आप लोगों ने जो उपाय बताये हैं वे सभी श्रेष्ठ हैं, परन्तु इन सबको करने के लिए बहुत सामग्री तथा समय की आवश्यकता है। मेरी मृत्यु में केवल सात दिन ही शेष रह गये हैं, अतः आप लोग कोई ऐसा सरल उपाय बतलाइये जो इस एक सप्ताह में ही सम्पन्न हो सके।" राजा की यह बात सुनकर सब ऋषि-मुनि परस्पर विचार करने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा–"हे शौनकादि ऋषियो! राजा परीक्षित के शाप का समाचार सुनकर जब देवर्षि नारदजी उनसे भेंट करने के लिए गङ्गातट पर आ रहे थे, उस समय मार्ग में उनकी भेंट श्री शुकदेवजी से हो गई। शुकदेवजी ने उन्हें देखकर पूछा–"हे नारदजी! आप इस समय शीघ्रतापूर्वक कहाँ चले जा रहे हैं?" तब नारदजी ने उन्हें राजा परीक्षित के शाप का सब हाल सुनाते हुए कहा–"हे महात्मन्! अन्य जो ऋषि-मुनि राजा परीक्षित के पास भेंट करने के लिए गये हैं, वे राजा को मुक्त होने की कोई सीधी राह न बता सकेंगे। कोई यज्ञ करने के लिए कहेगा तथा कोई तप, दान आदि धर्म-कार्य करने की बात सुनायेगा। परन्तु राजा परीक्षित इन थोड़े दिनों में किसी कार्य को भी सम्पन्न करके भव-सागर से पार नहीं उतर पायेंगे। इसलिए आप कृपा कर राजा परीक्षित के पास चलिए तथा उन्हें श्रीमद्भागवत का सप्ताह-पारायण सुनाकर भव-सागर से पार उतार दीजिए।" नारदजी की यह बात सुनकर जब श्री शुकदेवजी ने राजा के पास जाना स्वीकार नहीं किया तब नारदजी इस प्रकार कहने लगे–"हे शुकदेवजी! मार्ग में आते समय मैंने यह दृश्य देखा है कि नेत्रोंवाला एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य कुएँ के समीप बैठा हुआ था। उसी समय एक अन्धा मनुष्य उस स्थान पर आया तथा कुएँ में गिरकर मर गया। उस आँखवाले मनुष्य ने उसे कुएँ की ओर जाने से रोका तक नहीं। अतः जब यह समाचार उस देश के राजा ने सुना तो उसने आँखवाले मनुष्य को बहुत दण्ड दिया तथा यह कहा कि जब तेरे आँखें थीं तब तूने उस नेत्रहीन व्यक्ति को कुएँ की ओर जाने से क्यों नहीं रोका। अस्तु, अब कृपा कर यह बतलाइये कि उस आँखवाले ने उचित कार्य किया था अथवा अनुचित किया था।" यह वृत्तान्त सुनकर शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे नारद! उस आँखवाले ने निश्चय ही बड़ा अधर्म किया था जो उसने नेत्र-हीन व्यक्ति को कुएँ की ओर जाने से नहीं रोका। वह अवश्य ही दण्ड का भागी था। उसके देखते-देखते अन्धा मनुष्य कुएँ में गिर पड़ा, अतः वह उस पाप का भागी भी हुआ।" शुकदेवजी के मुख से यह वचन सुन नारदजी ने फिर कहा—"हे शुकदेवजी! जब यह बात है तो आपको यहाँ विचार करना चाहिए कि राजा परीक्षित अपनी मुक्ति का उपाय नहीं जानता है, जब कि भगवद्-भजन के प्रताप से आप उस मार्ग से भली भाँति परिचित हैं। ऐसी स्थिति में यदि आप उसे मार्ग नहीं दिखायेंगे तो उसके नरक में जाने का पाप आपको लगेगा। तब त्रिभुवनपति श्री नारायणजी इस पाप के कारण आपको दण्ड देंगे या नहीं? इसका विचार आप स्वयं ही कर लीजिए।" नारदजी की यह बात सुनकर श्री शुकदेवजी लाचार हो गये तथा राजा के पास जाना स्वीकार करते हुए बोले —"हे नारदजी! आपके आज्ञानुसार अब मैं चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। आप तब तक चलें, मैं भी पीछे से आ रहा हूँ।" यह सुनकर नारदजी प्रसन्न हो, श्री शुकदेवजी से बिदा लेकर, राजा परीक्षित के पास चल दिए।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! जिस समय सम्पूर्ण ऋषि-मुनि राजा परीक्षित के लिए सात दिन के भीतर प्राप्त होनेवाली मुक्ति का उपाय सोच रहे थे, उसी समय पन्द्रह वर्ष की अवस्थावाले परम तेजस्वी, छविनिधान, आनन्दमूर्ति परमहंस श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित के निकट पधारे। उनके अपार तेज को देखकर जो अन्य वृद्ध ऋषि-मुनि तथा महात्मागण पहिले से ही वहाँ बैठे हुए थे वे सब उठकर खड़े हो गये। तत्पश्चात् उन सबने अत्यन्त आदरपूर्वक श्री शुकदेवजी को अपने मध्य में सबसे ऊँचे आसन पर विराजमान किया। उस समय राजा परीक्षित के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि इन वयोवृद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषियों के बीच महाराज शुकदेवजी सबसे कम आयु के हैं, तब यह क्या कारण है जो सभी ऋषि-मुनियों ने इन्हें अत्यन्त आदर-पूर्वक सबसे ऊँचे आसन पर बैठाया है? हाँ, इनके तेज से तो अवश्य ऐसा प्रतीत होता है कि ये गुण में सबसे अधिक हैं। ऐसा मन ही मन विचार कर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी महाराज को दण्डवत् की। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से बोले—"हे कृपासिन्धु! इस समय जब कि मैं इस गङ्गा-तट पर मरने के लिए आया हूँ, तब आपने अत्यन्त कृपा करके मुझे अपना दर्शन दिया है। आप ऐसे महापुरुष का आगमन मेरे अहोभाग्य से ही हुआ है।" इतना कहकर राजा परीक्षित हाथ जोड़कर बैठ गये। तदनन्तर जब श्री शुकदेवजी भी उच्चासन पर भली भाँति विराजमान हो चुके तब श्री शुकदेवजी के पितामह (दादा) श्री पाराशर मुनि ने राजा परीक्षित के मन का सन्देह दूर करने के अभिप्राय से कहा—"हे राजन्! श्री शुकदेवजी आयु में हम सबसे छोटे तथा ज्ञान में सबसे बड़े हैं। यहाँ जितने भी बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को तुम देख रहे हो वे सभी ज्ञान में इनसे बहुत कम हैं। यही करण है जो हम सब लोगों ने इनके आगमन पर खड़े होकर स्वागत किया है। श्री शुकदेवजी तरण-तारण हैं। जबसे इन्होंने जन्म लिया है तभी से ये विरक्त होकर दिन-रात श्री परब्रह्म प्रभु के ध्यान में निमग्न रहते हैं तथा भगवान् श्री श्यामसुन्दर के गुणानुवादों का वर्णन करते हैं। हे राजन्! तुम्हारा कोई बहुत बड़ा पुण्य उदय हुआ है, जो ये इस समय यहाँ आ पधारे हैं। भव-सागर से पार उतरने के लिए जो कर्म सबसे उत्तम है, ये तुम्हें उस कर्म का बोध करायेंगे। उस कर्म को करने से तुम आवागमन से छूट जाओगे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! आप लोगों ने जो यह पूछा था कि राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी को किस प्रकार पहिचाना; उसका यह वृत्तान्त मैंने आपके सम्मुख वर्णन किया है। अस्तु, पाराशर ऋषि के मुख से श्री शुकदेवजी की महिमा सुनकर राजा परीक्षित अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर वे श्री शुकदेवजी के चरण धोकर तथा विधि-पूर्वक पूजन करने के पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे महात्मन्! आप विरक्त स्वरूप हैं। आपको संसार से कोई प्रयोजन नहीं है। आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज ने मुझे पाण्डव वंश में उत्पन्न जानकर आपके मन में ऐसी दया उत्पन्न की है, जो आप मुझे भव-सागर से पार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उतारने के हेतु, कृपा करके यहाँ पधारे हैं। आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आपके चरणों का स्पर्श करनेवाला व्यक्ति मुक्ति-पद को प्राप्त कर सकता है। अतः मैं अत्यन्त दीन होकर आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनिए। हे महाराज ! देवताओं की आयु की अवधि निश्चित है कि इतने दिनों बाद उनकी मृत्यु होगी; परन्तु कलियुग के मनुष्यों की आयु का कोई ठिकाना नहीं है। कौन जाने, कोई कब मर जाये ? अस्तु, शृङ्गी ऋषि के शाप के कारण मेरी मृत्यु में अब केवल सात दिन रह गये हैं। वैसे तो आप स्वयं अपने मन के स्वामी हैं और आपके ऊपर किसी का अधिकार नहीं चलता है। आपकी इच्छा के बिना पलभर भी कोई आपको अपने पास नहीं रख सकता है। अतः मैं शीघ्रतापूर्वक आपसे यह पूछ रहा हूँ कि इन सात दिनों के भीतर ही भव-सागर से पार उतरने को मेरे लिए कौन-सा मार्ग ठीक है। स्त्री तथा पुत्रों के मोह में फँसे रहने के कारण अब तक कभी भी मैंने अपने अन्तिम समय तथा परलोक के विषय में चिन्ता नहीं की थी। जिस प्रकार कोई कसाई बहुत-सी बकरियों को अपने घर में रखकर उनमें से दो-एक को नित्य मार डालता है, परन्तु अन्य बकरियों को यह भय नहीं होता कि एक दिन उनकी भी वैसी ही गति होगी तथा वे निश्चिन्त रहकर प्रतिदिन दाना, पानी, घास आदि खाती-पीती हैं, ठीक उसी प्रकार हम संसारी लोग भी प्रतिदिन माता, पिता, पुत्र, भाई आदि की मृत्यु अपनी आँखों से देखते रहने पर भी यह कभी विचार नहीं करते कि हमें भी एक दिन ऐसे ही मरना पड़ेगा, अतः हम अधर्म को त्यागकर श्रीनारायणजी का भजन करें। मन में इन बातों को खूब पहिचानते हुए भी हम स्त्री-पुत्र आदि के माया-मोह तथा मिथ्या व्यवहारों में फँसे रहते हैं। हे नाथ ! परब्रह्म प्रभु ने अत्यन्त कृपा करके अब मुझे माया-मोह की नींद से जगा दिया है तथा मेरे मन को सबसे विरक्त कर दिया है। जिस प्रकार शास्त्रों का यह वचन है कि यदि कोई मनुष्य कार्त्तिक मास के अन्त में पाँच दिन गङ्गा-स्नान कर ले तो उसे सम्पूर्ण मास के नहाने का पुण्य प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार आप भी मुझे कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें जो मेरी मृत्यु के सात दिन के भीतर ही अपना प्रभाव दिखा सके। जब मनुष्य मृत्यु के निकट पहुँचता है, उस समय वह अपनी मुक्ति का उपाय नहीं कर पाता; क्योंकि मृत्यु के समय कण्ठ में कफ आदि घिर आने के कारण हरि-नाम का उच्चारण नहीं हो पाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है तथा यमदूतों के भय से मल-मूत्र निकल जाता है। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप कोई ऐसा धर्म बताने की कृपा करें जिससे मेरी मुक्ति शीघ्र हो सके।" इतना कहकर राजा ने शुकदेवजी को दान आदि वे उपाय भी सुना दिये जो उन्हें अन्य ऋषि-मुनियों ने बतलाये थे।

राजा परीक्षित की बातों को सुनकर श्री शुकदेवजी मुस्कुराने लगे। उन्होंने अन्य ऋषियों द्वारा बताये गये उपायों को भी समयानुकूल नहीं बताया। तब राजा परीक्षित ने उनसे हाथ जोड़कर फिर प्रार्थना की—"हे महामुने! इस समय कथा-पुराणों का श्रवण, मन्त्र-जप, किसी देवता अथवा श्रीहरि के चरणों का ध्यान इनमें से जो कोई उपाय आप श्रेष्ठ समझते हों, वह मुझे बताने की कृपा कीजिए। मैं वैसा ही करूँगा।"

प्रथम स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन सुखसागर

द्वितीय स्कन्ध

श्री शुकदेवजी का राजा परीक्षित से श्रीमद्भागवत एवं परब्रह्म परमेश्वर के अवतारों का वर्णन

वन्दना

वन्दना के छन्द में जो शब्द बन करके रमा है,
मैं उसी की अर्चना के गीत गाना चाहता हूँ!
रूप देखा है नहीं जिसका अभी तक पुतलियों ने;
किन्तु लिख रक्खा बिना देखे बहुत कुछ उँगलियों ने;
विश्व जिसकी खोज में भटका किया—भटका करेगा—
उस निराकृति की मधुर आकृति बनाना चाहता हूँ!
कान सुनते आ रहे जिसकी युगों से मात्र महिमा;
किन्तु जिसने पास आ, अब तक प्रकट कुछ की न गरिमा;
भूलकर भी मन जिसे, फिर याद करना चाहता है—
उस अनिच्छित को निकट अपने बुलाना चाहता हूँ!
लोग कहते हैं कि अन्तःकरण है उससे प्रकाशित;
और यह—सारे भुवन उसके स्वरों से हैं निनादित;
किन्तु मैं जिसकी न छाया पा सका हूँ स्वप्न में भी—
उस अपरिचित पर हृदय अपना लुटाना चाहता हूँ!
मैं बुलाऊँगा उसे, चाहे यहाँ आये—न आये;
मैं सुनाऊँगा उसे, चाहे उसे भाये—न भाये;
लेखनी कर में उठा 'राजेश' ने यह प्रण लिखा है—
'जो मुझे भूला, उसे मैं याद आना चाहता हूँ!'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित को धैर्य-प्रदान एवं श्रीमद्भागवत की स्तुति का वर्णन

राजा परीक्षित की प्रार्थना सुनकर शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! तुमने जो यह पूछा है कि मनुष्य को अन्तकाल आने पर अपनी मुक्ति के लिए क्या उपाय करना चाहिए, यह अत्यन्त श्रेष्ठ बात है। इससे सभी संसारी जीवों का कल्याण होगा। हे राजन्! जो मनुष्य अज्ञानी बनकर श्री नारायणजी की महिमा को नहीं जानता है तथा सांसारिक विषय-भोगों में भटकता हुआ अपने जीवन को नष्ट कर रहा है, उसे सम्पूर्ण कष्टों का अधिकारी समझना चाहिए। जो संसारी लोग विषय-सुखों की कामना करते हैं, उन्हें भी परमेश्वर की कृपा के बिना कोई सुख प्राप्त नहीं होता है। जो लोग अपनी आयु को रात्रि में स्त्री-प्रसङ्ग तथा दिन में व्यापार आदि करने में व्यतीत करते हैं तथा जिन्हें संसारी कार्यों से आठों प्रहर छुट्टी नहीं मिलती, उन्हें भी यह आवश्यक है कि वे किसी भी क्षण श्री नारायणजी का स्मरण करके अपने परलोक को सुधारने का उपाय करें। केवल धन तथा परिवार से ही किसी का भला नहीं होता। स्त्री, पुत्र के माया-मोह में पड़कर मनुष्य अनेक कष्ट उठाता है तथा उनके पालन-पोषण के निमित्त झूठ-सत्य आदि बोलकर धन उपार्जित करता है, फिर भी उनकी मृत्यु को अपनी आँखों से देखकर वह अपने मन को इस मायारूपी महाजाल से विरक्त नहीं करता। मृत्यु के पश्चात् भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र आदि कोई भी उसकी सहायता नहीं करते तथा वह अपने किए हुए पापों के कारण नरक को प्राप्त करता है।

"हे राजन्! तुमने भरतखण्ड में जन्म लिया है। जो मनुष्य इस भरतखण्ड में श्री परब्रह्म परमेश्वर का स्मरण एवं ध्यान करके वैकुण्ठलोक का सुख प्राप्त करते हैं, उन्हीं का संसार में जन्म लेना सार्थक है। ऋषि, मुनि जन संसारी माया-मोह को त्याग, वन में रहकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी का स्मरण एवं ध्यान करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं। अतः हे राजन्! सुनो; जिसका अन्त-काल पास आ गया हो उसे भवसागर से पार उतरने के लिए श्री नारायणजी के गुणानुवादों के श्रवण एवं ध्यान से अधिक श्रेष्ठ उपाय अन्य कोई नहीं है। उस मनुष्य को अपना मन स्त्री, पुत्र, धन आदि संसारी माया-मोह से विरक्त कर यह समझना चाहिए कि यह सारा संसार स्वप्नवत् मिथ्या है। संसारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुएँ सदैव स्थिर नहीं रहतीं तथा मृत्यु के समय उन्हें कोई भी अपने साथ नहीं ले जाता है। संसार में जन्म लेनेवाला प्राणी मृत्यु के समय संसार से अकेला ही जाता है। स्त्री-पुत्र, धन आदि सभी उसका साथ छोड़ देते हैं। इसलिए बुद्धिमान् एवं ज्ञानवान् प्राणी को यह उचित है कि वह स्वयं ही सब वस्तुओं को पहिले से त्याग दे तथा भगवान् मुरलीमनोहर के चरणारविन्दों में अपना चित्त लगाकर उनकी कथा तथा स्तुति को ध्यानपूर्वक श्रवण करे। वह परब्रह्म प्रभु की जिन लीला-कथाओं को सुने उन्हें मिथ्या न समझे तथा सभी बातों को सत्य जानकर उनमें शङ्का उत्पन्न न करे। तभी प्राणी मुक्ति-पदार्थ को प्राप्त करता है। अतः हे राजन्! जो समस्त पुराणों में उत्तम है, जिसमें भगवान् श्यामसुन्दर की लीला-कथाओं एवं स्तुति का वर्णन है तथा जिसे मैंने अपने पिता श्री वेदव्यासजी से पढ़ा है, वही श्रीमद्भागवत मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जो प्राणी आवागमन से छूटने की इच्छा रखता हो, उसके लिए श्रीमद्भागवत सुनने से अधिक सरल अन्य कोई उपाय नहीं है। सब शास्त्रों को सुनने का फल एकमात्र श्रीमद्भागवत के सुनने से प्राप्त हो जाता है। इसे सम्पूर्ण वेदों का सार समझना चाहिए। जो यमराज के पाश से बचना चाहे, उसे श्रीमद्भागवत सुनना श्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवत के सुनने से परमेश्वर के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है। जो मनुष्य स्त्री-पुत्रादि के मोह में फँसा रहता है वह भी यदि नित्य श्रीमद्भागवत की कथा सुनने का अभ्यास करे तो उसका मन विरक्त होकर श्रीहरि के चरणों में लग जाता है तथा वह भव-सागर से सहज ही में पार उतर जाता है। जिस स्थान पर श्रीमद्भागवत की कथा होती है, उस स्थान पर समस्त तीर्थ तथा देवता कथा सुनने के लिए आते हैं। इस कथा के सुनने से अनेक जन्मों के पाप छूट जाते हैं। अतः हे राजन्! तुम भी इस कथा को सुनने के कारण मुक्ति-पद को प्राप्त करोगे। यदि तुम यह कहो कि मेरे आने से पूर्व जो अन्य ऋषि-मुनि यहाँ विद्यमान थे उन्होंने तुम्हें श्रीमद्भागवत की कथा सुनने की सलाह क्यों नहीं दी, तो इसका कारण केवल यही समझना चाहिए कि अभी तक उन ऋषि-मुनियों का मन किसी एक बात पर स्थिर नहीं हो रहा था। कोई यज्ञ करने के लिए कह रहा था तो कोई जप, तीर्थ, दान तथा हरि-पूजा की बात कहता था। परन्तु मैं दिन-रात श्रीमद्भागवत पढ़ने के अतिरिक्त अन्य किसी बात से प्रयोजन नहीं रखता हूँ। मैं संसार में अवधूत की भाँति रहकर अपना जीवन व्यतीत करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुआ आनन्द मनाता हूँ, सो यह सब प्रताप इस श्रीमद्भागवत का ही समझना चाहिए। हे राजन्! यदि तुम इस भय से भयभीत हो रहे हो कि मेरी मृत्यु में थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं, तो मेरा कहना है कि तुम अपने मन से उस भय को निकाल दो। अभी तुम्हारी मृत्यु में सात दिन शेष हैं। इस अवधि में तुम श्रीमद्भागवत की कथा को मन लगाकर सुनो। इसके प्रताप से तुम मुक्ति को अवश्य प्राप्त करोगे। खट्वाङ्ग नामक राजा केवल दो ही घड़ी में मुक्त हो गया था। तुम्हें तो सात दिन मिले हैं। फिर घबड़ाने की क्या बात है? यदि कोई प्राणी सच्चे हृदय से अपने परलोक को बनाना चाहे, तो वह केवल ढाई घड़ी में ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, जब कि संसारी माया-मोह में फँसा हुआ व्यक्ति अपनी आयु के सहस्रों वर्ष बिता देने पर भी मृत्यु के उपरान्त नरक में ही जाता है।"

श्री शुकदेवजी के ये वचन सुनकर राजा परीक्षित ने हाथ जोड़कर कहा—"हे महाराज! राजा खट्वाङ्ग ने दो घड़ी में मुक्ति किस प्रकार प्राप्त कर ली थी, वह वृत्तान्त मुझे सुनाने की कृपा करें।" शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! त्रेता युग में खट्वाङ्ग नामक एक अत्यन्त प्रतापी, बलशाली, नीतिज्ञ तथा धर्मात्मा राजा अयोध्यापुरी में रहता था। वह सातों द्वीपों का स्वामी था। उन्हीं दिनों दैत्यों ने इन्द्रादि देवताओं को युद्ध में परास्त कर उन्हें देवलोक से निकाल दिया तथा इन्द्रासन पर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय देवताओं के पुरोहित बृहस्पति ने देवताओं से कहा कि तुम राजा खट्वाङ्ग की सहायता लेकर दैत्यों से युद्ध करो। तभी तुम उन पर विजय प्राप्त कर सकोगे। यह सुनकर देवराज इन्द्र सब देवताओं को साथ लेकर मर्त्यलोक में आये। तदुपरान्त उन्होंने राजा खट्वाङ्ग के पास पहुँचकर अपना मनोरथ प्रकट किया। राजा ने उन्हें दण्डवत् करते हुए कहा—"हे सुरराज! मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आप लोग दैत्यों के विरुद्ध में मेरी सहायता माँगने के लिए यहाँ पधारे हैं। मेरा यह शरीर एक-न-एक दिन तो अवश्य ही नष्ट होगा, अतः यदि यह आप लोगों के किसी काम आ सके तो इससे बढ़कर श्रेष्ठ बात और क्या होगी।" इतना कहकर राजा ने अपने शस्त्र बाँध लिए तथा इन्द्रादि देवताओं के साथ जाकर युद्ध में दैत्यों को परास्त कर दिया। जब देवताओं ने राजा खट्वाङ्ग की कृपा से युद्ध में विजय प्राप्त कर अपना इन्द्रासन पुनः प्राप्त कर लिया, तब वे निर्भय होकर वहाँ का शासन करने लगे। जब राजा ने लौटने के लिए उनसे बिदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माँगी, उस समय देवराज इन्द्र ने प्रसन्न होकर राजा से इस प्रकार कहा—"हे राजन्! आप हमसे कुछ वरदान माँग लीजिये।" देवराज की बात सुनकर राजा ने अपने मन में विचार किया कि मैंने इनकी सहायता करके इन्हें इनका खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कराया है, ऐसी स्थिति में मैं इनसे क्या माँगूँ? तब राजा के मन की दशा जानकर इन्द्र ने इस प्रकार कहा—"हे राजन्! देवताओं को भूत एवं भविष्य काल की सब बातें ज्ञात रहती हैं। हम लोग दैत्यों के उपद्रव से व्याकुल थे, चूँकि वे हमसे अधिक बलवान हैं, इसलिए हमने आपकी सहायता चाही थी। अतः आप इस उपकार के बदले कुछ तो हमसे माँग ही लीजिए।" यह सुनकर राजा खट्वाङ्ग ने अपनी वृद्धावस्था पर विचार करते हुए देवताओं से कहा—"अच्छा, आप पहिले मुझे यह बताने की कृपा करें कि मेरी आयु अभी और कितनी शेष है। उसके उपरान्त मैं कोई वरदान माँग लूँगा।" तब देवराज इन्द्र ने विचार कर उत्तर दिया—"हे राजन्! आपकी आयु में अब केवल चार घड़ी शेष रह गई हैं।" यह सुनते ही राजा ने देवताओं से कहा—"तब तो मैं यही वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे इसी क्षण अयोध्या में पहुँचा दें। अयोध्या मेरी कर्मभूमि है। मेरी मृत्यु का समय निकट आ पहुँचा है, अतः मैं वहाँ जाकर ऐसा कर्म करूँगा, जिससे इस आवागमन से छूटकर भवसागर से पार हो सकूँ।" राजा की यह बात सुनते ही इन्द्र ने अत्यन्त तीव्र गति से चलनेवाला एक विमान दे दिया जिस पर बैठकर राजा दो घड़ी में ही अपने स्थान पर जा पहुँचे।"

शुकदेवजी कहते हैं—"हे राजन्! उस राजा खट्वाङ्ग ने मरने के लिए देवलोक से भी अधिक उत्तम इस भरतखण्ड को समझा और अयोध्यापुरी में चला आया। अतः तुम यह सत्य मानो कि भरतखण्ड संसार के सब स्थानों से अधिक श्रेष्ठ है। अस्तु, अयोध्या में आकर राजा ने दो घड़ी के भीतर ही अपना सब द्रव्य आदि ब्राह्मणों को दान देकर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा दिया। तत्पश्चात् वह स्त्री, पुत्र, राज्य आदि सब से माया-मोह त्याग, वैराग्य धारण कर, सरयू नदी के तट पर जाकर श्री भगवान् के चरणारविन्दों के ध्यान में मग्न हो गया तथा वहीं उसने योगाभ्यास द्वारा शरीर को त्याग कर वैकुण्ठ धाम प्राप्त किया। हे राजन्! इस प्रकार उसकी मुक्ति दो ही घड़ी में हो गई। तुम्हारे लिए सात दिन तो बहुत अधिक हैं। तुम अपने मन को संसारी मोहमाया से हटाकर, इन्द्रियों को वशीभूत कर, श्री परब्रह्म प्रभु के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विराट् स्वरूप का ध्यान करो। ये सम्पूर्ण लोक उसी में सन्निहित हैं। ऊपर के सातों लोक उस परम पुरुष के कटि प्रदेश से ऊपर का भाग तथा नीचे के सातों लोक नीचे का भाग समझो। संसार में जो भी वस्तुएँ तुम्हें दिखाई देती हैं, उनमें कोई भी वस्तु उस स्वरूप से परे नहीं है। जिस महत् तेज के प्रकाश से ये सूर्य तथा चन्द्रमा प्रकाशित हैं, तुम उसी का ध्यान लगाओ। सृष्टि के सम्पूर्ण जीवों में उसी का चमत्कार जानकर, उसके अतिरिक्त संसार के अन्य सम्पूर्ण व्यवहार को मिथ्या समझो। जो प्राणी उसे सब स्थानों पर एक स्वरूप देखता है, उसे किसी शत्रु का भय नहीं रहता और न उसे किसी मित्र की आकांक्षा ही होती है। सब जीवों में केवल उसी का प्रकाश दिखाई देता है। तुम भगवान् वसुदेव-नन्दन मुरलीमनोहर श्री कृष्णचन्द्रजी का हृदय में ध्यान धरकर श्रीमद्भागवत की कथा को मन लगाकर सुनो; उससे तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।" इन सब बातों को कहने में श्री शुकदेवजी का अभिप्राय यह था कि राजा परीक्षित के हृदय से तक्षक सर्प का भय निकल जाये तथा राजा को अपने हृदय में यह विश्वास हो जाये कि संसार में श्री नारायणजी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु प्रकाशवान् नहीं है। जब यह ज्ञान हो जायेगा, उस समय राजा को यह भय नहीं रहेगा कि तक्षक कौन है और वह किसको काटता है। तथा इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने पर राजा जीवन्मुक्त हो जायेगा।

श्री शुकदेवजी महाराज के श्रीमुख से ऐसे वचन सुनकर राजा परीक्षित ने प्रसन्न होकर पूछा—"हे महाराज! मैं किस प्रकार बैठकर, परमप्रभु के कौन-से स्वरूप का ध्यान करूँ?" शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! तुम कमलासन से बैठकर अपने हृदय में श्री नारायणजी के सूक्ष्म रूप का ध्यान करो। यदि तुम अन्तःकरण में उस स्वरूप का ध्यान न धर सको तो उस स्थिति में सम्पूर्ण सृष्टि को परमेश्वर का विराट् रूप समझकर, उसी का ध्यान लगाओ। वह विराट् रूप इस प्रकार है—पाताल लोक—पाँव, रसातल लोक—घुटने, सुतल लोक—जंघा, वितल तथा अतल लोक—नितम्ब, पृथ्वी—कटिप्रदेश, आकाश—नाभि, ज्योतिश्चक्र (जहाँ सूर्य तथा चन्द्रमा का निवास रहता है)—छाती, महर्लोक—कण्ठ, जनलोक—मुख, तपलोक—मस्तक तथा सत्यलोक उस आदिपुरुष भगवान् का मस्तक है। इन्द्रादि देवता—उनकी भुजाएँ, दसों दिशाएँ—कान, आश्विनीकुमार—नाक, सम्पूर्ण सुगन्धियाँ—नाक के छिद्र, अग्नि—मुख,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकाश–नेत्रों का गढ्ढा, सूर्य–आँख, दिन-रात–पलक-भंजन, जल–पाँव, सम्पूर्ण जगत् का स्वाद–जिह्वा, यमराज–दाँत, माया–हँसी, लज्जा–ऊपर का होठ, लालच–नीचे का होठ, धर्म–छाती, अधर्म–पीठ, सम्पूर्ण वृक्ष–शरीर के रोम, बादल–मस्तक के केश, नदियाँ–शरीर की नसें, पर्वत–शरीर की हड्डी, समुद्र–पेट, वायु–श्वास, चन्द्रमा–मन, वर्षा का जल–वीर्य एवं प्रातः तथा सन्ध्या काल उस परमेश्वर के वस्त्र हैं। प्रभु के उस विराट् रूप में मनुष्य–बुद्धि द्वारा; घोड़ा, गधा, खच्चर तथा ऊँट–नाव द्वारा; हिरन आदि पशु–जंघा द्वारा; पक्षी आदि–जिह्वा द्वारा; गन्धर्व, विद्याधर, चारण तथा अप्सराएँ–स्वर द्वारा ! भेड़िया आदि–पाँव की एड़ी द्वारा तथा यज्ञादि–मर्म द्वारा उत्पन्न हुए हैं। परम प्रभु का इस प्रकार का जो विराट् स्वरूप है, तुम पहिले उसी का ध्यान करो। जब तुम्हारा चित्त इसमें लग जाये, तत्पश्चात् तुम उनके रूप का ध्यान करना।"

दूसरा अध्याय

शुकदेवजी द्वारा हरि-शरणागत भक्तों की श्री नारायणजी द्वारा रक्षा किए जाने का वर्णन

शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! परमपिता परमेश्वर का ध्यान धरने के निमित्त पहिला मार्ग यही विराट् स्वरूप है। जब मन संसारी माया-मोह से विरक्त हो जाता है, तभी वह श्री नारायणजी के चरणकमलों में लगता है। उनका स्मरण करने पर संसारी माया स्वतः ही छूट जाती है। यदि तुम सोचो कि कोई व्यक्ति अपने घर को त्यागकर वन में जा, संन्यासी बन, श्री नारायणजी का भजन करे तो उसे भोजन, वस्त्र अथवा पात्रों बिना कष्ट होगा तथा उसका मन परमप्रभु के ध्यान में न लग सकेगा तो इस सम्बन्ध में केवल यही कहना है कि भगवान् श्याम-सुन्दर ने अपने उन भक्तों के लिए, जो विरक्त होकर, उनकी प्राप्ति के हेतु तपस्या अथवा योग-साधन करते हैं, पहिले से ही सब वस्तुओं का प्रबन्ध कर रक्खा है। संसार में रहकर मनुष्य को अपनी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु ईश्वर की कृपा से वन में वे सब पदार्थ बिना परिश्रम किए ही प्राप्त हो जाते हैं। वहाँ सोने के लिए पृथ्वी की शय्या वर्तमान है, उस पर सुखपूर्वक सोना चाहिए। नींद आने पर जैसा आनन्द पृथ्वी पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शयन करने से मिलता है, वैसा शय्या तथा तोशकों पर भी प्राप्त नहीं होता। हाथों की कुहनी से तकिये का काम लिया जा सकता है। भोजन के लिए वहाँ अनेक प्रकार के फल होते हैं; उनसे पेट भरा होने पर फिर किसी अन्य वस्तु को खाने की इच्छा ही नहीं होती। पात्रों (बर्तनों) की वहाँ आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि पत्तों के दोने तथा हाथों से अधिक श्रेष्ठ पात्र और कोई नहीं हो सकता। इन पात्रों को न तो चोर चुराकर ले जा सकता है और न इनके पुराने अथवा खराब होने का भय ही रहता है। पहिनने के लिए सर्वोत्तम वस्त्र वृक्षों की छाल है। उसके फटने की कोई चिन्ता नहीं रहती। यदि छाल से शरीर न ढाँका जा सके और जाड़ा मालूम दे तो नगर एवं गाँव के घूरों पर जो फटे हुए कपड़े पड़े रहते हैं, उन्हें वहाँ से लाकर तथा पानी से धोकर सुखा लेने के बाद उनसे अपना शरीर ढँक लेना चाहिए। पर्वतों की कन्दराओं को रहने के लिए घर समझना चाहिए। तालाब, नदी आदि का पानी पिये तथा उसी से स्नान करे। जो मनुष्य वन में रह कर परमेश्वर की शरण में बना रहता है, उस पर कृपा करके श्री नारायणजी सिंह, रीछ आदि वन के हिंसक जन्तुओं से उसकी रक्षा करते हैं। हे राजन्! मैं तुम्हारे पास किसी लालच से अथवा प्रयोजन-सिद्धि के लिए नहीं आया हूँ। नारदजी ने तुम्हारा बोझ मेरे ऊपर डाल दिया था, इसीलिए मुझे यहाँ आना पड़ा है। जो मनुष्य परब्रह्म परमेश्वर के भजन तथा ध्यान से विमुख रहते हैं, उन्हें वैतरणी नदी तथा नरकों के कष्ट को अवश्य भोगना पड़ता है। इसके विपरीत जो लोग संसारी मोह-माया से विरक्त होकर श्री परमप्रभु का ध्यान तथा कीर्तन करते हैं, उन्हें किसी गृहस्थ के घर भोजन अथवा वस्त्र माँगने के लिए जाने की आवश्यकता भी नहीं रहती है। धनी लोग तो उन्हें पहिचान भी नहीं पाते; क्योंकि श्री परमप्रभु अपने भक्तों का सम्पूर्ण सांसारिक धन नष्ट कर देते हैं। मनुष्य को यह बात सोचकर सदैव सन्तोष धारण करना चाहिए कि जिन जगदीश्वर ने मुझे जन्म दिया है, वे ही मेरी आजीविका चलानेवाले हैं। वे दयालु कभी मुझे भूखा नहीं रक्खेंगे। जब मैं माता के गर्भ में था, उस समय वे ही दीनानाथ मुझे पेट में भोजन पहुँचाते थे, तब संसार में रहकर मैं भूखा क्यों रहूँगा? उन परमप्रभु ने मेरे जन्म लेने से पूर्व ही माता के स्तनों में दूध भर रक्खा था। यहाँ स्वयं यह विचार करके देखना चाहिए कि स्तनों में तो केवल मांस ही रहता है, फिर उनमें दूध कहाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से आया ! वास्तव में यह श्री परमप्रभु की कृपा ही है। इन बातों पर विचार करने के पश्चात् भी जो मनुष्य सन्तोष ग्रहण न करे तथा जगदीश्वर श्री नारायणजी को भूलकर खाने-पीने की चिन्ता में लगा रहे, उसे महामूर्ख समझना चाहिए। जो लोग गाय, बैल आदि पशुओं को अपने द्वार पर बाँधते हैं, वे भी उनके खाने-पीने की चिन्ता रखते हैं, फिर श्री नारायणजी तो सबको भोजन देनेवाले हैं। वे भला अपने दास को भुलाकर उसे भूखा कैसे रक्खेंगे? जिस समय मनुष्य केवल एक बूँद के बराबर था, उस समय भी श्री जगदीश्वर ने उसको नहीं भुलाया। उन्होंने अपनी महिमा द्वारा उसे दस अँगुलियाँ तथा दोनों कन्धों पर दो भुजाएँ प्रदान कीं। फिर भी उसे नारायणजी कैसे भूल सकते हैं?

"हे राजन् ! किसी प्राणी की क्या सामर्थ्य है, जो वह श्री जगदीश्वर के गुणों का हाल जान सके? भगवद्भक्त को चाहिए कि वह पहिले नित्यप्रति श्वास चढ़ाने का साधन आरम्भ करे तथा योगाभ्यास द्वारा अपने प्राणों को ब्रह्माण्ड में ले जावे। तदनन्तर उसे अपने हृदय में सहस्रदल कमल का ध्यान करना चाहिए। उस कमल का मुख नीचे की ओर है, अतः अपने ध्यान में उसका मुख ऊपर की ओर करना चाहिए। इस प्रकार साधन करने से मन ऐसे निर्मल हो जाता है, जैसे 'सिकिल' करने से मुर्चा लगा हुआ लोहा चमकने लगता है। जब मन शुद्ध हो जायेगा, तब उसे सहस्रदल कमल के भीतर परमेश्वर का सूक्ष्म स्वरूप दिखाई देने लगेगा। उस समय ऐसा आनन्द प्राप्त होगा, जो पहिले कभी नहीं पाया था। उस आनन्द पर मोहित होकर मनुष्य अन्य किसी सुख की इच्छा नहीं करेगा। जब वह (मनुष्य) इस पद को प्राप्त कर लेगा, तब वह श्रेष्ठ योगिराज हो जायेगा। फिर उसे यज्ञ, तप आदि कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। वह समस्त जीवों में परमेश्वर का समान चमत्कार देखकर, किसी के साथ शत्रुता अथवा मित्रता नहीं रक्खेगा। अतः हे राजन्! तुम सर्वप्रथम विराट् रूप का ध्यान करो। तत्पश्चात् जब तुम्हारा मन स्थिर हो जाय, तब तुम अपने हृदय में उसी सहस्रदल कमल का ध्यान लगाना। उस कमल में तुम्हें श्री नारायण महाप्रभु का अंगुष्ठ प्रमाण चतुर्भुजी स्वरूप दिखाई देगा। वे नीलमणि के समान चमकते हुए श्याम रङ्गवाले; शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथों में लिए; मस्तक पर रत्नजटित किरीट-मुकुट पहिने; कानों में मकराकृति कुण्डल डाले; गले में वैजयन्ती माला तथा वनमाला धारण किए हुए; भुजाओं पर नवरत्न-जटित भुजबन्ध बाँधे; कटिप्रदेश में घुँघरूदार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करधनी तथा पाँवों में कड़े पहिने, पीताम्बर बाँधे, उपरना ओढ़े हुए, आजानु बाहु, सरसिज लोचन, तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुस्कान तथा हृदय पर भृगुलता का चिह्न धारण किए हुए वे नटनागर रूपउजागर भगवान् श्यामसुन्दर अपने दर्शनों द्वारा तुम्हें अत्यन्त अलौकिक सुख प्रदान करेंगे। यदि यह सम्पूर्ण रूप एकबारगी ध्यान में न आ सके, तो तुम सर्वप्रथम चरणों से आरम्भ करके फिर एक-एक अंग को धीरे-धीरे ध्यान में लाना। तब सम्पूर्ण रूप भली भाँति ध्यान में आ जायेगा। जब वह रूप अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आ जाय, तब तुम श्वास खींचने का साधन करके अपने प्राण ब्रह्माण्ड में चढ़ा लेना। जिस मनुष्य के प्राण ब्रह्माण्ड तोड़कर बाहर निकलते हैं, वह प्राणी सूर्यमण्डल में होता हुआ वैकुण्ठलोक में पहुँचता है। फिर उसे आवागमन के बन्धन में नहीं आना पड़ता। मकर से मिथुन की संक्रान्ति तक छः महीने सूर्य उत्तरायण रहते हैं। यह अवधि देवताओं का दिवस कही गई है। इन छः महीनों में मृत्यु को प्राप्त होनेवाले प्राणी सूर्यमण्डल में होते हुए वैकुण्ठ को जाते हैं। इसके विपरीत कर्क से लेकर धन की संक्रान्ति तक छः महीने सूर्य दक्षिणायन रहते हैं। यह अवधि देवताओं की रात्रि कही गई है। इन छः महीनों में मरनेवाले प्राणी चन्द्रमण्डल में होकर, अपने कर्मानुसार, देवलोकादि में जाते हैं। वहाँ उन्हें अवधि पर्यन्त सुख भोगकर, फिर इसी संसार में जन्म लेना पड़ता है। मैंने तुम्हें दोनों प्रकार के धर्म का मार्ग बता दिया है। इसके अतिरिक्त तीसरा मार्ग कोई नहीं है।

"हे राजन्! जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी हरि-स्मरण द्वारा अपनी मुक्ति का उपाय नहीं करता, उसे फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म लेना पड़ता है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर को प्राप्त कर अपनी आयु खेल-कूद अथवा संसारी माया-मोह में नष्ट कर देता है तथा परमपिता परमेश्वर को नहीं पहिचानता, उसकी वही गति समझनी चाहिए, जो अपना मनोरथ प्राप्त करने के लिए पर्वत पर बहुत ऊँचा चढ़ गया हो, परन्तु जब शिखर थोड़ा ही अधिक रह जाये तब वह फिर से नीचे आ गिरे। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी अपने जन्म को नहीं सँवारता, उसे पर्वत की चोटी से नीचे गिरा हुआ समझना चाहिए। ऐसा प्राणी फिर से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद ही पुनः उस शिखर के समीप पहुँच सकता है। जिसने अपना जन्म व्यर्थ खो दिया, वह प्राणी मृत्यु के उपरान्त पछता-पछताकर यही कहता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि देखो, मैंने कितना बुरा किया जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी परम-पिता परमेश्वर को नहीं पहिचाना तथा सारा जीवन माया-मोह में लिपटे रह-कर नष्ट कर दिया। उस समय पछताने से कुछ काम नहीं निकलता है, इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आयु को प्रतिदिन अधिक क्षीण होती हुई जानता रहे। जो दिन बीत जाते हैं वे फिर कभी लौटकर नहीं आते हैं। इसलिए आठों प्रहर इस बात का विश्वास रखकर एक क्षण के लिए भी उन परमपिता परमेश्वर को नहीं भुलाना चाहिए तथा उनका स्मरण एवं ध्यान करते हुए ही प्रत्येक दिन व्यतीत करना चाहिए। जिस प्राणी ने मनुष्य शरीर पाकर भगवान् का भजन नहीं किया, वह पशु के समान है। जिस प्रकार बैल तथा ऊँट दिन भर बोझ लादे-लादे घूमते हैं तथा एक बार जो दाना-पानी मिल जाता है उसी को खाकर प्रसन्न रहते हैं तथा यह नहीं समझते कि सूर्यनारायण किधर से निकलते हैं तथा किधर डूबते हैं, वही गति हरि-भजन-हीन मनुष्य की भी समझनी चाहिए। हे राजन्! यदि परमप्रभु का थोड़ा-सा भी ध्यान किया जाय, तो वे उसी में प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान कर देते हैं। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन से गीता में यह कहा है कि मनुष्य चार समय में मेरा स्मरण अवश्य करते हैं—(१) जब मनुष्य रोगी होकर दुःख प्राप्त करता है (२) जिसे मुझसे मिलने की इच्छा होती है, (३) जब किसी का कोई काम अटक जाता है और उसे किसी वस्तु के पाने की इच्छा होती है, (४) जो मुझे पहिचानकर मेरे भेद को प्राप्त कर लेता है। ये चारों ही प्रकार के मनुष्य अपने-अपने अर्थ की सिद्धि के लिए मेरा स्मरण करते हैं; परन्तु मैं इन चारों पर सदैव प्रसन्न रहता हूँ। ज्ञानी पर मैं केवल इसीलिए अधिक प्रसन्न रहता हूँ कि वह सदैव मेरे ही ध्यान में लगा रहता है।

"अतः हे परीक्षित! तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह मत करो। इन सात दिनों के भीतर तुम्हारी मुक्ति अवश्य हो जायेगी। मैं तुमसे श्रीमद्भागवत की अमृतरूपी कथा कहता हूँ। तुम उसे ध्यान लगाकर सुनो। फिर भवसागर से पार अवश्य ही उतर जाओगे।"

तीसरा अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा देवताओं की आराधना से प्राप्त फल का वर्णन

सूतजी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो! जब राजा परीक्षित ने श्री परब्रह्म प्रभु के ध्यान करने की यह विधि सुनी तो वह घबराकर अपने मन में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सोचने लगे कि श्री नारायणजी का यह स्वरूप मेरे ध्यान में किस प्रकार आ सकेगा ? इस चिन्ता के कारण राजा का मुख उदास हो गया। उस समय श्री शुकदेवजी ने राजा को चिन्तित देखकर अपने मन में यह विचार किया कि सम्भवतः राजा के मन में कोई इच्छा शेष रह गई है, जिससे उसका मुख उदास हो गया है; अतः मुझे अपनी बातों से इसके हृदय का हाल जान लेना चाहिए। यह निश्चय कर श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन्! जो प्राणी अपना सत्य बढ़ाना चाहे उसे ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जो अपनी इन्द्रियों को पुष्ट रखना चाहे—उसे देवराज इन्द्र की, जो अधिक सन्तान होने की इच्छा रक्खे उसे दक्ष प्रजापति की, जो धन चाहे उसे लक्ष्मी की, जो अपने स्वरूप का तेज बढ़ाना चाहे उसे अग्नि की, जो अन्न अथवा हाथी-घोड़ा आदि चाहे उसे आठों वसुओं की, जो कामदेव की वृद्धि चाहे उसे रुद्र की, जो अपने शरीर में अधिक बल चाहे उसे इला देवी की, जो सुन्दरता चाहे उसे गन्धर्वों की, जो सुन्दर स्त्री चाहे उसे उर्वशी अप्सरा की, जो यश चाहे उसे नारायणजी की, जो विद्या चाहे उसे शिवशङ्कर की, जो परिवार की वृद्धि चाहे उसे दिव्य पितरों की, जो अपने परिवार की रक्षा चाहे उसे पुण्यात्मा जीवों की, जो राज्यसिंहासन चाहे उसे मनु की, जो शत्रु का नाश चाहे उसे निर्ऋति राक्षस की, जो वीर्य बढ़ाना चाहे उसे चन्द्रमा की, जो दीर्घायु चाहे उसे अश्विनीकुमार की, जो स्त्री सुन्दर पति चाहे उसे पार्वती की तथा जिसे किसी भी वस्तु की इच्छा न हो उसे परब्रह्म परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए। उन्हीं की कृपा से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

"हे राजन्! जो अपना परलोक सुधारने के लिए परमप्रभु को स्मरण नहीं करता, उसे कुत्ते एवं गधे के समान पशु समझना चाहिए। जिस प्रकार शूकर विष्ठा खाता है, उसी प्रकार मदिरा पीनेवाले व्यक्ति को समझना चाहिए। जिस प्राणी ने मनुष्य-शरीर पाकर, अपने कानों से श्री परब्रह्म प्रभु की कथा, कीर्तन एवं लीलाओं का श्रवण नहीं किया है तथा पराई निन्दा सुनने में अपना मन लगाया है, उसके कानों को सर्प एवं बिच्छू के बिल के समान जानना चाहिए। जिसने अपनी जिह्वा से श्री नारायणजी का नाम नहीं लिया, उसकी जिह्वा को उस मेढक की जिह्वा के समान मानना चाहिए, जो वर्षा ऋतु में व्यर्थ ही चिल्लाया करता है। जो मस्तक देवस्थान, ब्राह्मण तथा महात्माओं के सम्मुख दण्डवत् करने के लिए नहीं झुकता उस मस्तक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को शरीर पर रक्खे हुए बोझ के समान स्वीकार करना चाहिए। जिसने धन पाकर अपने हाथों से दान नहीं दिया तथा श्री नारायणजी, देवता, साधु एवं ब्राह्मणों की सेवा-पूजा नहीं की, वे हाथ काठ की करछुली के समान हैं। जो पाँव तीर्थयात्रा एवं देवस्थान तथा साधु-ब्राह्मणों के दर्शन के लिए नहीं जाते, उन्हें वृक्षों की डाली के समान समझना चाहिए। जिन आँखों ने प्रत्यक्ष अथवा ध्यान में श्री परब्रह्म प्रभु के दर्शन प्राप्त नहीं किए, उन्हें मोरपंख के समान समझना चाहिए। जिस मनुष्य ने श्री नारायणजी की प्रतिमा पर चढ़ी हुई तुलसी तथा साधु-ब्राह्मणों की चरण-रज को अपने मस्तक पर श्रद्धा-पूर्वक धारण नहीं किया, वह जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है। श्री नारायणजी की कथा एवं लीलाओं को सुनकर जो करुण-प्रसङ्ग-स्थलों पर रोया नहीं, उसका हृदय पत्थर के समान समझना चाहिए।"

चौथा अध्याय

राजा परीक्षित द्वारा परब्रह्म परमेश्वर की कथा एवं कीर्त्तन का वर्णन करने के हेतु शुकदेवजी से प्रार्थना

सूतजी बोले—"हे ऋषियो ! जब राजा परीक्षित ने भगवान् श्री श्याम-सुन्दर के ध्यान का वर्णन तथा श्रीमद्भागवत महापुराण की महिमा सुनी तो उनके मन का सम्पूर्ण शोक नष्ट हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर राज्य तथा स्त्री-पुत्रों का सब मोह त्याग दिया। तत्पश्चात् वे हाथ जोड़कर श्री शुकदेवजी से इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! आपने जो कुछ वर्णन किया है, उस पर विश्वास करके मुझे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति हुई है। मैंने अपना ध्यान श्री नारायणजी के चरण-कमलों में लगा दिया है। अब मुझे आज अथवा सातवें दिन मरना एक समान है। मेरे मन से इस विषय का सब भय दूर हो गया है। हे मुनिराज ! आपने सम्पूर्ण पुराण तथा शास्त्रों को पढ़ा तथा देखा है। आप आदिपुरुष ब्रह्म का हाल भली भाँति जानते हैं। अतः अब आप मुझे वह वर्णन सुनाने की कृपा करें कि श्री नारायणजी इस सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन करने के उपरान्त फिर उसे किस प्रकार से नष्ट कर देते हैं। तत्पश्चात् आप मुझे आदि निरङ्कार परब्रह्म प्रभु की वे सब लीलाएँ सुनाने की कृपा करें, जो उन्होंने सगुण रूप धारण करके इस संसार में की हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा परीक्षित की यह बात सुनकर श्री शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त उन्होंने सर्वप्रथम उन श्री श्यामसुन्दरजी के चरणों का ध्यान किया, जिनका पूजन करने, नाम लेने तथा कथा सुनने से मनुष्य पवित्र तथा ज्ञानी हो जाता है। उन्होंने स्तुति करते हुए कहा—"हे दीनबन्धो! आपकी कृपा के बिना योग तथा यज्ञ भी अपना फल नहीं दे सकते हैं। जिनके श्रीचरणों का ध्यान बड़े-बड़े योगी, सनकादि ऋषि, पितामह ब्रह्मा, कैलाशवासी शिव-शङ्कर तथा अन्य देवता अहोरात्र अपने हृदय में धरते रहते हैं, परन्तु फिर भी जिनकी लीला तथा चरित्रों को नहीं जानते, सर्वप्रथम मैं उन्हीं परमप्रभु परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ। जिनकी कृपा से शबरी, गृद्ध तथा गोपियाँ आदि तुच्छ जीव भी मुक्ति-पद को प्राप्त हुए तथा जो श्री लक्ष्मीजी के पति हैं, मैं उनको सदैव नमस्कार करता हूँ। वे परमेश्वर अपनी कृपा द्वारा मेरी बुद्धि को प्रकाशित कर, मेरे वचन को सत्य करें। उनकी शक्ति प्राप्त कर मुझे उनका चरित्र वर्णन करने की सामर्थ्य हो सके।" इसके अनन्तर श्री शुकदेवजी ने अपने पिता श्री वेदव्यासजी एवं गुरु के चरण-कमलों का ध्यान एवं दण्डवत् करते हुए राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन्! श्रीमद्भागवत की कथा को वैकुण्ठनाथ श्री नारायणजी ने पितामह ब्रह्मा से कहा था। ब्रह्माजी ने नारद मुनि से कहा तथा नारदजी ने वेदव्यासजी को सुनाया। मेरे पिता वेदव्यासजी ने वह कथा मुझे पढ़ाई है। अब मैं उसी कथा को तुम्हें सुना रहा हूँ। तुम जिन बातों को सुनना चाहते हो उन सबका वर्णन उस कथा में है। अतः उसे मन लगाकर श्रवण करो।"

पाँचवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा श्रीमद्भागवत की कथा का प्रारम्भ; ब्रह्मा एवं नारद-संवाद का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! पुरातन युग में एक बार देवर्षि नारदजी अपने पिता ब्रह्माजी के समीप दण्डवत् करने के लिए पहुँचे। उस समय श्री ब्रह्माजी श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न बैठे हुए थे। नारदजी उन्हें देखकर अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले पितामह ब्रह्माजी किसका स्मरण कर रहे हैं? प्रतीत होता है कि कोई इनका भी स्वामी है, जिनके ध्यान में ये इस समय मग्न हो रहे हैं। अतः मुझे उसका हाल जानना चाहिए। इसके अनन्तर जब ब्रह्माजी ध्यान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्त हुए तब नारदजी ने उन्हें प्रणाम करने के पश्चात् पूछा—"हे पितामह! आप यह कहते हैं कि जिसके भाग्य में जो लिखा होता है वही होता है। इधर मैं देखता हूँ कि आप सम्पूर्ण सृष्टि को जन्म देकर, फिर उसका इस प्रकार संहार कर देते हैं जैसे कोई मकड़ी अपने मुँह से जाला निकालने के पश्चात् फिर उसे स्वयं ही खा जाती है। अतः इस समय आपके ध्यान-मग्न होने से मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि आपसे भी अधिक शक्तिशाली कोई आपका स्वामी और भी है, जिसके आज्ञानुसार आप सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करते हैं। अतः आप मुझे उस महान् का नाम एवं गुण बताने की कृपा करें जिसका स्मरण आप कर रहे हैं।"

नारदजी के वचन सुनकर पितामह ब्रह्माजी ने कहा—"हे नारद! तुम धन्य हो। तुमने मुझसे परब्रह्म परमेश्वर का चरित्र पूछा है। उन श्री नारायणजी की माया अत्यन्त प्रबल है। तुम जो मुझे सृष्टि का कर्त्ता कहते हो, इससे मैं बहुत लज्जित होता हूँ। हे पुत्र! मुझसे बड़े तथा मेरे स्वामी तो श्री नारायणजी हैं। उनके द्वारा अनेक ब्रह्मा एवं ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं तथा उन्हीं की माया से यह सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है। मैं उन्हीं श्री नारायण जी की दया एवं कृपा प्राप्त कर सृष्टि की रचना करता हूँ। उन्हीं के प्रताप से देवता तथा मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त होता है। अब तुम उनके चरित्र सुनो। जिस समय मैं उन श्री नारायणजी की नाभि से उत्पन्न हुए कमल के फूल से प्रकट हुआ, उस समय मैंने यह जानने का बहुत प्रयत्न किया कि मैं कहाँ से उत्पन्न होकर यहाँ आया हूँ। जब मुझे इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ तब उन्हीं श्री नारायणजी का ध्यान धरने पर मुझे यह पता चला कि श्री नारायणजी ने ही मुझे उत्पन्न किया है। ये सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण आदि उन्हीं के तेज से प्रकाशित हैं तथा संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब उन्हीं की माया से प्रकट हुई हैं। सम्पूर्ण जीवों के शरीर में उन्हीं का प्रकाश है। श्री नारायणजी स्वयं अपने तेज से प्रकाशित हैं। उनमें किसी दूसरे का तेज नहीं है। उनके आदि, अन्त एवं भेद को कोई नहीं जानता है जो उन परमेश्वर के गुणों का वर्णन कर सके। परन्तु मुझे श्री नारायणजी की कृपा से जो कुछ ज्ञात हो सका है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो—

"जब नारायणजी की यह इच्छा हुई कि हम अकेले हैं, अतः अनेक रूप हो जावें, तब उनकी नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न हुआ। उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फूल से मेरा जन्म हुआ। मुझे देखकर श्री नारायणजी ने यह आज्ञा दी कि तू सृष्टि की रचना कर। उस समय श्री नारायणजी की आज्ञा पाकर मैंने अपने मन में यह विचार किया कि मैं सृष्टि की रचना किस प्रकार कर सकूँगा? तब श्री नारायणजी की माया से ही सात्विक, राजस तथा तामस इन तीन गुणों की उत्पत्ति हुई तथा मुझे अपने हृदय में बुद्धि का चमत्कार दिखाई देने लगा। तदनन्तर मैंने उन्हीं तीनों गुणों की सामर्थ्य तथा पञ्चतत्त्वों द्वारा सृष्टि उत्पन्न करके पृथ्वी की रचना की। फिर पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु एवं आकाश इन पञ्चतत्त्वों की सहायता से सम्पूर्ण जीवों का शरीर बनाया। मैंने जिस पृथ्वी को कमल के पत्ते से बनाया था, वह पानी पर नहीं ठहरती थी; अतः एक सहस्त्र वर्षों तक वह निरन्तर डगमगाती रही। जब मैंने श्री नारायणजी से पृथ्वी के हिलने का हाल कहा तब उन आदिपुरुष भगवान् ने उसे अपनी शक्ति द्वारा जल के ऊपर स्थिर कर दिया। इस प्रकार पृथ्वी का हिलना बन्द हुआ। श्री नारायणजी की उसी शक्ति को ब्राह्माण्ड तथा विराट् कहा जाता है। वेदों में लिखा है कि उस विराट् स्वरूप के सहस्त्र मस्तक, सहस्त्र हाथ, सहस्त्र चरण, सहस्त्र नेत्र एवं सहस्त्र कान हैं।"

छठाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा नारद से श्री नारायणजी के विराट् रूप का वर्णन

शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! तदुपरान्त पितामह ब्रह्माजी ने नारद से श्री नारायणजी के विराट् स्वरूप का वर्णन किया। वे बोले–"हे नारद! उस विराट् रूप को इस प्रकार समझना चाहिए कि ऊपर के सातों लोक–उसकी कटि के ऊपर के तथा नीचे के सातों लोक–उसकी कटि के नीचे के भाग हैं। उसका मुख–अग्नि है तथा वृक्ष आदि शरीर के रोम, दशों दिशाएँ–कान, समुद्र–उदर, सूर्य–नेत्र, पर्वत–शरीर की हड्डियाँ, नदियाँ–शरीर की नसें, वायु–श्वास इन्द्रादि देवता–भुजाएँ, अश्विनीकुमार–नाक, सम्पूर्ण सुगन्ध–नाक के छिद्र, आकाश–आँखों की गोलक, दिन-रात–पलक भँजना, जल–पाँव, संसार का स्वाद–जिह्वा, यमराज–दाँत, माया–हँसी, लज्जा–ऊपर का होठ, लालच–नीचे का होठ, धर्म–छाती, अधर्म–पीठ, मेघ–मस्तक के केश तथा वर्षा का जल–वीर्य समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार के सम्पूर्ण व्यवहार परमेश्वर के इसी रूप में विद्यमान हैं। इसी कारण तपस्वी तथा ऋषि-मुनि जन सब स्थानों पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नारायणजी का प्रकाश समान रूप से जानकर किसी को दुःख नहीं देते हैं। हरा वृक्ष काटने से यह निश्चयपूर्वक जानना चाहिए कि उससे श्री नारायणजी को कष्ट पहुँचता है। हानि-लाभ, यश-अपयश तथा दुःख-सुख आदि सब उन्हीं परमेश्वर की इच्छा से होते हैं। श्राद्ध आदि में पितरों के हेतु तथा यज्ञ आदि में देवताओं के निमित्त जो कुछ भी दिया जाता है वह सब उन्हीं परमप्रभु को प्राप्त होता है। वे अविनाशी पुरुष ही सम्पूर्ण जड़-चेतन जीवों को उत्पन्न तथा नष्ट करनेवाले हैं।

"हे नारद ! जब उनके द्वारा मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा प्राप्त हुई तब मैंने उन्हीं श्री नारायणजी की कृपा से दक्ष प्रजापति को उत्पन्न किया। उनके द्वारा अन्य बहुत-से प्राणी उत्पन्न हुए। उन्हीं श्री नारायणजी का ध्यान अपने हृदय में धारण करने के कारण मुझे संसार को रचने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। वे परमप्रभु आदि, मध्य तथा अन्त में सदैव एकरस रहते हैं। वे घटते, बढ़ते अथवा पुराने नहीं होते। संसार की कोई भी वस्तु उनसे बाहर नहीं है तथा बुद्धि को इतनी सामर्थ्य प्राप्त नहीं है जो वह उनकी स्तुति कर सके। श्री नारायणजी ने अपनी इच्छा से संसारी जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए मर्त्यलोक में चौबीस अवतार धारण किए हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव उन अवतारों की लीलाओं का स्मरण एवं कीर्तन करे। उन्हीं परब्रह्म प्रभु के ध्यान में मग्न रहकर सदैव उन्हीं का स्मरण करने में तल्लीन रहे। जब अन्तःकरण शुद्ध तथा पवित्र होकर उसमें श्री नारायणजी का प्रकाश प्रकाशित होता है, उस समय प्राणी आवागमन से छूटकर भवसागर से पार उतर जाता है। उन्हीं परमेश्वर की कृपा प्राप्त कर ऋषि-मुनि जन किसी को शाप अथवा आशीर्वाद देते हैं। ऋषि-मुनि जन वेदों को मुझसे सीखते हैं तथा उसे संसार में प्रकट करते हैं। उन परब्रह्म प्रभु की कृपा से मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता। मेरा मन पाप की ओर नहीं जाता तथा मेरी इन्द्रियों को अधर्म की ओर रुचि नहीं होती। उन्हीं परमेश्वर का ध्यान एवं स्मरण करने के कारण मुझमें तीनों गुणों की उत्पत्ति हुई है। उन परमप्रभु ने मनुष्य के एक-एक अङ्ग एक-एक देवता को सौंप दिए हैं। अतः समस्त देवताओं का एक-एक रूप तो अपने-अपने लोक में रहता है और जिस प्रकार पानी से भरे हुए अनेक बर्तनों में एक ही सूर्य का प्रकाश प्रकाशित होता है, उसी प्रकार उनका दूसरा रूप सम्पूर्ण संसार के प्राणियों में व्याप्त रहता है। देवमन्दिरों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की मूर्तियों में भी उन्हीं का प्रकाश समझना चाहिए। सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें पड़ने के कारण संसार में सोना, चाँदी, ताँबा, आदि की खानें प्रकट होती हैं। मनुष्य द्वारा जो पाप तथा अधर्म होते हैं उनके प्रायश्चित्त का विधान धर्मशास्त्रों में लिखा रहता है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री ब्रह्माजी ने नारद को श्रीमद्भागवत के वे चार मूल श्लोक सुनाये, जो उन्होंने श्री नारायणजी से सुने थे। उन चारों श्लोकों को सुनाने के पश्चात् पितामह ब्रह्माजी ने नारद से फिर इस प्रकार कहा—"हे नारद! वे परब्रह्म निरङ्कार प्रभु किसी की दृष्टि में नहीं आते हैं। उन्हें कोई अपने हाथ से नहीं पकड़ सकता है। भला किस प्राणी में इतनी सामर्थ्य है जो उनके सब अवतारों का वर्णन कर सके; क्योंकि संसार के सभी जीवों में उन्हीं की ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है। अब मैं अपनी बुद्धि के प्रमाण से परब्रह्म परमेश्वर के उन चौबीस अवतारों का कुछ वर्णन करता हूँ जो उन्होंने सगुण रूप से संसार में धारण किए थे।

सातवाँ अध्याय

पितामह ब्रह्माजी द्वारा प्रभु के चौबीस अवतारों का वर्णन

पितामह ब्रह्माजी ने कहा—"हे नारद! श्री नारायणजी का पहिला अवतार सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार के रूप में मेरी नाक से हुआ था। वे प्रभु ऋषि का स्वरूप धारण कर सदैव भगवद्भजन में लीन रहते हैं। उस तपस्या के प्रताप से वे अनेक कल्प बीतने पर भी सदैव पाँच वर्ष की आयुवाले ही बने रहते हैं। श्री नारायणजी ने दूसरा अवतार 'वाराह' का ग्रहण किया था। उस अवतार को लेने का कारण यह था कि जिस समय श्री परमप्रभु ने मुझे सृष्टि रचने की आज्ञा दी, उस समय मैंने उनकी कृपा से कमल के पत्र द्वारा पृथ्वी का निर्माण किया था। उस पृथ्वी को हिरण्याक्ष नामक दैत्य पाताल में उठा ले गया। तब मैंने वैकुण्ठनाथ श्री नारायणजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभु! पृथ्वी के बिना संसारी जीव कहाँ रहेंगे। उस समय श्री नारायणजी ने वाराहरूप धारण कर, पाताल में जा हिरण्याक्ष का वध किया तथा पृथ्वी को जल से बाहर निकाल कर उसे अपनी महिमा से स्थिर किया। यह पृथ्वी कर्मों का फल देनेवाली है। जो प्राणी जैसा शुभ-अशुभ कर्म करता है, उसका वैसा ही फल प्राप्त करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री बृहत् नवीन सुखसागर

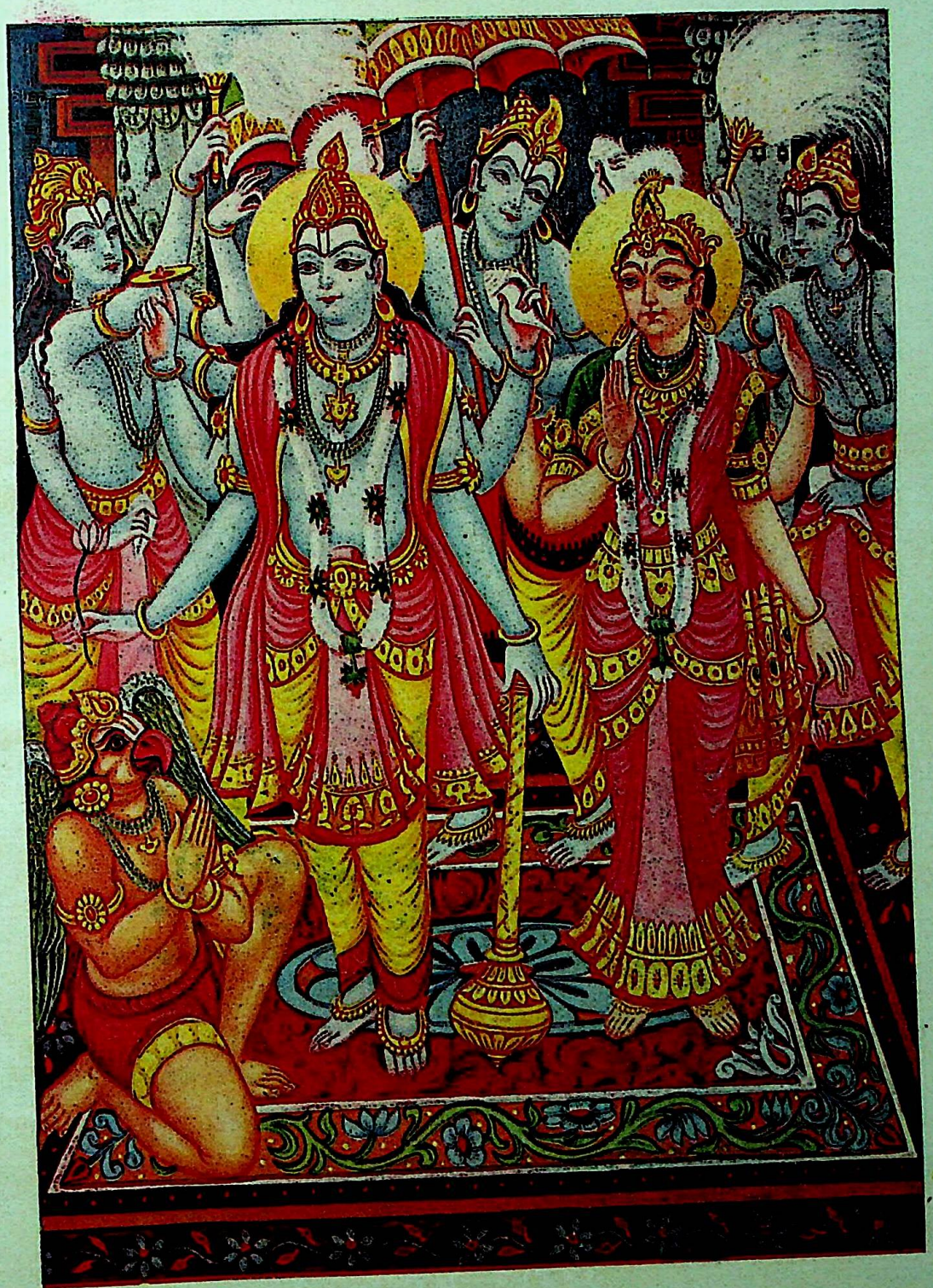

विष्णु-पंचायतन

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

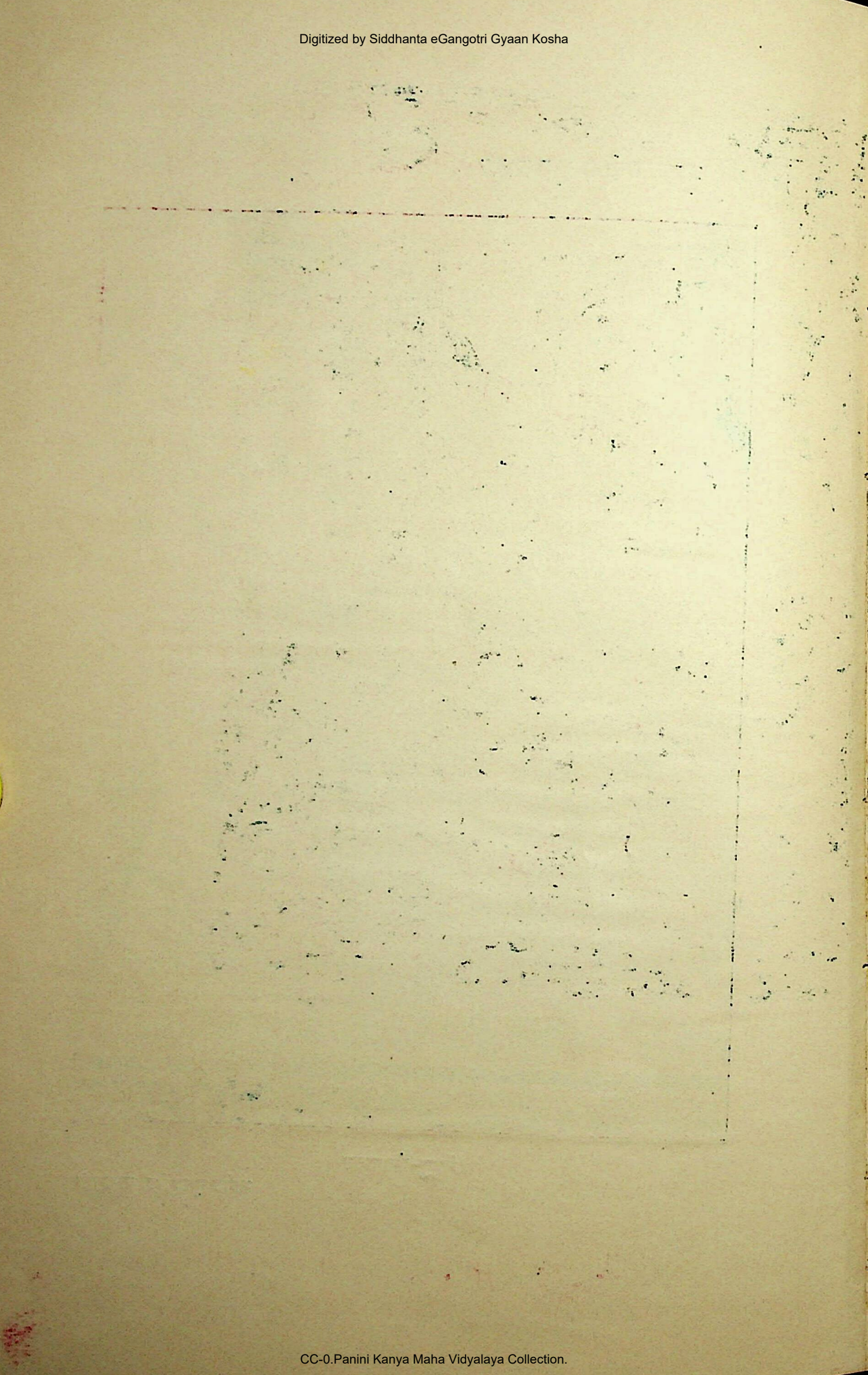

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीप्रभु ने तीसरा 'यज्ञपुरुष' का अवतार ग्रहण किया तथा संसारी राजाओं को यज्ञ करने की विधि बताकर कृतार्थ किया। श्रीहरि का चौथा अवतार 'हयग्रीव' रूप में हुआ। उस समय उन्होंने वेद चुरा ले जानेवाले मधुकैटभ नामक दैत्य को पाताल में जाकर मारा तथा उससे वेद लाकर मुझे दिया। पाँचवाँ अवतार धर्म नामक ऋषि द्वारा 'मूर्ति' नामक कन्या के गर्भ से 'नारायण' रूप में हुआ। वे अवतारी भगवान् उत्तराखण्ड में बदरी-केदार नामक स्थान में बैठे हुए इस अभिप्राय से तपस्या करते हैं, ताकि संसारी लोग भी मुझे देखकर तपस्या करने में प्रवृत्त हों। श्रीहरि ने छठवाँ अवतार 'कपिलदेव मुनि' के रूप में लेकर अपनी माता देवहूती को सांख्य-योग का उपदेश देकर मुक्ति प्रदान की। सातवाँ अवतार 'दत्तात्रेय' के रूप में लेकर 'राजा यदु' को ज्ञानोपदेश किया, जिसके प्रताप से वह मुक्ति-पद को प्राप्त हुआ। दत्तात्रेयजी ने अपने चौबीस गुरु बनाये थे। यह हाल आगे एकादश स्कन्ध में कहा जायेगा। श्री परब्रह्म प्रभु का आठवाँ अवतार 'ऋषभदेव' के रूप में हुआ। उन्होंने संसार में 'जैन धर्म' का प्रचलन किया। नवें अवतार में 'राजा पृथु' बनकर श्री नारायणजी ने अपने पिता बेन को नरक जाने से बचाया तथा गो-रूपिणी पृथ्वी को दुहकर उसमें से सब औषधियों को दूध के समान निकाल लिया। उन्होंने जो पर्वत पृथ्वी पर छितराये हुए थे, उन्हें उठाकर उत्तराखण्ड में स्थापित कर दिया तथा पृथ्वी पर मनुष्यों के रहने के लिए ग्राम एवं नगरों की स्थापना की। दसवें 'मत्स्यावतार' में प्रभु ने राजा सत्यव्रत को महाप्रलय का दृश्य दिखाया। समुद्र-मंथन के समय प्रभु ने ग्यारहवाँ अवतार 'कच्छप' रूप में लिया तथा मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर समुद्र से चौदह रत्न निकाले। बारहवाँ अवतार समुद्र-मंथन के समय 'धन्वन्तरि वैद्य' के रूप में हुआ। उस अवतार में प्रभु ने रोगों का नाश करने के लिए समुद्र में से औषधियों को निकाला। समुद्र-मंथन के समय अमृत निकलने पर जब देवता तथा दैत्य उसे पाने के लिए परस्पर लड़ने लगे, उस समय प्रभु ने तेरहवाँ 'मोहिनी' अवतार लेकर अपने सुन्दर स्वरूप से दैत्यों को मोहित कर दिया तथा वह अमृत देवताओं को पिला दिया। चौदहवें 'नृसिंह' अवतार में श्री नारायणजी ने हिरण्यकशिपु दैत्य का संहार कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। पन्द्रहवें 'वामन' अवतार में श्री नारायणजी ने राजा बलि से तीन पग पृथ्वी दान में लेकर देवताओं को दे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी। सोलहवें 'हंसावतार' में परमप्रभु ने सनत्कुमारजी को ज्ञानोपदेश कर उनका गर्व नष्ट किया। सत्रहवाँ 'नारायण' अवतार लेकर भक्त ध्रुव को दर्शन दिया। अठारहवाँ 'हरि' अवतार ग्रहण कर ग्राह को मारकर, गजेन्द्र के प्राण बचाये। उन्नीसवाँ 'परशुराम' अवतार लेकर श्री आदिपुरुष भगवान् ने हरिभक्तों को दुःख देनेवाले पापियों को मारा तथा पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन कर ब्राह्मणों को दान में दे दिया। बीसवाँ 'रामचन्द्र' अवतार लेकर गो-ब्राह्मणों को दुःख देनेवाले अन्य राक्षसोंसहित रावण का संहार किया तथा लङ्का का राज्य विभीषण को देकर हनुमान् को यश प्रदान किया। इक्कीसवाँ 'वेदव्यास' अवतार लेकर संसारी जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए वेद के चार विभाग किए तथा महाभारत एवं अठारह पुराणों की रचना की। बाईसवें 'कृष्णावतार' में श्री नारायणजी ने कौरव-पाण्डवों में महाभारत कराया तथा कंस, कालयवन और जरासन्ध आदि अनेक अधर्मी राजाओं का संहार कर पृथ्वी का भार उतारा। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने संसार में अनेक लीलाएँ कीं। दशम स्कन्ध में उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तेईसवाँ 'बुद्ध' अवतार लेकर दैत्यों को यज्ञ करने से रोका। कलियुग के अन्त में श्री नारायणजी का चौबीसवाँ अवतार 'कल्कि' रूप में होगा। वे हाथ में तलवार धारण कर, नीले घोड़े पर सवार हो, अधर्मी तथा पापी लोगों का संहार करेंगे और संसार में सतयुग के कर्मों की स्थापना कर धर्म की वृद्धि करेंगे।

"हे नारद! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार उन अविनाशी घटघटवासी परब्रह्म प्रभु के चौबीस अवतारों का तुमसे वर्णन किया है। जो अज्ञानी मनुष्य श्री परमेश्वर को भली भाँति न जानता हो, उसे ज्ञान तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिए इन अवतारों की कथा तथा लीलाओं को अवश्य सुनना चाहिए। जो ज्ञानी मनुष्य सब जीवों में एक ही जगदीश्वर का प्रकाश देखता है; उसे ब्रह्म-ज्ञानी तथा जीवन्मुक्त समझना चाहिए। हे नारद! मैं संसार की रचना करता हूँ, विष्णुजी पालन करते हैं तथा शिवजी सबका संहार करते हैं। ये तीनों देवता भी श्री नारायण के ही अवतार हैं। सारा संसार उन परमप्रभु की माया में लिप्त होकर स्त्री, पुत्र, धन आदि के मोह-जाल में बँधा हुआ है। श्री नारायणजी की जिस पर अत्यन्त कृपा होती है वही इस बन्धन से छुट-कारा पा सकता है। अन्यथा इस संसाररूपी बन्धन से छूटना अत्यन्त कठिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझना चाहिए। इस भव-बन्धन से छूटने के लिए श्री परब्रह्म परमेश्वर के स्मरण कीर्तन तथा लीला-चरित्रों के श्रवण से बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है। प्रभु के अवतारों की लीलाओं का वर्णन चारों वर्ण के मनुष्यों को सुनना चाहिए। श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोकों को, जो मैंने श्री नारायणजी से सुने थे, तुम्हें भी सुना दिया है। उन्हीं परमप्रभु का भजन एवं स्मरण करने से तुम्हारे शरीर में भी सम्पूर्ण गुण प्रकट हो जायेंगे।

"हे नारद! मेरे समान ब्रह्मा तथा तुम्हारे समान नारद अनेक बार प्रकट हो चुके हैं; परन्तु उनका हाल श्री परमप्रभु के बिना अन्य कोई नहीं जानता है। सब जीव अपने कर्मानुसार प्रत्येक कल्प में पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। जिस देश में देवालय नहीं होते तथा श्री परमेश्वर प्रभु की कथा नहीं होती, जिस घर में यज्ञ तथा हवन नहीं होता, वहाँ कलियुग का वास अधिक रहता है। उस स्थान के मनुष्य क्रोध, लोभ एवं अहंकार में भरे रहते हैं। इन क्रोध आदि को पापों की जड़ समझना चाहिए। ये ही मनुष्य द्वारा अनेक अधर्म कराते हैं। श्री नारायणजी की माया को शिवजी, दक्ष प्रजापति, देवता सनकादि, भृगु ऋषि, प्रहलाद, राजा बलि, अम्बरीष तथा प्राचीन बर्हिष आदि ही थोड़ा-बहुत जानते हैं। जो लोग हरिभक्त होते हैं तथा सदैव श्री नारायणजी की शरण में ही रहते हैं उनके ऊपर माया का कोई वश नहीं चलता।" इस प्रकार पितामह ब्रह्माजी द्वारा श्री नारायणजी की महिमा को श्रवण कर देवर्षि नारद वीणा बजाते तथा हरि-गुण गाते हुए, प्रसन्न हो वहाँ से चले गये।

———

आठवाँ अध्याय

राजा परीक्षित का श्री शुकदेवजी से धर्म, वेद, पुराण एवं योगाभ्यास के सम्बन्ध में प्रश्न करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने अपने मन में विचार किया कि श्री शुकदेवजी ने श्री नारायणजी की कथा सुनना चारों वर्णों के लिए समान कहा है। इन्होंने मुझे भी इन चारों वर्णों के बराबर ही समझा है। अतः मुझे अपना सन्देह छुड़ाने के लिए उन पिछले राजाओं के वृत्तान्त के विषय में प्रश्न करना चाहिए जिन्होंने श्री नारायणजी के भजन एवं स्मरण में अपना शरीर त्याग किया था। ऐसा विचार कर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे महात्मन्! अवतारों का हाल सुनकर मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुआ है तथा अब यही इच्छा हो रही है कि श्री नारायणजी के अवतारों की लीलाओं के अतिरिक्त अन्य कोई हाल न सुनूँ। इस कथा के सुनने से अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र होकर श्री परमप्रभु के प्रकाश से प्रकाशित होता है। उस चमत्कार द्वारा हृदय के काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद आदि उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार कि संसारी जीवों के घर में राजा के पधारने पर उनका घर शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है। अतः अब आप कृपा कर यह बताइये कि श्री आदिपुरुष नारायण के विराट् स्वरूप का, जिसमें कि सम्पूर्ण संसारी वस्तुएँ सन्निहित हैं तथा जो एक से अनेकरूप हो जाते हैं, भेद क्या है? पिछले युगों में जिन राजाओं ने श्री नारायणजी के ध्यान एवं स्मरण में लीन रहकर अपने शरीर का त्याग किया, उनका क्या इतिहास है? सम्पूर्ण तत्त्वों की संख्या, श्री नारायणजी की पूजा-विधि, योगी जनों द्वारा योगाभ्यास से शरीर त्यागने का वृत्तान्त, वेद का धर्म तथा स्वरूप, इतिहास-पुराणों का माहात्म्य, संसार में होनेवाले प्रलय का वर्णन, यज्ञादि की विधि, ब्रह्माण्ड एवं ऋषि-मुनियों का हाल, जीवों के नरक से निकलने की विधि, पाप तथा अधर्म करनेवालों की मृत्यु के पश्चात् का परिणाम, संसार में किस कर्म के करने से जीव मायाजाल में बँधता है इसका वर्णन तथा किन कर्मों के करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, इन सब बातों के सम्बन्ध में भी मुझे बताने की कृपा करें।"

यह सुनकर शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! मनुष्य-शरीर पाना अत्यन्त कठिन है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी श्री नारायणजी का स्मरण एवं कीर्तन नहीं करता तथा उनके लीला-चरित्रों को नहीं सुनता, उसे पछताने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता है। तुमने जो बातें पूछी हैं अब उनका हाल सुनो। जब परब्रह्म परमेश्वर यह चाहते हैं कि वे संसार में जीवों को उत्पन्न करके अपने स्वरूप की वृद्धि पर मोहित हों, जिस प्रकार कि मनुष्य दर्पण में अपना मुख देखकर प्रसन्न होता है, परन्तु उसे पलट देने पर फिर कुछ दिखाई नहीं देता; उसी प्रकार वे अपनी इच्छा से संसार को उत्पन्न करते हैं, तत्पश्चात् उसका नाश कर उसे अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं। इसलिए ज्ञानी मनुष्य उसी को समझना चाहिए, जो श्री नारायणजी के चौबीसों अवतारों की कथा एवं लीलाओं को सच्चे मन से सुनता है तथा उन पर पूर्ण विश्वास रखता है। चींटी से लेकर हाथी तक सब जीवों में उन्हीं एक परमप्रभु का एक-सा चमत्कार जानकर किसी को दुःख नहीं देना चाहिए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री सूतजी ने राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन्! तुमने जो बात पूछी है, वही एक बार ब्रह्मकल्प में पितामह ब्रह्मा ने श्री नारायणजी से पूछी थी।"

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी के उत्पन्न होने तथा श्री नारायणजी द्वारा श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोकों के कहे जाने का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब आदि निरंकार परमप्रभु की नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न हुआ तथा उस फूल से ब्रह्माजी प्रकट हुए, उस समय ब्रह्माजी ने यह बात जाननी चाही कि मैं कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ? जब बहुत विचार करने पर भी वे इस भेद को नहीं जान सके तब वे मन मारकर उसी फूल पर बैठे रहे। इस कथा से यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि श्री नारायणजी की माया ऐसी प्रबल है कि उस माया के बन्धन में बँधकर ब्रह्मा भी उनका भेद नहीं जान सकते हैं। तब अन्य संसारी जीवों की क्या सामर्थ्य है, जो वे परब्रह्म प्रभु की लीलाओं के आदि अन्त तथा भेद को समझ सकें? अस्तु, उस फूल पर बैठे हुए ब्रह्माजी ने आकाशवाणी द्वारा श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोकों को सुना तथा उसी आकाशवाणी के आज्ञानुसार तप करना आरम्भ कर दिया। तपस्या करने पर जब ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ तब उन्होंने उन चारों श्लोकों का अर्थ जानकर संसार की रचना करना आरम्भ कर दिया। उन चारों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है—हे ब्रह्मा! सबके पहिले जो था वह मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। तुम जो कुछ देख रहे हो, वह सब मुझी को समझो। महाप्रलय होने के उपरान्त भी मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं रहेगा। संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं का मूल मैं हूँ। जिस प्रकार हाथ, पाँव, नाक, कान आदि अङ्गों में पहिनने के लिए विविध प्रकार के स्वर्णाभूषण तैयार कराये जाते हैं और उन सबके नाम भी पृथक्-पृथक् होते हैं, परन्तु अन्त में केवल स्वर्ण ही शेष रह जाता है, उसी प्रकार मुझे भी समझना चाहिए। मैं अकेला हूँ, परन्तु जब मैं इच्छा करता हूँ तब संसार में अनेक रूप धारण करके अपने विभिन्न नाम प्रकट करता हूँ। तदनन्तर जब मेरी इच्छा अकेले रहने की होती है तब मैं अकेला रह जाता हूँ। सब जीवों में देखने, सुनने, बोलने तथा विचार करने की जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामर्थ्य है, वह सब मेरे प्रताप से ही समझनी चाहिए। जिस प्रकार आकाश सब ओर घिरा हुआ है, उसी प्रकार मैं सबसे अधिक शक्तिशाली रहकर तीनों लोक तथा चौदहों भुवनों को अपने वश में रखता हूँ। मेरे अतिरिक्त संसार की अन्य सभी वस्तुओं को मिथ्या समझना चाहिए। जिस प्रकार संसार का सम्पूर्ण व्यवहार मेरे विराट् स्वरूप में सन्निहित है, उसी प्रकार सबके शरीर में प्रकाशित ज्योति तथा प्राण मुझी को समझो। जब तक मेरा वह चमत्कार प्राणी के शरीर में रहता है तभी तक उसमें चलने, फिरने, खाने, पीने, बोलने तथा इन्द्रियों का सुख भोगने की सामर्थ्य रहती है। जब मेरा प्रकाश शरीर से पृथक् हो जाता है तब वह शरीर मृतक होकर सड़ जाता है। उस समय उस शरीर के किये कुछ भी नहीं हो सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णों में मेरा एक-सा प्रकाश विद्यमान है। ज्ञानदृष्टि द्वारा उनमें कुछ भी भेद न जानकर, सभी जीवों में मेरा एक-सा स्वरूप समझना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब चाँदी, स्वर्ण, मिट्टी तथा लोहे आदि के बर्तनों में एक-जैसा पड़ता है, उसी प्रकार सब जीवों में मेरा एक-सा प्रकाश समझना चाहिए। जिस प्रकार एक ही धागे में सोना, चाँदी, पीतल तथा काठ के अनेक रंग के, अनेक दानों को पिरोने से माला बन जाती है, उसी प्रकार सब जीवोंरूपी दानों को अपने में पिरोनेवाली माला का धागा मुझी को समझो। जिस प्रकार माला का धागा टूट जाने से सब दाने अलग-अलग बिखर जाते हैं, उसी प्रकार मेरी इच्छा होने पर सम्पूर्ण सृष्टि का नाश हो जाता है। अतः हे ब्रह्मा! तुम इसी प्रकार मुझे सब जगह उपस्थित जानकर, संसार की रचना करो। संसारी माया में फँसने से तुम्हें आनन्द प्राप्त नहीं होगा तथा तपस्या करने से तुम मेरा दर्शन प्राप्त कर सकोगे। तुम अपने मन में दया रखकर सब जीवों की रचना करो। ऋषि-मुनि तथा ज्ञानी लोग तुम्हारी स्तुति करेंगे। सृष्टि रचने में तुम्हें कुछ भी परिश्रम अथवा कष्ट नहीं होगा। तुम मेरे उस सूक्ष्म चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान करो जो महात्मा, ऋषि-मुनि तथा नन्द एवं सुनन्द आदि दासों के हृदय में विराजमान है।"

इस आकाशवाणी को सुनकर ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी को मन ही मन प्रणाम करने के पश्चात् हाथ जोड़कर कहा—"हे दीनानाथ! आप मुझे यह वरदान दीजिए कि मैं आपको सदैव अपना स्वामी समझता रहूँ तथा संसार को उत्पन्न करने में मुझे आसक्ति न हो।" ब्रह्माजी की यह विनय सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परब्रह्म परमेश्वर ने उन्हें इच्छित वरदान देते हुए आकाशवाणी के माध्यम से, फिर इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा ! तुम मेरी आज्ञा का स्मरण कर सांसारिक व्यवहारों की छाया के समान मिथ्या समझते रहना; तब तुम्हें मेरी माया नहीं व्यापेगी।" इतना कहकर श्री नारायणजी पितामह ब्रह्मा के ध्यान से लुप्त हो गये।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोकों का यही अर्थ है जो मैंने तुम्हें सुनाया है। ब्रह्माजी ने यह भागवत-ज्ञान अपने अन्य पुत्रों को नहीं बताया था। नारदजी को ज्ञानी समझकर केवल उन्हीं से कहा था। नारदजी ने यह ज्ञान व्यासजी से कहा। तत्पश्चात् मेरे पिता व्यासजी ने उसे विस्तार-पूर्वक लिखकर तथा श्रीमद्भागवत नाम रखकर मुझे पढ़ाया। इसी ज्ञान को मैत्रेय ऋषि ने यमुना नदी के तट पर विदुर से कहा था। अब वही कथा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। हे राजन् ! जो मनुष्य अहङ्कार के वशीभूत होकर श्री परमप्रभु के माहात्म्य को नहीं जानता है, वह इस संसार में तथा परलोक में अत्यन्त कष्ट पाता है।"

दसवाँ अध्याय

पञ्चतत्त्व द्वारा शरीर-निर्माण एवं उसके अङ्गों में देवताओं के निवास का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! इस श्रीमद्भागवत महापुराण में दस प्रकार की कथाएँ हैं। मैं उनका अलग-अलग हाल कहता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो। वे कथाएँ ये हैं—(१) संसार की उत्पत्ति, (२) संसार का नाश, (३) संसार की स्थिरता, (४) सम्पूर्ण प्राणियों का पालन, (५) श्री परब्रह्म प्रभु की लीलाएँ, (६) मन्वन्तरों का हाल, (७) भगवत्-कथा, (८) विरक्ति, (९) भक्ति तथा (१०) श्री नारायणजी सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं, इसका वर्णन। हे राजन् ! दसवें लक्षण (श्रीनारायणजी सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं) को जानने के लिए ही अन्य नौ लक्षणों (पूर्वोक्त) का हाल कहा गया है। शेषनाग की शय्या पर शयन करनेवाले आदिपुरुष श्री नारायणजी ने जब यह विचार किया कि हम अपने अनेक स्वरूप धारण करें, तब उन्होंने अपनी माया को यह आज्ञा दी कि तू संसार के विस्तार का उपाय कर। श्री नारायणजी की आज्ञा पाकर माया ने उसी समय स्वर्ग, पाताल तथा मर्त्यलोकों का निर्माण कर तामस, राजस तथा सात्त्विक इन तीन गुणों को प्रकट कर दिया। तामस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से अहङ्कार; राजस से हाथ, पाँव, वाणी, लिङ्ग, गुदा एवं पाँचों कर्मेन्द्रियाँ तथा सात्त्विक से नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका, त्वचा एवं पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुईं। इनके अतिरिक्त तमोगुण से पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि एवं वायु ये पाँच तत्त्व तथा सतोगुण से शब्द, मूर्ति, स्वाद, घ्राणशक्ति एवं बुद्धि का प्राकट्य हुआ। तदनन्तर शरीर की दसों इन्द्रियों का स्वामित्व एक-एक देवताओं को सौंपा गया। मुख में अग्नि, जिह्वा में वरुण, कान में दिशा, नासिका में अश्विनी-कुमार, हाथ में इन्द्र, आँख में सूर्य, लिङ्ग में मित्रावरुण, गुदा में यमराज, पाँव में विष्णु तथा बुद्धि में ब्रह्मा का वास हुआ। उस समय सब देवताओं ने यह इच्छा की कि हम लोग अपनी शक्ति द्वारा मनुष्य-शरीर को जीवित करें। इसके लिए उन्होंने बहुत-से उपाय भी किए, परन्तु जब वे परास्त हो गये, तब उन्होंने वायु की ओर संकेत किया; परन्तु उससे भी कुछ न हो सका। यह देखकर सब देवताओं ने श्री नारायणजी की स्तुति करनी प्रारम्भ की, जिनके द्वारा उस मूर्ति का निर्माण हुआ था। देवताओं ने कहा—"हे जगन्नियन्ता! आपकी कृपा के बिना हम लोगों से कुछ नहीं हो सकता है। अतः अब आप ही अपनी दयादृष्टि से इस मूर्ति को जीवित कीजिए।" देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर ज्योतिःस्वरूप श्री नारायणजी ने उस मूर्ति के भीतर अपना थोड़ा-सा प्रकाश प्रविष्ट करते हुए उसे उठने की आज्ञा दी। श्री परब्रह्म प्रभु के प्रकाश को पाकर वह मूर्ति प्राणवान् हो गई तथा सब देवता भी उसके अङ्गों पर अपना अपना निवास कर कार्य-सञ्चालन करने लगे।

"हे राजन्! मनुष्य के प्रत्येक अङ्ग पर देवता का निवास होता है। उनकी यह इच्छा रहती है कि हाथों से दान दिया जाय, जिह्वा से श्री नारायणजी का स्मरण किया जाय, कानों से श्री परब्रह्म प्रभु के लीला-चरित्रों को सुना जाय, पैरों से तीर्थ-यात्रा की जाय, आँखों द्वारा देवस्थान पर पहुँचकर देव-दर्शन किए जायँ तथा ध्यान में सदैव श्री परमप्रभु का स्मरण होता रहे। ऐसा करने से देवताओं को अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। मनुष्य के शरीर में सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण में से एक गुण आठों प्रहर वर्तमान रहता है। एक गुण की प्रबलता के समक्ष दूसरा गुण नट के समान लुप्त हो जाता है। हे राजन्! मैंने तुमसे यह ब्रह्मकल्प की कथा कही है। अन्य कल्पों में भी इसी प्रकार से संसार की उत्पत्ति होती है।"

द्वितीय स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

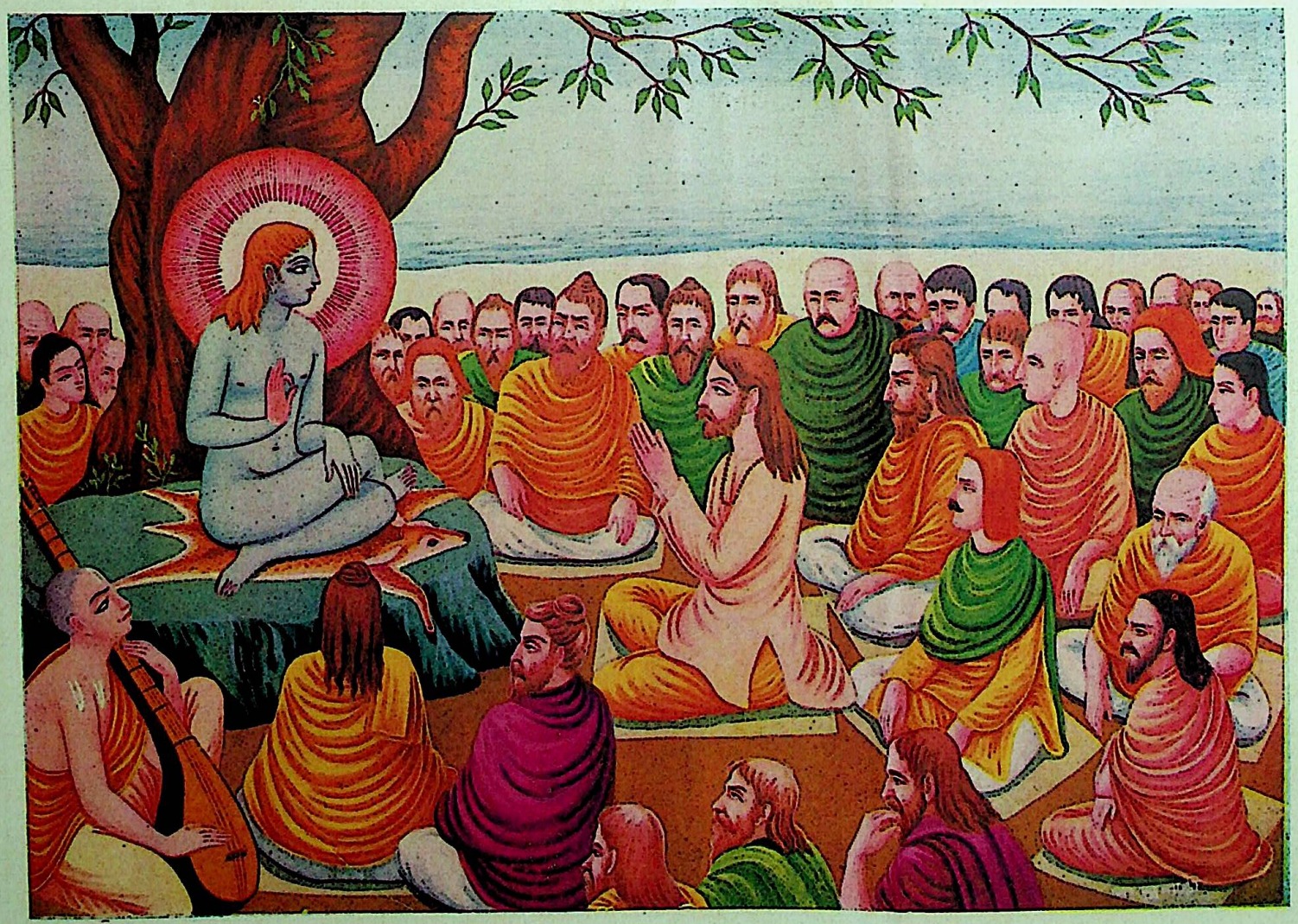

श्री शुकदेवजी का राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत् की कथा सुनाना

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

तृतीय स्कन्ध

विदुरजी की भक्तराज उद्धव से भेंट, मैत्रेय-विदुर-संवाद, जय-विजय तथा कपिलदेव अवतार का वर्णन

वन्दना

जिसकी बङ्क भृकुटि पर बल पड़ते ही महाप्रलय हो जाता,
उसकी कृपादृष्टि को पाकर, नव-निर्माण हुआ करता है!
नील गगन के विस्तृत पट पर जिसने हैं जड़ दिए सितारे;
जिसकी विभुता पाकर सीमित रत्नाकर के रहे किनारे;
जिसके नलिन-नयन की झपकी, निशा कहाती है अग-जग में—
उसकी ही मुस्कान-माधुरी से दिनमान हुआ करता है!
रवि, शशि को प्रकाश दे जिसने अब तक सदा तजोये रक्खा;
जह्नु सुता से हिमगिरि-अञ्चल जिसने सदा भिगोये रक्खा;
जिसने प्रणव रूप से कर दीं दसों दिशाएँ स्वयं निनादित—
लहरों में उसकी ही गरिमा का अनुमान हुआ करता है!
शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सब जिस पर रहते हैं अवलम्बित;
जिसकी नूपुर-ध्वनि से पूरित लय—द्रुत, मध्यम और विलम्बित;
काल, कर्म, गुण, भेद, क्रियाएँ चुम्बित हैं जिसकी महिमा से—
पतन उसी से, और उसी से फिर उत्थान हुआ करता है!
पास रहे या दूर—हमें उससे कुछ ऐसा काम नहीं है;
हृदय उसी ने दिया, किन्तु यह हृदय उसी का धाम नहीं है;
लेखक तो है वही, वही 'राजेश'—लेखनी भी है उसकी—
सोऽहं, सोऽहं में उसका ही गौरव-गान हुआ करता है!

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहला अध्याय

श्री कृष्णजी एवं विदुर आदि का, युधिष्ठिर को राज्य-भाग देने के लिए, राजा दुर्योधन को समझाना

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! तुमने जो प्रश्न किया था, उसी का उत्तर श्री नारायणजी ने लक्ष्मीजी को दिया था। लक्ष्मीजी ने वह बात शेषनाग को बताई। शेषनाग ने उसे वात्स्यायन ऋषि को सुनाया तथा वात्स्यायन ने मैत्रेय ऋषि को उपदेश किया।" यह वृत्तान्त सुनकर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से कहा–"हे प्रभो! विदुरजी तथा मैत्रेयजी तो परम ज्ञानी भक्त हैं। उनके परस्पर मिलन के समय अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हुआ होगा। अतः कृपा कर मुझे यह बतावें कि उन दोनों की भेंट किस स्थान पर हुई थी?" शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! जिस समय राजा धृतराष्ट्र ने अपने भाई के पुत्र युधिष्ठिर आदि को पराया मानकर अपने पुत्र दुर्योधन आदि को प्राणप्रिय समझा, उस समय दुर्योधन ने अर्जुन आदि पाँचों पाण्डव भाइयों को पहले तो लाक्षागृह में ठहराकर उसमें भस्म करने के लिए अग्नि लगवा दी; तत्पश्चात् भीमसेन को खाने के लिए विष का लड्डू बनाकर भेजा। इतने पर भी जब वे जीवित बच गये तो उसने जुए में अधर्मपूर्वक उनका सब राज्य तथा धन जीत लिया। तदुपरान्त उसने द्रौपदी-जैसी पतिव्रता स्त्री को राज-सभा में नग्न करने के लिए दुःशासन को उसका चीर खींचने की आज्ञा दी। इस पर भी जब उसके हृदय को सन्तोष न हुआ तब उसने पाण्डवों को तेरह वर्ष का वनवास दिया। आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से सब जगह पाण्डवों के प्राण बच गये। फिर तेरह वर्ष की अवधि व्यतीत करने के बाद जब वे लौटकर वापिस आये, तब भी दुर्योधन ने उन्हें उनका भाग देना स्वीकार नहीं किया। उस समय श्रीकृष्णजी, कृपाचार्य तथा विदुर आदि राजा धृतराष्ट्र के बुलाने पर पञ्च बनकर दुर्योधन की सभा में गये और उसे झगड़ा निपटा देने के लिए बहुत कुछ समझाया-बुझाया। भगवान् श्री श्यामसुन्दर, भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र को समझाते हुए इस प्रकार कहा था–"हे राजन्! तुम्हारे पुत्रों तथा तुम्हारे भाई पाण्डु के पुत्रों में कोई भेद नहीं है। दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्र तुम्हें स्वर्ग नहीं ले जा सकेंगे तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डु के पुत्र भी तुम्हें नरक में नहीं ढकेल देंगे, इसलिए तुम्हें यह चाहिए कि तुम संसारी व्यवहारों को मिथ्या समझकर युधिष्ठिर आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाँचों पाण्डवों को भोजनादि के निमित्त कुछ गाँव दे दो। इसमें तुम्हारा सब प्रकार से यश होगा।" राजा धृतराष्ट्र को जब यह बात अच्छी नहीं लगी तब विदुरजी ने अपने भाई धृतराष्ट्र को अधर्म करने पर उतारू देखकर यथार्थ बात समझाते हुए, इस प्रकार समझाया—"हे भाई! युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव अत्यन्त सज्जन हैं, वे किसी से वैर नहीं रखते तथा सबको अपना मित्र समझते हैं, इसलिए तुम उन्हें उनका भाग दे दो। वैसे तो युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव इन पाँचों भाइयों में इतनी सामर्थ्य है कि यदि उनमें से कोई एक चाहे तो वह युद्ध में दसों दिशाओं के दिग्पालों को परास्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी उनके रक्षक तथा सहायक हैं। तुम जो यह समझ रहे हो कि मेरे सौ पुत्र अत्यन्त शक्तिशाली हैं, सो यह निश्चय समझो कि भगवान् मुरलीमनोहर से विमुख रहने पर, उनके किए कुछ नहीं हो सकेगा। इस अधर्म के कारण तुम्हारा धर्म तथा धन सभी नष्ट हो जायगा। तुम्हारा पुत्र दुर्योधन त्रिभुवनपति श्री श्यामसुन्दर जी से शत्रुता रखता है अतः यदि तुम उससे प्रीति रक्खोगे अथवा उसके कहे अनुसार कार्य करोगे तो वह तुम्हारे लिए अत्यन्त अहितकर सिद्ध होगा। इन सब बातों पर विचार करके तुम युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों का हिस्सा उन्हें दे दो। दुर्योधन राज्य तथा धन के मद में अन्धा हो रहा है, अतः तुम उससे राज-सिंहासन छीन लो। इसी में तुम्हारा तथा तुम्हारे वंश का कल्याण है। अन्यथा यह स्मरण रक्खो कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी से विरोध रखने के कारण तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा।"

"विदुर द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर भी राजा धृतराष्ट्र ने कुछ नहीं कहा। उस समय दुर्योधन ने अत्यन्त क्रोध करके अपने सेवकों को यह आज्ञा दी कि तुम विदुर को मेरी सभा से निकालकर बाहर कर दो। यह दुष्ट हमारे वंश में उत्पन्न दासी-पुत्र होकर भी पाण्डवों का पक्षपात करता है। यद्यपि हम अभी तक इसका पालन पोषण करते रहे हैं, परन्तु अब यह हमारे उपकारों पर कोई ध्यान न देकर हमारे ही बराबर बैठ, हमीं को ज्ञानोपदेश करने की धृष्टता कर रहा है। दुर्योधन की आज्ञा सुन, सेवकों ने आगे बढ़कर जब विदुरजी को सभा से बाहर निकाल देना चाहा तथा राजा धृतराष्ट्र ने इस सम्बन्ध में दुर्योधन से कुछ नहीं कहा, उस समय विदुरजी ने अपने मन में यह विचार किया कि यदि कोई व्यक्ति मुझे बाँह पकड़कर सभा से बाहर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निकालेगा तो उस समय मेरा अधिक अपमान होगा। इसलिए मुझे उचित है कि मैं स्वयं ही यहाँ से उठकर चला जाऊँ। भगवान् श्री श्यामसुन्दर सभी कौरवों का विनाश चाहते हैं, इसीलिए धृतराष्ट्र आदि के हृदय में अधर्म समा गया है और इन्हें अच्छी बात सुनना भी बुरा मालूम होता है। यह विचार कर विदुरजी सभा से उठकर बाहर द्वार पर चले आये। उन्होंने अपने धनुष-बाण आदि शस्त्रों को उतार कर वहीं रख दिया। शस्त्र उतार देने का कारण यह था कि शस्त्र समेत जाने पर दुर्योधन अपने मन में कहीं यह सन्देह न कर ले कि वे पाण्डवों की ओर जा मिले हैं। इतना ही नहीं, विदुर जी ने अपने वस्त्र भी उतार दिए तथा केवल एक कौपीन बाँधकर और चादर ओढ़-कर, हस्तिनापुर से निकल, तीर्थयात्रा करने के लिए उत्तराखण्ड की ओर चल दिए।

"हे राजन्! विदुरजी द्वारा शस्त्र आदि रख देने का दूसरा कारण यह भी था कि वे श्री श्यामसुन्दर के परम भक्त होने के कारण भविष्य की बात को भी जानते थे। उन्होंने यह भली भाँति समझ लिया था कि दुर्योधनादि कौरवों का अन्तकाल निकट है। अतः उन्होंने सोचा था कि युद्ध का अवसर आने से पहले ही मुझे इन शस्त्रास्त्रों को रख देना चाहिए ताकि इन्हें धारण करने के कारण किसी समय युद्ध में प्रवृत्त न होना पड़े। अस्तु एक वर्ष तक उत्तराखण्ड की यात्रा करने के उपरान्त श्री विदुरजी यमुना नदी के तट पर देवताओं का दर्शन करते हुए मैत्रेय ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ वे ऋषि के समीप बहुत दिनों तक रहे। उन्हीं दिनों महाभारत का युद्ध हुआ, जिसमें कौरव आदि सभी अधर्मी मारे गये तथा भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से युधिष्ठिर को राजसिंहासन प्राप्त हुआ। जिस समय भक्तराज उद्धव, भगवान् श्यामसुन्दर के गोलोक-धाम पधारने के पश्चात्, द्वारका से बदरिकाश्रम को जा रहे थे, उस समय मार्ग में विदुरजी से उनकी भेंट हो गई। दोनों ही ईश्वर-भक्त परस्पर बड़े प्रेम से गले मिले। विदुरजी को जब भक्तराज उद्धव द्वारा दुर्योधनादि के मारे जाने तथा युधिष्ठिर को राजसिंहासन प्राप्त होने का समाचार मिला, उस समय पहिले तो उन्होंने बहुत शोक मनाया, तदुपरान्त भगवान् श्री कृष्ण-चन्द्रजी की ऐसी ही इच्छा जानकर हृदय में धैर्य को स्थान दिया।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरा अध्याय

विदुरजी का भक्तराज उद्धव से आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी का समाचार पूछना

शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! उद्धव से भेंट करने के पश्चात् विदुरजी ने उनसे पूछा—"हे उद्धव ! तुम तो एक क्षण के लिए भी भगवान् श्री श्याम सुन्दर से पृथक नहीं रहते थे, फिर क्या कारण है जो आज मैं तुम्हें यहाँ अकेला देख रहा हूँ ? कहो, मेरे प्राणप्रिय आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्री मुरली-मनोहर, बलराम जी, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, साम्ब, शूरसेन, वसुदेव, देवकी तथा अक्रूर आदि सब यदुवंशी अच्छी तरह तो हैं ? युधिष्ठिर तथा अर्जुन आदि सभी पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी तथा मेरा अन्धा भाई धृतराष्ट्र, जिसने अपने पुत्रों के मोह में फँसकर नरक जाने का उपाय किया था, ये सब लोग भी सकुशल तो हैं न ? मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए कौरवों के ज्ञान को नष्ट कर दिया था। जो राजा अभिमानी बनकर अपने राज्य, सेना तथा धन के बल पर अधर्म करते हैं, उनका संहार करने के लिए ही भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया है। अतः तुम मुझे उन श्री मुरलीमनोहर का सब समाचार सुनाओ; क्योंकि उनकी चर्चा करने से तीर्थ-स्नान का फल प्राप्त होता है।"

विदुरजी के ये बचन सुनकर भक्तराज उद्धव की आँखों में आँसू भर आये। तब उन्हें उदास एवं रोते हुए देखकर, विदुरजी ने अपने मन में यह भली भाँति समझ लिया कि श्री बाँकेविहारी अन्तर्धान हो गये हैं, इसीलिए भक्तराज उद्धव उनका स्मरण करके रो रहे हैं। तब क्षणभर पश्चात् उद्धव ने अपनी आँखें पोछते हुए कहा—"हे विदुरजी ! तुम आनन्दकन्द व्रजचन्द्र नट-नागर बाँकेविहारी का क्या समाचार पूछते हो ? भगवान् श्री श्यामसुन्दररूपी सूर्य अस्त हो गया है तथा कलियुगरूपी रात्रि ने संसार में प्रवेश किया है। मैं अपना तथा अन्य यदुवंशियों का दुर्भाग्य तुमसे कैसे कहूँ ? परब्रह्म निरंकार प्रभु ने अपनी इच्छा से श्री वसुदेवजी के घर अवतार ग्रहण किया था; परन्तु हम लोग माया-बन्धन में बँधे रहने के कारण उनके माहात्म्य को नहीं पहिचान सके। हमने उन्हें भी एक यदुवंशी तथा अपना भाई ही समझा। अब, जब उनकी महिमा पहिचानी है तो रोने तथा पछताने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सका। मैं तुमसे उनकी प्रशंसा कहाँ तक करूँ। उन्होंने सोलह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों से विवाह करके गार्हस्थ्य धर्म का विधिपूर्वक पालन किया। उनके अवतार लेने तथा विविध लीलाएँ करने का केवल यही तात्पर्य था कि संसारी लोग, विशेषकर अधर्मी व्यक्ति, उनके लीला-चरित्रों को परस्पर कह-सुनकर भवसागर से पार उतर जायँ। उन्होंने अत्यन्त बलवान् दैत्यों तथा राजाओं का संहार कर उन्हें मुक्ति प्रदान की। उन्होंने स्वयं अपनी इच्छा से ही पृथ्वी का भार उतारने के लिए कौरव-पाण्डवों द्वारा महाभारत कराया था। उन्हींने दुर्योधनादि सब कौरवों का नाश किया तथा उन्हींने युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों की रक्षा कर उन्हें राजसिंहासन दिलाया। इन सबके पश्चात् उन्हींने दुर्वासा ऋषि से शाप दिलवाकर छप्पन करोड़ यदुवंशियों का परस्पर के युद्ध में संहार करा दिया। अतः उनका स्मरण करके मुझे अत्यन्त दुख होता है। हे विदुर! तुम यह सत्य जानो कि जब से श्री वैकुण्ठनाथजी यदुवंशियों का नाश करके बैकुण्ठ को पधारे हैं, तब से संसार में सत्य और धर्म नहीं रहा है। मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की थी कि मैं जन्म भर आपकी सेवा में रहा हूँ। अतः इस समय भी मुझे आप अपने साथ ही ले चलिए, परन्तु उन्होंने मुझे अपने साथ ले चलने की स्वीकृति न देते हुए यह उत्तर दिया कि तू बदरी-केदार में जाकर मेरा ध्यान धर, उसी से तुझे मुक्ति प्राप्त होगी। हे विदुर! उन्होंने जो ज्ञान मुझे बतलाया उसका वर्णन श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में है। उन्होंने मुझे मुख्य ज्ञान यह बतलाया था कि केवल मुझे ही नित्य जानकर इस सम्पूर्ण संसार को नाशवान् समझो। जीवात्मा कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है, इसलिए मेरे वियोग का शोक मत करो। जिस प्रकार एक वस्त्र को छोड़कर दूसरा वस्त्र पहिन लिया जाय, उसी प्रकार यह जीव एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में प्रवेश करता रहता है। इसलिए मृत्यु का दुःख नहीं करना चाहिए।"

तीसरा अध्याय

उद्धवका विदुरजी से भगवान् श्यामसुन्दर की प्रशंसा तथा स्तुति करना

उद्धवजी ने विदुर से कहा—"हे भाई! भगवान् मुरली मनोहर ऐसे दयालु थे कि पूतना राक्षसी दूध पिलाने के बहाने अपने स्तनों में विष लगाकर उनके प्राण लेने के लिए आई थी, उसे भी उन्होंने मारकर वैकुण्ठलोक प्रदान किया। ऐसे दीनदयालु की शरण त्यागकर अन्य किसकी शरण में पहुँचा जाय?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन श्री कृष्णचन्द्रजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया था तथा वसुदेवजी से यह कहा था कि तुम मुझे यहाँ से ले जाकर नन्दजी के घर छिपा आओ। ये सब लीलाएँ उन्होंने केवल इसीलिए की थीं, ताकि उन्हें कोई प्रारम्भ में ही नारायण न समझ ले। अन्यथा किसमें इतनी सामर्थ्य थी जो उनका सामना कर सकता? उनसे तो काल भी भय मानता था। उन्होंने नन्दजी के यहाँ अनेक लीलाएँ करके समस्त ब्रजवासियों को सुख पहुँचाया। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि गुप्त रहती है, उसी प्रकार उन्होंने नन्दजी की गौएँ तथा बछड़ों को चराकर स्वयं को छिपाये रक्खा। कंस के भेजे हुए जो भी राक्षस उन्हें मारने के लिए आये, उन सबको श्री बाँकेबिहारी ने मारकर भवसागर से पार उतार दिया। उन्होंने इन्द्र का अभिमान नष्ट किया तथा गोपी-ग्वालों को वैकुण्ठलोक का दर्शन कराकर उन्हें अपना चतुर्भुजी रूप भी दिखला दिया। श्री श्यामसुन्दरजी ने नन्द बाबा को सर्प के काटने से बचाया तथा गोपियों के साथ रास-मंडल की लीलाएँ कीं। उन्होंने शंखचूड़, केशी, बकासुर, अघासुर आदि दैत्यों को मारकर वैकुण्ठ धाम दिया। जब अक्रूरजी उन्हें साथ लेकर मथुरा को जा रहे थे, उस समय मार्ग में यमुना-स्नान करते समय उन्हें अपने चतुर्भुजी स्वरूप का दर्शन कराया। श्री घनश्यामजी ने मथुरा में पहुँचकर कंस के धोबी का संहार किया तथा बाहुक दर्जी को वस्त्र पहिनाने के कारण प्रसन्न होकर परमपद प्रदान किया। उन्होंने सुदामा माली पर प्रसन्न होकर उसे कभी धन न घटने का वरदान दिया तथा चन्दन लगाने के बदले कुबरी कुब्जा को सीधा कर उसे देवकन्या के समान सौन्दर्य प्रदान किया। उन्होंने महादेवजी के कठिन धनुष को गन्ने की भाँति तोड़ डाला तथा चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों को कुश्ती में पछाड़कर राजा कंस को आठों भाइयों सहित मारकर स्वर्गधाम भेज दिया। जिन परब्रह्म परमेश्वर को ब्रह्मा, शिव, काल आदि त्रिलोकीनाथ जानकर उनका स्मरण एवं ध्यान करते हैं, उन्हींने सेवकों के समान राजा उग्रसेन को अपना भक्त जानकर उनकी आज्ञाओं का पालन किया। जिस प्रकार बालक खेलते समय चीटीं को मार डालते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बड़े-बड़े बलवान् दैत्यों, राक्षसों तथा राजाओं को पल भर में मार गिराया। इतनी सब लीलाएँ करने के उपरान्त वे परमप्रभु स्वयं भी अन्तर्धान हो गये। श्रीमद्भागवत के दसवें तथा ग्याहरवें स्कन्ध में उनकी सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे विदुरजी ! जिन दीनदयालु त्रिलोकीनाथ ने संसारी जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए ऐसी लीलाएँ कीं, उनके चरणों का ध्यान छोड़कर मेरा मन किसी दूसरी ओर नहीं जाता है। उनकी वह साँवली मन-मोहिनी सुन्दर मूर्ति एक क्षण के लिए भी मेरे हृदय से नहीं हटती है।"

चौथा अध्याय

उद्धवजी द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रजी की स्तुति एवं उनके वियोग का वर्णन

श्रीकृष्णजी के वियोग में व्याकुल उद्धव ने कहा—"हे विदुर ! भगवान् श्री मुरलीमनोहर द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के कारण मेरा मन संसारी माया-मोह से छूट गया है, परन्तु उनके वियोग का जो दुःख मुझे है वह किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि तुम्हें सुनना हो तो श्री मैत्रेय ऋषि से पूछ लेना। वे उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा कुछ दिनों में यहाँ आवेंगे। जिस समय भगवान् श्यामसुन्दर अन्तर्धान होना चाहते थे, उस समय मैत्रेय ऋषि ने प्रभास क्षेत्र में पहुँचकर उन्हें दण्डवत् किया था। उस समय श्री मुरली-मनोहर ने इस प्रकार कहा था—"हे मैत्रेयजी! मैं आपके मन का हाल जानता हूँ। आप धैर्य धारण करें। मेरी माया आपको नहीं व्यापेगी, क्योंकि आप मेरे भक्त तथा पूर्वजन्म के वसु देवता हैं। इस जन्म में आपने श्री वेदव्यासजी के भाई तथा पराशर ऋषि के पुत्र के रूप में जन्म लिया है। आपको मेरी सभी गुप्त एवं प्रकट लीलाओं का ज्ञान प्राप्त होगा। वात्स्यायन ऋषि ने जो भागवत धर्म आपसे कहा है, आप उसी धर्म को स्मरण रक्खें। उसके प्रभाव से आप भवसागर से पार उतर जायँगे।" हे विदुर ! आनन्दकन्द श्री कृष्ण-चन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर मैत्रेय ऋषि ने उत्तर दिया था—"हे परमप्रभु ! आपकी लीलाएँ स्मरण करके मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है। स्वयं काल भी आपके सम्मुख आँख उठाकर नहीं देख सकता है, परन्तु आप जरासन्ध एवं कालयवन के सम्मुख पैदल भागे थे। हे प्रभु ! आपके भेद को कोई नहीं जान सकता।" इस प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी की बहुत प्रकार से स्तुति करने के अनन्तर श्री मैत्रेयजी वहाँ से लौट आये। वे सब हाल जानते हैं सो तुम्हें यहाँ आकर सुनावेंगे। अब मैं श्री श्यामसुन्दरजी के आज्ञानुसार बदरिका-श्रम को जाता हूँ। वहाँ जाकर मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँगा। यदि तुम यह कहो कि ज्ञान प्राप्त होने पर भी मेरी आँखों में आँसू क्यों हैं तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार शोक क्यों कर रहा हूँ, सो इस सम्बन्ध में मुझे केवल यही कहना है कि श्री श्यामसुन्दर की दया एवं प्रीति को याद कर उनके वियोग का दुःख मुझे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलता है। मैं उसी ज्ञान के प्रताप से अभी तक जीवित हूँ, अन्यथा श्री मुरलीमनोहर का वियोग होते ही मेरे प्राण शरीर को त्याग देते। मुझे तुमसे केवल यही कहना है कि भगवान् मुरलीमनोहर ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही अवतार ग्रहण किया था। उन्होंने बड़े-बड़े अधर्मी दैत्यों तथा राजाओं का संहार कर कौरव तथा पाण्डवों में महाभारत कराया। जिस सेना में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य जैसे महान् शूर-वीर, बुद्धिमान्, ज्ञानी तथा हरिभक्त युद्ध करते थे, उस सेना के अठारह अक्षौहिणी दल का नाश कराकर उन परमप्रभु ने पृथ्वी का बोझ हल्का किया है। अतः हे विदुरजी! उन वैकुण्ठनाथ की इच्छा को सर्वोपरि समझना चाहिए।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियों! जो मनुष्य परमप्रभु के लीला-चरित्रों को सुनते समय करुण-स्थल पर आँसू बहाने लगते हैं, उनके अनेक जन्मों के पाप नेत्रों के मार्ग द्वारा बाहर निकल जाते हैं। श्री श्यामसुन्दर के अवतार की कथा एवं उनकी लीलाओं के श्रवण तथा श्री हरि-नाम के स्मरण से अधिक सुन्दर उपाय मनुष्य जीवन के कल्याण के लिए अन्य कोई नहीं है। महाभारत के पश्चात् आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पचास वर्ष तक संसार में निवास किया था तथा राजा युधिष्ठिर से दो बार यज्ञ कराकर उन्हें यश का भागी बनाया था।"

पाँचवाँ अध्याय

उद्धवजी का बिदा होना तथा बदरिकाश्रम में पहुँचकर शरीर त्याग करना

शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इसके अनन्तर उद्धवजी ने विदुर से कहा—"हे भाई! अब मुझे बिदा करो तो मैं बदरिकाश्रम को प्रस्थान करूँ।" उद्धवजी की बात सुनते ही विदुर की आँखों में आँसू भर आये। वे बोले—"हे उद्धवजी! भगवान् श्यामसुन्दर ने पृथ्वी पर अवतार ग्रहण कर सम्पूर्ण संसार में अपने यश को चन्द्रमा के प्रकाश के समान फैलाया तथा धर्म एवं गो-ब्राह्मणों की रक्षा कर पृथ्वी का बोझ उतारा। इसके अनन्तर वे साकेत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धाम को प्रस्थान कर गये। हम लोगों ने अपने अज्ञान तथा दुर्भाग्य के कारण उनकी महिमा को नहीं पहिचाना। तुम तो आठों प्रहर उन्हीं के पास रहते थे; परन्तु उनकी माया ऐसी बलवान् थी कि तुम भी उन्हें नहीं पहिचान सके। इससे यह निश्चय पूर्वक समझना चाहिए कि भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा के बिना उनके भेद को कोई नहीं पहिचान पाता है। यदि मुझ-जैसे व्यक्ति तुम-जैसे हरि-भक्तों की ही सेवा में रहें, तो भी जन्म सफल हो सकता है। परन्तु भगवान् मुरलीमनोहर की कृपा के बिना हरि-भक्तों का सत्संग भी सहज प्राप्त नहीं होता है। किसी पूर्वजन्म के पुण्योदय के कारण ही यहाँ मुझे तुम-जैसे हरिभक्त के दर्शन प्राप्त हुए हैं।"

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों तथा श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—"इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करने के पश्चात् उद्धवजी विदुरजी से बिदा हुए। तदनन्तर उन्होंने बदरिकाश्रम में पहुँचकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरणारविन्दों का ध्यान करते हुए, योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्याग दिया तथा इस प्रकार वैकुण्ठधाम प्राप्त किया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजा परीक्षित! उद्धवजी ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के अन्तर्धान होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त, विदुरजी से इसलिए नहीं कहा था कि कहीं वे उनके शोक में व्याकुल होकर अपना शरीर न त्याग बैठें।"

छठवाँ अध्याय

विदुरजी का मैत्रेय ऋषि से संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब विदुर ने हरिद्वार में पहुँचकर मैत्रेय ऋषि से भेंट कर दण्डवत् किया, उस समय उनके उदास मुख को देखकर मैत्रेय ऋषि ने इस प्रकार पूछा—"हे विदुर! तुम इतने उदास क्यों दिखाई देते हो? तुम्हारी चिन्ता का क्या कारण है?" यह सुनकर विदुर ने उद्धवजी से भेंट होने का सब समाचार कह सुनाया तथा जिस प्रकार उद्धवजी ने उन्हें बताया था, वह श्री श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने, महाभारत के युद्ध में दुर्योधनादि कौरवों के मारे जाने तथा यदुवंशियों का संहार होने का हाल बताते हुए, इस प्रकार कहने लगे—"हे ऋषि! भगवान् मुरलीमनोहर के वैकुण्ठ धाम पधारने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाचार प्राप्त करके ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। अब मेरी इच्छा है कि अपने उन आनन्दकन्द वैकुण्ठनाथजी के मुख से जो ज्ञान सुना है, वह मुझे भी बताने की कृपा करें, क्योंकि उसे सुनकर मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।"

यह सुनकर मैत्रेय ऋषि ने विदुरजी से कहा—"हे विदुर! तुम जिस ज्ञान को सुनना चाहते हो, वह मुझसे कहो। मैंने भगवान् श्यामसुन्दर के मुख से उस सम्बन्ध में जो सुना होगा, वह तुम्हें भी सुना दूँगा।" विदुरजी बोले—"हे ऋषिश्रेष्ठ! मनुष्य अपने सुख के लिये परिश्रम करता है, परन्तु वह सुख प्राप्त न करके उसके विपरीत दुःख उठाता है। अतः आप पहिले मुझे यह बताने की कृपा करें कि उस दुःख को देनेवाला कौन है? इसके अतिरिक्त आप मुझे यह बतायें कि परब्रह्म निरंकार प्रभु ने सगुण अवतार क्यों धारण किया। उन्हें संसार रचने तथा फिर उसे नष्ट कर देने में क्या लाभ होता है? मैं तो केवल यह समझता हूँ कि संसारी जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए तथा उनके पापों को नष्ट करने के लिए ही श्री नारायणजी यह विचार करके सगुण अवतार धारण करते हैं कि लोग उनकी लीलाओं तथा चरित्रों का वर्णन, स्मरण एवं ध्यान करके अपने परलोक को सुधारें। यदि इतने पर भी संसारी जीव अपने अज्ञान के कारण उन परमप्रभु के लीलाचरित्रों को सुनने में अपना ध्यान न लगायें तथा दिन-रात संसारी माया-मोह में लिपटे रहकर अपने जीवन को नष्ट करें तो यह उनका दुर्भाग्य ही है। इसमें उन परमप्रभु का क्या दोष है? मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि आदिपुरुष भगवान् किस प्रकार से ब्रह्मा बनकर संसार की उत्पत्ति करते हैं तथा विष्णु बनकर सबका पालन करते हैं एवं शिव रूप धरकर संसारका संहार करते हैं? ऐसा कौन-सा उपाय है जिसके करने से श्री नारायणजी प्रसन्न होते हैं तथा संसारी मनुष्य अपने अभीष्ट मनोरथ को प्राप्त कर अन्त में मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने तथा नरक में बहुत कष्ट उठाने के बाद, जब यह जीव मनुष्य का शरीर प्राप्त करता है, तब भी परमेश्वर की माया में लिपटा रहकर अधर्म करना क्यों नहीं छोड़ता? वह ऐसा कर्म क्यों नहीं करता जिससे सदैव के लिए जन्म-मरण से छूट जाये? हे प्रभो! इन सब बातों का क्या कारण है, यह आप मुझे बताने की कृपा करें। तभी मेरे मन का सन्देह दूर हो सकेगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सातवाँ अध्याय

श्री मैत्रेयजी द्वारा भगवान् मुरलीमनोहर की प्रशंसा एवं स्तुति

श्री शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! विदुर की बात सुनकर मैत्रेय ऋषि बोले—"हे विदुर ! तुम परम ज्ञानी हो। बाल्यावस्था से ही तुम्हें श्रीहरि के चरणों में स्नेह है। यद्यपि तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, फिर भी जब तुम पूछते हो तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उसे कहता हूँ। इसे सुनकर संसारी जीव भी भवसागर से पार उतर जायँगे। हे विदुर ! तुम धर्मराज के अवतार हो तथा तुमने कौरववंश में जन्म पाया है। परमेश्वर के सम्पूर्ण गुणों का तुम्हें ज्ञान है। माण्डव्य ऋषि के श्राप के कारण ही तुमने यह शरीर प्राप्त किया है। आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तुम्हारी सम्मति लेकर ही कार्य करते थे। तुम्हें श्री नारायणजी के चरण-कमलों में प्रीति एवं भक्ति है, अतः मैं तुमसे वह भगवद्धर्म कहता हूँ, जिसे मैंने अपने पिता महर्षि पाराशरजी से पढ़ा था। तुम उसे मन लगाकर सुनो।

"हे विदुर ! जो मनुष्य श्री नारायणजी से विमुख हैं वे दुखी होकर तथा इस भवसागर में पड़े रहकर आवागमन से कभी मुक्ति नहीं पाते हैं। जो व्यक्ति केवल अपने सुख के लिए ही कार्य करते हैं, उन्हें दुःख के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता। यदि वे थोड़ा-बहुत भी श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करें, तो वे सांसारिक दुःखों से इस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जैसे थोड़ी-थोड़ी औषधि प्रतिदिन खाने से रोग नष्ट हो जाता है। संसार में जन्म लेकर मनुष्य जैसे अच्छे-बुरे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। जिस प्रकार कोई मकड़ी अपने सुख से रहने के लिए जाला बुनती तथा बटोरती रहती है, परन्तु एक दिन उसी जाले में फँसकर अपने प्राण दे बैठती है, उसी प्रकार मनुष्य संसार में आकर स्त्री, पुत्र, कन्या, बन्धु आदि के मोह में फँस जाता है तथा उनके द्वारा सुख पाने की कामना करता है, परन्तु उसे कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता। श्री जगदीश्वर की कृपा के बिना मनुष्य का संसारी मायामोह से छूटना अत्यन्त कठिन है। उस माया के बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए तथा उन्हीं परमप्रभु के लीला-चरित्रों को सुनना चाहिए। जब कोई मनुष्य विषय-भोगादि इन्द्रियों के सुख को छोड़कर श्री जगदीश्वर का भजन करता है, तब वह माया के फन्दे से छूट जाता है। जिस प्रकार स्वप्न का दुःख जग जाने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार हरि-भजन करने से लोक-परलोक का दुःख नष्ट हो जाता है। संसार की उत्पत्ति का रहस्य यह है कि जब उन निरङ्कार प्रभु को यह इच्छा होती है कि वे, दर्पण में मुख देखने के समान, सृष्टि रच-कर अपने स्वरूप को स्वयं देखें तब वे सर्वप्रथम एक ज्योति को प्रकट करते हैं। उस ज्योति का नाम आदिपुरुष है। तत्पश्चात् वे सम्पूर्ण सृष्टि के मूल महत्व को प्रकट करके उससे सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीन गुणों को उत्पन्न करते हैं। सतोगुण से देवताओं के गुण, रजोगुण से पाँचों तत्त्व तथा तमोगुण से पञ्चभूतात्मा प्रकट होते हैं। उन्हीं पाँच तत्त्वों से मिल-कर मनुष्य-शरीर बनता है। मनुष्य-शरीर के प्रत्येक अङ्ग के अधिष्ठाता एक-एक देवता होते हैं। नेत्र के देवता सूर्य, नाक के देवता अश्विनीकुमार तथा जिह्वा के देवता वरुण, इस प्रकार सभी अङ्गों के अधिष्ठाता पृथक्-पृथक् देवता होते हैं। उनका वर्णन द्वितीय स्कन्ध के दसवें अध्याय में है।"

आठवाँ अध्याय

देवताओं द्वारा श्री नारायणजी की स्तुति का वर्णन

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जिस समय संसार को रचने के लिए ये सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं, उस समय देवताओं ने श्री परमप्रभु से संसार उत्पन्न करने की आज्ञा पाकर उद्योग करना आरम्भ किया। जब उनके द्वारा कार्य सम्पन्न न हो सका तब उन सबों ने मिलकर, हाथ जोड़कर श्री नारायणजी की स्तुति की। वे बोले—"हे दीनदयालु! संसार में जो मनुष्य सम्पूर्ण जीवों में आपके तेज का प्रकाश पहिचानकर आपका स्मरण एवं पूजन करता है वह संसारी माया-मोह से छूटकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता है। आपके लीला-चरित्रों को सुनकर उसे यह भली भाँति ज्ञान हो जाता है कि सबसे अधिक श्रेष्ठ तथा सबके स्वामी आपही हैं। आपकी कृपा के बिना सृष्टि उत्पन्न करने के कठिन कार्य को हम नहीं कर सकेंगे, अतः आप हमारे ऊपर दया कीजिए।"

देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर जब आदिनिरंकार प्रभु ने प्रसन्न होकर उनकी ओर कृपादृष्टि से देखा, त्योंही वे पाँचों तत्त्व एकत्रित होकर मांस-पिण्ड के रूप मे परिवर्तित हो गये। उसी मांस-पिण्ड का नाम आदिपुरुष हुआ। उस आदिपुरुष के रहने के लिए पाताल, भूर्लोक तथा स्वर्ग-लोक—इन तीनों लोकों का निर्माण हुआ। वह पुरुष नेत्र, कान, हाथ आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रियों का स्वामी हुआ। उसी पुरुष को विराट् रूप भी कहा जाता है। इस संसार का समस्त व्यवहार उसी के रूप में सन्निहित है। तत्पश्चात् उस आदि-पुरुष की नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न हुआ तथा उस फूल द्वारा ब्रह्मा का जन्म हुआ। तदनन्तर उसी पुरुष की दया से ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पाँवों से शूद्र इन चार वर्णों को उत्पन्न किया।"

नवाँ अध्याय

मैत्रेय ऋषि द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन

इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेय ऋषि से पूछा—"हे महात्मन्! यह तो आपने आदिपुरुष के अवतार की कथा कही। अब आप कृपाकर अन्य अवतारों का भी वर्णन कीजिए।" मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! महाप्रलय होने के उपरान्त जब चारों ओर जल ही जल शेष रह गया, उस समय वे आदि-पुरुष शेषनाग की शय्या पर शयन कर रहे थे। तभी उनकी नाभि से एक अत्यन्त प्रकाशवान् कमल का फूल उत्पन्न हुआ तथा उस फूल की नाल से ब्रह्मा ने जन्म लिया। जन्म लेने के उपरान्त ब्रह्मा उस फूल के ऊपर आ बैठे और अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि मुझे किसने उत्पन्न किया है तथा यह फूल किसकी शक्ति से खड़ा हुआ है? इस बात का पता लगाने के लिए ब्रह्मा उस फूल की नाल को पकड़कर नीचे उतरने लगे। एक सहस्र वर्ष पर्यन्त पानी में थाह लेने पर भी जब उस फूल की जड़ का पता न चला, तब वे हारकर फिर उसी फूल पर आ बैठे तथा इसी चिन्ता में व्याकुल हो उठे। इससे यह समझना चाहिए कि आरम्भ में सभी जीव अज्ञान होते हैं। नारायणजी की कृपा से ही सबको बाद में ज्ञान प्राप्त होता है। अस्तु, जिस समय ब्रह्मा उस फूल पर बैठे हुए चिन्ता कर रहे थे, उसी समय इस प्रकार आकाशवाणी हुई—"हे ब्रह्मा! तुम परमेश्वर का ध्यान एवं तप करो, तभी तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा।" इस आकाशवाणी को सुनकर जब ब्रह्मा ने श्री नारायणजी का ध्यान एवं तप किया, तब उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हुआ। उस समय उन्हें यह दिखाई देने लगा कि एक अन्यन्त सुन्दर चतुर्भुजी श्यामल पुरुष लक्ष्मी-सहित शेष-शय्या पर शयन कर रहा है तथा उसी की नाभि से वह कमल का फूल उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार ब्रह्माजी को पता चला कि उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फूल के माध्यम से उन्हें उत्पन्न करनेवाला पुरुष वही है तथा उसीने उन्हें सृष्टि उत्पन्न करने का अधिकार प्रदान किया है। जब ब्रह्माजी को सम्पूर्ण वस्तुएँ उसी पुरुष के रूप की दिखाई देने लगीं, उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर उस पुरुष की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे त्रिभुवनपति ! जो प्राणी आपसे विमुख रहते हैं उन्हें सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती है। वे संसारी माया-मोह में फँसे रहकर सदैव व्याकुल रहते हैं। उन्हें दिन-रात उठते-बैठते तथा सोते समय कल की चिन्ता लगी रहती है। आपके नाम का स्मरण करनेवाले तथा आपके चरणकमलों में भक्ति रखनेवाले प्राणी आपकी कृपा से सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करते हैं। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि स्त्री-पुत्र आदि का मोह त्यागकर वन में रहनेवाले साधु-सन्तों को सुख की प्राप्ति किस प्रकार होती है, तो उसके लिए यही कहा गया है कि संसारी मायामोह से छुटकारा पाते ही उन्हें इन्द्रलोक के सुख से बढ़कर हार्दिक सुख की प्राप्ति होने लगती है। अतः हे नाथ ! मैं यह चाहता हूँ कि सूर्य के प्रकाश से भी अधिक तेजवान् आपके चरणों के नख मेरे हृदय में सदैव अपना निवास बनाये रहें, जिससे मेरे अन्तःकरण में कभी अन्धकार न घुसने पावे। हे प्रभु ! योगी एवं ऋषि-मुनियों को भी ध्यान धरने पर आपके दर्शन शीघ्र प्राप्त नहीं होते हैं। यह आपकी अत्यन्त कृपा है, जो आपने इस प्रकार मुझे अपने दर्शन दिये हैं।"

इस प्रकार स्तुति करने के उपरान्त ब्रह्मा ने उन आदिपुरुष से प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आपने मुझे जीवों को उत्पन्न करने की आज्ञा दी है, परन्तु आपकी शक्ति एवं कृपा के बिना मैं कुछ भी कर सकने में सर्वथा असमर्थ हूँ। अतः आप कृपाकर मुझे अपनी शक्ति प्रदान कीजिए। हे स्वामी ! इसके साथ ही यह कृपा और कीजिए कि मैं कभी अहङ्कार में भरकर सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला स्वयं को ही न समझने लगूँ।" इस प्रकार ब्रह्मा की स्तुति सुनकर उस शेषशय्या पर शयन करनेवाले आदिपुरुष ने ब्रह्मा की ओर अपने नेत्र उठाकर कहा—"तू जो चाहता है मैं वही दूँगा, परन्तु तू अपने चित्त को परमेश्वर के स्मरण एवं तप में लगाये रहना। काम, क्रोध, लोभ तथा अहङ्कार इनसे सदैव दूर रहना तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने वश में रखना। इस प्रकार अभ्यास करने से जब तुझे ज्ञान प्राप्त हो जायेगा, तब तू मुझे अपना स्वामी एवं जन्मदाता जानकर सम्पूर्ण जीवों में मेरे तेज के प्रकाश को समान रूप से देखेगा। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि छिपी रहती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, परन्तु उपाय किए बिना प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार तू मेरे चरणों का ध्यान धरकर संसार की रचना कर। अहङ्कार-रहित होकर स्मरण करते समय तुझे मेरे सब अङ्गों का दर्शन प्राप्त होगा तथा बिना पढ़े हुए ही तू सब विद्याओं में पारङ्गत हो जायेगा। तुझे अपने द्वारा उत्पन्न किए हुए किसी प्राणी की मृत्यु का दुःख नहीं हुआ करेगा। इस प्रकार तू सन्देह-रहित होकर संसार की रचना कर।"

दसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा पंचतत्त्व एवं वृक्षादिकों की उत्पत्ति

मैत्रेय ऋषि ने कहा—"हे विदुर! इस प्रकार वह आदिपुरुष ब्रह्माजी को ध्यान में अपने दर्शन देकर अन्तर्धान हो गया। तब उस पुरुष की कृपा प्राप्त करके ब्रह्माजी ने स्वयं में सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति का अनुभव किया तथा वे संसार की उत्पत्ति करने में प्रवृत्त हो गये। उन्होंने सर्वप्रथम पंचतत्त्व तथा देवताओं का निर्माण किया। तदुपरान्त वृक्षादि की रचना की। फिर अपनी मानसी सृष्टि द्वारा समानरूप से दुःख-सुख को प्राप्त करनेवाले मनुष्यों की रचना की। उन्होंने उस कमल के फूल से ऊपर तथा नीचे के सात-सात इस प्रकार चौदह भुवन बनाये। इसके पश्चात् सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलि-युग—इन चार युगों का निर्माण किया। फिर वर्ष, मास, पक्ष, वार, घड़ी तथा पल बनाये, जिनके व्यतीत होने पर देवता, मनुष्य, दैत्य तथा राक्षस आदि सब जीवों की आयु पूर्ण होती है। देवता, दैत्य, राक्षस तथा मनुष्यों की योनि आगे तथा पशु-पक्षियों की योनि पीछे की ओर होती है। ब्रह्मा की आयु के एक दिन में चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं तथा एक मन्व-न्तर में इकहत्तर चतुर्युग बीतते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन में नवसौ चौरानबे चतुर्युगों को व्यतीत हुआ समझना चाहिए। इसी दिन के प्रमाण से तीस दिन का एक मास तथा बारह मासों का एक वर्ष गिनकर—ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की होती है। ब्रह्मा की रात भी दिन के बराबर ही होती है। ब्रह्मा दिन में जीवों की उत्पत्ति करते हैं। उनकी रात्रि होने पर संसार का प्रलय हो जाता है, उस समय सभी जीव नष्ट हो जाते हैं। रात बीतने पर जब फिर सवेरा होता है, तब जिस जीव ने जैसा कर्म किया था, उसीके अनु-सार ब्रह्मा उन्हें अन्य योनियों में उत्पन्न करते रहते हैं। इस प्रकार जब ब्रह्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की आयु के पचास वर्ष बीत जाते हैं, तब उस समय को 'अर्द्ध प्रलय' कहा जाता है। सौ वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर ब्रह्मा का शरीर भी नष्ट हो जाता है। उस समय चारों ओर केवल पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। केवल वे अविनाशी आदिपुरुष ही शेष रहते हैं। इस प्रकार यह एक ब्रह्माण्ड का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड बहुत से हैं तथा उन सबके स्वामी; उत्पन्न, पालन एवं संहारकर्त्ता आदिपुरुष भगवान् हैं। वे चाहें तो एक क्षण में ही अनेक सहस्र ब्रह्माण्ड उत्पन्न करके फिर एक ही क्षण में उनका नाश भी कर सकते हैं। इस भेद को कोई नहीं जानता है। वे आदिपुरुष नारायणजी उस समय भी थे, जब कोई नहीं था तथा तब भी वे ही स्थिर रहेंगे, जब कोई नहीं रहेगा। वे जन्म-मरण से परे हैं, उनमें कोई घट-बढ़ नहीं होती। इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई देता है वह सब उन्हीं की रचना है। मनुष्य से जो भी उत्तम, मध्यम अथवा नीच कर्म होता है, उन सबका हाल वे भली भाँति जानते हैं। इस ब्रह्माण्ड के स्वरूप को गूलर के फल के समान समझना चाहिए। जिस प्रकार गूलर के फल में अनेक छोटे-छोटे कीड़े भरे रहते हैं तथा फल तोड़ने पर उसमें से बाहर निकलकर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार सब जीव इस ब्रह्माण्ड में रहते हुए भी उन परमप्रभु के भेद को नहीं जानते हैं। जिन लोगों को सत्सङ्ग के कारण ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, वे सम्पूर्ण संसारी व्यवहार तथा शरीर को मिथ्या समझकर सब जीवों में परमप्रभु का समान चमत्कार जानने लगते हैं। वह आदिपुरुष गूलर के वृक्ष के समान है। जिस प्रकार गूलर के वृक्ष में सहस्रों फल लगे रहते हैं, उसी प्रकार उन परमप्रभु आदिपुरुष भगवान् के रोम-रोम में सहस्रों ब्रह्माण्ड बँधे हुए हैं। इसलिए सब जीवों में उन्हीं श्री नारायणजी का प्रकाश समझना चाहिए।"

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार एवं रुद्र की उत्पत्ति का वर्णन

मैत्रेय ऋषि ने कहा—"हे विदुर! देवताओं और मनुष्यों को उत्पन्न करने के बाद भी जब ब्रह्माजी को सन्तोष नहीं हुआ, तब उन्होंने सृष्टि को बढ़ाने के लिए अपने हृदय द्वारा सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार जो श्री नारायणजी के अवतार हैं, की सृष्टि की। तत्पश्चात् उन्होंने इन चारों भाइयों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रजा को उत्पन्न करने के लिए कहा। ब्रह्माजी की बात सुनकर उन चारों भाइयों के हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जो माता, पिता, भाई आदि श्रीहरि का भजन करने में विघ्न स्वरूप हों, उन्हें अपना हितू नहीं समझना चाहिए। अतः हम लोग प्रजा की उत्पत्ति नहीं करेंगे। यह निश्चयकर उन्होंने ब्रह्माजी से कहा–"हे पिता! हम आपसे यह वरदान माँगते हैं कि हमारी अवस्था सदैव पाँच वर्ष की बनी रहे। हमारा हृदय काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत हो कभी इन्द्रियसुखों की कामना न करे। हमें कभी भी युवावस्था अथवा वृद्धावस्था न व्यापे। यदि हम लोग सदैव पाँच वर्ष की आयुवाले ही बने रहेंगे तो हमारी इन्द्रियाँ विषय-भोग एवं संसारी माया-मोह की ओर आकर्षित न होंगी। हम लोग श्री नारायणजी का भजन एवं स्मरण करना चाहते हैं। अतः आप हमें प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा मत दीजिए, क्योंकि यदि हम प्रजा की उत्पत्ति में संलग्न हो गये, तो श्री नारायणजी का भजन नहीं कर सकेंगे।"

उन चारों भाइयों के इस प्रकार वचन सुनकर ब्रह्माजी ने वरदान देते हुए कहा–"तुम लोगों की अवस्था सदैव पाँच वर्ष की बनी रहेगी तथा सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तुम्हारे वशीभूत रहेंगी; परन्तु तुमने जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर प्रजा की उत्पत्ति करना स्वीकार नहीं किया यह बहुत अनुचित बात है।" इतना कहकर ब्रह्माजी के हृदय में अपने पुत्रों द्वारा आज्ञा-उल्लंघन करने के कारण क्रोध की उत्पत्ति हुई। जिस समय ब्रह्माजी को क्रोध उत्पन्न हुआ उस समय उनकी दोनों भौंहों के मध्य से एक श्याम एवं रक्त वर्ण के पुरुष की उत्पत्ति हुई। वह उत्पन्न होते ही रोने लगा। जब ब्रह्माजी ने उससे रोने का कारण पूछा तब उस पुरुष ने यह उत्तर दिया कि आप मेरा नामकरण कर मुझे कोई कार्य बताइये। यह सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न होकर बोले–"तू उत्पन्न होते ही रोया है। अतः तेरा नाम 'रुद्र' होगा। तू जीवों की उत्पत्ति कर तथा सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ बनकर सृष्टि में निवास कर। संसारी जीव तुझे शिव, शङ्कर, महादेव आदि अनेक नामों से पुकारेंगे।" ब्रह्माजी की यह आज्ञा सुनकर रुद्र ने काम, क्रोध, लोभ एवं अहङ्कार से परिपूर्ण राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच आदि की उत्पत्ति की। परन्तु उस सृष्टि को देखकर ब्रह्माजी को सन्तोष नहीं हुआ। वे बोले–"हे रुद्र! तेरी उत्पत्ति क्रोध से हुई है। अतः जब तक तेरे अन्तःकरण में सतोगुण का निवास न होगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब तक तेरे द्वारा उत्पन्न किए हुए सभी जीव अधर्मी ही होंगे। अतः तू पहिले जाकर तपस्या कर। उस तपस्या के कारण जब तेरा तमोगुणी स्वभाव नष्ट हो जायेगा तथा उसे सतोगुण की प्राप्ति होगी, तब तुम उस सतोगुण द्वारा प्रजा की उत्पत्ति करना। तपस्या करने से तुझे श्री नारायणजी के दर्शन भी प्राप्त होंगे।" ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर रुद्र ने सृष्टि उत्पन्न करना बन्द कर दिया तथा तपस्या करने के लिए चले गये।"

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा नारद, वशिष्ठ, अंगिरा आदि ऋषि; राजा स्वायंभुव मनु तथा शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन

मैत्रेय ऋषि ने कहा—"हे विदुर! इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने नारद, वशिष्ठ, अंगिरा आदि ऋषियों को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी वाणी द्वारा सरस्वती नाम एक परम सुन्दरी वस्त्राभूषणालंकृता कन्या को जन्म दिया। उस सुन्दर कन्या को देखते ही ब्रह्माजी श्री नारायणजी की माया से मोहित हो गये तथा उसके साथ भोग करने की इच्छा प्रकट करने लगे। उस समय नारद, अंगिरा आदि ऋषियों ने ब्रह्माजी को अधर्म करने पर उद्यत देखकर इस प्रकार कहा—"हे पिता! आप संसार के गुरु हैं। यदि आप ऐसा पाप करेंगे तो अन्य संसारी लोग भी यह हाल सुनकर आपका ही अनुकरण करने लगेंगे। इसलिए आपको अपनी कन्या के साथ भोग नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार अपने पुत्रों द्वारा समझाये जाने पर ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब उन्होंने अत्यन्त लज्जित हो, अपना वह शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण कर लिया। उस समय ब्रह्माजी के पहिले मृतक-शरीर से जो अंधकार-सा उठा, वह संसार में कुहरे के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो प्रातःकाल के समय दिखाई देता है। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने चारों मुखों से चार वेद उत्पन्न किए तथा वास्तुविद्या, वैद्यकशास्त्र, यज्ञ एवं दान का विधान तथा संगीतशास्त्र—ये चार विद्याएँ और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चार आश्रमों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् जब ब्रह्माजी ने यह देखा कि अकेले मेरे द्वारा उत्पन्न करने से जीवों की वृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने अपने दाहिने अङ्ग से 'स्वायंभुव मनु' नाम के एक पुरुष तथा बायें अङ्ग से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'शतरूपा' नामक एक स्त्री की उत्पत्ति की। फिर उन दोनों का परस्पर विवाह कर देने के पश्चात् उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम मैथुन द्वारा मनुष्यों की उत्पत्ति करो। उस समय ब्रह्माजी की आज्ञा सुनकर स्वायंभुव मनु ने प्रार्थना की—"हे पिता! मैं आपकी कृपा से बहुत से मनुष्य उत्पन्न करूँगा, परन्तु उनके रहने के लिए स्थान की आवश्यकता है। इस समय तो चारों ओर जल ही जल भरा हुआ है। वे लोग जल में न रह सकेंगे। हे विधाता! अभी तक आपने जितने जीव उत्पन्न किए हैं, वे सभी इसी कमल के फूल पर बैठे हुए हैं; परन्तु जब मैं अधिक मनुष्यों को उत्पन्न करूँगा तब भला वे कहाँ रह पायेंगे?" स्वायम्भुव की यह बात सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छा, तुम सबसे पहिले श्री नारायणजी का तप करो, उसके पश्चात् मनुष्य की उत्पत्ति करना। तब तक मैं उन लोगों के रहने के लिए स्थान का प्रबन्ध करता हूँ।"

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा जीवों के रहने के लिए स्थान-प्राप्ति के हेतु श्री नारायणजी की प्रार्थना करना तथा श्री नारायणजी का वाराह अवतार धारणकर पृथ्वी को पाताल से बाहर लाना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! जब स्वायम्भुव मनु ने पृथ्वी के प्रकट होने की कामना की, उस समय ब्रह्माजी उन आदिपुरुष नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभु! आपकी कृपा के बिना किसी जीव का कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। आप जिसके ऊपर अपनी दया दिखाते हैं, वही अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकता है। हे नाथ! मैं आपकी आज्ञा पाकर जीवों की उत्पत्ति कर रहा हूँ, परन्तु वे लोग किसी आधार के बिना पानी पर किस प्रकार ठहर सकेंगे—यही चिन्ता मुझे व्याकुल बना रही है। अब तक मैंने जितने जीव उत्पन्न किए हैं, वे सभी इस कमल के फूल पर ही बैठे हुए हैं। अब आप मुझे जो आज्ञा दें मैं उसी के अनुसार कार्य करूँ।" इस प्रकार जब ब्रह्माजी ने बहुत प्रार्थना की, उस समय श्री नारायणजी ने उन्हें ध्यान में दर्शन देकर इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा! तुम चिन्ता मत करो। मैं अवतार धारणकर जीवों के रहने के लिए पृथ्वी ला दूँगा।" इतना कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् श्री नारायणजी ने अपने मन में यह विचार किया कि हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वी को उठाकर पाताल में ले गया है, अतः अब मुझे उसे वहाँ से बाहर निकाल लाना चाहिए। इसी समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री नारायणजी की लीला से ब्रह्माजी को छींक आई। तब उनकी नाक के दाहिने छिद्र से मच्छर के समान अत्यन्त छोटा एक शूकर उत्पन्न हुआ। क्षणभर में ही वह शूकर बढ़कर हाथी के समान हो गया और भयानक स्वर में गर्जना करने लगा। उसे देखकर श्री ब्रह्माजी अपने मन में यह सोचकर कि यह कैसा जीव है, अत्यन्त भयभीत हो गये। तदनन्तर उन्हें ज्ञानदृष्टि से देखने पर यह पता चला कि श्री नारायणजी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर पृथ्वी को लाने के लिए यह स्वरूप धारण किया है। अन्यथा और किस जीव की ऐसी सामर्थ्य थी जो क्षणभर में ही इतना बड़ा स्वरूप धारण कर लेता? यह सोचकर ब्रह्माजी ने उन वाराह भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो! आपने वाराह-स्वरूप धारणकर अपने वचन को पूरा किया है। अतः आप परम धन्य हैं।" ब्रह्माजी के मुख से यह वचन सुनते ही श्री वाराह भगवान् उस फूल के ऊपर से पानी में कूद पड़े और पाताल लोक में जा पहुँचे। जब वहाँ हिरण्याक्ष दैत्य दिखाई नहीं दिया तो उन्होंने बावन करोड़ योजन लम्बी-चौड़ी पृथ्वी को, जो वहीं रक्खी हुई थी, अपने दाँतों पर इस प्रकार उठा लिया, जिस प्रकार हाथी अपने दाँतों पर कमल के फूल को उठा लेता है। जिस समय वे पृथ्वी को उठाकर वहाँ से चले, उस समय मार्ग में ही हिरण्याक्ष दैत्य से उनकी भेंट हो गई। वह हिरण्याक्ष नामक दैत्य अत्यन्त बलवान् था। उससे युद्ध करने की शक्ति किसी भी और देवता में न थी। श्री वाराह भगवान् ने उस दैत्य का संहार कर दिया। तत्पश्चात् वे पृथ्वी उठाकर पानी के बाहर ले आये, तब पृथ्वी को देखकर ब्रह्माजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर वाराह भगवान् की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! जिस प्रकार आप पृथ्वी को पानी से बाहर निकालकर लाये हैं, उसी प्रकार अब आप दयाकर इसे पानी के ऊपर स्थिर कर दीजिए। तब सब जीव इस पर आनन्द से निवास करते हुए यज्ञ-हवनादि शुभ कर्म कर सकेंगे।" जिस समय वाराह भगवान् ने पृथ्वी को उस जल के ऊपर रक्खा तो वह मिट्टी होकर गलने लगी, उस समय उन्होंने उसे अपनी कुछ शक्ति देकर जल के ऊपर स्थिर कर दिया। तदनन्तर ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न वशिष्ठ, अङ्गिरा आदि ऋषि श्री वाराह भगवान् की स्तुति करने लगे। तदनन्तर उन्होंने पृथ्वी पर निवासकर श्री नारायणजी का स्मरण, कीर्तन, यज्ञ, हवन आदि करना प्रारम्भ कर दिया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौदहवाँ अध्याय

मैत्रेयजी द्वारा वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय के, दिति के गर्भ में वास करने की कथा का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेय ऋषि से पूछा–"हे ऋषिश्रेष्ठ ! हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दैत्यों को मारने के लिए श्री परब्रह्म प्रभु ने स्वयं अवतार क्यों ग्रहण किया ? क्या उन्हें देवतागण नहीं मार सकते थे ? कृपाकर आप मुझे इस सम्बन्ध में कुछ बतावें।" यह सुनकर मैत्रेयजी बोले–"हे विदुर ! हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दैत्य वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय के अवतार थे। उन्हें नारायणजी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं मार सकता था।" उनकी कथा इस प्रकार है–

ब्रह्माजी के पुत्र कश्यप की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम दिति तथा दूसरी का नाम अदिति था। अदिति के पुत्र देवता तथा दिति के पुत्र दैत्य हुए। जिस समय देवता इन्द्रासन का उपभोग कर रहे थे, उस समय दिति ने अपने पुत्रों के राजसिंहासन प्राप्ति की कामना से कश्यपजी की अधिक सेवा करना आरम्भ कर दिया। वह यह चाहती थी कि कश्यपजी प्रसन्न होकर उसे कोई ऐसा बलवान् पुत्र दें, जो देवताओं से राज्य छीनकर स्वयं इन्द्रासन का स्वामी बन बैठे। अतः एक दिन दिति ने अपने पति को प्रसन्न देखकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना की–"हे देव ! मेरी यह अभिलाषा है कि मेरे गर्भ से ऐसे शूर-वीर पुत्र उत्पन्न हों, जो युद्ध में अदिति के पुत्रों को परास्त करके इन्द्रासन का स्वयं उपभोग करें।" हे विदुरजी ! देवतागण धर्मात्मा तथा ज्ञानवान् थे। अतः कश्यपजी हृदय से उनकी पराजय नहीं चाहते थे, परन्तु दिति की सेवा से प्रसन्न होने के कारण उन्होंने उसका मनोरथ पूर्ण होने का वरदान दे दिया। तदुपरान्त एक दिन जब दिति ऋतुस्नान से शुद्ध हुई, तब वह सन्ध्या के समय भोग करने की इच्छा से अपने पति कश्यपजी के पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगी–"हे देव ! इस समय मैं कामदेव से पीड़ित हूँ। मेरी सौत अदिति के पुत्र जो स्वयं इन्द्रासन का सुख भोग रहे हैं, मेरे हृदय को दुःख पहुँचाते रहते हैं। उनका उत्कर्ष मुझसे नहीं सहा जाता। अतः आप कृपाकर मेरी चिन्ता दूर कर दीजिए।"

दिति के ये वचन सुनकर मरीचि के पुत्र कश्यप ने इस प्रकार कहा–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे दिति ! मैं इस समय तेरे साथ भोग-विलास नहीं कर सकता। सन्ध्या काल से चार घड़ी रात बीतने तक तथा प्रातःकाल से पूर्व चार घड़ी रात रहने तक का समय श्री परमप्रभु परमेश्वर के ध्यान करने का है। अतः इस समय में प्राणी को अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहिए। इस समय श्री शिवजी तथा पार्वतीजी बैल पर सवार होकर संसार में सर्वत्र भ्रमण करते हैं। अतः उन्हें इस समय में जो प्राणी जगता हुआ तथा परमेश्वर का ध्यान एवं भजन करता हुआ दिखाई देता है उसे तो वे आशीर्वाद देकर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं तथा जो प्राणी सोता हुआ अथवा सांसारिक व्यवहारों में लगा हुआ दिखाई देता है, उसे कभी भी मनोरथ सफल न होने का शाप देते हैं। इसलिए इन समयों में प्राणी को श्रीहरि के भजन एवं स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहिए। यदि तू यह कहे कि तुम तथा शिवजी—दोनों ही ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हुए हो, इसलिए वंशज एवं आत्मीय होने के कारण शिवजी तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे, सो उस सम्बन्ध में मुझे यही कहना है कि शिवजी मेरे स्वामी तथा ईश्वर के समान हैं परन्तु धर्म के सम्बन्ध में वे किसी का भी अपराध क्षमा नहीं करते हैं। हे दिति ! इसलिए तू चार घड़ी तक और धैर्य धारण कर जिससे यह श्री नारायणजी के भजन का समय व्यतीत हो जाय। इसके अनन्तर मैं तेरी इच्छा पूर्ण कर दूँगा।"

इस प्रकार कश्यपजी ने दिति को बहुत समझाया, परन्तु वह उस समय कामदेव के मद में ऐसी मदमाती हो रही थी कि पति के समझाने पर भी उसे सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ और वह लज्जा को त्याग; कश्यपजी के वस्त्र पकड़कर उनसे भोग करने के लिए हठ पकड़ उठी। तब कश्यपजी ने विवश होकर उसके साथ भोग किया। तदुपरांत उन्होंने दिति से कहा—"हे दिति ! इस समय तूने जो अधर्म किया है, इस अपराध के कारण ब्राह्मण, ऋषि-मुनि तथा सम्पूर्ण प्राणियों को कष्ट देनेवाले दो पुत्र तेरे गर्भ से जन्म लेंगे। उन्हें कोई भी देवता, दैत्य अथवा मनुष्य युद्ध में नहीं जीत सकेगा तथा श्री नारायणजी स्वयं सगुण अवतार धारणकर उनका संहार करेंगे।" कश्यपजी के यह वचन सुनकर दिति अत्यन्त उदास हो गई। तत्पश्चात् वह हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी—"हे स्वामी ! मेरी इच्छा तो केवल इतनी ही थी कि मेरे पुत्र देवताओं को जीतकर इन्द्रपुरी के राज्य-सुख का उपभोग करें। ब्राह्मण आदि जीवों को दुःख देनेवाले अधर्मी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र की मुझे इच्छा नहीं थी। मैं ऐसे पापी पुत्रों को लेकर क्या करूँगी ?" दिति के यह शब्द सुनकर तथा उसे अत्यन्त उदास देखकर कश्यपजी ने कहा—"हे दिति ! अब कुछ अन्यथा नहीं हो सकता। यह तो इस समय भोग करने का प्रभाव है। मैंने तुझसे पहिले इसीलिए मना किया था, परन्तु तब तूने मेरी बात नहीं मानी। अस्तु, अब इस अधर्म को करने के बाद जो तू इस प्रकार पछता रही है, उसे देखकर मैं यह वरदान देता हूँ कि तेरा एक पौत्र परम भक्त, ज्ञानी तथा तपस्वी होगा। उसके नाम का स्मरण करके संसारी जीव भवसागर से पार उतर जायेंगे। सभी देवता, दैत्य आदि उसके गुण गायेंगे। श्री नारदजी उसकी प्रशंसा इन्द्र की सभा में करेंगे तथा स्वयं श्री नारायणजी अवतार धारणकर उसकी रक्षा करेंगे।" कश्यपजी के यह वचन सुनकर दिति को अपने हृदय में थोड़ा-सा धैर्य प्राप्त हुआ।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्री सनत्कुमारजी का वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय को शाप देना तथा उनका दिति के गर्भ में आगमन

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर ! जिस समय कश्यप मुनि का वीर्य दिति के गर्भ में पड़ा, उस समय जय-विजय के तेज द्वारा, जिन्होंने उसके गर्भ में निवास किया था; सम्पूर्ण देवताओं का हृदय भयभीत होने लगा। वे इस प्रकार घबराने लगे, जैसे कोई बलवान् शत्रु मारने के लिए चला आ रहा हो। उस व्याकुलता के कारण जब देवताओं का तेज प्रतिदिन घटने लगा, तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे विधाता ! आप सम्पूर्ण जीवों के सुख-दुःख तथा भूत-भविष्य को जाननेवाले हैं। इन दिनों हम लोगों का हृदय अत्यन्त व्याकुल तथा भयभीत रहता है। अतः आप हमें इसका भेद बताने की कृपा करें।" देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—"हे इन्द्र ! श्री नारायणजी के द्वारपाल जय तथा विजय, जन्म लेने के हेतु दिति के गर्भ में आये हैं, अतः उनके तप एवं तेज के कारण तुम्हारी शक्ति क्षीण हो गई है।"

ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर देवताओं ने पूछा—"हे ब्रह्माजी ! जब उनके गर्भ में आने पर हमारी यह दशा हुई है, तो उनके जन्म लेने के उपरान्त तो न जाने कैसी बुरी अवस्था होगी ? हे प्रभु ! वैकुण्ठवासी जीव तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जन्म-मरण से रहित होते हैं। फिर क्या कारण है जो उन्होंने वैकुण्ठलोक को त्यागकर दैत्य-शरीर में जन्म लेना स्वीकार किया है? आप हमारे सन्देह को दूर करने के लिए यह सब वृत्तान्त बताने की कृपा करें।" तब ब्रह्माजी बोले—"हे देवताओ! उसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि एक समय अनेक दासियों के होने पर भी लक्ष्मीजी अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री नारायणजी के शरीर एवं भुजाओं में अपने हाथों से चन्दन लगा रही थीं। उस समय श्री परब्रह्म महाप्रभु वैकुण्ठलोक में रत्न-जड़ित सिंहासन पर बैठे हुए थे। चन्दन लगाते समय जगन्माता श्री लक्ष्मीजी अपने मन में यह विचार करने लगीं कि त्रिभुवन-पति श्री नारायणजी की भुजाएँ तो अत्यन्त सुन्दर तथा कमल के समान कोमल हैं। क्या पता इनमें कुछ बल भी है या नहीं? इस प्रकार जब वे सोच रही थीं, तब अन्तर्यामी श्री नारायणजी ने उनके मन का सब हाल जान लिया। प्रभु ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे द्वारपाल जय और विजय को छोड़कर अन्य किसी प्राणी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो क्षणभर के लिए भी मेरी भुजाओं के बल को सहनकर युद्ध कर सके इसलिए इन दोनों को दैत्य-योनि में जन्म देकर तत्पश्चात् उनसे युद्ध करके मुझे लक्ष्मी को अपना पराक्रम दिखाना चाहिए। ऐसा विचार कर श्री नारायणजी ने जय तथा विजय का ज्ञान नष्ट कर दिया। इसी कारण उन्होंने दैत्य का जन्म लिया। उनके जन्म लेने का जो कारण उपस्थित हुआ वह इस प्रकार था—

एक दिन सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ये चारों भाई श्री नारायणजी का दर्शन करने के लिए वैकुण्ठलोक में जा पहुँचे। इन्हें किसी भी समय कहीं भी जाने में रोक-टोक नहीं थी। परन्तु उस दिन परमेश्वर की इच्छा से यह हुआ कि जिस समय वे सातवीं ड्योढ़ी पर पहुँचे, उस समय चतुर्भुज स्वरूप धारी द्वारपाल जय तथा विजय ने उन्हें यह कहकर भीतर जाने से रोक दिया कि श्री नारायणजी की आज्ञा के बिना आपको भीतर जाना उचित नहीं है। जय-विजय द्वारा कहे गए इन नये शब्दों को सुनते ही सनत्कुमारजी ने अत्यन्त क्रोधकर कहा—"हे मूर्खो! वैकुण्ठनाथ श्री नारायणजी ने हम लोगों को भीतर जाने के लिए कभी मना नहीं किया होगा क्योंकि वे ब्राह्मणों का सम्मान दूसरों की अपेक्षा अधिक करते हैं। यह सब तुम्हारी ही दुष्टता है, जो तुम हमें इस प्रकार रोक रहे हो। यद्यपि वैकुण्ठलोक में किसी को काम,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रोध, लोभ, मोह आदि नहीं व्यापते, परन्तु आज तुमने हमारा अपमान करके हमें क्रोध दिलाया है इसलिए हम यह चाहते हैं कि तुम दोनों काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से भरे मर्त्यलोक में जाकर दैत्य-योनि में जन्म ग्रहण करो।"

इस शाप को सुनते ही जय-विजय का अहंकार नष्ट हो गया। तब वे अपनी भूल पर पश्चात्ताप-स्वरूप, रोते हुए श्री सनत्कुमारजी के चरणों में गिर पड़े तथा इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभु! अब हमें अनुभव हुआ कि हमारे बुरे दिन आ गये हैं, इसलिए हमसे ऐसा महान् अधर्म बन गया है। हे प्रभो! आप हमारा अपराध क्षमा कर दें तथा कुछ अवधि निश्चित करते हुए यह बताने की कृपा करें कि उस दैत्य-योनि से हमारा उद्धार किस प्रकार होगा?" उनके ऐसे दीन वचन सुनकर श्री सनत्कुमारजी ने कहा—"हे जय-विजय! आज हमारे स्वभाव में न जाने किसलिए क्रोध का प्रवेश हो गया। यह हमें स्वयं नहीं मालूम है। परन्तु तुम्हें इतना स्मरण रखना चाहिए कि हमारा शाप मिथ्या नहीं हो सकता है, इसलिए तुम दोनों भाई तीन बार माता के पेट से जन्म लेकर दैत्य-योनि को प्राप्त करोगे तथा तीनों ही बार भगवान् श्री त्रिलोकीनाथजी सगुण अवतार ग्रहण कर तुम्हारा उद्धार करेंगे। तदुपरान्त तुम फिर वैकुण्ठ में आकर अपने पद को प्राप्त कर लोगे।"

जिस समय श्री सनत्कुमारजी जय-विजय से इस प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्री त्रिलोकीनाथजी उनके आगमन का समाचार पा, लक्ष्मीजी सहित नंगे पावों स्वागत करने के लिए द्वार पर आ पहुँचे। उन्होंने श्री सनत्कुमारजी के चरणों में गिरते हुए कहा—"हे प्रभो! इन द्वारपालों से अत्यन्त अपराध बन पड़ा है, जो इन्होंने आपको मेरे पास आने से रोक दिया था। मेरी पत्नी लक्ष्मी तो आपसे कुछ पर्दा करती ही नहीं थीं, क्योंकि स्त्री को परदा करना केवल अधर्म के स्थान पर ही आवश्यक है। फिर भी जो इनसे अपराध हुआ, उसके लिए मैं बारम्बार क्षमा माँगता हूँ।" श्री नारायणजी के इस विनम्र व्यवहार को देखकर श्री सनत्कुमारजी ने अपने मन में विचार किया कि देखो, श्री नारायणजी कितने विनम्र हैं कि जिन त्रिलोकीनाथ के चरण-कमलों का ध्यान ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता एवं नारद आदि ज्ञानी ऋषि-मुनि अपने हृदय में धरते हैं तथा जिनकी कृपा पाकर भवसागर से पार उतरते हैं, वे ही आदिपुरुष श्री नारायणजी—जो तीनों लोकों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के स्वामी तथा उन्हें उत्पन्न करनेवाले हैं और जिनका भजन एवं स्मरण करने के कारण हमें भी इतना सम्मान मिला है, वे ही हमारे चरणों पर गिरकर ऐसे दीन वचन सुना रहे हैं। इनका 'ब्रह्मण्यदेव' नाम वास्तव में सार्थक है; क्योंकि ये सदैव ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो मुझ जैसे दरिद्र ब्राह्मण पर इतनी कृपा किसलिए दिखाते? ये जो ब्राह्मणों पर इस प्रकार कृपा रखते हैं, उसका वास्तविक कारण यही है कि संसारी लोग भी श्री दीनानाथजी का अनुकरण कर ब्राह्मणों की सेवा तथा सम्मान करें। इस प्रकार सोचने के पश्चात् श्री सनत्कुमारजी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर श्री नारायणजी से इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे त्रिभुवनपति! मैंने क्रोध के वशीभूत होकर आपके सेवकों को शाप दे डाला है। अतः आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कर दें। हे प्रभु! आप मुझे अपने चरण-कमलों की भक्ति प्रदान कीजिए, ताकि हृदय में आपके चरण-कमल विराजमान् होने के कारण मुझे फिर कभी क्रोध न आये तथा मेरे द्वारा किसी प्राणी को कष्ट प्राप्त न हो।"

सोलहवाँ अध्याय

श्री नारायणजी द्वारा श्री सनत्कुमारजी का सम्मान तथा श्री सनत्कुमारजी द्वारा श्री नारायणजी की स्तुति

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! सनत्कुमारजी के मुख से यह वचन सुनकर श्री नारायणजी ने कहा—"हे महात्मन्! आपने मेरे जय-विजय नामक द्वारपालों को अपराध करने पर जो दण्ड दिया है, वह बहुत अच्छा किया है। मैं इस शाप के कारण अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ; क्योंकि इनके दण्ड पाने के कारण अन्य कोई जीव ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों का अनादर करने का साहस न कर सकेगा। आपके स्वभाव में कोई क्रोध नहीं था। आपने मेरी इच्छा से ही इन्हें शाप दिया है, अतः आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हे प्रभु! मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि ये दोनों मेरे द्वारपाल थे, अतः इनके अपराध करने का अपयश भी मेरे ही ऊपर है, सो आप मेरा अपराध क्षमा करने की कृपा करें। सेवक कैसा भी भला-बुरा कार्य करे, उसका यश-अपयश स्वामी को प्राप्त होता है। जो लोग साधु-महात्मा एवं ब्राह्मणों का अपमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते हैं उन्हें नरक में जाना पड़ता है। वहाँ नरक के लोगों को भी ऐसे प्राणियों की सङ्गति भली नहीं लगती है। आप ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनि मेरे इष्ट देव हैं। यह आपके चरण-कमलों की धूलि का ही प्रताप है कि लक्ष्मी परमचञ्चला होते हुए भी मेरी दासी बनकर सदैव साथ रहती है। मैं ब्राह्मणों को अपने शरीर, लक्ष्मी एवं वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय तथा श्रेष्ठ समझता हूँ। संसार में ब्राह्मण-मुख तथा अग्नि-मुख यज्ञ करके भोजन किया जाता है; परन्तु ब्राह्मण को श्रेष्ठ भोजन खिलाने से मैं जितना प्रसन्न होता हूँ उतना प्रसन्न अग्नि में होम करने से नहीं होता। ब्राह्मणों को इच्छित भोजन कराने से मेरा तथा तीनों लोकों के जीवों का पेट भर जाता है। इसीलिए गृहस्थ को यह आवश्यक है कि वह ब्राह्मण को भोजन अवश्य करावे। ब्राह्मणों की चरणधूलि को मैं लक्ष्मी सहित अपने मस्तक पर धारण करता हूँ तथा ब्राह्मण का अपराध क्षमा कर देनेवाले व्यक्ति मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।"

श्री नारायणजी के ऐसे वचन सुनकर सनकादिक ने कहा—"हे परमप्रभु! आपकी लीलाओं एवं इच्छाओं को हमारे पिता ब्रह्माजी भी नहीं जानते हैं, फिर हम लोगों की क्या सामर्थ्य है जो हम उन्हें जान सकें? आप चौदहों भुवनों के सम्पूर्ण जीवों के स्वामी हैं। आपकी जैसी इच्छा होती है, ब्रह्मादिक देवता उसी के अनुसार कार्य करते हैं। आपसे बड़ा अन्य कोई नहीं है। आपके वैकुण्ठधाम में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का प्रवेश नहीं होता। यहाँ अनेकों कल्पवृक्ष लगे हुए हैं। उन वृक्षों में बारहो महीने ऐसे फल-फूल लगे रहते हैं, जिन्हें देखने से चित्त प्रसन्न होता है तथा शोक, क्लेश आदि नष्ट हो जाता है। यहाँ सुन्दर हंस, मोर आदि पक्षी रहते हैं तथा अनेकों प्रकार की मीठी बोलियाँ बोलते हैं। यहाँ स्वर्णनिर्मित भवन रत्नादि से जड़े हुए हैं। इस स्थान पर आने से मनुष्य की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहाँ सब प्रकार के सुख-पदार्थ उपलब्ध हैं।" इतना कहकर सनकादि चारों भाई श्री नारायणजी एवं लक्ष्मीजी के ध्यान में ऐसे निमग्न हो गये कि अत्यन्त स्नेह के कारण उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। जो श्री नारायणजी श्याम रंग, कमलनयन, चतुर्भुज, मोहनस्वरूप, क्रीट-मुकुटधारी, अङ्ग-अङ्ग पर आभूषण तथा कण्ठ में कौस्तुभमणि एवं वैजयन्ती माला को पहिने हुए, पीताम्बर पहिने, रेशमी चादर ओढ़े, चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए, शङ्ख तथा चक्र के दो हाथ ऊपर को उठाये तथा गदा एवं पद्म के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो हाथ नीचे को गिराये, घुँघराले बालोंवाले, मन्द मधुर मुस्कानधारी, तापहारिणी चितवनवाले तथा वामाङ्ग में उन श्री लक्ष्मीजी जो पीताम्बर पहिने हुए हैं तथा जिनके कानों में कर्णफूल शोभायमान हैं, जो हाथों में कङ्कन तथा चरणों में पायजेब पहिने हुए हैं, गले में मोतियों के हार, मस्तक में चूड़ामणि तथा नाक में नथ पहिने हैं, को वामाङ्ग में स्थान दिए हुए रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान हैं। उनका ध्यान धरकर सनकादि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय श्री नारायणजीने उनसे कहा—"हे प्रभो! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, आप लोग मुझ से कुछ वरदान माँग लें। यह सुनकर सनकादि हाथ जोड़कर बोले—"हे त्रिभुवनपति! हम आपसे यही वरदान माँगते हैं कि हमारे हृदय में सदैव आपके चरण-कमलों की भक्ति बनी रहे तथा हमारी इच्छा सदैव आपके लीला-चरित्रों को सुनने में ही लगी रहे।" यह सुनकर श्री नारायणजी ने उन्हें इच्छित वरदान देकर प्रसन्न किया। तब सनकादिक श्री नारायणजी को दण्डवत् कर वहाँ से बिदा हुए।"

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का दिति के गर्भ से जन्म तथा हिरण्याक्ष का वरुण आदि देवताओं के स्थान पर जाना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! सनकादिक के बिदा होने के उपरान्त द्वारपाल जय-विजय अपने मन में यह अभिलाषा लिए हुए श्री नारायणजी के सामने खड़े रहे कि यदि श्री परमप्रभु की आज्ञा हो जाय तो हमें ऋषिवरों के शाप से मुक्ति मिल जाये। अन्तर्यामी श्री नारायणजी ने उनके हृदय की बात को जानकर कहा—"हे जय विजय! मैंने अपनी इच्छा से ही तुम्हारा ज्ञान बदलकर ब्राह्मण द्वारा ऐसा शाप दिलवाया है; अन्यथा श्री सनत्कुमारजी के स्वभाव में क्रोध नहीं था। होनहार बिना हुए नहीं रहती है। श्री सनत्कुमारजी तुम्हें क्षमा करके तीन जन्म बीतने पर तुम्हारे उद्धार का उपाय कह गये हैं। अतः तुम्हें दैत्ययोनि में तीन बार जन्म लेकर मर्त्यलोक में अवश्य रहना पड़ेगा। उस समय तुम शत्रुभाव से मेरा स्मरण करना। तब मैं सगुण अवतार ग्रहणकर तुम्हें मारूँगा तथा तीन जन्म बीत जाने पर तुम्हें फिर वैकुण्ठ लोक में बुला लूँगा। इतना कहकर श्री नारायणजी ने जय-विजय को वैकुण्ठ लोक से गिरा दिया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—"हे इन्द्रादि देवताओ! उन्हीं दोनों भाइयों ने दिति के गर्भ में वास किया है। अतः तुम लोग चिंता मत करो। उनके जन्म के बाद कुछ समय तक तो तुम्हें कष्ट होगा, परन्तु फिर श्री नारायणजी सगुण अवतार ग्रहण करके उन्हें मार डालेंगे। तुम लोगों में इतनी शक्ति नहीं है जो तुम उन्हें मार अथवा जीत सको।" ब्रह्माजी द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर सभी देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। उधर दिति अपने हृदय में सदैव यह चिन्ता किया करती थी कि ऐसे अधर्मी तथा दुखदाई पुत्रों के उत्पन्न होने पर मुझे कष्ट के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा। इसलिए ऐसे पुत्र जन्म न लें तो वही अधिक श्रेष्ठ है।

हे विदुर! श्री त्रिलोकीनाथजी की इच्छा से सौ वर्षों तक दिति के गर्भ में निवास करने के पश्चात् उन दोनों ने जन्म लिया। उस समय संसार में अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। ब्राह्मणों तथा देवताओं के हृदय भय से काँपने लगे। अग्निहोत्रियों की जो अग्नि कई पीढ़ियों से यज्ञकुण्ड में प्रज्वलित रही आती थी वह बुझ गई। पृथ्वी पर भूचाल आने लगे तथा कलियुग के सभी लक्षण उस समय प्रकट होने लगे। ब्रह्माजी ने उन दोनों लड़कों का नाम हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु रक्खा। हिरण्याक्ष का शरीर कई योजन लम्बा-चौड़ा था। जब वे दोनों भाई बड़े हुए तब ब्रह्माजी ने उन्हें यह सलाह दी कि तुम दोनों भाई अपनी माता की इच्छानुसार राज्य करो। ब्रह्माजी के यह वचन सुनते ही बड़ा भाई हिरण्याक्ष अपने बल के अहङ्कार में भरकर हाथों में गदा उठाये, अकेला ही घर से निकल पड़ा। वह अपनी शक्ति के सम्मुख अन्य किसी को कुछ नहीं समझता था। सर्वप्रथम वह वरुणलोक में गया। समुद्र एवं नदियों के स्वामी वरुण देवता के द्वार पर पहुँचकर वह अपनी गदा द्वारा समुद्र के पानी को पीटने लगा। उसने वरुण देवता के द्वारपालों को यह आज्ञा दी कि वे वरुण के पास जाकर उसके आने का समाचार कह दें साथ ही यह भी कह दें कि यदि उसमें पुरुषार्थ हो तो वह सामने आकर युद्ध करे। द्वारपालों द्वारा इस समाचार को पाकर पहिले तो वरुण देवता को बहुत क्रोध आया, परन्तु फिर ब्रह्माजी के वचनों को यादकर उन्होंने हिरण्याक्ष के पास यह सन्देश भिजवा दिया कि मैं वृद्ध हो चला हूँ। अतः तुम जैसे युवक दैत्य के साथ युद्ध करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तुम्हारे साथ केवल श्री नारायणजी ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युद्ध कर सकते हैं, अतः कुछ समय पश्चात् वे स्वयं ही तुम्हें मारने के लिए अवतार ग्रहण करेंगे।

हिरण्याक्ष ने जब यह सुना कि उससे युद्ध करने के लिए नारायणजी का अवतार होगा, तो वह अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर उसने वरुण देवता के पास यह समाचार भिजवाया कि यदि तुम हार मानते हो तो अपने यहाँ की श्रेष्ठ मणियों तथा रत्नों को हमारे पास भेज दो। यह सन्देश पाकर वरुण देवता बहुत-सी उत्तम मणियों तथा रत्नों की भेंट लेकर उसके सामने आ पहुँचे, तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उससे इस प्रकार कहने लगे—"हे दैत्यराज! अब से यह स्थान तुम्हारा है। तुम चाहे यहाँ स्वयं रहो अथवा किसी अन्य व्यक्ति को दे दो। मेरे लिए जिस स्थान की आज्ञा दोगे मैं वहीं जाकर रहने लगूँगा।" इस प्रकार हिरण्याक्ष ने जब वरुण को अपने अधीन देखा, तब भेंट ग्रहण करने के पश्चात् उसने वरुण देवता को अपनी ओर से बसाकर वरुणलोक में ही रहने दिया। इसके पश्चात् वह कुबेर देवता के स्थान पर गया। वहाँ कुबेर ने भी अपना कुसमय जानकर उसे मणि-रत्नों की भेंट देते हुए प्रार्थना की—"हे दैत्यराज! मेरे पास जितना भी धन है, आप उस सबको अपना ही जानकर मुझे जो आज्ञा दें, मैं उसी के अनुसार कार्य करूँगा।" तब कुबेर को भी अपने अधीन जानकर वह यमपुरी में जा पहुँचा। यमपुरी के स्वामी धर्मराज ने भी ब्रह्माजी के वचनों का स्मरणकर उसकी अधीनता स्वीकार की तथा भेंट आदि देकर अपने प्राण बचाये। जब हिरण्याक्ष ने उन्हें भी अपने वश में जाना तब इन्द्रलोक में पहुँचकर गरजने लगा। इन्द्र ने भी भयभीत होकर उसे राजसिंहासन तथा चमर, छत्र आदि सौंपकर अधीनता स्वीकार कर ली।

जब हिरण्याक्ष ने यह देखा कि तीनों लोकों में कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो मेरा सामना कर सके, तब वह किसी ऐसे योद्धा को ढूँढ़ने के लिए सब दिशाओं में भ्रमण करने लगा। जिस समय हिरण्याक्ष किसी समान बलशाली योद्धा की खोज में आगे बढ़ा चला जा रहा था, उस समय मार्ग में अकस्मात् ही उसकी भेंट नारदजी से हो गई। नारदजी को देखकर उसने दंडवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् हँसकर कहने लगा—"हे मुनिनाथ! आप तीनों लोकों में भ्रमण करते रहते हैं, अतः आप मुझे कोई ऐसा योद्धा बताइये, जो मुझसे युद्ध कर सके। यदि आप नहीं बतायेंगे तो मैं आपको ही मार डालूँगा।" यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनकर नारदजी ने उत्तर दिया–"हे कश्यप-नन्दन ! मेरी दृष्टि में संसार में ऐसा कोई योद्धा नहीं है जो तुमसे युद्ध कर सके। अकेले श्री नारायणजी ही तुम्हारी इच्छा को पूर्ण कर सकते हैं।" यह सुनकर हिरण्याक्ष बोला–"तब आप मुझे नारायण का पता बताइये, मैं उसी के पास जाऊँगा। मैंने सुना था कि ब्राह्मणों तथा तपस्वियों के स्थान पर उसका निवास रहता है, परन्तु ब्राह्मणों तथा तपस्वियों को अनेक कष्ट देने पर भी वह मेरे भय से अब तक प्रकट नहीं हुआ। अब तुम मुझे उसका स्थान बता दो।" तब नारदजी ने कहा–"हे हिरण्याक्ष ! इस समय नारायणजी वाराहस्वरूप धारण-कर पृथ्वी को निकालने के लिए पाताल में गये हैं। यदि तुम्हें उनसे लड़ने की इच्छा हो तो तुम भी वहीं उनके पास चले जाओ, वे तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर देंगे।" इतना कहकर नारदजी वहाँ से अन्यत्र चले गये।"

अठारहवाँ अध्याय

श्रीवाराह भगवान् द्वारा हिरण्याक्ष का वध

मैत्रेयजी बोले–"हे विदुर ! नारदजी द्वारा यह समाचार प्राप्त कर नारा-यणजी से युद्ध करने के निमित्त, हिरण्याक्ष पाताल को चल दिया। मार्ग में ही उसने यह देखा कि श्री वाराह भगवान् अपने दाँतों पर पृथ्वी को एक साधारण फल के समान उठाये हुए चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही हिरण्याक्ष ने हँसकर कहा–"अरे चोर ! तू कहाँ चला जा रहा है। यहीं ठहरकर मुझसे युद्ध कर। मैंने अब तक वाराह का स्वरूप वन में ही देखा था, परन्तु आश्चर्य है कि आज वह पानी में भी दिखाई दे रहा है। क्या तू मुझसे डरता नहीं जो मेरे पूर्वजों की थाती इस पृथ्वी को जिसे हमने पाताल में रक्खा था, इस प्रकार चुराकर लिये जा रहा है? अब मेरे हाथ से तेरे प्राण किसी प्रकार नहीं बचेंगे। मैं तुझे जिस लिए ढूँढ़ रहा था, वह मेरी इच्छा पूरी हो गई। अब मैंने पहिचान लिया कि नारायण तेरा ही नाम है। तूने ही कई बार अवतार लेकर मेरे दैत्य बन्धुओं को मारा है। आज तुझे मारकर मैं उन सबका बदला चुका लूँगा। तुझे मारने के पश्चात् मैं उन योगी तथा ऋषि-मुनियों को भी मारूँगा जिनके द्वारा किये गये यज्ञ-हवनादि द्वारा तुझे सामर्थ्य प्राप्त होती है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिरण्याक्ष के इस प्रकार दुर्वचनों को सुनकर श्री नारायणजी कुछ देर तक इसलिए नहीं बोले कि दुर्वचन बोलने से आयु, तेज तथा बल कम रह जाता है। जब वाराहजी ने यह जान लिया कि दुर्वचन कहने के कारण हिरण्याक्ष का बल एवं तेज क्षीण हो गया है तब वे अपनी माया द्वारा पृथ्वी को पानी पर रखकर उससे इस प्रकार कहने लगे—"हे हिरण्याक्ष ! वास्तव में मैं पानी का शूकर ही हूँ, परन्तु मैं तुझ जैसे सिंह बननेवाले गाँव के कुत्तों की खोज में सदैव घूमा करता हूँ। जिसकी मृत्यु समीप आ जाती है, उसे भले बुरे का कुछ विचार नहीं रहता है। यदि यह पृथ्वी तेरे पूर्वजों की थाती है और तू अपने को महापराक्रमी योद्धा समझता है तो देख, मैं इस पृथ्वी को लिए हुए तेरे सामने खड़ा हूँ। अतः अब तू पहिले मेरे ऊपर अपनी गदा का प्रहार कर ले। जब तेरी गदा निष्फल हो जायेगी तब मैं तेरे ऊपर अपनी गदा का प्रहार करूँगा। तूने यह बात भी सत्य ही कही है कि मैंने सहस्रों बार अवतार ले, तेरे बन्धुओं को मारकर पृथ्वी का भार उतार दिया है। वही अवस्था तेरी भी होनेवाली है।"

श्री वाराहजी द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर हिरण्याक्ष ने अत्यन्त क्रुद्ध हो उनके ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया। उस समय श्री वाराह भगवान् ने उसकी गदा को बीच में ही रोक दिया तथा लौटकर अपनी गदा का वार उसके ऊपर कर दिया। इस प्रकार दोनों ओर से गदा-युद्ध होने लगा। जब लड़ते-लड़ते सन्ध्याकाल होने को आया, उस समय ब्रह्माजी ने श्री वाराह भगवान् के निकट पहुँचकर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभु ! आप हिरण्याक्ष को अधिक खेल खिलाकर उसे मारने में विलम्ब क्यों कर रहे हैं। आप इस अधर्मी को शीघ्रातिशीघ्र मारकर देवताओं का भय दूर कीजिये। हे नाथ ! आपके अतिरिक्त अन्य किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो इस दुष्ट को मार सके।" ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर श्री नारायणजी ने हिरण्याक्ष को लक्ष्य करके गदा का एक प्रहार ऐसा किया कि वह वहीं पर गिर पड़ा। उस समय उस दैत्य ने अपनी माया से अन्धकार उत्पन्न कर दिया। तब श्री नारायणजी ने सहस्रों सूर्य के समान प्रकाशवान् अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उसकी माया को नष्ट कर डाला। फिर जब हिरण्याक्ष ने त्रिशूल चलाया, तो श्री वाराहजी ने उसे अपने सुदर्शन चक्र से काट डाला। तत्पश्चात् श्री वाराहजी ने हिरण्याक्ष को एक ऐसा तमाचा मारा, जिसके कारण उसकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुरन्त मृत्यु हो गई। उसके मरते ही देवतागण प्रसन्न होकर श्री वाराहजी पर पुष्प-वर्षा करने लगे तथा अपना मनोरथ पूर्ण हुआ जानकर आनन्द के बाजे बजाने लगे।"

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी-सहित सब देवताओं तथा पृथ्वी द्वारा श्री वाराह भगवान् की स्तुति

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! जिस समय हिरण्याक्ष मारा गया, उस समय सब देवताओं-सहित ब्रह्माजी ने श्री वाराह भगवान् के समीप आकर उनकी इस प्रकार से स्तुति की—"हे अनादि पुरुष वाराहजी! आपने देवता, ब्राह्मण एवं यज्ञादि की रक्षा करने के निमित्त इस पापी हिरण्याक्ष का संहार किया है। आपने ही यह पृथ्वी पाताल से निकालकर पानी पर स्थिर की है। अब आपकी कृपा से सब जीव इस पृथ्वी पर रहकर आनन्द-सहित यज्ञ, जप, तप, पूजा एवं दान आदि कर्म करेंगे। हिरण्याक्ष के समय यज्ञ में देवता तथा पितरों को भाग नहीं मिलता था। अब वे अपना-अपना भाग प्राप्तकर आनन्द-सहित आपका स्मरण करेंगे।" इस प्रकार जब सब देवता स्तुति कर चुके, तब पृथ्वी ने स्त्रीरूप धारणकर वाराहजी के सम्मुख आ, इस प्रकार से प्रार्थना करनी आरम्भ की—"हे ज्योतिर्मय! आपने दयापूर्वक मुझे पाताल से निकालकर जल के ऊपर स्थापित किया है। संसार के सभी छोटे-बड़े जीव मुझ पर अपने पाँव रखते हैं, परन्तु आपने मुझे अपने दाँत पर उठाया है; इसलिए मैं अपने आपको परम कृतार्थ मानती हूँ। हे प्रभु! आपके चरणों की छाया सम्पूर्ण जगत् पर पड़ती है, परन्तु आज मेरी छाया आपके मस्तक पर पड़ी है। हे नाथ! मैं इस बात से बहुत भयभीत हूँ कि जब कलियुग आयेगा, तब उसके सब जीव अत्यन्त पापी होंगे। वे धर्म-कर्मों को त्यागकर अशुभ कर्मों में प्रवृत्त होंगे। वे आपकी भक्ति से भी विमुख रहेंगे तथा हरि-भक्तों से शत्रुता का व्यवहार रक्खेंगे। वे अपने माता, पिता तथा बन्धु-बान्धवों से झगड़ाकर साले तथा श्वशुर से स्नेह रक्खेंगे। स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर पर-पुरुष से प्रीति रक्खेंगी। पुरुषवर्ग अपनी पत्नी का पालन न करके वेश्याओं से प्रीति रक्खेगा। पुत्र अपने पिता की मृत्यु की कामना करेगा तथा यह सोचेगा कि कब इसकी मृत्यु हो और कब इसका धन मुझे प्राप्त हो। जुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खेलने तथा वेश्या-गमन की सुविधा के लिए ही वह ऐसा सोचेगा। राजागण अपना धर्म त्यागकर प्रजा से धन वसूल करेंगे तथा उसे दुःख पहुँचायेंगे। सभी मनुष्य खाने, पहिनने तथा इन्द्रियों को सुख देने की इच्छा से स्वार्थपूर्ण मित्रता रक्खेंगे। इस प्रकार कलियुग में परस्पर के विरोध से सब लोगों को अत्यन्त दुःख प्राप्त होगा। हे प्रभु! जब ऐसे पापी मनुष्य अपने पाँव मेरे ऊपर रक्खेंगे, उस समय आपको उस क्लेश से मेरी रक्षा करनी आवश्यक है।"

पृथ्वी की ऐसी विनय सुनकर श्री वाराह भगवान् ने कहा—"हे पृथ्वी! तू इन बातों से भयभीत मत हो। अधर्मियों के उत्पन्न होने के कारण जब तुझे दुःख प्राप्त होगा, तब हम सगुण अवतार लेकर अधर्मियों का विनाश कर डालेंगे तथा तुझे सुख पहुँचायेंगे।" इस प्रकार कहकर श्री वाराहजी वैकुण्ठ लोक को पधार गये। तत्पश्चात् सब देवता भी अपने-अपने लोक को चले गये।"

बीसवाँ अध्याय

मैत्रेय ऋषि द्वारा संसार की उत्पत्ति का वर्णन

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूछा—"हे सूतजी! जब श्री वाराह भगवान् पृथ्वी को जल पर स्थिर करके वैकुण्ठ लोक को चले गये, उसके पश्चात् संसार की रचना किस प्रकार हुई तथा मैत्रेय ऋषि एवं विदुरजी में क्या संवाद हुआ आप हमें यह बताने की कृपा करें।"

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! वाराह अवतार की कथा सुनने से विदुरजी को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। तब उन्होंने मैत्रेयजी से पूछा—"हे महात्मन्! ब्रह्माजी ने संसारी जीवों को किस प्रकार उत्पन्न किया? अब आप वह वृत्तान्त सुनाइये।" मैत्रेयजी ने कहा—"जब पृथ्वी स्थिर हो चुकी, तब श्री परब्रह्म प्रभु की माया से चौबीस तत्त्व प्रकट हुए। उसके अनन्तर 'यक्ष' नामक एक पुरुष उत्पन्न हुआ। जब उस पुरुष को भूख तथा प्यास लगी, तब वह कोई भोज्य-पदार्थ न मिलने के कारण ब्रह्माजी को खाने के लिए बढ़ चला। यह देखकर ब्रह्माजी ने क्रोधित होकर जब उसे ऐसा करने से मना किया, तब उनके क्रोध द्वारा 'रक्ष' नामक एक तमोगुणी राक्षस की उत्पत्ति हुई। उन दोनों को देखकर ब्रह्माजी ने भयभीत हो, जीवों को उत्पन्न करना बन्द कर दिया तथा अपने मन में यह विचार किया कि यदि मैं इस शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा अब अन्य जीवों को उत्पन्न करूँगा, तो वे सब भी तमोगुणी होंगे। अतः मुझे ज्ञानी एवं धर्मात्मा प्राणियों की उत्पत्ति के लिए इस शरीर को त्यागकर दूसरा सतोगुणी शरीर धारण कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर ब्रह्माजी ने अपना वह शरीर त्याग कर दूसरा शरीर धारण कर लिया। तत्पश्चात् उस शरीर द्वारा दाहिने अंग से स्वायम्भुव मनु नामक एक पुरुष एवं बायें अङ्ग से शतरूपा नामक स्त्री का जन्म हुआ। ब्रह्माजी ने उन दोनों का परस्पर विवाह कर दिया। तब स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्माजी से कहा–"हे महाराज! आप मेरे लिए क्या आज्ञा देते हैं?" यह सुनकर ब्रह्माजी ने विचार किया कि मेरे जिस शरीर से स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा उत्पन्न हुए हैं, उस शरीर से मैंने श्री नारायणजी का तप नहीं किया था, अतः श्रीहरि का भजन किए बिना इन दोनों के द्वारा ज्ञानी तथा धर्मात्मा मनुष्य उत्पन्न न होंगे। यह सोचकर ब्रह्माजी ने मनु तथा शतरूपा को यह आज्ञा दी कि पहिले तुम श्री नारायणजी का तप एवं स्मरण करो। तत्पश्चात् संसारी जीवों की उत्पत्ति करना। ब्रह्माजी की यह आज्ञा पाकर स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा उसी समय तपस्या करने के लिए वन में चले गये। उनके चले जाने के बाद ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी का स्मरण करके उनसे प्रार्थना की–"हे परमप्रभु! आप मेरे अपराध क्षमा कर दें। सृष्टि उत्पन्न करने में मुझसे बहुत भूलें हुई हैं। अब आप कृपाकर मुझे अपनी सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे यह कार्य सरल हो जाय तथा मैं सृष्टि की उत्पत्ति कर सकूँ।" ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार स्मरण किये जाने पर श्री नारायणजी ने उन्हें ध्यान में दर्शन देकर यह उपदेश किया–"हे ब्रह्मा! मेरी कृपा से तुम्हारा शरीर शुद्ध हो गया है। अब तुम सृष्टि की रचना करो। उससे धर्मात्मा तथा ज्ञानी जीव उत्पन्न होंगे।" श्री नारायणजी की यह आज्ञा पाकर ब्रह्माजी ने उन्हीं की कृपा से मरीचि, कश्यप, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष तथा नारद ये दस पुत्र उत्पन्न किये। उन दसों पुत्रों ने ब्रह्माजी से कहा–"हे पिता! आप जो आज्ञा दें, उस कार्य को करने के लिए हम प्रस्तुत हैं।" ब्रह्माजी बोले–"तुम लोग श्री नारायणजी की तपस्या करने के पश्चात् संसारी जीवों को उत्पन्न करो। इसी में मेरी तथा श्री नारायणजी की प्रसन्नता है।" यह सुनकर नारद, अङ्गिरा तथा क्रतु ने तो कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु भृगु आदि सात पुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर ब्रह्माजी के वे दसों पुत्र तपस्या करने के लिए वन को चले गये। जिस समय ब्रह्माजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के शरीर से स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा की उत्पत्ति हुई थी, उस समय उनके पूर्व शरीर की हड्डी तथा चमड़े से एक अँधेरा उत्पन्न हुआ। उस अँधेरे को यक्ष तथा रक्ष ने स्त्री समझकर ग्रहण कर लिया।"

इक्कीसवाँ अध्याय

श्री नारायणजी का स्वायम्भुव मनु, शतरूपा तथा कर्दम ऋषि को दर्शन एवं वरदान देना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा ने वन में जाकर दस सहस्र वर्षों तक श्री नारायणजी का ध्यान एवं तप किया। तब श्री परब्रह्म प्रभु ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना दर्शन देते हुए इस प्रकार कहा—"मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम कुछ वरदान माँगो।" उस समय मनु तथा शतरूपा श्री नारायणजी के दर्शन पा, अत्यन्त प्रसन्न हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभु! हमने संसार को उत्पन्न करने तथा राज-सिंहासन के सुख को प्राप्त करने के लिए तपस्या की है, सो यह हमसे बड़ी भूल हुई है। राज्य प्राप्त करने की अपेक्षा हमें मुक्ति प्राप्त करने के लिए तप करना चाहिए था।" यह सुनकर श्री नारायणजी बोले—"हे स्वायम्भुव मनु! तुमने जिस अर्थ से मेरा तप किया है, वह तथा उसके अतिरिक्त भी तुम जो चाहो वह मुझसे माँग सकते हो।" आनन्दकन्द श्री वैकुण्ठनाथजी की अपने ऊपर ऐसी कृपा देखकर मनु तथा शतरूपा ने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभु! हम लोगों की यह अभिलाषा है कि हमें आप जैसे पुत्र की प्राप्ति हो।" यह सुनकर श्री नारायणजी बोले—"सम्पूर्ण सृष्टि में मेरे समान कोई भी नहीं है। अतः मैं स्वयं ही तुम्हारे घर में पुत्र बनकर अवतार लूँगा।" इतना कहकर श्री नारायणजी अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा ने वन से लौटकर ब्रह्माजी के पास आकर दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपने पिता ब्रह्माजी की आज्ञा से सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य करने लगे। स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा द्वारा उत्तानपाद तथा प्रियव्रत नामक दो पुत्र एवं आकूती, देवहूती तथा प्रसूती नामक तीन कन्याओं की उत्पत्ति हुई। उत्तानपाद का पुत्र 'ध्रुव' हुआ। नारदजी द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के कारण प्रियव्रत पहिले तो विरक्त हो गये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे, परन्तु फिर ब्रह्माजी के समझाने पर उन्होंने सातों द्वीपों का राज्य किया। स्वायम्भुव मनु ने आकूती का विवाह 'रुचि' नामक ऋषि के साथ किया था।

हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के दूसरे पुत्र कर्दम ऋषि ने भी अपने पिता की आज्ञानुसार दस सहस्र वर्षों तक श्री नारायणजी की तपस्या की। जब श्री नारायणजी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया तथा वरदान माँगने के लिए कहा, उस समय कर्दम ऋषि ने दण्डवत्-प्रणाम करने के अनन्तर उनसे इस प्रकार प्रार्थना की–"हे अन्तर्यामी ! मैंने सृष्टि की उत्पत्ति करने के लिए तपस्या की है अतः आप मुझे इसी के निमित्त वरदान दीजिए।" यह सुनकर नारायणजी बोले–"मुझे तुम्हारे मन की इच्छा पहिले से ही विदित थी अतः मैं तुम्हें इच्छित वरदान देता हूँ। इसके अतिरिक्त तुम जो कुछ और चाहोगे, वह सब भी तुम्हें प्राप्त हो जायेगा। आज से तीसरे दिन स्वायम्भुव मनु अपनी पुत्री देवहूती का विवाह तुम्हारे साथ करेगा। तुम उस विवाह को अस्वीकार मत करना।" इस प्रकार वरदान देने के पश्चात् श्री वैकुण्ठनाथ की आँखों से यह सोचकर आँसू गिरने लगे कि देखो, कर्दम ऋषि ने केवल विवाह के लिए ही दस सहस्र वर्ष पर्यन्त ऐसी घोर तपस्या की है। जिस स्थान पर श्री नारायणजी के आँसू गिरे थे, वहाँ 'विन्दुसर' नामक तीर्थ प्रकट हुआ। वह सरोवर अभी तक कुरुक्षेत्र के निकट विद्यमान है। इस प्रकार आँसू बहाने के पश्चात् श्री नारायणजी ने कर्दम मुनि से कहा–"हे ऋषि ! जो प्राणी इस तीर्थ में स्नान करेगा उसका चित्त धर्म के कार्यों में लगेगा तथा उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे।" इतना कहकर त्रिभुवनपति अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् कर्दम ऋषि राजा स्वायम्भुव मनु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। तीसरे दिन राजा स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नी शतरूपा तथा कन्या देवहूती सहित रत्नजटित रथ पर बैठकर विन्दुसर तीर्थ में आ पहुँचे। वहाँ स्नान करने के पश्चात् उन्होंने कर्दम ऋषि के आश्रम में पहुँचकर ऋषि को दण्डवत्-प्रणाम किया। ऋषि ने भी अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें बैठाया तथा विविध प्रकार से सम्मान करने के पश्चात् उनकी प्रशंसा करने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा–"हे ऋषियो ! कर्दम ऋषि के रमणीक आश्रम को देखकर स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी पुत्री देवहूती का विवाह कर्दम ऋषि के साथ कर देने का निश्चय किया। तत्पश्चात् वे कर्दम ऋषि के सामने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खड़े होकर तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे महात्मन्! नारद ऋषि के मुख से आपके गुणों का वर्णन सुनकर मेरी पुत्री देवहूती की इच्छा आपके साथ विवाह करने की हुई है। उसने अपना मनोरथ अपनी माता से कहा था। वह मुझे अपनी पत्नी द्वारा ज्ञात हुआ है। इसीलिए मैं उसे अपने साथ लेकर आया हूँ। अब यह मेरी पुत्री आपकी सेवा में यहीं रहेगी।" स्वायम्भुव मनु के यह वचन सुनकर कर्दमजी ने अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे राजन्! आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है। यदि कोई मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक किसी को कुछ दे, तो उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए अन्यथा पीछे उसको न पाने का दुःख होता है। इसी विचार के कारण मैं आपकी आज्ञा से बाहर नहीं हूँ; परन्तु जब आपकी पुत्री के सन्तान उत्पन्न हो जायेगी, तब मैं गृहस्थी छोड़कर तपस्या करने के लिए चला जाऊँगा।" कर्दम ऋषि की इस बात को राजा स्वायम्भुव मनु ने स्वीकार कर लिया। देवहूती ऐसी सुन्दरी थी कि उसके सौन्दर्य को देखकर कामदेव की पत्नी रति भी लज्जित हो जाती थी।"

बाईसवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनु द्वारा अपनी कन्या देवहूती का कर्दम ऋषि के साथ विवाह करना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जब कर्दम ऋषि ने देवहूती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया तब राजा स्वायम्भुव मनु ने ऋषि के साथ उसका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने ऋषि से कहा—"हे महात्मन्! मेरे सम्पूर्ण धन तथा राज्य के स्वामी ब्राह्मण एवं ऋषि-मुनि ही हैं। अतः यदि आपको धन अथवा सेना आदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो आप मुझे सूचित कीजिएगा, मैं उसे आपके पास पहुँचा दूँगा।" यह सुनकर कर्दम ऋषि ने हँसते हुए कहा—"हे राजन्! हमें इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं है। तदुपरान्त जब राजा स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा अपनी पुत्री देवहूती को ऋषि के पास छोड़कर घर को जाने लगे, उस समय देवहूती अपने माता-पिता से वियोग होने के कारण रुदन करने लगी। उस समय राजा-रानी उसे धैर्य बँधाकर ऋषि से बिदा हो गये।

हे ऋषियो! देवहूती कर्दम ऋषि की सेवा में रहकर उनके प्रत्येक कार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बिना कहे ही कर देती थी। उधर राजा स्वायम्भुव मनु ने बर्हिष्मतीपुरी में, जहाँ भगवान् वाराहजी के रोम गिरने से कुशा उत्पन्न हुई थी तथा ऋषियों द्वारा मन्त्र पढ़े जाने के कारण जिसमें दैत्यों का प्रवेश नहीं हो सकता था, अपने सिंहासन पर पहुँचकर यह विचार किया कि हमारे पास राज्य तथा धन की अधिकता है। संसारी जीव धन अधिक होने पर उसे अपने सुख के लिए तो व्यय करते हैं, परन्तु परलोक के लिए कुछ नहीं करते। श्री नारायणजी जिस प्राणी को धन दें, उसे यह उचित है कि वह उस धन को श्री नारायणजी के नाम पर शुभ कर्मों में अवश्य व्यय करे। ऐसा विचारकर राजा स्वायम्भुव मनु ने प्रति वर्ष विधिपूर्वक यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। वे प्रतिदिन प्रातः-काल के समय ब्राह्मणों को बहुत-सी गौएँ तथा स्वर्ण आदि दान में देने लगे। नित्य-नियमों से निवृत्त होने के पश्चात् वे महात्मा तथा ब्राह्मणों के बीच में बैठकर श्री नारायणजी के गुणानुवाद एवं कथा-चरित्रों को सुना करते थे। जिस समय कोई महात्मा अथवा महापुरुष नहीं होते थे, उस समय स्वयं ही श्री नारायणजी का स्मरण करते तथा उनके श्रीचरणों में ध्यान लगाते थे। इस प्रकार इकहत्तर चतुर्युग तक उन्होंने राज्य किया। श्री नारायणजी की कृपा तथा हरि-भजन के प्रताप से अन्त समय तक उनका प्रताप ज्यों का त्यों बना रहा। उनका कोई भी क्षण श्री नारायणजी की चर्चा अथवा ध्यान के बिना नहीं बीतता था। उनके राज्य में प्रजा की इच्छानुसार जल की वर्षा होती थी तथा वृक्षादिक बारहों महीने फल-फूलों से लदे रहते थे। राजा स्वायम्भुव मनु की सम्पूर्ण प्रजा आनन्दित रहकर श्री नारायणजी का भजन एवं स्मरण किया करती थी। किसी को स्वप्न में भी किसी प्रकार का दुःख नहीं था।"

तेईसवाँ अध्याय

कर्दमजी का योगबल से विमान की उत्पत्ति तथा उसमें रहकर देवहूती के साथ विहार करना

मैत्रेय ऋषि ने कहा—"हे विदुर! देवहूती हर समय अपने पति की सेवा में संलग्न रहती थी। एक दिन वह अपने पति के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ी हुई। उसके हृदय में गार्हस्थ्य जीवन के सुखोपभोग की इच्छा थी। कर्दम ऋषि तो उसकी सेवा तथा पतिव्रत धर्म से अत्यन्त प्रसन्न रहते ही थे। उस समय उन्होंने अपने तप के प्रभाव से यह जान लिया कि मेरी पत्नी को सांसा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रिक सुख-उपभोग की इच्छा है। यह जानकर उन्होंने अपने मन में विचार किया कि इसने राजपुत्री होते हुए भी कभी मुझसे अपने लिए वस्त्र तथा आभूषण आदि की माँग नहीं की है। अतः इसकी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर ऋषि ने देवहूती से कहा—"हे राजपुत्री! मैं तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तेरी जो इच्छा हो, वह वरदान माँग ले। तू अपने मन में यह विचार मत करना कि मैं तुझे इच्छित वस्तु कहाँ से लाकर दूँगा। श्री नारायणजी की कृपा से मैं तुझे सम्पूर्ण वस्तुएँ दे सकता हूँ।" यह सुनकर देवहूती ने मुस्कुराकर कहा—"हे स्वामी! आप लोक तथा परलोक--दोनों स्थानों का आनन्द देनेवाले हैं। जब मैंने आप जैसे पति को पा लिया तब मुझे और किस वस्तु की आकांक्षा रह गई है जिसे मैं आपसे माँगूँ? मेरे पिता ने आपको ऐसा महान् पुरुष तथा गुणवान् जानकर ही मुझे आपको अर्पित किया है। अब मुझे केवल एक बार गार्हस्थ्य-सुख के उपभोग की इच्छा है; क्योंकि बार-बार भोग-विलास करना भी अच्छा नहीं होता है।"

देवहूती के ये वचन सुनकर कर्दम ऋषि ने कहा—"तू सन्तोष रख। मैं तेरी मनोभिलाषा पूर्ण करूँगा।" ऋषि के ऐसे वचन सुनकर देवहूती अपने मन में यह विचार करने लगी कि मेरे पास वस्त्र, आभूषण तथा सुखोपभोग की अन्य कोई सामग्री तो है ही नहीं। मेरा शरीर भी मिट्टी तथा धूल से भरा रहता है। ऐसी स्थिति में भोग-विलास किस प्रकार हो सकेगा? जिस समय देवहूती ने अपने मन में यह बात सोची, उस समय अन्तर्यामी कर्दम ऋषि ने उसके मन का हाल जान लिया। तब उन्होंने अपने योगबल द्वारा उसी समय वहाँ एक ऐसा मनोहर रत्नजटित विमान प्रकट कर दिया, जो स्वर्ण से निर्मित तथा आकार-प्रकार में बहुत बड़ा था। उसमें चारों ओर मोतियों की झालरें लटक रही थीं तथा रेशमी-मखमली बिछौने बिछे हुए थे। उस विमान में इन्द्रपुरी के मकानों से भी अधिक सुन्दर अनेक मकान बने हुए थे। वहीं अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्ष फल-फूलों से लदे खड़े थे, जिन पर रंग-बिरंगे पक्षी बैठे हुए अपनी मीठी बोली से चित्त को चुराये ले रहे थे। उसी के भीतर सुन्दर मनोहारी जलाशय बने हुए थे तथा सांसारिक सुखोपभोग की सभी सामग्रियाँ वहाँ विद्यमान थीं।

देवहूती ने जब उस विमान को देखा तब अपने मन में यह विचार किया कि मेरा धूलि-धूसरित शरीर इस विमान पर बैठने योग्य नहीं है। तब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवहूती के हृदय की इस बात को भी पहिचानकर ऋषि ने अपने योगबल द्वारा निर्मल तथा स्वच्छ जल से परिपूर्ण एक नारायण कुण्ड को प्रकट कर दिया। उस कुण्ड में सुहावने कमल खिल रहे थे तथा उन कमलों पर भौंरे गूँज रहे थे। उस कुण्ड को प्रकट करने के पश्चात् कर्दम ऋषि ने देवहूती से कहा—"हे राजपुत्री! तू इस कुण्ड में स्नान कर ले।" पति की आज्ञा पाकर देवहूती ने जब उस कुण्ड में स्नान किया तो उसका स्वरूप देवकन्या के समान दिव्य हो गया तथा उसकी अवस्था बारह वर्ष की कन्या के तुल्य हो गई। जिस समय वह कुण्ड में से बाहर निकली, उस समय अत्यन्त सुन्दर वस्त्र तथा सर्वोत्कृष्ट आभूषणों को पहिने हुए थी। उसके साथ ही एक सहस्र सुन्दर दासियाँ भी, जो सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थीं तथा अपने हाथों में चँवर आदि वस्तुएँ लिए हुये थीं, उस कुण्ड से बाहर निकल देवहूती से कहने लगीं—"हे राजपुत्री! हम सब तुम्हारी दासी हैं। जो आज्ञा दोगी, उसे करने को हम सदैव प्रस्तुत रहेंगी।" उस समय देवहूती ऐसी प्रतीत हो रही थी कि उसे देखकर कामदेव की स्त्री रति भी लज्जित हो जाये। जब कर्दम ऋषि ने अपनी चन्द्रमुखी पत्नी की ओर देखा, तब उन्होंने मन में यह विचार किया कि मुझे भी अपना शरीर ऐसा ही सुन्दर बना लेना चाहिए। ऐसा निश्चय कर ज्योंही कर्दम ऋषि ने उस कुण्ड में स्नान किया, त्योंही वे अश्विनीकुमार के समान दिव्यस्वरूप, सुन्दर सोलह वर्ष की अवस्था के हो गये। इस प्रकार श्री नारायणजी की कृपा से जब दोनों पति-पत्नी तरुण हो गये, तब वे प्रसन्न होकर विमान में जा बैठे। सम्पूर्ण दासियाँ भी उसमें बैठकर अपना-अपना कार्य करने लगीं। सुख तथा विलास की जो सामग्रियाँ वैकुण्ठ तथा इन्द्रलोक में रहती हैं, वे सब ईश्वर की दया से उस विमान में विद्यमान थीं।

हे विदुर! उस विमान में रहकर कर्दम ऋषि तथा देवहूती ने बहुत समय तक सांसारिक सुखों का उपभोग किया। उनका जब जी चाहता था, तभी वह विमान वायु के समान उड़ता हुआ, क्षणभर में ही इन्द्रलोक, वरुण-लोक, कुबेरलोक, गन्धर्वलोक आदि सम्पूर्ण लोकों में तथा मन्दराचल आदि पर्वतों पर पहुँच जाता था। देवता तथा देवस्त्रियाँ उस विमान को देखकर कर्दमजी तथा देवहूती के भाग्य की सराहना करती थीं। इस प्रकार देवहूती के साथ भोग-विलास करते हुए कर्दम ऋषि को दस सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। उस संसर्ग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण देवहूती के गर्भ से नौ कन्याओं ने जन्म लिया। उस समय कर्दमजी ने यह विचार किया कि अब मुझे सांसारिक सुख को त्याग कर फिर से श्री नारायण-जी का भजन एवं तप करना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने देवहूती से कहा—"हे राजपुत्री! अब मेरा मन गृहस्थी में नहीं लगता है। तुम यदि कहो, तो मैं श्री नारायणजी का भजन करने के लिए चला जाऊँ?" ऋषि के ऐसे वचन सुनकर देवहूती ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे स्वामी! हरि-भजन करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। मैं भी अभी तक संसारी भोग-विलास में मग्न रहकर आपकी सेवा से विमुख बनी रही। मुझे उचित तो यह था कि मैं आपके चरणों का ध्यान धरकर मुक्ति को प्राप्त करती, परन्तु वैसा न करके इन नौ कन्याओं को जन्म दे बैठी हूँ। हे नाथ! अब मुझे इनके विवाह की चिन्ता लग रही है। यदि इनका विवाह हो जाये तो मैं भी आपकी सेवा करने के लिए साथ ही साथ चली चलूँगी। आपके पहिले चले जाने से मैं इनके लिए वर कहाँ ढूँढूँगी? अब तक मैंने संसारी सुख को पाने के लिए ही आपकी सेवा की है, यदि मैंने आपको परमेश्वर समझकर पूजा होता, तो मैं भी आवा-गमन से छूटकर अपना परलोक सुधार लेती। मैंने अपने पिता के यहाँ महा-त्माओं द्वारा यह बात सुनी थी कि जिसने मनुष्य-शरीर पाकर हरि-भजन एवं सत्सङ्ग नहीं किया तथा संसारी माया-मोह में भूला रहकर अपने जीवन को भ्रष्ट बनाता रहा, उसका जन्म लेना भी निष्फल समझना चाहिए। सो परमेश्वर की माया ने मुझे भी इस प्रकार ठग लिया है कि आप-जैसे महापुरुष की पत्नी होकर भी मैं कुछ हरि-भजन नहीं कर सकी। संसार में जो मनुष्य श्री शालग्राम तथा ठाकुरजी को भोग लगाये बिना स्वयं भोजन कर लेते हैं, उन्हें मृत-तुल्य समझना चाहिए।"

देवहूती की बात सुनकर कर्दम ऋषि ने अपने मन में विचार किया कि श्री नारायणजी ने मुझे मेरे घर में अवतार लेने का वरदान दिया था, परन्तु उन्होंने अभी तक अवतार नहीं लिया है। यदि मैं अभी गृहस्थी को छोड़ दूँगा, तो यह बात अधूरी ही रह जायेगी। इसलिए मुझे अभी से पूर्ण वैराग्य नहीं लेना चाहिए। ऐसा निश्चय कर कर्दम ऋषि ने अपनी पत्नी से कहा—"हे राजपुत्री! तू अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। तेरे गर्भ से श्री नारायणजी अवतार लेंगे।" यह कहकर कर्दम ऋषि फिर देवहूती के साथ भोग करने लगे। श्री परमप्रभु की कृपा से देवहूती उसी समय गर्भवती हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौबीसवाँ अध्याय

देवहूती के गर्भ से श्री कपिलदेवजी का अवतार तथा कर्दम ऋषि का तपस्या करने के निमित्त वन को प्रस्थान

मैत्रेयजी बोले–"हे विदुर ! जब देवहूती के गर्भ में श्री कपिलदेवजी ने वास किया, तब उसके मुखारविन्द का अलौकिक प्रकाश देखकर कर्दम ऋषि ने इस प्रकार कहा–"हे राजपुत्री ! परब्रह्म परमेश्वर तेरे गर्भ में अवतार लेने के लिए आये हैं। तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। अब मैं तपस्या करने के लिए जाऊँगा तो तू मेरी प्रीति में व्याकुल मत होना।" यह सुन देवहूती ने प्रसन्न होकर कहा–"हे प्राणनाथ ! मैं इस बात पर किस प्रकार विश्वास करूँ ?" जिस समय देवहूती ने यह बात कही, उसी समय ब्रह्मा आदि देवताओं ने देवहूती को विश्वास दिलाने के लिए वहाँ आकर इस प्रकार कहा–"हे राजपुत्री ! तेरे जप, तप, नियम एवं धर्म सभी सफल हुए। अब श्री कपिलदेव के रूप में परब्रह्म परमेश्वर तेरे गर्भ से जन्म लेकर इस संसार में तेरे कीर्ति एवं यश को बढ़ावेंगे। उनके अवतार ग्रहण करने पर संसार में तेरा नाम सदैव के लिए अमर हो जायेगा। तेरे हृदय में जो अज्ञानता-रूपी काई जमी हुई है, उसे वे ज्ञानरूपी अग्नि द्वारा भस्म कर देंगे। तू उन्हें अपना पुत्र मत समझना। वे आचारियों को सांख्य योग का उपदेश करने के लिए अवतार लेनेवाले हैं। जिस समय संसार में धर्म की हानि हो जाती है, तब वे धर्म को बढ़ाने तथा अधर्म को नष्ट करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं।"

"हे विदुर ! इतना कहकर सभी देवतागण, देवहूती तथा कर्दम ऋषि की परिक्रमा कर, अपने-अपने लोक को चले गये। देवहूती को हरि-मन्दिर जानने के कारण उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई थी। दस महीने बीतने के पश्चात् जब श्री कपिलदेवजी ने अवतार लिया, उस समय कर्दम ऋषि उनके सम्पूर्ण लक्षणों तथा अंगों को देखकर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए। देवताओं ने भी प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाई तथा आकाश से पुष्पवर्षा की। गन्धर्वों ने उनका यशोगान किया। अप्सराएँ अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में नृत्य करने लगीं। तीनों लोकों में मङ्गलाचार हुए तथा चारों दिशाएँ प्रकाशित हो गईं। जब कर्दम ऋषि ने श्री कपिलदेवजी को पूर्णब्रह्म परमेश्वर करके पहिचाना, तब वे उनके सम्मुख खड़े हो, हाथ जोड़कर, इस प्रकार स्तुति करने लगे–"हे आदिपुरुष परब्रह्म ! आपका नाम लेने तथा दर्शन करने से संसारी जीव भवसागर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार उतर जाते हैं। बड़े-बड़े योगियों तथा ऋषि-मुनियों को आपका दर्शन ध्यान में भी प्राप्त नहीं होता है। मेरे धन्य भाग्य हैं जो आपने मेरे घर अवतार ग्रहण किया है। यदि मैं अब भी मुक्ति-पद को प्राप्त न कर सकूँ, तो मुझे हतभागी ही समझना चाहिए। मैंने देवताओं के मुख से यह सुना था कि आपने सांख्य-योग ज्ञान का उपदेश करने के लिए संसार में अवतार ग्रहण किया है। अतः अब आप कृपा कर मुझे ऐसा ज्ञान सिखलाइये, जिसके प्रताप से मैं इस शरीर को त्यागकर मुक्त-पद को प्राप्त हो जाऊँ।" इस प्रकार कर्दमजी जब स्तुति कर रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी-सहित सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ने वहाँ आकर श्री कपिलदेवजी की इस प्रकार बिनती की—"हे प्रभु! आपने अपने मुखारविन्द से जिस प्रकार कहा था, उसी प्रकार आपने हमें अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है। आप संसार में श्री कपिलदेव मुनि के नाम से प्रसिद्ध होंगे।"

इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् ब्रह्माजी ने कर्दम ऋषि से कहा—"हे पुत्र! तुम अपनी नौ कन्याओं का विवाह नौ ऋषियों से कर दो।" ब्रह्माजी की इस आज्ञा को पाकर कर्दम ऋषि तथा देवहूती ने अपनी कन्याओं का विवाह इस प्रकार कर दिया—'कला' नामक कन्या का विवाह 'मरीचि' ऋषि से, 'अनसूया' का विवाह 'अत्रि' से, 'श्रद्धा' का 'अंगिरा' से, 'हवि' का 'पुलस्त्य' से, 'गति' का 'पुलह' से, 'योग्य' का 'क्रतु' से, 'ख्याति' का 'भृगु' से, 'अरुन्धती' का 'वशिष्ठ' से तथा 'शान्ति' का 'अथर्वण' ऋषि से। विवाह हो जाने के उपरान्त सभी ऋषि कर्दमजी तथा देवहूती से बिदा लेकर, पत्नियों-सहित आनन्दित हो, अपने-अपने निवास-स्थान को चले गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी तथा सनकादि ऋषि भी कर्दमजी तथा देवहूती को दण्डवत्-प्रणाम कर अपने स्थान को लौट गये। कन्याओं को बिदा कर देने के पश्चात कर्दम ऋषि ने श्री कपिलदेवजी से कहा—"हे प्रभु! संसारी जीव जन्म-मरण में फँसे रहने के कारण मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते हैं तथा अनेक प्रकार का कष्ट देनेवाले इस अधर्मी शरीर को त्यागते नहीं हैं। इसका क्या कारण है? वह कौन-सा उपाय है, जिसके करने से माया-मोह, परिवार तथा संसारी सुखों में फँसकर नष्ट होनेवाला मन मायारूपी बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर ले?"

कर्दम ऋषि की प्रार्थना सुनकर श्री कपिलदेवजी ने कहा—"हे ऋषि!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हुई। जिस समय मनुष्य संसार में जन्म लेता है; उस समय उसके ऊपर देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण—ये तीन ऋण रहते हैं। आप यज्ञ द्वारा देवऋण से, वेदपाठन द्वारा ऋषिऋण से तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से उऋण हो चुके हैं। अब आपके लिए श्रीहरि का स्मरण करना ही सबसे अधिक श्रेष्ठ है। यदि आप अपने मन को संसार से विरक्त करना चाहते हैं तो धीरे-धीरे साधन करने से संसारी प्रीति स्वयं छूट जायेगी। आप इस शरीर को मिथ्या समझें। जिस प्रकार पानी में बुदबुदे उठते हैं तथा उनमें मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु अथवा आकाश—इनमें से कोई वस्तु नहीं होती, उसी प्रकार इस शरीर को निकृष्ट समझ कर इसका अहङ्कार त्याग दीजिए। प्राण निकल जाने के पश्चात् यह शरीर किसी भी काम नहीं आता है, अतः शरीर से प्रेम करना श्रेष्ठ नहीं है। जो वस्तु सदैव स्थिर रहे तथा जिसका कभी नाश न हो, उसी से प्रेम करना उचित है। जिसके प्रकाश द्वारा इस शरीर को चलने-फिरने, देखने-सुनने तथा खाने-पीने की सामर्थ्य प्राप्त है, उसी परमपिता का ध्यान सदैव करना चाहिए। वह परमपिता मैं हूँ तथा सभी जीवों के शरीर में मेरी ही शक्ति विद्यमान है। अतः मेरे अतिरिक्त अन्य किसी से प्रीति नहीं रखना चाहिए। अपने शरीर में प्रतिदिन मेरे प्रकाश को देखने से आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा। हे पिता! संसारी जीव इस ज्ञान को भूलकर केवल अपने शरीर, धन एवं परिवार का अभिमान करते हैं। अतः उन्हें धर्म एवं ज्ञान का उपदेश देने के लिए ही मैंने यह अवतार ग्रहण किया है। हे ऋषि! काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह तथा मत्सर—ये छः शत्रु मनुष्य के शरीर में निवास कर, उसे भुलावे में डाले रहते हैं तथा नष्ट कर देते हैं। उन्हीं के मद में अन्धा होकर मनुष्य अधर्म करता है। जो प्राणी इनके वशीभूत न रहकर उल्टे इन्हें अपने वश में रखता है, वह मनुष्य चाहे घर में रहे अथवा वन में—उसे 'जीवन्मुक्त' समझना चाहिए। जब तक मनुष्य अपने शरीर, पत्नी, पुत्र तथा परिवार आदि को अपना समझता है, तभी तक उसे मृत्यु तथा अन्य वस्तुओं का भय बना रहता है। जब उसे मेरे कथनानुसार ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तब उसे काल आदि का डर नहीं रहता।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने विदुरजी से कहा—"हे विदुर! इस ज्ञान को सुनकर कर्दम ऋषि ने अपने हृदय को संसार से विरक्त करते हुए कपिल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवजी से इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभु ! अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं वन में जाकर आपके चरणकमलों का ध्यान धरूँ ? यहाँ रहने से मेरा मन संसारी माया-मोह में फँसा रहेगा। आप कृपा कर यही ज्ञान अपनी माता को भी सुनाकर उसे भवसागर से पार उतार दीजिएगा।" यह सुनकर कपिल-देवजी बोले—"हे पिता ! आप वन में जाकर मेरे स्वरूप का ध्यान धरें तथा साधु-महात्माओं का सत्सङ्ग करें। जिस स्थान पर मेरी चर्चा, कीर्तन अथवा कथा होती हो; वहाँ आपका निवास करना श्रेष्ठ रहेगा। उस सत्सङ्ग तथा मेरे ध्यान के प्रताप से आपका मन फिर कभी संसारी माया में लिप्त न होगा।"

पचीसवाँ अध्याय

कर्दम ऋषि का वन-गमन तथा श्रीहरि का स्मरण करते हुए शरीर त्यागना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर ! कपिलदेवजी की ऐसी आज्ञा पाकर कर्दम ऋषि ने उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे तपस्या करने के लिए वन में चले गये। जाते समय वे देवहूती से यह कह गये थे कि तुम्हें जिस बात में सन्देह हो, उसके सम्बन्ध में कपिलदेव से पूछ लेना। कर्दम ऋषि के इन वचनों को सुनकर देवहूती ने दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—"हे स्वामी ! आपने मुझे कपिलदेव को सौंप दिया है, इसीलिए मैं आपके साथ चलने में लाचार हूँ।" अस्तु, कर्दम ऋषि वन में जाकर श्री परब्रह्म परमेश्वर के ध्यान एवं तप में लीन हो गये। जिस प्रकार सम्पूर्ण गन्ने में रस भरा होता है तथा उसकी कोई भी गाँठ रस से खाली नहीं होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसारी वस्तुओं में श्री नारायणजी का एक-सा प्रकाश समझते हुए कर्दम ऋषि ने कुछ दिनों बाद योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्याग दिया।

"हे विदुर ! कर्दम ऋषि के वन जाने के पश्चात् देवहूती को बहुत शोक हुआ था, परन्तु उसने ब्रह्माजी के वचन का स्मरण कर, ज्ञानदृष्टि द्वारा अपने हृदय को धैर्य प्रदान किया। तत्पश्चात् वह कपिलदेवजी के सामने जा, हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहने लगी—"हे प्रभु ! मैंने देवताओं के मुख से यह सुना था कि श्री परब्रह्म प्रभु माया-मोहरूपी फल-फूलों से लदे संसार-रूपी वृक्ष को काटने के लिए अवतार ग्रहण करेंगे। अतः अब आपके जन्म के पश्चात् मुझे अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं रही है। अब आप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझे अपनी शरणागत जानकर कृपापूर्वक कोई ऐसा ज्ञान सिखाइये जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो जाये। इस संसार में अज्ञान को अँधेरे के समान समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य अँधेरे में राह भूलकर, ठोकर लग जाने से गड्ढे में गिर पड़ता है, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य संसारी माया-मोह में लिपटकर नष्ट हो जाते हैं। जिस मनुष्य के हाथ में ज्ञान का दीपक है, वही अपने वाञ्छित स्थान पर पहुँचकर भवसागर से पार हो जाता है। वह काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार आदि के गड्ढे में नहीं गिरता। अतः मैं चाहती हूँ कि आप कृपाकर इस प्रकृति के भेद—जिससे सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति होती है तथा जिस प्रकार श्री परब्रह्म प्रभु का प्रकाश समस्त जीवों में प्रकाशित होता है--का वर्णन करने की कृपा करें।"

देवहूती के ऐसे वचन सुनकर श्री कपिलदेवजी ने कहा—"हे माता! इस भेद को पूछने के कारण मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। योगी तथा ऋषि-मुनि ही ऐसी बात सुनने की अभिलाषा रखते हैं। सुनो, संसारी माया-मोह से छूटने के लिए मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त करने से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई बात नहीं है। माता, पिता, बन्धु, पुत्र तथा मित्र उसी को समझना चाहिए, जो ज्ञान की बात कहता हो। जो माता-पिता आदि अपने आत्मीयों को ज्ञानोपदेश नहीं करते, उन्हें अपना हितू न जानकर शत्रु समझना उचित है। हे माता! तुम तो स्वयं ज्ञानवान् हो, अतः तुम्हें भवसागर से पार उतरने में कोई सन्देह नहीं है। परन्तु तुम्हें यह बात निश्चय रूप से जान लेनी चाहिए कि मेरी दया के बिना यह ज्ञान किसी को प्राप्त नहीं होता है, अन्यथा सभी मनुष्य ज्ञानी ही हो जाते। मैं तुमसे ज्ञान का हाल कहता हूँ। इसे जो भी मनुष्य स्नेहपूर्वक सुनेगा, वह कृतार्थ होकर भवसागर से पार उतर जायेगा। संसार में ज्ञानी मनुष्य ही मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अज्ञानी मनुष्यों को मुक्ति नहीं मिलती। हे माता! जो लोग काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, मद तथा मत्सर के वशीभूत होकर संसारी मोह-माया में फँसे रहते हैं, उन्हें नरक अवश्य भोगना पड़ता है। इन काम-क्रोधादि की संगति पाने के कारण प्राणी चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। जो मनुष्य इनसे पृथक् रहता है वही श्री आदिपुरुष परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान प्राप्त हुए बिना काम-क्रोध आदि वश में नहीं हो पाते हैं। जो लोग वैराग्य ग्रहणकर भक्ति-योग का अभ्यास करते हैं, वे काम-क्रोध आदि को अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वशीभूत कर लेते हैं। जिन लोगों को मेरे चरणों में सच्ची भक्ति होती है, वे अपनी मुक्ति के लिए मानो आनन्द का मार्ग बना लेते हैं। सांसारिक व्यवहार तथा अपने परिवार एवं धन आदि से मनुष्य जितनी प्रीति रखता है उतनी प्रीति यदि वह साधु-महात्माओं से रक्खे तो सहज ही मुक्ति प्राप्त कर ले। हे माता! यदि मनुष्य ज्ञानी हो तो वह देवताओं से कम नहीं होता। ज्ञानवान् मनुष्य देवताओं से अधिक श्रेष्ठ कहे गये हैं। यज्ञ, दान, तीर्थ तथा व्रत आदि सब धर्मों से भक्ति-योग सर्वोपरि है। परन्तु जब तक संसारी तृष्णा नष्ट नहीं होती, तब तक मेरे चरणों में भक्ति प्राप्त होना अत्यन्त कठिन होता है। अतः ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग करना चाहिए। मेरी कृपा के बिना सत्संग भी प्रत्येक प्राणी को प्राप्त नहीं होता है।"

श्री कपिलदेवजी के ऐसे वचन सुनकर देवहूती प्रसन्न होकर इस अभिलाषा से अपने चारों ओर देखने लगी कि साधु-सन्त कैसे होते हैं? यदि वे मुझे मिलें तो मैं भी उनके सत्संग का लाभ उठाकर भवसागर से पार उतर जाऊँ। उस समय देवहूती के मन के भावों को पहिचानकर कपिलदेवजी ने फिर कहा—"हे माता! मैं तुम्हें साधु-सन्त एवं ज्ञानी महात्माओं के लक्षण बताता हूँ, तुम उन्हें ध्यान देकर सुनो। उन्हें किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर कष्ट नहीं होता है। उनके लिए निन्दा तथा स्तुति दोनों एक समान है। वे सबके शरीर में एक ही परमात्मा का प्रकाश देखते हैं। वे दुखी मनुष्यों को देखकर दयार्द्र हो उठते हैं तथा सभी पर अपनी कृपा बिखराते हैं। वे सब प्राणियों से मित्रता रखते हैं—किसी को अपना शत्रु नहीं मानते। वे निशि-दिन मेरे चरणों का ध्यान धरते हैं तथा आठों प्रहर मेरी ही कथा-कीर्तन में निमग्न रहते हैं। खाने-पीने तथा अन्य संसारी कार्यों को वे अपने द्वारा किया गया नहीं समझते। सब भली-बुरी बातों को वे परमेश्वर की इच्छा ही समझते हैं। वे सुख तथा दुःख को एक-सा अनुभव करते हैं तथा मुझसे मिलने की अभिलाषा में घर-द्वार, कुल-परिवार, बन्धु-बान्धव आदि सभी को त्यागकर जहाँ मेरी कथा, कीर्तन तथा चर्चा रहती है, वहीं सानन्द निवास करते हैं। मेरी कथा सुनने के कारण उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उनके हृदय में मेरी भक्ति उत्पन्न होती है। जब वे मेरे भक्त हो जाते हैं तब मैं उन्हें संसारी माया-जाल से विरक्त कर देता हूँ। उस समय वे ज्ञानदृष्टि द्वारा अपने शरीर में भी मेरा ही स्वरूप देखते हैं। मेरे चरणों में मन लगा रहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से उन्हें वर्षा, ग्रीष्म, शीत आदि का कुछ भी कष्ट नहीं होता। ऐसे सन्तों की संगति करने के लिए मैं सदैव लालयित रहता हूँ। साधु-सन्त वे ही होते हैं, जो समदर्शी बनकर पशु-पक्षी तथा अन्य सब जीवों में परमेश्वर का एक-सा ही चमत्कार देखते हैं। वे बाहर तथा भीतर से एकरस होते हैं तथा ऐसे ही ज्ञानी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। काल, सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि, जल तथा वायु ये सभी मेरे अधीन हैं। मेरी आज्ञा के बिना ये कुछ भी कार्य नहीं कर सकते। जो प्राणी मेरी शरण में आ जाता है उसके ऊपर किसी अन्य का वश नहीं चलता।"

श्री कपिलदेवजी के ऐसे वचन सुनकर देवहूती अत्यन्त प्रसन्न हुई। तदुपरान्त बोली—"हे प्रभु! मुझ स्त्री को ऐसा ज्ञान प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। अतः आप कृपाकर अपनी भक्ति एवं पूजा का कोई सरल मार्ग बतलाकर प्रकृति के भेद का वर्णन कीजिए।" कपिलदेवजी बोले—"हे माता! पहिले तुम प्रकृति का भेद—जिसे शरीर कहा जाता है—सुनो। सतोगुण, रजोगुण, तथा तमोगुण—इन तीनों को प्रकृतिरूपी वृक्ष का मूल जानकर माया को उसकी डालियाँ समझना चाहिए। उन डालियों में चौबीस तत्त्व शाखाओं के समान हैं। उन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर का निर्माण तथा संसार की उत्पत्ति होती है। आत्मा को—जिसे अनादि पुरुष कहते हैं—इन चौबीस तत्त्वों से पृथक समझना चाहिए। वह आत्मा जन्म, मरण, जरा तथा घटने-बढ़ने से रहित है। जिन चौबीस तत्त्वों द्वारा शरीर का निर्माण होता है, वे सदैव बनते बिगड़ते रहते हैं। जो मनुष्य अपने शरीर एवं इन्द्रियों के सुख को वास्तविक सुख मानकर उनसे प्रीति रखता है, उसे अज्ञानी समझना चाहिए तथा जो अपने शरीर में स्थित आत्मा को शरीर से पृथक् मानता है, उसे ज्ञानी जानना चाहिए। इन चौबीस तत्त्वों द्वारा ही देवता, मनुष्य तथा जड़-चैतन्य सभी जीवों की उत्पत्ति होती है। अतः परमेश्वर को सब का स्वामी एवं उत्पन्नकर्त्ता समझना चाहिए। अतः हे माता! तुम भी अपने शरीर में स्थित आत्मा को इन चौबीस तत्त्वों से पृथक् समझो, तभी तुम्हें वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी।"

छब्बीसवाँ अध्याय

कपिलदेवजी द्वारा प्रकृति के भेद का वर्णन

कपिलदेवजी ने कहा—"हे माता! मैं तुमसे चौबीसों तत्त्वों के लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ। इन्हें जानने से आत्मा तथा शरीर का भेद अलग-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलग दृष्टिगोचर होता है; परब्रह्म प्रभु का जो प्रकाश सब जीवों के शरीर में विद्यमान रहता है, उसीको 'आत्मा' कहा जाता है। उस आत्मा का नाश कभी नहीं होता। वही सब जीवों का पालन करता है। जिस प्रकार पानी भरे अनेक पात्रों में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, परन्तु यदि उन्हें तोड़ डाला जाय तो फिर कुछ नहीं रहता, उसी प्रकार आत्मा का प्रकाश सब जीवों में भरा हुआ है। जिस प्राणी को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह फिर संसारी माया-मोह में नहीं फँसता है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि तथा तिलों में तेल रहता है, परन्तु दिखाई नहीं देता उसी प्रकार आत्मा भी सबके शरीर में विद्यमान होने पर भी किसी को दिखाई नहीं देता है। अतः ज्ञान-दृष्टि द्वारा आत्मा एवं शरीर को अलग-अलग समझना चाहिए। जब तक शरीर में आत्मा विद्यमान है, तभी तक शरीर उसका सामर्थ्य पाकर बोलता, चलता, उठता, बैठता, खाता, पीता तथा इन्द्रियों को सुख देनेवाला कार्य करता है उस सुख को भोगनेवाला भी उसी अंगुष्ठ-प्रमाण रूप से हृदय में स्थित आत्मपुरुष को समझना चाहिए। जब वह आत्मपुरुष शरीर से पृथक् हो जाता है, तभी शरीर मृतक बनकर गलने-सड़ने के अतिरिक्त और किसी काम का नहीं रहता। यह विचारकर आत्मा को चौबीस तत्त्वों से अलग समझना चाहिए। जो लोग ज्ञानी हैं, वे आत्मा को अनश्वर तथा शरीर को नश्वर समझकर शरीर से प्रीति नहीं रखते हैं। प्रकृति का रूप प्रारम्भ में भली भाँति ज्ञात नहीं होता। जब उसमें सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण का समावेश हो जाता है, तभी उसका स्वरूप प्रकट होता है। शरीर में रहने-वाले परमेश्वर के अंगुष्ठ-प्रमाण स्वरूप को योगाभ्यास तथा ज्ञान प्राप्त किए बिना देखा नहीं जा सकता। वह आत्मपुरुष ही कालपुरुष बनकर बाहर निवास करता है तथा उसी को जानने के लिए संसार में यज्ञ, तप, दान, धर्म आदि के विधान निर्मित किए गये हैं।

हे माता ! जिस प्राणी ने उस पुरुष को पहिचानकर उसे अपना स्वामी तथा उत्पन्न करनेवाला समझा है, उसे यज्ञ, तप, दान आदि शुभ कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। उसको जाने बिना शुभ कर्म भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। वैसे उसे जानना कोई कठिन कार्य भी नहीं है। भक्ति तथा प्रेम द्वारा वह सहज ही पहिचाना जा सकता है। अतः तुम भक्ति द्वारा उस परमपुरुष को पहिचानने का प्रयत्न करो। तब तुम्हें अन्य किसी कार्य को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने का प्रयोजन नहीं रहेगा। तुम्हारा सांसारिक सोच नष्ट हो जायेगा। अब मैं तुमसे चार प्रकार की सात्विकी, राजसी, तामसी तथा नवधा भक्ति कहता हूँ। तुम उसे मन लगाकर सुनो। श्री परब्रह्म प्रभु से मिलने के लिए सात्विकी भक्ति जल के समान निर्मल है। उसमें मुक्ति-पद प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई कामना नहीं रहती। राजसी भक्ति स्त्री, पुत्र, धन आदि संसारी सुखों की प्राप्ति के लिए की जाती है। तामसी भक्ति को शत्रु का संहार करने के लिए किया जाता है, परन्तु नवधा भक्ति करनेवाले मनुष्य सांसारिक सुख, मुक्ति अथवा अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं। इस प्रकार की नवधा भक्ति मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे चरण-कमलों के ध्यान का नाम ही भक्ति है। भक्त को चाहिये कि वह आठों प्रहर सच्चे हृदय से अपने हृदय में मेरे चरण-कमलों का ध्यान धरे तथा मेरे नाम का स्मरण करे। अपने हाथों से मेरी सेवा तथा पूजा करे एवं पैरों से तीर्थ-यात्रा करे। जो मनुष्य मेरी सात्विकी, राजसी अथवा तामसी भक्ति करते हैं, मैं उनके परिश्रम को सफल बनाने के लिए उनकी कामनाओं की पूर्ति कर देता हूँ। परन्तु जो मनुष्य मेरी नवधा भक्ति करते हैं, उनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न रहता हूँ तथा सदैव यही विचार करता रहता हूँ कि इन्हें ऐसी कौन-सी वस्तु दूँ जिसके बदले इनसे उऋण हो सकूँ?

हे माता! तुम मेरी नवधा भक्ति करो। उससे तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी। परन्तु तुम्हें उस समय अपने मन का यह सब अहङ्कार त्याग देना होगा कि तुम राजा स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा की पुत्री, कर्दम ऋषि की पत्नी तथा राजा प्रियव्रत एवं उत्तानपाद की भगिनी हो। तुम इस शरीर के सभी सम्बन्धों को मिथ्या मानकर हरि-भक्तों एवं साधु-सन्तों को अपना सम्बन्धी समझो। परमेश्वर को अर्पण किए बिना इन्द्रियों के स्वाद एवं सुख की अभिलाषा मत करो। जब तुम इस प्रकार साधना करोगी, तो तुम्हारे हृदय में उस आदि-पुरुष का स्वरूप स्वयं दिखाई देने लगेगा। हे माता! यह ज्ञान उसी मनुष्य को प्राप्त हो सकता है, जो अपने धर्म पर स्थिर रहकर ज्ञानियों तथा महात्माओं का सत्संग करता है। जिस कर्म का फल बुरा हो, उस कर्म को कभी नहीं करना चाहिए। भाग्य के अनुसार जो कुछ प्राप्त हो, उसी पर सन्तोष रखकर अपने हृदय में लोभ को स्थान नहीं देना चाहिए। पेट भर भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे श्री नारायणजी का स्मरण करते समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आलस्य आता है। तीर्थस्थान एवं ज्ञानियों के सत्संग-स्थलों में निवास करना चाहिए तथा जहाँ अच्छी संगति न हो, वहाँ कभी नहीं रहना चाहिए। अपने तथा अन्य सब जीवों के शरीर में परब्रह्म प्रभु को एक समान व्याप्त जानकर भूख-प्यास तथा सुख-दुःख को बराबर समझना चाहिए। जब तक ऐसे ज्ञान की प्राप्ति न हो, तब तक अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार धर्म-कर्म करते रहने से भी धीरे-धीरे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।"

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्री कपिलदेवजी द्वारा सांख्य-योग का वर्णन

श्री कपिलदेवजी ने कहा—"हे माता! अब मैं तुमसे सांख्ययोग का ज्ञान कहता हूँ, तुम ध्यान से सुनो। इस ज्ञान को अत्यन्त श्रेष्ठ जानकर तुम किसी और से मत कहना। यह ज्ञान सब मनुष्यों को शीघ्र प्राप्त नहीं होता है। तुम सभी संसारी व्यवहारों को मिथ्या समझो। उन्हें कभी सत्य नहीं समझना चाहिए। यदि तुम्हें कभी यह सन्देह हो कि जब संसारी व्यवहार मिथ्या ही है तो यज्ञ, तप, धर्म एवं पाप की बातें भी झूठी होंगी, सो ऐसी बात नहीं समझनी चाहिए। पाप तथा पुण्य की बातों को सत्य मानकर उन्हें कभी मिथ्या नहीं समझना चाहिए। जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी स्त्री से जगते समय मिलने की अभिलाषा करके उसी ध्यान में सो जाय तथा स्वप्न में उसी स्त्री के साथ भोग करने से उसका वीर्य स्खलित हो जाए तो उसका भोग करना मिथ्या तथा वीर्य स्खलित होना सच्चा होता है, उसी प्रकार यह संसार मिथ्या है, परन्तु मनुष्य जो पाप-पुण्य करते हैं, उनका फल उन्हें दुःख-सुख के रूप में अवश्य भोगना पड़ता है। इस सम्बन्ध में मैं तुमसे एक इतिहास कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो—

एक समय एक मनुष्य जंगल से लकड़ी काटकर उसका बोझ अपने मस्तक पर रक्खे हुए बेचने के लिए चला जा रहा था। मार्ग में जब वह ग्रीष्म के कारण थक गया तब एक वृक्ष की छाया में जाकर उसने अपने मस्तक पर रक्खे हुए लकड़ी के बोझ को उतारकर नीचे रख दिया। तदुपरान्त वह पास के एक कुएँ से पानी पीकर वहीं बैठकर विश्राम करने लगा। इतने ही में उसने यह देखा कि एक सवार अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ पानी पीने के लिए उस कुएँ की ओर चला आ रहा है। उसे देखकर लकड़ीवाले के मन में यह विचार आया कि यदि हमारे पास भी घोड़ा होता तो हम भी उस पर चढ़कर इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार चलते। यों बोझ उठाने तथा पैदल चलने से तो धूप में पाँव जलते हैं। इसी विचार में वह लकड़हारा कुएँ की जगत पर सो गया। स्वप्न में उसे घोड़े की प्राप्ति हुई। जब घोड़े पर चढ़कर वह उसे कुदाने लगा तब घोड़े से नीचे गिर गया। उस स्वप्नावस्था में जब वह उछला तो कुएँ में गिर पड़ा तथा कुएँ में गिरने के कारण उसके हाथ-पैर टूट गये। अतः हे माता! जिस प्रकार उसको घोड़ा मिलना मिथ्या तथा कुएँ में गिरने से चोट लगना सत्य हुआ, उसी प्रकार संसारी सुख को झूठा समझना चाहिए, परन्तु पाप करने से मनुष्य को दण्ड अवश्य मिलता है, इसे सत्य समझना चाहिए। अस्तु, जब लोगों ने उस लकड़हारे को कुएँ से बाहर निकालने का प्रयत्न किया, उस समय कुएँ के भीतर से ही उसने यह कहा कि जब स्वप्न में घोड़े पर चढ़ने से मैंने यह फल पाया है तो जो लोग नित्य घोड़े पर चढ़ते हैं, वे न जाने किस गहरे कुएँ में गिरकर दण्ड पावेंगे?"

हे देवहूती! जो मनुष्य संसार में रथ, वस्त्र, आभूषण, स्त्री, मकान आदि का सुख प्राप्त करके यह समझता है कि इस सम्पूर्ण सुख को मैं अपने पराक्रम से भोग रहा हूँ, तो उसका यह समझना भारी अज्ञान है। परमेश्वर की दया के बिना किसी को सुख नहीं मिलता। अतः ऐसे व्यक्ति को अवश्य दुःख भोगना पड़ता है। परन्तु जो मनुष्य उस सुख को श्री नारायणजी की दया से प्राप्त हुआ जानकर उसमें अधिक प्रीति नहीं रखता तथा अपने वर्ण एवं शरीर का धर्म समझकर उस धन के अहंकार में भरकर किसी को दुःख नहीं पहुँचाता उसे कभी परमात्मा का दण्ड नहीं मिलता है।

श्री कपिलदेवजी द्वारा इस ज्ञान को सुनकर देवहूती ने कहा—"हे महात्मन्! आपने जो यह कहा कि इस शरीर को उस आत्मपुरुष से पृथक् समझना चाहिए, सो यह तो अत्यन्त कठिन बात प्रतीत होती है। बिना आँखों से देखे उस पुरुष को पृथक् कैसे समझा जा सकता है? वह पुरुष तो शरीर में इस प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार कि दूध में घी तथा अग्नि में प्रकाश रहता है। आप कृपाकर मुझे इसका भेद अलग से समझाइये।" यह सुनकर कपिलदेवजी बोले—"हे माता! इस बात पर ज्ञान दृष्टि तथा चर्म-चक्षुओं द्वारा देखकर—दोनों प्रकार से विचार करना चाहिए। यह स्पष्ट है कि जब परमेश्वर का चमत्कार शरीर से निकल जाता है तब हाथ-पाँव आदि इन्द्रियों के होते हुए भी वह कुछ काम नहीं कर सकता है। अतः इस बात को आँखों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि आत्मपुरुष के न रहने पर शरीर किसी भी काम का नहीं रहता। मनुष्यों की यह गति देखने के कारण ही तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि आत्मपुरुष शरीर से पृथक् है। जिस प्रकार विषयी मनुष्यों के पास धन देखकर उसके धन तथा धर्म को वेश्या अनेक प्रकार से नष्ट कर देती है, उसी प्रकार मेरी माया धर्मात्मा पुरुषों के समीप जाकर उन्हें अनेक प्रकार से छलने का प्रयत्न करती है। उस समय जो लोग मेरे चरणों की शरणों में रहते हैं, उन पर उस माया का कोई वश नहीं चलता है। गंगा मेरे चरणों से उत्पन्न हुई है, अतः जो मनुष्य उसमें स्नान करते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं तथा उनका हृदय शुद्ध हो जाता है जो लोग अपने अन्तःकरण में मेरे चरणों का ध्यान रखते हैं, वे कभी संसारी माया-जाल में नहीं बँधते हैं। क्योंकि जो पारस पत्थर को प्राप्त कर लेता है, उसे फिर काँच की इच्छा नहीं रहती है। संसार में ऐसे ही मनुष्यों की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं तथा मृत्यु के उपरान्त परलोक के सुख की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पुत्र के भोजन करने से पिता का पेट नहीं भरता तथा दूसरे के पास रक्खा हुआ द्रव्य समय पर अपने काम नहीं आता, उसी प्रकार शरीर को आत्मा से पृथक् समझे बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। जिन्होंने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन्हें जीवन्मुक्त समझना चाहिए।"

श्री कपिलदेवजी द्वारा इस ज्ञान को सुनकर देवहूती ने कहा—"हे प्रभो! मैंने आपके कथनानुसार आत्मा को शरीर से पृथक् तो समझ लिया, परन्तु मेरे मन का यों शीघ्रतापूर्वक संसारी माया-जाल से पृथक् होना तथा श्रीहरि के चरणों में अनुरक्त होना—बहुत कठिन दिखाई देता है। जिस दिन से आपके पिता तपस्या करने के लिए वन में गये हैं, उस दिन से मैं उन्हें एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पाती हूँ। मेरा हृदय उन्हीं की चिन्ता में लगा रहता है। अतः आप कृपाकर मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुझे ज्ञान तथा मुक्ति सहज सुलभ हो सके।" तब कपिलदेवजी बोले—"हे माता! मैं तुम्हें भक्ति-योग का सरल मार्ग बताता हूँ, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो। श्री नारायणजी से मिलने के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने मन को धीरे-धीरे लगाता है, तो भी उसे मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है। जिस प्रकार कि कोई मनुष्य जगन्नाथजी अथवा मथुरा तीर्थ की यात्रा के लिए घर से निकले और प्रति दिन चलता रहे तो वह किसी न किसी दिन अपने गन्तव्य स्थान पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहुँच ही जाता है। जो व्यक्ति चले ही नहीं, वह तो कभी भी नहीं पहुँच सकेगा। इसी तरह जब कोई पथिक मार्ग में थकने के बाद किसी से यह पूछता है है कि ठहरने का ठिकाना अभी कितनी दूर और है तथा जब उसे यह मालूम होता है कि अभी थोड़ी दूर और है, तब वह थका हुआ होने पर भी उसी स्थान पर जैसे-तैसे पहुँच ही जाता है, परन्तु यदि उसे यह पता चले कि अभी ठहरने की जगह बहुत दूर है तो वह थककर वहीं ठहर जाता है। इसी प्रकार मैं तुमसे कहता हूँ कि भक्ति, पूजा, व्रत, नियम, कथा-कीर्तन आदि परमेश्वर को प्राप्त करने के सुगम मार्ग हैं। पूजा भी कई प्रकार की होती है। उनमें एक पूजा तामसी है—जिसमें मनुष्य अन्य लोगों को तो स्वयं को भला दिखलाने के लिए माला फेरता है, परन्तु अपने मन में किसी शत्रु के मर जाने की कामना करता रहता है। दूसरी पूजा राजसी होती है—जिसमें श्री नारायणजी के नाम पर मनुष्यों से वस्त्र, धन, मिष्ठान, सुगन्ध आदि लेकर उसे स्वयं के काम में उपयोग किया जाता है। ऐसे लोग अपने शालग्राम तथा लक्ष्मीनारायणजी की मूर्ति को संसारिक सुख प्राप्त करने के लिए अन्य लोगों से पुजवाते हैं तथा अन्य मनुष्य के घर में जो शालग्राम की मूर्ति होती है उस पर भक्ति तथा श्रद्धा नहीं रखते हैं। तीसरी सात्विकी भक्ति—मुक्ति प्राप्त करने के लिए की जाती है। चौथी भक्ति निर्गुण है—इसमें मुक्ति प्राप्त होने की इच्छा भी नहीं रक्खी जाती। इस भक्ति के अन्तर्गत यज्ञ, तप, पूजा, दान, व्रत आदि जो भी शुभकर्म किए जाते हैं, वे सब परमेश्वर के नाम पर अर्पित कर दिए जाते हैं तथा उनके बदले में कोई इच्छा नहीं रक्खी जाती। हे माता! मेरी कथा तथा कीर्तन सुनते समय जो भक्त करुणा के स्थलों पर रो देता है तथा हर्ष के स्थान पर आनन्द-विभोर हो जाता है, उसे देखकर मैं अत्यन्त लज्जित होता हूँ और अपने मन में सदैव यह विचार करता रहता हूँ कि मैं उस भक्त को प्रसन्न करने के लिए कौन-सी ऐसी वस्तु दूँ, जिससे उसके ऋण से उऋण हो सकूँ। इस प्रकार के भक्त जीवन्मुक्त होते हैं। हे माता! चारों वर्णों में वेद का ज्ञाता ब्राह्मण मुझे अत्यन्त प्रिय है। परन्तु जो ब्राह्मण मेरे चरणों में प्रीति नहीं रखता उस ब्राह्मण से अधिक मैं हरि-भक्त शूद्र का स्नेह करता हूँ। अतः हे माता! तुम मेरे चरणों में ध्यान लगाकर मेरे नारायण नाम का स्मरण करो। उससे तुम भवसागर से पार होकर आवागमन से छूट जाओगी। जो व्यक्ति मेरी भक्ति तथा पूजा से विमुख रहकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कभी मेरा नाम नहीं लेता, वह बहुत दिनों तक नरक में दुःख भोगकर पशु-योनियों में जन्म लेता है तथा उन योनियों में बहुत समय तक रहने के बाद फिर से मनुष्य-शरीर को प्राप्त करता है। अतः मेरी भक्ति तथा ज्ञान प्राप्त करने का साधन मनुष्य-शरीर ही है। जो प्राणी इस शरीर को पाकर भी मेरा स्मरण नहीं करता, वह बाद में बहुत पछताता है।"

अट्ठाईसवाँ अध्याय

श्री कपिलदेवजी द्वारा मनुष्य की उत्पत्ति तथा मृत्यु का वर्णन

मैत्रेयजीने कहा—"हे विदुर! इतनी कथा सुनकर देवहूती ने श्री कपिलदेवजी से पूछा—"हे प्रभो! जो मनुष्य श्री नारायणजी से विमुख रहते हैं, उनका मरने के बाद क्या हाल होता है, यह सुनाने की कृपा करें।" श्री कपिलदेवजी बोले—"हे माता! संसारी मनुष्य परिवार, घर, धन आदि के माया-जाल में पड़कर अपनी आयु को व्यर्थ नष्ट कर देते हैं। युवावस्था में मनुष्य जिन व्यक्तियों का पालन-पोषण करता है, वे ही व्यक्ति वृद्धावस्था में उसे कष्ट पहुँचाते हैं। मैं तुमसे मनुष्य की उत्पत्ति, जन्म तथा मरण का हाल कहता हूँ, तुम उसे ध्यान देकर सुनो।"

श्री नारायणजी की कृपा से स्त्री को जिस दिन गर्भ ठहरना होता है, उस दिन मैथुन के समय पुरुष का वीर्य स्त्री के रज के साथ मिलकर खौलने लगता है। पाँचवें दिन उसमें पानी के समान बुलबुला उठता है तथा दसवें दिन उसकी बेर के समान गाँठ बँध जाती है। पन्द्रहवें दिन यह गाँठ मांस का पिण्ड बनकर कुछ लम्बी तथा गोल हो जाती है। एक मास में उसमें हाथ, पाँव तथा मस्तक के चिह्न बनने आरंभ होते हैं। दूसरे मास में उँगलियाँ बनती हैं तथा तीसरे मास में चमड़ा एवं हड्डी का निर्माण होता है। चौथे मास में शरीर पर रोयें तथा आँख-कान आदि इन्द्रियों के आकार बन जाते हैं। श्री नारायणजी की कृपा से पाँचवें मास में उसमें जीवात्मा का प्रवेश हो जाता है, तब उसे भूख तथा प्यास सताने लगती है। छठवें मास में उसका मस्तक नीचे तथा पैर ऊपर रहते हैं। उस स्थिति में उसका मन अत्यन्त घबराता है। सातवें महीने उसे अपने पिछले कई जन्मों का तथा आठवें महीने सौ जन्म पीछे का हाल याद आने लगता है। उस समय उसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा वह अपने मन में यह विचारकर पछताने लगता है कि हमने पिछले जन्मों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमुक-अमुक कर्म करके ऐसा दुःख अथवा सुख प्राप्त किया था। उस समय वह श्री नारायणजी का स्मरणकर इस प्रकार विनती करने लगता है कि हे प्रभो! मैंने पिछले जन्मों में संसारी सुख तथा स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर अपना ज्ञान नष्ट कर दिया था। इसीसे मैं इस जन्म-मरण से मुक्ति नहीं पा सका। संत-महात्माओं का सत्संग न करने के कारण ही अब मैं यहाँ उल्टा लटका हुआ दुःख पा रहा हूँ। हे प्रभो! अब आप कृपाकर मुझे इस नरक कुण्ड से बाहर निकाल दीजिए। मैं भविष्य में आपकी तन-मन से सेवा करता रहूँगा। अब आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि यह ज्ञान मुझे कभी विस्मरण न हो तथा संसार में पहुँचकर मैं ऐसा कार्य करूँ—जिसके द्वारा इस जन्म-मरण से सदैव को मुक्ति पा जाऊँ। हे माता! जब नवाँ अथवा दसवाँ मास आता है तब वायु का वेग उसे बाहर गिरा देता है। गर्भावस्था में कन्या बायीं ओर तथा पुत्र दाहिनी ओर की कोख में रहता है। जिस समय वह पृथ्वी पर गिरकर रुदन करता है; उस समय उसे श्री जगदीश्वर की माया से अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान भूल जाता है। तब वह अपनी बाल्यावस्था में भूख-प्यास लगने पर भी रोने के अतिरिक्त कुछ बोल नहीं सकता। वह बिछौने पर पड़ा-पड़ा मल-मूत्र आदि करता है तथा जब तक कोई उसे उठाता नहीं तब तक उसी में पड़ा रहकर कष्ट प्राप्त करता है तदुपरान्त उसके माता-पिता मल-मूत्र आदि धोकर उसे गोद में उठा लेते हैं। शैशवावस्था के पश्चात् जब वह पाँच वर्ष का बालक होता है, तब उसके माता-पिता उसे विद्या सीखने के लिए गुरु को सौंप देते हैं। विद्याध्ययन के समय में वह मारा-पीटा जाता है तथा अपने इच्छानुसार खेलने-कूदने भी नहीं पाता। वही बालक सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर तरुण कहलाता है। उसी समय वह अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण पहिनता है तथा काम, क्रोध मोह आदि के अभिमान में पड़कर अपने समान किसी दूसरे को नहीं समझता। यदि वह दरिद्र होता है तो दूसरों को सुन्दर वस्त्राभूषण पहने देखकर उसे ईर्ष्या होती है। फिर विवाह होने के बाद, घर में स्त्री आ जाने पर वह खाने-कमाने की चिन्ता में पड़ जाता है तथा उसी चिन्ता में दिन-रात चिन्तित रहकर अपने जीवन को व्यर्थ गँवाने लगता है। जिस मनुष्य ने अपने पूर्वजन्म में दान, धर्म आदि शुभ कर्म नहीं किए होते हैं, वह अधिक दरिद्र होकर पेट भरने की चिन्ता में आठों प्रहर दुखी रहता है। जब उसके पुत्र-पुत्री आदि उत्पन्न होते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, तब वह उनकी ममता में पड़कर अनेक प्रकार से झूठ-सत्य बोलकर धन कमाता तथा उनका पालन-पोषण करता है। जब तक उसमें सामर्थ्य रहती है तब तक वह अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन करने के लिए अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। उस समय यदि उसके परिवार में किसी की मृत्यु हो जाय, तो वह उस मृतक के लिए इतना शोक मनाता तथा रोता है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अपनी स्त्री के वशीभूत रहकर अपने माता-पिता के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करता है तथा उनको दुःख देते समय परलोक के भय से भी भयभीत नहीं होता। स्त्री के मोह में पड़कर जिस प्रकार पुरुष नष्ट होता है, वैसा अन्य किसी कारण से नहीं होता।

अतः हे माता! जो मनुष्य अपना भला चाहता हो, उसे स्त्री के स्नेह में नहीं पड़ना चाहिए। हे माता! तुम भी स्त्री हो, सो मेरे कहने का बुरा मत मानना। मैं तुमसे यह ज्ञान धर्मशास्त्र के अनुसार कह रहा हूँ। युवावस्था बीतने पर जब वृद्धावस्था आती है तब मनुष्य को आँखों से कम दिखाई देता है तथा कानों से सुनाई नहीं पड़ता। उस समय धन कमाने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। तब वह अपने घर में पड़ा हुआ लम्बी-लम्बी साँसें लेता है और पछताता हुआ इस प्रकार विचार करता है कि अब मैं अपनी सन्तान का पालन पोषण किस प्रकार करूँगा? यदि दरिद्र होता है तो उस समय भोजन, वस्त्र आदि के अभाव में अत्यन्त कष्ट उठाता है। जिसके पुत्र स्वयं धन उपार्जन करने लगते हैं, वे अपनी पत्नी सहित उस बृद्ध पिता को अपने शत्रु के समान समझने लगते हैं। उस अवस्था में वह वृद्ध यदि किसी कार्य के लिए कुछ कहता है तो सब लोग उसे दुर्वचन सुनाते हैं। उस समय वह अपने मन में अत्यन्त पछताता हुआ इस प्रकार सोचता है कि अब मैं बूढ़ा हो गया तथा धन कमाने योग्य नहीं रहा हूँ, इसीलिए ये सब लोग—जिनका मैंने जीवन भर पालन-पोषण किया—समय पर मेरे खाने-पीने का सुधि भी नहीं लेते हैं। जिस प्रकार तेली का बैल जब बूढ़ा हो जाता है तब उसे नाथ काटकर वन में छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस वृद्ध की भी कोई बात नहीं पूछता।

हे माता! उस समय इन कष्टों को देखकर वह ईश्वर से अपनी मृत्यु की कामना करता है, परन्तु आयु सम्पूर्ण हुए बिना उसे मृत्यु भी प्राप्त नहीं होती। उसके पुत्र तथा पुत्रबधू आदि स्वयं भोजन करने के उपरान्त, पीछे से उसे भिक्षुक की तरह कुछ खाने-पीने के लिए दे देते हैं। वृद्धावस्था में जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसे कोई रोग होता है, तब घर का कोई व्यक्ति उसकी सेवा नहीं करता। कोई दो घड़ी के लिए उसके पास बैठना भी नहीं चाहता है। वह अकेला पड़ा रहता है। भोजन और जल की इच्छा रहते हुए भी वह मौन बना रहता है। कोई उसकी बात का ठीक उत्तर नहीं देता। सभी लोग उसे दुर्वचन कहते हैं। इतना सब कष्ट उठाने के बाद जब वह मृत्यु-समय के निकट पहुँचता है, तब वात, पित्त, कफ से उसका कंठ अवरुद्ध हो जाता है। उस समय शुद्ध श्वास भी नहीं निकल पाती। उस समय पापी लोगों से यमदूत इस प्रकार कहते हैं कि जिनके लिए तूने यह सब पाप कमाया है, अब उसे अपनी रक्षा के लिए क्यों नहीं बुलाता? ऐसी स्थिति में मुँह का बोल बन्द हो जाने के कारण वह उन्हें न तो कोई उत्तर दे पाता है और न किसी को बुला ही सकता है। अपनी उस करुण दशा पर उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं। जिस समय यमदूत अपना भयानक स्वरूप धरकर उसे डराते तथा धमकाते हैं उस समय उनके भय के मारे उसका मल-मूत्र निकल जाता है। वे यमदूत उसके अतिरिक्त अन्य किसी को दिखाई नहीं देते। उस समय उसके परिवारवाले लोक-दिखावे के लिए झूठी प्रीति दिखाकर रोने लगते हैं। उस रोने-पीटने के कारण यमदूत उसे और अधिक दुःख देते हैं। उस समय श्रीहरि का कथा-कीर्तन सुनाना तथा गङ्गाजल, तुलसी, शालग्राम का चरणामृत उसके मुख में डालना एवं साधु-वैष्णवों की चरण-धूलि को उसके शरीर पर लगाना उचित है, परन्तु ऐसा कोई नहीं करता। सब लोग लोक-दिखावे के लिए बैठे-बैठे केवल रोते ही रहते हैं।"

उन्तीसवाँ अध्याय

यमदूतों द्वारा पापी जीवों के यमराज के पास ले जाये जाने का वर्णन

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! इतनी कथा सुनकर देवहूती बोली—"हे प्रभो! मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या हाल होता है यह और बताने की कृपा करें?" श्री कपिलदेवजी ने कहा—"हे माता! इन सब कष्टों के उपरान्त यमराज के दूत उस जीव (मृत्यु के उपरान्त जीव का अंगुष्ठ-प्रमाण स्वरूप बना रहता है तथा उसमें समस्त इन्द्रियों की शक्ति रहती है।) को यमपाश में बाँधकर लोहे के मुद्गरों से पीटते हुए यमराजपुरी के स्वामी यमराज के पास ले जाते हैं। यमपुरी इस मृत्युलोक से निन्यानबे सहस्र योजन की दूरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर है। मार्ग में जब जीव को भूख-प्यास लगती है, तब वह अपने किए हुए पापों का स्मरणकर अत्यन्त पछताता है। यमपुरी के मार्ग की पृथ्वी अग्नि के समान जलती है। उस पृथ्वी पर नंगे पाँव, नंगे शिर तथा नंगे शरीर चलने के कारण जब वह व्याकुल तथा थकित होकर कहीं विश्राम लेना चाहता है अथवा मार्ग में अन्धकार होने के कारण कहीं ठिठक जाता है तो उस समय यम के दूत उसे अपने मुद्गरों से खूब मारते हैं तथा एक क्षण को भी विश्राम नहीं लेने देते। जिस प्रकार संसार में कुकर्म करनेवालों को राजाओं द्वारा दण्ड दिया जाता है, उसी प्रकार पाप करनेवाला व्यक्ति उस यमपुरी में पहुँचकर अपने पापों का दण्ड प्राप्त करता है। श्री नारायणजी की माया से प्रेरित हो वह अपने उस अंगुष्ठ-प्रमाण शरीर को भी अपना मर्त्यलोक का शरीर ही समझता है। उस समय वह अपने परिवारवालों तथा सेवकों को बार-बार स्मरण कर पीछे फिर-फिरकर इस आशय से देखता है कि उनमें से कोई मेरी सहायता करने के लिए आ रहा है अथवा नहीं। जब उसे कोई भी दिखाई नहीं देता उस समय वह अत्यन्त पछताता है तथा रो-रोकर इस प्रकार कहता है कि हाय, जिनका पालन-पोषण करने के लिए मैंने पाप किया था, उनमें से कोई भी इस समय मेरी सहायता के लिए यहाँ उपस्थित नहीं है। इन बातों को याद कर-करके जीव को अत्यन्त क्लेश होता है, परन्तु उस समय पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। मार्ग में यमपुरी के सर्प, बिच्छू आदि अनेक प्रकार के जीव-जन्तु उसे काटते तथा अत्यन्त पीड़ा पहुँचाते हैं।

हे माता! इस प्रकार अनेक प्रकार के कष्ट देते हुए, यमदूत उसे वैतरणी नदी में ले जाते हैं। उस वैतरणी नदी में मल, मूत्र, पीव, कीड़े, नख, बाल, हड्डी तथा सड़ा हुआ मांस भरा हुआ है। उस नदी का विस्तार (पाट) चार कोस का है। उस नदी में पहुँचकर कीड़ों द्वारा काटे जाने तथा गिद्धों द्वारा मांस नोचे जाने पर वह जीव अत्यन्त पीड़ित होकर इस प्रकार विलाप करता है कि यदि कोई मुझे इस नदी से पार कर देता तो मैं उसका अत्यन्त उपकार मानता। इन शब्दों को सुनकर यमदूत उसके ऊपर अपनी गदा का प्रहार करते हैं। इतना सब कष्ट उठाने के पश्चात् जब वह जीव वैतरणी नदी को चार घड़ी में पारकर यमराज के पास पहुँचता है उस समय यमराज की आज्ञा पाकर चित्रगुप्त उसके कर्मों का लेखा-जोखा देखते हैं। तदुपरान्त जिस जीव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को जितने समय तक जिस नरक में रखकर दण्ड देना होता है, उसे वहीं भेज देते हैं। नरक में पहुँचकर वह जीव अत्यन्त दुःख उठाता है। फिर नरक की अवधि पूर्ण होने पर वह वहाँ से निकलकर अपवित्र तथा कुरूप जीव की योनि में जन्म प्राप्त करता है। वहाँ वह सदैव रोगी रहता है तथा क्षण भर को भी सुख प्राप्त नहीं करता। इसी प्रकार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् उसे फिर मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। इस प्रकार हे माता! यह मनुष्य-शरीर मिलना सहज नहीं है (रौरव आदि अट्ठाइस नरकों का हाल आगे पाँचवें स्कन्ध में दिया गया है)।"

तीसवाँ अध्याय

किस पाप के करने से कौन-सा दण्ड मिलता है, इसका वर्णन

श्री कपिलदेवजी ने कहा—"हे माता! जो पापी मनुष्य यमपुरी में जाकर नरक भोगते हैं, उनके पापों का दण्ड मैं तुमसे पृथक्-पृथक् कहता हूँ। जो मनुष्य किसी दूसरे का धन जबर्दस्ती ले लेता है, उसे यमदूत बहुत ऊँचे पर्वत पर ले जाकर नीचे पत्थर की चट्टान पर पटक देते हैं। उस समय उसके सभी अङ्ग टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। तब उनके मांस को यमपुरी में रहनेवाले बड़े-बड़े गिद्ध खाते हैं तथा जोंक के समान तीक्ष्ण रौरव नामक जन्तु उसका खून पीते हैं। उस समय यमदूत उस जीव से इस प्रकार कहते हैं कि तुमने दूसरे का जितना धन लिया है, उतने ही कल्प तक तुम्हारी ऐसी ही दशा रहेगी। यमदूतों की ऐसी बात सुनकर वह जीव बहुत घबराता तथा पछताता है। परन्तु उसके प्राण नहीं निकलते। जो मनुष्य स्वयं अच्छा भोजन करता है तथा अच्छे कपड़े पहनता है, परन्तु अपने परिवारवालों एवं मित्रों को उन्हें नहीं देता तथा जो साधु-संतों की सेवा नहीं करता है, उसे वहाँ नरक में जाकर बहुत जोर की भूख सताती है। उस समय यमदूत उसी के शरीरका मांस नोचकर उसे खाने के लिए देते हैं तथा इस प्रकार कहते हैं कि जिस शरीर का तुमने पालन किया था, उसी को स्वयं खाओ। जो मनुष्य किसी साधु-सन्त को दुर्वचन कहकर उसे ढेढ़ी आँख से देखता है, उनकी आँखों को यमपुरी के गिद्ध अपनी चोंच से फोड़ डालते हैं तथा उसके मांस एवं मस्तक के गूदे को निकाल लेते हैं। जो मनुष्य अथवा संसार में न्यायाधीश पद पर बैठनेवाले व्यक्ति किसी निरपराध को दण्ड देता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, उसे दो पत्थरों की चट्टान के बीच में रखकर कोल्हू के समान पेरा जाता है अथवा जो मनुष्य किसी को विष देता है अथवा किसी के घर में अग्नि लगाता है, उसे तलवार की धार के समान तीक्ष्ण पत्तोंवाले बहुत ऊँचे वृक्ष के ऊपर से चढ़ाकर छोड़ दिया जाता है। उस समय उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जो मनुष्य परस्त्री-गमन करता है, उनके शरीर से अग्नि में खूब तपाई हुई लोहे की स्त्री-मूर्ति चिपटा दी जाती है। जो मनुष्य पराई धरोहर को बेईमानी करके हड़प लेता है उसे यमदूत अग्नि के समान जलती हुई पृथ्वी पर लिटाकर उसके शरीर पर गर्म तेल छिड़कते हैं। तदुपरान्त उसे जलते हुए तेल के कड़ाह में डाल देते हैं। परन्तु इतने पर भी उसके प्राण नहीं निकलते। जो मनुष्य जीव-हिंसा करता है, उसे पीव तथा लार से भरे हुए लालाभक्ष नामक नरक में ले जाकर पानी के स्थान पर उसी पीव तथा लार को पिलाया जाता है। जो मनुष्य न्यायालय या पंचायत में झूठी गवाही देते हैं, उन्हें साँप तथा बिच्छुओं से भरे अँधेरे कुएँ में बार-बार डाला और निकाला जाता है। उस समय सर्प तथा बिच्छुओं के काटने से उसे अत्यन्त पीड़ा होती है। हे माता! इस प्रकार जो मनुष्य जैसा पाप करता है, उसको यमपुरी में जाकर वैसा ही कष्ट उठाना पड़ता है।"

इकतीसवाँ अध्याय

श्री कपिलदेव द्वारा नरक भोगने के पश्चात् जीव की स्थिति का वर्णन

कपिलदेवजी बोले—"हे माता! जो मनुष्य श्री नारायण के नाम का स्मरण नहीं करते तथा कुकर्म के अतिरिक्त शुभ कर्मों में अपना मन नहीं लगाते, उनकी ऐसी ही गति होती है। वे पशु-पक्षी आदि का शरीर प्राप्त करते हैं। इस प्रकार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने पश्चात् ही उन्हें फिर मनुष्य का शरीर मिलता है। परन्तु तब वे लोग काने, कुबड़े, अन्धे, रोगी, दरिद्र, कुरूप आदि होकर कष्ट उठाते हैं संसार में जो मनुष्य सुन्दर, धर्मात्मा, नीतिज्ञ धनी तथा हरि-भक्त दिखाई दें, उनके सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि उन्होंने स्वर्ग से लौटकर संसार में जन्म लिया है। हे माता! इस प्रकार ज्ञानी लोगों को स्वर्ग अथवा नरक से लौटकर आनेवाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष देखकर सब हाल मालूम हो सकता है। जिस मनुष्य के पाप तथा पुण्य दोनों कर्म बराबर रहते हैं, वह अपने कर्मों का फल पाने के उपरान्त फिर मनुष्य-शरीर को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त करता है। जिस मनुष्य का केवल पुण्य ही होता है, पाप नहीं होता वह मृत्यु के पश्चात् देवता अथवा गन्धर्व का शरीर पाकर देवलोक अथवा स्वर्ग-लोक में निवास करता है। हे माता! श्री नारायण की इच्छा से यह जीव देवता, मनुष्य, शूकर अथवा श्वान जिस किसी योनि में जन्म पाता है, उसी में सदैव बने रहने की आकांक्षा करता है। श्री नारायणजी की कृपा के बिना उसका मन संसार से विरक्त नहीं होता। जिस शरीर को प्राणी अपना समझ कर पालन-पोषण करता है, वह शरीर कभी भी स्थिर नहीं रहता। सतोगुणी रजोगुणी तथा तमोगुणी—ये तीन प्रकार के स्वभाव होते हैं। जिस प्राणी को रजोगुण अधिक होता है, वह राजसी कर्म करने के उपरान्त सत्यलोक को जाता है। तमोगुण अधिक रहने के कारण पाप करनेवाला प्राणी पाताल लोक में जाकर नरक के कष्ट उठाता है तथा सतोगुणी मनुष्य अपने शुभ कर्मों द्वारा देवलोक को प्राप्त करते हैं। हे माता! जप, तप एवं दान आदि शुभ कर्मों को भी राजसी, तामसी तथा सात्विकी इन तीन प्रकार का समझना चाहिए। इसीलिए सभी जीवों की गति तीन प्रकार की होती है। जिसका जो स्वभाव होता है, वैसे ही कर्म में उसका मन लगता है तथा उसी को वह करता भी है। अपने स्वभाव के अनुसार कर्म कर के यह जीव संसार में बारम्बार जन्म लेता तथा दुःख-सुख को प्राप्त करता है। इस प्रकार उसे आवागमन से मुक्ति नहीं मिलती, जिस प्रकार कुएँ से पानी निकालने के लिए रहट को घुमाया जाता है तथा उनमें से एक-एक डोल खाली होता जाता है तथा दूसरा पानी से भरता जाता है। उसी प्रकार जीव की भी गति समझनी चाहिए। वह एक शरीर से निकलकर अपने शुभाशुभ कर्मों को भोगने के पश्चात् दूसरे शरीर में चला जाता है। जिस शरीर में जाकर वह जैसे कर्म करता है, उन्हीं कर्मों के अनुसार वह दूसरे शरीर को प्राप्त करता है।"

श्री कपिलदेवजी के इस प्रकार वचन सुनकर देवहूती ने कहा—हे प्रभो! जब यही स्थिति है तब तो जीव का इस संसार से किसी भी प्रकार छुटकारा नहीं हो सकता है?" श्री कपिलजी बोले—हे माता! अब मैं इस जन्म-मरण से छूटने का सरल उपाय कहता हूँ, तुम ध्यान से सुनो। सत्य बोलना, आचार से रहना, सब जीवों की रक्षा करना, प्रयोजन बिना अधिक न बोलना, बुद्धि को नष्ट न होने देना, बुरी संगति तथा बुरे कामों से दूर रहना, अपने चित्त को सदैव प्रसन्न रखना, ईश्वर जितना दे उसी पर सन्तोष रखना, किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के धन को देखकर डाह न करना, शुभ कर्मों द्वारा संसार में सुयश कमाना, किसी बात पर अपयश न कमाना, किसी पर क्रोध न करना, धर्मपूर्वक कमाई हुई आय से अपना जीवन व्यतीत करना, श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति रखना, झूठ न बोलना, किसी जीव को कष्ट न पहुँचाना, पर-स्त्री से प्रसङ्ग न करना, साधु-सन्त एवं ब्राह्मणों की सेवा करना, श्री नारायणजी के कथा-कीर्तन का श्रवण, श्री नारायणजी के नाम का स्मरण, बड़ों की सेवा में रहकर उनका कभी अनादर न करना, अच्छी-बुरी सभी बातों को श्री प्रभु की इच्छा समझना तथा अपने धर्म एवं कर्म पर दृढ़ रहना—इन बातों को जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर पालन करता है, वह आवागमन से छूटकर भवसागर से पार उतर जाता है। हे माता ! ये सब गुण सत्सङ्ग तथा कथा-पुराण सुने बिना प्राप्त नहीं होते हैं। अतः मनुष्यों को चाहिए कि वे साधु, सन्त, महात्मा तथा ज्ञानी जनों का सत्सङ्ग करें। सत्सङ्ग जितना अधिक होगा, उसका उतना ही अधिक लाभ मिलेगा। अधर्मियों की सङ्गति करने में स्वयं के गुण भी नष्ट हो जाते हैं। पर-स्त्रीगामी, जुआरी, लोभी, चोर, मद्यप, चुगल, मिथ्यावादी, हिंसक तथा केवल अपना शरीर पालनेवाले लोग, अपना धर्म छोड़ देनेवाले हैं। अतः ऐसे लोगों की सङ्गति कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। ऐसे मनुष्यों की एक क्षण की सङ्गति करने से भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो लोग पर-स्त्री प्रसङ्ग करते हैं, उनका ज्ञान और धर्म दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, इसलिए एकान्त में अपनी बहिन तथा पुत्री के साथ बैठना भी त्याज्य कहा गया है, क्योंकि मनुष्य का हृदय सदैव एक-सा नहीं रहता है। कामदेव का प्रताप ऐसा प्रबल है कि वह मनुष्य के ज्ञान को नष्टकर उससे अनेक पाप करा बैठता है।

हे माता ! सम्पूर्ण सृष्टि तथा वेदों को उत्पन्न करनेवाले तथा वेद के अनुसार धर्म-अधर्म का विचार रखनेवाले ब्रह्माजी भी एक समय जब अपनी सरस्वती नामक सुन्दरी कन्या के साथ एकान्त में बैठे हुए थे, उस समय श्री नारायणजी की माया से अपनी कन्या की सुन्दरता को देखकर उनके हृदय में पाप ने अपना अधिकार जमा लिया। उस समय कामदेव के मद में मोहित होकर ब्रह्माजी अपनी उस पुत्री के साथ भोग करने के लिए लालायित हो उठे। यह देखकर वह धर्मरूपी कन्या अत्यन्त लज्जित हुई तथा हिरनी का रूप धारणकर वहाँ से भाग खड़ी हुई। उस समय ब्रह्मा भी हिरन का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूप धरकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। यह देखकर ब्रह्मा के पुत्र तथा श्री नारायणजी के अवतार सनकादिक ने वहाँ आकर ब्रह्मा को बहुत समझाया। ज्ञान प्राप्त होने पर ब्रह्मा अत्यन्त लज्जित हुए। तब उन्होंने अपना वह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण किया। हे माता! इस प्रकार जब ऋषि, मुनि, प्रजापति आदि संपूर्ण संसारी जीवों को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी की यह दशा हुई, तो अज्ञान से भरे हुए संसारी जीवों की क्या सामर्थ्य है, जो वे कामदेव के वेग को रोक सकें? जिस प्रकार आँधी चलने के समय वृक्ष के पत्ते, घास तथा तिनके आदि उड़ने लगते हैं, उसी प्रकार जब श्री नारायणजी की माया से प्रेरित होकर कामदेव अपना बल दिखाता है, उस समय बड़े-बड़े योगी तथा ऋषि-मुनि आदि का चित्त भी चलायमान हुए बिना नहीं रहता है। हे माता! मेरी माया दो स्वरूपों–(१) जड़रूप द्रव्य तथा (२) चैतन्य-रूपी स्त्री–से संसार में फैली हुई है। संसारी जीव इन्हीं दो रूपों में लिपटकर नष्ट होते रहते हैं। चैतन्यरूप माया से छुटकारा चाहे मिल भी जाय, परन्तु जड़रूप माया कभी नहीं छोड़ती है। उसके मोह में सभी मनुष्य फँसे रहते हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि मनुष्य चैतन्यरूप को छोड़कर जड़रूप माया में क्यों फँसता है तो उसका उत्तर केवल यही है कि जिस प्रकार ताल, लय आदि युक्त अलगोजे को मीठे स्वरों में बजाने से तथा श्रेष्ठ गायक की मधुर-ध्वनि को सुनकर हिरन आदि वन के जीव, मोहित होकर उसके चारों ओर आ खड़े होते हैं तथा वह उनको पकड़कर बहुत कष्ट देता है, उसी प्रकार संसारी जीव भी सदैव सुख प्रदान करनेवाले श्री नारायणजी के भजन एवं स्मरण को भुलाकर जड़रूप माया को ही अपना सबसे बड़ा सुख समझते हैं तथा उसके मायारूपी मोह-जाल में फँसकर अन्त में बहुत दुःख उठाते तथा पछताते हैं।"

बत्तीसवाँ अध्याय

श्री कपिलदेवजी द्वारा तीन प्रकार के ज्ञान का वर्णन

श्री कपिलदेवजी ने कहा–"हे माता! मैंने तुमसे स्त्री तथा धन दोनों को बुरा कहा है। इससे तुम्हारे हृदय में यह सन्देह उत्पन्न हुआ होगा कि जब संसार के सभी जीवों की उत्पत्ति स्त्री द्वारा तथा सब सुखों की प्राप्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धन द्वारा ही होती है, तब इन दोनों को त्याग देने से सांसारिक व्यवहार कैसे चलेंगे। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें समझाता हूँ, सुनो। मैंने गृहस्थों के लिए स्त्री तथा धन छोड़ने के लिए नहीं कहा है। जो लोग गृहस्थाश्रम को त्यागकर श्री नारायणजी के नाम पर साधु, वैरागी अथवा संन्यासी हो गये हैं तथा जो वन या तीर्थों में रहकर श्री नारायणजी के ध्यान एवं स्मरण में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हीं लोगों के लिए स्त्री तथा धन त्याग देने का निषेध किया गया है। जो मनुष्य गृहस्थ हैं तथा जो गृहस्थाश्रम में रहकर ही श्री नारायणजी का भजन एवं स्मरण कर भवसागर से पार उतरना चाहते हैं, उन्हें अपनी विवाहिता स्त्री चाहे वह सुन्दर हो अथवा कुरूपा—के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से प्रीति अथवा प्रसङ्ग का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। गृहस्थ मनुष्य थोड़ा अथवा अधिक, जितना भी धन धर्म द्वारा वह उपार्जित कर सके, उसमें से कुछ धन परमेश्वर के नाम पर दान देकर उसे शेष द्वारा अपने परिवार का पालन करना चाहिए। पाप से कमाई हुई एक कौड़ी की इच्छा भी कभी अपने मन में नहीं रखनी चाहिए। गृहस्थ मनुष्य को उचित है कि वह प्रतिदिन देवकर्म, पितृकर्म, श्री नारायणजी का पूजन एवं स्मरण करे तथा उनको भोग लगाने के उपरान्त स्वयं भोजन करे। उसे श्री नारायणजी के कथा-चरित्रों का श्रवण करते हुए उनमें अपना ध्यान लगाये रखना चाहिए। गृहस्थ को चाहिए कि वह यथा-शक्ति साधु, सन्त, महात्मा तथा ब्राह्मणों को भोजन एवं वस्त्र दान करे। वह जो भी यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि धर्म-कर्म करे उसे श्री नारायणजी को अर्पित कर देना चाहिए। अपने पारिवारिक जनों को पाँव की बेड़ी के समान समझते रहना चाहिए तथा सदैव यही विचार करना चाहिए कि ईश्वर मुझे ऐसी सामर्थ्य दे, जिससे मैं इस फन्दे से छूट सकूँ। इस फन्दे से छुड़ानेवाले श्री नारायणजी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। गृहस्थ मनुष्य को गृहस्थी में रहते हुए भी अपना मन सबसे विरक्त रखना चाहिए। इसके विपरीत वैरागी तथा संन्यासी मनुष्यों को संसारी सुख का त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है। अब मैं तुमसे हरि-भक्त गृहस्थ के लक्षण कहता हूँ, सुनो। जिस प्रकार कमल का फूल जल में रहकर भी उससे सदा अलग रहता है, उसी प्रकार हरि-भक्त गृहस्थ को भी यह उचित है कि वह गृहस्थी में रहते हुए भी अपने मन को संसारी माया से सदैव विरक्त ही बनाये रहे। जो गृहस्थ इस प्रकार का आचरण करते हैं तथा अपने हृदय में सदैव श्री नारायणजी का ध्यान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगाये रहते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् सूर्यमण्डल में होकर वैकुण्ठलोक को जाते हैं। अब अज्ञानी गृहस्थों के लक्षण भी सुनो। हे माता! अज्ञानी गृहस्थ देवता तथा पितरों की पूजा के लिए पूजन, यज्ञ, दान, पुण्य आदि कुछ भी नहीं करते हैं। वे श्री नारायणजी के गुणानुवाद, कथा-चरित्र, भजन, स्मरण एवं कीर्तन से कोई स्नेह नहीं रखते हैं। वे केवल अपने परिवार को पालने तथा अपनी इन्द्रियों को सुख पहुँचाने में ही अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। परन्तु श्री नारायणजी की भक्ति के बिना उन्हें कुछ भी सुख प्राप्त नहीं होता है। ऐसे लोग मृत्यु के पश्चात् चन्द्रमण्डल में होकर पितृलोक को जाते हैं। वे कुछ दिनों वहाँ रहकर फिर संसार में जन्म लेते हैं तथा अपने कर्मों का भोग भोगते हैं। उत्तरायण सूर्य, शुक्लपक्ष तथा दिन में मृत्यु को प्राप्त होनेवाला मनुष्य सूर्यमण्डल में होकर वैकुण्ठलोक को जाता है तथा दक्षिणायन सूर्य, कृष्ण पक्ष एवं रात्रि में मरनेवाला मनुष्य चन्द्रमण्डल में होकर पितृलोक में जाता है। वहाँ अपने कर्मानुसार सुख भोगने के पश्चात् उसे फिर संसार में जन्म लेना पड़ता है। पापी मनुष्य नरक में रहने के पश्चात् चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। जब तक मनुष्य इंद्रियों के सुख से विमुख नहीं होता, तब तक उसका शरीर अङ्गुष्ठ-प्रमाण बना रहता है और वह आवागमन से मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता है। जो मनुष्य मुक्त हो जाता है, उसका वह शरीर छूट जाता है। तब उसे संसार में फिर कभी जन्म नहीं लेना पड़ता। हे माता! इसके अतिरिक्त मुक्त होने का एक अन्य उपाय भी मैं तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। जो मनुष्य मेरी राजसी भक्ति करते हैं, वे कई जन्म में मुक्त होते हैं। जो लोग सात्विकी भक्ति करते हैं, वे मृत्यु के उपरान्त पहिले ब्रह्मलोक में जाते हैं। वहाँ अवधिपर्यन्त सुख भोगने के पश्चात् फिर जन्म लेते हैं तथा दूसरे जन्म में मुक्ति को प्राप्त होते हैं। परन्तु निष्काम भक्ति करनेवाला प्राणी शरीर त्यागने के पश्चात् सीधा वैकुण्ठलोक को जाता है।

हे माता! इसके अतिरिक्त मुक्त होने के तीन मार्ग और हैं, वह भी सुनो। पहिला यह कि जो मनुष्य वेद-शास्त्रों में लिखे वर्ण धर्मानुसार अपने वर्ण के लिए उचित कार्यों को करता है एवं बुरे कामों से दूर रहता है, दूसरा यह कि जो मनुष्य स्नेहपूर्वक श्री नारायणजी का पूजन एवं स्मरण करता है तथा तीसरा यह कि जो मनुष्य सब जीवों में परमेश्वर का एक-सा चमत्कार जानकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी के साथ शत्रुता नहीं रखता—तो ये तीनों प्रकार के मनुष्य भी मुक्ति पद को प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार ईख के रस से मिश्री, शक्कर तथा गुड़ बनते हैं, परन्तु तीनों का निर्माण करनेवाली वस्तु एक ही है, उसी प्रकार भक्ति, पूजा, स्मरण, योग आदि मार्ग अलग-अलग हैं, परन्तु वे सब मार्ग श्री नारायणजी के चरणों के पास जाकर ही समाप्त होते हैं। हे माता! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, योगी अथवा यती कोई भी क्यों न हो, जिसे श्री नारायणजी के चरणों में स्नेह है, उसे मुक्ति की प्राप्ति अवश्य होती है। जो मनुष्य श्री नारायणजी के चरण-कमलों में स्नेह नहीं रखता, उसके पूर्व-जन्मों के पाप उदय हुए समझना चाहिए। ऐसा व्यक्ति मानो अमृत को छोड़कर समुद्र के खारे पानी में मिठास ढूँढने का प्रयत्न करता है। जिस प्रकार शूकर को घी तथा शक्कर खिलाने से उसे अच्छा नहीं लगता—केवल विष्ठा ही को प्यार करता है, उसी प्रकार अधर्मी मनुष्य भी नारायणजी के कथा-कीर्तन के स्थान से उठकर चुगल तथा कुकर्मी लोगों की संगति में जा बैठता है।

हे माता! जो मनुष्य मेरे चरणों में प्रीति तथा भक्ति रखता है, वह संसार के बुरे कामों से विरक्त हो जाता है। उसे तो केवल अपना ही भला-बुरा दिखाई देता है। मैंने तुमसे जो यह ज्ञान कहा है, इसे तुम कभी भूल मत जाना। इस ज्ञान का स्मरण होते ही तुम्हें विमान के छूटने का तथा कर्दमजी एवं मेरे वियोग का कष्ट न होगा। कलियुग के जीव इस ज्ञान को सुनकर तथा इसीके अनुसार आचरण करने पर भवसागर से पार उतर जायँगे। इस ज्ञान के प्रताप से तुम्हें भी मुक्ति की प्राप्ति होगी।"

तेंतीसवाँ अध्याय

श्री कपिलदेवजी का पूर्व दिशा में जाना तथा देवहूती का सरस्वती नदी के तट पर मुक्त होना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! इस ज्ञान के सुनने के पश्चात् देवहूती ने श्री कपिलदेवजी को दण्डवत् करके इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो! आपके उपदेश के प्रभाव से मेरा संसारी माया-मोह एवं कर्दमजी के वियोग का दुःख नष्ट हो गया है। आप संसार को उत्पन्न करनेवाले त्रिलोकीनाथ हैं। आपने मेरे गर्भ में आकर निवास किया, इससे मेरा अज्ञान दूर हो गया है। अब मुझे गृहस्थाश्रम की इच्छा नहीं रही है। हे महात्मन्! महाप्रलय के समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मा इत्यादि देवता भी आपकी माया में पड़कर नष्ट हो जाते हैं तथा वह आपकी माया भी आपके स्वरूप में लीन हो जाती है। उस समय आप अकेले ही अंगुष्ठ-प्रमाण बालक का स्वरूप धारणकर बरगद के पत्ते के ऊपर क्षीर-सागर में शयन करते हैं। अवतार धारण करना आपकी इच्छा पर निर्भर रहता है। आप जब जैसा चाहें, वैसा ही स्वरूप धारण कर सकते हैं। जिस प्रकार पहिले आपने वाराह, मत्स्य, कच्छप, नृसिंह तथा वामन आदि अवतार अपनी इच्छा से धारण किया था तथा अपने भक्तों को अपनी लीला दिखाकर गोलोकधाम को प्रस्थान कर गये थे, उसी प्रकार अब आपने मेरे गर्भ से उत्पन्न होकर मुझे ज्ञान प्रदान किया है। आपने अपनी इस ज्ञानामृत सञ्जीवनी द्वारा मेरे भारी भवरोग को दूर कर दिया है।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! देवहूती द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर श्री कपिलदेवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे माता ! तुम इस ज्ञान को सूर्य के समान प्रकाशवान् एवं अत्यन्त उत्तम जान-कर अन्य किसी व्यक्ति से मत कहना। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के सम्मुख अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मनुष्य का अज्ञान दूर हो जायेगा। गुरु, ब्राह्मण, साधु, वैष्णव तथा हरि-भक्तों को ही ज्ञान बताना। अधर्मी, मूर्ख, चोर, लोभी, मिथ्याभाषी तथा चुगुलों से इस ज्ञान को कभी मत कहना। जो मनुष्य गुरु तथा परब्रह्म परमेश्वर से विमुख रहे, पराये उपकार को न माने तथा गुरु की बात पर विश्वास न करे, उसे भी यह ज्ञान कभी नहीं सुनाना चाहिए।"

इतना कहकर श्री कपिलदेवजी ने फिर कहा—"हे माता ! अब मैं गङ्गा-सागर के तट पर जाता हूँ। तुम्हें जिस वस्तु की इच्छा हो वह मुझसे माँग लो।" यह सुनकर देवहूती हाथ जोड़कर बोली—"हे प्रभो ! आपके सदृश त्रिलोकीनाथ को पुत्ररूप में प्राप्त कर अब मुझे किसी अन्य वस्तु की आकांक्षा नहीं रह गई है।" देवहूती के ये शब्द सुनकर श्री कपिलदेवजी पूर्व दिशा की ओर चल दिये। तत्पश्चात् देवहूती भी संसारी माया-मोह से विरक्त हो, विमान आदि को उसी स्थान पर छोड़, सरस्वती नदी के तट पर बैठकर सच्चे हृदय से श्री नारायणजी का स्मरण करने लगी। श्रीहरि का ध्यान करते समय जब उसका शरीर सरस्वती नदी में समा गया, तब उसकी चैतन्य आत्मा ने मुक्त-पद को प्राप्त कर लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उधर जब श्री कपिलदेवजी गङ्गासागर के सङ्गम पर पहुँचे, उस समय समुद्र ने विधिपूर्वक उनकी पूजा, परिक्रमा तथा स्तुति करने के पश्चात् बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दिया। तब श्री कपिलदेवजी वहाँ बैठकर योगाभ्यास करने लगे। उनकी तपस्या करने का कारण यही था कि कलियुग के जो संसारी जीव योग अथवा तपस्या न कर सकें, वे मेरे दर्शन द्वारा ही योगाभ्यास के फल को प्राप्त कर लें।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! श्री कपिलदेवजी ने देवहूती को जिस सांख्य-योग ज्ञान का उपदेश किया था, वही ज्ञान मैंने तुम्हें सुनाया है। सांख्य-योग का तत्त्व यह है कि आत्मा को अनश्वर तथा अपने शरीर को नश्वर जानकर अपने मन को संसारी माया-मोह से विरक्त कर लेना चाहिए।" मैत्रेयजी ने विदुर से कहा—"हे विदुर! यह श्री कपिलदेव अवतार की कथा मैंने तुम्हें सुनाई है। इस कथा को जो भी मनुष्य सच्चे मन से कहेगा या सुनेगा, वह संसार में मन वांछित फल पाकर अन्त समय में मुक्ति-पद को प्राप्त करेगा।"

तृतीय स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

चतुर्थ स्कन्ध

सती द्वारा दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शरीर-त्याग एवं पार्वती नाम से हिमाचल के घर में पुनर्जन्म ग्रहण : भक्त ध्रुव एवं राजा पृथु की कथा

वन्दना

जिसके पद-तल की आभा से—प्राप्त हुई अरुणिमा उषा को,
उसके चरण-कमल में कवि का कोटि-कोटि वन्दन, आराधन !
जिसकी विभुता को पाकर, यह धरा—उर्वरा कहलाती है;
जिसकी प्रभुता शान्त सिन्धु में सौ-सौ ज्वार उठा जाती है;
युग-युग से सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज रहीं जिसकी जय ध्वनि से,
जिसकी मृदुता सौरभ बनकर, नव - शृङ्गार सजा जाती है;
चूम रहा अपने अधरों से जो अणु-अणु, कण-कण को प्रतिपल—
उसकी रूप-माधुरी को कवि का शत-शत अर्चन, आराधन !
ज्ञान, योग, तप, यज्ञ सभी में, जिसका प्रखर प्रकाश भर रहा;
आयु, तेज, बल, पौरुष सब में है जिसका विश्वास भर रहा;
संसृति के प्रत्येक कर्म में जो कर्त्ता बनकर रमता है,
जड़-चेतन में जिसका वैभव, उद्भव और विनाश भर रहा;
रहा अलक्षित किन्तु लक्ष्य से कभी नहीं जो दूर हटा है—
उसके अपरिमेय पौरुष को कवि का लक्ष - लक्ष नीराजन !
आज नहीं तो कल, उसको पहिचान सकेंगी नयन-पुतलियाँ;
आज दूर है तो क्या, कल तो छू ही लेंगी उसे उँगलियाँ;
भूल जाय मन आज, किन्तु कल प्राणों का वह मीत बनेगा,
उसकी ही पग-ध्वनि से पूरित होंगी तन की सूनी गलियाँ;
आज जिसे 'राजेश' भुलाकर—भूला-सा बन स्वयं भटकता—
उसी निराकृति की आकृति को स्वीकृत हो कवि का यह चिन्तन !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

अत्रि मुनि की उत्पत्ति, तपस्या तथा उनके घर चन्द्रमा दत्तात्रेय और दुर्वासा के जन्म का वृत्तान्त

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! अब मैं संसार की उत्पत्ति का हाल कहता हूँ, सुनो। ब्रह्माजी द्वारा 'मरीचि' नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। मरीचि के 'कश्यप' तथा 'कला' नामक दो पुत्र हुए। उनके अनेक सन्तानें हुईं, जिनका वर्णन छठवें स्कन्ध में आयेगा। राजा स्वायम्भुव मनु के देवहूती आदि तीन कन्याएँ तथा 'उत्तानपाद' एवं 'प्रियव्रत' नामक दो पुत्र हुए। देवहूती का विवाह कर्दम ऋषि के साथ हुआ था, जिनके यहाँ श्री कपिलदेवजी ने अवतार ग्रहण किया। उसका वर्णन मैं तुमसे पहिले ही कर चुका हूँ। अब तुम स्वायम्भुव मनु की अन्य दोनों पुत्रियों का वृत्तान्त सुनो—

"स्वायम्भुव मनु ने अपनी अन्य दोनों कन्याओं में से एक का विवाह 'दक्ष प्रजापति' के साथ तथा दूसरी का विवाह 'रुचि प्रजापति' के साथ कर दिया। जो कन्या रुचि प्रजापति को ब्याही थी, उसके गर्भ से 'अत्रि' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् अत्रि के भी तीन पुत्र उत्पन्न हुए।"

इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेयजी से कहा—"हे महात्मन् ! उन तीनों पुत्रों के उत्पन्न होने का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।" तब मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर ! ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् अत्रि ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे पुत्रों से भी सृष्टि उत्पन्न होगी; अतः मुझे सर्वप्रथम श्री नारायणजी का तप करना चाहिए। तत्पश्चात् सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिए, ताकि मेरे पुत्र धर्मात्मा हों। ऐसा विचार कर अत्रि मुनि ने अपनी पत्नी 'अनसूया' सहित तपस्या करनी आरम्भ की। वे दोनों किसी देवता का नाम न लेकर केवल 'कर्त्ता' कहकर तप करते थे। जब तपस्या करते हुए उन्हें सौ वर्ष व्यतीत हो गये तब ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन तीनों देवताओं ने जाकर अत्रि मुनि को दर्शन दिया। उस समय मुनि ने उन तीनों देवताओं को अपने सम्मुख उपस्थित देखकर इस प्रकार कहा—"हे महानुभावो ! मैंने तो केवल एक देवता के लिए तपस्या की थी, फिर आप तीनों देवताओं ने यहाँ पधारकर मुझे किसलिए दर्शन दिया है ? अब मैं अपनी कामना के लिए किससे याचना करूँ ?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रि मुनि के ऐसे वचन सुनकर विष्णु ने उत्तर दिया–"हे मुनि ! तुम तपस्या करते समय केवल 'कर्त्ता' नाम लेते थे। हम तीनों ही देवता कर्त्ता हैं। हममें से प्रत्येक ने एक-एक कार्य–उद्भव, स्थिति और प्रलय बाँट रक्खा है। हम लोगों का जन्म आदिज्योति निरङ्कार प्रभु की महिमा से हुआ है। वे निर्गुण निरङ्कार प्रभु किसी को अपना दर्शन नहीं देते हैं। उन्हें कोई भी प्राणी अपनी आँखों से नहीं देख सकता। उनकी आज्ञानुसार हम तीनों ही संसार का सब कार्य करते हैं। उन्हीं की ओर से हम पूर्वोक्त कर्मों –उद्भव, स्थिति एवं प्रलय–पर वर्तमान हैं। अब तुम्हें जो इच्छा हो वह वर हमसे माँग लो।"

श्री विष्णुजी के श्रीमुख से यह वचन सुनकर अत्रि मुनि ने तीनों देवताओं को दण्डवत्-प्रणाम करते हुए कहा–"हे प्रभो ! मैं भाग्यवान् एवं धर्मात्मा पुत्र चाहता हूँ।" अत्रि मुनि की अभिलाषा जानकर तीनों ही देवता उन्हें इच्छित वरदान देकर अपने-अपने लोक को चले गये। तदनन्तर अत्रि मुनि को श्री विष्णु भगवान् की कृपा से 'दत्तात्रेय', श्री शङ्करजी के आशीर्वाद से 'दुर्वासा' एवं श्री ब्रह्माजी के वरदान से 'चन्द्रमा' नामक तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। उन तीनों में दुर्वासा नामक पुत्र अत्यन्त क्रोधी स्वरूप बनाये तथा आँखें खोले हुए उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् दुर्वासा, चन्द्रमा तथा दत्तात्रेय द्वारा अनेक सन्तानों की उत्पत्ति हुई (उनके नाम संस्कृत की श्रीमद्भागवत में लिखे हुए हैं)।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने कहा–"हे विदुर ! स्वायम्भुव मनु की दूसरी कन्या का यह वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुनाया। अब तीसरी पुत्री–जो दक्ष प्रजापति को विवाही गई थी उसका हाल सुनो। दक्ष प्रजापति द्वारा उसके गर्भ से साठ पुत्रियों की उत्पत्ति हुई, जिनमें 'सती' नामक एक कन्या का विवाह श्री शङ्करजी के साथ हुआ।"

दूसरा अध्याय

दक्ष प्रजापति द्वारा श्री शिवजी का तिरस्कार एवं उन्हें शाप देना

इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने श्री मैत्रेय ऋषि से पूछा–"हे महात्मन् ! सती ने अपना शरीर किस प्रकार त्यागा था। अब उस कथा का वर्णन कीजिए।" मैत्रेयजी बोले–"सती से विवाह होने के उपरान्त एक दिन श्री शङ्कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जी अनेक देवताओं तथा ऋषि-मुनियों-सहित पितामह ब्रह्माजी की सभा में विराजमान थे। उसी समय वहाँ दक्ष प्रजापति भी पधारे। सब लोगों ने उठकर उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया। परन्तु उस समय श्री शङ्करजी श्री नारायणजी के ध्यान में अपनी आँखें बन्द किए हुए बैठे थे। अतः दक्ष प्रजापति के आने पर उठकर खड़े नहीं हुए। उसी ध्यानावस्था में संलग्न रहने के कारण उन्होंने दक्ष प्रजापति को दण्डवत् भी नहीं किया। उस समय उनका ऐसा व्यवहार देखकर दक्ष प्रजापति अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले—"लोग इन्हें (शङ्करजी को) ज्ञानी, तपस्वी तथा सत्यवादी कहते हैं। यह बात मिथ्या है। देवताओं ने व्यर्थ ही इनका नाम 'महादेव' रख दिया है। मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैंने ब्रह्माजी के कहने से अपनी पुत्री सती का विवाह इन महादेव के साथ कर दिया। ये इस विवाह के योग्य कदापि नहीं थे। मेरी कन्या से पाणिग्रहण होने के कारण ही देवताओं में इनकी प्रतिष्ठा अधिक हो गई है। देखिए, इन्हें कैसा अभिमान उत्पन्न हुआ है कि मेरे जामाता होते हुए भी, इन्होंने मुझे दण्डवत् नहीं किया। मैंने अपनी परम सुन्दरी मृगलोचनी पुत्री सती का विवाह इन श्मशानवासी भूतराज महादेव के साथ करके निश्चय ही बड़ी भूल की है। यह कार्य उसी प्रकार हुआ, जैसे कोई मनुष्य किसी शूद्र को वेद पढ़ावे।"

इस प्रकार अनेक दुर्वचन कहने के पश्चात् दक्ष प्रजापति ने उसी सभा में खड़े होकर ब्रह्मादिक देवताओं तथा ऋषि-मुनियों के समक्ष श्री शङ्करजी को यह शाप दिया कि आज से किसी भी यज्ञ में इन्हें (शिवजी को) भाग न दिया जाय। दक्ष प्रजापति द्वारा दिए गये इस शाप को सुनकर भी महादेवजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वे पूर्ववत् श्री नारायणजी के ध्यान में बैठे रहे। तदुपरान्त जब दक्ष प्रजापति ऐसा शाप देकर अपने घर को वापिस चले, उस समय नन्दीगण ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे भोले भाले स्वामी को इस ब्राह्मण ने व्यर्थ ही इतना भीषण शाप दिया है। अतः अब मैं भी इसे शाप अवश्य दूँगा। यह निश्चय कर नन्दीगण ने सभी सभासदों को सुनाते हुए दक्ष प्रजापति से इस प्रकार कहा—"हे दक्ष! मैं तुम्हें तथा सब ब्राह्मणों को यह शाप देता हूँ कि ब्राह्मण लोग वेद-पुराण पढ़ने पर भी अन्तिम अवस्था में विचारहीन हो जायेंगे तथा अपने पूजा-पाठ एवं जप-तप का फल अन्य मनुष्यों के हाथ रुपया-पैसा लेकर बेचेंगे। वे प्रणाम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किये बिना ही सबको आशीर्वाद देंगे तथा धर्म-अधर्म का विचार न करते हुए सब जगह भोजन करेंगे।"

हे विदुरजी! नन्दीगण द्वारा दिए गये इस शाप को सुनकर उस सभा में उपस्थित भृगु ऋषि ने क्रुद्ध होकर नन्दीगण से इस प्रकार कहा—"हे नन्दीगण! दक्ष प्रजापति द्वारा अपराध किए जाने पर तुमने सब ब्राह्मणों को शाप देकर अत्यन्त अनुचित कार्य किया है। अतः मैं भी शङ्करजी के भक्तों को यह शाप देता हूँ कि वे लोग परलोक का भय त्यागकर मद्यपान करेंगे तथा अपने शरीर पर भस्म मलेंगे। वे अपने कानों में बड़े-बड़े छेद करायेंगे तथा शङ्करजी के ही समान योगी वेष बनाकर रहेंगे। उन्हें पूजा-पाठ करने का कोई फल प्राप्त न होगा।"

इस प्रकार जब शाप दिए जा चुके, तब दक्ष प्रजापति तो अपने स्थान को चले गये तथा शिवजी भी नन्दी बैल पर चढ़कर कैलाश को लौट आये और वहीं समाधि लगाकर श्री नारायणजी का ध्यान करने लगे। उस सभा में जो अन्य देवता तथा ऋषि-मुनि उपस्थित थे, वे सब भी इस वृत्तान्त को देखकर दुखी हो अपने-अपने स्थान को लौट गये। उधर दक्ष प्रजापति ने अपने घर पहुँचकर मन में यह विचार किया कि मैंने देवताओं तथा ब्राह्मणों की सभा में ऐसा शाप दिया है कि महादेव को यज्ञ का भाग न दिया जाय। अतः इस बात का सूत्रपात सर्वप्रथम मुझे अपने ही घर से आरम्भ करना चाहिए। जब मैं अपने घर में यज्ञ रचाकर सब देवताओं, ऋषि-मुनियों एवं ब्राह्मणों को बुलाऊँगा तथा महादेव को यज्ञ में भाग न दूँगा तो उनका अत्यन्त अपमान होगा। उसके अनन्तर अन्य कोई प्राणी भी अपने यज्ञ में महादेव को भाग न देगा। ऐसा निश्चय कर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ की तैयारी करके सब देवताओं, दैत्यों, ऋषियों तथा ब्राह्मणों को उसका निमन्त्रण भिजवा दिया।"

तीसरा अध्याय

सब देवताओं, ऋषियों तथा गन्धर्व आदि का विमानों पर बैठकर दक्ष के यज्ञ में जाना एवं उन्हें सती द्वारा देखा जाना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! जब दक्ष प्रजापति ने निमन्त्रण भेजा, तो सभी देवता, दैत्य, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, गन्धर्व, किन्नर आदि अपनी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी पत्नियों-सहित सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो, अपने-अपने विमानों पर बैठ, गाते-बजाते हुए उस यज्ञ में भाग लेने के लिए चल दिए। उनके जाने का शब्द सुनकर कैलाश पर्वत पर बैठी हुई सतीजी ने श्री शिवजी के गणों से पूछा—"हे गणो! यह आकाश-मार्ग में भीड़भाड़ कैसी दिखाई दे रही है?" तब गणों ने उत्तर दिया—"हे माता! आपके पिता दक्ष प्रजापति ने यज्ञ रचाया है। उसी यज्ञ में भाग लेने के लिए ये सब देवता तथा ऋषि-मुनि आदि अपनी पत्नियों-सहित जा रहे हैं।" यह सुनकर सतीजी अत्यन्त उदास होकर अपने मन में विचार करने लगीं कि मेरे पिता ने अन्य सब लोगों को तो निमन्त्रण भेजा है, परन्तु मुझे तथा श्री शङ्करजी को न बुलाकर अपमानित किया है। फिर उन्होंने सोचा कि हो सकता है, काम-काज की अधिकता में पिताजी बुलाना भूल गये हों। अतः माता-पिता-गुरु एवं मित्र के घर बिना बुलाये भी चले जाना चाहिए, इस नियमानुसार मुझे भी अपने पिता के घर पहुँचकर उस आनन्दोत्सव को देखना उचित है। इसमें अपमान की कोई बात नहीं है। यदि मैं वहाँ न पहुँची तो अन्य देवताओं की स्त्रियाँ परस्पर यह विचार करेंगी कि क्या कारण है जो दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री सती को नहीं बुलाया है। उनके ऐसे वार्तालाप से मेरे पिता का भी अपमान होगा और मेरे हृदय में भी अन्त तक के लिए यह पछतावा बना रहेगा, इस लिए मुझे वहाँ अवश्य ही जाना चाहिए।"

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! इस प्रकार अपने मन में विचार कर सतीजी ने श्री शङ्करजी से कहा—"हे महाप्रभु! मेरे पिता के यज्ञ में सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ जा रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे कार्याधिक्य के कारण मुझे तथा आपको निमन्त्रण भेजना भूल गये हैं। वे मेरे पिता हैं, अतः उनके घर बिना बुलाये जाने में भी कोई लज्जा नहीं है। वहाँ मेरी अन्य बहिनें भी अपने-अपने पति के साथ आवेंगी। मेरे हृदय में बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि यदि मेरे पिता के घर कोई उत्सव हो, तो वहाँ मैं भी आपके साथ पहुँचूँ। अतः अब इस अवसर पर आप कृपाकर मुझे अपने साथ ले चलिए। वहाँ पहुँचने पर मेरे हृदय को अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा।"

सती की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री शङ्करजी ने उन्हें दक्ष प्रजापति से अपनी शत्रुता का सब वृत्तान्त बताते हुए कहा—"हे सती! तुम्हारे पिता हमसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शत्रुता रखते हैं। यदि वे शत्रुता न रखते तो हम बिना बुलाये भी उनके यहाँ चले जाते; परन्तु अब ऐसे अवसर पर यदि हम बिना बुलाये वहाँ पहुँचे और उन्होंने हमारा आदर नहीं किया अथवा कुछ दुर्वचन कह डाले तो वह अच्छा नहीं होगा। तीर एवं तलवार के घाव तो मरहम से भर जाते हैं, परन्तु जिह्वा द्वारा कहे गये दुर्वचनों का जो घाव हृदय में पड़ता है, वह किसी भी प्रकार अच्छा नहीं होता है, उसकी औषधि मिलना असम्भव है; इसलिए हम तुम्हारे पिता के यज्ञ में नहीं जायँगे।"

इस प्रकार जब शिवजी ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाना अस्वीकार कर दिया, तब सती ने उनकी प्रार्थना करते हुए फिर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप वहाँ न जायें तो न सही, परन्तु मुझे जाने की आज्ञा अवश्य दे दीजिए। अपने माता-पिता के घर बिना बुलाये जाने में मुझे कोई लज्जा नहीं है।" शिवजी ने उत्तर दिया—" हे प्रिये! दक्ष प्रजापति इस समय अपने राज्य एवं धन के मद में गर्वित हैं, अतः हमारी शत्रुता के कारण वे तुम्हारा भी अपमान कर बैठेंगे। उस अपमान से तुम्हें अत्यन्त दुःख होगा तथा तुम्हारे निरादर से हमें भी क्रोध उत्पन्न हो जायेगा। इसलिए तुम्हारा वहाँ जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।" इस तरह शिवजी द्वारा समझाये जाने पर भी श्री नारायणजी की इच्छा से सती को बोध नहीं हुआ। वे फिर इस प्रकार कहने लगीं—"हे स्वामी! मेरे वहाँ न पहुँचने पर अन्य साठ बहिनों के समक्ष मेरा अनादर होगा। वे सदैव मुझे ताना मारती रहेंगी; इसलिए मेरा वहाँ जाना ही उचित है। आप मुझे कृपाकर आज्ञा दे दीजिए।" सती के मुख से ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने अपने मन में विचार किया कि सती ने आज तक कोई भी कार्य मेरी इच्छा के विपरीत नहीं किया है, परन्तु आज यह मेरे द्वारा समझाये जाने पर भी ऐसा हठ पकड़ रही हैं, इससे प्रतीत होता है कि वहाँ जाने में इसका कल्याण नहीं है। परन्तु जो होनहार है, उसमें किसी का वश नहीं चलता। अतः इसे भी परमेश्वर की इच्छा ही समझनी चाहिए। यह सोचकर शिवजी ने सती से कहा—"तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौथा अध्याय

सती का अपने पिता के घर पहुँचना तथा यज्ञ में अपने शरीर का त्याग करना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! शिवजी की इच्छा के विरुद्ध भी जब सती अपने पिता के घर जाने को तय्यार हो गईं, तब शिवजी ने उनकी सुरक्षा के लिए अपने कई गण उनके साथ कर दिये। जिस समय सती दक्ष प्रजापति के यज्ञ में पहुँचीं, उस समय दक्ष प्रजापति ने उन्हें देखते ही अपना मुँह फेर लिया तथा उनसे कुशल-क्षेम तक नहीं पूछा। अपने पिता का ऐसा व्यवहार देखकर सती अत्यन्त चिन्तित होकर अपने मन में विचार करने लगीं कि यह मैंने बहुत बुरा काम किया जो अपने पति की आज्ञा न मानकर मैं यहाँ चली आई हूँ। मैंने श्री शङ्करजी का कहना नहीं माना, उसका फल अब प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। अब यदि मुझे कोई बहाना मिल जाय तो मैं शीघ्रतापूर्वक यहाँ से लौटकर श्री शिवजी के पास जा पहुँचूँ।"

सती की माता के अतिरिक्त अन्य जो स्त्रियाँ उस यज्ञ में आई थीं, वे सब भी इस कारण कि कहीं दक्ष प्रजापति बुरा न मान जायँ—सती से प्रेमपूर्वक नहीं बोलीं। यह सब देखकर सती अत्यन्त दुखी हो यज्ञशाला में बैठी रहीं। जब आहुति देने का समय आया तथा यज्ञ करानेवालों ने शङ्करजी के नाम की आहुति देने के लिए पूछा, उस समय दक्ष प्रजापति ने श्री शिवजी के प्रति अनेक दुर्वचन कहते हुए यह उत्तर दिया कि हमने देवताओं तथा ऋषि-मुनियों की सभा में महादेव को यज्ञ में भाग न देने का शाप दिया है, इसलिए तुम लोग उनके नाम की आहुति मत दो। पिता के मुख से ऐसे कठोर वचनों को सुनकर तथा यज्ञ में शिवजी का भाग न देखकर सती को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। वे यज्ञशाला में उठकर खड़ी हो गईं तथा अपने पिता को सुनाती हुई इस प्रकार बोलीं—"हे पिता ! तुम श्री शङ्करजी की महिमा तथा बड़ाई को नहीं जानते हो। वे सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं तथा किसी के साथ शत्रुता नहीं रखते हैं। तुम अपने अज्ञान के कारण बिना सोचे-समझे उनसे वैरभाव रखते हो। महात्माजन गुणों को ग्रहण करते हैं, अवगुणों की ओर दृष्टिपात तक नहीं करते। शङ्करजी सम्पूर्ण गुणों के भण्डार हैं। वे सांसारिक लोगों को दिखाने के लिए ही अपना स्वरूप भयानक बनाये रहते हैं। तुमने उनके भयानक स्वरूप को तो देखा, परन्तु उनके गुणों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं जाना है। सनकादि तथा नारदादि उनके श्री-चरणों का ध्यान अपने हृदय में करते हैं। तुम्हारा पद ऐसा नहीं है जो तुम उनकी समानता कर सको। वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं। तुम्हें उनके प्रति भरी सभा में ऐसे दुर्वचन कहकर उनका अनादर नहीं करना चाहिए। तुम मेरे पिता हो, अतः मैं तुमसे क्या कहूँ। परन्तु मैं अपने इस क्रोध के कारण तुम्हारे ही सामने अपने इस शरीर को, जो तुमसे उत्पन्न हुआ है, त्याग देती हूँ। ऐसा इसलिए कर रही हूँ, जिससे तुम-जैसे अधर्मी एवं अज्ञानी के साथ श्री शिवजी का कोई सम्बन्ध न रहे। उनके साथ ऐसी शत्रुता करने का फल तुम्हें अन्त में अपने आप प्राप्त हो जायेगा।"

इस प्रकार कहकर सती उसी स्थान पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ गईं। तत्पश्चात् योगाभ्यास द्वारा अग्नि प्रकट कर उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर दिया। शिवजी के गणों ने जो सतीजी के साथ आये थे, जब यह हाल देखा तो उन्होंने अत्यन्त क्रोध में भरकर सभा-भवन में उपस्थित सब लोगों का प्राणान्त कर देने के विचार से अपने-अपने शस्त्र उठा लिए। उस समय उनके मनोभावों को पहिचानकर भृगु ऋषि ने यज्ञ की रक्षा के लिए कुछ मन्त्र पढ़कर अग्निकुण्ड में आहुति डाली। उस आहुति के प्रभाव से अग्निपुरुष, बैताल तथा वीरभद्र नामक तीन व्यक्तियों की तुरन्त उत्पत्ति हुई। उन तीनों ने यज्ञकुण्ड से प्रकट होकर ऋषि से कहा—"हे महात्मन्! आपकी जो आज्ञा हो हम उसका पालन करेंगे।" यह सुनकर भृगु ऋषि ने उनसे कहा—"शङ्कर के गण इस यज्ञ को भ्रष्ट करना चाहते हैं, अतः तुम उन्हें यहाँ से बाहर निकाल दो।" तब मुनि की आज्ञा पाकर उन तीनों ने शिवजी के गणों को धक्का देकर यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया।"

पाँचवाँ अध्याय

नारदजी का शिवजी के पास पहुँचना तथा सती के शरीर-त्याग एवं गणों के निकाले जाने का वृत्तान्त उन्हें सुनाना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जिस समय सती ने अपने शरीर को त्यागा तथा शिवजी के गण यज्ञशाला से बाहर निकाल दिये गये, उस समय देवर्षि नारदजी यह सब घटना देखकर श्री शिवजी के पास कैलाश पर्वत पर जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहुँचे। नारद मुनि को आया हुआ देखकर शिवजी ने दण्डवत्-प्रणाम करने के उपरान्त उन्हें अत्यन्त सम्मान-सहित आसन पर बैठाकर पूछा—"हे मुनि-श्रेष्ठ! इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं?" शिवजी के वचन सुनकर नारद-जी ने कहा—"हे भगवन्! आपको यह ज्ञात है अथवा नहीं कि आज दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती ने अपना शरीर त्याग दिया है तथा भृगु ऋषि के मन्त्र द्वारा उत्पन्न तीन बलवीरों ने आपके गणों को भी अपमानित कर यज्ञ-स्थल से बाहर निकाल दिया है। अब आपको इसका कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए।"

हे विदुरजी! इतना कहकर नारदजी वहाँ से चले गये। उस समय सती के शरीर-त्याग का समाचार पाकर शिवजी को अत्यन्त क्रोध हुआ। उसी क्रोधावेश में उन्होंने अपनी जटाओं में से एक बाल तोड़कर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके द्वारा तत्काल ही वीरभद्र नामक एक महाबली गण की उत्पत्ति हुई। उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर शिवजी से कहा—"हे स्वामी! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ।" शिवजी बोले—"तू अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक दक्ष प्रजापति के यज्ञ में चला जा। वहाँ पहुँचकर दक्ष प्रजापति का मस्तक काटकर अग्निकुण्ड में डाल देना तथा अन्य जो लोग उस सभा में उपस्थित हों, उन सबको भी बाहर निकाल देना।" शिवजी की ऐसी आज्ञा पाकर पर्वत के समान शरीरवाला महाबली वीरभद्र भूत-प्रेतों की सेना साथ ले, पलभर में उस यज्ञशाला में जा पहुँचा। उसने दक्ष प्रजापति का मस्तक काट कर अग्निकुण्ड में डाल दिया तथा भृगु ऋषि की दाढ़ी नोंच ली। तत्पश्चात् उसने उन सभी देवता, ऋषि, मुनि, गन्धर्व, ब्राह्मण तथा किन्नर आदि को—जो उस सभा में उपस्थित थे मार-पीटकर अंग-भंग कर डाला तथा सभी को सभा से निकाल कर बाहर कर दिया। यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री को उठाकर फेंक दिया तथा सम्पूर्ण यज्ञ को भ्रष्ट कर डाला। मस्तक काटने पर भी जब दक्ष प्रजापति के प्राण नहीं निकले, तो उसने उन्हें मुक्कों से मार डाला। जो लोग दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित हुए थे, वे सब दुखी होकर इधर-उधर भागने लगे तथा परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि महामूर्ख दक्ष प्रजापति ने देवताओं में सर्वश्रेष्ठ महादेवजी का अपमान कर अपनी करनी का फल पाया है, यज्ञ विध्वंस करने के पश्चात् वीरभद्र ने शिव-जी के पास पहुँचकर उन्हें सब समाचार सुना दिया। तदुपरान्त शिवजी ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी सती की मृत्यु को ईश्वरेच्छा जानकर अपना क्रोध शान्त कर लिया। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में अन्तर्यामी भगवान् श्री विष्णु तथा पितामह ब्रह्मा पहिले से ही नहीं गये थे, क्योंकि वे जानते थे कि वह यज्ञ अवश्य नष्ट होगा।"

छठवाँ अध्याय

भृगु आदि ऋषि एवं देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना तथा उनसे वीरभद्र का वृत्तान्त कहना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जब वीरभद्र ने सब लोगों को मार-पीटकर यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया, तब उन लोगों ने ब्रह्माजी के पास पहुँचकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समाचार को सुनकर ब्रह्माजी ने सब देवताओं तथा ऋषि-मुनियों से इस प्रकार कहा—"हे देवताओ तथा ऋषियो! तुमने यह बहुत बुरा काम किया जो तुम लोग यज्ञशाला में बैठकर अपने कानों से श्री शङ्करजी की निन्दा सुनते रहे। तुमने यज्ञ में श्री महादेवजी का भाग बन्द कर अपना-अपना भाग लिया, इससे बढ़कर कोई दूसरा अपराध नहीं हो सकता है। तुमने जो पाप किया, उसीका तुम्हें फल मिला है। श्री शङ्करजी सम्पूर्ण देवताओं तथा तीनों लोकों के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे श्री परमेश्वर के समान हैं। मैं उनसे कुछ कह-सुन नहीं सकता। अब तुम लोग मेरे साथ उन्हीं की शरण में चलो। मैं उनकी स्तुति-वन्दना करके तुम्हारा अपराध क्षमा कराऊँगा।"

इतना कहकर ब्रह्माजी सब देवताओं तथा ऋषि-मुनियों को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। उस पर्वत पर पत्थरों के स्थान पर हीरा, पन्ना आदि अपार मणि-रत्न जड़े हुए थे। वह पर्वत चार योजन ऊँचा तथा तीन सौ योजन के घेरे में था। वहाँ असंख्य वट-वृक्ष होने के कारण धूप की गर्मी नहीं थी। सदैव शीतल छाया बनी रहती थी। कोसों तक अपनी सुगन्ध फैलानेवाले विविध प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों से वह स्थान चारों ओर पटा हुआ था। वहाँ के वृक्षों पर बारहों महीने अनेक प्रकार के अमृत के समान मधुर फल लदे रहते थे। निर्मल जल से भरे हुए तड़ाग, बावली तथा झरने ऐसे थे, जिन्हें देखने मात्र से नेत्र शीतल हो जाते थे। तड़ाग एवं बावलियों के किनारे सारस आदि पक्षी बैठे हुए थे तथा चारों ओर शुक, पिक, मयूर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि पक्षी मीठी बोलियाँ सुना रहे थे। उस स्थान पर देवकन्या तथा गन्धर्व आदि आकर जिस वस्तु की इच्छा करते थे, उनका वही मनोरथ पूर्ण होता था। वहाँ की शोभा को देखकर मन प्रफुल्लित हो जाता था। सेतु गंगा नामक जो धारा हिमाचल पर्वत से उतरकर उस स्थान पर आई है, उसमें स्नान करने से चित्त प्रसन्न हो जाता था। उसी पर्वत पर एक विशाल वट-वृक्ष था, जिसकी ऊँचाई तथा विस्तार सौ योजन था। उस वृक्ष के नीचे श्री महादेवजी मृग-छाला के ऊपर बैठे हुए नारद मुनि, सनकादिक तथा अपने अन्य शिष्यों के साथ श्री नारायणजी के गुणानुवादों का वर्णन कर रहे थे। वहाँ योग, तप, वेद आदि साकार स्वरूप धारण किए उपस्थित थे। ऐसे ही समय में सब देवताओं तथा ऋषि-मुनियों-सहित ब्रह्माजी वहाँ जा पहुँचे।

ब्रह्माजी को देखते ही शिवजी अत्यन्त आदरपूर्वक उठकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने दण्डवत् करके पितामह को ससम्मान अपने समीप बैठाया। ब्रह्माजी भी शिवजी को दण्डवत् करके उनके समीप जा बैठे। तत्पश्चात् अन्य देवता आदि भी, जो ब्रह्माजी के साथ गये थे, शिवजी को दण्डवत्-प्रणाम करके यथास्थान बैठ गये। शिवजी के हृदय में दक्ष प्रजापति से शत्रुता होने तथा सती द्वारा शरीर-त्याग देने का शोक नहीं था। वे इन सब बातों को श्री नारायणजी की इच्छा समझकर निश्चिन्त भाव से श्रीहरि-चर्चा में व्यस्त थे। उन्हें इसका भी कोई ध्यान नहीं हुआ कि ब्रह्माजी देवताओं तथा ऋषियों का अपराध क्षमा कराने के लिए उनके पास आये हैं। वीरभद्र ने देवताओं तथा ऋषि-मुनियों को मारा है, यह बात भी इस समय उन्हें स्मरण नहीं थी। इसीलिए ब्रह्माजी के आने पर भी वे हरि-चर्चा में ही संलग्न बने रहे।

तदुपरान्त ब्रह्माजी ने शिवजी की बहुत भाँति से स्तुति करने के पश्चात् इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे देवाधिदेव! आप सब देवताओं में पूज्य एवं श्रेष्ठ हैं, इसीलिए आपका नाम महादेव है। आपकी प्रभुता को दक्ष प्रजापति नहीं जानते थे, इसीलिए आपका अपमान करने के कारण उन्होंने उसका उचित फल प्राप्त किया है। उनके द्वारा अपमान किए जाने से आपकी बड़ाई कम नहीं हुई है। जिस प्रकार कोई मनुष्य चन्द्रमा पर थूकने का प्रयत्न करे, परन्तु वह थूक चन्द्रमा पर न पहुँचकर स्वयं उसी के मुँह पर आ गिरता है, वही हाल दक्ष का भी हुआ। अब मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर आप दयालु हूजिए तथा दक्ष का अपराध क्षमा कर दीजिए। उस यज्ञशाला में जो देवता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा ऋषि-मुनि उपस्थित थे, उन्हें भी वीरभद्र ने बहुत दुःख पहुँचाया है। उसने कितनों ही के पाँव तोड़ दिए तथा कितनों ही की आँखें फोड़ डाली हैं। वे सब लोग अभी तक आपके भय से भयभीत हो रहे हैं। अतः अब आप उनको धैर्य प्रदान कर ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे उनके घायल अङ्ग पूर्ववत् अच्छे हो जायँ। हे परमप्रभु ! आप यह भी अनुग्रह कीजिए कि आपकी कृपा पाकर दक्ष प्रजापति पुनः जीवित हो जायँ तथा अपना यज्ञ सम्पूर्ण कर सकें। सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि भी उस यज्ञ में अपना-अपना भाग प्राप्त करें। आप स्वयं भी मेरे साथ वहाँ चलें। मैं श्री नारायणजी को भी विनय करके वहाँ ले आऊँगा। यज्ञ करने में जो साकल्य बच जाती है, वह साकल्य ही आपका भाग होगा। इस प्रकार आप अपने भाग को प्राप्त करेंगे।"

ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने कहा—"हे चतुरानन ! मैं किसी से शत्रुता नहीं रखता हूँ। मैं किसी अज्ञानी के कहने-सुनने को बुरा भी नहीं मानता। सती के शरीर त्याग देने के कारण मुझे कुछ क्रोध आ गया था, इसीलिए दक्ष प्रजापति को अपनी करनी का फल प्राप्त हुआ। सती के प्रारब्ध में तो इसी प्रकार शरीर त्यागना लिखा था। अतः परमेश्वर की जो इच्छा थी, वह पूर्ण होकर रही। अब आप मुझे जो आज्ञा देंगे, मैं उसी कार्य को करूँगा; क्योंकि जो व्यक्ति बड़ों का कहना नहीं मानता, वह पीछे बहुत दुःख उठाता है।"

सातवाँ अध्याय

महादेवजी तथा ब्रह्मा आदि देवताओं का दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाना तथा दक्ष का पुनर्जीवित होना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! तत्पश्चात् श्री शिवजी-ब्रह्माजी तथा अन्य सब देवताओं एवं ऋषि-मुनियों को साथ लेकर कैलाश पर्वत से चलकर दक्ष प्रजापति की यज्ञशाला में जा पहुँचे। जो देवता वीरभद्र के भय के मारे इधर-उधर भाग गये थे, वे सब भी शिवजी के आगमन पर यज्ञशाला में आ पहुँचे। शिवजी ने अपनी कृपादृष्टि द्वारा सबको अच्छा कर दिया। भृगु ऋषि की दाढ़ी के स्थान पर बकरे की दाढ़ी लगा देने से, वह फिर पूर्व की भाँति जम गई। उस समय ब्रह्माजी ने शिवजी से प्रार्थना की—"हे प्रभो ! दक्ष प्रजापति का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृतक शरीर पड़ा हुआ है, अब आप इसे भी जीवित करने की कृपा करें।" यह सुनकर श्री शङ्करजी ने उत्तर दिया—"हे चतुरानन! वीरभद्र ने दक्ष के मस्तक को काटकर यज्ञकुण्ड में डाल दिया था और वह भस्म हो चुका है। अतः अब फिर तैयार नहीं हो सकता, यदि आप कहें तो यज्ञ के बकरे का मस्तक दक्ष के धड़ से लगाकर इसे जीवित कर दिया जाय।" ब्रह्माजी ने शिवजी का यह सुझाव स्वीकार कर लिया। तब शिवजी ने यज्ञ के बकरे का मस्तक दक्ष प्रजापति के धड़ से लगाकर उसे जीवित कर दिया। इस प्रकार श्री शिवजी की कृपा से यज्ञशाला का कार्य फिर पूर्ववत् आरम्भ हो गया।

दक्ष प्रजापति ने पुनर्जीवित होकर जब श्री महादेवजी को देखा, तो उन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय की—"हे महाप्रभु! मैंने आपकी प्रभुता एवं महत्त्व को न जानकर जैसी करनी की, उसका वैसा ही फल भली भाँति प्राप्त कर चुका हूँ। आप कृपाकर यहाँ पधारे हैं तथा आपने ही अपनी प्रभुता से मुझे पुनर्जीवित किया है। मुझ अज्ञान का अपराध क्षमा-कर आपने अपनी विशालता का परिचय दिया है। यह सत्य ही है कि श्री नारायणजी ने जिन्हें महान् बनाया है, वह छोटे तथा मूर्ख लोगों की बात पर ध्यान नहीं देते हैं।" इस प्रकार दक्ष प्रजापति ने जब प्रार्थना की, तो अन्य जितने देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा किन्नर आदि स्त्री-पुरुष वहाँ आये थे, वे सब भी श्री शिवजी की अतुलनीय महिमा को देखकर उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर श्री महादेवजी की आज्ञा से दक्ष प्रजापति फिर यज्ञ करने के लिए आसन पर बैठ गये। उस समय ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुजी ने सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषि-मुनियों सहित शास्त्र के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ को सम्पूर्ण कराया। यज्ञ की समाप्ति पर चतुर्भुजी यज्ञपुरुष भगवान् ने अग्नि-कुण्ड से प्रकट हो, वैजयन्ती माला, कौस्तुभमणि तथा पुष्पहार धारण किए, गरुड़ पर आसीन हो, सब लोगों को दर्शन देकर कृतार्थ किया। उन्हें देखते ही यज्ञ-मण्डप में जितने भी छोटे-बड़े लोग उपस्थित थे, वे सब उठकर खड़े हो गये तथा साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे।

दक्ष प्रजापति ने यज्ञभगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे वैकुण्ठा-धिपति! इस यज्ञ के प्रारम्भ में मैंने श्री महादेवजी का अपमान किया था, इसीलिए मेरा यज्ञ नष्ट हो गया था। अब मेरा भाग्योदय हुआ जो उन्हीं श्री शिवजी की कृपा से मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं। अब दया कर आप मुझे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मुझे फिर कभी दुर्बुद्धि न व्यापे।" दक्ष प्रजापति द्वारा स्तुति किए जाने के उपरान्त भृगु ऋषि ने भी प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे दीनबन्धो! मैं ब्राह्मण तथा तपस्वी होने पर भी अपने क्रोध को वश में नहीं रख सका; इसीलिए मुझे ऐसा दण्ड भोगना पड़ा। अब आप दयालु होकर मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मेरा यह क्रोध नष्ट हो जावे; क्योंकि जब तक काम, क्रोध, मोह, लोभ अपने अधीन नहीं होते, तब तक आपकी भक्ति प्राप्त नहीं होती।"

इसी प्रकार ब्रह्मा, शिवजी, इन्द्र, गन्धर्व, लोकपाल, किन्नर सब देवताओं तथा ऋषियों ने भी बहुत प्रकार से स्तुति एवं प्रार्थना की। तब श्री यज्ञभगवान् ने दक्ष प्रजापति से कहा—"हे दक्ष! श्री महादेवजी का अपमान करके तुमने बहुत अनुचित कर्म किया था। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीनों देवताओं को तुम एक समान समझो। जिन निरङ्कार पुरुष का सभी प्राणी जप करते हैं तथा जिन्हें अपना उत्पन्न करनेवाला जानते हैं, उन्हीं के ध्यान में यदि तुम लीन रहोगे तो तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी।" श्री यज्ञपुरुष भगवान् ने जब ऐसे शब्द कहे, उस समय आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी तथा सभी लोग जय-जयकार करने लगे। तदुपरान्त यज्ञपुरुष भगवान् सबको इच्छित वरदान देकर वैकुण्ठ को पधारे तथा सब देवता, ऋषि एवं ब्रह्मा, शिव आदि भी अपने-अपने स्थान को चले गये। उस दिन से दक्ष प्रजापति शिवजी को अपना स्वामी तथा ईश्वर जानकर उनकी सेवा करने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! धर्म की 'मरिष्या' नामक स्त्री द्वारा क्रोध, लोभ, मृत्यु आदि बहुत-सी सन्तानें उत्पन्न हुई थीं (इन सबके नाम मूल संस्कृत भागवत में दिए गये हैं)। जो कोई इस अध्याय की कथा को चित्त लगाकर कहता अथवा सुनता है वह सब पापों से छूटकर परमपद को प्राप्त करता है।"

आठवाँ अध्याय

सती का हिमाचल के घर पार्वती रूप में जन्म लेना तथा उनका शिवजी के साथ विवाह होने का वृत्तान्त

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! अब मैं उस कथा का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार सतीजी ने पार्वती रूप में दूसरा जन्म लिया तथा उनका शिवजी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साथ विवाह हुआ। वह कथा इस प्रकार है कि दक्ष के यज्ञ में शरीर-त्याग करते समय सतीजी ने अपने हृदय में श्री शिवजी के चरणों का ध्यान रख-कर ऐसा प्रण किया था कि यदि मेरा दुबारा जन्म हो तो मैं उस जन्म में भी सदैव शिवजी की सेवा में ही संलग्न रहूँगी तथा एक क्षण के लिए भी उनका साथ नहीं छोड़ूँगी। अतः वह शरीर त्यागने के उपरान्त उन्होंने पर्वतराज हिमाचल के घर पार्वती नाम से जन्म लिया। जब वे सयानी हुईं तब हिमा-चल ने उनसे पूछा—"हे पुत्री! मैं तेरा विवाह कहाँ करूँ?" पार्वती को अपने पूर्वजन्म का सब हाल स्मरण था। अतः वे हिमाचल से बोलीं—"हे पिता! आप मेरा विवाह शिवजी के साथ कर दीजिए।" यह सुनकर हिमाचल ने जब यह कहा कि शिवजी तो सब देवताओं के स्वामी हैं, वे मेरी कन्या को किस प्रकार स्वीकार करेंगे, तो पार्वतीजी ने उन्हें यह उत्तर दिया, "मैं उनके अतिरिक्त किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करूँगी। यदि उन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मैं वन में जाकर तपस्या करूँगी और अपना यह शरीर भी फिर त्याग दूँगी।" इतना कहकर पार्वती ने श्री शिवजी के साथ विवाह करने की इच्छा से वन में जाकर तप करना आरम्भ कर दिया।

"हे विदुरजी! एक दिन देवर्षि नारदजी पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए उनके पास जा पहुँचे और इस प्रकार पूछने लगे—"हे पर्वतराज-पुत्री! तुम किस इच्छा से वन में रहकर ऐसा घोर तप कर रही हो?" तब पार्वती ने उन्हें ईश्वर-भक्त जान दण्डवत् करते हुए यह उत्तर दिया—"हे मुनिराज! मैं श्री शिवजी के साथ विवाह की इच्छा से यह तप कर रही हूँ।" पार्वती के ऐसे वचन सुनकर नारदजी ने इस प्रकार कहा—"हे पार्वती! तुम बड़ी बावली तथा मूर्ख हो। शिवजी अपने शरीर में भस्म रमाये तथा साँप-बिच्छू लपेटे रहते हैं। वे अपने गले में मुण्डों की माला पहिनते हैं तथा भूत-प्रेतों को अपने साथ रखते हैं। उन्हें देखकर ही मनुष्य भयभीत होकर दूर भागते हैं, फिर भला तुम क्योंकर उनसे विवाह करना चाहती हो?" नारदजी की बात सुनकर पार्वतीजी बोलीं—"हे मुने! वे कैसे भी अवगुण से भरे क्यों न हों, परन्तु मेरा मन उन्हीं से प्रसन्न है।" नारदजी ने फिर कहा—"हे पार्वती! इन्द्र, कुबेर, वरुण आदि श्रेष्ठ देवता तथा गन्धर्वों को तुम क्यों नहीं चाहती।" इस पर पार्वतीजी हँसकर बोलीं—"हे ऋषिराज! मन एक ही है, दो-चार नहीं। मेरा मन शिवजी के चरणों में लगा हुआ है, वह वहाँ से हटकर अन्यत्र नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा सकता। मेरे मन की इच्छा को शिवजी ही पूर्ण कर सकते हैं, मुझे किसी अन्य की अभिलाषा नहीं है।"

पार्वतीजी की ऐसी दृढ़ता को देखकर नारदजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्हें आशीर्वाद देते हुए बोले—"हे पुत्री! तुम्हें श्री शिवजी अवश्य मिलेंगे। तुम किसी के कहने अथवा भुलावे में बहक मत जाना।" इतना कहकर नारदजी वहाँ से चलकर श्री शिवजी के पास जा पहुँचे तथा उन्हें पार्वती के मनोरथ एवं सच्ची प्रीति का सब वृत्तान्त कह सुनाया। जब शिवजी ने यह सुना कि सती हिमाचल के घर में पार्वती रूप से जन्म लेकर मेरे साथ विवाह करने के लिए तपस्या कर रही हैं तो उनके हृदय में भी प्रेम उत्पन्न हो गया। तदुपरान्त श्री शिवजी ने हिमाचल के पास जाकर कहा—"हे पर्वतराज! तुम अपनी पुत्री का विवाह हमारे साथ कर दो।" शिवजी के इस प्रस्ताव को हिमाचल ने अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वीकार कर लिया तथा पार्वती के पास भी यह समाचार भेज दिया। इस सन्देश को पाकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। तदुपरान्त पर्वतराज हिमाचल ने पार्वती को वन से बुलवा लिया तथा विधि विधानपूर्वक उनका विवाह शिवजी के साथ कर दिया। उन्होंने दहेज में बहुत से रत्नादि देकर श्री पार्वतीजी को अपने घर से विदा किया। उस समय से पार्वतीजी एक क्षण के लिए भी श्री शिवजा से पृथक् नहीं होती हैं।"

नवाँ अध्याय

उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का तपस्या के लिए वन-गमन

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! राजा स्वायम्भुव मनु की तीनों कन्याओं का हाल मैंने तुमसे कहा। अब मैं उनके पुत्रों का हाल कहता हूँ, सुनो। राजा स्वायम्भुव मनु के उत्तानपाद तथा प्रियव्रत नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। प्रियव्रत की सन्तान का हाल पाँचवें स्कन्ध में वर्णन किया जायेगा। उत्तानपाद के पुत्रों का हाल इस प्रकार है कि स्वायम्भुव मनु के शरीर त्यागने के पश्चात् उनका पुत्र उत्तानपाद राजा हुआ। यदि कोई यह सन्देह करे कि राजा स्वायम्भुव मनु की गद्दी पर प्रियव्रत ने राज्य किया था, सो उसका निवारण यह है कि उत्तानपाद उन्हीं के देश में अन्य दूसरे नगर का राजा था। राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तानपाद की 'सुनीति' तथा 'सुरुचि' नामक दो रानियाँ थीं। उसकी दोनों पत्नियों से सन्तान की उत्पत्ति हुई। बड़ी रानी के पुत्र का नाम 'ध्रुव' तथा छोटी रानी के पुत्र का नाम 'उत्तम' था। राजा उत्तानपाद अपनी छोटी रानी तथा उसके पुत्र पर अधिक स्नेह रखते थे तथा बड़ी रानी और उसके पुत्र से कम प्रीति करते थे।

एक दिन राजा उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सहित राज-सिंहासन पर बैठे हुए उसके पुत्र को गोद में लेकर प्यार कर रहे थे, उसी समय बड़ी रानी का पंचवर्षीय पुत्र ध्रुव भी खेलता-खेलता वहाँ आ पहुँचा। अपने सौतेले भाई को पिता की गोद में बैठा हुआ देखकर ध्रुव को भी यह इच्छा हुई कि वह अपने पिता की गोद में बैठे, परन्तु राजा उत्तानपाद ने अपनी छोटी रानी के डर से—जो उस समय वहीं बैठी हुई थी—ध्रुव को अपने पास नहीं बैठाया। उस समय छोटी रानी ने ध्रुव को सुनाते हुए इस प्रकार कहा—"हे ध्रुव! तूने पिछले जन्म में श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान नहीं किया था, इसीलिए तू भाग्यहीन उत्पन्न हुआ है। यदि तू पहिले जन्म में तप करता तो इस बार मेरे गर्भ से तेरा जन्म हुआ होता। उस स्थिति में मेरा पुत्र होने के कारण तू राजा की गोद में बैठने का अधिकारी भी हो जाता; परन्तु अब ऐसी स्थिति में तेरा राजसिंहासन पर बैठना अत्यन्त कठिन है। मैं पटरानी हूँ इसलिए मेरे पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी रानी का पुत्र राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता।" रानी की ऐसी बातें सुनकर राजा उत्तानपाद ने भी ध्रुव का कोई आदर नहीं किया। यह देखकर ध्रुव वहाँ से रोता हुआ अपनी माता सुनीति के पास चला आया। सुनीति ने उसे रोता देखकर अपनी गोद में उठाकर इस प्रकार पूछा—"हे पुत्र! तुझे किसने मारा है, जो तू इस प्रकार रो रहा है?"

उस समय अधिक विलाप करने के कारण ध्रुव को हिचकियाँ आ रही थीं, इसलिए कुछ देर तक तो वह कुछ भी नहीं कह सका, परन्तु फिर कुछ देर बाद स्वस्थ होने पर अपनी माता से इस प्रकार कहने लगा—"हे माता! मैं अभी-अभी राजा के पास गया था, वे उत्तम को अपनी गोद में लिए सिंहासन पर बैठे हुए थे। उस समय मैंने भी पिता की गोद में बैठने की इच्छा प्रकट की, परन्तु पिताजी ने मुझे गोद में नहीं बैठाया। उस समय उत्तम की माता ने मुझसे यह कहा कि तूने अपने पिछले जन्म में श्री नारायणजी का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तप एवं स्मरण नहीं किया था, इसलिए तू प्रारब्धहीन उत्पन्न हुआ है। तू राजा की गोद में बैठने योग्य नहीं है। अब जब तू श्री नारायणजी का तप कर मेरे पेट से जन्म ले, तब राजा के आसन पर बैठना। अतः हे माता! विमाता के इन शब्दों ने मेरे हृदय को घायल कर दिया है तथा मैं उसी दुःख से दुखी हो रहा हूँ।"

ध्रुव की बातें सुनकर सुनीति ने कहा—"हे पुत्र! छोटी रानी सत्य ही कहती है। यदि तूने पूर्वजन्म में श्री नारायणजी का तप किया होता, तो मेरे पेट से कभी जन्म न लिया होता। यदि अब भी तू श्री नारायणजी की शरण में जाकर उनका तप एवं स्मरण करे तो तेरा मनोरथ पूर्ण हो सकता है। तेरे प्रपितामह श्री ब्रह्माजी द्वारा जब सृष्टि की उत्पत्ति का कठिन कार्य नहीं हो सका था, उस समय उन्होंने भी श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान किया था। उस तपस्या के प्रभाव से उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई तथा उसी के प्रताप से वे संसार की रचना करने में समर्थ हो सके। पितामह स्वायम्भुव मनु को भी श्री नारायणजी की तपस्या करने के कारण धर्मात्मा सन्तान की प्राप्ति हुई थी। श्री नारायणजी का तप करने से मनुष्य के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा उनकी कृपा से तेरी कामना भी पूर्ण होगी। राजा मुझे अपनी दासी के समान भी नहीं समझते हैं। मेरी सौत उनसे जो कहती है, वे उसी को करते हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि राजा के न रहने पर मेरी सौत तुझे देश-निकाला दे देगी। अतः तुझे अपनी मुक्ति का उपाय अभी से करना चाहिए।"

माता के ये वचन सुनकर ध्रुव अत्यन्त लज्जित हो घर से निकल पड़ा तथा उसने श्री नारायणजी का तप करने के लिए वन का मार्ग अपनाया। वह अपने मन में यह विचार करता चला जा रहा था कि मैं अज्ञानी बालक श्री नारायणजी का पता किस प्रकार पाऊँगा तथा किस प्रकार उनकी शरण में पहुँचकर अपना मनोरथ सिद्ध करूँगा। जिस समय बालक ध्रुव वन में चला जा रहा था, उस मार्ग में नारदजी ने उसे देखा। तब नारदजी ने अपने मन में यह विचार किया कि यह बालक अपनी सौतेली माता के वचनों से दुःखी होकर श्री नारायणजी को ढूँढ़ने के लिए घर से बाहर निकल पड़ा है, अतः मुझे इसकी परीक्षा लेनी चाहिए कि यह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहेगा अथवा नहीं? ऐसा विचारकर नारदजी ध्रुव के पास जाकर कहने लगे—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजपुत्र ! तू अपने घर से बाहर क्यों निकल आया है ? बाल्यावस्था में तुझे इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए। बालक को दुर्वचन कहने के पश्चात् यदि कोई उसे फिर से बुलावे तो वह उसके पास चला जाता है, परन्तु तूने बालकों का यह स्वाभाविक स्वभाव त्यागकर वन का मार्ग अपनाया है। यह बात तेरे लिए उचित नहीं है। हम तुझे तेरे पिता के पास वापिस लिए चलते हैं। तुझे राजगद्दी अथवा अन्य जिस वस्तु की इच्छा हो, वह हम तुझे उनसे कहकर दिलवा देंगे। यदि तू श्री नारायणजी को ढूँढ़ने के लिए निकला है, तो उनका मिलना सहज मत समझ। उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेक योगियों तथा तपस्वियों ने जप-तप द्वारा अपने शरीर को सुखा दिया, परन्तु वे फिर भी उन्हें प्राप्त नहीं कर सके। तू तो बालक है, उन्हें ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयत्न क्यों करता है। हम नारद मुनि हैं तथा श्री नारायणजी के भक्त एवं सेवक हैं। तेरे पिता हमारी बातों को अवश्य मानेंगे। हम तुझे उनके पास ले जाकर, जो तू चाहेगा, वही दिलवा देंगे।"

नारदजी के ये वचन सुनकर ध्रुव अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि नारदजी श्री नारायणजी के परमभक्त हैं। इनका दर्शन सहज सुलभ नहीं है। परन्तु जब मैं श्री नारायणजी के तप एवं स्मरण का विचार करके घर से बाहर निकला तो मुझे अकस्मात् ही इनके दर्शन हो गये। इससे तो यही दीखता है कि जब मैं श्री नारायणजी के तप-ध्यान में लीन हो जाऊँगा, तब न जाने कैसे-कैसे अच्छे पदार्थ प्राप्त होंगे ? इस प्रकार सोचकर ध्रुव ने श्री नारदजी को दण्डवत् करते हुए कहा—"हे देवर्षि ! आप श्री नारायणजी के परम-भक्त हैं, अतः आप मेरी सहायता करने की कृपा कीजिए, ताकि मैं शीघ्राति-शीघ्र श्री नारायणजी के चरणकमलों तक पहुँच सकूँ। मैं श्री हरि की राह पर जा रहा हूँ, अतः उससे विमुख करना आपको उचित नहीं है ! आप मुझे श्री नारायणजी के मिलने का सहज मार्ग दिखा दीजिए। मैं क्षत्रिय का पुत्र हूँ, अतः उनके दर्शन किये बिना अपने घर को लौटकर नहीं जाऊँगा।"

ध्रुव के ऐसे निष्ठापूर्ण वचन सुनकर नारदजी को अनुमान हो गया कि यह बालक सच्चा ईश्वरभक्त है तथा ज्ञानोपदेश करने का अधिकारी भी है। यह विचार कर श्री नारदजी ने ध्रुव से कहा—"हे पुत्र ! हम तुझे तथा तेरे ज्ञान को धन्यवाद देते हैं। अब तक हम तेरी परीक्षा ले रहे थे, परन्तु अब तुझे श्री नारायणजी से मिलने का मार्ग बताते हैं। तू यहाँ से उत्तर दिशा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर यमुनातट पर बसी हुई मथुरा पुरी में चला जा। वहाँ त्रिलोकीनाथ श्री नारायणजी का आठों प्रहर निवास रहता है। उस जगह पहुँचकर तू कुशासन बिछाकर उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठना तथा श्री नारायणजी का ध्यान करना। तीनों समय यमुनाजी में स्नान करना—उससे तेरे जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जायँगे। श्री नारायणजी का स्वरूप यह है—उनके शरीर का रंग श्याम है, नेत्र कमल के समान हैं, चार भुजाएँ हैं, रत्न-जटित मुकुट तथा मकराकृत कुण्डल को धारण किए हुए हैं, चन्द्रमा के समान सुशोभित मुख-मण्डल है, वैजयन्ती माला तथा कौस्तुभमणि को कण्ठ में डाले हुए हैं तथा निरन्तर मन्द-मन्द मुस्कुराते रहते हैं। तुम प्रतिदिन स्नान करने के पश्चात् आसन पर बैठकर, उनके हरि स्वरूप का मन लगाकर ध्यान करना। फल, दूब अथवा जल—जो कुछ भी प्राप्त हो सके, उसी से धूप-दीप आदि का पूजन कर देना।" इतना कहकर नारदजी ने ध्रुव को 'द्वादशाक्षर मन्त्र' (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का उपदेश किया। फिर बोले—"हे ध्रुव ! तू इसी मन्त्र का जप करना। भोजन कम करना तथा जल भी कम पीना। इस प्रकार ध्यान एवं स्मरण करने से श्री नारायणजी प्रसन्न होकर तुझे अपने दर्शन से कृतार्थ करेंगे तथा तेरी सम्पूर्ण मनोभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे। सांसारिक सुखोपभोग के पश्चात्, अन्त में उन्हीं श्री नारायणजी की कृपा से तू मुक्त पदवी को प्राप्त करेगा। श्री नारायणजी का भजन करने से लोक-परलोक—दोनों स्थानों पर सुख की प्राप्ति होती है।"

श्री नारदजी द्वारा श्री नारायणजी के स्वरूप, ध्यान एवं मन्त्र को प्राप्त कर ध्रुव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह विनय करते हुए बोला—"हे प्रभो ! आपने अपनी परम कृपा द्वारा मुझे श्री नारायणजी के मिलने का सहज मार्ग दिखा दिया है। मैं तो अब तक यही समझ रहा था कि श्री नारायणजी किसी नगर, ग्राम अथवा घर में न जाने कितनी दूर रहते होंगे। मैं यही समझकर उन्हें ढूँढ़ने के लिए न जाने कहाँ तक भटकता फिरता; परन्तु आपने मुझे उनका हृदय में ही स्मरण एवं ध्यान करना बताकर मुझ पर अनन्त उपकार किया है। अब मैं आपके आज्ञानुसार ही श्री नारायणजी का ध्यान एवं तप करूँगा।"

इतना कहकर ध्रुव ने श्री नारदजी को पुनः दण्डवत् किया। तदुपरान्त उनसे विदा लेकर वह मथुरापुरी को चला गया। इधर श्री नारदजी ने राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तानपाद के पास पहुँचकर यह देखा कि ध्रुव की माता सुनीति तथा राजा उत्तानपाद—दोनों ही ध्रुव के लिए विलाप करते हुए परस्पर इस प्रकार कह रहे हैं कि हम लोगों ने अपने पंचवर्षीय अज्ञानी बालक को तप करने का उपदेश देकर वन में भेज दिया, यह अत्यन्त अनर्थ हुआ है। न जाने वह बेचारा अब कहाँ पहुँचा होगा और उसकी क्या गति हुई होगी। जो श्री नारायणजी बड़े-बड़े ज्ञानी तथा योगियों को भी नहीं मिल पाते हैं, वे भला उस अज्ञान बालक को किस प्रकार प्राप्त होंगे? राजा उत्तानपाद अपनी छोटी रानी पर क्रोधकर इस प्रकार कह रहे थे कि तूने ही कठोर वचन कहकर मेरे पुत्र को वन भेजा है। अस्तु, जब नारदजी वहाँ पहुँचे, तब राजा ने अत्यन्त आदर-पूर्वक दण्डवत् करके उन्हें समुचित आसन देकर पूछा—"हे महाराज! इस समय आप कहाँ से पधार रहे हैं?" नारदजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! हम अपने आने का हाल बाद में कहेंगे, परन्तु पहिले यह तो बताओ कि तुम इस समय किस चिन्ता में पड़े हुए हो?" राजा बोले—"हे मुनिश्रेष्ठ! मेरी छोटी रानी ने मेरे पंचवर्षीय अज्ञानी पुत्र ध्रुव के प्रति कुछ कठोर वचन कह दिए थे, जिन्हें सुनकर वह न जाने कहाँ चला गया है? हम लोग उसी के शोक में व्याकुल हैं। न मालूम अब उस बालक की क्या दशा हुई होगी? वन में उसे कोई सिंह-भालू अथवा अन्य हिंसक जन्तु खा लेगा। मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैंने स्त्री के वशीभूत होकर अपने पुत्र का निरादर किया।"

राजा के ऐसे दुःखपूर्ण वचन सुनकर नारदजी ने कहा—"हे राजन्! तुम अपनी चिन्ता को दूर कर दो। तुम्हारा पुत्र मुझे मार्ग में मिला था। मैंने उसे घर लौटने के लिए बहुत समझाया, परन्तु वह किसी तरह नहीं माना। जब मैंने यह देखा कि उसके हृदय में श्री नारायणजी के प्रति सच्चा प्रेम है तब मैंने उसे श्री नारायणजी से मिलने का उपाय बताकर तप करने के लिए मथुरापुरी की ओर भेज दिया है। अब तुम उसके सम्बन्ध में कोई चिन्ता मत करो। वह ऐसी पदवी को प्राप्त करेगा, जैसी आज तक तुम्हारे पूर्वपुरुषों को भी नहीं मिली है। वह श्री नारायणजी की शरण में जा पहुँचा है। अतः अब उसे कोई दुःख नहीं पहुँचा सकता। तुमने स्त्री के वशीभूत हो, अज्ञान में उसका जो निरादर किया, वह वास्तव में बहुत बुरा था।" इतना कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये तथा उनके समझाने-बुझाने से राजा-रानी ने भी कुछ धैर्य धारण किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उधर ध्रुव ने मथुरा पहुँचकर यमुना नदी के तट पर कुश का आसन बिछाया तथा नारदजी के बताये अनुसार श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करना आरम्भ कर दिया। पहिले तो वह प्रति तीसरे दिन एक समय भोजन करता था, तदुपरान्त वह एक सप्ताह पश्चात् भोजन करने लगा। तीन महीने तक वह केवल वृक्ष की पत्ती खाकर ही रहा। चौथे महीने में उसने पत्ती खाना भी त्याग दिया तथा केवल जल पीकर रहने लगा। पाँचवें महीने में उसने जल पीना भी छोड़ दिया। जितनी वायु उसके मुख में प्रवेश करती थी, केवल उसी के बल पर वह जीवित रहता था। पाँच महीने तक वह एक पाँव से खड़े रहकर श्री नारायणजी के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान धरता रहा। उसका शरीर लकड़ी के समान सूख गया, परन्तु उसके मुख पर सूर्य के समान प्रकाश चमकने लगा। छठवें महीने ध्रुव ने अपना मुँह भी बन्द कर लिया और श्री नारायणजी के ध्यान में ऐसा लवलीन हुआ कि उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण श्री नारायणजी के स्वरूप से भर गया। उसमें श्वास लेने योग्य स्थान भी न रहा। इस प्रकार की कठिन तपस्या करके जब ध्रुव ने अपनी श्वास को भी रोक लिया, उस समय तीनों लोकों में वायु का चलना बन्द हो गया और पवन न चलने के कारण सभी जीव अत्यन्त दुखी हो गये। उस समय ब्रह्माजी ने सब देवताओं-सहित श्री नारायणजी के पास पहुँचकर प्रार्थना की—"हे महाप्रभो! पवन न चलने का क्या कारण है?" यह सुनकर श्री नारायणजी ने उत्तर दिया—"हे ब्रह्मा! बालक ध्रुव ने अपनी तपस्या के सामर्थ्य से वायु को बाँध लिया है, इसीलिए संसार की यह दशा हुई है। अब हम अपने भक्त ध्रुव को दर्शन देकर वायु को इस बन्धन से छुड़ाये देते हैं।"

दसवाँ अध्याय

श्री नारायणजी का भक्त ध्रुव को दर्शन देना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! देवताओं से इस प्रकार कहकर श्री नारायणजी ने वह स्वरूप धारण किया, जिसका ध्यान ध्रुव धर रहा था। तदुपरान्त वे गरुड़ पर सवार होकर ध्रुव के सम्मुख जा पहुँचे। उस समय ध्रुव अपनी आँखें बन्द किए श्री नारायणजी के ध्यान में ऐसा संलग्न था कि उसे श्रीहरि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के आने का कोई आभास नहीं हुआ। यह दशा देखकर श्री नारायणजी ने उसके अन्तःकरण से अपना स्वरूप खींच लिया। जब ध्रुव ने अपने हृदय में उस स्वरूप को नहीं देखा तो उसने घबराकर अपनी आँखें खोल दीं। आँखें खोलते ही उसने देखा कि जिस मोहिनी मूर्ति का वह ध्यान धर रहा था, वह साक्षात् रूप में उसके सम्मुख उपस्थित है। तब भक्तराज ध्रुव ने उन पर-ब्रह्म परमेश्वर की परिक्रमा करके दण्डवत् की। फिर उनके चरणों में अपना मस्तक रखकर उनकी स्तुति करने के अभिप्राय से मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि जिनकी महिमा को ब्रह्माजी, शेषनाग तथा गणेशजी भी वर्णन नहीं कर सकते हैं, उसका वर्णन मैं अज्ञानी बालक किस प्रकार करूँगा। यह सोचकर वह चुपचाप हाथ जोड़े खड़ा रहा तथा अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनके मुखारविन्द को टकटकी लगाकर देखने लगा। ध्रुव की ऐसी अवस्था देखकर अन्तर्यामी श्री नारायणजी ने यह जान लिया कि ध्रुव को इतना ज्ञान नहीं है जो वह मेरी स्तुति कर सके। यह देखकर उन्होंने अत्यन्त कृपाकर ध्रुव के मुख से अपने शङ्ख का स्पर्श करा दिया। उस शङ्ख का स्पर्श होते ही ध्रुव के हृदय में ज्ञान एवं बुद्धि का प्रकाश भर गया। तब उसे सम्पूर्ण विद्याएँ स्वयं ही प्राप्त हो गईं और वह इस प्रकार श्री नारायणजी की स्तुति करने लगा।

ध्रुव ने कहा—"हे परम प्रभु! जब तक आपकी कृपा न हो, तब तक कोई भी प्राणी आपके श्रीचरणों के दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है। ब्रह्मादिक देवताओं में भी इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वे आपके गुणों का वर्णन कर सकें। आपको अपनी स्तुति सुनने की कोई इच्छा नहीं है। आप अपनी माया से तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश करते हैं। ब्रह्मा से लेकर चींटी तक—सभी जीव—आपकी माया से उत्पन्न हुए हैं। आप सबके स्वामी, परब्रह्म, परमेश्वर एवं त्रिलोकीनाथ हैं। आपके स्वरूप को ब्रह्मा भी नहीं जानते, जो वे आपकी स्तुति कर सकें। सांसारिक सुख तथा स्त्री-पुत्रादि का मोह बबूल के वृक्ष के समान है तथा आपके चरण-कमलों की भक्ति कल्पवृक्ष के समान फलदायक है। उससे सम्पूर्ण मनोभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। मैं अपने माता-पिता के व्यवहार से दुखी होकर आपकी शरण में आया था। आपने कृपाकर अपने दर्शनों द्वारा मुझे कृतार्थ कर दिया है। जो लोग आपका निष्काम भजन, तप एवं जप करते हैं, उनके अहोभाग्य हैं। हे प्रभु! आपकी दया के बिना किसी को ज्ञान प्राप्त नहीं होता है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार ध्रुव ने जब बहुत बिनती की तब श्री नारायणजी प्रसन्न होकर कहने लगे--"हे ध्रुव ! हम तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। तू हमसे कुछ वरदान माँग ले।" यह सुनकर ध्रुव बोला--"हे दीनानाथ ! जब मुझे आपके चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त हो गया, तब फिर मुझे माँगने के लिए और क्या शेष रहा है ? मैं तो आपके श्री चरणों की भक्ति एवं उनमें अभङ्ग स्नेह ही चाहता हूँ।" भक्त ध्रुव की प्रार्थना सुनकर अन्तर्यामी श्री नारायणजी ने कहा--"हे पुत्र ! तूने राजसिंहासन के लिए तपस्या की थी, अतः हम तुझे राजगद्दी देते हैं। अब तू हमारी आज्ञा मानकर अपने नगर को लौट जा। जिस विमाता ने तुझे ताना मारा था, उसीकी आँखों के सम्मुख तू छत्तीस सहस्र वर्षों तक राज्य करेगा। जो रानी तुझे अभागा कहती थी, उसका पुत्र उत्तम तेरी सेवा करेगा तथा तेरा पिता तुझे राजगद्दी पर बैठाकर स्वयं तपस्या करने के लिए वन में चला जायेगा। तेरे भाई उत्तम को शिकार खेलते समय कुबेर का सेवक एक यक्ष वन में मार डालेगा। उसकी चिन्ता में उत्तम की माता भी वन में जलकर मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी। जब तू शरीर त्याग करेगा, उस समय हम तुझे रहने के लिए ब्रह्मलोक से भी ऊँचे ध्रुवलोक में स्थान देंगे। वहाँ तू महाप्रलय पर्यन्त स्थिर रहेगा। चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य सभी तारागण तेरी परिक्रमा करते रहेंगे। महाप्रलय के पश्चात् तुझे मुक्ति की प्राप्ति होगी। हे ध्रुव ! हमारे भक्तों से अधिक बढ़कर अन्य कोई प्राणी नहीं है। हम अपने भक्तों की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। तू सदा हमारी कथाओं को सुनकर अन्य पिछले धर्मात्मा राजाओं की भाँति सुखपूर्वक राज्य करना।"

इस प्रकार श्री नारायणजी ने जब ध्रुव को वरदान दिया, उस समय देवताओं ने आकाश-मण्डल से पुष्प वर्षा करते हुए श्री नारायणजी का जय-जयकार किया तथा ध्रुव के भाग्य की प्रशंसा की। वरदान देने के पश्चात् श्री नारायणजी जब ब्रह्मलोक को चले गये, तब पवन फिर पूर्ववत् बहने लगा तथा तीनों लोकों के जीव सुखी हो गये। तदुपरान्त ध्रुव भी उस स्थान से हटकर अपने घर को चल दिया। मार्ग में वह निरन्तर अपने मन में यह विचार करता जा रहा था कि मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैंने श्री नारायणजी का दर्शन पाने के उपरान्त भी राजसिंहासन को स्वीकार कर लिया। सम्भवतः उस समय देवताओं ने भुलावा देकर मेरा ज्ञान हर लिया था, ताकि मैं विरक्त होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री नारायणजी की शरण में न रहूँ। हो सकता है कि पितरों ने भी यही बात समझी हो। संसार में यह प्रसिद्ध भी है कि इन्द्रादिक देवता भजन तथा स्मरण में विघ्न डाल देते हैं। इस प्रकार अनेक विचार करता हुआ ध्रुव अपने नगर के निकट पहुँचकर बाहर ही एक बाग में ठहर गया। उसे देखकर बाग के माली ने राजा उत्तानपाद को जाकर यह समाचार दिया कि ध्रुवजी तपस्या से लौट आये हैं। परन्तु माली की बात पर राजा को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"ध्रुव तो घर से अत्यन्त उदास होकर श्री नारायणजी का तप करने के लिए वन में चला गया था। वह भला लौटकर क्यों आवेगा?" तब उस समय श्री नारदजी ने आकर राजा से कहा—"हे राजन्! तुम्हारा पुत्र ध्रुव श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त कर, सफल-मनोरथ हो, वापिस लौट आया है। अब तुम्हें यहाँ बैठे रहना उचित नहीं है। तुम आदरपूर्वक उसे घर में ले आओ।" नारदजी के ये वचन सुनकर राजा उत्तानपाद को विश्वास हो गया, तब वे अत्यन्त आनन्दित हो ध्रुव को लेने के लिए चल दिए। उन्होंने ध्रुव के आगमन की सूचना देनेवाले माली को पुरस्कार-स्वरूप एक रत्नहार दिया। तत्पश्चात् वे अपनी दोनों रानियों, पुत्र उत्तम, नारदजी तथा अन्य बन्धु-बान्धवों-सहित गाते बजाते हुए ध्रुव के पास जा पहुँचे। नगर की प्रजा ने जब यह समाचार सुना कि ध्रुवजी श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त करके वापिस लौट आये हैं, तो उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। वे सब लोग भी बड़ी धूम-धाम से ध्रुवजी का दर्शन करने के लिए उनके पास जा पहुँचे।

ध्रुवजी के पास पहुँचकर सब लोग उनका जय-जयकार करने लगे। उस समय ध्रुवजी अपनी जटायें बढ़ाये तथा भस्म रमाये हुए बैठे थे। नारदजी और राजा उत्तानपाद को देखते ही वे उठकर खड़े हो गये तथा उनके चरणों में मस्तक रख कर प्रणाम करने लगे। राजा ने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक ध्रुवजी को अपनी गोद में उठाकर छाती से लगा लिया तथा अपने आँसुओं द्वारा उनके मुख को धो दिया। तत्पश्चात् ध्रुवजी ने सर्वप्रथम छोटी रानी के चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए कहा—"हे माता! तुम्हारे उपदेश के कारण ही मैं वन में चला गया था। वहाँ श्री नारायणजी का दर्शन प्राप्त होने से मेरे सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि हुई।" इसके अनन्तर ध्रुवजी ने अपनी माता सुनीति को दण्डवत् किया। फिर अन्य जितने पुरवासी उनके दर्शन के लिए आये थे, उन सबके प्रति यथायोग्य शिष्टाचार किया। सब लोगों से मिल-भेंटने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपरान्त राजा उत्तानपाद ने ध्रुवजी को अपने साथ हाथी पर बैठाया तथा याचकों एवं ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते हुए, द्रव्य लुटाते हुए, उन्हें राज-भवन में ले आये। घर में आकर ध्रुवजी की हजामत बनवाई तथा स्नान कराकर उन्हें राजसी वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया। नारदजी बिदा होकर ब्रह्मलोक को चले गये। इधर राजा ने लाखों ब्राह्मणों को भोजन कराकर अत्यन्त आनन्द मनाया। सम्पूर्ण प्रजा ने भी ध्रुवजी के लौट आने की खुशी में मङ्गलाचार किये। ध्रुव की माता सुनीति को उस समय जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसे वर्णन नहीं किया जा सकता।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! श्री नारायणजी जिसके ऊपर कृपा करते हैं, उससे सब प्रसन्न रहते हैं। श्रीहरि के विमुख होने पर पिता तथा भाई भी शत्रु के समान आचरण करने लगते हैं। ध्रुवजी को धर्म में तत्पर देखकर राजा उत्तानपाद अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। इसी प्रकार आनन्द में कुछ समय बीत जाने पर एक दिन राजा उत्तानपाद ने अपने मन में विचार किया कि ध्रुव अब राज्य करने योग्य हो गया है। अतः हमें इसे सिंहासन सौंपकर श्री नारायणजी का स्मरण करने के हेतु वन में जाना चाहिए। तभी हमारा परलोक सुधर सकेगा। यह निश्चय कर राजा ने अपने मन्त्रियों से सलाह ली। जब सब लोगों को यह बात श्रेष्ठ मालूम हुई, तब एक दिन राजा ने अच्छा मुहूर्त्त देखकर ध्रुवजी को राजसिंहासन पर बैठा दिया और आप वन में जाकर श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करने लगे। राजसिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त ध्रुवजी ने ऐसा नीतिपूर्वक राज्य किया कि सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त आनन्दित हो गई। उनके राज्य में बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे। कोई व्यक्ति दुखी अथवा दरिद्र न था। प्रजा की इच्छा पर उनके राज्य में मेह बरसता था तथा सभी ऋतुएँ मङ्गलदायक बनी रहती थीं। ध्रुवजी ने अपने भाई उत्तम को भी राज्य का अधिकार सौंप रक्खा था। अतः वह ध्रुवजी की आज्ञानुसार प्रत्येक कार्य को अत्यन्त स्नेह-पूर्वक करता और दिन-रात उनकी सेवा में संलग्न रहता था।

एक दिन ध्रुवजी से आज्ञा लेकर उत्तम शिकार खेलने के लिए वन में जा पहुँचा। वहाँ एक मृग के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाते हुए वह कुबेर के विहार-स्थल में पहुँच गया। उत्तम के साथियों ने जब उस स्थान को मल-मूत्र द्वारा भ्रष्ट कर दिया, उस समय कुबेर के सेवकों ने उत्तम से कहा—"तुम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग संसारी मनुष्य होकर यहाँ देवलोक में किसलिए आये हो ? क्या तुम्हें यह पता नहीं है कि यह स्थान देवताओं के कोषाध्यक्ष श्री कुबेर का विहार-स्थल है ?" कुबेर के सेवकों के मुख से यह शब्द सुनकर राज्य के अहङ्कार में गर्वित उत्तम ने अपने साथियों-सहित उनके प्रति दुर्वचनों का प्रयोग किया। कुबेर के सेवकों में एक यक्ष अत्यन्त बलवान् था। जब उसने उत्तम का दुर्वचन कहते हुए सुना तो उसने आगे बढ़कर उत्तम को मार डाला।

तदनन्तर उत्तम के साथियों ने वहाँ से लौटकर उत्तम के मारे जाने का संवाद ध्रुवजी से कह सुनाया। अपने भाई की मृत्यु सुनकर ध्रुवजी अत्यन्त क्रुद्ध हो सेना लेकर यक्षों से लड़ने के लिए चल दिए। उत्तम की माता ने जब अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुना तो वह भी अत्यन्त विलाप करती हुई वन में पहुँचकर उसके मृतक शरीर को ढूँढ़ने लगी। परन्तु तभी उस वन में अचानक आग लग गई और वह उसी में जलकर भस्म हो गई। इधर जब ध्रुव अपनी सेना लेकर यक्षों के समीप पहुँचे उस समय एक लाख तीस हजार यक्ष भी अपने-अपने आयुध लेकर ध्रुवजी से लड़ने के लिए उनके सम्मुख आ पहुँचे। यह देखकर ध्रुवजी ने अपने सेनापतियों से कहा—"तुम लोग अभी दूर खड़े रहकर तमाशा देखो। हम अकेले ही इनसे युद्ध करेंगे।" यह कहकर ध्रुवजी अपने रथ को यक्षों के सम्मुख ले गये। उन्हें देखकर यक्षों ने शस्त्र-वर्षा करनी आरम्भ कर दी, परन्तु ध्रुवजी ने उनके सब प्रहारों को काटते हुए अपने ऐसे तीखे तीर छोड़े कि उनमें से बहुत से यक्ष तो घायल हो गये तथा बहुत से मृत्यु को प्राप्त होकर रणभूमि में गिर पड़े। इस प्रकार थोड़ी ही देर में ध्रुवजी ने उन पर विजय प्राप्त कर ली।

यक्षों की यह दशा देखकर एक यक्ष ने कुबेर के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। अपनी सेना की ऐसी अवस्था सुनकर कुबेर नवीन सेना लेकर ध्रुवजी से युद्ध करने के लिए स्वयं संग्राम-स्थल में आ पहुँचे। उन्होंने ध्रुवजी के समीप पहुँचकर कहा—"तू मनुष्य होकर देवताओं को दुःख दे रहा है, इस-लिए मैं तुझे मार डालूँगा।" ध्रुवजी ने उत्तर दिया—"मैं केवल श्री नारा-यणजी को देवता मानता हूँ, क्योंकि उन्होंने देवता, मनुष्य तथा अन्य सब जीवों को उत्पन्न किया है।" यह सुनकर कुबेर ने ध्रुवजी के ऊपर अपने अनेक तीर बरसाये, परन्तु ध्रुवजी ने अपने बाणों से उन सभी को काट डाला। यह देखकर कुबेर ने ध्रुवजी से पूछा—"तुम्हारा गुरु कौन है ? तुम्हें ऐसी विद्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसने पढ़ाई तथा तुम किसके शिष्य हो ?" ध्रुवजी ने उत्तर दिया—"जिसके प्रताप से तुम देवता बने हो, वही मेरा गुरु तथा स्वामी है और उसी का मैं शिष्य हूँ।" यह सुनकर कुबेर ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, ध्रुवजी को मारने के लिए नारायण अस्त्र उठाया। उधर ध्रुव ने भी कुबेर के लिए अपना नारायण अस्त्र उठा लिया। उस समय ब्रह्माजी ने अपने हृदय में यह विचार किया कि नारायण अस्त्र चलने से संसार का बड़ा अनर्थ होगा। ध्रुव तो श्री नारायणजी के भक्त हैं और कुबेर देवता हैं, अतः इन दोनों में से तो कोई नहीं मरेगा, परन्तु संसार के अन्य सभी जीव मारे जायँगे। ऐसा सोचकर ब्रह्माजी ने ध्रुवजी के पितामह स्वायम्भुव मनु तथा नारदजी को यह आज्ञा दी कि तुम दोनों जाकर कुबेर तथा ध्रुवजी को समझाओ और उनमें परस्पर सन्धि करा दो। यह सुनकर वे दोनों रणभूमि में जा पहुँचे। जब ध्रुवजी ने यह देखा कि मेरे पितामह स्वायम्भुव मनु आये हुए हैं, तब वे युद्ध करना त्यागकर अपने रथ से नीचे उतर पड़े। तत्पश्चात् उन्होंने स्वायम्भुव मनु को साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया।

ग्यारहवाँ अध्याय

ध्रुवजी एवं कुबेर में सन्धि तथा ध्रुवजी का अपने पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिए वन को प्रस्थान करना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर ! जब ध्रुवजी ने स्वायम्भुव मनु को दण्डवत् किया, उस समय स्वायम्भुव मनु ने उनसे इस प्रकार कहा—"हे ध्रुव ! तुम वैष्णव तथा श्री नारायणजी के भक्त हो। यदि क्रोधी व्यक्ति अपने को वैष्णव कहे तो उसके इस कथन को असत्य समझना चाहिए। क्रोध करने से बहुत पाप होता है। हे ध्रुव ! तुमने वैष्णव राजा होते हुए भी न्याय का विचार नहीं किया। तेरे भाई उत्तम की मृत्यु इसी प्रकार होनी थी, इसीलिए उसे एक यक्ष ने मार दिया। उसके बदले तुमने एक लाख तीस सहस्र यक्षों को घायल करके उन्हें दुःख पहुँचाया है। उनमें से कितने ही लोग मर भी गये हैं। अतः यह तुम्हारे द्वारा अच्छा कार्य नहीं हुआ। राजा यदि न्याय का विचार न करे तो उसे पाप लगता है। इस सम्बन्ध में हम तुमसे एक इतिहास कहते हैं, उसे सुनो—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सारस्वत आदि कल्प में बहुत से संसारी जीव उत्पन्न हुए थे, परन्तु उस समय तक मृत्यु की उत्पत्ति नहीं हुई थी। अतः जब संसारी जीवों के बोझ से पृथ्वी पानी में डूबने लगी, उस समय ब्रह्माजी ने 'मृत्यु' नामक एक कन्या को उत्पन्न किया तथा उसे समझाते हुए यह कहा कि तू संसार में जाकर वृद्ध तथा रोगी मनुष्यों को मार डाल। उस कन्या ने ब्रह्माजी की यह आज्ञा स्वीकार नहीं की और वह श्री नारायणजी का तप करने में संलग्न हो गई। उस समय श्री नारायणजी ने उस मृत्युरूपी कन्या से यह कहा—"तू संसार में जाकर, उन सब जीवों को मार जिनकी आयु समाप्त हो गई हो। इसमें तुझे कोई अपयश न देगा। कोई कहेगा, राजयक्ष्मा रोग से मृत्यु हुई तो कोई कहेगा कि सर्प के काटने से मृत्यु हो गई है। इसी प्रकार से दूसरों पर अनेक दोष लगाये जायँगे और तू उनसे अलग रहेगी।" नारायणजी की यह आज्ञा सुनकर जब उस कन्या ने संसार में आकर जीवों को मारना आरम्भ किया तब पृथ्वी का बोझ हलका हुआ। अतः हे ध्रुव! तुमने तो श्री नारायणजी का तप किया है, फिर तुम लोगों को मारकर इस अपयश को अपने सिर क्यों ले रहे हो?"

स्वायम्भुव मनु के ऐसे वचन सुनकर ध्रुवजी अत्यन्त लज्जित हुए तथा संग्राम बन्द करके स्वायम्भुव मनु से विनयपूर्वक कहने लगे—"हे महाराज! निश्चय ही यह मुझसे भारी अपराध हुआ है।" यह सुनकर स्वायम्भुव मनु ने उत्तर दिया—"हे ध्रुव! तुम इसकी चिन्ता न करो। इन लोगों के भाग्य में इसी प्रकार मरना तथा दुःख प्राप्त करना लिखा था। सभी कार्य श्री नारायणजी की इच्छानुसार ही होते हैं।" इस प्रकार इधर तो स्वायम्भुव मनु ने ध्रुव को समझाया, उधर नारदजी ने कुबेर के पास जाकर कहा—"हे कुबेर! तुम्हारे सेवकों ने ध्रुव के भाई को व्यर्थ ही मारा था, अतः तुम अपने सेवकों द्वारा उनसे अपराध क्षमा कराओ।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर कुबेर ने ध्रुवजी के पास पहुँचकर विनम्रतापूर्वक कहा—"हे राजन्! हमारे सेवकों से यह भारी अपराध हुआ, जो उन्होंने आपके भाई को मारा है। उस अपराध के बदले आप हमें चाहे जितना दण्ड दे लें, परन्तु उनके अपराध को क्षमा कर दें।" कुबेर के ऐसे विनम्र वचन सुनकर ध्रुवजी बोले—"हे धनाधिप! आप देवता हैं, अतः आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दें जिससे मुझे फिर कभी क्रोध न आवे तथा श्री नारायणजी के चरणों में मेरी भक्ति निरन्तर बनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहे। मेरे भाई उत्तम के भाग्य में इसी प्रकार की मृत्यु लिखी थी सो अब उसके सम्बन्ध में मुझे किसी प्रकार का शोच नहीं है।"

ध्रुवजी के वचन सुनकर कुबेर ने उन्हें इच्छित वरदान देकर परस्पर सन्धि कर ली। तदुपरान्त स्वायम्भुव मनु तथा नारदजी अपने-अपने स्थान को चले गये। ध्रुव तथा कुबेर भी अपने-अपने घर लौट आये। घर आकर ध्रुवजी ने अपने मन में यह विचार किया कि संसारी सब व्यवहार, राज्य, धन-स्त्री, पुत्र आदि स्वप्न के समान मिथ्या हैं। राजसिंहासन पर बैठने से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि समय पाकर स्वभाव में अवश्य प्रवेश करते रहेंगे, अतः इन सबसे विरक्त होकर केवल हरि-भजन करना ही सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा विचारकर ध्रुवजी ने अपने पुत्र 'उत्कल' को—जो उनकी 'इला' नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ था—राजसिंहासन पर बैठा दिया तथा स्वयं अपनी पत्नी-सहित बदरिकाश्रम में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करने में संलग्न हो गये।"

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! तुम्हारे पितामह, राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में किसी ब्राह्मण ने सोने का थाल चुराया था। लोगों ने उस ब्राह्मण के हाथ काटने की सलाह दी। तब राजा युधिष्ठिर ने उसे राजा बलि के पास न्याय कराने के लिए भेज दिया था। राजा बलि ने उसका न्याय करते हुए यह निर्णय दिया कि जिस राजा के राज्य में यह ब्राह्मण रहता है, उस राजा को दण्ड देना चाहिए; क्योंकि उस राजा द्वारा इतना दान नहीं दिया गया, जिससे उस ब्राह्मण को चोरी करने की अभिलाषा हुई। अतः हे राजन्! राजा को इसी प्रकार धर्म-पालन करना चाहिए। (उस ब्राह्मण का पूरा वृत्तान्त महाभारत में लिखा गया है)।"

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवजी का अपनी दोनों माताओं-सहित ध्रुवलोक को प्रस्थान

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जब ध्रुवजी के शरीर-त्याग करने का समय आया, उस समय श्री नारायणजी के पार्षदों ने एक श्रेष्ठ विमान ध्रुवजी के पास ले जाकर कहा—"हे महात्मन्! श्री नारायणजी ने आपके लिए यह विमान भेजा है, आप इस पर बैठकर ध्रुवलोक को चलें।" पार्षदों के वचन सुनकर ध्रुवजी ने अपने मन में यह विचार किया कि जिस छोटी माता के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण मैं इस पदवी को प्राप्त कर सका हूँ, वह गुरु के समान है; परन्तु मुझे कठोर वचन कहने के कारण वह नरक का दुःख उठायेगी। ऐसी स्थिति में यदि मेरी माता दुःख भोगती रहे तो अकेले ध्रुवलोक में जाने से मेरा धर्म नष्ट हो जायेगा। उस समय ध्रुवजी के मन का हाल जानकर पार्षदों ने पूछा—"हे ध्रुवजी! आप किस चिन्ता में हैं?" ध्रुवजी ने उत्तर दिया—"जिस माता के ताने के कारण मैंने यह पद प्राप्त किया है, मैं उसे भी श्री नारायणजी से कहकर मुक्ति-पद प्राप्त कराना चाहता हूँ।" यह सुनकर पार्षद बोले—"हे ध्रुवजी! श्री नारायणजी ने हमें यह आज्ञा दी है कि हम आपको आपकी दोनों माताओं-सहित विमान पर बैठाकर ले चलें। अतः वे दोनों भी आपसे पहिले वहाँ पहुँच जायँगी।" यह सुनकर ध्रुवजी अत्यन्त प्रसन्न हो, अपनी पत्नी-सहित दिव्य स्वरूप धारणकर विमान में बैठ, ध्रुवलोक में जा पहुँचे। वहाँ देवताओं ने उनके ऊपर पुष्प-वर्षा की। उस समय नारदजी प्राचीन बर्हिष प्रचेताओं के पिता का यज्ञ करा रहे थे। उन्होंने जो ध्रुव का विमान देखा तो वे अत्यन्त आनन्दित हुए। यज्ञ कराने के उपरान्त उन्होंने ध्रुवलोक में पहुँचकर ध्रुवजी से कहा—"हे ध्रुव! तेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं।" नारदजी के वचन सुनकर ध्रुव उनके चरणों पर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे देवर्षि! आपकी दया और कृपा से ही मुझे यह बड़ाई प्राप्त हुई है।" नारदजी बोले—"हे ध्रुव! श्री नारायणजी ने जैसी कृपा तेरे ऊपर की है, वैसी अटल पदवी किसी अन्य को प्राप्त होनी कठिन है।" इतना कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। तत्पश्चात् ध्रुवजी वहाँ रहकर आनन्द उपभोग करने लगे।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे मुनिश्रेष्ठ! प्रचेता लोग कौन थे, कृपा कर उनका वृत्तान्त सुनाइये।" शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब ध्रुवजी बदरिकाश्रम को चले गये तब उनके पुत्र 'उत्कल' ने बहुत दिनों तक सातों द्वीपों का राज्य करके सम्पूर्ण प्रजा को आनन्दित रक्खा। तत्पश्चात् उन्होंने भी यह विचार किया कि संसारी सुख, राज्य, धन, कुल, परिवार आदि सब स्वप्न के समान होते हैं, अतः जिस प्रकार मेरे पिता विरक्त होकर श्री नारायणजी की शरण में जाने से कृतार्थ हो गये, उसी प्रकार यदि मैं भी इस सांसारिक माया-मोह को त्यागकर श्री नारायणजी का स्मरण करूँ तो अत्यन्त श्रेष्ठ होगा। उन्होंने यह सोचा कि वैसे तो परि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वारवाले वैराग्य लेने तथा घर छोड़ने से मना करेंगे, इसलिए मुझे अपने को बावलों के समान बना लेना चाहिए। जब लोग यह समझेंगे कि मैं राज्य करने योग्य नहीं रहा हूँ, तब वे मेरे मार्ग में रोड़ा बनकर नहीं अटकेंगे तथा उनसे छुटकारा पाकर श्री नारायणजी का तप भली भाँति कर सकूँगा। ऐसा निश्चय कर राजा जान-बूझकर पागल बन गया तथा उल्टी-सीधी बातें बकने लगा। उसकी ऐसी दशा देखकर घरवालों ने यह समझा कि राजा पागल हो गया है और अब राज्य करने योग्य नहीं रहा है। तब सबकी राय से राजा उत्कल के छोटे भाई 'वत्सर' को—जो ध्रुव की दूसरी पत्नी से उत्पन्न हुआ था—राजसिंहासन पर बैठा दिया गया। उत्कल बावलों के समान घर में ही बना रहा। कुछ समय पश्चात् उत्कल ने जब यह देखा कि शासन का कार्य सुचारुरूप से चल उठा है, तब वह एक दिन घर से निकलकर वन में चला गया और वहीं श्री नारायणजी की तपस्या करते हुए, कुछ दिनों बाद अपना शरीर त्याग दिया।"

तेरहवाँ अध्याय

ध्रुवजी के वंश में राजा अंग के यहाँ बेन की उत्पत्ति

सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! अब हम आपको ध्रुव के वंश का हाल सुनाते हैं। ध्रुव के वंश में कई पीढ़ी पश्चात् अंग नामक एक राजा हुआ। उसके कोई पुत्र नहीं था। एक बार उसने दुखी होकर ब्राह्मणों तथा ऋषियों से कहा कि आप लोग कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मुझे पुत्र की प्राप्ति हो। तब ऋषियों ने राजा से यज्ञ कराया और उसका प्रसाद राजा को देते हुए कहा—"हे राजन्! आप इस प्रसाद को अपनी एक स्त्री को खिला दीजिए।" ब्राह्मणों की बात सुनकर राजा ने अपनी 'सुनीथा' नामक रानी को वह प्रसाद खिला दिया। उस प्रसाद के प्रभाव से समय पाकर रानी के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। ब्राह्मणों ने उस बालक का नाम 'बेन' रक्खा। जब राजा ने उस बालक को शूद्र के समान कुरूप देखा तथा उसके ग्रह भी बुरे मालूम हुए तब उसने ब्राह्मणों से कहा—"हे द्विजवरो! हमारे कुल में सभी बालक सुन्दर तथा धर्मात्मा होते आये हैं, यह ऐसा कुरूप तथा बुरे ग्रहोंवाला क्यों है?" यह सुनकर ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तुम्हारी पत्नी ने यज्ञ का प्रसाद ग्रहण करते समय अपनी माता 'मृत्यु' तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिता 'अधर्म' का स्मरण किया था इसीलिए यह बालक अपने नाना-नानी के समान कुरूप तथा बुरे स्वभाववाला उत्पन्न हुआ है।" राजा इन शब्दों को सुनकर पहिले तो बहुत चिन्तित हुआ, तदुपरान्त उसे ईश्वर की इच्छा समझकर बालक का पालन-पोषण करने लगा।

बड़ा होने पर बेन एक दिन शिकार खेलने के लिए वन में जा पहुँचा तथा वहाँ उन पशुओं को मारने लगा जिनको मारना अधर्म कहा गया है। यद्यपि राजा अंग ने ऐसे पशुओं को न मारने के लिए पहिले ही मना कर दिया था, परन्तु उसने उनकी आज्ञा पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। कभी-कभी वह नगर के बालकों को अपने साथ स्नान कराने के लिए नदी पर ले जाता था और उन्हें पानी में डुबाकर मार डालता था, तो कभी उन्हें वन में ले जाकर घूँसे मार-मार कर उनके प्राण ले लेता था। इस प्रकार जब यह बहुत अधर्म करने लगा तब वहाँ की प्रजा ने राजा के पास पहुँचकर सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—"हे राजन्! तुम्हारे पुत्र ने हमारे बालकों को बिना अपराध के मार डाला है।" प्रजा की पुकार सुनकर राजा ने बेन को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु वह उनकी बातों पर ध्यान न देकर और अधिक उपद्रव करने लगा। तदनन्तर एक दिन प्रजा ने फिर राजा के पास पहुँचकर इस प्रकार कहा—"हे पृथ्वीपति! आपका पुत्र बहुत अनीति करता है, ऐसी स्थिति में हम आपके देश में नहीं रहेंगे।" यह सुनकर राजा ने फिर बेन को बहुत धमकाया तथा इस प्रकार कहा कि तू प्रजा को दुःख मत दे। राजा द्वारा समझाने पर बेन रोता हुआ अपनी माता सुनीथा के पास जा पहुँचा तथा उससे इस प्रकार कहने लगा कि हे माता! राजा मेरा कुछ भी आदर नहीं करते हैं। वे मुझे व्यर्थ ही डराते-धमकाते हैं, अतः अब मैं घर से बाहर निकल जाऊँगा। बेन की माता सुनीथा भी अधर्मिणी थी, अतः वह अपने पुत्र की ऐसी बातें सुनकर कहने लगीं—"हे पुत्र! वृद्धावस्था के कारण तेरे पिता की बुद्धि नष्ट हो गई है। वे जो कहें, उन्हें कहने दे। तेरे मन में जो आवे, उसे तू कर।" इस प्रकार अपने पुत्र को धैर्य देने के पश्चात् जब सुनीथा अपने पति से कलह करने लगी, उस समय राजा ने अपने मन में यह विचार किया कि यदि मैं चाहूँ तो बेन और उसकी माता को देश-निकाला दे सकता हूँ, परन्तु ऐसा करने से मेरी ही हँसी होगी। स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर मनुष्य परलोक को भी भूल जाता है और भली बात

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझाने पर भी बुरा मान जाता है। अतः मुझे अपना जन्म व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। मेरे पूर्वजन्म का कोई ऐसा पाप उदय हुआ है जिससे मेरे घर में ऐसे अधर्मी लड़के ने जन्म लिया है। अब यदि मैं उसके साथ रहूँ तो उसके पाप करने से मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा। जिसकी माता को ही धर्म-अधर्म का विचार नहीं है, भला उसका पुत्र पापी क्यों न होगा? मुझे ऐसे अधर्मियों के साथ नहीं रहना चाहिए, क्योंकि कुसंगति में रहने से कभी सुख प्राप्त नहीं होता है। अब मुझे तो यही उचित है कि मैं वन में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं स्मरण करूँ। मेरे पीछे जो हो, उसकी चिन्ता करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार निश्चय करके राजा ने सभी सांसारिक बन्धनों से वैराग्य ले लिया तथा आधी रात के समय अपनी रानी को सोता छोड़कर वन में चला गया। वहाँ वह श्री नारायणजी का स्मरण करने लगा। उनके घर से निकल जाने का हाल किसी को मालूम नहीं हुआ।"

चौदहवाँ अध्याय

बेन का सिंहासनारूढ़ होना तथा ऋषि-मुनियों को हरि-भजन करने से रोकना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जब राजा अंग किसी से कहे-सुने बिना रात्रि को वन में चले गये तो प्रातःकाल यह समाचार सुनकर मंत्रियों एवं पुरवासियों को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने राजा को बहुत ढूँढ़ा, परन्तु वे कहीं नहीं मिले। राजा के बिना उस राज्य में चोर तथा ठगों के उपद्रव बढ़ गये। ब्राह्मणों तथा ऋषियों ने जब प्रजा को उनसे पीड़ित देखा तथा अंग के वंश में किसी अन्य व्यक्ति को राजा बनाने योग्य न पाया तो लाचार होकर उन्होंने बेन को ही राजतिलक कर दिया। बेन बलशाली तो था ही राजसिंहासन पर बैठते ही उसने चोर-डाकुओं को पकड़कर प्राण-दण्ड देना आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में वे सभी बेन के राज्य को छोड़कर भाग गये। जिस प्रकार सर्प के भय से चूहे भाग जाते हैं उसी प्रकार शक्तिशाली राजा बेन के भय से भयभीत होकर सभी दुष्ट प्रकृति के लोग उनके देश से बाहर निकल गये। जो अन्य राजा बेन के पिता महाराज अंग को कर नहीं देते थे, वे सभी राजा बेन की आज्ञा का पालन करने और उसे कर देने लगे। सातों द्वीपों में बेन ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि संसार में उसके समान अन्य कोई नहीं रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे विदुर ! कुछ समय पश्चात् बेन ने अपने हृदय में यह विचार किया कि लोगों को किसी अन्य देवता के नाम पर यज्ञ, दान, जप, तप आदि नहीं करना चाहिए। उनके स्थान पर केवल मेरी ही पूजा होनी चाहिए, क्योंकि मैं सबको भोजन देकर पालन करता हूँ। उसके मन में जब इस प्रकार का विचार आया तो वह ईश्वर को भूल गया तथा उसने अपने राज्य भर में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि किसी भी मनुष्य को ईश्वर, देवता अथवा पितरों के नाम पर यज्ञ, पूजा, श्राद्ध, हवन, दान आदि नहीं करना चाहिए। जिस व्यक्ति को जो कुछ करना हो उसे मेरे नाम पर करना चाहिए। जो व्यक्ति इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा, उसे दण्ड दिया जायेगा। इस प्रकार का ढिंढोरा पिटवाने के पश्चात् राजा बेन अपनी सेना लेकर दिग्विजय करने के लिए निकल पड़ा। वह जिस देश में भी पहुँचता था, वहीं के राजा भेंट देकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। राजा बेन उन सबसे भी यही कहता था कि तुम लोग अपने राज्य भर में ऐसी आज्ञा प्रसारित कर दो कि कोई भी व्यक्ति किसी देवता, पितर अथवा परमेश्वर के नाम पर यज्ञ, दान, जप, तप, पूजा, पाठ आदि न करे। जिसे जो करना हो, वह मेरे नाम पर करे। प्रतापी राजा बेन के भय से सभी राजा उसकी आज्ञा को स्वीकार कर लेते थे। इस प्रकार बेन के भय से कुछ ही दिनों में सातों द्वीपों में यज्ञ, दान, जप, तप आदि शुभ कर्म बन्द हो गये तथा पापाचार बढ़ने लगा। ऋषि, मुनि एवं ब्राह्मणों का धर्म-कर्म भी नष्ट होने लगा।

राजा बेन के इस अधर्म को जब भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषि एवं ब्राह्मणों ने देखा, तब उन्होंने सरस्वती नदी के तीर पर बैठकर परस्पर यह विचार किया कि जिस देश में राजा नहीं रहता, उस देश की प्रजा मनमाना पाप करती है। ऐसे राज्य में चोर आदि अधर्मी व्यक्ति सभी लोगों को कष्ट पहुँचाते हैं। उस समय धर्म की हानि तथा पाप की वृद्धि होती है। राजा का काम अधर्मियों तथा पापियों को दण्ड देना होता है, परन्तु यह राजा बेन ऐसा अधर्मी उत्पन्न हुआ है कि इसने सम्पूर्ण पृथ्वी से धर्म तथा पुण्य को उठा दिया है। अतः इसका कोई उपाय करना चाहिए। इस प्रकार विचार करने के पश्चात् ऋषि-मुनियों ने यह निश्चय किया कि हमीं लोगों ने बेन को राजसिंहासन पर बैठाया है। अतः हमें एक बार उसके पास चलकर उसे समझाना चाहिए। शायद वह हमारे समझाने-बुझाने से मान जाय और अधर्म करना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बन्द कर दे। यह निश्चय करने के उपरान्त भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनि एकत्रित होकर राजा बेन के पास गये। राजा ने दण्डवत्-प्रणाम करने के पश्चात् उन सबको सम्मानपूर्वक बैठाया। तदुपरान्त ऋषियों ने राजा से कहा—"हे राजन्! हम लोग तुम्हें एक बात समझाने के लिए यहाँ आये हैं। उसे स्वीकार कर लेने पर तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा तुम नष्ट हो जाओगे।"

यह सुनकर बेन ने पूछा—"वह बात कौन-सी है?" ऋषि बोले—"हे राजन्! तुम संसारी लोगों को जप, तप, यज्ञ तथा देवता एवं पितरों आदि के शुभ कर्म करने से मना करते हो। यह बात अच्छी नहीं है। हम लोगों का तो यही धर्म है कि हम लोग श्री नारायणजी का ध्यान करें तथा उन्हींके लिए जप, तप, यज्ञ आदि शुभ कर्म करें।" बेन ने कहा—"हे ऋषियो! आपके पुराणों में राजा को परमेश्वर का स्वरूप कहा गया है, अतः आप लोगों को मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि आप लोग मेरी आज्ञा नहीं मानेंगे तो मैं आप सबको दण्ड दूँगा।" बेन के मुख से ऐसे शब्द सुनकर ऋषि-मुनियों ने परस्पर यह निश्चय किया कि ऐसे अधर्मी राजा को मार डालना ही उचित है। यह विचारकर उनमें से किसी ऋषि ने अपने हाथ में जल लिया और किसी ने कुश लेकर मन्त्र पढ़ते हुए ऐसा शाप दिया कि उसके कारण राजा बेन तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् उसकी मृत्यु हो जाने पर सभी ऋषि-मुनि अपने-अपने घर को चले गये।

बेन के मर जाने पर उसकी माता सुनीथा बहुत प्रकार से विलाप करने लगी। उसने इस विचार से कि कभी ये ऋषि-मुनि फिर प्रसन्न होकर मेरे पुत्र को जीवित कर देंगे। बेन की लाश को जलवाने के बजाय उसकी आँतें निकलवाकर, पेट धुलवाकर एवं उसमें मसाले भरवाकर उसे तेल में रखवा दिया; जिसमें उसके गलने-सड़ने का भय न रहे। राजा बेन की मृत्यु के पश्चात् संसार में फिर से यज्ञ, हवन, जप, तप आदि शुभ कर्म होने आरम्भ हो गये; परन्तु राजा के न रहने के कारण चोर, ठग आदि फिर से प्रजा को पीड़ा पहुँचाने लगे। जो लोग अधर्मी थे, वे फिर से निर्भय होकर मनमाना पाप करने लगे। यह दशा देखकर ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों ने फिर से अपने मन में यह विचार किया कि राजा के बिना संसार में धर्म स्थिर नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण प्रजा वर्णसङ्कर हो जायगी। राजनीतिशास्त्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में लिखा है कि जिस देश में कोई राजा न हो अथवा जहाँ का राजा अधर्मी या मूर्ख हो अथवा जहाँ स्त्री राज्य करती हो अथवा जिस देश में अनेक राजा हों; वहाँ रहने से धर्म नष्ट हो जाता है। इसलिए अब हम लोगों को भी किसी अन्य राजा के लिए उपाय करना चाहिए। यद्यपि श्री नारायणजी की कृपा से बेन को भी पुनर्जीवित किया जा सकता है। परन्तु वह अपने अधर्म को कदापि नहीं त्यागेगा। अतः उसको पुनर्जीवित करना सर्प को दूध पिलाने के समान होगा। इस देश का राजसिंहासन भक्तराज ध्रुव के वंश का है, अतः सम्भव है कि राजा बेन के शव में भी कुछ धर्म का अंश विद्यमान हो। अब हम लोगों को चाहिए कि राजा बेन के शरीर को मथकर उसमें से किसी बालक को उत्पन्न करें तथा उसे राजसिंहासन पर बैठायें। ऐसा करने से प्रजा भी सुखी होगी तथा धर्म की रक्षा भी हो जायगी। इस प्रकार निश्चय करने के उपरान्त सम्पूर्ण शक्ति के भण्डार भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों ने बेन की माता के पास जाकर कहा—"तुम हमें बेन का शव दे दो।" सुनीथा यह सुनते ही अत्यन्त प्रसन्न हो गई तथा शीघ्र ही बेन के मृतक शरीर को उनके पास ले आई। तदुपरान्त ऋषि-मुनियों ने मन्त्रोच्चारण करते हुए राजा बेन की जंघा को दही के समान मथानी द्वारा मथा। उस जंघा-मंथन से काले रंग का अत्यन्त कुरूप एक नाटा पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ऋषि-मुनियों से हाथ जोड़कर कहा—"हे ऋषियो! आप लोग मुझे किस कार्य को करने की आज्ञा देते हैं?" ऋषि-मुनियों ने उसका रूप देखकर जब यह अनुभव किया कि यह पुरुष राजसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है तब उसे यह आज्ञा दी कि तू वन में जाकर भिल्लों का राजा बन जा। ऋषियों की आज्ञा पाकर वह पुरुष वन में चला गया तथा वहाँ भिल्लों का राजा बनकर राज्य करने लगा। उसके वंश में मल्लाह तथा मुसहर आदि जातियाँ उत्पन्न हुईं, जो अभी तक संसार में वर्तमान हैं। राजा बेन की जंघा से उस पुरुष के प्रकट होते ही बेन के शरीर से सुनीथा का सम्पूर्ण पाप निकल गया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पन्द्रहवाँ अध्याय

राजा पृथु एवं अरुचि के जन्म की कथा

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! उस नाटे पुरुष के जन्म के पश्चात् ऋषियों ने एक अत्यन्त सुन्दर तथा नीतिज्ञ राजा उत्पन्न करने के लिए राजा बेन की दाहिनी भुजा को फिर मथा। उस भुज-मन्थन द्वारा एक परम तेजस्वी, स्वरूपवान्, विशालकाय, आजानु भुजाओंवाला पुरुष तथा एक परम सुन्दरी स्त्री की उत्पत्ति हुई। उन दोनों के जन्म से ऋषि-मुनियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब उस पुरुष का नाम 'पृथु' तथा स्त्री का नाम 'अरुचि' रक्खा गया। ऋषियों ने उन दोनों का परस्पर विवाह करने के उपरान्त पृथु से कहा—"हे पृथु ! तुम सातों द्वीपों का राज्य करो।" पृथु ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। तदनन्तर ऋषियों ने अपनी ज्ञान-दृष्टि द्वारा यह पहिचान लिया कि ये दोनों—पृथु तथा अरुचि श्री लक्ष्मी-नारायणजी के अवतार हैं। यह प्रतीत होते ही उन्होंने राजा पृथु को बड़ी धूम-धाम से राजसिंहासन पर बैठाने का निश्चय किया। उन्होंने कुबेर देवता को बुलाकर इस प्रकार कहा कि अधर्मी राजा बेन जिस सिंहासन पर बैठता था वह राजा पृथु के बैठने योग्य नहीं है। अतः तुम कोई दूसरा श्रेष्ठ सिंहासन लाकर दो। यह सुनकर कुबेर देवता उसी समय एक रत्नजटित श्रेष्ठ सिंहासन ले आये। सिंहासन के आ जाने पर ऋषि-मुनियों ने पृथु को उस पर बैठाते हुए दण्डवत् किया। सब देवताओं ने भी वहाँ आकर राजा पृथु की स्तुति-वन्दना की। तत्पश्चात् वरुणदेव ने छत्र, पवनदेव ने चमर, नागदेव ने मणि, पृथ्वी ने खड़ाऊँ, सरस्वती ने मुक्ताहार, शिवजी ने तलवार, विष्णुजी ने सुदर्शन चक्र, पार्वती ने ढाल, त्वष्टा नामक देवता ने रथ, अग्नि ने धनुष-बाण तथा समुद्र ने शंख लाकर राजा पृथु को भेंट में दिए। इस प्रकार अन्य देवताओं ने भी उन्हें अन्यान्य उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं। उस समय इन्द्रलोक की अप्सरायें आकर नृत्य करने लगीं, गन्धर्वगण गीत गाने लगे, सिद्ध तथा चारण आकाश से स्तुति करते हुए पुष्प वर्षा कर उठे तथा भाटों ने राजा पृथु की प्रशंसा में अनेक प्रतापी राजाओं की उपमा दी।

हे विदुरजी ! अपनी प्रशंसा सुनकर राजा पृथु ने उन सबसे कहा कि अभी तक मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है, जिससे उसकी प्रशंसा करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की आवश्यकता आ पड़े। केवल लोभ के वशीभूत होकर किसी मनुष्य की इन्द्र के समान प्रशंसा करनी उचित नहीं है। किसी व्यक्ति में यदि कोई गुण न हो तथा अन्य व्यक्ति उस गुण की प्रशंसा करे तो उस स्थिति में यह समझना चाहिए कि वह प्रशंसक वास्तव में उपहास कर रहा है। जो मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है, उसे मूर्ख समझना चाहिए। अतः हे बन्दीजनो! जब मैं कोई श्रेष्ठ कार्य कर लूँ तब तुम मेरी प्रशंसा करना। अभी तो मौन रहना ही ठीक है। मनुष्य कभी भी प्रशंसा के योग्य नहीं है, क्योंकि प्रशंसा के योग्य तो केवल श्री नारायणजी ही हैं, जिन्होंने मनुष्य को उत्पन्न कर, उसे महत्त्व प्रदान किया है। जब कोई मनुष्य श्री नारायणजी द्वारा प्राप्त हाथों से शुभ कर्म करता है तभी वह प्रशंसा के योग्य होता है। अतः सबका पालन करनेवाले श्री नारायणजी ही स्तुति करने के योग्य हैं। वे ही प्राणियों को वैकुण्ठलोक का आनन्द प्रदान करते हैं। राजा पृथु के मुख से इन वचनों को सुनकर सभी सभासद उनकी और अधिक प्रशंसा करने लगे।"

सोलहवाँ अध्याय

ज्योतिषियों का राजा पृथु के जन्म-पत्र का फलादेश वर्णन करना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! राजा पृथु के वचन सुनकर भाटों ने इस प्रकार प्रार्थना की—"हे पृथ्वीपति! आप श्री नारायणजी के अवतार हैं। अतः आपकी प्रशंसा करना श्री नारायणजी की प्रशंसा करने के समान है। हम लोगों ने अभी तक अपनी उदरपूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों की बहुत अधिक झूठी-सच्ची प्रशंसाएँ की हैं। अब हम लोग अपनी जिह्वा को पवित्र करने के लिए आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। हे स्वामी! आप ऐसे श्रेष्ठ कार्य करेंगे—जैसे संसार में आज तक किसी भी राजा ने न किए होंगे।"

इस प्रकार कहकर भाट लोग राजा से पुरस्कार प्राप्त कर, अपने-अपने घर चले गए। उस समय ज्योतिषियों ने राजा पृथु की जन्मपत्र का फलादेश इस प्रकार वर्णन करना आरम्भ किया। वे बोले—"हे महाराज! आप सातों द्वीपों के राजा होंगे तथा अपनी भुजाओं के बल द्वारा पृथ्वी के सम्पूर्ण राजाओं को जीतकर उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक अखण्ड राज्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करेंगे। आप पृथ्वी को गौ के समान दुहेंगे और उसको अपनी पुत्री के समान तथा प्रजा को पुत्र के समान समझेंगे। आप ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों तथा साधु-सन्तों को श्री नारायणजी का स्वरूप समझेंगे। आप प्रजा से आठ मास तक का कर लेकर वर्षाकाल के चार महीनों में उसे अपनी ओर से भोजन तथा वस्त्र देंगे। आप बिना अपराध के किसी को दण्ड नहीं देंगे। जब देवराज इन्द्र ईर्ष्यावश आपके राज्य में पानी नहीं बरसायेंगे, उस समय आपकी इच्छा होते ही जल की वर्षा होने लगेगी। आप सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पूर्ण करेंगे। जिस समय आपके निन्यानबे यज्ञ पूरे हो जायँगें तथा सौवाँ यज्ञ आरम्भ होगा, उस समय देवराज इन्द्र अपना इन्द्रासन छिन जाने के भय से योगी का स्वरूप धारणकर यज्ञ के श्यामकर्ण अश्व को चुरा ले जायँगे। उस समय आपका पुत्र इन्द्र से उस अश्व को छीन लायेगा। ऐसी स्थिति में इन्द्र अपनी हार मानकर छल करने के लिए अनेक स्वरूप धारण करेंगे। इन्द्र के उन स्वरूपों का वृत्तान्त सुनकर कलियुग के मूर्ख प्राणी भी अन्य लोगों को ठगने के लिए वैसे ही छली रूप धारण करेंगे। आपकी यज्ञशाला में श्री नारायणजी स्वयं प्रकट होकर दर्शन देंगे तथा सनकादि ऋषि राजमन्दिर में आकर ज्ञानोपदेश करेंगे। आप पर-स्त्री को माता तथा पराये धन को मिट्टी का ढेला समझकर सदैव श्री नारायणजी के स्मरण-ध्यान में तल्लीन रहेंगे।" इस प्रकार ग्रहों के फलादेश कहकर ज्योतिषी भी राजा से दक्षिणा लेकर अपने अपने घर को चले गए। तत्पश्चात् ऋषि-मुनि एवं देवता भी आशीर्वाद देते हुए बिदा हुए।"

सत्रहवाँ अध्याय

प्रजा का दुःख दूर करने के लिए राजा पृथु का पृथ्वी पर क्रोध करना

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! सब देवता तथा ऋषि-मुनियों के बिदा हो जाने के उपरान्त राजा पृथु धर्म एवं नीतिपूर्वक राज्य करने लगे। एक दिन सम्पूर्ण प्रजा ने उनके पास आकर इस प्रकार प्रार्थना की कि हे पृथ्वीवल्लभ! आप हमारे राजा तथा स्वामी हैं। शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार आपको हमारा पालन-पोषण करना चाहिए। वर्तमान काल में हम लोग भूख के मारे मर रहे हैं। जिस प्रकार वृक्ष भीतर से जल-जलकर खोखला हो जाता है, उसी प्रकार हम लोगों का हृदय तथा पेट भी भूख की ज्वाला से जला जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा है। सब प्राणियों का जीवन अन्न तथा फलों के आहार पर निर्भर है, परन्तु इन दिनों राजा बेन के पाप कर्मों के कारण पृथ्वी ने सम्पूर्ण अन्न तथा फलों को स्वयं में छिपा लिया है। अब हम लोग जो बीज पृथ्वी पर बोते हैं, वे उत्पन्न नहीं होते तथा जो वृक्ष पहिले के हैं उनमें फल नहीं लगते हैं। इन कारणों से हम सभी लोग भोजन के बिना मर रहे हैं। आप धर्मात्मा राजा हैं, अतः हमने आपके समक्ष अपना दुःख कह सुनाया है। अब आप कोई ऐसा यत्न कीजिए; जिससे पूर्व की भाँति पृथ्वी पर अन्न तथा फल उत्पन्न होने लगे।"

प्रजा की ऐसी करुण पुकार सुन, राजा पृथु ने क्रुद्ध होकर अपना धनुष-बाण उठा लिया। तदनन्तर धनुष की प्रत्यंचा पर बाण को चढ़ाते हुए कहा—"मैं अभी अपने एक ही बाण द्वारा पृथ्वी को खण्ड-खण्ड कर डालूँगा।" जब पृथ्वी ने राजा पृथु को इस प्रकार क्रोधयुक्त देखा, उस समय वह गौ का स्वरूप धारणकर, भयभीत, काँपती हुई, राजा के सामने आ पहुँची। राजा पृथु ने भी अपनी ज्ञान-दृष्टि से यह जान लिया कि यह गौ के रूप में पृथ्वी है। परन्तु उस समय राजा पृथु ने कोई अन्य विचार किए बिना उसे अपने बाण का लक्ष्य बनाने का उद्देश्य यथावत् स्थिर ही रक्खा। यह देखकर गौरूप पृथ्वी अत्यन्त भयभीत हो, भागती हुई तीनों लोकों में गई। राजा पृथु भी अपना धनुष-बाण लिए हुए निरन्तर उसका पीछा करते रहे। जब पृथ्वी ने यह देखा कि उसके प्राण बचने कठिन हैं तब उसने राजा के सामने खड़ी होकर कहा—"हे राजन्! वेदशास्त्रों में गौ को मारना महान् पाप कहा गया है, क्या आप इस बात को नहीं जानते हैं?" राजा ने उत्तर दिया—"जिस प्राणी द्वारा संसार के अन्य जीव कष्ट पावें उसे मारने में पाप नहीं लगता है। ऐसे कर्म को तो धर्म ही मानना चाहिए। हे पृथ्वी! पितामह ब्रह्माजी ने जो ओषधि तथा अन्न आदि संसारी जीवों के पालन-पोषण के लिए उत्पन्न किया, उसे तूने अपने गर्भ में छिपा लिया है। राजाओं का यही धर्म है कि उनकी प्रजा को जिस किसी के द्वारा दुःख प्राप्त हो, उसे वे अवश्य मार डालें। इसी लिए मैं तुझे मारना चाहता हूँ।" यह सुनकर पृथ्वी ने कहा—"जिस समय मुझे हिरण्याक्ष नामक दैत्य पाताल में ले गया था तथा प्राणियों के रहने के लिए कोई स्थान नहीं था, उस समय श्री नारायणजी वाराह अवतार धारणकर मुझे पाताल से निकालकर लाये थे तथा मुझे पानी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर स्थिर करके मेरे ऊपर सभी जीवों को बसाया था। अब यदि आप मुझे मार डालेंगे तो पृथ्वी के ये सब जीव कहाँ रहेंगे ?"

पृथ्वी की बात पर राजा ने उत्तर दिया—"हे पृथ्वी मुझमें इतना तपोबल है कि मैं श्री नारायणजी की कृपा से महाप्रलय के जल पर भी प्रजा को बसा सकता हूँ।" राजा के इन शब्दों को सुनकर पृथ्वी ने अपने मन में ज्ञानदृष्टि से यह मालूम किया कि राजा पृथु अत्यन्त प्रतापी तथा श्री नारायणजी के अवतार हैं। ये जो चाहें वह कर सकते हैं। अतः अब इनकी शरण में गये बिना मेरे प्राण नहीं बच सकेंगे। यह जानकर पृथ्वी ने राजा की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे राजन्! आप श्री नारायणजी के अवतार हैं, अतः आप सभी कर्मों को कर सकते हैं। अब आप मुझे जो आज्ञा देंगे, मैं वही करूँगी।"

अठारहवाँ अध्याय

गोरूप पृथ्वी को दुहकर राजापृथु का सम्पूर्ण अन्न एवं औषधियों का निकालना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! गौरूपी पृथ्वी ने राजा पृथु से कहा—"हे राजन्! मैंने अन्न तथा औषधियों को इसलिए अपने गर्भ में छिपा लिया था कि अधर्मी राजा बेन के राज्य में संसारी मनुष्य हवन तथा दान आदि त्यागकर सम्पूर्ण अन्न अपने कार्य में खर्च करने लगे थे। उन्होंने देवताओं तथा अग्नि को भाग देना बन्द कर दिया था। अतः मैंने उन अधर्मियों का पालन करना उचित नहीं समझा। अब आप धर्मात्मा तथा अवतारी राजा उत्पन्न हुए हैं। आप यदि पूर्व की ही भाँति अन्न तथा फल आदि उत्पन्न करना चाहते हैं, तो वेद मन्त्रों एवं योगाभ्यास द्वारा मुझे गौ के समान दुहिये। उस स्थिति में मैंने जिन-जिन वस्तुओं को गुप्त कर लिया है, उनमें से आप जिन वस्तुओं को चाहते हैं, वे सब दूध की भाँति मेरे शरीर से निकल आयेंगी। हे राजन्! इसके साथ ही आप यह कार्य भी कीजिए कि मेरे ऊपर पर्वतों का भारी बोझ बेतरतीबवार रक्खा हुआ है, आप उन्हें उठाकर एक ओर रख दीजिए। उससे बहुत सी धरती खाली हो जायेगी। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर जो धरती ऊँची-नीची गड्ढे के समान है, उन्हें भी आप पाटकर एक समान कर दीजिए। तब सभी जीव मेरे ऊपर रहकर सुखपूर्वक खेतीबारी कर सकेंगे तथा उसके व्यापार द्वारा लाभ भी उठायेंगे। वर्षाकाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यतीत हो जाने पर भी सब प्राणियों के जीने तथा खेतों को सींचने के लिए सब ओर पानी भरा रहेगा।"

पृथ्वी के ऐसे वचन सुनकर राजा पृथु ने सब पर्वतों को अपने धनुष की नोंक से उठाकर उत्तर दिशा में रख दिया। इससे बहुत-सा स्थान खाली हो गया। फिर उन्होंने गड्ढेवाले स्थानों को छोटे-छोटे पर्वत रखकर पाट दिया। अतः वहाँ की धरती भी समतल हो गई। इसके अनन्तर राजा पृथु ने बहुत से नगर तथा गाँव भी बसाये। जिन स्थानों पर पानी की आवश्यकता थी वहाँ तालाब, बावली, कुएँ आदि बनवा दिए। उस समय गौरूप पृथ्वी ने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा—"हे पृथ्वीपति! अब आप मुझे दुहना आरम्भ करें। परन्तु दुहने से पूर्व दुहने के पात्र तथा बछड़ों को अलग-अलग बनावें ताकि मुझमें से अनेक वस्तुएँ निकलें।" पृथ्वी की बात सुनकर राजाने तदनुसार ही आचरण किया। सर्वप्रथम भृगु तथा दुर्वासा आदि ऋषियों ने पृथ्वी दूहा। उस दोहन-क्रिया के कारण वेद की उत्पत्ति हुई। उसे देखकर ब्राह्मणों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हमें तो केवल इसी की आवश्यकता है।" तत्पश्चात् देवता, दैत्य, गन्धर्व तथा राजा पृथु आदि ने गौरूप पृथ्वी को दुहकर अनेक प्रकार के फल, अन्न एवं औषधि आदि आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त किया।

हे विदुर! पृथ्वी कामधेनु के समान है। अतः सब लोगों ने उसे अपना इच्छापूर्वक दुहकर उससे भाँति-भाँति की इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कीं। तदनन्तर देवता तथा ऋषियों ने पृथ्वी को यह आशीर्वाद दिया कि पर्वत तथा समुद्रादि का भार तुझे नहीं व्यापेगा; परन्तु जब साधु-सन्तों को दुःख पहुँचानेवाले अधर्मी जन तेरे ऊपर अपने चरण रक्खेंगे, उस समय तू उनके भार से दुखी हो जावेगी। ऐसी स्थिति आने पर श्री नारायणजी स्वयं अवतार लेकर अधर्मियों को मारेंगे तथा तेरा बोझ दूर हटायेंगे। देवता तथा ऋषियों से यह वरदान प्राप्त करने के पश्चात् पृथ्वी अपना स्वरूप धारण कर, राजा पृथु को आशीर्वाद दे, अपने स्थान को चली गई। तब अन्न, फल, औषधि आदि के प्रकट हो जाने से संसारी जीव भी अत्यन्त प्रसन्न तथा धर्मपरायण होकर नगर एवं गाँवों में रहने एवं राजा पृथु को आशीर्वाद देने लगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा पृथु का सौ अश्वमेध यज्ञ करना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! जब सब प्रजा सुखी हो गई तब राजा पृथु ने ऋषि-मुनि एवं ब्राह्मणों को बुलाकर सौ अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया। फिर वे स्वायम्भुव मनु के स्थान ब्रह्मावर्त्त में जाकर निष्काम यज्ञ करने लगे। राजा पृथु के धर्म के प्रताप से संसार में घी, दूध एवं दही की नदियाँ बहने लगीं। समुद्र एवं पर्वतों में रत्न, मोती, सोना, चाँदी, ताँबा तथा अन्य धातुओं की खानें प्रकट हो गईं। कोई भी प्राणी दुखी तथा दरिद्र नहीं रह गया। राजा ने यज्ञ के शास्त्रसम्मत श्यामकर्ण घोड़े को अपनी सेना के साथ दिग्विजय करने के लिए भेजा। वह घोड़ा सातों द्वीपों में घूमकर वापस लौट आया, पर किसी भी राजा की ऐसी सामर्थ्य नहीं हुई, जो वह उस घोड़े को बाँधकर रख लेता। संसार के सभी राजा महाराजा पृथु की अधीनता स्वीकार कर, उन्हें कर देने लगे। इस प्रकार राजा पृथु के निन्यानबे यज्ञ सानन्द सम्पन्न हो गये।

जब राजा पृथु ने सौंवा यज्ञ आरम्भ करके अपना घोड़ा छोड़ा, उस समय देवताओं के राजा इन्द्र के हृदय में यह भय उत्पन्न हुआ कि राजा पृथु इस यज्ञ को सम्पूर्ण कर कहीं मेरा इन्द्रासन न छीन लें। इस भय से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने पृथु के घोड़े को बाँध लेना उचित समझा। तब इन्द्र ने अपने पुत्र को यह आज्ञा दी कि तू राजा पृथु के घोड़े को पकड़कर हमारे पास ले आ। पिता की आज्ञा पाकर इन्द्र का पुत्र उस घोड़े को पकड़ने के लिए गया, परन्तु उसके साथ बड़े-बड़े योद्धा रक्षकों को देखकर, भयभीत हो, घोड़े को बिना पकड़े ही इन्द्र के पास लौट आया तथा इस प्रकार कहने लगा कि हे पिता ! उस घोड़े को पकड़ने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। यदि आप में शक्ति हो तो आप ही उसे पकड़ लाएँ। अपने पुत्र के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र ने अपने मन में यह विचार किया कि राजा पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा बलवान् हैं, उनके सामने पहुँचकर घोड़ा ले आना कोई हँसी-खेल नहीं है; अतः मुझे कुछ छल-कपट करके घोड़े को लाना चाहिए। यह विचारकर देवराज इन्द्र योगी का स्वरूप धारणकर घोड़े के पास जा पहुँचे। राजा पृथु के सेवकों ने उसे योगी समझकर घोड़े के समीप जाने से नहीं रोका।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् वे घोड़े की लगाम पकड़कर उसे आकाश मार्ग द्वारा अपने लोक को ले चले। सैनिकों ने जब यह हाल देखा तो राजा के पास पहुँचकर इस प्रकार प्रार्थना की कि हे महाराज! एक मनुष्य योगी का स्वरूप धारण कर यज्ञ के घोड़े को आकाश में उड़ाकर ले गया है। सेवकों द्वारा यह समाचार पाकर राजा पृथु ने ब्राह्मणों से कहा—"हे महानुभावो! आप लोग अपनी ज्ञानदृष्टि से देखकर मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि जो योगी हमारा घोड़ा चुरा ले गया है, वास्तव में वह कौन है?" तब ब्राह्मणों ने अपनी योग दृष्टि द्वारा सब हाल जानकर राजा को उत्तर दिया—"हे पृथ्वीपति! आपके घोड़े को योगी-वेषधारी देवराज इन्द्र यह विचार कर चुरा ले गये हैं कि आपके सौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर कहीं उनका इन्द्रासन न छिन जाय।" यह सुनकर राजा पृथु ने कहा—"मुझे इन्द्रासन प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं है, फिर भी इन्द्र मेरे यज्ञ को पूर्ण नहीं होने देना चाहते हैं, परन्तु मैं अपने घोड़े को अवश्य लौटाऊँगा।" ब्राह्मणों से इस प्रकार कहकर राजा ने अपने पुत्र 'विजिताश्व' को यह आज्ञा दी कि तुम अभी जाकर हमारा घोड़ा ले आवो। इस कार्य के लिए उन्होंने विजिताश्व के साथ अत्रि मुनि को भी भेज दिया। तब विजिताश्व एवं अत्रि मुनि इन्द्रलोक के निकट जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर ज्योंही उन्होंने इन्द्र के हाथों में घोड़े की लगाम देखी, त्योंही राजकुमार विजिताश्व ने अपने धनुष पर सरवन्त नामक बाण चढ़ाकर इन्द्र को मारने की इच्छा प्रकट की। राजकुमार के इस मनोभाव को पहिचानकर इन्द्र अत्यन्त भयभीत हो, घोड़े को वहीं छोड़कर अन्तरधान हो गये। तब विजिताश्व उस घोड़े को लेकर राजा पृथु के पास लौट आया और उन्हें इन्द्र के भागने का सब समाचार कह सुनाया।

घोड़ा छीने जाते समय इन्द्र ने अपनी माया द्वारा कई बार अँधेरा उत्पन्न किया था तथा कई बार घोड़े को चुराया था, परन्तु राजकुमार के सामने उनकी एक न चली। राजा पृथु को जब यह ज्ञात हुआ कि इन्द्र ने ऐसी हरकत की है; तो उन्होंने क्रुद्ध हो, इन्द्र को मारने के लिए अपना धनुष-बाण उठा लिया। उस समय यज्ञ करानेवाले ऋषिमुनियों ने उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा—"हे पृथ्वीपति! आपने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया है; अतः जब तक वह संकल्प पूरा न हो जाय, तब तक आपको किसी पर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध करने से संकल्प में विघ्न उपस्थित हो जायगा। अमृत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पीने के कारण इन्द्र की मृत्यु नहीं हो सकती है। अतः आप उसके ऊपर इस प्रकार क्रोध न करें।" ऋषि-मुनियों द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर भी जब राजा का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब उस समय नारदजी-सहित ब्रह्माजीने यज्ञशाला में पहुँचकर राजा पृथु को इस प्रकार समझाया—"हे पृथ्वीपति ! इन्द्र की मृत्यु आपके द्वारा न होगी। यदि आपको इन्द्रासन प्राप्त करने की इच्छा हो तो आप उसे इन्द्रलोक से निकाल कर वहाँ के राज्य का स्वयं उपभोग करें; परन्तु यदि आप मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखते हों तो सौवाँ यज्ञ करना बन्द कर दें। आपने अब तक जितने यज्ञ किए हैं, उन्हीं के प्रताप से आपको श्री नारायणजी दर्शन देंगे तथा आप मुक्तिपद की प्राप्त करेंगे। आपके यज्ञ करने का वृत्तान्त सुनकर अन्य संसारी लोग भी शुभ कर्म करेंगे।" इस प्रकार ब्रह्माजी के समझाने पर राजा पृथु ने अपना क्रोध शान्त कर लिया। तब ब्रह्माजी एवं नारदजी अपने लोक को चले गये। तत्पश्चात् राजा पृथु ने ऋषि-मुनियों एवं ब्राह्मणों से इस प्रकार कहा—"हे महानुभावो ! मेरे निन्यानबे यज्ञ सानन्द समाप्त हुए हैं। अब मैं सौवाँ यज्ञ नहीं करूँगा आप यज्ञकुण्ड में पूर्णाहुति डाल दीजिए।"

राजा पृथु के यह वचन सुनकर जिस समय ऋषियों ने मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति डाली, उस समय ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी के पास पहुँचकर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! इन्द्र के समक्ष कोई अन्य व्यक्ति सौ यज्ञ सम्पूर्ण नहीं कर सकता। परन्तु भक्तराज पृथु का संकल्प भी मिथ्या नहीं होना चाहिए। आप संसार के स्वामी तथा सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, अतः इस समय जो उचित समझें, वह करें।" ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुनकर श्री नारायणजी गरुड़ पर सवार हो, पूर्णाहुति डालते समय राजा पृथु की यज्ञशालामें जा पहुँचे। उनके दर्शन प्राप्त करते ही राजा पृथु तथा अन्य सब ऋषि-मुनि, ब्राह्मण आदि उठकर खड़े हो गये तथा श्री नारायणजी की स्तुति करने लगे।"

बीसवाँ अध्याय

राजा पृथु का सब देवताओं को अपने निवास-स्थान पर आमन्त्रित करना

शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! राजा पृथु द्वारा स्तुति किए जाने पर श्री नारायणजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे राजन् ! तुम्हारे सभी यज्ञ सम्पूर्ण हुए। हमें इससे बड़ी प्रसन्नता है। तुम हमसे कुछ वरदान माँग लो। तुमने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्र का अपराध क्षमा कर दिया है, अतः अब उससे किसी प्रकार का विरोध मत रखना। विरोध किसी से भी क्यों न किया जाय—वह बुरा ही होता है। सब प्राणियों में एक ही आत्मा का निवास है। वह शुभ-अशुभ कर्म करने से भला-बुरा कहलाने लगता है। अतः तुम उस ओर न जाकर अपनी प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करो। सनकादिक ऋषि आकर तुम्हें ज्ञानोपदेश देंगे।" श्री नारायणजी के ऐसे वचन सुनकर राजा पृथु ने उनकी पहले तो विधि-पूर्वक पूजा की, तत्पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे दीनबन्धो! मेरी किसी के साथ शत्रुता नहीं है। न मुझे इन्द्रलोक की इच्छा है और न किसी अन्य वस्तु की ही है। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि मेरे हृदय में आपके चरणकमलों के प्रति भक्ति तथा प्रीति बनी रहे। आप अपने भक्तों को लक्ष्मीजी से भी अधिक प्यार करते हैं। जिस मनुष्य ने आपकी भक्ति के सुख को प्राप्त कर लिया है, वह फिर किसी संसारी मोह-माया में नहीं फँसता। अतः मुझे आपके चरणों की भक्ति तथा स्नेह की ही आवश्यकता है।"

राजा की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री नारायणजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे राजन्! तुम मेरे परम भक्त हो, अतः तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी।" इस प्रकार वरदान देकर जब श्री नारायणजी वैकुण्ठ लोक को पधारे तथा ब्रह्माजी भी अपने लोक को चले गये तब राजा ने भी यज्ञ को सम्पूर्ण कर ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर बिदा कर दिया। तदनन्तर राजा पृथु इन्द्र से मैत्री भाव रखकर धर्म एवं नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उनके शासन में ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों ने भी कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। सभी छोटे-बड़े जीव आनन्दपूर्वक अपना जीवन-यापन करते थे। कुछ समय पश्चात् राजा पृथु ने अपने मन में यह विचार किया, यदि हमारे राज्य में चारों वर्णों के सभी छोटे-बड़े लोग श्री नारायणजी का स्मरण एवं कीर्तन करें तथा अशुभ कर्मों का परित्यागकर साधु-ब्राह्मणों की सेवा करें तो बहुत अच्छा रहेगा। ऐसा निश्चयकर उन्होंने सातों द्वीपों के राजाओं, ऋषि-मुनियों, महात्माओं, ब्राह्मणों तथा चारों वर्णों के लोगों को निमन्त्रण भेजकर अपने यहाँ बुलवाया। कुछ दिनों में जब वे सब आ एकत्रित हुए तब राजा ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। वे सब भी राजा का आतिथ्य ग्रहण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इक्कीसवाँ अध्याय

राजा पृथु का सब राजाओं तथा मनुष्यों से भगवद्भजन के प्रचार के लिए कहना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! राजा पृथु ने शिष्टाचार के उपरान्त सब राजाओं ऋषि-मुनियों तथा अन्य लोगों को सभा में बैठाकर इस प्रकार कहा—"हे महानुभावो ! मैं आपसे एक वस्तु माँगता हूँ। उसके लिए कोई दबाव नहीं डालना चाहता। यदि आप लोग प्रसन्नतापूर्वक उसे देना स्वीकार करेंगे तो मैं आपका बहुत उपकार मानूँगा।" महाराज पृथु के ऐसे विनम्र वचन सुनकर अन्य राजाओं ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे पृथ्वीपति ! हमारे तन, मन, धन, स्त्री, पुत्र आदि सर्वस्य आपके चरणों पर न्योछावर हैं। आप जो आज्ञा देंगे, हम उसी कार्य को करेंगे।" तब राजा पृथु ने कहा—"मैं यह चाहता हूँ कि सम्पूर्ण द्वीपों के निवासी जितने भी छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष हैं, वे सब श्री नारायणजी का भजन, पूजन, तप, ध्यान एवं स्मरण किया करें। जिस राजा के देश की प्रजा जो पाप अथवा पुण्य करती है, उन सबका छठवाँ भाग राजा को प्राप्त होता है। अतः मैं यह चाहता हूँ कि सब लोगों को श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति एवं प्रीति अवश्य रखनी चाहिए। चारों वर्णों को श्रीहरि के अवतार एवं लीलाओं की कथा का श्रवण करना चाहिए। किसी भी वर्ग के लिए श्री नारायणजी की भक्ति करना मना नहीं है। चारों वर्णों में जो भी व्यक्ति श्रीहरि का सच्चे हृदय से स्मरण करता है, श्री नारायणजी उस पर कृपालु होकर उसे चारों पदार्थ-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। श्रीहरि-भक्तों को श्रेष्ठ पदवी की प्राप्ति होती है। अन्य राजाओं के शासन-काल में वर्णों तथा आश्रमों के धर्म अलग-अलग प्रसिद्ध थे। परन्तु अब मेरी यह इच्छा है कि श्री नारायणजी का स्मरण करना तथा उन्हीं की भक्ति को अपने हृदय में स्थान देना, यह सब लोगों का धर्म होना चाहिए। अतः हे राजागण ! आप लोग अपनी-अपनी प्रजा को इसी प्रकार के धर्म का उपदेश करें। खेतों में जो अन्न उत्पन्न होता है उसका छठवाँ भाग राजा को प्रजा से लेना चाहिए, परन्तु मैं उस अंश को भी प्रजा के लिए छोड़ देता हूँ। सब लोग उस अंश के द्वारा हवन तथा दान आदि किया करें। उस अंश के अतिरिक्त जिस किसी व्यक्ति को और अधिक धन की आवश्यकता हो वह मुझसे ले जाय। जो लोग शुभ कर्मों में धन खर्च करेंगे, मैं उनसे बहुत प्रसन्न रहूँगा। जो धन धर्म में व्यय हो अथवा किसी दूसरे के काम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवे, उसीको श्रेष्ठ समझना चाहिए। श्री नारायणजी की भक्ति करने से मनुष्य की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा मृत्यु के पश्चात् वैकुण्ठ लोक के सुख की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि छिपी रहती है, परन्तु उपाय किये बिना प्राप्त नहीं होती, उसी प्रकार श्री नारायणजी सबके हृदय में विराजमान हैं, परन्तु वे भक्ति एवं ज्ञान प्राप्त हुए बिना दिखाई नहीं देते हैं। श्री नारायणजी का जड़-मुख अग्नि तथा चैतन्य-मुख ब्राह्मण हैं। अतः ब्राह्मणों को भोजन कराने से श्री नारायणजी जितने अधिक प्रसन्न होते हैं, उतने यज्ञ अथवा हवन करने से भी नहीं होते। मैं उन ब्राह्मणों की चरण-रज को अपने मस्तक पर धारण करता हूँ, जिनकी सेवा करने से मनुष्य को मनोरथ की प्राप्ति होती है। जिस मनुष्य के ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न हो, उसके ऊपर श्री नारायणजी को प्रसन्न समझना चाहिए। इसके विपरीत जिसके ऊपर ब्राह्मण क्रोध करें, उस व्यक्ति को श्री नारायणजी का शत्रु समझना चाहिए।"

राजा पृथु के इन शब्दों को सुनकर ब्राह्मणों तथा ऋषियों ने आशीर्वाद देते हुए इस प्रकार कहा—"हे राजन्! आप जैसा धर्मात्मा राजा पाकर हमारे सब दुःख दूर हो गये हैं।" इसके अनन्तर अन्य सभी राजाओं ने अपने-अपने देश में जाकर राजा पृथु की आज्ञानुसार धर्म प्रचार करना आरम्भ कर दिया। धर्मात्मा राजा पृथु के उपदेश के कारण जब सभी संसारी लोग श्री नारायणजी का स्मरण एवं कीर्तन करने लगे। उस समय एक दिन ब्रह्मा की सभा में सनकादिक ऋषियों ने इस प्रकार कहा—"हे पितामह! मृत्युलोक में राज पृथु ऐसा उत्पन्न हुआ है कि उसके उपदेश के कारण सम्पूर्ण संसार भागवत धर्म फैल गया है। उसके धर्म प्रचार से सभी लोग कृतार्थ हो जायँगे। अब हम लोग भी उसे देखने के लिए जा रहे हैं।" इतना कहकर सनकादिक चारों भाई राजा पृथु से भेंट करने के लिए उसके राजभवन में जा पहुँचे। आकाश मार्ग से आते हुए सूर्य के समान तेजस्वी उन चारों भाइयों को देखकर राजा पृथु अपनी सभा सहित उठकर खड़े हो गये फिर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक दण्डवत् करने के उपरान्त स्तुति करने लगे। सिंहासन पर सम्मानसहित बैठाने के उपरान्त राजा ने उनके चरण धोये तथा विधिपूर्वक चरणामृत लेने के पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे महात्मन्! आपने बिना बुलाये यहाँ आकर मुझे कृतार्थ कर दिया है। मैं समझता हूँ कि आज मेरे किसी पूर्वजन्म का पुण्य उदय हुआ है।" राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के ऐसे दीन वचन सुनकर सनत्कुमारजी ने कहा—"हे राजन्! श्री नारायणजी के चरण-कमलों में तेरी अटल प्रीति सुनकर ही हम यहाँ आये हैं।" तब राजा पृथु ने उन्हें अपने ऊपर अत्यन्त दयालु देखकर पूछा—"हे दीनदयालु! संसारी मनुष्य जन्म-मरण से किस प्रकार छूट सकते हैं, मुझे आप यह बताने की कृपा करें?" सनत्कुमारजी ने कहा—"हे राजन्! तुमने यह बात संसार के कल्याण के लिए पूछी है। अतः हम तुम्हें इसका उपाय बतलाते हैं। सुनो, जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर अपने अन्तःकरण में श्री नारायणजी के स्वरूप एवं चरणों का ध्यान रखता है, जिह्वा से श्रीहरि का स्मरण करता है तथा कानों से उनकी लीला-कथाओं को प्रेमपूर्वक सुनता है, वह आवागमन से छूट जाता है तथा श्री नारायणजी के चरणों में उसकी दृढ़ भक्ति बनी रहती है। शरीर, घर, स्त्री, पुत्रादि को अपना समझकर उनसे सांसारिक प्रीति रखने को दुःख की फाँसी के समान समझना चाहिए। श्री नारायणजी के चरणों का स्मरण करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में चित्त लगाने से ज्ञान नष्ट हो जाता है। यह जानकर मनुष्य को सदैव यही उचित है कि वह कुसङ्ग से दूर रहकर सदैव सन्त-महात्माओं की सत्सङ्गति करे। इसी में उसका कल्याण है। इसके अतिरिक्त मुक्ति पाने का अन्य कोई उपाय नहीं है।"

श्री सनत्कुमारजी के मुख से यह ज्ञानोपदेश सुनकर राजा पृथु ने प्रार्थना की—"हे तारण-तरण प्रभो! जिस प्रकार आप कृपाकर यहाँ पधारे हैं, उसी प्रकार दयालु होकर आप यह आशीर्वाद भी दीजिए कि मेरी सम्पूर्ण प्रजा श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति करने लगे। हे स्वामी! आपने मुझे जो ज्ञान दिया है उसके बदले में मैं आपको कौन-सी वस्तु दूँ? मेरा सम्पूर्ण राज्य तथा धन ब्रह्मणों एवं वैष्णवों के निमित्त है। उनसे जो बच रहता है, उसे मैं अपने काम में लाता हूँ। इस प्रकार मैं आपको कुछ भी देने में असमर्थ हूँ। मैं आपका सदैव ऋणी बना रहूँगा। अतः आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतलावें, जिससे मैं इस ऋण से उऋण हो सकूँ।"

तब सनत्कुमारजी ने कहा—"हे राजन्! कोई व्यक्ति किसी का ऋणी होकर तथा ऋण को प्राप्त करनेवाला यह कह दे कि हमने अपना ऋण छोड़ दिया तो वह उससे उऋण हो जाता है। इसी प्रकार हम भी अपना ऋण छोड़कर तुझे उऋण किए देते हैं।" इतना कहकर सनकादिक ऋषि ब्रह्मलोक को चले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाईसवाँ अध्याय

राजा पृथु तथा अरुचि का तपस्या करने के हेतु वन-गमन

मैत्रेयजी बोले–"हे विदुर ! सनकादिक के चले जाने के उपरान्त राजा पृथु ने बहुत समय तक धर्मपूर्वक प्रजा का पालन एवं राज्य किया। वे सदैव साधु-ब्राह्मणों की सेवा करते थे तथा श्री नारायणजी की भक्ति में लीन रह-कर उनके लीला-चरित्रों का कीर्तन करते थे। उनकी अरुचि नामक पत्नी के गर्भ से विजिताश्व आदि पाँच पुत्रों का जन्म हुआ था। कुछ दिनों पश्चात् राजा ने अपने मन में यह विचार किया कि राज्य, धन आदि सदैव स्थिर नहीं रहते और न मृत्यु के पश्चात् ये किसी के साथ ही जाते हैं। अतः श्रेष्ठ यही है कि मैं इनसे विरक्त होकर वन में चला जाऊँ तथा वहाँ अपने परलोक को सुधारने के लिए श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करूँ। यह निश्चय-कर राजा पृथु ने अपना राजसिंहासन बड़े पुत्र विजिताश्व को सौंप दिया तथा स्वयं संसारी माया-मोह से अपने मन को विरक्त कर अपनी पत्नी अरुचि के साथ वन में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करने लगे। राजा पृथु के इस प्रकार वन जाने पर उनकी प्रजा को बहुत खेद हुआ।"

तेईसवाँ अध्याय

राजा पृथु का शरीर-त्याग एवं अरुचि का सती होना

मैत्रेयजी ने कहा–"हे विदुर ! वन में पहुँचकर राजा पृथु ने ग्रीष्मकाल में अपने शरीर को पंचाग्नि से तपाया, वर्षाकाल में मैदान में बैठे रहे तथा शीतकाल के भीतर खड़े रहकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान किया। इस प्रकार अपनी पत्नी सहित तपस्या करते हुए राजा को जब बहुत समय व्यतीत हो गया तब एक दिन उन्होंने अपने हृदय में यह विचार किया कि अब इस शरीर को त्यागकर वैकुण्ठ लोक को चलना चाहिए। ऐसा निश्चय करके एक दिन राजा पृथु ने श्री नारायणजी का ध्यान धर, योगाभ्यास द्वारा ब्रह्माण्ड के मार्ग से अपने प्राणों को त्याग दिया। उस समय उनकी पत्नी अरुचि ने पहिले तो बहुत विलाप किया, तत्पश्चात् धैर्य धारण करके उसने वन में से लकड़ी एकत्रित कर चिता बनाई। उस चिता पर राजा के मृत शरीर को रखकर अग्नि लगा दी तथा चिता की सात परिक्रमा करने के उपरान्त अपने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी–"हे स्वामी ! मैं आपके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Sahitya Kosha

विना किसी अन्य स्थान पर नहीं रह सकती हूँ। अतः आप जहाँ जा रहे हैं, वहीं मुझे भी अपनी सेवा के लिए साथ ले चलिए। आपकी सेवा करने से मेरा परलोक सुधर जायेगा।" इस प्रकार कहकर रानी अरुचि भी उस चिता में कूद कर राजा पृथु के साथ सती हो गई। उस समय एक रत्नजटित विमान, जिसमें मखमली बिछौने बिछे हुए थे तथा मोतियों की झालरें लगी हुई थीं, वैकुण्ठ लोक से वहाँ आ पहुँचा। उस पर राजा पृथु अपनी पत्नी सहित सवार होकर वैकुण्ठ लोक को चले गये।"

चौबीसवाँ अध्याय

देवताओं का पृथु की स्तुति एवं विजिताश्व का धर्मपूर्वक राज्य करना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! राजा पृथु जिस समय अपनी पत्नी सहित विमान में बैठकर वैकुण्ठ लोक में पहुँचे, उस समय देवतागण परस्पर उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि इस प्रकार का धर्म-राज्य, प्रजा-पालन तथा तपस्या अन्य किसी राजा ने नहीं किया है। अरुचि के समान पतिव्रता स्त्री भी और कहीं नहीं मिलेगी। राजा पृथु ने धर्म की ऐसी वृद्धि की थी कि सातों द्वीपों के सम्पूर्ण मनुष्य श्री नारायणजी के भक्त हो गये थे। वे अधर्मियों तथा पापियों को दण्ड देते थे। वे साक्षात् नारायणजी के अवतार थे। संसारी राजाओं को धर्म का ज्ञान देने तथा पृथ्वी पर नगर, गाँव आदि बसाकर प्रजा को सुख पहुँचाने के लिए ही उन्होंने शरीर धारण किया था।"

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर! राजा पृथु का ज्येष्ठ पुत्र विजिताश्व जब राजसिंहासन पर बैठा, उस समय उसने अपने चारों भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य बाँट दिया तथा स्वयं सिंहासनारूढ़ होकर धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में सम्पूर्ण प्रजा सुखपूर्वक रहती थी।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजा परीक्षित! एक समय वशिष्ठजी ने तीनों प्रकार की अग्नि (१—ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ करने की अग्नि, २—भोजन बनाने की अग्नि, ३—काष्ठ में रहनेवाली अग्नि) को यह शाप दिया था कि तुम मर्त्यलोक में जाकर मनुष्य का शरीर धारण करो। उस शाप के कारण उन तीनों प्रकार की अग्नियों ने इस भूतल पर आकर राजा विजिताश्व के घर, उनकी 'शिखण्डिनी' नामक पत्नी के गर्भ से जन्म लिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था। राजा विजिताश्व ने उनके नाम, १—पावक, २—पुमान्, तथा ३—शुचि रक्खे थे। कुछ दिनों तक संसार में रहने के उपरान्त वे अग्नियाँ पुनः अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हो गईं। राजा विजिताश्व की 'प्रसूति' नामक दूसरी पत्नी के गर्भ से 'हविर्धान' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। उसका विवाह 'हविर्धानी' नामक अग्नि की पुत्री के साथ हुआ था। 'हविर्धानी' के गर्भ से 'प्राचीनबर्हिष' नामक छः पुत्रों ने जन्म लिया था। प्राचीनबर्हिष की परम सुन्दरी 'सत्यव्रती' नामक पत्नी के गर्भ से एक-से स्वरूपवाले दस पुत्रों का जन्म हुआ, उन्हें 'प्रचेता' कहा जाता है। उन दसों बालकों का शरीर अवश्य पृथक्-पृथक् था, परन्तु सबका स्वरूप एवं ज्ञान एक जैसा था, इसी लिए उन सब का नाम प्रचेता रक्खा गया था। उनमें से यदि किसी एक बालक को बुलाया जाय तो दसों बालक बोलने लगते थे। उनमें से एक बालक जो काम करता था, उसी को दसों करने लगते थे। किसी एक के बीमार होने पर दसों बीमार हो जाते थे। देखने में तो वे अलग-अलग थे, परन्तु बुद्धि, प्रारब्ध, कर्म, मृत्यु एवं जीवन सबका एक जैसा था। जिस समय उन्होंने अपने पिता की आज्ञा पाकर वन में दस सहस्र वर्षों तक श्री नारायणजी की तपस्या की थी, उस समय श्री शिवजी के साथ उनकी बहुत ज्ञान-वार्ता हुई थी।

पच्चीसवाँ अध्याय

श्री शिवजी एवं प्रचेताओं का वार्तालाप

इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेयजी से कहा—"हे मैत्रेयजी! महादेवजी तथा प्रचेताओं में जो ज्ञान-चर्चा हुई थी, अब आप उसका वर्णन करने की कृपा करें।" मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर! जब प्रचेता लोग उत्पन्न हुए, उस समय प्राचीनबर्हिष ने उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम लोग वन में जाकर श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करो। उनके दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् तुम संसार में सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य करना। प्राचीनबर्हिष के यह वचन सुनकर प्रचेता लोग अपने घर से निकल, पश्चिम दिशा में समुद्र के तीर पर जा पहुँचे, वहाँ उन्हें एक रमणीक स्थान दिखाई दिया, जहाँ पास ही एक सरोवर भी था। उसे देखकर प्रचेताओं ने परस्पर यह विचार किया कि हम लोग न तो श्री नारायणजी को जानते हैं और न उनका तप एवं स्मरण करने की क्रिया ही जानते हैं, ऐसी स्थिति में हमें किस प्रकार से अपने पिता की आज्ञा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का पालन करना चाहिए? वे लोग जिस समय ऐसा विचार कर रहे थे, उसी समय उन्हें किसी मनुष्य की बोली सुनाई देने लगी। तब वे परस्पर यह कहने लगे कि यहाँ हमें कोई आदमी तो दिखाई नहीं दे रहा है, फिर आवाज कहाँ से आ रही है? वे इसी चिन्ता में मन थे कि तब तक उस तालाब के भीतर से श्री शिवजी प्रकट हो गये। उनके साथ देवता तथा गन्धर्व स्तुति करते चले आ रहे थे। जब प्रचेताओं ने श्री शिवजी को नहीं पहिचाना और उसी प्रकार बैठे रहे, उस समय शिवजी ने उनके समीप आकर कहा—"हे प्रचेताओ! हम शिव हैं। हम तुम लोगों को ज्ञानोपदेश करने आये हैं। तुम लोग इस प्रकार श्री नारायणजी का तप करो, तब तुम्हें उनके दर्शन प्राप्त हो जायँगे। हम श्री नारायणजी को जैसा समझते हैं, वैसा ही श्री नारायणजी के भक्तों से भी स्नेह रखते हैं। अतः अब हम तुम्हें हरिभक्त समझकर ज्ञानोपदेश करते हैं।"

शिवजी के ऐसे वचन सुनकर सभी प्रचेता आनन्दित हो, उठकर खड़े हो गये। उन्होंने सर्वप्रथम शिवजी को दण्डवत्-प्रणाम किया, तदुपरान्त उन्हें सम्मानपूर्वक आसन देकर स्तुति करने लगे। तब श्री शिवजी ने उन्हें श्री नारायणजी की स्तुति में प्रधान "हंस गुह्य स्तोत्र" सिखलाकर इस प्रकार कहा—"हे प्रचेताओ! तुम लोग प्रतिदिन प्रातः एवं सन्ध्या काल में इस स्तोत्र का पाठ कर श्री नारायणजी की स्तुति एवं उनके चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान किया करो। इस प्रकार तुम्हें शीघ्र ही श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त होंगे। हे प्रचेताओ! हम हरि-भक्तों तथा ज्ञानियों का दर्शन किया करते हैं। जो लोग अपने अज्ञान के कारण श्री नारायणजी का स्मरण करना नहीं जानते, उन्हें हम ज्ञानोपदेश देकर सौ जन्म तक के लिए कृतार्थ कर देते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों को वेद तथा शास्त्रों में बताये गये स्वधर्म पर दृढ़ रहना चाहिए। उन्हें पाप तथा अधर्मों से कभी सम्पर्क नहीं रखना चाहिए। जो प्राणी ऐसा आचरण करते हैं, वे चतुर्भुज रूपधारी श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार का धर्म तथा हरि-भजन करनेवाले प्राणी अन्य किसी से अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते।" इस प्रकार प्रचेताओं को ज्ञानोपदेश कर श्री महादेवजी कैलाश को चले गये।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छब्बीसवाँ अध्याय

नारद ऋषि की प्रचेताओं के पिता प्राचीनबर्हिष से भेंट

मैत्रेयजी बोले—"हे विदुर ! प्रचेताओं ने महादेवजी द्वारा सन्त-वैष्णवों की प्रशंसा एवं श्री नारायणजी के तप करने का उपाय सुनकर प्रसन्न हो हंस गुह्य स्तोत्र का पाठ तथा तपस्या करने लगे। श्री नारायणजी का ध्यान धरते हुए, जब उन्हें दस सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तब श्री नारायणजी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना दर्शन तथा वरदान देकर कृतार्थ किया। परन्तु इतने पर भी वे लोग सांसारिक व्यवहार को मिथ्या समझकर निरन्तर तपस्या में ही लगे रहे। उधर उनके पिता प्राचीनबर्हिष ने बहुत समय तक सांसारिक सुख एवं राज्य उपभोग करने के पश्चात् विचार किया कि राज्य तथा धन श्री नारायणजी की कृपा से प्राप्त होता है। उस धन को यदि सांसारिक कार्यों में खर्च किया जाय तो उससे वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती है। इस लिए मुझे यह धन यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मों में व्यय करके अपना परलोक सुधारना चाहिए। ऐसा निश्चय करके राजा ने यज्ञ तथा दान कारना आरंभ किया। शास्त्रों के अनुसार जिन-जिन स्थानों पर यज्ञ करना श्रेष्ठ कहा गया था, वहाँ-वहाँ उसने यज्ञ किये परन्तु इतने पर भी उसके मन को वैराग्य की प्राप्ति न हुई। वह सदैव इन्द्रलोक एवं स्वर्गलोक के सुख की कामना ही करता रहा।

राजा प्राचीनबर्हिष के मनोभाव को पहिचानकर देवर्षि नारदजी ने अपने हृदय में यह विचार किया कि राजा की सम्पूर्ण आयु यज्ञ करने में ही व्यतीत हुई जा रही है; परन्तु केवल यज्ञ करने से ही इसका परलोक नहीं बनेगा। यह राजा धर्मात्मा पृथु के वंश में उत्पन्न हुआ है। अतः इसे ज्ञानोपदेश देकर भवसागर से पार उतार देना चाहिए। ऐसा निश्चय कर श्री नारदजी मर्त्य-लोक में राजा प्राचीनबर्हिष के पास जा पहुँचे। मुनि को देखकर राजा ने श्रद्धा-सहित दंडवत् किया, तदुपरान्त उन्हें सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे मुने ! आज मेरा भाग्य उदय हुआ जो आप-जैसे महात्मा कृपाकर यहाँ पधारे हैं।" तब नारदजी ने हँसकर उत्तर दिया—"हे राजन्! सत्य बात तो यह है कि तू अपने बड़े सौभाग्य से ही इस मनुष्य-शरीर को प्राप्त कर भरत-खण्ड का राजा हुआ है। तूने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस कर्मभूमि में यज्ञ आदि अनेक धार्मिक कृत्य किए हैं। परन्तु मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचना आवश्यक है, जहाँ जाने के लिए उससे पहले निश्चय किया हो। यदि कभी मार्ग में चलते-चलते ही आयु पूर्ण हो जाय और वह अपने गन्तव्य स्थान पर न पहुँच सके तो उस स्थिति में मार्ग जनित परिश्रम की थकान के अतिरिक्त उसे और कोई लाभ नहीं होगा।" श्री नारदजी के इन शब्दों को सुनकर राजा ने अपने मन में आश्चर्यान्वित हो, यह विचार किया कि वेद तथा पुराणों में यज्ञ एवं दान का बहुत पुण्य कहा गया है। इससे बड़ा धर्म और कोई नहीं कहा गया है। फिर क्या कारण है जो नारदजी इस प्रकार कह रहे हैं। यह सोचकर राजा अपने हृदय में चिन्तित हो उठा।"

सत्ताईसवाँ अध्याय

राजा प्राचीनबर्हिष का उन जीवों का स्वरूप देखना, जिन्हें उसने यज्ञ में बलि दिया था

अन्तर्यामी नारदजी ने राजा के मन में उठनेवाले सन्देह को जानकर अपने हृदय में यह विचार किया कि हम जब तक राजा को कुछ भय नहीं दिखायेंगे, तब तक यह यज्ञ करने से विमुख न होगा। ऐसा सोचकर नारदजी ने अपने योगबल द्वारा उन सब पशुओं को, जिन्हें राजा प्राचीनबर्हिष ने यज्ञ में बलि दिया था, राजा के नेत्रों सम्मुख आकाश में लाकर खड़ा कर दिया। जब वे सब जीव राजा की ओर देखने लगे, तब नारदजी ने राजा से कहा—"हे राजन्! ये सब जीव तेरी ओर क्यों देख रहे हैं?" नारदजी के वचन सुनकर राजा प्राचीनबर्हिष ने ज्योंही आकाश की ओर अपने नेत्र उठाये, त्योंही उसने देखा कि जिन जीवों को उसने यज्ञ में बलि किया था, वे सब आकाश में खड़े हुए अत्यन्त क्रोधपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रहे हैं। यह दृश्य देखकर राजा अत्यन्त भयभीत हो गया और काँपते हुए दोनों हाथों को जोड़कर नारदजी से कहने लगा—"हे ऋषिराज! मैंने तो इन सब पशुओं को मारकर यज्ञ में हवन किया था, भला इस समय ये सब कहाँ से आ गये हैं और मेरी ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से क्यों देख रहे हैं? आप मेरे मन का सन्देह तथा भय दूर करने के लिए इसका कारण बताने की कृपा करें।" राजा के ऐसे वचन सुनकर नारदजी ने कहा—"हे राजन्! जिस प्रकार तुमने इन सब जीवों को मारकर यज्ञ में हवन किया था, उसी प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये सब पशु तुम्हें भी मारकर अपना-अपना बदला चुकायेंगे।" नारदजी के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजा अपने मन में यह विचार करने लगा कि तब तो मैंने जितने जीवों को मारा है, उतने ही जन्म लेकर इन सबके ऋण से उऋण होना पड़ेगा। हा! यह मुझसे बड़ा अपराध हुआ जो मैंने इन सबको मारा। इस प्रकार चिन्तित होने के पश्चात् राजा ने नारदजी से कहा—"हे महामुने! मेरे यहाँ जितने पण्डित, उपरोहित तथा मन्त्री आदि हैं, उन सबने मुझे यही बताया था कि यज्ञ करने से अधिक उत्तम अन्य कोई धर्म नहीं है। अतः उन सबके कथनानुसार ही मैंने यज्ञ किये थे और उस यज्ञ में इन पशुओं की बलि दी थी, परन्तु अब आप मुझे भयभीत कर रहे हैं। अतः आपके कहने का जो वास्तविक तात्पर्य हो, उससे मुझे अवगत कराने की कृपा करें।"

जिस स्थान पर नारदजी और राजा में इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था, उसी स्थान पर एक पिंजड़े में तोता तथा दूसरे पिंजड़े में मैना बन्दी बनकर टँगे हुए थे। राजा के वचन सुनकर नारदजी ने उनकी ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—"हे राजन्! यह तोता मैना से बारम्बार इस प्रकार कह रहा है कि तू मुझे इस पिंजड़े से निकाल दे। स्वतन्त्र होने पर मैं वन के पक्षियों के साथ विहार करूँगा। इसके उत्तर में यह मैना तोते से कह रही है कि हे तोते! मैं तो स्वयं यह चाहती हूँ कि कोई मुझे इस पिंजड़े से बाहर निकाल दे तो मैं भी अपने साथियों में जाकर आनन्द मनाती। इस प्रकार हे राजन्! ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे से पहिले उड़ने के लिए कहते हैं, परन्तु उड़ने की सामर्थ्य इन दोनों में से किसी के पास नहीं है।" नारदजी के उत्तर को सुनकर राजा ने कहा—"हे देवर्षि! ये दोनों तो पिंजड़े में बन्द हैं, तब भला एक दूसरे को कैसे निकाल सकते हैं? यदि इनमें से कोई एक भी पिंजड़े के बाहर होता तो दूसरे को निकालने का प्रयत्न कर सकता था।" राजा की बात सुनकर नारदजी बोले—"हे राजन्! जिस प्रकार ये दोनों तोता-मैना बन्दी हैं, और एक दूसरे को स्वतन्त्र करने की सामर्थ्य नहीं रखते, उसी प्रकार तुम्हारे पण्डित, उपरोहित तथा मन्त्री आदि भी इस संसाररूपी मायाजाल के पिंजड़े में बँधे हुए हैं, भला इनकी क्या सामर्थ्य है, जो ये तुम्हें इस सांसारिक माया-बन्धन से मुक्ति दिला सकें?"

नारदजी के मुख से ऐसा उपदेश सुनकर राजा प्राचीनबर्हिष ने अपने हृदय में विचार किया कि वास्तव में मुझे आज तक ऐसा ज्ञानी कोई नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिला। जिसका उपदेश सुनकर मुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ होता। ऐसा सोचकर राजा ने नारदजी से प्रार्थना की—"हे मुनिनाथ! अब आप मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाने की कृपा करें, जिससे मैं इन जीवों के हाथ से बचकर मुक्ति पद को प्राप्त कर सकूँ।" तब नारदजी ने कहा—"हे राजन्! हम तुमसे एक इतिहास कहते हैं, उसे सुनो! किसी 'पुरञ्जन' नामक राजा का 'अविज्ञात' नामक एक घनिष्ठ मित्र था। परन्तु किसी अन्य व्यक्ति को उनकी मित्रता के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। राजा के खाने, पीने, पहिनने, सुख तथा आराम के सम्बन्ध में अविज्ञात सदैव चिन्तित रहता था और उसे अधिक से अधिक सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता था। एक समय राजा पुरञ्जन अपने मित्र अविज्ञात का साथ छोड़कर किसी अन्य स्थान को चला गया। वह पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर—इन तीनों दिशाओं में भ्रमण करने लगा। उसे रहने के लिए कहीं भी इच्छित स्थान नहीं मिला। तब वह दक्षिण दिशा में जा पहुँचा। वहाँ एक स्थान पर उसे किले के समान एक अच्छा मकान दिखाई दिया। उस मकान के नौ दरवाजे थे तथा उसके चारों ओर नहर खुदी हुई थी। समीप ही वन, उपवन में फूल फूल रहे थे तथा वृक्ष फलों से लद रहे थे। अनेक प्रकार के पक्षी मीठे स्वरों में बोल रहे थे। राजा पुरञ्जन ने वहाँ सब प्रकार का सुख देखकर उस मकान में ठहरने की इच्छा की। जब वह भीतर पहुँचा तो उसने देखा कि एक परम सुन्दरी युवती स्त्री अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण धारण किए हुए टहल रही है तथा उसकी दस सेविकाएँ भी उसके साथ-साथ ही घूम रही हैं। उस स्त्री से थोड़ी दूर पर ही एक पाँच फणवाला सर्प दरवाजे के पास बैठा हुआ था। राजा पुरञ्जन की दृष्टि ज्योंही उस स्त्री पर पड़ी, त्योंही वह उसके ऊपर आसक्त हो गया।"

अट्ठाईसवाँ अध्याय

राजा पुरंजन का सुन्दरी से विवाह तथा विलास करना

नारदजी ने कहा—"हे राजा प्राचीनबर्हिष! जब राजा पुरञ्जन उस स्त्री पर आसक्त हो गया, तब उसके समीप पहुँचकर स्नेह-सिक्त वाणी में इस प्रकार कहने लगा—"हे सुन्दरी! देवकन्या तथा लक्ष्मी के समान तुम किसकी पुत्री अथवा किसकी पत्नी हो? तुम यहाँ किस लिए टहल रही हो? तुम्हारे इन नेत्ररूपी बाणों से पुरुषों का हृदय घायल हो जाता है। यह भवन किसने बनवाया है तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसमें और कौन रहता है ?" राजा के इन मीठे शब्दों को सुनकर उस स्त्री ने किंचित् मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"हे राजन् ! मैं अपने माता-पिता का नाम नहीं जानती हूँ। मुझे यह भी नहीं पता है कि मैं किसकी पुत्री हूँ और यहाँ कैसे आ पहुँची हूँ। मेरा विवाह अभी तक नहीं हुआ है। अतः मेरे हृदय में विवाह करने की अभिलाषा है। मुझे इस सम्बन्ध में भी कुछ पता नहीं है कि यह मकान किसने बनवाया है ? जब से मुझे ज्ञान हुआ है, तब से मैं यहीं पर रहती आई हूँ। जो व्यक्ति मेरे साथ विवाह करेगा, उसे भी इस मकान में रहना पड़ेगा। यह सर्प जो तुम देख रहे हो, वह मेरे द्वार की रक्षा करता रहता है।" सुन्दरी के ऐसे वचन सुनकर राजा पुरञ्जन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे प्राणप्रिये ! मैं तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए प्रस्तुत हूँ, तुम मुझे स्वीकार करो। मैं तुम्हारे साथ विवाह करके इस मकान में रहकर भोग-विलास करूँगा।" राजा के इन शब्दों को सुनकर सुन्दरी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"हे राजन् ! तुम्हारे जैसे स्वरूपवान् तरुण को देखकर कौन स्त्री मोहित न होगी ? तुमसे विवाह करने के लिए तय्यार हूँ।"

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप होने पर राजा ने उस सुन्दरी के साथ गान्धर्व रीति से विवाह कर लिया तथा उसी किले में रहकर भोग-विलास करने लगा। राजा इस प्रकार उस सुन्दरी के वश में रहने लगा कि उससे बिना पूछे कोई काम नहीं करता था तथा दिन-रात उसी की आज्ञा का पालन करता था। कुछ समय बाद उस स्त्री द्वारा जब बहुत से पुत्र-पुत्रियों की उत्पत्ति हुई तब राजा ने उनका यथा समय विवाह कर दिया। तदनन्तर एक दिन राजा पुरञ्जन उस स्त्री से बिना पूछे रथ पर आरूढ़ हो, शिकार खेलने के लिए वन में चला गया। वहाँ जाकर उसने बहुत से पशुओं की मृगया की। इधर राजा के इस प्रकार बिना पूछे चले जाने पर वह सुन्दरी रानी क्रुद्ध हो, मलिन वस्त्र धारण कर कोप-भवन में जा पड़ी। मृगया के उपरान्त भूखा-प्यासा, थका-हारा राजा जब अपने घर लौटकर आया तथा पानी पीने के पश्चात् दासियों से रानी का समाचार पूछा, उस समय दासियों ने यह उत्तर दिया कि हे महाराज ! न जाने रानी को आज कौन-सा दुःख हुआ है, जो वे अपने वस्त्राभूषणों को उतारकर पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं। दासियों के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा भयभीत हो, दौड़ा-दौड़ा रानी के पास जा पहुँचा और उसे बड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेम से पुकारने लगा। परन्तु क्रोध में भरी रहने के कारण उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उस समय रानी के क्रोध को देखकर राजा अत्यन्त विनती कर, उसके पैरों को दबाता हुआ इस प्रकार बोला—"हे प्राणप्रिये! तुम मुझसे बोलती क्यों नहीं हो? ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो मैंने तुम्हें नहीं दी है अथवा तुम्हारी ऐसी कौन-सी बात है, जिसे मैंने टाल दिया है? तुम्हारी यह दशा देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। तुम्हें मेरी सौगन्ध है; जो भी कारण हो उसे शीघ्रतापूर्वक बतला दो। यदि तुम्हें किसी ने दुर्वचन कहा हो अथवा किसी अन्य प्रकार से पीड़ा पहुँचाई हो तो मैं उसे कठिन से कठिन दण्ड दूँगा।"

राजा पुरञ्जन द्वारा कहे गये इन विनम्र शब्दों को सुनकर रानी ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—"हे राजन्! यह सब तुम्हारा ही अपराध है। तुम मुझसे बिना पूछे शिकार खेलने के लिए चले गये, इसी लिए मैं नाराज हूँ।" रानी का उत्तर सुनकर राजा ने उसके चरणों पर गिरकर हाथ जोड़ते हुए कहा—"हे प्रिये! मुझसे यह भारी अपराध हो गया, जो मैं तुमसे बिना पूछे शिकार खेलने के लिए इस प्रकार चला गया। अब मैं तुम्हारी आज्ञा के बिना कहीं नहीं जाऊँगा। इस बार तुम मुझे अपना दास समझकर मेरा अपराध क्षमा कर दो। तुम मुझे अपनी भुजाओं में बाँधकर जो दण्ड देना चाहो वह दे लो, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।" इस प्रकार विनय करने पर जब रानी उठी तब राजा ने अपने हाथों से उसका मुख धोया तथा शरीर की धूल झाड़कर वस्त्राभूषण पहिनाये। इस प्रकार बहुत दिनों तक उसके साथ भोग-विलास करने पर भी राजा का मन मायारूपी संसार से विरक्त नहीं हुआ। हे राजा प्राचीनबर्हिष! जिस प्रकार तुझे अभी तक संसारी ऐश्वर्य की इच्छा बनी हुई है, उसी प्रकार वृद्धावस्था आ जाने तथा इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर भी राजा पुरञ्जन सांसारिक माया-मोह को नहीं त्याग सका।"

राजा पुरञ्जन की इतनी कथा सुनाने के पश्चात् नारदजी ने कहा—"हे राजा प्राचीनबर्हिष! काल की पुत्री 'मृत्यु' अपना पति ढूँढ़ने के लिए सब स्थानों पर जाती थी, परन्तु उसे मृत्यु जानकर कोई भी अङ्गीकार नहीं करता था। तब एक दिन वह मेरे पास आकर इस प्रकार कहने लगी कि हे नारद! तुम मेरे साथ विवाह कर लो। परन्तु जब मैंने उसकी बात नहीं मानी तब उसने क्रुद्ध होकर मुझे यह शाप दिया कि तुम एक मुहूर्त से अधिक देर तक किसी एक स्थान पर नहीं ठहर सकोगे। तुम्हें दिन-रात घूमते रहना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ेगा। यदि किसी स्थान पर तुम ढाई घड़ी से अधिक देर तक ठहर गये तो तुम्हारे मस्तक में पीड़ा होने लगेगी। इस प्रकार मृत्यु ने जब मुझे शाप दिया, तब मैंने उसे यह उपाय बतलाया कि तू 'प्रज्वार' नामक गन्धर्व की बहिन बन जा। उसके पास बहुत बड़ी सेना है। वह तुझसे भोग करने के लिए प्रतिदिन एक पुरुष को पकड़ लाया करेगा। इस उपाय से तेरी वासना शान्त हो जाया करेगी। तब मेरी बात सुनकर वह मृत्यु नामक कन्या गन्धर्व के पास जाकर बोली—"हे प्रज्वार! मैं तुम्हारी बहिन बनने के लिए यहाँ आई हूँ, तुम मेरा उपाय करो।" प्रज्वार ने उसे उत्तर दिया—"अच्छी बात है, मैं तुम्हें बहिन के रूप में स्वीकार करता हूँ, तुम मेरे पास ही रहो।" तदुपरान्त प्रज्वार ने जरा नामक कुटनी को बुलाकर कहा—"तुम इसके लिए किसी तरुण तथा सुन्दर मनुष्य की तलाश कर, ताकि मैं उसके साथ इसका विवाह कर दूँ।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजा परीक्षित! यदि कोई व्यक्ति किसी को कोई वस्तु अपनी प्रसन्नता से दे और वह उसे स्वीकार न करे अथवा धन पाकर दान-पुण्य न करे तो वह मनुष्य अन्त में बहुत दुःख भोगता है। श्री नारायणजी ने मृत्यु की अवधि इसी लिए निश्चित नहीं की है कि यदि मनुष्य को अपनी मृत्यु के विषय में ज्ञात हो जायगा तो वह सांसारिक कर्मों को छोड़कर विरक्त हो जायगा। इसी लिए श्री नारायणजी ने अपनी माया द्वारा इस भेद को गुप्त ही रक्खा है।"

उन्तीसवाँ अध्याय

प्रज्वार का अपनी सेना लेकर पुरञ्जन को मारने के लिए जाना

नारदजी ने कहा—"हे राजन्! कुछ दिनों पश्चात् उस जरा नामक कुटनी ने प्रज्वार नामक गन्धर्व से कहा कि इसके साथ विवाह करने योग्य पुरुष राजा पुरञ्जन हैं। जरा के यह शब्द सुनकर प्रज्वार ने तीन सौ साठ गन्धर्व तथा तीन सौ साठ गन्धर्वियों की सेना को लेकर राजा पुरञ्जन के किले पर चढ़ाई कर दी। उस समय उस पाँच फणवाले सर्प ने, जो किले के द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त था, गन्धर्वों से भारी युद्ध किया तथा उन्हें भीतर जाने से रोके रक्खा; परन्तु जब वह अकेला सर्प उनसे युद्ध करते-करते थक गया तब अपने हृदय में यह विचार करने लगा कि देखो मैंने इतने दिनों तक शत्रु से युद्ध किया, परन्तु मेरा स्वामी भोग-विलास में ऐसा अनुरक्त हो रहा है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसने अभी तक मेरी सहायता करने की तनिक भी चिन्ता नहीं की है। इस प्रकार मन में सोचने के पश्चात् वह सर्प और अधिक थक जाने पर वृक्ष के एक कोडर में जा घुसा। तब समय पाकर प्रज्वार गन्धर्व उस किले में आग लगाकर चला गया।

हे राजन्! किले में आग लग जाने पर अपने परिवार-सहित पुरञ्जन अत्यन्त व्याकुल हुआ। जब वह अपने ही प्राण बचाने में असमर्थ रहा तो कुटुम्बियों की सहायता कहाँ से करता? परिणामतः वह सबके साथ उसी किले में जलकर भस्म हो गया। दूसरे जन्म में राजा पुरञ्जन ने मलय देश के राजा 'विदर्भ' के घर पुत्री बनकर शरीर धारण किया। चूँकि मरते समय उसका ध्यान अपनी पत्नी पुरञ्जनी में लगा हुआ था—इसी लिए उसे दूसरे जन्म में स्त्री-शरीर की प्राप्ति हुई। उस जन्म में तरुण होने के उपरान्त उसका विवाह पांचाल देश के 'मलयध्वज' नामक प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा के साथ हुआ। वहाँ उसने बहुत समय तक गार्हस्थ्य आश्रम के सुख का उपभोग किया तथा सात पुत्रों को जन्म दिया। उसके अनेक पौत्र भी हुए।"

तीसवाँ अध्याय

राजा मलयध्वज की मृत्यु एवं स्त्रीरूपी पुरञ्जन की अपने पूर्वजन्म के मित्र अविज्ञात से भेंट

नारदजी बोले—"हे प्राचीनबर्हिष! बहुत दिनों तक साम्राज्य-सुख का उपभोग करने के पश्चात् राजा मलयध्वज अगस्त्य मुनि के ज्ञानोपदेश के कारण विरक्त हो, अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा, स्वयं अपनी पत्नी-सहित वन में जाकर तपस्या करने लगा। वहाँ कुछ दिनों तक श्री नारायणजी का भजन-स्मरण करने के पश्चात् जब उसने अपना शरीर त्यागा, उस समय उसकी रानी भी अपने पति के शव को चिता पर रख, अग्नि लगाने के लिए तय्यार हुई; परन्तु मोह-विवश हो उसमें अग्नि लगाने के स्थान पर विलाप करने लगी। उसी समय उसके पूर्वजन्म का मित्र अविज्ञात वहाँ आ पहुँचा। उसने राजा मलयध्वज की पत्नी के रूप में पुरञ्जन को देखते ही पहिचान लिया। तब उसने दयार्द्र होकर उस स्त्रीरूपी पुरञ्जन से पूछा—"तू इतना विलाप क्यों कर रही है? यह पुरुष जो मर गया है, वह तेरा कौन था? तू मुझे पहिचानती है अथवा नहीं?" अविज्ञात के वचन सुनकर स्त्रीरूपी पुरञ्जन ने उत्तर दिया—"हे महाभाग! मैं तुम्हें नहीं पहिचानती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूँ। यह मेरे पति का शव रक्खा हुआ है, इसी शोक में मैं विलाप कर रही हूँ।" यह सुनकर अविज्ञात बोला—"हे स्त्री! तू पूर्वजन्म में पुरञ्जन नामक राजा थी। मैं अविज्ञात नामक तेरा मित्र हूँ। तू एक दिन मेरा साथ छोड़कर घर से निकल आया और एक स्त्री के भोग-विलास में पड़कर मुझे भूल गया। इसी लिए तुझे अब स्त्री-शरीर की प्राप्ति हुई है। अब तुझे इस राजा मलयध्वज की मृत्यु का शोक त्याग कर अपने पुरुष शरीर को प्राप्त करने का उपाय करना चाहिए। हम-तुम दोनों मनुष्य के रूप में मानसरोवर के तट पर रहनेवाले हंसरूपी जीवात्मा तथा परमात्मा हैं। तू संसारी माया-मोह में पड़कर नष्ट हो गया है। यह जीव मेरी माया के कारण ही चौरासी लाख योनियों में पड़कर अनेक प्रकार के शरीर प्राप्त करता है।" अविज्ञात के मुख से यह शब्द सुनकर स्त्रीरूपी पुरञ्जन के हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब उसने शोक त्यागकर उस अपने पति-स्वरूप राजा मलयध्वज के मृत शरीर को जला दिया और स्वयं अविज्ञात के वचनानुसार हरिभक्ति में लीन हो गया। समयानुसार शरीर त्यागने पर उसे पुनः पुरुष-शरीर की प्राप्ति हुई और वह अपने मित्र अविज्ञात से जा मिला।"

इतनी कथा सुनकर राजा प्राचीनबर्हिष ने नारदजी से कहा—"हे महात्मन्! मैं संसारी जीव हूँ, मुझे इतना ज्ञान नहीं है कि मैं इस कथा के तात्पर्य को समझ सकूँ, अतः आप कृपा करके मुझे विस्तारपूर्वक सब हाल सुनाइये ताकि मैं उसे भली प्रकार से समझ सकूँ।" राजा के ऐसे शब्द सुनकर नारदजी बोले—"हे राजन्! राजा पुरञ्जन को जीवात्मा तथा उसके अविज्ञात नामक मित्र को परमात्मा समझना चाहिए। परमात्मा उन्हें ही कहते हैं जो नरक, गर्भ आदि सब स्थानों पर इस जीव की रक्षा करते हैं, परन्तु किसी को दिखाई नहीं देते हैं। जब यह जीव उन परब्रह्म परमात्मा के स्मरण एवं ध्यान को त्याग कर सांसारिक सुखों में फँस जाता है तब वह अपने कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में जन्म पाकर बहुत प्रकार के कष्ट उठाता है। इसी नियमानुसार वह पुरञ्जन नामक जीवात्मा अविज्ञात नामक परमात्मा का साथ छोड़कर अनेक योनियों में भ्रमता रहा। जिस प्रकार यह जीव मनुष्य का शरीर प्राप्त करके प्रसन्न होता है, उसी प्रकार पुरञ्जन भी उस किले को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। जिस प्रकार उस किले में नौ दरवाजे थे, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी नौ इन्द्रियोंरूपी दरवाजे हैं। जिस प्रकार पुर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ञ्जन रथ पर बैठकर शिकार खेलने के लिए गया था, उसी प्रकार मनुष्य-शरीर को रथ के समान समझना चाहिए। इन इन्द्रियों को ही रथ के घोड़े जानना चाहिए। मन आदि इन्द्रियाँ जिस ओर दौड़ती हैं, मनुष्य वैसे ही काम करता है। पुरञ्जन ने किले के द्वार पर जो साँप देखा था, उसे मनुष्य का अहङ्कार समझना चाहिए। वह अहंकार ऐसा है कि मनुष्य उसे बुढ़ापे में भी नहीं छोड़ता है। वह सदा यही कहता रहता है कि हम मरते समय तक भी अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करेंगे। पुरञ्जन जिस स्त्री पर मोहित हुआ था, उसे मनुष्य की बुद्धि समझना चाहिए। वह बुद्धिरूपी स्त्री मनुष्य के साथ मृत्यु पर्यन्त रहती है और उससे इच्छानुसार कार्य कराती है। जिस प्रकार मनुष्य अपनी बुद्धि के समक्ष अपने उत्पन्न तथा पालन करनेवाले श्री नारायणजी को भी भूल जाता है और पुराणों की बातों पर विश्वास न करके अन्त में दुःख उठाता है, उसी प्रकार पुरञ्जन ने भी अपने मित्र अविज्ञात का साथ छोड़कर बुद्धिरूपा स्त्री के संसर्ग के कारण बहुत दुःख प्राप्त किया था। जिस प्रकार मनुष्य परिश्रम करके भी अपना मनोरथ न पाने से पछताता है, उसी प्रकार जलने तथा मरने के समय पुरञ्जन ने भी चिन्ता की थी। मनुष्य के शरीर में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विद्यमान हैं उन्हें पुरञ्जन का परिवार समझना चाहिए। जिस प्रकार काल के घर मरनेवाले का समाचार बुढ़ापा देता है उसी प्रकार जरा नामक कुटनी ने पुरञ्जन के बुढ़ापे को देखकर उसे मारकर ले आने के लिए प्रज्वार नामक गन्धर्व से कहा था। उस काल-कन्या को मृत्यु, प्रज्वार गन्धर्व को मृत्यु-समय का विषम ज्वर तथा उसके साथी तीन सौ साठ गन्धर्वों तथा गन्धर्वियों को दिन-रात्रि समझना चाहिए। इन्हीं को काल की सेना जानना चाहिए। दिन और रात्रि के बीत जाने पर जब आयु पूर्ण हो जाती है तब काल मनुष्य को मार डालता है। जिस प्रकार वृद्धावस्था प्राप्त होने पर इन्द्रियों में सामर्थ्य नहीं रहती है तथा शरीर का रक्त एवं मांस सूख जाता है, उसी प्रकार प्रज्वार गन्धर्व की सेना ने पहुँचकर पुरञ्जन के किले को जला दिया था। मृत्यु के समय मनुष्य का ध्यान जिस शरीर में लगा रहता है दूसरे जन्म में वह उसी शरीर को प्राप्त करता है। पुरञ्जन का ध्यान मृत्यु के समय अपनी स्त्री पुरञ्जनी में लगा हुआ था, इसी लिए उसे स्त्री का शरीर प्राप्त हुआ। स्त्री बनने पर पति की आज्ञा में रहकर समय काटना पड़ता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी प्रकार पुरञ्जन को भी स्त्री-शरीर धारण कर अपना जीवन काटना पड़ा। जब तक इस जीव को मुक्ति प्राप्त नहीं होती तब तक वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर तथा जन्ममरण से नहीं छूटता है। जब वह अविज्ञात नामक मित्र—जिसे ईश्वर कहना चाहिए—किसी साधु-महात्मा से भेंट नहीं करा देता और उन महात्मा के ज्ञानोपदेश को सुनकर मनुष्य अपने अज्ञान को त्याग, श्री नारायणजी के स्मरण-ध्यानादि में प्रवृत्त नहीं होता, तब तक मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। जिस प्रकार अविज्ञात से भेंट होने पर पुरञ्जन को ज्ञान प्राप्त हुआ तथा उसने फिर से पुरुष-शरीर पाया, उसी प्रकार हरि-भक्तों के सत्संग तथा सेवा द्वारा प्राणी संसाररूपी भवसागर से पार होकर मुक्ति-पद को पा लेता है।"

नारदजी ने कहा—"हे राजा ! इस प्रकार अब तुम समझ गये होगे कि मेरे इस इतिहास के कहने का तात्पर्य क्या था ! ईश्वर की दया के बिना साधु-महात्माओं के दर्शन प्राप्त नहीं होते हैं और साधु-महात्माओं के सत्सङ्ग के बिना संसाररूपी समुद्र से पार होना असम्भव रहता है, अतः सब कामों से अपने चित्त को हटाकर सत्सङ्ग करना चाहिए। हे राजन् ! तुमने सिंहासनारूढ़ होकर बहुत समय तक सांसारिक सुखों का उपभोग किया, बहुत से यज्ञ तथा दानादिक कर्मों द्वारा यश भी पाया, परन्तु अब तुम्हें यह उचित है कि तुम अपने मन को इन सब सांसारिक व्यवहारों से विरक्त करके श्री नारायणजी के चरणों में प्रीति लगाओ तथा उन्हीं श्रीहरि का स्मरण एवं भजन करो। ऐसा करने से तुम्हारा परलोक सुधर जायगा। यदि तुम ऐसा न करोगे तो तुम्हारा इस आवागमन से मुक्ति पाना अत्यन्त कठिन है। साधु-महात्माओं के सत्संग से अन्तःकरण शुद्ध तथा निर्मल हो जाता है। दान तथा यज्ञ करने से संसारी लोग कुछ दिनों तक तो देवलोक के सुख का उपभोग अवश्य कर लेते हैं, परन्तु बाद में उन्हें फिर से इसी संसार में जन्म लेकर कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु जो लोग वैराग्य धारण करके केवल भक्ति का आश्रय लेते हैं उन्हें वैकुण्ठलोक के अखण्ड सुख की प्राप्ति होती है। अतः इन सब बातों पर विचार करके तुम्हें श्री नारायणजी की भक्ति करनी चाहिए।" नारदजी के मुख से इन सब वचनों को सुनकर राजा प्राचीनबर्हिष ने अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"हे दयानिधे ! आपने मुझे श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश किया है, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। परन्तु मेरे पुत्र तपस्या करने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए गये हुए हैं, वे अभी तक नहीं लौटे हैं। जब वे लौट आवेंगे तब मैं उन्हें राजगद्दी देकर वन में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करूँगा।"

इकतीसवाँ अध्याय

श्री नारदजी का अपने योगबल से राजा प्राचीनबर्हिष को एक हिरन सहित बाग को दिखाना

मैत्रेयजी ने कहा—"हे विदुर ! राजा प्राचीनबर्हिष के मुख से इन शब्दों को सुनकर नारदजी ने आश्चर्यान्वित होकर अपने हृदय में यह विचार किया कि देखो, मैंने राजा को इतना ज्ञान सिखाया फिर भी इसका मन सांसारिक माया-मोह से विरक्त नहीं हुआ है। यह अभी तक यही कह रहा है कि पुत्रों के लौट आने पर मैं उन्हें राजसिंहासन सौंपने के बाद श्री नारायणजी का भजन करूँगा। नारदजी ने यह सोचकर अपने योगबल द्वारा आकाश में एक बाग लगा दिया तथा उसकी ओर देखकर राजा से कहने लगे—"हे राजन् ! देखो तो यह कैसा अचम्भा दिखाई देता है ?" नारदजी के वचन सुनकर जब राजा ने अपने नेत्र ऊपर आकाश की ओर उठाये तो उसे यह दिखाई दिया कि फल-फूलों से लदा हुआ एक बहुत सुन्दर बाग लगा हुआ है। उस बाग के चार दरवाजे हैं तथा उसके बीच में एक जंगली हिरन चौकड़ी मार कर कूदता हुआ हरी-हरी घास खा रहा है। क्षण भर बाद ही राजा ने यह भी देखा कि शिकार की सब सामग्री से लैस एक बहेलिया भी उस बाग में आ पहुँचा। उसने हिरन को पकड़ने के लिए बाग के एक दरवाजे पर तो जाल बिछाया और दूसरे पर अपने कुत्ते को बैठा दिया। तत्पश्चात् उसने तीसरे द्वार पर आग जला दी और चौथे द्वार पर स्वयं अपना धनुष-बाण साध कर खड़ा हो गया। वह हिरन इस दृश्य को देखकर भी, कुछ भय न मानकर पूर्ववत् ज्यों का त्यों आनन्द से घास चरता रहा। उस समय उस बाग, बहेलिया तथा हिरन को देखकर राजा प्राचीनबर्हिष ने नारदजी से कहा—"हे मुनिनाथ ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि बाग के चारों दरवाजों पर इस हिरन की मृत्यु का प्रबन्ध पूरा हो चुका है, फिर भी वह निर्भय और निश्चिन्त होकर आनन्दसहित घास चर रहा है—इसे अपने प्राणों की चिन्ता ही नहीं है। भला, इस प्रकार घास चरने से इसे क्या लाभ होगा ?"

राजा के इन शब्दों को सुनकर नारदजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"हे राजन् ! तुम्हारी भी तो यही दशा हो रही है। वृद्धावस्था के कारण तुम्हारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हैं, मृत्यु का दिन भी निकट आ पहुँचा है, परन्तु तुम अभी तक इस संसारी माया-मोह में ऐसे फँसे हुए हो कि अपनी आँखों से सब हाल देखकर भी तुम्हें चेत नहीं होता है। तुम्हें अभी तक राज्य और सांसारिक सुखों की तृष्णा लगी हुई है।" नारदजी के मुख से यह ज्ञान सुनते ही राजा के रोंगटे खड़े हो गये। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उसका सम्पूर्ण शरीर जला जा रहा हो। अपने शरीर की यह अवस्था देखकर उसने श्री नारदजी के चरणों में गिरते हुए कहा—"हे प्रभो! आपने बड़ी कृपा की, जो मुझे संसारी फन्दे से इस प्रकार बाहर निकाल लिया है, अन्यथा मैं इसी में पड़ा रहकर अपना जीवन नष्ट कर देता।" इतना कहकर राजा ने विधिपूर्वक श्री नारदजी का पूजन किया, तत्पश्चात् उन्हें बिदा कर स्वयं भी उसी समय तप करने के लिए बदरी-केदार की ओर चला गया। वन में पहुँचकर उसने श्री नारायणजी के भजन एवं स्मरण द्वारा मुक्ति-पद को प्राप्त कर लिया।"

हे विदुर! राजा प्राचीनबर्हिष ने तो इस प्रकार मुक्ति प्राप्त की; उधर प्रचेताओं द्वारा बहुत समय तक तप एवं स्मरण किए जाने पर श्री नारायणजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें चतुर्भुजीरूप में अपना दर्शन दिया तथा वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय श्री नारायणजी का दर्शन प्राप्त करके प्रचेताओं ने दण्डवत्-प्रणाम करते हुए प्रार्थना की—"हे प्रभो! हम आपसे यही वरदान माँगते हैं कि हमारा मन संसारी माया-मोह में कभी न फँसे तथा हम लोग साधु-महात्माओं का सत्संग करते हुए सदैव आपके चरणों की भक्ति में लगे रहें।" तब श्री नारायणजी ने उन्हें इच्छित वरदान देकर कहा—"तुम लोग गृहस्थ होने के पश्चात् अन्त समय मुक्ति-पद को प्राप्त करोगे।" इतना कहकर जब श्री नारायणजी अन्तर्धान हो गये तब प्रचेता भी अपने घर को चल दिए। मार्ग में लौटते समय उन्होंने यह देखा कि उनके घर से आते समय जो नगर तथा गाँव बसे हुए थे, वे सब उजड़कर वन के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। यह दृश्य देखकर प्रचेताओं ने परस्पर इस प्रकार कहा कि वन के देवताओं ने हमारे राज्य तथा देश को उजाड़ दिया है। अतः हम अपनी योगाग्नि द्वारा भस्म करके उन्हें उनके किए का फल देंगे। ऐसा विचार करके ज्योंही प्रचेताओं ने उस वन की ओर अपनी क्रोध भरी दृष्टि से देखा, त्योंही वह वन धू-धू करके जलने लगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे विदुर! उस वन के जलने पर वहाँ के सभी देवता अपने-अपने प्राण बचाकर ब्रह्माजी के पास जा पहुँचे तथा उनसे अपनी रक्षा के लिए आर्तपुकार करने लगे। उस समय ब्रह्माजी की आज्ञानुसार चन्द्रमा ने प्रचेताओं के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे प्रचेताओ! तुम लोग हरिभक्त हो। तुमने दस सहस्र वर्षों तक श्री नारायणजी की तपस्या की है, अतः तुम लोगों को किसी निरपराध के ऊपर इस प्रकार का क्रोध नहीं करना चाहिए था। इस वन के कारण बहुत से ऋषि-मुनियों तथा पशु-पक्षियों को भोजन मिलता था एवं अनेक जीवों की रक्षा होती थी। इसको इस प्रकार जलाने से तुम्हें भारी पाप लगेगा। तुमने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से श्री नारायणजी का तप किया है, अतः अब तुम 'निम्लोचना' नामक वृक्ष की पुत्री से अपना विवाह कर लो। उससे तुम्हें बहुत सन्तानों की प्राप्ति होगी। जिस समय चन्द्रमा प्रचेताओं को इस प्रकार समझा रहे थे, उसी समय देवतागण भी उस कन्या को लेकर प्रचेताओं के पास आ पहुँचे। तदुपरान्त चन्द्रमा के कहने पर प्रचेताओं ने अपना क्रोध शान्त कर लिया तब वन की वह अग्नि भी बुझ गई। इसके पश्चात् प्रचेता उस कन्या से गान्धर्व विवाह करके अपने पिता की राजधानी माहिष्मतीपुरी में आकर राज्य-कार्य करने लगे। चन्द्रमा भी प्रसन्न होकर अपने लोक को लौट गये। उसी कन्या के गर्भ से 'दक्ष' नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसने श्री नारायणजी का तप करके बहुत से जीवों को उत्पन्न किया। कुछ दिनों तक राज्य करने के बाद प्रचेता अपने पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं श्री नारायणजी का तप करने के लिए पश्चिम दिशा की ओर चल दिए। मार्ग में श्री नारदजी से उनकी भेंट हो गई। नारदजी से उपदेश प्राप्त कर उन्होंने तदनुसार ही श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान किया तथा अन्त में शरीर त्यागकर गोलोक को चले गये।"

मैत्रेय ऋषि द्वारा इतनी कथा सुनकर विदुरजी भी हस्तिनापुर को चले गये।"

चतुर्थ स्कन्ध समाप्त

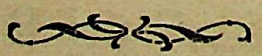

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

पञ्चम स्कन्ध

राजा प्रियव्रत एवं जड़भरत की कथा तथा सप्तद्वीप, नवखण्ड, चौदह भुवन एवं सम्पूर्ण नरकों का वर्णन

वन्दना

प्राण भटकते रहे अभी तक,
और न अब इनको भटकाओ!
तिल-तिल करके गली जारही,
क्षण-प्रतिक्षण यह मोमी-काया;
दूर-दूर हटती जाती है—
जीवन से जीवन की छाया,
युग-युग से जो घिरा हुआ तम;
उसे और मत अधिक बढ़ाओ!
तुम बिन सूना यह जग सारा,
झूठे हैं सब चाँद-सितारे;
सुख-दुख, वर्ष, मास, ऋतु, निशि, दिन,
छलनामय हैं सभी सहारे;
ढूँढ़-ढूँढ़ कर हारा तुमको,
अब तो अपनी झलक दिखाओ!
कोटि-कोटि तन पाये अब तक,
कोटि-कोटि भुवनों में घूमा;
क्या जाने क्यों, आँखें फेरी?
तुमने अभी नहीं मुँह चूमा,
व्याकुल है 'राजेश' अरे ओ;
अब तो अपनी भुजा बढ़ाओ!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

राजा परीक्षित का श्री शुकदेवजी से राजा प्रियव्रत का वृत्तान्त पूछना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे महाराज ! आपने तीसरे स्कन्ध में कहा था कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत ने श्री नारदजी के उपदेश से बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर श्री नारायणजी का तप किया था; तदुपरान्त गृहस्थ होकर राज्य किया और अन्त में तप करके मुक्ति-पद को पाया। अतः हे ब्रह्ममूर्ते ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि ज्ञान प्राप्त होने पर भी राजा प्रियव्रत सांसारिक माया-जाल में क्यों फँस गया था ? कहा गया है कि जब तक मनुष्य संसारी माया-मोह में फँसा रहकर स्त्री, पुत्र, धन आदि को अपना समझता है तब तक वह ज्ञानी नहीं होता और जब कोई ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह सांसारिक माया-मोह से विरक्त हो जाता है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति जान-बूझकर माया-मोह को क्यों अपनायेगा; यह मेरी समझ में नहीं आता। आप कृपा करके मेरे इस सन्देह का निवारण कर दीजिए।"

राजा परीक्षित के मुख से ऐसे शब्द सुनकर श्री शुकदेवजी ने भगवान् श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान धरने के उपरान्त इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे परीक्षित ! तुमने बहुत सुन्दर बात पूछी है। अब मैं तुमसे वह वृत्तान्त कहता हूँ। राजा प्रियव्रत के विषय में सर्वप्रथम तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि वह ज्ञानी होने के कारण तथा अपने पूर्वजन्म के संस्कारों-वश प्रत्यक्ष में तो राज्य-कार्य करता था, परन्तु वास्तव में वह उसमें लिप्त नहीं था। गृहस्थावस्था में रहते हुए भी वह उससे विरक्त था तथा राज्य, धन, स्त्री, पुत्र आदि के मोह में फँसा हुआ नहीं था। इसीलिए राजसिंहासन छोड़ने के पश्चात् वह पुनः श्री नारायणजी के तप एवं ध्यान में संलग्न हो गया। सर्वप्रथम राजा प्रियव्रत जब श्री नारदजी का उपदेश प्राप्त करके ज्ञानी हो गया तथा मन्दराचल पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगा था, उस समय राजा स्वायम्भुव मनु ने उसके पास जाकर यह कहा था कि हे पुत्र ! तुम राज्य करके तथा विवाह कर सन्तानोत्पत्ति का कार्य करो। तब उसने इस प्रकार उत्तर दिया था कि हे पिता ! विवाह करने तथा सन्तानोत्पत्ति होने से मनुष्य धन एवं परिवार के मोह में फँसकर नरक का दुःख उठाता है, इसलिए मैं राज्य तथा अन्य संसारी सुखों की कामना नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता हूँ। मुझे श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान ही अच्छा लगता है। इस प्रकार जब प्रियव्रत ने राजा स्वायम्भुव मनु का कहना नहीं माना तब वे अत्यन्त उदास हो गये। उसी समय पितामह ब्रह्माजी हंस पर सवार हो, सनकादिक ऋषियों एवं देवताओं के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे। ब्रह्माजी को देखकर राजा स्वायम्भुव मनु तथा प्रियव्रत ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और उन्हें सम्मानपूर्वक पवित्र आसन पर बैठाया। उस समय ब्रह्माजी ने प्रियव्रत से कहा—"हे प्रियव्रत! तू विवाह करना तथा राजसिंहासन पर बैठना क्यों नहीं चाहता है? श्री नारायणजी की यह आज्ञा है कि क्षत्रियों को राज्य करना चाहिए, अतः तुझे भी उनकी आज्ञा का पालन कर संसारी जीवों की वृद्धि करनी चाहिए। जिस प्रकार हम श्री नारायणजी की आज्ञा शिरोधार्य कर, सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं, उसी प्रकार तुझे भी उनकी आज्ञा मानकर राज्य करना चाहिए तथा विवाह करके क्षत्रिय वंश की वृद्धि करनी चाहिए। सृष्टि का कोई भी प्राणी श्री नारायणजी की आज्ञा से परे नहीं है। जिसके भाग्य में जो लिखा होता है, वही होता है। श्री नारायणजी ने जो कार्य जिसे सौंपा है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति उस कार्य को नहीं कर सकता। जिस प्रकार बैल की नाक में रस्सी बाँधकर उसे जिधर चाहे उधर ही ले जाया जा सकता है, उस समय बैल का कोई वश नहीं चलता, उसी प्रकार सब जड़-चैतन्य जीवों की गति समझना चाहिए। सभी जीव श्री नारायणजी की इच्छा के अनुगामी हैं। किसी भी प्राणी में ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो उनकी आज्ञा के विपरीत तिल भर भी आचरण कर सके। अतः प्राणी को वेद की आज्ञानुसार ही सब कार्य करना चाहिए। हे प्रियव्रत! गृहस्थाश्रम बुरा नहीं है। जो मनुष्य काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मन तथा इन्द्रियों को अपने अधीन रक्खे, स्वयं उनके वशीभूत न हो, उसे वन अथवा घर दोनों स्थानों पर रहना एक जैसा है। जिसने इन सबको अपने वश में नहीं किया, उसको घर त्याग कर वन में रहने से भी कोई लाभ न होगा। ऐसा व्यक्ति तो मानो अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रुओं को अपने साथ रखता है। जब तक मनुष्य काम, क्रोध आदि को अपने वश में नहीं करता, तब तक उसे ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है। प्रत्येक मनुष्य पर—(१) देव ऋण, (२) पितृ ऋण तथा (३) ऋषि ऋण, ये तीन ऋण रहते हैं। जबतक मनुष्य इन तीनों ऋणों से उऋण नहीं होता, तब तक उसे वैराग्य नहीं लेना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

चाहिए। संसारी सुखों का उपभोग करने के बाद जब मनुष्य को वैराग्य होता है तब उसे उन सुखों की इच्छा कभी नहीं होती है। अतः तुम भी पहिले राज्य एवं विवाह करने के बाद वैराग्य को ग्रहण करो।" ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार समझाने पर जब प्रियव्रत ने राज्य तथा विवाह करना स्वीकार कर लिया तब ब्रह्माजी तथा राजा स्वायम्भुव मनु अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रियव्रत को माहिष्मती पुरी में ले आये और उसे राजतिलक करके सिंहासन पर बैठा दिया।

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! इस प्रकार राजा प्रियव्रत राज-सिंहासन पर बैठ, श्री नारायणजी के चरणों में अपना चित्त लगाकर राज्य-कार्य करने लगा। उसने अपना विवाह 'विश्वकर्मा' की पुत्री 'बर्हिष्मती' के साथ किया। उस स्त्री से 'अग्नीध्र' आदि दस पुत्र तथा 'यशवती' नामक पुत्री की उत्पत्ति हुई। राजा प्रियव्रत के दस पुत्रों में से तीन पुत्र 'बालयती' (बाल्यावस्था में ही यती हो जानेवाले) हो गये और वेद पढ़कर परमहंसों की सङ्गति में रहने लगे। राजा प्रियव्रत की 'सान्तनी' नामक दूसरी पत्नी से जिसे देवताओं ने राजा प्रियव्रत को दिया था। 'उत्तम', 'तामस' तथा 'रैवत' नामक तीन पुत्रों का जन्म हुआ। उनकी चौदह मन्वन्तरों में गणना हुई। राजा प्रियव्रत ने सहस्रों वर्षों तक धर्मपूर्वक राज्य किया। उसने अपनी प्रजा को पुत्र के समान समझकर सुख दिया। श्री नारायणजी की कृपा से उसकी इन्द्रियों का पराक्रम कभी भी क्षीणता को प्राप्त नहीं हुआ था। इस प्रकार बहुत समय तक राज्य करने के उपरान्त एक बार राजा प्रियव्रत ने यह विचार किया कि सूर्य के रथ के आठों प्रहर चलते रहने के कारण ही दिन तथा रात्रि होती है। जिस समय सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत की ओट में हो जाता है, उस समय रात्रि हो जाती है। उस निशा-काल में सन्ध्या, पूजन, तर्पण, तप और दान आदि शुभ कर्मों में विघ्न पड़ता है तथा कुकर्म बढ़ जाते हैं। इसलिए हमारे राज्य में आठों प्रहर दिन के समान प्रकाश रहे, कभी रात्रि न हो तो अधिक अच्छा है।

हे राजन्! इस प्रकार विचार करके राजा प्रियव्रत ने सूर्य के समान प्रकाशवान् एक पहिये का एक ऐसा रथ तैयार कराया जिसके प्रकाश से उसके राज्य में सदैव उजाला रहता था, कभी रात्रि नहीं होती थी। राजा प्रियव्रत ऐसा प्रतापी होने पर भी आठों प्रहर अपना ध्यान श्री नारायणजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के चरणों में लगाये रहता था। जब राजा प्रियव्रत ने उस रथ पर बैठकर सात बार पृथ्वी की परिक्रमा की तथा एक छत्र राज्य किया तब उस रथ के घूमने के कारण पृथ्वी पर सात द्वीप तथा सात समुद्र हो गये। पहिले द्वीप का नाम 'जम्बूद्वीप' हुआ जो एक लाख योजन की परिधि का है। भरत-खण्ड आदि इसी द्वीप में है। इस द्वीप के चारों ओर खारे पानी का समुद्र है। दूसरे द्वीप का नाम 'पाकरद्वीप' है। वह दो लाख योजन की परिधि का है, उसके चारों ओर ईख के रस का समुद्र है। तीसरा 'शाल्मलिद्वीप' चार लाख योजन के विस्तार का है। उसके चारों ओर मदिरा का समुद्र है। चौथा 'कुश-द्वीप' का विस्तार आठ लाख योजन है। उसके चारों ओर घी का समुद्र है। पाँचवें द्वीप का नाम 'क्रौंचद्वीप' है। वह सोलह लाख योजन की परिधि का है। उसके चारों ओर दूध का समुद्र है। छठवाँ 'शाकद्वीप' बत्तीस लाख योजन के विस्तार का है, उसके चारों ओर मट्ठे का समुद्र है तथा सातवाँ द्वीप 'पुष्करद्वीप' कहलाता है, जो चौंसठ लाख योजन के विस्तार का है। उसके चारों ओर मीठे पानी का समुद्र भरा हुआ है।

हे परीक्षित! राजा प्रियव्रत ने इन सातों द्वीपों में से एक-एक द्वीप का राज्य अपने सातों पुत्रों को दे दिया। तत्पश्चात् उसने अपनी पुत्री 'यशवती' का विवाह 'शुक्राचार्य' के साथ कर दिया, जिसके गर्भ से 'देवयानी' नामक कन्या की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार जब राजा प्रियव्रत ने अपने राज्य में रात्रि का होना बन्द कर दिया, तब स्वायम्भुव मनु एवं ब्रह्माजी ने उसे इस प्रकार सम-झाया कि हे पुत्र! जो क्रम श्री नारायणजी की इच्छा से चलता है, उसे किसी प्रकार मिटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसलिए तुम भी अपने राज्य में हर समय प्रकाश रखना बन्द कर दो। यह सुनकर राजा प्रियव्रत ने अपने रथ का फिराना बन्द कर दिया।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इन सातों द्वीपों के एक मात्र अधिपति राजा प्रियव्रत ने भी एक दिन इस संसार को मिथ्या समझकर अपनी पत्नी बर्हिष्मति से एक इतिहास कहा था। वह वृत्तान्त हम तुमसे कहते हैं, सुनो। राजा प्रियव्रत ने अपनी रानी से कहा—"हे शुभे! एक दरिद्र अज्ञानी बालक अपने घर से निकल, किसी ऋषि के स्थान पर जा पहुँचा। ऋषि ने कृपा कर उस बालक को ऐसी विद्या पढ़ाई, जिससे उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई। उस दृष्टि के कारण वह पृथ्वी में गड़े हुए धन को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

बता देता था तथा सौ कोस दूर रहनेवाली वस्तु को भी देख लेता था। कुछ दिनों पश्चात् उस बालक के माता-पिता ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। जिस समय वे उसे पकड़कर ले जाने लगे, उस समय वह बालक यह सोचकर कि घर पर पहुँचने से मेरी यह विद्या नष्ट हो जायगी, अपने माता-पिता के साथ जाने में आनाकानी करने लगा। परन्तु माता-पिता उसे हठपूर्वक घर ले आये और उसका विवाह कर दिया। घर आकर यह लड़का उस विद्या को भूल गया तथा बोझ ढो-ढोकर अपनी दरिद्रता के दिन काटने लगा।" राजा प्रियव्रत के मुख से इतनी कथा सुनकर रानी बर्हिष्मतिने कहा—"हे राजन्! जब वह बालक ऐसा गुणी था तो फिर गृहस्थी के जाल में क्यों फँसा?" यह सुनकर प्रियव्रत ने उत्तर दिया—"हे प्रिये! यही हाल हमारा भी हो रहा है। हम भी श्री नारदजी के बताये हुए ज्ञान को भुलाकर संसारी माया-मोह में पड़े हुए हैं।" बर्हिष्मति बोली—"हे महाराज! यदि ऐसा है तो हमें अब विरक्त हो जाना चाहिए।" अपनी पत्नी की बात सुनकर राजा प्रियव्रत को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् उसने अपना राज्य तो पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं पत्नी-सहित वन में जाकर श्री नारायणजी के भजन एवं तपस्या द्वारा मुक्त-पद को प्राप्त हुआ। जो मनुष्य श्री नारायणजी की शरण में जाते हैं, उन्हीं को सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।"

दूसरा अध्याय

प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र का राजा होना तथा पूर्वचित्ती नामक अप्सरा से विवाह करना

शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब राजा प्रियव्रत अपनी पत्नी सहित तपस्या करने के लिए वन में चले गये उस समय उनके बड़े पुत्र 'अग्नीध्र' ने राजसिंहासन पर बैठकर अपने मन में यह विचार किया कि पहले हमें श्री-नारायणजी का स्मरण एवं तप करना चाहिए, तत्पश्चात् विवाह करके धर्मात्मा सन्तान की उत्पत्ति करनी चाहिए। क्योंकि वेद तथा शास्त्रों में भी यही लिखा है कि चौबीस वर्ष की आयु तक स्त्री-प्रसङ्ग नहीं करना चाहिए। ऐसा निश्चय कर अग्नीध्र घर से निकल पड़ा और मन्दराचल पर्वत पर पहुँचकर एक रमणीक स्थान में बैठकर श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करने लगा। जब उसे तपस्या करते-करते बहुत दिन व्यतीत हो गये तो देवताओं के स्वामी इन्द्र के मन में यह भय उत्पन्न हुआ कि कहीं यह अपनी तपस्या द्वारा मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रासन को न छीन ले। इस शंका से सशंकित होकर इन्द्र ने 'पूर्वचित्ती' नामक परम सुन्दरी अप्सरा को उसकी तपस्या भङ्ग करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर भेजा। वह अप्सरा अग्नीध्र के पास पहुँचकर नृत्य करने लगी। कुछ समय उपरान्त उसके नृत्य तथा गायन का शब्द सुनकर अग्नीध्र का ध्यान भङ्ग हो गया। तब वह उसके स्वरूप पर मोहित होकर पागलों की भाँति इस प्रकार कहने लगा—"हे मुनि! तुम किस तपोवन में रहते हो? तुम्हारे उपवन के फल तथा पुष्प कैसे हैं? तुम्हारे मस्तक के बाल इतने सुन्दर क्यों हैं? यह तुम्हारे वक्षस्थल पर दो ऊँचे-ऊँचे अनार के समान उठे हुए क्या दिखाई दे रहे हैं?" पूर्वचित्ती के केशों में जो पुष्प गुँथ रहे थे तथा उन पर भँवरे गूँज रहे थे, उन्हें देखकर अग्नीध्र ने इस प्रकार कहा—"क्या ये तुम्हारे शिष्य हैं, जो वेद पढ़ने के लिए तुम्हारे पास आये हुए हैं?" फिर उस अप्सरा के घुँघरुओं की झनकार सुनकर बोला—"तुम वेद के स्वरों का उच्चारण बहुत अच्छी तरह करते हो।" पूर्वचित्ती के शरीर में लगी हुई चन्दनादिक सुगन्ध को देखकर कहने लगा—"क्या तुम्हारे तपोवन में नदी की मिट्टी इसी प्रकार की होती है, जैसी कि तुम इस समय अपने शरीर पर लगाये हुए हो और जिसकी सुगन्ध से यह सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धित हो उठा है? क्या तुम्हारे वन में सब इसी प्रकार के सुन्दर स्वरूपवाले ऋषि-मुनि रहते हैं? हे मुने! मुझे तुम्हारा स्थान देखने की उत्कट अभिलाषा है, तुम कृपा करके मुझे अपना तपोवन दिखा दो।" फिर बोला—"मैं समझता हूँ कि तुम साक्षात् लक्ष्मी अथवा श्री नारायणजी की माया हो, जो यहाँ आकर अपने नेत्रों के बाण द्वारा मुझ हिरन को मारना चाहते हो। ईश्वर की परम कृपा हुई जो मुझे तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ है। अब मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूँगा।"

अग्नीध्र के ऐसे अटपटे शब्दों को सुनकर पूर्वचित्ती यह भली भाँति समझ गई कि राजा का हृदय मेरे ऊपर पूर्णरूपेण मोहित हो चुका है। अतः वह मुस्कुराती हुई बोली—"हे राजन्! मेरे तपोवन में सभी ऋषि-मुनि इसी रूप के रहते हैं। वहाँ ऐसे कन्द, मूल तथा फल उत्पन्न होते हैं, जिन्हें खाने से मनुष्य सदैव तरुण, सौन्दर्यवान् तथा कोमल बना रहता है। अब तुम कुछ दिनों के लिए यहाँ से चलकर मेरे साथ अपने राजमन्दिर में रहो तो मैं तुम्हें अपना स्थान दिखा दूँगी। यहाँ इस पर्वत पर मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकूँगी।" पूर्वचित्ती के इन वचनों को सुनकर राजा ने श्री नारा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यणजी का स्मरण एवं तप त्याग दिया तथा उसे साथ लेकर अपने राज-भवन को लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने पूर्वचित्ती के साथ अपना विवाह कर लिया। तदनन्तर दस हजार वर्षों तक उसके साथ-भोग-विलास करते हुए धर्मपूर्वक राज्य-कार्य करते रहे। पूर्वचित्ती के द्वारा राजा को 'नाभि' तथा 'इलावृत्त' आदि नौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। वे सभी लड़के अपनी माता के आशीर्वाद से अत्यन्त तेजस्वी तथा बलवान् हुए। जब वे तरुण हो गये तब पूर्वचित्ती उनका विवाह करके स्वयं इन्द्रलोक को चली गई। तदनन्तर राजा अग्नीध्र ने अपने राज्य जम्बूद्वीप के नौ भाग करके—जिन्हें 'नवखण्ड' कहा जाता है—एक-एक भाग अपने पुत्रों को बाँटकर उन्हें उसका स्वामी बना दिया और आप फिर से वन में जाकर श्री नारायणजी का ध्यान एवं तप करने लगे। वन में रहने पर भी राजा को पूर्वचित्ती के वियोग का अपार दुःख बना रहा। इसलिए अपना शरीर त्यागने के पश्चात् वे फिर गन्धर्व-शरीर पाकर उससे जा मिले।"

तीसरा अध्याय

राजा नाभि के यहाँ ऋषभदेवजी के अवतार की कथा

शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! राजा अग्नीध्र के वन चले जाने के पश्चात् उसके नाभि आदि नवों पुत्र अपने-अपने खण्ड में धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् अग्नीध्र के बड़े पुत्र नाभि ने अपनी पत्नी 'मेरुदेवी' के साथ वन में जाकर सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से श्री नारायणजी का तप किया। फिर वहाँ से घर लौटकर, ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना आरम्भ किया। जब यज्ञ समाप्त हुआ तब भगवान् श्री श्यामसुन्दर ने चतुर्भुज रूप धारण किए; शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये; कीट, मुकुट तथा वैजयन्ती माला पहिने; मन्द हँसन एवं तापहारिणी चितवन के साथ अग्निकुण्ड से प्रकट होकर सबको अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। उस समय यज्ञशाला में उपस्थित सभी व्यक्ति खड़े होकर उनकी स्तुति करने लगे। देवताओं ने भी आकाश से पुष्पवर्षा की। तदनन्तर राजा नाभि ने अपने दोनों हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे त्रैलोक्याधिपति! आपने मुझ दरिद्र की इच्छा पूर्ण करने के हेतु अपना दर्शन देने की कृपा की है। सम्पूर्ण सृष्टि में किसको इतनी सामर्थ्य है जो वह आपकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महिमा का वर्णन कर सके। आपके चरणों में प्रीति रखनेवाले को चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है। अतः अब आप कृपाकर ऐसा वरदान दीजिए कि मुझे आपके ही समान पुत्र की प्राप्ति हो।" राजा की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री यज्ञभगवान् ने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! तुमने हमारे समान पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से तप तथा यज्ञ किया है, अतः हम स्वयं ही तुम्हारे घर में अवतार लेंगे।" इतना कहकर श्री यज्ञभगवान् वहीं अदृश्य हो गये। तदुपरान्त राजा ने ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को भी दक्षिणा देकर बिदा किया।"

हे राजन्! जिस समय राजा नाभि ने यज्ञ का प्रसाद अपनी रानी मेरु-देवी को खिलाया, उसी समय भगवत्कृपा से उसे गर्भ ठहर गया। तब ब्रह्मा-जी सब देवताओं को साथ लेकर राजा के पास आकर कहने लगे—"हे राजन्! तुम्हारे बड़े भाग्य उदय हुए जो त्रैलोक्याधिपति श्री नारायणजी तुम्हारे पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करेंगे।" इतना कहकर सब देवता गर्भ-स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गये। दसवाँ मास व्यतीत होने पर श्री नारायणजी ने रानी मेरुदेवी के गर्भ से अवतार लिया तथा अपने चतुर्भुज स्वरूप से राजा-रानी को दर्शन देकर कृतार्थ किया। उस समय राजा-रानी प्रसन्न हो, दण्डवत् प्रणाम कर, उनकी स्तुति करने लगे। देवताओं ने विमानों पर बैठ-कर आकाश से पुष्प-वर्षा की; अप्सराएँ नृत्य करने लगीं तथा गन्धर्वगण गीत गाने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजी ने वहाँ आकर उनका नाम 'ऋषभदेव' रक्खा। जब ब्रह्मादिक देवता स्तुति-प्रणाम करने के पश्चात् अपने-अपने लोक को चले गये तब श्री नारायणजी भी बालक-स्वरूप धारण कर रुदन करने लगे।

चौथा अध्याय

राजा नाभी का तपस्या के लिए पत्नी-सहित बन में जाना तथा ऋषभदेवजी का राज्य करना

शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इस प्रकार परब्रह्म प्रभु ने राजा नाभि के यहाँ जन्म लिया। राजा ने उन्हें परमेश्वर जानकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों तथा याचकों को इतनी दान-दक्षिणा दी कि उसके राज्य में कोई भी मनुष्य दरिद्र न रह गया। श्री ऋषभदेवजी की बाल-लीलाओं को देखकर राजा तथा रानी अपने मन में फूले न समाते थे। जब श्री ऋषभदेवजी तरुणा-वस्था को प्राप्त कर राज्यगद्दी पर बैठने योग्य हुए, तब राजा नाभि ने मंत्रियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा प्रजा को उनके व्यवहार से प्रसन्न देखकर अपने मन में यह विचार किया कि अब इन्हें राजसिंहासन सौंपकर मुझे तपस्या करने के लिए वन में चला जाना चाहिए। ऐसा निश्चय करने के उपरान्त एक दिन राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त में ऋषभदेवजी को राजतिलक कर दिया। तत्पश्चात् स्वयं अपनी पत्नी-सहित बदरी-केदार में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करने लगा। वहाँ कुछ समय तक तपस्या करने के उपरान्त योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्यागकर मुक्ति-पद को प्राप्त हो गया।

हे राजा परीक्षित! श्री ऋषभदेवजी ने सिंहासन पर बैठकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया। उनके न्याय के कारण बकरी तथा बाघ एक ही घाट पर पानी पीते थे। उनके राज्य में कोई दुखी अथवा दरिद्र न था। देवलोक में देवतागण उनकी सदैव स्तुति एवं प्रशंसा किया करते थे। देवताओं के स्वामी इन्द्र ने जब उनकी अधिक प्रशंसा सुनी तो एक बार उसने ईर्ष्या में भरकर भरतखण्ड में जल की वर्षा नहीं की। श्री ऋषभदेवजी को जब वर्षा न होने का यह कारण ज्ञात हुआ तो उन्होंने इन्द्र की अज्ञानता पर हँसते हुए अपने योग बल द्वारा राज्य भर में ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि जिस समय भी उनकी प्रजा को पानी की आवश्यकता होती थी उसी समय श्री नारायणजी की कृपा से जल बरसने लगता था। इस घटना के बाद जब इन्द्र को अपनी भूल का पता लगा तथा यह जान लिया कि श्री ऋषभदेवजी नारायणजी के अवतार हैं, तो उसने अपना अपराध क्षमा कराने के लिए अपनी 'जयन्ती' नामक पुत्री का विवाह ऋषभदेवजी के साथ कर दिया। उस स्त्री द्वारा ऋषभदेवजी को सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। उनमें से नौ बालक विरक्त होकर वन में चले गये तथा वहीं पर श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करने लगे। उन्हीं नौ बालकों को 'नव योगीश्वर' के नाम से पुकारा जाता है। इन्हीं नव योगीश्वरों ने 'राजा जनक' को, ज्ञानोपदेश दिया था। ऋषभदेवजी का बड़ा पुत्र 'भरत' अपने पिता के सिंहासन पर बैठा तथा अन्य इक्यानबे पुत्र ब्राह्मणों के समान वेद-पाठ तथा तपस्या करने लगे।

एक समय श्री ऋषभदेवजी ने सम्पूर्ण प्रजा-सहित अपने पुत्रों को यज्ञ में बैठाकर इस प्रकार उपदेश किया कि हे पुत्रो! संसार में जो भी जड़-चैतन्य जीव दिखाई देते हैं, एक न एक दिन उन सब का नाश अवश्य हो जायगा। अकेले श्री नारायणजी ही अविनाशी पुरुष हैं, वे ही नित्य तथा स्थिर हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हीं की शक्ति शरीर में रहने से सब प्राणी चलते-फिरते हैं। अतः तुम लोग भी संसारी माया-मोह को त्याग कर उन्हीं श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करो। साधु-महात्माओं के सत्सङ्ग से मुक्ति की प्राप्ति होती है। कुसङ्ग में पड़ने पर मनुष्य नष्ट हो जाता है। जब तक प्राणी संसारी सुखों को स्वप्न के समान मिथ्या नहीं समझता तब तक उसे सुख प्राप्त नहीं होता। संसार में धन तथा स्त्री—ये दो मायारूपी कठिन बन्धन पल-पल पर फैले हुए हैं, उनमें बँधकर सम्पूर्ण संसार नष्ट हो रहा है। जो मनुष्य इन दोनों बन्धनों से अपने को दूर रखता है, वही इस मायाजाल से छुटकारा पाता है। जो मनुष्य इन दोनों में अपना चित्त लगाये रहता है, वह श्री नारायणजी को सहज में ही प्राप्त नहीं कर पाता। इसके लिए हम तुमसे एक उपाय कहते हैं, सुनो। वह उपाय यह है कि केवल सन्त तथा महात्माओं की सङ्गति ही करनी चाहिए। सत्सङ्ग के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। संसार को मिथ्या समझना तथा श्री नारायणजी के चरण-कमलों में प्रीति रखना यह केवल सत्सङ्ग से ही संभव है। साधु-महात्माओं की सङ्गति करने से मन धीरे-धीरे सांसारिक व्यवहारों से विरक्त होकर श्रीहरि के चरणों में प्रीति करने लगता है। इसके अतिरिक्त एक मुख्य बात यह भी है कि संसार में नरक तथा मोक्ष दो दरवाजे हैं। सन्त एवं महात्माओं की सङ्गति करना मुक्ति का द्वार है तथा पर-स्त्री प्रसङ्ग, चोरी, जुआ, विषय-भोग एवं मद्यपान आदि नरक के द्वार हैं।

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को ज्ञान सिखाना : सन्त एवं महात्माओं के लक्षणों का वर्णन

ऋषभदेवजी बोले—"हे पुत्रो ! जिन सन्त तथा महात्माओं के सत्सङ्ग एवं सेवा करने से मुक्ति का द्वार खुल जाता है, उनके लक्षण मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। उनका मन सदैव एक-सा रहता है। किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर भी उन्हें क्रोध नहीं आता। वे भीतर-बाहर सर्वत्र समान रहते हैं। उनके हृदय में कपट नहीं होता। वे श्री नारायणजी के भक्तों से प्रीति करते हैं। दिन-रात श्री नारायणजी की कथा सुनने पर भी उन्हें संतोष प्राप्त नहीं होता, न उन्हें कभी इस विषय में आलस्य ही होता है। वे अपने घर तथा परिवार में एक साधारण अतिथि के समान रहते हैं तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी उदर-पूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। लाभ-हानि की उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती। हर्ष तथा विषाद सभी उन्हें एक समान हैं। अतिथि का पहिला लक्षण यह है—जिस प्रकार कोई एक परदेशी दरिद्र किसी दूसरे ग्राम अथवा नगर में पहुँचकर किसी के घर भोजन कर ले, तदुपरान्त भोजन देनेवाले के प्रति किसी प्रकार का स्नेह उत्पन्न किये बिना वहाँ से चल दे। अतिथि का दूसरा लक्षण यह है कि जैसे कोई पक्षी किसी मकान में घोंसला बनाकर रहे तथा वहाँ दाना-पानी खाते-पीते रहने के बाद भी, यदि वह मकान गिर जाय तो उसका कोई शोक न करे। अतिथि का तीसरा लक्षण यह है कि जिस प्रकार खीरे का फल ऊपर से एक रहते हुए भी भीतर से तीन-चार अलग-अलग फाँकोंवाला होता है, उसी प्रकार ज्ञानी गृहस्थ भी प्रकट में तो अपने स्त्री-पुत्रादि का मोह रखता है, परन्तु अन्तः-करण से उन सबको अपना शत्रु ही समझता है। इस प्रकार के विरक्त गृही को जो किसी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचाता, उत्तम कोटि का साधु एवं महात्मा समझना चाहिए। अतः हे पुत्रो! तुम लोग इन सब बातों का ध्यान रखते हुए ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ समझो तथा उनकी सेवा करते हुए न्याय एवं स्नेहपूर्वक प्रजा का पालन करो। जिस व्यक्ति को इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है उसे यमदूतों की फाँसी के बन्धन में नहीं बँधना पड़ता।"

इस प्रकार अपने पुत्रों को उपदेश देकर कुछ समय बाद ऋषभदेवजी ने अपने मन में यह विचार किया कि अन्त समय में यह राज्य तथा परिवार मेरे साथ नहीं जायगा। सब लोग मेरा साथ छोड़ देंगे। अतः इसके पहिले कि ये लोग मेरा साथ छोड़ें, मुझे ही इनका साथ छोड़ देना चाहिए। ऐसा निश्चयकर ऋषभदेवजी ने अपने बड़े पुत्र 'भरत' को राजसिंहासन पर बैठा दिया तथा स्वयं विरक्त होकर 'जड़भरत' का रूप धारण कर लिया। तदु-परान्त वे जड़भरत रूपधारी ऋषभदेवजी एक पर्वत पर जाकर श्री नारायण-जी का तप एवं स्मरण करने लगे। जड़भरत के लक्षण यह कहे गये हैं—जो मल-मूत्र करने पर भी स्नान आदि का नियम न रक्खे। भोजन का उद्योग त्याग दे, यदि कोई कुछ खिला दे तो खा ले अन्यथा चुपचाप बैठा रहे। अपने वस्त्रों का भी ध्यान न रक्खे। अतः इसी प्रकार ऋषभदेवजी ने भी जड़भरत का रूप धारण कर स्नान-पूजन आदि सबको त्याग दिया। इतने पर भी उनके सुन्दर स्वरूप को देखकर देव-कन्याएँ उनके ऊपर आसक्त हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gyaan Kosha

जाती थीं। उनके मल-मूत्र की सुगन्धि चालीस कोस दूर तक फैला करती थी। जिस समय ऋषभदेवजी पर्वत पर बैठे हुए थे, उस समय आठों सिद्धियों ने उनके पास पहुँचकर अपने-अपने गुणों का वर्णन किया, परन्तु ऋषभदेवजी ने उनकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं।"

छठाँ अध्याय

ऋषभदेवजी के चलन द्वारा सरावगी धर्म की उत्पत्ति

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! ऋषिभदेवजी तो श्री नारायणजी के अवतार थे। फिर उन्होंने आठों सिद्धियों के हृदय को अपनी ओर खींचकर विरक्त क्यों नहीं बना दिया? काम, क्रोध, मोह, लोभ, मन तथा इन्द्रियों के वशीभूत रहनेवाले व्यक्ति को ही अष्ट सिद्धियों की ओर देखने से भय लगता है। ऋषभदेवजी ने तो इन सबको अपने वशीभूत कर लिया था, फिर क्या कारण था जो उन्होंने अष्ट सिद्धियों की ओर नहीं देखा?"

राजा परीक्षित के इन शब्दों को सुनकर शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! काम, क्रोध आदि बलिष्ठ शत्रुओं के संसर्ग में रहने के कारण यह चंचल मन सहसा वशीभूत नहीं होता है। उसमें भी कामदेव तो इतना शक्तिशाली है कि मनुष्य उसके मद में अन्धा होकर भले-बुरे का सब ज्ञान भुला बैठता है। यह कामदेव बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तथा योगियों के ज्ञान को पलमात्र में नष्ट कर देता है तथा उनकी सहस्रों वर्ष की तपस्या को अपने विघ्न द्वारा क्षणभर में ही भ्रष्ट बना देता है। इसी प्रकार चञ्चल मन को भी बिजली अथवा पारे के समान समझना चाहिए जो कभी किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता। इन सब कारणों से मन के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति को भुलावे में रखकर पर-पुरुष के पास चली जाती है, उसी प्रकार अष्ट सिद्धियों का कुसङ्ग प्राप्त करके यह मन तथा इन्द्रियाँ भी कुकर्म करने की इच्छा करने लगती हैं। इन सब बातों पर विचार करके ही श्री ऋषभदेवजी ने अष्ट सिद्धियों की ओर नहीं देखा था। यदि वे ऐसा न करते तो कामदेव की प्रबलता को रोकना कठिन हो जाता। जड़भरत के रूप में रहने से शास्त्रों में वर्णित धर्म तथा षट्कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती है, इसी लिए श्री ऋषभदेवजी को जड़-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भरत के रूप में देखकर अनेक संसारी मनुष्यों ने भी उनका अनुसरण कर, स्नान करना तथा वेद पढ़ना छोड़ दिया। उसी समय से ओसवाल तथा सरावगी मत की उत्पत्ति हुई। जो लोग वेद तथा शास्त्रों को नहीं मानते थे, उनमें इस मत का प्रचार हो गया। इस मत के माननेवालों को जैन धर्मानुयायी कहा जाता है। अस्तु, कुछ समय पश्चात् श्री ऋषभदेवजी उसी अवस्था में, शरीर में अग्नि लग जाने से परमधाम को प्रस्थान कर गये।"

सातवाँ अध्याय

भरत का राज्य करना तथा अन्त में तप करने के लिए वन-गमन

शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! ऋषभदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने राजसिंहासन पर बैठकर बहुत समय तक धर्मपूर्वक राज्य किया तथा अपनी प्रजा को सुख पहुँचाया। उसने अपना विवाह 'विश्वरूप' की परम सुन्दरी कन्या 'पञ्चजनी' के साथ किया था। उस पत्नी द्वारा राजा भरत को 'धूम्रकेतु' आदि पाँच अत्यन्त सुन्दर तथा प्रतापी पुत्रों की प्राप्ति हुई। राजा भरत ने अनेकों यज्ञ किए तथा उन सबका फल श्री नारायणजी को समापत कर दिया। उस धर्म के प्रताप से उन्हें ध्यान में हर समय श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त होने लगे। इस प्रकार भरत ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया, तदुपरान्त सांसारिक व्यवहारों को मिथ्या समझकर, राजसिंहासन अपने पुत्रों को सौंप दिया। फिर वह सबसे विरक्त होकर वन में 'पुलहाश्रम' नदी के तट पर पहुँचकर—जहाँ श्री नारायणजी शालग्राम रूप से निवास करते हैं—श्री हरि का भजन एवं स्मरण करने लगा। वहाँ पणकुटी में रहकर तथा कन्द-मूल-फल खाकर उसे जो आनन्द प्राप्त होता था, उसे वह राजभवन के आनन्द से बढ़कर समझता था। वैसे भी, वेद की आज्ञानुसार क्षत्रिय को प्रतिदिन शालग्राम की पूजा करना आवश्यक कहा गया है। अस्तु,

हे राजन्! एक दिन राजा भरत नदी के तट पर बैठा हुआ श्री सूर्यनारायण का ध्यान कर रहा था, उसी समय एक गर्भवती हिरणी अपने झुण्ड से अलग होकर, पानी पीने के लिए वहाँ आ पहुँची। जिस समय यह हिरणी नदी में पानी पी रही थी, उसी समय कहीं से व्याघ्र के बोलने का शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुनकर हिरणी अत्यन्त भयभीत हो गई तथा नदी को नाँघ कर दूसरे किनारे पर जा गिरी। जिस समय वह नदी को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाँघ रही थी, उस समय उसके पेट से बच्चा गिर पड़ा। वह बच्चा तो जीवित बच गया। परन्तु हिरणी की मृत्यु उसी स्थान पर हो गई। राजा भरत इस दृश्य को देख रहा था। हिरणी की मृत्यु हो जाने पर उसने अपने मन में विचार किया कि यदि मैं इस बच्चे को यहीं पड़ा रहने देता हूँ तो कोई भी जंगली जानवर इसे खा जायगा अथवा यह भूख-प्यास से व्याकुल होकर स्वयं ही मर जायगा। इसलिए मुझे इसकी रक्षा करनी चाहिए। श्री नारायणजी ने यह बोझ मेरे ऊपर ही डाल दिया है। अब यदि मैं इसे स्वीकार न करूँगा तो भारी पाप लगेगा। ऐसा विचार करके राजा भरत ने उस बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया। तदुपरान्त उसे पानी से स्नान कराकर अपने आश्रम में ले आया। और गौ का दूध पिलाकर उसका पालन-पोषण करने लगा।"

आठवाँ अध्याय

हिरण के बच्चे का खोना तथा राजा भरत का उसी के वियोग में शरीर त्याग देना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! राजा भरत उस बच्चे के पालन-पोषण के मोह में ऐसा पड़ गया कि वह उसे अपने हाथों से हरी घास छीलकर खिलाने लगा तथा अपने पास ही सुलाने लगा। वह शौच, स्नान तथा बाहर कहीं भी जाते समय सदैव उसे अपने साथ रखता था। पूजा तथा तपस्या के समय भी उसे अपने पास ही बैठाये रहता था। उस बच्चे से राजा को ऐसा स्नेह बढ़ा कि जप-तप तथा ध्यान आदि में विघ्न पड़ने लगा। यदि कभी वह बच्चा कुछ देर के लिए कहीं चला जाता था, तो राजा उसके लिए बहुत चिन्ता किया करता था। दैववश एक दिन वह बच्चा छूटकर सघन वन में चला गया तथा वहाँ एक हिरणों के झुण्ड के साथ मिल जाने से फिर लौट कर कुटी में नहीं आया। राजा भरत ने उस बच्चे को बहुत ढूँढ़ा, परन्तु जब वह कहीं नहीं मिला तो उसके वियोग में अत्यन्त व्याकुल होकर इस प्रकार कहने लगा कि मुझ से बड़ी भूल हुई जो मैंने उस बच्चे को अकेला छोड़ दिया। यदि मैं पहिले यह जानता कि अकेला छोड़ देने से वह कहीं चला जायगा तो उसे कभी न छोड़ता। हे परमेश्वर! अब तू ऐसी दया कर कि वह बच्चा फिर मेरे पास लौट आवे। हा! वह कैसा भोला था कि जरा सा डाँट देने पर मुनियों के बालकों के समान भयभीत हो जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था। हे पृथ्वी! यदि तू उस बच्चे को कहीं छिपा आई हो, तो मुझे बतला दे। इस प्रकार दिन भर शोक करते-करते जब रात्रि हो गई तो राजा इस प्रकार कहने लगा–"हे चन्द्र! तुम उस बालक को अवश्य देख रहे होगे। अतः वह जहाँ कहीं भी हो, मुझे बता देने की कृपा करो। यदि तुम नहीं बतलाओगे तो मेरे प्राण निकल जायँगे।"

शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित! इस प्रकार राजा भरत ने उस हिरण के बच्चे के लिए ऐसा शोक किया जैसा कि अपने पुत्र के मर जाने पर भी कोई नहीं करता है। उस दिन से राजा ने स्नान, भोजन तथा भजन-पूजन सब त्याग दिया। कुछ दिनों बाद उसी शोक में राजा का प्राणान्त हो गया। मरते समय राजा का ध्यान उस हिरण के बच्चे में लगा था, अतः उसने स्वयं भी मनुष्य शरीर त्यागने के बाद दूसरे जन्म में हिरण का शरीर प्राप्त किया।"

नवाँ अध्याय

राजा भरत का हिरण-शरीर को त्याग कर एक ब्राह्मण-घर में पुनर्जन्म लेना

शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! राजा भरत हिरण का जन्म पाकर वन में रहने लगा, परन्तु श्री नारायणजी के भजन के प्रताप से उसे अपने पूर्व जन्म का सभी हाल मालूम था। कभी-कभी वह अपने अज्ञान को सोचकर अपने मन में इस प्रकार का विचार किया करता था कि देखो, मुझसे कैसी भूल हुई जो मैंने श्री नारायणजी का स्मरण त्याग-कर उस हिरण के बच्चे से ऐसी प्रीति की, जैसी अपने स्त्री तथा पुत्रों से भी कभी नहीं की थी। उसके मोह में नष्ट होकर मैंने अपना सर्वस्व खो दिया। इस प्रकार अपने पुनर्जन्म की याद करके राजा भरत बहुत दुखी होता था तथा अपने इस जन्म में किसी हिरणी अथवा अन्य जीव-जन्तु से प्रीति नहीं रखता था। वह सोचता था कि अब यदि मैंने किसी से प्रीति की तो क्या पता अगले जन्म में मेरी क्या दशा होगी? ऐसा विचार करके वह वन में अकेला घूमा करता था। वह न तो किसी जीव को दुःख देता था और न हरी घास ही खाता था। जो सूखे पत्ते वृक्षों से अपने आप गिर पड़ते थे, केवल उन्हीं को खाकर अपना पेट भरता और निशिदिन श्री नारायणजी का स्मरण किया करता था।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! मनुष्य को अपनी मृत्यु से प्रतिक्षण डरते रहना चाहिए, न जाने वह किस समय आ जावे ? जब भरत जैसे धर्मात्मा तथा ज्ञानी राजा की एक हिरण के बच्चे के मोह में पड़ने से ऐसी दुर्दशा हुई, तब अन्य लोग किस गिनती में हैं ? जो मनुष्य श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान त्यागकर संसारी माया-मोह में जा पड़ते हैं, उनकी ऐसी ही गति होती है। अस्तु, उस मृग के शरीर को पाकर भी राजा भरत हर समय यही विचार किया करता कि मेरा यह शरीर यदि किसी प्रकार शीघ्र छूट जाय तो मैं पुनः मनुष्य का शरीर पाकर श्री नारायणजी का स्मरण करूँ। सूखे पत्ते खाने के कारण उसका शरीर दुर्बल तो था ही, एक दिन जब वह पुलाहश्रम नदी को नाँघकर पार कर रहा था, उस समय नदी के बीच में ही गिर पड़ा। इस प्रकार जल में गिर जाने से उसकी वहीं मृत्यु हो गई। हिरण का शरीर त्यागने के पश्चात् राजा ने एक अथर्व-वेद-पाठी ब्राह्मण के घर पुत्र बनकर जन्म लिया। वहाँ भी उसका नाम 'भरत' ही रक्खा गया। जब वह तरुण हुआ तो अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त स्मरण होने के कारण किसी संसारी मोह-माया में नहीं पड़ा। वह दिन-रात श्री नारायणजी का ध्यान लगाये रहता तथा उन्हीं के गुणानुवादों का वर्णन करने में आनन्द पाता था। अपने पिता के डाँटने पर भी उसने विद्याभ्यास की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तब उस ब्राह्मण ने एक दिन अपना अन्त समय जान-कर, अपने अन्य पुत्रों को पास बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे पुत्रो ! मैंने बहुत प्रयत्न किया कि तुम्हारा भाई भरत पढ़-लिखकर होशियार हो जावे, परन्तु उसने पढ़ने में अपना चित्त कभी नहीं लगाया। अब मेरा तो अन्तिम समय है, परन्तु मेरे बाद तुम सब लोग ऐसा प्रयत्न करना, जिससे वह पढ़-लिखकर चतुर हो जावे।" इस प्रकार कहने के पश्चात् जब वह ब्राह्मण मर गया तो उसके अन्य पुत्रों ने भरत को पढ़ाने के लिए बहुत उपाय किये, परन्तु वे सब व्यर्थ हो गये। उसने अपना स्वरूप जड़भरत का बना लिया। तब ऐसी स्थिति हो गई कि यदि कोई कुछ खिला दे तो खा लेता था अन्यथा किसी बात की चिन्ता किए बिना दिन-रात्रि श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न बना रहता था। भरत की ऐसी दशा देखकर उसके भाइयों ने उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। फिर भी वे भरत के खाने के लिए भोजन दे दिया करते थे। कुछ दिनों पश्चात् जब उन्होंने यह देखा कि भरत घर का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई काम नहीं करता है, केवल बैठा-बैठा खाता रहता है, तो वे उसे अपने खेत की रखवाली करने के लिए खेत पर ले गये। उन्होंने भरत से कहा—"हे भरत! तुम यहाँ खेत पर बैठकर पशु-पक्षी तथा अन्य प्राणियों से अन्न की रक्षा किया करो।" भरत ने उन्हें इसका कोई उत्तर नहीं दिया और वहीं चुपचाप आनन्दपूर्वक बैठकर श्री नारायणजी का स्मरण करने लगा। खेतों की रखवाली से उसे कोई मतलब नहीं था।

हे परीक्षित! उसी देश में भीलों का एक राजा रहता था। उसने एक बार भद्रकाली की यह मनौती मनाई थी कि यदि उसके कोई पुत्र हुआ तो वह एक मनुष्य की बलि चढ़ायेगा। कुछ समय बाद भद्रकाली की कृपा से जब उसे पुत्र की प्राप्ति हुई तो उसने भद्रकाली पर चढ़ाने के लिए एक अन्य बालक को खरीद लिया और उसका पालन-पोषण करने लगा। एक समय उस बालक को जब यह पता चला कि उसे भद्रकाली पर बलि चढ़ाया जायगा, तो वह कहीं अन्यत्र भाग गया। उस समय भीलों के राजा ने अपने सेवकों को कुछ धन देकर, बलि चढ़ाने के लिए किसी अन्य मनुष्य को खरीद लाने की आज्ञा दी। वे सेवक किसी आदमी को ढूँढ़ते हुए रात्रि के समय उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ खेत पर बैठा हुआ जड़भरत श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न था। भीलराजा के सेवकों ने जड़भरत को हृष्ट-पुष्ट देखकर अपने मन में यह विचार किया कि देवी पर बलि चढ़ाने के लिए इससे अधिक उत्तम मनुष्य कहीं नहीं मिल सकेगा। अतः इसी को राजा के पास ले चलना चाहिए। ऐसा निश्चय करके उन्होंने जड़भरत को पकड़ लिया तथा उसके गले में रस्सा बाँधकर राजा के पास ले पहुँचे। राजा ने जब हृष्ट-पुष्ट जड़भरत को देखा तो अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर सेवकों से इस प्रकार कहा—"हे सेवको! तुम लोग बलिदान देने के लिए जिस मनुष्य को लाये हो, वह बहुत अच्छा दिखाई देता है। इसे अपनी मृत्यु का कोई भय ही नहीं लग रहा है। यह अभी तक जैसा का तैसा आनन्दमूर्ति बना हुआ है, अतः इसकी बलि पाकर भद्रकाली अत्यंत प्रसन्न होंगी।" सेवकों से इस प्रकार कहकर राजा ने जड़भरत का क्षौर कर्म कराया तथा उबटन आदि लगाकर स्नान कराया। उस राजा के सभी पुत्र, उपरोहित तथा ब्राह्मण आदि महामूर्ख थे। उन्होंने न तो वेद-शास्त्रों को ही पढ़ा था और न यही जानते थे कि मनुष्य का बलिदान देना चाहिए अथवा नहीं। अस्तु, जड़भरत का स्नान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि कराने के पश्चात् नूतन वस्त्रालङ्कारों से सुशोभित किया गया तथा शरीर में इत्र, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुएँ लगाकर उत्तमोत्तम भोजन खिलाया।

हे राजन्! जिस समय वे लोग जड़भरत की ऐसी शुश्रुषा कर रहे थे उस समय जड़भरत अपने मन में प्रसन्न होकर यह सोच रहा था कि जब से मेरे माता-पिता की मृत्यु हुई है, तब से ऐसे श्रेष्ठ पदार्थ खाने के लिए कभी नहीं मिले। आज बहुत दिनों के बाद इन लोगों ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक मुझे भोजन कराया है। भोजन के पश्चात् राजा के लोगों ने जड़भरत के गले में फूलों के हार पहिनाए तथा उसे बलि देने के लिए, भद्रकाली की मूर्ति के सम्मुख ले जाकर खड़ा कर दिया। उस समय ज्योंही ब्राह्मणों ने राजा के हाथ में तलवार देकर जड़भरत को बलि करने की आज्ञा दी तथा राजा ने उसे मारने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया, त्योंही जड़भरत ने अपने मन में यह विचार करके कि मैंने मिष्टान्न खाते समय जिनके सम्मुख अपना मुँह फैलाया था, अब तलवार खाने के समय उनके सामने से अपनी गर्दन हटाना उचित नहीं है, अपने सिर को आगे की ओर झुका दिया। जिस समय जड़-भरत ने अपना मस्तक आगे को झुकाया, उस समय भद्रकाली ने अपने मन में यह विचार किया कि इन ब्राह्मणों को तो इतना ज्ञान है नहीं कि वे राजा को बलिदान करने से रोक दें तथा इस हरि-भक्त ब्राह्मण के प्राणों के ग्राहक न बनें, परन्तु यदि मैं इस ब्राह्मण की रक्षा न करूँगी, तो मुझे भारी पाप लगेगा। जो मनुष्य अपने सामने किसी व्यक्ति द्वारा किसी निरपराध को दुःखी होते देखे और उसकी रक्षा न करे, तो उसका अपराध देखनेवाले को लगता है। ऐसा सोचकर भद्रकाली अत्यन्त क्रुद्ध हो, हाथ में खड्ग तथा खप्पर लेकर साक्षात् प्रकट हो गईं। उन्होंने चिल्लाकर ऐसी डाँट लगाई कि उस घोर शब्द को सुनते ही राजा तथा उसके पुरोहित बहरे एवं मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उसके हाथ में से तलवार छूटकर अलग जा पड़ी। तब भद्रकाली ने उसी तलवार से उन दोनों का मस्तक काट दिया। फिर उन कटे हुए मुण्डों को उछाल-उछालकर इस इच्छा से नृत्य करने लगीं कि यदि हरि-भक्त जड़भरत प्रसन्न होकर मेरी ओर देखें तो उससे मेरा कल्याण होगा। परन्तु भद्रकाली द्वारा नृत्य करने पर भी जब जड़भरत उसी प्रकार मस्तक झुकाये खड़ा रहा, तब भद्रकाली ने स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मदेव! आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कर दें। जब किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का भक्त अथवा सेवक किसी अन्य का अपराध करता है, तो अपराधी की श्रेणी में उसके स्वामी का नाम ही लिया जाता है। अतः आप अपने मन में यह विचार न करें कि यह राजा भद्रकाली का भक्त था, इसलिए उसने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया है। हे जड़भरतजी! जिसने अपने धन तथा राज्य के मद में अन्धा होकर आप जैसे भक्त महात्मा को कष्ट देना चाहा, वह मेरा सबसे बड़ा शत्रु है। उसने आपको पहिचाना नहीं था।" भद्रकाली के मुख से इन शब्दों को सुनकर जड़भरत ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"हे देवि! आत्मा तो अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता, अतः मस्तक कट जाने के भय से मैं किञ्चित् मात्र भयभीत नहीं था। परन्तु तुम्हारा भक्त इस पाप के कारण नरक की यातना भोगेगा, यही मुझे सबसे बड़ा दुःख हो रहा है। इतना कहकर जड़भरत वहाँ से चला आया।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इसे सत्य समझ लो कि जो मनुष्य अपना सर्वस्व श्री नारायणजी के चरणों में समर्पित कर देता है, उसे कोई भी प्राणी दुःख नहीं पहुँचा सकता है।"

दसवाँ अध्याय

राजा रहूगण के कहारों का जड़भरत को पकड़कर शिविका में लगाना

शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! अब तुम जड़भरत का दूसरा वृत्तान्त सुनो। एक दिन 'सिन्धुसुवीर' नामक नगर का स्वामी 'राजा रहूगण' अपने घर से शिविका पर चढ़कर ज्ञान सीखने के लिए कपिलदेव मुनि के पास जा रहा था। मार्ग में उसकी शिविका का एक कहार बीमार हो गया। जिस स्थान की यह घटना है, वहीं पास ही में कहीं एक ओर श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न जड़भरत भी बैठा था। शिविका के अन्य कहारों की जब जड़भरत पर दृष्टि पड़ी, तो उन्होंने उसे हृष्ट-पुष्ट देखकर पालकी में लगा दिया। जड़भरत ने भी कोई एतराज नहीं किया। वह अपने अपमान का कोई विचार न करके पालकी को उठाकर आनन्दपूर्वक चलने लगा। परन्तु चलते समय जड़भरत पृथ्वी पर अपने पाँव सावधानी से देख-देखकर रखता था, ताकि कोई चींटी आदि छोटा जीव न दब जाय। जड़भरत के इस प्रकार चलने से वह पालकी कई बार हिल गई। यह देखकर राजा ने अत्यन्त क्रोध में भरकर कहारों से पूछा—"तुम लोग पालकी को क्यों हिलाते हो?" कहारों ने उत्तर दिया—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामी ! इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। यह नया कहार पालकी को हिला रहा है।" तब राजा ने जड़भरत से कहा–"तू देखने में तो हृष्ट-पुष्ट लगता है, अभी अधिक दूर भी नहीं चला जो थक गया हो, फिर क्या कारण है, जो इस प्रकार बार-बार पालकी को हिला देता है ? क्या तुझे अपनी मृत्यु का भय नहीं है ?" राजा के इन शब्दों को सुनकर भी जड़भरत मौन बना रहा। वह अपने मन में विचार करने लगा कि प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मानुसार सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अकेले श्री नारायणजी ही इन दोनों (सुख-दुःख) से पृथक् हो, सदैव एकरस बने रहते हैं। यह राजा कैसा अज्ञानी है, जो इतनी-सी बात भी अपने मन में नहीं समझता है ? इस प्रकार जड़भरत तो अपने हृदय में यों विचार कर रहा था, उधर उसे अपने प्रश्न का उत्तर न देते देखकर राजा रहूगण और अधिक क्रोध में भर गया। उसने जड़भरत से फिर कहा–"अरे कहार ! तू हमारे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देता है ?" तब राजा के इन शब्दों को सुनकर जड़भरत ने अपने मन में सोचा कि यह राजा अपने को बड़ा भारी ज्ञानी समझता है, इसी लिए ऐसी बातें कर रहा है। अतः अब इसी में भलाई है कि मैं इसके अभिमान को नष्ट कर दूँ। ऐसा विचार कर के जड़भरत ने हँसते हुए कहा–"हे राजन् ! आपने जो यह कहा कि तू बहुत राह न चलने पर भी कैसे थक गया है, सो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य निरर्थक फिरता रहता है, वह दुःख पाने के समय अवश्य ही थक जाता है, इसलिए उसे ऐसा कर्म करना चाहिए ताकि वह जन्म-मरण से छूट जाय। दूसरी बात आपने यह कही कि तू दुर्बल नहीं है, हृष्ट-पुष्ट दिखाई देता है, उस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है जिसे जीव कहते हैं, वह सदैव एकरस रहता है। वह न कभी मोटा होता है और न पतला। उसे सदैव चैतन्य समझना चाहिए। यदि उसे दुबला कहा जाय तो वह ऐसे सूक्ष्म रूप का हो जायगा कि फिर नेत्रों को दिखाई भी नहीं देगा। इसके विपरीत यदि उसे मोटा कहा जाय तो उसके विराट् स्वरूप में तीनों लोक तथा चौदहो भुवन स्थित मिलेंगे। यह शरीर नाशवान् है, इसी लिए कभी पुष्ट रहता है और कभी कृश हो जाता है। जो इस अनित्य शरीर से स्नेह रखता हो, उसी को इन बातों पर विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त आपने जो यह कहा कि क्या तुझे मरने का भय नहीं है, सो मैं तो जीने और मरने को एक-सा समझता हूँ। हाँ, यह निश्चित है कि मृत्यु आये बिना कोई भी प्राणी मरता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं है। हे राजन्! मेरे, आपके तथा सृष्टि के अन्य सम्पूर्ण जीवों में परमेश्वर का एक-सा प्रकाश वर्तमान है, इसलिए मैं स्वामी तथा सेवक को सम समझता हूँ। इस शरीर के रहने तक आप राजा हैं, परन्तु मृत्यु के पश्चात् आप और मैं एक-जैसे हो जायँगे, इसलिए आप में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो आप किसी अविनाशी आत्मपुरुष को दुःख दे सकें। इस मिथ्या शरीर को जो चाहें, वह दण्ड दे लीजिए, मुझे उसका कोई भय नहीं है। हर्ष, विषाद, सुख-दुःख आदि का अनुभव तो केवल इस शरीर को ही होता है, परन्तु इसके भीतर जो परमात्मा विद्यमान हैं, उन्हें इन सबसे कोई प्रयोजन नहीं है।"

जड़भरत के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजा रहूगण को ज्ञान की प्राप्ति हुई। तब वह तुरन्त ही शिविक से नीचे उतरकर जड़भरत के चरणों में गिर पड़ा। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे महात्मन्! संसारी मायाजाल में फँसे रहने के कारण मैं आपको नहीं पहिचान सका। हे प्रभो! आप कोई ऋषि हैं अथवा अवतारी महापुरुष हैं, जो अवधूतों की भाँति भेष बदलकर इस प्रकार घूम रहे हैं? आप कृपा कर अपना भेद बतलाइये तथा मुझे ज्ञानोपदेश करके भवसागर से पार उतार दीजिए। हे स्वामी! मैं श्री शङ्कर-जी के त्रिशूल तथा यम, चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि किसी भी देवता से नहीं डरता हूँ; परन्तु ब्राह्मण के शाप से अत्यन्त भयभीत रहता हूँ। आप कृपा कर मेरा अपराध क्षमा कर दें।" राजा रहूगण के इन वचनों को सुनकर जड़भरत ने कहा—"हे राजन्! अपने कर्मों द्वारा यह जीव कभी देवता होता है तो कभी मनुष्य अथवा भिखारी बनता है। अतः शरीर की नश्वर गति समझकर, जीवरूपी परमात्मा को इससे पृथक् समझना चाहिए।" इतना कहकर जड़भरत ने राजा रहूगण को अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनाया।"

ग्यारहवाँ अध्याय

जड़भरत द्वारा राजा रहूगण को ज्ञानोपदेश

जड़भरत ने कहा—"हे राजन्! मनुष्य के अज्ञान को तो देखो कि वह जिन स्त्री-पुत्रादिकों के दुर्वचनों को सुनकर दुःख पाता है, उन्हीं में अपना चित्त सदैव लगाये रहता है। वह झूठ-सच द्वारा किसी भी प्रकार धनोपार्जन कर, उन्हीं का पालन-पोषण भी करता है। जिस प्रकार मार्ग में अवसर पाकर चोर तथा ठग आदि धनी व्यक्ति को लूट लेते हैं, उसी प्रकार छः ठग मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ आठों प्रहर लगे रहकर उसके शुभ कर्मों को चुराया करते हैं। किसी घर में चूहे हों तो वे खाने-पीने की वस्तुएँ तथा वस्त्रादिकों को काट डालते हैं, परन्तु जिसके घर में चूहे न हों, उसकी वस्तु नष्ट नहीं होती। अतः उन छः ठगों में एक ठग मन को समझना चाहिए, जिसके चलायमान हो जाने पर मनुष्य कुकर्म करके स्वयं नष्ट हो जाता है। अन्य पाँच ठग काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा इन्द्रियाँ हैं। इन पाँचों के अधीन रहकर मनुष्य अशुभ कर्म करके अपने धर्म से क्षीण हो जाता है। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह इन छहों ठगों को अपने वश में बनाये रहे, स्वयं इनके वशीभूत न हो।" इस प्रकार जड़भरत ने जब उपदेश किया जो राजा रहूगण ने पुनः दण्डवत् प्रणाम किया।

बारहवाँ अध्याय

राजा रहूगण द्वारा मनुष्य-शरीर की प्रशंसा

जड़भरत द्वारा यह ज्ञान सुनकर राजा रहूगण ने प्रार्थना की—"हे महात्मन्! मनुष्य-शरीर से अधिक उत्तम अन्य कोई शरीर नहीं है। इस मनुष्य-शरीर के कारण ही मुझे आप-जैसे महात्मा एवं ज्ञानी पुरुष का दर्शन प्राप्त हुआ है। मनुष्य-जन्म को देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिए। यदि देवतागण श्री नारायणजी का तप करें तो उन्हें मुक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु भरतखण्ड का निवासी मनुष्य जिस किसी मनोकामना की सिद्धि के लिए हरि-भक्ति करे, उसे उसी मनोरथ की प्राप्ति होती है। इसलिए मैं मनुष्य-शरीर को देवताओं से अधिक श्रेष्ठ जानकर दण्डवत् करता हूँ।" राजा रहूगण के इन शब्दों को सुनकर जड़-भरत ने कहा—"हे राजन्! मैंने जो बातें कहीं, आपने उनका अर्थ समझा है अथवा नहीं?" राजा ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! मैं अत्यन्त मूर्ख तथा अज्ञानी संसारी जीव हूँ, इसलिए मैं इस ज्ञान को ठीक से नहीं समझ पाया हूँ, आप कृपा कर विस्तारपूर्वक कहें तो मैं समझ सकूँगा।" यह सुनकर जड़-भरत ने हँसते हुए कहा—"हे राजन्! यह ज्ञान तो ज्ञान, यज्ञ, पूजा, जप, तप, विरक्ति, वनवासी होने, पञ्चाग्नि में तपने, जल में बैठने तथा दान देने से भी सम्पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं हो सकता है। इन सब कर्मों के करने से मनुष्य को यह अहङ्कार होता है कि मैंने ऐसे शुभ कर्म किये हैं, जिनकी बराबरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरा कोई नहीं कर सकता। इस अहङ्कार के कारण ही शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब तक मनुष्य अहङ्कार को त्यागकर सन्त तथा महात्माओं की चरण-धूलि अपने मस्तक पर नहीं लगाता, तब तक उसे इस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। श्री नारायणजी की कृपा के बिना सच्चे सन्त तथा महात्माओं के दर्शन मिलना भी दुर्लभ ही समझना चाहिए। हे रहूगण ! आप यह समझते हैं कि हम राजा हैं, सो आपको यह जान लेना चाहिए कि मैं भी अपने पूर्वजन्म में 'भरत' नामक सातों द्वीपों का सम्राट् था। परन्तु मैंने राजसिंहासन को भला न समझकर, उसे त्याग दिया और वन में श्री परब्रह्म प्रभु की शरण में पहुँचकर तपस्या करने लगा। इसके विपरीत आपको अभी तक अपने राजसिंहासन का अभिमान बना हुआ है, इसी लिए आप अन्य जीवों पर दया नहीं रखते हैं। आपको यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि जिस परमेश्वर का प्रकाश अपने शरीर में है, उसी का प्रकाश इन कहारों के शरीर में भी विद्यमान है। यदि ज्ञान-दृष्टि से देखा जाय तो ये सभी लोग तथा परमेश्वर के सभी जीव आपके ही समान हैं। आप अपने सुख के लिए इन कहारों को दुःख दे रहे हैं, यह अत्यन्त अनुचित है।" जड़भरत के मुख से यह शब्द सुनकर राजा रहूगण अत्यन्त भयभीत होकर काँपने लगा। फिर हाथ जोड़कर बोला—"हे महात्मन् ! मैं ब्राह्मण के शाप से बहुत डरता हूँ, कहीं ऐसा न हो कि आप क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे बैठें।"

तेरहवाँ अध्याय

जड़भरत द्वारा एक वैश्य के इतिहास का वर्णन

राजा रहूगण की बात सुनकर जड़भरत ने कहा—"हे राजन् ! आप भयभीत न हों, मैं आपको शाप नहीं दूँगा। जो लोग ज्ञानी तथा महात्मा हैं, वे इस संसार के सुखों को स्वप्न के समान मिथ्या समझकर इस शरीर से स्नेह नहीं रखते हैं। वह अविनाशी परमात्मा शरीर से इसी प्रकार अलग रहता है, जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर पक्षी बैठा हो और उसे वृक्ष के काटे जाने का कोई दुःख न लगे। यदि वह पक्षी वृक्ष को अपना जानकर शोक करे तो उसका शोक करना व्यर्थ समझना चाहिए। जो मनुष्य शरीर को अपना समझकर सांसारिक सुखों में अपना मन लगाता है, उसे सच्चे सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती है। श्री नारायणजी का स्मरण एवं भक्ति करने से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृदय में ज्ञान का दीपक प्रकाशित हो जाता है तब उसके प्रकाश से अन्तः-करण से काम-क्रोध आदि का अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है।" इस ज्ञान को सुनकर राजा रहूगण ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे महात्मन्! अब मैं आपको पहिचान पाया हूँ। आप ब्राह्मण तथा परम ज्ञानी हैं। जिस प्रकार अमृत पीने से रोगी का दुःख नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार माया-मोह में फँसकर नष्ट होनेवाले संसारी मनुष्यों को आप अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया करते हैं। आपने मुझे भी अपना दास जानकर दर्शन दिया है, इसके लिए मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ।" राजा के वचन सुनकर जड़-भरत ने फिर कहा—"हे राजन्! मैं एक इतिहास कहता हूँ उसे सुनकर आप भवसागर से पार उतर जायँगे। सुनो—किसी समय एक धनी वैश्य अपने साथ बहुत-सी वस्तुएँ लेकर व्यापार करने के लिए परदेश को चला। वह इतना कृपण था कि उसने धन की रक्षा के लिए अपने साथ सेवकों को भी नहीं लिया। परिणामतः उसके साथ छः चोर लग गये। उन चोरों के अन्य सहायक भी पीछे-पीछे चलने लगे। नगर से बाहर निकलने पर वह वैश्य मार्ग भूलकर ऐसे सघन वन में जा पहुँचा, जहाँ दूर-दूर तक बस्ती का नामोनिशान तक नहीं था। उस वन में व्याघ्र, भालू आदि हिंसक पशु विचरण कर रहे थे। कँटीले वृक्ष एवं नदी-नालों के कारण उसका मार्ग चलना भी अत्यन्त कठिन हो गया। तब वह वैश्य भयभीत होकर उस वन को पार करने के लिए सन्ध्या तक निरन्तर चलता रहा, परन्तु उसे कहीं भी बस्ती न मिली। अन्त में उसी वन में रात्रि हो गई। उस समय जब वह वैश्य एक नाले के समीप पहुँचा तो उसके पीछे लगे हुए छः चोर तथा उनके सहायक उसका माल लूटने लगे। उस समय वह वैश्य अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि यदि मेरे पास कुछ भी माल बच जाता तो मैं उसे बेचकर फिर से व्यापार करना आरम्भ कर देता। ऐसा सोचकर वह जिस वस्तु का बचाव करता था, उसी को वे लोग लूट लेते थे। अन्त में जब उसका सम्पूर्ण धन लूट लिया, तब चोर तो चले गये और वह वैश्य घबराकर उस वन में ठहरने के लिए किसी स्थान की तलाश करने लगा। परन्तु उसे कोई भी स्थान नहीं मिला। उस समय व्याघ्र, हाथी आदि वन्य पशुओं की बोली सुन-सुनकर वह भय से काँपता हुआ मार्ग में आगे बढ़ने लगा। कहीं किसी सर्प अथवा बिच्छू को देखता तो ठोकर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ता था। कभी उसके पैर में काँटे चुभ जाते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे तो कभी विश्राम लेने के लिए जब वह किसी वृक्ष के नीचे जा बैठता था तो वहाँ उल्लू की बोली सुनकर भयभीत हो, भागने लगता था। कभी वन में अग्नि लगी हुई देखकर, विपरीत दिशा की ओर दौड़ने लगता था। अन्त में इन सब विपत्तियों से व्याकुल होकर भागते समय वह एक सूखे कुएँ में गिर पड़ा। उस कुएँ पर बरगद का वृक्ष था, जिसकी एक डाली कुएँ के भीतर पहुँचती थी। जिस समय वह गिरता हुआ कुएँ के बीचोबीच पहुँचा उस समय बरगद की एक डाली उसके हाथ लग गई। वह उसी को आश्रय मानकर पकड़कर लटक गया। उस कुएँ के नीचे तल पर एक सर्प अपना फन फैलाये हुए बैठा था। अतः जब उस अँधेरी रात के समय अचानक बिजली चमकी तो उस वैश्य की दृष्टि उस सर्प पर जा पड़ी। फिर ऊपर को दृष्टि उठाने पर वैश्य ने यह भी देखा कि वृक्ष की जिस डाली को पकड़कर वह लटका हुआ है, उसे श्वेत तथा श्याम वर्ण के दो चूहे निरन्तर काट रहे हैं। उस समय वह वैश्य अपने मन में विचार करने लगा कि यदि मैं कुएँ में कूद पड़ता हूँ तो यह सर्प मुझे डस लेगा और यदि नहीं कूदता हूँ तो भी इन चूहों द्वारा वृक्ष की डाली के काट दिए जाने पर स्वयं गिरकर उसके पास जा पहुँचूँगा। इसी विचार में वह ज्यों का त्यों लटकता रहा। उस बरगद के वृक्ष में ऊपर की ओर एक शहद का छत्ता भी लगा हुआ था। डाली हिलने पर उस छत्ते में से एक-एक बूँद शहद टपककर वैश्य के मुँह में गिरने लगा, तब उस महा विपत्ति के समय में भी वह वैश्य शहद के चाटने के कारण अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। इस प्रकार उस वैश्य की सम्पूर्ण आयु उसी वृक्ष पर लटके हुए ही व्यतीत हो गई। उसे बचानेवाला कोई भी व्यक्ति वहाँ न पहुँच सका। अन्त में एक दिन जब उन दोनों चूहों ने डाल को ऊपर से काट दिया, तब वह वैश्य अपने आप कुएँ में गिर पड़ा और उस सर्प द्वारा काटे जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया।"

इतनी कथा सुनकर राजा रहूगण ने जड़भरत से कहा—"हे महात्मन्! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि वह वैश्य एक-एक बूँद शहद चाटकर ही वहाँ प्रसन्नतापूर्वक कैसे लटका रहा। वृक्ष की डाली पकड़कर ऊपर क्यों नहीं चढ़ गया?" जड़भरत ने उत्तर दिया—"हे राजन्! आपकी तथा अन्य संसारी जीवों की भी ऐसी ही दशा समझनी चाहिए। सब लोग अनेक प्रकार से परिश्रम करके अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करते हैं परन्तु घरवालों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को कभी सन्तोष नहीं मिल पाता है। दिन-प्रतिदिन लाभ अधिक बढ़ता जाता है। संसारी मनुष्य को अपने उद्यम से कभी इतना भी अवकाश नहीं मिलता कि वह दो घड़ी के लिए अपने जन्मदाता परमेश्वर का स्मरण भी कर सके। जब कोई व्यक्ति उनसे हरि-भजन करने के लिए कहता है तब वे छूटते ही यह उत्तर देते हैं कि हमें अपने गृहकार्यों से ही अवकाश नहीं मिलता है, फिर श्री नारायणजी का स्मरण किस समय किया करें ? अतः हे राजन् ! इस जीव को वैश्य के समान समझना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर—ये छः चोर प्रत्येक प्राणी के साथ आठों प्रहर लगे रहते हैं। कुटुम्बियों को उन छः चोरों का सहायक समझना चाहिए। जीव को वैश्य इसलिए कहना चाहिए कि वह अपने धर्म तथा ज्ञानरूपी व्यापार को बढ़ाने के लिए भरतखण्ड में जन्म प्राप्त करता है। पूर्वजन्म में उसने साधु-महात्माओं की संगति तथा हरि-भजन करने के बाद भी स्वयं को संसारी मोह-माया में लिप्त कर दिया था, इसी लिए उसे दुबारा मनुष्य-शरीर धारण करना पड़ा। अब इस जन्म में आने पर उसके पूर्वजन्म का जो कुछ पुण्य था उसे परिवारवालों ने चुरा लिया। उस वैश्य ने अपने माल की रक्षा के लिए नौकरों को साथ नहीं रक्खा। इसलिए चोरों ने उसे लूट लिया। इसका तात्पर्य यह समझना चाहिए कि इस भरतखण्ड में मनुष्य-जन्म पाकर प्राणी ने यदि सन्त तथा महात्माओं के सत्सङ्ग से ज्ञान प्राप्त कर लिया होता तो वह माया-जाल में पड़कर नष्ट क्यों होता ? जिस प्रकार वह वैश्य अपने ठहरने के लिए स्थान ढूँढ़ते समय व्याघ्र आदि हिंसक जीवों के भय से भयभीत होकर इधर-उधर भागता फिरता था, उसी प्रकार संसारी सुखों की इच्छा रखनेवाले जीव दुखी होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। वे कभी अपने कुटुम्बी तथा पारिवारिक व्यक्तियों की बीमारी अथवा मृत्यु देख-कर दुखी होते हैं तो कभी धन पाने की चिन्ता में आठों प्रहर चिंतित बने रहते हैं। जिस प्रकार उल्लू तथा व्याघ्र आदि वन के जीव उस वैश्य को डराते थे, उसी प्रकार जब परिवार के लोग कलह करते हैं, तब मनुष्य बहुत दुःख पाता है। स्त्री के संसर्ग को अँधेरी रात के समान समझना चाहिए जिसमें पड़कर मनुष्य को उचित दिशा (कर्तव्याकर्तव्य) का ज्ञान नहीं रहता। उसके कारण वेद तथा पुराणों के सभी उपदेश भूल जाते हैं। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर जब मनुष्य कुछ धन नहीं कमा सकता, उस समय वही परि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वारवाले उसके आत्मीय जन ही उसे भाँति-भाँति के दुर्वचन कहकर घुड़कते हैं। जिस प्रकार वह वैश्य कुएँ में सर्प तथा चूहों को देखकर भी मृत्यु के भय से भयभीत नहीं होता था, उसी प्रकार अत्यन्त दुःख प्राप्त करने पर भी मनुष्य अपनी मृत्यु का ध्यान भुलाकर दिन-रात धनोपार्जन की चिन्ता में लगा रहता है। उस अँधेरे कुएँ को मनुष्य का परिवार समझना चाहिए। वैश्य द्वारा बरगद की डाली को पकड़कर लटके रहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने पिछले जन्मों में जो कर्म करता है, उसी का आश्रय लेकर जीवित रहता है। श्वेत तथा श्यामवर्ण के दोनों चूहों को दिन तथा रात्रि समझना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य की आयु प्रतिदिन घटती चली जाती है, वही तात्पर्य चूहों द्वारा वृक्ष की डाली काटे जाने का है। वैश्य ने उस कुएँ में जो सर्प देखा था उसे काल समझना चाहिए। जिस प्रकार वैश्य एक-एक बूँद शहद चाटकर प्रसन्न होता था, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य बुढ़ापे में सब प्रकार का दुःख प्राप्त होने पर भी अपने कुटुम्बियों के बीच में बैठकर आनन्द मानता रहता है। उस मिथ्या आनन्द को ही शहद की बूँद समझना चाहिए। हे राजन्! इस सम्पूर्ण संसार को महान् दुःखदायी वन समझना चाहिए। इस प्रकार संसारी माया-मोह में फँसनेवाला मनुष्य उस वैश्य के समान घोर दुःख उठाकर नष्ट हो जाता है। हे राजा रहूगण! आप संसार की माया में लिप्त हैं तथा स्त्री-पुत्रादि के मोह में फँसकर अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। जो मनुष्य वेद तथा शास्त्रों के उपदेशानुसार आचरण करता है, वही अपने मनोरथ को प्राप्त कर पाता है, अन्यथा छोटे-बड़े सभी जीव इस संसाररूपी माया के वन में भटककर नष्ट हो जाते हैं। सत्संग के बिना इस मोहरूपी वन से बाहर निकलना अत्यन्त कठिन है।"

चौदहवाँ अध्याय

राजा रहूगण का, ज्ञानोपदेश सुनकर, तपस्या करने के लिए वन में जाना

जड़भरत द्वारा इस प्रकार ज्ञान सुनकर राजा रहूगण ने प्रसन्न होकर जड़भरत के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। फिर विनम्रतापूर्वक कहा– "हे स्वामी! मैं अभी तक माया में पड़कर भूल रहा था, आपने अत्यन्त दया करके मुझे ज्ञानरूपी मार्ग दिखाया है।" जड़भरत ने कहा–"हे राजन्! इस ज्ञान के प्रकाश से आप संसारी माया-जाल से छूट जायँगे। अब जो उचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझें, वह करें।" यह सुनकर राजा रहूगण उसी समय विरक्त हो, पालकी त्यागकर, वन में चला गया तथा वहाँ हरि-भजन करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। इधर जड़भरत ने भी कुछ समय बाद योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्यागकर परमधाम को प्राप्त किया। तदनन्तर जड़भरत के पुत्र 'सुमत' ने संसार में जैनमत को फैलाया। उसके वंश में 'प्रतिहार' आदि उत्पन्न होकर शुभ कर्मों द्वारा परमपद को प्राप्त हुए।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित से पृथ्वी के विस्तार आदि का वर्णन करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे स्वामी! अब आप कृपा कर पृथ्वी तथा सूर्यलोक आदि लोकों का हाल विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! हमने पहिले सातों द्वीपों का हाल संक्षेप में कहा है, अब उसे विस्तारपूर्वक कहते हैं, सुनो। इस संसार में सात द्वीप हैं। सातों द्वीपों की पृथ्वी अलग-अलग बँटी हुई है। जम्बूद्वीप की पृथ्वी का विस्तार एक लाख योजन है तथा सातों द्वीपों की सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। पृथ्वी का एक चौथाई भाग लोका-लोक पर्वत के नीचे दबा हुआ है; एवं तीन भागों में सातों द्वीप तथा समुद्र हैं। राजा प्रियव्रत इन सातों द्वीपों के स्वामी थे। वे अपने पुत्रों को एक-एक द्वीप का राज्य देकर, स्वयं वन में चले गये। वहाँ श्रीहरि का स्मरण एवं ध्यान कर उन्होंने मुक्ति-पद प्राप्त किया। प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र ने जम्बूद्वीप के नौ खण्ड किए तथा अपने प्रत्येक पुत्र को एक-एक खण्ड का स्वामी बनाया। उसके पुत्रों के जो नाम थे, उन्हीं के नाम पर प्रत्येक खण्ड का नाम भी पड़ा। पहिले खण्ड का नाम उत्कल खण्ड, दूसरे का हिरण्य खण्ड, तीसरा भद्राश्व खण्ड, चौथा केतुमाल खण्ड तथा पाँचवाँ इलाव्रत खण्ड हुआ। इलाव्रत खण्ड में 'सुमेरु' नामक एक स्वर्ण का पर्वत है। वह पर्वत एक लाख योजन ऊँचा, सोलह सहस्र योजन लम्बा, आठ सहस्र योजन चौड़ा तथा बत्तीस सहस्र योजन की परिधिवाला है। छठे खण्ड का नाम नाभि खण्ड, सातवें खण्ड का किम्पुरुष खण्ड, आठवें का भरत खण्ड तथा नवें का नरहरि खण्ड है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कमल के फूल के समान गोलाकार है। प्रत्येक खण्ड के सिरे पर एक-एक पर्वत है। सुमेरु पर्वत के चारों ओर चार पर्वत हैं। उनमें दूध,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शहद, पानी तथा ईख के रस के कुण्ड भरे हुए हैं। वहीं चार अत्यन्त श्रेष्ठ उपवन भी हैं, जो फल-फूल तथा वृक्षों से भरे हैं। उन उपवनों में कुबेर, शङ्कर, इन्द्र तथा वरुण देवताओं के स्थान हैं। उन स्थानों पर जाने तथा स्नान करने से देवताओं की पत्नियाँ यौवनावस्था को प्राप्त हो जाती हैं। सुमेरु पर्वत के शिखर पर दस सहस्र योजन लम्बी तथा चौड़ी रत्न-जटित ब्रह्मपुरी बसी हुई है। वहाँ अनेकों प्रकार के पक्षी मधुर स्वरों में चहचहाते रहते हैं। हे राजन्! वहाँ की शोभा का वर्णन कहाँ तक किया जाय? वह देखने से ही प्रतीत होती है।"

सोलहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा लोकालोक पर्वत का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! इस प्रकार जम्बूद्वीप में नौ खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड के निवासी श्री नारायणजी के अवतारों की पृथक्-पृथक् पूजा करते हैं। इन सातों द्वीपों के बाहर लोकालोक पर्वत है। उसके पार सर्वत्र अँधेरा छाया रहता है। वहाँ सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता। केवल योगी जन ही उस स्थान पर जा सकते हैं, सांसारिक प्राणियों की सामर्थ्य वहाँ जाने की नहीं है। अत्यन्त बलवान् आठ हाथी–जिन्हें दिग्पाल कहा जाता है–पृथ्वी को आठों ओर से अपने नीचे इस प्रकार दबाये हुए हैं कि वे उसे हिलने नहीं देते। सुमेरु पर्वत के समीप ही कुबेरपुरी, वरुणपुरी, इन्द्रपुरी तथा यमपुरी हैं। सूर्य का रथ इन चारों पुरियों में दो-दो प्रहर बाद, एक-एक स्थान पर प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या एवं अर्द्धरात्रि के समय पहुँचता है। गंगा की उत्पत्ति ब्रह्मपुरी से हुई है। वे वहाँ से निकलकर ही सुमेरु पर्वत के नीचे गंगोत्री में आई हैं।"

सत्रहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा गङ्गाजी की महिमा का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! अब हम तुमसे गंगाजी की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं, सुनो। जिस समय श्री नारायणजी ने वामन अवतार लेकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान लिया, उस समय उन्होंने विराट् स्वरूप धारण करके अपने एक पग से नीचे के सातों लोक तथा दूसरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पग से ऊपर के सातों लोक नाप लिये। उस समय जब श्री नारायणजी का दायाँ चरण ब्रह्मपुरी में पहुँचा, तो ब्रह्माजी प्रभु को त्रिविक्रम अवतार जानकर आनन्दपूर्वक उठ खड़े हुए। तदनन्तर उन्होंने अपने कमण्डलु में से विरजा नदी का जल लेकर, जो श्री नारायणजी के आँसू गिरने से वैकुण्ठलोक में प्रकट हुई थी, श्रीहरि के उस चरण को धो लिया तथा उस चरणामृत का पान कर अपने मस्तक तथा नेत्रों से लगाया। श्री नारायणजी का चरण धोते समय जो पानी सुमेरु पर्वत पर गिरा था, वह नीचे मन्दराचल पर्वत के सिवाने पर आकर एक स्थान पर ठहर गया। तदुपरान्त वह जल उस स्थान से चार धाराएँ बनकर प्रवाहित हुआ। जल की एक धारा सुमेरु पर्वत के पश्चिम, दूसरी दक्षिण तथा तीसरी उत्तर दिशा की ओर बहकर समुद्र में विलीन हो गई। चौथी धारा, जो पूर्व की ओर बही थी, राजा भगीरथ के तपोबल से इलाव्रतखण्ड को बाँई ओर छोड़ती हुई, नरनारायण पर्वत से नीचे उतरकर गंगोत्री-द्वार से भरतखण्ड में आई। उसी धारा का नाम संसार में 'गंगा' हुआ। गंगा का ऐसा माहात्म्य है कि जो प्राणी गंगा में स्नान करने अथवा उसके जल का पान किंवा स्पर्श करने के उद्देश्य से अपने घर से प्रस्थान करने की इच्छा करता है, उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इस इच्छा को लेकर अपने घर से जितने पग चलकर गंगातट तक पहुँचता है, उसे एक-एक पग धरने के बदले सौ-सौ राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।"

श्री शुकदेवजी के मुख से इन वचनों को सुनकर राजा परीक्षित ने कुछ संदेह मानकर शुकदेवजी से कहा—"हे महात्मन्! जब मनुष्य को गंगास्नान के लिए जाने से ही इतने पुण्य-फल की प्राप्ति होती है, तो हमारे पितामह युधिष्ठिर ने इतना धन व्यय करके राजसूय यज्ञ किस लिए किया था तथा अन्य राजा भी यज्ञ किस लिए करते हैं?" तब श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इस सम्बन्ध में हम तुमसे एक इतिहास कहते हैं, उसे सुनो। एक बार श्री शिवजी पार्वतीजी को साथ लेकर मकर संक्रान्ति के समय गंगा-स्नान करने के लिए प्रयागराज को जा रहे थे। मार्ग में अन्य बहुत-से लोगों को भी गंगा-स्नान के लिए जाते देखकर पार्वतीजी ने श्री शिवजी से गंगा-स्नान का माहात्म्य पूछा। उस समय श्री शिवजी ने इस प्रकार कहा—"हे पार्वती! जो व्यक्ति गंगा-स्नान करने की इच्छा लेकर अपने घर से निकलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, उसे एक-एक पग चलने पर सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे प्राणी को देवयोनि की प्राप्ति होती है।" शिवजी के ऐसे वचन सुनकर तथा यात्रियों की भारी भीड़ देखकर पार्वतीजी ने अपने मन में यह सन्देह किया कि नीच जाति के लाखों मनुष्य गङ्गास्नान कर चुके हैं, फिर भी उनकी कुरूपता नष्ट नहीं हुई है। जब प्रत्यक्ष में यह बात है तो ये सब लोग देवता का शरीर किस प्रकार प्राप्त करेंगे। श्री शिवजी ने गंगास्नान का जो माहात्म्य बताया है, भला उसके अनुसार इन्हें फल किस प्रकार प्राप्त होगा। यह सन्देह करके पार्वती-जी ने शिवजी से इस प्रकार फिर कहा—"हे प्रभो! गंगास्नान के यात्रियों को कुरूप देखकर मुझे आपकी बात पर विश्वास नहीं होता है, अतः आप मेरे सन्देह का निवारण करने की कृपा करें।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे प्रिये! हम इस भेद के सम्बन्ध में तुमसे अधिक कुछ न कहकर आँखों से दिखाये देते हैं।" ऐसा कहकर शिवजी गंगा के तट पर जा पहुँचे और वहाँ एक कोढ़ी का रूप बनाकर बैठ गये। तत्पश्चात् पार्वतीजी से बोले कि तुम परम सुन्दरी नारी का रूप बनाकर मेरे शरीर की मक्खियाँ उड़ाओ। जब कोई यात्री तुमसे कुछ प्रश्न करे तो तुम उससे यही कहना कि मेरा पति कोढ़ी हो गया है, अतः एक पण्डित ने कर्म-विपाक की पुस्तक को देखकर यह बताया है कि जिस व्यक्ति ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य किया हो, वह यदि अपने हाथों से इन्हें छू दे तो इनका कोढ़ दूर हो जायेगा। यहाँ पर लाखों मनुष्य गंगास्नान करने के लिए आये हैं, अतः मैं भी अपने मन में यह सोचकर चली आई हूँ कि कोई ऐसा व्यक्ति—जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किए हों—यहाँ आकर मेरे पति के शरीर को अपने हाथ से छू दे तो इनका कष्ट दूर हो जायगा।

शिवजी की यह बात मानकर पार्वतीजी देवकन्या के समान अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण कर कोढ़ी-रूप महादेवजी के पास बैठ गईं और अपने हाथों से उनके शरीर पर बैठनेवाली मक्खियों को उड़ाने लगीं। उस समय गंगास्नान को आये हुए सहस्रों यात्री उनके सुन्दर स्वरूप को देखकर उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। उनमें से कोई तो पार्वती को अपने साथ चलने के लिए कहने लगा और कोई उनसे हँसी-दिल्लगी करने लगा। बहुत-से लोगों ने उन्हें लालच तथा भय भी दिखलाया। केवल थोड़े-से ज्ञानी लोगों ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही यह कहा कि देखो यह स्त्री परम धन्य है, जो ऐसी दशा में भी अपने पति की सेवा नहीं छोड़ती है। जो स्त्री अपने काने, कुबड़े, कोढ़ी, लँगड़े, अन्धे, दरिद्र तथा कुरूप—कैसे भी पति को ईश्वर के समान जानकर, उसकी सेवा करती है तथा पराये पुरुष की ओर कुभाव से नहीं देखती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिए।"

हे राजन्! जिस समय सब लोग आपस में इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय एक दरिद्र, दुर्बल ब्राह्मण उनके पास आ पहुँचा। वह पार्वती तथा शिवजी को देखकर दण्डवत् करके, उनके समीप बैठ गया। फिर बड़े विनम्र शब्दों में पार्वतीजी से बोला—"हे माता! आप इस भीड़ में किस इच्छा से बैठी हुई हैं? आपको तो यह उचित है कि किसी एकान्त स्थान में अपने पति को ले जाकर, उनकी सेवा करें ताकि मक्खियों आदि के बैठने से उन्हें कष्ट प्राप्त न हो।" ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर पार्वतीजी ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मण! कर्म-विपाक के अनुसार पण्डितों ने यह बताया कि जिस मनुष्य ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए हों, वह यदि मेरे पति को छू दे तो इनका शरीर ठीक हो जायगा। अतएव मैं ऐसे धर्मात्मा मनुष्य पाने की आशा में इन्हें लेकर यहाँ बैठी हुई हूँ। इस गङ्गास्नान के पर्व में लाखों धर्मात्मा लोग आये हैं। उनमें यदि कोई ऐसा धर्मात्मा भी आया हो जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किए हों, तो मेरा यह संकट सहज में दूर हो सकता है।" पार्वतीजी की बात को सुनकर ब्राह्मण ने कहा—"हे देवी! यह कौन-सी बड़ी बात है? सौ अश्वमेध यज्ञ की तो क्या, मैंने तो लाखों ही अश्वमेध यज्ञ किए हैं। उनकी गणना इतनी है कि तुम उन्हें गिन भी नहीं सकती हो।" पार्वतीजी बोलीं—"हे महात्मन्! यदि ऐसी ही बात है तो आप कृपा कर मेरे पति को छू दीजिए। ऐसा करने से इनका तथा मेरा दुःख छूट जायगा।"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजा परीक्षित! यह सुनकर जैसे ही उस ब्राह्मण ने शिवजी के शरीर का स्पर्श किया, वैसे ही उनका कोढ़ दूर हो गया तथा वे अश्विनीकुमार के समान दिव्य स्वरूप को प्राप्त हो गये। इस अचरज को देखकर अन्य यात्री आपस में इस प्रकार कहने लगे कि देखो इस दरिद्र ब्राह्मण की आयु तीस वर्ष के लगभग होगी। जब कि सौ अश्वमेध यज्ञ करने के लिए सौ वर्ष के समय तथा अपार धन की आवश्यकता होती है, प्रत्येक अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण करने के लिए सभी राजाओं को जीतना भी पड़ता है, फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भला इस निर्धन ब्राह्मण ने सौ अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार पूरे किये होंगे। उस समय लोगों के मन का सन्देह मिटाने के लिए अन्तर्यामी श्री शिवजी ने सब लोगों के सामने ही उस ब्राह्मण से इस प्रकार पूछा—"हे ब्राह्मण देवता! आपने इतनी छोटी-सी आयु में ही लाखों यज्ञ किस प्रकार पूरे किए, आप हमें यह बतलाने की कृपा करें।" तब उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"हे महानुभाव! यज्ञ की विधि और उसका फल शास्त्रानुसार ही होता है। जिन शास्त्रों में यज्ञ के फल को लिखा गया है, उन्हीं शास्त्रों में गंगास्नान का ऐसा माहात्म्य कहा गया है कि जो मनुष्य गंगास्नान की इच्छा करके अपने घर से चलता है, उसे एक एक पग चलने पर सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। मैं अपने घर से प्रतिदिन एक कोस चलकर गंगास्नान करने के लिए आता हूँ, तब आपही हिसाब लगा लें कि मुझे कितने करोड़ अश्वमेध यज्ञ का फल अब तक प्राप्त हो चुका होगा? इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।" ब्राह्मण के इन शब्दों को सुनकर शिवजी ने सभी यात्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे यात्रियो! वास्तव में इन ब्राह्मण देवता का कहना सत्य है।" इतना कहकर शिवजी वहाँ से उठकर अपने स्थान को चल दिये। मार्ग में उन्होंने पार्वतीजी से कहा—"हे पार्वती! तुमने देख लिया या नहीं? मेरे कथनानुसार इस ब्राह्मण को करोड़ों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो चुका है। सभी यात्रियों को वेद के वचनों पर विश्वास नहीं होता, इसी लिए उन्हें शास्त्रानुसार फल भी नहीं मिलता। मनुष्य को उचित है कि वह वेद तथा शास्त्रों को सुनकर उन पर पूर्णआस्था रक्खे।"

इतनी कथा सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! यद्यपि तुम्हारे पितामह युधिष्ठिर को वेद तथा शास्त्रों के वचनों पर विश्वास था, परन्तु उनके पास धन की भी कोई कमी नहीं थी। इसलिए उन्हें यह इच्छा हुई थी कि वे यज्ञ करने के बहाने से ही श्री श्यामसुन्दरजी को कुछ दिनों अपने घर ठहराकर ऋषि-मुनियों के सत्सङ्ग का लाभ प्राप्त करें। वे यह भी चाहते थे कि उनका धन शुभ कर्मों में व्यय हो तथा यश की प्राप्ति हो। इसी लिए उन्होंने राजसूय यज्ञ किया था।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अठारहवाँ अध्याय

प्रत्येक खण्ड में होनेवाली अवतारों की पूजा का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! हमने तुमसे नव खण्डों का वृत्तान्त कहा, अब हम श्री नारायणजी के अवतारों तथा किस-किस खण्ड में किन-किन अवतारों की पूजा होती है, उसे सुनाते हैं। भद्राश्वखण्ड में 'वृन्दश्रवा' नाम का राजा था। वहाँ श्री नारायणजी ने 'हयग्रीव' अवतार धारण किया था, अतः उस खण्ड में वहाँ का राजा तथा प्रजा के लोग श्री नारायणजी के उसी स्वरूप की पूजा तथा उन्हीं का मन्त्र पढ़कर स्तुति-वन्दन आदि करते हैं। नरहरिखण्ड में श्री नारायणजी ने 'नृसिंह' अवतार लिया था, अतः वहाँ का राजा 'नरहरिवर्ष' अपनी प्रजा सहित श्री हरि के उसी स्वरूप की पूजा करता है। श्री नृसिंहजी के भक्त प्रह्लाद ने मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुए श्री नृसिंहजी से यह वरदान माँगा था कि आप अपने जीवों को चाहे जिस योनि में जन्म दें, परन्तु उन पर इतनी कृपा अवश्य बनाये रहें कि उनके हृदय में आपके चरणों का ध्यान सदैव बना रहे। उस समय भक्त प्रह्लाद की स्तुति सुनकर श्री नृसिंह भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया था—"हे प्रह्लाद! सभी जीवों को वैकुण्ठ प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं होती है। जिस प्राणी को सत्सङ्ग प्यारा होता है, उसी को ज्ञान की प्राप्ति होती है। कलिकाल के जीवों को सत्सङ्ग अच्छा नहीं लगता, इसी लिए वे संसारी माया-मोह के बन्धन में बँधे रहते हैं। जो मनुष्य परब्रह्म परमेश्वर की भक्ति करता है, उसके पास सभी गुण इस प्रकार चले आते हैं, जैसे नीची भूमि पर बहनेवाला जल एक स्थान पर स्वयं ही एकत्रित हो जाता है।"

श्री नृसिंहजी के वचन सुनकर प्रह्लाद ने कहा—"हे प्रभो! संसार में कौन प्राणी ऐसा मूर्ख होगा, जिसे वैकुण्ठ प्राप्त करने की अभिलाषा न हो? सच बात तो यह है कि आप प्रत्येक व्यक्ति को अपने वैकुण्ठ लोक में स्थान नहीं देना चाहते हैं, इसी लिए उन्हें प्राप्त नहीं होता है। मुझे तो कभी-कभी यह सोचकर लज्जा-सी अनुभव होने लगती है कि कहीं संसार के लोग इस प्रकार न कहने लगें कि प्रह्लाद के स्वामी लालची हैं, इसी लिए वे सबको वैकुण्ठ नहीं देना चाहते हैं।" प्रह्लाद की बात सुनकर नृसिंहजी ने हँसते हुए कहा—"हे प्रह्लाद! अपने मन का सन्देह दूर करने के लिए तुम यह कार्य करो कि संसार में जिस प्राणी को सबसे अधिक दुखी पाओ उसी से वैकुण्ठ लोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में चलने के लिए कहो, फिर देखो कि प्राणी क्या उत्तर देता है।" नृसिंहजी की यह आज्ञा सुनकर, प्रह्लाद नगर में पहुँचकर किसी दुखी प्राणी को ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्हें दलदल में फँसा हुआ एक रोगी शूकर अत्यन्त दुखी दिखाई दिया। प्रह्लाद ने उसे सबसे अधिक दुखी जानकर, उसके पास पहुँचकर कहा—"अरे शूकर! तू यहाँ इतना कष्ट क्यों उठा रहा है? तू मेरे साथ चल; मैं तुझे वैकुण्ठलोक में ले चलूँगा। वहाँ तुझे बहुत आनन्द प्राप्त होगा।" प्रह्लाद की बात सुनकर उस शूकर ने पूछा—"पहिले आप मुझे यह बताइये कि वैकुण्ठलोक में क्या-क्या सुख मिलता है।" इस पर जब प्रह्लाद ने वैकुण्ठ-लोक के सुखों का वर्णन किया तब वह शूकर इस प्रकार कहने लगा—"हे महानुभाव! यदि वैकुण्ठलोक में वास्तव में इतना सुख है तो मैं वहाँ चलने के लिए तैयार हूँ, परन्तु मैं वहाँ अकेला नहीं जाऊँगा। आपको मुझे परिवार सहित ले चलना पड़ेगा। यदि ले चल सकें तो आप नृसिंहजी से पूछ आइये।" शूकर के वचन सुनकर प्रह्लाद ने नृसिंहजी के पास आकर सब बात कही। नृसिंहजी बोले—"अच्छा तुम सबको ले आओ।" यह सुनकर प्रह्लाद फिर उस शूकर के पास जा पहुँचे और उससे परिवार-सहित वैकुण्ठलोक को चलने के लिए कहा। जिस समय प्रह्लाद शूकर से चलने के लिए बातें कर रहे थे, उस समय शूकर की पत्नी ने प्रह्लाद से इस प्रकार कहा—"हे महानुभाव! आप हम लोगों को वैकुण्ठलोक तो लिए चल रहे हैं, परन्तु इसके पूर्व यह बता देने की अवश्य कृपा करें कि वहाँ हमारे खाने के लिए विष्ठा भी मिलेगी अथवा नहीं?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"वहाँ नरक नहीं है जो विष्ठा मिल सके। वह तो वैकुण्ठ है, जहाँ सब अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन करने के लिए मिलते हैं।" उस समय शूकर तथा शूकरी ने परस्पर विचार करके यह उत्तर दिया—"तब तो हम लोगों को यहीं पर सुख है, हम लोग वैकुण्ठ में नहीं जायँगे।" प्रह्लाद ने कहा—"तुम लोग बड़े मूर्ख हो, जो वैकुण्ठलोक में नहीं चलना चाहते हो।" यह बात सुनकर वह शूकर क्रोधपूर्ण दृष्टि से प्रह्लाद की ओर घूरने लगा। उस समय प्रह्लाद उसके मनोभावों को समझकर किसी अन्य व्यक्ति को ढूँढ़ने के लिए आगे बढ़ गये।

हे परीक्षित! आगे चलकर प्रह्लाद एक वृद्ध मनुष्य के पास जा पहुँचे और उससे इस प्रकार कहने लगे—"हे वृद्ध! तुम्हारी आयु समाप्त होने को है, अब तुम मेरे साथ वैकुण्ठलोक में चलकर वहाँ का सुख भोगो।" यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनकर वृद्ध ने उत्तर दिया–"अभी तो मुझे संसार में रहकर अपने पुत्रों का मुण्डन तथा विवाह करके पौत्र-पौत्री का सुख देखना है। तुम बड़े मूर्ख दिखाई देते हो जो मुझसे अभी मर जाने के लिए कह रहे हो। तुम मेरे सामने से अभी हट जाओ। यदि तुमने ऐसे शब्द मेरे पुत्रों के सामने कहे होते वे तुम्हें बहुत भारी दण्ड देते।" बूढ़े के इन शब्दों को सुनकर प्रह्लाद ने उससे भी हार मान ली। तब वे नृसिंहजी के पास आकर इस प्रकार कहने लगे–"हे प्रभो! वास्तव में इस संसार के सभी छोटे-बड़े प्राणी अज्ञान एवं माया-मोह के जाल में फँसे हुए हैं, इसी लिए कोई भी प्राणी वैकुण्ठ जाने की इच्छा नहीं करता है।" उस समय नृसिंहजी ने उत्तर दिया–"हे प्रह्लाद! संसार में जिस जीव ने जिस योनि में जन्म पाया है, वह उसी में प्रसन्न रहता है। उसकी सब इच्छाएँ कभी भी पूरी नहीं हो पातीं। आँख-नाक आदि इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर भी उसका हृदय संसार को नहीं छोड़ना चाहता।" नृसिंहजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने उन्हें दण्डवत् करते हुए प्रार्थना की–"हे प्रभो! यह सब आप ही की माया है। आप जिसे ज्ञान देते हैं, उसी मनुष्य को वैकुण्ठ पाने की इच्छा होती है। सभी प्राणियों के लिए ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! हमने यह कथा नरहरि खण्ड की सुनाई, अब अन्य खण्डों का हाल सुनो। केतुमाल-खण्ड में श्री नारायणजी ने कामदेव अवतार ग्रहण किया था। अतः वहाँ लक्ष्मीजी सम्पूर्ण प्रजा के साथ मन्त्र पढ़कर श्री हरि के उसी रूप की पूजा करती हैं। रमणकखण्ड में श्री नारायणजी ने 'मत्स्यावतार' धारण किया था, वहाँ 'रमणक' नाम का राजा अपनी प्रजा-सहित श्री हरि के मत्स्य रूप की पूजा करता है। हिरण्मयखण्ड में श्री नारायणजी ने 'कच्छप अवतार' लिया था। वहाँ का 'हिरण्मय' नामक राजा अपनी प्रजा-सहित श्री हरि के उसी रूप की पूजा करता है तथा मन्त्र पढ़कर कच्छप भगवान् की स्तुति करता है। श्री नारायणजी ने कुरुखण्ड में 'वाराह अवतार' धारण किया था। वहाँ का 'कुरु' नामक राजा अपनी प्रजा-सहित श्री हरि के वाराह स्वरूप का पूजन तथा मन्त्र द्वारा स्तुति करता है। वहाँ श्री हरि के वाराह-रूप की स्तुति करते हुए पृथ्वी इस प्रकार कहती है कि हे परमप्रभु! आप ही हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर मुझे रसातल लोक से ऊपर लाये हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्तीसवाँ अध्याय

अन्य खण्डों का वृत्तान्त-वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! किंपुरुषखण्ड में श्री नारायणजी के अवतार श्री रामचन्द्रजी विराजमान हैं। वहाँ हनुमान्‌जी मन्त्रद्वारा उनकी पूजा करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—"हे प्रभो! आपने संसारी जीवों को सत्पथ दिखाने एवं पृथ्वी को कृतार्थ करने के लिए मनुष्य-शरीर धारण किया था। आपका अवतार केवल रावण को मारने के लिए ही नहीं था। यदि आप चाहते तो अपनी इच्छामात्र से ही राक्षसों का वध कर सकते थे। आपने वन में श्री जानकीजी के वियोग में जो विलाप किया था, वह संसारी जीवों को यह दिखाने के लिए था कि जब मेरे-जैसे परब्रह्म पुरुष को भी गृहस्थ जीवन में पड़कर कष्ट उठाना पड़ता है तब संसार के अन्य लोगों को स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर दुःख अवश्य ही प्राप्त होगा। आपने मनुष्य-शरीर यह दिखाने के लिए भी धारण किया था कि आप-जैसे सुन्दर स्वरूपवान् को छोड़कर लोगों का मन अन्य किसी की ओर क्यों आकर्षित होगा? हे परीक्षित! श्री नारायणजी ने भरतखण्ड में 'नरनारायण' का अवतार यह विचार कर लिया था कि कलियुग आने पर इस खण्ड के मनुष्य जप-तप को छोड़ देंगे, उस समय मैं तपस्वी रूप में बदरी-केदार में बैठकर लोगों को तप करने की ओर आकर्षित करूँगा तथा जो व्यक्ति मेरा दर्शन करने के लिए आयेगा, उसे अपनी तपस्या के फल से पवित्र करके मुक्ति-पद प्रदान कर दूँगा। इसी लिए वे अभीतक बदरिकाश्रम में बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं। वहाँ श्री नारदजी सांख्य योग के मन्त्र का पाठ कर उनकी पूजा तथा स्तुति करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि—हे दीन-बन्धो! आप सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाले हैं। सातों द्वीपों के मध्य में स्थित भरतखण्ड अत्यन्त पवित्र स्थल है। इस खण्ड में जो जीव जैसा कर्म करता है, परलोकमें उसे तदनुसार ही फल प्राप्त होता है। इसी लिए इस भरतखण्ड को कर्मभूमि कहा गया है। यहाँ जो भी पाप-पुण्य किए जाते हैं, वे खेत के समान बढ़ते हैं। भरतखण्ड के अतिरिक्त अन्य जितने खण्ड हैं, वहाँ सदैव त्रेता युग के समान समय वर्तमान रहता है। उन खण्डों में कलियुग का प्रवेश नहीं होता। वहाँ के निवासी देवताओं के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते हैं तथा स्त्रियों के साथ भोग-विलास करने में अपना समय व्यतीत करते हैं। वहाँ सदैव वसन्त ऋतु विद्यमान रहती है तथा इन्द्रलोक का सुख बना रहता है। वहाँ किसी को दुःख प्राप्त नहीं होता। केवल भरतखण्ड में ही चारों वर्णों का विचार है। परन्तु इतना होने पर भी अन्य खण्डों के लोग भरत-खण्ड के निवासियों को अपने से श्रेष्ठ तथा भाग्यवान् समझते हैं। कारण यह है कि भरतखण्ड के जीव श्री नारायणजी का थोड़ा-सा भजन तथा स्मरण करने मात्र से ही मुक्तिपद को प्राप्त करके भव-सागर से पार उतर जाते हैं, जब कि अन्य खण्डों में ऐसी बात नहीं है। हे प्रभु! आपने अत्यन्त कृपा कर इस खण्ड में अवतार लिया है। परन्तु कलियुग के जीव इतने पर भी कपट, आलस्य तथा अभिमान में भरे रहेंगे। संसारी माया-मोह में पड़े रहने के कारण उन्हें आपके दर्शन करने का भी अवकाश नहीं मिलेगा। जिस प्राणी पर आपकी कृपा होगी, वही इस सौभाग्य को प्राप्त कर सकेगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजा परीक्षित! जब देवतागण स्वर्गलोक से निकलकर अपने-अपने विमानों पर बैठे हुए, विहार करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर जाते हैं, उस समय भरतखण्ड के लोगों को देखकर स्वयं को अत्यन्त तुच्छ समझते हैं तथा परस्पर इस प्रकार कहते हैं कि हम लोगों के ऐसे भाग्य नहीं हैं जो हम ऐसे उत्तम पद को पा सकें। भरतखण्ड के जीव यदि चाहें तो अपने शुभकर्मों द्वारा चाहे जितने ऊँचे पद को प्राप्त कर सकते हैं। अतः हे राजन्! जिस प्राणी ने भरतखण्ड में जन्म लेकर मनुष्य का शरीर पाया, और अपना मन संसारी माया-मोह से हटाकर श्री हरि के चरणों में नहीं लगाया, उसके जन्म को व्यर्थ समझना चाहिए। उस मनुष्य की वैसी ही गति समझनी चाहिए, जैसे कोई मनुष्य धन प्राप्त करने के लिए कष्ट सहता हुआ अत्यन्त ऊँचे पर्वत पर चढ़ जाय, परन्तु धन के पास पहुँचने के पूर्व ही नीचे गिर पड़े। ऐसे मनुष्यों को पछतावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। अतएव मनुष्य को यह चाहिए कि वह भरतखण्ड में जन्म लेने के पश्चात् श्री नारायणजी के स्मरण एवं भजन द्वारा भव-सागर से पार उतरने का साधन करे। जो अज्ञानी व्यक्ति ऐसा नहीं करता, वह अन्त में बहुत दुःख पाता है। इस भरतखण्ड में त्रिकूट तथा गोवर्धन आदि अनेकों पर्वत तथा कौशिकी एवं सरस्वती आदि अनेक नदियाँ ऐसी हैं, जिनका नाम लेने, दर्शन करने अथवा स्नान करने मात्र से ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी लिए देवतागण यह कहते हैं कि जिन जीवों ने अपने पिछले जन्म में बहुत-से पुण्य किए होते हैं, वे ही इस भरतखण्ड में जन्म लेते हैं तथा श्री नारायणजी का भजन करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। अस्तु, इलावृतखण्ड की कथा का वर्णन नवें स्कन्ध में आयगा। उस खण्ड में भगवान् श्री शिवजी पार्वतीजी के साथ सोलह सहस्र सखियों के संग सदैव विहार करते हैं तथा मन्त्र द्वारा 'शेष भगवान्' की पूजा एवं स्तुति करते हैं। नाभिखण्ड भरतखण्ड में मिला हुआ है।"

बीसवाँ अध्याय

सातों द्वीपों की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! हमने तुमसे नवां खण्डों की कथा कही, अब तुम सातों द्वीपों का हाल सुनो। ये नवों खण्ड जम्बूद्वीप में हैं। इस जम्बूद्वीप में जामुन का एक बहुत बड़ा वृक्ष है। वह एक लाख योजन ऊँचा है। उसी के कारण इस द्वीप का नाम 'जम्बूद्वीप' हुआ। उस वृक्ष की छाया भी एक लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उसके फल काले तथा आकार में हाथी के समान होते हैं। उन फलों का रस जब पृथ्वी पर गिरता है, तो वह सूर्य के तेज को पाकर स्वर्ण (सोना) बन जाता है। इस द्वीप के चारों ओर खारे पानी का समुद्र है। नौ खण्डों के जो राजा थे, उन्होंने एक-एक खण्ड के छः-छः भाग करके अपने पुत्रों में बाँट दिए थे। उन नवों खण्डों के सिवाने के बीच-बीच में एक-एक पर्वत है। सुमेरु पर्वत के नीचे ईख के रस, शहद तथा घी की तीन नदियाँ बहती हैं। उन नदियों में देवता तथा गन्धर्वों की स्त्रियाँ स्नान करती हैं तथा उस रस का पान करती हैं। इस कारण उन्हें कभी दुर्बलता तथा वृद्धावस्था नहीं आती। एक बार जम्बूद्वीप की पृथ्वी को राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों ने यज्ञ का श्यामकर्ण घोड़ा ढूँढ़ने के लिए खोद डाला था। उस खुदाई के कारण सिंहलद्वीप आदि सात द्वीपों (टापुओं) की उत्पत्ति और हुई है।

हे राजन्! 'पाकरद्वीप' नामक दूसरे द्वीप में एक दो लाख योजन ऊँचा पाकर का वृक्ष है। उसके फल बहुत बड़े होते हैं तथा उसकी छाया भी दो लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उस द्वीप के चारों ओर ईख के रस का समुद्र भरा हुआ है। जो व्यक्ति उस वृक्ष के नीचे जाकर आभूषण, वस्त्र अथवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भोजन आदि किसी भी वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही पदार्थ उसी समय उस वृक्ष द्वारा प्राप्त हो जाता है। उस द्वीप में अमृत आदि सात खण्ड हैं।

तीसरे द्वीप का नाम 'शाल्मलिद्वीप' है। वहाँ चार लाख योजन ऊँचा एक सेमल का वृक्ष है। उसी वृक्ष के नाम पर उस द्वीप का नाम शाल्मलि पड़ा। उस द्वीप के चारों ओर के किनारों पर आठ पर्वत हैं। उन पर्वतों पर यक्ष तथा गन्धर्व आदि नृत्य-गान किया करते हैं। वहाँ विहार करने के लिए सुन्दर तालाब, उपवन तथा भवन बने हुए हैं। उस द्वीप में 'सूर्य' आदि सात खण्ड हैं तथा उसके चारों ओर मदिरा का समुद्र भरा हुआ है।

चौथे द्वीप का नाम 'कुशद्वीप' है। वहाँ एक आठ लाख योजन ऊँचा कुश का वृक्ष है। उस वृक्ष की छाया भी आठ लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उस वृक्ष के नाम पर ही द्वीप का नाम पड़ा है। उस वृक्ष के नीचे ऐसे सरोवर तथा कुण्ड बने हुए हैं कि उनके जल में स्नान करने अथवा उसे पीने से भूख-प्यास नष्ट हो जाती है। यदि कोई वृद्ध प्राणी भी वहाँ स्नान करे तो उसे युवावस्था प्राप्त हो जाती है तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं आरोग्य-पूर्ण बन जाता है। उस द्वीप में 'सकत' आदि सात खण्ड हैं तथा उसके चारों ओर घी का समुद्र भरा हुआ है।

पाँचवें द्वीप का नाम 'क्रौंचद्वीप' है। उसमें सोलह लाख योजन ऊँचा एक क्रौंच नामक पर्वत है। उस पर्वत के नाम पर ही द्वीप का नाम भी क्रौंच पड़ा है। उस पर्वत पर गरुड़जी बैठे रहते हैं तथा वहाँ से अन्य सब द्वीपों को देखकर प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं। उस द्वीप में 'व्यास' आदि सात खण्ड हैं तथा उसके चारों ओर दूध का समुद्र भरा हुआ है।

छठाँ द्वीप 'शाकद्वीप' है। वहाँ बत्तीस लाख योजन ऊँचा एक शाक का वृक्ष है। उसकी छाया भी बत्तीस लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उस वृक्ष के नीचे बैठे हुए सिद्ध तथा तपस्वी लोग श्री नारायणजी का भजन किया करते हैं। उस वृक्ष का गिरा हुआ पत्ता खाने से उनका पेट भर जाता है तथा भूख-प्यास दूर हो जाती है। उस द्वीप में 'देव, द्विज' आदि सात खण्ड हैं तथा उसके चारों ओर मट्ठे का समुद्र भरा हुआ है।

सातवें द्वीप का नाम 'पुष्करद्वीप' है। वहाँ चौंसठ लाख योजन ऊँचा एक कमल का वृक्ष है। उस वृक्ष की छाया भी चौंसठ लाख योजन के घेरे में पड़ती है। वहाँ सदैव केसर की सुगन्ध भरी रहती है। उस वृक्ष के नीचे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानसरोवर नामक एक तालाब है, जिसमें हंस पक्षी मोती चुगते रहते हैं। उस द्वीप में 'कुमरात' आदि सात खण्ड हैं तथा उसके चारों ओर मीठे पानी का समुद्र भरा हुआ है। हे परीक्षित! राजा प्रियव्रत ने इन सातों द्वीपों के राज्य को मिथ्या समझकर त्याग दिया था तथा श्री नारायणजी का तप करके मुक्ति पाई थी।"

इक्कीसवाँ अध्याय

आकाश एवं सूर्य आदि के विस्तार का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! हमने सातों द्वीपों का जितना विस्तार कहा, उतना ही विस्तार आकाश का भी है। जिस प्रकार चने में दो दल होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी और आकाश को समझना चाहिए। तीनों लोकों में सूर्य के द्वारा प्रकाश होता है। वह सूर्य छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन रहते हैं। सूर्य का रथ जाने के लिए सुमेरु पर्वत पर होकर तीन मार्ग बने हुए हैं। उत्तरायण में सूर्य का रथ ऊपर के मार्ग पर होकर जाता है, अतः उन दिनों संसार में प्रकाश अधिक होता है। दक्षिणायन में सूर्य का रथ नीचे के मार्ग से जाता है, अतः उन दिनों प्रकाश कम रहता है। मकर से लेकर मिथुन की संक्रान्ति तक सूर्य उत्तरायण तथा कर्क से लेकर धन की संक्रान्ति तक दक्षिणायन रहते हैं। उत्तरायण सूर्य में दिन बढ़ता है तथा रात्रि छोटी होती है और दक्षिणायन सूर्य में दिन घटता है तथा रात्रि बड़ी होती है। सूर्य प्रत्येक राशि पर एक महीने तक रहते हैं। सूर्य का रथ एक दिन तथा रात्रि में सुमेरु पर्वत के चारों ओर नौ लाख योजन की परिधि में घूमता है। सुमेरु पर्वत के पूर्व में इन्द्रपुरी, दक्षिण में यमपुरी, पश्चिम में वरुणपुरी तथा उत्तर में कुबेरपुरी बसी हुई है। सूर्य जिस स्थान से निकलते हैं, उसके सामनेवाले स्थान पर अस्त होते हैं। उनके रथ का एक पहिया चलता रहता है तथा दूसरे पहिए की धुरी सुमेरु पर्वत पर स्थित ध्रुवलोक के नीचे दबी रहती है। सूर्य के रथ का विस्तार छब्बीस लाख योजन है। उसमें सात घोड़े एक ओर तथा एक घोड़ा दूसरी ओर जुता रहता है। उस रथ को पीछे से यक्ष लोग धकेलते हैं। उस रथ में रस्सी के स्थान पर सर्पों द्वारा धुरी आदि बँधी रहती हैं। 'अरुण' नामक सारथी उस रथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को हाँकता है तथा अंगुष्ठ प्रमाण के वालखिल्य आदि साठ सहस्र ऋषि उस रथ के सम्मुख सूर्य की ओर मुख किए, स्तुति-गान करते हुए, उल्टे पाँवों से पीछे की ओर दौड़ते चलते हैं।"

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्रमा एवं मङ्गल आदि ग्रहों का वर्णन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे मुनि-श्रेष्ठ! आपने मुझे यह तो बता दिया कि सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत तथा ध्रुव-लोक के चारों ओर घूमता रहता है, परन्तु अभी आपने चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों का वृत्तान्त नहीं कहा। अतः अब उनका हाल बताने की भी कृपा करें।" शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! चन्द्रमा का रथ ग्यारह लाख योजन के विस्तार का है। वह सूर्य के रथ से एक लाख योजन की ऊँचाई पर रहता है। सूर्य का रथ एक महीने में जितना चलता है, उतना चन्द्रमा का रथ केवल ढाई दिन में घूम लेता है। चन्द्रमा से एक लाख योजन की ऊँचाई पर मङ्गल का रथ है, उससे एक लाख योजन ऊपर बुध का रथ, उससे एक लाख योजन ऊँचा बृहस्पति का रथ, उससे एक लाख योजन ऊँचा शुक्र का रथ, उससे एक लाख योजन ऊँचा शनिश्चर का रथ तथा उससे एक लाख योजन ऊँचा राहु का रथ है। राहु के रथ का विस्तार सत्रह लाख योजन है। इन सब ग्रहों के रथों की धुरी ध्रुवलोक से लगी हुई है। जब राहु का रथ चन्द्रमा अथवा सूर्य के बराबर पहुँचता है, उस समय ग्रहण लगता है। सुमेरु पर्वत पर सूर्य का रथ कहीं-कहीं रुक जाने के कारण प्रति तीसरे वर्ष मलमास का एक महीना अधिक हो जाता है। इससे संक्रांति बराबर रहती है। वर्ष पाँच प्रकार के होते हैं! पहिला संक्रांति की गणना के अनुसार सूर्य का वर्ष, दूसरा शुक्लपक्ष की द्वितीया से चन्द्रमा का वर्ष, तीसरा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् का वर्ष, चौथा नक्षत्रों की गणना के अनुसार नक्षत्रों का वर्ष तथा पाँचवाँ बृहस्पति की गति के अनुसार, जो अन्य राशियों पर बदल जाते हैं, बृहस्पति का बर्ष समझना चाहिए। क्षत्रियों के लिए सूर्य, ब्राह्मणों के लिए बृहस्पति तथा चन्द्रमा, वैश्यों के लिए मंगल, शूद्रों के लिए बुध तथा म्लेच्छों के लिए राहु शुभदायक होते हैं। शुक्र जैसे स्थान में पड़ते हैं, वैसा ही चारों वर्णों को एक समान फल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देते हैं। वे किसी वर्ण के साथ मित्रता अथवा शत्रुता नहीं रखते। परन्तु शनिश्चर एवं राहु-केतु चारों वर्णों को दुःख पहुँचाते हैं।"

तेईसवाँ अध्याय

ध्रुवलोक की प्रशंसा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! सुमेरु पर्वत से तेरह लाख योजन की ऊँचाई पर ध्रुवलोक है। वहाँ ध्रुवजी सप्तर्षियों-सहित आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। वशिष्ठ, भृगु, कश्यप, अंगिरा, अगस्त्य, अत्रि तथा पुलह ये सात ऋषि नक्षत्र रूप में दिन-रात ध्रुव की परिक्रमा करते रहते हैं। वे अपने स्थान से ठीक उसी प्रकार नहीं हिलते, जिस प्रकार तेल पेरने के समय बैल के चारों ओर घूमते रहने पर भी कोल्हू अपने स्थान से नहीं हिलता है।

हे राजन्! ध्रुवलोक के नीचे कालचक्र फिरता रहता है। अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र ध्रुवलोक के आसपास बिना किसी आधार के, केवल वायु के सहारे पर इस प्रकार चलते रहते हैं, जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर आकाश में बादल चलता रहता है। इन नक्षत्रों में चौदह नक्षत्र दायें तथा चौदह बाईं ओर रहते हैं। ध्रुवलोक के घूमने के समय सभी नक्षत्र उसी के आश्रय से घूमते रहते हैं। ध्रुवलोक की पूँछ में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म; पूँछ की जड़ में धाता-विधाता, कटि-प्रदेश में सप्तर्षि, ऊपर के ओष्ठ में अगस्त्य, नीचे के ओष्ठ में यम, राहु तथा मंगल, मूत्रस्थान में शनिश्चर, कन्धे पर बृहस्पति, नेत्रों में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, दोनों छातियों में अश्विनीकुमार, श्वास में बुध, कण्ठ में राहु-केतु तथा सम्पूर्ण शरीर के रोम-रोम में अन्य सब नक्षत्र रहते हैं। उस ध्रुवलोक को श्री नारायणजी का स्वरूप जानना चाहिए, अतः सब देवताओं तथा ब्रह्माण्ड को उसी स्वरूप में लीन समझना ठीक है। जो मनुष्य प्रातः-काल अथवा सन्ध्याकाल में इस कथा को पढ़कर, नारायणजी के इस स्वरूप का ध्यान करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अशुभ ग्रहों का फल पीड़ा नहीं पहुँचाता।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौबीसवाँ अध्याय

चौदह लोकों का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! किसी पुराण में ऐसा भी लिखा है कि राहु का रथ सूर्य से दस सहस्र योजन नीचे रहता है तथा जब उसके सम्मुख सूर्य अथवा चन्द्रमा का रथ आ जाता है, तब ग्रहण लगता है (यह कथा अष्टम स्कन्ध में विस्तारपूर्वक कही जायगी) परन्तु सुदर्शन चक्र द्वारा रक्षा किए जाने के कारण राहु उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उसके बारह योजन नीचे सिद्ध, चारण तथा विद्याधर आदि के रहने का स्थान है। उसके बारह लाख योजन नीचे यक्ष, राक्षस तथा पिशाच रहते हैं। उसके भी सौ योजन नीचे इस मर्त्यलोक की पृथ्वी है। हे परीक्षित! हंस, बाज, गिद्ध आदि पक्षी भी बारह योजन से अधिक ऊपर जाने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। ऊपर के सातों लोक तथा नीचे के सातों लोकों को खण्ड के समान समझना चाहिए। नीचे के सातों लोकों के नाम ये हैं—१—अतल, २—वितल, ३—सुतल, ४—तलातल, ५—महातल, ६—रसातल तथा ७—पाताल। नीचे के ये सातों लोक दस-दस सहस्र योजन के विस्तार में हैं। ऊपर के सातों लोकों के नाम इस प्रकार हैं—१—भूलोक, २—भुवर्लोक, ३—स्वर्गलोक, ४—महर्लोक, ५—जनलोक, ६—तपलोक तथा ७—सत्यलोक। भोजन-वस्त्रादि का जितना सुख ऊपर के लोकों में रहता है, उससे अधिक सुख नीचे के लोकों में समझना चाहिए। अतल लोक में 'मय' नामक दैत्य का निवास है। वह इन्द्रजाल की विद्याओं तथा माया का बहुत बड़ा ज्ञाता है। उससे विद्या प्राप्त करने के कारण दैत्य लोग किसी को कुछ नहीं समझते हैं। उस लोक के निवासी सभी दैत्य तथा दानव अपनी स्त्रियों-सहित अमृत का पान करते हैं तथा आनन्दपूर्वक भोग-विलास में मग्न रहते हैं। अमृत पीने के कारण उन्हें बुढ़ापे तथा मृत्यु का भय नहीं रहता है। उत्तमोत्तम औषधियों का सेवन करने के कारण वे सदैव नीरोग एवं स्वस्थ रहते हैं। उनकी आयु का कोई प्रमाण नहीं है। जब उन दैत्यों की संख्या अधिक हो जाती है तथा वहाँ रहने के लिए स्थान नहीं रहता, उस समय श्री नारायणजी की इच्छा से सुदर्शन चक्र वहाँ पहुँच जाता है और कुछ दैत्यों का संहार कर देता है।

हे परीक्षित! अतल लोक के नीचे वितल लोक में मयदानव के अत्यन्त बलवान् पुत्र—जिन्होंने इन्द्रजाल की छियानबे मायाओं को जन्म दिया है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

रहते हैं। उन्हीं के मन्त्र को सीखने से 'भानमती' आदि पलभर में ही वृक्ष आदि लगा देती हैं। उन बलवान् असुरों द्वारा जम्हाई लेने के समय उनके मुख से अत्यन्त सुन्दरी तीन पुंश्चली स्त्रियाँ निकलती हैं। वे स्त्रियाँ तीनों लोकों में भ्रमण करके किसी एक इच्छित पुरुष को उठा लाती हैं तथा अपने लोक में लाकर एक औषध-कुण्ड में डाल देती हैं। औषध-कुण्ड में स्नान करने के कारण उस पुरुष का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर हो जाता है तथा उसे दस सहस्र हाथियों के बल की प्राप्ति हो जाती है। उस समय वह अपनी पिछली अवस्था को भुलाकर अपने को अत्यन्त बलवान् तथा ईश्वर के समान अजेय समझकर, उन तीनों पुंश्चलियों से भोग-विलास करने लगता है। उसी वितल लोक में श्री हाटकेश्वर महादेव का निवास है। एक बार अग्नि ने उनके वीर्य को मुख से खाकर गुदा-मार्ग द्वारा बाहर निकाल दिया था। उससे अत्यन्त श्रेष्ठ सोने की उत्पत्ति हुई। उस स्वर्ण के आभूषणों को देवताओं की स्त्रियाँ धारण करती हैं। मर्त्यलोक का सोना उस स्वर्ण की समानता नहीं कर सकता।

वितल लोक से नीचे सुतल लोक है। वहाँ राजा 'बलि' राज्य करता है। इन्द्रादि देवताओं के कल्याण के निमित्त श्री नारायणजी ने उसे सुतल लोक में भेजा था। वह अपने गुरु तथा कुटुम्बियों के साथ आठों प्रहर श्री नारायणजी के दर्शन प्राप्त करके अपने जन्म को सफल बनाता रहता है। जिस समय गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी राजा बलि ने वामन भगवान् को तीन पग पृथ्वी का दान दिया था, उसी समय से श्री नारायणजी उसके ऊपर कृपा करके, गदा धारण किए हुए, उसके द्वार पर आठों प्रहर उपस्थित रहते हैं। सुतल लोक में वैकुण्ठलोक के समान सुख वर्तमान रहता है। उस तीन पग पृथ्वी के दान के कारण अगले मन्वन्तर में राजा बलि को इन्द्रपुरी के राज्य की प्राप्ति होगी। यह सब दान देने की महत्ता ही समझनी चाहिए।

सुतल लोक के नीचे चौथा 'तलातल लोक' है। वहाँ शिवजी का परम भक्त त्रिपुर नामक दानव राज्य करता है। शिवजी की कृपा के कारण उसे मृत्यु का भय नहीं है।

तलातल लोक के नीचे पाँचवाँ महातल लोक है। वहाँ कद्रू, तक्षण, कालीय आदि बड़े-बड़े सर्प अपने कुटुम्ब-सहित निवास करते हैं। उन सर्पों के अनेक मस्तक तथा फण होते हैं। वे ही वहाँ के स्वामी हैं। ये लोग गरुड़जी से सदा भयभीत बने रहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महातल लोक के नीचे छठा 'रसातल लोक' है। वहाँ 'विराट्कुल' नामक दानव अपने परिवार-सहित रहता है तथा उस लोक का राज्य करता है।

महातल लोक के नीचे सातवाँ 'पाताल लोक' है। बहाँ वासुकि आदि बड़े-बड़े नाग रहते हैं। सहस्र मस्तकोंवाले शेषजी भी वहीं विराजमान हैं। शेषजी के मस्तक पर यह सम्पूर्ण पृथ्वी एक सरसों के दाने के समान रक्खी हुई है। सहस्रों परम सुन्दरी नाग-कन्याएँ उनकी निशि-दिन सेवा किया करती हैं। शेषजी अपने एक सहस्र मुख तथा दो सहस्र जिह्वाओं से आठों प्रहर श्री नारायणजी का गुणगान किया करते है; इतने पर भी वे उनके भेद के आदि-अन्त को नहीं जान पाते। शेषजी के शरीर पर एक सांगोपांग सुन्दर शय्या बिछी हुई है। उस पर तीस सहस्र योजन आकार के शरीरधारी श्री नारायणजी अपना चतुर्भुजी रूप बनाये, लक्ष्मीजी के साथ शयन करते हैं। हे परीक्षित! नीचे के सातों लोकों में सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँच पाता है। वहाँ ऐसे-ऐसे मणि-रत्नादिक हैं, जिनके प्रकाश से हर समय उजाला फैला रहता है। उन लोकों में सुदर्शन चक्र की तड़प सुनकर स्त्रियों के गर्भपात हो जाया करते हैं। वहाँ के निवासी देवताओं के समान सुख भोगते हैं तथा कभी भी वृद्धावस्था अथवा दुर्बलता को प्राप्त नहीं होते हैं।"

पच्चीसवाँ अध्याय

शेषजी की महिमा का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! ग्यारह रुद्रों में शेषनागजी भी एक 'संकर्षण' नामक रुद्र गिने जाते हैं। महाप्रलय के समय उनके मुखों से अग्नि निकलती है जो तीनों लोकों को भस्म कर देती है। उनके एक ही मस्तक पर चौदहों भुवन रक्खे हुए हैं और उन्हें उनका कुछ भी बोझ नहीं मालूम होता। देवताओं तथा नागों की सहस्रों कन्याएँ उनकी सेवा किया करती हैं, परन्तु इतने पर भी उनका चित्त कभी कामदेव के वेग से चलायमान नहीं होता है। वे संसार के कल्याण के निमित्त ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मन तथा इन्द्रियों को अपने वश में किये रहते हैं। दिन-रात श्री नारायण के गुणों का वर्णन करने के अतिरिक्त उन्हें और कोई काम नहीं है। जिस प्राणी को मुक्ति की अभिलाषा हो, उसे श्री शेषभगवान् का स्मरण एवं ध्यान करना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

उनकी शरण में जाने से संसार में मनवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है तथा अन्त समय में प्राणी भव-सागर से पार उतर जाता है। श्री नारायणजी से भेंट करने के निमित्त शेषजी से अधिक उत्तम किसी अन्य देवता की सेवा अथवा पूजा नहीं है। उनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह अनन्त तथा अपार है। हे परीक्षित! इस जीव के रहने तथा जाने की जहाँ तक गति है, वह सब हमने तुमसे वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर यह जीव न तो जा सकता है और न जन्म ले सकता है।"

छब्बीसवाँ अध्याय

नरकों के नाम तथा उनका वर्णन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! आपने कई स्थानों पर यह कहा है कि शुभ कर्म करनेवाला प्राणी स्वर्ग का सुख भोगता है, परन्तु चौदहों लोकों की कथा कहने पर भी आपने कहीं नरक का वर्णन नहीं किया है, अतः मुझे यह ज्ञात होता है कि नरक नाम केवल भय दिखाने के लिए ही है। मुझसे अपनी सम्पूर्ण आयु में केवल यही एक अपराध हुआ है, जो मैंने एक मरे हुए सर्प को ऋषि के गले में डाल दिया। इस पाप के कारण मुझे भी नरक में जाने का भय लग रहा है। इसलिए आप कृपाकर मुझे यह बतायें कि क्या नरक वास्तव में किसी स्थान का नाम है? क्या वह पृथ्वी अथवा जल से कोई भिन्न लोक है? यदि ऐसा हो, तो अब मुझसे उसी का वर्णन कीजिए।"

राजा परीक्षित के ऐसे वचन सुनकर श्री शुकदेवजी ने हँसकर कहा—"हे राजन्! तू नरक में जाने योग्य नहीं है, इसी लिए हमने तुझे अभी तक नरक का हाल नहीं बताया है। परन्तु जब तू जानना ही चाहता है, तो हम उसके सम्बन्ध में कहते हैं, सुनो। हे परीक्षित! सुमेरु पर्वत से निन्यानबे योजन दूर दक्षिण दिशा में, पृथ्वी से नीचे तथा जल के ऊपर नरकलोक बसा हुआ है। उस नरक के घोर दुःखों को देखकर 'धृतपृष्ठ' आदि चारों वर्णों के दिव्य पितर उसके द्वार पर खड़े रहकर, अपने परिवारवालों को नरक में न आने के लिए रोकते रहते हैं। सूर्य के पुत्र यमराज उस नरक के स्वामी हैं। तामिस्र तथा रौरव आदि अट्ठाईस प्रकार के नरक हैं। उनके दक्षिण ओर बसी हुई 'संयमनी' नामक एक पुरी को भी नरक के समान ही समझना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिए। यमराज, जिन्हें धर्मराज भी कहा जाता है, प्रत्येक प्राणी को, उसकी मृत्यु के पश्चात् शुभाशुभ कर्मानुसार नरकलोक अथवा स्वर्गलोक में भेजने का कार्य करते हैं। पापियों को नरक तथा धर्मात्माओं को स्वर्ग प्राप्त होता है। प्रत्येक जीव अपने कर्मानुसार वहाँ का सुख-दुःख भोगने के उपरान्त संसार में फिर जन्म ग्रहण करता है। नरक में पहुँचकर अत्यन्त कष्ट पाने पर भी प्राण नहीं निकलते हैं। अब हम तुमसे वह हाल कहते हैं कि किस पाप के करने से प्राणी कौन-सा नरक प्राप्त करता है, सुनो।

हे परीक्षित! जो मनुष्य छल अथवा बल द्वारा किसी दूसरे की स्त्री अथवा धन का अपहरण कर लेता है, उसे यमराज के दूत मुद्गरों से मारते हुए, 'तामिस्र' नामक महा अन्धकारपूर्ण नरक में बाँधकर डाल देते हैं। वहाँ उसे खाने-पीने के लिए भोजन अथवा जल कुछ भी नहीं मिलता। जो आदमी किसी स्त्री के रक्षक अथवा पति को किसी बहाने अन्यत्र स्थान पर भेज कर, स्वयं उस स्त्री के साथ सम्भोग करता है, उसकी आँखें फूट जाती हैं तथा मृत्यु के पश्चात् यम के दूत उसे मुद्गरों से पीटते हुए, उसके अङ्ग-अङ्ग काटकर 'अन्धतामिस्र' नामक नरक में डाल देते हैं। जो मनुष्य अधर्म की कमाई द्वारा अपने परिवार का पालन-पोषण करता है तथा अभिमानपूर्वक यह कहता है कि मैं इन लोगों को भोजन देता हूँ, उसे यम के दूत 'रौरव' नामक नरक में डालकर कराल सर्पों द्वारा कटवाते हैं। जो मनुष्य शत्रुतावश अथवा अपने भोजन के लिए किसी पशु अथवा पक्षी को मारता है, उसे यम के दूत 'महारौरव' नामक नरक में डाल देते हैं। वहाँ बड़े-बड़े सर्पों के काटने पर उसे महान् दुःख की प्राप्ति होती है, जो मनुष्य केवल अपने शरीर से प्रेम रखता है तथा उसे सुख पहुँचाने के लिए धर्म-कर्म त्यागकर, ब्राह्मण, वेद तथा शास्त्रों का निरादर करता है, उसे यम के दूत 'कालसूत्र' नामक नरक में डाल देते हैं। उस नरक में सड़ा हुआ मांस भरा रहता है तथा बड़े-बड़े गिद्ध उस मनुष्य के मांस को नोच-नोचकर खाते हैं। जो मनुष्य किसी हिरण आदि पशु अथवा पक्षी को बाँधकर अथवा पिंजड़े में बन्द करके रखता है, उसे यम के दूत पीव से भरे हुए 'कुम्भीपाक' नामक नरक में डाल देते हैं तथा उसके शरीर पर गरम तेल छिड़कते हैं। जो मनुष्य अपने माता-पिता का दुर्वचन कहकर उन्हें भोजन तथा वस्त्रादि का दुःख देता है, उसे यम के दूत दस सहस्र योजन लम्बी ताँबे के समान गरम पृथ्वी पर नंगे पाँवों दौड़ाते हैं। वहाँ उसके पाँव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जलने लगते हैं तथा अन्न-जल न मिलने के कारण क्षुधा-तृषा से व्याकुलता अत्यन्त बढ़ जाती है। उसके शरीर पर जितने रोयें होते हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक वह उस जलती हुई पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ा रहता है।

हे परीक्षित! जो लोग शास्त्र का वचन त्यागकर अपने इच्छानुसार अथवा किसी अन्य के आचरणानुसार कुमार्ग पर चलते हैं उन्हें यम के दूत 'असिपत्र' नामक नरक में ले जाते हैं। उस नरक में तलवार की धार के समान पैने पत्तोंवाले वृक्ष हैं, यम के दूत उसे उन वृक्षों पर चढ़ाकर नीचे ढकेल देते हैं। ऐसा करने से जब शरीर कट जाता है, तो उसे अत्यन्त पीड़ा प्राप्त होती है। जो राजा बिना किसी अपराध के किसी को दंड देता है अथवा किसी ब्राह्मण को फाँसी देता है, उसे यम के दूत 'शूकरमुख' नामक नगर में ले जाते हैं तथा उसके शरीर को कोल्हू में डालकर पेरते हैं। उस समय कोल्हू में पेरे जाने तथा शूकर के समान मुखवाले जानवरों द्वारा काटे जाने के कारण उसे अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है। जो मनुष्य अपनी कमाई में से देवता तथा पितरों का भाग न निकाल कर, केवल अपना तथा अपने परिवार का पेट भरता है, उसे यम के दूत 'अन्धकूप' नामक नरक में डाल देते हैं। वहाँ बिच्छू, सर्प, जोंक आदि द्वारा काटे जाने पर उसे अत्यन्त दुःख होता है। जो मनुष्य उत्तमोत्तम पदार्थों को अकेला ही खा लेता है, अपने किसी साथी अथवा देखनेवाले को नहीं देता, उसे यम के दूत 'कृमिभोजन' नामक नरक में डाल देते हैं। वह नरक एक सहस्र योजन के आकारवाला कुण्ड के समान है। उसमें कीड़े भरे रहते हैं। उसमें जानेवाले प्राणी को उन्हीं कीड़ों को खाना पड़ता है। जो मनुष्य किसी ब्राह्मण का धन अथवा खेत चुरा लेता है अथवा बलपूर्वक छीन लेता है, उसे यम के दूत 'संदंशन' नामक नरक में ले जाते हैं। वहाँ बिच्छू भरे रहते हैं। उस नरक में डालने के पश्चात् यम के दूत अग्नि में तपाये हुए लोहे के छड़ों द्वारा उसके शरीर को दागते हैं। जो पुरुष किसी पराई स्त्री से भोग करता है अथवा जो स्त्री किसी पर-पुरुष से भोग करती है, यम के दूत उसके शरीर से तपाये हुए लोहे की मूर्ति को चिपटाकर अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं। जो पुरुष ऊँच-नीच वर्ण का विचार किये बिना पर-स्त्री-गमन करता है, उसे यम के दूत 'वज्रकण्टक' तथा 'शाल्मलि' नामक नरकों में डालकर, लोहे के बड़े-बड़े काँटों को उसके शरीर में चुभाते हैं। जो मनुष्य राजा अथवा बलिष्ठ होकर किसी के धर्म को जबरदस्ती भ्रष्ट करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, उसे यम के दूत वैतरणी नदी में डाल देते हैं। उस नदी में रक्त, पीब तथा मल-मूत्र आदि भरे हुए हैं। वहाँ जानेवाले प्राणी को उसी का भोजन करना पड़ता है। उस समय पाप करनेवाला जीव अपने कुकर्मों का ध्यान करके बार-बार पछताता है।

हे परीक्षित! जो मनुष्य दासी के साथ भोग करता है, उसे यम के दूत 'लालाभक्ष' नामक नरक में डालकर उसे मुँह की लार तथा पीब पिलाते हैं। जो राजा अथवा बड़ा आदमी किसी पक्षी आदि का शिकार करता है, उसे यम के दूत दस सहस्र योजन ऊँचे पर्वत-शिखर पर ले जाकर नीचे गिरा देते हैं। इससे उसका अंग-अंग छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है। जो मनुष्य देवी-देवताओं के नाम पर स्वयं पेट भरने के लिए जीव हिंसा करते हैं, उन्हें यम के दूत 'विश्वासन' नामक नरक में डालकर मुद्गरों द्वारा इस प्रकार कूटते हैं, जैसे ओखली में धानों को कूटा जाता है। जो मनुष्य कहीं आग लगाता है, उसे यम के दूत 'सारमेयादन' नामक नरक में डालकर सहस्रों कुत्तों से कटवाते हैं। जो मनुष्य किसी से धन लेकर झूठा न्याय करता है अथवा झूठी गवाही देता है, उसे यम के दूत दस सहस्र योजन ऊँचे स्थान पर ले जाकर, उसका मस्तक नीचे तथा पैर ऊपर करके, रक्त से भरे हुए 'विश्वासन' नामक नरक में पटक देते हैं। उस समय उसे सूखी हुई धरती पर जल तथा जल से भरा हुआ स्थान सूखा दिखाई देने लगता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वेद का अधिकारी हो, परन्तु देवताओं के नाम पर अथवा अपने सुख के लिए मद्यपान करता हो, उसे यम के दूत लोना मिट्टी से भरे हुए 'क्षार-कर्दम' नामक नरक में डालकर गला हुआ सीसा पिलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ण के जो मनुष्य किसी जीव का मांस खाते हैं, नरक में पहुँचने पर उनके लिए वे ही जीव गिद्ध बनकर उनका मांस खा-खाकर दुःख पहुँचाते हैं। जो मनुष्य किसी साधु-सन्त अथवा दरिद्र किंवा अपने सेवक के प्रति बिना अपराध दुर्वचन कहता है अथवा सताता है या किसी अन्धे मनुष्य द्वारा मार्ग पूछे जाने पर नहीं बताता, उसे यम के दूत 'रक्षोगण भोजन' नामक नरक में डाल देते हैं, जहाँ राक्षस तथा पाँच-पाँच, सात-सात मुँहवाले सर्प उसे काटते हैं। जो मनुष्य किसी भीख माँगनेवाले दरिद्र अथवा वैरागी को झिड़ककर आँखें दिखाता है, उसे यम के दूत 'शूलप्रोत' नामक नरक में डालकर बड़े-बड़े गिद्धों तथा सर्पों से कटवाते हैं। उसे खाने-पीने के लिए भी कुछ नहीं देते हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जो मनुष्य वेद तथा शास्त्रों के विपरीत आचरण करता है तथा श्री नारायणजी के स्मरण एवं भजन में प्रीति नहीं रखता, वह अपने कर्मानुसार नरक में जाकर दुःख अवश्य भोगता है। मनुष्य का शरीर वेद-शास्त्रों के विपरीत आचरण करने के लिए नहीं है। अपने शरीर का पालन तो अन्य योनियों में भी किया जा सकता है। केवल मनुष्य-शरीर ही ऐसा है जिसमें सन्त-महात्माओं के सत्संग द्वारा ज्ञान प्राप्त करके, अपने परलोक को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह सब जीवों में एक ही परमेश्वर का चमत्कार समझ कर, सबकी रक्षा तथा सबके प्रति उपकार करे। यदि कोई अज्ञानी मनुष्य कथापुराणों को नहीं सुनता है अथवा अनजान में उससे कोई ऐसा पाप हो जाता है, जो उसे नरक में ले जानेवाला हो, तो उसे चाहिए कि वह कुकर्म को छोड़कर श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करे। ऐसा करने से उसे ज्ञान की प्राप्ति तो होगी ही, साथ ही दीनबन्धु श्री नारायणजी भी अपराध को क्षमा करके उसे वैकुण्ठलोक का सुख प्रदान करेंगे। अज्ञानी मनुष्य से यदि कोई पहिला पाप हो जाय, तो उसके कारण वह नरक को नहीं जाता है। हे राजन्! तुम अपने मन में भयभीत मत होवो। श्रीमद्भागवत कथा सुनने के प्रताप से तुम्हारा वह पाप नष्ट हो गया है, जो तुमने अपने अज्ञानवश ऋषि के गले में मरे हुए सर्प को डालकर ग्रहण कर लिया था। अब तुम्हें निश्चय ही मुक्ति प्राप्त होगी। तुम वैकुण्ठलोक का सुख पाओगे। जो मनुष्य इस स्कन्ध की कथा को सच्चे मन से सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी सब पापों से छुटकारा पाकर भव-सागर से पार उतर जायगा।"

पञ्चम स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

षष्ठ स्कन्ध

अजामिल की कथा तथा देवता एवं दैत्यों की उत्पत्ति का वर्णन

वन्दना

यह कर्त्ता, कारण, क्रिया, कर्म, सब मेरे ही तो हैं स्वरूप,
मैं सेवक, मैं ही सेव्य, अतः करता हूँ अपना अभिनन्दन !

मैं रवि-शशि, मैं ही तारागण, मैं दिग-दिगन्त, मैं नील-गगन ;
मैं धरा, सिन्धु-विस्तार स्वयं, मैं ज्योति, अनल, जल और पवन ;
अणु-अणु, कण-कण में भरा हुआ मैं सूक्ष्म तत्त्व, मैं ही विराट्,
उत्थान-पतन, सुख-दुःख सब में, होता रहता मेरा नर्तन !

जप, तप, मख, योग सभी हूँ मैं, मैं निर्विकार, मैं निराकार ;
आश्रित जिस पर आधार सभी, मैं ही तो हूँ वह निराधार ;
मैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान, दिन-रात मुझी से चलते हैं,
युग, संवत्सर, ऋतु, वर्ष, मास, मुझसे गुण्ठित सब अवगुण्ठन !

वन, उपवन, गिरि, गह्वर, निर्झर, नद, नदी सभी मेरे स्वरूप ;
साकार सभी जीवों में हूँ, पर फिर भी रहता हूँ अरूप ;
मैं राज्य और 'राजेश' स्वयं, संसृति के मुझसे संस्कार,
मैं 'सोऽहं' हूँ, इसलिए आज करता हूँ अपना ही वन्दन !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

अजामिल की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे प्रभो! आपने द्वितीय स्कन्ध में मनुष्य को वैकुण्ठ प्राप्त करने के लिए प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के दो मार्ग बताते हुए यह कहा था कि परमहंस तथा योगी-जन निवृत्ति मार्ग द्वारा सूर्य-मण्डल में होकर ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं तथा वहाँ कुछ दिनों तक ब्रह्माजी के समीप रहने के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो जीव माया के गुणों द्वारा बारम्बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे प्रवृत्ति मार्ग द्वारा चन्द्रमण्डल से होकर अपने कर्मानुसार स्वर्गादि लोकों में जाते हैं तथा वहाँ सुख भोग कर पुनः संसार में जन्म लेते हैं। हे स्वामिन्! आपने चौदहों लोक, स्वर्ग, नरक, धर्म-अधर्म करनेवालों की गति तथा किस पुण्य के प्रताप से मनुष्य को स्वर्ग का सुख मिलता है एवं किस पाप के कारण नरक का दुःख उठाना पड़ता है, यह सब मुझे सुनाया है। स्वायम्भुव मनु, राजा प्रियव्रत, उत्तानपाद, देवहूती, ध्रुव तथा उनकी सन्तानें, सातों द्वीप, नव खण्ड, सातों समुद्र, पृथ्वी का विस्तार एवं भूमण्डल आदि का वर्णन भी किया है। हे नाथ! अब मैं ऐसा धर्म सुनना चाहता हूँ, जिसके करने से अधर्मी तथा पापी लोग भी स्वर्ग के सुख को प्राप्त कर सकें। अतः आप मुझे ऐसा ही कोई धर्म बताने की कृपा कीजिए जिससे किसी मनुष्य को नरक प्राप्त न हो।"

राजा परीक्षित के वचन सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जो लोग मन, वचन, कर्म से जान-बूझकर अधर्म करते हैं उन्हें नरक अवश्य भोगना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को उचित है कि वह हर समय अपनी मुक्ति का उपाय करता रहे। जो प्राणी इस मनुष्य-शरीर को पाने के बाद भी मुक्ति का उपाय नहीं करता, उसका जन्म व्यर्थ चला जाता है और उसे सदैव पछताना पड़ता है। यदि किसी मनुष्य से कोई छोटा-बड़ा पाप हो भी जावे, तो उसे शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त करके उससे मुक्त हो जाना चाहिए। जिस प्रकार बिना औषधि के रोग दूर नहीं होता, उसी प्रकार प्रायश्चित्त किए बिना पाप नष्ट नहीं होता है।"

इतनी बात सुनकर राजा परीक्षित ने प्रार्थना की—"हे नाथ! जो व्यक्ति जान-बूझकर पाप करता हो वह यदि एक बार प्रायश्चित्त कर ले तथा बाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में फिर अधर्म करने लगे तो भला इस प्रायश्चित्त द्वारा उसका उद्धार किस प्रकार हो सकेगा ?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! पाप तथा पुण्य पृथक्-पृथक् कर्म हैं। पुण्य करने से पाप नष्ट हो जाता है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पुण्यों द्वारा एक बार पाप नष्ट कर देने के बाद फिर कभी पाप कर्म न करे। जिस प्रकार रोग को दूर करने के लिए औषधि तो खाई जाय, परन्तु संयम (पथ्य) न रक्खा जाय तो रोग अधिक बढ़ जाता है, उसी प्रकार एक बार प्रायश्चित्त द्वारा पाप नष्ट कर देने के बाद किए हुए अधर्मों को समझना चाहिए। हाथी स्नान करने के बाद पृथ्वी की धूलि को फिर अपने मस्तक पर रख लेता है, भला ऐसे स्नान से क्या लाभ ? ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य का जैसा उद्धार होता है, वैसा शुभ कर्मों द्वारा भी नहीं होता। अतएव मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। इसी में उसका उद्धार है। पापों को नष्ट करने के सर्वोत्तम साधन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सुकर्म तथा तपस्या करना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, अपने हृदय को संसारी माया-मोह से विरक्त रखना, सदैव सत्य बोलना, मन, वचन अथवा कर्म से किसी भी प्राणी का अपकार न करना, सदैव परोपकार करना तथा किसी जीव को दुःख न देना है। इन सब उपायों से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं। परन्तु हे परीक्षित ! श्री नारायणजी के चरण-कमलों में भक्ति रखने, उनका नाम जपने तथा कीर्तन करने से मनुष्य सब पापों से शीघ्र छूट कर मुक्ति पा लेता है। भक्ति के समान शीघ्र फलदायक तप भी नहीं है। जिस प्रकार प्रातःकालीन कुहरे का अँधेरा सूर्य के प्रकाश से नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार श्री नारायणजी का नाम लेने से अनेक जन्म के बड़े पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी पर वृक्ष तथा फल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार श्री नारायणजी का स्मरण एवं भक्ति करने से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है। इसलिए मनुष्य को संसार में जन्म लेकर श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति प्राप्त करने के लिए साधु-महात्माओं का सत्सङ्ग करना चाहिए। श्रीहरि की सेवा के लिए सत्सङ्ग से बढ़कर अन्य कोई उपाय श्रेष्ठ नहीं है। महात्माओं की सङ्गति से मनुष्य का मन संसार से शीघ्र विरक्त हो जाता है। जो लोग श्री नारायणजी से विमुख रहते हैं, वे किसी भी प्रकार का प्रायश्चित्त करने पर उसी प्रकार शुद्ध नहीं होते जिस प्रकार कि मदिरा का घड़ा गङ्गाजल से धोने पर भी शुद्ध नहीं होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। जिस मनुष्य ने एक बार श्री नारायणजी के चरणों में अपना ध्यान लगा लिया वह स्वप्न में भी यमराज के दूतों को नहीं देखता है। उसने सम्पूर्ण प्रायश्चित्त कर लिए, ऐसा समझना चाहिए। श्री नारायणजी के नाम-माहात्म्य के सम्बन्ध में हम तुमसे एक कथा कहते हैं, उसे सुनो।

हे परीक्षित! पिछले युग में 'अजामिल' नामक एक ब्राह्मण उज्जैन में रहता था। उसने एक दासी से प्रीति कर ली। वह चोरी, ठगी तथा जुए का काम करता था। उस दासी द्वारा उसके दस पुत्र उत्पन्न हुए। उसने अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम 'नारायण' रक्खा। अजामिल अपने छोटे पुत्र पर सबसे अधिक प्रीति रखता था, इसलिए उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते सब समय अपने मन में उसी का ध्यान किए रहता था। इस प्रकार जब वह अट्ठासी वर्ष की आयु को प्राप्त हुआ तथा उसका मृत्यु-काल समीप आ पहुँचा तब यम के दूत अपना भयानक स्वरूप बनाये, हाथों में मुग्दर तथा पाश को लिए, उसे लेने के लिए आये। जिस समय वे उसके गले में यमपाश डालकर खींचने लगे, उस समय अजामिल अत्यन्त भयभीत होकर अपने छोटे पुत्र 'नारायण' को पुकारने लगा। इस प्रकार अन्त समय में उसके मुख से नारायण का नाम निकलते ही श्री विष्णुभगवान् की आज्ञानुसार शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण किए हुए श्याम रङ्गवाले चार पार्षद अपने हाथों में अत्यन्त प्रकाशवान् स्वर्ण की छड़ी लिये हुए उसके पास जा पहुँचे। उस समय श्रीहरि के पार्षदों ने यमराज के दूतों से कहा कि तुम लोग हमारे सामने इसे कष्ट देकर धर्मराज के पास नहीं ले जा सकते हो। श्रीहरि के पार्षदों के यह वचन सुनकर यम-दूतों ने उत्तर दिया—"हे पार्षदो! यह ब्राह्मण अत्यन्त पापी है। पापों का दण्ड देने का अधिकार श्री धर्मराज को है। अतः हम उनके आज्ञानुसार इसे नरक में ले जायँगे। हे मित्रो! आप लोग तो श्री नारायणजी के दूत हैं, अतः आपको ऐसे अधर्मी के पास आना तथा इसे हमारे हाथों से छुड़ाकर ले जाना उचित नहीं है।" इस पर श्रीहरि के पार्षदों ने कहा—"हे यमदूतो! तुम लोग धर्मराज के दूत होकर भी इस बात को क्यों नहीं जानते हो कि किस मनुष्य को सुख देना चाहिए तथा किस मनुष्य को दुःख पहुँचाना चाहिए? तुम लोग हमसे धर्म, अधर्म का स्वरूप कहो तथा यह भी बताओ कि किस पापी को दण्ड देना चाहिए तथा किस मनुष्य को सुख पहुँचाना चाहिए?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीहरि के पार्षदों का यह प्रश्न सुनकर यमदूतों ने कहा—"हे पार्षदो ! वेद तथा शास्त्रों में जो शुभ कर्म कहे गये हैं, उन्हें धर्म तथा जो अकर्म कहे गये हैं, उन्हें पाप समझना चाहिए। वेद-शास्त्रों के वचन को श्री नारायणजी की आज्ञा मानना चाहिए। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, दिशा, दिवस, रात्रि तथा वायु आदि देवता प्राणियों द्वारा शुभा शुभ कर्म किए जाने के साक्षी हैं। यह अजामिल नामक ब्राह्मण विद्या पढ़ने के उपरान्त गुरु, माता, पिता, भगवान् विष्णु तथा अग्नि, सूर्य आदि देवताओं की भक्ति करके धर्मपूर्वक रहता था। एक दिन यह अपने पिता की आज्ञा मानकर लकड़ी तोड़ने के लिए वन में गया। जिस समय यह वन से लौट रहा था, उस समय इसने मार्ग में यह देखा कि एक भील अपनी वेश्या को साथ लिए, मतवाला बना हुआ हँसता चला जा रहा है। इस अजामिल को देखते ही वह वेश्या कामदेव के वश में होकर इसके गले से लिपट गई। उस समय यह ब्राह्मण भी कामासक्त होकर उसके साथ भोग करने लगा। तत्पश्चात् यह उस वेश्या को अपने घर ले आया तथा उसकी प्रीति में पड़कर माता, पिता, पत्नी एवं धर्म-कर्म को भुला बैठा। उस वेश्या की सङ्गति के कारण इसने मांस खाना तथा मद्य पीना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों में जब इसके पिता का सब धन समाप्त हो गया, उस समय यह चोरी, ठगी तथा जुए द्वारा अपने कुटुम्ब का पालन करने लगा। इन सब कुकर्मों के कारण ही हम इस महा पापी को लेने के लिए यहाँ आये हैं। अब आप लोग हमें इसे अपने साथ ले जाने दें ताकि यह अपने पापों का दण्ड पाकर शुद्ध हो जाय।"

दूसरा अध्याय

श्रीहरि के पार्षदों का श्री नारायणजी के नाम-माहात्म्य का वर्णन करना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! यमदूतों द्वारा अजामिल के पाप-कर्मों का वृत्तान्त सुनकर श्रीहरि के पार्षदों ने इस प्रकार कहा—"हे यमदूतो ! अब हमें ज्ञात हुआ कि धर्मराज के यहाँ बहुत अन्धेर है तथा किसी प्रकार का न्याय नहीं है। उनके दूत बिना अपराध के ही साधु तथा सन्त लोगों को कष्ट देते हैं। सम्पूर्ण पाप-पुण्यों के ज्ञाता धर्मराज ही जब ऐसा अन्याय करने लगेंगे तो धर्म-कर्म का हाल न जाननेवाले संसारी लोग किस प्रकार अपना काम चलायेंगे ? यदि कोई मनुष्य किसी की गोद में अपना मस्तक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रखकर सोये और वह उसका मस्तक काट ले अथवा माता-पिता ही अपने पुत्र को विष देने लगे तो फिर रक्षा का क्या उपाय हो सकता है ? तुम लोगों ने श्री नारायणजी के नाम का माहात्म्य नहीं सुना है। जो मनुष्य भूल से अथवा किसी भय या हँसी से भी श्री नारायणजी का नाम लेता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सोना चुराने, गो, ब्राह्मण, तपस्वी अथवा माता-पिता की हत्या करने, गुरु की स्त्री से भोग करने, मदिरा पीने तथा गुरु के प्रति दुर्वचन कहने से जो पाप लगता है वह सभी श्री नारायणजी का नाम लेने से दूर हो जाता है। इस अजामिल ब्राह्मण ने भी अपनी मृत्यु के समय श्री नारायणजी का नाम लिया है। अतः उसके प्रताप से इसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो गये हैं तथा यह वैकुण्ठ लोक जाने के योग्य हो गया है। श्री नारायणजी का नाम लेने के कारण पापों से छूट जाने के उपरान्त अब यह दण्डनीय नहीं रहा। श्री नारायणजी के नाम से अधिक पापों को नष्ट करनेवाला अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं है। यदि किसी हवन, यज्ञ, जप अथवा तपस्या में भूल हो जाय, तो यह श्री नारायणजी का नाम लेने से शुद्ध हो जाता है। श्री नारायणजी के नाम-स्मरण से अधिक किसी भी तीर्थ, व्रत, जप, तप, यज्ञ, हवन अथवा दान का माहात्म्य नहीं है। 'नारायण'—इस चार अक्षर के नाम को जो मनुष्य अपने मुख से निकालता है, उसे श्रीहरि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारों पदार्थ देते हैं। बड़े-बड़े योगी, ऋषि, मुनि तथा महात्माओं ने भी नाम का माहात्म्य सबसे अधिक बतलाया है। श्री नारायणजी का नाम लेने, उनकी कथा सुनने तथा भक्ति करने से अनेक जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी स्थान पर अनेक मनुष्य बैठे हुए हों तथा कोई आदमी किसी का नाम लेकर पुकारे तो वही उसकी ओर देखने लगता है। उसी प्रकार अजामिल द्वारा पुकारे जाने पर श्री नारायणजी ने भी इसे अपनी कृपादृष्टि से देखा है। जिस प्रकार रोगी मनुष्य का रोग अनजाने में दवा खा लेने से भी छूट जाता है अथवा जिस प्रकार अग्नि की एक चिनगारी रुई तथा लकड़ी के बड़े से बड़े ढेर को भी जला देती है, उसी प्रकार श्री नारायणजी का नाम लेने से अनेक जन्म के पाप रुई तथा लकड़ी के समान भस्म हो जाते हैं। श्री नारायणजी ने वेद में यह कहा है कि जो मनुष्य मेरा नाम लेता है मैं उसे कृतार्थ कर देता हूँ। जिस प्रकार वन में व्याघ्र की बोली सुनकर हिरन भाग जाते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, उसी प्रकार मुख से राम-नाम निकलते ही शरीर के सम्पूर्ण पाप भयभीत होकर भाग जाते हैं।"

हे परीक्षित ! हरि के पार्षदों ने इस प्रकार के वचन कहकर यमराज के दूतों को वहाँ से निकाल दिया। उस समय श्रीहरि के चतुर्भुजी पार्षदों का दर्शन करने से अजामिल के हृदय में ज्ञान एवं वैराग्य की उत्पत्ति हो गई। तब वह श्रीहरि के नाम की महिमा समझकर अपने मन में बहुत पछताकर इस प्रकार विचार करने लगा कि देखो, मैंने ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर भी अपने धर्म-कर्म को त्याग दिया तथा दासी के वशीभूत होकर सम्पूर्ण आयु को कुकर्मों में नष्ट कर डाला। इस समय यदि ये साधु पुरुष (श्रीहरि के पार्षद) न आते तो यमदूतों के हाथ से मेरा बचना कठिन था। न जाने वे मुझे कैसा दुःख देते ? अतः अब मैं—जिन श्री नारायणजी के नाम के प्रताप से मेरा कल्याण हुआ है, उन्हीं का स्मरण करके अपने जन्म को सुधारूँगा। इस प्रकार जब अजामिल अपने हृदय में पछताने लगा तब श्री-हरि के पार्षद वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

हे राजन् ! श्रीहरि के पार्षदों के दर्शन के प्रताप से अजामिल को एक वर्ष की आयु और मिली। तब वह अपने मन को संसारी माया-मोह से विरक्त होकर, हरिद्वार में जाकर, सच्चे हृदय से श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करने लगा। जब उसे श्रीहरि का ध्यान एवं तप करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया तब वैकुण्ठ लोक से एक अत्यन्त सुन्दर विमान उसे लेने के लिए आ पहुँचा। तदनन्तर वह विमान पर चढ़कर हरि-कीर्तन करता हुआ वैकुण्ठ लोक में चला गया और वहाँ चतुर्भुजी रूप धारणकर सुखपूर्वक निवास करने लगा। उसे देखकर वैकुण्ठलोक के देवता तथा ऋषि-मुनि भी उसकी प्रशंसा करने लगे।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! इस प्रकार महापापी अजामिल ने धोखे से श्री नारायणजी का नाम लिया था, परन्तु उस नाम के प्रताप से उसे मुक्ति-पद की प्राप्ति हुई। तब जो मनुष्य संसार से विरक्त होकर श्री नारायणजी का भजन करता है, उसकी गति को तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। श्री नारायणजी का भक्त कभी नरक में नहीं जाता—इसे निश्चित समझना चाहिए।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा अध्याय

यमदूतों द्वारा धर्मराज से अजामिल का वृत्तान्त कहना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे महात्मन्! अब आप मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि अजामिल के पास से लौटने के बाद यमदूतों ने यमराज के पास जाकर क्या कहा तथा यमराज ने उन्हें क्या उत्तर दिया।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! अजामिल के पास से लौटकर यमदूतों ने यमराज के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे धर्मराज! अब हमें बहुत-से लोग न्याय करनेवाले दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में भला आप ही बताइये कि जब बहुत-से लोग न्यायाधीश होंगे और वे अपने अलग-अलग निर्णयों द्वारा कभी किसी पापी को वैकुण्ठ लोक भेजेंगे तो कभी किसी धर्मात्मा को नरक में भेज देंगे। अब तक हम लोग यही समझते थे कि न्याय करनेवाले केवल आप ही हैं, इसीलिए आपके आज्ञानुसार जीवों को लाकर उन्हें उनके कर्मानुसार स्वर्ग और नरक के सुख-दुःख का भोग कराते थे। हे नाथ! ऐसा हम इसलिए कह रहे हैं कि जब हम लोग आपके आज्ञानुसार अजामिल नामक महापापी को लेने गये, तब उसने हम लोगों को देख अत्यन्त भयभीत होकर अपने नारायण नामक छोटे पुत्र को सहायता के लिए पुकारा, परन्तु उसी समय हमने यह देखा कि नारायण कहकर पुकारने के कारण श्री नारायणजी के चार चतुर्भुजी पार्षद उसके पास तत्काल आ पहुँचे तथा उन्होंने उस पापी को हमारे हाथों से छीन लिया। हे प्रभो! इसलिए हम आपसे यह कह देना चाहते हैं कि आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे भविष्य में हमारा कहीं अपमान न हो।"

हे परीक्षित! अपने दूतों के मुख से ऐसे वचन सुनकर यमराज ने सर्वप्रथम परब्रह्म प्रभु श्री नारायणजी का ध्यान किया, तत्पश्चात् अपने दूतों से इस प्रकार कहा—"हे दूतो! तुम लोग श्री नारायणजी के नाम की महिमा को नहीं जानते हो। इन्द्रादिक देवता तथा भृगु आदि ऋषि भी उनके नाम के माहात्म्य को भले प्रकार से नहीं जानते हैं। केवल मैं (धर्मराज) ब्रह्मा, राजा जनक, मनु, भीष्म पितामह, प्रह्लाद, राजा बलि, शुकदेवजी, नारद, शिवजी, कपिलदेवजी तथा सनकादिक चारों भाई ही उनके नाम के माहात्म्य को अच्छी तरह जानते हैं। देखो, श्री नारायणजी के नाम का ऐसा माहात्म्य है कि उसके प्रताप से अजामिल जैसा महापापी भी, अपने बेटे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के धोखे में नारायणजी का नाम लेने के कारण तुम्हारे बन्धन से छूट गया। मैं, ब्रह्मा, शिवजी तथा इन्द्रादिक सभी देवता श्री नारायणजी की सेवा में लगे रहते हैं तथा उन्हीं के आज्ञानुसार सब काम करते हैं। श्री नारायणजी की इच्छा से पल मात्र में ही सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय होता है। सम्पूर्ण संसार उन्हीं की माया में बँधा हुआ है। उनके दूत प्रत्येक स्थान पर रहकर उनके भक्तों की रक्षा करते हैं, परन्तु वे किसी देवता अथवा मनुष्य को दिखाई नहीं देते हैं। उन्हीं दूतों ने अजामिल को भी छुड़ा दिया। तुम इस घटना का शोक न मानकर इसे अपना अहोभाग्य समझो जो तुम्हें उनके दर्शन प्राप्त हुए। देवता तथा ऋषियों को भी उनके दर्शन सहज में नहीं मिलते हैं।"

श्री नारायणजी के नाम का ऐसा माहात्म्य सुनकर यमदूतों ने धर्मराज से पूछा—"हे स्वामी! जब श्री नारायणजी के नाम का ऐसा माहात्म्य है तो वेद-शास्त्रों में पाप नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के तप तथा कठिन प्रायश्चित्त क्यों कहे गये हैं?" धर्मराज ने उत्तर दिया—"हे दूतो! जो मनुष्य श्री नारायणजी के नाम का माहात्म्य नहीं जानता, उन्हीं के लिए जप, तप, यज्ञ आदि का विधान है। परन्तु श्री नारायणजी के नाम-स्मरण से बढ़कर अन्य कोई धर्म श्रेष्ठ नहीं है। यज्ञ, तप आदि करने से एक पाप नष्ट होता है, परन्तु श्री नारायणजी का नाम लेने से अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं। वेद-शास्त्रों ने कलियुगी जीवों को भय दिखाने के हेतु यज्ञ, तप आदि अनेक प्रकार के कठिन प्रायश्चित्तों के विधान का वर्णन किया है, ताकि संसारी जीव उससे भयभीत होकर अधर्म करना त्याग दें। यदि इन विधानों को नहीं कहा जाता तो सभी मनुष्य निर्भय होकर यह सोच बैठते कि पहिले हमें संसारी सुखों का उपभोग करने के लिए पाप-कर्म कर लेने चाहिएँ, बाद में हम श्री नारायणजी का नाम लेकर पवित्र हो जायँगे।"

यह सुनकर यमदूतों ने कहा—"हे नाथ! ऐसी बात है तो आप लोगों को लेने के लिए हमें क्यों भेजते हैं?" धर्मराज बोले—"हम तुम्हें उन लोगों को लाने की आज्ञा देते हैं, जिन्होंने श्री नारायणजी के नाम का कभी स्मरण नहीं किया है। जिस व्यक्ति ने श्री नारायणजी का नाम नहीं लिया तथा उनके लीला-चरित्रों को नहीं सुना, उसे महापापी समझना चाहिए। श्री-नारायणजी की शरण में जानेवाला प्राणी पापी नहीं रहता है। श्रीहरि अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृपादृष्टि द्वारा पापों से उसे बचाये रहते हैं। अतः तुम लोग आज से केवल उन्हीं पापी लोगों को लाया करो, जो श्री नारायणजी से विमुख हों। जो मनुष्य श्री नारायणजी की भक्ति में रहकर शालग्रामजी के चरणोदक का पान करते हैं, उनके पास तुम कभी मत जाना। वे लोग स्वर्ण के समान शुद्ध रहकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।" इतना कहकर धर्मराज ने श्री नारायणजी का ध्यान धरकर उनके द्वारा अपने दूतों का अपराध क्षमा कराया। तब से यमदूतों ने भी यह निश्चय कर लिया कि जो मनुष्य श्री नारायणजी का स्मरण करता है, उसके पास वे कभी नहीं जायँगे।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! मृत्यु के समय महापापी अजामिल के मुख से श्री नारायणजी का नाम किस प्रकार निकल सका था?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"एक बार चार साधु तीर्थयात्रा करते हुए सन्ध्या के समय अजामिल के गाँव में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने गाँववालों से अपने ठहरने के लिए किसी हरि-भक्त मनुष्य का घर पूछा। उस समय गाँववालों ने हँसी-हँसी में उन्हें महापापी अजामिल का घर बता दिया। जब वे लोग अजामिल के घर पहुँचे तो अजामिल की रखैल वेश्या ने उन्हें ठहरने के लिए उचित स्थान दिया तथा सब प्रकार से सेवा भी की। प्रातःकाल जब वे साधु चलने को हुए तो उन्होंने वेश्या से—जो उस समय गर्भवती थी—यह कहा कि तू अपने पुत्र का नाम नारायण रखना। साधुओं की आज्ञानुसार अजामिल ने पुत्र होने पर उसका नाम नारायण ही रक्खा। इस प्रकार उन साधुओं की कृपा से ही मृत्यु के समय अजामिल के मुख से नारायण का नाम निकला था। हे राजन्! साधु-सन्तों की सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती है। जो लोग वैष्णवों तथा साधु-महात्माओं की सेवा करते हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं पहुँचा पाता है।" श्री शुकदेवजी के मुख से यह कथा सुनकर राजा परीक्षित को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! यह कथा हमने अगस्त्य मुनि द्वारा सुनी थी, वही आज तुम्हें भी सुनाई है।" तब परीक्षित ने हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभो! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की जो श्री नारायणजी के नाम का यह सुन्दर माहात्म्य सुनाकर कृतार्थ किया है।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौथा अध्याय

प्रचेताओं के यहाँ दक्ष की उत्पत्ति

इतनी कथा सुनने के पश्चात् राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे प्रभो ! आपने मुझे देवता तथा दैत्यों की उत्पत्ति संक्षेप में सुनाई है, अब उसे विस्तारपूर्वक वर्णन करने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! राजा प्राचीनबर्हिष के प्रचेता नामक दस पुत्रों ने श्री महादेवजी के ज्ञानोपदेशानुसार समुद्र के तट पर बैठकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान किया। उनके जाने के उपरान्त श्री नारदजी के उपदेश से राजा प्राचीनबर्हिष भी राजगद्दी को सूना त्यागकर तपस्या करने के लिए वन में चला गया। उस समय अन्य राजाओं ने उसके देश का बहुत-सा भाग अपने राज्य में मिला लिया ! ऐसी स्थिति में अनेक गाँव तथा नगर भी उजड़ कर नष्ट हो गये। हरि-स्मरण करने के कारण जब प्रचेताओं को श्री नारायणजी का दर्शन प्राप्त हो चुका, तब एक दिन नारदजी ने उनके पास जाकर उनके राज्य का सब वृत्तान्त कह सुनाया। नारदजी द्वारा अपने राज्य के नष्ट होने का समाचार पाकर प्रचेताओं की नाक से अग्नि के समान एक ऐसी स्वाँस निकली जिसकी ज्वाला से सम्पूर्ण वन धू-धू करके जलने लगा। यह दशा देखकर चन्द्रमा ने 'निम्लोचा' नामक कन्या—जो विश्वामित्र ऋषि तथा 'मेनका' नामक अप्सरा के संयोग से उत्पन्न हुई थी—का विवाह प्रचेताओं के साथ करके उनका क्रोध शान्त किया। विवाह के पश्चात् प्रचेताओं ने ज्योंही अपनी आँखें उठाकर उस कन्या की ओर देखा, त्योंही उसे गर्भ रह गया तथा उससे दसवें महीने 'दक्ष' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। प्रचेताओं ने उसे अपने पिता का राज्य तथा नगर आदि बसाने एवं सृष्टि को बढ़ाने की आज्ञा दी। उसने आज्ञा मानकर मानसी-सृष्टि द्वारा बहुत से मनुष्य उत्पन्न किए। स्त्री-पुरुष के समागम द्वारा उत्पन्न न होने के कारण, उनकी संख्या में अधिक वृद्धि न हुई। उस समय सृष्टि को बढ़ाने के उद्देश्य से दक्ष ने मन्दराचल पर्वत पर जाकर, हंसगुह्य स्तोत्र द्वारा श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान किया। उसने श्रीहरि की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"मैं उस पुरुष को नमस्कार करता हूँ, जिसका वीर्य कभी घटता नहीं है तथा माया के गुणों में पड़कर जड़ को चैतन्य बना देता है। जो इस जीवात्मा से स्नेह रखते हुए सम्पूर्ण इन्द्रियों का हाल जानता है, परन्तु इन्द्रियाँ जिसका भेद नहीं जान पातीं—मैं उसकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वन्दना करता हूँ। मैं उस परब्रह्म परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ जिसकी कृपा द्वारा शरीर, मन, प्राण तथा बुद्धि सब अपना-अपना कार्य करते हैं। मैं उस अविनाशी पुरुष के चरणों का स्पर्श करता हूँ जिसके चरणों का ध्यान ज्ञानी लोग आठों प्रहर अपने हृदय में धरते हैं तथा उन्हें निरन्तर प्रणाम करते हैं। मैं उस ईश्वर को नमस्कार करता हूँ जिसके द्वारा इस संसार की उत्पत्ति हुई है तथा जिसका स्वरूप ही यह संसार है और जिसके आश्रय पर ही यह टिका हुआ है। जो ईश्वर इस संसार से अलग रहकर अपनी माया को उसमें प्रविष्ट किए हुए है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ।"

हे परीक्षित! इस प्रकार स्तुति एवं तप द्वारा दक्ष ने जब श्री नारायणजी को प्रसन्न किया, तब वे चतुर्भुज रूप धारण किए; शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिए; ताप-विनाशिनी चितवन तथा तेजस्वी पीताम्बर धारण किए; मस्तक पर किरीट-मुकुट सजाए; वैजयन्ती माला, वनमाला तथा कौस्तुभ मणि को हृदय पर धारण किए; नारदजी आदि भक्तों तथा सोलह पार्षदों को साथ लिए; मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए दक्ष के सम्मुख प्रकट हो गये। श्री नारायणजी के उस सुन्दर स्वरूप को देखकर, दक्ष ने अत्यन्त प्रसन्न हो, उन्हें साष्टांग दण्डवत् किया। उस समय श्री नारायणजी ने दक्ष को अपना भक्त जानकर इस प्रकार कहा—"हे प्रचेताओं के पुत्र! तू अपनी तपस्या के कारण सिद्ध पद को प्राप्त हुआ तथा हम तेरे द्वारा स्तुति किए जाने से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। ब्रह्मा, शिव आदि अपने भक्तों को मैं अपना मित्र समझता हूँ। मेरा हृदय तप है, शरीर यज्ञ है, आत्मा धर्म है तथा प्राण देवता हैं। मैं ही इस संसार को उत्पन्न करनेवाला हूँ। ब्रह्मा ने मेरे तप के प्रताप से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति की है। अब तुम 'पञ्चजन्य प्रजापति' की पुत्री 'असिक्नी' से विवाह करके मैथुनी-सृष्टि को उत्पन्न करो। मानसी-सृष्टि द्वारा उत्पन्न मनुष्य वैराग्य ग्रहण करके तपस्या में रत हो जाते हैं, उन्हें किसी से स्नेह नहीं होता। परन्तु मैथुनी-सृष्टि से उत्पन्न जीव संसारी मोह-माया में इस प्रकार लिपटे रहेंगे, जिस प्रकार चींटा गुड़ से लिपटा रहता है। आज से सब जीवों की उत्पत्ति मैथुन द्वारा होगी तथा सब लोग अपने-अपने कर्मों का फल प्राप्त करेंगे।" इस प्रकार कहकर श्री नारायणजी अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् दक्ष भी उस कन्या से विवाह करके अपने घर लौट आये तथा राज्य करने लगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाँचवाँ अध्याय

उसी स्त्री से दस हजार पुत्रों का उत्पन्न होना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! उस स्त्री द्वारा दक्ष के दस सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। दक्ष ने उन सबका नाम 'हर्यश्व' रक्खा तथा उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम लोग पहिले श्री नारायणजी का तप करो, तत्पश्चात् सृष्टि की उत्पत्ति करो। दक्ष की आज्ञा सुनकर वे सभी बालक पश्चिम दिशा में 'नारायण' नामक तीर्थ में पहुँचकर श्रीहरि का ध्यान एवं तप करने लगे। उनकी तपस्या देख, नारदजी दयालु होकर उन्हें भवसागर से पार उतारने का विचार करके उनके पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगे—"हे दक्ष-पुत्रो ! सुनो, क्या तुम यह जानते हो कि सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करनेवाला पुरुष केवल एक ही है ? उसके समान अन्य कोई नहीं हो सकता है। सब जीवों में उसी के तेज का प्रकाश है तथा उसी की शक्ति से सब जीवों को चलने-फिरने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। वह अविनाशी पुरुष महा-प्रलय होने पर भी स्थिर रहता है। ऐसी स्थिति में तुम सब बालक संसार को किस प्रकार उत्पन्न कर सकोगे ? तुमने न तो पृथ्वी का अन्त देखा है और न उस स्थान को देखा है, जहाँ गया हुआ प्राणी फिर कभी वापिस नहीं लौटता है। तुम उस भूखन्ती स्त्री को नहीं पहिचानते जो नित्य नये पुरुष की इच्छा करती है। व्यभिचारिणी स्त्री के पति से भी तुम्हारा परिचय नहीं है। जिस नदी की धाराएँ दोनों ओर को बहती हैं, उसे भी तुम नहीं जानते हो। जो घर पच्चीस मन्त्र का बना हुआ है उसे तथा एकहंसी को भी तुमने नहीं देखा है। तेज धारवाले चक्र को भी तुम नहीं पहिचानते। अतः इन सब बातों का विचार करते हुए ही तुम संसार को उत्पन्न करना तथा अपने पिता की आज्ञा का पालन करना।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार पहेली के समान ज्ञान बताने के पश्चात् जब नारदजी चले गये, तब सब बालकों ने नारदजी के वचनों पर परस्पर विचार किया तथा अपनी बुद्धि के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला कि यह पृथ्वी जीव है तथा इसका अन्त मोक्ष है। अतः जब तक हम लोग उसे जान न लें, तब तक सृष्टि की वृद्धि कैसे कर सकेंगे ? नारदजी ने जिस पुरुष के सम्बन्ध में कहा, वे श्री नारायणजी हैं, उनकी कृपा तथा दर्शन हुए बिना हमसे क्या हो सकेगा ? जिस स्थान पर पहुँचने के बाद प्राणी फिर लौटकर नहीं आता,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

वह स्थान वैकुंठ है। अतः उसे देखे बिना हमसे कुछ नहीं होगा। बुद्धि को भूखन्ती स्त्री समझना चाहिए, उसे एकाग्र किए बिना हमसे संसारी जीवों की उत्पत्ति न हो सकेगी। व्यभिचारिणी स्त्री का पति जीव है, वह संसारी माया में फँसा हुआ है। अतः उसे वहाँ से अलग किये बिना हम सृष्टि कैसे उत्पन्न करेंगे? माया ही दोनों ओर बहनेवाली नदी है। इस संसार में एक की मृत्यु होती है तथा दूसरा जन्म लेता है। एक ओर लोग हर्ष मनाते हैं, दूसरी ओर विलाप करते हैं। अतः जब तक हमें माया का भेद ज्ञात न हो जाय तब तक सृष्टि उत्पन्न करना संभव नहीं है। यह शरीर ही पच्चीस तत्त्वों का बना हुआ है, इसमें परमेश्वर के प्रकाश सन्निहित हैं। अतः जब तक हम ईश्वर को नहीं जान लेते तब तक हमसे कुछ नहीं हो सकेगा। वेद-शास्त्रों को हंस समझना चाहिए, जिनके वचन बन्धन तथा मोक्ष का निर्माण करनेवाले हैं। उन्हें जाने बिना भी हम सृष्टि को उत्पन्न न कर सकेंगे। तेज धारवाला चक्र मृत्यु को समझना चाहिए, क्योंकि उसी से सम्पूर्ण संसार का विनाश होता है। उसे भली भाँति जाने बिना हमसे सृष्टि की उत्पत्ति न होगी।"

हे परीक्षित! इस प्रकार नारदजी के वचनों पर विचार करके उन्होंने सृष्टि को उत्पन्न करना उचित नहीं समझा। इस ज्ञान के प्राप्त होने से उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। तब वे लौटकर अपने घर नहीं आये। वहीं परम-हंस बनकर जीवन्मुक्त हो गये। जब बहुत समय बीतने पर भी वे घर नहीं लौटे, तब खोज करने पर दक्ष को यह पता चला कि नारदजी के उपदेश के कारण वे विरक्त हो गये हैं। यह बात ज्ञात होते ही दक्ष ने उसी स्त्री द्वारा एक सहस्र पुत्रों की फिर उत्पत्ति की तथा उन सबका 'सबल' नाम रखकर यह उपदेश किया कि तुम लोग पहले तो श्री नारायणजी का तप करो, तत्पश्चात् सृष्टि उत्पन्न करना। दक्ष की आज्ञा सुनकर वे लोग भी उसी स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ हर्यश्व गये थे तथा नारदजी ने उन्हें भी ज्ञानोपदेश करके संसार से विरक्त कर दिया। जब दक्ष ने यह समाचार सुना कि नारद ने हमारे ग्यारह सहस्र पुत्रों को ज्ञानोपदेश देकर विरक्त कर दिया है तब वे क्रुद्ध होकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यदि यही क्रम चलता रहा तो सृष्टि की संख्या किस प्रकार बढ़ सकेगी?

हे परीक्षित! जिस समय दक्ष अपने मन में क्रोध किए बैठे थे, उसी समय नारदजी वीणा बजाते हुए उनके पास ही जा पहुँचे। दक्ष ने उन्हें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखकर बिना दण्डवत् किए ही इस प्रकार कहना आरम्भ कर दिया—"हे नारद ! तुमने मेरे सब पुत्रों को ज्ञानोपदेश करके संसार से विरक्त कर दिया है, यदि तुम मुझे भी बहका सको तो मैं यह समझूँगा कि तुम वास्तव में बड़े भारी ज्ञानी हो। तुम श्री नारायणजी के पार्षद हो, अतः तुम्हें मेरे साथ ऐसी शत्रुता करना उचित नहीं है। तुम केवल यती तथा सत्यवादी हो। वेद-शास्त्र के धर्म को तुम नहीं जानते हो। मनुष्य के लिए देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण—इन तीनों ऋणों से उऋण होना आवश्यक है। मेरे पुत्र इन ऋणों से अभी उऋण नहीं हुए थे, फिर भी तुमने उन्हें ज्ञानोपदेश कर विरक्त क्यों बना दिया ? क्या तुम गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुत्रादि का रहना ठीक नहीं समझते हो ? जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर शास्त्रानुसार धर्म-कर्म करता है, वह योगी तथा परमहंसों की गति को निस्संदेह प्राप्त करता है। तुमने वेद-शास्त्रों के धर्म को भी नेष्ट समझा है। अतः मैं परमेश्वर से यह कामना करता हूँ कि तुम किसी एक स्थान पर दो घड़ी से अधिक देर तक न ठहर सको। यदि ठहरो तो तुम्हारे मस्तक में पीड़ा हो उठे।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार दक्ष ने नारदजी को शाप दे दिया। यद्यपि नारदजी में भी शाप देने की सामर्थ्य थी, परन्तु उन्होंने दक्ष को हरि-भक्त जानकर कुछ नहीं कहा तथा वहाँ से आनन्दपूर्वक मुस्कुराते हुए चले गये। तदुपरान्त दक्ष ने ब्रह्माजी के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे पितामह ! आपके पुत्र नारद मेरे पुत्रों को ज्ञानोपदेश करके विरक्त बना देते हैं, अब आप ही बताइये कि इस प्रकार संसारी सृष्टि कैसे बढ़ सकेगी ?" ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—"हे दक्ष ! अब तुम कन्या उत्पन्न करो। उनके घर में रहने से नारद उन्हें ज्ञानोपदेश नहीं कर सकेंगे। स्त्रियों को ज्ञान की प्राप्ति शीघ्र होती भी नहीं है। वे अपने मतलब को ही सर्वोपरि समझती हैं। अतः उनसे संसारी जीवों की खूब वृद्धि होगी।"

छठवाँ अध्याय

दक्ष का साठ कन्याओं की उत्पत्ति करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! तदनन्तर दक्ष ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार उस 'असिक्नी' नामक स्त्री द्वारा साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमें से दस का धर्म के साथ, सत्ताईस का चन्द्रमा के साथ, सत्रह का कश्यप के साथ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो का भूतों के साथ, दो का अंगिरा ऋषि के साथ तथा दो का विवाह कृश्वाश्व प्रजापति के साथ कर दिया। उन कन्याओं द्वारा देवता, मनुष्य, दैत्य, दानव तथा पशु-पक्षी आदि बहुत से जीव उत्पन्न हुए। अब हम उन सब कन्याओं तथा उनकी सन्तानों का नाम संक्षेप में कहते हैं।

धर्म की दसों स्त्रियों के नाम—भानु, लम्बा, ककुव, जामी, विश्वा, साध्या, मृत्युवती, वसू, मुहूर्ता तथा संकल्पा था। भानु का पुत्र 'ऋषभ' तथा उससे 'इन्द्रसेन' उत्पन्न हुआ। लम्बा का पुत्र 'विद्युत' हुआ, उससे 'मेघ' की उत्पत्ति हुई। ककुव का पुत्र 'सङ्कट' हुआ, उससे 'विकट' तथा 'किकीट' हुए; उनके द्वारा झिले के देवता उत्पन्न हुए। जामी का पुत्र 'स्वर्ग' हुआ, उससे 'नन्दप' का जन्म हुआ। 'विश्वा' का पुत्र 'विश्वदेवा' हुआ। साध्या के पुत्र 'साध्यगण' हुए, उससे 'अर्घ' तथा 'सिद्ध' की उत्पत्ति हुई। मृत्युवती के पुत्र 'इन्द्र' तथा 'उपेन्द्र' हुए। वसू के गर्भ से आठ वसु देवताओं की उत्पत्ति हुई। मुहूर्ता द्वारा मुहूर्तों के देवता हुए। संकल्पा का पुत्र 'संकल्प' कहलाया, उसका पुत्र 'काम' हुआ। भूत की स्त्री 'स्वरूपा' द्वारा 'रुद्रों' की उत्पत्ति हुई। रुद्रों में ग्यारह रुद्र प्रमुख हैं—रेवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप तथा महान्। अंगिरा की सुधा नामक स्त्री से पितरों की उत्पत्ति हुई। कृश्वाश्व प्रजापति की अरुचि नामक स्त्री से 'धूम्रकेश' का जन्म हुआ। चन्द्रमा की सत्ताईस स्त्रियों के नाम—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती थे। इन सत्ताइसों की नक्षत्रों में गणना हुई। दक्ष प्रजापति के शाप से चन्द्रमा को क्षयी रोग हो गया था। अतः उनसे किसी सन्तान की उत्पत्ति नहीं हुई।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा—"हे महाराज! दक्ष प्रजापति ने अपने जामाता (दामाद) चन्द्रमा को शाप देकर अपनी पुत्रियों के वंश की हानि किसलिए की? आप मुझे इसका कारण बताने की कृपा करें।" शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! एक बार कृत्तिका ने अपने पिता दक्ष से जाकर यह कहा कि चन्द्रमा मुझसे स्नेह नहीं करते हैं, वे मेरी बहिन रोहिणी पर विशेष प्रीति रखते हैं। यह सुनकर दक्ष ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

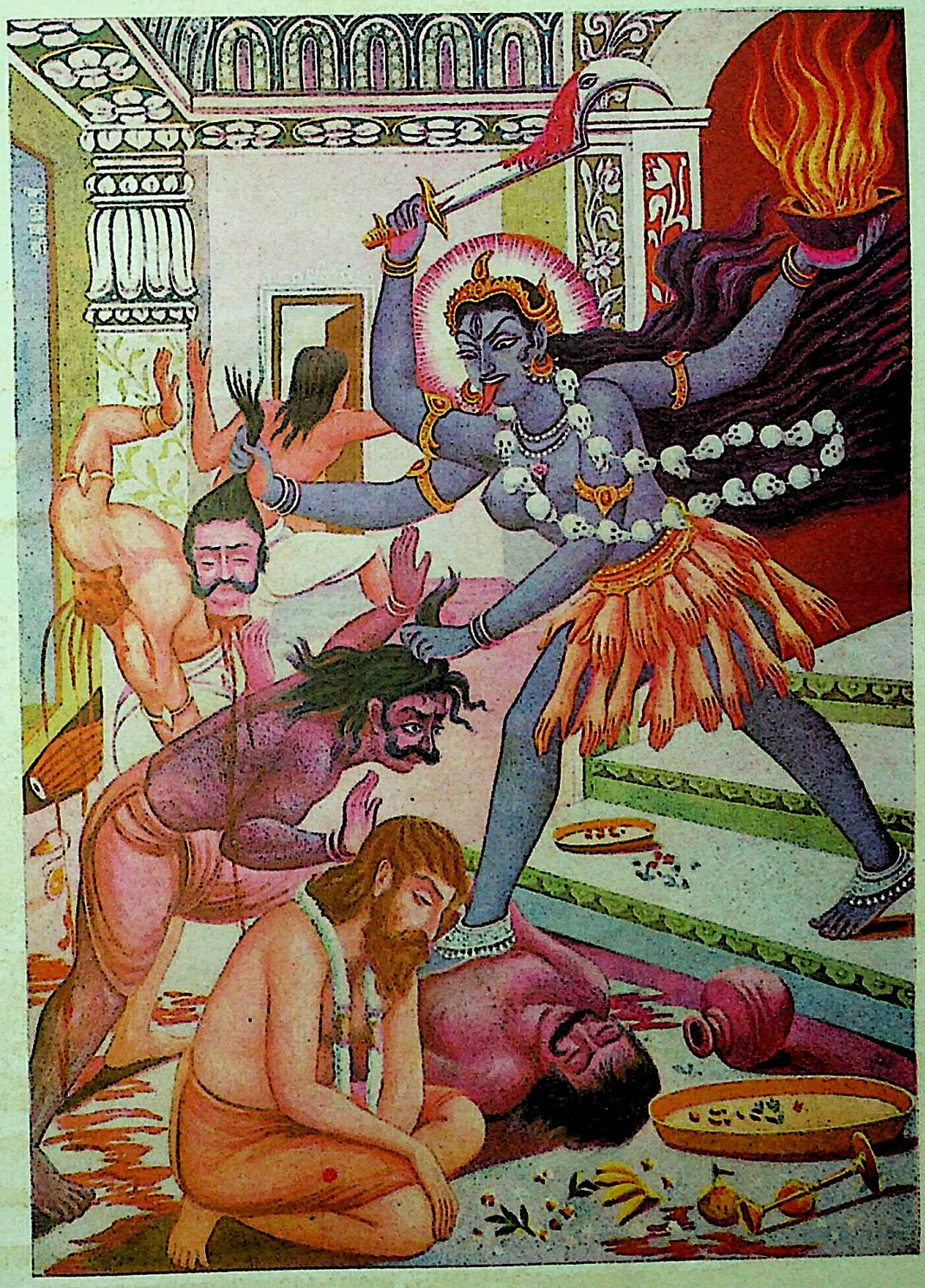

श्री महाकाली द्वारा जड़ भरत की रक्षा

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्रमा को क्षयी रोग हो जाने का शाप दे दिया। उस शाप के कारण चन्द्रमा को दस सहस्र वर्षों तक समुद्र में रहना पड़ा। तत्पश्चात् चद्रमा ने जब दक्ष की बहुत प्रकार से स्तुति की तब दक्ष ने प्रसन्न होकर यह आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा यह रोग छूट जायेगा तथा इसके बदले तुम्हारी कला पन्द्रह दिन बढ़ेगी तथा पन्द्रह दिन घटती रहेगी। इसी कारण चन्द्रमा की कला घटती-बढ़ती रहती है। हे परीक्षित! अब दक्ष की अन्य कन्याओं का हाल सुनो। कश्यप की स्त्री विनता से 'गरुड़' तथा अरुण की उत्पत्ति हुई। कद्रू से सर्पादिक उत्पन्न हुए। पतगी से पक्षी आदि हुए। यामिनी से टिड्डी आदि का जन्म हुआ। नेमी से जलचर उत्पन्न हुए। सरमा से पाँच नखवाले कुत्ते आदि जीव पैदा हुए। ताम्रा से गृद्ध तथा बाजि आदि हुए। क्रोधबसा से बिच्छू आदि का जन्म हुआ। मनी से अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इला से वृक्षादि की उत्पत्ति हुई। सुरसा से राक्षस आदि हुए। अरिष्टा से गन्धर्व आदि हुए। काष्ठा से घोड़े आदि खुरवाले पशुओं का जन्म हुआ। दनु से दानव हुए। दिति से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष आदि दैत्यों की उत्पत्ति हुई। अदिति से सूर्य तथा त्वष्टा आदि देवता उत्पन्न हुए। इन सत्रह स्त्रियों के अतिरिक्त कश्यप की 'पुलोमा' तथा 'कालिका' नामक दो स्त्रियाँ और थीं, अतः पुलोमा आदि राक्षस एवं कालिका द्वारा कृष्णवर्ण दैत्यों ने जन्म लिया। विप्रचित्ती नामक दानव की सिंहिका नामक स्त्री से 'राहु' नामक दैत्य की उत्पत्ति हुई। श्री नारायणजी ने राहु के मस्तक को अपने सुदर्शन चक्र से काट डाला था। सूर्य की 'सवर्णा' नामक स्त्री से, जो विश्वकर्मा की पुत्री थी, 'श्राद्धदेव' तथा 'धर्मराज' नामक दो पुत्र एवं 'यमुना' नामक एक कन्या की उत्पत्ति थी। वह सवर्णा जब अपनी माया-रूपिणी छाया को छोड़कर चली गई तथा स्वयं घोड़ी का स्वरूप धारण कर लिया तब 'छाया' के गर्भ से 'शनैश्चर' तथा 'सावर्णिमनु' नामक सूर्य के दो पुत्र और उत्पन्न हुए। तदनन्तर सूर्य ने घोड़ीरूपा सवर्णा से जब भोग किया तब उसके गर्भ से अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। त्वष्टा देवता का विवाह 'जपा' नामक कन्या से हुआ था। अतः उसके गर्भ से एक कन्या तथा 'विश्वरूप' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। एक बार बृहस्पतिजी के रूठ जाने पर इन्द्रादि देवताओं ने इसी 'विश्वरूप' को अपना पुरोहित बनाया था।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनिराज ! सवर्णा अपनी छाया को छोड़कर किस प्रकार चली गई थी, वह वृत्तान्त आप मुझे बताने की कृपा करें ?" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! सवर्णा अपने पति सूर्य का तेज नहीं सह पाती थी, अतः उसने मन्त्र के प्रताप से अपने समान एक स्त्री को बनाया तथा उससे यह कहा कि मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ, तब तक तू मेरे बदले यहाँ बनी रह, परन्तु यह भेद मेरे पति को मत बताना। यह सुनकर छाया नामक उस स्त्री ने उत्तर दिया—"जब तक सूर्य देवता मेरे मस्तक के बाल पकड़कर मुझे नहीं मारेंगे तब तक मैं उनसे यह भेद नहीं कहूँगी।" सवर्णा ने यह बात स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् वह छाया को भली भाँति समझा-बुझाकर अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गई। विश्वकर्मा ने जब उसे देखा तो अत्यन्त क्रोध करके यह कहा कि तू अपने पति की आज्ञा के बिना यहाँ चली आई है। अतः मैं तुझे अपने घर नहीं रक्खूँगा। पिता के ऐसे वचन सुनकर सवर्णा निराश हो, कुरुक्षेत्र में चली गई और वहीं घोड़ी का रूप बनाकर रहने लगी। उधर मायारूपी सवर्णा (छाया) के गर्भ से 'शनैश्चर' तथा 'सावर्णि' नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। छाया अपने पुत्रों से अधिक प्रेम रखती थी तथा सवर्णा के धर्मराज एवं श्राद्धदेव नामक पुत्रों को कम चाहती थी। एक दिन छाया ने धर्मराज को लात से मारा। तब सूर्य ने छाया के मस्तक के बाल पकड़कर उसे खूब मारा। उस समय छाया ने सवर्णा के चले जाने का सब वृत्तान्त सूर्य से कह दिया। उस समाचार को पाते ही सूर्य देवता सवर्णा को ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। जिस समय वे कुरुक्षेत्र में पहुँचे और सवर्णा को घोड़ी के रूप में देखा, उस समय उन्होंने घोड़ा बनकर उससे भोग करना चाहा। यह देखकर घोड़ीरूपा सवर्णा ने अपना मुँह फेर लिया। परिणाम यह हुआ कि घोड़ारूपी सूर्य का वीर्य घोड़ीरूपा सवर्णा की गर्दन तथा नाक पर जा गिरा। अतः उसके गर्दन के बाल से 'अश्विनी' तथा नाक से 'कुमार' की उत्पत्ति हुई। वे दोनों मिलकर 'अश्विनी कुमार' कहलाये। हे राजन् ! इस प्रकार सवर्णा अपनी छाया को छोड़ गई थी।" इस कथा को सुनकर राजा परीक्षित को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सातवाँ अध्याय

बृहस्पति का इन्द्रादि देवताओं से रुष्ट होना

इतनी कथा सुनने के उपरान्त परीक्षित ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्र ने अपने पुरोहित बृहस्पति को रुष्ट करके विश्वरूप को पुरोहित क्यों बनाया था, यह मुझे विस्तारपूर्वक समझाने की कृपा कीजिए।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! एक दिन देवताओं के राजा इन्द्र अत्यन्त अहङ्कार में भर कर अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे। उनकी सभा में बहुत से देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा किन्नर आदि उपस्थित थे। उसी समय बृहस्पतिजी वहाँ आये। इन्द्र अपने पुरोहित बृहस्पति का सदैव सम्मान करते थे और उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाते थे; परन्तु उस दिन उन्होंने अभिमान में भर कर बृहस्पति का कोई आदर नहीं किया। इन्द्र का ऐसा व्यवहार देखकर बृहस्पति रुष्ट होकर अपने घर लौट गये। उनके चले जाने पर इन्द्र को अपनी भूल ज्ञात हुई तथा 'हृदय में' बहुत पश्चात्ताप प्रकट करते हुए यह कहा कि देखो, आज मुझसे कैसी भयानक भूल हो गई, जो मैंने राज्य तथा धन के अहङ्कार में अपने गुरु का भी निरादर कर दिया। जिन गुरु के आशीर्वाद से मुझे यह राज्य तथा सुख प्राप्त हुआ है, उनके क्रोध करने से यह सब पलभर में नष्ट हो जायगा। अतः मुझे उनके पास चलकर विनती करके अपना अपराध क्षमा कराना चाहिए इसी में मेरा कल्याण है। यह निश्चय करके इन्द्र उसी समय बृहस्पति के घर जा पहुँचे। उधर बृहस्पति ने जब अपने योगबल से यह जाना कि इन्द्र उनसे मिलने के लिए आ रहे हैं, तब उन्होंने क्रोध के वशीभूत होकर उनसे भेंट करना उचित नहीं समझा तथा वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर इन्द्र जब बृहस्पति के घर पहुँचे तथा उन्हें घर पर उपस्थित नहीं पाया तो बहुत उदास होकर लौट आये।

हे परीक्षित ! जब यह समाचार दैत्यों को मिला, तब उनके राजा 'वृषपर्वा' ने अपने गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा से अपनी सेना-सहित इन्द्रपुरी को जा घेरा। बृहस्पति के रूठ जाने के कारण जब देवताओं को अपनी हार होती हुई मालूम पड़ी, तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। ब्रह्माजी ने कहा—"हे इन्द्र ! तुमने अपने गुरु बृहस्पति का अपमान करके बहुत बड़ा अपराध किया है। अब तुम्हारा इसी में कल्याण है कि तुम त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को, जो बड़ा तपस्वी तथा ज्ञानी है, अपना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरोहित बना लो। तभी तुम्हारा कुछ भला हो सकेगा।" ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर इन्द्र ने त्वष्टा के पास जाकर विनम्रतापूर्वक इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! मैं इस समय आपके पास भिक्षा माँगने के लिए आया हूँ। अतः आप कृपाकर मेरे पुरोहित बन जाइये तथा कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा राज्य बना रहे।" त्वष्टा ने इन्द्र की प्रार्थना सुनकर कहा—"हे इन्द्र! पुरोहित बनने पर तपोबल घट जाता है, अतः हमें यह स्वीकार नहीं है। परन्तु तुम बहुत प्रार्थना कर रहे हो, इसलिए मेरा पुत्र विश्वरूप तुम्हारा पुरोहित बनकर सहायता करेगा। हे राजन्! इसके पश्चात् अपने पिता की आज्ञानुसार विश्वरूप ने इन्द्र का पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया और ऐसा उपाय किया कि श्री नारायणजी की कृपा से इन्द्र ने युद्ध में वृषपर्वा को जीत कर अपने सिंहासन को बचा लिया।"

आठवाँ अध्याय

कवच के माहात्म्य का वर्णन

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—"हे महाराज! विश्वरूप ने ऐसा कौन-सा उपाय किया था, जिससे इन्द्र ने दैत्यों को जीतकर अपने राज्य की रक्षा की?" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! विश्वरूप ने इन्द्र को नारायण कवच सिखा दिया था। उस कवच का मन्त्र पढ़कर शरीर पर फूँक देने तथा उसे लिखकर भुजा पर बाँध देने से किसी भी शस्त्र का घाव नहीं लगता है। जिस प्रकार योद्धा लोग अपने शरीर की रक्षा करने के लिए कवच धारण करते हैं, उसी प्रकार नारायण कवच को भी समझना चाहिए। उस कवच के मंत्र को पढ़कर अपने शरीर पर फूँकने के पश्चात् ही इन्द्र ने युद्ध किया था तथा उसी के प्रताप से दैत्यों को पराजित किया था।"

यह सुनकर परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! जिस कवच का ऐसा माहात्म्य तथा प्रताप है उसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जिस समय मनुष्य को किसी प्रकार का भय उत्पन्न हो, उस समय उसे अपने हाथ-पाँव धोकर आचमन करने के पश्चात् उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठना चाहिए तथा अष्टाक्षर मन्त्र द्वारा अंग-न्यास एवं करन्यास करने के उपरान्त द्वादशाक्षर मन्त्र को जपते हुए इस प्रकार कहना चाहिए—"हे प्रभो! जल में आपका मत्स्यावतार मेरा रक्षक हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाताल में वामन अवतार रक्षा करे, मार्ग में यज्ञ भगवान् रक्षा करें, विदेश में तथा पर्वत पर रामावतार रक्षक हो, योग मार्ग में दत्तात्रेय रक्षा करें, देवता के अपराध से सनत्कुमार रक्षा करें, पूजा के विघ्न में नारदजी रक्षक हों, कुपथ्य में धन्वन्तरी वैद्य रक्षा करें, अज्ञान के समय वेदव्यास रक्षा करें तथा अधर्म से कल्कि भगवान् रक्षा करें। श्री परब्रह्म प्रभु के गोविन्द, नारायण, बलभद्र, मधुसूदन, हृषीकेश, पद्मनाभ, गोपीनाथ, दामोदर, ईश्वर तथा परमेश्वर आदि नाम मेरे समस्त अङ्गों तथा इन्द्रियों की आठों प्रहर रक्षा करें। श्री नारायणजी के शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा गरुड़—अनेक भयों से मेरी रक्षा करें।" विश्वरूप ने यही कवच इन्द्र को बताते हुए कहा था—"हे इन्द्र! इस नारायण कवच को धारण करनेवाले मनुष्य का सम्पूर्ण भय नष्ट हो जाता है। इस कवच का पाठ करने के कारण ही गरुड़जी भगवान् त्रिलोकीनाथ को अपने ऊपर बैठाते हैं तथा इसी कवच के कारण उन्हें कोई नहीं जीत सकता। इस वचन का अभ्यास करनेवाला एक 'कौशिक' नामक ब्राह्मण मरुदेश में मृत्यु को प्राप्त हो गया था उसकी हड्डियाँ उसी स्थान पर पड़ी थीं। एक दिन चित्ररथ नामक गन्धर्व अपने विमान पर बैठकर उड़ता हुआ उस ओर जा पहुँचा। जैसे ही उसके विमान की छाया कौशिक ब्राह्मण की हड्डियों पर पड़ी वैसे ही उसका विमान उलटकर गिर पड़ा। उस समय वालखिल्य ऋषि के उपदेश से जब उस गन्धर्व ने उन हड्डियों को सरस्वती नदी में प्रवाहित कर दिया तब उसका विमान फिर उड़ने लगा। अतः हे राजन्! हमने तुम्हें नारायण कवच का यह माहात्म्य सुनाया है। जो प्राणी इस कवच का पाठ करता है, उसके सामने युद्ध में कोई भी नहीं ठहर सकता है।"

नवाँ अध्याय

इन्द्र का अपने पुरोहित विश्वरूप का वध करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! विश्वरूप के तीन मुख थे। वे एक मुख से यज्ञ में सोमवल्ली लता का रस पीते थे, दूसरे से मदिरा पीते थे तथा तीसरे से अन्न आदि का भोजन करते थे। अस्तु, कुछ दिनों पश्चात् इन्द्र ने विश्वरूप से कहा—"हे महात्मन्! मैं आपकी कृपा से यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप यज्ञ करावें।" विश्वरूप द्वारा स्वीकृति दिए जाने पर इन्द्र ने यज्ञ करना आरम्भ किया। उसी समय किसी दैत्य ने विश्वरूप के पास जाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कहा कि तुम्हारी माता भी दैत्य-कन्या है। अतः तुम हम लोगों के कल्याण के निमित्त यदि यज्ञ में एक आहुति दैत्यों के नाम की भी दो, तो अत्यन्त श्रेष्ठ होगा। विश्वरूप ने उस दैत्य की बात मानकर यज्ञ कराते समय धीरे-धीरे दैत्यों का नाम लेते हुए उनकी आहुतियाँ भी देनी प्रारम्भ कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि देवताओं द्वारा यज्ञ किए जाने पर भी दैत्यों का तेज नहीं घटा।"

हे राजन्! जब इन्द्र को इस घटना का पता चला तब उसने क्रुद्ध होकर विश्वरूप के तीनों मस्तक काट डाले। उस समय विश्वरूप के मद्यपान करनेवाले मुख से भ्रमर (भँवरा), सोमवल्ली लता का रस पीनेवाले मुख से कबूतर तथा अन्न भक्षण करनेवाले मुख से तीतर नामक जीवों की संसार में उत्पत्ति हुई। विश्वरूप का वध करने के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या का अपराध लगा, जिसके कारण उनका स्वरूप बदल गया। देवताओं द्वारा एक वर्ष तक पुरश्चरण किए जाने के बाद भी जब इन्द्र का वह पाप नहीं छूटा तब देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने उस ब्रह्महत्या के पाप का चार भाग कर दिया। उनमें एक भाग पृथ्वी को दिया, जिसके कारण वह कहीं-कहीं ऊसर हो गई। मनुष्य को चाहिए कि ऊसर पृथ्वी पर बैठकर कभी पूजा-पाठ आदि न करे। उस समय ब्रह्माजी ने पृथ्वी को यह वरदान भी दिया कि उसके गड्ढे अपने-आप भर जावेंगे। ब्रह्महत्या का दूसरा भाग वृक्षों को दिया गया, जिसके कारण कोई-कोई वृक्ष गोंद अथवा लाही लग जाने से सूख जाते हैं। गुग्गुल के अतिरिक्त प्रत्येक गोंद को अपवित्र समझना चाहिए। ब्रह्माजी ने वृक्षों को यह वरदान भी दिया कि उनका धड़ काटे जाने पर भी यदि जड़ बनी रहे तो वे पुनः बढ़कर हरे-भरे हो जायँगे। ब्रह्महत्या का तीसरा भाग स्त्रियों को दिया गया, जिसके कारण वे प्रति महीने रजस्वला होती हैं। रजस्वला स्त्री की संज्ञाएँ इस प्रकार समझनी चाहिए—पहिले दिन चाण्डालिनी, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तथा तीसरे दिन रजकी। चौथे दिन उनकी शुद्धि होती है। स्त्रियों को यह वरदान भी दिया कि उनके शरीर में कामदेव का निवास सदैव बना रहेगा। इसी लिए स्त्रियाँ गर्भवती होने पर भी भोग करने की इच्छा करती हैं। ब्रह्महत्या का चौथा भाग जल को दिया गया। जिसके कारण पानी पर फेन तथा बुलबुले उठते हैं। उन्होंने जल को यह वरदान भी दिया कि जिस वस्तु में उसे (पानी को) डाल दिया जायगा, वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक हो जायगी। इस प्रकार उस ब्रह्महत्या के चार स्थानों पर बँट जाने पर इन्द्र शुद्ध हो गया। तब वह पुनः आनन्दपूर्वक अपना राज्य करने लगा।

हे परीक्षित! जब त्वष्टा ने अपने पुत्र विश्वरूप के मारे जाने का हाल सुना तो उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर ऐसा मन्त्र पढ़कर हवन किया, जिससे इन्द्र को मारनेवाले एक पुरुष की उत्पत्ति हो। परन्तु श्री नारायणजी की इच्छा से सरस्वती ने उस मन्त्र को इस प्रकार उलट दिया कि उस पुरुष की मृत्यु इन्द्र द्वारा हो जाय। त्वष्टा का हवन पूर्ण होने पर अग्निकुण्ड से पर्वत के समान विशालकाय, कृष्णवर्ण, गदा तथा खड्गधारी एक महाबली दैत्य की उत्पत्ति हुई। एक बाण जितनी दूर जाता है, उतना शरीर उस दैत्य का प्रतिदिन बढ़ता था। अतः त्वष्टा ने उसका नाम वृत्रासुर रक्खा तथा उसे यह आज्ञा दी कि इन्द्र ने तेरे भाई विश्वरूप का वध किया है, अतः तू इन्द्र को मारकर अपने भाई का बदला ले। त्वष्टा के मुख से यह वचन सुनकर वह वृत्रासुर पलभर में ही इन्द्र के पास जा पहुँचा तथा उन्हें युद्ध करने के लिए ललकारने लगा। उस दैत्य का भयानक स्वरूप देखकर तथा उसकी घोर गर्जना सुनकर-इन्द्र सहित सब देवता अत्यन्त भयभीत हो गये। जिस समय वृत्रासुर ने इन्द्र को अपने मुँह में निगल जाने की अभिलाषा की, उस समय इन्द्र आदि सभी देवताओं ने उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र चलाना आरम्भ कर दिये, परन्तु वह दैत्य उन सभी अस्त्रों को सहज ही में निगल गया। यह दशा देखकर देवराज इन्द्र सब देवताओं को साथ लेकर वहाँ से भाग खड़े हुए तथा श्री नारायणजी की शरण में जाकर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे दीनबन्धो! हम लोग आपकी शरण में आये हैं। आप इस दैत्य के हाथों से हमारे प्राण बचाइये। हम लोग स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। जिस प्रकार श्रावण-भादों मास में कोई मनुष्य कुत्ते की पूँछ पकड़कर गङ्गा को पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार आपके भजन एवं स्मरण के बिना कोई भी प्राणी भवसागर से पार नहीं जा सकता है।"

हे परीक्षित! इन्द्र आदि देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर श्री नारायणजी ने उन्हें अपना भक्त जानकर अपने सोलह पार्षदों-सहित चतुर्भुजी स्वरूप से दर्शन दिया। उस समय भगवान् त्रिलोकीनाथ को देखते ही इन्द्रादि देवताओं ने इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की—"हे त्रिभुवनपति! आप यज्ञरूप हैं, अतः हम आपको नमस्कार करते हैं। वेद तथा शास्त्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपकी श्वास से उत्पन्न होने पर भी आपके आदि तथा अन्त को नहीं जान पाये हैं, इसलिए हम आपको नारायणस्वरूप तथा वासुदेवस्वरूप जानकर दण्डवत् करते हैं। हे प्रभो ! महान् योगियों तथा परमहंसों के हृदय में आपके चरण-कमल आठों प्रहर निवास करते हैं, अतः हम सब भी आपके उन पवित्र चरण कमलों में दण्डवत् करते हैं। हे भगवन् ! सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपके ही बनाये हुए हैं। इस समय आप वृत्रासुर को मारने का कोई उपाय कीजिए, अन्यथा वह सब देवताओं तथा मनुष्यों को मार डालेगा। हे प्रभो ! वृत्रासुर के कारण आपके सभी दास अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं, उन्हें रात्रि को निद्रा भी नहीं आती है। हे नाथ ! अपना समय प्राप्त करके सब लोगों की वृद्धि होती है। यह समय देवताओं की वृद्धि का था परन्तु इसके विपरीत वृत्रासुर आदि दैत्यों की वृद्धि हो रही है। इसलिए आप हम लोगों को दीन तथा दुखी जानकर अपनी कृपा बरसायें।"

हे परीक्षित! देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर श्री नारायणजी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"हे इन्द्र ! तुमने अपने अज्ञान के कारण ब्राह्मण का वध किया, यह सब उसी का फल है। अब हम तुम्हारी रक्षा का उपाय बताते हैं, सुनो। वृत्रासुर के शरीर पर कोई शस्त्र आघात नहीं पहुँचा सकता, अतः तुम लोग परम तपस्वी दधीचि ऋषि से उनकी हड्डी माँग लाओ। उस हड्डी का वज्र बनाकर जब तुम वृत्रासुर को मारोगे तो दधीचि ऋषि के तप के प्रताप से वह वज्र वृत्रासुर के अङ्ग-अङ्ग को काट डालेगा।" इतना कहकर श्री नारायणजी अन्तर्धान हो गये।"

दसवाँ अध्याय

इंद्रादिक देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाकर हड्डी माँगना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! श्री नारायणजी के वचन सुनकर इन्द्र सब देवताओं को साथ लेकर दधीचि ऋषि के पास गये तथा उन्हें दण्डवत् करके कहने लगे—"हे महात्मन् ! हम लोग आपके पास भिक्षा माँगने आये हैं तथा अपने कल्याण के लिए आपके शरीर की हड्डी चाहते हैं।" देवताओं की बात सुनकर ऋषि ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! तुम अपने हृदय में यह विचार करके देखो कि यदि किसी अंग को थोड़ा-सा भी दुःख पहुँचे तो शरीर को कैसा क्लेश होता है। तुम्हें अपने शरीर के समान ही दूसरे का शरीर भी सम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

झना चाहिए। जिस प्रकार तुम लोगों को अपना शरीर प्यारा है तथा उसे स्वस्थ रखने के लिए अनेक उपाय करते हो, उसी प्रकार मुझे भी अपना शरीर प्रिय है। फिर भी तुम लोग मुझे दुःख क्यों देना चाहते हो?" इन्द्र ने कहा—"हे प्रभो! हम आपसे सत्य कहते हैं कि श्री नारायणजी के आज्ञानुसार ही हम लोग आपकी हड्डी माँगने आये हैं। जिस प्रकार वृक्ष अपनी छाया एवं फल-फूलों द्वारा अन्य जीवों को सुख पहुँचाता है तथा किसी के द्वारा डाली काटी जाने पर भी दुःख नहीं मानता, उसी प्रकार वैष्णव तथा ऋषि-मुनि जन भी अपने शरीर को परोपकार के निमित्त समझते हैं। उनका शरीर यदि किसी अन्य प्राणी के काम आवे तो वे उसे देने में कभी नहीं हिचकते।" ऐसी बातें कहकर जब इन्द्र ने बहुत प्रार्थना की तब दधीचि ऋषि ने कहा—"हे इन्द्र! यह शरीर श्री नारायणजी का दिया हुआ है। यदि आप मुझसे वैसे ही इस शरीर को माँगते तो मैं कभी स्वीकार नहीं करता। परन्तु जब आपने मुझे ज्ञान दिया है तो मैं भी यह अनुभव करने लगा हूँ कि यह नाशवान् शरीर यदि आप लोगों के काम आवे तो इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात अन्य कोई नहीं है। अच्छा, अब मैं योगाभ्यास करके श्री नारायणजी के ध्यान में निमग्न होता हूँ। तुम लोग एक गाय लाकर उससे मेरा शरीर चटाओ। जब वह मेरे शरीर का सम्पूर्ण मांस चाट ले तथा केवल हड्डी रह जावे तब तुम उस हड्डी को लेकर अपना अभिप्राय सिद्ध कर लेना। परन्तु इसके पूर्व मुझे तीर्थ-स्नान करने की अभिलाषा शेष है, सो यदि आप लोग आज्ञा दें तो मैं तीर्थ-स्नान कर आऊँ। उसके बाद आप मेरे शरीर की हड्डी ले लेना।" दधीचि ऋषि के ऐसे वचन सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया—"हे मुने! हम इसी स्थान पर सब तीर्थों का जल एकत्रित किए देते हैं, आप उसमें स्नान करके अपनी अभिलाषा पूर्ण कर लीजिए।" ऋषि ने ऐसा करने की स्वीकृति दे दी। तब देवताओं ने पलभर में ही सब तीर्थों का जल लाकर वहाँ एकत्रित कर दिया। ऋषि ने उस जल में स्नान करने के उपरान्त योगाभ्यास द्वारा अपने प्राण ब्रह्माण्ड में चढ़ा लिये। फिर वे श्री नारायणजी के ध्यान में निमग्न होकर स्थिर बैठ गये। उस समय इन्द्र ने ऋषि के सम्पूर्ण शरीर में नमक लगवा दिया तथा एक गाय मँगाकर उससे ऋषि के शरीर को चटवाया। जब गाय ने ऋषि का सम्पूर्ण शरीर चाट लिया तथा केवल हड्डियाँ शेष रह गईं तब इन्द्र ने उस हड्डी को लेकर वज्र बनाने के लिए विश्वकर्मा को दे दिया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाने के पश्चात् श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! देखो, भाग्य की कैसी बात है कि दानी दधीचि ऋषि के सम्मुख देवताओं का राजा इन्द्र भी भिखारी बन गया। इसी लिए दानी का नाम सभी लोग लेते हैं, कृपण का स्मरण कोई नहीं करता। अस्तु, विश्वकर्मा ने दधीचि ऋषि की हड्डी द्वारा वज्र नामक अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र का निर्माण कर दिया। तदुपरान्त इन्द्र उस वज्र को लेकर वृत्रासुर से युद्ध करने के लिए जा पहुँचे। इन्द्र को पुनः युद्ध के लिए उपस्थित देखकर वृत्रासुर अपने मन में विचार करने लगा कि क्या कारण है जो मेरे सामने से भाग जानेवाला इन्द्र फिर युद्ध करने के लिए आ पहुँचा है। तदुपरान्त उसने निमोची, द्विमूर्द्धा तथा विप्रचित्ती आदि दैत्यों को साथ लेकर देवताओं से भयङ्कर युद्ध करना आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में जब दैत्यों के गदा, तीर, तलवार, त्रिशूल, भुशुण्डी अदि नवों शस्त्र टूट गये तब वे लोग पर्वत तथा वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर देवताओं पर फेंकने लगे; परन्तु श्री नारायणजी की कृपा से देवताओं ने सभी दैत्यों को मार गिराया। जिस समय वृत्रासुर के साथी युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे तथा देवताओं ने उनका पीछा किया, उस समय वृत्रासुर ने सभी दैत्यों को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे दैत्यो! तुम लोग युद्ध-क्षेत्र से मत भागो। एक न एक दिन सभी लोगों को मरना होता है, आज तक मृत्यु के हाथ से कोई नहीं बचा। जब ऐसी बात है तो तुम लोगों को भी मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए। दो प्रकार की मृत्यु श्रेष्ठ होती है—पहली योगाभ्यास द्वारा शरीर त्यागने की और दूसरी युद्ध-क्षेत्र में लड़ते हुए वीर गति प्राप्त करने की। अतः तुम लोग भी युद्ध-क्षेत्र में जमकर पुनः युद्ध करो। प्राण बचाकर भागना तो किसी भी प्रकार उचित नहीं है।"

ग्यारहवाँ अध्याय

इन्द्र तथा वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार वृत्रासुर के समझाने पर भी जब बहुत से दैत्य युद्ध-क्षेत्र को छोड़कर भाग गये, तब वृत्रासुर ने अत्यन्त क्रोध में भर कर इन्द्र को ललकारते हुए कहा—"हे इन्द्र! भागते हुए को मारने में कोई पौरुष नहीं है। पहिले मैंने भी सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर उन्हें युद्ध-क्षेत्र से भगा दिया था, अब इस समय यदि मेरे साथी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भागे जाते हैं, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। तुम यहीं खड़े रहो। मैं अकेला ही तुम सबको मार डालूँगा।" वृत्रासुर की इस ललकार को सुनकर सभी देवता भयभीत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय वृत्रासुर ने अपने पैरों से उन्हें इस प्रकार रौंद डाला, जिस प्रकार हाथी अपने पाँवों द्वारा कमल-वन को रौंद देता है। देवताओं की यह दुर्दशा देखकर इन्द्र ने वृत्रासुर के ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया, तब वृत्रासुर ने उस गदा को छीनकर इन्द्र के ऐरावत हाथी के मस्तक पर एक ऐसा प्रहार किया, जिससे वह साठ पग पीछे हट गया। उस समय इन्द्र ने अमृत का लेप करके ऐरावत के मस्तक का घाव ठीक कर दिया। तदनन्तर इन्द्र अपने को सावधान करके वृत्रासुर के समीप आ पहुँचे। उस समय वृत्रासुर ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे इन्द्र! आज का दिन अत्यन्त श्रेष्ठ है जो तू अपने भाई, गुरु तथा ब्राह्मण का हत्यारा मेरे सामने आ उपस्थित हुआ। आज मैं तुझे सब देवताओं के साथ मारकर, उनकी मृत्यु का बदला लूँगा तथा इस प्रकार भगवान् भूतनाथ के नाम का यज्ञ सम्पूर्ण करूँगा। अब तू मेरे सामने से जीवित बचकर नहीं जा सकता है। यदि तुझे अपनी रानी तथा राज्य प्रिय हो तो तू मेरे सामने से भाग जा। आज मैं अपने भाई का बदला लेने के लिए यहाँ आया हूँ। यद्यपि तुझे मारने से मुझे कोई यश नहीं मिलेगा, परन्तु यदि तूने मुझे मार डाला तो मैं परब्रह्म प्रभु के चरणों के समीप जा पहुँचूँगा तथा वैकुण्ठलोक का राज्य प्राप्त करके अत्यन्त सुख पाऊँगा। जिस प्रकार पक्षी का बच्चा बिना पंखों के नहीं उड़ सकता तथा दूध पीनेवाला बालक अथवा बछड़ा अपनी माता के बिना नहीं रह सकता, अथवा जिस प्रकार स्त्री अपने पति के अधीन रहती है, उसी प्रकार मैं भी श्री नारायणजी के चरणों के अधीन हूँ। इन्द्रासन प्राप्त करके राज्य लेने से बढ़कर मुझे मारे जाने में अत्यन्त आनन्द प्रतीत होता है। जो मनुष्य स्वयं को ज्ञानी अथवा शक्तिशाली समझते हैं, उन्हें अज्ञानी समझना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों के स्वामी तो श्री नारायणजी ही हैं।" इस प्रकार की बातें कहकर वृत्रासुर ने श्रीहरि के चरण-कमलों में अपना ध्यान लगाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बारहवाँ अध्याय

वज्र द्वारा वृत्रासुर की मृत्यु

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! इस प्रकार के वचन कह कर वृत्रासुर ने इन्द्र के ऊपर अपने त्रिशूल का प्रहार किया। उस समय इन्द्र ने उसके प्रहार को बचाकर दधीचि ऋषि की हड्डी से निर्मित वज्र को वृत्रासुर की दाहिनी भुजा पर मारा। वज्र के प्रहार के कारण वृत्रासुर की दाहिनी भुजा कटकर गिर पड़ी। तत्पश्चात् उसने अपने परिघ नामक शस्त्र के प्रहार द्वारा इन्द्र के हाथ के वज्र को पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय इन्द्र इतना भयभीत हो गया कि वह पृथ्वी पर पड़े हुए अपने वज्र को उठाने में भी असमर्थ रहा। तब वृत्रासुर ने इन्द्र को ललकारते हुए इस प्रकार कहना आरंभ किया—"हे इन्द्र ! तू इतना भयभीत मत हो। तू मुझसे शूर-वीरों की भाँति युद्ध कर। यदि मैंने तुझे मार डाला तो मैं इन्द्रपुरी के राज्य का स्वामी बनूँगा और यदि कहीं मैं तेरे हाथ से मारा गया तो वैकुण्ठ में पहुँचकर वहाँ का सुख भोगूँगा। इस प्रकार मैं दोनों बातों में प्रसन्न हूँ। मुझे मृत्यु का भय नहीं है। मारना अथवा मरना मेरे और तुम्हारे वश की बात नहीं है। सभी कार्य श्री नारायणजी की इच्छानुसार नट के खेल के समान होता है। इसलिए तू प्रसन्नतापूर्वक इस वज्र को उठा ले तथा मेरे ऊपर इसका प्रहार कर ले ताकि मैं शीघ्रतापूर्वक श्री नारायणजी के चरणों के समीप जा पहुँचूँ।" वृत्रासुर के यह वचन सुनकर इन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे वृत्रासुर ! तेरी बुद्धिमत्ता को धन्य है।" इतना कहकर इन्द्र ने अपने वज्र द्वारा वृत्रासुर की दाहिनी भुजा को भी काट डाला। उस समय वृत्रासुर ने आगे बढ़कर इन्द्र को उसके ऐरावत हाथी-सहित निगल लिया। परन्तु नारायण कवच के प्रताप के कारण इन्द्र की मृत्यु नहीं हुई, वह वृत्रासुर के पेट में जाकर वज्र द्वारा उसकी कोख को चीरकर फिर बाहर निकल आया। इस प्रकार इन्द्र तथा वृत्रासुर में सौ वर्षों तक निरन्तर घोर युद्ध होता रहा। तदुपरान्त इन्द्र ने वज्र द्वारा वृत्रासुर को मार गिराया। उस समय वृत्रासुर के शरीर से एक ज्योति निकलकर वैकुण्ठ लोक को चली गई। इस प्रकार वृत्रासुर की मृत्यु हो जाने पर सम्पूर्ण देवता अत्यन्त आनन्दित हुए, परन्तु इन्द्र को कोई प्रसन्नता नहीं हुई।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र का पलायन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे मुनिराज! वृत्रासुर के समान बलवान् शत्रु को मारकर भी इन्द्र को प्रसन्नता क्यों नहीं हुई?" श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! वृत्रासुर की उत्पत्ति त्वष्टा ब्राह्मण द्वारा हुई थी, अतः जिस समय वृत्रासुर की मृत्यु हुई, उस समय वृद्धारूप ब्रह्महत्या, जिसकी योनि से रक्त बह रहा था तथा जिसके शरीर से सड़ी हुई मछली के समान दुर्गन्ध आ रही थी, लोहे के गहने पहने हुए इन्द्र के समीप आकर उसे निगलने की इच्छा करने लगी। यह देख कर इन्द्र अत्यन्त भयभीत हो, वहाँ से भागने लगा। उस समय वृद्धारूपिणी ब्रह्महत्या ने उसका पीछा किया। जब इन्द्र ने यह देखा कि उसका बचाव नहीं हो सकता है, तब वह पूर्व तथा उत्तर दिशा के कोने में स्थित मानसरोवर नामक तालाब में घुस गया और वहाँ एक कमल की नाल में घुस कर छिप गया। यह देख कर वह ब्रह्महत्या भी भँवरे का रूप बना कर उस कमल के ऊपर गूँजने लगी। इन्द्र उसके भय से बाहर नहीं निकला तथा भूख-प्यास के कारण अत्यन्त दुःख पाने लगा। उस समय लक्ष्मीजी ने इन्द्र का पालन किया।

"हे परीक्षित! इस प्रकार इन्द्र के भाग जाने पर जब इन्द्रासन सूना हो गया, उस समय ऋषियों ने इन्द्रलोक के राज्य पर राजा 'नहुष' को प्रतिष्ठित करने का निश्चय किया। उन्होंने राजा नहुष के पास जाकर कहा–"हम लोग तुम्हें इन्द्रासन पर बैठाना चाहते हैं।" राजा ने उत्तर दिया–"हे ऋषियो! मुझ में देवलोक का राज्य करने की सामर्थ्य नहीं है, अतः आप मुझे क्षमा करें।" ऋषियों ने कहा–"हे राजन्! हमलोग अपने जप-तप का फल तुम्हें दे देंगे। तब तुम इन्द्रलोक का राज्य कर सकोगे।" राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उस समय ऋषियों ने अपने तप का थोड़ा-थोड़ा पुण्य राजा नहुष को देकर उसे इन्द्रासन पर बैठा दिया। इन्द्रासन पर बैठने के पश्चात् राजा नहुष का चित्त इन्द्राणी के सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया तथा इन्द्राणी से यह कहला भेजा कि अब मैं इन्द्र के स्थान पर राजा हूँ; अतः तू मेरे पास आ। हे परीक्षित! इन्द्राणी पतिव्रता थी। वह अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं चाहती थी; अतः जब उसने राजा नहुष का यह सन्देश सुना तब भयभीत होकर बृहस्पतिजी के पास जाकर कहा–"हे महात्मन्! राजा नहुष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य है। वह अब इन्द्रासन पर बैठकर मेरे साथ भोग करना चाहता है, अतः आप किसी उपाय से मेरा पतिव्रत धर्म बचाने की कृपा कीजिए।" इन्द्राणी की बात सुनकर बृहस्पतिजी ने उसे धैर्य बँधाते हुए उत्तर दिया—"हे इन्द्राणी! तू राजा नहुष से कुछ दिन की अवधि माँग ले, तब तक मैं तेरे पति को पुनः इन्द्रासन पर बैठाने का उपाय कर दूँगा।" बृहस्पतिजी के ऐसे वचन सुनकर इन्द्राणी ने राजा नहुष से कुछ दिनों की अवधि माँग ली। इधर बृहस्पति ने इन्द्र का पता लगाने के लिए अग्नि को नियुक्त किया। अग्नि ने पता लगाकर बृहस्पति को यह सूचना दी कि ब्रह्महत्या के भय के कारण इन्द्र मानसरोवर तालाब में एक कमल की नाल में छिपा हुआ है।

हे परीक्षित! जब तक अग्नि नें इन्द्र का पता लगाया तब तक अवधि का समय समाप्त हो गया। अतः राजा नहुष ने अपना सेवक भेजकर इन्द्राणी को फिर अपने पास बुलवाया। उस समय बृहस्पति के आज्ञानुसार इन्द्राणी ने राजा नहुष को यह कहला भेजा कि जो मनुष्य सौ राजसूय यज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञ करता है, वह इन्द्र होता है; परन्तु तुम यज्ञ किए बिना ही देव-लोक के स्वामी बन गये हो। ऐसी अवस्था में यदि तुम ब्राह्मणों के कन्धे पर रक्खे हुए सुखपाल में बैठकर मेरे पास आओ, तब मैं तुम्हारे पास रहना स्वीकार करूँगी। इन्द्राणी का यह सन्देश पाकर राजा नहुष ने कामदेव के वशीभूत हो, धर्म-अधर्म का विचार किये बिना, बहुत से ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनियों को जबर्दस्ती बुलाकर अपने सुखपाल में लगवाया तथा स्वयं उसमें बैठकर इन्द्राणी के स्थान पर चल दिया। हे परीक्षित! ब्राह्मणों ने कभी बोझ नहीं उठाया था; अतः वे सुखपाल उठाकर शीघ्रतापूर्वक नहीं चल पाते थे। उस समय कामदेव के वश में पड़े हुए राजा नहुष ने उन्हें अपने पैरों की ठोकर मारकर जल्दी-जल्दी चलने की आज्ञा दी। जब ऋषियों ने राजा का ऐसा अधर्म देखा, तब उन्होंने क्रोध करके राजा को सर्प हो जाने का शाप दे दिया। ब्राह्मणों के मुख से शाप निकलते ही राजा नहुष सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार श्री नारायणजी की कृपा से पतिव्रता इन्द्राणी के धर्म की रक्षा हो गई। इस घटना के बाद बृहस्पति ने मानसरोवर तालाब के तट पर जाकर इन्द्र को पुकारते हुए कहा—"हे इन्द्र! तुम कमल-नाल से बाहर निकल आओ।" उस समय इन्द्र ने वहीं से बृहस्पति को दण्डवत् करते हुए यह उत्तर दिया—"हे प्रभो! ब्रह्महत्या के भय से मैं बाहर आने में असमर्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूँ।" बृहस्पति बोले—"हे इन्द्र! तुम डरो मत, अश्वमेध यज्ञ करने से अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः मैं अश्वमेध यज्ञ कराकर तुम्हारा पाप छुड़ा दूँगा।" यह सुनकर इन्द्र बाहर निकल आया। तदुपरान्त उसने बृहस्पति की आज्ञानुसार अश्वमेध किया। इस प्रकार ब्रह्महत्या के शाप से छूटकर वह पुनः दिव्यरूप हो गया तथा इन्द्रलोक का राज्य करने लगा।"

चौदहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी का वृत्रासुर के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! साधु तथा वैष्णवजन श्री नारायणजी के भक्त होते हैं, परन्तु जिस वृत्रासुर की उत्पत्ति त्वष्टा के क्रोध के कारण हुई थी, उसे युद्ध-स्थल में मरते समय ज्ञान की प्राप्ति कैसे हुई?" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! वृत्रासुर को अपने अन्त समय में जिस कारण ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, हम तुमसे वह कथा कहते हैं, सुनो। पूर्वजन्म में वृत्रासुर का नाम 'चित्रकेतु' था। उस समय वह सातों द्वीपों का राजा था तथा अपनी प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करता था। राजा चित्रकेतु के एक करोड़ स्त्रियाँ थीं, परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं था, इसलिए वह सदैव दुखी रहता था। एक दिन 'अङ्गिरा' नामक ऋषि अपनी इच्छा से राजा के भवन में आ पहुँचे। राजा ने ऋषि का अत्यन्त आदर-सत्कार करके पूजन किया। जब ऋषि ने राजा को उदास देखा, तो इस प्रकार पूछा—"हे राजन्! तुम इतने प्रतापी तथा धर्मात्मा होकर भी ऐसे उदास क्यों दिखाई देते हो?" यह सुनकर राजा ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो! आपके आशीर्वाद से मुझे सभी सुख प्राप्त हैं, परन्तु मेरे कोई सन्तान नहीं है, इसी लिए मैं निरन्तर दुखी रहता हूँ। जिस प्रकार किसी भूखे-प्यासे मनुष्य के शरीर में चन्दन आदि सुगन्ध लगा दी जाय, परन्तु इससे उसकी भूख नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार सातों द्वीपों का राज्य पा करके भी सन्तान के बिना मुझे सुख नहीं है। हे मुनिनाथ! अब आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि जिस प्रकार आप कृपा करके यहाँ पधारे हैं उसी प्रकार अपने आशीर्वाद से मेरी इस चिन्ता को नष्ट कर देने का उपाय भी करें।" राजा के ऐसे दीन वचन सुनकर ऋषि ने कहा—"हे राजन्! तुम्हारे भाग्य में सन्तान नहीं लिखी है, अतः ईश्वर की इच्छा समझकर तुम्हें सन्तोष धारण करना चाहिए। हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हें भवसागर से पार उतरने का उपाय बतलाते हैं। तुम श्री नारायणजी का भजन एवं स्मरण करो, उससे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।" ऋषि की बात सुनकर राजा ने कहा–"हे प्रभो ! पुत्र के बिना मुझे ज्ञान-ध्यान आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।" राजा की बात सुनकर अङ्गिरा ऋषि ने अपने हृदय में यह समझ लिया कि पुत्र के बिना राजा की चिन्ता दूर न होगी। यह सोचकर ऋषि ने फिर कहा–"हे राजन् ! यदि तुम ऐसा ही हठ कर रहे हो तो तुम्हें एक पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी, परन्तु उसके कारण तुम्हें पहिले तो बहुत हर्ष होगा, बाद में महान् दुःख उठाओगे।" राजा ने उत्तर दिया– "हे प्रभो ! आप मुझे एक बार पुत्र का मुख दिखला दीजिए, फिर जो होगा, वह होता रहेगा।" यह सुनकर अङ्गिरा ऋषि ने पुत्र-प्राप्ति के लिए राजा से यज्ञ करवाया; तदनन्तर यज्ञ की समाप्ति पर जो साकल्य बचा उसे राजा को देते हुए कहा–"हे राजन् ! इस साकल्य को तुम अपनी एक रानी को खिला दो, इससे तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।" यह सुनकर राजा ने वह साकल्य अपनी बड़ी रानी "कृतद्युती" को खिला दिया। श्री नारायणजी की कृपा से उसी समय रानी को गर्भ रह गया तथा उसने दसवें महीने एक पुत्र को जन्म दिया।

हे परीक्षित ! पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर राजा ने छः अरब गौएँ ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दान दीं तथा प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति को मुँहमाँगा धन देकर इस प्रकार प्रसन्न कर दिया, जिस प्रकार श्रावण-भादों में पानी बरसने से प्रजा को सुख प्राप्त होता है। राजा चित्रकेतु को उस बालक से ऐसा स्नेह हुआ कि वह आठों प्रहर अपनी बड़ी रानी के पास ही रहने लगा। जब अन्य रानियों ने यह देखा कि बालक के मोह के कारण राजा अब उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता है, तो सौतियाडाह के कारण उन्होंने आपस में मिलकर यह निश्चय किया कि यदि इस बालक को मार दिया जाय तो राजा हम लोगों से फिर प्रीति करने लगेंगे। ऐसा विचार करके एक दिन अवसर पाकर किसी रानी ने उस बालक को विष दे दिया, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। जिस समय रानी कृतद्युती उस बालक को सोया हुआ जानकर जगाने के लिए गई, उस समय उसे मरा हुआ देखकर अत्यन्त विलाप कर उठी। जब राजा ने यह समाचार सुना तो वह भी शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बारह प्रहर तक ऐसी मूर्च्छा रही कि उसे अपने शरीर की भी कोई सुधि न रही। राजकुमार की मृत्यु तथा राजा के मूर्च्छित होने का समा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चार सुनकर सारे राज्य में हाहाकार मच गया। उस समय सभी छोटे-बड़े मनुष्य विलाप करते हुए राजमन्दिर में जा पहुँचे। राजा, बड़ी रानी, दास-दासी तथा सम्पूर्ण प्रजा को उस बालक की मृत्यु का जो दुःख हुआ वह कहा नहीं जा सकता।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! स्त्रियाँ अपने पति के वंश का भला न चाह कर केवल अपना शारीरिक सुख ही देखती हैं, अतः ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह कभी स्त्री की बात पर विश्वास न करे तथा कभी भी उसके वशीभूत न हो।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

नारद तथा अङ्गिरा आदि ऋषियों का राजमन्दिर में पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! राजा चित्रकेतु के मूर्च्छित होने का समाचार जब सब ओर फैला उस समय नारद तथा अङ्गिरा आदि ऋषि राजा को बोध प्राप्त कराने के लिए उसके भवन में जा पहुँचे।" उन्होंने राजा को उठाकर चैतन्य करते हुए कहा—"हे राजन्! तू इतना विलाप क्यों करता है? वह बालक तुझसे क्या अर्थ रखता था? सभी संसारी जीव अपने पूर्व-जन्मों का बदला लेने के लिए संसार में आकर एकत्रित होते हैं। जब उन्हें अपना बदला मिल जाता है तब वे फिर अलग-अलग हो जाते हैं। अतएव संसार की सब बातों को पूर्वजन्म के कर्मानुसार समझकर किसी की मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए। यह संसार स्वप्न के समान है। जिस प्रकार स्वप्न में अनेक प्रकार की वस्तुएँ दिखाई देती हैं, परन्तु जगने पर कुछ नहीं मिलता, उसी प्रकार इस संसार की सब वस्तुओं को भी समझना चाहिए। जब तक मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक वह अज्ञानरूपी निद्रा में अचेत रहता है। अतः तुम इस सत्य को जानकर अपना शोक त्याग दो।" ऋषियों ने राजा को इस प्रकार उपदेश किया। परन्तु पुत्र-शोक में डूबा होने के कारण राजा ने किसी भी ऋषि को नहीं पहिचाना था, इसलिए वह उनसे पूछने लगा—"आप लोग कौन हैं?" राजा के यह वचन सुनकर अंगिरा ऋषि ने नारद आदि ऋषियों के नाम बताते हुए इस प्रकार कहा—"हे राजन्! मैं अंगिरा ऋषि हूँ। मैंने ही तुम्हें पुत्र होने का उपाय बताया था तथा उसके साथ ही यह भी कहा था कि पुत्र उत्पन्न होने पर तुम्हें हर्ष तथा विषाद—दोनों प्राप्त होंगे। अतएव अब तुम मेरे वचनों का स्मरण कर अपने हृदय में धैर्य धारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

करो तथा यह समझ लो कि हानि-लाभ आदि सभी कर्म श्री नारायणजी की इच्छा से होते हैं, उसमें कोई भी तिलभर घटा-बढ़ा नहीं सकता है। अब तुम्हें यह उचित है कि तुम श्री नारायणजी के चरणों में ध्यान लगाकर इस संसारी माया से विरक्त हो जाओ तथा अपनी मुक्ति का उपाय करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है।" अङ्गिरा ऋषि के समान ही नारद ने भी राजा को बहुत प्रकार से समझाते हुए कहा—"हे राजन्! हम तुम्हें एक मन्त्र बताते हैं, उसका सात दिन तक जप करने से तुम्हें श्री शेष भगवान् के दर्शन प्राप्त होंगे।"

सोलहवाँ अध्याय

नारदजी के उपदेश से राजा चित्रकेतु को ज्ञान की प्राप्ति

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! राजा चित्रकेतु अपनी बड़ी रानी-सहित पुत्र के शोक में ऐसा व्याकुल था कि ऋषियों के समझाने पर भी उसका शोक दूर नहीं हुआ। जब उसने अपनी आँखें खोलकर अङ्गिरा तथा नारद मुनि को पहिचाना तब अपने आँसुओं से उनके चरण धोते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप किसी भी प्रकार से इस बालक को एक बार जीवित कर दें तो मुझे धैर्य प्राप्त हो जायगा।" राजा के ऐसे वचन सुनकर नारदजी ने अपने योगबल द्वारा उस बालक के जीवात्मा को बुलाकर आकाश में खड़ा कर दिया। तत्पश्चात् उसे राजा तथा रानी के सामने लाकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"तुम इस शरीर में पुनः आकर अपने माता-पिता का शोक दूर करो तथा सातों द्वीपों का राज्य करो।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर उस जीवात्मा ने राजा चित्रकेतु को धिक्कारते हुए कहा—"भला, ये मेरे किस जन्म के माता-पिता हैं तथा मैं किस जन्म का इनका पुत्र हूँ? यह सांसारिक व्यवहार तो इसी प्रकार चला आ रहा है, जिस प्रकार मनुष्य अपने हाथ में रुपया अथवा मोहर लेकर उसे अपना समझते हैं, परन्तु वास्तव में वह किसी का नहीं होता। हे मुने! जीवात्मा चौरासी लाख योनियों में भ्रमण अवश्य करता रहता है, परन्तु वह किसी के अधीन नहीं होता; इसलिए मेरा और इनका कोई सम्बध नहीं है। पूर्वजन्म में मैं तथा चित्रकेतु दोनों ही राजा थे। उस समय हम दोनों परस्पर शत्रुता रखते थे। एक बार युद्ध में अपनी सेना नष्ट हो जाने पर मैं भरभण्ड के वन में जाकर छिप गया, उस समय इसने वहाँ आकर मेरा मस्तक काट लिया था। उसी का बदला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेने के लिए मैंने इस जन्म में इसका पुत्र बनकर इसे दुःख पहुँचाया है। ये सब रानियाँ पूर्वजन्म में एक करोड़ चीटियाँ थीं। ये सब एक बिल में रहती थीं। उस समय मैंने दातोन करते समय इनके बिल में पानी गिरा दिया, जिससे ये सभी मर गईं। उस जन्म का बदला लेने के लिए ही इन्होंने इस जन्म में मुझे विष देकर मार डाला। इसी प्रकार संसार के सभी जीव एक दूसरे से बदला लेते रहते हैं।"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इतना कहकर वह जीवात्मा चला गया। उस समय राजा तथा रानी का शोक भी नष्ट हो गया। तब उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि इस मनुष्य-शरीर को पाकर हमें सुकर्म करना चाहिए। यह पुत्र तो हमारा शत्रु था इसलिए अब हमें इसकी मृत्यु का कोई शोक नहीं है। उस समय राजा की दूसरी रानी ने जिसने उस बालक को विष दिया था, यह दृश्य देखकर अपने मन में बहुत भय माना। तदुपरान्त उसने नारदजी तथा अंगिरा ऋषि से पूछकर शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त किया। राजा चित्रकेतु उसी समय अपना राज-पाट तथा घर त्यागकर वन को इस प्रकार चला गया जैसे चहले में फँसा हुआ हाथी निकल कर भाग जाता है। राजा ने यमुना-तट पर जाकर नारदजी के बताये हुए मन्त्र का जप करना आरम्भ कर दिया। उसके प्रताप से सातवें दिन श्री शेषजी ने उसे दर्शन दिया। राजा ने शेषजी की विधिपूर्वक पूजा तथा स्तुति की। तब शेषजी ने प्रसन्न होकर राजा चित्रकेतु को उसी शरीर से विद्याधरों का राजा बना दिया तथा यह वरदान भी दिया कि श्री नारायणजी के चरणों में तेरी भक्ति सदैव स्थिर रहेगी। तदनन्तर राजा को विद्याधरों के लोक में पहुँचने के लिए एक विमान देकर शेषजी वहीं अन्तधान हो गये। उस समय से चित्रकेतु विद्याधरों का राजा होकर, अपनी स्त्रियों-सहित विमान पर बैठकर आनन्द का उपभोग करने लगा।"

सत्रहवाँ अध्याय

पार्वतीजी का राजा चित्रकेतु को शाप देना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! एक दिन राजा चित्रकेतु अपनी स्त्रियों-सहित विमान पर बैठकर सैर करने के लिए निकला था। घूमते-घामते वह कैलाश पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ उस समय श्री शिवजी पार्वतीजी को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी जंघा पर बैठाये हुए भृगु आदि ऋषियों को ज्ञानोपदेश कर रहे थे। जब चित्रकेतु ने शिवजी को देखा तो हँसकर इस प्रकार कहने लगा कि देखो तपस्वी, ब्रह्मज्ञानी तथा जगद्गुरु होने पर भी शिवजी ने ऐसी लज्जा त्याग दी है कि ये विषयी मनुष्य के समान भरी सभा में अपनी स्त्री को जाँघ पर बैठाये हुए हैं। संसारी मनुष्य अपनी स्त्री को लेकर इस प्रकार एकान्त में बैठता है, परन्तु इन्होंने तो अपनी लज्जा को सर्वथा त्याग दिया है। राजा चित्रकेतु के यह वचन सुनकर शिवजी तो हँसकर चुप रह गये, परन्तु पार्वतीजी ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उसे यह शाप दिया कि तू दैत्य-योनि में जन्म लेकर अपनी मूर्खता का दण्ड प्राप्त कर। राजा चित्रकेतु ने उस शाप को शिरोधार्य कर लिया, तदुपरान्त वह विमान से उतरकर पार्वतीजी को दण्डवत् करता हुआ बोला—"हे माता ! मैंने आपके शाप को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया है। श्री नारायणजी की ऐसी ही इच्छा थी। संसारी प्राणी को सुख-दुःख दोनों भोगने पड़ते हैं, इसलिए मैं शाप और वरदान तथा स्वर्ग-नरक को एक जैसा समझता हूँ। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं जो मैं श्री शंकरजी को ज्ञान सिखा सकूँ, परन्तु मैंने यह बात केवल इसी लिए कही थी ताकि संसारी लोग इस हाल को सुनकर स्वयं भी निर्लज्ज न बन बैठें।" इतना कहकर चित्रकेतु वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक चला गया। उस समय शिवजी ने कहा—"हे पार्वती ! तुमने श्री नारायणजी के भक्त का माहात्म्य तथा स्वभाव देखा या नहीं ? इतना कठिन शाप सुनकर ईश्वर-भक्त चित्रकेतु को कोई दुःख नहीं हुआ। इसीलिए मुझे श्री नारायणजी के भक्तों के समान कोई अन्य प्राणी प्रिय नहीं है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! पार्वतीजी के शाप के कारण वही राजा वृत्रासुर नामक दैत्य हुआ। श्री नारायणजी ने अपना भक्त जानकर उसे अन्त समय में ज्ञान दे दिया था। इसलिए अपना शरीर त्यागने के पश्चात् वह वैकुण्ठलोक में जाकर श्री नारायणजी की भक्ति करने लगा। हे राजन्! राजा चित्रकेतु की कथा सुनने तथा कहनेवाले मनुष्य भी भवसागर से पार उतर जाते हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अठारहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी का सविता देवता आदि की कथा का वर्णन करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! अब हम सविता देवता आदि की सन्तान का वृत्तान्त कहते हैं, सुनो। 'सविता' देवता की 'पृष्णी' नामक स्त्री द्वारा 'अग्निहोत्र' आदि तीन पुत्र तथा 'सावित्री' आदि तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। 'भग' देवता की 'सिद्धि' नामक स्त्री से दो पुत्र तथा एक कन्या का जन्म हुआ। 'धाता' नामक देवता के 'उरगा' आदि चार पुत्रियाँ तथा 'पूर्णमास' आदि चार पुत्र हुए। 'अग्नि' देवता की 'कृत्तिका' नामक स्त्री से 'वाल्मीकि' ऋषि आदि दो पुत्र उत्पन्न हुए। 'उर्वशी' नामक अप्सरा को देखकर 'मित्रावरुण' नामक देवता का वीर्य गिर पड़ा था, उसे घड़े में रखने के कारण 'अगस्त्य' तथा 'वशिष्ठ' का जन्म हुआ। 'इन्द्र' की 'पुलोमा' नामक स्त्री के गर्भ से 'जयन्त' आदि तीन पुत्र हुए। 'वामन भगवान्' की 'कीर्ति' नामक स्त्री के गर्भ से 'सुभग' नामक बालक का जन्म हुआ। 'कश्यप' की 'दिति' नामक स्त्री के गर्भ से 'हिरण्यकशिपु' तथा 'हिरण्याक्ष' नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। 'हिरण्यकशिपु' की 'कयाधू' नामक स्त्री से 'सिंहिका' नामक कन्या तथा 'सिंह्लाद', 'प्रह्लाद' एवं 'आह्लाद', नामक तीन पुत्र हुए। 'सिंहिका' नामक कन्या जब 'विप्रचित्ता' नामक दैत्य को ब्याही गई तब उससे 'राहू' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। 'सिंह्लाद' का पुत्र 'पंचजन' हुआ। 'प्रह्लाद' का पुत्र 'वातापी' नामक दानव हुआ, जिसे अगस्त्यजी ने मार डाला। 'आह्लाद' के 'महिषासुर' तथा 'वाष्कल' नामक दो पुत्र हुए। प्रह्लाद का दूसरा पुत्र 'विरोचन' हुआ। 'विरोचन' की 'देवी' नामक स्त्री से 'राजा बलि' का जन्म हुआ। राजा बलि के 'बाणासुर' आदि सौ पुत्र हुए। 'कश्यप' की 'दिति' नामक स्त्री से 'मरुद्गण' नामक उनचास पुत्र उत्पन्न हुए, वे इन्द्र के समान देवता माने गये।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! दिति के पुत्र दैत्यों ने देवता का पद कैसे प्राप्त किया? यह आप मुझे बतलाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब श्री नारायणजी ने 'वाराह' तथा 'नृसिंह' अवतार लेकर हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दिति के दोनों पुत्रों को मार डाला, उस समय दिति ने अत्यन्त उदास होकर अपने मन में विचार किया कि मेरे दोनों पुत्रों को इन्द्र ने मरवा डाला है, अतः अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मेरे गर्भ से इन्द्र को मारने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले पुत्र की उत्पत्ति हो। ऐसा निश्चय करके दिति ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने पति 'कश्यपजी' की सेवा करनी आरम्भ कर दी। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन कश्यपजी ने दिति से कहा—'हे दिति! मैं तेरे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, तेरी जो इच्छा हो मुझसे वह वरदान माँग ले।" यह सुनकर दिति ने हाथ जोड़कर कहा—"हे स्वामी! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मेरे गर्भ से इन्द्र को मारकर स्वयं अमर रहनेवाले पुत्र का जन्म हो।" दिति के वचन सुनकर कश्यप ने उदास होकर अपने मन में यह विचार किया कि मैं दिति को वचन दे चुका हूँ, अब क्या करूँ? इन्द्र श्री नारायणजी का भक्त है, अतः उसकी मृत्यु नहीं होनी चाहिए तथा मेरा वचन भी मिथ्या नहीं होना चाहिए। ऐसा सोचकर कश्यपजी ने दिति से कहा—"हे दिति! तू मार्गशीर्ष (अगहन) मास में व्रत रख, उसके प्रताप से तुझे वाञ्छित पुत्र की प्राप्ति होगी।" यह सुनकर दिति ने कहा—"हे स्वामी! आप मुझे उस व्रत की विधि बतला दीजिए, मैं उसका पालन करूँगी।" कश्यपजी ने उत्तर दिया—"मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष से उस व्रत को आरम्भ करके प्रतिदिन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए। उस व्रत में दिन में सोना, नग्न होकर स्नान करना, नीच जाति से वार्तालाप करना, सिर के बाल खुले रखना तथा मिथ्या बोलना वर्जित है। अपने शरीर को आठों प्रहर शुद्ध रखना चाहिए। एक वर्ष तक प्रतिदिन विधिपूर्वक श्री लक्ष्मीनारायण तथा सावित्री की पूजा करनी चाहिए। हे दिति! यदि तू यह व्रत रक्खेगी तो तेरे गर्भ से ऐसे पुत्र का जन्म होगा, जो इन्द्र को मारकर स्वयं अमर बना रहेगा। परन्तु यदि श्री नारायणजी को यह स्वीकार न होगा तो तेरे व्रत में विघ्न उपस्थित हो जायगा।"

हे परीक्षित! कश्यपजी के ऐसे वचन सुनकर दिति अत्यन्त प्रसन्न होकर उस व्रत का विधिपूर्वक पालन करने लगी। जब इन्द्र को इस वृत्तान्त का पता लगा तो वह अत्यन्त भयभीत हुआ। उसने अपने मन में विचार किया कि यह तो मेरी मृत्यु का संयोग उपस्थित हो रहा है। अब मैं किसी भी प्रकार से नहीं बच सकूँगा। तत्पश्चात् इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर दिति के पास जा पहुँचा तथा दिन-रात उसकी सेवा करने लगा। दिति को उसके भेद का कोई पता नहीं चला। ब्राह्मणरूपी इन्द्र की सेवा से वह अत्यन्त प्रसन्न रहने लगी। ज्यों-ज्यों व्रत की पूर्णता का समय निकट आता जा रहा था,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्यों-त्यों इन्द्र की चिन्ता बढ़ती चली जा रही थी। जब उस व्रत की समाप्ति में केवल पाँच दिन शेष रह गये। उस समय एक दिन श्री नारायणजी की इच्छा से दिति अपने सिर के बाल खुले छोड़कर जूठे मुँह सो गई। ये दोनों बातें व्रत को नष्ट करनेवाली तथा अशुद्ध थीं, इसलिए इन्द्र अवसर पाकर, अपना रूप अत्यन्त छोटा बना, वज्र लिए हुए दिति के पेट में घुस गया तथा उसके गर्भ में जो बालक था, उसके सात टुकड़े कर डाले। वे सातों टुकड़े अलग-अलग होकर रोने लगे। तब इन्द्र ने उन सातों में से भी एक-एक टुकड़े के सात-सात टुकड़े कर दिये। लेकिन श्री नारायणजी की इच्छा से उनमें से किसी की भी मृत्यु नहीं हुई। उस समय वे उनचास टुकड़े बालकों का स्वरूप धारणकर इन्द्र से इस प्रकार रोते हुए बोले—"हे इन्द्र! तुम हमें मारो मत। हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे।" उन बालकों के मुख से ऐसे शब्द सुनकर इन्द्र को दया आ गई। तब इन्द्र ने उनसे कहा—"हे भाई! रोओ मत, तुम लोग 'मरुत' नाम धारण करके मेरे साथ रहोगे।" इसके बाद इन्द्र उन उनचासों बालकों-सहित दिति के गर्भ से बाहर निकल आया तथा अपना वास्तविक स्वरूप धारण करके दिति के सामने खड़ा हो गया। निद्रा भङ्ग होने पर जब दिति ने इन्द्र को उनचास बालकों-सहित खड़ा हुआ देखा, तो उस समय इस प्रकार पूछा—"हे इन्द्र! मैंने एक पुत्र की प्राप्ति के लिए यह व्रत किया था, फिर ये उनचास बालक किस प्रकार उत्पन्न हुए?" दिति की बात सुनकर इन्द्र ने भय से काँपते हुए उत्तर दिया—"हे माता! जब मैंने तुम्हें जूठे मुँह तथा मस्तक के बाल खुले रखकर सोते हुए देखा, उस समय तुम्हारे व्रत को अशुद्ध जानकर मैं तुम्हारे पेट में घुस गया। वहाँ मैंने तुम्हारे गर्भस्थ बालक पर अपने वज्र का प्रहार किया। उस प्रहार के कारण वह एक बालक उनचास भागों में बँट गया। श्री नारायणजी की कृपा से वे सभी भाग एक-एक बालक के स्वरूप होकर जीवित बने रहे। अब मैं इन सबको साथ लेकर तुम्हारे गर्भ से निकला हूँ, इसलिए ये सब मेरे भाई हैं और अब मेरे साथ ही इन्द्रपुरी में रहेंगे।" इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर दिति ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे इन्द्र! तूने ब्राह्मण का स्वरूप धरकर मेरी बहुत सेवा की है, इसलिए अब मुझे तेरी मृत्यु की इच्छा नहीं है। ये सब बालक तेरे भाई होकर तेरे साथ रहेंगे तथा समय पर तेरी सहायता करेंगे।" यह सुनकर इन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न होकर दिति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Sri Jagannath Gyaan Kosha

को साष्टांग दण्डवत् किया। तत्पश्चात् वह उन उनचासों बालकों सहित इन्द्रलोक में जाकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा। हे परीक्षित! इस प्रकार दिति के पुत्र देवता हो गये थे।" श्री शुकदेवजी के मुख से यह कथा सुनकर राजा परीक्षित को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।"

उन्नीसवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी का पुंसवन नामक व्रत की विधि का वर्णन करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! जिस व्रत का ऐसा प्रताप है उसकी विधि आप मुझे बताने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जो स्त्री इस 'पुंसवन' नामक व्रत को करना चाहे, उसे अपने पति से आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष मास की अमावस्या को स्नान करके सर्वप्रथम मरुत् देवता की कथा सुननी चाहिए। तदुपरान्त शूकर द्वारा खोदी हुई मिट्टी को शरीर में मलकर स्नान करना चाहिए। दूसरे दिन प्रतिपदा से व्रत आरम्भ करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। प्रतिदिन शास्त्रानुसार श्री लक्ष्मीनारायणजी का पूजन करके मन्त्र द्वारा उनकी स्तुति करनी चाहिए। तदनन्तर सावित्री की पूजा करके अग्नि में खीर की आहुति देनी चाहिए तथा ब्राह्मण को खीर खिलाकर बची हुई खीर को स्वयं खाना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक प्रतिदिन व्रत तथा पूजन करके कार्तिक शुक्ला पूर्णमासी को विधिपूर्वक उद्यापन करना चाहिए। उस दिन ब्राह्मणों तथा भिखारियों को भोजन करावे तथा उद्यापन करानेवाले आचार्य को शय्या, गौ तथा द्रव्य आदि देकर प्रसन्न करे। इस प्रकार व्रत रखनेवाली स्त्री को देवता के समान पुत्र की प्राप्ति होती है तथा वह स्वयं भी सावित्री के पद को प्राप्त करती है। संसार में उसके सभी मनोरथ पूरे होते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त उसे मुक्ति-पद प्राप्त होता है।" इतनी कथा सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! हमने तुम्हें पुंसवन नामक व्रत तथा मरुद्गणों के जन्म की यह कथा सुनाई है। जो इस कथा को पढ़ता तथा सुनता है, उसे भी पुण्य की प्राप्ति होती है।" पुंसवन व्रत का ऐसा माहात्म्य सुनकर राजा परीक्षित को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

षष्ठ स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

सप्तम स्कन्ध

नृसिंहावतार एवं हिरण्यकशिपु की कथा

वन्दना

इसलिए मैं रहा भटकता कि हर डगर का निशान ले लूँ!
इसीलिए व्याधियाँ जुटाईं कि हर किसी का निदान ले लूँ!!
अपार सीमा समुद्र की है, न पा सका पार कोई अब तक;
मगर ये वह नाव है—न जिसको डिगा सका ज्वार कोइ अब तक;
गिरी हैं बिजली अनेक आकर, पड़े भँवर हैं परन्तु फिर भी—
इसीलिए मैं बढ़ा निरन्तर कि हर लहर का उफान ले लूँ!
असंख्य तारे गिरे धरा पर, परन्तु सूना गगन नहीं है;
असंख्य मानव उठे धरा से, परन्तु खाली भवन नहीं है;
न रुद्ध जब गति हुई सृजन की, विनाश ही क्यों करे समर्पण?
इसीलिए मैं रहा विचरता कि हर प्रलय का गुमान ले लूँ!
न मुक्ति की कामना मुझे है, न शक्ति की याचना मुझे है;
टिका है भगवान भक्ति-बल पर, उसी की आराधना मुझे है;
न हूँगा मैं आत्मसात् उसमें जिसे सदा देखना भला है—
इसीलिए मैं गिरा हूँ निशि-दिन कि हर कृपा का उठान ले लूँ!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

जय-विजय की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी ! श्री नारायणजी के लिए दैत्य तथा देवता दोनों समान हैं, फिर क्या कारण है जो श्री नारायणजी देवताओं का पक्ष लेकर दैत्यों का संहार करते हैं ? यह विचार करके मुझे निर्गुण ब्रह्म के गुणों में सन्देह होता है। अतः आप कृपा करके मेरे इस सन्देह को छुड़ा दीजिए। जिस प्रकार किसी मनुष्य के दो पुत्र हों तो वह अपने दोनों पुत्रों पर समान प्रीति रखता है, उसी प्रकार देवता तथा दैत्य दोनों ही श्री नारायणजी की इच्छा से उत्पन्न होते हैं। अतः वे दोनों एक समान हैं, फिर श्री नारायणजी देवताओं पर कृपा तथा दैत्यों पर अकृपा क्यों रखते हैं ?"

राजा परीक्षित के ऐसे वचन सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! श्री नारायणजी के चरणों में अधिक प्रीति उत्पन्न करनेवाला तुम्हारा यह प्रश्न अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में हमने नारद आदि ऋषियों से जो कथा सुनी है वह हम तुम्हें सुनाते हैं, तुम ध्यान देकर सुनो। निर्गुण स्वरूप परब्रह्म ईश्वर को सबसे पृथक् समझना चाहिए। उनकी माया से सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण ये तीन गुण उत्पन्न हुए हैं। अतः सतोगुण की अधिकता में देवताओं का प्रताप बढ़ता है तथा तमोगुण के समय दैत्यों के प्रताप की वृद्धि होती है। रजोगुण के समय मनुष्य के भाग्य का उदय होता है। अस्तु ! एक समय राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की मुक्ति देखकर राजा युधिष्ठिर ने श्री नारदजी से इस प्रकार पूछा था—"हे नारदजी ! जिस शिशुपाल ने त्रिभुवनपति श्री कृष्णचन्द्रजी के प्रति दुर्वचन कहे, उसकी जिह्वा के सौ टुकड़े हो जाना उचित था, परन्तु इसके विपरीत उसने मुक्ति पाई, यह कैसे आश्चर्य की बात है ?" उस समय नारदजी ने राजा युधिष्ठिर को उत्तर दिया—"हे राजन् ! श्री नारायणजी की दृष्टि में सब बराबर हैं। जो मनुष्य अपने मन को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से विरक्त कर, उनके चरणों में लगाता है, वह उन्हीं का स्वरूप हो जाता है। जिस प्रकार कि भृङ्गी कीड़े को देखकर अन्य कीड़े भी उसी स्वरूप के हो जाते हैं। गोपियों ने श्री नारायणजी को अपना पति जानकर प्रीति की थी; शिशुपाल, रावण आदि राक्षसों ने उन्हें अपना शत्रु समझा तथा तुम युधिष्ठिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि पाण्डवों ने उन्हें ईश्वर जानकर स्मरण किया। इसलिए उनकी कृपा से सभी कृतार्थ हो गये। तब अकेले शिशुपाल की मुक्ति में ही क्या सन्देह है? हे युधिष्ठिर! तुम्हारी मौसी के पुत्र शिशुपाल तथा दन्तवक्र पूर्वजन्म में वैकुण्ठलोक के द्वारपाल जय तथा विजय थे। ब्राह्मण के शाप के कारण उन्होंने वैकुण्ठ लोक से गिरकर दैत्य-योनि में जन्म पाया, परन्तु अपने तीनों जन्मों में श्री नारायणजी के प्रति शत्रुभाव रखने के कारण उन्हीं के हाथ से मर कर मुक्ति के अधिकारी बने हैं।" श्री नारदजी के मुख से यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने कहा—"हे स्वामिन्! वैकुण्ठ-लोकवासियों के शरीर तथा प्राण संसारी मनुष्यों के समान होकर चैतन्यरूप होते हैं। वे लोग पाप नहीं करते। फिर क्या कारण है जो वैकुण्ठवासी जय-विजय ने बिना अपराध किए ही दैत्य का शरीर प्राप्त किया? हिरण्यकशिपु दैत्य के यहाँ प्रह्लाद जैसा परमभक्त क्यों उत्पन्न हुआ—यह कथा भी आप मुझसे कहने की कृपा करें।" नारदजी बोले—"हे युधिष्ठिर! हम तुम्हें वह कथा सुनाते हैं, सुनो। एक समय सनकादिक चारों भाई श्री नारायणजी का दर्शन करने के निमित्त वैकुण्ठलोक में गये। परन्तु श्री नारायणजी के आज्ञानुसार जय-विजय ने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। उल्टे उन्हें पाँच-पाँच वर्ष का बालक जानकर अपमान कर दिया। उस समय सनकादिक ने क्रुद्ध होकर जय-विजय को शाप देते हुए यह कहा कि हम लोग श्री नारायणजी का दर्शन करने आये थे, परन्तु तुम्हारे द्वारा रोक दिये जाने के कारण हमें उनका दर्शन प्राप्त करने में तीन क्षण का विलम्ब हो गया है, इसलिए हम तुम्हें यह शाप देते हैं कि तुम इस वैकुण्ठलोक से गिर कर तीन बार दैत्य-योनि में जन्म ग्रहण करो। तीसरे जन्म में उद्धार पाकर तुम फिर वैकुण्ठलोक में आ जाओगे।" हे युधिष्ठिर! इस प्रकार सनकादिक के शाप के कारण वे दोनों भाई वैकुण्ठ से गिरकर पहिले जन्म में दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के रूप में उत्पन्न हुए।

हे युधिष्ठिर! तरुण होने पर हिरण्याक्ष ने अपने मन में यह विचार किया कि देवता लोग पृथ्वी पर यज्ञ तथा हवन होने के कारण, उसमें अपना भाग पाकर बलवान होते हैं। अतः यदि मैं इस पृथ्वी को उठाकर पाताल में ले जाऊँ तो यज्ञ-हवन न होने पायँगे। उस स्थिति में यज्ञ का भाग न पाने से सब देवता भी धीरे-धीरे दुर्बल होकर मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

ऐसा निश्चय करके वह हिरण्याक्ष पृथ्वी को उठाकर पाताल को ले चला। उस समय ब्रह्माजी द्वारा विनय करने पर श्री नारायणजी ने वाराह अवतार ग्रहण कर, पाताल में जाकर, हिरण्याक्ष को मार डाला तथा पृथ्वी को पुनः पूर्ववत् स्थिर कर दिया। हे राजन्! इसके उपरान्त श्री नारायणजी ने नृसिंह अवतार धारण कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की तथा हिरण्यकशिपु का वध कर दिया। इस प्रकार वे दोनों दैत्य उस जन्म में श्री नारायणजी के हाथों मारे जाकर दूसरे जन्म में विश्रवा मुनि के घर उनकी पत्नी 'केसी' के गर्भ से उत्पन्न हुए। उस जन्म में उनका नाम 'रावण' तथा 'कुम्भकर्ण' हुआ। तब श्री नारायणजी ने रामचन्द्र का अवतार लेकर उनका संहार किया। अब तीसरे जन्म में वे ही दोनों क्षत्रिय के रूप में तुम्हारी मौसी के घर जन्मे थे। अपने पूर्वजन्म के विरोध के कारण इस जन्म में भी शिशुपाल शत्रु-भाव से श्री नारायणजी का भजन करता था। इसलिए भगवान् श्यामसुन्दर ने उसे सुदर्शन चक्र से मारकर मुक्त कर दिया। अब तीसरे जन्म में श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा मारे जाने पर दोनों भाई शिशुपाल तथा दन्तवक्र, शाप-मुक्त होकर फिर वैकुण्ठ लोक में अपने स्थान पर जा पहुँचे हैं।" इतनी कथा सुनकर राजा युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा—"हे नारदजी! प्रह्लाद जैसे परमभक्त तथा गुणी पुत्र से उसके पिता हिरण्यकशिपु ने शत्रुता रखकर उसे दुःख क्यों पहुँचाया तथा प्रह्लाद ने दैत्यवंश में जन्म क्यों लिया, अब आप मुझे इसका कारण भी बतलाने की कृपा करें।"

दूसरा अध्याय

हिरण्यकशिपु की कथा

राजा युधिष्ठिर की बात सुनकर नारदजी ने कहा—"हे धर्मराज! जिस समय श्री नारायणजी के वाराह अवतार द्वारा हिरण्याक्ष का वध हो चुका, उस समय हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने मित्र विप्रचित्ती तथा शतबाहु आदि दैत्यों से इस प्रकार कहा—"हे भाइयो! तुम लोग मेरी बात सुनो। देवताओं ने भगवान् विष्णु को अपनी ओर मिला कर मेरे भाई को मरवा डाला है। भगवान् विष्णु भी बालकों के समान ऐसे अज्ञानी हैं कि जो कोई उनकी स्तुति-प्रशंसा करता है, उसी की वे सहायता करने लगते हैं। इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अभी अपने भाई हिरण्याक्ष को जलाञ्जलि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं दूँगा, बल्कि अपने त्रिशूल द्वारा विष्णु को मारकर उन्हीं के रक्त से अपने भाई को रक्तांजलि के तर्पण से तृप्त करूँगा। मैं इन दुर्बल देवताओं को क्या मारूँ? जब मैं देवताओं के रक्षक विष्णु को मार डालूँगा तो सब देवता अपने आप मर जायँगे। अतः तुम लोग सर्वप्रथम यह कार्य करो कि जिस किसी स्थान पर ब्राह्मणों अथवा ऋषि-मुनियों को यज्ञ करते हुए देखो, वहीं उनके यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डालो। ब्राह्मण तथा गौ जहाँ भी मिलें—उनका संहार कर दो। संसार में किसी को भी जप, तप, यज्ञ अथवा हरि-स्मरण मत करने दो।"

हे धर्मराज! हिरण्यकशिपु की ऐसी आज्ञा सुनकर सब दैत्य गौ-ब्राह्मणों णों तथा ऋषि-मुनियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने लगे। जिस समय हिरण्याक्ष की माता, पत्नी तथा पुत्रों ने उसकी मृत्यु का शोक किया, उस समय हिरण्यकशिपु ने उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा—"तुम लोगों को मेरे भाई की मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह शत्रु के सम्मुख युद्ध करते हुए मारा गया है। जीवात्मा तो अमर है, यह शरीर ही नाशवान् है, अतः ज्ञानी लोग कभी किसी की मृत्यु का शोक नहीं करते। इस सम्बन्ध में मैं तुमसे एक इतिहास कहता हूँ, सुनो। उत्तर देश में 'सुयज्ञ' नामक एक राजा राज्य करता था। मेरे भाई की तरह वह भी जब एक युद्ध में मारा गया, तब उसकी रानियाँ मोह के वशीभूत हो, उसके मृत-शरीर के पास बैठकर इस प्रकार विलाप करती रहीं कि सूर्य के अस्त हो जाने पर भी उसके शव को नहीं जलाया जा सका। उस समय यमराज स्वयं पाँच वर्ष के बालक का स्वरूप बनाकर उस स्थान पर जा पहुँचे तथा राजा के भाइयों, कुटुम्बियों एवं रानियों को समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है, जो तुम लोग ज्ञानी होकर भी इस प्रकार शोक कर रहे हो। तुम लोग संसार की गति को क्यों नहीं देखते? जो जीव जहाँ से आया था, वहीं चला गया। एक न एक दिन तुम्हें भी उस स्थान पर जाना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में तुम्हारा इस प्रकार विलाप करना निरर्थक है। जिसके लिए तुम रो रहे हो, वह शरीर तो अब भी जैसा का तैसा आँखों के सामने पड़ा हुआ है। इसमें जो बोलने, खाने-पीने तथा चलने-फिरनेवाला समर्थ पुरुष था, उसको तो तुमने कभी अपनी आँखों से देखा ही नहीं था, तब उसके चले जाने पर यह शोक कैसा? सब जीवों का जीवन उसके भाग्य के अधीन समझना चाहिए। मुझे देखो, मैं पाँच वर्ष का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालक हूँ, परन्तु वन में अकेला घूमता रहता हूँ। बिना मृत्यु आये कोई प्राणी नहीं मरता है इसलिए मुझे किसी का भय नहीं है। मेरे माता-पिता ने मुझे त्याग दिया है, अतः अब मुझे भी किसीसे प्रीति नहीं रही है। जिस ईश्वर ने गर्भ में मेरा पालन किया था, वही अब भी मेरी रक्षा करेगा। जिस प्रकार वृक्ष लगानेवाला वृक्ष को सींचकर उसकी रक्षा करता है—क्योंकि वृक्ष अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता—उसी प्रकार सच्चिदानन्द प्रभु सब जीवों का पालन-पोषण एवं रक्षा करते हैं। यदि तुम यह कहो कि राजा युद्ध में न जाता तो न मरता; सो इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि जब मृत्यु आ जाती है, तब लोहे के दुर्ग में रखने पर भी मनुष्य जीवित नहीं बच सकता। जिस प्रकार घर बनता है तथा कुछ दिनों पश्चात् गिर पड़ता है उसी प्रकार शरीर का धर्म भी बनता-बिगड़ता रहता है। यह सदैव स्थिर नहीं रहता। जो जीव अविनाशी है वह आकाश के समान अमर है। जिस प्रकार दस बर्तनों में पानी भरकर धूप में रख दो तो सबमें सूर्य की छाया पड़ने के कारण अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, परन्तु जब उन्हें तोड़ डालो तो सूर्य का प्रकाश सूर्य में मिल जाने के कारण फिर दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार इस जीव को भी समझना चाहिए। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि दिखाई नहीं देती है, उसी प्रकार इस शरीर में रहने वाला जीवात्मा भी दिखाई नहीं देता है। जब तक जीवात्मा शरीर में था तब तक राजा जीवित रहा, परन्तु अब तुम चाहे जितना शोक क्यों न करो, चाहे रो-रोकर अपना प्राण भी क्यों न दे दो, फिर भी उस राजा के शरीरवाले जीवात्मा से अब भेंट नहीं हो सकती। अपने कर्मों के फल के अनुसार न जाने वह जीव कहाँ चला गया होगा? यदि तुम लोग उसके शोक में रो-रोकर मर जाओगे तो अकाल-मृत्यु होने के कारण तुम्हें नरक में जाकर कष्ट भोगना पड़ेगा। जिस प्रकार बच्चों के मोह के कारण कुरंग पक्षी की जाल में फँसकर मृत्यु हुई थी, वही गति तुम्हारी भी हो जायगी।" बालकरूपी धर्मराज के मुख से ऐसा ज्ञान सुनकर राजा के कुटुम्बियों तथा रानियों का शोक मिट गया। तब उन्होंने राजा के शव का दाहसंस्कार किया। उस समय बालकरूपी यमराज भी अन्तर्धान हो गये। अतः तुम लोग भी यही समझकर हिरण्याक्ष की मृत्यु का शोक मत करो।" हिरण्यकशिपु के मुख से ऐसे वचन सुनकर हिरण्याक्ष की माता दिति, पत्नी रुधाभानु तथा शकुन आदि पुत्रों का शोक दूर हो गया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा अध्याय

मन्दराचल पर्वत पर हिरण्यकशिपु का तप करना

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपु द्वारा समझाये जाने पर सब लोगों का शोक कम हुआ, उस समय दिति ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! विष्णु ने देवताओं का पक्ष लेकर तेरे भाई को मारा है, अतः तू भी देवताओं को मार कर अपने भाई का बदला ले।" यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने उत्तर दिया—"हे माता ! हिरण्याक्ष को विष्णु ने मारा है अतः मैं विष्णु को मारकर अपने भाई का बदला चुकाऊँगा। मैंने यह उपाय निश्चित किया है कि पहिले मैं तपस्या करके ब्रह्माजी से ऐसा वरदान प्राप्त कर लूँ, जिसमें मेरी मृत्यु कभी न हो। ऐसा वर पाने के बाद मैं विष्णु को मारूँगा।" इतना कहकर हिरण्यकशिपु अपनी माता से बिदा लेकर, मन्दराचल पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगा। उसने सौ वर्ष तक दोनों हाथ ऊपर उठाकर तथा पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर ब्रह्माजी का तप किया। वह तपस्या करते समय अपने अंगों को न हिलाकर सूर्य की ओर टकटकी लगाये देखता रहता था। उसके चारों ओर मिट्टी जमा हो गई, घास उग आई तथा उसमें सर्प-बिच्छू आदि ने अपने बिल बना लिये, फिर भी वह निश्चल खड़ा रहा। तपस्या के प्रताप से उसका तेज ऐसा बढ़ा कि नदी, पर्वत, समुद्र आदि सब जलने लगे। जब उस तेज की ज्वाला देव-लोक में पहुँची, तब देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे पितामह ! हिरण्यकशिपु की तपस्या के कारण हमें अत्यन्त कष्ट हो रहा है, अतः आप उसे वरदान देकर तप करने से रोकिये। अन्यथा वह अपने तेज के प्रताप से आपके द्वारा उत्पन्न किये हुए जीवों को भस्म करके नवीन सृष्टि को उत्पन्न कर देगा।" देवताओं के ऐसे वचन सुनकर पितामह ब्रह्माजी भृगु आदि ऋषियों को अपने साथ लेकर हिरण्यकशिपु के पास जा पहुँचे तथा उससे इस प्रकार कहने लगे—"हे कश्यप-नन्दन ! तूने अत्यन्त कठिन तपस्या करके मुझे प्रसन्न कर दिया है। ऐसा तप किसी दूसरे से नहीं हो सकता, जो बिना अन्न-जल के सौ वर्ष तक जीवित बना रहे। अब तू जो वरदान चाहे वह मुझसे माँग ले।" इतना कहकर ब्रह्माजी ने जैसे ही अपने कमण्डलु से जल छिड़का वैसे ही हिरण्यकशिपु का शरीर जो दीमक आदि लगने के कारण मांस-विहीन तथा केवल हड्डी मात्र रह गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, पहले के समान हृष्ट-पुष्ट होकर स्वर्ण की कान्ति की तरह चमकने लगा। उस समय हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी को दण्डवत् करते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे पितामह ! आप संसार के गुरु हैं। सब जड़-चैतन्यों की उत्पत्ति आपसे ही होती है। आप ही यज्ञों के विधान तथा धर्म की रक्षा करनेवाले निर्गुण स्वरूप हैं। सृष्टि की रचना करने के लिए ही आप इस शरीर को धारण करते हैं। अब यदि आप दया करके मुझसे वरदान माँगने के लिए कहते हैं तो आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि आपके द्वारा उत्पन्न किया हुआ जड़-चैतन्य, देवता, दैत्य अथवा मनुष्य कोई भी जीव मुझे न मार सके। मेरी मृत्यु न दिन में हो और न रात में। मैं न पृथ्वी पर मरूँ और न आकाश में। कोई भी शस्त्र मुझे आघात न पहुँचा सके तथा युद्ध में कोई भी प्राणी मेरा सामना न कर सके। योग तथा तप करने से जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह सिद्धि मुझे प्राप्त हो। मैं देवता, दैत्य तथा मनुष्य आदि सभी जीवों का स्वामी बनूँ तथा मेरी शक्ति कभी भी न घटे।"

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी का हिरण्यकशिपु को वरदान देना

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपु की बात सुनकर ब्रह्माजी ने अपने हृदय में यह विचार किया कि इस अधर्मी दैत्य को ऐसा वरदान कभी नहीं देना चाहिए। परन्तु फिर यह भी सोचा कि यदि मैं इसे वरदान नहीं देता हूँ तो यह तपस्या करना नहीं छोड़ेगा, इसलिए मैं इसे वरदान तो दे ही दूँ, अन्त में श्री नारायणजी की दया से किसी न किसी प्रकार यह मारा ही जायगा। ऐसा निश्चय करके ब्रह्माजी ने कहा—"हे हिरण्यकशिपु ! तूने अत्यन्त कठिन वर माँगा है, परन्तु तेरी तपस्या के कारण मैं तुझे यह वर देता हूँ। अब तू सातों द्वीपों का राज्य करेगा।" यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। तदनन्तर हिरण्यकशिपु भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने घर लौट आया। उसने अपनी माता को वरदान-प्राप्ति का समाचार सुनाते हुए कहा—"हे माता ! अब मैं सब देवताओं को मारकर तीनों लोकों का स्वामी बनूँगा।" हिरण्यकशिपु के मुख से यह वचन सुनकर दिति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु ने अपने बाहु-बल द्वारा देवता, दैत्य, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, किन्नर, ऋषि-मुनि, योगी, यती, तपस्वी, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रजापति, मनु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा सातों द्वीपों के राजा को जीतकर, तीनों लोकों का राज्य अपने अधीन कर लिया।

हे युधिष्ठिर ! एक समय हिरण्यकशिपु को यह इच्छा हुई कि वह किसी शूर-वीर से युद्ध करे। ऐसा विचार करके जब वह किसी योद्धा की तलाश में निकला, उस समय सब देवता उसके भय से भयभीत होकर ब्रह्माजी के पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे पितामह ! देवलोक का राज्य छीन लेने पर भी हिरण्यकशिपु हमारे प्राणों का ग्राहक बना हुआ है। भला बताइये कि अब हम लोग क्या करें ?" यह सुनकर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! इस समय तुम्हारे दिन खराब हैं, अतः तुम लोग पर्वतों की कन्दराओं में छिपकर श्री नारायणजी का स्मरण करते हुए अपने दिन काट लो। जब तुम्हारे अच्छे दिन आवेंगे, तब फिर तुम्हें राज्य प्राप्त होगा।" ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुनकर सब देवता पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे तथा वहाँ श्री नारायणजी का स्मरण करते हुए अपने दिन काटने लगे। परन्तु जब उन्हें वहाँ छिपकर रहने में कष्ट होने लगा तब वे अत्यन्त दुखी हो, क्षीर-समुद्र के तट पर पहुँचकर श्री नारायणजी की स्तुति करने लगे। उस समय श्री नारायणजी ने उन्हें आकाशवाणी द्वारा इस प्रकार सान्त्वना दी—"हे देवताओ ! हिरण्यकशिपु वेद का, धर्म का तथा तुम्हारा विरोध कर चुका है। अब जब वह भक्त प्रह्लाद को कष्ट देने लगेगा, उस समय मैं उसका संहार करूँगा।" ऐसी आकाशवाणी सुनकर सब देवता फिर कन्दराओं में लौट आये तथा श्री नारायणजी का स्मरण करते हुए जीवन-यापन करने लगे।

हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपु इन्द्रासन पर अधिकार करके इन्द्रलोक तथा स्वर्गलोक के सुखों का उपभोग करता था। इन्द्र की अप्सराएँ उसे नृत्य दिखाती थीं तथा गन्धर्व गण गीत सुनाते थे। ऋषि-मुनि तथा तपस्वी सभी उसके अधीन रहते थे। पृथ्वी, समुद्र, पर्वत तथा वृक्षादि अनेक प्रकार के रत्न तथा फल-पुष्प आदि हिरण्यकशिपु को भेंट करते थे। उसके भय तथा प्रताप से वृक्षों में बारहों महीने फल-पुष्प लदे रहते थे। चारों ओर घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। हिरण्यकशिपु अपनी माया द्वारा वरुण, कुबेर आदि दशों दिक्पालों का स्वरूप धारण करके, मद्यपान तथा अप्सराओं के साथ भोग-विलास करने में लीन रहता था। उसके द्वारा ब्राह्मण, ऋषि, मुनि, गो आदि बहुत कष्ट पाते थे। कालान्तर में हिरण्यकशिपु के चार पुत्र उत्पन्न हुए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनमें तीन पुत्र तो दैत्यों के स्वभाव के थे, चौथा पुत्र प्रह्लाद स्वभाव तथा कर्म में देवताओं के समान था। वह आठों प्रहर साधु सन्तों की सेवा तथा हरि-भजन में लीन रहता था। वह सब प्राणियों में श्री नारायणजी का एक-सा चमत्कार जानकर किसी को भी दुःख नहीं पहुँचाता था। वह जितेन्द्रिय तथा सत्यवक्ता था। वह अपने से छोटों को पुत्र के समान तथा बड़ों को पिता एवं ईश्वर के समान समझता था। वह अन्य बालकों की भाँति खेल में मन न लगाकर साधु-महात्माओं की सङ्गति करता था। अतः सभी सन्तजन उसकी प्रशंसा करते थे। तब अपने उस धर्मात्मा पुत्र से हिरण्यकशिपु का विरोध हो गया। इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—"हे नारदजी! पुत्र चाहे कुपुत्र क्यों न हो, फिर भी माता-पिता अपनी सन्तान का बुरा नहीं चाहते हैं। तब ऐसा क्या कारण हुआ जो हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद से वैर रखने लगा?"

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद को विद्याध्ययन के लिए पाठशाला में भेजना

नारदजी बोले—"हे धर्मराज! शुक्राचार्य के पुत्र 'सण्डा' तथा 'मर्क' हिरण्यकशिपु के पुत्रों को पढ़ाया करते थे। जब प्रह्लाद की आयु पाँच वर्ष की हुई, तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को उन्हें सौंपते हुए कहा—"हमने तुम्हारे पिता से विद्या पढ़ी थी, अब तुम प्रह्लाद को हमारा धर्म सिखाओ।" इस प्रकार प्रह्लाद जब अन्य बालकों के साथ उनके पास पढ़ने लगा, तब हिरण्यकशिपु की आज्ञानुसार सण्डा तथा मर्क ने प्रह्लाद से यह कहा—"हे प्रह्लाद! तुम अपने पिता हिरण्यकशिपु के नाम का जप किया करो, वे ही साक्षात् ईश्वर हैं।" परन्तु गुरु द्वारा इस प्रकार समझाने तथा डाँटने पर भी प्रह्लाद ने श्री विष्णु, राम तथा नारायण नाम के अतिरिक्त हिरण्यकशिपु का नाम कभी नहीं लिया। यह देखकर उसके गुरु ने हिरण्यकशिपु के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अपनी गोद में बैठाकर इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! तुमने अपने गुरु के द्वारा जो विद्या आज तक पढ़ी हो, वह हमें सुनाओ।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"हे पिता! मैंने राम नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ा है। मैं आठों प्रहर उन्हीं के नाम का स्मरण करता हूँ। मेरी समझ में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधु तथा महात्माओं की संगति सबसे श्रेष्ठ है। मैं नवधा भक्ति को भली भाँति जानता हूँ। वह नवधा भक्ति इस प्रकार है—श्रवण अर्थात् श्री नारायणजी की कथा को सुनना। कीर्तन अर्थात् श्री नारायणजी के गुणानुवादों को सुनना। स्मरण अर्थात् श्री नारायणजी के नाम को जपना। पाद-सेवक अर्थात् श्री नारायणजी के चरण-कमलों का पूजन करना। अर्चन अर्थात् श्री नारायणजी की मूर्ति को विधिपूर्वक भोग लगाना। वन्दन अर्थात् श्री नारायणजी को बारम्बार नमस्कार करना। दास्य अर्थात् श्री नारायणजी की भक्ति में भजन गाना तथा सेवा करना। सख्य अर्थात् श्री नारायणजी के प्रति मित्रभाव से प्रीति रखना। आत्म-निवेदन अर्थात् अपने तन, मन, धन सर्वस्व को श्री नारायणजी को अर्पण कर, साधु तथा महात्माओं की संगति एवं सेवा करना। हे पिता ! मैंने जो तुम्हें बताया है, यही सब वेद तथा शास्त्रों का सार है। गृहस्थी के झंझट में पड़े रहने से दुःख के अतिरिक्त कभी सुख नहीं मिलता। वन में जाकर हरि-भजन करने को सबसे श्रेष्ठ समझना चाहिए।"

प्रह्लाद की ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त क्रोध करके कहा—"अरे मूर्ख ! क्या तू यह नहीं जानता कि नारायण ने वाराह अवतार लेकर मेरे भाई हिरण्याक्ष को मार डाला था। मेरे शत्रु का नाम लेकर उसकी स्तुति क्यों कर रहा है ? तू अज्ञानी बालक होने पर भी जब मेरी आज्ञा को नहीं मानता तो तरुण होने पर तेरी क्या दशा होगी ? हे पुत्र ! अपना धर्म छोड़कर पराये धर्म को ग्रहण करना तथा बालकों को साधु-सन्तों की संगति करना शुभ नहीं होता है। इसलिए तू अपने गुरु की आज्ञानुसार विद्या पढ़।" हिरण्यकशिपु के मुख से ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"मैं उन नारायणजी को नमस्कार करता हूँ, जिनकी माया के वशीभूत होकर आप अपने-पराये में भेद समझते हैं। ईश्वर की कृपा के बिना किसी को ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। जो शास्त्र पढ़कर भी श्री नारायणजी के चरणों में भक्ति न रक्खे, उसका पढ़ना व्यर्थ है।" प्रह्लाद के मुख से ऐसे ज्ञान भरे वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त क्रोध करके अपने साथी कई दैत्यों को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे बन्धुओ ! दैत्य वंश का नाश करने के लिए विष्णु कुल्हाड़े के समान है, उस कुल्हाड़े में, मेरा यह पुत्र प्रह्लाद बेंट के समान काम करने-वाला उत्पन्न हुआ है। यह मेरी आज्ञा न मान कर, मेरे शत्रु का नाम जपता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

है तथा दिन-रात उसी की प्रशंसा करता है। बड़े लोगों ने ऐसा कहा है कि यदि शरीर के किसी अंग में ऐसा रोग हो जो सम्पूर्ण शरीर को हानि पहुँचावे तो उस अंग को काटकर फेंक देना चाहिए। अतः प्रह्लाद जैसे पुत्र की मृत्यु उचित समझकर, तुम लोग इसे मार डालो।"

हे युधिष्ठिर! हिरण्यकशिपु की आज्ञा को सुनकर वे दैत्य प्रह्लाद को उस स्थान से पकड़कर बाहर ले गये तथा तलवार, तीर, त्रिशूल, गदा आदि से मारने लगे; परन्तु प्रह्लाद अपनी आँखें बन्द किये, श्रीहरि के चरणों में अपना चित्त लगाये हुए शान्त भाव से बैठा रहा। श्री नारायणजी की कृपा से उसके शरीर पर किसी भी शस्त्र का घाव नहीं लगा। यह देखकर उन दैत्यों ने प्रह्लाद को पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर पर ले जाकर नीचे लुढ़का दिया परन्तु इससे भी प्रह्लाद के शरीर में कुछ चोट नहीं आई। तत्पश्चात् उन दैत्यों ने प्रह्लाद के चारों ओर बहुत-सी लकड़ियाँ रखकर उनमें आग लगा दी परन्तु भगवान् श्री श्यामसुन्दरजी की कृपा से सब लकड़ियाँ तो जलकर भस्म हो गईं और प्रह्लाद ज्यों का त्यों श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न निश्चिन्त भाव से बैठा रहा। जब हिरण्यकशिपु को यह बात मालूम हुई तो उसने प्रह्लाद की महिमा देखकर अपने मन में यह विचार किया कि इतने उपाय करने पर भी जब प्रह्लाद की मृत्यु नहीं हुई तो इससे यह सिद्ध होता है कि यदि मैं प्रह्लाद से अधिक शत्रुता करूँ तो इसे बचाने के लिए विष्णु स्वयं आवेंगे। उस समय मैं उन्हें मारकर हिरण्याक्ष की मृत्यु का बदला ले लूँगा।" यह निश्चय करके हिरण्यकशिपु ने सण्डा तथा मर्क को पुनः बुलाकर कहा—"हम प्रह्लाद को बहुत दण्ड दे चुके हैं, अतः आज यह तुम्हारी आज्ञानुसार पढ़ेगा। तुम इसे फिर अपनी पाठशाला में ले जाओ।" हिरण्यकशिपु के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने मन में विचार किया कि अब मैं पाठशाला में पहुँचकर अन्य बालकों को भी ज्ञान सिखाऊँगा। तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु की आज्ञा से गुरु जब प्रह्लाद को पाठशाला में ले आये तो उससे इस प्रकार कहा—"हे प्रह्लाद! तुझे वन में जाकर हरि-भजन करने का उपदेश किसने दिया है अथवा तूने अपने मन से ही यह बात सोच ली है।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया है—"हे गुरु! जो संसारी लोग मायारूपी गृहस्थी के अन्धकारपूर्ण कुएँ में पड़े रहकर श्री नारायणजी से विमुख रहते हैं, उन्हें न तो ज्ञान प्राप्त होता है और न श्री नारायणजी के चरणों में प्रीति ही मिलती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसे प्राणियों को गदहा अथवा कुत्ते के समान पशु समझना चाहिए। जब तक संसारी मनुष्य साधु-महात्माओं के चरणों में अपना मस्तक नहीं रखता; मन, वचन, कर्म से उनकी सेवा नहीं करता तथा श्री नारायणजी के गुणानुवादों को नहीं सुनता, तब तक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। श्री नारायणजी की कृपा के बिना ज्ञान का मिलना अत्यन्त कठिन है। मैंने श्री हरि की कृपा से ज्ञान प्राप्त करने के कारण ही ऐसी बात कही थी।"

इतनी कथा सुनाकर नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! सण्डा तथा मर्क परम ज्ञानी शुक्राचार्य के पुत्र थे। वे स्वयं विद्वान् तथा ज्ञानी थे, परन्तु दैत्यों की सङ्गति करने एवं उनका अन्न खाने के कारण श्री नारायणजी के माहात्म्य को भूल बैठे थे। श्रीहरि की माया ऐसी ही बलवान् होती है। अस्तु, पाठशाला में जब तक गुरु बैठे रहते थे तब तक प्रह्लाद अपने मन में यही विचार किया करता था कि यदि ये कहीं उठकर चले जावें तो मैं पाठशाला के अन्य बालकों को ज्ञानोपदेश करूँ। जिस समय गुरु पाठशाला से बाहर निकल कर गये, उस समय प्रह्लाद ने पाठशाला में पढ़नेवाले अन्य बालकों की ओर देखकर यह विचार किया कि अभी इन लड़कों के शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि नहीं भरे हैं; अतः यदि इस समय इन्हें ज्ञानोपदेश किया जायगा तो ये शीघ्र सुधर जायँगे।" इतनी कथा सुनाकर नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे धर्मराज! यदि कोई यह शङ्का करे कि प्रह्लाद को उन लड़कों को ज्ञान सिखाने की क्या आवश्यकता थी, तो इसका उत्तर यह समझना चाहिए कि अपने हृदय में दया तथा धर्म भरा होने के कारण प्रह्लाद ने परोपकार करना चाहा था। उसकी इच्छा यह थी कि ये लोग भी ज्ञानी होकर मेरी संगति के कारण कृतार्थ हो जायँ। अस्तु, ऐसा निश्चय करके जब प्रह्लाद ने अन्य बालकों को अपने पास बुलाया, तब वे सब प्रह्लाद को राजकुमार समझकर, उसके समीप चले आये।"

छठाँ अध्याय

प्रह्लाद का पाठशाला के बालकों को ज्ञानोपदेश करना

प्रह्लाद ने सभी बालकों को अपने समीप बैठाकर कहा—"हे बन्धुओ! अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है। न तो तुम्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह व्यापा है और न तुम्हारा मन संसारी माया में ही फँसा हुआ है। इसलिए तुम जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काम में अपना मन लगाओगे उसी में सफलता प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे कल्याण के निमित्त मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ कि तुम लोग अभी से श्री नारायणजी के चरणों में अपना चित्त लगाना आरम्भ कर दो तथा इस बात को सत्य समझो कि संसारी माया, स्त्री, पुत्र, धन आदि का मोह करने से प्राणी को कभी मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। वह सदैव आवागमन में फँसा रहता है। जो प्राणी परमेश्वर से विमुख रहता है, उसे नरक अवश्य भोगना पड़ता है। इसलिए तुम लोगों को संसारी माया में न पड़कर श्री नारायणजी का स्मरण एवं भजन करना चाहिए। परब्रह्म प्रभु को पहचानने एवं उनका स्मरण तथा भजन करने के लिए इस शरीर को ही सबसे अधिक उत्तम साधन समझना चाहिए। कुत्ता-बिल्ली आदि पशु-योनियों में केवल अपने पेट भरने तथा भोग करने का ही ज्ञान रहता है। इसलिए मनुष्य-शरीर पाकर श्री नारायणजी को क्षणभर के लिए भी नहीं भूलना चाहिए। हे भाइयो! तुम्हें यह बात भली भाँति जान लेनी चाहिए कि श्री नारायणजी के तप एवं स्मरण के समान अन्य किसी देवता का तप अथवा स्मरण फलदायक नहीं है। अन्य देवता तो अपना स्मरण करनेवाले व्यक्ति को त्याग भी देते हैं, परन्तु श्री नारायणजी भूल हो जाने पर भी अपने भक्तों पर कभी क्रोध नहीं करते। उन्हें सर्वत्र विद्यमान जानकर कहीं ढूँढ़ने के लिए नहीं जाना चाहिए। चाहे जिस समय और चाहे जिस स्थान पर उनका प्रेमपूर्वक स्मरण किया जाय, वे वहीं प्रकट हो जाते हैं। इसलिए तुम लोग भी अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में करके क्रोध तथा तृष्णाओं का परित्याग कर दो। सतोगुणी भाव से सब जीवों पर दया रखते हुए, मन, वचन तथा कर्म से श्री नारायणजी का स्मरण करो, इससे तुम्हें महान् सुख की प्राप्ति होगी। यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास न करके यह कहो कि मैं स्वयं बालक हूँ, फिर तुम्हें ज्ञान किस प्रकार सिखा रहा हूँ, तो इस सम्बन्ध में तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मैं तुम्हें यह ज्ञान नारद मुनि के कहे अनुसार बतला रहा हूँ। कुछ अपनी बुद्धि से नहीं कहता हूँ।"

प्रहलाद के मुख से ऐसे वचन सुनकर अन्य बालकों ने कहा—"हे प्रह्लाद! हम लोग अभी बालक हैं। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर हम श्री नारायणजी का भजन कर लेंगे, अभी हमें ऐसा करने की क्या आवश्यकता है? प्रह्लाद बोले—"हे भाइयो! सुनो, प्रत्येक योनि में इन्द्रियों को सुख मिलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, परन्तु मनुष्य-शरीर के बिना अन्य शरीरों द्वारा नारायणजी का भजन करना कठिन होता है। यदि तुम यह समझते हो कि इस जन्म में तो हम लोग संसारी सुखों का उपभोग कर लें, किसी दूसरे जन्म में श्रीहरि का भजन कर लेंगे; तो तुम्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य का शरीर बारम्बार मिलना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। संसारी सुख तो कुछ दिनों तक रहता है, परन्तु श्रीहरि का भजन करने से महाप्रलय पर्यन्त अनेक प्रकार के सुखों की सदैव प्राप्ति होती है। जिस प्रकार आँधी वृक्षों को ढहा देती है और पत्तों को उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे पितामह, प्रपितामह आदि पुरखाओं को कालरूपी आँधी अपने साथ उड़ाकर ले गई। एक न एक दिन तुम्हें भी उसका शिकार बनना पड़ेगा। इस मायारूपी जाल में जो एक बार फँस जाता है, उसका निकलना अत्यन्त कठिन समझना चाहिए। तुम लोग जब स्त्री-पुत्रादि के मोह में फँस जाओगे तो वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी तुम्हारा चित्त श्री नारायणजी के चरणों में नहीं लगेगा। जिस प्रकार गाय, भैंस आदि पशु वन में घास चरने के लालच से कुएँ, खाई आदि में गिरकर कष्ट पाते हैं, उसी प्रकार मायारूपी अन्ध कूप में गिर जाने पर मनुष्य को अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। जो प्राणी संसारी मोह-माया को त्यागकर श्रीहरि के चरणों में प्रीति करता है, वही इस मायारूपी अन्ध कूप से बाहर निकल पाता है। इसलिए संसारी सुख को काँच तथा हरि-भजन को पारस मणि के समान समझना चाहिए।" प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर बालकों ने पूछा—"हे प्रह्लाद! तुम्हें नारदजी कहाँ मिले थे, वह हमें बताओ?"

सातवाँ अध्याय

बालकों का प्रह्लाद का उपदेश ग्रहण करना

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! उन बालकों की बात सुनकर प्रह्लाद ने इस प्रकार उत्तर दिया—"हे मित्रो! जब हमारे चाचा हिरण्याक्ष को वाराहजी ने मार डाला था तथा मेरे पिता हिरण्यकशिपु तपस्या करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर चले गये थे, उस समय देवताओं के राजा इन्द्र ने उचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवसर पाकर नमुचि आदि दैत्यों को युद्ध में मारकर भगा दिया तथा वह दैत्यों की स्त्रियों को पकड़कर इन्द्रलोक को ले चला। मार्ग में इन्द्र की भेंट नारदजी से हुई।" नारदजी ने उनसे पूछा—"हे इन्द्र! तुम इन स्त्रियों को क्यों लिये जा रहे हो?" उस समय इन्द्र ने यह उत्तर दिया—"हे मुनिश्रेष्ठ! दैत्यों ने हमारा राज्य छीनकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाया है। अतः हम उनसे बदला लेने के लिए इन स्त्रियों को पकड़े लिए जा रहे हैं।" यह सुनकर नारदजी ने कहा—"हे इन्द्र! इन स्त्रियों में हिरण्यकशिपु की स्त्री को तू छोड़ दे, क्योंकि उसके गर्भ में प्रह्लाद है। प्रह्लाद श्री नारायणजी का भक्त होगा तथा वह तुम लोगों की सहायता करेगा।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र ने मेरी माता को नारदजी को सौंप दिया तथा मुझे हरिभक्त जानकर उनकी परिक्रमा करके अपने लोक को चला गया। तदनन्तर नारदजी मेरी माता को लेकर उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मण लोग तपस्या एवं हरि-भजन करते थे। उन ऋषि-मुनियों ने भोजन आदि देकर मेरी माता की रक्षा की। जिस समय मेरी माता अपने पति तथा परिवार-वालों की याद करके रोती थी, उस समय नारदजी उसे ज्ञानोपदेश करके इस प्रकार कहते थे—"हे कयाधू! तू चिन्ता मत कर। संसार में कभी किसी को सुख मिलता है तो कभी दुःख भी प्राप्त होता है। तू अपने हृदय में सन्तोष रख। कुछ दिनों बाद तेरा पति हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत से लौटकर तीनों लोकों का राज्य करेगा। उस समय तू रानी हो जायगी।" उस समय नारदजी द्वारा कहे गए ज्ञान को मैं अपनी माता के पेट में सुनता रहता था। वही ज्ञान मुझे अभी तक याद है। इसलिए तुम लोग मेरे कथन को सत्य मान-कर उसी के अनुसार आचरण करो।" नारदजी ने एक बार मेरी माता को ज्ञानोपदेश करते समय यह भी कहा था कि तुझे (कयाधू को) स्त्री होने के कारण यह ज्ञान स्मरण न रहेगा परन्तु तेरे गर्भ में जो पुत्र है, वह इसे सदैव याद रक्खेगा। हे बन्धुओ! अब मैं तुमसे उस ज्ञान को कहता हूँ जिसे नारदजी ने मेरी माता से कहा था, सुनो।

बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था—ये तीन अवस्थाएँ मनुष्य-शरीर की होती हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में परब्रह्म प्रभु का जो तेज व्याप्त है, उसे जीवात्मा कहा जाता है। वह जीवात्मा सदैव एक रस रहता है। न तो कभी घटता है और न बढ़ता ही है। उसे हर्ष अथवा विषाद नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता। इस ज्ञान को प्राप्त करके जो प्राणी श्री नारायणजी का स्मरण करता है वह सदैव सुखी रहता है। जिस प्रकार न्यारिया मिट्टी को छानकर सोने का चूरा निकाल लेता है तथा मिट्टी से कोई प्रयोजन नहीं रखता, उसी प्रकार इस मनुष्य-शरीर के द्वारा हरि-स्मरण करके स्वर्णरूपी मुक्ति पदार्थ को प्राप्त कर लेना चाहिए तथा शरीर को मिट्टी समझकर उस पर आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। जो लोग धन तथा परिवार आदि का सुख चाहते हैं, उनका आनन्द सदैव स्थिर नहीं रहता है। हरि-भजन का ऐसा प्रताप है कि उससे सुख की निरन्तर वृद्धि होती है। वह सुख महाप्रलय पर्यन्त कभी घटता अथवा नष्ट नहीं होता है। अतः हे बन्धुओ! तुम लोग भी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का दमन करके श्री नारायणजी की भक्ति करो, उसी से तुम्हारा बेड़ा पार होगा। स्त्री, पुत्र, राज्य, सेना, दुर्ग, हाथी-घोड़े आदि कोई काम नहीं आते। इनमें से कोई भी मृत्यु के चंगुल से नहीं बचा सकता है। मृत्यु के समय कोई साथ तक नहीं देता। दुर्ग आदि तो गिर जाने पर भी शीघ्र नष्ट नहीं होते हैं, परन्तु यह शरीर एक क्षण में ही नष्ट हो जाता है। मृत्यु के उपरान्त यह किसी काम का नहीं रहता। मनुष्य आठों प्रहर सुख की कामना करता है, परन्तु श्री नारायणजी की कृपा के बिना उसे कभी सुख नहीं मिलता है। जब शरीर ही साथ नहीं देता, तब भला स्त्री-पुत्रादि कैसे सङ्ग निभा सकते हैं? श्री नारायणजी भक्ति द्वारा जितने प्रसन्न होते हैं उतने यज्ञ, जप, तप, दान आदि द्वारा भी नहीं होते। हे भाइयो! मैंने नारदजी से जो ज्ञान सुना था, उस पर पूर्ण विश्वास किया है। देखो तीनों लोकों के स्वामी हिरण्यकशिपु ने मेरे प्राण लेने के अनेक उपाय किये, परन्तु उस ज्ञान को धारण करने के कारण वे मेरा कुछ भी अहित न कर सके। यदि तुम यह कहो कि हम लोग दैत्यों के पुत्र हैं तथा मांस एवं मद्य का सेवन करनेवाले हैं ऐसी स्थिति में श्री नारायणजी हमारी भक्ति को किस प्रकार स्वीकार करेंगे, तो इस सम्बन्ध में मेरा यही कहना है कि तुम इन बातों की चिन्ता मत करो। जो भी देवता, दैत्य अथवा मनुष्य श्री नारायणजी का स्मरण करता है, वे उसी को प्यार करने लगते हैं। मैं भी तो दैत्य का पुत्र हूँ, परन्तु जब मैं श्री नारायणजी की शरण में जा पहुँचा तो उन्होंने मेरी सदैव रक्षा ही की। यदि तुम्हारे माता-पिता भी तुम्हें हरि-भजन करने से रोक कर दुःख देंगे, तो श्री नारायणजी की कृपा से तुम्हारे ऊपर भी उनका कोई वश नहीं चलेगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

प्रह्लाद के मुख से इस ज्ञान को सुनकर सब लड़कों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे प्रह्लाद ! हम लोग तुम्हारे उपदेश को स्वीकार करते हैं। आज से हम गुरु की बात को मिथ्या समझेंगे तथा तुम्हारे आज्ञानुसार ही प्रत्येक कार्य करेंगे।"

आठवाँ अध्याय

श्री नारायणजी का नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध करना

नारदजी बोले—"हे युधिष्ठिर ! प्रह्लाद के ज्ञानोपदेश के कारण सब बालकों ने पढ़ना छोड़ दिया तथा वे नारायण एवं विष्णु नाम का स्मरण करने लगे। यह दशा देखकर सण्डा तथा मर्क ने हिरण्यकशिपु के भय से भयभीत होकर उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा—"हे बालको ! तुम लोग यह क्या कर रहे हो ?" लड़कों ने उत्तर दिया—"इस शरीर को प्राप्त करके हमें जो कार्य करना चाहिये वही कर रहे हैं। तुम्हारी मिथ्या बातें पढ़कर हम अपना जन्म व्यर्थ क्यों खोवें ?" बालकों का ऐसा उत्तर सुनकर गुरु ने उन्हें धमकाया तथा हिरण्यकशिपु का भय दिखाया, परन्तु तो भी उन्होंने राम नाम का जप करना नहीं छोड़ा। यह दशा देखकर गुरु ने अपने मन में समझ लिया कि प्रह्लाद ने इन लड़कों को ज्ञानोपदेश करके अपने जैसा ही बना लिया है। तब उन्होंने प्रह्लाद को बहुत धमकाया, परन्तु प्रह्लाद हँसकर चुप हो रहा। उस समय उन्होंने प्रह्लाद आदि सभी बालकों को हिरण्यकशिपु के पास ले जाकर इस प्रकार कहा—"हे महाराज ! आपके पुत्र ने सब बालकों को ऐसा बहकाया है कि वे राम नाम लेने के अतिरिक्त अन्य कोई बात ही नहीं करते हैं।" यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त क्रुद्ध हो प्रह्लाद से इस प्रकार कहा—"हे प्रह्लाद ! मैंने तुझे बहुत दंड दिया तथा बहुत प्रकार से यह भी समझाया कि तू मेरे शत्रु का नाम मत ले, परन्तु तू मेरा कहना नहीं मानता इससे मुझे आभास होता है कि तेरी मृत्यु आ पहुँची है। जिस प्रकार ऋषियों तथा योगियों को इन्द्रियाँ दुःख पहुँचाती हैं, उसी प्रकार तू भी मुझे दुःख देनेवाला शत्रु प्राप्त हुआ है। अब मैं अपने हाथ से तेरा वध करूँगा और यह देखूँगा कि तेरा नारायण किस प्रकार तेरी रक्षा करता है।" हिरण्यकशिपु के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"हे पिता ! आप यह सत्य समझें कि जिनकी शक्ति द्वारा तीनों लोकों की उत्पत्ति हुई है, जो सर्वत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्यमान हैं तथा जिनकी कृपा से आप राज्य करते हैं, वे श्री नारायणजी सबसे अधिक शक्तिशाली तथा सब जगह निवास करनेवाले हैं। संसार में उनसे अधिक श्रेष्ठ तथा पवित्र अन्य कोई नहीं है। उन्हें सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति तथा संहार करनेवाला समझना चाहिए। वे जो चाहते हैं, वही होता है। उनकी इच्छा के बिना किसी प्राणी को श्वास लेने की सामर्थ्य भी नहीं होती। वे ही निरंकार प्रभु मेरी भी रक्षा करेंगे। हे पिता! आप स्वयं को तीनों लोकों का स्वामी मानकर सब जीवों को अपने अधीन समझते हैं। परन्तु अभी तक आप अपने मन, इन्द्रिय तथा काम, क्रोध आदि को वशीभूत नहीं कर सके हैं। आप उनके अधीन होकर नष्ट हो रहे हैं, ऐसी स्थिति में आप दूसरे को अपने वशीभूत कैसे कर सकेंगे? आपको चाहिए कि आप अपने राजसी स्वभाव तथा अधर्म को छोड़कर मन तथा इन्द्रियों को अपने अधीन करें। तत्पश्चात् श्रीहरि-चरणों का स्मरण एवं ध्यान करके इस संसाररूपी मायाजाल से मुक्त होकर भवसागर के पार उतर जायँ। हे पिता! जिसकी मृत्यु समीप आ पहुँचती है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मुझे लगता है कि आपकी मृत्यु भी निकट आ पहुँची है, इसी लिए आप अपने उत्पन्न करनेवाले श्री नारायणजी को भूल गये हैं।" प्रह्लाद द्वारा वर्णित इस ज्ञान को सुनकर हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त क्रोध करके कहा-"हे प्रह्लाद! तेरा नारायण मुझसे अधिक शक्तिशाली नहीं है। अब तू उसे बुला ले ताकि वह तेरी रक्षा करे।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया-"हे पिता! वे परब्रह्म प्रभु अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए सर्वत्र व्याप्त हैं। उन्हें कहीं से बुलाने की आवश्यकता नहीं है।" यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपना खड्ग निकाल कर खम्भे की ओर देखते हुए कहा-"क्या इस खम्भे में भी तेरा नारायण है?" प्रह्लाद ने कहा-"मुझे तो वे इस खम्भे में भी दिखाई देते हैं।" हिरण्यकशिपु भी अपने मन में ईश्वर का भय रखता था। अतः कुछ डरता हुआ, उस खम्भे की ओर पुनः दृष्टिपात करते हुए कहने लगा-"हे प्रह्लाद! मुझे तो इस खम्भे में तेरा नारायण दिखाई नहीं देता, तू झूठ बोलता है। अच्छा अब मैं तुझे मारता हूँ, यदि तेरा सहायक इस खम्भे में अथवा अन्यत्र कहीं हो तो तू उसे बुला ले, ताकि वह तेरी रक्षा कर सके।" हिरण्यकशिपु के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने श्री नारायणजी का ध्यान धरकर जैसे ही उस खम्भे की ओर देखा, वैसे ही श्री नारायणजी नृसिंह (शरीर मनुष्य का तथा मस्तक सिंह का) के रूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में उस खम्भे में दिखाई देने लगे। हिरण्यकशिपु की दृष्टि ज्योंही उन पर पड़ी वैसे ही उसने खम्भे में अपने बायें हाथ का एक मुक्का मारा। मुक्का लगते ही वह खम्भा फट गया तथा उसके भीतर से श्री नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये। देखते ही देखते नृसिंहजी ने अपना शरीर दस योजन के आकार का बना लिया। फिर वे बड़े क्रोध में भरकर गरजने लगे। उस ललकार का शब्द तीनों लोकों में भर गया। उस महा भयानक शब्द को सुनते ही ब्रह्मा, इन्द्र, देवता, दैत्य तथा मनुष्य आदि जीव भयभीत होकर काँपने लगे।

हे युधिष्ठिर! श्री नारायणजी के उस नृसिंह स्वरूप को देखकर हिरण्यकशिपु ने अपने मन में घबराकर कहा—"अरे! ऐसा स्वरूप तो मैंने आज तक कभी नहीं देखा था। ब्रह्माजी ने मुझे यह वरदान दिया है कि तू देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि किसी के हाथ से नहीं मरेगा। परन्तु यह स्वरूप तो ऐसा है जिसे न मनुष्य कहा जा सकता है और न पशु माना जा सकता है। ब्रह्माजी ने मुझे यह वरदान दिया था कि तू न दिन को मरेगा और न रात्रि को, परन्तु इस समय सन्ध्या का समय है, इसे न दिन कहा जा सकता है और न रात्रि। मैंने ब्रह्माजी से यह वरदान माँगा था कि तुम्हारे द्वारा बनाया गया कोई भी जीव मुझे न मार सके, तो यह स्वरूप ब्रह्मा द्वारा निर्मित नहीं है। इन सब बातों को देखते हुए यह जान पड़ता है कि ब्रह्मा का वरदान भी मिथ्या न होगा और यह विचित्र जीव मुझे मार भी डालेगा।" इस प्रकार विचार करता हुआ हिरण्यकशिपु ज्यों का त्यों स्थिर खड़ा रह गया। उसके साथी दैत्य नृसिंहजी का स्वरूप देखकर वहाँ से भाग गये। तदुपरान्त हिरण्यकशिपु ने नृसिंहजी के सम्मुख जाकर उनके ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया। यह देखकर नृसिंहजी उसकी गदा पकड़कर उससे इस प्रकार लड़ने लगे, जिस प्रकार बड़े पहलवान अपने शिष्यों को कुश्ती लड़ना सिखाते हैं, अथवा बिल्ली चूहे को पकड़कर खेल खिलाती है। उस समय ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवता भी नृसिंहजी का दर्शन करने के लिए वहाँ आ पहुँचे थे। वे अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि यदि नृसिंहजी द्वारा हिरण्यकशिपु का संहार नहीं हुआ तो हमारे कष्टों का अन्त किस प्रकार होगा। जिस समय सब देवता अपने मन में यह सन्देह कर रहे थे, उस समय अंतर्यामी श्री नृसिंह भगवान् ने उनके मन की बात जानकर, हिरण्यकशिपु को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उठा लिया। तदुपरान्त वे उसे सभा-स्थल से हटाकर दरवाजे की ड्योढ़ी पर ले आये। वहाँ उन्होंने हिरण्यकशिपु को बालकों के समान अपनी जाँघ पर लिटा लिया तथा अपने पैने नखों से उसका पेट चीर डाला।

हे राजन्! जिस समय नृसिंहजी ने हिरण्यकशिपु का पेट चीरा उस समय वह खिलखिला कर हँसने लगा। जब नृसिंहजी ने हँसने का कारण पूछा, तो हिरण्यकशिपु ने यह उत्तर दिया—"जिस समय इन्द्र ने मेरे ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया था, उस समय वह गदा मेरे शरीर से टकराकर स्वयं नष्ट हो गई थी और मुझे कोई आघात नहीं पहुँचा था, आज मेरा वही शरीर नखों द्वारा विदीर्ण किया जा रहा है, यही सोचकर मुझे हँसी आ रही है। अब मैंने समझ लिया कि यह सब मेरे दिनों का ही फेर है, जो मैं इस प्रकार मर रहा हूँ।" इतना कहकर जब हिरण्यकशिपु मर गया, तब नृसिंहजी ने उसकी आँतें निकालकर माला के समान अपने गले में पहिन लीं। तदुपरान्त वे राजसिंहासन पर जा बैठे। हे युधिष्ठिर! उस समय नृसिंहजी का क्रोध देखकर संसार के सभी जीव भय के मारे थर-थर काँपने लगे। तब देवताओं ने ब्रह्माजी से यह कहा कि हे पितामह! आप नृसिंहजी के सामने जाकर उनकी स्तुति करें, जिससे उनका क्रोध शान्त हो जाय। यह सुनकर ब्रह्माजी ने नृसिंहजी के समीप जाकर सर्वप्रथम उनकी परिक्रमा की। तदुपरान्त दण्डवत्-प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे त्रिभुवन-पति! आप आदिपुरुष हैं। आप ही सब जीवों की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय करनेवाले हैं। किसी भी प्राणी में उतनी सामर्थ्य नहीं जो वह आपकी स्तुति कर सके। हे प्रभो! हिरण्यकशिपु का संहार हो चुका है, अतः आप अपने क्रोध को शान्त कीजिए।" ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर भी जब नृसिंहजी ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा तो वे भयभीत होकर पीछे लौट आये। उस समय देवताओं के कहने पर श्री शिवजी ने नृसिंहजी के पास जाकर इस प्रकार स्तुति की—"हे दीनबन्धो! आपने अपने भक्त की रक्षा के लिए अवतार धारण किया है। अब हिरण्यकशिपु का संहार हो चुका है। अतः आप अपने क्रोध को शान्त कीजिए। एक छोटे से दैत्य को मार कर आपको इतना क्रोध नहीं करना चाहिए। महाप्रलय के समय आपके क्रोध से तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं। वह समय अभी नहीं आया है, अतः आपको क्षमा करना उचित है, अन्यथा आपकी इस क्रोधाग्नि से सम्पूर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीव भस्म हो जायँगे।" शिवजी द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भी जब नृसिंहजी का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उस समय इन्द्र ने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो! हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर सब देवताओं का दुःख दूर हो गया है, वह दुष्ट यज्ञ में देवताओं के भाग को स्वयं ग्रहण करता था। अब हम लोग अपना-अपना भाग पुनः प्राप्त कर लेंगे, इसलिए आप अपने क्रोध को शान्त कर लें।" इन्द्र द्वारा स्तुति किए जाने पर भी जब नृसिंहजी शान्त न हुए; उस समय लक्ष्मीजी सब शृङ्गार किए, हाथ में कमल का पुष्प लिए, उनके सम्मुख जाकर, इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं—"हे दीनानाथ! आपका ऐसा तेजस्वी स्वरूप मैंने कभी नहीं देखा था। आज आपका यह रूप देखकर मैं भयभीत हो रही हूँ। अतः आप इस स्वरूप को अन्तर्धान कर लीजिए।" लक्ष्मीजी द्वारा स्तुति किए जाने पर भी नृसिंहजी शान्त न हुए तब वरुण, कुबेर, गन्धर्व, विद्याधर आदि देवताओं ने परस्पर विचार करके यह निश्चय किया कि श्री नारायणजी ने यह अवतार प्रह्लाद भक्त को बचाने के लिए लिया है। अतः यदि प्रह्लाद स्वयं स्तुति करें तो इनका क्रोध शान्त हो जायगा। ऐसा विचार करके ब्रह्मा इत्यादि देवताओं ने प्रह्लाद से कहा—"हे प्रह्लाद! अब तुम स्वयं स्तुति करके नृसिंहजी का क्रोध शान्त कराओ अन्यथा तीनों लोक भस्म हो जायँगे।" यह सुनकर प्रह्लाद ने श्री नृसिंह भगवान् की परिक्रमा करके पहिले तो साष्टाङ्ग दण्डवत् किया फिर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उस समय प्रह्लाद के हृदय में जो हर्ष था, उसका किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रह्लाद उनके भयानक स्वरूप से तनिक भी भयभीत नहीं हुआ। फिर हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगा।"

नवाँ अध्याय

नृसिंहजी का क्रोध-त्याग तथा प्रह्लाद का उनकी स्तुति करना

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! जिस समय प्रह्लाद ने नृसिंहजी के चरणों में मस्तक रखकर प्रार्थना की, उस समय उन्होंने अपने क्रोध को शान्त करके प्रह्लाद को अत्यन्त स्नेहपूर्वक उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया। फिर उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे पुत्र! तू भयभीत मत हो। तू जो चाहता हो उसे कह।" यह कहते हुए नृसिंहजी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नेत्रों में आँसू भर आये। उस समय प्रह्लाद भी प्रेम-विह्वल हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे दीनबन्धो! मेरा जन्म दैत्यवंश में हुआ है। मैं अज्ञानी बालक आपकी स्तुति नहीं कर सकता क्योंकि आपके आदि तथा अन्त को कोई नहीं जानता। हे प्रभो! अधर्मियों के वंश में उत्पन्न होनेवाले मुझ बालक पर दया करके आपने मेरी रक्षा की है, मैं अपना इससे बड़ा सौभाग्य क्या समझूँ? आप सबकी उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश करनेवाले तीनों लोकों के स्वामी हैं। चारों वर्गों में ब्राह्मण को सबसे उत्तम तथा शूद्र को सबसे छोटा कहा जाता है। परन्तु मेरी समझ में ब्राह्मण उसी को समझना चाहिए, जो आपकी भक्ति तथा स्मरण करता हो। जो ब्राह्मण आपसे विमुख रहता है तथा आपके चरण-कमलों में प्रीति नहीं रखता, वह केवल नाम के लिए ही ब्राह्मण है। जो शूद्र आपके चरणों में प्रीति रखकर आपका स्मरण एवं ध्यान करता है, मैं उसे ब्राह्मण से श्रेष्ठ समझता हूँ। आप हरि-भक्तों को सुख देने तथा अधर्मियों को भवसागर से पार उतारने के लिए ही सगुण रूप धारण करते हैं ताकि आपके सगुण रूप का ध्यान कर तथा आपके अवतारों के लीला-चरित्रों को परस्पर कह-सुन कर संसारी लोग मुक्ति को प्राप्त कर सकें। मनुष्य अपने सुख तथा कल्याण के लिए ही आपका तप एवं स्मरण करते हैं, अन्यथा किसी को आपके भजन करने का प्रयोजन ही क्या है? आप सर्वगुण सम्पन्न हैं। आप में कोई भी अवगुण नहीं है। संसार की किसी भी वस्तु की आप इच्छा नहीं रखते हैं। आपके भक्तों को ऐसी सामर्थ्य प्राप्त होती है कि वे अपने मुख से जो भी शुभ-अशुभ बात कह दें, वैसा ही हो जाता है। आपकी महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। यदि आप चाहते तो केवल अपनी इच्छा से हिरण्यकशिपु का विनाश कर सकते थे। हे दीनदयालु! आप भक्ति द्वारा जितने प्रसन्न होते हैं, उतने तप, यज्ञ, दान आदि से भी नहीं होते। जो ब्राह्मण सब वेद तथा पुराणों का ज्ञाता होने पर भी आपके चरणों में भक्ति नहीं रखता उस ब्राह्मण की अपेक्षा आपके भक्त डोम को श्रेष्ठ समझना चाहिए। यज्ञ, तप आदि करने से तो केवल अपना ही भला होता है, परन्तु आपकी भक्ति करनेवाले के सात पुरुषा वैकुण्ठ-लोक को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवता तथा लक्ष्मी द्वारा स्तुति किए जाने पर भी आप प्रसन्न नहीं हुए, परन्तु मुझ अज्ञानी बालक द्वारा प्रार्थना किए जाने पर आपने अपना क्रोध शान्त कर लिया, इससे मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने को बड़भागी समझता हूँ। हे त्रैलोक्याधिपति ! जिस प्रकार मनुष्य सर्प को मारकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार हिरण्यकशिपु के मारे जाने से सन्त तथा महात्माओं को प्रसन्नता की प्राप्ति हुई है। मैं आपके इस तेजस्वी स्वरूप, कराल नख तथा दाँतों का कुछ भय नहीं मानता, परन्तु आपकी संसाररूपिणी माया से बहुत डरता हूँ। अतः हे दयानिधे ! आप मुझे इस मायारूपी अन्धकूप से बाहर निकाल कर अपनी शरण में ले लें। हे प्रभो ! आपने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर मुझे कृतार्थ कर दिया है। आपके समान दीनदयालु अन्य कोई नहीं है। आपके इस स्वरूप को देखकर सब देवता अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं, परन्तु मैं इससे बिलकुल नहीं डरता। मेरी प्रसन्नता का कारण यही है कि आपने जिस स्वरूप को धारण करके मेरे प्राणों की रक्षा की है, उससे मैं भय क्यों मानूँ ? जिस प्रकार वन में जानेवाले मनुष्य व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से डरते हैं, परन्तु उन पशुओं के बालक उन्हें अपना माता-पिता तथा रक्षक जानकर भयभीत नहीं होते, उसी प्रकार मैं आपको अपना पिता मानकर आपके इस भयानक स्वरूप को देखकर तनिक भी भयभीत नहीं हूँ। परन्तु हे प्रभो ! आप देवताओं का भय दूर करने के लिए अपने इस स्वरूप को अन्तर्धान कर लेने की कृपा करें।"

दसवाँ अध्याय

नृसिंहजी की प्रह्लाद पर दया

नारदजी बोले—"हे युधिष्ठिर ! प्रह्लाद की स्तुति सुनकर नृसिंहजी ने कहा—"हे प्रह्लाद ! मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तू मुझसे कुछ बरदान माँग ले।" यह सुनकर प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे त्रिभुवनपति ! मैंने भूलोक तथा देवलोक—दोनों स्थानों के संसारी सुख को देखा है, परन्तु वह सुख सदैव स्थिर नहीं रहता। एक न एक दिन उसका विनाश अवश्यम्भावी है। यदि आप कहें कि तू तो अज्ञानी बालक है, तूने वह सुख कहाँ देखा, तो मैं आपसे यह कहूँगा कि हे महाप्रभु ! मेरा पिता हिरण्यकशिपु तीनों लोकों में ऐसा प्रतापी राजा था कि जिस समय वह इन्द्रादि देवताओं से हँसकर यह कहता था कि तुमने ऐसा कार्य क्यों किया, उस समय वे भयभीत होकर भाग जाते थे। उसी हिरण्यकशिपु को अब मैं मरा हुआ देख रहा हूँ। अतः जब अपना शरीर ही स्थिर नहीं रहता, तो अन्य संसारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुओं का क्या विश्वास किया जाय? जिस तरह माता-पिता अपने अज्ञानी बालक को दीपक दिखाकर फुसलाते हैं, उसी प्रकार आप वरदान देने के लिए कहकर मुझे क्यों ललचा रहे हैं? संसार में तीनों लोकों के राज्य से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई वस्तु नहीं है, परन्तु मुझे उसकी भी इच्छा नहीं है। मेरा यह शरीर सदैव स्थिर नहीं रहेगा, अतः मैं आपसे किसी वस्तु की भीख क्यों माग़ूँ? मेरी तो केवल यही एक इच्छा है कि मैं जन्म-जन्मान्तरों तक दिन-रात सन्त-महात्माओं की संगति में रहूँ तथा आपके नाम का स्मरण करता हुआ आप ही के चरणों में अपना मन लगाये रहूँ। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई इच्छा नहीं है। हे प्रभो! एक बात मैं यह भी चाहता हूँ कि जो लोग अपने अज्ञान के कारण स्त्री, पुत्र, धन आदि संसारी सुखों के माया-रूपी अन्धकूप में लटक रहे हैं उन्हें आप ज्ञानरूपी रस्सी पकड़ाकर, इस कुएँ से बाहर निकाल दें तथा भवसागर से पार उतार दें। ताकि उन सबका भी कल्याण हो सके। यदि आप यह कहें कि जिसने जैसा शुभाशुभ कर्म किया है, उसे वैसा फल भोगना ही पड़ेगा, सबकी मुक्ति नहीं हो सकती, तो आप उन्हें मेरे भजन-पूजन का फल देकर कृतार्थ कर दें तथा उन्हें आप जो उचित दण्ड देना चाहते हों, वह अकेले मुझे दे दें। मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। हे महाप्रभो! मनुष्य अपने भाग्य अथवा अभाग्य से आपके ऊपर विश्वास न करके किसी वस्तु के पाने पर यह समझता है कि उसने उसे अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया है। परन्तु यह जानने का प्रयत्न नहीं करता कि यह सब पदार्थ श्री नारायणजी की कृपा से ही उसका पालन-पोषण करते हैं। यदि परिश्रम से ही सब वस्तुएँ सुलभ हो सकतीं, तो मनुष्य संसार के सम्पूर्ण धन, सुन्दर स्त्री तथा सुख के सभी पदार्थों को अपने घर ही ले आता। हे दीनानाथ! संसारी प्राणी दिन-रात दुःखरूपी समुद्र में पड़े रहकर सर्वप्रथम तो अपने पेट भरने की चिन्ता में व्याकुल रहते हैं। दूसरे सैकड़ों स्त्रियों से भोग करने पर भी उनके हृदय को तृप्ति प्राप्त नहीं होती है। ऐसे मूर्ख प्राणियों को आप ज्ञान देकर भवसागर से पार उतार देने की कृपा करें। जब तक उन्हें आपकी कृपा प्राप्त नहीं होगी तब तक वे माया के बन्धन से कभी नहीं छूट सकेंगे। यदि आप यह कहें कि तुझे इन सबकी मुक्ति से क्या लाभ प्राप्त होगा, तो उस सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि दुःख-सागर में पड़े हुए उन लोगों पर यदि आप एक बार अपनी कृपादृष्टि कर देंगे, तो उनका भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्याण हो जायगा। आपकी महिमा के सम्मुख यह बात कोई अलभ्य भी नहीं है। बड़े लोग छोटों पर सदैव कृपा रखते आये हैं। जिस प्रकार कोई मनुष्य समुद्र में से एक कटोरा जल लेकर अपनी प्यास बुझा ले, तो समुद्र सूख नहीं जाता उसी प्रकार आपकी कृपा से संसारी प्राणियों का तो कल्याण हो जायगा और आपकी कोई हानि भी नहीं होगी।

हे युधिष्ठिर! प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर नृसिंहजी ने कहा—"हे पुत्र! मैंने अपना क्रोध शान्त कर लिया। अब तू अपने लिए जो चाहे, वह माँग ले। अन्य लोगों की मुक्ति के लिए भी जो तू कह रहा है, उस सम्बन्ध में तुझे यह समझ लेना चाहिए कि सभी लोगों को मुक्ति की चाहना नहीं होती है। सभी प्राणी वैकुण्ठ नहीं जाना चाहते।" यह सुनकर प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! मुझे तो निष्काम भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। संसार में जब कोई मनुष्य किसी के पास जाकर किसी वस्तु की माँग करता है, उस समय उसके मुख का तेज क्षीण हो जाता है। यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह दीजिए कि मुझे किसी वस्तु की इच्छा न रहे। तृष्णा से धर्म तथा लज्जा नष्ट हो जाती है। जिन्हें लालच अथवा कामना नहीं होती, वे इन्द्र तथा भिखारी को एक जैसा समझते हैं। जो मनुष्य श्री नारायणजी का तप एवं स्मरण करके उनसे कुछ माँगने की इच्छा रक्खे उसे मजदूर के समान जानना चाहिए इसलिए मैं किसी वस्तु को माँगना नहीं चाहता हूँ। मैं तो आपकी इच्छा पर ही प्रसन्न हूँ।" प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर नृसिंहजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे पुत्र! तू मेरा मित्र तथा भक्त है, इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि तू अपने पिता के सिंहासन पर बैठकर इकहत्तर चतुर्युगी तक राज्य करो। यदि तेरा कोई दूसरा भाई सिंहासनारूढ़ होगा तो संसारी जीव यह कहेंगे कि नारायणजी का भक्त होने पर भी प्रह्लाद को राज्य नहीं मिला, इसलिए इस सम्बन्ध में तुझे मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। तू अपने मन में धैर्य धारण कर; मेरी कृपा से तुझे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि विकार नहीं व्यापेंगे तथा मेरे चरणों में तेरी प्रीति निरन्तर बनी रहेगी। जिस प्रकार मेरे परम भक्त लोक अथवा परलोक के किसी भी सुख की इच्छा नहीं रखते, उसी प्रकार तुझे भी कोई तृष्णा नहीं व्यापेगी तथा महाप्रलय पर्यन्त संसार में तेरा यश अमर बना रहेगा।" इतना कहकर नृसिंहजी जब गाय के समान प्रह्लाद के शरीर को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी जीभ से चाटने लगे तब प्रह्लाद ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! मेरा पिता अपने अज्ञान के कारण आपसे शत्रुता रखता था तथा आपकी भक्ति से विमुख रहता था। अतः उसने आपको अपने भाई का वैरी जानकर जो दुर्वचन कहे थे, उनके लिए आप मुझे उसका पुत्र समझकर कुछ बुरा मत मानियेगा। जो प्राणी श्री नारायणजी, वेद, शास्त्र, सन्त तथा महात्माओं की निन्दा करता है, वह इस महापाप के कारण अत्यन्त दुःख उठाता है। इस कारण मेरा पिता भी नरक भोगेगा, सो हे महाप्रभु ! आप मेरे ऊपर कृपा कर उसका उद्धार कीजिए।"

हे युधिष्ठिर ! प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर नृसिंहजी ने कहा—"हे प्रह्लाद ! तू अपने पिता के लिए चिन्तित मत हो। अधर्म करने के कारण वह नरक को प्राप्त नहीं होगा। जिस वंश में तेरे जैसे हरि-भक्त का जन्म हुआ है, उस वंश के प्राणी यमदूतों का स्वप्न में भी नहीं देखेंगे। मैंने तेरे इक्कीस पुरुषाओं को नरक से निकाल कर स्वर्ग में भेज दिया है, फिर तेरे पिता नरक का दुःख क्यों भोगेंगे। हे प्रह्लाद ! मेरे साधारण भक्तों के सात पुरुषा नरक से निकलकर स्वर्ग में निवास करते हैं। वेद तथा शास्त्रों में मगह देश को मरने के लिए अशुद्ध कहा गया है, परन्तु मेरे भक्तों के पहुँचने पर उस स्थान का दोष भी नष्ट हो जाता है और वह भूमि पवित्र बन जाती है। यद्यपि तेरा पिता अधर्मी और पापी था, फिर भी तुझे उसका दाहकर्म तथा श्राद्ध करना चाहिए। इस प्रकार नृसिंह भगवान् ने जब प्रह्लाद को समझाया तब प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु का विधिवत् दाह-कर्म तथा श्राद्ध-संस्कार किया। तब नृसिंहजी ने प्रह्लाद को राजसिंहासन पर बैठाकर अपने हाथों से अभिषेक किया। उस समय सम्पूर्ण दैत्य तथा देवताओं ने वहाँ उपस्थित होकर प्रह्लाद को यथा योग्य दण्डवत् तथा आशीर्वाद द्वारा सम्मानित किया। तदनन्तर ब्रह्मादिक देवताओं ने नृसिंह भगवान् को दण्डवत् किया। फिर ब्रह्मा ने नृसिंहजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! अधर्मी हिरण्यकशिपु को मार कर आपने संसार का बड़ा उपकार किया है। आपने मेरा वरदान भी असत्य होने नहीं दिया। यह देखकर मैं और भी गद्गद हो गया हूँ।" नृसिंहजी ने उत्तर दिया—"हे ब्रह्मा ! अब भविष्य में किसी दैत्य को तुम ऐसा वरदान मत देना; क्योंकि सर्प को अमृत पिलाना श्रेष्ठ नहीं माना जाता। इतना कहकर श्री नृसिंहजी वहाँ से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तर्धान हो गये।" उस समय प्रह्लाद ने ब्रह्मा आदि देवता तथा अपने पुरोहित शुक्राचार्य का पूजन कर सभी को सम्मान-सहित बिदा किया। फिर स्वयं आठों प्रहर श्रीहरि के चरणों का ध्यान धरता हुआ, धर्म एवं नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में देवता, ऋषि, गौ, ब्राह्मण, साधु, सन्त आदि सभी आनंदपूर्वक रहकर श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करते थे। किसी भी जीव को किसी प्रकार का दुःख नहीं था।"

इतनी कथा सुनाकर नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! तुमने हिरण्यकशिपु तथा प्रह्लाद में परस्पर विरोध होने का जो कारण मुझसे पूछा था, वह मैंने तुम्हें कह सुनाया। वे हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु ही दूसरे जन्म में रावण तथा कुम्भकर्ण हुए, फिर उन्हींने तीसरी बार शिशुपाल तथा दन्तवक्र का जन्म पाया। तीसरे जन्म में भगवान् श्यामसुन्दर के हाथों मुक्ति पाकर वे फिर अपने पद को जा पहुँचे तथा जय-विजय बनकर वैकुण्ठलोक के द्वारपाल बन गये। जो कोई प्राणी श्री नारायणजी के कथा-चरित्रों को कहता-सुनता है, वह कर्मों की फाँसी से छूटकर स्वप्न में भी यमराज के दूतों को नहीं देखता। हे युधिष्ठिर! तुम पूर्वजन्म के कोई बड़े तपस्वी तथा धर्मात्मा हो। ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता जिन परब्रह्म प्रभु के चरण-कमलों का ध्यान अपने हृदय में आठों प्रहर धरते हैं तथा उनकी आज्ञा का पालन करते हैं एवं बड़े-बड़े योगी, ऋषि-मुनियों को जिनका दर्शन ध्यान में भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है, वे ही त्रिलोकीनाथ आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी तुम्हें अपना भक्त जानकर दिन-रात तुम्हारी आज्ञा में बने रहते हैं। इस भक्तवत्सलता के कारण ही संसार में श्री श्यामसुन्दर का नाम भक्तवत्सल पड़ा है। एक बार भूतभावन भगवान् श्री शङ्करजी ने इन्हीं श्री कृष्णचन्द्रजी की सहायता से 'त्रिपुर' नामक दैत्य को मारा था। तभी से शिवजी का नाम 'त्रिपुरारि' पड़ गया है।"

नारदजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने कहा—"हे महामुने! त्रिपुर नामक दैत्य की कथा क्या है, वह आप मुझे सुनाने की कृपा करें।" नारदजी बोले—"हे राजन्! सुनो। एक बार देवताओं ने युद्ध में दत्यों को परास्त कर दिया, उस समय ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर सब दैत्य 'मय' नामक दानव की शरण में जा पहुँचे। मय ने अपनी इन्द्रजाल विद्या द्वारा उन दैत्यों के रहने के लिये चाँदी, सोने तथा लोहे के तीन दुर्ग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विमान के समान बना दिये। वे तीनों दुर्ग कभी आकाश-मार्ग में चलते दिखाई देते थे तो कभी अन्तर्धान हो जाते थे। जब 'पुर' नामक दैत्य, दैत्यों का राजा हुआ, तब वह अपने साथ बहुत से दैत्यों को लेकर उसी विमान पर चढ़कर, देवताओं से युद्ध करने के लिए चल दिया। उसने इन्द्रादि देवताओं के सम्मुख जाकर उन पर अपने अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करना आरम्भ कर दिया। देवताओं ने जब प्रत्युत्तर दिया तो उनके सब अस्त्र-शस्त्र उस दुर्ग की दीवार में लगकर नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इसके विपरीत दैत्यों ने अपने शस्त्रों द्वारा देवताओं को परास्त कर दिया। इस प्रकार दैत्यों ने तीनों लोकों को जीत लिया। फिर भी वे उसी दुर्ग में रहकर मनुष्यों तथा देवताओं को दिन-रात ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारने तथा दुःख पहुँचाने लगे। उस समय देवताओं ने श्री शिवजी की शरण में जाकर उनसे सहायता की प्रार्थना की। शिवजी उनके सहायक बनकर दैत्यों को मारने लगे। यह देखकर मय दानव ने अपनी माया द्वारा उस दुर्ग में अमृत का एक कुण्ड बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिवजी जितने दैत्यों को मार कर गिराते थे, वे सब दानव उन्हें अमृत-कुण्ड में डालकर पुनर्जीवित कर देते थे। इस प्रकार वे फिर शिवजी से युद्ध करने लगते थे। इस भाँति शिवजी द्वारा कई दिनों तक दैत्यों का संहार करने पर भी जब उनकी संख्या कम नहीं हुई तो शिवजी ने अपना धनुष-बाण पृथ्वी पर रखकर श्रीहरि का ध्यान धरना आरम्भ कर दिया। उस समय शिवजी को उदास देखकर श्री नारायणजी ने ब्रह्मा को तो बछड़ा बनाया और स्वयं गाय का रूप धारण कर उस कुण्ड के पास अमृत पीने के लिए जा पहुँचे। जिस समय उन्होंने अमृत पीने के लिए अपनी गर्दन झुकाई उस समय कुण्ड की रखवाली करनेवाले किसी दैत्य ने अपने साथी से इस प्रकार कहा—"हे भाई! देखो, यह गौ अमृत पीना चाहती है, इसे मार डालना चाहिए।" उसके साथी ने उत्तर दिया—"यह गौ तथा बछड़ा अत्यन्त सुन्दर दीखते हैं। इन्हें अमृत पी लेने दो, आखिर कितना पी जायँगे?" यह सुनकर पहिला दैत्य चुप हो गया। तब गौ-रूपी श्री नारायणजी ने अपनी सुन्दरता द्वारा सब दैत्यों को मोहित करके क्षणभर में ही उस कुण्ड का सब अमृत पी लिया। तत्पश्चात् वे ब्रह्मा-सहित अन्तर्धान हो गये। जब दैत्यों ने अमृत के कुण्ड को सूखा देखा तब वे मय दानव के पास जाकर सब हाल कहते हुए रोने लगे। उस समय मय दानव ने उत्तर दिया—"हे दैत्यो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीहरि की इच्छा को टालने की सामर्थ्य किसी प्राणी में नहीं है।" इतना कहकर मय दैत्य स्वयं भी श्री नारायणजी को दैत्यों के विपरीत जानकर उनका साथ छोड़कर विमान से बाहर चला गया। उधर भगवान् श्री श्यामसुन्दरजी ने महादेवजी के पास जाकर उन्हें धैर्य प्रदान किया तथा एक रथ और धनुष-बाण देते हुए इस प्रकार कहा—"हे शिवजी! अब आप इस रथ में बैठकर इस धनुष-बाण द्वारा युद्ध करें। आपकी विजय होगी।" श्री नारायणजी के मुख से ऐसे बचन सुनकर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर दण्डवत् किया। तदुपरान्त इस प्रकार प्रार्थना की—"हे दीनबन्धो! आपकी कृपा के बिना मुझसे कुछ नहीं हो सकता है। जिस प्रकार आप सदैव देवताओं की रक्षा करते रहे हैं, उसी प्रकार आज आपने दया कर मेरी सहायता की है।" हे युधिष्ठिर! इसके पश्चात् श्री श्यामसुन्दरजी तो अन्तर्धान हो गये और शिवजी ने उस रथ पर बैठकर पुनः युद्ध करना आरम्भ कर दिया। जिस समय शिवजी ने उस धनुष पर एक बाण रख कर छोड़ा, उसी समय माया के वे तीनों दुर्ग व पुर आदि सभी दैत्यों-सहित जलकर भस्म हो गये। इस प्रकार श्री नारायणजी की कृपा से शिवजी को विजय प्राप्त हुई। इन्द्रादिक देवता भी अपना राज्य पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजन्! भगवान् श्यामसुन्दर का ऐसा प्रताप है। नारदजी के मुख से श्री कृष्णचन्द्रजी की ऐसी महिमा सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भी अपने को धन्य माना। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! भगवान् श्यामसुन्दर अपने भक्तों की रक्षा अवश्य करते हैं।"

ग्यारहवाँ अध्याय

नारदजी का चारों वर्णों के धर्म का वर्णन करना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! इतनी कथा सुनकर राजा युधिष्ठिर ने नारदजी की बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए कहा—"हे नारदजी! अब आप दया करके चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के उस धर्म का वर्णन कीजिए, जिसके करने से श्री नारायणजी प्रसन्न होते हैं।" नारदजी बोले—"हे परीक्षित! जिस मनुष्य में ये सब गुण हों, उसके सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि वह धर्मात्मा है तथा उससे श्री नारायणजी प्रसन्न रहते हैं। पहिले तो यह कि वह मनुष्य सत्यवादी हो, कभी झूठ न बोलता हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरे यह कि उसके अन्तःकरण में दया रहती हो, पराये आदमी को दुखी देखकर अपनी शक्ति-भर उसका दुःख दूर करने का प्रयत्न करता हो। तीसरे यह कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देता हो, अकेले भोजन न करता हो, जो भी उत्तम पदार्थ उसे खाने के लिए प्राप्त होते हों, उनमें ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का भाग निकाल कर अन्त में स्वयं खाता हो। चौथे वह अपना हृदय श्री नारायणजी की भक्ति एवं पूजन में लगाये रहता हो, उन्हें नवधाभक्ति द्वारा प्रसन्न रखता हो। पाँचवें लालच को त्याग कर सन्तोष रखता हो तथा सांसारिक माया-मोह से विरक्त रहकर साधु एवं महात्माओं की सेवा तथा सत्सङ्ग करता हो। छठें वह श्री नारायणजी के अवतारों की लीला-कथाओं को प्रेमपूर्वक कहता-सुनता हो तथा जीव हिंसा का त्याग कर चुका हो। सातवें यह कि इन सब बातों को यथानियम चलाने के लिए जितना अधिक हो सके, उतना ध्यान रखता हो। जो मनुष्य इन शुभ कर्मों में से कोई भी कर्म नहीं करता, उसे पशु के समान समझना चाहिए। हे राजन्! चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के लोगों को श्री नारायणजी की भक्ति करनी चाहिए। जो ब्राह्मण अपने कर्म-धर्मानुसार वेद पढ़ने तथा सन्ध्या करने में मन न लगाकर भी हरि-भक्ति से विमुख रहता हो उसका वेद पढ़ना तथा सन्ध्या करना निरर्थक समझना चाहिए। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीनों वर्णों में तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चारों आश्रमों में सच्चे मन से श्री नारायणजी का ध्यान, स्मरण एवं भक्ति करना आवश्यक है। इसी से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। हे युधिष्ठिर! अब हम तुमसे चारों वर्णों के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् रूप से कहते हैं, सुनो।

ब्राह्मण उसे कहना चाहिए जिसके सब संस्कार जातक, मुण्डन, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि यथासमय व यथाविधि सम्पन्न हुए हों। ब्राह्मण को प्रतिदिन वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा विद्या-दान देना आवश्यक है। उसे स्वयं यज्ञ करना चाहिए तथा दूसरों से कराना चाहिए। इसके अतिरिक्ति उसे स्वयं दान देना चाहिए तथा दान लेना चाहिए। ब्राह्मणों के यही छः कर्म मुख्य हैं। क्षत्रियों के लिए यह धर्म कहा है कि उन्हें अपने हाथ से यज्ञ-हवन स्वयं करना चाहिए तथा ब्राह्मणों के हाथ से भी कराना चाहिए। वेद-शास्त्रों को स्वयं पढ़कर दूसरों को भी पढ़ाना चाहिए। दान स्वयं देना चाहिए, परन्तु किसी अन्य से लेना नहीं चाहिए। क्षत्रियों को साधु, ब्राह्मण-भक्त, शूरवीर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय होना आवश्यक है। वैश्यों का मुख्य धर्म व्यापार करना है। उसे अपनी वाणिज्य-कला में सिद्धहस्त होना चाहिए। देवता तथा ब्राह्मणों के प्रति भक्ति रखनी चाहिए एवं क्षत्रिय तथा ब्राह्मण की समानता नहीं करनी चाहिए। शूद्र का यह धर्म है कि वह तीनों वर्णों की सेवा करता हुआ अपने कुटुम्ब का पालन करे। शूद्र को वेद के मन्त्रों से यज्ञ तथा हवन नहीं करना चाहिए। हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण देवता के समान होता है, अतः उसे नौकरी तथा मनुष्य की सेवा करना वर्जित है। यदि कोई यह कहे कि द्रोणाचार्य जैसे ज्ञानी तथा महात्मा ब्राह्मण ने दुर्योधन की नौकरी क्यों की थी, तो उसका समाधान यह है कि द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा जब बालक था, तब वह एक दिन किसी अन्य बालक को दूध पीते देखकर अपने पिता से यह कहकर हठ करने लगा कि मैं भी दूध पीऊँगा। उस समय द्रोणाचार्य इतने दरिद्र थे कि दूध खरीदकर अश्वत्थामा को पिलाने की भी उनमें सामर्थ्य नहीं थी। अतः उन्होंने दूध के स्थान पर खड़िया मिट्टी को पानी में मिलाकर अश्वत्थामा को पीने के लिए दे दिया। अश्वत्थामा ने भी उसे दूध समझकर पी लिया। उस समय द्रोणाचार्य ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे ऐसे जीने को धिक्कार है, जो मैं अपने पुत्र को पीने के लिए पाव भर दूध भी नहीं ला सकता। इसी दुःख से दुखी होकर द्रोणाचार्य राजा दुर्योधन के पास जाकर रहने लगे थे, परन्तु वहाँ भी उन्होंने अपना कोई मासिक वेतन नहीं बाँध रक्खा था।

हे युधिष्ठिर ! हमने तुमसे चारों वर्णों का धर्म कहा। अब स्त्रियों का धर्म सुनो। स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने पति को देवता तथा परमेश्वर के समान जानकर, उसकी आज्ञा का सदैव पालन करें तथा कभी किसी के प्रति कठोर वचन न कहें। उन्हें अधिक लोभ नहीं रखना चाहिए। अपने पति तथा बड़ों की सेवा शुद्ध हृदय से करनी चाहिए। अपने रहने के स्थान को पवित्र रखना चाहिए। श्री नारायणजी की कृपा से थोड़े-बहुत जो भी वस्त्र-आभूषण प्राप्त हों, उन्हीं को धारण करके प्रसन्न रहें। अपने पति से कभी झूठ न बोलें। सदा सन्तोष करें। जो स्त्री अपने कर्मों के फल के अनुसार विधवा हो जाय उसे किसी भी वस्तु से अपना पेट भरकर तथा वस्त्रों से शरीर ढँककर सदैव श्री नारायणजी का भजन करना उचित है। विधवा स्त्री को स्वादिष्ट भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण तथा शृङ्गार आदि का परित्याग कर देना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने धर्म पर आरूढ़ रहती हैं, वे मृत्यु के उपरान्त वैकुण्ठलोक में जाकर लक्ष्मीजी के समान अपने पति के साथ सुखोपभोग करती हैं। हे युधिष्ठिर! चारों वर्णों के मनुष्यों को चोरी आदि अकर्मों से दूर रहना चाहिए। पुरुष-स्त्री द्वारा नित्य भोग किये जाने से सन्तान की प्राप्ति शीघ्र नहीं होती। अतः ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि जब स्त्री रजस्वला होने के उपरान्त चौथे दिन शुद्ध होकर स्नान करे, उस दिन उसके साथ प्रसंग करे। दिन में मैथुन करने से तेज, बल एवं धर्म का नाश होता है तथा आयु क्षीण हो जाती है। जो पुरुष अपनी स्त्री के रजस्वला-स्नान से निवृत्त होने के पश्चात् उसके साथ भोग न करके पराई स्त्री के साथ रमण करता है, उसे महापापी तथा अधर्मी समझना चाहिए। हे युधिष्ठिर! इन चारों वर्णों के अतिरिक्त जो अन्य लोग वर्णसङ्कर हों, उन्हें यह चाहिए कि उनके कुल में जो धर्म-कर्म चला आ रहा हो, वे उसी का निष्ठापूर्वक पालन करें।"

बारहवाँ अध्याय

नारदजी द्वारा ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का वर्णन

नारदजी ने कहा—"हे राजन्! हमने तुमसे चारों वर्ण के धर्म का वर्णन किया। अब चारों आश्रमों के धर्म कहते हैं, उन्हें सुनो। ब्रह्मचारी का धर्म यह है कि जब किसी मनुष्य को ब्रह्मचर्य व्रत लेने की इच्छा हो तथा उसके माता-पिता आज्ञा दे दें, तब उसे बीस वर्ष की आयु में गुरु के घर जाकर रहना चाहिए तथा एकाग्रचित्त से गुरु की सेवा करनी चाहिए। उसे गुरु की आज्ञानुसार विद्या पढ़नी चाहिए तथा गुरु की सेवा को विद्याध्ययन से भी अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिए। उसे प्रातःकाल एवं सन्ध्या के समय गुरु, श्रीनारायणजी, सूर्य एवं अग्नि आदि देवताओं का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। उसे जटाएँ रखा लेनी चाहिए तथा मस्तक व दाढ़ी आदि किसी भी अंग के बाल भी नहीं मुँड़वाने चाहिए। वह जो भी भिक्षा माँगकर लावे उसे गुरु के सामने रख दे। जब गुरु आज्ञा दें तब भोजन करे। क्रोध करना तथा दुर्वचन कहना त्याग दे, गुरु की कभी निन्दा न करे। चन्दन आदि सुगन्ध तथा सुरमा लगाना, मांस खाना एवं मदिरा पीना आदि त्याग कर पाँच वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के घर रहना चाहिए। ब्रह्मचारी को उचित है कि वह गुरु-पत्नी से भी हँसकर बात न करे, उन्हें दूर ही से दण्डवत् कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ले। जब तक ब्रह्मचारी रहे कभी भी स्त्री-प्रसंग न करे। किसी स्त्री के साथ वार्तालाप करना अथवा उसका गाना सुनना भी त्याग दे। स्त्रियों के पास कभी एकान्त में न बैठे, जिससे उसकी इन्द्रियाँ तथा मन चलायमान न हों। स्त्री को अग्नि तथा पुरुष को घृत के समान जानना चाहिए। अग्नि के समीप जाने पर घृत पिघले बिना नहीं रहता है। यदि उसका हृदय पच्चीस वर्ष की अवस्था में गृहस्थी करनी को चाहे, तो उसे किसी उत्तम कुल में विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए। यदि विवाह करने की इच्छा न हो तो जीवन भर गुरु के घर में रहकर किसी भी स्त्री की ओर कुदृष्टि से नहीं देखना चाहिए। हे युधिष्ठिर! वानप्रस्थ आश्रम का धर्म यह है कि जब गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य की आयु पचास वर्ष की हो जाय, तब उसे अपनी स्त्री-सहित वन में जाकर श्री नारायणजी का भजन एवं तप करना चाहिए। वहाँ कन्द, मूल, फल आदि के अतिरिक्त खेत में उत्पन्न हुआ अन्न न खाय। कन्द, मूल, फल न मिलें तो वृक्ष के पत्ते खाकर ही रहे, परन्तु फल अथवा पत्तों को वृक्ष से तोड़ना नहीं चाहिए, जो स्वयं टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़े हों, उन्हीं का सेवन करना चाहिए। वन में अपनी स्त्री-सहित एकान्त में रहना चाहिए तथा छाल के वस्त्रों को धारण करना चाहिए। वहाँ यदि कोई अतिथि अथवा भिखारी आ जाय, तो उसे भी कन्द, मूल, फल ही खिलाने चाहिए। उन्हीं फल आदि से हवन करे। क्षौर-कर्म कराना छोड़ दे। वर्षा ऋतु में मैदान में बैठे, जाड़ों में जल के भीतर रहे तथा ग्रीष्म ऋतु में अपने शरीर को पंचाग्नि में तपावे। इस प्रकार तपस्या करता हुआ एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष, आठ वर्ष अथवा बारह वर्ष, जब तक हो सके, ब्रह्म का विचार करता रहे, उस समय वह स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है।"

तेरहवाँ अध्याय

नारदजी का संन्याम आश्रम के धर्म का वर्णन करना

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! पचहत्तर वर्ष की आयु में वानप्रस्थ आश्रम को त्याग कर, संन्यास ले ले तथा दण्ड-कमण्डलु को धारण करे। संन्यासी का धर्म यह है कि पहिले जिस प्रकार ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र द्वारा उसके गले में यज्ञोपवीत पहिनाया था, उसी प्रकार वेद मन्त्र पढ़कर उसे उतार डाले तथा पहिले आश्रम के धर्म को त्याग दे। संन्यासी को चाहिए कि वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी भी नगर अथवा ग्राम में एक रात्रि से अधिक निवास न करे, परन्तु भिक्षा माँगने के लिए बस्ती में अवश्य जाय। भिक्षा में उसे जो कुछ प्राप्त हो, उसी से शास्त्रानुसार अपना कर्म करता रहे। अपने पास किसी वस्तु का संग्रह न करे। सदा अकेला रहे। परन्तु दण्ड-कमण्डलु को एक क्षण के लिए भी नहीं त्यागे। सब जीवों पर दया का भाव रक्खे। श्री नारायणजी के चरणों का सदैव ध्यान करता रहे। जड़-चैतन्य सभी जीवों में श्री नारायणजी का एक-सा प्रकाश विद्यमान समझे। किसी को अपना शिष्य न बनाये तथा अपने रहने के लिए किसी मठ आदि की स्थापना न करे। बस्ती के बाहर रहे तथा भोजन-वस्त्र आदि के लिए चिन्तित न हो। वेद-शास्त्रों को पढ़ने तथा सुनने का विशेष अभ्यास रक्खे। इस संसार को स्वप्न के समान समझकर किसी की मृत्यु की चिन्ता अथवा जन्म का हर्ष न मनावे।"

इतनी कथा सुनाकर नारदजी ने कहा– "हे राजन्! हमने तुमसे ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम के धर्मों को कहा, अब हम तुम्हें एक संन्यासी का इतिहास सुनाते हैं, सुनो। राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् एक बार प्रह्लाद अपने राज्य का भ्रमण करने के लिए निकले। उन्हें जहाँ भी किसी ज्ञानी-महात्मा का पता मिलता वहीं वे उसके पास जाकर हरि-चर्चा किया करते थे। एक दिन उन्होंने रेवा नदी के तट पर पहुँचकर यह देखा कि 'दत्तात्रेय' नामक एक अत्यन्त बलिष्ठ एवं तेजस्वी अवधूत नंगे शरीर नदी के तट पर पड़ा हुआ, श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न है। प्रह्लाद उस अजगर मुनि को देखते ही अपनी शिविका से उतर पड़े तथा उसके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे–"हे परमहंस! आप मुझे बड़े गुणी तथा महात्मा दिखाई देते हैं। आप अपने पास भोजन-वस्त्र का भी कुछ प्रबन्ध नहीं रखते। न आप कुछ उद्यम करते हैं और न किसी से कुछ माँगते ही हैं, फिर भी आपका शरीर बहुत बलिष्ठ एवं मोटा दिखाई दे रहा है। मैंने संसार में यह देखा है कि बिना उद्यम किए किसी को धन नहीं मिलता तथा धन मिले बिना संसारी सुख प्राप्त नहीं होता है। संसारी जीव अनेक उद्यम करने पर भी दुर्बल बने रहते हैं, इसका क्या कारण है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर के अतिरिक्त आपके पास जो कुछ ज्ञान हो वह भी मुझे बताने की कृपा करें।"

प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर वे अजगर मुनि उठ बैठे तथा उसे हरि-भक्त जानकर इस प्रकार कहने लगे–"हे प्रह्लाद! तुमने जो यह पूछा कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्यम न करने पर भी मैं इतना मोटा-ताजा क्यों दिखाई देता हूँ, उसका उत्तर यह है कि मैंने संसार में उद्यम करके बहुत-सा द्रव्य कमाया था, परन्तु फिर भी मेरी तृष्णा नष्ट नहीं हुई। जब मैंने यह देखा कि मेरा लोभरूपी कमण्डलु किसी प्रकार नहीं भरता है तथा मैं जितना अधिक धन बटोरता हूँ उतना ही वह और अधिक बढ़ता जाता है, तब मैंने यह विचार किया कि मनुष्य शरीर को पाकर मैं अपना जन्म व्यर्थ क्यों नष्ट करूँ? यदि इसी प्रकार संसारी मोह-माया में फँसा रहा तो एक न एक दिन मरने के बाद नरक के अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे। यह विचार करके मैंने उद्यम करना छोड़ दिया और तभी से सब तृष्णाओं को त्याग कर यहाँ आठों प्रहर श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न रहता हूँ। जिन लोगों के हृदय में श्री नारायणजी के चरण-कमलों का निवास रहता है वे चिन्ता-हीन होकर पुष्ट हो जाते हैं, जब कि संसारी चिन्ताओं के कारण मनुष्य का शरीर दुर्बल होता चला जाता है। हे प्रह्लाद! बाहर का अन्धकार तो सूर्य के प्रकाश से मिट जाता है, परन्तु अन्तःकरण का अंधकार श्री नारायणजी की भक्ति करने पर ही नष्ट होता है। अस्तु, तुमने जो यह कहा कि मैं किसी वस्तु को अपने पास क्यों नहीं रखता हूँ और किसी से कुछ माँगता क्यों नहीं हूँ, सो इस सम्बन्ध में मेरा यह उत्तर है कि मैंने बहुत से ऐसे धनाढ्यों को देखा है जो सदैव धन का संग्रह करने की चिन्ता में लगे रहते हैं। इस पर भी पहले तो उन्हें राजा का भय बना रहता है कि वह कोई कलङ्क लगाकर हमारा धन न छीन लें। दूसरे चोर-डाकुओं के भय से उन्हें रात को अच्छी तरह नींद भी नहीं आती है। तीसरा भय उन्हें अपने रिश्तेदारों का रहता है जो सदा यही सोचते रहते हैं कि उन्हें किस प्रकार से उसका धन प्राप्त हो सकेगा। हे राजन्! इस प्रकार धन का संग्रह करनेवालों को कभी सुख नहीं मिलता है। मधुमक्खियाँ शहद को बड़े परिश्रम से इकट्ठा करती हैं और कृपणता के कारण उसे खाती भी नहीं हैं, इसी लिए कोल-मुसहर आदि उनके छत्ते में अग्नि लगाकर उस शहद को अपने घर ले जाते हैं। जिस प्रकार उन मक्खियों को शहद संग्रह करने में दुःख होता है तथा उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता, उसी प्रकार धन-संग्रह करनेवालों को भी दुःख के अतिरिक्त अन्य कोई सुख प्राप्त नहीं होता है। जिस धन को वे इकट्ठा करते हैं, वह उनके लिए बिल्कुल निरर्थक सिद्ध होता है। इसी लिए मैं संसारी माया-मोह को त्याग कर विरक्त हो गया हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार अजगर में चलने की सामर्थ्य न होने के कारण वह एक ही स्थान पर पड़ा रहता है तथा श्री नारायणजी उसी स्थान पर उसे भोजन पहुँचाते रहते हैं, उसी प्रकार मैं भी यहाँ पड़ा रहकर दिन-रात परब्रह्म प्रभु के ध्यान में मग्न रहता हूँ। मेरे प्रारब्धानुसार जो कोई कुछ खाने-पीने को दे जाता है, उसी को खाकर सन्तोष कर लेता हूँ।

हे प्रह्लाद! यदि कोई मनुष्य दया करके मुझे खीर-पूड़ी दे जाता है, तो मैं उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता और कोई दुर्वचन कहकर अलोना भोजन दे जाता है तो उसके लिए कोई खेद नहीं मानता। मैं यह समझता हूँ कि जो कुछ हो रहा है वह सब मेरे प्रारब्ध के अनुसार है। कभी कोई आदमी मुझे उत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर तथा शरीर में सुगन्ध लगाकर हाथी, घोड़े अथवा सुखपाल पर बैठा देता है, तो कभी मैं पृथ्वी पर धूल में पड़ा रहता हूँ। मुझे किसी के मिलने-बिछुड़ने का कोई हर्ष-विषाद नहीं होता। इसी प्रकार आनन्दपूर्वक मैं अपना जीवन काट रहा हूँ। हे प्रह्लाद! चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् इस जीव को मनुष्य-शरीर की प्राप्ति होती है, अतः जो प्राणी भरतखण्ड में मनुष्य का जन्म लेकर भी श्री नारायणजी के भजन तथा स्मरण से विमुख रहता है, उसे बड़ा मूर्ख तथा भाग्य-हीन समझना चाहिए।" मुनि द्वारा इस ज्ञान को सुनकर प्रह्लाद को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् वे अजगर मुनि से बिदा होकर अपने घर लौट आये।

चौदहवाँ अध्याय

नारदजी का गृहस्थाश्रम धर्म का वर्णन करना

नारदजी बोले—"हे राजन्! अब हम तुमसे गृहस्थाश्रम धर्म का वर्णन करते हैं, सुनो। जब ब्रह्मचारी वेद आदि पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहे तब वह अपने देश के राजा से जाकर यह कहे कि अब मैं विद्या पढ़ चुका हूँ, अतः तुम्हारे नगर में गृहस्थ बनकर रहूँगा। उस समय राजा को यह उचित है कि वह उसकी परीक्षा ले, तदनन्तर उसे अपने कोष में से धन आदि लेकर उसका विवाह किसी उत्तम कुल की कन्या के साथ करा दे। गृहस्थ बन जाने के बाद मनुष्य को अपने धर्मानुसार उद्यम करके कुटुम्ब का पालन करना चाहिए। चारों वर्णों के गृहस्थों को यह उचित है कि वे प्रतिदिन यथाशक्ति दान-पुण्य अवश्य करें। जिस गृहस्थ के घर में दान देने योग्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई वस्तु न हो उसे जिस समय जो कुछ भोजन मिले, उसी में से कुछ दान कर देना चाहिए। गृहस्थ मनुष्य को ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी के भोजन-वस्त्र की चिन्ता स्वयं करनी चाहिए। क्योंकि इन तीनों आश्रमों में धन का संग्रह करना वर्जित कहा गया है। गृहस्थ को प्रतिदिन अपने पितरों का श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिए। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा द्वादशी के दिन कुछ न कुछ दान अवश्य करना चाहिए। ब्राह्मण को श्री नारायणजी का स्वरूप मानकर दान देना चाहिए। गृहस्थ को प्रतिदिन श्री नारायणजी के कथा-चरित्रों का स्मरण एवं ध्यान करना चाहिए। उसे सदैव यह समझते रहना चाहिए कि सब जीवों में एक ही आत्मा का निवास है। जिस प्रकार सोने तथा मिट्टी के पात्रों में पानी भरकर रख दिया जाय, तो दोनों ही पात्रों में सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश एक-जैसा पड़ेगा। उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल, पशु तथा पक्षी आदि सब जीवों के शरीर में एक ही परमात्मा का प्रकाश समझकर किसी को दुःख नहीं देना चाहिए। आत्मा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण का भेद नहीं होता। गृहस्थ को धर्मपूर्वक प्राप्त की हुई आय से देवताओं के नाम पर यज्ञ करना चाहिए। दरिद्रों तथा भिखारियों को भोजन-वस्त्र देना चाहिए एवं अपना तथा अपने परिवारवालों का पालन करना चाहिए। अपने घरवालों को सदैव इस प्रकार समझते रहना चाहिए जिस प्रकार कि रात के समय चारों दिशाओं के पथिक किसी एक ही स्थान पर आकर निवास करते हैं और प्रातःकाल होने पर सब अपने-अपने अलग स्थानों पर चले जाते हैं। संसार के सभी प्राणी अपने कर्मों के फल के अनुसार उत्तम अथवा नीच कुल में जन्म लेकर एकत्रित होते हैं तथा पूर्वजन्मों के संस्कार द्वारा अपना-अपना बदला चुकाकर, मृत्यु के पश्चात् न जाने किन योनियों में चले जाते हैं, इसलिए किसी से अधिक प्रीति नहीं रखनी चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए, पतिव्रता स्त्री के समान अपना ध्यान सदैव श्री नारायणजी के चरण-कमलों में लगाये रखना चाहिए। ऐसा करने से ही मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति होती है, अन्यथा बारम्बार यह शरीर मिलना कठिन होता है। अधर्म तथा पाप करने से नरकों का दुःख अवश्य उठाना पड़ता है। उसी स्थिति में आवागमन से मुक्ति नहीं मिल पाती। मरते समय किसी के भी साथ हाथी, घोड़ा, धन आदि कुछ भी नहीं जाता, इसलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धन पाकर दान तथा धर्म अवश्य करना चाहिए। जो लोग कृपण बनकर धन जोड़ते हैं, उन्हें मृत्यु के उपरान्त यमपुरी में चोर के समान दण्ड भोगना पड़ता है। उस समय जिन पारिवारिक जनों का उसने झूठ-सच बोलकर पेट भरा था, वे भी उसकी कोई सहायता नहीं कर पाते। मृत्यु के बाद यह शरीर भी गलने-सड़ने के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आता। अतः मनुष्य को अपना परलोक सुधारने के लिए ब्राह्मण को देवता के समान समझना, उसे श्रेष्ठ भोजन कराना तथा सेवा करना उचित है। ऐसा करने से श्री नारायणजी भी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। गृहस्थ व्यक्ति को अपने पारिवारिक जनों के क्रिया-कर्म अवश्य करने चाहिए। तीर्थस्थानों पर जाने से मनुष्य का हृदय अधर्म की ओर नहीं जाता, इसके विपरीत अन्य स्थानों पर पापकर्मों की ओर झुकता है, इसलिए गृहस्थ को तीर्थयात्रा करना आवश्यक है। हे राजन्! कलियुग के जीवों को श्री नारायणजी का भजन, स्मरण एवं उनके कथा-चरित्रों का श्रवण ही कृतार्थ कर देता है।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

गृहस्थाश्रम का वर्णन

नारदजी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! गृहस्थ लोगों को देवता तथा पितरों के नाम पर यज्ञ तथा श्राद्ध आदि कर्मों में श्रेष्ठ, कुलीन, वेद एवं शास्त्रों के ज्ञाता तथा हरिभक्त ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। जिस प्रकार अच्छी धरती पर थोड़ा-सा अन्न बोने पर भी बहुत उत्पन्न होता है तथा ऊसर धरती में बोने से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार विद्वान् एवं योग्य ब्राह्मण को भोजन कराने का अत्यन्त पुण्य कहा गया है। देव-कर्म तथा पितृ-कर्मों में तीन से कम ब्राह्मणों को भोजन न करावे। यज्ञ तथा श्राद्ध में कभी जीव-हिंसा न करे। जीव-हिंसा करने से देवता तथा पितर प्रसन्न नहीं होते। सब यज्ञों में ज्ञान-यज्ञ अर्थात् श्री नारायणजी के कथा-चरित्रों को कहना-सुनना अत्यन्त पवित्र माना गया है। मन, वचन, कर्म से किसी का अहित न चाहना ही सबसे बड़ा धर्म है। गृहस्थ को सन्तोष रखना चाहिए। जिन मनुष्यों को सन्तोष नहीं होता, वे कितने ही बड़े ज्ञानी अथवा पण्डित क्यों न हों, नरक का दुःख अवश्य उठाते हैं। गृहस्थ को किसी बात की प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए। जो गृहस्थ अपने धर्म के विपरीत आचरण करता है, जो ब्रह्मचारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने व्रत तथा धर्म को छोड़ देता है, जो वानप्रस्थ अपने तप के कारण धर्म को नहीं मानता तथा जो संन्यासी लालची होता है अथवा अपनी इन्द्रियों के सुखों की कामना करता है, उन्हें आश्रम-धर्म का फल प्राप्त नहीं होता।

हे युधिष्ठिर! चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के मनुष्यों को यह उचित है कि वे इस चैतन्य शरीर को पाकर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के मार्ग का आचरण करें। शास्त्रों के आज्ञानुसार जो जीव प्रवृत्तिकर्म करनेवाला होता है, वह चन्द्रमण्डल के मार्ग से देवलोकादि में जाकर अपने कर्मानुसार सुख भोगता है तथा अवधि समाप्त हो जाने पर फिर संसार में जन्म लेता है। वह आवागमन से मुक्त नहीं होता। निवृत्ति-कर्म को करनेवाले सूर्यमण्डल के मार्ग से वैकुण्ठलोक में पहुँचकर आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। हमने तुम्हें ये दोनों मार्ग बता दिये हैं। जो गृहस्थ हमारे कहे अनुसार तथा शास्त्रों में वर्णित धर्मानुसार अपने कर्म का पालन करता है, वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी परमहंस के पद को प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य संन्यास लेने के पश्चात् फिर गृहस्थ होने की इच्छा करे, उसे कुत्ते के समान समझना चाहिए—जो वमन करके फिर से उसे खा जाता है। संसारी मनुष्य श्री नारायणजी की माया में पड़कर नष्ट हो रहे हैं। जिस प्रकार रथ में जुता हुआ घोड़ा, रथ को खींचकर चाहे जिधर ले जाता है, रथ का कुछ वश नहीं चलता, उसी प्रकार इस शरीररूपी रथ में मन चञ्चल घोड़े के समान है। वह मन अपने कर्मों द्वारा इसे चाहे जिस लोक में ले जा सकता है। इसलिए प्राणी को चाहिए कि वह मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके शुभ कर्म करे, जिससे उसे वैकुण्ठ तथा स्वर्गलोक के सुखों की प्राप्ति हो।

हे युधिष्ठिर! जिस हरि-भक्ति के प्रताप से हम ब्रह्मा के पुत्र हुए, अब वह कथा तुम्हें सुनाते हैं, सुनो। पिछले महाकल्प में हम 'उपवर्ण' नामक गन्धर्व थे। हमें सङ्गीत का अच्छा ज्ञान था तथा सुन्दर भी खूब थे, इसलिए हमें अनेक स्त्रियाँ चाहती थीं। हम भी उन पर आसक्त होकर उनके साथ भोग-विलास किया करते थे। एक समय हम 'विश्वसर्ज' नामक देवता की सभा में गा रहे थे। उन दिनों हमारा हृदय एक स्त्री से विशेष लग रहा था अतः उसका ध्यान आ जाने से हम वहाँ ठीक से नहीं गा सके। फिर वहीं अङ्गिरा ऋषि के कुरूप को देखकर हमें हँसी आ गई। इस अपराध के कारण उस देवता ने हमें यह शाप दिया कि तू शूद्र का जन्म प्राप्त कर। उस शाप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को पाकर हम दूसरे जन्म में एक ब्राह्मण की दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए। वहाँ सत्सङ्ग तथा हरि-भक्ति के प्रताप से हमें फिर से 'नारद' का पद प्राप्त हो गया। अतः हे युधिष्ठिर ! तुम बड़े भाग्यशाली हो कि जिन परब्रह्म प्रभु श्री कृष्णचन्द्रजी का नाम लेने तथा स्मरण करने से मनुष्य कृतार्थ होकर मुक्ति-पद को प्राप्त करता है, वे दिन-रात तुम्हें अपने से बड़ा मानकर तुम्हारे सम्मुख खड़े रहते हैं। किसी अन्य प्राणी का ऐसा भाग्य होना कठिन है। हम ऋषि-मुनि तथा देवता आदि भी उनका दर्शन प्राप्त करने के लिए तुम्हारे पास आया करते हैं। इसलिए हे राजन् ! आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी का दर्शन एवं पूजन करने के कारण तुम्हारी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं है।"

नारदजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर तथा अर्जुन श्री कृष्णचन्द्रजी के स्नेह में विह्वल होकर अपने मन में इस प्रकार सोचने लगे कि देखो हम लोगों ने श्री त्रिलोकीनाथजी को अपना भाई मानकर उनसे रिश्तेदारों के समान काम कराया, यह हमसे कैसी भयानक भूल हुई है। ऐसा विचार करते हुए दोनों भाई श्री कृष्णचंद्रजी के चरणों में अपना मस्तक रखकर रोने लगे। उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने नारद मुनि से सङ्केत में कहा कि तुमने हमारा भेद क्यों खोल दिया। अब ये लोग हमसे सम्बन्धी के समान स्नेह त्याग कर, ईश्वर भाव से भजेंगे। आनन्दकन्द भगवान् श्यामसुन्दर का सङ्केत समझकर नारदजी ने कहा—"हे प्रभो ! अब तक ये लोग आपकी माया में पड़े हुए थे, अब आप इनका मोह हटाकर अपनी कृपा द्वारा इन्हें कृतार्थ कर दीजिए।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की ऐसी महिमा सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्यामसुन्दरजी तथा नारद मुनि का विधिपूर्वक पूजन किया। उस दिन से राजा युधिष्ठिर श्री कृष्णचन्द्रजी को परब्रह्म जानकर उनका ध्यान एवं स्मरण करने लगे। तत्पश्चात् नारदजी भी सबसे बिदा होकर ब्रह्मलोक को चले गये।"

सप्तम स्कन्ध समाप्त

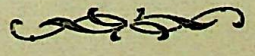

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

अष्टम स्कन्ध

हरि-अवतार एवं वामन-अवतार की कथा

वन्दना

समाये हो प्राण में तुम्हीं पर—उन्हें तुम्हारी लगन नहीं है !
महान् आश्चर्य है—अनल है, मगर अनल में तपन नहीं है !!
असंख्य तारे भरे गगन में, न हो सकी है शुमार अब तक;
असंख्य प्याली ढलीं सृजन की, मगर न आया खुमार अब तक;
पता नहीं—सृष्टि में तुम्हारा चलन है कैसा ? विचार क्या है ?
तुम्हारी है नींद लोचनों में, मगर तुम्हारा सपन नहीं है !
बढ़े हैं अब तक चरण हजारों, उठी हैं अब तक हजार चाहें;
मिले हैं अब तक हजार साथी, बनी हैं अब तक हजार राहें;
परन्तु कब लक्ष्य एक सबका ? सभी की चाहत अलग-अलग है—
तुम्हारे इस विश्व में कहीं भी, तुम्हारा कोई अमन नहीं है !
बहुत हुआ खेल यह अनोखा, रुको तनिक अब, विचार लाओ;
रहीं जो त्रुटियाँ अभी भी कायम, उन्हीं में थोड़ा सुधार लाओ;
न मुक्ति का ध्यान ही सभी का प्रदान कुछ ज्ञान कर सकेगा—
हृदय को चुम्बक-सा खींच ले जो—ये वो अनोखा रतन नहीं है !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

श्री शुकदेवजी का मन्वन्तरों की कथा का वर्णन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे शुकदेवजी ! मैंने राजा स्वायम्भुव मनु के वंश का हाल सुना। अब मैं मन्वन्तरों के नाम तथा किस मन्वन्तर में श्री नारायणजी ने कौन-कौन से अवतार लिये, यह सुनना चाहता हूँ, सो आप कृपा कर कहें।" श्री शुकदेवजी बोले–"स्वायम्भुव मनु से प्रारम्भ करके अब तक छः मन्वन्तर व्यतीत हुए हैं। उनमें पहिले मन्वन्तर की कथा, जिसमें राजा स्वायम्भुव ने मनु होकर दो पुत्र तथा तीन कन्याओं को जन्म दिया था। हम तुमसे तीसरे, चौथे तथा पाँचवें स्कन्ध में कह चुके हैं। उन्हीं स्वायम्भुव मनु की तीसरी कन्या का नाम 'आकूती' था जिसका विवाह 'रुचि प्रजापति' के साथ हुआ था। उसी मन्वन्तर में 'यज्ञपुरुष भगवान्' ने अवतार लिया था। एक समय राजा स्वायम्भुव मनु सुभद्रा नदी के तट पर एक पाँव से खड़े होकर तपस्या कर रहे थे, उस समय राक्षसों ने आकर उनके तप में विघ्न डालना चाहा। उस समय यज्ञ भगवान् ने ही स्वायम्भुव मनु को राक्षसों के हाथ से बचाया था। यह सब पहिले मन्वन्तर की कथा है। दूसरा मनु 'स्वारोचिष' नामक अग्नि का पुत्र हुआ। उसमें देवता आदि मनु के पुत्र हुए; 'रोचन' नामक इन्द्र हुआ, 'तुषिता' आदि देवता हुए तथा 'अर्जस्तम्भ' आदि सप्तर्षि हुए। उस मन्वन्तर में 'शिरस' नामक ऋषि के यहाँ श्री नारायणजी ने 'विभव' नाम से अवतार लेकर अट्ठासी सहस्र ऋषियों को ज्ञानोपदेश किया। तीसरा मनु राजा प्रियव्रत का पुत्र 'उत्तम' हुआ। उसमें मनु के पुत्र 'पवन' आदि हुए। 'सत्यजित्' नामक इन्द्र हुआ, 'सत्य' आदि देवता हुए तथा 'परमेश्वर' आदि सप्तर्षि हुए। उस तीसरे मन्वन्तर में श्री नारायणजी ने धर्म की 'सुनीता' नामक स्त्री के गर्भ से 'सत्यसेन' नामक अवतार लेकर, पापी तथा दुष्ट-जनों का संहार करके सत्य की संस्थापना की। चौथे मनु का नाम 'तामस' हुआ। वह 'उत्तम' का भाई था। उसके 'पृथु' आदि पुत्र हुए। उस मन्वन्तर में 'विसख' नामक इन्द्र हुआ, 'सत्यक' आदि देवता हुए तथा 'ज्योतिधर्म' आदिक सप्तर्षि हुए। उस समय श्री नारायणजी ने 'हरिमेधा' नामक ऋषि के यहाँ 'हरि' नाम से अवतार लेकर गजेन्द्र को ग्राह के फन्दे से छुड़ाया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से प्रार्थना की—"हे प्रभो ! श्री नारायणजी ने हरि-अवतार लेकर गजेन्द्र को ग्राह के फन्दे से किस प्रकार छुड़ाया था। वह कथा आप मुझे सुनाने की कृपा करें।"

दूसरा अध्याय

गजेन्द्र और ग्राह की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! परब्रह्म अविनाशी प्रभु जन्म-मरण से रहित हैं। ब्रह्मा आदि देवता भी न तो उनके आदि-अन्त को पा सके और न उनके निरंकार स्वरूप को ही प्रत्यक्ष देख सके हैं। जब कभी हरि-भक्तों पर दुःख पड़ता है, उस समय श्री नारायणजी अपने भक्त की रक्षा करने के निमित्त सगुण अवतार लेकर संसार में अपने किसी एक नाम को प्रकट कर देते हैं। इसी रीति के अनुसार एक बार श्री नारायणजी ने गजेन्द्र के प्राण बचाने के लिए 'हरि' नामक अवतार भी धारण किया था। वह कथा इस प्रकार है—

हे परीक्षित ! क्षीर समुद्र के बीच में दस सहस्र योजन लम्बा-चौड़ा तथा इतना ही ऊँचा एक 'त्रिकूट' नामक पर्वत है। उसके सोने, चाँदी तथा लोहे के तीन शिखर हैं। उसके एक शिखर में अनेक रंगों के ऐसे उत्तम रत्न जड़े हुए थे जिनका प्रकाश सूर्य से भी अधिक था। उस पर्वत पर देवता तथा गन्धर्व आदि अपनी स्त्रियों-सहित निवास करके विहार किया करते थे। उस स्थान पर सङ्गमरमर के कुण्ड बने हुए थे तथा अनेक प्रकार के विचित्र पक्षी मीठी बोली बोलते रहते थे। वहाँ ऐसे सुन्दर उपवन तथा पुष्प आदि थे, जिन्हें देखकर सबका हृदय मोहित हो जाता था। उन पुष्पों की सुगन्ध एक योजन की दूरी तक उड़ती रहती थी। वहीं एक बहुत बड़ा तालाब था जिसमें कमल खिले हुए थे। उस तालाब में कच्छ, मच्छ तथा ग्राह आदि जल-जीव रहा करते थे। एक दिन हाथियों का राजा गजेन्द्र, जो उसी पर्वत पर रहता था, ज्येष्ठ मास के मध्याह्न में प्यास से व्याकुल होकर अपने साथ कई सहस्र हथिनी तथा कई सहस्र बच्चों को लेकर उस तालाब पर पानी पीने के लिए पहुँचा। गजेन्द्र के गण्डस्थल से मद बहने के कारण उसके चारों ओर भौंरे गूँज रहे थे। वह अपने शरीर में दस सहस्र हाथियों का बल रखता था। जिस समय वह उमंग में भरकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

झूमता हुआ मार्ग में वृक्षों को गिराता तथा पत्तों को खाता हुआ ग्रीष्म की तपन से व्याकुल होकर उस तालाब के भीतर घुसा, उस समय उसके बच्चे तथा हथिनियाँ भी उसी तालाब में प्रविष्ट होकर किलोल करने लगीं। हे राजन्! जिस समय गजेन्द्र अपनी हथिनी तथा बच्चों को अपनी सूँड़ से जल पिला कर किलोल कर रहा था, उसी समय गजेन्द्र से भी अधिक शक्तिशाली एक ग्राह ने आकर जल के भीतर उसका पिछला पाँव पकड़ लिया। तब गजेन्द्र तथा ग्राह में युद्ध होने लगा। कभी तो गजेन्द्र अपने बल से ग्राह को खींचकर सूखी धरती पर ले आता था और कभी ग्राह गजेन्द्र को खींचकर पानी में ले जाता था। इस प्रकार उनको युद्ध करते हुए एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। हथिनी तथा उनके बच्चे बहुत प्रयत्न करने पर भी गजेन्द्र को ग्राह के पञ्जे से न छुड़ा सके। उस समय उन्होंने अधीर होकर अपने मन में यह विचार किया कि अब गजेन्द्र तो ग्राह के पञ्जे से जीवित बचेगा ही नहीं, फिर हम लोग भी इसके साथ रहकर अपने प्राण क्यों दें? ऐसा निश्चय करके वे सब गजेन्द्र को वहीं अकेला छोड़कर वन में चले गये। उस समय तक गजेन्द्र के प्राण कण्ठ में आ चुके थे। जब उसने अपनी पत्नियों तथा बच्चों को भी साथ छोड़कर चले जाते देखा तब वह घबड़ाकर अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि देखो इस महान संकट के समय मेरा कोई भी साथी नहीं है। जान पड़ता है कि पूर्व जन्मों के पापों ने ही ग्राह बनकर मेरा पाँव पकड़ लिया है। मैंने जैसा कर्म किया था, उसी का अब फल भोग रहा हूँ। इधर ये सब देवता तथा गन्धर्व आदि भी अपने-अपने विमानों पर बैठे हुए युद्ध का कौतुक देख रहे हैं, परन्तु इनमें से कोई भी मेरे प्राणों को बचाने का उपाय नहीं करता। इसलिए अब मुझे श्री नारायणजी की शरण में जाना चाहिए; क्योंकि वे काल के भी स्वामी हैं। उन्हीं की कृपा द्वारा मेरे प्राण बच सकते हैं। अपने मन में इस प्रकार विचार करने के उपरान्त गजेन्द्र सच्चे मन से श्री नारायणजी के चरण-कमलों का ध्यान धरने लगा।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा अध्याय

गजेन्द्र का श्री नारायणजी की स्तुति करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! पूर्व जन्म के किसी पुण्य के कारण गजेन्द्र ने श्री नारायणजी का ध्यान धरते हुए इस प्रकार कहा—"मैं उन श्री परब्रह्म प्रभु की शरण हूँ, जिनकी कृपा से संसारी जीवों को चैतन्यता प्राप्त होती है, यह सम्पूर्ण जगत् जिनके द्वारा उत्पन्न होता है तथा जिनके आश्रय में रहता है, वे मेरी रक्षा करें। उन परब्रह्म प्रभु का महाप्रलय में भी विनाश नहीं होता, वे सदैव स्थिर रहते हैं। जिस प्रकार बालक नट तथा भानमती के खिलवाड़ को नहीं पहचानते, उसी प्रकार ब्रह्मा आदि देवता भी उनके आदि अन्त को नहीं जानते हैं। जिस प्रकार अग्नि की चिनगारियाँ उड़ती हैं तथा सूर्य का प्रकाश किसी छिद्र में से देखने पर रज के समान दिखाई देता है, उसी प्रकार उस परब्रह्म प्रभु के समक्ष देवतागण चिनगारी तथा रज-कण के समान हैं; ऐसे श्री नारायणजी को मैं दण्डवत् करता हूँ। जिनके अनेक नाम तथा स्वरूप हैं, परन्तु प्रत्यक्ष में जिनका कोई रूप दिखाई नहीं देता, जो स्वयं मुक्त होकर सब कार्य करते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। जो अविनाशी पुरुष मुझे इस बन्धन से मुक्त कर सकते हैं जो अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष इन चारों पदार्थों को देनेवाले हैं तथा जिनका तेज सम्पूर्ण जीवों में व्याप्त है, ऐसे विश्वव्यापी श्रीराम की शरण में मैं पड़ा हुआ हूँ। जो श्री नारायणजी योगियों को तप तथा जप करने का फल देते हैं, वे ही दीनबन्धु इस समय मेरी भी रक्षा करें। उनके अतिरिक्त अब मुझे किसी अन्य का भरोसा नहीं है। हे महाप्रभो ! मैं केवल इस ग्राह के फन्दे से छूटने के लिए ही आपकी यह स्तुति नहीं कर रहा हूँ। अपितु मैं इस संसाररूपी मायाजाल से निकलने के लिए ही ऐसा कह रहा हूँ। हे परब्रह्म प्रभु ! आप तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाले हैं। आपके अतिरिक्त अन्य किसी में ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो दीनों का दुःख छुड़ा सके। हे विश्वगुरु ! जब तक सांसारिक प्राणी अपनी सामर्थ्य तथा अपने परिवारवालों का भरोसा रखता है, तब तक उसकी कोई इच्छा पूर्ण नहीं होती है। अब तक मैं भी आप की माया में फँसा होने के कारण अपने बल तथा अपनी हथिनी-बच्चों का भरोसा रक्खे हुए था, इसी लिए मैं ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुआ हूँ। अब मैं उनका भरोसा छोड़कर आपकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरण में आया हूँ। हे दीनबन्धो! मुझे अपनी मृत्यु का कोई भय नहीं है, परन्तु यह सोचकर मुझे क्लेश हो रहा है कि संसारी लोग यह समझेंगे कि नारायणजी की शरण में जाने पर भी गजेन्द्र का दुःख दूर नहीं हुआ। अतः इस बात की लज्जा रखते हुए आप मेरा कष्ट दूर कीजिए, अन्यथा कोई भी प्राणी आपकी शरण में नहीं जायगा। हे प्रभु! आप अन्तर्यामी हैं, अतः मैं आपकी और अधिक स्तुति क्या करूँ?"

हे परीक्षित! गजेन्द्र द्वारा की गई इस स्तुति को सुनकर तथा उसे अत्यन्त दुखी जानकर अन्तर्यामी श्री नारायणजी उसी समय अपने हाथ में सुदर्शन चक्र ले, गरुड़ पर बैठकर वैकुण्ठ से चल कर गजेन्द्र के पास जा पहुँचे। जिस समय गजेन्द्र ने यह देखा कि भगवान् वैकुण्ठनाथ मेरी रक्षा करने के लिए हाथ में सुदर्शन चक्र धारण कर, गरुड़ पर सवार हो, आकाश-मार्ग से आ रहे हैं, उस समय उसने अपनी सूँड़ से कमल का एक पुष्प तोड़ लिया। फिर उस फूल को उठाकर ऊँचे स्वर में पुकारने लगा—"हे नारायण, हे विश्व-गुरु, हे दीनबन्धु, हे भगवन्, हे दुःखहारी, हे श्यामसुन्दर, हे ज्योतिःस्वरूप! मैं आपकी शरणागत होकर आपको दण्डवत् करता हूँ। आप मेरी शीघ्र रक्षा करें।" हे परीक्षित! जिस समय श्री नारायणजी ने उस दीन दुखी गजेन्द्र के मुख से यह वचन सुने, उसी समय वे सुदर्शन चक्र सहित गरुड़ पर से कूद, गजेन्द्र की ओर पैदल ही दौड़ पड़े। फिर समीप पहुँचकर उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा ग्राह का मुख चीर कर मार डाला। तत्पश्चात् गजेन्द्र को तालाब से खींचकर बाहर निकाल लिया।"

चौथा अध्याय

ग्राह को गन्धर्व शरीर की प्राप्ति

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिस समय ग्राह की मृत्यु हुई, उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाई तथा श्रीहरि भगवान्, पर पुष्पों की वर्षा की। उस समय ऋषि-मुनि आदि उनकी स्तुति करने लगे। उधर वह ग्राह श्री नारायणजी का स्पर्श पाते ही एक परम सुन्दर तेजस्वी गन्धर्व-शरीर धारणकर वस्त्राभूषण पहिने हुए श्री नारायणजी के चरणों में आकर गिर पड़ा। तदुपरान्त उसने श्रीहरि भगवान् की स्तुति तथा परिक्रमा करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे प्रभो! मैं पिछले जन्म में 'हू हू' नामक गन्धर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था। एक दिन मैं अपनी स्त्रियों सहित विमान पर बैठकर विहार करने के लिए निकला। फिर एक वन में सुन्दर तालाब देखकर, वहाँ अपनी स्त्रियों सहित जल-विहार करने लगा। उसी स्थान पर 'देवल' नामक ऋषि भी स्नान कर रहे थे। परन्तु मैंने अपने अज्ञान तथा स्त्रियों के कहने पर उपहास करने के लिए, पानी में गोता मारकर उन ऋषि का पैर जा पकड़ा तथा उन्हें पानी के भीतर खींच ले गया। जब ये गिर पड़े तो मैं उनका पैर छोड़कर तालाब के बाहर निकल आया और अपनी स्त्रियों सहित हँसने लगा। उस समय देवल ऋषि ने क्रुद्ध होकर मुझे यह शाप दिया कि हे गन्धर्व! तूने उपहास करने के निमित्त हमारे पाँव को ग्राह के समान पकड़कर खींचा था। अतः हम परमेश्वर से यह चाहते हैं कि तू ग्राह का शरीर पाकर जल में निवास करे और पशु तथा मनुष्यों के पाँव पकड़कर खींचा करे। इस शाप को सुनकर मैंने अत्यन्त लज्जित होकर ऋषि से कहा—"हे प्रभो! मैंने अपने किए का फल तो प्राप्त कर लिया, अब आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि इस शाप से मेरा उद्धार कब होगा?" तब ऋषि दयालु होकर बोले—"तू कई सहस्र वर्षों तक ग्राह-योनि में रह कर एक दिन गजेन्द्र का पाँव पकड़ेगा, उस समय श्री नारायणजी गजेन्द्र को बचाने के लिए आवेंगे और अपने सुदर्शन चक्र से तेरा संहार करेंगे। तब तू अपने गन्धर्व-शरीर को पुनः प्राप्त कर लेगा। सो हे प्रभु! उन ऋषि की कृपा से मैं आज आपके दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया। अब आप आज्ञा दें तो मैं अपने लोक को चला जाऊँ।" इतना कहकर वह गन्धर्व श्री नारायणजी से विदा ले, विमान पर बैठकर अपने लोक को चला गया। उसी समय श्रीहरि भगवान् की कृपा से गजेन्द्र ने भी अपने उस शरीर को त्यागकर मुक्ति प्राप्त की। तब वह राजा इन्द्रदमन का स्वरूप हो गया।

हे परीक्षित! जब गजेन्द्र ने अपने पहिले स्वरूप को प्राप्त किया तब वह श्रीहरि भगवान् की परिक्रमा तथा दण्डवत् करके हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! मैं अपने पूर्व जन्म में इन्द्रदमन नामक राजा था। उस समय मैं दिन-रात हरि-भजन में लीन रहकर राज-काज करता था। एक दिन जब मैं जप तथा ध्यान में मग्न था, उस समय अगस्त्य ऋषि मेरे घर पधारे। परन्तु अपने अज्ञान के कारण मैंने उनका कोई आदर नहीं किया और ज्यों का त्यों ध्यानमग्न बैठा रहा। उस समय अगस्त्यजी ने क्रोध करके मुझे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शाप दिया कि हे राजा ! ऐसा किस शास्त्र में लिखा हुआ है कि जब किसी के स्थान पर कोई ब्राह्मण, ऋषि अथवा वैष्णव आवे, उस समय घर का स्वामी उसका कोई आदर न करके मतवाले हाथी की भाँति चुपचाप बैठा रहे ? तूने मेरा निरादर किया है । अतः मैं श्री नारायणजी से यह चाहता हूँ कि तू हाथी का शरीर प्राप्त करे ।" हे प्रभो ! अगस्त्यजी के मुख से यह शाप सुनकर, मैंने अत्यन्त लज्जित होकर उनसे प्रार्थना की—"हे मुनिराज ! मैंने अपने किये का फल तो पा लिया । अब आप कृपाकर यह बताइये कि उस शरीर से मुझे मुक्ति किस प्रकार मिलेगी ?" उस पर मुनि ने उत्तर दिया—"हे राजा ! जब सरोवर में ग्राह तेरे पाँव को पकड़ेगा, उस समय भगवान् वैकुण्ठनाथ तेरी सहायता के लिए आवेंगे और उस ग्राह को मार कर तुझे मुक्ति देंगे ।" हे प्रभो ! इस प्रकार अगस्त्य मुनि की दया से आज मैं आपके दर्शन प्राप्त करके कृतार्थ हुआ हूँ ।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार राजा इन्द्रद्मन ने जब श्रीहरि भगवान् की स्तुति की तब श्री नारायणजी ने प्रसन्न होकर उससे कहा—"हे इन्द्रद्मन ! जो मनुष्य मेरा, तेरा, इस पर्वत का, क्षीर समुद्र, कौस्तुभमणि, मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म का तथा मत्स्य, कच्छप आदि मेरे अवतारों का, गंगा आदि तीर्थों का एवं ध्रुव-प्रह्लाद आदि मेरे भक्तों का रात्रि के पिछले प्रहर में उठकर ध्यान धरेगा, उसे अशुभ स्वप्नों का फल नहीं मिलेगा । जो संसारी प्राणी इस 'गजेन्द्रमोक्ष-स्तुति' का पाठ करेंगे, मैं उन्हें भी अन्त समय में इसी प्रकार की मुक्ति दूँगा, जिस प्रकार कि तेरा उद्धार किया है । इतना कहकर श्रीहरि भगवान् ने राजा इन्द्रद्मन को अपने गरुड़ पर बैठा लिया तथा शंख बजाते हुए वैकुण्ठलोक को चले गये ।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! जिस प्रकार ग्राह ने गजेन्द्र को पकड़ा था, उसी प्रकार संसार के सभी जीव कालरूपी ग्राह के मुख में पड़े हुए हैं । जिस प्रकार गजेन्द्र ने दीन बनकर श्री नारायणजी को पुकारा था तथा श्रीहरि भगवान् ने उसे ग्राह के मुख से छुड़ाया था, उसी प्रकार मनुष्य जब श्री परब्रह्म प्रभु का स्मरण करता है, तब वह जन्म-मरण से छूटकर भवसागर से पार हो जाता है । जो मनुष्य विपत्ति के समय इस गजेन्द्र-मोक्ष के आख्यान का ध्यान करेंगे, उनके सभी दुःख श्री नारायणजी की कृपा से अवश्य दूर हो जायँगे ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाँचवाँ अध्याय

कच्छ अवतार की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! प्रत्येक मन्वन्तर इकहत्तर चतुर्युग का होता है तथा प्रत्येक मन्वन्तर में श्री नारायणजी एक अवतार लेकर धर्म की रक्षा करते हैं। हरि अवतार चौथे मन्वन्तर में हुआ था, उसकी कथा हमने तुम्हें सुनाई। अब अगले मन्वन्तरों का हाल सुनो। पाँचवाँ मनु "रैवत" नामक हुआ, वह "तामस" का भाई था। उसके "बलि", "विलय" आदि मनु के पुत्र हुए, "विभव" नामक इन्द्र हुआ, तथा 'हिरण्यरोम' आदि सप्तर्षि हुए। उस मन्वन्तर में 'शुभर' ऋषि की पत्नी "वैकुण्ठ" नामक स्त्री के गर्भ से "वैकुण्ठ भगवान्" का अवतार हुआ। उन्होंने लक्ष्मीजी के रहने के लिए सुमेरु पर्वत पर सत्यलोक के सामने दूसरे वैकुण्ठ लोक की रचना की। उस अवतार के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। छठे मनु का नाम 'चाक्षुष' हुआ। उसमें 'पुर' आदि मनु के पुत्र हुए, 'मित्ररूप' नामक इन्द्र हुआ, 'अभू' आदि देवता हुए तथा 'हर्यश्वदेव आदि सप्तर्षि हुए। उस मन्वन्तर में 'विराज' की 'देवसम्भूता' नामक स्त्री के गर्भ से 'अजित' नामक श्री नारायण जी का अवतार हुआ। उन्होंने चौदह रत्नों को निकालने के लिए देवता तथा दैत्यों से समुद्र का मन्थन करवाया। समुद्र-मन्थन के समय श्री नारायणजी ने मन्दराचल पर्वत को जो मथानी बनाने के कारण समुद्र में डूबा जा रहा था, अपनी पीठ पर धारण करने के लिए कच्छप अवतार भी ग्रहण किया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से कहा–"हे महामुने! श्री नारायणजी ने अपनी पीठ पर मन्दराचल पर्वत को किस प्रकार धारण किया तथा समुद्र का मन्थन कराकर उससे चौदह रत्न निकालकर, देवताओं को अमृत किस प्रकार पिलाया। वह सभी कथा आप मुझसे कहने की कृपा करें, क्योंकि मेरा मन श्रीहरि के लीला-चरित्रों को सुनने से तृप्त नहीं होता है।" श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! देवता तथा दैत्य दोनों ही कश्यप ऋषि के पुत्र हैं, परन्तु वे परस्पर शत्रुता रखते हैं। किसी समय तो इन्द्र दैत्यों को जीतकर देवताओं के साथ राज्य करता है और किसी समय दैत्य सब देवताओं को जीतकर तीनों लोकों का राज्य करते हैं। जिस प्रकार संसारी जीव पृथ्वी पर चलते-फिरते हैं, उसी प्रकार देव लोक आदि में देवता, ऋषि-मुनि तथा महात्मागण आकाश-मार्ग में चलते-फिरते रहते हैं। एक समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब इन्द्र सिंहासनारूढ़ था, तब वह एक दिन ऐरावत हाथी पर चढ़कर कहीं जा रहा था। मार्ग में दुर्वासा ऋषि को जाते हुए देखकर इन्द्र ने उन्हें दण्डवत् किया। ऋषि ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने कंठ में पड़ी हुई एक पुष्पमाला को उतारकर इन्द्र के पास भेज दिया। जब ऋषि का शिष्य माला लेकर इन्द्र के पास पहुँचा, तब इन्द्र ने उस माला को अपने हाथी के मस्तक पर रख दिया तथा अभिमान में भरकर ऋषि के शिष्य से इस प्रकार कहने लगा कि इससे अधिक सुगन्धित तथा श्रेष्ठ फूल तो देवलोक में होते हैं। अस्तु, हाथी ने उस माला को सूँड़ से नीचे गिरा कर अपने पैरों से रौंद डाला। यह दृश्य देखकर उस शिष्य ने दुर्वासा ऋषि के पास पहुँचकर सब बातें कह सुनाईं। उस समय ऋषि ने क्रोध कर इन्द्र से इस प्रकार कहा—"हे इन्द्र! तूने राज्य तथा धन के अहङ्कार में भरकर मेरी माला का निरादर किया है, इसलिए तेरा राज्य तथा धन नष्ट हो जायेगा।"

हे परीक्षित! दुर्वासा ऋषि के शाप का हाल जब दैत्यों को मालूम हुआ तो उन्होंने इन्द्र पर चढ़ाई करके उसका सब राज्य और धन छीन लिया। उस समय इन्द्र ने सब देवताओं सहित ब्रह्माजी के पास जाकर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे पितामह! दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण हमारा राज्य तथा धन नष्ट हो गया है। अतः आप हमारी सहायता करने की कृपा करें।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ! मुझमें रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है, परन्तु मैं तुम्हें श्री नारायणजी के पास लिए चलता हूँ, उनकी कृपा से ही तुम्हारा दुःख दूर हो सकता है।" इतना कहकर ब्रह्माजी इन्द्र आदि सब देवताओं को साथ लेकर क्षीर-समुद्र के तट पर जा पहुँचे। वहाँ ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे दीनबन्धो! आपकी कृपा के बल पर मैं सब जीवों को उनके कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में जन्म देता हूँ, परन्तु आप अपनी इच्छा से ब्राह्मण तथा हरि-भक्तों का दुःख दूर करने के लिए अवतार धारण करते हैं, उसमें मेरा कोई वश नहीं चलता। इस समय दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण दैत्यों ने देवताओं का राज्य छीन लिया है, अतः सब देवता अत्यन्त दुखी होकर आपकी शरण में आये हैं। आप कृपा कर इनका कष्ट दूर कीजिए। आपसे अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई स्वामी नहीं है, जिसे अपना दुःख सुनाया जाय। हे प्रभो! संसार में आपका 'दीनदयालु' नाम प्रसिद्ध है। अतः आप इन देवताओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को दीन जानकर इनके ऊपर दया कीजिये तथा शरणागत की लाज रखकर सहायक हूजिए।"

छठवाँ अध्याय

श्री नारायणजी का देवताओं को दर्शन देना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् त्रिलोकीनाथ ने सहस्रों सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप धारण कर, गरुड़ पर बैठ, देवताओं के पास आकर उन्हें अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। उस दिव्य प्रकाश को देखकर ब्रह्मा के अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं के नेत्र झँप गये। श्री नारायणजी के सुदर्शन चक्र आदि आठों अस्त्र अपना-अपना स्वरूप धारण किए, उनके चारों ओर खड़े थे। उस समय ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी की दण्डवत्-परिक्रमा करके हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"दे दीनदयालु! जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु तथा आकाश सब आप ही हैं। हम, शिव तथा दक्ष प्रजापति आदि देवता आपके समक्ष एक चिनगारी के तुल्य हैं। अतः हम कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखते। आप सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। आपका आदि-अन्त जानने तथा आपकी महिमा का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। हे प्रभो! अब आप ऐसी कृपा कीजिए जिससे देवताओं का कल्याण हो।" ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर श्री नारायणजी ने जल-विहार करने का विचार करते हुए इस प्रकार कहा—"हे "ब्रह्मा! इन दिनों दैत्यों के भाग्योदय का समय है तथा दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण देवता निर्बल हो रहे हैं। इसलिए अब मेरी राय (समझ) में तो यह उपाय श्रेष्ठ है कि सभी देवता दैत्यों के पास जाकर उनसे स्नेह-प्रीति का सम्बन्ध बढ़ायें, फिर उन्हें क्षीर-समुद्र मथने के लिए प्रेरित करें। मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर वासुकि नाग की रस्सी लगाई जाय। इस प्रकार मन्थन करने से समुद्र में से अत्यन्त श्रेष्ठ चौदह रत्न निकलेंगे। उनमें जो अमृत निकलेगा उसे हम देवताओं को पिला देंगे। अमृत पीने के कारण देवता अमर हो जायँगे और इस प्रकार दैत्यों को जीतकर पुनः अपने राज्य को प्राप्त कर लेंगे।"

श्री नारायणजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर देवताओं ने प्रार्थना की—"हे प्रभो! दैत्य लोग हमसे अधिक बलवान् हैं; अतः समुद्र में से अमृत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निकलने पर यदि उन्होंने उस अमृत को हमसे छीन कर स्वयं पी लिया, उस समय भला हमारा क्या वश चलेगा ?" श्री नारायणजी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! इसके लिए तुम चिन्तित मत होओ। हम किसी भी उपाय से वह अमृत तुम्हीं को पिला देंगे। दैत्यों को परिश्रम करने के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं होगा। अतः तुम लोग उनसे प्रीति करके अपना काम निकाल लो। जिस प्रकार सर्प ने जाल में फँसकर चूहे से मित्रता करके अपना कार्य सिद्ध किया था, (यह कथा महाभारत में विस्तारपूर्वक लिखी हुई है) उसी प्रकार तुम भी अपना कार्य चलाओ। जो लोग मेरी शरण में आते हैं, उनका सभी मनोरथ सिद्ध होता है। परन्तु यह ध्यान रखना कि दैत्य लोग जो बात कहें, उसे तुम मान लेना। विशेष लोभ मत करना। इससे तुम्हारी प्रीति बनी रहेगी।" इतना कहकर श्री नारायणजी वैकुण्ठ लोक को चले गये। तत्पश्चात् सब देवता भी उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर, दैत्यों के राजा बलि के पास जा पहुँचे। देवताओं को आते देखकर राजा बलि ने अपने मन में विचार किया कि आज क्या कारण है जो मेरे शत्रु इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवता बिना अस्त्र-शस्त्र लिए ही मेरी शरण में आ रहे हैं ? आज ये लोग निरस्त्र आये हैं, अतः मैं इनकी बात को मान लूँगा। ऐसा निश्चय करके राजा बलि ने देवताओं के पास आने पर उनसे पूछा—"हे देवताओ ! तुम लोग यहाँ क्यों आये हो, मुझसे अपना सब हाल कहो ?" तब इन्द्र ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! हम और तुम अर्थात् देवता और दैत्य कश्यपजी के पुत्र हैं, इस प्रकार परस्पर भाई-भाई हैं। मैं बहुत समय से यह विचार कर रहा था कि कोई ऐसा उपाय किया जाय, जिससे हम लोगों का कभी वृद्धावस्था अथवा मृत्यु प्राप्त न हो सके तथा हम लोग बहुत सन्तानें उत्पन्न कर सकें। इस विचार से आज मैं सब देवताओं के साथ ब्रह्माजी के पास गया था। ब्रह्माजी हम लोगों को श्री नारायणजी के पास ले गये। श्री नारायणजी ने हमारी इच्छा सुनकर यह कहा कि तुम लोग राजा बलि आदि अपने भाइयों को साथ लेकर क्षीर समुद्र का मंथन करो तो उससे चौदह रत्न निकलेंगे। समुद्र का मंथन करने के लिए मन्दराचल पर्वत की मथानी तथा वासुकि नाग की रस्सी बनाना ठीक रहेगा। जिस प्रकार दही मथने से घी निकलता है, उसी प्रकार समुद्र मन्थन करने से चौदह रत्नों के साथ-साथ अमृत भी निकलेगा। उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan and Kosha

अमृत को पी लेने पर बुढ़ापा तथा मृत्यु का भय दूर हो जायगा और शरीर सदैव तरुणावस्था का बना रहेगा। इसलिए हे भाई बलि! हम लोग तुम्हारे पास आये हैं कि तुम इस कार्य में हमारी सहायता करो, जिससे अमृत पीकर हम देवता तथा दैत्य—दोनों भाई अमर हो जायँ। हे भाई! तुम सब देवताओं के स्वामी बने रहना हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है, हम तुम्हारे अधीन रहेंगे।"

इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर राजा बलि तथा अन्य दैत्यों ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र! इस कार्य में हम तुम्हारी सहायता करने को तत्पर हैं, परन्तु अमृत आदि जो वस्तुएँ समुद्र से निकलेंगी, उन्हें हम आपस में बाँट लेंगे।" देवताओं ने इसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् सब देवता तथा दैत्यों ने मिलकर बड़े परिश्रम से मन्दराचल पर्वत को उखाड़ा। जब वे उसे समुद्र के किनारे ले चलने लगे तब अनेक देवता तथा दैत्य घायल होकर मर गये और सबने हार मानकर पर्वत को मार्ग ही में रख दिया। फिर अपने अहंकार के नष्ट हो जाने पर इस प्रकार श्री नारायणजी का ध्यान एवं स्तुति करना आरम्भ किया—"हे प्रभो! आपकी कृपा के बिना हम लोग इस पर्वत को समुद्र तक नहीं पहुँचा सकते हैं। अतः आप हमारी सहायता करने का कष्ट करें। दीनदयालु श्री नारायणजी ने जब उनकी यह प्रार्थना सुनी तो वे गरुड़ पर बैठकर उन लोगों के पास जा पहुँचे। उस समय सभी देवता तथा दैत्यों ने उन्हें दण्डवत् करते हुए कहा—"हे वैकुण्ठनाथ! इस पर्वत को थोड़ी दूर तक लाने में ही अनेक देवता तथा दैत्य घायल होकर मर गये हैं। अतः हम लोग इसे क्षीर-समुद्र तक ले जाने में असमर्थ हैं, अब आप ही हमारे ऊपर अपनी कृपा करें।" यह सुनकर श्री नारायणजी ने अपनी अमृत दृष्टि से देखकर सभी घायल तथा मरे हुए देवता एवं दैत्यों को जीवित कर दिया। फिर उन्होंने अपने बायें हाथ से मन्दराचल पर्वत को उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख लिया, साथ ही सब देवता तथा दैत्यों को भी गरुड़ की पीठ पर बैठाकर एक क्षण में ही क्षीर-समुद्र के किनारे ले जाकर उतार दिया। पर्वत को उतारने के बाद श्री नारायणजी ने गरुड़ को तो बिदा कर दिया और आप स्वयं वहीं ठहर गये। उस समय सब देवता तथा दैत्य उनकी प्रशंसा एवं स्तुति करने लगे।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सातवाँ अध्याय

क्षीर-समुद्र मन्थन की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब श्री नारायणजी ने क्षीर-सागर के तट पर पहुँचकर देवता तथा दैत्यों को वासुकि नाग को लाने की आज्ञा दी, उस समय उन्होंने पाताल में पहुँचकर वासुकि नाग से इस प्रकार कहा—"हे वासुकि! नारायणजी की आज्ञानुसार तुम्हें मन्दराचल पर्वत से लपेटकर, समुद्र को मथा जायगा। अतः हम लोग तुम्हें बुलाने के लिए आये हैं, तुम हमारे साथ चलो।" यह सुनकर वासुकि ने उत्तर दिया—"हे देवता तथा दैत्यो! पर्वत में लपेटे जाने से मेरे कोमल अङ्गों को अत्यन्त कष्ट पहुँचेगा, अतः मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा।" तब देवता तथा दैत्यों ने कहा—"तुम्हें श्री नारायणजी ने बुलाया है, अतः उनकी आज्ञा मान-कर तुम्हें अवश्य चलना चाहिए।" यह सुनकर वासुकिनाग लाचार होकर उनके साथ चलकर श्री नारायणजी के पास जा पहुँचा। उस समय श्री त्रिलोकी-नाथ ने कहा—"हे वासुकि! तुम चिन्तित मत होओ। मन्दराचल पर्वत में लपेटे जाने से तुम्हें कोई दुःख न होगा, फिर अमृत निकलने पर तुम्हें भी उसका भाग मिलेगा।" वासुकि ने यह आज्ञा शिरोधार्य कर ली तब देवता तथा दैत्यों ने मन्दराचल पर्वत को वासुकि नाग से लपेटकर समुद्र में डाल दिया। उस समय मन्दराचल पर्वत पानी पर न ठहरकर समुद्र में डूबने लगा। यह देखकर देवता तथा दैत्यों ने श्री नारायणजी से इस प्रकार कहा—"हे महाप्रभो! यह पर्वत तो समुद्र में डूब जाता है। हमारी कोई शक्ति काम नहीं देती। अब समुद्र-मन्थन का कार्य किस प्रकार होगा?" यह सुनकर श्री भगवान् वैकुण्ठनाथ ने कच्छप (कछुए) का एक दूसरा रूप धारण कर लिया। वह कच्छप का स्वरूप एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा था। उसने मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर उठा लिया। इस प्रकार जब पर्वत जल पर ठहर गया तब श्री नारायणजी ने देवता तथा दैत्यों से कहा—"तुम सब लोग पहिले गणेशजी का पूजन करो, जिससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। गणेशजी की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है कि एक दिन पार्वतीजी बैठी हुई भगवान् शिव-शंकर को पंखा झल रही थीं, उसी समय उनके एक बालक उत्पन्न हुआ। पार्वतीजी जब उस बालक को प्रेमपूर्वक देखने लगीं, उस समय उनके हाथ से पंखा गिर पड़ा। यह देखकर श्री शिवजी ने क्रुद्ध होकर उस बालक के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर अपने त्रिशूल का प्रहार किया। त्रिशूल लगने के कारण उसका मस्तक कटकर न जाने कितनी दूर जा गिरा। उस समय पार्वतीजी ने शिवजी से इस प्रकार कहा कि यह मेरा पुत्र था, आपने इसे क्यों मार डाला? अब या तो आप इसे जीवित कर दीजिए, अन्यथा मैं भी अपना शरीर त्याग दूँगी। यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे पार्वती! इस बालक का मस्तक तो बहुत दूर चला गया। अब जो जीव उत्तर दिशा की ओर सिर करके मरा हुआ पड़ा हो यदि उसका सिर मिल जाय तो मैं उसे जीवित कर दूँगा।" उस समय पार्वतीजी ने किसी ऐसे जीव का सिर लाने के लिए गणों को आज्ञा दी। गणों ने जब खोज की तो उन्हें उत्तर दिशा की ओर सिर करके पड़ा हुआ एक मरा हुआ हाथी मिला, वे उसी का सिर ले आये। शिवजी ने उस हाथी के सिर को बालक के धड़ से जोड़ कर कहा—"उठ बैठ"। शिवजी के इतना कहते ही वह बालक फिर से जीवित होकर उठ बैठा। तब शिवजी ने उस बालक का नाम गणेश रखकर, उसे ऐसा वरदान दिया कि आज से तीनों लोकों में जिस किसी के यहाँ शुभ कार्य हो, वह यदि सर्वप्रथम गणेश का पूजन करके कार्य को आरम्भ करेगा तो वह भली भाँति सम्पन्न होगा। उसी दिन से सब लोग प्रत्येक कार्य में सर्वप्रथम गणेशजी का पूजन करते हैं।"

श्री नारायणजी के ऐसे वचन सुनकर सब देवता तथा दैत्यों ने भी गणेशजी का पूजन किया। तत्पश्चात् भगवान् वैकुण्ठनाथ ने देवताओं को वासुकि नाग का सिर, और दैत्यों को पूँछ पकड़ने की आज्ञा दी। उस समय दैत्यों ने अभिमान में भर इस प्रकार कहा—"हम लोग देवताओं से किसी बात में कम नहीं हैं, जो हम लोग वासुकि नाग के अशुद्ध अङ्ग पूँछ को पकड़ें, हम तो सिर पकड़ेंगे?" यह सुनकर श्री नारायणजी ने दैत्यों को सिर तथा देवताओं को पूँछ पकड़ने की आज्ञा दे दी। तदनन्तर सभों ने मिलकर समुद्र को दही के समान मथना आरंभ कर दिया। उस समय कच्छप भगवान् को अपनी पीठ पर मन्दराचल पर्वत का घूमना ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कोई पीठ खुजला रहा हो। अस्तु, समुद्र मथते समय जब दैत्यों ने वासुकि नाग के सिर को खींचा, उस समय उसकी फुफकार से एक ऐसी ज्वाला निकली जो दैत्यों का मस्तक जलाने लगी। यह देखकर दैत्यों ने कहा—"अब हम लोग इसकी पूँछ पकड़ेंगे।" परन्तु उसी समय नारायणजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने उन्हें यह उत्तर दिया कि जो बात तुमने अपनी इच्छा से स्वीकार की थी, अब उसी पर अटल रहना ठीक है, उसे छोड़ने से काम न चलेगा। लाचार दैत्यों को वही मुँह पकड़े रहना पड़ा, जिनसे उन्हें बहुत कष्ट हुआ।

हे परीक्षित! जब देवता तथा दैत्य समुद्र को मथते-मथते थक गये, तब उन्होंने नारायणजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! अब हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो हम समुद्र को और इसी प्रकार मथते रहें। यह सुनकर श्री नारायणजी ने उन्हें अपना थोड़ा-सा बल देकर, धैर्य प्रदान किया, तब वे फिर नये उत्साह से समुद्र को मथने लगे। तदनन्तर सर्वप्रथम समुद्र से ऐसा 'हलाहल विष' उत्पन्न हुआ, जिसकी गर्मी पाकर समुद्र के सभी जल-जीव व्याकुल हो उठे। उसे देखकर देवता तथा दैत्यों ने श्री नारायणजी से प्रार्थना की—"हे प्रभो! आप इस तीक्ष्ण विष को रखने का कोई उपाय शीघ्र ही कीजिए, अन्यथा हम लोग इसकी गर्मी से मर जायँगे।" यह सुनकर श्री त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया—"शिवजी के अतिरिक्त अन्य किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वह इस विष को ग्रहण कर सके। अतः तुम लोग उन्हीं की प्रार्थना करो।" उस समय सब देवता तथा दैत्यों ने हाथ जोड़कर शिवजी से कहा—"हे महाप्रभो! इस विष की गर्मी से तीनों लोकों के जीव जलकर भस्म हो जाना चाहते हैं, अतः आप इसे अङ्गीकार कीजिए। आपके अतिरिक्त अन्य किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो इस विष की तीक्ष्णता को सहन कर सके।" यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने अपने मन में विचार किया कि मैं वैष्णव हूँ, जो पराये दुःख को देखकर उसका निवारण न करे, उसे वैष्णव नहीं कहना चाहिए। अतः मुझे इनका कष्ट मिटाना ही उचित है। ऐसा विचार करके जब शिवजी ने पार्वती की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा, उस समय पार्वतीजी ने उनसे कहा—"हे प्रभो! ये लोग आपकी शरण में आये हैं, अतः जिस प्रकार इनका कल्याण हो, आप वही उपाय कीजिए।" तदनन्तर श्री त्रिलोकीनाथजी ने भी शिवजी से इस प्रकार कहा—"हे शिवजी! ये सब तो देव हैं और आप महादेव हैं, अतः समुद्र से जो वस्तु सर्वप्रथम निकली है, वह आप ही को भेंट होनी चाहिए, इसलिए आप इस विष को ग्रहण करें। सम्पूर्ण जीवों का कष्ट दूर करने के लिए आपको यह हलाहल स्वीकार कर ही लेना चाहिए।" यह सुनकर श्री महादेवजी ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया—"सत्य है, उस हलाहल विष को मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतिरिक्त अन्य कोई नहीं पी सकता है। अब यदि मैं इसे अपने पेट में उतारूँ तो हृदय में स्थित मेरे आराध्यदेव श्री रामचन्द्रजी को कष्ट पहुँचेगा, इसलिए मैं इस विष को अपने कण्ठ में ही रख लेता हूँ। इतना कहकर महादेवजी ने समुद्र के फेन के समान उस सम्पूर्ण हलाहल विष को एक बार में ही अपने मुख में रख लिया। जो थोड़ा-सा विष मुख में डालते समय नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा था, उससे सिंगिया तथा बच्छनाग आदि विषों की उत्पत्ति हुई। महादेवजी ने उस विष को अपने कण्ठ में रख लिया, इस कारण उनका कण्ठ नीला हो गया। उस समय से संसार में उनका नाम 'नीलकण्ठ' प्रसिद्ध हुआ। इसके पश्चात् जब श्री नारायणजी ने अपनी कृपादृष्टि द्वारा देवता तथा दैत्यों की ओर देखा तो हलाहल विष की सम्पूर्ण गर्मी उनके शरीर से दूर हो गई। उस समय सभी देवता तथा दैत्यों ने शिवजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।"

आठवाँ अध्याय

समुद्र से कामधेनु तथा अमृत आदि की उत्पत्ति का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! श्री नारायणजी की आज्ञा पाकर जब सब देवता तथा दैत्य फिर समुद्र को मथने लगे, उस समय समुद्र से दूसरी बार 'कामधेनु' नामक एक अत्यन्त सुन्दरी गौ उत्पन्न हुई। नारायणजी ने उस गौ की प्रशंसा करते हुए कहा—"इस गौ से जो भी संसारी वस्तु माँगी जाय, वह प्राप्त हो सकती है।" यह सुनकर देवता तथा दैत्य दोनों ने ही उस गौ को लेना चाहा। यह देखकर श्री त्रिलोकीनाथ ने कहा—"यह गौ ब्राह्मणों तथा ऋषियों को देनी चाहिए। वे लोग वन में रहकर कंद, मूल, फल द्वारा अपना पेट भरकर दिन-रात हरि-स्मरण करते हैं, परन्तु विवाह अथवा यज्ञ आदि करते समय उन्हें राजा के पास जाकर भिक्षा माँगनी पड़ती है। यदि यह गौ उनके पास रहेगी तो वे लोग निश्चिन्त होकर अपना काम कर सकेंगे। वेद-शास्त्रों में भी यही लिखा है कि यदि कोई मनुष्य किसी कार्य को करे, तो उसमें होनेवाले पहले लाभ में से ब्राह्मण को कुछ न कुछ दान अवश्य दे, इससे उसका मनोरथ सिद्ध होता है। इन सब बातों पर विचार करके यह गौ ब्राह्मणों को दे देना ही उचित है।" यह कहकर श्री नारायणजी ने उस गौ को वशिष्ठ, दुर्वासा आदि ऋषियों को सौंपते हुए कहा—"आप लोग इसे ले जाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवलोक में रक्खें। जब ब्राह्मणों अथवा ऋषि-मुनियों को किसी वस्तु की इच्छा हो तब वे इस गौ को अपने स्थान पर ले जाकर इच्छित वस्तु प्राप्त कर लें, तदनन्तर इसे फिर देवलोक में ही पहुँचा दिया करें।" जब ऋषियों ने उस गौ को ले लिया तब नारायणजी ने सबको सुनाकर इस प्रकार कहा—"अब समुद्र से जो वस्तुएँ निकलें, उनमें से एक को देवता ले लें तथा दूसरी को दैत्य ले लें।" अस्तु, तीसरी बार समुद्र से उच्चैःश्रवा नामक एक परम सुन्दर श्वेत घोड़ा निकला। दैत्यों ने उसे देखकर कहा—"यह घोड़ा राजा बलि के चढ़ने योग्य है, अतः यह हमें मिलना चाहिए।" यह सुनकर नारायणजी ने वह घोड़ा दैत्यों को दे दिया। चौथी बार चार दाँतोंवाला ऐरावत नामक श्वेत वर्ण हाथी निकला। नारायणजी ने उसे देवताओं को दे दिया। उसे देखकर दैत्य फिर कहने लगे—"यह हाथी हमें दे दीजिए और इसके बदले घोड़ा ले लीजिए।" परन्तु श्री त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया—"जो बात एक बार निश्चित हो गई उससे फिरना नहीं चाहिए।" निदान दैत्य चुप हो गये। पाँचवीं बार अत्यन्त तेजस्वी परम सुन्दर कौस्तुभमणि निकली। उसे देखकर श्री नारायणजी ने कहा—"इसे हम लेंगे।" सब देवता तथा दैत्यों ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके, वह मणि श्री वैकुण्ठनाथ को दे दी। श्री नारायणजी ने उसे अपनी माला में पिरोकर गले में पहिन लिया। छठवीं बार 'पारिजात' नामक वृक्ष की उत्पत्ति हुई। श्रीहरि ने उसके गुण बताते हुए कहा—"इस वृक्ष से जो वस्तु माँगी जाय, यह वही देगा।" यह सुनकर दैत्यों ने उस वृक्ष को ले लिया।

हे परीक्षित! यदि कोई यह जानना चाहे कि वह वृक्ष फिर देवलोक से कैसे जा पहुँचा, तो उसे यह समझना चाहिए कि समुद्र से चौदह रत्न निकालने के पश्चात् जब देवता तथा दैत्यों में फिर युद्ध हुआ तथा दैत्य परास्त हो गये उस समय देवता दैत्यों को जीतकर उस वृक्ष को देवलोक में ले गये थे। अस्तु, सातवीं बार समुद्र से 'रम्भा' नामक परम सुन्दरी अप्सरा की उत्पत्ति हुई। वह किसी को नहीं मिली। वेश्या बनकर सबकी हो रही। आठवीं बार 'लक्ष्मी' नामक परम सुन्दरी स्त्री की उत्पत्ति हुई। वह अपने दायें हाथ में कमल तथा बायें में माला लिए हुए, सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत थीं। उनके स्वरूप को देखकर श्री नारायणजी के अतिरिक्त सभी देवता तथा दैत्य आसक्त हो गये और समुद्र को मथना छोड़कर उनके चारों ओर घिर आये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा सभी लोग उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करने लगे। उस समय लक्ष्मीजी ने स्वयं इस प्रकार कहा–"मुझे कोई बलपूर्वक अपने पास नहीं रख सकता है। जिस पुरुष में सम्पूर्ण गुण होंगे, मैं उसी के पास रहूँगी। मेरे लिए देवता तथा दैत्य दोनों एक समान हैं। तुम सब देवता, दैत्य, ऋषि, तपस्वी, ब्राह्मण तथा गन्धर्व आदि अपनी अलग-अलग पंक्तियों में बैठ जाओ। मैं जिसे चाहूँगी उसे स्वयं वरमाला डालकर वरण कर लूँगी।" यह सुनकर सब लोग अपनी-अपनी पंक्ति बनाकर बैठ गये। उस समय लक्ष्मीजी ने सर्वप्रथम दैत्यों की ओर देखकर कहा–"इनका राज्य सदैव स्थिर नहीं रहता है, ये लोग महा अभिमानी तथा पापी होते हैं, अतः मैं इनके पास नहीं रहूँगी।" फिर तपस्वी तथा ऋषियों की ओर देखकर बोलीं–"ये महा क्रोधी होते हैं, थोड़ा-सा अपराध होने पर भी बड़ा भारी शाप दे डालते हैं। अतः मैं इन्हें भी स्वीकार नहीं करूँगी।" फिर ज्ञानियों की ओर देखकर कहने लगीं–"ये लोग नियम तथा आचार से न रहकर मनमाना काम करते हैं। अतः मुझे ये भी पसन्द नहीं हैं।" फिर देवताओं की ओर देखकर बोलीं–"ये लोग दुर्बल हैं। जब इन पर विपत्ति पड़ती है, तब ये नारायणजी की शरण में जाकर उनकी सहायता लेते हैं, इसलिए इन्हें स्वीकार करना भी ठीक नहीं है।"

हे परीक्षित! जिस समय लक्ष्मी इस प्रकार कह रही थीं, उसी समय पृथ्वी ने एक अत्यन्त सुन्दर रत्नजटित सिंहासन लाकर उस पर लक्ष्मी को बैठाया। तत्पश्चात् गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियाँ स्त्रीरूप धारण कर, स्वर्ण-कलशों में अपना-अपना जल भर कर वहाँ ले आईं। कामधेनु गौ ने अपना दूध, दही, गोबर, गोमूत्र तथा घृत मिलाकर पंचगव्य बनाया। तब पृथ्वी ने पंचगव्य एवं तीर्थों के जल से लक्ष्मीजी को स्नान कराया और उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर, शृङ्गार कर दिया। इतना हो चुकने के बाद लक्ष्मीजी ने ब्रह्मा की ओर देखकर कहा–"ये वृद्ध हैं, इन्हें कैसे स्वीकार करूँ?" फिर इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवताओं को देखकर बोलीं–"इनको आठों प्रहर अपनी पद-वृद्धि की इच्छा बनी रहती है, अतः ये लालची मेरे योग्य नहीं हैं। तदनन्तर लोमश आदि ऋषियों की ओर देखकर कहा–"इन लोगों की आयु इतनी बड़ी है कि कितने ही ब्रह्मा इनके सामने उत्पन्न होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। दीर्घायु होने के कारण न तो ये अशुभ कर्म करने से डरते हैं और न इन्हें अपनी मृत्यु का ही भय रहता है, इसलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्यु के भय से कुकर्म न करने का भय इन्हें नहीं है। ये मेरे योग्य नहीं हैं।" इस प्रकार सबके गुण-दोषों का विवेचन करके लक्ष्मीजी श्री नारायणजी के सम्मुख जा पहुँचीं तथा उनके रूप, तेज, बल तथा गुणों को देखकर इस प्रकार कहने लगीं—"ये त्रिलोकीनाथ सब गुणों से परिपूर्ण हैं, यद्यपि इनमें एक दोष यह भी है कि इन्हें न तो किसी संसारी वस्तु की इच्छा होती है और न ये किसी से मोह ही रखते हैं। इनकी कृपा प्राप्त करना भी कुछ जप-तप के अधीन ही नहीं है। देखो, जो उद्धव भक्त जीवन भर इनकी सेवा करता रहा, उसे इन्होंने यह आज्ञा दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर तप करो, तब तुम्हें मुक्ति मिलेगी। इसके विपरीत जिस व्याध ने इनके पैर में बाण मारा था, उसे इन्होंने उसी समय विमान पर बैठाकर वैकुण्ठलोक को भेज दिया। परन्तु इन सब दोषों के होते हुए भी इनसे अधिक उत्तम पुरुष तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है, इसलिए मैं इन्हींके चरण-कमलों की सेवा करके अपना जीवन धन्य करूँगी।" इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मीजी ने अपने हाथों की माला को श्री नारायणजी के गले में डाल दिया। उस समय श्री त्रिलोकीनाथ ने लक्ष्मीजी से कहा—"हे लक्ष्मी! तू आठों प्रहर मेरे हृदय में निवास करेगी।" यह देखकर सब देवता तथा दैत्य भी अत्यन्त प्रसन्न होकर कह उठे—"हे लक्ष्मीजी! आपने श्री नारायणजी के गले में माला डालकर बहुत श्रेष्ठ कार्य किया है।"

हे परीक्षित! इसके पश्चात् उसी समय समुद्र ने मनुष्य का स्वरूप धारण कर, वेद-विधिपूर्वक लक्ष्मीजी का विवाह श्री नारायणजी के साथ कर दिया। उस समय लक्ष्मीजी को विश्वकर्मा ने आभूषण पहिनाये। पृथ्वी ने मुक्ता एवं रत्नों की माला दी तथा नागों ने कुण्डल भेंट किये। ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं ने आनन्दित होकर श्री नारायणजी तथा लक्ष्मीजी पर पुष्पों की वर्षा की। देवता तथा दैत्यों ने प्रसन्नतापूर्वक दुन्दुभी बजाई। इन्द्र की अप्सराओं ने आकाश में नृत्य किया। गन्धर्वों ने गीत गाये तथा तीनों लोकों में मंगलाचार हुए। लक्ष्मीजी के दर्शन प्राप्त होने के कारण देवता तथा दैत्यों के शरीर में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर श्री नारायणजी की आज्ञा पाकर देवता तथा दैत्यों ने फिर समुद्र को मथना आरम्भ कर दिया। तब नवीं बार समुद्र के गर्भ से कन्यारूपा 'वारुणी' की उत्पत्ति हुई। उसे दैत्यों ने ग्रहण कर लिया। दसवीं बार एक अत्यन्त सुन्दर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेजस्वी श्री नारायणजी के अवतार तथा यज्ञ में भाग प्राप्त करनेवाले धन्वन्तरि नामक वैद्य की उत्पत्ति हुई। उस पुरुष के एक हाथ में 'अमृत' तथा दूसरे हाथ में 'हरीतकी' (हरड़) थी। उसे देखते ही देवताओं तथा दैत्यों ने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा—"जिस अमृत के लिए हमने इतना परिश्रम किया था, वह हमें अब प्राप्त हुआ है।" उसी समय एक दैत्य ने आगे बढ़कर उस अमृत-कलश को धन्वन्तरि के हाथ में से छीन लिया। यह अनर्थ देखकर देवताओं ने दैत्यों से कहा—"इसमें आधा भाग हमारा भी है।" तब दैत्यों ने अधर्मपूर्वक उत्तर दिया—"हमारे पीने के उपरान्त जो अमृत शेष बचेगा, उसे हम तुम लोगों को दे देंगे।" यह सुनकर देवताओं ने श्री नारायणजी से शिकायत की। उस समय भगवान् त्रिलोकीनाथ ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे देवताओ! तुम्हारे कहने से ये लोग अमृत कभी नहीं देंगे, परन्तु मैं अपनी माया से कोई उपाय करके तुम्हें सब अमृत पिला दूँगा। तुम चिन्ता मत करो।" श्री नारायणजी के ऐसे वचन सुनकर देवताओं ने धैर्य धारण किया। उधर जो दैत्य अमृत के कलश को धन्वन्तरि से छीन ले गये थे, वे परस्पर छीना-झपटी करने लगे। उनमें जो एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली होता, वही अमृत-कलश को छीन लेता था परन्तु किसी को इतना समय नहीं मिल पाता था, जो वह उस अमृत को पी सके। हे राजन्! जिस समय दैत्यों में इस प्रकार छीना-झपटी चल रही थी, उसी समय श्री नारायणजी परम सुन्दरी स्त्री का मोहिनी रूप बनाकर वहाँ प्रकट हुए। वे उत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत थे तथा देवता और दैत्यों के बीच में होकर चल रहे थे। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन्! मोहिनी रूप उसे कहा जाता है, जिसे देखते ही देवता, दैत्य, मनुष्य, योगी, यति, ऋषि-मुनि सब मोहित होकर विह्वल हो जायँ। त्रैलोक्याधिपति भगवान् वैकुण्ठनाथ ने उस समय ऐसा ही मोहिनी रूप धारण किया था।"

नवाँ अध्याय

मोहिनी अवतार द्वारा दैत्यों से अमृत-कलश लेना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब देवताओं ने तथा दैत्यों ने उस भगवान् मोहिनी रूप को अपनी ओर आते हुए देखा, तो वे उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमृत को पीना भूलकर, उनके रूप पर आसक्त हो गये। जब वह सुन्दरी स्त्री दैत्यों की ओर कटाक्ष करती हुई चली, तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर परस्पर इस प्रकार कहा—"हमारे बड़े भाग्य हैं, जो यह परम सुन्दरी स्त्री जिसके समान तीनों लोकों में कोई अन्य स्त्री न होगी, हमारी ओर ही चली आ रही है। हम लोग अमृत पीने के लिए जो आपस में झगड़ा कर रहे हैं, उसे निपटाने के लिए यदि इसी सुन्दरी को पञ्च बना दिया जाय तो वह सर्वोत्तम रहेगा। हम लोगों को चाहिए कि अमृत का कलश इसी के सामने रख दें, तब यह जिस प्रकार बाँट कर पिला दे, उसी प्रकार सब लोग पी लें। यों परस्पर कलह करना उचित नहीं है।" ऐसा निश्चय करके दैत्यों ने अमृत के कलश को मोहिनी भगवान् के पास ले जाकर कहा—"हे सुन्दरी! हम लोग इस अमृत को पीने के लिए आपस में झगड़ा कर रहे हैं। अतः हम सब तुम्हें अपनी इच्छा से पञ्च चुनकर यह चाहते हैं कि तुम अपने हाथ से इस अमृत को बाँट कर सब लोगों को पिला दो।" दैत्यों की बात सुनकर मोहिनी भगवान् ने जब कोई उत्तर न दिया और उनकी उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ने लगे, उस समय सभी दैत्यों ने उनके चरणों पर गिरकर फिर इस प्रकार कहा—"हे परम सुन्दरी! तुम इस प्रकार उपेक्षा मत करो। हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर हमें अमृत पिला दो।" यह सुनकर मोहिनी भगवान् दैत्यों की ओर देखकर कुछ मुस्कुरा दिये। उस मुस्कुराहट को देखकर सभी दैत्य अधीर हो उठे। उस समय मोहिनी भगवान् ने उन्हें अपने ऊपर अत्यधिक आसक्त जानकर इस प्रकार कहा—"तुम लोग मुझ अपरिचित वेश्या को अमृत बाँटने के लिए पञ्च क्यों बना रहे हो? ज्ञानी लोगों को वेश्या का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि तुम हठ करते ही हो तो मेरा कहना है कि मैं इस अमृत के निकालने में तुम्हारा तथा देवताओं का परिश्रम बराबर का समझती हूँ, अतः यदि तुम इसे स्वीकार कर सको कि मैं तुम्हें तथा देवताओं को आधा-आधा अमृत पिला दूँ, तो मैं इस काम को कर सकती हूँ अन्यथा अधर्म की पञ्चायत मुझे स्वीकार नहीं है।" यह सुनकर दैत्य बोले—"हे प्राणप्रिये! तुम सत्य कह रही हो। अब तक हम लोग अधर्मपूर्वक अकेले ही सब अमृत को पी जाना चाहते थे, परन्तु अब हम तुम्हें अपना पञ्च बनाकर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम जिस प्रकार उचित समझो, इसका बाँट कर दो। हमें उसमें कोई आपत्ति न होगी।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित! जब मोहिनी भगवान् ने यह देख लिया कि अब दैत्य पूरी तरह से मेरे वशीभूत हो चुके हैं तब उन्होंने दैत्यों तथा देवताओं से कहा—"पहिले तुम लोग स्नान करके पवित्र हो जाओ, फिर अग्नि में आहुति देकर कुश के आसन पर अलग-अलग पंक्तियाँ बनाकर बैठ जाओ। उसके बाद मैं तुम लोगों को अमृत बाँट कर पिला दूँगी।" यह सुनकर सब देवता तथा दैत्य स्नान आदि से निवृत्त हो, पंक्तियाँ बनाकर बैठ गये। उस समय मोहिनी भगवान् ने दैत्यों से कहा—"मैं पहिले देवताओं को अमृत पिलाऊँगी, उसके बाद तुम्हें पिलाऊँगी।" दैत्यों को कुछ पता तो था नहीं, वे तो उनके सुन्दर स्वरूप पर आसक्त हो रहे थे। अतः अधीर होकर बोले—"हे प्रिये! हमें तुम्हारी सब बातें स्वीकार हैं, तुम जैसा चाहो वैसा करो।" यह सुनकर मोहिनी भगवान् अमृत का कलश उठाकर देवताओं की पंक्ति में जा पहुँचे तथा उन्हें अमृत पिलाना आरम्भ कर दिया। देवताओं को अमृत पिलाते समय वे पीछे की ओर बैठे हुए दैत्यों को मुड़-मुड़कर अपनी तिरछी चितवन से देखते जाते थे, जिसके कारण सभी दैत्य अमृत का ध्यान भुलाकर मत-वाले बन गये थे। जिस समय मोहिनी भगवान् सब देवताओं को अमृत पिलाने के पश्चात् अन्तिम पंक्ति में बैठे हुए सूर्य तथा चन्द्रमा के समीप पहुँचे उस समय 'राहु' नामक दैत्य ने अमृत के कलश की ओर देखकर अपने मन में यह विचार किया कि इस स्त्री ने हम लोगों को अपने स्वरूप से मोहित करके सारा अमृत देवताओं को पिला दिया तथा हमें अमृत पीने से वञ्चित रक्खा है। अतः मुझे किसी प्रकार अमृत पी लेना चाहिए। इस प्रकार मन में सोचकर, राहु ने अपना स्वरूप देवताओं के समान बना लिया तथा सूर्य एवं चन्द्रमा के बीच में बैठकर अमृत पी लिया। उस समय सूर्य तथा चन्द्रमा ने राहु के रहस्य को पहिचान कर मोहिनी भगवान् से चिल्लाकर कहा—"यह दैत्य है, यह छल करके आ बैठा है।" यह सुनते ही मोहिनी भगवान् ने बचे हुए अमृत को चन्द्रमा पर गिराकर अपने सुदर्शन चक्र से राहु का मस्तक काट दिया। परंतु अमृत पीने के प्रभाव से वह दैत्य मरा नहीं। इसके विप-रीत सिर तथा धड़ दो अलग-अलग स्वरूपों में उठकर खड़ा हो गया। यह देखकर सूर्य तथा चन्द्रमा ने मोहिनी भगवान् से कहा—"हे प्रभो! अब इसे और न मारें, अन्यथा इसके शरीर के जितने टुकड़े होंगे, यह उतने ही स्वरूपों में जीवित रहेगा।" यह सुनकर मोहिनी भगवान् ने राहु से कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे राहु ! तूने देवताओं के बीच में बैठकर अमृत पी लिया है, अतः अब अपने दैत्य स्वभाव को छोड़ दे और सूर्य आदि सात ग्रहों के साथ-साथ अपनी पूजा लिया कर।" उस दिन से सात के स्थान पर नौ ग्रह हो गये। उस दैत्य के मस्तक को 'राहु' तथा धड़ को 'केतु' कहा जाता है।

हे परीक्षित ! सूर्य तथा चन्द्रमा द्वारा भेद बतलाये जाने के कारण मोहिनी भगवान् ने राहु का मस्तक काटा था, इस शत्रुता के कारण ही वह अमावस्या के दिन सूर्य को तथा पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा को निगलने का उपक्रम करता है। उसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण कहते हैं। उस समय श्री नारायणजी की आज्ञानुसार सुदर्शन चक्र सूर्य तथा चन्द्रमा की रक्षा करता है। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! देवताओं को अमृत पिलाने के पश्चात् मोहिनी भगवान् ने सुदर्शन चक्र को तो सूर्य तथा चन्द्रमा की रक्षा करने के लिए वहीं छोड़ दिया और आप अन्तर्धान हो गये। भगवान् वैकुण्ठनाथ ने इस विचार से दैत्यों को अमृत नहीं पिलाया था कि अमृत पी लेने पर अमर होकर वे संसारी जीवों को और अधिक कष्ट पहुँचाते। उन्हें अमृत पिला देना साँप को दूध पिलाने के समान ठहरता।"

दसवाँ अध्याय

देवता तथा दैत्यों में युद्ध होना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! अमृत निकालने में देवताओं तथा दैत्यों का बराबर का श्रम था, परन्तु श्री नारायणजी जिसे जो देते हैं, वही पाता है। मनुष्य अपने लाभ के लिए अनेक प्रयत्न करता है, परन्तु जिसके ऊपर श्री त्रिलोकीनाथ की कृपा होती है, वही अपने मनोरथ को पाता है। उनकी इच्छा के बिना मनुष्य का सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है। ऐसी ही दशा दैत्यों की भी हुई। हे राजन् ! जब मोहिनी भगवान् अन्तर्धान हो गये, उस समय सब दैत्य चैतन्य होकर कहने लगे—"वह सुन्दरी स्त्री देवताओं को अमृत पिलाने के बाद कहाँ चली गई ?" तब उनमें जो दैत्य बुद्धिमान् था उसने इस प्रकार उत्तर दिया—अरे मूर्खो ! तुम्हारे हाथ सम्पूर्ण अमृत लगा था, परन्तु तुमने उस अमृत-कलश को एक स्त्री के स्वरूप पर मोहित होकर उसे दे दिया। वे मोहिनी स्त्री के स्वरूप में नारायण थे। उन्होंने देवताओं की सहायता करने के लिए हमें धोखा दिया और स्वयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सारा अमृत देवताओं को पिला दिया।" यह बात समझ में आते ही सभी दैत्य अत्यन्त क्रोध करके देवताओं से युद्ध करने के लिए तय्यार हो गये। तब देवताओं ने भी युद्ध की तय्यारी कर ली। देवताओं के राजा इन्द्र ने ऐरावत हाथी पर बैठकर चंद्रमा, सूर्य, वरुण, कुबेर आदि सेनापतियों को अपने साथ ले लिया। वे लोग श्रेष्ठ आभूषण तथा वस्त्र पहिने हुए, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को लिए, रथ, हाथी, घोड़े, विमान आदि पर बैठकर युद्ध-क्षेत्र में आ पहुँचे। उधर दैत्यों का राजा बलि श्रेष्ठ वस्त्राभूषण पहिन, मयदानव द्वारा निर्मित 'प्रकाश' नामक आकाशगामी विमान पर बैठ, रण-भूमि में आ पहुँचा। उसके हयग्रीव, द्विमूर्धा, विप्रचित्ती, कालनेमि आदि सेनापति भी उत्तम वस्त्राभूषणों को धारण कर अनेक प्रकार के शस्त्र बाँध बाघ, पक्षी, मछली तथा विमान आदि पर बैठ युद्ध-क्षेत्र में आ गये। उस समय दोनों ओर की सेनाओं में मारू बाजा बजने लगा तथा अनेक रंगों की ध्वजाओं के कारण ऐसा लगने लगा, मानों वहाँ दूसरा क्षीर-समुद्र प्रकट हो गया हो। दोनों ओर इतनी सेना थी कि उसकी संख्या नहीं गिनी जा सकती थी।

हे परीक्षित! तत्पश्चात् देवता तथा दैत्य समान शत्रु को देख-देखकर परस्पर युद्ध करने लगे। सवार से सवार तथा पैदल से पैदल लड़ उठे। दोनों ओर से तलवार, भुशुण्डी, चक्र, साँग, तीर, परिघ, त्रिशूल आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। राजा इन्द्र तथा बलि में साँग, वज्र एवं त्रिशूल आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रों द्वारा ऐसा घोर संग्राम हुआ जिसमें शोणित की नदी बह उठी। चारों ओर शस्त्रों की घटा घिर आई। उनमें तलवारें बिजली के समान चमक रही थीं। श्री नारायणजी की कृपा से जब देवताओं ने बहुत से दैत्यों को मार डाला तथा इन्द्र ने अपने बाणों द्वारा राजा बलि को व्याकुल कर दिया, उस समय सम्मुख लड़ने की सामर्थ्य न रहने से उसने माया-युद्ध करना आरम्भ कर दिया। वह अपने विमान को आकाश में ले जाकर देव-ताओं के ऊपर अस्त्र-शस्त्र, पर्वत, अग्नि, रक्त तथा पीव आदि की वर्षा करने लगा। नग्न राक्षसियाँ अपने हाथों में खप्पर लिए हुए देवताओं की सेना में आ पहुँची। उस समय चारों ओर ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों समुद्र का पानी चढ़ा आ रहा हो। यह दृश्य देखकर देवताओं ने अपने मन में अत्यन्त भयभीत हो श्री नारायणजी का स्मरण किया तथा उनसे सहायता की याचना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की। उस समय भगवान् वैकुण्ठनाथजी अपने भक्तों को दुखी देखकर गरुड़ पर सवार हो, चतुर्भुजी रूप धारण किए, अपने चारों हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए देवताओं की सेना में आ पहुँचे। उन्हें देखते ही सब देवता प्रसन्न हो गये। उस समय श्री नारायणजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे देवताओ! तुमने अमृत पिया है, अतः अब तुम मृत्यु का भय त्याग कर, निर्भय बन, दैत्यों के साथ युद्ध करो, वे तुम्हें जीत नहीं पायेंगे।" श्री त्रिलोकीनाथ द्वारा इस प्रकार धैर्य प्रदान किये जाने पर सब देवता नूतन बल प्राप्त कर पुनः युद्ध करने लगे। उस समय 'कालनेमि' नामक एक दैत्य ने जो बाघ पर चढ़ा हुआ था, श्री नारायणजी को देखकर उनके ऊपर अपने त्रिशूल का प्रहार किया। परन्तु भगवान् वैकुण्ठनाथ ने उस त्रिशूल को पकड़कर अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उसके वाहन तथा उसके मस्तक को पल भर में काट गिराया। उसे मरा हुआ देखकर 'माली' तथा 'सुमाली' नामक दो दैत्य लड़ने के लिए आये। उन्हें भी श्री नारायणजी ने सुदर्शन चक्र से मार डाला। तब 'माल्यवान्' नामक दैत्य ने आकर एक गदा श्रीहरि को मारी तथा दूसरी गदा से गरुड़ पर प्रहार किया यह देखकर श्री नारायणजी ने अपने चक्र द्वारा उसका मस्तक भी काट लिया।"

ग्यारहवाँ अध्याय

युद्ध में देवताओं की विजय

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! श्री नारायणजी के आते ही दैत्यों की सम्पूर्ण माया इस प्रकार नष्ट हो गई, जिस प्रकार जगने पर स्वप्न का दुःख दूर हो जाता है। उससे देवताओं को बहुत सुख मिला। तदनन्तर राजा बलि और इन्द्र में फिर युद्ध होने लगा। इन्द्र ने राजा बलि से कहा—"हे बलि! तुम नट के सामान छल द्वारा मेरा राज्य लेना चाहते हो? शूर-वीरों की भाँति सामने आकर धर्म-युद्ध करो। मैं आज सब दैत्यों को मार कर अपने सब बदले चुकाऊँगा।" यह सुनकर बलि ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र! अभी चार दिन पूर्व तू मेरे सामने से भाग गया था। आज तुझे इस प्रकार अभिमान करना उचित नहीं है। सभी के दिन सदैव एक से नहीं रहते हैं। थोड़े से सुख-दुख का अभिमान तो अज्ञानी मनुष्यों को हुआ करता है। विजय अथवा पराजय भगवान् के अधीन है। मेरे-तेरे करने से कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं हो सकता।" इतना कहकर राजा बलि ने अपने बाणों से इन्द्र को व्याकुल कर दिया। उस समय इन्द्र ने बलि के ऊपर अपने वज्र का प्रहार किया। उसके लगते ही राजा बलि पंख कटे हुए पर्वत के समान अपने विमान-सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा। राजा बलि की यह दशा देखकर 'यक्ष' नामक एक दैत्य अपने वाहन बाघ को दौड़ाता हुआ इन्द्र के पास आ पहुँचा, उसने अपनी गदा का एक प्रहार इन्द्र के ऊपर तथा दूसरा प्रहार ऐरावत हाथी के ऊपर किया। उस प्रहार के कारण व्याकुल हो ऐरावत हाथी घुटने टेककर पृथ्वी पर बैठ गया। यह देखकर इन्द्र हाथी से उतर कर रथ पर जा चढ़ा। उस समय इन्द्र के सारथी 'मातलि' के रथ-कौशल को देखकर यक्ष ने मातलि के ऊपर भी अपने त्रिशूल का प्रहार किया तब इन्द्र ने और अधिक अवसर न देकर अपने वज्र द्वारा यक्ष का मस्तक काट डाला।

हे परीक्षित! इन्द्र द्वारा यक्ष के मारे जाने का समाचार सुनकर नमुचि, बलि तथा पाक नामक तीन महाबली दैत्य इन्द्र से युद्ध करने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने इन्द्र को दुर्वचन कहते हुए ऐसी बाण-वर्षा की कि उससे इन्द्र का रथ इस प्रकार ढँक गया, जिस प्रकार बादलों में सूर्य छिप जाता है। यह दशा देखकर जब अन्य देवता व्याकुल होने लगे, तब इन्द्र ने अपने वज्र से बलि तथा पाक नामक दोनों दैत्यों को मार गिराया। फिर जब उसने नमुचि के ऊपर अपने वज्र का प्रहार किया तो वह निष्फल सिद्ध हुआ। वज्र के प्रहार को इस प्रकार व्यर्थ जाते देखकर इन्द्र भयभीत होकर अपने मन में विचार करने लगा कि जिस वज्र द्वारा मैंने वृत्रासुर का संहार किया तथा पर्वतों की भुजाएँ काटीं, उसी से आज नमुचि का मस्तक नहीं कटा, इससे प्रतीत होता है कि अब इसकी सामर्थ्य नष्ट हो गई है। जिस समय इन्द्र अपने मन में इस प्रकार सोच रहा था, उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि हे इन्द्र! नमुचि को यह वरदान प्राप्त है कि वह किसी भी गीली अथवा सूखी वस्तु से नहीं मरेगा, इसलिए तुम इसे मारने के लिए कोई अन्य उपाय करो। इस आकाशवाणी को सुनकर इन्द्र ने अपने वज्र को समुद्र के फेन में लपेट-कर चलाया, तो नमुचि का मस्तक कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी दैत्यों का संहार किया। उस समय ब्रह्माजी ने अपने मन में यह विचार किया कि देवता तथा दैत्य दोनों ही मेरी सन्तान हैं। आज देवता सब दैत्यों को मारना चाहते हैं, यह ठीक नहीं है। ऐसा सोचकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने नारदजी से कहा कि तुम जाकर देवताओं को समझाओ कि अब वे युद्ध करना बन्द कर दें। यह सुनकर नारदजी ने देवताओं के पास जाकर कहा—"हे देवताओ ! तुमने दैत्यों के सभी सेनापतियों को मार डाला है, अब अन्य सब दैत्यों को क्यों मारना चाहते हो ?" इस प्रकार देवताओं से कहकर नारदजी दैत्यों के पास जा पहुँचे और उन्हें समझाते हुए बोले—"हे दैत्यो ! इस समय तुम्हारे दिन खोटे हैं, अतः तुम व्यर्थ मत लड़ो। अच्छे दिन आने पर फिर संग्राम करना।"

हे परीक्षित ! नारदजी द्वारा इस तरह समझाये जाने पर देवताओं तथा दैत्यों ने युद्ध करना बन्द कर दिया। उस समय श्री नारायणजी की कृपा से देवता अपनी विजय की दुन्दुभी बजाने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गंधर्व गीत गाने लगे। इस प्रकार देवताओं को विजय दिलवाकर श्री नारायणजी वैकुण्ठ को चले गये तथा सब देवता भी उनके यश का वर्णन करते हुए अपने लोक में जाकर आनन्द मनाने लगे। इन्द्र को फिर अपने सिंहासन की प्राप्ति हुई। तदुपरान्त जो दैत्य जीवित बचे थे, वे सब नारदजी की आज्ञानुसार राजा बलि आदि मरे हुए तथा घायल दैत्यों को उठाकर अस्ताचल में शुक्राचार्य के पास ले गये। वहाँ शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या द्वारा सबको पुनर्जीवित कर दिया तथा राजा बलि को बहुत प्रकार से धैर्य बँधाया, उस समय राजा बलि ने हाथ जोड़कर हँसते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आपकी दया के रहते मुझे कोई सोच नहीं है। कभी हम विजय पाते हैं तो कभी देवता जीत जाते हैं। इस समय देवताओं के दिन अच्छे हैं, इसलिए उनकी विजय हुई है; जब हमारे दिन अच्छे आवेंगे तब आपके आशीर्वाद से हम भी फिर स्वर्ग लोक का राज्य प्राप्त करेंगे।" राजा बलि के ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्य ने उसके धैर्य एवं ज्ञान की प्रशंसा की। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! तुमने अमृत निकालने तथा उसके पिलाने की जो कथा पूछी थी, वह सब हमने तुम्हें कहकर सुना दी है।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बारहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी का मोहिनी-स्वरूप के सौन्दर्य का वर्णन करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी ! वह मोहिनी रूप कैसा सुन्दर था, जिसे देखकर सब देवता तथा दैत्य अमृत पीना भूलकर उस पर मोहित हो गये ?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! उस रूप का वर्णन हम कहाँ तक करें ? वह मोहिनी-स्वरूप ऐसा सुन्दर था कि उसे देखकर कामदेव को भस्म करनेवाले श्री शिवजी भी मोहित हो गये थे, फिर भला देवता, दैत्य तथा मनुष्य किस गिनती में हैं, जो अपने को सँभाल सकते ? हे राजन् ! वह कथा इस प्रकार है कि एक दिन पार्वतीजी ने महादेवजी से यह कहा कि हे प्रभु ! श्री नारायणजी के जिस मोहिनी रूप ने दैत्यों को मोहित कर लिया था, उस स्वरूप को मैं भी देखना चाहती हूँ। पार्वतीजी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी उन्हें लेकर नन्दीगण पर बैठ, श्री नारायणजी के समीप वैकुण्ठलोक में जा पहुँचे। भगवान् त्रिलोकीनाथ ने उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाने के उपरान्त पूछा—"हे शिवजी ! आज किधर को जाने की तैयारी है ?" उस समय श्री शिवजी ने उनकी स्तुति करते हुए कहा—"हे प्रभो ! आपने जिस मोहिनी स्वरूप से दैत्यों को मोहित किया था, उस स्वरूप को मैं देखना चाहता हूँ। यह सुनकर श्री नारायणजी ने उत्तर दिया—"हे शिवशङ्कर ! आप उस स्वरूप को देखकर कामदेव के वशीभूत होकर विह्वल हो जायँगे।" तब शिवजी बोले—"हे दीनानाथ ! दैत्य लोग तो अपने मन और इन्द्रियों के अधीन रहने के कारण काम विह्वल हो गये थे। परन्तु मैं इन्द्रियों को अपने वश में रखता हूँ, इसलिए आपके मोहिनी स्वरूप को देखकर मोहित न होऊँगा। पार्वती भी आपके उस स्वरूप को देखने की अभिलाषा रखती हैं। अतः आप जिस प्रकार मेरी प्रार्थना को सदैव मानते आये हैं, उसी प्रकार इस इच्छा को भी पूर्ण कर दीजिये।" इस पर श्री नारायणजी ने कहा—"हे शिवजी ! आप मेरे निर्गुण स्वरूप की भक्ति रखनेवाले हैं। मेरा वह स्वरूप घटने-बढ़ने, खाने-पीने आदि से रहित है तथा हर किसी को दिखाई नहीं देता है। अतः आप उसी स्वरूप को देखा करें। जिसे उस निर्गुण स्वरूप का ध्यान न हो सके, उसी को मेरे सगुण रूप को देखने की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उसे निर्गुण रूप की भक्ति प्राप्त होती है। जो अज्ञानी मनुष्य मेरे निर्गुण रूप को नहीं देख पाता, उसे मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सगुणरूप का दर्शन देकर ज्ञान प्राप्त करता हूँ। जिससे वह थोड़े प्रेम में ही अपने मनोरथ को प्राप्त कर सके।"

हे परीक्षित! भगवान् वैकुण्ठनाथ द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी जब शिवजी ने मोहिनीरूप को देखने के लिए हठ किया, उस समय श्री नारायणजी ने हँसकर इस प्रकार कहा—"हे शिवजी! यदि आप यही चाहते हैं तो आप तथा पार्वती ओट में जाकर बैठ जाइये। हम अभी आपको अपना निर्गुण रूप दिखाये देते हैं, परन्तु आप उस स्वरूप को देखने से पहिले सावधान हो जायँ। इतना कहकर भगवान् त्रिलोकीनाथ वहाँ से अन्तर्धान हो गये तथा शिव-पार्वती भी आकर एक ओर आड़ में जा बैठे। तदनन्तर श्री नारायणजी की इच्छा से एक अत्यन्त सुन्दर बाग, कुण्ड, बावली तथा मनोहर पक्षी आदि उस स्थान पर प्रकट हो गये। उस समय शिव-पार्वती परस्पर यह कह रहे थे कि देखें, अब वह मोहिनी स्वरूप किधर से प्रकट होता है। हे राजन्! पार्वतीजी अपनी सुन्दरता के समक्ष अन्य किसी भी स्त्री के सौंदर्य को तुच्छ समझती थीं। अतः वे भी अपने मन में मोहिनी स्वरूप देखने की बड़ी अभिलाषा लिए, यह विचार कर रही थीं कि देखें वह स्वरूप मुझसे अधिक सुन्दर है अथवा नहीं। इसी इच्छा से वे बारम्बार उठकर उस बाग में चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ा रही थीं। जिस समय शिव-पार्वती मोहिनी स्वरूप को देखने की ऐसी अभिलाषा प्रकट कर रहे थे, उसी समय अचानक ही एक ओर से श्री नारायणजी का मोहिनी स्वरूप प्रकट हो गया। वह महा सुन्दर स्त्री उत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत थी। उसका मुख-कमल बिजली से समान चमक रहा था। वह अपनी कमर में घुँघरूदार जड़ाऊ करधनी पहने हुए थी तथा रेशमी कपड़े की गेंद को अपने हाथ में लेकर आकाश में उछाल रही थी। गेंद को उछालने तथा नीचे-ऊपर देखने के समय उसके उन्नत उरोज अनार के फल के समान कठोर दिखाई देते थे, जिससे देखनेवालों का चित्त बरबस चलायमान हो जाता था। वह मोहिनी स्त्री बाग में चारों ओर गेंद-क्रीड़ा करती हुई घूम रही थी। जिस समय श्री शिवजी की दृष्टि उस पर पड़ी तथा परस्पर नेत्र मिलने पर वह उनकी ओर कटाक्ष करके मुस्कुराई, उस समय शिवजी का चित्त उसे देखते ही कामदेव के वशीभूत हो गया। तब वे उसके स्वरूप के ऊपर मोहित हो, मृगछाला को उतार, नंगे हो, पार्वतीजी को अकेली छोड़कर उसके सामने जा पहुँचे। परन्तु वह महा सुन्दरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिवजी के ऊपर तनिक भी प्रीति न दिखाकर आगे की ओर बढ़ चली। यह देखकर शिवजी अत्यन्त आसक्त होकर उसके पीछे-पीछे इस प्रकार दौड़े जैसे गाय के पीछे साँड़ दौड़ता है। उस समय कामदेव ने भी अवसर पाकर शिवजी से अपना बदला ले लिया। जब श्री शङ्करजी उस मोहिनी स्त्री के समीप पहुँचे और उसने घूँघट काढ़ कर अपना मुँह छिपा लिया, उस समय वे अत्यन्त व्याकुल होकर अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैं इस सुन्दरी के इतने निकट चला आया। यदि मैं कुछ दूर रहता तो यह अपने मुख-कमल को इस प्रकार घूँघट से न ढाँक लेती। हे परीक्षित! शिवजी की तो यह दशा थी, उधर पार्वतीजी भी मोहिनी स्वरूप को देखने के लिए उसके समीप जा पहुँचीं। वहाँ वे उस सुन्दरी के मोती के समान चमकते हुए चरण-कमलों को देखकर, अत्यन्त लज्जित हो अपने मन में यह विचार करने लगीं कि ऐसी सुन्दरी स्त्री तो मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी; इसके सामने मेरी तो कुछ भी गिनती नहीं है। पार्वतीजी जिस समय अपने मन में यह विचार कर रही थीं, उसी समय श्री शिवजी ने कामातुर होकर उस मोहिनी नारी को अपने कण्ठ से लगा लिया, तब वह उनसे छिटक कर आगे की ओर बढ़ चली। उस परम सुन्दरी का स्पर्श पाकर शिवजी इतने विह्वल हो गये थे कि वे उसे पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ने लगे और वह बारम्बार इस प्रकार छिटक कर निकल जाती थी कि शिवजी का हाथ उसके किसी भी अंग को नहीं छू पाता था। एक बार कुछ देर के लिए वह परम सुन्दरी शिवजी की दृष्टि से ओझल होकर फिर प्रकट हुई। उस समय शिवजी ने आगे बढ़कर उसे अपनी भुजाओं में बाँध लिया। तब वह फिर उन्हें झटक कर अलग हो गई। इस प्रकार की खींचातानी में उस मोहिनी नारी का वस्त्र ढीला होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय उसे नग्नावस्था में देखकर शिवजी ने काम के वशीभूत हो, उसे अपनी गोद में उठा लिया। फिर वे श्री नारायणजी की इच्छानुसार उसे उसी प्रकार गोद में लिये हुए ऋषि-मुनियों के स्थानों पर भटकते रहे। जब बहुत भाग-दौड़ के कारण शिवजी थक गये तथा ऋषि-मुनियों के समीप पहुँचने के कारण लज्जित हुए, उस समय उनका ज्ञान एवं धैर्य छूटकर वीर्य स्खलित हो गया। उनकी यह दशा देखकर मोहिनी भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये।

हे परीक्षित! जिस स्थान पर श्री शिवजी का वीर्य गिरा था वहाँ सोना,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँदी तथा पारे की खानें उत्पन्न हुईं। तदनन्तर वीर्य स्खलित होने तथा मोहिनी स्वरूप के अन्तर्धान हो जाने पर, श्री शिवजी अत्यन्त लज्जित तथा उदास होकर एक वृक्ष के नीचे जा बैठे तथा यह विचार करने लगे कि शायद वह मोहिनी नारी फिर प्रकट हो जाय। उसी समय श्री नारायणजी की माया से पार्वतीजी भी शिवजी के पास जा पहुँचीं। उन्हें देखकर शङ्करजी अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर विचार करने लगे कि देखो, मैंने काम, क्रोध, लोभ आदि को वश में करके सहस्रों वर्षों तक समाधि लगाई, परन्तु इस मोहिनी रूप को देखकर मेरा सारा ज्ञान नष्ट हो गया तथा काम के आवेश में पागल होकर मैं चारों ओर भटकता रहा। इस प्रकार अपने धैर्य तथा प्रशंसा को खोकर मैंने ऋषि-मुनियों के निकट अपना उपहास कराया है। इससे मुझे यह प्रतीत होता है कि मैंने श्री नारायणजी के समक्ष अपने को कामजित् कहकर उनके मोहिनी स्वरूप को देखने के लिए जो हठ की थी, उसी के कारण श्री नारायणजी ने मेरा ज्ञान नष्ट कर इस प्रकार मेरे अभिमान को दूर किया है। संसार में जो लोग अपने ज्ञान का अभिमान रखते हैं, उन्हें मूर्ख जानना चाहिए; क्योंकि श्री नारायणजी की माया ऐसी प्रबल है जिससे कोई मुक्ति नहीं पा सकता है। इस प्रकार विचार करके श्री शिवजी अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। जब श्री नारायणजी ने यह देखा कि मेरे परम भक्त शिवजी अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर उसी चिन्ता में शरीर त्यागना चाहते हैं तब वे अपने चतुर्भुजी स्वरूप से श्री शिवजी के निकट प्रकट हो गये। तत्पश्चात् उनका हाथ पकड़कर सम्मानपूर्वक इस प्रकार कहने लगे—"हे भोलानाथ! आप अपने मन में चिन्ता न करें। मेरे इस मोहिनी स्वरूप को देखकर किसी भी योगी, ऋषि-मुनि आदि का ज्ञान अपने ठिकाने पर नहीं रहता है। मायारूपी स्त्री की वासना में पड़कर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, महात्मा तथा संसारी मनुष्य अपना धर्म-कर्म त्याग देते हैं। वह कौन-सा चैतन्य है, जो इस मायारूपी समुद्र में न डूबा हो? अनेक देवता, दैत्य, मनुष्य तथा ज्ञानी-विज्ञानी लोग इस कामदेव के मद में नष्ट होकर उससे हार मान गये हैं। अतः स्त्रीरूपिणी माया को सबसे प्रबल समझना चाहिए। हे शिवजी! इतने पर भी आपको मेरी माया नहीं व्यापेगी, क्योंकि आप निशि-दिन मेरे ध्यान एवं स्मरण में संलग्न रहते हैं। यदि आप यह कहें कि इस मोहिनी रूप माया ने आपके हृदय को चञ्चल क्यों न बनाया, तो इसका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर यह है कि आपने मेरे निर्गुण स्वरूप का ध्यान छोड़कर मुझे अपने से अलग समझा तथा मेरी माया का कौतुक देखने की अभिलाषा प्रकट की। इसी लिए आपकी ऐसी दशा हुई है। अब आप यह जानकर धैर्य रक्खें कि भविष्य में कभी भी आपको मेरी माया नहीं व्यापेगी।" इस प्रकार भगवान् वैकुण्ठनाथ ने जब श्री शिवजी को बोध कराया तब वे धैर्य धर कर श्री नारायणजी को दण्डवत्-प्रणाम कर वहाँ से विदा हुए। तदनन्तर कैलाश पर्वत पर पहुँचकर पार्वतीजी से इस प्रकार कहने लगे—"हे पावती! तुमने मेरे इष्टदेव की माया का कौतुक देखा! मैं आठों प्रहर इन्हीं ज्योतिःस्वरूप के ध्यान में मग्न रहता हूँ।" इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जो मनुष्य समुद्र मन्थन की कथा को सुनकर कोई व्यापार आरम्भ करता है, उसे अपने मनोरथ की पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है।"

तेरहवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी का आठ मन्वन्तरों की कथा का वर्णन करना।

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! एक मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युग होते हैं तथा एक इन्द्र एक मन्वन्तर तक राज्य करता है। प्रत्येक मन्वन्तर में श्री नारायणजी एक अवतार धारण करते हैं तथा अधर्मियों का संहार करके धर्म की संस्थापना करते हैं। 'चिरञ्जीव ऋषि' की आयु एक मन्वन्तर की होती है। हे परीक्षित! हमने तुमसे छः मन्वन्तरों की कथा कही। अब तुम सातवें मनु 'विवस्वान्' के पुत्र 'श्री श्राद्धदेव' जो इस समय वर्तमान हैं—की कथा सुनो। इस (वर्तमान) मन्वन्तर में 'इक्ष्वाकु' आदि मनु के दस पुत्र हैं, 'आदित्य' आदि देवता हैं, अगस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज ये सप्तर्षि हैं तथा 'पुरन्दर' नामक इन्द्र हैं। इस मन्वन्तर में 'कश्यप ऋषि' की अदिति नामक पत्नी के गर्भ से श्री नारायणजी का 'वामन' नामक अवतार हुआ था। उसकी कथा हम बाद में विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। आठवें मनु का नाम 'सावर्णि' होगा। उसमें 'निर्मेक' आदि उसके पुत्र, 'सुतपाल' आदि देवता, 'बलि' नामक इन्द्र तथा 'दीप्त' आदि सप्तर्षि होंगे। उसमें श्री नारायणजी 'सार्वभौम' नामक अवतार लेकर इन्द्र से इन्द्रलोक का राज्य छीनकर राजा बलि को दे देंगे। नवें मनु का नाम 'दक्षसावर्णि' होगा। उसमें 'भूतकेतु' आदि मनु के पुत्र, 'मरीचि'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि देवता, 'अभूत' नामक इन्द्र तथा 'द्युति' आदि सप्तर्षि होंगे। उस मन्वन्तर में श्री नारायणजी का 'ऋषभ' नामक अवतार होगा। दसवें मनु का नाम 'ब्रह्मसावर्णि' होगा। उसमें 'भूषण' आदि मनु के पुत्र 'हविष्मन्त' आदि सप्तर्षि, 'सत्य' आदि देवता तथा 'स्वायम्भुव' नामक इन्द्र होगा। तब श्री नारायणजी 'अमूर्ति' नामक अवतार ग्रहण करेंगे। ग्यारहवें मनु का नाम 'धर्मसावर्णि' होगा, उसमें 'अनानत' आदि मनु के पुत्र, 'विहंगम' आदि देवता, 'वैधृत' नामक इन्द्र तथा 'अरुण' आदि सप्तर्षि होंगे। तब श्री नारायणजी 'धर्म सेतु' नामक अवतार ग्रहण करेंगे। बारहवें मनु का नाम 'रुद्रसावर्णि' होगा। उसमें 'देववामन' आदि मनु के पुत्र, 'राजधामा' नामक इन्द्र, 'हरित' आदि देवता तथा 'तपमूर्ति' आदि सप्तर्षि होंगे। उस समय श्री नारायणजी 'सुधा' नामक अवतार ग्रहण करेंगे। तेरहवें मनु का नाम 'देवसावर्णि' होगा। उसमें 'चित्रसेन' आदि मनु के पुत्र, 'दिवस्पात' नामक इन्द्र, 'सुकर्म' आदि देवता तथा 'निर्मेक' आदि सप्तर्षि होंगे। उसमें श्री नारायणजी 'योगीश्वर' नामक अवतार ग्रहण करेंगे। चौदहवें मनु का नाम 'सावर्णि' होगा। उसमें 'उरुगम्भीर' आदि मनु के पुत्र, 'पवित्र' आदि देवता, 'शुचि' नामक इन्द्र तथा 'अग्निबाहु' आदि सप्तर्षि होंगे। उस समय श्री नारायणजी 'बृहद्भानु' नामक अवतार ग्रहण करेंगे। हे परीक्षित! ब्रह्मा के एक दिन में ये चौदह मन्वन्तर भोग करते हैं, उनकी कथा हमने तुम्हें सुनाई है। प्रत्येक कल्प में ये ही मनु बदलते रहते हैं तथा यथाक्रम से राज्य करते हैं।"

चौदहवाँ अध्याय

इन्द्र आदि देवताओं का वृत्तान्त

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे महामुने! आपने श्री नारायणजी के पावन चरित्र को सुनाकर मुझे कृतार्थ किया है। अब आप कृपा कर मुझे बताइये कि ये मनु अपने शासन-काल में क्या कार्य करते हैं।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! प्रत्येक मन्वन्तर में मनु तथा उसके पुत्र श्री नारायणजी के आज्ञानुसार दिग्विजय करते हैं तथा पृथ्वी पर धर्म का प्रचार करते हैं। देवतागण यज्ञ का भाग, पूजन तथा आहुति ग्रहण करते हैं। इन्द्र का कार्य यह है कि वह दैत्यों का संहार करके तीनों लोकों की रक्षा करता है। सप्तर्षियों का कार्य अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

योगाभ्यास द्वारा गुप्त वेद को संसार में प्रकट करना है। श्री नारायणजी अवतार ग्रहण करके पापियों तथा अधर्मियों का संहार करते हैं एवं गौ, ब्राह्मण तथा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में यही कार्य होते रहते हैं। महाप्रलय के समय श्री नारायणजी 'कालस्वरूप' होकर सम्पूर्ण सृष्टि का नाश कर देते हैं। छोटे-बड़ों की मृत्यु देखते रहने पर भी संसारी जीव श्री नारायणजी की माया में बँधकर अपनी मृत्यु के विषय में चिन्तित नहीं होते। जिस प्रकार तालाब का पानी प्रतिदिन सूखता रहता है, परन्तु पता नहीं चलता उसी प्रकार मनुष्य की आयु निरन्तर घटती रहती है, फिर भी वह अपनी मृत्यु का भय न मानकर परलोक की चिन्ता नहीं करता। मनुष्य को उचित है कि वह अपनी मृत्यु का भय मानकर अकर्म न करे तथा दिन-रात श्री नारायणजी का स्मरण करता रहे; जिससे उसका परलोक सुधर जाय।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जो मनुष्य चौदह मन्वन्तरों की कथा सुनकर प्रातःकाल उनका ध्यान धरते हैं, उन्हें धर्म तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है। देवता आदि श्री नारायणजी की शक्ति हैं, अतः उनका स्मरण करने से भी पाप नष्ट हो जाता है।"

पंद्रहवाँ अध्याय

शुक्राचार्य की कृपा से राजा बलि का पुनः इन्द्रलोक का राज्य प्राप्त करना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! आपने पहिले यह बताया था कि श्री नारायणजी ने वामन अवतार ग्रहण करके राजा बलि से भीख माँगी थी तथा छल द्वारा उसका राज्य लेकर देवताओं को दे दिया था। इससे मुझे यह सन्देह होता है कि राजा बलि में ऐसी क्या सामर्थ्य थी जो स्वयं श्री नारायणजी को उससे भिक्षा माँगनी पड़ी? हे प्रभो! दान लेने के पश्चात् श्री नारायणजी ने यज्ञ करते समय उसे बाँधा क्यों था, वह कथा आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! श्री नारायणजी की दया से जब देवताओं ने अमृत पीकर दैत्यों को युद्ध में जीत लिया तथा अपने राजसिंहासन को पुनः प्राप्त कर लिया, उस समय दैत्यों के राजा बलि ने सब दैत्यों-सहित अस्ताचल में रहकर बहुत दिनों तक अपने गुरु श्री शुक्राचार्य की सेवा तथा पूजा की। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर शुक्राचार्य ने उसे प्रयाग क्षेत्र में लाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विश्वजित्" नामक यज्ञ आरम्भ कराया। उस यज्ञ की समाप्ति पर हवन-कुण्ड से एक स्वर्णिम रथ, चार घोड़े, एक शंखध्वज, एक धनुष, एक अक्षय तूणीर, एक खड्ग तथा एक दिव्य कवच की उत्पत्ति हुई। उस समय भक्तराज प्रह्लाद ने अपने पौत्र राजा बलि को एक पुष्पमाला भी दी। तब श्री शुक्राचार्य ने राजा बलि को एक शंख देते हुए इस प्रकार कहा कि हे राजन्! तुम इन घोड़ों को इस रथ में जोतकर यही ध्वजा लगा दो; तत्पश्चात् इस पुष्पमाला को पहिनकर तथा मेरा दिया हुआ शंख बजाकर, देवताओं पर चढ़ाई कर दो। मैं अपने योग बल द्वारा तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि श्री नारायणजी की कृपा से इस बार तुम्हें विजय प्राप्त होगी।"

हे परीक्षित! इस वरदान को पाकर राजा बलि को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् वह शुक्राचार्य के आज्ञानुसार शुभ मुहूर्त में अपने गुरु तथा पितामह को दण्डवत्-प्रणाम करके उसी रथ पर आरूढ़ हो गया और अपने साथ अनेक शूर-वीरों को लेकर युद्ध करने के लिए इन्द्रपुरी में जा पहुँचा। हे राजन्! इन्द्र की पुरी अमरावती अत्यन्त सुन्दर है। वहाँ सोने के रत्नजटित वापी-तड़ाग आदि बने हुए हैं। वहाँ के सभी स्त्री-पुरुष किशोरावस्था को प्राप्त रहते हैं। वे सदैव स्वस्थ एवं निरोग रहकर उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों को धारण करते हैं। वे आनन्दपूर्वक भोग-विलास करते हैं तथा रत्नजटित विमानों पर बैठकर विहार किया करते हैं। उस स्थान की शोभा को किस प्रकार कहा जाय? वह तो केवल देखने की ही वस्तु है। लोभी, क्रोधी, पापी, अहङ्कारी, केवल अपने शरीर का पालन करने की इच्छा रखनेवाले एवं मांसाहारी जीव वहाँ नहीं जा सकते। अस्तु, जिस समय राजा बलि ने वहाँ पहुँचकर शुक्राचार्य का दिया हुआ शंख बजाया, उस समय उसके शब्द को सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता भय के मारे काँपने लगे। अन्त में जब वे लाचार होकर लड़ने के लिये आये उस समय राजा बलि के तेज के कारण उनके सम्पूर्ण अङ्ग जलने लगे। तब अमृत पिया हुआ होने पर भी वे दैत्यों से पराजित होकर वहाँ से भाग खड़े हुए। तदुपरान्त देवताओं ने बृहस्पतिजी के पास जाकर इस प्रकार पूछा—"हे प्रभो! इस प्रकार हमारी पराजय होने का क्या कारण है?" बृहस्पतिजी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ! उस शंख का प्रताप ऐसा है कि यदि सौ इन्द्र इकट्ठे होकर राजा बलि का सामना करें तो भी वे उससे हार जायँगे। श्री नारायणजी के अति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

रिक्त अन्य कोई उसका सामना नहीं कर सकता। जो व्यक्ति गुरु अथवा ब्राह्मण की विधिपूर्वक सेवा करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।" बृहस्पतिजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर सब देवता अधीर हो, मुरैला तथा हिरण आदि का स्वरूप धारणकर वहाँ से भाग गये तथा किसी स्थान पर छिपकर अपने दिन काटने लगे। उस समय राजा बलि को पुनः तीनों लोक का राज्य प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् बलि ने अपना तेज तथा बल बढ़ाने के हेतु भरतखण्ड में यज्ञ करने का निश्चय करके अपने गुरु शुक्राचार्यजी की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे महात्मन्! आप कोई ऐसा उपाय बतावें, जिससे मेरा राज्य स्थिर बना रहे।" शुक्राचार्यजी ने उत्तर दिया—"हे बलि! यदि तुम सौ वर्ष तक निरन्तर यज्ञ करो और तुम्हारे यज्ञ में कोई विघ्न उपस्थित न हो, तो सौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर तुम्हारा राज्य सदैव स्थिर बना रहेगा। सौ यज्ञ सम्पूर्ण किए बिना इन्द्र को भी देवलोक के राज्य की प्राप्ति नहीं होती है।" ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने शुक्राचार्य के आज्ञानुसार प्रति वर्ष यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। जब उसके निन्यानबे यज्ञ सानन्द समाप्त हो गये तथा सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण होने के निकट पहुँचा, उस समय राजा बलि को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने प्रत्येक यज्ञ में ब्राह्मणों तथा दरिद्रों को इतना दान दिया था कि किसी को कुछ प्राप्त करने की इच्छा ही शेष नहीं रही थी। उसके द्वार से कोई भी भिखारी विमुख नहीं लौटा, इससे सम्पूर्ण संसार में उसका यश फैल गया।"

सोलहवाँ अध्याय

इन्द्र को राज्य दिलाने के लिए अदिति का अपने पति कश्यपजी की सेवा करने का वृत्तांत

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब इन्द्र को यह समाचार प्राप्त हुआ कि राजा बलि अपने राज्य को स्थिर रखने के लिए सौ यज्ञ सम्पूर्ण करना चाहता है, तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। देवताओं की माता अदिति भी अपने पुत्रों का राज्य छूट जाने के कारण अत्यन्त चिन्तित रहती थीं। जब उसने देवताओं द्वारा राजा बलि के मन की अभिलाषा सुनी तब उसे और भी अधिक सोच हुआ। एक दिन वह इसी चिन्ता में डूबी हुई अपने पति कश्यपजी के समीप बैठी हुई थी, उस समय उसे उदास देखकर कश्यपजी ने इस प्रकार पूछा—"हे अदिति! तुम्हारा मुख उदास क्यों है? क्या तुम्हारे द्वार से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई भिखारी अथवा अतिथि भूखा लौट गया है ? जो भी कारण हो, वह मुझे शीघ्र बताओ। कश्यपजी के ऐसे वचन सुनकर अदिति ने उत्तर दिया—"हे स्वामी ! मेरे द्वार से कोई भिखारी अथवा अतिथि भूखा नहीं लौटा है; परन्तु मैं अपने पुत्रों के दुःख से, जो दैत्यों के भय से भयभीत होकर पर्वतों की कन्दराओं में छिपे हुए हैं, दुखी रहती हूँ। हे स्वामी ! इसी कारण से मेरा मुख मलीन हो रहा है। अब आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मेरे पुत्रों को फिर से अपना राज्य प्राप्त हो सके।" यह सुनकर कश्यपजी ने कहा—"हे अदिति ! देवता तथा दैत्य दोनों ही मेरी सन्तान हैं। वे अपने अज्ञान के कारण यह नहीं समझते हैं कि श्री नारायणजी जो चाहते हैं वही होता है, मेरे करने से कुछ भी नहीं हो सकता। कोई किसी का पिता अथवा पुत्र नहीं है, सब संसारी व्यवहार को श्री नारायणजी की माया समझना चाहिए। जब देवताओं को राज्य मिलता है तब तेरी सौत 'दिति' दिन-रात रोती है और जब दैत्यों को राज्य प्राप्त होता है तब तू उदास हो जाती है। मुझे किसी भी तरह शान्ति नहीं मिलती। अतः यदि तू अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहती है, तो तू श्री नारायणजी की शरण में जाकर उनका व्रत रख। उसी से तेरी मनोभिलाषा पूर्ण होगी।" यह सुनकर अदिति ने प्रार्थना की—"हे स्वामी ! मुझे श्री नारायणजी का कौन-सा व्रत करना चाहिए, यह बता देने की कृपा आप और करें ?" कश्यपजी ने उत्तर दिया—"तू फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से प्रतिदिन शिवजी का व्रत रखना आरम्भ कर दे। मुझे यह व्रत शिवजी ने बताया था। तू ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना तथा दूध के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का भोजन मत करना। पृथ्वी पर शयन करना। शूकर द्वारा खोदी गई मिट्टी को अपने शरीर में प्रतिदिन लगाकर स्नान करना तथा उसी मिट्टी की मूर्ति बनाकर भगवान् वैकुण्ठनाथ का मन्त्र द्वारा विधिपूर्वक पूजा करना। खीर की एक सौ आठ आहुतियाँ अग्नि में देकर, उसी खीर से श्री नारायणजी का भोग लगाना। इस प्रकार श्री त्रिलोकीनाथ का ध्यान धरते हुए बारह दिनों तक इस व्रत का साधन करना। तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को उद्यापन करके ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराना। आचार्य तथा पूजन एवं हवन करनेवाले ब्राह्मण को दान-दक्षिणा देकर प्रसन्न करना। फिर उन्हें बिदा करके रात्रि में जागरण करना। इस प्रकार व्रत करने से तेरी मनोभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। यह व्रत सम्पूर्ण व्रत तथा यज्ञों से अधिक श्रेष्ठ है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्रहवाँ अध्याय

कश्यपजी के आज्ञानुसार अदिति का व्रत करना।

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! जब कश्यपजी के आज्ञानुसार अदिति ने व्रत रख कर शुद्ध हृदय से श्री नारायणजी के चरणकमलों का ध्यान किया, तब व्रत की समाप्ति पर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने चतुर्भुजी स्वरूप धारण कर अदिति को दर्शन दिया। उस समय श्री नारायणजी रत्नजटित मुकुट पहने, गले में वैजयन्ती माला को धारण किए, अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कान लिए हुए थे। श्रीहरि के उस सुन्दर स्वरूप को देखकर अदिति ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें दण्डवत्, पूजा तथा परिक्रमा की। उस समय श्री नारायणजी ने अदिति से इस प्रकार कहा–"हे अदिति! तेरी जो इच्छा हो मुझसे वह वरदान माँग ले।" यह सुनकर अदिति ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे अन्तर्यामी प्रभो! मेरी यही इच्छा है कि मेरे पुत्रों को अपना राज्य पुनः प्राप्त हो जाय।" तब श्री वैकुण्ठनाथ ने कहा–"हे अदिति! तू यह चाहती है कि जिस प्रकार तेरी पतोहू इन्द्राणी आदि देव-स्त्रियाँ दुःख पा रही हैं, उसी प्रकार दैत्यों की स्त्रियाँ भी कष्ट पाने लगें; परन्तु इस सम्बन्ध में तुझे यह स्मरण रखना चाहिए कि राजा बलि ने सौ यज्ञ करके मुझे प्रसन्न कर लिया है, वह गुरु तथा ब्राह्मणों की भक्ति भी रखता है, इसलिए मैं उसका राज्य जबर्दस्ती नहीं ले सकता हूँ। जो प्राणी धर्मात्मा तथा हरि-भक्त होते हैं, उन पर मेरा कुछ भी वश नहीं चलता। परन्तु हे अदिति! तूने भी व्रत रखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्न किया है, इसलिए मैं तेरे हित के निमित्त दैत्यों से छल कर देवताओं को राज्य दिला दूँगा।" यह सुनकर अदिति बोली–"हे प्रभो! मैं यह चाहती हूँ कि आप मेरे गर्भ से जन्म लेकर देवताओं की सहायता करें, जिससे उन्हें अपना राज्य फिर मिल जाय।" तब श्री नारायणजी ने उत्तर दिया–"अच्छा तेरी यह अभिलाषा पूर्ण होगी।" इतना कहकर श्री नारायणजी अन्तर्धान हो गये और उसी दिन कश्यपजी द्वारा अदिति ने गर्भ धारण किया।

हे परीक्षित! जिस समय अदिति गर्भवती हुई, उस समय उसका मुख सूर्य के समान चमकने लगा। जब दसवें महीने पुत्रजन्म का समय निकट आया तब ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं ने अदिति के स्थान पर आकर गर्भ-स्तुति करते हुए श्री नारायणजी की इस प्रकार प्रार्थना की–"हे प्रभो! आप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवताओं का दुःख दूर करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी उनकी सहायता नहीं कर सकता।" इस स्तुति को सुनकर भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को मध्याह्न के समय श्री निरङ्कार प्रभु ने अदिति के गर्भ से प्रकट होकर, चतुर्भुजी रूप से माता-पिता तथा उस स्थान पर उपस्थित देवताओं को अपना दर्शन दिया। श्री नारायणजी का दर्शन पाकर सब लोग कृत-कृत्य हो गये। सब छोटे-बड़ों ने भगवान् वैकुण्ठनाथ को दण्डवत् किया। तत्पश्चात् श्री नारायणजी ने अपना अत्यन्त सुन्दर वामन स्वरूप बना लिया। जिस समय कश्यपजी तथा ब्रह्मा आदि देवताओं ने उनके वामन स्वरूप को देखा, उस समय उन लोगों ने वामन भगवान् के लिए कौपीन, दुपट्टा, करधनी, दण्ड, कमण्डल तथा छत्र आदि ब्रह्मचर्य की सभी वस्तुएँ वहाँ लाकर उपस्थित कर दीं। ब्रह्माजी ने वेद की विधि से उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। तदुपरान्त सभी देवता उनकी स्तुति तथा परिक्रमा करके, पुष्प बरसाते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। उस समय अप्सराओं ने अपने-अपने विमानों पर आरूढ़ होकर आकशमण्डल में नृत्य किया तथा गन्धर्वों ने गीत गाये। कश्यपजी ने भी वामन भगवान् की बहुत प्रकार से स्तुति की। उस समय तीनों लोकों में आनन्द तथा मङ्गलाचार होने लगे।"

अठारहवाँ अध्याय

वामन भगवान् का राजा बलि की यज्ञशाला में आकर तीन पग पृथ्वी का दान माँगना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! यज्ञोपवीत होने के पश्चात् श्री वामन भगवान् ने अपना स्वरूप ब्रह्मचारी के समान बना लिया। फिर वे दण्ड-कमण्डलु हाथ में लेकर कश्यप तथा अदिति के स्थान से बाहर निकल आये और पृथ्वी का दान लेने की इच्छा से नर्वदा नदी के तट पर, जहाँ राजा बलि यज्ञ कर रहा था, जा पहुँचे। उस समय पृथ्वी अपने मन में यह विचार करके काँपने लगी कि देखो, ये तीन लोक तथा चौदह भुवनों के स्वामी होने पर भी आज पृथ्वी का दान माँगने के लिए जा रहे हैं, इससे बड़ा आश्चर्य और क्या होगा? जिस समय परम तेजस्वी वामन भगवान् राजा बलि की यज्ञशाला में पहुँचे, उस समय उनके महान् तेज तथा सुन्दर स्वरूप को देखकर ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, राजा बलि तथा शुक्राचार्य आदि जितने लोग वहाँ बैठे हुए थे, वे सब के सब उठ खड़े हुए। वैसा स्वरूपवान् नाटा मनुष्य उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिले कभी नहीं देखा था। अतः वे श्री वामन भगवान् को देखकर अपने हृदय में अत्यन्त आश्चर्य करने लगे।

हे परीक्षित! उस समय राजा बलि ने वामन भगवान् को रत्नजटित सिंहासन पर बैठाकर तथा अपने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे ब्रह्मचारी महात्मा! गुरु तथा ब्राह्मणों के आशीर्वाद से मैंने निन्यानबे यज्ञ सम्पूर्ण किए हैं। इस समय मैं सौवाँ यज्ञ कर रहा हूँ। मेरे बड़े भाग्य हैं जो इस यज्ञ में आप जैसे महापुरुष के चरण पधारे हैं। आपका दर्शन पाकर मेरा भाग्योदय हुआ है तथा मेरे पिता कृतार्थ हो गये हैं। हे बालस्वरूप ब्रह्मचारी! जिस प्रकार आप बिना बुलाये हुए ही मुझ पर अत्यन्त कृपा करके इस यज्ञ में पधारे हैं, उसी प्रकार आप संकोच-रहित होकर गो, स्थान, उपवन, हाथी, घोड़ा, रथ, धन, पालकी, गाँव, नगर तथा पृथ्वी से जिस वस्तु की अभिलाषा हो, वह मुझसे कह दीजिए—मैं उसे आपको सहर्ष भेंट करूँगा। यदि आप विवाह करने की इच्छा रखते हों तो मैं किसी अच्छे कुल में आपका विवाह करा दूँ? हे ब्रह्मस्वरूप! यद्यपि आपके अङ्ग छोटे दिखाई देते हैं, परन्तु आपके मुखारविन्द के प्रकाश को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आप कोई महापुरुष हैं। आप जो कुछ माँगेंगे, मैं वह निश्चय रूप से दूँगा। अपने प्राण देने में भी मुझे कोई संकोच न होगा।" राजा बलि के मुख से ऐसे वचन सुनकर वामनजी ने कहा—"हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि तथा प्रशंसा के समक्ष ये सब बातें कुछ कठिन नहीं हैं। तुम कश्यपजी के पौत्र भक्तराज प्रह्लाद के वंश में उत्पन्न हुए हो तथा शुक्राचार्य जैसे महात्मा को तुमने अपने गुरु के रूप में प्राप्त किया है। भला तुम भी धर्मात्मा क्यों न होगे? मुझे अधिक लोभ नहीं है, अतः मैं तुमसे केवल तीन पग पृथ्वी का दान लेना चाहता हूँ, ताकि उस पर कुश का आसन बिछाकर श्री नारायणजी का भजन कर सकूँ।" वामन भगवान् की बात सुनकर राजा बलि ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हे ब्रह्मचारी! आपने बहुत छोटी वस्तु माँगी है। आप इतनी भूमि क्यों नहीं माँग लेते, जिसमें आपका स्थान भली भाँति तैयार हो जाय। आप खेती करके अपना प्रतिपालन करने में समर्थ हो सकें तथा फिर किसी वस्तु की इच्छा न रहने पर किसी दूसरे के सम्मुख जाकर कुछ माँगने की आवश्यकता अनुभव न करें?" तब श्री वामन भगवान् ने इस प्रकार कहा—"हे राजन्! जिसमें अपना प्रयोजन पूर्ण हो जाय, उससे अधिक दान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माँगना उचित नहीं है। हम तो सन्तोषी ब्राह्मण हैं। अतः हमें तीन पग पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं चाहिये। हे विरोचन के पुत्र! तुम्हारी गणना बड़े दानियों में है, इसीलिये तुमने मुझसे इच्छापूर्वक दान माँगने को कहा है। अन्य प्राणी तो केवल अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही दान दे पाते हैं। तुम्हारे पूर्वज भी ऐसे दानी तथा शूर-वीर हुए हैं जिन्होंने न तो कभी दान देने से हाथ राका और न कभी रणभूमि से अपना मुँह फिराया। तुम्हारे कुल में कभी कोई लालची अथवा अधर्मी नहीं हुआ। तुम्हारे पितामह हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष ऐसे प्रतापी हुए थे कि उन्होंने देवताओं को जीतकर तीनों लोकों का राज्य किया था।"

हे परीक्षित! वामन भगवान् के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने कहा—"हे ब्रह्मचारी! आप ब्राह्मण के पुत्र होकर भी अपना अर्थ सिद्ध करना नहीं जानते हैं। आपके मुख के तेज को देखकर तथा आपकी बातें सुनकर, मैं आपको कोई बड़ा महापुरुष समझ रहा हूँ, परन्तु आपके द्वारा केवल तीन पग पृथ्वी माँगे जाने से आप कोई दरिद्री अनुभव होते हैं। मेरे द्वार पर जो भी ब्राह्मण अथवा भिखारी आता है, मैं उसे इतना दान देता हूँ कि फिर उसे जीवन-पर्यन्त कहीं दूसरे स्थान पर कुछ माँगने के लिए जाने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी लिए आप जैसे महापुरुष को केवल तीन पग पृथ्वी दान में देते हुए मुझे स्वयं लज्जा का अनुभव हो रहा है।" इस पर वामन भगवान् ने उत्तर दिया—"हे राजन्! लोभ को अत्यन्त निषिद्ध समझना चाहिए। अधिक लोभ रखनेवाले ब्राह्मण का धर्म तथा तेज नष्ट हो जाता है, केवल सन्तोषी ब्राह्मण का ही बल, तेज तथा गुण अधिक बढ़ता है। लालची मनुष्य देश-विदेशों में घूमकर चाहे करोड़ों रुपये कमा ले अथवा तीनों लोकों का राज्य पा ले अथवा उसके बहुत से पुत्र-पौत्र हो जावें, तो भी उसकी लालसा कभी पूर्ण नहीं होती है। सन्तोष रखने के कारण हमारे लिए तीन पग पृथ्वी ही बहुत है। यदि हमें सन्तोष न रहे तो सातों द्वीपों का राज्य मिल जाने पर भी तृष्णा का कभी अन्त न हो सकेगा। बिना सन्तोष किए कभी सुख प्राप्त नहीं होता। अतः अधिक तृष्णा को सभी दुःखों की जड़ समझना चाहिए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा बलि का तीन पग पृथ्वी का दान देने के लिए उद्यत होना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! वामन भगवान् के ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने कहा—"हे ब्रह्मचारी! यदि ऐसी ही बात है तो आप अपने चरण आगे बढ़ाइये, मैं उन्हें धोकर, तीन पग पृथ्वी का संकल्प किये देता हूँ।" यह सुनकर वामन भगवान् ने अपने पाँव आगे बढ़ा दिये। तब राजा बलि ने उन्हें धोकर, उस जल को अपने मस्तक तथा आँखों से लगाया। तत्पश्चात् धूप-दीप आदि से उनकी पूजा करके भूमि का संकल्प करने के लिए अपनी स्त्री द्वारा जल मँगवाया। राजा की आज्ञा पाकर रानी 'विन्ध्यावली' गङ्गा जल की झारी ले आई। जब राजा बलि तीन पग पृथ्वी का दान देने के लिए सङ्कल्प करने को उद्यत हुआ, तभी शुक्राचार्य ने अपने ज्ञान द्वारा वामन भगवान् को पहिचान लिया। उस समय शुक्राचार्य ने राजा बलि के समीप जाकर उसके कान में इस प्रकार कहा—"हे राजन्! तू इन्हें छोटा ब्रह्मचारी मत समझ, ये साक्षात् परब्रह्म श्री नारायणजी हैं। इस समय ये देवताओं की सहायता करने के लिए वामन-स्वरूप धारण कर तेरा राज्य लेने आये हैं। ये तुझसे तीन पग पृथ्वी का दान लेने के बहाने तीनों लोकों का राज्य लेकर देवताओं को सौंप देंगे। तू इनके छल में मत आना। यदि तू यह कहे कि मैं इन्हें तीन पग पृथ्वी देने के लिए कह चुका हूँ, तो उसका उत्तर यह है कि राजा के पास जो कुछ पृथ्वी अथवा धन हो, उसके पाँच भाग होने चाहिए। उनमें पहला भाग धर्म के लिए, दूसरा भाग यश के लिए, तीसरा भाग अपनी स्वयं की आवश्यकता के लिए, चौथा भाग स्त्री तथा पुत्रों के लिए एवं पाँचवाँ भाग सेवकों का होता है। अतएव मुझे अपने राज्य एवं धन के केवल पाँचवें भाग में से दान करना उचित है। तू यही बात वामनजी से कह दे, अन्यथा ये अपने दो ही पग में चौदहों भुवनों को नाप लेंगे। उस स्थिति में तू तीसरे पग की भूमि नहीं दे सकेगा। जिस अवसर पर अपना धन जा रहा हो अथवा किसी गो-ब्राह्मण की भलाई हो रही हो, उस समय झूठ बोलना अधर्म नहीं माना जाता। इसलिए तू अपने वचन से फिर जा। इसमें तुझे कोई पाप नहीं होगा।"

हे परीक्षित! शुक्राचार्यजी के ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने अपने मन में चार घड़ी तक विचार करके यह निश्चय किया कि यद्यपि शुक्राचार्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जी का कहना न मानना मेरे लिए हितकर नहीं है, फिर भी ब्राह्मण को वचन देकर उससे लौट जाना अत्यन्त निषिद्ध ठहरेगा। ब्रह्माजी द्वारा अनेक वरदान प्राप्त मेरे परदादा हिरण्यकशिपु को मार कर जिन श्री नारायणजी ने राज्य छीन लिया था, वे ही त्रिलोकीनाथ आज मेरे घर आकर, भिखारी के समान मुझसे तीन पग पृथ्वी का दान माँग रहे हैं; ऐसी स्थिति में मुझे अपना राज्य, धन, प्राण आदि सर्वस्व इनके ऊपर न्योछावर कर देना चाहिए। यदि मैं शुक्राचार्यजी की बात मानकर अपना वचन त्याग दूँ, तो भी इनमें इतनी सामर्थ्य है कि ये मुझे मारकर मेरा सम्पूर्ण राज्य छीन लेंगे। मुझे यह भी जान लेना चाहिए कि जो श्री नारायणजी की इच्छा होती है, उसमें तिल भर भी घट-बढ़ नहीं हो सकती। अतएव मुझे अपने वचन से न फिर कर इन्हें तीन पग पृथ्वी का दान अवश्य दे देना चाहिए।"

बीसवाँ अध्याय

राजा बलि का तीन पग पृथ्वी का संकल्प करना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! इस प्रकार विचार करने के उपरान्त राजा बलि ने शुक्राचार्यजी से कहा—"हे गुरु! आप जो यह कहते हैं कि इस ब्राह्मण को पृथ्वी का दान मत दो, सो ब्राह्मण से झूठ बोलने का पाप बहुत बड़ा होता है। यह राज्य, धन तथा संसारी सुख सदैव स्थिर नहीं रहता है, अतएव मैं इसके लिए झूठ क्यों बोलूँ? झूठ बोलने से मुझे नरक का दुःख भोगना पड़ेगा। यह राजसिंहासन मेरे साथ नहीं जायगा, इसलिए मैं अपने दिए हुए वचन से लौटने को तैयार नहीं हूँ। मेरा यह राज्य रहे अथवा चला जाय, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मेरे प्रपितामह हिरण्यकशिपु तथा पितामह भक्तराज प्रह्लाद तीनों लोकों के स्वामी थे और सभी देवता उनकी आज्ञा का पालन करते थे, परन्तु वे भी संसार में स्थिर नहीं रहे, उनका राज्य भी चला गया। मेरे पिता विरोचन भी राज्य तथा धन को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो गये। इसी प्रकार एक न एक दिन मैं भी इस राज्य तथा धन को छोड़कर मर जाऊँगा। यह समझकर भी मैं झूठ क्यों बोलूँ? आप मुझे इस ब्राह्मण को पृथ्वी देने से मना न करें। जो प्राणी शुभ कर्म करते हैं, उनका नाम सदा अमर रहता है—यह शरीर नित्य नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। देखिए, मुनिराज दधीचि ने इन्द्रादि देवताओं के कार्य के लिए अपने शरीर की हड्डी का दान कर दिया था। राजा शिवि ने अपने शरीर का मांस काटकर कबूतर के प्राण बचाये थे, इसी लिए संसार में आज तक उनका यश फैला हुआ है। हे प्रभो! मैं राजसिंहासन के नष्ट होने अथवा नरक में जाने से नहीं डरता हूँ, परन्तु अपयश से मुझे बहुत भय लगता है। यदि मैं इन्हें दान न दूँ तो संसारी लोग सदा यह कहते रहेंगे कि राजा बलि ने वामनजी को दान देने का वचन दिया था, परन्तु लोभ के वशीभूत होकर उसे छोड़ दिया। हे शुक्राचार्यजी! गृहस्थ प्राणी का यह धर्म है कि जो ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी उसके द्वार पर आवे उसे वह कभी विमुख न लौटने दे। कुछ देकर अवश्य प्रसन्न कर दे। इसलिए आप वही उपाय कीजिए, जिससे मेरा गृहस्थ धर्म बना रहे। आप जो यह कहते हैं कि ये श्री नारायणजी हैं, तो इस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि जिन त्रिलोकी-नाथ को प्रसन्न करने के लिए संसार में यज्ञ, तप, दान, हवन आदि कर्म किए जाते हैं, वे ही जब मेरे द्वार पर भिखारी बनकर तीन पग पृथ्वी का दान माँगने आये हैं, तो मैं उन्हें दान देकर संतुष्ट क्यों न करूँ? उनको दान देकर आशीर्वाद लेना तथा उनके ऊपर अपने प्राण तक न्यौछावर कर देना भी मुझे श्रेष्ठ लग रहा है। यदि ये मेरा राज्य लेकर देवताओं को दे देंगे, तो भी मेरा यश महाप्रलय पर्यन्त स्थिर बना रहेगा। जब ये लक्ष्मी के पति इस शरीर के स्वामी तथा तीनों लोकों के उत्पन्नकर्ता मुझसे दान माँग रहे हैं तो इन्हें प्रसन्नतापूर्वक दान देकर इनके हाथ को नीचा करना चाहिए। लालची मनुष्यों को नरक में जाना पड़ता है इसलिए मैं इस समय आपकी आज्ञा न मानकर इन्हें दान अवश्य दूँगा।"

हे परीक्षित! जब शुक्राचार्यजी ने यह देखा कि राजा बलि उनका कहना नहीं मानता है तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजा बलि को यह शाप दे दिया कि तेरा राज्य एवं धन दोनों नष्ट हो जायँ। परन्तु राजा बलि ने उस शाप का कोई भय नहीं माना। तदनन्तर उसने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक संकल्प करके वामन भगवान् से इस प्रकार कहा—"हे त्रिलोकीनाथ! आप तीन पग पृथ्वी नाप लें।" यह सुनकर श्री वामन भगवान् ने 'स्वस्ति' कहकर अपना ऐसा विराट् स्वरूप धारण किया कि सात लोक उनकी कमर के नीचे तथा सात लोक कमर के ऊपर हो गये। उस स्वरूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, देवता, दैत्य,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य, पर्वत, समुद्र, नदी, वन, आकाश, पाताल आदि तीनों लोकों की वस्तुएँ दिखाई देने लगीं। उस समय शंख, चक्र, गदा, पद्म ये चारों उनके शस्त्र तथा गरुड़जी, नन्द एवं सुनन्द आदि सोलह पार्षद अपना-अपना रूप धारणकर रत्नजटित मुकुट एवं कुण्डल आदि पहिने हुए वहाँ प्रकट हो गये। तभी जाम्बवन्त नामक रीछ (भालू) ने प्रभु के उस विराट् स्वरूप की इक्कीस परिक्रमा करके श्रीहरि का उच्च स्वर से जय-जयकार किया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब राजा बलि अपने पुरोहित शुक्राचार्यजी की आज्ञा न मानकर वामन भगवान् को पृथ्वी का सङ्कल्प करने लगा, उस समय शुक्राचार्यजी बहुत छोटा-सा स्वरूप धारणकर, उस जल की झारी की टोंटी में जा घुसे, जिसे राजा बलि संकल्प देने के लिए अपने हाथ में लिए हुए था। शुक्राचार्यजी ने उसमें से पानी न गिरने देने की इच्छा से, पानी गिरने के मार्ग को इसलिए बन्द कर दिया कि जब पानी ही न गिरेगा तो राजा संकल्प किस प्रकार कर सकेगा। अन्तर्यामी वामन भगवान् को जब यह बात मालूम हुई तो वे अपने हाथ की कुशा को उस टोंटी में डालकर उसका छेद खोलने लगे। कुशा की नोंक लगने से जिस समय शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई, उस समय वे काने होकर टोंटी से बाहर निकलकर भाग गये। हे परीक्षित! जो लोग किसी को दान देने अथवा शुभ कर्म करने में रोड़ा अटकाते हैं उनकी ऐसी ही गति होती है। शुक्राचार्य की एक आँख फोड़ देने का दूसरा कारण यह भी समझना चाहिए कि श्री नारायणजी ने मनुष्य को दो आँखें इसलिए दी हैं कि वह एक से तो संसारी सुख को देखे और दूसरी से अपने परलोक के भले-बुरे को देखता रहे। शुक्राचार्यजी सांसारिक सुख को अच्छा समझकर परलोक को भूल गये थे, इसी लिए वामन भगवान् ने उन्हें एक आँख फोड़कर चैतन्य कर दिया। इस कथा को सुनकर सब लोगों को अपने परलोक का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।"

इक्कीसवाँ अध्याय

वामन भगवान् का अपने विराटरूप से दो पग में ऊपर-नीचे के चौदहों लोक को नाप लेना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! वामन भगवान् ने विराटरूप धारण करके एक पग में ऊपर के सातों लोक तथा दूसरे पग में नीचे के सातों लोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाप लिये। जिस समय वामन भगवान् का दाहिना चरण ऊपर के लोकों को नापते समय ब्रह्मपुरी में पहुँचा, उस समय ब्रह्मादिक सभी देवता उस चरण को देखकर उठ खड़े हुए तथा विरजा नदी के पानी से उसे धोकर सबने चरणामृत का पान किया। ब्रह्मा ने उस जल को अपने मस्तक तथा आँखों से लगाकर शेष चरणोदक को एक कमण्डलु में रख लिया। उसी जल से श्री गङ्गाजी की उत्पत्ति हुई है। जो ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित थे उन्होंने भी श्री नारायणजी के चरणोदक को अपनी आँखों से लगाकर बहुत प्रकार से स्तुति की। उस समय देवताओं ने अपना मनोरथ पाकर अत्यन्त आनन्द मनाया तथा विविध प्रकार के बाजे बजाकर श्रीहरि का जय-जयकार किया। अप्सराओं ने हर्ष में भरकर नृत्य किया तथा गन्धर्वों ने गीत गाये।

हे परीक्षित! जिस समय वामन भगवान् ने विराट् स्वरूप धारण किया, उस समय विप्रचित्ती आदि दैत्यों ने अपने मन में घबड़ाकर राजा बलि से इस प्रकार कहा—"हे राजन्! देखो, इस नाटे मनुष्य ने आपके साथ कैसा छल किया है। यदि आप आज्ञा दें तो हम इसे अभी पकड़ लें।" बलि ने उत्तर दिया—"हे भाइयो! ये साक्षात् त्रिलोकीनाथ हैं। ये जो भी करना चाहेंगे वह अच्छा ही होगा। इनसे विरोध नहीं करना चाहिए।" राजा बलि के ऐसे वचन सुनकर सब दैत्य अपने अज्ञान के कारण परस्पर इस प्रकार कहने लगे—"देखो, हमारा धर्मात्मा राजा शान्तिपूर्वक बैठा हुआ यज्ञ कर रहा था, परन्तु इस ब्राह्मण ने छल करके उसका सारा राज्य ले लिया है। अब राजा तथा हम लोग कहाँ रहेंगे? राजा बलि ने जीवन भर हमारा पालन किया है, अतः आज हम इस छली ब्राह्मण को मारकर इससे पृथ्वी छीन लें। ऐसा करने से हम राजा बलि के अन्न-जल के ऋण से उऋण हो जायँगे। राजा स्वयं दान दे चुके हैं, अतः वे हमें लड़ने की आज्ञा नहीं देंगे; परन्तु इस समय हमें स्वयं अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।" इस प्रकार निश्चय करके सब दैत्य अपने-अपने शस्त्र उठाकर श्री वामन भगवान् के अङ्गों से लिपट गये। उस समय भगवान् वैकुण्ठनाथ की आज्ञा से सुदर्शन चक्र तथा पार्षदों ने उन्हें मारकर हटा दिया। तत्पश्चात् जब वे दैत्य भागकर राजा बलि के पास आये, उस समय बलि ने श्री नारायणजी की इच्छा समझकर तथा शुक्राचार्य के शाप का स्मरण करके दैत्यों से इस प्रकार कहा—"हे भाइयो! तुम लोग युद्ध मत करो। सुख-दुःख की प्राप्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रारब्ध से होती है। जब तुम्हारे शुभ दिन आवेंगे तब तुम फिर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। इस समय देवताओं का भाग्य उदय हो रहा है, इसलिए तुम्हारा युद्ध करना निष्फल सिद्ध होगा।" राजा बलि के ऐसे वचन सुनकर सभी दैत्य युद्ध करना छोड़कर इधर-उधर भाग गये। उस समय श्री वामन भगवान् ने राजा बलि से कहा—"हे राजन्! तुमने तीन पग पृथ्वी दान देने का संकल्प किया है, परन्तु नापने पर तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य मेरे दो पग के बराबर बैठा है, इसलिए अब तुम अपने सङ्कल्प के अनुसार तीसरे पग की पृथ्वी देने का और उपाय करो।"

बाईसवाँ अध्याय

वामनजी का राजा बलि को सुतल लोक का राज्य देना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब वामन भगवान् ने तीसरे पग की पृथ्वी और माँगी तब राजा बलि भयभीत होकर अपना मस्तक नीचा किए हुए मौन खड़ा रहा। यह देखकर श्री वामन भगवान् ने कहा—"हे बलि! यदि तुम तीसरे पग की पृथ्वी नहीं दे सकते हो, तो अपने मुख से यह कह दो कि हम नहीं देंगे।" यह सुनकर राजा बलि ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे त्रैलोक्याधिपति! मैं ऐसा अधर्मी नहीं हूँ, जो अपना वचन त्याग दूँ।" तब वामन भगवान् ने कहा—"हे राजन्! उस समय तुमने अहङ्कार में भरकर मुझसे यह बात कही थी कि तुम जो चाहो, वह माँग लो, दरिद्र ब्राह्मण के समान तीन पग पृथ्वी क्या माँगते हो? परंतु अब मैं यह देख रहा हूँ कि तुम तो तीन पग पृथ्वी भी नहीं दे सकते।" यह सुनकर राजा बलि श्री वामन भगवान् के तेज तथा भय के कारण यह भी नहीं कह सका कि माँगने के समय आपका स्वरूप छोटा था, परन्तु अब आपने ऐसा विराट् रूप बना लिया है कि आपको दान दिया भी जाय तो कैसे? अस्तु, कुछ देर बीत जाने पर भी जब राजा बलि ने कोई उत्तर नहीं दिया, उस समय वामन भगवान् ने क्रुद्ध होकर गरुड़ को यह आज्ञा दी कि तुम इसे बाँध कर डाल दो, तब यह तीसरे पग की पृथ्वी देगा। श्री नारायणजी की आज्ञा सुनकर गरुड़ ने राजा बलि को बाँधकर पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय जो लोग वहाँ उपस्थित थे वे आश्चर्यचकित होकर इस प्रकार कहने लगे कि जिस राजा ने वामन भगवान् को अपना सम्पूर्ण राज्य तथा धन दे दिया। उसे इस प्रकार बाँधकर डाल देना कोई अच्छी बात नहीं है। यह सुनकर नारदजी तथा सनत्कुमारजी ने सब लोगों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को यह समझाया कि वामनजी राजा बलि के धर्म की सचाई की परीक्षा ले रहे हैं, तुम लोग चिन्ता न करो। उधर वामनजी ने राजा बलि से फिर एक पग पृथ्वी की माँग करते हुए इस प्रकार कहा—"हे राजा! तू इन्द्र से ऊपर जाना चाहता था, परन्तु अब तुझे तेरे गुरु शुक्राचार्य के शाप के कारण नीचे नरक में जाना पड़ेगा।" यह सुनकर राजा बलि ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो! मैं अपने वचन से न फिर कर आपको दण्डवत् करता हूँ। आप तीसरे पग की पृथ्वी के बदले में अपने चरण को मेरे मस्तक पर रखकर मेरे शरीर को नाप लीजिए। यदि आप यह कहें कि जब तेरा चौदह लोकों का राज्य दो पग में सम्पूर्ण हो गया तब एक पग में तेरा अङ्ग कहाँ तक ठहर सकता है, तो उस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि मनुष्य के अन्य अङ्गों के बराबर न होते हुए भी जिस प्रकार छोटी-सी नाक सम्पूर्ण शरीर से अधिक महत्त्व रखती है, उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी जो कुछ समय पूर्व तक सम्पूर्ण धन, राज्य तथा तीनों लोकों का स्वामी था। एक पग भूमि से अधिक महत्त्व रखता है। हे जगदीश्वर! जब आपका नाम लेनेवाला मनुष्य नरक को नहीं जाता, तब आप तो स्वयं साक्षात् मेरे सामने खड़े हुए हैं, ऐसी स्थिति में मैं नरक को क्यों जाऊँगा? आपका दर्शन प्राप्त करने के कारण संसार में मेरी कीर्ति निरन्तर बढ़ेगी। जिस प्रकार आप हरि-भक्तों पर कृपा करके उन्हें अशुभ कर्मों से बचाये रहते हैं, उसी प्रकार आपने मुझे प्रह्लाद के कुल में उत्पन्न जानकर मेरे राज्य, धन, पुत्र तथा शक्ति के अहङ्कार को नष्ट कर, अपनी कृपा से यहाँ पधार कर तथा गुरु के समान उपदेश देकर कृतार्थ कर दिया है। यदि मैं लोभ के वशीभूत होकर आपको दान नहीं देता, तो मृत्यु के समय मेरे साथ यह राज्य अथवा धन तो कदापि जाता ही नहीं, उल्टे संसार में और अपयश उठाना पड़ता। हे प्रभो! यह भी मेरा अज्ञान ही है जो मैं स्वयं को दान देनेवाला समझ रहा हूँ। यह सम्पूर्ण पृथ्वी तथा लक्ष्मी तो आपकी ही हैं। आपकी कृपा के बिना किसी को भी राज्य अथवा धन नहीं मिल सकता।"

हे परीक्षित! जिस समय राजा बलि वामन भगवान् से ऐसी बातें कह रहा था, उसी समय भक्तराज प्रह्लाद आकाश से उतरकर उस स्थान पर आ पहुँचे। उन्होंने श्री वामन भगवान् को दण्डवत् करने के उपरान्त हाथ जोड़-कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आपने बलि के ऊपर यह अत्यन्त कृपा की,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो उससे तीन पग पृथ्वी का दान माँगा, अन्यथा आप तो स्वयं तीनों लोकों तथा संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं के स्वामी हैं; आपको किसी से कुछ माँगने की क्या आवश्यकता है ? राजा बलि आपका दिया हुआ जो धन-राज्य अपने पास रखता था, उसे उसने आपको समर्पित कर दिया। अब उसके पास अपने शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु शेष नहीं बची है। अतः हे महाप्रभु ! आप उसे अपना सेवक तथा भक्त जानकर छोड़ दीजिए।" प्रह्लाद जब इस प्रकार कह चुके, तब राजा बलि की पत्नी 'विन्ध्यावली' ने अपने दोनों हाथ जोड़कर वामन भगवान् से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! यह आपने कैसा न्याय किया जो इन्हें इस प्रकार बाँधकर दण्ड दिया है? संसार की सभी वस्तुएँ आपकी हैं, आप ही अपने खेल के लिए तीनों लोकों की रचना करते हैं। हाँ, राजा को अहङ्कार में भरकर यह कहना उचित नहीं था जो वे आप से यह कहते कि आप जो माँगना चाहें, वह माँग लें, मैं उसे अवश्य दूँगा।"

हे परीक्षित ! तदुपरान्त ब्रह्माजी ने भी उस स्थान पर आकर वामन भगवान् से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! राजा बलि ने अपने शुभ कर्मों द्वारा जो राज्य तथा धन पाया था वह सब उसने आपको समर्पित कर दिया। इतना ही नहीं, उसने यज्ञों का पुण्य भी आपको दे दिया तथा अपने धर्म से न फिरने के कारण बँध जाने पर भी कुछ विषाद नहीं किया; ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति अपना शरीर भी आपको भेंट कर रहा हो, उसे बाँधे रखना न्याय की बात नहीं है। जब आप दीनदयालु होकर ऐसा काम करेंगे, तब आपकी शरण में कौन आवेगा ? जो प्राणी तुलसीदल, फल, पुष्प तथा जल चढ़ाकर गुग्गुल आदि सुगन्धियों से आपके नाम पर अग्नि में हवन करता है, उसे आप अपना भक्त मानकर संसारी बन्धनों से छुड़ाकर भवसागर से पार उतार देते हैं, तब जिस राजा बलि ने अपने तन, धन, सर्वस्व आपको भेंट कर दिया, उसे मुक्ति क्यों नहीं देते ?" इस प्रकार जब भक्तराज प्रह्लाद, विन्ध्यावली तथा ब्रह्माजी ने श्री वामन भगवान् की प्रार्थना की उस समय श्रीहरि ने उत्तर दिया—"मैंने राजा बलि की परीक्षा लेकर इसका अहङ्कार नष्ट कर दिया है। तुम लोग इस बात का विश्वास मानो कि जिस प्राणी पर मेरी कृपा होती है, मैं उसका—१—जाति का अभिमान, २—धन, ३—विद्या, तथा ४—गर्व, छीन लेता हूँ। राजा बलि का राज्य तथा धन तो सदैव स्थिर नहीं रहता, परन्तु अब इसकी कीर्ति अमर बनी रहेगी। आगे जब आठवाँ मन्वन्तर आयेगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय हम राजा बलि को इन्द्रलोक का राज्य देंगे।" इतना कहकर श्री वामन भगवान् ने राजा बलि के मस्तक पर अपनी चरण-रज रखकर कहा—"हे बलि! अब मुझे तीन पग पृथ्वी पूरी मिल गई।" यह सुनकर राजा बलि ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे प्रभो! आप भक्तवत्सल हैं, इसीलिए आपने मुझे अपना सेवक जानकर, मेरी प्रतिज्ञा को इस प्रकार पूरा कर दिया है।" राजा बलि के ऐसे वचन सुनकर वामनजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे बलि! तू उदास मत हो। मैं तुझे सुतल लोक का राज्य देता हूँ। तू अपने परिवार-सहित वहाँ जाकर आनन्दपूर्वक निवास कर। मैं भी वामन-स्वरूप धारण कर तेरे द्वार पर रक्षा करने के लिए सदैव उपस्थित बना रहूँगा। आज से तेरी बुद्धि भी दैत्यों के समान नहीं रहेगी।"

तेईसवाँ अध्याय

राजा बलि का सुतल लोक में जाकर राज्य करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! वामन भगवान् के मुख से यह वचन सुनकर तथा बन्धन से मुक्ति पाकर, राजा बलि अत्यन्त प्रसन्न हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! आप जो आज्ञा देंगे, मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा। आपके जिन चरणों के दर्शन शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषि-मुनियों को ध्यान में भी प्राप्त नहीं होते हैं, वे ही चरण आपने मेरे मस्तक पर रखकर मुझे कृतार्थ कर दिया है। मैं इन चरणों को दण्डवत् करता हूँ तथा अपने समान इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवताओं का भाग्य भी नहीं मानता हूँ।" श्री वामन भगवान् से इतनी बात कहकर राजा बलि ने भक्तराज प्रह्लाद को प्रणाम किया। उस समय प्रह्लादजी ने आँखों में आँसू भरकर अपने पौत्र बलि को हृदय से लगा लिया तथा उसके ज्ञान की अत्यन्त प्रशंसा की। तत्पश्चात् प्रह्लादजी ने श्री वामन भगवान् को हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे त्रिलोकीनाथ! राजा बलि के बड़े भाग्य हैं। आपने बलि के ऊपर जैसी कृपा की, वैसी आप ब्रह्माजी तथा शिवजी पर भी नहीं करते हैं, क्योंकि आपने उनसे कभी भी कोई वस्तु नहीं माँगी है। आपके जिन चरण-कमलों का ध्यान ब्रह्मा आदि देवता तथा बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आठों प्रहर अपने हृदय में रखते हैं, उनको धोकर राजा बलि ने चरणामृत पान किया है। भला, हम मांसाहारी तथा मद्यपी अधर्मी दैत्यों का ऐसा भाग्य कहाँ, जो आपकी इस कृपा को प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर सकें। यह देखकर मैंने यह अनुभव किया है कि आप ऊँच-नीच जाति का विचार न करके अपने भक्तों की मनोकामना अवश्य पूर्ण करते हैं। हे त्रिलोकीनाथ! जिस प्रकार कल्पवृक्ष सबको इच्छित फल देता है, उसी प्रकार आपने अदिति की इच्छा पूरी करने के लिए स्वयं भीख माँगना भी स्वीकार कर लिया। आपके समान दीनदयालु दूसरा कौन है?"

हे परीक्षित! भक्त प्रह्लाद के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री वामन भगवान् ने कहा—"हे प्रह्लाद! मैंने बलि को सुतल लोक का राज्य दिया है, अतः तुम भी वहाँ इसी के पास जाकर रहो। मैं स्वयं भी गदा धारण किये हुए बलि के द्वार पर आठों प्रहर बना रहूँगा। मेरा मुख देखने तथा तुम्हारा सत्सङ्ग पाने से उसे समय बीतता हुआ न जान पड़ेगा। अब तक तुम्हें मेरा दर्शन ध्यान में प्राप्त हुआ करता था, परन्तु अब मेरी तुम्हारी प्रतिदिन प्रत्यक्ष भेंट हुआ करेगी।" वामन भगवान् की यह आज्ञा सुनकर राजा बलि तथा भक्तराज प्रह्लाद अपने परिवार-सहित सुतल लोक को चले गये। उस समय शुक्राचार्यजी ने वामन भगवान् के पास पहुँचकर उन्हें दण्डवत् करते हुए इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो! ब्राह्मण तथा पण्डित होते हुए भी संसारी माया के वशीभूत होकर मुझे ऐसी कुबुद्धि प्राप्त हुई कि मैंने राजा बलि को पृथ्वी का दान देने से मना कर दिया था, परन्तु उसका भाग्य बलवान् था। जो वह मेरे वचन न मानकर अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर बना रहा। हे दीनानाथ! अब कृपा करके मेरा अपराध भी क्षमा कर दीजिए, जिससे मैं सुतल लोक में जाकर राजा बलि के पास रहूँ। साथ ही यह वरदान भी दीजिए कि मुझे फिर कभी ऐसी कुबुद्धि प्राप्त न हो।" शुक्राचार्य की विनय सुनकर वामन भगवान् ने कहा—"हे शुक्राचार्य! तुम भी सुतल लोक में जाकर राजा बलि के पास रहो, परन्तु उसे फिर कभी ऐसी कुमति मत देना। तुम अपने शिष्य का सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण कर लो।" शुक्राचार्य बोले—"हे त्रिलोकीनाथ! जब आपका नाम लेने से यज्ञ सम्पूर्ण होता है, तब साक्षात् आपके चरण पधारे जाने पर यज्ञ की पूर्णता में क्या सन्देह रह गया है। फिर भी आपकी आज्ञानुसार मैं पूर्णाहुति डाले देता हूँ।" ऐसा कहकर शुक्राचार्य ने यज्ञकुण्ड में पूर्णाहुति डाल दी। तत्पश्चात् वे भी सुतल लोक को चले गये। उस समय ब्रह्मादिक देवता वामन भगवान् का नाम उपेन्द्र रखकर तथा उन्हें विमान में बैठाकर देवलोक को ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

गये। वहाँ पहुँचकर वामनजी ने इन्द्रलोक का राज्य देवताओं को दे दिया। तब सब देवता श्री वामनजी तथा अदिति के यश का गान करते हुए अपने-अपने लोक में विराजमान हुए। इन्द्र पुनः अपना राज्य प्राप्त करके इन्द्राणी के साथ भोग-विलास करने लगा। तत्पश्चात् श्री वामन भगवान् भी वैकुण्ठ-लोक को चले गये।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! तुमने हमसे वामन अवतार की कथा पूछी थी, वह हमने तुम्हें कह सुनाई। जो मनुष्य इस कथा को सच्चे मन से सुनेगा अथवा कहेगा, उसे भी मुक्ति-पद प्राप्त होगा।"

चौबीसवाँ अध्याय

मत्स्यावतार का वर्णन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! श्री नारायणजी के अवतारों की कथा सुनकर मेरा मन नहीं भरा है, अतः अब मैं आपके श्रीमुख से मत्स्यावतार की कथा सुनना चाहता हूँ। आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि इतने बड़े श्री नारायणजी ने इतना छोटा मछली का अवतार क्यों लिया था?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! आदिपुरुष निरंकार प्रभु जन्म-मरण से रहित हैं। वे केवल इसी लिए अवतार लेते हैं ताकि भक्त लोग उनके लीलाचरित्रों की कथा कह-सुनकर भवसागर से पार उतर जाया करें। जिस समय गौ, ब्राह्मण, देवता, पृथ्वी, धर्म तथा हरि-भक्तों पर संकट पड़ता है, उस समय वे छोटे-बड़े जीव का विचार न करके आवश्यकतानुसार चाहे जिस रूप में अवतार धारण कर लेते हैं। मत्स्यावतार की कथा इस प्रकार है—

हे परीक्षित! एक बार प्रलय के समय रात्रि होने पर ब्रह्मा अचेतावस्था में सोये हुए थे। जब दिन होने पर उन्हें जम्हाई आई, उस समय 'हयग्रीव' नामक दैत्य उनके मुख से वेद निकालकर पाताल में ले गया। यह देखकर ब्रह्माजी ने श्री नारायणजी से प्रार्थना की कि हे महाराज! हयग्रीव दैत्य वेद चुराकर ले गया है। वेद के बिना संसारी काम नहीं चल सकता है। वह दैत्य अत्यन्त बलवान् है। मुझमें तथा देवताओं में उसे जीतने की सामर्थ्य नहीं है। अतः आप वेद लाने का कोई उपाय कीजिए।

हे परीक्षित! श्री नारायणजी के मत्स्यावतार का एक कारण तो वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के उद्धार करने का था। दूसरा कारण यह था कि श्राद्धदेव के पुत्र सत्यव्रत ने राजसिंहासन त्यागकर तथा दस सहस्र वर्षों तक तपस्या करके श्री नारायणजी से महाप्रलय देखने की इच्छा प्रकट की थी। अतः इन दोनों कारणों की पूर्ति के लिए श्री नारायणजी ने 'मत्स्य' का अवतार ग्रहण किया। अवतार की कथा इस प्रकार है कि एक दिन राजा सत्यव्रत कीर्तिमाला नामक नदी में स्नान करने के लिए गया। स्नान करने के उपरान्त जब उसने तर्पण करने के निमित्त अपने दोनों हाथों में जल उठाया, उस समय उसे अपनी अञ्जलि में एक बहुत छोटी-सी मछली दिखाई दी। उस मछली ने राजा से इस प्रकार कहा—"हे राजा! मैं बहुत दीन होकर तेरी शरण में आई हूँ। यदि तू मुझे फिर इस जल में डाल देगा तो कोई बड़ी मछली मुझे खा जायगी, इसलिए मैं यह चाहती हूँ कि तू मुझे फिर से नदी में न डालकर, कहीं अन्यत्र मेरा पालन कर।" उस मछली की बात सुनकर राजा ने आश्चर्यचकित होकर अपने मन में विचार किया कि यह मछली मनुष्य के समान बोलती है, अतः इसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए। ऐसा निश्चय करके राजा ने मछली से कहा—"हे मत्स्य! तू धैर्य रख, मैं तेरा पालन अवश्य करूँगा। इतना कहकर राजा सत्यव्रत उस मछली को कमण्डलु में डालकर अपने स्थान पर ले आये। वहाँ आते ही वह मछली पलभर में इतनी बढ़ी कि कमण्डलु में फँस गई। उस समय उसने राजा से इस प्रकार कहा—"हे राजा! इस कमण्डलु में मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है, इसलिए तू मुझे किसी दूसरे स्थान पर रख।" तब राजा ने कमण्डलु को तोड़कर उस मछली को एक घड़े में रख दिया। एक प्रहर बीतने पर जब राजा उस घड़े के पास गया तो यह देखा कि वह मछली वहाँ भी बढ़कर फँस गई थी। उस समय मछली ने राजा से फिर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! मेरा शरीर इस घड़े में भी नहीं समाता है, अतः तू कोई दूसरा उपाय कर।" तब राजा ने उसे एक बड़े मटके में रक्खा। जब वह मछली वहाँ भी बढ़ गई तब राजा ने एक गड्ढा खुदवाकर पानी से भरवा दिया और उसमें मछली को रख दिया। जब वह गड्ढा भी छोटा पड़ा तब राजा ने उसे एक तालाब में छोड़ दिया। कुछ ही देर में वह मत्स्य इतनी बढ़ी कि तालाब भी उसके शरीर के लिए छोटा पड़ गया। यह देखकर राजा ने उस तालाब को नदी तक खुदवाकर, मत्स्य को वहाँ पहुँचवा दिया। दूसरे दिन जब राजा नदी में स्नान करने गया तो यह देखा कि वह सारी नदी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

मत्स्य के शरीर से भर गई है। यह देखकर राजा बड़े परिश्रमपूर्वक उस मत्स्य को समुद्र में ले गया तथा उससे इस प्रकार कहने लगा—"हे मत्स्य! तेरे रहने के लिए इससे बड़ा स्थान और कोई नहीं है। अब तू यहाँ रह और मुझे बिदा दे।" देखते ही देखते उस मत्स्य का शरीर दस सहस्र योजन लम्बा-चौड़ा हो गया, उस समय उसने राजा सत्यव्रत को पुकारते हुए कहा—"हे राजा! तू स्वयं को बहुत बड़ा ज्ञानी तथा धर्मात्मा समझता है, परन्तु मुझे समुद्र में अकेला छोड़कर उल्टा लौटा जा रहा है। अब तू ही बता कि जब मुझसे भी बड़ी-बड़ी मछलियाँ यहाँ मुझे खाने को आयेंगी, उस समय मैं क्या करूँगी?" यह सुनकर राजा सत्यव्रत ने अपने ज्ञान से यह जाना कि यह मत्स्य परमेश्वर का अवतार है, क्योंकि अन्य कोई भी मछली इतनी शीघ्रतापूर्वक इतना नहीं बढ़ सकती है। इसलिए मुझे इस मत्स्य की पूजा करनी चाहिए। ऐसा विचार करके राजा सत्यव्रत ने उस मत्स्य की बहुत कुछ स्तुति करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे मत्स्य भगवान्! मैं अभी तक नहीं पहिचान पाया था कि आप श्री नारायणजी के अवतार हैं। मेरे अहोभाग्य हैं, जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए।" राजा सत्यव्रत के मुख से ऐसे ज्ञानपूर्ण वचन सुनकर मत्स्य भगवान् ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तू जो यह समझ रहा था कि तू मेरा पालन करेगा, इसी लिए मैंने अपने शरीर को बढ़ाकर तुझे अपनी कुछ महिमा दिखाई है, जिससे तेरे हृदय में जमा हुआ किसी जीव को पालन करने तथा रक्षा करने का अहङ्कार नष्ट हो जाय। मनुष्य को चाहिए कि वह किसी काम के लिए 'मैं कर दूँगा' ऐसा न कहे। सब बातों में 'श्री नारायणजी चाहेंगे तो ऐसा हो जायगा' यही कहना चाहिए। हे राजा! तू विश्वास मान कि परब्रह्म प्रभु जो चाहते हैं, वही होता है। उनकी इच्छा के विपरीत मनुष्य के किये कुछ नहीं हो सकता।"

हे परीक्षित! मत्स्य भगवान् के ऐसे वचन सुनकर राजा ने पूछा—"हे प्रभो! आपने मत्स्य का शरीर किस लिए धारण किया है? मुझे यह बताने की कृपा करें।" मत्स्य भगवान् ने उत्तर दिया—"हे राजा! मैं जन्म-मरण से परे रहने पर भी, कभी-कभी सगुण अवतार लेकर अपने भक्तों तथा दासों की इच्छा पूर्ण किया करता हूँ। इन दिनों ब्रह्मा की प्रार्थना पर वेद लाने तथा तेरी इच्छा पर महाप्रलय का कौतुक दिखाने के लिए ही मैंने यह मत्स्य अवतार ग्रहण किया है। मैंने वाराह, कच्छप तथा नृसिंह अवतार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये, उनसे मैं छोटा नहीं हुआ और राम, कृष्ण का अवतार लेकर कोई बड़ा नहीं कहलाया। मैं घटने-बढ़ने से रहित होकर सदैव एकरस रहता हूँ। हे राजा! तुझे महाप्रलय देखने की इच्छा है, अतः सुन, आज से सातवें दिन तुझे संसार में चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देगा। उस समय एक नौका में बैठे हुए सप्तर्षि तेरे पास आयेंगे। वे तेरा हाथ पकड़कर तुझे उसी नौका में बैठा लेंगे। उस नौका के समीप ही पानी के ऊपर एक सर्प प्रकट होगा। अतः तुम लोग उस नौका की रस्सी के एक कोने को मेरे सोने की सींग में, जो दस सहस्र योजन लम्बा निकलेगा, बाँध देना तथा दूसरा कोना उस सर्प की पूँछ से बाँध देना। जिस समय वह नौका पानी पर घूम उठेगी, उस समय तू महाप्रलय का दृश्य देखकर सप्तर्षियों-सहित मुझसे ज्ञान पूछेगा तथा मैं जो ज्ञान बताऊँगा, उससे तेरी मुक्ति हो जायगी। हे राजा! इन सात दिनों के बीच में तू सब प्रकार की औषधियों के बीज एकत्रित करके अपने पास रख लेना।" इतना कहकर मत्स्य भगवान् वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

हे परीक्षित! तदनन्तर राजा सत्यव्रत सब औषधियों को इस बीच एकत्रित करके, प्रतिदिन कृतमाला नदी के तट पर महाप्रलय का दृश्य देखने के लिए आ बैठता था। जब सातवें दिन राजा सत्यव्रत नित्य-नियम करके वहाँ बैठा हुआ था, तब उसने यह देखा कि चारों ओर से नदी का पानी उमँड़ता हुआ चला आ रहा है। उसी समय आकाश से भी इस प्रकार की जल-वर्षा हुई कि देखते ही देखते सम्पूर्ण पृथ्वी जल में मग्न हो गई। उस समय राजा सत्यव्रत जल में गोते खाता हुआ, अत्यन्त भयभीत होकर, अपने मन में यह विचार करने लगा कि इस समय मत्स्य भगवान् ने एक नौका प्रकट होने की बात कही थी, परन्तु मुझे यह अनुभव होता है कि जब मैं डूब जाऊँगा तब वह नौका आयेगी। भला, उस समय मेरे लिए उसका क्या उपयोग रहेगा। जिस समय राजा ऐसी चिन्ता कर रहा था, उसी समय उसे दूर से एक नाव आती हुई दिखाई दी। उस पर सप्तर्षियों को बैठे हुए देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गया। कुछ देर बाद जब नाव निकट आई तो सप्तर्षियों ने राजा सत्यव्रत का हाथ पकड़कर उसी नौका में बैठा लिया तथा धैर्य देते हुए कहा—"हे राजा! अब तू नहीं डूबेगा।" राजा ने उन्हें दण्डवत् करते हुए पूछा—"हे ऋषियो! मत्स्य भगवान् क्यों नहीं आये हैं?" यह सुनकर सप्तर्षि बोले—"तुम श्री नारायणजी का स्मरण करो। मत्स्य भगवान् भी अभी आ जाते हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! सप्तर्षियों की बात सुनकर राजा सत्यव्रत ने जैसे ही श्री नारायणजी का ध्यान किया, वैसे ही मत्स्य भगवान् ने प्रकट होकर राजा सत्यव्रत को अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। कुछ समय बाद जब उस जल में वासुकि सर्प प्रकट हुआ, तब सप्तर्षियों तथा राजा ने मिलकर नौका की रस्सी जो सर्प की ही थी, का एक कोना तो मत्स्य भगवान् के सींग में बाँधा और दूसरा कोना वासुकि नाग की पूँछ से बाँध दिया। उस समय मत्स्य भगवान् उस नाव को पानी में फिराने लगे। इस प्रकार महाप्रलय का कौतुक देखकर राजा सत्यव्रत ने मत्स्य भगवान् से प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आपने मुझे महाप्रलय का दृश्य तो दिखा दिया अब कृपा कर ज्ञानोपदेश द्वारा मुझे भवसागर से पार उतार दीजिए, जिससे मैं इस आवागमन से छुट्टी पा जाऊँ। हे मत्स्य भगवान् ! संसारी मनुष्य सदैव ऐसे कर्म करता रहता है, जिससे वह इस मायाजाल में निरन्तर फँसा रहे। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी अपना परलोक नहीं बनाता, वह कुत्ता, शूकर आदि अन्य चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर महान् कष्ट प्राप्त करता है। संसारी मनुष्य रात-दिन स्त्री-पुत्र, धन आदि के मोह में पड़ा रहता है तथा मुक्ति-पदार्थ को देनेवाले श्री नारायणजी का स्मरण तक नहीं करता। भगवान् त्रिलोकीनाथ अपनी कृपा से जिसका मनोरथ पूरा कर देते हैं वह अपने अज्ञान के कारण यही समझता है कि यह कार्य मैंने अपने परिश्रम से किया है। घर, धन, स्त्री, पुत्र आदि की प्रीति में पड़कर मनुष्य अपना जन्म अकारथ कर देता है। वह यह नहीं सोचता कि पूर्वजन्मों के संस्कार के कारण सभी जीव अपना-अपना बदला चुकाने के लिए इस संसार में आकर इकट्ठे होते हैं। हे दीनबन्धो ! इस कुमति का दूर होना तथा ज्ञान का न प्राप्त होना—यह सब आपकी दया पर ही निर्भर है। जब तक मनुष्य संसारी माया-मोह से विरक्त नहीं होता तब तक वह आवागमन के चक्र से नहीं छूट पाता है। आप जिस जीव को दया करके ज्ञान दे देते हैं, वही भवसागर से पार उतर पाता है। अन्यथा बारम्बार जन्म लेकर अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। अतः हे नाथ ! आप मुझे अपना दास जानकर ऐसा ज्ञान दीजिए, जिससे मैं भवसागर से पार उतर जाऊँ।"

हे परीक्षित ! राजा सत्यव्रत के ऐसे वचन सुनकर मत्स्य भगवान् ने उसे ज्ञान का उपदेश किया। वह ज्ञान विस्तारपूर्वक मत्स्यपुराण में वर्णित है। उस ज्ञान को सुनकर राजा सत्यव्रत परमज्ञानी हो गया। तदुपरान्त मत्स्य भगवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने राजा सत्यव्रत से कहा—"हे राजा ! अब तू अपनी आँखें बन्द कर ले।" यह सुनकर राजा सत्यव्रत ने जैसे ही अपनी आँखें बन्द कीं तथा उन्हें कुछ देर बाद फिर खोला, तो उसने अपने को उसी नदी के तट पर आसन पर बैठे हुए पाया। महाप्रलय का वह कौतुक उसे फिर दिखाई नहीं दिया। इस चरित्र तथा श्री नारायणजी की महिमा को देखकर राजा ने आश्चर्यचकित होकर अपने मन में विचार किया कि मत्स्य भगवान् ने अपनी माया द्वारा मेरी इच्छा पूर्ण करने के लिए ही यह कौतुक दिखाया था। हे परीक्षित ! इस प्रकार उस ज्ञान को सुनकर तथा श्री नारायणजी के चरणों में ध्यान लगाकर राजा सत्यव्रत मुक्ति को प्राप्त हुआ। तदनन्तर मत्स्य भगवान् ने पाताल में जाकर अपनी गदा द्वारा हयग्रीव नामक दैत्य को मार डाला और उससे वेद लेकर ब्रह्मा को दे दिया। फिर आप वैकुण्ठलोक को चले गये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! चौदहों मन्वन्तरों में श्री नारायणजी जो-जो अवतार लेते हैं, उनकी कथा हमने तुम्हें सुनाई है। ये चौदहों मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन में व्यतीत हो जाते हैं। इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात होती है।" इतनी कथा सुनकर राजा परिक्षित ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने आपके मुख से चौदहो मन्वन्तरों की कथा सुनी, जिसके सुनने से संसारी जीव भवसागर से पार उतर जाते हैं। आप भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों काल के ज्ञाता हैं। अतः मैं यह चाहता हूँ कि अब आपके श्रीमुख से सूर्यवंशी तथा चंद्रवंशी राजाओं की कथा जो पहिले हो चुके हैं, विस्तारपूर्वक सुनूँ।" यह सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! तुमने यह बहुत सुन्दर बात पूछी है, सुनो। हम तुम्हें अब वही कथा सुनाते हैं। यदि कोई यह शंका करे कि शुकदेवजी ने वैष्णव होकर संसारी राजाओं का वृत्तान्त किस लिए कहा, तो उसका उत्तर यह है कि यह कथा दो गुण समझकर ही कही गई थी। पहिला गुण तो यह कि वे राजा धर्मात्मा एवं ज्ञानी थे तथा संसारी मोह-माया से विरक्त होकर मुक्त हुए थे। उनकी कथा सुनने से राजा परीक्षित को राज्य तथा शरीर के त्यागने का दुःख न होगा। दूसरा गुण यह है कि परब्रह्म प्रभु ने भक्तों को सुख देने के लिए सूर्यवंश में श्री रामचन्द्रजी का तथा चन्द्रवंश में श्री कृष्णचन्द्रजी का अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ की थीं, जिनको सुनने से संसारी लोग सब पापों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करेंगे।"

अष्टम स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

नवम स्कन्ध

सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं की कथा

वन्दना

मत कभी आओ निकट इतने नयन के,
आँख मुँद जायें, तुम्हारी ज्योति पाकर !
प्रीति अच्छी है वही—जो दूर की हो,
स्नेह घट जाता निकटता की परिधि में;
उन क्षणों की याद ही रहती अमिट जो—
काटने पड़ते प्रतीक्षा की अवधि में;
इस तरह स्वर में बसो मत प्राण के प्रिय,
टूट जायें तार निशि-दिन गीत गाकर !
नील-नभ यह दीखता कितना मनोहर,
लग रहे कितने सुघर यह चाँद-तारे ?
किन्तु यह सच है कि सबने मान पाया—
इस जगत में एक दूरी के सहारे;
इसलिए तुम भी पुकारो दूर से ही,
चल पड़ूँगा मैं स्वयं ही पग बढ़ाकर !
जानता हूँ यह कि तुम सब में रमे हो,
किन्तु मैं इसको भुलाना चाहता हूँ;
'छिप रहे हो तुम कहीं'—यह भाव लेकर
अज्ञ बनकर ही बुलाना चाहता हूँ;
भक्ति में जो है अमृत, उसको कभी भी—
दे न पाया है अरे ! यह ज्ञान लाकर !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

श्राद्धदेव मनु का वृत्तान्त

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे श्री शुकदेवजी ! मैंने आपके मुखारविन्द से सभी मन्वन्तरों की कथा सुनी तथा मत्स्य भगवान् ने राजा सत्यव्रत को जो ज्ञानोपदेश किया था, उसे सुनकर भी मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। हे प्रभो ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि किस राजा ने कौन से मन्वन्तर में राज्य किया ? इस समय सूर्य का पुत्र 'श्राद्धदेव' मनु राज्य कर रहा है, सो आप उसके सन्तान की कथा विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें।" राजा परीक्षित के ऐसे वचन सुनकर श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया–"हे परीक्षित ! मन्वन्तरों का विस्तारपूर्वक वर्णन तो सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है। अतः मैं तुमसे संक्षेप में उनकी कथा कहता हूँ, सुनो। जिस समय महाप्रलय होने पर सम्पूर्ण संसार जलमग्न हो गया, उस समय केवल श्री नारायणजी स्थिर रहे थे। तदनन्तर जब श्रीहरि की यह इच्छा हुई कि हम सृष्टि को उत्पन्न करके अपने स्वरूप को स्वयं देखें, उस समय उनकी नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न हुआ। हे परीक्षित ! उस कमल के फूल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने श्री नारायणजी की आज्ञानुसार 'मनु' नामक पुत्र को उत्पन्न किया। मनु के हृदय से 'मरीचि' का जन्म हुआ तथा मरीची द्वारा 'कश्यप' नामक बालक की उत्पत्ति हुई। कश्यप से सूर्य ने जन्म पाया। फिर सूर्य ने 'श्राद्धदेव' मनु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। जब श्राद्धदेव के कोई सन्तान नहीं हुई, तब उसने वशिष्ठ ऋषि से यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे पुत्र की प्राप्ति हो। उस समय वशिष्ठजी ने उसे यह बताया कि यदि तू यज्ञ करे तो तेरे सन्तान होगी। तत्पश्चात् जब श्राद्धदेव मनु ने वशिष्ठ की आज्ञानुसार यज्ञ किया, उस समय श्राद्धदेव मनु की पत्नी ने वशिष्ठजी के साथी ब्राह्मण से, जो अग्निकुंड में घृत की आहुति डालता था, यह कहा कि मेरी यह अभिलाषा है कि मेरे गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर कन्या की उत्पत्ति हो। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने कन्या के जन्म के लिए मन्त्र पढ़कर आहुति दी, इसलिए मनु की पत्नी के गर्भ से पुत्री का जन्म हुआ। वशिष्ठजी ने उस कन्या का नाम 'इला' रक्खा। उस समय श्राद्धदेव ने वशिष्ठजी से इस प्रकार कहा–"हे ऋषिराज ! मैंने पुत्र की प्राप्ति के लिए यज्ञ किया था, परन्तु मुझे आश्चर्य होता है कि मन्त्र का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फल ऐसा विपरीत क्यों हुआ, जो मुझे कन्या की प्राप्ति हुई है?" यह सुनकर वशिष्ठजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तेरी पत्नी ने घृत की आहुति देनेवाले ब्राह्मण से कन्या उत्पन्न होने के लिए कह दिया था, इसी लिए इस पुत्री का जन्म हुआ है।" यह सुनकर जब श्राद्धदेव मनु उदास हो गया, उस समय वशिष्ठजी ने उसे समझाते हुए फिर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! तू चिन्तित मत हो। मैं श्री नारायणजी से प्रार्थना करके अपने ब्रह्म तेज द्वारा इस कन्या को बालक बना दूँगा।" वशिष्ठजी के ऐसे वचन सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ। तदनन्तर वशिष्ठजी ने ध्यान लगाकर श्री नारायणजी की स्तुति की। उस समय भगवान् त्रिलोकीनाथ ने उन्हें दर्शन देकर कहा—"हे मुनि! तुम क्या चाहते हो?" वशिष्ठजी हाथ जोड़कर बोले—"हे प्रभो! मेरी यह अभिलाषा है कि यह कन्या बालक हो जाय। यह सुनकर श्रीहरि ने अपने मुख से ज्योंही 'तथास्तु' कहा, त्योंही वह कन्या बालक होकर खेलने लगी। उस समय श्राद्धदेव ने उस कन्या का नाम 'सुद्युम्न' रखकर अत्यन्त हर्ष मनाया तथा ब्राह्मणों एवं याचकों को मुँहमाँगा दान दिया। कुछ समय पश्चात् श्राद्धदेव ने सुद्युम्न को राजसिंहासन पर बैठा दिया। तब वह धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। एक दिन श्री नारायणजी की इच्छा से सुद्युम्न शिकार खेलने के लिए उत्तर दिशा के इलाव्रत खण्ड में जा पहुँचा। वहाँ वह एक हिरन के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ 'अम्बिका' नामक वन में चला गया। जैसे ही वह उस वन में पहुँचा, वैसे ही राजा फिर स्त्री रूप हो गया। राजा जिस घोड़े पर बैठा हुआ था, वह भी घोड़ी बन गया तथा उसके साथ जितने भी सेवक गये थे, वे भी सबके सब स्त्री हो गये। उस समय वे सब लोग अपनी-अपनी दशा देखकर अत्यन्त लज्जित हुए तथा एक-दूसरे से कुछ न कह सके। अन्त में जब किसी का कोई वश न चला तो उन्होंने श्री नारायणजी की वैसी ही इच्छा जानकर अपने हृदय में धैर्य धारण किया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! वे लोग उस वन में जाकर स्त्री क्यों हो गये थे, इसका कारण बताने की कृपा कीजिए।" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! एक समय उस वन में शिवजी तथा पार्वतीजी नग्न होकर विहार कर रहे थे, उसी समय सनकादिक चारों भाई उनका दर्शन करने के लिए वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने शिवजी तथा पार्वतीजी को दण्डवत् किया। उस समय अचानक उन्हें अपने सामने खड़ा देखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार्वतीजी ने लज्जित होकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। तब सनकादिक भी उदास होकर वहाँ से नर-नारायण के दर्शन करने के लिए बदरी-केदार को चले गये। उनके चले जाने पर पार्वतीजी ने श्री शिवजी से कहा—"हे प्रभो! आप विहार करने के लिए कोई एकान्त स्थान न बनवाकर मुझे इस प्रकार वन में लज्जित करते हैं, यह ठीक नहीं है। आज लज्जा के कारण मैं किसी को अपना मुख भी नहीं दिखा सकती।" पार्वतीजी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे प्राणप्रिये! तुम उदास मत होओ। हम आज से इस वन को ऐसा शाप देते हैं कि अब जो कोई भी देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा पशु आदि इस वन में आयेगा, वह स्त्री-रूप हो जायगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! यही कारण था जो उस वन में पहुँचकर राजा सुद्युम्न अपने साथियों सहित स्त्री-रूप हो गया था। उस वन में भगवान् शिवशङ्कर पार्वतीजी के साथ सदैव विहार करते हैं। वहाँ पार्वतीजी की सोलह हजार सहेलियाँ भी सेवा करने के लिए आठों प्रहर बनी रहती हैं। श्री शिवजी के अतिरिक्त अन्य कोई भी पुरुष उस वन में नहीं जा सकता। अस्तु, जब राजा सुद्युम्न स्त्री हो गया तथा लज्जा के कारण उस वन से लौटकर अपने घर न जा सका, उस समय वह अपने साथियों सहित व्याकुल होकर वहीं भ्रमण करने लगा। हे परीक्षित! उस वन के दक्षिण की ओर सीमा पर चन्द्रमा का पुत्र बुध बैठा हुआ तपस्या कर रहा था। संयोगवश स्त्रीरूपी राजा सुद्युम्न उसी स्थान पर जा पहुँचा। तपस्वी होने पर भी बुध उसके स्वरूप पर मोहित हो गया। स्त्रीरूपी सुद्युम्न का चित्त भी उसे चाहने लगा। तब दोनों परस्पर गन्धर्व विवाह करके वहीं रहकर भोग-विलास करने लगे। बुध की आज्ञा पाकर अन्य स्त्रियाँ पर्वत पर चली गईं, वहाँ उन्हें गन्धर्व लोग उठाकर अपने लोक में ले गये। कुछ समय पश्चात् बुध के संयोग से स्त्रीरूपी सुद्युम्न के गर्भ से 'पुरुरुवा' नामक बालक की उत्पत्ति हुई।"

हे परीक्षित! एक दिन स्त्रीरूपी सुद्युम्न ने अपने गुरु वशिष्ठ का ध्यान धरकर उन्हें याद किया, तब वे उसके पास वहीं आकर प्रकट हो गये। उस समय सुद्युम्न ने उन्हें अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभो! आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे मुझे पुनः पुरुष-शरीर की प्राप्ति हो। यह सुनकर वशिष्ठजी ने कहा—"हे राजन्! तू अपने मन में धैर्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धारण कर। मैं तेरे लिए उपाय करूँगा।" इतना कहकर जब वशिष्ठजी ने श्री शिव-पार्वती का ध्यान किया, उस समय भगवान् शिवशङ्कर ने दर्शन देकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हे वशिष्ठ! तुम क्या चाहते हो?" वशिष्ठजी उन्हें दण्डवत् करते हुए बोले—"हे महाप्रभो! मेरी यह अभिलाषा है कि आप कृपाकर सुद्युम्न को पुनः पुरुष बना दीजिए।" यह सुनकर पार्वतीजी ने कहा—"हे मुने! सुद्युम्न के स्त्री हो जाने का कारण, श्री शिवजी द्वारा अम्बिका वन को दिया हुआ शाप है, वह शाप मिथ्या नहीं हो सकता।" परन्तु पार्वतीजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी शिवजी ने दयालु होकर कहा—"हे वशिष्ठ! सुद्युम्न एक महीना पुरुष तथा एक महीना स्त्री रहेगा, मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ।" इतना कहकर शिवजी पार्वतीजी सहित अन्तर्धान हो गये। उसी समय राजा सुद्युम्न अपने पुत्र पुरुरुवा को लेकर अपनी राजधानी में लौट आया। वह एक महीने पुरुष बनकर राजसिंहासन पर बैठता था तथा दूसरे महीने स्त्री हो जाने पर किसी बीमारी के बहाने से राज-भवन के अन्दर बना रहता था। जब पुरुषरूप सुद्युम्न द्वारा अपनी पत्नी के गर्भ से तीन पुत्र और उत्पन्न हुए तब उसने कुछ दिनों तक राज्य का सुख भोगकर अपना मन संसारी माया-मोह से विरक्त कर लिया। तदुपरान्त उसने दक्षिण देश का राज्य अपने तीनों पुत्रों को, जो उसकी स्त्री से उत्पन्न हुए थे, दे दिया तथा अपनी गद्दी पर पुरुरुवा को बैठा दिया जो उसके गर्भ से बुध द्वारा उत्पन्न हुआ था। इतना करने के उपरान्त वह वन में चला गया तथा कुछ समय तक श्री नारायणजी का तप करने के पश्चात् मुक्त हो गया। हे परीक्षित! राजा पुरुरुवा से चन्द्रवंश तथा सुद्युम्न के अन्य पुत्रों द्वारा सूर्यवंश की उत्पत्ति हुई।"

दूसरा अध्याय

श्राद्धदेव की अन्य सन्तानों का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब राजा सुद्युम्न ने वन में अपना शरीर त्याग कर मुक्ति प्राप्त की, तब उसके पिता श्राद्धदेव ने अन्य सन्तानों की प्राप्ति के लिए श्री नारायणजी का तप किया। उसके प्रताप से उसकी पत्नी के गर्भ से दस पुत्रों का जन्म और हुआ। उसने अपने सबसे बड़े पुत्र का नाम 'इक्ष्वाकु' रक्खा। दूसरे पुत्र का नाम 'पृषन्धर' हुआ। वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन-रात गुरु वशिष्ठजी की गौएँ चराकर, उनकी रक्षा किया करता था। एक दिन रात्रि के समय जब बरसात हो रही थी एक सिंह ने किसी गाय को पकड़ लिया। उस समय पृखन्धर गाय का चिल्लाना सुनकर उठ बैठा। जब उसने बिजली चमकने पर एक गाय को सिंह के पंजे में देखा तो उसने गाय को बचाने के लिए अपनी तलवार द्वारा सिंह के ऊपर प्रहार किया। परन्तु वह तलवार सिंह के एक कान को काटती हुई उस गौ के शरीर में जा लगी, जिसके कारण गौ की मृत्यु हो गई। प्रातःकाल जब वशिष्ठजी ने उस गौ को मरे हुए देखा तो क्रुद्ध होकर पृखन्धर को यह शाप दिया कि तूने अपनी तलवार से गौ की हत्या की है, इसलिए तू शूद्र हो जा। वशिष्ठजी के शाप के कारण पृखन्धर ने वह शरीर त्यागकर एक अहीर के यहाँ जन्म पाया। उस शरीर में वह ब्रह्मचर्य धारणकर वन में हरि-स्मरण करने लगा। तदनन्तर एक दिन वन में अग्नि लग जाने पर वह अपनी इच्छानुसार जलकर भस्म हो गया।

हे परीक्षित! श्राद्धदेव के तीसरे पुत्र का नाम 'कवि' था, वह परमहंस हो गया। 'करुष' नामक चौथे पुत्र द्वारा 'कारुष' जाति के क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने उत्तर दिशा का राज्य किया। पाँचवें पुत्र का नाम 'दृष्टिधृक' था। उसके द्वारा 'धारिष्ट' जाति के क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। वे अपने शुभ कर्मों द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गये। 'नृग' नामक छठवें पुत्र के वंशज 'सुमन्त' से लेकर 'अग्नि' तक तो क्षत्रिय रहे, तत्पश्चात् वे अग्निवंशी भी ब्राह्मण हो गये। 'नभक' नामक सातवें पुत्र का 'नाभ' नामक लड़का हुआ। उसके कई पीढ़ी पश्चात् 'मरुत्' नामक एक ऐसा प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा हुआ, जिसके समान किसी अन्य राजा ने यज्ञ नहीं किया था। उसके यज्ञ में सभी बर्तन स्वर्ण द्वारा निर्मित हुए थे। उसने अपने यज्ञ में ब्राह्मणों को इतना धन दिया कि फिर किसी को कोई अभिलाषा ही शेष न रही। उसी के वंश में 'तृणविन्दु' नामक राजा ने 'लम्बुका' नामक अप्सरा के साथ विवाह किया। उस अप्सरा द्वारा 'हड़बिड़ा' नामक एक कन्या की उत्पत्ति हुई, जो 'विश्रवा' नामक ऋषि को ब्याही गई। हड़बिड़ा के गर्भ से 'कुबेर' का जन्म हुआ। 'तृणविन्दु' नामक राजा के 'शाल' नामक एक अन्य पुत्र ने 'वैशाली' नामक नगरी को बसाया था। उसके वंश में 'हेमचन्द्र' तथा 'सोमदत्त' आदि अनेक धार्मिक राजा उत्पन्न हुए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा अध्याय

श्राद्धदेव मनु की सन्तानों की कथा

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! उसी श्राद्धदेव मनु का एक पुत्र 'सर्याति' नामक राजा था। उसके घर में 'सुकन्या' नामक एक परम सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। राजा उस कन्या पर बड़ा स्नेह करता था तथा उसे आठों प्रहर अपने साथ ही रखता था। एक दिन वह राजा अपनी पत्नी तथा उस पुत्री को साथ लेकर शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ वह कन्या अपनी सहेलियों के साथ इधर-उधर घूम रही थी कि उसने अपने डेरे के समीप ही मिट्टी के एक ऐसे ढेर को देखा, जिसमें दो छिद्र चमक रहे थे। सुकन्या ने अपने बाल-स्वभाव-वश उन दोनों छिद्रों में काँटा चुभा दिया। वे दोनों छिद्र 'च्यवन ऋषि' की आँखें थीं काँटा चुभने पर उनसे रक्त बहने लगा। यह देखकर सुकन्या भयभीत हो अपनी सहेलियों के साथ डेरे में लौट आई। तत्पश्चात् ऋषि को दुःख मिलने के कारण राजा की सेना के सभी छोटे-बड़े मनुष्य एवं हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि पशुओं का मल-मूत्र बन्द हो गया तथा सभी के पेट में पीड़ा होने लगी।

हे परीक्षित! इस आश्चर्य को देखकर राजा ने अत्यन्त व्याकुल होकर उस वन में रहनेवाले लोगों से पूछा कि यह कैसा स्थान है जो हमारी सेना के लोग कष्ट पा रहे हैं? यह सुनकर वहाँ रहनेवालों ने उत्तर दिया–"हे राजन्! यह च्यवन ऋषि के रहने का स्थान है।" तब राजा उस ऋषि के स्थान को ढूँढ़ता हुआ वहाँ जा पहुँचा, जहाँ उनकी आँखों से खून बह रहा था। मिट्टी के ढेर में से खून बहता हुआ देखकर राजा अपने मन में जान गया कि इस टीले के भीतर ही च्यवन ऋषि बैठे होंगे। वे श्रीहरि के ध्यान में इतने मग्न हैं कि अपने शरीर की सुध-बुध भी खो बैठे हैं। किसी के द्वारा काँटा चुभा दिये जाने के कारण ही इनकी आँखों से रक्त बह रहा है। यह दृश्य देखकर जब राजा ने अपने साथियों से ऋषि की आँखों में काँटा चुभा देने का हाल पूछा, उस समय राजकन्या ने उसे बताया–"हे पिता! यह अपराध मुझसे अनजाने में हो गया है।" सुकन्या के वचन सुनकर राजा को पहिले तो बहुत चिन्ता हुई, फिर वह उस टीले के पास पहुँचकर ऋषि की प्रार्थना करने लगा। जब राजा ने अपने हाथों से उस मिट्टी को हटाया, तब ऋषि की समाधि भङ्ग हो गई, तत्पश्चात् राजा ने अपने दोनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाथ जोड़ते हुए च्यवन ऋषि से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! मेरी पुत्री से यह अपराध अनजाने में हो गया है, अतः अब मैं अपनी कन्या आपको समर्पित कर रहा हूँ। आप कृपाकर ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे मेरी सेना का दुःख दूर हो जाय।"

हे परीक्षित ! राजा की प्रार्थना सुनकर ऋषि ने प्रसन्न होकर ऐसा वरदान दिया, जिससे कि सबके पेट की पीड़ा नष्ट हो गई। तत्पश्चात् राजा अपनी कन्या को च्यवन ऋषि के पास छोड़कर स्वयं अपनी सेना सहित नगर में लौट आया। उधर राजा के चले जाने पर च्यवन ऋषि ने चौदह वर्ष की समाधि लगा ली। वे अपनी आँखें बन्द किये चुपचाप बैठे रहे। उतने दिनों तक वह राजकन्या भी अन्न-जल ग्रहण किये बिना उनके सामने हाथ जोड़े बैठी रही। हे परीक्षित ! वह कन्या ऐसी सुन्दर थी कि जिस समय ऋषि समाधि लगाये हुए थे तथा वह उनके समक्ष हाथ जोड़े हुए बैठी थी, उस समय इन्द्र ने उसके पास आकर इस प्रकार कहा—"हे सुकन्या ! तू यहाँ बैठी रहकर इतना कष्ट क्यों उठा रही है ? तू मेरे साथ चल, मैं तुझे इन्द्राणी बनाकर सुख पहुँचाऊँगा।" इसी प्रकार कुबेर आदि देवताओं ने भी उसके पास कई बार आकर ऐसी ही बातें कहीं, परन्तु उस पतिव्रता कन्या ने किसी ओर भी आँख उठाकर नहीं देखा। वह च्यवन ऋषि को अपना पति तथा प्रभु समझकर उन्हीं के चरणों में ध्यान लगाये रही। चौदह वर्षों बाद जब ऋषि की समाधि भङ्ग हुई, उस समय उन्होंने यह देखा कि वह राजकन्या उसी भाँति हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़ी है। उसके शरीर में केवल हड्डी तथा चमड़ा ही रह गया है। उसकी ऐसी निष्ठा देखकर च्यवन ऋषि को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री नारायणजी की कृपा से उसी समय अश्विनीकुमार वैद्य ऋषि के पास आ पहुँचे। उन्होंने ऋषि को दण्डवत् करते हुए कहा—"हे महाभाग ! आप हमें जो आज्ञा दें, हम आपकी वही सेवा करें।" च्यवन ऋषि ने कहा—"तुम हमारी आँखें खोलकर हमें तरुण बना दो तो हम भी तुम्हें मुँहमाँगी वस्तु देंगे।" यह सुनकर अश्विनीकुमार ने औषधि का कुण्ड बनाकर उसमें ऋषि को स्नान कराया, जिससे ऋषि की आँखें उसी समय अच्छी हो गईं तथा उनकी आयु भी सोलह वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो गई। उस समय राज-कन्या को जो प्रसन्नता हुई, उसे कैसे कहा जाय। यह देखकर च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमार से कहा—"अब तुम जो चाहो, वह मुझसे माँग लो।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अश्विनीकुमार ने उत्तर दिया–"हे मुनिश्रेष्ठ ! हम लोग देवताओं की चिकित्सा करते हैं, परन्तु देवता हमें अपनी पंक्ति में बैठाकर न तो भोजन करते हैं और न सोमयज्ञ में भाग ही देते हैं, अतः आप कृपा करके ऐसा वरदान दीजिए जिससे हमें यज्ञ में भाग मिलने लगे।" ऋषि ने कहा–"तुम धैर्य रक्खो, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।" यह वरदान पाकर अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर चले गये। तब च्यवन ऋषि ने उस राजकन्या से इस प्रकार कहा–"हे राजपुत्री ! मैं तपस्वी हूँ तथा मुझे संसारी सुख की इच्छा नहीं है, फिर भी तेरे पतिव्रत धर्म से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः संसारी सुख के सब पदार्थ एकत्रित करके मैं तेरे साथ भोग-विलास करूँगा। इस प्रकार कहकर च्यवन ऋषि ने अपने योगबल द्वारा एक ऐसा रत्नजटित स्वर्ण-मन्दिर प्रकट किया जिसमें उपवन, तड़ाग आदि संसारी सुख की सभी वस्तुएँ उपस्थित थीं। तब ऋषि ने राजकन्या को यह आज्ञा दी–"हे राजपुत्री ! तू भी इस तड़ाग में स्नान कर ले।" यह सुनकर ज्योंही उसने तालाब में गोता लगाया, त्योंही वह भी देवकन्याओं के समान सुन्दरी तथा सोलह वर्ष की अवस्थावाली हो गई और एक सहस्र स्वरूपवती दासियों के साथ तालाब से बाहर निकली। उन दासियों ने राजकन्या के सोलहों शृङ्गार सजाये। तदनन्तर च्यवन ऋषि उस राजपुत्री के साथ विवाह करके, भोग-विलास करने लगे।

हे परीक्षित ! कुछ समय पश्चात् एक दिन राजा सर्याति ने अपनी रानी से कहा कि हम अपनी कन्या को जब से वन में छोड़ आये हैं, तब से उसका कोई समाचार हमें नहीं मिला है, बिना प्रयोजन कन्या को अपने घर बुलाना भी उचित नहीं है, इसलिए हम यह चाहते हैं कि एक यज्ञ करके, उसके बहाने च्यवन ऋषि को पुत्री समेत अपने घर बुलावें। ऐसा करने से हमें उसका समाचार मिल जायगा। जब रानी ने भी यह बात स्वीकार कर ली तब राजा सर्याति यज्ञ की तय्यारी कर च्यवन ऋषि को बुलाने उस वन में जा पहुँचा। वहाँ जाकर राजा ने यह देखा कि न तो वहाँ कोई झोपड़ा है और न कोई टीला। उस स्थान पर एक सुन्दर मकान तथा बाग बना हुआ है। उसे देखकर राजा आश्चर्यचकित होकर अपने मन में यह विचार करने लगा कि इस वन में यह मकान किसने बनवाया है। जिस समय राजा खड़ा-खड़ा इस प्रकार सोच रहा था, उसी समय वह राजकन्या अपनी दासियों सहित तालाब में स्नान करने के लिए मकान से बाहर निकली। जैसे ही उसकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृष्टि राजा पर पड़ी, वैसे ही वह उसे पहिचान कर पास जा पहुँची। राजा अपनी पुत्री के वैभव को देखकर आश्चर्यचकित एवं अवाक् रह गया। उस समय राजकन्या ने इस प्रकार कहा—"हे पिता! आपने मुझे पहिचान कर गले क्यों नहीं लगाया?" यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया—"हे सुकन्या! तेरे माता-पिता का कुल श्रेष्ठ है, उसमें तूने दूसरा पति करके कलङ्क लगाया है।" राजा की बात सुनकर सुकन्या कहने लगी—"हे पिता! आप अपने मन में ऐसा सन्देह न करें। मैंने दूसरा पति नहीं किया है। आप यह जो कुछ वैभव देख रहे हैं, वह सब ऋषि ने अपने योगबल द्वारा प्रकट किया है।" यह सुनकर राजा ने अत्यन्त हर्ष में भरकर अपनी कन्या को प्यार किया, तदुपरान्त वह ऋषि के पास जा पहुँचा। वहाँ जब उसने ऋषि को अश्विनीकुमार के समान अत्यन्त सुन्दर तथा तरुण देखा तो उन्हें दण्डवत् करके इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! मैं सोमयज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप दया करके उस यज्ञ में पधारिए।" राजा की प्रार्थना सुनकर च्यवन ऋषि अपनी पत्नी सहित उसके यज्ञ में जा पहुँचे। रानी ने जब अपनी पुत्री तथा जामाता को देखा तो उसे भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त च्यवन ऋषि ने राजा का यज्ञ आरम्भ कराया। जब सब देवता तथा ऋषि उस यज्ञ में उपस्थित हुए तब च्यवन ऋषि ने देवताओं से कहा—"हे देवताओ! तुम लोग इस यज्ञ में अश्विनीकुमार को भी भाग दो।" यह सुनकर इन्द्र ने उत्तर दिया—"हे मुने! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, वे रोगियों का स्पर्श करते हैं, अतः उन्हें यज्ञ का भाग नहीं देना चाहिए। इस पर च्यवन ऋषि बोले—"हे इन्द्र! मैं अश्विनीकुमार को यज्ञ में भाग देने का वचन दे चुका हूँ, अतः उन्हें भाग अवश्य दूँगा। तब इन्द्र ने क्रुद्ध होकर कहा—"हे ऋषि! यदि तुम हमारा कहना न मानकर अश्विनीकुमार को यज्ञ में भाग दोगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे।" इतना कहकर ज्योंही इन्द्र ने ऋषि को मारने के लिए अपनी गदा उठानी चाही, त्योंही ऋषि की आज्ञा एवं श्रीहरि की इच्छा से उसका हाथ जैसे का तैसा उठा हुआ ही रह गया। यह देखकर जब इन्द्र लज्जित हुआ तथा कष्ट पाने लगा उस समय देवताओं ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"हे इन्द्र! तुमने च्यवन ऋषि के प्रति जैसा अनुचित बर्ताव किया है, वैसा ही दण्ड पाया है। अब तुम उन्हीं से अपना अपराध क्षमा कराओ।" यह सुनकर इन्द्र ने ऋषि की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो! आप महात्मा हैं। मैंने अज्ञान के कारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

आपकी महिमा न जानकर जो अपराध किया, उसका फल प्रत्यक्ष प्रदर्शित है। अब आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए तथा अश्विनीकुमार को यज्ञ में भाग दे दीजिए। हमें आपकी आज्ञा स्वीकार है।" यह सुनकर च्यवन ऋषि ने दयार्द्र होकर अपने हाथ से इन्द्र का हाथ नीचे झुका दिया, तब वह पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर च्यवन-ऋषि तथा देवताओं ने अश्विनीकुमार को यज्ञ का भाग दिया तथा उसे अपने साथ पंक्ति में बैठाकर खिलाया। इस प्रकार राजा का यज्ञ सानन्द सम्पूर्ण हुआ। अश्विनीकुमार को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् च्यवन ऋषि आदि सभी लोग अपने-अपने स्थान को चले गये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! जो प्राणी श्री नारायणजी की शरण में जाकर उनका ध्यान एवं तप करता है, उसे दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है। अपने मुख से जो भी कहे अथवा जिस किसी वस्तु की अभिलाषा करे, श्रीहरि की कृपा से उनके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। हे राजन् ! श्राद्धदेव के वंश में 'रेवत' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ था। उसके घर में 'रेवती' नामक एक परम सुन्दरी तथा गुणवती कन्या की उत्पत्ति हुई। जब यह विवाह के योग्य हुई तब राजा ने अपने मन में यह निश्चय किया कि मैं इस पुत्री के वर के लिए ब्रह्माजी से पूछूँ, वे जिसे बतावेंगे उसी के साथ इसका विवाह कर दूँगा। ऐसा सोचकर राजा अपनी कन्या को साथ लेकर ब्रह्मलोक में जा पहुँचा। उस समय ब्रह्माजी की सभा में गन्धर्वगण गीत गा रहे थे, अतः राजा ने गीत की समाप्ति तक चुप बैठे रहना उचित समझा। जब उनका गीत समाप्त हो गया तब राजा ने ब्रह्माजी से इस प्रकार कहा—"हे पितामह! मेरी इस कन्या के लिए आप कोई योग्य वर बता दीजिए जिसके साथ मैं इस कन्या का विवाह कर दूँ।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! जितनी देर से तुम यहाँ बैठे हुए हो, उतनी देर में संसार में सत्ताईस युग बीत चुके हैं। तुम्हारे सामने मर्त्यलोक में जितने भी राजा थे, अब वे सब काल को प्राप्त हो चुके। उनके वंश में कोई ऐसा धर्मात्मा भी न रहा, जिसे मैं तुम्हें बताऊँ। अतः अब तुम अपनी कन्या का विवाह 'वसुदेव' के पुत्र 'बलभद्र' के साथ कर दो। बलभद्र शेषनाग के अवतार हैं। उनके साथ तुम्हारी कन्या सुखी रहेगी।" यह सुनकर राजा ने अपनी कन्या रेवती का विवाह बलभद्र के साथ कर दिया। तत्पश्चात् स्वयं वन में जाकर हरि-स्मरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा मुक्ति-पद को प्राप्त हुआ। हे परीक्षित! सत्ययुग में जनमी होने के कारण रेवती इक्कीस हाथ लम्बी थी, अतः बलभद्रजी ने उसे अपने हल से दबाकर उसका शरीर अपने समान छोटा बना लिया था।

चौथा अध्याय

राजा अम्बरीष का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! राजा सर्याति की सन्तानों में 'अम्बरीष' नामक राजा ऐसा वैष्णव तथा हरि-भक्त हुआ कि उसे ब्राह्मण का शाप भी नहीं लगा।" यह सुनकर परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! ब्राह्मण का शाप मिथ्या हो जाय, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। फिर ऐसे वैष्णव राजा को किसी ब्राह्मण ने शाप क्यों दिया, यह वृत्तान्त मुझे सुनाने की कृपा करें।" शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! यह कथा इस प्रकार है कि राजा अम्बरीष इन्द्रियों के सुखों को त्याग कर, सच्चे मन से श्रीहरि का स्मरण एवं पूजन करते हुए राजकाज करता था। उसके यज्ञ में देवता, ऋषि तथा ब्राह्मण साक्षात् उपस्थित होकर अपना भाग स्वीकार करते थे। वह अपने मुख से दिन-रात श्री नारायणजी का भजन करता, हाथों से पूजन करता, आँखों से ध्यान धरता, कानों से हरि-चरित्रों को सुनता तथा संसारी व्यवहारों को स्वप्न के समान समझता था। श्रीहरि उसे परमभक्त जानकर अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उसके राज्य तथा देश की रक्षा किया करते थे। राजा की पत्नी भी परम वैष्णवी एवं पतिपरायणा थी। वे दोनों अपने हृदय में श्रीहरि का ध्यान धरते हुए दशमी को संयम तथा एकादशी को निर्जल व्रत रखते थे। प्रत्येक द्वादशी को राजा विधिपूर्वक साठ करोड़ गौ ब्राह्मणों को दान देकर तथा उन्हें भोजन कराकर व्रत का पालन करता था। एक बार एकादशी के दूसरे दिन द्वादशी केवल दो घड़ी ही थी। उस दिन प्रातःकाल दुर्वासा ऋषि राजा अम्बरीष के धर्म की परीक्षा लेने के लिये अपने अट्ठासी सहस्र शिष्यों के साथ अम्बरीष के घर जाकर भोजन की माँग करने लगे। राजा ने ऋषि का आदर-सत्कार करने के पश्चात् प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो! भोजन के पदार्थ तय्यार रक्खे हैं, आप भोजन कर लीजिए।" यह सुनकर दुर्वासा ने उत्तर दिया कि पहिले स्नान कर आवें, तब भोजन करेंगे। इतना कहकर वे स्नान करने के लिए यमुना के तट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने जान-बूझकर स्नान-पूजन आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

में देर लगा दी। उधर जब द्वादशी बीतने लगी और ऋषि लौटकर नहीं आये तो राजा ने अपने हृदय में घबड़ाकर ब्राह्मणों से राय माँगी कि दुर्वासा ऋषि अभी लौटकर नहीं आये हैं तथा द्वादशी बीती जा रही है। त्रयोदशी में व्रत का पारण नहीं होता, अतः ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए। तब ब्राह्मणों ने यह आज्ञा दी कि हे राजन्! तुम्हें श्री ठाकुरजी का चरणामृत लेकर व्रत का पारण कर लेना चाहिए। अस्तु, ब्राह्मणों की आज्ञानुसार राजा ने चरणामृत लेकर द्वादशी में पारण कर लिया। एक क्षण बाद जब द्वादशी बीत गई, तब दुर्वासा ऋषि भी स्नान करके लौट आये। राजा ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनसे भोजन करने का आग्रह किया। उस समय दुर्वासा ऋषि ने राजा से पूछा—"हे राजन्! तू अपने व्रत का पारण सदैव द्वादशी तिथि में कर लिया करता था, परन्तु अब द्वादशी बीत गई सो तूने पारण किया है अथवा नहीं? राजा ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! मैंने तो भोजन नहीं किया परन्तु ब्राह्मणों की आज्ञानुसार चरणामृत लेकर पारण कर लिया है।" राजा के मुख से ऐसे वचन सुनकर दुर्वासा ऋषि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—"हे राजन्! तूने हमें द्वादशी में भोजन कराने के लिए कहा था, परन्तु हमारे आने से पहिले ही तूने व्रत का पारण कर लिया। यह तुझे कदापि उचित नहीं था।" ऐसे कहकर दुर्वासा ने अपनी जटा में से एक बाल नोचकर पृथ्वी पर डाल दिया।

हे परीक्षित! दुर्वासा ऋषि के उस बालसे 'कृत्या' नामक राक्षसी उत्पन्न होकर राजा को मारने के लिए दौड़ी। उस समय श्री नारायणजी ने दुर्वासा ऋषि का अधर्म देखकर अपने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तू राजा अम्बरीष की रक्षा कर। श्रीहरि की आज्ञा पाकर सुदर्शन चक्र उस कृत्या के पास जा पहुँचा। उसके तेज से कृत्या का शरीर जलने लगा। तब वह व्याकुल होकर वहाँ से भाग गई। कृत्या के भाग जाने पर सुदर्शन चक्र ने अपने तेज से दुर्वासा ऋषि के अंगों को जलाना भी आरम्भ कर दिया। उस समय ऋषि भी अपने प्राण बचाने के लिए भाग खड़े हुए। चक्र ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। ऋषि अपनी रक्षा के लिए वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि देवताओं के लोक में गये, परन्तु उन्हें कोई नहीं बचा सका। वे जहाँ जाते थे, सुदर्शन चक्र भी वहीं पहुँचकर उन्हें व्याकुल करने लगता था। तब दुर्वासा ऋषि ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने उन्हें देखकर कहा—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुर्वासा ! तुमने श्री नारायणजी के भक्त का अपराध किया है, अतः मैं तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हूँ।" यह सुनकर वे शिवजी के पास गये। शिवजी ने कहा—"हे दुर्वासा ! हमारी उत्पत्ति नारायणजी की माया से हुई है, अतः हम उनके भेद को नहीं जान सकते। अब तुम उन्हीं की शरण में जाओ तो भले ही बच सको। मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो मैं तुम्हारी रक्षा कर सकूँ।" जब दुर्वासा ने यह सब देख लिया कि श्री नारायणजी के अतिरिक्त उन्हें कोई नहीं बचा सकता है, तो वे भगवान् त्रिलोकीनाथ की शरण में जाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! मैंने आपके भक्त का अपराध किया है, अतः आपका सुदर्शन चक्र मुझे मारना चाहता है। मैं आपकी शरण में आया हूँ, सो आप मेरी रक्षा कीजिए।" यह सुनकर नारायणजी ने उत्तर दिया—"हे दुर्वासा ! हम तीनों लोकों के स्वामी हैं, परन्तु अपने भक्तों पर हमारा भी कोई वश नहीं चलता है। उनसे अधिक लक्ष्मी तथा अपना शरीर भी प्रिय नहीं। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपनी सेवा द्वारा पति को वश में कर लेती है, उसी प्रकार हम भी अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। हमारे भक्त हमें मन, वचन, कर्म से अपना इष्टदेव समझते हैं। अतः हम उनके वचन नहीं मिटा सकते। हे ऋषि ! हमारा वचन यदि टल जाय तो भले ही टल जाय, परन्तु अपने भक्त का वचन टालना हमें स्वीकार नहीं है। हमारे भक्त बड़े दयालु तथा क्रोध को वश में रखनेवाले होते हैं, वे किसी का बुरा नहीं चाहते। यदि राजा अम्बरीष अपने हृदय से कुछ भी क्रोध करते तो आप वहीं जलकर भस्म हो जाते। अतः हम आपकी रक्षा करने में असमर्थ हैं। आप राजा अम्बरीष की शरण में ही जाइये। वे ही आपकी रक्षा कर सकेंगे। अन्यथा सुदर्शन चक्र द्वारा आप किसी प्रकार नहीं बच पायेंगे।"

पाँचवाँ अध्याय

दुर्वासा ऋषि का राजा अम्बरीष के पास पहुँचना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! जब दुर्वासा ऋषि श्री नारायणजी के पास पहुँचकर भी निराश हो गये, तब वे अत्यन्त लज्जित होकर राजा अम्बरीष के पास लौट आये और दण्डवत् करके एक ओर खड़े हो गये। ऋषि की ऐसी दशा देखकर राजा अम्बरीष ने दयार्द्र हो, सुदर्शन चक्र की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे सुदर्शन चक्र ! तुम दुर्वासा ऋषि को ब्राह्मण जानकर इनकी रक्षा करो। तुम्हारे स्वामी श्री नारायणजी ब्राह्मणों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्त हैं। मैं भी ब्राह्मणों का भक्त हूँ, अतः मुझसे ऋषि का कष्ट नहीं देखा जाता। मैंने आज तक जो कुछ भी धर्म किया हो, उसके फल से दुर्वासा ऋषि को कोई कष्ट प्राप्त न हो।"

हे परीक्षित! राजा अम्बरीष की प्रार्थना को सुनकर सुदर्शन चक्र ने अपना तेज शान्त कर लिया। उस समय राजा ने दुर्वासा ऋषि को हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभो! सब पदार्थ तय्यार रक्खे हैं, अतः आप भोजन कर लीजिए।" यह सुनकर दुर्वासा ने प्रसन्न होकर राजा के यहाँ भोजन किया। हे राजन्! उस सुदर्शन चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि एक वर्ष तक तीनों लोकों में भ्रमण कर रहे थे तथा राजा अम्बरीष उतने समय तक उसी स्थान पर खड़े होकर यह चिन्ता कर रहा था कि देखो, मेरे कारण ऋषि को कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है। श्री नारायणजी की कृपा से वह भोजन, जो दुर्वासा ऋषि के लिए बना था, ठण्डा नहीं हुआ था। अस्तु, ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त जब राजा ने भी प्रसाद ग्रहण किया, उस समय दुर्वासा ऋषि ने विह्वल होकर कहा—"हे राजन्! मैं हरि-भक्तों की महान् महिमा को नहीं जानता था। वास्तव में श्री नारायणजी के भक्त सबसे बड़े हैं। हे अम्बरीष! तुम परम धन्य हो, जो तुमने मुझ अपराधी के लिए भी एक वर्ष तक खड़े रहकर चिन्ता की तथा स्तुति करके मुझे सुदर्शन चक्र के कोप से बचाया। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं जो मैं श्री नारायणजी के भक्तों की प्रशंसा कर सकूँ।" इतना कहकर जब दुर्वासा ऋषि बिदा हो गये, उस समय अन्य सभी ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, राजा की प्रशंसा करने लगे। उनके वचन सुनकर राजा ने कहा—"हे महानुभावो! मैं किस गिनती में हूँ? यह तो श्री नारायणजी के सुदर्शन चक्र का ही प्रताप था, जो उसने मुझे कृत्या के हाथ से बचा लिया।"

हे परीक्षित! श्री नारायणजी के इतने कृपापात्र होते हुए भी अम्बरीष को कोई अभिमान न था। वह हरि-भक्ति के समक्ष इन्द्र-लोक के सुख को भी तुच्छ समझता था।" इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! हमने तुम्हें हरि-भक्त की यह छोटी-सी महिमा सुनाई है, उनकी भक्ति के गुणों का पूरा वर्णन तो कोई भी नहीं कर सकता। कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् राजा अम्बरीष अपने छोटे पुत्र को राज्य देकर, तप करने के लिए वन में चला गया। वहाँ हरि-भजन करके उसने मुक्ति-पद को प्राप्त किया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छठवाँ अध्याय

राजा इक्ष्वाकु का अपने पुत्र पर क्रोध करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! अम्बरीष के कुल में 'इक्ष्वाकु' नामक एक महा प्रतापी राजा हुआ। एक दिन उसने अपने बड़े पुत्र 'शशाद' से कहा—"हे पुत्र! तुम वन में जाकर शिकार ले आओ तो मैं उससे पितरों का श्राद्ध करूँ।" यह सुनकर राजकुमार ने वन में जाकर खरगोश मारा। भूख लगने के कारण उसने थोड़ा-सा मांस तो स्वयं खा लिया, शेष राजा के पास लाकर रख दिया। जब राजा श्राद्ध करने बैठा, तब वशिष्ठ ऋषि ने अपने योगबल से सब हाल जान लिया और उन्होंने राजा से कहा—"हे राजन्! इस मांस में से थोड़ा-सा मांस तेरे पुत्र ने खा लिया है, अतः यह श्राद्ध करने योग्य नहीं रहा है।" यह सुनकर राजा ने क्रुद्ध होकर शशाद को अपने नगर से बाहर निकाल दिया। तब वह वन में 'जाज्वल्य' नामक ऋषि के आश्रम में रहकर हरि-भजन करने लगा। कुछ समय बीतने पर जब राजा इक्ष्वाकु की मृत्यु हो गई, तब वशिष्ठजी ने शशाद को बुलाकर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसके वंश में 'पुरञ्जय' नामक एक राजा अत्यन्त प्रतापी तथा शूर-वीर हुआ। एक बार दैत्यों ने युद्ध करके देवताओं को जीत लिया। उस समय इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर अपनी जीत का उपाय पूछा। तब ब्रह्माजी ने उन्हें यह सलाह दी कि तुम लोग मर्त्यलोक के राजा पुरञ्जय को अपनी सहायता के लिए बुलवाओ। तभी तुम्हें विजय मिल सकेगी। यह सुनकर इन्द्र ने राजा पुरञ्जय के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! आप हमारे सहायक बनकर दैत्यों से युद्ध करें।" पुरंजय ने उत्तर दिया—"हे राजन्! मुझे तुम्हारी सहायता करने में कोई संकोच नहीं है, परन्तु दैत्यों से युद्ध करते समय मेरे शरीर में इतना बल उत्पन्न होगा कि मुझे हाथी, घोड़ा आदि अपनी पीठ पर न उठा सकेंगे, अतः यदि तुम स्वयं बैल बनकर मुझे अपनी पीठ पर बैठाओ तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तत्पर हूँ।" यह सुनकर इन्द्र ने स्वीकृति दे दी। तब राजा पुरंजय ने इन्द्र पर चढ़कर दैत्यों को युद्ध में हरा दिया। उस पुरञ्जय के वंश में 'श्रावस्त' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। उसने 'श्रावस्ती-पुरी' को बसाया। उसका पौत्र 'कुवलयाश्व' नामक राजा ऐसा शूरवीर निकला कि उसने 'उतङ्ग' ऋषि की सहायता से 'धुन्ध' नामक दैत्य का संहार किया। उस दैत्य के मुँह से ऐसी ज्वाला निकलती थी कि उसमें राजा कुवल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

याश्व के इकीस सहस्र पुत्र भस्म हो गये थे। केवल 'दृढ़हास' आदि तीन पुत्र ही जीवित बचे। दृढ़हास के पुत्र का नाम 'निकुम्भ' था। उसके वंश में 'युवनाश्व' नामक ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि उसने सातों द्वीपों के राजाओं पर अपना शासन किया। परन्तु कोई सन्तान न होने के कारण वह सदैव उदास बना रहता था। एक दिन राजा ने ऋषियों से यह निवेदन किया कि आप लोग कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे पुत्र की प्राप्ति हो। यह सुनकर ऋषियों ने राजा से यज्ञ कराया। उन्होंने यज्ञशाला में पानी का एक कलश अभिमन्त्रित करके इस इच्छा से रक्खा कि प्रातःकाल होने पर हम जल को रानी को पिलावेंगे तो उसको पुत्र होगा। परन्तु रात्रि के समय जब ऋषि तथा राजा आदि उस यज्ञशाला में सोये और राजा को प्यास लगी तो श्री नारायणजी की इच्छा से राजा ने धोखे में उसी पानी को स्वयं पी लिया। प्रातःकाल ऋषियों का जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने राजा से कहा—"हे राजन्! श्री नारायणजी की इच्छा में किसी का वश नहीं चलता है। अब तुम्हारे पेट से एक बालक उत्पन्न होगा।" यह सुनकर राजा पहिले तो उदास हुआ, फिर हरि-इच्छा समझकर सन्तोष धारण किया। अस्तु, गर्भवती स्त्री के समान राजा का पेट प्रतिदिन बढ़ने लगा। दसवें महीने के बाद ऋषियों ने राजा की दाहिनी कोख को चीरकर बालक को निकाल लिया तथा घाव को सीकर राजा को अच्छा कर दिया। जब उस बालक ने दूध माँगा, उस समय इन्द्र ने अपना अमृत से भरा हुआ अँगूठा उसके मुँह में डालकर चुसाया। अँगूठा चुसाते समय इन्द्र ने उस बालक को 'मान्धाता' कहकर पुकारा था तथा यह कहा था कि इसका पालन मैं करूँगा। अतः ऋषियों ने उस बालक का नाम 'मान्धाता' रख दिया। बड़ा होने पर मान्धाता ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि उससे सातों द्वीपों के राजा तथा रावण आदि राक्षस एवं दैत्य सभी डरते थे। उसने यज्ञ करके ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया। मान्धाता के 'मुचकुन्द' आदि तीन पुत्र तथा पचास कन्यायें हुईं। राजा मान्धाता ने अपनी उन सब पुत्रियों का विवाह 'सौभरि' नामक ऋषि के साथ कर दिया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! राजा मान्धाता ने अपनी पचास कन्याओं का विवाह एक ही ऋषि के साथ क्यों कर दिया?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! एक समय 'सौभरि' ऋषि यमुना के तट पर जल में बैठे हुए तप कर रहे थे। साठ सहस्र वर्षों तक तप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने के पश्चात् एक दिन ऋषि ने एक मछली को अपने बच्चों सहित यमुना-जल में क्रीड़ा करते हुए देखा। उसे देखकर ऋषि ने वृद्ध होते हुए भी अपने मन में यह विचार किया कि गृहस्थाश्रम बहुत अच्छा होता है। ऐसा सोचकर ऋषि को जब गृहस्थ बनने की इच्छा हुई तो उन्होंने राजा मान्धाता के पास जाकर यह कहा—"हे राजन्! तू अपनी एक कन्या का विवाह हमारे साथ कर दे।" राजा ने शाप के भय से भयभीत होकर ऋषि को उत्तर दिया—"हे ऋषि! मेरे पचास पुत्रियाँ हैं। आप राज-मन्दिर में चले जावें। वहाँ जो भी कन्या आपको स्वीकार कर ले, उसी के साथ मैं आपका विवाह कर दूँगा।" यह सुनकर ऋषि ने अपने मन में विचार किया कि मुझ वृद्ध को कोई राज-कुमारी क्यों स्वीकार करेगी? यह सोचकर ऋषि ने अपने तपोबल से अपना स्वरूप ऐसा सुन्दर बना लिया कि जिसे देखकर अप्सराएँ भी मोहित हो जायँ। तदुपरान्त जब वे अश्विनीकुमार के समान स्वरूप बनाकर राजमन्दिर में गये तो उनके सौन्दर्य को देखकर राजा की सभी पुत्रियाँ उन पर मोहित हो गईं। तब राजा मान्धाता ने अपनी पचासों कन्याओं का विवाह ऋषि के साथ कर दिया। ऋषि उन सबको लेकर अपने आश्रम पर चले आये। फिर उन्होंने अपने योग-बल द्वारा पचास ऐसे रत्नजटित विमान निर्मित किए, जिनमें उपवन-तड़ाग आदि संसारी सुख-भोग की सभी वस्तुएँ उपस्थित थीं। तदुपरान्त वे अपने पचास स्वरूप धरकर एक-एक स्त्री से अलग-अलग विमानों में भोग-विलास करने लगे। ऋषि की इच्छानुसार वे विमान इन्द्रादि लोकों में उड़कर पहुँच जाते थे। उन विमानों की शोभा देखकर देव-कन्याएँ तथा मान्धाता आदि उनकी ईर्ष्यायुक्त प्रशंसा करते थे। इस प्रकार सुखोपभोग करते हुए ऋषि ने पचास सहस्र पुत्रों को जन्म दिया। उनका वंश इतना बढ़ा कि जिसकी कोई गणना ही नहीं की जा सकती। अस्तु, बहुत दिनों तक संसारी सुख-भोग करने के पश्चात् एक बार ऋषि के मन में यह विचार आया कि मैंने इस संसारी माया-मोह में पड़कर हरि-स्मरण भी छोड़ दिया—यह सबसे बड़ा अकर्म हुआ है। इस मायाजाल में पड़कर तृष्णाओं का अन्त तो कभी होगा ही नहीं। अतः मुझे चाहिए कि अपना परलोक बनाने के लिए मैं फिर से श्री नारायणजी का स्मरण एवं तप करूँ। ऐसा निश्चय करके सौभरि ऋषि ने अपना मन संसारी माया से विरक्त कर लिया। तत्पश्चात् वे अपनी पचासों स्त्रियों सहित वन में जाकर तप करने लगे। कुछ दिनों बाद जब उन्होंने योगाभ्यास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा अपना शरीर त्याग दिया तो उनकी सब स्त्रियाँ भी सती होकर पति-लोक में पहुँच गईं।"

सातवाँ अध्याय

राजा त्रिशंकु का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! मान्धाता की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा पुत्र 'अम्बरीष' राजसिंहासन पर बैठा। उसके वंश में 'हारीत' नामक ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि उसने नागों की सहायता करके गन्धर्वों को हराया था। तब नागों ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी बहिन का विवाह उससे करके यह वरदान दिया था कि जो लोग तुम्हारे नाम का स्मरण करेंगे, उन्हें कोई भी सर्प दुःख नहीं देगा। हारीत के वंश में 'त्रिशंकु' नामक एक प्रतापी राजा हुआ, परन्तु गुरु वशिष्ठ के पुत्रों के शाप के कारण वह चाण्डाल हो गया। तत्पश्चात् विश्वामित्र के वरदान से उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।" यह सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! यह कथा आप विस्तार-पूर्वक वर्णन करने की कृपा करें। श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! एक दिन राजा त्रिशंकु ने वशिष्ठजी से यह कहा कि आप मुझसे कोई ऐसा यज्ञ करा-इये जिससे मैं इसी शरीर से स्वर्ग चला जाऊँ।" यह सुनकर वशिष्ठजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! ऐसा यज्ञ कराना हमें नहीं आता है।" तब राजा ने वशिष्ठ के पुत्रों से भी यही बात कही। उन्होंने राजा को शाप दिया कि तू गुरु का वचन मिथ्या समझकर हमसे फिर पूछने आया है, इसलिए तू चाण्डाल हो जायगा। इस शाप के कारण राजा त्रिशंकु जब दूसरे दिन सोकर उठा तो उसके शरीर का रंग काला पड़ गया तथा कपड़े नीले हो गये। यह देखकर लोगों ने उसे स्पर्श करना बन्द कर दिया। यह दशा देखकर राजा त्रिशंकु घबड़ाकर विश्वामित्र के पास गया और उनसे हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे महात्मन्! गुरु के पुत्रों ने शाप देकर मुझे चाण्डाल बना दिया है। मेरी इच्छा सशरीर स्वर्ग जाने की थी। वह पूरी नहीं हुई। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ।" यह सुनकर विश्वामित्र ने हँसकर उत्तर दिया—"हे राजन्! शाप के कारण तेरा स्वरूप जो परिवर्तित हो गया है, वह फिर नहीं बदला जा सकता परन्तु मैं तुझे इसी रूप में स्वर्ग पहुँचा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूँगा।" यह कहकर विश्वामित्र ने पृथ्वी के सम्पूर्ण ऋषियों को अपने यहाँ बुलाया, परन्तु उनमें वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये। यह देखकर विश्वामित्र ने उन्हें अपने शाप से डोम बना दिया। तत्पश्चात् विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु से यज्ञ कराया। उस यज्ञ में किसी भी देवता ने आहुति स्वीकार नहीं की। तब विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर राजा त्रिशंकु को अपने कमण्डलु के जल द्वारा स्नान कराते हुए कहा—"तू मेरे तपोबल से स्वर्ग में चला जा।" हे परीक्षित! विश्वामित्र के तपोबल से राजा त्रिशंकु चाण्डाल होते हुए भी स्वर्ग में जा पहुँचा तथा कुछ देर के लिए इन्द्र के सिंहासन पर भी बैठ गया। जब इन्द्र ने यह देखा कि एक चाण्डाल मनुष्य इन्द्रासन पर बैठा हुआ है, तब उसे एक लात मारकर नीचे गिरा दिया। उस समय देवताओं ने त्रिशंकु से कहा—"तू चाण्डाल है, अतः नीचे सिर और ऊपर पाँव करके पृथ्वी पर गिर। इस स्वर्ग में चाण्डालों के लिए स्थान नहीं है।" देवताओं द्वारा यह कहने पर जब त्रिशंकु उल्टा होकर नीचे गिरने लगा, उस समय वह विश्वामित्र को पुकारते हुए चिल्लाया—"हे विश्वामित्रजी! इन्द्र ने मुझे लात मारकर इन्द्रासन से नीचे गिरा दिया है, अतः आप मेरी सहायता करें।" यह सुनकर विश्वामित्र ने त्रिशंकु से कहा—"तू वहीं बना रह।" तब ऋषि की आज्ञा से वह नीचे गिरता हुआ, जिस स्थान पर चला आया था, वहीं ठहर गया। इसके उपरान्त विश्वामित्र ने उसके लिए अपने तपोबल द्वारा नवीन स्वर्ग का निर्माण कर, नवीन देवताओं की रचना आरम्भ कर दी। यह देखकर सब देवता घबड़ाकर विश्वामित्र की शरण में जाकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—"हे मुनिराज! यदि आप दूसरे देवताओं को जन्म देंगे तो उससे हमारा अपमान होगा। अतः श्री नारायणजी की आज्ञा के बिना आपको ऐसा कार्य करना उचित नहीं है।" यह सुनकर विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"हे देवताओ! मैं त्रिशंकु को स्वर्ग में रहने का वचन दे चुका हूँ, अतः मेरा बनाया हुआ स्वर्ग तो उसके रहने के लिए स्थिर बना रहेगा, परन्तु अब तुम्हारी बात मानकर दूसरे देवताओं की रचना नहीं करूँगा।" इस प्रकार विश्वामित्र ने नये देवता न बनाकर, उस स्वर्ग को बना रहने दिया। अतः आज तक राजा त्रिशंकु उस नये स्वर्ग से उल्टा लटका हुआ है। उसके मुख से लार गिरती है, उसी से कर्मनाशा नदी की उत्पत्ति हुई है। उस नदी में पाँव डालते ही मनुष्य के समस्त पुण्य नष्ट हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाते हैं। राजा त्रिशंकु की छाया मगध देश पर पड़ती है, इसीलिए मगध को मरने के लिए अपवित्र कहा जाता है।

हे परीक्षित! त्रिशंकु का पुत्र 'हरिश्चन्द्र' नामक राजा अत्यन्त प्रतापी हुआ। उसने वरुण देवता की यह मनौती मानी थी कि यदि मेरे पुत्र हो तो मैं उसी को तुम्हारी बलि चढ़ाऊँगा। वरुणदेव ने प्रसन्न होकर उसे 'रोहित' नामक एक पुत्र दिया। परन्तु उस बालक की आयु बारह वर्ष हो जाने पर भी राजा ने उसे बलि नहीं चढ़ाया। जब वरुणदेव ने बालक को बलि देने के लिए बहुत हठ की तथा बालक ने यह समझा कि घर रहने पर मैं किसी-न-किसी दिन बलिदान अवश्य कर दिया जाऊँगा, तो वह अपने प्राण बचाकर तीर्थयात्रा करने के लिए चला गया। उस समय वरुण देवता ने क्रुद्ध होकर राजा हरिश्चन्द्र के शरीर में जलन्धर रोग कर दिया। उस रोग के कारण जब राजा मृतकतुल्य हो गया, तब उसका समाचार सुनकर रोहित ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है, जो वरुणदेव के क्रोध के कारण मेरे पिता मारे जा रहे हैं। ऐसा विचार कर के जब वह घर लौटने लगा, उस समय मार्ग में उसकी भेंट विश्वामित्र के भानजे 'शुनःशेफ' से हो गई। रोहित ने शुनःशेफ के माता-पिता से यह कहा कि तुम सौ गौ लेकर अपने एक पुत्र को हमें दे दो। उस समय शुनःशेफ के पिता अजयकीर्ति ने यह कहा कि मुझे बड़ा पुत्र अत्यन्त प्रिय है, अतः मैं उसे न दूँगा। उसकी पत्नी बोली कि मैं अपने छोटे पुत्र को बहुत चाहती हूँ, अतः उसे न बेचूँगी। उस समय माता-पिता की बात सुनकर मझले पुत्र शुनःशेफ ने कहा कि माता-पिता को मेरा मोह नहीं है, अतः मैं रोहित के हाथ बिका जाता हूँ। शुनःशेफ की बात सुनकर जब उसके माता-पिता चुप रह गये, तब रोहित ने उन्हें विधिपूर्वक सौ गौ देकर शुनःशेफ को खरीद लिया। फिर उसे अपने बदले बलि देने का विचार कर घर को चल दिया। मार्ग में उनकी भेंट विश्वामित्र से हुई। विश्वामित्र ने अपने तपोबल से सब हाल जान लिया। तब उन्होंने अपने भानजे शुनःशेफ को वेद की एक ऋचा बतलाते हुए यह कहा कि तू इस ऋचा का पाठ नित्य किया करना। इससे तेरी मृत्यु न होगी। विश्वामित्र की आज्ञा से उसने ऋचा का पाठ आरम्भ कर दिया। जब रोहित शुनःशेफ को लेकर राज-भवन में पहुँचा, तब राजा हरिश्चन्द्र को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त राजा ने विश्वामित्र आदि ऋषियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बुलाकर वरुण देवता को बलिदान देने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। उसने अपने मन में यह निश्चय किया था कि राजकुमार रोहित के बदले शुनःशेफ को बलि देकर वरुण देवता को प्रसन्न कर लूँगा। तब वे मुझे भी स्वस्थ कर देंगे। अस्तु, यज्ञ करते समय जब शुनःशेफ को बलि देने का अवसर आया, उस समय विश्वामित्र ने वरुण देवता की बहुत स्तुति करके उन्हें प्रसन्न कर लिया तथा अपने भानजे को बलि होने से बचा लिया। वरुण देवता ने वरदान देकर राजा हरिश्चन्द्र का रोग भी दूर कर दिया। इस प्रकार रोहित तथा शुनःशेफ दोनों के प्राण बच गये। तत्पश्चात् विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को ऐसा ज्ञानोपदेश दिया, जिससे वह मुक्त हो गया। रोहित अपने पिता के सिंहासन पर बैठकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।"

आठवाँ अध्याय

राजा सगर की कथा

श्री शुकदेवजी बोले –"हे राजन्! रोहित के वंश में 'चम्पक' नामक एक प्रतापी राजा हुआ, जिसने चम्पापुरी बसाई। चम्पक के वंश में 'आहुक' नामक महाप्रतापी राजा हुआ। उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए एक सहस्र विवाह किये, पर श्री नारायणजी की इच्छा से किसी भी रानी द्वारा सन्तान नहीं हुई। इस कारण राजा अत्यन्त चिन्तित रहता था। एक दिन नारदजी ने राजा के पास आकर पूछा–"हे राजन्! तुम उदास क्यों रहते हो?" राजा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–"हे प्रभो! मैंने एक सहस्र विवाह किये, परन्तु मुझे अभी तक पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। मेरी चिन्ता का यही कारण है।" यह सुनकर नारदजी ने दया करके राजा को एक आम का फल, जिसे वे अपने हाथ में लिए हुए थे, देते हुए कहा–"हे राजन्! तुम यह फल चाहे जिस रानी को खिला दो, उसी के गर्भ से एक बालक का जन्म होगा।" इतना कहकर नारदजी चले गये। तब राजा ने वह फल अपनी बड़ी स्त्री को खिला दिया। उसी दिन रानी गर्भवती हो गई। जब तक पुत्र का जन्म नहीं हुआ था उसी बीच में ही अन्य राजाओं ने युद्ध करके राजा आहुक का राज्य अपने अधीन कर लिया। उस समय वह अपनी रानियों सहित वन में भाग गया तथा ऋषियों के समीप जाकर कुटी बनाकर रहने लगा। राजा अत्यन्त स्नेह के कारण अपनी बड़ी रानी, जो गर्भवती थी, के पास आठों प्रहर रहता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह देखकर अन्य रानियों ने सौतियाडाह के वशीभूत होकर आपस में यह विचार किया कि देखो, अभी तो बड़ी रानी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ भी नहीं है, तो भी राजा उसी के पास रहते हैं। जब पुत्र हो जायगा तब तो हमारी ओर देखेंगे भी नहीं। इसलिए इस बड़ी रानी को विष दे देना चाहिए, जिससे वह अपने गर्भस्थ बालक सहित मर जाय। यह निश्चय करके उन्होंने किसी वस्तु में विष मिलाकर बड़ी रानी को खिला दिया। उस विष की ज्वाला से रानी अत्यन्त व्याकुल होकर वहाँ रहनेवाले 'अवरव' नामक ऋषि के पास जाकर प्रार्थना करने लगी–"हे प्रभो! मैं आपकी शरण आई हूँ, आप मेरी रक्षा करें।" यह सुनकर अवरव ऋषि ने उत्तर दिया–"हे रानी! तू भयभीत मत हो, तू मरेगी नहीं तथा तेरे गर्भ का बालक भी विष सहित जीवित उत्पन्न होगा।" ऋषि का आशीर्वाद पाकर रानी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुछ समय बीतने पर राजा आहुक मर गया। उस समय सब स्त्रियाँ सती होने लगीं, परन्तु अवरव ऋषि ने बड़ी रानी को रोकते हुए कहा–"हे रानी! तेरे गर्भ से अत्यन्त प्रतापी बालक उत्पन्न होकर चक्रवर्ती राजा होगा, अतः तू सती मत हो। यह सुनकर बड़ी रानी सती नहीं हुई। शेष रानियाँ सती होकर पतिलोक में जा पहुँचीं। दसवें महीने बड़ी रानी के गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। उसके साथ ही विष भी उत्पन्न हुआ। विष को संस्कृत में 'गर' कहा जाता है। चूँकि वह बालक गर (विष) सहित उत्पन्न हुआ था, इसलिए ऋषि ने उसका नाम 'सगर' रक्खा। बड़े होने पर सगर ने सेना एकत्रित की तथा श्री नारायणजी के प्रसाद एवं ऋषियों के आशीर्वाद से अन्य राजाओं को जीत कर अपने पिता का राज्य प्राप्त कर लिया। राजा सगर ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया। वह ऐसा प्रतापी हुआ कि उसने 'तालजंघ' तथा 'बव' आदि म्लेच्छ राजाओं को अपने बाहुबल से जीत कर मार डाला। उसने सातों द्वीपों के राजाओं को अपने वश में करके दो विवाह किये। उसकी बड़ी रानी 'केशिनी' के गर्भ से 'असमंजस' नामक एक पुत्र हुआ तथा छोटी रानी 'सुधृती' द्वारा साठ सहस्र बालक उत्पन्न हुए। असमंजस पूर्व जन्म का योगभ्रष्ट योगी था, अतः उसने प्रजा को दुःख पहुँचाना आरम्भ कर दिया। यह देखकर राजा ने उसे वनवास दे दिया तथा अपने पौत्र (असमंजस के पुत्र) अंशुमान को, जो धर्मात्मा था, अपने पास रक्खा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! कुछ समय पश्चात् राजा सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। निन्यानबे यज्ञ तो उन्होंने भली-भाँति सम्पूर्ण कर लिये, परन्तु जब उन्होंने सौवाँ यज्ञ आरम्भ करके श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा तथा अपने साठ सहस्र पुत्रों को उसकी रक्षा के लिए साथ किया, उस समय इन्द्र ने अपने मन में यह सोचा कि जो मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लेता है, वह इन्द्र हो जाता है। सो कहीं राजा सगर सौ यज्ञ पूर्ण करके मेरा इन्द्रासन न छीन ले। मुझमें इतनी सामर्थ्य तो है नहीं, जो मैं सम्मुख जाकर युद्ध करके घोड़ा छीन लाऊँ, इसलिए मुझे छल करके श्यामकर्ण घोड़े को चुरा लेना चाहिए। ऐसा विचार करके इन्द्र ने किसी छल से उस घोड़े को चुरा लिया और जहाँ कपिल मुनि बैठे तपस्या कर रहे थे, वहाँ उनके पीछे घोड़े को बाँध कर आप इन्द्रलोक को चला गया। जब राजकुमारों को अपना घोड़ा दिखाई नहीं दिया तब उन्होंने चौदहों भुवनों में उसकी खोज आरम्भ की। परन्तु जब कहीं भी पता न चला तो राजा सगर के पास जाकर सब वृत्तान्त कहते हुए इस प्रकार निवेदन किया कि हे पिता ! यदि आप आज्ञा दें तो हम पृथ्वी को खोद कर घोड़ा ढूँढ़ें। राजा सगर ने आज्ञा दे दी। तब उन्होंने पृथ्वी को इस प्रकार खोदा कि भरतखण्ड में सात छोटे-छोटे समुद्र प्रकट हो गये। जब वे लोग घोड़े को ढूँढ़ते हुए कपिल मुनि के स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने यह देखा कि मुनि आँख बन्द किये तपस्या कर रहे हैं और घोड़ा उनके पीछे बँधा हुआ है। यह देखकर सब राजकुमारों ने चिल्लाते हुए कहा–"अब हमने अपना चोर पकड़ लिया।" उनकी आवाज सुनकर कपिल मुनि का ध्यान खुल गया। जब उन्होंने क्रोधभरी दृष्टि से राजकुमारों की ओर देखा तब वे सब वहीं जलकर भस्म हो गये।

हे परीक्षित ! जब राजा सगर को बहुत दिनों तक अपने पुत्रों का कोई समाचार नहीं मिला, तो उन्होंने अपने पौत्र अंशुमान को आज्ञा दी कि तुम जाकर अपने चाचाओं तथा घोड़ों का पता लगाओ। यह सुनकर अंशुमान उन्हें ढूँढ़ता हुआ कपिलजी के स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ उसने मुनि को दण्डवत् करके बहुत प्रार्थना की। उस समय मुनि ने प्रसन्न होकर अंशुमान से इस प्रकार कहा–"हे राजपुत्र ! तू अपना घोड़ा ले जा, परन्तु तेरे चाचा मेरे क्रोध के कारण भस्म हो गये हैं, वे मुक्त न होंगे। जब गंगाजी अपने जल से उनके भस्म को बहावेंगी, तभी उनका उद्धार हो सकेगा।" यह सुनकर अंशुमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुनि को दण्डवत् कर, श्यामकर्ण घोड़े को साथ ले, राजा सगर के पास लौट आया तथा उन्हें सब समाचार कह सुनाया। राजा सगर ने श्रीहरि की इच्छा जानकर सन्तोष किया। तत्पश्चात् अपना सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण कर, ऋषि-मुनियों से ज्ञान प्राप्त करके संसारी मोह-माया को त्याग दिया। फिर वे अपने पौत्र अंशुमान को राजगद्दी पर बैठाकर तपस्या करने के लिए वन में चले गये और वहीं श्री नारायणजी का स्मरण करके मुक्त हुए।"

नवाँ अध्याय

गङ्गावतरण की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! कुछ दिनों तक धर्मपूर्वक राज्य करने के पश्चात् राजा अंशुमान् ने अपने पुत्र 'दिलीप' को राजसिंहासन दे दिया और स्वयं वन में जाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर लाने के लिए तपस्या करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके बाद राजा दिलीप ने भी गंगाजी को लाने के लिए तपस्या करते हुए अपना शरीर त्यागा, परन्तु गंगाजी तब भी प्रसन्न नहीं हुईं। जिस समय राजा दिलीप की मृत्यु हुई, उस समय उसका पुत्र 'भगीरथ' बालक ही था। एक बार खेलते समय जब उसने अपने साथियों से यह सुना कि उसके पिता तथा पितामह ने गंगाजी को लाने के लिए तप करते हुए अपना शरीर त्यागा है, परन्तु गंगाजी प्रसन्न नहीं हुई हैं तो उसने यह निश्चय किया कि जब तक गंगाजी नहीं आ जायँगी, तब तक मैं राजगद्दी पर नहीं बैठूँगा। ऐसा विचार करके वन में जाकर तपस्या करने लगा। उस समय गंगाजी ने प्रसन्न होकर उसे स्त्रीरूप में दर्शन दिया तथा पूछा–"हे भगीरथ! तू क्या चाहता है?" भगीरथ ने उनकी दण्डवत्-परिक्रमा करने के पश्चात् उत्तर दिया–"हे माता! कपिलमुनि के शाप के कारण मेरे पुरुषा भस्म हो गये हैं, अतः मेरी यह कामना है कि आप पृथ्वी पर अवतरित होकर उनकी भस्म को अपने जल से बहावें, जिससे उनका उद्धार हो।" यह सुनकर गंगाजी ने कहा–"हे राजपुत्र! पृथ्वी पर आते समय मुझे दो बातों की शङ्का है। पहिली तो यह कि आकाश से गिरते समय यह पृथ्वी मेरे भार को न सह सकेगी। अतः किसी ऐसे प्रतापी एवं शक्तिशाली की आवश्यकता है, जो मेरे जल के वेग को अपने शरीर पर धारण कर सके। दूसरी बात यह है कि मेरे जल में स्नान करके पापी तथा अधर्मी लोग वैकुण्ठ को चले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जायँगे और उनके पाप का अंश मुझे पहुँचेगा। इन दोनों बातों के लिए यदि तुम कोई उपाय कर सको तो मैं पृथ्वी पर आने के लिए तय्यार हूँ।" यह सुनकर भगीरथ ने कहा—"हे माता! मैं शिवजी से प्रार्थना करूँगा कि वे तुम्हारे वेग को अपने मस्तक पर धारण करें। दूसरी बात के लिए यह है कि तुम्हारे जल में हरिभक्त, तपस्वी, महात्मा तथा ऋषि-मुनि भी स्नान करेंगे, अतः पापी एवं अधर्मियों के स्नान का पाप तुम्हें नहीं लगेगा।"

हे परीक्षित! भगीरथ की यह बात स्वीकार करके गंगाजी अन्तर्धान हो गईं। तब भगीरथ ने श्री शिवजी को प्रसन्न करने के लिए तप करना आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् शिवजी ने प्रसन्न होकर भगीरथ को दर्शन दिया तथा वर माँगने के लिए कहा। उस समय भगीरथ उनकी दण्डवत्-परिक्रमा करते हुए बोला—"हे प्रभो! आप गंगाजी के वेग को अपने मस्तक पर धारण करने की कृपा करें, जिससे मेरे पुरुषों को मुक्ति की प्राप्ति हो।" यह सुनकर शिवजी ने भगीरथ की बात स्वीकार कर ली। अस्तु, जब गंगाजी का जल आकाश से गिरा, उस समय शिवजी ने उसे अपने मस्तक की जटा में ले लिया। इस कारण गंगाजी कुछ समय तक उन्हीं जटाओं में भ्रमण करती रहीं, पृथ्वी पर नहीं गिर सकीं। जब भगीरथ ने शिवजी की प्रार्थना की, तब शिवजी ने भगीरथ को एक रथ देकर कहा—"हे भगीरथ! तू इस रथ पर बैठकर आगे-आगे चल, गंगाजी तेरे पीछे-पीछे चलती हुई जायँगी।" इतना कहकर शिवजी ने अपनी जटाओं में से एक बाल निचोड़ दिया। तब भगीरथ उस रथ पर सवार होकर वहाँ से चल दिया, जहाँ उसके पुरुषाओं की भस्म पड़ी हुई थी। भगीरथ के पीछे-पीछे जाकर गंगाजी ने अपने जल द्वारा उसके पुरुषाओं को मुक्त कर दिया। तब वे सब दिव्यरूप धारण करके विमानों पर बैठकर स्वर्ग चले गये। तदनन्तर भगीरथ भी अत्यन्त प्रसन्न होकर राजभवन को लौट आया। उसने ब्राह्मणों तथा दरिद्रों को बहुत-सा दान दिया। फिर वह प्रसन्नतापूर्वक राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। राजा भगीरथ ने बहुत समय तक धर्मपूर्वक राज्य किया। उसके वंश में 'ऋतुपर्ण' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ, जो राजा 'नल' का मित्र था। राजा नल ने उसे घोड़े पर चढ़ना सिखाया तथा ऋतुपर्ण ने राजा नल को जुआ खेलना सिखाया था। ऋतुपर्ण का पुत्र 'सुदास' भी बड़ा प्रतापी हुआ। एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया तो वहाँ 'हिरण्यरूप' नामक राक्षस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का संहार कर दिया। उस राक्षस के भाई ने राजा सुदास से बदला लेने की ठान ली, परन्तु वह राजा के सामने पहुँचकर युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखता था, इसलिए उसने ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर, राजा सुदास के पास पहुँचकर यह कहा कि हे राजन्! मुझे रसोई बनाना बहुत अच्छा आता है, अतः आप मुझे रसोइया के रूप में रख लें। यह सुनकर राजा ने उसे अपना रसोइया नियुक्त कर लिया। एक दिन राजा सुदास ने वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों तथा ब्राह्मणों को भोजन के लिए निमन्त्रित कर, उनके लिए अनेक प्रकार के व्यञ्जन मांस आदि बनवाये। उस समय उस राक्षस ने मनुष्य का मांस बनाकर, उसे खाने के लिए वशिष्ठजी के सामने रख दिया। वशिष्ठ ने अपने तपोबल से वह मांस पहिचान लिया। तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजा सुदास को यह शाप दिया कि हे राजन्! तूने हमें राक्षस समझकर हमारे भोजन के लिए मनुष्य का मांस बनवाया है, अतः हम श्री नारायणजी से यह चाहते हैं कि तू बारह वर्षों के लिए राक्षस होकर मनुष्य का मांस खाया कर। इस प्रकार शाप देकर वशिष्ठजी उठ खड़े हुए। राजा सुदास भी अपने धर्म-बल के कारण शाप देने की सामर्थ्य रखता था। अतः उसने कहा—"मेरी जानकारी में किसी ने मनुष्य का मांस बनाकर वशिष्ठजी को खाने के लिए नहीं रक्खा है, परन्तु फिर भी ऋषि ने मुझे श्राप दे दिया है, इसलिए मैं भी उन्हें शाप देता हूँ।" यह कहकर जैसे ही राजा ने शाप देने के लिए अपने हाथ में जल उठाया, वैसे ही उसकी रानी ने हाथ पकड़कर इस प्रकार कहा—"हे स्वामी! आपको ब्राह्मण तथा गुरु की समानता नहीं करनी चाहिए। वशिष्ठजी ने क्रोध के वशीभूत होकर यदि शाप दे दिया है तो वे फिर दयालु होकर आपको वरदान भी दे देंगे। आप स्वयं इन्हें कोई शाप न दें।" रानी के ऐसे वचन सुनकर राजा ने वशिष्ठजी को शाप न देकर वह जल अपने पाँवों पर डाल लिया, उसके कारण राजा के दोनों पैर काले हो गये। उस दिन से सब लोग राजा सुदास को 'कल्माषपाद' कहने लगे। तत्पश्चात् वशिष्ठजी के शाप के कारण राजा का स्वभाव राक्षसों जैसा हो गया, इसलिए वह मनुष्यों को पकड़कर उनका मांस खाने लगा, परन्तु वह किसी स्त्री को नहीं खाता था।

हे परीक्षित! एक दिन उस राजा ने वन में जाकर किसी ऋषि को खाने की इच्छा की। उस समय ऋषि की पत्नी ने राजा की प्रार्थना करते हुए इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार कहा—"हे राजन् ! मैंने अभी तक अपने स्वामी के साथ सांसारिक सुख-भोगों को इच्छित रूप में प्राप्त नहीं किया है। मेरे हृदय में अभी तक सन्तान प्राप्त करने की लालसा बनी हुई है। इसलिए तुम मेरे पति को मत खाओ; और यदि इतने पर भी न माना तो पति के साथ मुझे भी खा लो।" परन्तु राजा कल्माषपाद ने उस स्त्री की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने राक्षसी स्वभाव के कारण ऋषि को पकड़ कर खा लिया। यह देखकर ऋषि-पत्नी ने अपने स्वामी के साथ सती होने की इच्छा से चिता पर बैठते हुए यह शाप दिया—"हे राजा ! जिस समय तू स्त्री-प्रसङ्ग करेगा, उसी समय तेरी मृत्यु हो जायगी। अस्तु, बारह वर्ष बीत जाने पर जब राजा का ज्ञान ठीक हुआ, तब वह फिर से अपना राज्य करने लगा। एक दिन राजा ने अपनी पत्नी के साथ प्रसङ्ग करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु रानी को ऋषि-पत्नी के शाप का हाल मालूम था, इसलिए उसने राजा को समझा-बुझाकर भोग नहीं करने दिया। तत्पश्चात् एक दिन वशिष्ठजी ने राजमन्दिर में आकर राजा-रानी को ऐसा वरदान दिया कि तुम्हें बिना भोग किये ही पुत्र की प्राप्ति होगी। जब वशिष्ठजी ऐसा आशीर्वाद देकर चले गये तब उस दिन रानी बिना भोग किये ही गर्भवती हो गई। ईश्वर की कृपा से सातवें वर्ष उसके गर्भ से 'अश्मक' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। अश्मक का पुत्र 'मोलक' हुआ; परशुरामजी के क्रोध से मोलक बचा रहा। इसलिए वर्तमान काल के सब क्षत्रियों का मूल उसी को जानना चाहिए। मोलक का पुत्र राजा 'खट्वाङ्ग' ऐसा प्रतापी तथा धर्मात्मा हुआ कि उसने देवताओं की सहायता करके युद्ध में दैत्यों को जीत लिया। तदुपरान्त उसने मुक्ति-पद प्राप्त किया। उसकी कथा दूसरे स्कन्ध में विस्तारपूर्वक कही गई है।

दसवाँ अध्याय

श्री रामावतार की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! राजा खट्वाङ्ग के वंश में 'दशरथ' नामक अत्यन्त प्रतापी तथा तेजस्वी राजा हुए। उन्होंने धर्मपूर्वक अयोध्यापुरी में राज्य किया। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा। कौशल्या के गर्भ से परब्रह्म प्रभु श्री नारायणजी ने 'रामचन्द्र' अवतार लिया तथा कैकेयी के गर्भ से 'भरत' एवं सुमित्रा के गर्भ से शेषावतार 'लक्ष्मण'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा 'शत्रुघ्न' का जन्म हुआ। तुमने ऋषियों के मुख से श्री रामचरित्र सुना होगा। उस कथा को हम संक्षेप में कहते हैं। जिन त्रिलोकीनाथ रामचन्द्रजी ने अपनी बाल्यावस्था में 'मारीच' तथा 'सुबाहु' आदि राक्षसों को मारकर विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ की रक्षा की, उन्हींने गुरु विश्वामित्र के साथ अपने भाई लक्ष्मण-सहित जनकपुर में जाकर शिवजी के उस धनुष को, जो किसी भी राजा से नहीं उठता था, ऊख के समान तोड़कर परशुरामजी का गर्व दूर किया तथा सीता के साथ विवाह किया। फिर वे अपने पिता के आज्ञानुसार लक्ष्मण तथा सीता-सहित चौदह वर्ष वन में रहे। जब लक्ष्मण ने पंचवटी में रावण की बहिन शूपनखा के नाक-कान काट लिए, तब खर-दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह सहस्र राक्षस रामचन्द्रजी से युद्ध करने के लिए आये, परन्तु रामजी ने उन सबका संहार कर दिया। तदुपरान्त खर-दूषण आदि अपने भाइयों के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण ने योगी का भेष धरकर सीता को हर लिया। मार्ग में हरि-भक्त जटायु ने रावण से युद्ध किया, परन्तु रावण ने उसे अपने अग्निबाण से मार गिराया। फिर उसने सीता को समुद्र पार अपनी लङ्कापुरी में ले जाकर अशोकवाटिका में ठहराया। जब रामचन्द्रजी मायारूपी मृग 'मारीच' को मार कर अपने स्थान पर लौटे और वहाँ सीता को न पाया, तब वे मनुष्य-चरित्र को चरितार्थ करते हुए अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। सीता को ढूँढ़ते हुए जब वे जटायु के पास पहुँचे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि लङ्कापति रावण उन्हें हरकर ले गया है। उस समय श्री रामचन्द्रजी ने अपने हाथों जटायु का दाह-संस्कार किया। फिर उन्होंने 'कबन्ध' को मार कर 'सुग्रीव' से मित्रता की। सुग्रीव ने अपने वानरों को सीता का पता लगाने के लिए भेजा; उनमें हनुमान्‌जी ने लंका में पहुँचकर सीता का पता लगाया। तदनन्तर वे लंकापुरी को जलाकर श्री रामजी के पास लौट आये और उन्हें सीता का समाचार सुनाया। हे राजन्! इसके बाद रामजी ने वानर-भालुओं की विशाल सेना लेकर लङ्कापुरी को प्रस्थान किया। उन्होंने नल-नील द्वारा समुद्र पर सेतु बँधवाया। वहीं रावण के भाई विभीषण ने आकर रामजी से भेंट की, तब रामजी ने उसे लंका का राजतिलक कर दिया। उस सेतु द्वारा रामजी ने अपनी सेना-सहित लङ्का में पहुँच कर रावण से युद्ध किया। हनुमान्, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, सुग्रीव आदि सेनापतियों की सहायता से रामजी ने राक्षसों का मार डाला।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजीत मेघनाद का संहार हो चुका, तब रामजी ने रावण से घोर युद्ध करके उसका भी संहार कर दिया और उसे मुक्ति-पद देकर कृतार्थ किया। रामजी के आज्ञानुसार विभीषण ने रावण का दाह-कर्म संस्कार किया। फिर रामजी ने उसे लङ्का का राज्य सौंप दिया। तदनन्तर विभीषण सीताजी को रत्नजटित पालकी में बैठाकर रामजी के पास लाया। उस समय अन्तर्यामी रामजी ने वानर-भालुओं की इच्छा जानकर विभीषण को यह आज्ञा दी कि तुम सीता को हमारे पास पैदल लाओ, जिससे वानर-भालू उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त कर सकें। यह सुनकर सीताजी पालकी से उतर कर पैदल आईं और सबको दर्शन देकर कृतार्थ किया। तत्पश्चात् श्री रामजी-सीता, लक्ष्मण एवं हनुमान् आदि सेनापतियों को साथ ले, पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या लौट चले। जब वे प्रयागराज में पहुँचे तो उन्होंने अपने भाई भरत को सन्देश देने के लिए हनुमान् को अयोध्या भेजा। हनुमान् ने अयोध्या में जाकर भरतजी को श्री रामजी के आने का समाचार कह सुनाया। तब भरतजी-वशिष्ठ, मन्त्री एवं पुरजन, परिजनों को साथ लेकर रामजी को लेने के लिए गये। श्री रामचन्द्रजी ने पहिले गुरु वशिष्ठ के चरण स्पर्श किये, फिर भरत, शत्रुघ्न आदि को हृदय से लगाया। राजभवन में पहुँचकर उन्होंने अपनी माताओं को दण्डवत् किया। तत्पश्चात् वशिष्ठजी की आज्ञा से वे शुभ मुहूर्त में सिंहासनारूढ़ हुए। श्री रामजी ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया। उस समय त्रेतायुग था, परन्तु रामजी के धर्म के प्रभाव से उनके राज्य में सत्ययुग वर्तमान रहा।"

ग्यारहवाँ अध्याय

सीताजी को वनवास देने का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के उपरान्त श्री रामजी ने संसारी जीवों को धर्म का मार्ग दिखाने के निमित्त अनेक यज्ञ किये। उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य तथा धन ब्राह्मणों एवं ऋषि-मुनियों को दान कर दिया। उस समय ऋषि-मुनियों ने उनसे यह कहा कि हे प्रभो! हम लोग राज्य और धन लेकर क्या करेंगे? हमें तो केवल गौओं की आवश्यकता है, अतः आप हमें वही दीजिए। यह सुनकर श्री रामजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने उन्हें गौ आदि देकर अपना राज्य फिर वापिस ले लिया। सातों द्वीपों के राजा, देवता तथा दैत्य श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा का पालन करते थे।

हे परीक्षित! एक बार श्री रामचन्द्रजी अपना भेष बदल कर प्रजा की सुधि लेने के लिए अयोध्यापुरी में निकले। तब उन्होंने एक स्थान पर पहुँचकर, एक धोबी को अपनी स्त्री से लड़ते हुए देखा। वह अपनी स्त्री से यह कह रहा था कि तू मुझसे बिना पूछे एक रात्रि घर से बाहर रह आई है, अतः अब तू मेरे पास रहने योग्य नहीं है। मैं रामचन्द्र नहीं हूँ, जो उनकी सीता एक वर्ष तक रावण के यहाँ रही, फिर भी उन्होंने उसे अपने घर में रख लिया है। रामचन्द्रजी यह लोक-निन्दा सुनकर अपने घर लौट आये। उस दिन उन्हें रात भर नींद नहीं आई। प्रातःकाल होने पर उन्होंने शत्रुघ्न को यह आज्ञा दी कि तुम सीता को वन में छोड़ आओ। जब शत्रुघ्न ने उनकी आज्ञा स्वीकार नहीं की तो उन्होंने भरत से यही बात कही। भरत द्वारा भी अस्वीकार कर दिये जाने पर उन्होंने लक्ष्मण से कहा—"हे लक्ष्मण! तुम गङ्गापूजन के बहाने सीता को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप वन में छोड़ आओ, क्योंकि इन्हें घर में रखने से लोग मेरी निन्दा करते हैं। यदि तुमने आज्ञा का पालन नहीं किया तो मेरी मृत्यु हो जायगी।" यह सुनकर लक्ष्मण ने सीताजी के पास जाकर यह कहा—"हे माता! आपने गंगाजी तथा ऋषि-पत्नियों की पूजा करने का संकल्प किया था, सो आप मेरे साथ वन में चलकर उनका पूजन कर आइये।" यह सुनकर सीताजी अत्यन्त प्रसन्न हो, ऋषि-पत्नियों को देने के लिए वस्त्राभूषण लेकर, लक्ष्मण के साथ चल दीं। चलते समय बहुत से अशकुन हुए, परन्तु सीता ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। गङ्गापार वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप पहुँचकर लक्ष्मण ने रुदन करते हुए सीता को सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय सीता पहिले तो मूर्छित होकर गिर पड़ीं, फिर अत्यन्त व्याकुल होकर लक्ष्मण से कहने लगीं—"हे लक्ष्मण! रघुनाथजी की जो आज्ञा है, तुम वही कार्य करो। मैं उनकी अनेक जन्मों की दासी हूँ, अतः तुम मेरी ओर से उन्हें हाथ जोड़कर यह कह देना कि मुझसे जो भी अपराध हुआ हो, उसके लिए वे मुझे क्षमा करें।" तत्पश्चात् लक्ष्मण गर्भवती सीता को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पर छोड़कर अयोध्या लौट आये।

हे परीक्षित! कुछ समय बीतने पर सीता ने लव-कुश नामक दो अत्यन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुन्दर, तेजस्वी तथा प्रतापी बालकों को जन्म दिया। तदुपरान्त अश्वमेध यज्ञ करते समय जब रामचन्द्रजी ने सीता को बुलाने के लिए लक्ष्मण को फिर भेजा तो वे लव-कुश को उन्हें सौंपकर स्वयं अयोध्यापुरी में जाकर पृथ्वी में समा गईं। सीता का पृथ्वी-प्रवेश देखकर रघुनाथजी ने अत्यन्त विलाप किया। अस्तु, सीता को त्यागने के उपरान्त श्री रामजी ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर यज्ञ आदि करते रहे। उन्होंने ग्यारह सहस्र वर्ष तक अयोध्या का राज्य किया तथा अपनी प्रजा को बहुत सुख पहुँचाया। लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के भी 'चित्रकेतु', 'सुबाहु' आदि दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्री रामजी ने उत्तर दिशा का राज्य भरत को, पश्चिम का शत्रुघ्न को तथा पूर्व का लक्ष्मण को दे दिया। अयोध्यावासी श्री रामजी के दर्शन पाकर जो सुख प्राप्त करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके राज्य में कोई जीव दुखी नहीं दिखाई दिया। अन्त समय में अपने पुत्रों को अयोध्या का राज्य देकर श्री रामजी वैकुण्ठ को पधार गये। वे अपने साथ ही अयोध्या-वासी सभी प्राणियों को सशरीर विमान में बैठाकर वैकुण्ठलोक को ले गये। श्री रामजी का नाम लेने से करोड़ों जीव भवसागर पार उतर जाते हैं। 'रामायण' में उनकी कथा विस्तारपूर्वक लिखी है। उनके लिए समुद्र का बाँधना तथा रावण का संहार करना कोई कठिन काम न था। वे अपनी भृकुटि के द्वारा ही चौदह भुवनों का संहार करने में समर्थ थे, परन्तु उन्होंने संसारी जीवों को दिखाने के लिए ही ये सब चरित्र किये। हे परीक्षित! जब ऐसे परब्रह्म प्रभु को गृहस्थ होने पर स्त्री के कारण दुःख उठाना पड़ा, तब संसार के साधारण मनुष्यों को गृहस्थ होने पर दुःख क्यों न उठाना पड़ेगा?"

बारहवाँ अध्याय

कुश के वंश की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! कुश के वंश में अतिथि, पुण्डरीक, सुदास आदि राजाओं के पश्चात् 'मरु' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ। वह अभी तक उत्तर दिशा के "कलाप ग्राम" में बैठा हुआ श्री नारायणजी का तप कर रहा है। कलियुग के अन्त में फिर उसी के द्वारा सूर्यवंशी राजा उत्पन्न होकर अपना वंश चलावेंगे। मरु के वंश में 'वृहद्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बल' नामक एक परम प्रतापी राजा हुआ, जिसे तुम्हारे पितामह भीमसेन ने महाभारत के युद्ध में मारा था। राजा इक्ष्वाकु के वंश में इतने राजा अत्यन्त प्रतापी हो चुके हैं। अब जो आगे उनके वंश में होंगे उनके नाम सुनो। वृहद्बल के वंश में सहदेव तथा सुमन्त आदि कई प्रतापी राजा होंगे। संसार में उनका राज्य कई पीढ़ियों तक स्थिर रहेगा। हे परीक्षित! कलियुग में भी सूर्यवंशियों का राज्य होगा तथा उनका वंश सर्वोत्तम माना जायगा।"

तेरहवाँ अध्याय

वशिष्ठजी का राजा निमि को शाप देने की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इक्ष्वाकु के पुत्र 'राजा निमि' ने एक बार अपने गुरु वशिष्ठजी से यज्ञ कराने के लिए कहा। वशिष्ठजी ने कहा—"हे राजन्! इस समय मेरे पास राजा इन्द्र का निमन्त्रण आया हुआ है, अतः मैं पहिले उनका यज्ञ करा आऊँ, तदुपरान्त तुम्हारा यज्ञ करा दूँगा।" यह कहकर वशिष्ठजी इन्द्रलोक को चले गये। उस समय राजा निमि ने अपने मन में यह विचार किया कि शरीर का एक क्षण का भी भरोसा नहीं है, क्या पता, वशिष्ठजी के लौटने तक यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरी यज्ञ करने की अभिलाषा मन में ही रह जायगी।" ऐसा सोचकर राजा निमि ने गौतम ऋषि को अपना पुरोहित बनाकर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय बाद जब वशिष्ठजी इन्द्र का यज्ञ कराकर वापस लौटे और उन्होंने दूसरा पुरोहित बनाकर राजा निमि को यज्ञ करते हुए देखा तो उन्होंने क्रुद्ध होकर राजा को यह शाप दिया कि तूने दूसरे को पुरोहित बनाकर हमारी अवज्ञा की है, इसलिए तेरा यह शरीर छूट जाय। वशिष्ठजी का शाप सुनकर राजा ने उत्तर दिया—"हे वशिष्ठजी! आप अपने यजमान का यज्ञ छोड़कर लोभ के वशीभूत हो, इन्द्र के यहाँ चले गये इसलिए मैं श्री नारायणजी से यह चाहता हूँ कि आपका शरीर भी स्थिर न रहे।" इस प्रकार राजा निमि तथा वशिष्ठजी ने पारस्परिक शाप के कारण अपना-अपना शरीर त्याग दिया। कुछ समय पश्चात् 'उर्वशी' नामक अप्सरा को देखकर मित्रावरुण का वीर्य गिर पड़ा। उस वीर्य को घड़े में रखने से अगस्त्य तथा वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई। तब राजा निमि को भी जीवित करने के लिए गौतम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि ऋषियों ने फिर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। जब देवताओं ने प्रसन्न होकर यह पूछा कि आप लोग क्या चाहते हैं, तब ऋषियों ने उनसे यह प्रार्थना की कि आप लोग ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे हमारा यजमान फिर जीवित हो जाय। देवताओं के आशीर्वाद से फिर राजा निमि के मृत-शरीर में भी प्राण लौट आया। उस समय राजा ने देवताओं तथा ऋषियों से यह प्रार्थना की—"हे महानुभावो! अब मुझे यह शरीर जिसका एक-न-एक दिन नाश होना निश्चित है, नहीं चाहिए। आप कोई ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मैं सदैव स्थिर रहूँ।" यह सुनकर देवताओं तथा ऋषि-मुनियों ने राजा को यह आशीर्वाद दिया कि तुम सब प्राणियों के पलकों पर निवास करोगे। उसी दिन से राजा निमि सब प्राणियों के पलकों पर निवास करते हैं। हे परीक्षित! उसके बाद सब ऋषि-मुनियों ने राजा निमि के मृत-शरीर को दही के समान मथकर उसमें से एक अत्यन्त तेजस्वी तथा परम सुन्दर बालक को उत्पन्न किया। उसने 'मिथिलापुरी' को बसाया। उसके वंश में 'देवरात' आदि अनेक राजा हुए। कई पीढ़ी पश्चात् उस वंश में 'जनक' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ। यज्ञशाला को जोतते समय उसका हल लगने पर पृथ्वी के भीतर से 'सीता' नामक एक कन्या की उत्पत्ति हुई, जिसका विवाह रामचन्द्रजी के साथ हुआ। इसी वंश में 'शीरध्वज' तथा 'धर्मध्वज' आदि अनेक प्रतापी राजा हुए। उनके नाम अलग-अलग होने पर भी वे सब जनक विदेही कहलाते थे। उनके वंश में सभी राजा योगी तथा ज्ञानी उत्पन्न हुए। वे सब धर्मपूर्वक राज्य करके अन्त में श्री नारायणजी का स्मरण करते हुए मुक्ति-पद को प्राप्त हुए। हे राजन्! इस प्रकार हमने तुम्हें सूर्यवंशी राजाओं की कथा सुनाई है।"

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंशी राजाओं का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! अब हम तुमसे चन्द्रवंश का वृत्तान्त कहते हैं, सुनो। श्री नारायणजी के नाभि-कमल द्वारा ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्माजी के नेत्र द्वारा 'अत्रि मुनि' का जन्म हुआ। अत्रि से 'चन्द्रमा' की उत्पत्ति हुई जो ब्राह्मण, नक्षत्र, औषधि तथा वृक्षादि के स्वामी हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्रमा ने बृहस्पति को अपना गुरु बनाकर राजसूय यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञ में चन्द्रमा ने बृहस्पति की परम सुन्दरी पत्नी 'तारा' को छल द्वारा छीन लिया। उस समय दैत्यों ने चन्द्रमा की तथा देवताओं ने बृहस्पति की सहायता की। परस्पर घोर युद्ध होने के उपरान्त ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर चन्द्रमा ने तारा को बृहस्पतिजी को लौटा दिया। चन्द्रमा के वीर्य द्वारा तारा को जो गर्भ रह गया था, उसे बृहस्पति के क्रोध करने पर तारा ने अपने गर्भ से गिरा दिया। उस समय उस बालक के सुन्दर स्वरूप को देखकर बृहस्पति तथा चन्द्रमा दोनों ने उसे लेने की इच्छा प्रकट की। उस समय ब्रह्माजी ने तारा से पूछा कि यह बालक किसके वीर्य से उत्पन्न हुआ। तारा ने चन्द्रमा का वीर्य बतलाया तो ब्रह्माजी की आज्ञा से वह चन्द्रमा को प्राप्त हुआ। चन्द्रमा ने उसका नाम 'बुध' रक्खा। बुध की 'इला' नामक पत्नी के गर्भ से 'पुरूरवा' नामक एक अत्यन्त तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। उर्वशी नामक अप्सरा ने राजा पुरूरवा के तेज, बल तथा सौन्दर्य की प्रशंसा इन्द्र की सभा में सुनी थी। एक बार उर्वशी मित्रावरुण के तप करने के स्थान पर जा पहुँची। उस समय मित्रावरुण ने उसे देखकर यह शाप दिया कि तूने हमारे स्थान पर आकर हमारे तप को भङ्ग किया है, अतः तू मर्त्यलोक में जाकर निवास कर। इस शाप के कारण उर्वशी ने मर्त्यलोक में आकर राजा पुरूरवा के साथ रहने का निश्चय किया। तब वह राजा पुरूरवा के उपवन में पहुँचकर एक वृक्ष की डाल में रत्न-जटित हिंडोला डालकर झूलने लगी। उसने दो गन्धर्वों को मेढ़ा बनाकर अपने साथ रक्खा था। जब राजा माली द्वारा उसका समाचार सुनकर उपवन में आया तब उसके स्वरूप को देखकर मोहित हो गया तथा उससे अपने साथ रहने के लिए हठ करने लगा। उस समय उर्वशी ने राजा से इस प्रकार कहा—"हे राजन्! यदि तुम तीन प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे पास रह सकती हूँ।" राजा ने पूछा—"वे क्या हैं?" उर्वशी ने उत्तर दिया—"पहली बात तो यह कि मेरे ये दोनों मेढ़े कभी दुःख न पावें, दूसरी यह कि मेरे भोजन के लिए नित्य नवीन घृत देना होगा और तीसरी यह कि कभी नंगे होकर अपनी इन्द्री मत दिखलाना। यदि तुमने इन तीनों बातों के विपरीत आचरण किया तो मैं उसी समय तुम्हारे पास से चली जाऊँगी।" राजा ने तीनों बातें स्वीकार करके उर्वशी को अपने पास रख लिया तथा आठों प्रहर भोग-विलास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में मग्न रहने लगा। उस राजा के द्वारा उर्वशी के गर्भ से छः पुत्रों का जन्म हुआ।

हे परीक्षित! इस प्रकार मित्रावरुण के शाप से उर्वशी मर्त्यलोक में रह रही थी। उधर देवलोक में देवताओं ने जब उर्वशी का नृत्य देखने की इच्छा प्रकट की, उस समय इन्द्र ने गन्धर्वों को यह आज्ञा दी कि तुम किसी प्रकार उर्वशी को यहाँ ले आओ। इन्द्र की आज्ञा पाकर गन्धर्वों ने उर्वशी के पास जाकर यह कहा—"हे उर्वशी! तुम्हारे बिना इन्द्र-सभा की शोभा नष्ट हो गई है, अतः तुम्हें इन्द्र ने बुलाया है।" यह सुनकर उर्वशी प्रसन्न होकर उनके साथ चलने को तैयार हो गई। उस समय उर्वशी की आज्ञा से गन्धर्वों ने अपनी माया द्वारा नवीन घृत को पुराने घृत में बदल कर उर्वशी को खिला दिया तथा उन दोनों मेढ़ों को चुराकर आकाश में उड़ चले। तदनन्तर उर्वशी ने अपने पास सोये हुए राजा पुरूरवा को जगाकर यह कहा कि मेरे दोनों मेढ़ों को कोई चुरा कर लिये जा रहा है। अतः तुम उन्हें छीन लाओ। यह सुनते ही राजा घबड़ाकर मेढ़ों को लेने के लिए नङ्गा ही उठ दौड़ा। उस समय उर्वशी ने राजा से इस प्रकार कहा—"हे राजन्! मैंने तुम्हारे साथ यह बात निश्चित की थी कि जब मैं तुम्हें नङ्गा देखूँगी अथवा मेरे दोनों मेढ़े दुःख पावेंगे अथवा जिस दिन मुझे नया घृत खाने को नहीं मिलेगा, उसी दिन मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी। आज तीनों बातें एक साथ विपरीत हुई हैं। अतः अब मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगी।" इतना कह-कर उर्वशी बिजली के समान चमकती हुई वहाँ से उड़ गई। गन्धर्वों ने उसे इन्द्र लोक में पहुँचा दिया। उस समय राजा पुरूरवा उसके वियोग में अत्यन्त व्याकुल होकर वन तथा पर्वतों पर जाकर उसे ढूँढ़ने लगा। पैदल चलने के कारण उसके पैरों में काँटे चुभ गये तथा वह अत्यन्त दुखी हुआ। एक दिन वह उर्वशी को ढूँढ़ता हुआ कुरुक्षेत्र में जा पहुँचा और एक सेमल के वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया। उसी समय उर्वशी भी वहाँ अपनी सहेलियों के साथ सरस्वती कुण्ड में स्नान कर रही थी। उन अप्सराओं को तो कोई नहीं देख पाता था, परन्तु वे सबको देख रही थीं। उस समय 'तिलोत्तमा' नामक अप्सरा ने उर्वशी से यह कहा कि हे सखी! तू मर्त्यलोक में जिस पुरुष के पास रही थी, उसे मैं भी देखना चाहती हूँ। यह सुनकर उर्वशी ने राजा पुरूरवा को दिखा दिया। तब राजा की दशा देखकर तिलोत्तमा ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उर्वशी से इस प्रकार कहा—"हे सखी ! तुम्हारे विरह में यह राजा अत्यन्त व्याकुल तथा मलीन हो रहा है, सो तुम इसे एक बार अपना स्वरूप दिखाकर इसकी व्याकुलता दूर कर दो।" यह सुनकर उर्वशी ने राजा के सामने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया। उसे देखते ही राजा पुरूरवा का चित्त स्थिर होकर इस प्रकार बदल गया, जिस प्रकार मृतक शरीर में प्राण लौट आये हों।

हे परीक्षित ! उस समय राजा पुरूरवा ने उर्वशी को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्राणप्रिये ! तेरे वियोग में मेरी ऐसी दशा हो गई है कि राज-पाट, सुख, भोजन आदि सब छूट गये हैं। तू मुझे छोड़कर चली क्यों आई ?" उर्वशी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! तुम पुरुष होकर भी केवल इन्द्रियों के वशीभूत होकर इस प्रकार विनय क्यों कर रहे हो ? तुम अपनी इन्द्रियों को वश में करो। जो पुरुष जितेन्द्रिय नहीं होता, वह मायारूपी स्त्री के वश में पड़ कर नष्ट हो जाता है। मैं स्त्री हूँ, अतः किसी पर आसक्त न होकर केवल अपने सुख से ही प्रीति रखती हूँ। जब तक कोई पुरुष मेरे पास रहता है, तब तक मैं उससे स्नेह करती हूँ, परन्तु जब दूसरे पुरुष के पास पहुँच जाती हूँ तो पहले को याद भी नहीं करती, इतना ही नहीं उसके प्राण लेने में भी मुझे कोई संकोच नहीं होता। मैं किसी ज्ञानोपदेश को न मानकर अपनी मनमानी करती हूँ। इसी प्रकार अन्य स्त्रियों का स्वभाव भी समझना चाहिए।" उर्वशी द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर भी जब राजा को कोई ज्ञान नहीं हुआ और उसने उर्वशी के साथ भोग करने की इच्छा प्रकट की उस समय उर्वशी ने दया करके उससे इस प्रकार कहा—"हे राजन् ! एक वर्ष के पश्चात् जब दूसरे वर्ष का पहला दिन लगेगा, उस दिन मैं एक रात के लिए तेरे पास आकर रहूँगी।" इतना कहकर उर्वशी वहाँ से अलक्षित हो गई। तब राजा का चित्त भी एक वर्ष की अवधि का ध्यान करके सावधान हो गया और वह राजभवन में लौटकर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। एक वर्ष बाद उर्वशी अपने वचनानुसार जब उसके पास आई और प्रातःकाल होने पर इन्द्रलोक को जाने लगी उस समय राजा पुरूरवा उसका पाँव पकड़कर रुदन करने लगा। उस समय उर्वशी ने कहा—"हे राजन् ! मैं यहाँ नहीं रह सकती हूँ। यदि तुम मुझे अन्तःकरण से चाहते हो तो मैं तुम्हें एक मंत्र बतलाती हूँ। उस मन्त्र का जप करते हुए तुम गन्धर्वों की तपस्या करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब वे प्रसन्न होकर तुम्हें यज्ञ करने की आज्ञा दें, तब तुम यज्ञ करने के कारण गन्धर्व लोक में आकर मुझे फिर प्राप्त कर लोगे। उस समय मैं आनन्दपूर्वक तुम्हारे साथ रहूँगी।" इतना कहकर उर्वशी राजा पुरूरवा को वेद की दो ऋचाएँ बताकर इन्द्रलोक को चली गई। राजा ने उस मन्त्र का जप करके गन्धर्वों को प्रसन्न किया। गन्धर्वों ने राजा को दर्शन देकर एक पात्र दिया तथा यज्ञ करने का विधान बताकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। राजा ने उस पात्र को वन में ले जाकर गाड़ दिया। उस पात्र में से एक पीपल तथा दूसरा शमी का वृक्ष मिलकर उत्पन्न हुआ। उस समय राजा ने उन दोनों की लकड़ियों को रगड़कर अग्नि उत्पन्न की और उस अग्नि में यज्ञ करके गन्धर्व लोक को प्राप्त कर लिया। वहाँ वह गन्धर्वों द्वारा उर्वशी को पुनः प्राप्त करके उसके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगा।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

पुरूरवा के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! राजा पुरूरवा द्वारा उर्वशी के गर्भ से जो छह बालक उत्पन्न हुए थे, उनमें सबसे बड़े का नाम 'आयु' था। उसके वंश में 'जह्नु' नामक ऐसे प्रतापी महात्मा हुए, जिन्होंने गंगाजी का अंजलि में भर कर पी लिया। फिर जब देवताओं ने बहुत प्रार्थना की, तब उसे अपनी जाँघ को चीरकर बाहर निकाल दिया। उसी दिन से गंगाजी का नाम 'जाह्नवी' पड़ गया। जह्नु के वंश में, 'गाधि' नामक अत्यन्त प्रतापी राजर्षि हुए। उनकी 'सत्यवती' नामक कन्या परम सुन्दरी तथा गुणवती थी। एक बार 'ऋचीक ऋषि' ने गाधि के पास जाकर यह कहा कि तुम अपनी कन्या का विवाह हमारे साथ कर दो। उस समय गाधि ऋषि ने उन्हें उत्तर दिया कि जो व्यक्ति मुझे एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े लाकर देगा, उसी के साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा। यह सुनकर ऋचीक ऋषि ने बड़े परिश्रम से वरुण देवता से एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े लेकर, गाधि को दिये और सत्यवती के साथ अपना विवाह कर लिया। उस समय गाधि की पत्नी तथा सत्यवती ने ऋचीक ऋषि से यह कहा कि आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे हमें पुत्र की प्राप्ति हो। यह सुनकर ऋचीक ऋषि ने अपनी सास तथा पत्नी को सन्तान प्राप्त कराने के हेतु एक यज्ञ किया। उस यज्ञ में जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

साकल्य बचा, उसमें से एक भाग उन्होंने अपनी पत्नी को तथा दूसरा भाग सास को खाने के लिए दे दिया। तत्पश्चात् जब ऋषि स्नान एवं संध्या करने के लिए गंगा-तट पर चले गये, उस समय उनकी सास ने अपने भाग जिसे 'चरु' कहा जाता है, को तो अपनी पुत्री को खिला दिया और उसके भाग को स्वयं खा लिया। जब ऋषि स्नान आदि से निवृत्त होकर लौटे तथा उन्होंने अपने तपोबल से इस भेद को जाना, तब उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"हे सत्यवती! तुझसे बड़ी भूल हुई जो तूने अपनी माता का भाग खा लिया। अब इसके कारण तेरा पुत्र परम शक्तिशाली तथा क्रोधी होगा और तेरा भाई ब्रह्मज्ञानी एवं धर्मात्मा होगा।" यह सुनकर सत्यवती ने प्रार्थना की—"हे पति! आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मेरा पुत्र क्रोधी न हो।" तब ऋचीक ऋषि ने दूसरा मन्त्र पढ़कर अपनी स्त्री से कहा कि तू अपने मन में धैर्य रख, अब तेरा पुत्र तो ज्ञानी एवं धर्मात्मा होगा, परन्तु तेरा पौत्र परम शक्तिशाली एवं महाक्रोधी होगा। इस प्रकार सत्यवती के गर्भ से 'जमदग्नि' नामक परम तपस्वी ऋषि का जन्म हुआ। जमदग्नि की 'रेणुका' नामक स्त्री के गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे छोटे 'परशुराम' श्री नारायणजी के अवतार थे। वे बड़े क्रोधी तथा महान् शक्तिशाली थे। उन्होंने इक्कीस बार पापी तथा अधर्मी क्षत्रियों को मारकर उनके वंश का नाश कर दिया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! क्षत्रियों ने ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण परशुरामजी ने उनका संहार किया?" शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! परशुराम के पिता जमदग्नि का विवाह 'रेणुका' के साथ हुआ था तथा रेणुका की बहिन 'सहस्रार्जुन' को ब्याही गई थी। सहस्रार्जुन सातों द्वीपों का प्रतापी राजा था। उसके घर आठों सिद्धियाँ हर समय बनी रहती थीं। वह ऋषियों के समान धर्म-कर्म करता तथा वायु के समान पलभर में ही चाहे जहाँ पहुँच जाता था। एक समय वह अपनी एक सहस्र स्त्रियों को साथ लेकर नर्वदा नदी में जल-विहार करने गया। वहाँ उसने तपोबल द्वारा प्राप्त अपनी एक सहस्र भुजाओं से नदी का पानी बहने से रोक दिया। तब नदी का जल उल्टा बहता हुआ उस स्थान पर जाकर एकत्रित हो गया जहाँ रावण बैठा हुआ संध्यावन्दन कर रहा था। रावण ने जब उस जल को देखा तो अपने मन में अभिमान करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कहने लगा कि मुझसे भी अधिक प्रतापी ऐसा कौन जीव है, जिसने नदी के जल को रोककर उसका बहाव उल्टा कर दिया है। मैं उससे युद्ध करूँगा। यह निश्चय करके रावण सहस्रार्जुन से युद्ध करने के लिए जा पहुँचा। उस समय सहस्रार्जुन उसे पकड़कर अपने घर ले आया। वहाँ वह कभी-कभी रावण के दसों मस्तकों पर दीपक जलाकर अपनी सब स्त्रियों तथा बालकों को दिखाया करता था। जब रावण ने उसकी अधीनता स्वीकार करके बहुत विनती की, तब सहस्रार्जुन ने उसे छोड़ दिया। अस्तु, हे परीक्षित! एक दिन जमदग्नि ऋषि की पत्नी रेणुका अपनी बहिन 'सत्या', जो सहस्रार्जुन की पत्नी थी, के घर गई। वहाँ उसने सत्या से यह कहा कि एक बार तुम भी मेरे घर आओ। उस समय सत्या ने अभिमानपूर्वक रेणुका को यह उत्तर दिया कि तुम दरिद्र ऋषि-मुनियों के पास हमारी सेना को खिलाने के लिए भोजन कहाँ से आवेगा? यह सुनकर रेणुका लज्जित हो अपने घर लौट आई। वहाँ उसने अपने पति जमदग्नि से यह कहा कि हे स्वामी! यदि आप एक बार सत्या को बुलाकर सेनासहित उसका आतिथ्य-सत्कार करें, तो मेरी यह लज्जा दूर हो जावेगी; अन्यथा उसके ताने का दुःख मुझे सदैव खलता रहेगा। यह सुनकर जमदग्नि ऋषि ने उत्तर दिया—"हे प्रिये! श्री नारायणजी की कृपा से हमें उनका स्वागत करना कुछ भी कठिन नहीं है। श्री हरि तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे।"

हे परीक्षित! इसके उपरान्त एक दिन राजा सहस्रबाहु शिकार खेलता हुआ, अपनी सेना-सहित जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर जा पहुँचा। उन दिनों जमदग्नि ऋषि के पास कामधेनु गौ थी। अतः ऋषि ने राजा सहस्रार्जुन तथा उसकी सत्रह अक्षौहिणी सेना को भोजन का निमन्त्रण देकर, इच्छित भोजन कराया। ऋषि के प्रताप को देखकर सहस्रार्जुन अपने मन में विचार करने लगा कि जिस कामधेनु गौ के प्रताप से जमदग्नि ने मेरे लाखों सैनिकों को भोजन कराया है, वह गौ मुझे ऋषि से लेकर अपने पास रखनी चाहिए। ऐसा निश्चय करके उसने जमदग्नि से कहा—"हे ऋषि! यह गौ राजाओं के घर में रहने योग्य है, अतः तुम कामधेनु को हमें दे दो।" यह सुनकर ऋषि ने उत्तर दिया—"हे राजन्! यह गौ मेरी नहीं है। मैं इसे देवलोक से माँग कर लाया हूँ, अतः पराई वस्तु को तुम्हें नहीं दे सकता।" ऋषि के ऐसे वचन सुनकर राजा सहस्रार्जुन ने वह गौ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलपूर्वक छीन लिया। जब वह उसे लेकर अपने देश को जाने लगा, तब कामधेनु गौ भागकर जमदग्नि ऋषि के पास चली आई तथा रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी कि हे ऋषि! मेरा क्या अपराध है जो तुमने मुझे राजा को दे दिया है? उस समय ऋषि ने भी अपनी आँखों में आँसू भरकर कामधेनु को यह उत्तर दिया—"हे कामधेनु! मैं क्या करूँ? राजा तुझे जबर्दस्ती लिए जा रहा है।" यह सुनकर कामधेनु ने अपने शरीर से दस सहस्र शूर-वीर उत्पन्न किये। उन्होंने राजा से घोर युद्ध किया, परन्तु सहस्रार्जुन ने उन सबको जीत लिया और कामधेनु को लेकर अपने घर चल दिया। यह देखकर जमदिग्न ऋषि ने अपने छोटे पुत्र महा शक्तिशाली परशुराम को, जो उस समय आश्रम में नहीं थे, बुलाकर उनसे राजा द्वारा कामधेनु गौ को बलपूर्वक ले जाने की बात कही। उस वृत्तान्त को सुनकर परशुरामजी अत्यन्त क्रोध करके सहस्रार्जुन की राजधानी माहिष्मती पुरी में अकेले ही जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने बाहुबल से राजा सहस्रार्जुन को उसके नव सौ पुत्र तथा सत्रह अक्षौहिणी सेना-सहित मार डाला। तदनन्तर वे कामधेनु गौ को लेकर अपने पिता के पास लौट आये। उस समय जमदग्नि ऋषि ने कुछ उदास होकर परशुरामजी से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! तुमने चक्रवर्ती राजा की हत्या की है, इसलिए शास्त्रानुसार तुम्हें दोष लगा है। अब तुम इस दोष को मिटाने के लिए एक वर्ष तक पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए तीर्थ-यात्रा कर आओ। हम ब्राह्मणों को तो क्षमाशील होना चाहिए, क्योंकि उसी से श्री नारायणजी प्रसन्न रहते हैं।" यह सुनकर परशुरामजी पृथ्वी की परिक्रमा तथा तीर्थयात्रा करने के लिए अपने घर से बाहर चले गये।"

सोलहवाँ अध्याय

परशुरामजी द्वारा अपनी माता तथा भाइयों का वध

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! अपने पिता के आज्ञानुसार एक वर्ष तक पृथ्वी की परिक्रमा तथा तीर्थ-यात्रा करने के पश्चात् परशुरामजी ने पिता के पास आकर दण्डवत् किया। तदनन्तर एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि परशुराम की माता 'रेणुका' जल भरने के लिए गङ्गा-तट पर गई हुई थीं। वहाँ 'चित्ररथ' नामक एक गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। उसे देखकर रेणुका ने अपने मन में यह कहा कि यह गन्धर्व अत्यन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुन्दर है। उसके जल-विहार को देखते रहने के कारण जब रेणुका को विलम्ब हुआ, तो उसे अचानक यह ध्यान आया कि मेरे पति अग्निहोत्र पर बैठे हुए जल की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इसलिए मुझे जल्दी चलना चाहिए। यह विचार आते ही वह शीघ्रतापूर्वक जल लेकर आश्रम पर जा पहुँचीं। उधर ऋषि ने अपने योग-बल द्वारा पानी लाने में विलम्ब होने का कारण जान लिया था कि रेणुका पर-पुरुष की सुन्दरता पर मुग्ध हो गई है। अतः रेणुका के पहुँचने पर उन्होंने क्रुद्ध होकर अपने तीनों बड़े पुत्रों को यह आज्ञा दी कि तुम लोग अपनी माता को मार डालो। जब उन लोगों ने अधर्म का विचार कर आज्ञा का पालन नहीं किया, तब ऋषि ने अपने छोटे पुत्र परशुराम से यह कहा कि तू अपनी माता को तीनों भाइयों-सहित मार डाल। यह सुनकर परशुराम ने अपने मन में सोचा कि यद्यपि माता तथा भाइयों को मारना महापाप है, परन्तु यदि मैं पिता की आज्ञा का पालन नहीं करूँगा, तो ये मुझे भी शाप दे देंगे। इसके विपरीत यदि मैं इनकी बात मान लूँगा तो ये प्रसन्न होकर अपने योग-बल द्वारा इन्हें पुनः जीवित भी कर सकते हैं। ऐसा विचार करके परशुराम ने अपनी माता तथा तीनों भाइयों को मार डाला। उस समय जमदग्नि ऋषि ने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा—"हे परशुराम! तूने मेरी आज्ञा मानकर अपनी माता तथा भाइयों का वध कर दिया, इससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब तेरी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे माँग ले।" यह सुनकर परशुराम ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे पिता! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरी माता तथा भाई फिर से जीवित हो जायँ।" यह सुनकर जमदग्नि ऋषि ने कहा—"श्री नारायणजी की कृपा से ऐसा ही हो।" ऋषि के मुख से यह वचन निकलते ही रेणुका तथा परशुराम के तीनों भाई फिर से जीवित हो गये। श्री नारायणजी की माया से उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि परशुराम ने हमारा संहार किया था।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! श्री नारायणजी के भजन में ऐसी सामर्थ्य है कि हरि-भक्त लोग मृतक को भी जीवित कर सकते हैं। अस्तु, इसके पश्चात् परशुरामजी यह विचार करके कि मैंने अपनी माता तथा भाइयों को मारा था। अतः मुझे उस पाप को दूर करने के लिए पृथ्वी की परिक्रमा करनी चाहिए। वे फिर तीर्थ-यात्रा करने को निकल पड़े। उस समय राजा सहस्रबाहु के सौ पुत्रों ने, जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले परशुरामजी के हाथ से बचकर भाग गये थे, अपने मन में यह निश्चय किया कि इन दिनों परशुरामजी अपने भाइयों-सहित आश्रम पर नहीं हैं, अस्तु में जमदग्नि ऋषि को मार कर अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहिए। ऐसा विचार करके उन राजकुमारों ने एक दिन अग्निहोत्र करते समय जमदग्नि ऋषि को मार डाला और उनका मस्तक काटकर अपने साथ ले गये। उस समय रेणुका ने अत्यन्त विलाप करते हुए इक्कीस बार अपनी छाती को पीटकर परशुराम को पुकारा। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर परशुराम अपने आश्रम पर लौट आये। जब उन्होंने माता से जमदग्नि के मारे जाने का हाल सुना तो उन्होंने उसी समय अत्यन्त क्रोध में भरकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं इस अपराध के कारण पृथ्वी पर किसी भी क्षत्रिय को जीवित नहीं छोड़ूँगा। इस प्रकार प्रण करके परशुराम माहिष्मती पुरी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने पिता का वध करनेवाले सहस्रार्जुन के सब पुत्रों का संहार कर दिया। तदुपरान्त वहाँ से अपने पिता के मस्तक को लाकर धड़-सहित उनका क्रिया-कर्म किया। फिर अपनी प्रतिज्ञा के कारण परशुरामजी ने पृथ्वी पर इक्कीस बार चारों ओर घूमकर सब क्षत्रियों का संहार किया तथा कुरुक्षेत्र में इक्कीस बार स्नान करके वह सम्पूर्ण पृथ्वी हर बार ब्राह्मणों को दान कर दी।

हे परीक्षित! अगले मन्वन्तर में जब राजा बलि इन्द्र होगा उस समय परशुरामजी सप्तर्षियों में रहेंगे। इस समय वे मन्दराचल पर्वत पर बैठे हुए श्री नारायणजी का तप कर रहे हैं। उनके यश तथा गुण को देवता एवं गन्धर्व सदैव स्वर्ग में गाते रहते हैं। हे राजन्! गाधि के पुत्र 'विश्वामित्र' ऐसे महात्मा हुए कि उन्होंने राजर्षि से बढ़कर ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया। विश्वामित्र के सौ पुत्र हुए उनमें छोटे पचास पुत्रों का नाम मधुछन्दा आदि था। विश्वामित्र ने अपने भानजे शुनःशेफ को भी जिसे उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र द्वारा बलिदान होने से बचाया था, अपना पुत्र माना तथा उसका नाम 'देवरात' रखकर अपने पचास बड़े पुत्रों से यह कहा कि तुम लोग भी इसे अपना बड़ा भाई स्वीकार करो। जब उन्होंने यह बात नहीं मानी, तब विश्वामित्र ने उन्हें यह शाप दिया कि तुम लोग म्लेच्छ हो जाओ। उसी समय से संसार में म्लेच्छों की उत्पत्ति हुई है। तदुपरान्त विश्वामित्र ने 'मधुछन्दा' आदि छोटे पुत्रों से भी यही बात कही। उन्होंने अपने पिता के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आज्ञानुसार देवरात को अपना बड़ा भाई स्वीकार कर लिया। उस समय विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया कि तुम्हारे वंश की वृद्धि हो। अतः उनके वंश की खूब वृद्धि हुई। वे सब कौशिक गोत्री कहलाये।"

सत्रहवाँ अध्याय

राजा पुरूरवा के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! पुरूरवा के वंश में राजा नहुष ऐसा प्रतापी हुआ कि उसने देवलोक का राज्य किया। उसकी कथा हम पहले कह आये हैं। अब उसकी सन्तान का हाल सुनो। एक बार नहुष के पुत्र तेजस्वी राजा ययाति ने इन्द्रपुरी का राज किया था। उसकी कथा इस प्रकार है कि एक दिन देवताओं का राजा इन्द्र गौतम ऋषि की परम सुन्दरी पत्नी 'अहल्या' को देखकर, जो पञ्च कन्याओं में से एक थी, मोहित हो गया। उसकी इच्छा अहल्या के साथ भोग करने की हुई, परन्तु गौतम ऋषि के भय से वह उसके पास नहीं पहुँच पाता था। एक दिन जब इन्द्र की भोगेच्छा बलवती हो उठी, तब वह रात के समय कौए का रूप बनाकर ऋषि के आश्रम के आँगन में खड़े हुए वृक्ष की डाल पर जा बैठा तथा बहुत रात शेष रहने पर भी काँव-काँव करके चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर ऋषि ने यह समझा कि अब थोड़ी ही रात शेष रह गई है। अतः वे स्नान करने के लिए अपने आश्रम से बाहर निकल गये। उस समय सूना घर देखकर इन्द्र ने अपना स्वरूप गौतम ऋषि जैसा बना लिया और अहल्या के पास पहुँचकर उससे भोग किया। प्रसङ्ग करने के बाद जब अहल्या ने यह जाना कि यह मेरा पति नहीं है, किसी दूसरे ने कपट-भेष धारण कर मेरा धर्म नष्ट कर दिया है, तब उसने इन्द्र से कहा—"अरे अधर्मी चाण्डाल! तू कौन है? यहाँ से चला जा।" यह सुनकर जब इन्द्र जाने के लिए घर से बाहर निकला, उसी समय द्वार पर उसकी भेंट गौतम ऋषि से हो गई, जो अधिक रात शेष रही जानकर मार्ग से ही वापिस लौट आये थे। ऋषि ने इन्द्र को देखते ही अपने योगबल से सारा हाल जान लिया। तब वे इन्द्र को डाँटते हुए बोले—"हे इन्द्र! इतनी अप्सराएँ तथा इन्द्राणी के होते हुए भी तूने जो अधर्म किया है, उसके लिए हम तुझे यह शाप देते हैं कि एक भग के लिए तूने काकरूप धारण किया था, सो तेरे शरीर में एक सहस्र भग हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जावें।" ऋषि के मुख से यह वचन निकलते ही इन्द्र के शरीर में एक सहस्र भग उत्पन्न हो गईं। उस समय इन्द्र लज्जा के वशीभूत हो, एक कमल की नाल में जा छिपा। अस्तु, जब ऋषियों ने इन्द्रासन को सूना देखा तो उन्होंने राजा नहुष को इन्द्रासन पर बैठा दिया। जब राजा नहुष का मन इन्द्राणी के ऊपर आसक्त हुआ, तब इन्द्राणी ने बृहस्पति के आज्ञानुसार नहुष से यह कहा कि तुमने आज तक जितने भी शुभ कर्म किए हों, वह मुझे बतलाओ। उस समय राजा द्वारा अपने पुण्यों का वर्णन करने पर उसके सब पुण्य नष्ट हो गये और वह इन्द्रलोक से नीचे गिर पड़ा। तदुपरान्त बृहस्पति ने इन्द्र को कमलनाल से बाहर निकालकर ऐसा यज्ञ कराया, जिससे उसकी सहस्र भग, सहस्र आँखों के समान हो गईं। इसके बाद इन्द्र फिर इन्द्रासन पर बैठकर राज्य करने लगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अब हम नहुष के दूसरे वंश की कथा कहते हैं। उस वंश में 'धन्वन्तरि' नामक ऐसे वैद्य तथा महात्मा हुए, जिनका नाम जपने से मनुष्य के रोग तथा दुःख दूर हो जाते हैं। उनके वंश में 'कुवलयाश्व' नामक प्रतापी राजा हुआ। उस राजा की 'मन्दालसा' नामक स्त्री के गर्भ से 'अलर्क' आदि पुत्रों की उत्पत्ति हुई। राजा अलर्क ने छियासठ सहस्र वर्षों तक तरुण रहकर राज्य किया। रानी मन्दालसा अपने पुत्रों को बाल्यावस्था में ज्ञानोपदेश किया करती थी। उसने अपनी मृत्यु के समय अलर्क को दो श्लोक देकर यह कहा था कि तू इनका यन्त्र बनाकर अपने पास रखना। जब तेरे ऊपर कोई विपत्ति पड़े, तब तू इन श्लोकों को पढ़कर उसी के अनुसार कार्य करना। अलर्क ने उन श्लोकों का यन्त्र बनाकर अपनी भुजा में बाँध लिया। फिर वह संसारी सुखों का उपभोग करता हुआ राज्य करने लगा। जब अन्य राजाओं ने उसे भोग-विलास में डूबा हुआ देखा तो उन्होंने अपनी सेना लेकर उसके ऊपर चढ़ाई कर दी। जब राजा अलर्क ने यह देखा कि मेरे प्राण बचने कठिन हैं, तब उसने उन दोनों श्लोकों को यन्त्र से निकाल कर पढ़ा। उनमें यह लिखा था कि संसार में सन्त-महात्माओं के अतिरिक्त अन्य संसारी वस्तुओं से प्रेम करने पर, अन्त में दुःख की प्राप्ति होती है। अतः सांसारिक व्यवहारों को स्वप्न के समान मिथ्या समझकर उनमें अपना मन नहीं लगाना चाहिए।" जब इन श्लोकों को पढ़ने पर राजा अलर्क को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरक्त होकर हरि-स्मरण करने के लिए वन को चला गया। जब अन्य राजाओं को यह समाचार मिला तो उन्होंने राजा अलर्क के पास जाकर यह पूछा कि तुम बिना युद्ध किए ही हार मानकर क्यों जा रहे हो? उस समय राजा ने उन्हें यह उत्तर दिया कि राज्य करने के पश्चात् नरक भोगना पड़ता है, इसलिए मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। अब तुम लोग सुखपूर्वक राज्य करो, मैं युद्ध नहीं करूँगा। यह सुनकर अन्य राजाओं को भी ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय वे राजा अलर्क का राज्य लेना उचित न जानकर अपने-अपने देश को लौट गये। तब राजा अलर्क फिर धर्मपूर्वक अपना राज्य करने लगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! देखो, हरि-भजन का यह प्रताप है कि राजा अलर्क ने जैसे ही हरि-भजन करने की इच्छा की, वैसे ही उसका दुःख दूर हो गया। तब जो लोग दिन-रात श्री नारायणजी का जप-तप करते रहते हैं, उन्हें न जाने कैसा सुख प्राप्त होता होगा? उस अलक के वंश में 'रम्भस' नाम का राजा ऐसा ज्ञानी हुआ कि उसके कुल के सब लोग ब्राह्मण हो गये। उसके वंश में 'रज' नामक राजा अत्यन्त प्रतापी तथा धर्मात्मा हुआ। उस राजा के पाँच सौ बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए। एक समय बृहस्पतिजी के आज्ञानुसार जब इन्द्र ने राजा रज से सहायता माँगी, उस समय राजा ने अपने उन पाँच सौ पुत्रों-सहित इन्द्र की सहायता कर दैत्यों को हराया था। जब उसने दैत्यों को जीतकर देवलोक का राज्य इन्द्र को दे दिया, तब इन्द्र ने राजा से यह प्रार्थना की कि यहाँ का राज्य आप ही करें। उस समय राजा ने देवताओं के अधिक कहने पर बहुत समय तक इन्द्रलोक का राज्य किया। जब उसकी मृत्यु हो गई, तब उसके पुत्र जबर्दस्ती इन्द्रलोक का राज्य करने लगे तथा यज्ञ में इन्द्र का भाग लेने लगे। इन्द्रादिक देवताओं के बहुत कहने पर भी जब उन्होंने देवलोक का राज्य नहीं छोड़ा, उस समय देवताओं की प्रार्थना पर बृहस्पतिजी ने अपने तपोबल से राजा रज के उन सभी पुत्रों का संहार कर दिया। जब वे सब मर गये, तब इन्द्र आदि देवता अपना राज्य पाकर इन्द्रपुरी में आनन्दपूर्वक रहने लगे तथा यज्ञ में अपना भाग पाने लगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अठारहवाँ अध्याय

राजा नहुष के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन् ! राजा नहुष के 'ययाति' आदि पुत्र अत्यन्त प्रतापी हुए। जब ऋषियों के शाप के कारण राजा नहुष अजगर बनकर कुरुक्षेत्र में गिर पड़ा, उसके बाद 'ययाति' नामक उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ तथा उसने अन्य देशों के सम भाग करके अपने भाइयों को बाँट दिया। ययाति ने अपना विवाह शुक्राचार्य की पुत्री 'देवयानी' के साथ किया था। तदनन्तर उसने 'वृषपर्वा' नामक दैत्य की पुत्री 'शर्मिष्ठा' के साथ भी अपना विवाह किया।" इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे शुकदेवजी ! शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे, अतः उनकी पुत्री से राजा ययाति ने क्षत्रिय होते हुए भी विवाह किस प्रकार कर लिया ? आप मेरे इस सन्देह को दूर करने की कृपा करें।" शुकदेवजी ने उत्तर दिया–"हे राजन् ! 'वृषपर्वा' दैत्यों का स्वामी था। एक दिन उसकी पुत्री शर्मिष्ठा अपने गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को तथा दस सहस्र दासियों को साथ लेकर अपने बाग में स्नान करने के लिए गई। वहाँ वे सब अपने वस्त्र तालाब के किनारे उतार कर जल-क्रीड़ा करने लगीं। उसी समय शिवजी तथा नारदजी घूमते-घामते वहाँ आ पहुँचे, उन्हें देखते ही सब लड़कियों ने लज्जित होकर अपने-अपने वस्त्र पहिन लिये। उस समय शर्मिष्ठा ने कुछ शीघ्रता तथा भूल के कारण देवयानी के वस्त्रों को पहिन लिया। यह देखकर देवयानी ने क्रुद्ध होकर कहा–"हे शर्मिष्ठा ! तू मेरे वस्त्र पहिनने योग्य नहीं है, क्योंकि तेरा पिता मेरे पिता का शिष्य है। मैं ब्राह्मण की पुत्री हूँ, अतः तूने मेरे वस्त्र क्यों पहिन लिये ? जिस प्रकार यज्ञ की आहुति को कुत्ता उठा ले अथवा शूद्र होकर वेद का पाठ करे, वही कार्य तूने किया है।" इस प्रकार देवयानी ने जब शर्मिष्ठा के प्रति दुर्वचनों का प्रयोग किया, उस समय शर्मिष्ठा ने भी क्रुद्ध होकर इस प्रकार उत्तर दिया–"हे देवयानी ! तू भिक्षुक की पुत्री होकर मुझे ऐसे वचन कहती है ? तेरे पिता ने जीवन भर मेरे पिता से भिक्षा माँगकर तेरा पालन किया है, अतः तू किस मुँह से मेरी समानता कर रही है ?" इस प्रकार कहते हुए शर्मिष्ठा ने क्रोध के आवेश में, नङ्गी खड़ी हुई देवयानी को कुएँ में ढकेल दिया और स्वयं दासियों को साथ लेकर घर लौट गई।

हे परीक्षित ! उस समय श्री नारायणजी की इच्छा से राजा ययाति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिकार खेलता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने सेवक को कुएँ से पानी लाने के लिए भेजा। सेवक ने कुएँ पर जाकर जब उसमें पड़ी हुई एक सुन्दर स्त्री को देखा तो उसने राजा के पास आकर सब समाचार कह सुनाया। तदुपरान्त राजा ययाति ने कुएँ पर जाकर उस कन्या को देखा। उसने देवयानी को नग्न देखकर पहिनने के लिए अपना दुपट्टा दिया, फिर हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया। कुएँ से बाहर आकर देवयानी ने राजा से कहा—"हे राजन्! श्री नारायणजी की इच्छा से ही यह संयोग हुआ, जो तुमने मुझे हाथ पकड़कर कुएँ से बाहर खींचा है। अब मेरा विवाह भी तुम्हारे ही साथ होगा। बृहस्पति के पुत्र 'कच' ने मुझे ऐसा शाप दिया था कि तेरा विवाह किसी ब्राह्मण के साथ न हो। इसलिए मेरा विवाह ब्राह्मण से नहीं हो सकता है।" देवयानी के सौन्दर्य को देखकर राजा भी आसक्त हो चुका था, अतः उसने देवयानी से विवाह करना स्वीकार कर लिया और अपने घर को चला गया। तदनन्तर देवयानी वहाँ से रोती हुई शुक्राचार्य के पास आकर बोली—"हे पिता! शर्मिष्ठा ने आपको भीख माँगनेवाला कहकर मुझे कुएँ में ढकेल दिया था। वहाँ से राजा ययाति ने मुझे बाहर निकाला है।" यह सुनते ही शुक्राचार्य ने क्रुद्ध होकर अपने मन में यह विचार किया कि पुरोहिती करने से अच्छा तो खेत में से अन्न चुनकर खाना है, क्योंकि उसमें कभी अपमान तो नहीं होता। शर्मिष्ठा ने अपने राज्य तथा धन के गर्व में भरकर मेरी पुत्री को कुएँ में ढकेल दिया, इसलिए अब मुझे वृषपर्वा के राज्य में नहीं रहना चाहिए। ऐसा निश्चय करके शुक्राचार्य क्रुद्ध होकर, देवयानी-सहित वृषपर्वा के राज्य से निकलकर बाहर चले गये। जब वृषपर्वा को यह वृत्तान्त मालूम हुआ, तब उसने अत्यन्त घबड़ाकर अपने मन में यह सोचा कि शुक्राचार्यजी की कृपा से ही मुझे यह राज्य तथा सुख प्राप्त हुआ है; अन्यथा देवता लोग कभी के मेरा राज्य छीन लेते। अब जब वे ही चले गये तो यह राज्य तथा धन भी नष्ट हो जायगा। यह विचार कर वृषपर्वा दौड़ा हुआ शुक्राचार्यजी की शरण में जा पहुँचा तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे स्वामिन्! आप मेरे अपराध को क्षमा करके फिर से अपने घर को पधारिए।" राजा के दीन वचनों को सुनकर शुक्राचार्य ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तुमने कोई अपराध नहीं किया है, परन्तु तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा ने देवयानी का अपमान किया है, अतः जिसमें देवयानी प्रसन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो, उस कार्य को करना स्वीकार कर सको, तो हम तुम्हारे राज्य में फिर लौटकर चल सकते हैं।" यह सुनकर वृषपर्वा ने देवयानी की बहुत प्राथना की। उस समय देवयानी ने यह कहा—"हे राजन्! मेरे पिता जिस व्यक्ति के साथ मेरा विवाह करें, उसी के पास शर्मिष्ठा भी एक सहस्र दासियों को साथ लेकर मेरी सेवा में रहे तो मैं प्रसन्न हूँगी।" यह सुनकर राजा ने मन में विचार किया कि गुरु शुक्राचार्य के कारण ही हमारी रक्षा होती है, अतः उन्हें प्रसन्न अवश्य करना चाहिए। यह सोचकर राजा ने शर्मिष्ठा के पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—"हे पुत्री! तेरा मोह करने पर शुक्राचार्यजी के क्रोध के कारण हमारा सम्पूर्ण वंश नष्ट हो जायगा। इसके विपरीत तेरे द्वारा दासी बनना स्वीकार करने पर हमारा कल्याण होगा। अतः अब तू बता कि इस सम्बन्ध में तेरी क्या सम्मति है?" शर्मिष्ठा ने उत्तर दिया—"हे पिता! जिसमें आपका कल्याण हो, मुझे वही स्वीकार है। मेरा शरीर आपके द्वारा उत्पन्न हुआ है, अतः आप जिसे चाहें, उसे दे डालिये।" तब वृषपर्वा ने देवयानी के पास जाकर कहा—"हे देवयानी! मुझे तुम्हारा कहना स्वीकार है।" राजा के ऐसे वचन सुनकर देवयानी प्रसन्न हो गई, तब शुक्राचार्य भी अपनी पुत्री-सहित वृषपर्वा के राज्य में लौट आये।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! बृहस्पति के पुत्र 'कच' ने देवयानी को शाप क्यों दिया था, वह कथा आप मुझे सुनाने की कृपा करें।" शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! एक बार युद्ध के समय देवताओं के द्वारा बहुत से दैत्यों का संहार हुआ। तब शुक्राचार्यजी ने अपनी संजीवनी विद्या द्वारा मरे हुए दैत्यों को जीवित कर दिया। युद्ध समाप्त होने के उपरान्त बृहस्पतिजी के मुख से देवताओं ने जब यह समाचार सुना तो इन्द्र आदि देवताओं ने बृहस्पतिजी से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप अपने पुत्र 'कच' को शुक्राचार्यजी के पास सञ्जीवनी विद्या पढ़ने के लिए भेज दीजिए।" देवताओं के कहने पर बृहस्पतिजी ने कच को वह विद्या पढ़ने के लिए शुक्राचार्यजी के पास भेज दिया। उस समय कच ने शुक्राचार्यजी के पास जाकर, दण्डवत् करते हुए इस प्रकार कहा—"हे स्वामी! मैं आपके पास सञ्जीवनी विद्या पढ़ने के लिए आया हूँ!" यह सुनकर शुक्राचार्य उसे अपने घर में रखकर विद्या पढ़ाने लगे। वहाँ कच तथा देवयानी में परस्पर प्रीति हो गई। जब दैत्यों को यह समाचार मिला कि बृहस्पति का पुत्र हमारे गुरु से सञ्जीवनी विद्या पढ़ रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है तो उन्होंने आपस में यह विचार किया कि विद्या पढ़ लेने पर कच हमारे शत्रुओं को जिला दिया करेगा, इसलिए इसे पहिले ही मार डालना चाहिए। ऐसा निश्चय करने के उपरान्त एक दिन कच जब शुक्राचार्य की गौएँ चराने के लिए वन में गया, तो वहाँ दैत्यों ने उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उसे एक गड्ढे में फेंक दिया। जब सन्ध्या होने पर भी कच घर नहीं लौटा, तब देवयानी ने अपने पिता से कहा—"हे पिता! कच अभी तक घर लौट-कर नहीं आया, यह क्या कारण है?" तब शुक्राचार्यजी ने अपने योगबल से सब वृत्तान्त जानकर देवयानी से कहा—"हे पुत्री! दैत्यों ने उसे मार डाला है, इसी लिए वह नहीं लौटा है।" यह सुनकर जब देवयानी शोक करने लगी, तब शुक्राचार्य ने सञ्जीवनी विद्या द्वारा कच को जीवित कर दिया। यह हाल देखकर दैत्यों ने फिर आपस में विचार किया कि यदि शुक्राचार्य जी कच को इसी प्रकार जीवित कर दिया करेंगे तो उसे मारने से हमें क्या लाभ होगा। अतः अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे शुक्राचार्यजी उसे पुनर्जीवित न कर सकें। यह सम्मति करके दैत्यों ने एक बार फिर गौ चराते समय कच को मार डाला तथा उसके मृतक शरीर की मदिरा खींचकर शुक्राचार्य को पिला दी। जब सन्ध्या को कच फिर नहीं लौटा तो देवयानी के उसी प्रकार पूछने पर शुक्राचार्यजी ने अपने योगबल द्वारा सब हाल जानकर देवयानी से इस प्रकार कहा—"हे पुत्री! इस बार दैत्यों ने कच की मदिरा चुवाकर मुझे पिला दी है, अतः यदि मैं कच को जीवत करूँगा तो मेरी मृत्यु हो जायगी।" यह सुनकर देवयानी ने प्रार्थना की—"हे पिता! आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आप और वह दोनों ही जीवित रहें।" तब शुक्राचार्य ने मन्त्र द्वारा कच को अपने पेट में जीवित कर दिया तथा उसे उसी स्थान पर सञ्जीवनी विद्या पढ़ाकर इस प्रकार कहा—"हे कच! तुझे पेट से निकालने के बाद जब मैं मर जाऊँ, तब तू मुझे इसी विद्या द्वारा जीवित कर देना।" कच ने यह बात स्वीकार कर ली। तब शुक्राचार्य ने अपना पेट चीरकर कच को जीवितावस्था में बाहर निकाला और स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गये। उस समय कच ने सञ्जीवनी विद्या द्वारा शुक्राचार्य को जीवित कर दिया। कुछ समय बाद जब कच शुक्राचार्य से बिदा माँगकर अपने घर जाने लगा, उस समय देवयानी ने कच से कहा—"हे कच! तुम अपना विवाह मेरे साथ कर लो।" कच ने उत्तर दिया—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवयानी ! गुरु की पुत्री बहिन के समान होती है, अतः मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगा।" यह सुनकर देवयानी ने क्रुद्ध होकर कच को यह शाप दिया कि तूने मेरे पिता से जो सञ्जीवनी विद्या पढ़ी है, वह तुझे विस्मरण हो जाय। देवयानी का शाप सुनकर कच ने भी कहा—"हे देवयानी ! धर्म का पालन करते हुए तूने मुझे शाप दिया है, अतः मैं भी तुझे शाप देता हूँ कि तेरा विवाह किसी ब्राह्मण के साथ न हो।" इतना कहकर कच अपने पिता के पास चला गया।

हे परीक्षित ! देवयानी के शाप का यही कारण था, जो हमने तुम्हें सुनाया है। अब तुम देवयानी के विवाह का वृत्तान्त सुनो। जब शुक्राचार्य वृषपर्वा के राज्य में लौट आये, तब उन्होंने श्री नारायणजी के इच्छानुसार राजा ययाति को बुलाकर उसके साथ अपनी कन्या देवयानी का विवाह कर दिया तथा एक सहस्र दासियों-सहित शर्मिष्ठा को भी दहेज में देते हुए राजा से यह कहा कि तुम शर्मिष्ठा को कभी अपनी सेज पर मत बैठाना। देवयानी ने भी राजा ययाति से वचन ले लिया। जब राजा ययाति ने यह विश्वास दिलाया कि मैं शर्मिष्ठा से भोग नहीं करूँगा, तब शुक्राचार्यजी ने शर्मिष्ठा तथा एक सहस्र दासियों-सहित देवयानी को बहुत से वस्त्राभूषण दहेज में देकर विदा किया। अपने घर आकर राजा ययाति देवयानी के साथ भोगविलास करने लगा। शर्मिष्ठा के रहने के लिए उसने एक श्रेष्ठ मकान अलग बनवा दिया। कुछ दिनों के बाद देवयानी के गर्भ से 'यदु' तथा 'तुर्वसु' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। हे परीक्षित ! एक समय का वृत्तान्त है कि शर्मिष्ठा रजस्वला-स्नान करके शुद्ध हुई थी। उस दिन राजा ययाति भी उसके बाग में जा पहुँचे। तब शर्मिष्ठा ने हाथ जोड़कर राजा ययाति से इस प्रकार प्रार्थना की—"हे राजन् ! मैं भी आपकी दासी बनकर आपके साथ भोग करने एवं सन्तान प्राप्त करने की अभिलाषा रखती हूँ। मैं राजपुत्री हूँ, अतः किसी अन्य से भोग नहीं कर सकती। आप मेरी मनोकामना पूर्ण करने की कृपा करें।" उस समय शर्मिष्ठा की बात सुनकर राजा ने शुक्राचार्यजी के वचन का स्मरण करके मन में यह विचार किया कि यद्यपि शर्मिष्ठा से भोग करना मेरे लिए अच्छा नहीं है, परन्तु जब यह राजपुत्री होकर अपने मुँह से रतिदान माँग रही है तो इसको निराश कर देने में भी मेरा धर्म नष्ट हो जायगा। यह सोचकर राजा ने निश्चय किया कि प्रारब्ध का लिखा तो किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार मिट ही नहीं सकता, अस्तु इस समय इसकी इच्छा पूर्ण कर देनी चाहिए। ऐसा सोचकर राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के साथ भोग किया। तदुपरान्त वे अन्य अवसरों पर भी देवयानी से छिपकर परस्पर भोग-विलास करने लगे। कुछ समय बाद यह बात प्रकट हो गई। जब शर्मिष्ठा के गर्भ से 'द्रुह्यु' तथा 'अणु' नामक दो पुत्र उत्पन्न हो चुके तथा तीसरी बार उसे फिर गर्भ ठहरा उस समय की बात है कि एक दिन शर्मिष्ठा देवयानी को पंखा झल रही थी, उसी समय शर्मिष्ठा के दोनों बालक भी वहाँ आकर खड़े हो गये। उन्हें देखकर देवयानी ने शर्मिष्ठा से पूछा—"हे शर्मिष्ठा! ये दोनों पुत्र किससे उत्पन्न हुए हैं तथा तीसरा गर्भ किससे रहा है?" इस पर शर्मिष्ठा ने उत्तर दिया—"हे देवयानी! रात्रि को स्वप्न में आकर किसी ऋषि ने मेरे साथ भोग किया था, उसी से दो बालक उत्पन्न होकर, तीसरा गर्भ ठहरा है।" यह सुनकर देवयानी उस समय तो चुप हो गई, परन्तु फिर कुछ सन्देह बढ़ने पर उसने एक दिन शर्मिष्ठा के मकान पर जाकर उसके पुत्रों से पूछा कि तुम्हारे पिता का क्या नाम है? उस समय बड़े बालक ने यह उत्तर दिया कि मैं राजा ययाति का पुत्र हूँ। यह सुनते ही देवयानी ने अत्यन्त क्रोध में भरकर राजा ययाति के पास जाकर कहा—"हे राजन्! मेरे पिता द्वारा मना किये जाने पर भी तुमने शर्मिष्ठा के साथ भोग किया, इसलिये अब मैं तुम्हारे घर में नहीं रहूँगी।" इस प्रकार कहकर जब देवयानी अपने पिता के घर चली, तब राजा ययाति भी उसे रोकने के लिए पीछे-पीछे पैदल ही दौड़ता हुआ चल दिया। परन्तु देवयानी रुकी नहीं। उसने अपने पिता के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। जब शुक्राचार्य ने यह वृत्तान्त सुना तो देवयानी के पीछे खड़े हुए राजा ययाति को सम्बोधित करते हुए, उन्होंने अत्यन्त क्रोध में भरकर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! तूने अपनी शक्ति के अभिमान में भरकर मेरा कहना नहीं माना, अतः मैं तुझे यह शाप देता हूँ कि तू वृद्ध तथा निर्बल होकर स्त्री-प्रसङ्ग करने योग्य न रहे और तेरा स्वरूप विकृत हो जाय।" इस शाप को सुनते ही राजा ययाति वृद्ध तथा निर्बल हो गया। उसके मुख के दाँत गिर पड़े, केश श्वेत हो गये तथा आँख से कम दिखाई देने लगा। उस समय राजा ययाति ने शुक्राचार्यजी की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! अभी मेरा मन संसारी सुख से नहीं भरा है, अतः आप मेरा अपराध क्षमा कर दीजिये।" यह सुनकर शुक्राचार्य ने उत्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

दिया—"हे ययाति ! मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। यदि तेरे पाँच पुत्रों में से कोई पुत्र तेरा बुढ़ापा स्वयं लेकर, अपनी जवानी तुझे दे दे, तो तू फिर से तरुण हो जायगा। यह सुनकर राजा देवयानी-सहित अपने घर को लौट आया। उसी समय शर्मिष्ठा से तीसरे पुत्र का जन्म हुआ। तब राजा ययाति ने अपने बड़े पुत्र 'यदु' से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तुम्हारे नाना ने हमें बूढ़ा बना दिया है; अतः यदि तुम अपनी जवानी देकर, हमारा बुढ़ापा ले लो तो हम कुछ दिनों तक संसारी सुख और भोग लेंगे।" यह सुनकर यदु ने विचार किया कि यदि राजा मेरी जवानी लेकर मेरी माता से भोग करेंगे तो मुझे बड़ा पाप लगेगा। यह सोचकर उसने राजा को उत्तर दिया—"हे पिता ! मैंने तो अभी तक जवानी का सुख देखा ही नहीं है, इसलिए मैं आपको अपनी जवानी देने में असमर्थ हूँ।" यह सुनकर राजा ने 'तुर्वसु' आदि अन्य तीनों बालकों से भी यही बात कही, परन्तु उन्होंने भी अपने बड़े भाई यदु के समान ही उत्तर दे दिया। तत्पश्चात् राजा ने शर्मिष्ठा के सबसे छोटे पुत्र 'पुरु' से कहा—"हे पुत्र ! अब तुम्हारे अतिरिक्त मुझे अन्य किसी का भरोसा नहीं है, अतः तुम मुझे अपनी जवानी दे दो।" राजा के ऐसे दीन वचन सुनकर पुरु ने उत्तर दिया—"हे पिता ! मेरा शरीर आपके द्वारा ही उत्पन्न हुआ है, अतः केवल जवानी ही क्या, यदि आप कहें तो मैं आपके लिए अपने प्राण भी दे सकता हूँ। यदि मैं सौ जन्मों तक आपकी सेवा करूँ, तो भी कभी आपसे उऋण नहीं हो सकता हूँ। जो पुत्र अपने माता-पिता की आज्ञा न माने उसे मृत-तुल्य समझना चाहिए।" पुरु के वचनों को सुनकर राजा ययाति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई, तब उन्होंने अपना बुढ़ापा उसे देकर, उसकी जवानी स्वयं ले ली तथा अपने चारों पुत्रों को शाप दिया कि तुम्हें राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त न होगा। पुरु की युवावस्था लेकर राजा ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक देवयानी के साथ सांसारिक सुखों का उपभोग किया, परन्तु तो भी उसका मन नहीं भरा।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

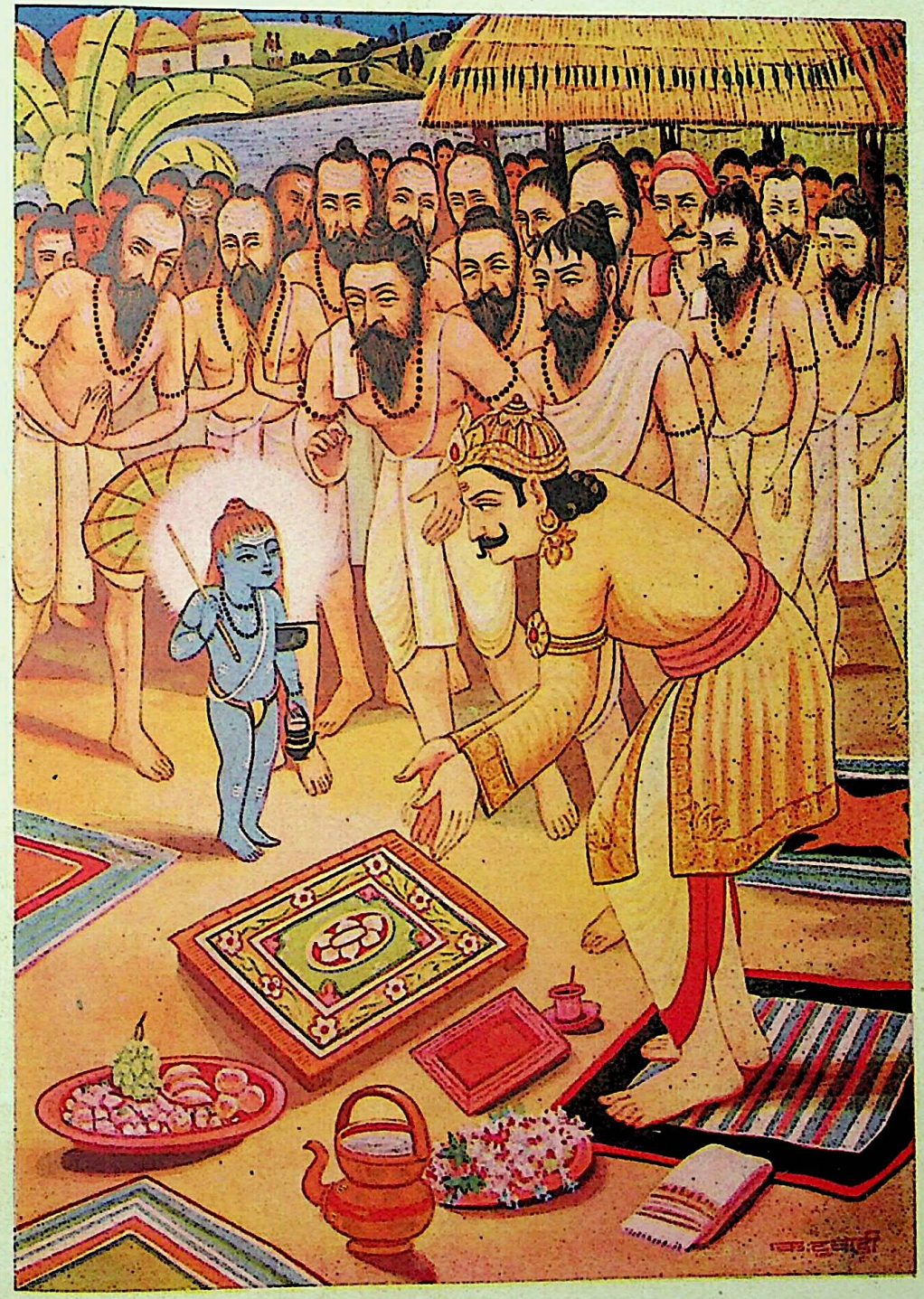

राजा बलि के यज्ञ में वामन भगवान् का आगमन

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा ययाति का बकरी के इतिहास का वर्णन करना

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! बहुत दिनों तक राजा ययाति संसारी सुखों का उपभोग करने में फँसा रहा, परन्तु जब यज्ञ आदि करने पर उसे ज्ञान प्राप्त हुआ, तब एक दिन उसने अपने मन में यह विचार किया कि मैंने अपने पुत्र की जवानी लेकर इतना सुख उठाया, फिर भी मेरी इच्छाएँ तृप्त नहीं हुईं। मिट्टी का घड़ा पानी डालने से भर जाता है, परन्तु ये इन्द्रियाँ अत्यन्त सुख पाने पर भी कभी तृप्त नहीं होतीं। सो इस संसारी माया-जाल में पड़े रहकर जन्म व्यर्थ करने से यह अच्छा है कि मैं अपना परलोक बनाने के लिए श्री नारायणजी का तप करूँ। ऐसा सोचकर ययाति ने देवयानी से कहा– "हे प्रिये ! मैंने शिकार खेलते समय एक कौतुक देखा था, उसे सोचकर अभी तक हँसी आ रही है।" यह सुनकर देवयानी हाथ जोड़कर बोली–"हे प्राणनाथ ! वह चरित्र मुझे भी सुनाने की कृपा करें !" राजा ने कहा–"हे देवयानी ! एक ब्राह्मण की बकरी कुएँ में गिर पड़ी थी, उसे एक बकरे ने बाहर निकाल लिया। तब वह बकरी उसी बकरे को अपना स्वामी बनाकर बहुत दिनों तक सांसारिक सुख उठाती रही। जब उस बकरी के दो पुत्र उत्पन्न हो चुके, तब वह बकरा किसी दूसरी बकरी से प्रेम करने लगा। यह देखकर पहली बकरी अपने ब्राह्मण के घर लौट गई। तब उस ब्राह्मण ने अपनी बकरी की सहायता से उस बकरे को नपुंसक बना दिया। जब बकरे ने बहुत प्रार्थना की तो ब्राह्मण ने दया करके उसे फिर जैसे का तैसा कर दिया। तब वह बकरा फिर उसी प्रकार संसारी सुखों में फँस गया।" यह कथा सुनकर देवयानी ने कहा–"हे महाराज ! वह बकरा अत्यन्त मूर्ख था, जो उस बकरी के साथ भ्रष्ट हुआ।" राजा बोला– "हे देवयानी ! वही बकरे जैसी दशा मेरी-तुम्हारी भी हो रही है। मनुष्य को चाहे सम्पूर्ण संसार का धन, स्त्री तथा सातों द्वीपों का राज्य क्यों न मिले, उसका मन संसारी सुखों से कभी तृप्त नहीं होता है। जिस प्रकार अग्नि में घृत डालने से उसकी ज्वाला अधिक बढ़ती है, उसी प्रकार तृष्णा भी निरन्तर बढ़ती ही चली जाती है। अतः अब हमें इससे विरक्त होकर श्री नारायणजी का भजन करना चाहिए।" राजा की यह बात देवयानी ने भी स्वीकार कर ली। उस समय ययाति ने अपने छोटे पुत्र की जवानी लौटाकर, उससे अपना बुढ़ापा वापिस ले लिया। तत्पश्चात् उसने पुरु को राजसिंहासन पर बैठा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया। शेष चारों पुत्रों को चारों दिशाओं का राज बाँटकर स्वयं देवयानी-सहित तप करने के लिए बदरी-केदार को चला गया। वहाँ हरि-भजन के प्रताप से दोनों को मुक्ति-पद की प्राप्ति हुई।"

बीसवाँ अध्याय

पुरु के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! अब हम राजा पुरु के वंश का वृत्तान्त कहते हैं, जिसमें तुमने भी जन्म लिया है, सुनो। पुरु के वंश में कई पीढ़ी पश्चात् 'दुष्यन्त' नामक एक प्रतापी राजा हुआ। एक दिन जब वह शिकार खेलने के लिए वन में गया तो वहाँ उसने कण्व ऋषि के आश्रम में एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा। राजा दुष्यन्त ने मोहित होकर उससे पूछा—"हे सुन्दरी! देवकन्या के समान तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारे जैसी सुन्दर तो कोई राजकन्या भी नहीं होती, इसलिए मेरा हृदय तुम्हारे ऊपर आसक्त हो गया है।" यह सुनकर उस कन्या ने उत्तर दिया—"हे राजन्! मैं विश्वामित्र ऋषि तथा मेनका नामक अप्सरा के संयोग से उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम शकुन्तला है। मेरा पालन-पोषण कण्व ऋषि ने किया है। आप मेरे आश्रम पर चलें तो मैं कन्द-मूल, फल आदि से आपका सम्मान करूँगी।" तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा—"कन्या द्वारा स्वयंवर करना भी धर्म माना जाता है, अतः मुझे तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार है।" यह कहकर राजा बड़े प्रेमपूर्वक उसके स्थान पर ठहरा। तदनन्तर दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक गान्धर्व विवाह कर लिया। राजा ने रात्रि में उसके साथ भोग किया। श्रीहरि की इच्छा से शकुन्तला को उसी दिन गर्भ ठहर गया। प्रातःकाल राजा शकुन्तला को वहीं छोड़कर राजभवन को लौट गया। कण्व ऋषि को अपने तपोबल से यह ज्ञात हो गया कि राजा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को गर्भ रह गया है। दसवें महीने शकुन्तला के गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर तथा परम तेजस्वी ऐसा बालक उत्पन्न हुआ, जो कुछ बड़ा होने पर ही अपने सींक के धनुष-बाण से सिंह का शिकार कर उठा। उस समय कण्व ऋषि ने शकुन्तला को यह आज्ञा दी कि हे पुत्री! अब तू अपने बालक को लेकर राजा के पास चली जा। ऋषि की आज्ञा से शकुन्तला उस बालक को लेकर राज-सभा में जा पहुँची। वहाँ उसने राजा दुष्यन्त से इस प्रकार कहा—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृथ्वीपति! मैं आपकी पत्नी शकुन्तला हूँ। अब राजकुमार के सहित आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।" शकुन्तला के ऐसे वचन सुनकर राजा ने उससे कहा—"मैं यह नहीं जानता कि तू कौन है तथा किसका बालक लेकर यहाँ आई है?" जिस समय राजा ने जान-बूझकर ऐसे मिथ्या वचन कहे, उस समय यह आकाशवाणी हुई कि हे राजा! शकुन्तला का कथन सत्य है। यह बालक तुम्हारे ही वीर्य से उत्पन्न हुआ है। इसलिए तुम इन दोनों को अपने घर में रक्खो, क्योंकि धर्मात्मा पुत्र अपने पिता को नरक में जाने से बचा लेता है।" इस आकाशवाणी को सुनकर राजा ने शकुन्तला को स्वीकार कर, उसे राजपुत्र-सहित महलों में भिजवा दिया। राजा ने उस बालक का नाम 'भरत' रक्खा। राजा दुष्यन्त के मरने पर वही भरत सिंहासन का अधिकारी बना। वह ऐसा प्रतापी हुआ कि उसने एक सौ तेंतीस अश्वमेध यज्ञ किये तथा ब्राह्मणों को रत्न-धन आदि बहुत से दान दिये। उसके यज्ञों में इन्द्र ने उसका श्यामकर्ण घोड़ा कई बार चुराया, परन्तु वह हर बार अपने बल तथा प्रताप से उसे छीन कर ले आया। पृथ्वी पर जितने भी म्लेच्छ तथा दुखदायी राजा थे, भरत ने उन सबका नाश कर दिया। उसने अपनी शक्ति से दैत्यों को जीतकर इन्द्र आदि देवताओं को देवलोक का राज्य वापिस दिलवाया। उसके राज्य में पर्वतों तथा समुद्रों में सोने तथा रत्नों की खानें इसलिए प्रत्यक्ष रहती थीं कि उन्हें जो चाहे, वह ले जाय। इस प्रकार सत्ताईस सहस्र वर्षों तक भरत ने इन्द्र के समान चक्रवर्ती राज्य किया। राजा भरत ने विदर्भ देश के राजा की तीन पुत्रियों के साथ अपने विवाह किये थे। श्री नारायणजी की इच्छा से जब उसके कई पुत्र कुरूप उत्पन्न हुए, तब रानियों ने उन्हें इस भय से कि कहीं राजा यह न कहें कि ये हमारे वीर्य से उत्पन्न नहीं हैं, गङ्गा में फेंकवा दिये। अतः राजा को सन्तान के सम्बन्ध में सदैव चिन्ता बनी रहती थी। कुछ समय पश्चात् राजा ने कण्व ऋषि से मन्त्र लेकर, उन्हीं की सहायता से सन्तान प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब देवताओं ने प्रसन्न होकर 'ममता' से उत्पन्न 'भारद्वाज' नामक बालक राजा भरत को दे दिया। राजा ने उस बालक का नाम 'वितथ' रक्खा। भरत की मृत्यु के पश्चात् वही राज्य का स्वामी हुआ।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! भारद्वाज की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी, यह आप मुझसे कहने की कृपा करें।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! एक समय बृहस्पति ने अपने बड़े भाई 'उतथ्य' की पत्नी 'ममता' से जबर्दस्ती भोग किया था, उससे उसे गर्भ रह गया। परन्तु ममता ने अपने पति के भय से उस बालक को अपने पेट से गिरा दिया। उसी बालक का नाम 'भारद्वाज' था। जब बृहस्पति के समझाने तथा आकाशवाणी होने पर भी ममता ने उस बालक का पालन नहीं किया तब मरुत् देवता ने, जिसके नाम पर राजा भरत ने यज्ञ किया था, वह बालक राजा भरत को सौंप दिया। भारद्वाज के जन्म की कथा यही है।"

इक्कीसवाँ अध्याय

राजा वितथ के वंश का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! वितथ के वंश में कई पीढ़ी पश्चात् 'रन्तिदेव' ऐसा महात्मा हुआ कि उसने राजसिंहासन पर न बैठकर, अपनी स्त्री तथा पुत्र सहित वन में जाकर श्री नारायणजी का तप एवं ध्यान करना अंगीकार किया। उसने भोजन करना भी त्याग दिया था। यदि कोई व्यक्ति विना माँगे कुछ दे जाता था तो वह उससे अपना, अपनी स्त्री तथा पुत्र का पेट भरकर आनन्दित बना रहता था। एक बार संयोगवश अड़तालीस दिनों तक उन्हें कुछ खाने को नहीं मिला। उनचासवें दिन कोई व्यक्ति उन्हें थोड़ा-सा अन्न दे गया। जब वे उसका भोजन बनाकर, तीन भाग करके खाने के लिए बैठे, तब श्री नारायणजी परीक्षा लेने के निमित्त वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धरकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राजा से कहा–"हे राजन्! मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे कुछ भोजन दो।" यह सुनकर राजा ने श्रद्धापूर्वक उन्हें अपना भाग खिला दिया। जब वृद्ध ब्राह्मणरूपी नारायणजी ने उसे खाकर यह कहा कि अभी मेरी क्षुधा दूर नहीं हुई है, तब रानी तथा राजकुमार ने भी उन्हें अपना-अपना भाग खिला दिया। इस प्रकार सब लोग भूखे रह गये। तत्पश्चात् श्री नारायणजी उन्हें आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये। इस घटना के कुछ दिनों बाद तक वे सब भूखे बने रहे। फिर एक दिन जब किसी ने थोड़ा-सा भोजन दिया और वे उसे खाने के लिए बैठे, तभी एक शूद्र ने आकर उनसे प्रार्थना की कि हे राजन्! मैं बहुत भूखा हूँ। तुम मेरे खाने के लिए भोजन दो। तब राजा ने उसे अतिथि जानकर सम्पूर्ण भोजन दे दिया। वे तीनों प्राणी फिर ज्यों के त्यों भूखे रह गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! भोजन न मिलने के कारण राजकुमार तथा रानी बहुत दुर्बल हो गये थे। अतः राजा ने उनसे यह कहा कि जिस पात्र में अतिथि ने भोजन किया है, उसमें अन्न का कुछ अंश लगा होगा; अतः तुम उसे धोकर पी लो। यह सुनकर जब रानी तथा राजकुमार ने उस पात्र को धोकर धोवन पीना चाहा, उसी समय एक डोम अपने कुत्ते को साथ लेकर वहीं आ पहुँचा तथा विलाप करता हुआ राजा से इस प्रकार कहने लगा—"हे राजन्! यह धोवन आप लोगों के पीने के योग्य नहीं है। मेरे प्राण भूख से निकले जा रहे हैं, अतः आप इसे मुझे पीने के लिए दे दीजिए।" यह सुनकर राजा उस चाण्डाल में भी ईश्वर का प्रकाश जानकर, वह धोवन उसे देने के लिए तैयार हुए। उस समय रानी तथा राजकुमार ने डोम से यह कहा कि हम लोगों ने भी बहुत दिनों तक भूखे रहने के पश्चात् आज इस धोवन का पीने की इच्छा की है। अतः तुम दया करके इसे छोड़ दो तो हम अपनी क्षुधा शान्त कर लें। परन्तु जब चाण्डाल ने उनकी बात न मानी, तब उन्होंने वह धोवन भी उस चाण्डाल को दे दिया। इस प्रकार श्री नारायणजी ने जब उन तीनों के धर्म तथा धैर्य की परीक्षा ले ली, उस समय वे उसी डोम के शरीर से शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए प्रकट हो गये तथा राजा, रानी और राजकुमार की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम लोगों का धर्म तथा धैर्य प्रशंसनीय है। श्रीहरि के दर्शन पाकर जब उन तीनों ने स्तुति-प्रार्थना की, तब भगवान् वैकुण्ठनाथ ने रन्तिदेव को अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"हे राजन्! तुम जो चाहो वह वरदान माँग लो।" यह सुनकर रन्तिदेव ने कहा—"हे प्रभो! मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण प्रजा सुखी बनी रहे, कोई दरिद्र न रहे तथा मेरा ध्यान आपके चरणों में सदैव लगा रहे।" यह सुनकर श्री नारायणजी ने उन्हें इच्छित वरदान देकर, तीनों को उसी शरीर से विमान में बैठाकर वैकुण्ठ लोक में पहुँचा दिया।

हे परीक्षित ! रन्तिदेव का 'गर्ग' नामक दूसरा पुत्र, जो सिंहासन पर आरूढ़ था। उसके वंश के सब लोग श्री नारायणजी की कृपा से ब्राह्मण हो गये। 'पुरु' के वंश में 'वृहत्क्षेत्र' नामक राजा हुआ। उसके वंश में 'हस्ती' नामक ऐसे प्रतापी राजा ने जन्म लिया, जिसने 'हस्तिनापुर' नामक नगर को बसाया। हस्ती के 'अजमीढ़', 'पुरुमीढ़' तथा 'दुर्मीढ़' नामक तीन पुत्र अत्यन्त धर्मात्मा हुए। उनमें अजमीढ़ की सन्तान ब्राह्मण हो गई। उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

वंश में 'मुद्गल' ऐसा ज्ञानी हुआ, जिसका गोत्र संसार में आज तक प्रकट है। मुद्गल के वंश में परम सुन्दरी 'अहल्या' नामक कन्या का जन्म हुआ। उस कन्या का विवाह 'गौतम ऋषि' के साथ हुआ था। अहल्या के गर्भ से 'शतानन्द' नामक बालक का जन्म हुआ। उसके पुत्र का नाम 'सत्यव्रती' हुआ। एक बार सत्यव्रती का वीर्य उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर सरकण्ड के वन में गिर पड़ा, जिससे 'कृपाचार्य' नामक बालक तथा 'कृपी' नामक कन्या का जन्म हुआ। उन्हें भारद्वाज के वंश में उत्पन्न राजा शान्तनु शिकार खेलते समय वन में पड़ा देखकर अपने घर उठा लाये थे। राजा शान्तनु ने उन दोनों को अपने पुत्र के समान पाला। राजा शान्तनु के हाथ में यह गुण था कि वे जिसके मस्तक पर हाथ रख देते थे, उसका रोग दूर हो जाता था। इस कारण संसार में उनका बहुत सुयश फैल गया था। एक बार उनके राज्य में वर्षा नहीं हुई, उससे प्रजा दुःख पाने लगी, तब राजा ने ऋषियों को बुलाकर यह पूछा कि हमने ऐसा कौन-सा अधर्म किया है, जिसके कारण हमारे राज्य में वर्षा नहीं होती है? उस समय ऋषियों ने विचार कर यह उत्तर दिया कि हे राजन्! तुमने अपने भाई 'देवापी' का भाग छीन लिया था, इसी लिए जल की वर्षा नहीं हो रही है। अब या तो तुम उसका भाग दे दो, अन्यथा अनावृष्टि के कारण तुम्हारी प्रजा नष्ट हो जायगी। यह सुनकर राजा ने अपने भाई देवापी से, जो उस समय वन में बैठा हुआ तप कर रहा था, भुलावा देकर ऐसी बातें करनी आरम्भ कीं, जिससे उसके मुख से दैव के विपरीत वचन निकल आवे। इस कारण देवापी का तपोबल नष्ट हो गया। तब राजा शान्तनु के राज्य में वर्षा होनी आरम्भ हो गई। हे राजन्! राजा शान्तनु ऐसे प्रतापी हुए थे कि संसार में आज तक उनका यश विद्यमान है।"

बाईसवाँ अध्याय

दिवोदास के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! मुद्गल का पुत्र 'दिवोदास' अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। उसके वंश में 'द्रुपद' नामक अत्यन्त तेजस्वी राजा ने जन्म लिया। उस द्रुपद की पुत्री 'द्रौपदी' को तुम्हारे पितामह अर्जुन मत्स्य वेधकर ले आये थे। फिर वह पाँचों पाण्डवों की स्त्री कहलाई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा द्रुपद के 'धृष्टद्युम्न' आदि कई पुत्र हुए। उस धृष्टद्युम्न ने ही महाभारत में 'द्रोणाचार्य' का मस्तक काटा था। अजमीढ़ के वंश में 'वृहद्रथ' नामक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। उसके दो रानियाँ थीं। उनमें से एक रानी के गर्भ से 'सत्यजित्' नामक बालक का जन्म हुआ। दूसरी के कोई पुत्र न होने पर एक दिन किसी ऋषि ने राजा वृहद्रथ को आम का एक फल देते हुए यह कहा कि तू इस फल को अपनी रानी को खिला देना। इससे उसे पुत्र की प्राप्ति होगी। राजा ने वह आम अपनी बड़ी रानी को दे दिया। उन दोनों रानियों में परस्पर बहुत प्रेम था। अतः उन्होंने वह आम आधा-आधा बाँट कर खा लिया। इस कारण उन दोनों स्त्रियों को गर्भ रह गया। दसवें महीने उनके पेट से दो ऐसे आधे-आधे बालक का जन्म हुआ, जैसे कोई एक मनुष्य को खड़ा करके बीच में से चीर डाले। यह देखकर राजा ने उन दोनों टुकड़ों को वन में फिंकवा दिया तथा आम बाँट कर खाने का समाचार जानकर रानियों पर भी अत्यन्त क्रोध किया।

हे परीक्षित! श्री नारायणजी की कृपा से वन में जहाँ वे दोनों टुकड़े पड़े थे, वहाँ 'जरा' नामक एक राक्षसी जा पहुँची। उसने अपनी माया से दोनों टुकड़ों को जोड़कर मिला दिया। तब श्रीहरि की इच्छा से वह बालक जीवित हो गया। यह देखकर राजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो, उसका नाम 'जरासन्ध' रखकर पालन-पोषण किया। बड़ा होने पर जरासन्ध अत्यन्त पराक्रमी तथा तेजस्वी हुआ। उसे श्री कृष्णजी की कृपा से तुम्हारे पितामह भीमसेन ने टाँग चीरकर मार डाला था। जरासन्ध का पुत्र 'सहदेव' हुआ। उसके वंश में 'देवापी' नामक अत्यन्त प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा ने जन्म लिया। वह राजसिंहासन त्याग कर उत्तराखण्ड में श्री नारायणजी का तप करने लगा। कलियुग के अन्त में उसी के द्वारा चन्द्रवंश की फिर उत्पत्ति होगी। अब हम शान्तनु के वंश की कथा कहते हैं, सुनो। राजा शान्तनु की स्त्री के गर्भ से 'शल' का जन्म हुआ। उसके वंश में 'दिवोदास कौरव' ऐसा प्रतापी हुआ कि उसके नाम पर 'कुरुक्षेत्र' नामक तीर्थ प्रकट हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार वश राजा दिवोदास को कोढ़ हो गया था। एक समय वह वन में शिकार खेलते समय कुरुक्षेत्र में जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहाँ समीप ही पानी का एक कुण्ड देखकर, जैसे ही राजा ने उसमें स्नान किया, वैसे ही उसका कोढ़ दूर हो गया। तब राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस कुण्ड को तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

वहाँ के अन्य कुण्डों को भी अच्छा बनवा दिया। इसीलिए उस स्थान का नाम 'कुरुक्षेत्र' प्रसिद्ध हुआ। उसके वंश में 'दिलीप' नामक ऐसा प्रतापी राजा हुआ, जिसने 'दिल्ली' नामक नगर बसाया। राजा शान्तनु की दूसरी पत्नी गङ्गाजी से 'भीष्मपितामह' नामक परम तेजस्वी तथा शक्तिशाली पुत्र का जन्म हुआ था। उन्होंने परशुरामजी से युद्ध किया था। धनुर्विद्या में उनके समान प्रवीण अन्य कोई नहीं था। राजा शान्तनु की तीसरी पत्नी 'सत्यवती' के गर्भ से 'चित्राङ्गद' तथा 'विचित्रवीर्य' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। हे परीक्षित! यह सत्यवती वही थी, जिसके साथ हमारे पितामह पाराशर मुनि ने कौमार्यावस्था में नौका में भोग किया था। उसी के द्वारा हमारे पिता वेदव्यास की उत्पत्ति हुई थी। एक समय 'सत्यवती' का पुत्र चित्राङ्गद शिकार खेलने के लिए वन में गया, उस समय 'चित्राङ्गद' नामक गन्धर्व ने, इस शत्रुता से कि इसने अपना नाम मेरे जैसा ही क्यों रक्खा है, उसे मार डाला। भीष्म पितामह अपने पराक्रम द्वारा काशी-नरेश की तीन पुत्रियों अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका को स्वयंवर से छीन लाये थे। उनमें दो का विवाह विचित्रवीर्य के साथ हुआ था। तीसरी लड़की अम्बा अपने मन में राजा 'शाल्व' की अभिलाषा रखती थी, अतः विचित्रवीर्य ने उसे छोड़ दिया था। विचित्रवीर्य ने अम्बिका तथा अम्बालिका से ऐसी प्रीति की कि वह दिन-रात राजमन्दिर में रहकर उनके साथ भोग-विलास किया करता था, इस कारण उसे क्षयी रोग हो गया तथा विना सन्तान हुए ही उसकी मृत्यु हो गई। उस समय सत्यवती ने अपना वंश चलाने के लिए अपने पुत्र वेदव्यास को, जो पराशर ऋषि द्वारा उत्पन्न हुए थे, अपने पास बुलाकर यह कहा कि तुम विचित्रवीर्य की दोनों रानियों से एक-एक पुत्र उत्पन्न करो। यह सुनकर श्री नारायणजी के अवतार वेदव्यासजी ने यह उत्तर दिया—"हे माता! विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियाँ मेरे सामने से नग्न होकर चली जायँ तो मेरे देखने मात्र से ही उनको गर्भ रह जायगा। उससे उन्हें एक-एक पुत्र की प्राप्ति होगी।" तब अपनी सास 'सत्यवती' के आज्ञानुसार वे दोनों स्त्रियाँ नंगी होकर वेदव्यासजी के सामने गईं। उनमें अम्बिका ने लज्जा के वशीभूत होकर अपने मुँह को बालों में छिपा लिया, जिसके कारण उसके गर्भ से अन्धे पुत्र 'धृतराष्ट्र' का जन्म हुआ तथा अम्बालिका लज्जावश अपने अंग में पीली मिट्टी लगाकर गई, इसलिए उसके गर्भ से 'पाण्डु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पीलिया रोग से ग्रसित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, उसी समय विचित्रवीर्य की 'बिलरा' नामक एक दासी भी नंगी होकर वेदव्यासजी के सामने से निस्संकोच भाव से हँसती हुई चली गई थी, सो उसके गर्भ से परम भक्त एवं ज्ञानी धर्मराज के अवतार 'विदुर' ने जन्म लिया।

हे परीक्षित! धृतराष्ट्र की गान्धारी नामक पत्नी के गर्भ से 'दुर्योधन' आदि सौ पुत्रों का जन्म हुआ। तुम्हारे पितामह राजा पाण्डु को एक हिरणरूपी ऋषि ने, भोग करते समय भयभीत कर देने के कारण ऐसा शाप दिया था कि स्त्री-प्रसङ्ग करते ही तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इस शाप के अतिरिक्त उन्हें पीलिया रोग भी था, अतः उनके कोई सन्तान नहीं हुई। यह दशा देखकर उनकी पत्नी कुन्ती ने अपने पति के आज्ञानुसार मन्त्र के प्रभाव से धर्म, इन्द्र तथा पवन देवताओं को बुलाकर उनके साथ भोग किया। उसके परिणामस्वरूप धर्म द्वारा युधिष्ठिर, इन्द्र द्वारा अर्जुन तथा पवन द्वारा भीमसेन का जन्म हुआ। तत्पश्चात् कुन्ती ने मन्त्र द्वारा अश्विनीकुमार देवता को बुलाकर अपनी सौत माद्री से भोग कराया, उससे 'नकुल' तथा 'सहदेव' नामक पुत्रों का जन्म हुआ। वे पाँचों भाई पाण्डव कहलाये। उन्होंने द्रौपदी से विवाह किया। वे द्रौपदी को पारी-पारी से अपने पास रखते थे। इस प्रकार पाँचों भाइयों ने द्रौपदी द्वारा पाँच पुत्रों को जन्म दिया। उन्हें अश्वत्थामा ने मार डाला था। राजा युधिष्ठिर की 'पौरवी' नामक दूसरी स्त्री के गर्भ से 'देवक' का जन्म हुआ था। भीमसेन की दूसरी पत्नी 'हिडम्बा' नामक राक्षसी के गभ से 'घटोत्कच' का जन्म हुआ। सहदेव की दूसरी पत्नी 'सहोत्रा' के गर्भ से 'विजय' का जन्म हुआ। नकुल की 'कर्णमती' नामक दूसरी पत्नी के गर्भ से 'निर्मित्र' की उत्पत्ति हुई तथा अर्जुन की 'सुभद्रा' नामक दूसरी पत्नी से, जो श्री कृष्ण-चन्द्रजी की बहिन थी, तुम्हारे पिता पराक्रमी 'अभिमन्यु' का जन्म हुआ। अर्जुन की 'अलोपा' नामक तीसरी पत्नी के गर्भ से, जो नागकन्या थी, 'बभ्रुवाहन' तथा 'ऐरावत' नामक दो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। ऐरावत को 'मणिपुरपती' नामक उसके नाना ने गोद ले लिया था। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के साथ घोर युद्ध किया था, उसकी कथा 'महाभारत' में वर्णित है। हे परीक्षित! जिस समय अश्वत्थामा ने तुम्हें मारने के लिए ब्रह्मास्त्र चलाया था, उस समय भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने तुम्हारी माता के पेट में रक्षा की थी। अब तुम्हारे 'जनमेजय' आदिक जो चार पुत्र हैं, उनमें जनमेजय अत्यन्त प्रतापी होगा। वह तुम्हारा बदला लेने के लिए ऐसा यज्ञ करेगा, जिसमें बहुत से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्प भस्म होकर मर जायँगे। शुभ कर्म करने के कारण उसका नाम संसार में प्रसिद्ध रहेगा। तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् हस्तिनापुर का राज्य पच्चीस पीढ़ी तक तुम्हारे वंश में रहेगा। तत्पश्चात् हस्तिनापुर यमुना नदी में डूब जायगा। उस समय तुम्हारे वंश में 'तिमी' नामक राजा उत्पन्न होकर 'श्रावस्तीपुरी' को बसायेगा। उसके बाद तुम्हारे वंश से राजगद्दी हट जायगी। हे राजन्! हमारे पिता वेदव्यासजी ने चारों वेद तथा सब पुराण अपने शिष्यों को पढ़ाये थे, परन्तु उनमें श्रीमद्भागवत को जो सब वेदों का सार है, उन्होंने अन्य किसी को न पढ़ा कर, केवल हमें ही पढ़ाया। वही कथा हम तुम्हें सुना रहे हैं।

तेईसवाँ अध्याय

यदुवंशियों का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! अब हम तुमसे यदुवंशियों की कथा कहते हैं, जिसमें श्री कृष्णचन्द्रजी का अवतार हुआ था, सुनो। ययाति के बड़े पुत्र का नाम 'यदु' था। वह देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उसके वंश में कई पीढ़ी पश्चात् 'सहस्रार्जुन' नामक ऐसा प्रतापी राजा हुआ, जिसने पच्चीस सहस्र वर्षों तक एकछत्र राज्य किया। उसके नाम का स्मरण करने से खोये हुए धन की प्राप्ति होती है। उसके एक सहस्र पुत्रों में से नौ सौ पंचानवे पुत्रों को परशुरामजी ने मार डाला था। शेष जो पाँच पुत्र बचे, उनमें से 'जयध्वज' नाम के पुत्र द्वारा 'तालजंघ' नामक क्षत्रिय की उत्पत्ति हुई। उसके वंश में 'मधु' नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। मधु के पुत्र का नाम 'वृष्णि' था। इसी कारण यदुवंशियों को मधुवंशी तथा वृष्णिवंशी भी कहा जाता है। वृष्णि का पुत्र 'शिशु बन्द' बड़ा प्रतापी हुआ। उसके पास चौदह रत्न थे। उसने दस लाख स्त्रियों से विवाह किया। श्री नारायणजी की इच्छा से उसके दस करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम 'पुरुजित्' तथा सबसे छोटे का नाम 'जामघ' था। जामघ की 'शैव्या' नामक स्त्री बाँझ थी। बहुत उपाय करने पर भी जब उसके संतान नहीं हुई, तब वह उदास रहने लगी। एक समय राजा जामघ विदर्भदेश के राजा से लड़ने गया। वहाँ से वह किसी भोजवंशी की एक परम सुन्दरी कन्या को छीन लाया। जब उस बाँझ रानी ने यह देखा कि उसका पति अपने रथ पर एक सुन्दरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्री को बैठाकर लाया है, तो उसने क्रोध करके राजा से यह पूछा कि तुम इस कन्या को किसलिये लाये हो ? उस समय राजा ने भयभीत होकर अपनी स्त्री को यह उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे लिए यह पुत्रवधू लाया हूँ। यह सुनकर जब रानी ने हँसकर कहा कि जब मेरे पुत्र ही नहीं है, तब इसका विवाह किसके साथ करोगे ? उस समय राजा ने यह उत्तर दिया कि जब मेरे पुत्र होगा, उस समय इस कन्या का विवाह उसके साथ करूँगा। हे परीक्षित ! श्री नारायणजी की इच्छा से उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! तू धैर्य धारण कर, तुझे पुत्र की प्राप्ति होगी। यह सुनकर राजा तथा रानी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर विश्वेदेवों का पूजन किया। तब उनके आशीर्वाद एवं श्रीहरि की कृपा से उस बाँझ रानी के गर्भ से एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र ने जन्म लिया। राजा ने उस बालक का नाम 'विदर्भ' रक्खा तथा बड़ा होने पर उस कन्या का विवाह उसी के साथ कर दिया। तदुपरान्त उसे राजगद्दी देकर स्वयं अपनी पत्नी सहित तपस्या करने के लिए वन में चला गया। वहाँ उसे श्रीहरि की कृपा से मुक्ति प्राप्त हुई। राजा विदर्भ ने धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया।"

चौबीसवाँ अध्याय

राजा उग्रसेन आदि के जन्म का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! विदर्भ के 'कुश', 'क्रथ' तथा 'रोमपाद' नामक तीन पुत्र हुए। रोमपाद के वंश में चन्देली का राजा 'जयद्रथ' अत्यन्त प्रतापी हुआ। उसके घर में 'शिशुपाल' ने जन्म लिया। उसी वंश में 'देवावृद्ध' तथा 'विभु' नामक दो पुत्र ऐसे धर्मात्मा तथा ज्ञानी हुए जिनके सत्सङ्ग से छः सहस्र पैंसठ मनुष्यों ने मोक्ष प्राप्त किया। विभु के वंश में 'सत्राजित' तथा 'प्रसेन' ने जन्म पाया। विदर्भ के पुत्रों में 'युयुधान' तथा 'सात्यकी' अत्यन्त बलवान हुए। 'युयुधान' का पुत्र 'सुफलक' हुआ। सुफलक की 'गांदनी' नामक स्त्री के गर्भ से 'अक्रूर' आदि बारह बालकों का जन्म हुआ। वे सब वृष्णिवंशी कहलाये। यदु के वंश में 'अन्धक' नामक राजा अत्यन्त प्रतापी हुआ। अन्धक का पुत्र 'दुन्दुभी' हुआ। दुन्दुभी के 'आहुक' नामक पुत्र तथा 'आहुकी' नामक कन्या हुई। आहुक के 'देवक' तथा 'उग्रसेन' नामक दो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र हुए। देवक के 'देववान्' आदि चार पुत्र तथा 'देवकी' आदि सात पुत्रियों का जन्म हुआ। उग्रसेन के 'कंस' आदि आठ पुत्र तथा आठ पुत्रियाँ हुईं। वे सब पुत्रियाँ वसुदेव के छोटे भाई को ब्याही गई थीं। देवक ने अपनी देवकी आदि कन्याओं का विवाह 'वसुदेव' के साथ किया। पांचाल देश का राजा 'कुन्तिभोज' शूरसेन से बड़ा स्नेह रखता था। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः शूरसेन ने अपनी 'पृथा' नामक कन्या उसे गोद दे दी। इसीलिए 'पृथा' का नाम 'कुन्ती' हुआ। राजा कुन्तिभोज ने कुन्ती का विवाह 'राजा पाण्डु' के साथ कर दिया। उससे 'युधिष्ठिर' आदि पाण्डवों का जन्म हुआ। कुन्ती ने बाल्यावस्था में दुर्वासा ऋषि को अपनी सेवा से प्रसन्न किया था। तब ऋषि ने कुन्ती को देवाहुत नामक एक ऐसा मंत्र बताया था, जिसके पढ़ने पर देवता चले आते थे। अतः एक बार कौमार्यावस्था में ही कुन्ती ने उस मंत्र की परीक्षा लेने के लिए सरस्वती नदी के तट पर बैठकर सूर्य देवता का आह्वान किया। उस मंत्र के प्रताप से सूर्य देवता अपने रथ पर बैठकर उसी समय आ पहुँचे। उन्होंने कुन्ती से पूछा—"हे कुन्ती! तूने हमें क्यों बुलाया है?" उस समय कुन्ती ने उनके तेज को देखकर भयभीत होते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! मैंने तो मंत्र की परीक्षा लेने के लिए यों ही आपको बुलाया था अब कृपा करके आप वापिस चले जाइये।" यह सुनकर सूर्य ने उत्तर दिया—"हे कुन्ती! मेरा आना निष्फल नहीं जा सकता। मैं तेरे साथ भोग करके तुझे एक बालक दूँगा।" कुन्ती बोली—"हे प्रभो! अभी मेरा विवाह नहीं हुआ है, अतः कौमार्यावस्था में पुत्र होने से मेरी बड़ी निन्दा होगी।" तब सूर्य ने उसे समझाते हुए कहा—"हे कुन्ती! तू चिन्तित मत हो, तेरा कौमार्य ज्यों का त्यों स्थिर बना रहेगा।" यह कहकर सूर्य ने कुन्ती के साथ भोग किया। फिर वे अपने लोक को चले गये। श्री नारायणजी की इच्छा से उसी समय कुन्ती के कान से एक कुण्डल-कवचधारी अत्यन्त तेजस्वी तथा स्वरूपवान् बालक का जन्म हुआ। उसे देखकर कुन्ती आश्चर्य-चकित रह गई। तदुपरान्त कुन्ती ने उस बालक को एक सन्दूक में रखकर गंगा में बहा दिया। हे परीक्षित! उस बालक का नाम 'कर्ण' हुआ। उसी ने महाभारत के युद्ध में राजा दुर्योधन की सहायता की थी। कर्ण को तुम्हारे पितामह अर्जुन ने मारा था। अस्तु, हमने तुम्हें वसुदेव की बहिन पृथा की कथा सुनाई, अब उनकी अन्य चारों बहिनों का वृत्तान्त भी सुनो। दूसरी बहिन का नाम 'सत्यदेवी'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था। वह कारुषदेश के राजा 'धर्म' को ब्याही गई थी। उससे 'दन्तवक्र' आदि पुत्रों की उत्पत्ति हुई। तीसरी बहिन का नाम 'श्रुतिकीर्ति' था। उसका विवाह 'धृष्टकेतु' के साथ हुआ। उससे 'शत्रवन' आदि पुत्रों की उत्पत्ति हुई। चौथी बहिन का नाम 'राजदेवी' था। उसका विवाह अवन्तीपुरी के राजा 'जयसेन' के साथ हुआ था। पाँचवीं बहिन का नाम 'श्रुतिश्रवा' था। वह चन्देली के राजा 'दमघोष' को ब्याही गई थी। उसके गर्भ से 'शिशुपाल' का जन्म हुआ। देवक की सात कन्याओं के अतिरिक्त वसुदेव की ग्यारह पत्नियाँ और थीं। उन सबसे अनेक सन्तानें हुईं। देवकी के गर्भ से श्री वैकुण्ठनाथ भगवान् श्री कृष्णचन्द्र-जी का अवतार हुआ था। उनकी कथा हम दशम स्कन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। अब हम द्रौपदी के स्वयंवर का हाल संक्षेप में कहते हैं सुनो।

हे परीक्षित! जब अर्जुन स्वयम्वर में मत्स्य वेधकर द्रौपदी को ले आये, उस समय वे अपने सब भाइयों सहित कुन्ती के पास जाकर बोले—"हे माता! हम एक वस्तु लाये हैं।" कुन्ती ने उसे भोजन का कोई पदार्थ समझकर कह दिया—"तुम पाँचों भाई उसे आपस में बाँट लो।" अतः माता की आज्ञानुसार पाँचों भाइयों ने द्रौपदी को अपनी पत्नी स्वीकार किया। जब राजा द्रुपद को यह बात अच्छी न लगी, तब युधिष्ठिर ने उनसे यह कहा कि हम लोग अपनी माता की आज्ञा को नहीं टाल सकते हैं। उस समय राजा द्रुपद ने वेदव्यासजी से कहा—"हे प्रभो! द्रौपदी के विवाह सम्बन्धी मेरे प्रण को अर्जुन ने पूरा किया था, परन्तु अब द्रौपदी को पाँचों भाई अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में आप ही बताइये कि क्या होना उचित है?" यह सुनकर व्यासजी ने राजा द्रुपद को एकान्त में ले जाकर इस प्रकार कहा—"हे द्रुपद! हम तुम्हें द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो। एक समय देवताओं ने यह देखा कि गंगाजी में एक अत्यन्त सुन्दर कमल का पुष्प बहता चला जा रहा है। उसे देखकर इन्द्र ने कहा कि मैं इस पुष्प का पता लगाकर लाता हूँ कि यह कहाँ से आया है। तदुपरान्त जब इन्द्र उसका पता लगाते हुए उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ से गंगाजी का जल प्रकट होता है, तो उसने यह देखा कि वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री खड़ी हुई रो रही है। उसकी आँखों से जो आँसू गिरते हैं, वे कमल के पुष्प बनकर जल में प्रवाहित हो जाते हैं। यह आश्चर्य देखकर इन्द्र ने उस स्त्री से पूछा—"हे सुन्दरी! तू कौन है?" तब उस स्त्री ने उत्तर दिया—"मैं एक स्थान पर चलती हूँ, तुम भी वहाँ चलो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो तुम्हें मेरा हाल मालूम हो जायगा।" यह सुनकर इन्द्र उस स्त्री के पीछे-पीछे एक पर्वत पर चढ़ गया। वहाँ पहुँचकर इन्द्र ने यह देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री-पुरुष रत्न-जटित सिंहासन पर बैठे हुए परस्पर कुछ खेल रहे हैं। इन्द्र को देखकर भी उस पुरुष ने उसका कोई सम्मान नहीं किया। उस समय इन्द्र ने गर्व में भरकर अपने मन में यह कहा कि देखो, मैं सब देवताओं का राजा हूँ, तो भी इस पुरुष ने मेरा कोई आदर नहीं किया है। इन्द्र के मन की दशा जानकर, उस अन्तर्यामी पुरुष ने, जो साक्षात् श्री शङ्करजी थे, थोड़ा-सा हँस दिये। उस हँसी को देखते ही इन्द्र भय के मारे काँपने लगा। तब शिवजी ने इन्द्र से इस प्रकार कहा—"हे इन्द्र! यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि अब मैं कभी अभिमान नहीं करूँगा, तो तुम्हारे प्राण बच जायँगे अन्यथा नहीं बचेंगे।" यह सुनकर इन्द्र ने भयभीत होकर प्रतिज्ञा कर ली। उस समय श्री शङ्करजी सिंहासन से उतरकर, इन्द्र को साथ लेकर पर्वत की कन्दरा में चले गये। वहाँ इन्द्र ने यह देखा कि उस स्थान पर इन्द्र के स्वरूपवाले चार पुरुष और बैठे हुए हैं। उन्हें देखकर इन्द्र अत्यन्त भयभीत होकर मौन खड़ा रहा। तब श्री शिवजी ने इन्द्र से इस प्रकार कहा—"हे इन्द्र! तेरे समान ही इन चारों ने भी अहङ्कार किया था, इसीलिए ये इस कन्दरा में बन्द हैं। अब मैं यह चाहता हूँ कि तुम इन चारों के साथ संसार में जन्म लो।" शिवजी के मुख से यह वचन निकलते ही वे चारों उनके चरणों पर गिरकर अत्यन्त विलाप करने लगे। तब श्री शिवजी ने इस प्रकार कहा कि तुम लोग संसार में जन्म लेकर शुभ कर्म करोगे तथा तुम्हारे हाथों से युद्ध में बहुत से शूर-वीर मारे जायँगे। यह सुनकर उन लोगों ने प्रार्थना करते हुए कहा—"हे महा-प्रभु! आपकी आज्ञानुसार हमारा जन्म मर्त्यलोक में तो होगा ही, परन्तु आप ऐसी कृपा कीजिए, जिससे हम देवताओं के वीर्य द्वारा मनुष्य का शरीर प्राप्त करें।" यह सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त उन पाँचों ने धर्मराज, पवन, इन्द्र तथा अश्विनीकुमार के वीर्य से युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल, सहदेव का जन्म पाया। इन्द्र जिस स्त्री के साथ पर्वत पर गया था, उस मायारूपिणी स्त्री से शिवजी ने यह कहा कि तू भी मनुष्य-शरीर धारण करके इन पाँचों की पत्नी होगी। हे राजन्! वही स्त्री तेरे घर में 'द्रौपदी' नाम से जन्मी है तथा उन पाँचों इन्द्रों ने राजा पाण्डु के घर जन्म लिया है। अतः तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर।" व्यासजी के मुख से यह वृत्तान्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनकर राजा द्रुपद का मोह नष्ट हो गया। हे परीक्षित! इस कथा के सम्बन्ध में किसी-किसी ऋषि का यह कहना है कि एक बार द्रौपदी ने श्री शिवजी का तप किया था। जब शिवजी ने प्रकट होकर उसे वरदान माँगने के लिए कहा, उस समय उसने अपने मुख से पाँच बार पति, पति कहा। तब शिवजी ने उसे यह वरदान दिया कि तूने अपने मुख से पाँच बार पति शब्द कहा है, अतः तू पाँच मनुष्यों की पत्नी होगी। शिवजी के ऐसे वचन सुनकर द्रौपदी ने प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभु! मैंने पाँच पति प्राप्त होने के लिए तप नहीं किया था।" इस पर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे द्रौपद्री! मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता। परन्तु तू धैर्य रख, तेरे पाँचों पति परस्पर कलह नहीं करेंगे। तेरे भाग्य में यही लिखा था।" हे राजन्! किसी-किसी महा-पुरुष ने यह कहा कि मार्ग में एक गौ के पीछे पाँच साँड़ दौड़ते हुए चले जा रहे थे। उन्हें देखकर द्रौपदी हँसने लगी। तब उस गौ ने द्रौपदी को यह शाप दिया कि तू मुझे देखकर हँसी है, इसलिए तू भी पाँच पुरुषों की पत्नी होगी। इस कारण से द्रौपदी को पाँच पति प्राप्त हुए थे।"

नवम स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

दशम स्कन्ध

श्री कृष्णावतार की लीलाएँ

वन्दना

न इस तरह दर्द को उठाओ, कि साधना डगमगाय मेरी !
न इस तरह दृष्टि को हटाओ, कि वन्दना तिलमिलाय मेरी !!
न आज की बात है, युगों से—उठाया है शीश पर गगन को;
न आज की रात है, युगों से—बुलाया है चाँद की किरन को;
परन्तु कब लक्ष्य पा सका मैं, चला जहाँ से, वहीं खड़ा हूँ—
न इस तरह रूप को छिपाओ, कि अर्चना छटपटाय मेरी !
दिशाएँ प्राचीर-सी खड़ी हैं, बना है सम्पूर्ण विश्व कारा;
कहो कि अब कौन द्वार से आ—मुझे मिलेगा दरश तुम्हारा ?
लिए हैं अब तक जनम हजारों, परन्तु पाया नहीं तुम्हें है—
न इस तरह और दिल दुखाओ, कि भावना चोट खाय मेरी !
सुना है—तुम गीत में छिपे हो, इसीलिए गा रहा हूँ उनको;
सुना है—तुम प्रीति में बसे हो, इसीलिए पा रहा हूँ उसको;
रमे हो तुम सब जगह, इसीसे-सभी को अपना रहा हूँ बढ़कर,
न इस तरह अन्यथा दिखाओ कि कल्पना टूट जाय मेरी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

राजा परीक्षित का श्रीकृष्णावतार की कथा पूछना

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध तक की कथा सुनने के उपरान्त जब राजा परीक्षित को ज्ञान उत्पन्न हुआ तथा उसे अपने मुक्त होने का मार्ग दिखाई देने लगा, उस समय उसने श्री शुकदेवजी से हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आपने उन सभी सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं एवं ऋषि-मुनियों की कथा मुझे सुनाई, जिन्होंने श्रीहरि के चरणों में अपना ध्यान लगाकर वैकुण्ठ लोक को प्राप्त किया है। श्री नारायणजी के लीला-चरित्रों की महिमा सुनकर मेरे हृदय को बोध प्राप्त हुआ है। हे शुकदेवजी ! अब मैं यदुवंशियों की कथा सुनना चाहता हूँ, जिनके कुल में भगवान् वैकुण्ठनाथ आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज ने जन्म लेकर, संसारी लोगों को मुक्ति-मार्ग दिखाने तथा हरि-भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए विविध प्रकार की लीलाएँ की थीं। हे मुनिनाथ ! आपने मुझे यह बताया है कि परब्रह्म निरङ्कार प्रभु सदैव एक-रस रहते हैं, और वे जन्ममरण से रहित हैं। फिर उन्होंने देवकी के गर्भ से किस प्रकार जन्म लिया, यही सन्देह मेरे मन में उत्पन्न हुआ है। उसे आप अपनी कृपा द्वारा दूर कर दीजिए। हे स्वामी ! आपने यह भी बताया है कि श्री बलभद्रजी ने देवकी के गर्भ में वास किया था। फिर रोहिणी को उनकी माता क्यों कहा जाता है ? यह भी आप मुझे विस्तारपूर्वक बताने की कृपा करें। इस कथा को सुनकर मुझमें निरन्तर प्रीति बढ़ती चली जा रही है। आप जो श्रीहरि की कथा सुना रहे हैं, सो ऐसा लगता है मानो प्यासे को अमृत पिला रहे हों। मेरे पुरुषाओं ने श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से दुर्योधन, कर्ण आदि महारथियों को मारकर राजसिंहासन प्राप्त किया था। जिस समय द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने क्रोध करके मेरे प्राण लेने के लिए ब्रह्मास्त्र चलाया था, उस समय माता के गर्भ में भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने ही मेरी रक्षा की थी। अतः आप अब हमारे सहायक तथा कुल पूज्य, तीनों लोकों की उत्पत्ति एवं स्थिति करनेवाले अविनाशी पुरुष आनन्दकन्द श्री कृष्ण-चन्द्रजी की कथा सुनाइये।"

दोहा—यह सुनकर शुकदेव ने कहा नृपति हो धन्य।
यादवेन्द्र के चरण में तेरी प्रीति अनन्य॥

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! तुमने भगवान् श्री मुरलीमनोहर की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पूछकर हमें अत्यन्त सुख दिया है। अब हम तुझे श्री कृष्णचन्द्रजी का विमल चरित्र सुनायेंगे। परन्तु हे परीक्षित! तुमने कई दिनों से अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है, इसलिए तुम्हारा चित्त ठिकाने पर न होगा, सो तुम सावधान होकर इस कथा को सुनो।" परीक्षित ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! आपने नवम स्कन्ध की जो अमृतरूपी कथा मुझे सुनाई है, उसे कानों की राह पीने से मेरा पेट भर गया है। अब मुझे क्षुधा-तृषा कुछ भी शेष नहीं रह गई है।" यह सुनकर श्री शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने श्री नारायणजी के चरण-कमलों में ध्यान लगाकर उन्हें दण्डवत् किया। तत्पश्चात् छठवें दिन सोमवार को दशम स्कन्ध की कथा आरम्भ करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे राजन्! द्वापर युग के अन्त में 'भजमान' यदुवंशी के वंश में 'शूरसेन' नामक प्रतापी राजा हुआ। उस राजा की 'मरिष्या' नामक पत्नी के गर्भ से पाँच कन्याएँ तथा 'वसुदेव' आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। उसके बड़े पुत्र वसुदेव ने अपना पहिला विवाह 'रोहिणी' नामक राजा की पुत्री 'रोहिणी' से किया था। वसुदेव को सत्रह रानियाँ थीं। जब उन्होंने 'देवक' की पुत्री तथा कंस की चचेरी बहिन 'देवकी' के साथ अठारहवाँ विवाह किया, तब यह आकाशवाणी हुई कि देवकी के गर्भ से जन्म लेने-वाला आठवाँ बालक राजा कंस को मारेगा। यह सुनकर कंस ने वसुदेव तथा देवकी को कैद कर लिया। तत्पश्चात् देवकी के गर्भ से परब्रह्म प्रभु श्री कृष्णजी ने अवतार लिया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! कंस का जन्म किस प्रकार हुआ तथा श्री कृष्णचन्द्रजी मथुरा में जन्म लेकर गोकुल में किस प्रकार पहुँचे। वह सब वृत्तान्त आप विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! उन दिनों 'आहुक' नामक यदुवंशी राजा मथुरा का राज्य करता था। उसके 'देवक' तथा 'उग्रसेन' नामक दो पुत्र हुए। जब उसकी मृत्यु हो गई, तब उसका बड़ा पुत्र उग्रसेन राजगद्दी का स्वामी हुआ। एक समय राजा उग्रसेन की 'पवनरेखा' नामक रानी ऋतु-स्नान से शुद्ध होकर तथा अपने पति की आज्ञा लेकर, सहेलियों सहित वन-विहार करने के लिए गई। वहाँ चारों ओर उत्तम फल-फूल लग रहे थे तथा विविध प्रकार के पक्षी सुहावनी बोली बोल रहे थे। उस शोभा को देखकर पवनरेखा रथ से उतरकर वन में घूमने लगी। कुछ समय बाद वह सखियों से अलग हट-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर जङ्गल के एक घने भाग में अकेली जा पहुँची। तभी श्री नारायणजी की इच्छा से वहाँ 'द्रुमलिक' नामक एक राक्षस आ गया। उस राक्षस ने पवनरेखा के स्वरूप पर मोहित होकर उससे भोग करने की इच्छा से अपना स्वरूप राजा उग्रसेन के समान बना लिया तथा उसके पास पहुँचकर भोग करने की इच्छा प्रकट करने लगा। उस समय रानी उसके भेद को न पहिचान कर उसे अपना पति समझती हुई, धर्म का विचार करके इस प्रकार कहने लगी—"हे राजन्! दिन में भोग करने से लज्जा तथा धर्म का नाश होकर पाप बढ़ता है। अतः आप दिन में भोग न करें।" इस प्रकार पवनरेखा ने बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु उस कामी राक्षस ने पवनरेखा का हाथ पकड़कर उसे जबर्दस्ती पृथ्वी पर गिरा दिया और भोग किया। उस समय रानी पवनरेखा उसे अपना पति समझकर चुप बनी रही।

हे परीक्षित! भोग करने के पश्चात् जब द्रुमलिक अपने वास्तविक रूप में रानी के सामने खड़ा हुआ, उस समय पवनरेखा अत्यन्त लज्जित तथा क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहने लगी—"अरे अधर्मी राक्षस! तूने छल द्वारा मेरा धर्म नष्ट किया है। तेरे माता-पिता तथा गुरु को धिक्कार है। जो लोग मनुष्य का शरीर पाकर किसी का धर्म नष्ट करते हैं, उन्हें नरक भोगना पड़ता है।" रानी के ऐसे वचन सुनकर द्रुमलिक ने उत्तर दिया—"हे रानी! तू क्रोध करके मुझे शाप मत दे। तेरी कोख बन्द देखकर मुझे बहुत चिन्ता थी। अतः मैंने अपने धर्म का फल तुझे दिया। मेरे भोग करने के कारण तेरे गर्भ से एक अत्यन्त प्रतापी बालक का जन्म होगा। वह अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतकर एक छत्र राज्य करेगा। जब स्वयं श्री नारायणजी अवतार लेकर उससे लड़ेंगे, तब वह मारा जायगा। हे पवनरेखा! मैं पूर्व जन्म में 'कालनेमि' नामक राक्षस था। तब मेरी मृत्यु हनुमान्जी के हाथों से हुई थी। अब इस जन्म में द्रुमलिक का जन्म लेकर मैंने तुझे पुत्र प्रदान किया है, तू चिन्ता मत कर।" इतना कहकर द्रुमलिक अपने घर चला गया। तब रानी पवनरेखा ने भी श्री नारायणजी की ऐसी ही इच्छा जानकर धैर्य धारण किया। कुछ देर बाद जब उसकी सहेलियाँ पास आईं और उन्होंने पवनरेखा के बिगड़े हुए शृङ्गार का हाल पूछा तो पवनरेखा ने उन्हें यह कहकर समझा दिया कि हे सखियो! तुमसे छूट जाने पर एक वानर ने मुझे बहुत सताया, उसके कारण मैं अभी तक भय से काँप रही हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सुनकर सहेलियाँ पवनरेखा को रथ पर बैठाकर राजमन्दिर में ले आईं। हे परीक्षित ! दस महीने बाद जब पवनरेखा ने पुत्र को जन्म दिया, उस समय पृथ्वी काँपने लगी, वृक्ष टूट कर गिरने लगे, बादल गरज उठे तथा बिजली चमकने लगी। दिन का समय रात्रि के समान हो गया। राजा उग्रसेन ने पुत्र-जन्म की खुशी में ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत दान दिया। जब उसने ज्योतिषियों से बालक की जन्म-कुण्डली का फल पूछा तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि हे राजा ! आप अपने पुत्र का नाम 'कंस' रक्खें। यह बालक अत्यन्त प्रतापी तथा तेजस्वी होगा। यह राक्षसों को साथ लेकर राज्य करेगा तथा इसके हाथ से देवता, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण एवं साधु-सन्त बहुत दुःख पावेंगे। यह तुम्हारा राजसिंहासन छीन कर प्रजा को बहुत कष्ट पहुँचायेगा। जब इसके अधर्म से पृथ्वी घबड़ा जायगी, तब भगवान् त्रिलोकीनाथ अवतार लेकर इसे अपने हाथों से मारेंगे। पण्डितों के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा उग्रसेन पहिले तो बहुत चिन्तित हुए, फिर श्री नारायणजी की ऐसी ही इच्छा जानकर हृदय में धैर्य धारण किया।

हे परीक्षित ! जब वह बालक पाँच वर्ष का हुआ, तब प्रजा को अपने उपद्रवों द्वारा बहुत कष्ट पहुँचाने लगा। वह मथुरा के अन्य बालकों को जबर्दस्ती पकड़कर यमुना नदी में स्नान करने के लिए ले जाता और वहाँ पानी में डुबा कर मार डालता था। यह गति देखकर लोग अपने बालकों को छिपाकर घर में रखने लगे। सब प्रजा अत्यन्त दुखी होकर इस प्रकार कहती थी कि यह दुष्ट कंस उग्रसेन के वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। यह कोई पूर्व जन्म का महापापी है, जो ऐसे धर्मात्मा राजा के घर में जन्म लेकर प्रजा को कष्ट दे रहा है। अस्तु, प्रजा के दुःख को देखकर एक बार राजा उग्रसेन ने कंस को बहुत समझाया, परन्तु वह उनकी सीख पर कोई ध्यान न देकर और अधिक उपद्रव करने लगा। यह दशा देखकर राजा उग्रसेन अपने मन में अत्यन्त पछताने लगे। जब कंस आठ वर्ष का हुआ, तब उसने मगध देश में अकेले पहुँच कर वहाँ के राजा जरासंध से कुश्ती लड़ी। वहाँ जरासंध ने हार मानकर अपनी दो पुत्रियों का विवाह कंस के साथ कर दिया। तब कंस अपनी दोनों पत्नियों को साथ लेकर मथुरा लौट आया तथा राजा उग्रसेन से इस प्रकार कहने लगा कि तुम श्री नारायणजी का नाम जपना त्याग कर श्री शिवजी के नाम का स्मरण किया करो। जब राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने यह उत्तर दिया कि श्री नारायणजी मेरे इष्टदेव हैं। उनका ध्यान छोड़ देने पर मैं भवसागर से पार कैसे उतर सकूँगा—तब कंस ने क्रुद्ध होकर उनका सिंहासन छीन लिया और स्वयं राजा बनकर अपने राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि हमारे राज्य में कोई व्यक्ति नारायणजी का नाम न ले तथा उनके नाम पर कोई यज्ञ, तप, दान, जप, हवन आदि कर्म न किये जायँ। जो व्यक्ति इस आज्ञा को नहीं मानेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। कंस की इस आज्ञा से सब जगह शुभ कर्म होने बन्द हो गये। तब वह राक्षसों की सम्मति से हरिभक्तों को दुःख पहुँचाता हुआ राज्य करने लगा। एक समय कंस अपनी सेना को साथ लेकर इन्द्र से युद्ध करने के लिए चला। उस समय एक मन्त्री ने जो उग्रसेन के समय से चला आ रहा था, उसे समझाते हुए यह कहा—"हे राजन्! सौ अश्वमेध यज्ञ किये बिना इन्द्रासन की प्राप्ति नहीं होती। रावण तथा कुम्भकर्ण जैसे बलवान् भी अपने अहङ्कार के कारण मारे गये। अतः आप बल का घमण्ड मत कीजिए।" यह सुनकर कंस ने इन्द्र से युद्ध करने का विचार त्याग दिया।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! राजा कंस के भय से जब लोगों ने धर्म-कर्म करना छोड़ दिया, उस समय पृथ्वी ने गौ का रूप धारण कर इन्द्र के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे देवराज! कंस के अधर्म के कारण संसारी लोगों ने हरि-भजन, जप, तप आदि शुभ कर्म करना त्याग दिया है। अतः ऐसी स्थिति में आप आज्ञा दें तो मैं मर्त्यलोक को त्याग कर पाताल में चली जाऊँ।" यह सुनकर इन्द्र सब देवताओं-सहित पृथ्वी का साथ लेकर ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर शिवजी के पास इस इच्छा से चले कि शिवजी राक्षसों का दण्ड देने योग्य हैं। अतः वे उन्हें मारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे। तब शिवजी ने उनकी यह इच्छा जानकर इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा! पृथ्वी का भार उतारने की सामर्थ्य मुझमें अथवा तुममें नहीं है। इसका दुःख तो श्री नारायणजी ही दूर कर सकते हैं। अतः उन्हीं के पास चलो।" यह सुनकर ब्रह्मा आदि सब देवता क्षीर-समुद्र के तट पर पहुँचकर इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! आपने मत्स्य-रूप धारणकर शंखासुर दैत्य का संहार किया तथा वेद को समुद्र से बाहर निकाला। कच्छ-रूप धारण कर मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर स्थित किया तथा क्षीर-सागर से चौदह रत्न प्रकट किये। वाराह-रूप धर कर पृथ्वी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को पाताल से निकाला। वामन-रूप धर कर राजा बलि से पृथ्वी का दान लिया। परशुराम-रूप धारण कर क्षत्रियों का संहार किया तथा ब्रह्मणों को पृथ्वी दान कर दी। रामावतार में आपने रावण आदि राक्षसों को मार कर हरि-भक्तों को सुख पहुँचाया। हे नाथ! जब दैत्य तथा अधर्मी राजा ब्राह्मणों, गौ तथा हरि-भक्तों को दुःख देते हैं, तब आप सगुण अवतार लेकर पृथ्वी का दुःख दूर करते हैं। हे प्रभु! इन दिनों कंस के पाप से पृथ्वी के सभी जीव दुखी हो रहे हैं, अतः आप दया करके अवतार ग्रहण कीजिए तथा अपने भक्तों का दुःख मिटाइये।" जब देवताओं ने इस प्रकार स्तुति की, तब यह आकाशवाणी हुई—"हे ब्रह्मादि देवताओ! हम पृथ्वी का दुःख दूर करने के लिए सगुण अवतार ग्रहण करेंगे। यद्यपि हमें जन्म-मरण से कोई प्रयोजन नहीं है, परन्तु पूर्वजन्म में वसुदेव-देवकी ने तप करके हमसे ऐसा वरदान माँगा था कि हम उनके पुत्र हों। इसी प्रकार 'नन्द' तथा 'यशोदा' ने भी तप करके यह वर माँगा था कि वे हमारी बाललीला का सुख देखें। अतः हम उन दोनों की इच्छा पूर्ण करने के लिए वसुदेव-देवकी के यहाँ मथुरा में जन्म लेंगे तथा वहाँ से गोकुल में पहुँचकर नन्द-यशोदा को बाललीला दिखावेंगे। तदनन्तर कंस आदि अधर्मी राजाओं को मारकर अपने भक्तों को सुख देंगे। अब तुम सब देवी तथा देवता व्रज में पहिले से जाकर, हमारे बाल-चरित्रों को देखने के लिए यदुवंश तथा ग्वालवंश में जन्म लो। पीछे से हम भी अपने चार स्वरूप धर कर अवतार लेंगे।"

हे परीक्षित! इस आकाशवाणी को सुनकर सब देवता प्रसन्न होकर अपने घर लौट आये तथा पृथ्वी भी अपने स्थान को चली गई। श्री नारायणजी के आज्ञानुसार सब देवता, मुनि, किन्नर तथा गन्धर्व आदि ने अपनी-अपनी स्त्रियों-सहित व्रज में जन्म लिया। वे मथुरा तथा वृन्दावन आदि में यदुवंशी तथा ग्वालबाल कहलाये। ब्रह्माजी की आज्ञा से चारों वेदों की ऋचाओं ने भी गोपी बनकर जन्म लिया। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अब हम देवकी के विवाह का वृत्तान्त कहते हैं, सुनो। उग्रसेन के भाई देवक के छः कन्याएँ तथा चार पुत्र थे। उसने अपनी सभी कन्याओं का विवाह वसुदेवजी के साथ कर दिया था। जब उनके यहाँ देवकी नामक सातवीं पुत्री उत्पन्न हुई, तब देवताओं ने बहुत आनन्द मनाया। राजा उग्रसेन के यहाँ 'कंस' आदिक दस पुत्रों का जन्म हुआ। अस्तु, जब देवकी विवाह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने योग्य हुई तब देवक ने राजा कंस से आज्ञा लेकर उसका विवाह भी बड़ी धूम-धाम के साथ वसुदेवजी के साथ किया। जिस समय वसुदेवजी ब्याह करने के लिए आये, उस समय कंस ने अपने पिता तथा चाचा के साथ सम्पूर्ण सेना को साथ लेकर उनकी अगवानी की तथा हर प्रकार से आदर-सत्कार किया। देवक ने वसुदेवजी को पन्द्रह सहस्र घोड़े, चार सहस्र हाथी, अठारह सौ रथ, दो सौ दास-दासी, बहुत से वस्त्राभूषण, द्रव्य आदि दहेज में देकर, बरातियों-सहित सम्मानपूर्वक बिदा किया।

दोहा—रथ चढ़ाइ देवकी को, चल्यो कंस हरषाय।
मन महँ भारी गर्व है, सो कछु कह्यो न जाय॥

जब कंस स्वयं रथवान् बनकर वसुदेव-देवकी को मथुरा से कुछ दूर बाहर निकाल लाया, तब यह आकाशवाणी हुई कि हे कंस! तू जिस देवकी को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक पहुँचाने जा रहा है, उसके गर्भ से जन्म लेनेवाले आठवें बालक के हाथों तेरी मृत्यु होगी। यह सुनकर कंस भयभीत होकर काँपने लगा। फिर उसने विचार किया कि अपने प्राणों से अधिक प्यारा कोई दूसरा नहीं होता अतः मुझे देवकी को अभी मार डालना चाहिए। जब यही नहीं रहेगी, तब इसके गर्भ से बालक कैसे उत्पन्न होगा। यह निश्चय करके कंस ने रथ के भीतर बैठी हुई देवकी के मस्तक के बाल पकड़कर नीचे उतार लिया तथा तलवार द्वारा उसका शीश काटने की इच्छा करके, क्रोध में दाँत पीसता हुआ इस प्रकार बोला—"हे देवकी! जिस वृक्ष में विष के समान फल लगें, उस वृक्ष को फल लगने से पहले ही जड़ से काट देना चाहिए। अतः अब मैं तुझे मार कर निर्भय होकर राज्य करूँगा।" यह दशा देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग भय से काँपने लगे। उस समय वसुदेवजी ने अपने मन में विचार किया कि इस अज्ञानी कंस को पाप-पुण्य का कोई विचार नहीं है। इस समय यदि मैं क्रोध करता हूँ, तो देवकी के प्राण चले जायँगे। इसलिए क्षमा करके अवसर बचा देना चाहिए। जिस प्रकार ठण्ढा लोहा गर्म लोहे को काटता है, उसी प्रकार क्षमाशील पुरुष अपने शत्रु को जीत लेते हैं। यह सोचकर वसुदेवजी ने राजा कंस से हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे राजन्! संसार में आपके समान प्रतापी तथा बलवान् अन्य कोई नहीं है। सब लोग आपकी छाया में रहते हैं। अतः आपको शूर-वीर होते हुए एक स्त्री का वध करना अनुचित है। स्त्री-वध करनेवाले नरक में पड़ते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस संसार में जो जन्मा है, वह एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य प्राप्त होता है। अपने शरीर के लिए चाहे जितने उपाय किये जायँ, परन्तु वह सदैव स्थित नहीं रहता। संसार में केवल यश-अपयश ही स्थिर रहते हैं।"

दोहा—राजन् या संसार में, यश अपयश रहि जाय।
धन, दौलत, पुरुषार्थ सब, साथ न कोई जाय॥

वसुदेवजी के ऐसे वचन सुनकर कंस ने कहा—"हे वसुदेव! आकाशवाणी तो तुमने भी सुनी है, अब तुम्हीं बताओ कि उसका क्या उपाय करूँ? तुम मुझे देवकी को मार लेने दो, इसके बदले मैं तुम्हारा विवाह किसी दूसरी कन्या से कर दूँगा; क्योंकि जब तक यह नहीं मरेगी, तब तक मेरी चिन्ता दूर नहीं होगी।" कंस के ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणों तथा ऋषियों ने इस प्रकार कहा—"हे राजन्! वेद-शास्त्रों में बहिन का मारना बहुत बड़ा पाप कहा गया है, अतः तुम्हें यह पाप नहीं करना चाहिए।" जब कंस ने उनकी बात भी नहीं मानी, तब वसुदेव ने यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे देवकी के प्राण बच सकें। तब कुछ सोचने के उपरान्त वसुदेव ने कंस से कहा—"हे राजन्! आप मेरी एक प्रार्थना सुनें। आकाशवाणी के अनुसार देवकी के गर्भ से उत्पन्न आठवाँ बालक आपका शत्रु होगा। देवकी से आपको काई भय नहीं है, इसलिए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, उसे मैं आपके पास पहुँचा दूँगा।" वसुदेव की यह बात स्वीकार करके कंस ने देवकी को छोड़ते हुए इस प्रकार कहा—"हे वसुदेव! तुमने मुझे अपराध करने से बचा लिया। अब तुम अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण रख कर, आनन्दपूर्वक अपने घर चले जाओ।" तत्पश्चात् वसुदेव-देवकी अपने घर चले गये। कंस भी अपने राजभवन में लौट आया। कुछ समय बाद देवकी के गर्भ से एक बालक ने जन्म लिया तो वसुदेव ने उस रोते हुए बालक को कंस के सामने लाकर रख दिया। उस समय कंस ने हँसते हुए इस प्रकार कहा—"हे वसुदेव! तुम वास्तव में सच्चे हो, जो अपने पुत्र का मोह त्यागकर इस बालक को मेरे पास ले आये हो; परन्तु मुझे इस बालक से कोई भय नहीं है। अतः तुम इसे अपने घर ले जाओ।" यह सुनकर वसुदेव उस बालक को लेकर अपने घर लौट आये।

हे परीक्षित! श्री नारायणजी की इच्छा से उसी समय नारदजी राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कंस के पास जा पहुँचे। कंस ने सम्मानपूर्वक बैठाकर उनके चरण धोये तथा पूजन किया। उस समय नारदजी ने कंस से इस प्रकार कहा—"हे राजन्! तूने वसुदेव के बालक को लौटा क्यों दिया? क्या तू यह नहीं जानता कि वासुदेव की सेवा करने के लिए सब देवताओं एवं ऋषियों ने मथुरा तथा गोकुल में जन्म लिया है? देवकी के आठवें गर्भ से श्री कृष्णचन्द्रजी अवतार लेकर तुझे अन्य राक्षसों-सहित मार कर पृथ्वी का भार उतारेंगे। तेरे पिता आदि सभी यदुवंशी देवताओं के अवतार हैं। ये सब तेरे शत्रु हैं, तू इन्हें अपना मित्र मत समझ।" इतना कहकर नारदजी ने पृथ्वी पर आठ रेखाएँ खींच दीं तथा उन्हें कंस को दिखाते हुए गिनवाया तो दोनों ओर से प्रत्येक रेखा अन्तिम तथा आठवीं सिद्ध हुई। उस समय नारदजी ने कंस को इस प्रकार फिर समझाया—"हे राजन्! जिस प्रकार इनमें से कोई भी रेखा आठवीं हो सकती है, उसी प्रकार तुझे भी यह नहीं मालूम है कि देवकी के आठों पुत्रों में से किस पुत्र द्वारा तेरी मृत्यु होगी। अब तू जो उचित समझ, वह कर।" इतना कहकर जब नारदजी चले गये, तो कंस ने उसी समय वसुदेवजी को उस बालक-सहित फिर बुलवा लिया। तदनन्तर कंस ने उस बालक को तो पृथ्वी पर पटक कर मार डाला तथा वसुदेव और देवकी को कैद करके बन्दीगृह में डाल दिया। अपने माता-पिता द्वारा समझाये जाने पर कंस ने उन्हें उत्तर दिया कि मैं देवकी के सभी पुत्रों को अवश्य मारूँगा। तत्पश्चात् उसने अपने पिता उग्रसेन को भी वसुदेव-देवकी का सहायक तथा अपना शत्रु समझकर बन्दीगृह में डाल दिया। फिर उसने प्रलम्ब, बकासुर, केशी तथा अघासुर आदि राक्षसों को बुलाकर यह आज्ञा दी—"हे साथियो! नारदजी के कथनानुसार सभी देवताओं तथा ऋषियों ने मथुरा एवं गोकुल में जन्म लिया है। उन्हीं लोगों के बीच कृष्ण का भी अवतार होगा। अतः मथुरा तथा गोकुल में जितने भी यादववंशी मिलें, तुम उन सबको मार डालो।"

दूसरा अध्याय

श्री कृष्णजी का देवकी के गर्भ में निवास

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! इस प्रकार देवकी के गर्भ से पाँच पुत्र और उत्पन्न हुए, उन सबको वसुदेवजी ने अपनी प्रतिज्ञानुसार कंस के पास पहुँचा दिया तथा कंस ने उन सबको मार डाला। कंस की आज्ञा पाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलम्ब, वकासुर आदि राक्षसों ने मथुरा में जितने भी यदुवंशियों को खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते तथा चलते-फिरते पाया, उन सबको बाँधकर कंस के पास पहुँचा दिया। तब कंस ने किसी को पानी में डुबाकर, किसी को अग्नि में जलाकर तथा किसी को गला दबाकर मार डाला। जो यदुवंशी बचे, वे मथुरा छोड़कर अपने परिवार-सहित पांचाल आदि देशों में जाकर रहने लगे। वसुदेवजी ने अपनी पत्नी 'रोहिणी' को अपने मित्र नन्दजी के यहाँ गोकुल में भेजवा दिया। नन्द ने उसे बड़े सम्मान-सहित अपने घर में रक्खा।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! नारदजी तो बड़े ज्ञानी तथा हरि-भक्त हैं। उन्होंने कंस को ऐसी सम्मति देकर वसुदेवजी के पुत्रों तथा अन्य यदुवंशियों का संहार क्यों कराया?" शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! नारदजी ने ऐसा इसलिए कराया था, ताकि अधर्म करने के कारण कंस के पूर्वजन्म के पुण्य क्षीण हो जायँ तथा श्री कृष्णजी जल्दी अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारें। अतः हे राजन्! जब कंस ने यदुवंश में जन्म लेनेवाले देवताओं तथा ऋषियों को बहुत दुःख पहुँचाकर वसुदेव के छः पुत्रों को मार डाला, उस समय वसुदेव तथा देवकी ने श्री नारायणजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा कि हे प्रभो! कंस हमारे वंश को समाप्त किये दे रहा है, अतः आप इस कष्ट से हमारा शीघ्र उद्धार करें।

दोहा—तुम बिन अब कोई नहीं, अपना रहा सहाय।
कृपा करहु जन जानि निज, भवभंजन सुरराय॥

इस प्रकार जब वसुदेव-देवकी ने अत्यन्त विलाप किया, उस समय श्री नारायणजी ने दयालु होकर यह विचार किया—"देवता तथा ऋषि-मुनि तो जन्म ले चुके। अब हमें भी चार रूप धरकर व्रज में जन्म लेना चाहिए। सबसे पहिले लक्ष्मण 'बलभद्र' के नाम से जन्म लें; फिर हम 'वासुदेव' बनकर जन्में। तदुपरान्त भरत 'प्रद्युम्न' नाम से, शत्रुघ्न 'अनिरुद्ध' नाम से एवं सीता 'रुक्मिणी' नाम से संसार में जन्म लें। ऐसा निश्चय करके उन्होंने बलभद्रजी को देवकी के गर्भ में स्थित कर दिया। फिर जब उन्होंने अपने नेत्रों से देवीस्वरूपा योगमाया को प्रकट किया और वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी हुई, तब श्रीहरि ने उसे यह आज्ञा दी कि तुम मथुरापुरी में जाकर देवकी के गर्भ में जो बलभद्रजी हैं, उन्हें वहाँ से निकालकर रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दो। यह भेद किसी दुष्ट को ज्ञात न होने पावे। यह कार्य करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर तू कलियुग में 'दुर्गा' के नाम से प्रसिद्ध होगी। और संसारी जीव तेरा ध्यान धरकर अपना मनोरथ प्राप्त करेंगे। संसार में बलभद्रजी के 'संकर्षण' आदि अनेक नाम होंगे तथा तू भी अनेक नामों को प्राप्त करेगी। इस कार्य को करने के पश्चात् तू स्वयं यशोदा के गर्भ से जन्म लेना। हम भी देवकी के गर्भ से जन्म लेकर गोकुल में पहुँच जायँगे।"

हे परीक्षित! यह आज्ञा पाकर योगमाया ने श्री नारायणजी की परिक्रमा की। तत्पश्चात् वह उन्हें दण्डवत् करके मोहिनीरूप से मथुरा में आ पहुँची। वहाँ उसने बलभद्रजी को गर्भ से निकाल कर रोहिणी के पेट में पहुँचा दिया। रोहिणी को इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चला। फिर योगमाया ने वसुदेव तथा देवकी को यह स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारे गर्भ से बालक को निकालकर रोहिणी के पेट में पहुँचा दिया है। अतः तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। इस स्वप्न को देखकर वसुदेव-देवकी जग पड़े तथा परस्पर विचार करते हुए यह कहने लगे कि श्री नारायणजी ने यह बहुत अच्छा कार्य किया, परन्तु हमें इस गर्भपात का हाल कंस के पास भेज देना चाहिए। अन्यथा वह हमें न जाने क्या दुःख दे। यह निश्चय करके वसुदेवजी ने कारागृह के एक रक्षक द्वारा कंस के पास गर्भपात होने का समाचार भेजवा दिया। उसे सुनकर कंस ने प्रसन्न होकर सेवक को यह आज्ञा दी कि आठवें गर्भ का समाचार तुम मुझे तुरन्त दे देना।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवार को श्री बलभद्रजी ने रोहिणी के गर्भ से गोकुल में जन्म लिया और योगमाया ने यशोदा के पेट में जाकर स्वयं वास किया। उधर भगवान् श्री वैकुण्ठनाथजी भी देवकी के गर्भ में जा पहुँचे। जब श्री नारायणजी देवकी के पेट में आये, तब उसका मुख सूर्य के समान चमकने लगा।"

दोहा—श्रीहरि ने देवकी के किया गर्भ में वास।
ब्रह्मादिक स्तुति करें मन में भरे हुलास॥

हे राजन्! बन्दीगृह में जाने से एक दिन पूर्व देवकी व्रत रखकर यमुना नदी में स्नान करने के लिए गई थी। वहाँ उसकी भेंट यशोदा से हुई थी। उस समय दोनों में कंस के अत्याचार की चर्चा हुई तथा यशोदा ने देवकी से यह कहा था कि मैं तुझे अपना पुत्र देकर, तेरे पुत्र का पालन कर दूँगी। तदुपरान्त इस प्रकार का निश्चय करके वे वहाँ से बिदा हो गईं। अस्तु,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब देवकी को आठवाँ गर्भ ठहरा, उस समय कंस ने बन्दीगृह के चारों ओर बड़े-बड़े राक्षसों का पहरा बैठा दिया तथा वसुदेव से यह कहा कि तुम अपने हृदय में किसी प्रकार का कपट न रखकर, जैसे ही आठवाँ बालक उत्पन्न हो, उसे मेरे पास पहुँचा देना। क्योंकि तुम्हारे कहने पर ही मैंने देवकी को जीवित छोड़ रखा है। इतना कहकर कंस राजभवन में लौट आया। उस दिन वह अत्यन्त भयभीत होकर बिना खाये-पीये ही सो गया। दूसरे दिन फिर बन्दीगृह में पहुँचकर देवकी के मुख का प्रकाश देखकर, इस प्रकार कहने लगा कि इस गर्भ में जैसा प्रकाश दिखाई देता है वैसा तेज किसी अन्य गर्भ में नहीं था। अतः जान पड़ता है कि मेरा काल इसी गर्भ के भीतर बैठा हुआ है। मैं वैसे तो देवकी को अभी मार डालता, परन्तु लोकनिन्दा तथा पाप से डर कर यह सोचता हूँ कि मैं इतना प्रतापी राजा होते हुए भी गर्भवती स्त्री को क्या मारूँ? अतः इसके गर्भ से जो बालक जन्मेगा, मैं उसी को मारूँगा।" यह कहकर कंस फिर अपने घर लौट चला तथा पहरेदारों से यह कह आया कि देवकी के गर्भ से ज्योंही बालक उत्पन्न हो, त्योंही तुम मुझे उसकी सूचना दे देना। इस प्रकार कंस प्रतिदिन वहाँ जाकर बालक की सुधि लेता रहता था। उसे हर समय श्री कृष्णजी की मूरत दिखाई देती रहती थी, जिसके कारण वह अत्यन्त भयभीत बना रहता था। जब गर्भ के दिन पूरे हुए, तब श्री वैकुण्ठनाथजी ने वसुदेव तथा देवकी को यह स्वप्न दिया कि तुम लोग धैर्य रक्खो। मैं शीघ्र ही अवतार लेकर तुम्हारा दुःख दूर कर दूँगा। इस स्वप्न को देखकर वे दोनों जग पड़े। उस समय देवकी ने वसुदेवजी से कहा—"हे स्वामी! चाहे हमारा धर्म भले ही छूट जाय, परन्तु इस बालक को कंस के हाथों से बचाना चाहिए।" वसुदेवजी ने उत्तर दिया—"हे प्रिये! हम लोग तो बन्दीगृह में पड़े हैं, फिर बालक को कहाँ छिपायेंगे।" यह कहकर जब वे दोनों विलाप करने लगे, उसी समय वहाँ ब्रह्मा, शिव आदि देवता अलक्षित रूप में गर्भ-स्तुति करने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने वेद मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुए कहा—"हे सत्यस्वरूप परब्रह्म! आप तीनों लोकों में स्थिर रहते हैं, अतः हम आपकी शरण में आये हैं। यह संसाररूपी वृक्ष आपकी माया से उत्पन्न हुआ है तथा आप ही के आश्रित रहता है। आप ही इसकी रक्षा तथा पालन करते हैं। आप अनेक स्वरूप धारण करके सब जीवों को सुख पहुँचाते हैं। आपके नाम का स्मरण करने-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाला व्यक्ति भवसागर से पार उतर जाता है। आपका प्रकाश सभी जीवों के शरीर में व्याप्त है। हे परब्रह्म ! यदि आप सगुण अवतार धारण न करें तो संसारी जीव किस नाम का स्मरण करके तथा किस लीला का गाकर संसार-सागर से पार उतरने का उद्यम करेंगे ? आप जन्म-मरण से रहित होते हुए भी अपने भक्तों को सुख देने के लिए अवतार धारण करते हैं। हे प्रभो ! जिस प्रकार आपने मत्स्य, कच्छप आदि अवतार ग्रहण किये, उसी प्रकार अब आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुकुल में अवतार लीजिए। हे स्वामी ! आप अधर्मी राक्षसों का संहार करके अपने लीला-चरित्रों द्वारा भक्तों को आनन्द प्रदान कीजिए।" इस प्रकार गर्भ-स्तुति करने के पश्चात् देवताओं ने आकाशवाणी की भाँति वसुदेव तथा देवकी से यह कहा—"हे वसुदेव ! हम लोग जिनका दर्शन प्राप्त करने के लिए त्रिभुवन में घूमते रहते हैं, फिर भी जिनका दर्शन हमें प्राप्त नहीं होता, वे ही आदि निरंकार पुरुष श्री नारायणजी तुम्हारे यहाँ अवतार लेकर, पापियों का संहार करके, पृथ्वी का बोझ उतार कर, सभी लोगों को सुख देंगे। तुम्हारी कृपा से हम लोगों को भी उनका दर्शन प्राप्त हो सकेगा। अब तुम कंस से भयभीत मत होओ। उसकी मृत्यु निकट आ चुकी है।" इस प्रकार आकाशवाणी सुन-कर वसुदेव तथा देवकी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तदुपरान्त उन्होंने यह विश्वास किया कि श्री नारायणजी शीघ्र ही अवतार लेकर हमारा दुःख दूर करेंगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! इस प्रकार गर्भ-स्तुति करने के उपरान्त सभी देवता अपने-अपने लोक को चले गये।"

तीसरा अध्याय

श्री कृष्ण-जन्म की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! जब श्री त्रिलोकीनाथजी के जन्म का समय आया उस समय सब वृक्षों में ऋतु तथा बिना ऋतु के फूल तथा फल लद गये। सभी नदी-नाले जल से परिपूर्ण हो गये। पक्षी चहचहाने लगे। साधु-सन्तों के हृदय प्रसन्न हो गये। देवता हर्षित होकर मथुरापुरी पर पुष्प-वर्षा कर उठे। किन्नर तथा गन्धर्व बाजे बजाकर गीत गाने लगे। अप्सराएँ अपने-अपने विमानों पर बैठकर नृत्य करने लगीं। इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आनन्द में भाद्रपद कृष्णा अष्टमी बुधवार को रोहिणी नक्षत्र में अर्धरात्रि के समय श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज ने इस स्वरूप में अवतार लिया—

चौ०—मस्तक क्रीट-मुकुट अति सोहत। बरबस मन ऋषि-मुनि के मोहत।
मकराकृति कुण्डल छवि पावै। शंख, चक्र, गदा, पद्म, सुहावै॥
मुख-शोभा कुछ वरणि न जाई। कोटि भानु सम परत लखाई।
नील बदन, शंखाकृति ग्रीवा। छविनिधान प्रभु करुणासींवा॥

हे परीक्षित! इस प्रकार जब श्री नारायणजी ने चतुर्भुजी रूप से वसुदेव-देवकी को अपना दर्शन दिया, तब उन्होंने ज्ञान-दृष्टि द्वारा उन्हें श्री नारायणजी का अवतार समझकर दण्डवत् करते हुए कहा—"हे त्रैलोक्याधिपति! हम आपके चरणों की वन्दना करते हैं। आपकी स्तुति करने की सामर्थ्य ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश तथा शारदा में भी नहीं है, फिर हमारी क्या सामर्थ्य है जो हम आपकी स्तुति कर सकें? हे प्रभो! आप गौ, ब्राह्मण तथा हरि-भक्तों के दुःख पाने पर, पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण करते हैं। हमारे धन्य भाग्य हैं जो आपने अपना दर्शन देकर, हमें जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ा दिया।" इस स्तुति को सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"हे वसुदेव तथा देवकी! अब तुम अपने मन में कुछ चिन्ता मत करो। तुमने पूर्वजन्म में तपस्या करके यह वरदान माँगा था कि तुम्हें मेरे जैसे पुत्र की प्राप्ति हो, अतः मेरे समान कोई दूसरा न होने के कारण, मैंने स्वयं ही तुम दोनों की इच्छा-पूर्ति के निमित्त तथा पृथ्वी का भार उतारने के हेतु तुम्हारे यहाँ जन्म लिया है। तुम्हें अपने पूर्वजन्म का हाल भूल गया था, अतः उसे स्मरण कराने के लिए ही मैंने तुम्हें इस रूप में दर्शन दिया है। अब मैं बालस्वरूप में आ जाता हूँ, सो तुम मुझे इसी समय गोकुल में पहुँचा कर यशोदा के पास सुला आवो। वहाँ इसी समय यशोदा के गर्भ से भी एक कन्या का जन्म हुआ है, उसे लाकर तुम कंस को दे देना। नन्द-यशोदा ने भी पूर्वजन्म में मेरी बाल-लीलाएँ देखने के लिए तपस्या की थी, सो मैं कुछ दिनों वहाँ रहकर, उनकी कामना पूर्ण करूँगा। तत्पश्चात् कंस को मारकर तुमसे आ मिलूँगा।" इतना कहकर श्री नारायणजी बालस्वरूप होकर रुदन करने लगे। उस समय श्री नारायणजी की माया के प्रताप से वसुदेव-देवकी ने श्रीहरि-दर्शन के ज्ञान को स्वप्न के समान समझा। वसुदेवजी ने पुत्र-जन्म के उपलक्ष में मन ही मन दस सहस्र गौ संकल्प करने का निश्चय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया। इसके पश्चात् उन्होंने श्री कृष्णचन्द्रजी को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। उस समय देवकी ने वसुदेवजी से इस प्रकार प्रार्थना की—"हे स्वामी! आप इस बालक को कहीं छिपा दीजिए, जिससे यह कंस के हाथ से बच जाय।" वसुदेवजी ने उदास होकर उत्तर दिया—"हे प्रिये! मैं इसे कहाँ छिपाऊँ। अब तो जो अपने भाग्य में लिखा है वही होगा।" यह सुनकर देवकी हाथ जोड़कर बोली—

दोहा—स्वामी तुम लेकर इसे, गोकुल पहुँचो जाय।
रक्षा होगी इस तरह, सुन्दर यही उपाय॥

"हे पति! गोकुल में आपकी पत्नी रोहिणी तथा मेरी सखी यशोदा और आपके मित्र नन्दजी रहते हैं। वे लोग इस बालक का लालन-पोलन तथा रक्षा करेंगे।" तब वसुदेवजी ने कहा—"मैं इस बन्दीगृह से बाहर निकल कर कैसे जाऊँ?"

हे परीक्षित! वसुदेवजी के मुख से यह वचन निकलते ही श्री नारायणजी की कृपा से उनके हाथों की हथकड़ी तथा पावों की बेड़ियाँ उसी समय स्वतः खुलकर गिर पड़ीं। बन्दीगृह के सब द्वार भी अपने आप खुल गये तथा जितने पहरेदार थे, वे सब नींद में अचेत होकर सो गये। यह दृश्य देखकर वसुदेवजी ने भगवान् श्यामसुन्दर को एक सूप में रखकर अपने मस्तक पर उठा लिया। तत्पश्चात् वे उन्हें गोकुल में पहुँचाने के लिए शीघ्रतापूर्वक बन्दीगृह से बाहर निकल गये। उस आधीरात के समय, जब पानी बरस रहा था तथा वसुदेवजी के पावों में काँटे चुभकर पीड़ा पहुँचा रहे थे, उस समय शेषनाग भगवान् वैकुण्ठनाथ के ऊपर अपने फण की छाया किये हुए पीछे-पीछे चलने लगे, जिससे उन्हें कोई कष्ट न हो। इस प्रकार जब वसुदेवजी यमुना नदी के तट पर पहुँचे तब अपने मन में विचार करने लगे कि पीछे से सिंह के गरजने की ध्वनि आ रही है और आगे यमुना में अथाह जल भरा हुआ है; अब मैं इसे पार करके गोकुल में किस प्रकार पहुँचूँ! कुछ देर तक तो वे इसी चिन्ता में चिन्तित रहे, फिर श्रीहरि के चरणों का ध्यान करके यमुना में प्रविष्ट हो गये। उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी के चरणों का स्पर्श पाने के लिए यमुना का जल ऊपर को बढ़ने लगा। इस भेद को न पहिचान कर वसुदेवजी ने इस भय से कि कहीं पानी में श्री कृष्णजी डूब न जायँ उन्हें ऊपर ऊँचा उठा लिया। जब यमुना का पानी वसुदेवजी की नाक तक जा पहुँचा उस समय वे अत्यन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिन्तित होने लगे। तब अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी ने उनकी व्याकुलता देखकर अपना चरण नीचे करके यमुना से स्पर्श करा दिया। फिर जैसे ही उन्होंने एक हुंकार दी, वैसे ही यमुना का जल घटकर वसुदेवजी के घुटने के बराबर हो गया। यह चमत्कार देखकर वसुदेवजी मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर, यमुना को पार करके, गोकुल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने नन्दजी के घर को खुला हुआ पाया। तब वे सबको सोता हुआ देखकर उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ यशोदाजी सो रही थीं। उसी समय यशोदाजी के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ था, परन्तु श्रीहरि की माया के कारण यशोदाजी को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। यह देखकर वसुदेवजी ने श्री कृष्णचन्द्रजी को तो यशोदा के पास लिटा दिया और आप उस कन्या को लेकर उसी प्रकार यमुना को पार करके मथुरा में आ पहुँचे।

हे परीक्षित! जिस समय वसुदेवजी श्री कृष्णजी को पहुँचाने के लिए गोकुल चले गये थे, उसी समय से देवकी अपने मन में यह सोचकर अत्यन्त व्याकुल हो रही थी कि कदाचित् किसी पहरेदार की आँख खुल जाय और वह द्वार खुला देखकर कंस को सूचना दे दे अथवा मार्ग में वसुदेवजी से उनकी भेंट हो जाय तो कंस हम लोगों को न जाने कैसा दुःख देगा? इस समय यमुना चढ़ रही हैं, उसे वसुदेवजी ने किस प्रकार पार किया होगा? बहुत विलम्ब हो गया, अभी तक वे लौटकर क्यों नहीं आये? इस प्रकार जब देवकी चिन्ता कर रही थी, उसी समय वहाँ वसुदेवजी आ पहुँचे। उन्होंने देवकी को वह कन्या सौंपते हुए सब हाल कह सुनाया। उस समय देवकी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे स्वामी! अब चाहे कंस हम लोगों को ही क्यों न मार डाले, हमें इसकी कुछ चिन्ता नहीं है। ऐसे पापी के हाथ से मेरा बालक बच गया, यही मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता है।"

चौथा अध्याय

कंस का कन्या को पृथ्वी पर पटकना तथा उसका हाथ से छूटकर आकाश में चला जाना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब वसुदेवजी उस कन्या को लेकर गोकुल से लौट आये तो बन्दीगृह के सभी दरवाजे पहले के समान ज्यों के त्यों बन्द हो गये तथा वसुदेव-देवकी के हाथों में फिर हथकड़ियाँ पड़ गईं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसी समय वह कन्या भी रुदन करने लगी। उसकी आवाज को सुनकर सभी पहरेदार चैतन्य होकर बन्दूक छोड़ने लगे। तदुपरान्त उस अँधेरी आधी रात में ही, जब कि पानी बरस रहा था, एक पहरेदार ने जाकर कंस को यह सूचना दी कि हे प्रभु ! आपके शत्रु का जन्म हुआ है। इस समाचार को पाकर कंस अत्यन्त घबड़ाता हुआ उठ बैठा। फिर वह नंगे पाँव, नंगे सिर, गिरता-पड़ता हुआ वसुदेव तथा देवकी के पास जा पहुँचा। उसे देखकर देवकी ने अपना आँचल पसारते हुए कहा—"हे भाई ! यह कन्या उत्पन्न हुई है। भला यह तुझे क्या कष्ट पहुँचायेगी ? तूने अब तक मेरे छः पुत्र मार डाले हैं, अतः अब इस कन्या को तो जीवित छोड़ दे। इस निरपराध को मार कर तू पाप क्यों लेता है ?" देवकी के इस प्रकार कहने पर भी कंस ने उस लड़की को जबरदस्ती छीन लिया तथा इस प्रकार कहा—"हे देवकी ! मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूँगा। इस कन्या का जिस पुरुष के साथ विवाह होगा, सम्भव है वही मेरी मृत्यु का कारण बने।" इतना कहकर कंस उस कन्या का पैर पकड़कर बाहर ले गया। फिर जब वह उसे पत्थर पर पटक कर मारने को हुआ, उस समय वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई। जब कंस ने ऊपर को दृष्टि उठाई तो उस कन्या ने अपने हाथ में खड्ग तथा त्रिशूल धारण किए, पुष्पमाला एवं उत्तम वस्त्राभूषणों को पहिने, ध्वजा लगे हुए विमान पर बैठकर अष्टभुजी देवी के रूप में कंस को दर्शन दिया। उस स्वरूप को देखकर कंस अत्यन्त भयभीत हो गया। उस समय उस देवी ने कंस को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे कंस ! तूने मुझे पृथ्वी पर पटक कर व्यर्थ ही अपराध लिया। तेरा मारनेवाल तो व्रज में उत्पन्न हो चुका है। अब तू उसके हाथ से किसी प्रकार नहीं बचेगा। वह तुझे मारकर पृथ्वी का भार उतारेगा। अब तू हत्या करके वृथा पाप क्यों ले रहा है ? तू मेढक के समान तथा तेरा मारनेवाला सर्प के समान है। भला मेढ़क की इतनी सामर्थ्य कहाँ जो वह सर्प को खा सके।"

हे परीक्षित ! योगमाया देवी के मुख से ऐसे वचन सुनकर कंस अत्यन्त लज्जित होकर अपने मन में यह विचार करने लगा कि हमने वसुदेव-देवकी को कष्ट देकर तथा उनके पुत्रों को मारकर व्यर्थ ही अपराध लिया। अब मैं अपना दुःख किससे कहूँ ? यह सोचकर कंस वसुदेव-देवकी के पास पहुँचकर, उनकी हथकड़ी-बेड़ी काटने के उपरान्त, नम्रतापूर्वक इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहने लगा–"हे वसुदेव ! मेरे समान पापी संसार में अन्य कोई नहीं है। मैंने अपने नश्वर शरीर की रक्षा के लिए तुम्हारे छः पुत्रों को मारकर अपराध लिया है। तो भी मेरा काम नहीं बना। जिन देवताओं ने यह कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से पुत्र होगा, वे भी झूठे सिद्ध हुए। जो कन्या हुई, वह भी मेरे हाथ से छूट कर आकाश में चली गई। अब तुम दोनों मेरा अपराध क्षमा करके यह समझकर धैर्य धारण करो कि तुम्हारे उन पुत्रों की आयु इतनी ही थी। संसार में कर्म का लिखा किसी के मिटाये नहीं मिटता है। जिस प्रकार नदी में घास तथा तिनके न जाने कहाँ-कहाँ से आकर इकट्ठे हो जाते हैं तथा लहर उठने पर फिर अलग-अलग हो जाते हैं और उनका कोई पता नहीं चलता, उसी प्रकार संसारी जीवों का हाल भी समझना चाहिए। ज्ञानी मनुष्य मरण तथा जीवन को बराबर समझते हैं तथा अहंकारी लोग शत्रु-मित्र में भेद देखते हैं। सच पूछा जाय तो यह जीव अमर है, जिसका कभी विनाश नहीं होता है।" इस प्रकार अत्यन्त विलाप करते हुए जब कंस ने वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया, उस समय उन्होंने भी कंस को क्षमा कर दिया। तत्पश्चात् वसुदेव ने कंस से इस प्रकार कहा–"हे राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है। विधाता ने हमारे भाग्य में ऐसा ही लिख दिया था। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मनुष्य अपने सुख के लिए अनेक उपाय करता है, परन्तु श्री नारायणजी की इच्छा के बिना उसका मनोरथ सफल नहीं होता।" वसुदेव के ऐसे वचन सुनकर कंस प्रसन्न होकर, वसुदेव-देवकी को अपने घर ले आया। तदुपरान्त उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिना कर तथा भोजन खिला कर, उनके स्थान पर पहुँचा दिया। वसुदेव-देवकी ने घर पहुँचकर ब्राह्मणों तथा याचकों को गौ, वस्त्र, अन्न तथा धन आदि का बहुत-सा दान दिया।

हे परीक्षित ! इस घटना के दूसरे दिन कंस ने राजसभा में बैठकर अपने मन्त्री राक्षसों से कहा–"हे साथियो ! हमें देवी ने यह बताया है कि तेरा मारनेवाला अन्यत्र उत्पन्न हो चुका है। देवताओं ने हमसे यह झूठ कहा था कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न आठवाँ बालक तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा। अतः अब तुम लोग देवताओं को मार डालो।" कंस के ऐसे वचन सुनकर तृणावर्त, प्रलम्ब आदि राक्षसों ने कहा–"हे दयानिधान ! देवता लोग तो जन्म से ही दरिद्र हैं। उन्हें मारना क्या कठिन बात है ? वे तो आपके क्रोध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने से ही मर जायँगे। ब्रह्मा आठों प्रहर पूजा-पाठ में लगे रहते हैं तथा शिवजी इलावर्त में रहकर पार्वतीजी के साथ भोग-विलास में मग्न रहते हैं। इन्द्र में इतनी शक्ति नहीं है जो वह आपका सामना कर सके। नारायण भी क्षीर-समुद्र में रहकर लक्ष्मी के साथ भोग करते हैं। अतः उन्हें भी युद्ध करना नहीं आता। इस प्रकार इन लोगों को जीतना कोई बड़ी बात नहीं है।" तब कंस ने कहा—"नारायण ने ही हमें मारने के लिए कहीं अवतार लिया है। अब मैं उसे कहाँ पाऊँ, ताकि युद्ध करके मार सकूँ?" राक्षस बोले—"हे पृथ्वीपति! इस बात का पता नहीं चल रहा है कि आपको मारनेवाला बालक कहाँ उत्पन्न हुआ है। अतः हमारी सम्मति में यह उचित है कि इन दिनों जहाँ कहीं भी बालक उत्पन्न हुए हों, उन सबको मार डाला जाय। ऐसा करने से वह बालक भी कहीं न कहीं अवश्य मारा जायगा। यदि इस उपाय से भी बच जाय तो जितने ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनि हैं, उन सबको मार डालना उचित होगा, क्योंकि ऐसा करने पर जब नारायण उनकी सहायता के लिए प्रकट होंगे, तब हम उन्हें मार डालेंगे।" हे परीक्षित! अपने मंत्रियों की यह सम्मति कंस को पसन्द आ गई। तब उसने ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों तथा छोटे-छोटे बालकों को मारने की आज्ञा दे दी। उस समय राक्षस लोग हरि-भक्तों तथा छोटे बालकों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने लगे। उन्होंने पृथ्वी से धर्म-कर्म को उठा दिया। हे राजन्! साधु-महात्माओं को कष्ट पहुँचाने से मनुष्य का धन, धर्म, आयु तथा बल क्षीण हो जाता है। अतः इन अत्याचारों के कारण राजा कंस के पूर्वजन्मों का पुण्य भी नष्ट हो गया।"

पाँचवाँ अध्याय

गोकुल में कृष्ण जन्मोत्सव

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब वसुदेवजी श्री कृष्णचन्द्रजी को यशोदा के पास सुलाकर गोकुल से लौट आये तब यशोदा ने नींद खुलने पर उस बालक को देखा और नन्दजी को बुलाकर यह कहा कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है। नन्दजी ने बड़े प्रेम से भगवान् श्यामसुन्दर के दर्शन किये। तत्पश्चात् नन्द-यशोदा ने वेद-विधि से नान्दीमुख श्राद्ध करके ब्राह्मणों तथा याचकों को दान दिया। इस मंगलमय समाचार को सुनकर सभी गोपी-ग्वालों ने अपने-अपने घर मङ्गलाचार किये तथा ब्राह्मणों को गौ आदि का दान दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौ०—हर्षित हैं सब गोपी ग्वाल। आज यशोदा जायो लाल॥
घर-घर सब आनन्द मनावैं। फूले फिरैं आनन्द बढ़ावैं॥

प्रातःकाल नन्दजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर जब बालक के ग्रह आदि के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने यह उत्तर दिया—"हे नन्दराय! यह बालक श्री नारायणजी का अवतार प्रतीत होता है। यह राक्षसों को मारकर पृथ्वी का भार उतारेगा तथा 'गोपीनाथ' नाम पायेगा।" यह सुनकर नन्दजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर दो लाख गौ, मणि तथा रत्न संयुक्त सात भार तिल तथा सोने चाँदी के घड़ों में दूध, दही, घृत आदि भरवाकर ब्राह्मणों को दान दिया। इसके अतिरिक्त ज्योतिषियों तथा याचकों को भी इतना दान दिया कि फिर उन्हें कोई इच्छा शेष न रही। नन्दजी ने अपने द्वार पर रत्नजटित चौकी पर बैठकर मंगलामुखियों का नृत्य कराया तथा उन्हें मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर बिदा किया। तदुपरान्त सब गोपी-ग्वाल हिल-मिलकर उत्तम वस्त्राभूषणों को पहिन, गाते-बजाते, दही तथा हल्दी छिटकाते, थालों में मेवा आदि भरकर नन्दजी के यहाँ बधावा लाये।

चौ०—कंचन थार दीप भरि लाई। आरती करैं हृदय हरषाई॥
देंहि असीस बलैया लेहीं। हरि मुख चूमि निछावरि देहीं॥
गावत गीत बधाई डोलैं। नन्द यशोदा की जै बोलैं॥
भरीं हुलास मोद अति मानैं। जीवन जन्म सफल करि जानैं॥

जब गोपियों ने यशोदाजी से यह कहा कि हे यशोदारानी! तुम हमें अपने लाल का मुँह दिखाओ तो यशोदाजी ने प्रसन्न होकर श्री श्यामसुन्दर का मुख खोल कर उन्हें दिखा दिया। उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी की साँवली सूरत मोहिनी मूरत देखकर सभी व्रज-बालाएँ ठगी-सी मोहित खड़ी रह गईं। फिर आशीर्वाद देती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे नन्दरानी! तुम्हारा यह बालक लाखों वर्ष तक जीवित रहे।" उस दिन गोकुलवासियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर ऐसा दधि-काँदो खेला कि गली-बाजार सब जगह दही-दही ही भर गया। गोपियाँ आनन्द की गाली गा-गाकर नन्दजी को सुनाती थीं और नन्दजी उन्हें सुन-सुनकर परम प्रसन्न होते थे। उस समय रोहिणी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर गोपियों के साथ नृत्य करने लगीं। उस शोभा को देखने के लिए सभी देवता अपनी-अपनी स्त्रियों-सहित विमानों पर बैठकर आकाश में घिर आये तथा उन पर पुष्प-वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं तथा किन्नर, गन्धर्व आदि बाजे बजाते हुए गीत गा उठे। उस समय देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार कह रहे थे कि इन गोकुलवासियों के बड़े भाग्य हैं कि जिन पर-ब्रह्म प्रभु का दर्शन ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं को ध्यान में भी सहज सुलभ नहीं होता, वे ही यहाँ मनुष्य-शरीर धारणकर सबके आनन्द की वृद्धि कर रहे हैं।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! उस दिन नन्दजी के यहाँ जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। नन्दजी ने सभी गोपी-ग्वालों को सुन्दर भोजन कराये तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर सभी की मनोकामना पूर्ण की। इस आनन्द को सुनकर जब मंगलामुखी तथा याचकगण आये तब नन्दजी ने उन्हें भी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर आनन्दसहित बिदा किया। हे परीक्षित ! उन्हीं दिनों कैलाशवासी श्री शङ्करजी परब्रह्म प्रभु श्री मुरलीमनोहर का दर्शन पाने के लिए योगीरूप बनाकर नन्दरायजी के द्वार पर भिक्षा माँगने के बहाने जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने भिक्षा न लेकर श्रीहरि के दर्शन प्राप्त कर, परमानन्द को पा लिया। इसके उपरान्त जब छठी का दिन आया, तब नन्दजी ने अपने आँगन को चन्दन तथा केसर से लिपवाकर मोतियों का चौक पुरवाया। फिर अपने पुरोहित को बुलवाकर कुल रीत्यानुसार पूजन किया। उस समय यशोदाजी आनन्दकन्द श्री व्रजचन्द्रजी को पीला कुरता तथा पीली टोपी पहनाकर, आभूषणों से अलंकृत कर, गोद में ले, पूजन के लिए बैठीं। उस दिन वृषभानु आदि गोप तथा गोपियाँ कुरता-टोपी, आभूषण आदि लेकर नन्दजी के लाल को भेंट देने के लिए आ पहुँचीं। उन्होंने अत्यन्त आनन्द में भरकर ढोलक बजाई तथा सुन्दर मधुर गीतों को गा-गाकर सब ओर प्रसन्नता की धारा बहा दी। नन्दरायजी ने सभी गोप-गोपियों का यथोचित स्वागत-सत्कार किया। फिर उन्होंने भगवान् मुरलीमनोहर के लिए एक रत्नजटित पालना बनवाया। यशोदाजी उस पालने में श्री कृष्णजी को लिटाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक झुलाया करती थीं। उन दिनों लक्ष्मीजी की कृपा से सभी गोकुलवासियों को इतना धन प्राप्त हुआ कि उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती। सब लोग श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन पाकर अपना जन्म सफल बनाया करते थे।

हे परीक्षित ! जब नन्दजी को यह समाचार मिला कि कंस ने सभी बालकों को मारने की आज्ञा दी है, तब उन्होंने ग्वालों को सब बातें बताकर इस प्रकार निश्चय किया कि हम लोग पुत्र-जन्म की खुशी में राजा कंस को कुछ भेंट दे आवें। जिससे राजा प्रसन्न हो जाय और हमारे बालकों के मारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाने का कोई भय न रहे। इस प्रकार विचारकर नन्दजी सब ग्वाल-बालों-सहित माखन, दूध, दही तथा द्रव्य आदि गाड़ियों में भरवाकर राजा कंस को भेंट देने के लिए मथुरा में जा पहुँचे। कंस ने उनकी भेंट स्वीकार करके उन्हें शिरोपाव देकर सम्मान-सहित विदा कर दिया। तब वे अपने घर लौट चले। उस समय वसुदेवजी उनके आगमन का समाचार सुनकर यमुना-तट पर उनसे भेंट करने के लिए जा पहुँचे तथा कुशल-क्षेम पूछकर इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्दजी! आपके समान सच्चा मित्र मैंने किसी को नहीं पाया है। राजा कंस के दुःख देने पर मैंने आपके यहाँ अपनी गर्भवती पत्नी रोहिणी को भेज दिया था, आपने उसका तथा उसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका भी पालन हमसे अधिक प्रेमपूर्वक किया। राजा कंस के भय से मैं उनकी कोई सुधि भी नहीं ले सका। आपके इस उपकार के बदले यदि मैं जीवन भर आपकी सेवा करूँ, तो भी उऋण नहीं हो सकता हूँ। हे मित्र! आपके यहाँ पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। आपकी पत्नी यशोदा तथा पुत्र श्री कृष्णचन्द्र, अच्छी तरह तो हैं? गोकुल में गौओं के चरने के लिए घास तो अच्छी उपजी है?" वसुदेवजी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुनकर नन्दजी ने उत्तर दिया—"हे वसुदेवजी! आपकी कृपा से बलराम आदि सभी अच्छी तरह हैं। बलराम के जन्म के बाद मेरे भी बालक हुआ है। परन्तु कंस ने तुम्हें दुःख देकर तुम्हारे अन्य पुत्रों को मार डाला, इस दुःख से मैं बहुत दुखी रहता हूँ।" तब वसुदेवजी ने कहा—"हे भाई! विधाता ने हमारे भाग्य में जो लिख दिया है, वह किसी प्रकार मिटाये से नहीं मिट सकता। संसार में जन्म लेकर किसे सुख-दुःख नहीं उठाना पड़ता? आप मेरे परम प्रिय मित्र हैं, अतः मैं अपने तथा आपके पुत्रों में कोई अन्तर नहीं समझता हूँ। परन्तु इन दिनों राजा कंस बहुत अत्याचार कर रहा है तथा छोटे-छोटे बालकों को मरवा रहा है। इसलिए मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप यह ध्यान सदैव रक्खें कि कोई राक्षस गोकुल में भी पहुँचकर कुछ उपद्रव न कर बैठे। हे नन्दजी! मुझे यह समाचार मिला है कि बालकों को मारनेवाली पूतना आज गोकुल की ओर गई है। अतः आप शीघ्रतापूर्वक अपने घर जाकर यह देखिए कि वह कोई उपद्रव न कर बैठे। हे मित्र! आप अपनी सामर्थ्य भर मेरे बालक की रक्षा कीजिए। आगे परमेश्वर मालिक हैं वे जो चाहेंगे,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वही होगा। इसके उपरान्त आपको जब कभी अवकाश मिले, तब मुझे फिर अपना दर्शन देने की कृपा कीजिएगा।" तत्पश्चात् नन्दजी वसुदेवजी से बिदा लेकर ग्वालबालों-सहित गोकुल को लौट गये।"

छठवाँ अध्याय

पूतना का गोकुल में पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! अनेक राक्षस छोटे बच्चों को मारने का कार्य कर रहे थे, फिर भी कंस को श्री कृष्णचन्द्रजी के भय से शान्ति नहीं मिलती थी। अतः एक दिन उसने 'पूतना' नामक राक्षसी को अपने पास बुलाकर यह आज्ञा दी कि मथुरा तथा गोकुल में जितने बालक उत्पन्न हुए हों, तू उन सबको मार डाल। यह सुनकर पूतना बालकों को मारने के लिए चल दी। उसने अपने मन में यह विचार किया कि गोकुल में नन्दराय के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ है, सो सबसे पहिले मैं गोपी-रूप बनाकर वहीं जाऊँ और उस बालक को छल से मार आऊँ। यह निश्चय करके पूतना ने अत्यन्त सुन्दर गोपी का रूप बनाया। तत्पश्चात् सोलह शृङ्गार करके तथा अपने स्तनों में विष लगाकर, हँसती हुई नन्दरायजी के घर में जा पहुँची। उसका स्वरूप देखकर किसी भी पहरेदार ने उसे भीतर जाने से नहीं रोका। भीतर यशोदा आदि स्त्रियों ने भी उसका शृङ्गार तथा सौन्दर्य देखकर उसे कोई देवकन्या समझा। अतः वे उसे आदर-सहित अपने पास बैठाकर वार्तालाप करने लगीं।

चौ०—कोई कहै यह कमला आई। निज पति को देखै हरषाई॥
कोई कहै यह है महारानी। आई देन अशीष सयानी॥

हे परीक्षित! उस समय आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी पालने में लेटे हुए झूल रहे थे, जब उन्होंने यह जाना कि पूतना कपटरूप धारणकर मुझे मारने के लिए आई है, तो वे थोड़ा-सा मुस्कुरा दिए। उन्होंने मन ही मन कहा कि अच्छा हुआ जो यह पहिले यहीं आ पहुँची, अन्यथा किसी अन्य गोप के घर जाती तो मेरे किसी मित्र अथवा सखा को मार डालती। तदनन्तर पूतना ने यशोदा से इस प्रकार कहा—"हे बहिन! तुम्हारे यहाँ पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर राजा कंस को अत्यन्त प्रसन्नता हुई सो उनकी आज्ञा से मैं तुम्हारे प्राणप्यारे पुत्र को देखने के लिए आई हूँ।" यशोदा ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर दिया–"हे बहिन ! मेरा लाल पालने में झूल रहा है, सो तुम उसे देख लो।" यह सुनकर पूतना पालने के समीप जा पहुँची तथा 'तुम्हारा बेटा करोड़ों वर्ष तक जीवित रहे' इस प्रकार के कपट वचन कहती हुई श्री मुरली-मनोहर को बड़े प्रेमपूर्वक पालने में से उठा कर उन्हें अपना दूध पिलाने लगी। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने अपने दोनों हाथों से पूतना के स्तन दबाकर दूध के साथ-साथ उसके प्राण खींचने लगे। तब तो वह अत्यन्त व्याकुल होकर यशोदाजी से इस प्रकार कहने लगी–"हे यशोदा ! तेरा बालक तो यमराज का दूत मालूम होता है। यदि मैं आज इसके हाथ से जीवित बची तो फिर कभी गोकुल में नहीं आऊँगी।" इतना कहकर जब वह व्याकुल हो आकाश-मार्ग से भागने को हुई, उस समय श्री श्यामसुन्दर भी उसके स्तन पकड़कर लटके हुए चले गये। जब वह गोकुल से बाहर जा पहुँची, तब श्री कृष्णजी ने उसके प्राण खींच लिये। उस समय उस राक्षसी के पृथ्वी पर गिरने से एक ऐसा भारी धमाका हुआ, जिसे सुनकर धरती तथा आकाश काँप उठे। उस शब्द से गोकुलवासी अत्यन्त भयभीत हुए। वह पूतना राक्षसी छः कोस के बीच में गिरी, जिससे सैकड़ों वृक्ष टूट गये। जब रोहिणी तथा यशोदा ने उस शब्द को सुना और श्री कृष्णजी को पालने में नहीं देखा, तब वे रोती-पीटती हुई उन्हें ढूँढने के लिए घर से बाहर निकल आईं। उस समय सब गोपी-ग्वालों ने उन्हें ढूँढ़ते हुए बस्ती से बाहर जाकर यह देखा कि श्री कृष्णचन्द्र-जी मरी हुई पूतना की छाती पर चढ़े हुए उसके स्तनों को पी रहे हैं। उस समय यशोदा ने दौड़कर उन्हें अपनी गोद में उठा लिया। तब सब लोगों को ऐसा आनन्द हुआ, मानो सर्प ने अपनी खोई हुई मणि पा ली हो। यशोदाजी उन्हें पुचकार पुचकारकर यह कहने लगीं कि हे पुत्र ! आज तुम पंचों के भाग्य से ही जीवित बचे हो। तदुपरान्त जब यशोदा ने अपना स्तन उनके मुख से लगाया और श्री कृष्णजी ने दूध नहीं पिया, तब सब गोपियाँ श्री श्यामसुन्दर को गौ की पूँछ का स्पर्श कराकर, झाड़ने-फूँकने लगीं। तदु-परान्त यशोदाजी उन्हें लेकर शीघ्रतापूर्वक अपने घर में आ गईं तथा गुणी जनों को बुलाकर झाड़-फूँक करवा, देवता तथा पितरों को बहुत प्रकार से मनाने लगीं। जब उन्होंने श्री श्यामसुन्दरजी का न्यौछावर आदि करके दरिद्रों को दूध पिलाया, तब बाँकेबिहारी भी उनका दूध पीने लगे। उस समय सब गोपी-ग्वाल पूतना के मृतक शरीर के पास खड़े होकर यह कहते थे कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस राक्षसी के गिरने के शब्द को सुनने के कारण हमारा तो कलेजा अभी तक काँप रहा है, तब न जाने बालक कन्हैया की क्या दशा हुई होगी।

हे परीक्षित! उसी समय नन्दजी ने गोकुल के निकट पहुँचकर यह देखा कि एक बहुत बड़ी राक्षसी मरी हुई पड़ी है और गोकुलवासी पास में खड़े हुए उसे देख रहे हैं। जब नन्दजी ने लोगों से उसके मरने का हाल पूछा तो उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर नन्दजी कहने लगे—"हे भाइयो! बड़ी कुशल हुई जो इस दुष्टा के हाथ से मेरा कन्हैया जीवित बच गया और यह भी बड़ा अच्छा हुआ कि यह बस्ती से बाहर गिरी, अन्यथा इसके शव के नीचे दबकर गोकुलवासी मर जाते। इतना कहकर नन्दजी घर आये और अपने कन्हैया को गोद में लेकर बहुत प्यार करने लगे। उन्होंने उसी समय श्री मुरलीमनोहर के हाथों का स्पर्श कराकर छः सहस्र दूध देनेवाली गौएँ ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दान कीं तथा उनके मस्तक पर न्यौछावर करके याचकों को बहुत-सा अन्न, वस्त्र, सोना, चाँदी आदि दान में दिया। तदुपरान्त नन्दजी की आज्ञा से गोकुलवासियों ने अपने फरसे, कुल्हाड़ी आदि से पूतना का शरीर काट डाला तथा एक गड्ढा खोदकर उसकी हड्डियों को गाड़ दिया। जब पूतना का मांस अग्नि में जलाया गया, तब उससे ऐसी सुगन्ध उड़ी कि उसे सूँघकर सभी गोकुलवासी आनन्दित हो गये। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! उस मांस-मदिरा का भक्षण करनेवाली राक्षसी के शरीर से सुगन्ध निकलने का क्या कारण था?" तब शुकदेवजी ने यह उत्तर दिया—"हे राजन्! भगवान् मुरलीमनोहर ने उसका दूध पीकर तथा हृदयस्थल पर चरण रखकर, उसे अपने हाथों से मारकर पवित्र तथा मुक्त कर दिया था, इसीलिए उसके शरीर से ऐसी सुगन्ध उड़ी थी। हे परीक्षित! देखो, पूतना राक्षसी श्रीहरि को विष पिलाकर मारने के लिए आई थी, तो भी श्री नारायणजी ने उसे ऐसी अच्छी गति दी। फिर जो लोग श्रीहरि को अच्छे पदार्थों का भोग लगाते हैं, उन्हें न जाने कैसी पदवी प्राप्त होगी। हे परीक्षित! श्री श्यामसुंदर के दर्शन प्राप्त करने के हेतु सभी देवता अपना स्वरूप बदलकर गोकुल में आते थे तथा देव-स्त्रियाँ उनकी सुन्दरता को देखकर मोहित हो जाती थीं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सातवाँ अध्याय

कंस का तृणावर्त आदि राक्षसों को भेजना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी ! जिस प्रकार आपने पूतना की कथा सुनाई, उसी प्रकार आप श्री कृष्णचन्द्रजी के कुछ अन्य बाल-चरित्रों का भी वर्णन कीजिए, क्योंकि यह मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है।" तब श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! पूतना की दशा सुनकर कंस को यह विश्वास हो गया कि मुझे मारनेवाला गोकुल में ही जन्मा है। यह जान पड़ते ही पहिले तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। फिर अपनी सभा में जाकर मन्त्रियों से इस प्रकार बोला—"हे साथियो ! नन्द के बालक ने पूतना को मार डाला, इससे मुझे विश्वास होता है कि मेरा काल वही है। अतः अब मैं अपना सबसे बड़ा मित्र उसीको समझूँगा, जो उस बालक को मार डाले। जो कोई इस कार्य को पूर्ण करेगा, मैं उसे बहुत-सा धन दूँगा।" कंस के ऐसे वचन सुनकर उस सभा में उपस्थित 'श्रीधर' नामक ब्राह्मण ने यह कहा—"हे राजन् ! तुम चिन्ता मत करो, मैं उस बालक को मारकर तुम्हें निश्चिन्त किये देता हूँ। श्रीधर के ऐसे वचन सुनकर सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। तब वह कंस से बिदा होकर पंडितों का वेश बनाकर नन्दरायजी के घर जा पहुँचा। यशोदा ने उसे देखकर दण्डवत् करने के उपरान्त सम्मान-सहित बैठाकर इस प्रकार कहा—"हे महाराज ! आज आपने यहाँ पधारने की कृपा कैसे की ?" तब श्रीधर ने स्वयं को पुरोहित बताते हुए उत्तर दिया—"हे नन्दरानी ! मैं तुम्हारे पुत्र की प्रशंसा सुनकर उसके दर्शन के लिए आया हूँ।" यह सुनकर यशोदा ने कहा—"हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं स्नान करके अभी आती हूँ, तब आपको अपना लाल दिखा दूँगी।" इतना कहकर जब यशोदा स्नान करने के लिए यमुना-तट पर चली गई, तब श्रीधर ने यह विचार किया कि इस समय अच्छा अवसर है। मैं कृष्ण को मारकर कंस से बहुत-सा धन प्राप्त कर लूँगा। यह विचार कर श्रीधर उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ बाँकेविहारी शयन कर रहे थे। अन्तर्यामी प्रभु ने जब यह पहिचाना कि श्रीधर अपने मन में दुर्भावना लेकर आया है तो वे पालने से उतर पड़े। तदुपरान्त उन्होंने श्रीधर को पकड़ लिया तथा उसकी जीभ मरोड़ डाली, और उसे ब्राह्मण समझकर जान से नहीं मारा। फिर उसके मुँह में दही लगाकर तथा कुछ दही-दूध के बर्तन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फोड़कर इधर-उधर बिखरा दिये। इतना करने के बाद वे फिर पालने में लेट गये। कुछ देर बाद जब यशोदा स्नान करके वापस लौटीं तो ब्राह्मण के मुख में दही लगा हुआ देखकर, उन्होंने यह समझा कि इसने ही दही खाकर दूध-दही के बर्तनों को फोड़ डाला है। उस समय नन्दरानी ने श्रीधर से इस प्रकार कहा—"हे ब्राह्मण देवता! तुमने दही-दूध खाया, यह तो अच्छी बात की, परन्तु मेरे बर्तनों को क्यों तोड़ डाला है?" जब श्रीधर जीभ मुड़ी होने के कारण कुछ उत्तर न दे सका, तब उसने श्री श्यामसुन्दर की ओर उँगली उठाकर संकेत से यह बतलाया कि बर्तन इन्होंने फोड़ा है। परन्तु यशोदा ने उसकी बातों पर विश्वास न करके, उसे अपने घर से बाहर निकलवा दिया।

हे परीक्षित! जब वह ब्राह्मण लौटकर कंस के पास पहुँचा तो कंस ने और अधिक उदास होकर श्री कृष्णचन्द्रजी को मारने के लिए 'बकासुर' नामक राक्षस को भेजा। जब वह गोकुल में पहुँचकर श्री श्यामसुन्दरजी के पालने के समीप घात लगाकर बैठा, तब श्रीहरि ने गला मरोड़ कर उसे उठाकर फेंक दिया। तब वह कंस के सामने जाकर गिरा। इस वृत्तान्त के सम्बन्ध में गोकुल में किसी को कुछ पता नहीं चला। वहाँ कंस के पास पहुँचकर मरते समय बकासुर ने यह कहा—"हे राजन्! वह बालक मनुष्य नहीं है। साक्षात् नारायणजी का अवतार प्रतीत होता है। मुझे ऐसा विश्वास होता है कि वास्तव में वही आपका काल है।" यह सुनकर कंस ने और अधिक चिन्तित होकर अपने सभासदों से कहा कि जब बाल्यावस्था में उसका यह हाल है तो बड़ा होकर वह बालक न जाने क्या करेगा? यदि कोई उसे मार डालता तो मैं उसका बड़ा उपकार मानता। कंस के ऐसे वचन सुनकर 'शकटासुर' नामक राक्षस उन्हें मारने का विश्वास दिलाकर, वायु के समान गोकुल में जा पहुँचा।

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिस नक्षत्र में श्री श्यामसुन्दर का जन्म हुआ था, वही नक्षत्र जिस दिन फिर आया, उस दिन नन्दजी ने सब गोकुलवासियों तथा ब्राह्मणों को निमन्त्रण भेज, अपने यहाँ बुलाकर, कुलाचार के अनुसार पूजा-पाठ कराया तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर बिदा किया। उस समय यशोदा तथा रोहिणी आदि स्त्रियाँ गीत गा-गाकर ग्वालों को भोजन कराने तथा आनन्द मनाने लगीं। जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय सब लोग अपने-अपने काम में व्यस्त थे, उस समय श्री श्यामसुन्दरजी पालने में पड़े हुए भूख के कारण हाथ-पैर पटक कर रोने लगे। उसी समय शकटासुर भी वायु के समान उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। शकटासुर ने श्री कृष्णजी को देखकर अपने मन में यह विचार किया कि इस बलवान् बालक ने पूतना को मार डाला है; अतः अब मैं उसकी मृत्यु का बदला लूँगा। यह सोचकर वह पालने के समीप लटके हुए एक छकड़े पर जा बैठा। जब वह छकड़ा हिलने लगा तब श्री कृष्णजी ने उसे पहचानकर रोते-रोते एक लात ऐसी मारी कि उसके कारण शकटासुर मृत्यु को प्राप्त होकर कंस की सभा में जा गिरा। उसकी ऐसी दशा देखकर कंस को अत्यन्त व्याकुलता हुई। इधर जब छकड़ा गिरा और उसके नीचे रक्खे हुए दूध-दही के बर्तनों के टूटने का शब्द हुआ, उस समय नन्दराय आदि सभी गोपी-ग्वाल दौड़कर श्री श्यामजी के पास आ पहुँचे। यशोदा ने श्री कृष्णजी को पालने में से उठाकर अपनी गोद में ले लिया तथा उन्हें बारम्बार चूमने लगीं। उस समय सब लोग आश्चर्यचकित होकर यह विचार करने लगे कि न तो आकाश से वज्र गिरा है और न कोई अन्य कारण हुआ है, फिर यह छकड़ा टूट कर कैसे गिर पड़ा। उस समय पालने के समीप खेलनेवाले कुछ ग्वालों के पुत्रों ने यह कहा कि नन्दलाल ने छकड़े में लात मारी थी उसी के कारण यह टूटकर गिर पड़ा। परन्तु उन लड़कों की बात पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया, सब यही सोचने लगे कि श्यामसुन्दर के चरण तो फूल से अधिक कोमल हैं, तब इन्होंने लात मार कर इतना बड़ा छकड़ा कैसे गिराया होगा ? उस समय नन्दजी ने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान देकर इस प्रकार कहा कि नारायणजी ही मेरे लाल की हर बार रक्षा करते हैं। उनका भेद कुछ समझ में नहीं आता।"

हे परीक्षित ! जब श्री कृष्णचन्द्रजी पाँच वर्ष के हुए तब कंस ने उन्हें मारने के लिए 'तृणावर्त' नामक राक्षस को भेजा। वह आँधी का रूप बनाकर गोकुल में आया। उस समय यशोदाजी श्री कन्हैयाजी को गोद में लिए आँगन में बैठी थीं। जब श्री कृष्णजी ने तृणावर्त के आगमन का हाल जाना तो उन्होंने अपनी देह को इतना फुलाया कि यशोदा ने उन्हें गोद से उतार कर पृथ्वी पर सुला दिया और स्वयं घर का काम-काज करने के लिए चली गईं। उसी समय एक ऐसे जोर की आँधी आई कि धूल उड़ने से दिन रात्रि के समान हो गया। वृक्ष गिरने लगे तथा छप्पर उखड़-उखड़कर दूर जा पड़े।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय यशोदाजी घबड़ाकर श्री कृष्णजी को उठाने के लिए आँगन में दौड़ी आईं। परन्तु उस समय श्री मुरलीमनोहर ने अपना शरीर इतना भारी कर लिया था कि वे उन्हें किसी भी प्रकार उठा नहीं सकीं; तथा ज्योंही उन्होंने अपना हाथ अलग हटाया, त्योंही तृणावर्त श्री कृष्णजी को उड़ाकर ऊपर आकाश में ले गया। जब यशोदाजी ने अपने कन्हैया को वहाँ नहीं देखा, तब वे रुदन करने लगीं। उन्होंने नन्दजी को पुकारते हुए कहा कि आपका पुत्र आँधी में उड़ गया है। यह सुनते ही नन्दजी-सहित गोपी-ग्वाल वहाँ दौड़े आये तथा श्री कृष्णजी का नाम ले-लेकर उन्हें चारों ओर ढूँढ़ने लगे। यशोदा तथा रोहिणी भी ढूँढ़ने को निकलीं। सभी लोग उस अँधेरे में ठोकर खा-खाकर गिर पड़ते थे।

हे परीक्षित! श्रीहरि ने जब सब लोगों को अपने विरह में अत्यन्त व्याकुल देखा तब उन्होंने तृणावर्त का गला दबाकर नन्दजी के द्वार के पत्थर पर पटक दिया तथा उसके प्राण लेकर मुक्ति दे दी। उसके मरते ही आँधी पलभर में दूर हो गई। उस समय उसके गिरने का शब्द सुनकर सब गोपी-ग्वाल दौड़े-दौड़े वहाँ आये, जहाँ राक्षस की छाती पर लेटे हुए श्री कृष्णजी खेल रहे थे। यह देखते ही गोपियों ने दौड़कर श्री कन्हैया-जी को उठा लिया। तब सब लोगों ने इस प्रकार कहा कि आज नन्दनन्दन का नया जन्म हुआ है। न जाने पूर्वजन्म के कौन से पुण्यों का उदय हुआ, जिनके कारण हमारे प्राणप्यारे इस राक्षस के हाथों जीवित बचे हैं। यह सुनकर नन्दजी ने कहा—"हे भाइयो! मुझे वसुदेवजी ने यह बताया था कि इन दिनों बहुत उपद्रव उठेगा, सो सब वैसी ही बातें देखने में आ रही हैं।" इतना कहकर नन्दजी ने ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत-सा धन दिया। तब गोपियों ने यशोदाजी से इस प्रकार कहा कि तुमने घर के काम को अपने प्राणप्यारे से बढ़कर समझा, यह ठीक नहीं हुआ। तुम्हें श्यामसुन्दर को आँगन में इस प्रकार अकेला नहीं छोड़ना चाहिए था। यह सुनकर यशोदा बहुत लज्जित होकर बोलीं—"आज मैंने अपने अज्ञान का दण्ड पा लिया, अब आगे मैं कभी भी इसे अकेला नहीं छोड़ूँगी। उस दिन से यशोदा-जी आठों प्रहर श्री कृष्णजी को छाती से लगाकर रखने लगीं तथा उनकी बाल-लीलाओं को देखकर सुख पाने लगीं। वे कभी श्री कृष्णजी को पालने में सुलाकर झुलातीं, कभी गोद में लेकर खिलातीं तथा कभी पलंग पर लिटाकर मोद मनाती थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! एक दिन यशोदाजी श्री मुरलीमनोहर को गोद में लिये हुए बड़े प्रेम से उनका मुख चूम रही थीं, उसी समय श्रीहरि अपना मुँह खोलकर हँस दिये। यशोदा को उनके मुख के भीतर पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, पर्वत, समुद्र आदि सम्पूर्ण सृष्टि दिखाई देने लगी। इस आश्चर्य को देखकर वे अपने मन में सोचने लगीं कि कहीं मेरी बुद्धि तो नहीं पलट गई है जो मुझे यह सब चरित्र दिखाई दे रहा है ? अथवा मेरे लाल के ऊपर किसी देव या परी की ऐसी छाया पड़ गई है, जो उसके मुख में ये सब वस्तुएँ दिखाई दे रही हैं। यह विचार करके यशोदा ने गुणियों को बुलाकर श्री श्यामसुन्दर की झाड़-फूँक कराई तथा व्याघ्र के नख, भालू के बाल एवं अन्य अनेक प्रकार के यन्त्र भगवान् श्यामसुन्दर के कण्ठ में पहिना दिये।"

आठवाँ अध्याय

गर्गजी द्वारा नामकरण-संस्कार एवं श्री कृष्णजी के बाल-चरित्र की अन्य कथाएँ

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! वसुदेवजी ने अपने पुत्र बलभद्र के जन्म का हाल कंस को नहीं बताया था, अतः उन्होंने एक दिन अपने पुरोहित 'गर्गजी' को बुलाकर यह कहा कि रोहिणी के पुत्र हुआ था, परन्तु कंस के भय से अभी तक हमने उसका नामकरण-संस्कार नहीं कराया है। अतः अब आप गोकुल में जाकर उसका नाम रख आइये। यह सुनकर गर्गजी प्रसन्न होकर गोकुल में जा पहुँचे। उनका आगमन सुनकर नन्द-यशोदा प्रसन्न होकर सब ग्वाल-बालों-सहित आगे जाकर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा लाये। तदुपरान्त विधिपूर्वक उनका पूजन करके चरणामृत का पान किया। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे गर्गजी ! हमारे धन्य भाग्य हैं, जो आपने अपने दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया। अब अपने आने का कारण कहिए ?" गर्गजी बोले—"हे नन्दराय ! मुझे वसुदेव ने अपने पुत्र का नामकरण करने के हेतु भेजा है।" कह सुनकर नन्दराय ने प्रसन्न होकर कहा—"हे प्रभो ! हमारे भी एक बालक उत्पन्न हुआ है, सो कृपाकर आप उसका भी नाम रख दीजिए।" गर्गजी बोले—"हे नन्दजी ! मुझे तुम्हारे पुत्र का नाम रखने में यह भय है कि यदि किसी ने कंस से जाकर यह कह दिया कि गर्ग मुनि नन्द के पुत्र का नाम रखने के लिए गोकुल में गये थे तो उसे यह सन्देह होगा कि वसुदेव ने ही अपना कोई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र नन्द के यहाँ पहुँचा दिया है। उस समय न जाने वह तुम्हें क्या कष्ट दे? इसलिए तुम नामकरण के लिए धूमधाम मत करो, साधारण रीति से ही उसका नाम घर में रखवा लो।" गर्गजी की यह बात स्वीकार करके नन्दजी उन्हें अपने घर के भीतर लिवा ले गये। उस समय गर्गजी ने रोहिणी के पुत्र का हाथ तथा जन्म-लग्न देखकर यह कहा—"इस बालक का राशि-नाम 'राम' है, परन्तु यह इतना बली होगा कि संसारी लोग इसे 'बलराम' कहकर पुकारेंगे। इसके अतिरिक्त इसके नाम संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, कालिन्दी-भेदन, हलधर तथा बलभद्र भी होंगे।" तदुपरान्त गर्गजी ने श्रीकृष्णजी की जन्म-कुण्डली बनाकर इस प्रकार कहा—"हे नन्दराय! तुम्हारे पुत्र का रंग साँवला है, अतः तुम इसका नाम 'कृष्ण' रक्खो। वैसे इसके अनेक नाम होंगे। एक समय इस बालक ने वसुदेवजी के यहाँ जन्म लिया, अतः इसका नाम 'वासुदेव' भी होगा। हे नन्दजी! हमारी समझ में तुम्हारा बालक आदि निरंकार परब्रह्म का अवतार है। तीनों लोकों में किसी की ऐसी सामर्थ्य नहीं है, जो कोई तुम्हारे पुत्र को मार सके। ये तुम्हारे पुत्ररूपी श्री नारायणजी संसार में जितने काम करेंगे उतने ही इनके नाम प्रसिद्ध होंगे। तुमने श्रीहरि की बाललीला देखने के लिए पूर्वजन्म में तपस्या की थी, उसी के प्रताप से तुमने इन्हें प्राप्त किया है। तुम इन्हें अपना पुत्र मत समझो। इन्होंने अपनी इच्छा से अवतार लिया है। जो प्राणी इनके नाम का स्मरण करेंगे, वे संसार में अपनी मनोकामना पाकर, अन्त में मुक्तिपद को प्राप्त करेंगे। ये दोनों बालक चारों युग में एक साथ जन्म लेते हैं।"

हे परीक्षित! गर्गजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर नन्द-यशोदा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने गर्गजी को बहुत-सा स्वर्ण एवं रत्न आदि देकर सम्मान-सहित बिदा किया। तत्पश्चात् गर्गजी ने मथुरा में आकर वसुदेवजी को सब समाचार सुना दिया। हे राजन्! सलोने श्यामल शरीरवाले श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी जिस समय घुँघराले बाल मस्तक पर बिखेरे, विविध रंगों के वस्त्राभूषण पहने, हाथों में खिलौना लिये, घुटनों के बल आँगन में चलते थे, उस समय यशोदा, रोहिणी तथा गोपियों को जो आनन्द प्राप्त होता था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

चौ०—रुनक झुनक पैंजनियाँ बाजैं। कोटि काम छबि देखत लाजैं॥
कच श्यामल शुभ घूँघरवारे। सरसिज नयन महा मतवारे॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो देखै सो मोद मनावै। हरषित ह्वै निज कंठ लगावै ॥
नजरि उतारत जसुमति मैया। चिरजीवी रहु दोनों भैया ॥

दो०—मातु बुलावै जब निकट, बिहँसत चलहिं पराइ।
सो सुख शेष महेश सों, कबहुँक बरनि न जाइ ॥

चौ०—करत बाल लीला अति सुन्दर। शोभा परमपुनीत मनोहर ॥
गोप-ग्वाल सब गोद खिलावैं। गोपी नित उठि कुशल मनावैं ॥
हरषित सब गोकुल के बासी। प्रकटे पूर्णब्रह्म सुखराशी ॥
कहि न जाइ शुभ-चरित लाल को। मेटत भव-निधि महाजाल को ॥

हे परीक्षित ! जिन परब्रह्म प्रभु की महिमा का वेद भी नहीं जानते, वे ही त्रिलोकीनाथ बाल-रूप धरकर नन्द-यशोदा के आँगन में प्रतिदिन भाँति-भाँति के खेल दिखाते थे। तीनों लोकों में जो आनन्द किसी को प्राप्त नहीं हो सकता, उस आनन्द को गोकुलवासी गोप-ग्वाल प्रतिदिन प्राप्त करते थे। जब श्री कृष्णजी के दाँत निकले, तब शुभ मुहूर्त देखकर नन्द-यशोदा ने उनका अन्नप्राशन कराया। उस दिन तथा उसके उपरान्त वर्षगाँठ के दिन नन्दजी ने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया। जब खेलते समय श्री कृष्णजी तथा बलरामजी छोटे बछड़ों की पूँछ पकड़कर खड़े होते थे तथा गिर पड़ते एवं अपनी तोतली बोली द्वारा लोगों को आनन्द-विभोर करते थे, उस समय यशोदा तथा रोहिणी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपनी गोद में उठाकर दूध पिलाने लगती थीं। वे दोनों भाई परम सुन्दर थे, अतः उनके सौन्दर्य पर सभी व्रज-बालायें ऐसी रीझ गई थीं कि वे उन्हें देखने के लिए प्रतिदिन किसी-न-किसी बहाने यशोदा के घर आ पहुँचती थीं। उन्हीं दिनों की बात है कि एक ब्राह्मण नन्दरायजी के घर आया। यशोदा ने उसे दूध, चावल तथा मीठा दिया। ब्राह्मण ने उसकी खीर बनाकर थाली में परोसा, फिर जब वह श्रीहरि का भोग लगाकर, आँखें बन्द करके ध्यान-मग्न हुआ, उस समय श्री कृष्णजी उसकी थाली के समीप पहुँचकर, उसमें भोजन करने लगे। यह देख-कर उस ब्राह्मण ने थाली छोड़कर यशोदा से यह कहा—"हे नन्दरानी ! तुम्हारे बालक ने हमारी रसोई छू ली। अतः अब हम इसे नहीं खायेंगे।" इस प्रकार उस ब्राह्मण ने तीन बार खीर बनाई और तीनों बार भोग लगाते समय श्री कृष्णजी उसकी थाली में बैठकर खाने लगे। यह देखकर यशोदा ने क्रुद्ध होकर श्री कन्हैयाजी से कहा—"अरे कन्हैया ! मैं ब्राह्मण को भोजन के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए हर बार सामान देती हूँ। तू उसकी खीर को जूठी क्यों कर देता है?" तब श्री कृष्णजी बोले–"हे माता! तू मुझे दोष मत दे। जब यह ब्राह्मण विनती करके मुझे भोजन के लिए बुलाता है, तब मैं इसके स्नेह को देखकर इसकी थाली में खाने लगता हूँ।" श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त हो गया। तब उसने यशोदा से कहा–"हे नन्दरानी! तेरे अहोभाग्य हैं, जो तेरे घर में साक्षात् श्री नारायणजी ने अवतार लिया है। मेरा भी जीवन धन्य है जो कृपासिंधु व्रजराजजी ने मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है।" इतना कहकर वह ब्राह्मण, प्रेम-मग्न हो, नन्दजी के आँगन में लोटने लगा। तदुपरान्त उसने श्री श्यामजी के सम्मुख जाकर, हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! आप मेरा अपराध क्षमा करें। आप अन्तर्यामी हैं, अतः मुझे अपनी शरण में आया हुआ जानकर दयालु हो जाइये।" उस समय ब्राह्मण के वचन सुनकर श्री कृष्णजी यशोदा के पास खड़े होकर हँसने लगे। जब ब्राह्मण श्री कन्हैयाजी की स्तुति करके चला गया, तब नन्द-यशोदा आदि ने यह चरित्र देखकर अपने मन में अत्यन्त आश्चर्य किया। इस प्रकार श्री श्यामसुन्दर प्रतिदिन विचित्र लीलाएँ करके सबको सुख पहुँचाते थे। एक दिन श्री कृष्णजी तथा बलरामजी आँगन में खेल रहे थे। उस समय श्री कृष्णजी ने थोड़ी-सी मिट्टी खा ली। यह देखकर श्रीदामा नामक एक दूसरे बालक ने, जो उन्हीं के साथ खेल रहा था, यशोदा के पास जाकर यह हाल कह सुनाया। उस समय यशोदाजी क्रुद्ध होकर, हाथ में छड़ी लिये, श्री कन्हैयाजी को मारने के लिए दौड़ीं। उस समय श्री त्रिलोकीनाथजी माता को क्रोध में भरी हुई आते देखकर अपना मुँह पोंछकर, खड़े हो गये। जब यशोदाजी ने उनके पास आकर इस प्रकार कहा कि हे कन्हैया! तूने मिट्टी क्यों खाई? इससे गाँववाले मेरी निन्दा करके यह समझेंगे कि मैं तुझे खाने के लिए नहीं देती हूँ, अतः तू मुझे इसका उत्तर दे। यह सुनकर श्रीहरि ने भयभीत होकर कहा–"हे माता! यह तुमसे किसी ने झूठी बात कह दी है। मैंने मिट्टी नहीं खाई।" यशोदाजी बोलीं–"तेरा साथी श्रीदामा तो कहता है कि तूने मिट्टी खाई है।" उस समय श्री श्यामजी ने श्रीदामा को डाँटते हुए पूछा–"क्योंरे, मैंने मिट्टी कब खाई थी?" उसने डरते हुए उत्तर दिया–"हे भाई! मैंने तुम्हारी माता से कुछ नहीं कहा है।" तब यशोदाजी ने श्री कृष्णचन्द्रजी का हाथ पकड़कर कहा–"अच्छा, यदि तू सच्चा है तो अपना मुँह खोलकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखा दे। उससे अभी पता चल जायगा कि तूने मिट्टी खाई है या नहीं।" यह सुनकर श्री त्रिलोकीनाथजी ने अपना मुँह खोलकर यशोदा को दिखा दिया। तब यशोदा ने यह देखा कि तीनों लोकों में जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब श्री श्यामसुन्दर के मुख में विद्यमान हैं।" उस आश्चर्य को देखकर यशोदा जी ने अपने मन में विचार किया कि मेरे समान मूर्ख स्त्री दूसरी कोई न होगी जो मैं तीनों लोकों के स्वामी को अपना पुत्र करके मानती हूँ। यह बालक साधारण मनुष्य न होकर साक्षात् श्री परब्रह्म प्रभु का अवतार है। क्योंकि मैंने दो बार इसके मुख में सम्पूर्ण सृष्टि को देखा है। ऐसा सोचकर यशोदाजी श्री कृष्णचन्द्रजी की स्तुति करने लगीं। उस समय श्री श्याम-सुन्दर ने यह विचार किया कि अभी मुझे बहुत-सी मनुष्य-लीलाएँ करनी हैं, अतः स्वयं को प्रकट नहीं करना चाहिए। यह निश्चय करके उन्होंने यशोदा के ऊपर अपनी माया फैला दी। जब यशोदा ने नन्दजी से यह कहा कि मैंने श्री कृष्ण के मुख में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा है तो उन्होंने यह उत्तर दिया—"हे यशोदा! गर्गजी ने जो बात कही थी, उसमें कोई संदेह नहीं है। तू व्यर्थ ही उन परब्रह्म प्रभु को अपना बालक समझकर, उनके पीछे छड़ी लेकर दौड़ती है। बाद में इस प्रकार पछताने से क्या लाभ निकलेगा?"

हे परीक्षित! नन्दरायजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर यशोदा ने श्री कृष्णजी को अपनी गोद में उठा लिया तथा अत्यन्त स्नेहपूर्वक इस प्रकार कहने लगीं—"हे पुत्र! मैंने जो हाथ तुझे मारने के लिए उठाया था, वह हाथ गल जाय तथा जिन आँखों ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा था, वे आँखें फूट जायँ। हे कन्हैया! तुम मक्खन-मिश्री छोड़कर मिट्टी क्यों खाते हो?" यह कहकर यशोदा श्री कन्हैयाजी को लेकर घर के भीतर चली गईं। एक दिन की बात है कि खेल ही खेल में श्यामजी तथा बलरामजी में कुछ झगड़ा हो गया, उस समय बलरामजी ने श्यामजी से इस प्रकार कहा कि "हे कन्हैया! तेरे माँ-बाप नहीं हैं, तुझे तो नन्दरायजी मोल (खरीदकर) लाये थे। इसीलिए तुझे हार-जीत का ज्ञान नहीं है।" दाऊजी के ऐसे वचन सुनकर श्री कन्हैयाजी रोते हुए यशोदाजी के पास जाकर कहने लगे—"हे मैया! बलदाऊ मुझे बहुत चिढ़ाते हैं। वे कहते हैं कि तू मोल का आया हुआ है। वे यह भी पूछते हैं कि तेरी माता कौन है और तेरे पिता कौन हैं? नन्द-यशोदा तो गोरे हैं, फिर तू काला कहाँ से आ गया? वे मुझे देवकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का पुत्र बतलाकर यह कहते हैं कि नन्दरायजी ने तेरे बदले वसुदेवजी को कुछ रुपये देकर तुझे खरीद लिया था। हे माता! बलदाऊ के सिखाने से अन्य सब लड़के भी मुझे यही बातें कहकर चिढ़ाते हैं। अब तू मुझे सच-सच बतला कि मैं किसका बेटा हूँ?" यह सुनकर यशोदाजी ने गोधन की शपथ खाते हुए कहा—"हे कन्हैया! तेरी माता मैं हूँ, तू मेरा ही पुत्र है।" नन्द-रायजी भी समीप ही खड़े हुए मनमोहन की ये बातें सुन रहे थे सो उन्होंने भी प्रेम-विभोर हो, कन्हैयाजी को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया।

हे परीक्षित! कुछ दिनों बाद नन्दजी ने श्री कृष्णजी का मुण्डन तथा कर्णछेदन कराकर, ब्राह्मणों तथा अपने सजातियों का स्वागत-सत्कार किया। जब श्यामजी पाँच वर्ष के हुए, तब वे अन्य बालकों के साथ गोकुल की गलियों में खेलने लगे। उस समय श्यामजी तथा बलरामजी के स्वरूप को देखकर सभी व्रजबालाएँ यह इच्छा करती थीं कि किसी प्रकार से सुघर सलोने हमारे घर आयें तो हम इनका दर्शन पाकर अपनी आँखों को तृप्त करें। अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी उनकी ऐसी अभिलाषा जानकर, उनके घर आने-जाने लगे। इससे गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न होती थीं तथा उन्हें दही, माखन खिलाकर अपने मन में बहुत आनन्द प्राप्त करती थीं। कभी किसी समय कोई व्रजबाला अपने घर में न होती तो कृष्णजी अपने साथियों-सहित निर्भय होकर उसके सूने घर में घुस जाते थे तथा वहाँ रक्खे हुए दूध, दही, मक्खन आदि को ग्वालबालों तथा वानरों को खूब खिलाकर स्वयं भी खाते थे। जब उनका पेट भर जाता था तब वे बचे हुए दही आदि को पृथ्वी पर गिराकर हाँड़ी तथा मटुकी आदि को तोड़कर इस प्रकार कहते थे कि देखो, यह दूध-दही कैसा निकम्मा है, जिसे कोई भी नहीं खाता है। इस प्रकार के उपद्रव देखकर गोपियाँ श्यामजी को बहुत बरजती थीं, परन्तु वे तो भी नहीं मानते थे। उस समय वे व्रजाङ्गनाएँ उन्हें 'माखनचोर' कहकर अपने मन में प्रसन्न होती थीं।

हे परीक्षित! श्री कृष्णजी के उपद्रव को देखकर गोपियों ने अपने दूध-दही को छींके पर रखना आरम्भ कर दिया, ताकि वहाँ उनका हाथ न पहुँच सके। तब श्री नन्दनन्दन ने यह उपाय किया कि वे ऊखली के ऊपर पीढ़ा रखकर, उसके ऊपर एक लड़के को खड़ा कर देते थे, फिर उसकी पीठ पर आप स्वयं चढ़कर छींके पर रक्खे हुए दूध, दही, माखन को उतारकर खा जाते थे। जब कभी इस उपाय से काम नहीं चलता था तब वे अपनी मुरली अथवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाठी द्वारा हाँड़ी में छेद कर देते थे, जिससे उसमें भरा हुआ गोरस नीचे टपकने लगता था। उस समय वे उसे अपनी अँजुली में भरकर बड़े प्रेम से पीते थे। यह दशा देखकर जब कोई गोपी क्रोध करके उनके समीप आती थी, तब उनकी मोहिनी सूरत को देख हँसकर रह जाती थी। कभी-कभी गोपियाँ माखन खिलाने का लालच देकर, ताली बजा-बजाकर श्री कन्हैयाजी को अपने घर में नचाती थीं।

चौ०—सुरमुनि जिनके भेद न पावैं। व्रजबाला सब तिनहिं नचावैं॥
ठुमुकि-ठुमुकि निरतैं श्री श्याम। सबको सुख देवैं अभिराम॥

हे परीक्षित! कभी-कभी गोपियाँ यशोदाजी के पास जाकर यह उलाहना देती थीं कि तुम्हारे मनमोहन ने हमारे दूध-दही को चुराकर खा लिया है तथा अन्य बालकों एवं वानरों को खिलाकर हाँड़ी-मटुकी फोड़ डाली हैं। हम छींकों के ऊपर अपना सामान रखती हैं, तो भी वे नहीं मानते। हम तुम्हारा संकोच कहाँ तक करें। वे यदि अकेले ही खायँ तो भी सन्तोष रहे, परन्तु अन्य बालकों तथा वानरों को खिलाकर शेष बचे हुए गोरस को फैला देते हैं, इससे दुःख होता है। वे हमारे रसोई तथा पूजा के स्थान को मलमूत्र से भ्रष्ट कर देते हैं, अतः हे यशोदा! तुम अपने कन्हैया को ऐसा करने से रोक दो। ऐसे अवसरों पर श्री कन्हैयाजी बड़ी दीनता का प्रदर्शन करते हुए यशोदाजी से कहते थे—"हे मैया! ये गोपियाँ मुझे मिथ्या दोष देती हैं। किसी अन्य ग्वाल-बाल ने इनका दूध-दही खा लिया होगा। इन्हें मेरा नाम लेने की ऐसी आदत पड़ गई है कि ये प्रतिदिन तुम्हारे पास आकर मेरी चुगली खाती हैं। भला तुम्हीं सोचो कि मैंने इनके छींके पर रक्खी हुई वस्तुएँ किस प्रकार उतारी होंगी। मैं तो अपना घर छोड़कर कभी बाहर निकलता ही नहीं, फिर भी ये सब प्रतिदिन सबेरे ही सबेरे आकर तुमसे मेरी बुराई करती हैं। हे माता! ये सब गोपियाँ मुझे यमुना-तट अथवा घाट-बाट से पकड़कर जबर्दस्ती अपने घर ले जाती हैं। उस समय कोई मेरा मुँह चूमती है, कोई कपड़े खींचती है, कोई टोपी उतार लेती है तथा कोई मेरे गाल में थप्पड़ मारती हुई यह कहती है कि तू हमें अपना नाच दिखला। हे मैया! इस प्रकार ये सब मुझे बहुत दुःख देती हैं। अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि हम लोग इस गाँव को छोड़कर किसी दूसरी जगह जा बसें।" श्री नन्द-नन्दन के ऐसे मीठे वचन सुनकर यशोदाजी गोपियों की बातों पर विश्वास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं करती थीं। वे कन्हैयाजी को गोद में उठाकर हृदय से लगा लेती थीं। उस समय सब गोपियाँ भी श्री कृष्णचन्द्रजी की प्यारभरी मीठी-मीठी बातें सुन, अपना उलाहना भूलकर, हँसती हुई घर लौट जाती थीं, परन्तु श्री बाँके-विहारी यशोदा के समझाने पर भी माखन की चोरी करना नहीं छोड़ते थे। वे अँधेरे घर में भी अपने चन्द्रमा-रूपी मुख के प्रकाश द्वारा माखन आदि को ढूँढ़कर खा जाते थे। जब गोपियाँ उलाहना देने के लिए आतीं, उस समय यशोदाजी उन्हें उत्तर देती थीं कि यह काम मेरे कन्हैया का नहीं है। भला तुम्हीं बताओ कि वह छींके पर किस प्रकार पहुँचता होगा? यह तो किसी अन्य ग्वाले की करतूत है। तुम मेरे लाल को व्यर्थ ही दोष लगाती हो। यदि इतने पर भी न मानो तो तुम्हारा जितना गोरस आदि चोरी गया हो, वह मेरे यहाँ से ले जाओ। हे गोपियो! यदि तुम सच्ची हो तो माखन चुराते समय मेरे लाल को क्यों नहीं पकड़ा। नन्दरानी के ऐसे वचन सुनकर सब गोपियाँ अपने-अपने घर लौट जाती थीं।

हे राजन्! कन्हैयाजी के उत्पात को देखकर व्रजबालाओं ने उन्हें चोरी करते समय पकड़ने का विचार किया। अतः जब उन्होंने कभी नन्दलाल को चोरी करते हुए पकड़कर यह पूछा कि तुमने हमारे सूने घर में आकर माखन अथवा दही की मटुकी में हाथ क्यों डाला है, उस समय श्री बाँकेविहारी ने उन्हें यह उत्तर दिया कि हे गोपी! मैं इस घर को अपना घर समझकर धोखे से यहाँ चला आया था। जब मैंने यह देखा कि दही में चिउँटी पड़ी है तो मैंने उसे निकालने के विचार से इस मटुकी में हाथ डाल दिया है। यदि किसी समय कोई व्रजबाला उन्हें दही खाते समय पकड़ लेती थी और यह कहती थी कि अरे माखनचोर! तुम हमारा दही क्यों खा रहे हो? उस समय कन्हैयाजी उसे आँख के इशारे से पास बुलाकर, अपने मुँह में भरे हुए दूध तथा दही का कुल्ला उसके मुख तथा आँखों पर कर देते थे। वह जब तक अपना मुँह पोंछती, तब तक वे भागकर अपने घर आ जाते थे। नन्दरानी कन्हैयाजी को प्रतिदिन यह समझाती थीं कि हे बेटा! मेरे घर में दूध देने-वाली नौ लाख गौएँ हैं अतः तुम किसी पराये घर में जाकर दूध-दही की चोरी मत किया करो। तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह घर में ही ले लिया करो। तुम्हारे द्वारा माखन चोरी करने से गोकुलवाले यह समझते हैं कि मैं तुम्हें ये वस्तुएँ खाने के लिये न देकर भूखा रखती हूँ। जब वे लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाठी द्वारा हाँड़ी में छेद कर देते थे, जिससे उसमें भरा हुआ गोरस नीचे टपकने लगता था। उस समय वे उसे अपनी अँजुली में भरकर बड़े प्रेम से पीते थे। यह दशा देखकर जब कोई गोपी क्रोध करके उनके समीप आती थी, तब उनकी मोहिनी सूरत को देख हँसकर रह जाती थी। कभी-कभी गोपियाँ माखन खिलाने का लालच देकर, ताली बजा-बजाकर श्री कन्हैयाजी को अपने घर में नचाती थीं।

चौ०—सुरमुनि जिनके भेद न पावैं। व्रजबाला सब तिनहिं नचावैं॥
ठुमुकि-ठुमुकि निरतैं श्री श्याम। सबको सुख देवैं अभिराम॥

हे परीक्षित! कभी-कभी गोपियाँ यशोदाजी के पास जाकर यह उलाहना देती थीं कि तुम्हारे मनमोहन ने हमारे दूध-दही को चुराकर खा लिया है तथा अन्य बालकों एवं वानरों को खिलाकर हाँड़ी-मटुकी फोड़ डाली हैं। हम छींकों के ऊपर अपना सामान रखती हैं, तो भी वे नहीं मानते। हम तुम्हारा संकोच कहाँ तक करें। वे यदि अकेले ही खायँ तो भी सन्तोष रहे, परन्तु अन्य बालकों तथा वानरों को खिलाकर शेष बचे हुए गोरस को फैला देते हैं, इससे दुःख होता है। वे हमारे रसोई तथा पूजा के स्थान को मलमूत्र से भ्रष्ट कर देते हैं, अतः हे यशोदा! तुम अपने कन्हैया को ऐसा करने से रोक दो। ऐसे अवसरों पर श्री कन्हैयाजी बड़ी दीनता का प्रदर्शन करते हुए यशोदाजी से कहते थे—"हे मैया! ये गोपियाँ मुझे मिथ्या दोष देती हैं। किसी अन्य ग्वाल-बाल ने इनका दूध-दही खा लिया होगा। इन्हें मेरा नाम लेने की ऐसी आदत पड़ गई है कि ये प्रतिदिन तुम्हारे पास आकर मेरी चुगली खाती हैं। भला तुम्हीं सोचो कि मैंने इनके छींके पर रक्खी हुई वस्तुएँ किस प्रकार उतारी होंगी। मैं तो अपना घर छोड़कर कभी बाहर निकलता ही नहीं, फिर भी ये सब प्रतिदिन सबेरे ही सबेरे आकर तुमसे मेरी बुराई करती हैं। हे माता! ये सब गोपियाँ मुझे यमुना-तट अथवा घाट-बाट से पकड़कर जबर्दस्ती अपने घर ले जाती हैं। उस समय कोई मेरा मुँह चूमती है, कोई कपड़े खींचती है, कोई टोपी उतार लेती है तथा कोई मेरे गाल में थप्पड़ मारती हुई यह कहती है कि तू हमें अपना नाच दिखला। हे मैया! इस प्रकार ये सब मुझे बहुत दुःख देती हैं। अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि हम लोग इस गाँव को छोड़कर किसी दूसरी जगह जा बसें।" श्री नन्द-नन्दन के ऐसे मीठे वचन सुनकर यशोदाजी गोपियों की बातों पर विश्वास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं करती थीं। वे कन्हैयाजी को गोद में उठाकर हृदय से लगा लेती थीं। उस समय सब गोपियाँ भी श्री कृष्णचन्द्रजी की प्यारभरी मीठी-मीठी बातें सुन, अपना उलाहना भूलकर, हँसती हुई घर लौट जाती थीं, परन्तु श्री बाँके-विहारी यशोदा के समझाने पर भी माखन की चोरी करना नहीं छोड़ते थे। वे अँधेरे घर में भी अपने चन्द्रमा-रूपी मुख के प्रकाश द्वारा माखन आदि को ढूँढ़कर खा जाते थे। जब गोपियाँ उलाहना देने के लिए आतीं, उस समय यशोदाजी उन्हें उत्तर देती थीं कि यह काम मेरे कन्हैया का नहीं है। भला तुम्हीं बताओ कि वह छींके पर किस प्रकार पहुँचता होगा? यह तो किसी अन्य ग्वाले की करतूत है। तुम मेरे लाल को व्यर्थ ही दोष लगाती हो। यदि इतने पर भी न मानो तो तुम्हारा जितना गोरस आदि चोरी गया हो, वह मेरे यहाँ से ले जाओ। हे गोपियो! यदि तुम सच्ची हो तो माखन चुराते समय मेरे लाल को क्यों नहीं पकड़ा। नन्दरानी के ऐसे वचन सुनकर सब गोपियाँ अपने-अपने घर लौट जाती थीं।

हे राजन्! कन्हैयाजी के उत्पात को देखकर व्रजबालाओं ने उन्हें चोरी करते समय पकड़ने का विचार किया। अतः जब उन्होंने कभी नन्दलाल को चोरी करते हुए पकड़कर यह पूछा कि तुमने हमारे सूने घर में आकर माखन अथवा दही की मटुकी में हाथ क्यों डाला है, उस समय श्री बाँकेविहारी ने उन्हें यह उत्तर दिया कि हे गोपी! मैं इस घर को अपना घर समझकर धोखे से यहाँ चला आया था। जब मैंने यह देखा कि दही में चिउँटी पड़ी है तो मैंने उसे निकालने के विचार से इस मटुकी में हाथ डाल दिया है। यदि किसी समय कोई व्रजबाला उन्हें दही खाते समय पकड़ लेती थी और यह कहती थी कि अरे माखनचोर! तुम हमारा दही क्यों खा रहे हो? उस समय कन्हैयाजी उसे आँख के इशारे से पास बुलाकर, अपने मुँह में भरे हुए दूध तथा दही का कुल्ला उसके मुख तथा आँखों पर कर देते थे। वह जब तक अपना मुँह पोंछती, तब तक वे भागकर अपने घर आ जाते थे। नन्दरानी कन्हैयाजी को प्रतिदिन यह समझाती थीं कि हे बेटा! मेरे घर में दूध देने-वाली नौ लाख गौएँ हैं अतः तुम किसी पराये घर में जाकर दूध-दही की चोरी मत किया करो। तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह घर में ही ले लिया करो। तुम्हारे द्वारा माखन चोरी करने से गोकुलवाले यह समझते हैं कि मैं तुम्हें ये वस्तुएँ खाने के लिये न देकर भूखा रखती हूँ। जब वे लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हें 'माखनचोर' कहकर पुकारते हैं उस समय लज्जा से किसीको अपना मुँह नहीं दिखा पाती। हे लाल! जब हाट में दूध-दही बेचनेवाली ग्वालिनें मेरे घर आकर तेरा उलाहना देती हैं, तब मैं लज्जा से मर जाती हूँ। यदि तू अपने इस स्वभाव को नहीं छोड़ेगा, तो नन्दरायजी तुझे मारेंगे। तू बड़े पिता का पुत्र होकर भी अपना नाम 'चोर' क्यों रखवाता है?" यशोदाजी के यह वचन सुनकर श्री मुरलीमनोहर उत्तर देते—"हे माता! अब मैं गोपियों के घर कभी नहीं जाऊँगा।" इतना कहने पर भी जब श्री श्यामसुन्दर ने दही खाना नहीं छोड़ा तब सब गोपियों ने मिलकर यह निश्चय किया कि एक दिन हम माखनचोर मनमोहन को दही-सहित पकड़कर यशोदा के पास ले जायँ। अस्तु, एक दिन जब श्री कृष्णचन्द्रजी कई ग्वालबालों के साथ किसी व्रजबाला के घर में घुसकर माखन आदि चुराकर खा रहे थे, उस समय कई गोपियों ने मिलकर उन्हें पकड़ लिया। अन्य बालक तो भाग गये, केवल मनमोहन ही वहाँ रह गये। जब वे गोपियाँ उन्हें साथ लेकर यशोदा के पास चलीं तो मार्ग में ही श्री वैकुण्ठनाथ ने यह अचरज किया कि जो गोपी उनका हाथ पकड़े चल रही थी, उसके हाथ में उसी के पति का हाथ पकड़ा दिया तथा उस पुरुष के मुँह में दही लगाकर, आप वहाँ से अन्तर्धान हो गये। परन्तु श्री नारायणजी की इच्छा से उस गोपी को इस भेद का कोई पता नहीं चला। उसके साथ की गोपियों को भी कुछ मालूम नहीं हुआ। जब वह गोपी अन्य व्रजबालाओं के साथ यशोदाजी के पास जाकर यह कहने लगी कि हे यशोदा! तुम्हारे लाला के कारण गोकुल में गोरस नहीं बचता है। ये प्रतिदिन हमारे दही, दूध, माखन आदि को चुराकर खा जाते हैं। जब इन्हें कोई पकड़ता है तो ये बहाना बना देते हैं कि इसने जबर्दस्ती मेरे मुख में माखन लगा दिया है। इसके अतिरिक्त ये जो अन्य उत्पात करते रहते हैं, उन्हें तो हम कह भी नहीं सकतीं। ये प्रत्येक के घर में जाकर गाली देते हैं तथा नित्य होली खेलते हैं। जब हम लोग उलाहना देने के लिए तुम्हारे पास आती हैं, तब तुम भी हमें झूठी ठहरा देती हो। अतः आज हम तुम्हारे लाला को माखन चुराकर खाते समय पकड़कर ले आई हैं; अब तुम जो चाहो, वह करो। गोपियों की ऐसी बातें सुनकर यशोदा ने कहा—"हे सखी! मेरा मनमोहन कहाँ है? तुम अपने चोर का मुख तो देखो, तब तुम्हें स्वयं यह पता चल जायगा कि तुम कहाँ की सच्ची हो। मेरा लाला तो कल से घर के बाहर ही नहीं निकला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है।" यशोदाजी के ऐसे वचन सुनकर जब उस गोपी ने अपने चोर का मुख देखा तो उसे वहाँ श्रीमनमोहन के स्थान पर अपना पति दिखाई दिया। यह चरित्र देखकर गोपी ने उसका हाथ छोड़ दिया तथा मन ही मन लज्जित होकर हँसने लगी। उस समय यशोदाजी ने गोपियों से कहा—"हे गोपियो! तुम मेरे लाला को नित्य ही झूठा दोष लगाती हो। मेरा कन्हैया अभी केवल पाँच वर्ष का है, सो वह चोरी करने योग्य नहीं है। तुम मेरे प्राणाधार से बोलना बन्द कर दो।" गोपियों से इस प्रकार कहकर यशोदाजी ने श्री कृष्णचन्द्रजी से कहा—"हे पुत्र! तू मेरे मना करने पर भी अपने चोरी के स्वभाव को क्यों नहीं छोड़ता है? मेरे घर में सब प्रकार की मेवा-मिठाई भरी पड़ी है, तब तुझे क्या आवश्यकता पड़ी है जो तू पराये घर में जाकर चोरी की वस्तुएँ खावे?"

हे परीक्षित! उस समय श्री कृष्णजी तुतलाते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे माता! तुम इन सबके कहने का विश्वास न करो। ये सब मेरे पीछे-पीछे घूमा करती हैं। कभी मुझे दूध-दही का बर्तन पकड़ाती हैं तो कभी बछड़ा पकड़कर खड़े रहने के लिए कहती हैं। ये मुझसे अपने घर के अनेक काम कराती हैं, फिर भी तुम्हारे पास आकर झूठी चुगली खाती हैं।" श्रीकृष्ण प्यारे के ऐसे वचन सुनकर सब व्रजबालाएँ उनके मुख की ओर देखकर मुस्कुराती हुई अपने-अपने घर को लौट गईं। एक दिन श्री बाँके-बिहारी किसी गोपी के घर माखन चुराने के लिए गये। उस समय वह पलँग पर पड़ी हुई सो रही थी, सो कृष्णचन्द्रजी ने उसकी चोटी चारपाई से बाँध दी। तत्पश्चात् आप अपने सखाओं-सहित सुखपूर्वक दही, माखन आदि खाते रहे। मटुकी के खटकने की आवाज सुनकर जब उसकी नींद खुली तो चोटी बँधी हुई होने कारण वह पड़ी-पड़ी चिल्लाने लगी। उस समय पड़ोस की गोपियों ने आकर श्री श्यामसुन्दर को पकड़ लिया। तदुपरान्त वे यशोदा को उलाहना देने के लिए कृष्णजी को लिये हुए उनके पास पहुँचीं। उन्होंने नन्दरानी से कहा—"हे यशोदा! अब तुम अपने पुत्र के लक्षण देखो। इसने हमारे बर्तन तोड़ डाले तथा हमारी चोटी को चारपाई से बाँधकर सारा माखन खा लिया। यह हम लोगों के वस्त्र खींचकर हमें नंगी कर देता है। इसके मारे अब मार्ग में चलना भी दूभर हो गया है।" जब यशोदा को गोपियों की यह बात सच्ची प्रतीत हुई, तब पहिले तो उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोपियों से यह कहा कि तुम्हारा जितना नुकसान हुआ हो, वह सब मेरे यहाँ से ले जाओ। फिर श्री श्यामसुन्दर से इस प्रकार कहने लगीं—"हे बेटा! तुझे मैंने कई बार समझाया, पर तू अपनी आदत नहीं छोड़ता है। अब मैं तुझे अपने ऊखल से बाँधकर घर में बैठाये रक्खूँगी।" यह सुनकर श्री श्यामजी ने उत्तर दिया—"हे माता! यह गोपी मुझे जबर्दस्ती पकड़कर अपने घर ले गई थी। वहाँ इसने मुझसे अपने घर का सब काम कराया और अब यहाँ उलाहना देने को आ गई है।" श्री श्यामसुन्दर की ऐसी बातें सुनकर यशोदाजी हँसने लगीं तथा सब गोपियाँ भी हँसती हुई अपने घर को लौट गईं।

हे परीक्षित! इस प्रकार त्रिलोकीनाथ श्री कृष्णचन्द्रजी अपनी नई-नई लीलाओं द्वारा माता, पिता तथा व्रजवासियों को आनन्दित करते रहते थे। जो निरंकार प्रभु क्षीर-समुद्र में शयन करते हैं, वे ही इस प्रकार गोपियों के दही-माखन को चुराकर खाते रहते थे। जिन प्रभु के चरण-कमलों का ध्यान ब्रह्मा, शिव आदि देवता आठों प्रहर अपने हृदय में धरते हैं तो भी सहज ही उनका दर्शन प्राप्त नहीं कर पाते, उन्हीं को गोकुल की अहीरिन बाँह पकड़-पकड़कर यशोदाजी के पास ले जाया करती थीं। उन प्रभु के लीला-चरित्र तथा भेद को कोई नहीं जान सकता।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! नन्द-यशोदा ने ऐसा कौन-सा तप किया था, जिसके कारण श्री परब्रह्म प्रभु उनके पुत्र कहलाये तथा उन्हें अपने बाल-चरित्रों द्वारा आनन्द पहुँचाया?" शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! पूर्वजन्म में नन्दजी 'द्रोण' नामक वसुदेवता थे तथा यशोदा 'धरा' नामक उनकी पत्नी थी। उन दोनों ने ब्रह्माजी के आज्ञानुसार बहुत दिनों तक श्री नारायणजी की तपस्या की। उस समय श्रीहरि ने, उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, ब्रह्माजी से यह कहा कि तुम उनके पास जाकर इच्छित वरदान देकर सन्तुष्ट करो। यह सुनकर ब्रह्माजी ने उनके समीप पहुँचकर वरदान माँगने के लिए कहा। तब उन दोनों ने ब्रह्माजी को दण्डवत् करने के उपरान्त यह प्रार्थना की कि आप हमें श्री नारायणजी की भक्ति प्राप्त होने का वरदान दीजिए। उस समय ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि तुम्हें श्रीहरि की ऐसी भक्ति प्राप्त होगी, जैसी दूसरे को मिलनी कठिन है। तुम दोनों मनुष्य-शरीर धारण करके गोकुल में जन्म लो। वहाँ श्री नारा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यणजी अवतार लेकर तुम्हें अपनी बाल-लीला का सुख प्रदान करेंगे। उस वरदान के कारण ही द्रोण ने 'नन्द' का तथा धरा ने 'यशोदा' का जन्म पाकर श्रीहरि की बाल-लीलाओं का आनन्द उठाया था।"

नवाँ अध्याय

ऊखल-बन्धन-लीला

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! एक दिन प्रातःकाल यशोदाजी अन्य गोपियों के साथ अपने घर में दही मथ रही थीं। उस समय मेघ-गर्जन के समान मथानी का शब्द सुनकर श्री श्यामसुन्दरजी नींद से जागकर, मैया-मैया कहकर रोने लगे। जब उनके रोने की आवाज किसी को सुनाई न पड़ी, तब वे स्वयं ही उठकर यशोदाजी के पास जा पहुँचे तथा तोतली बोली में इस प्रकार कहने लगे—"हे मैया! तू घर के काम-काज में ऐसी लगी है कि अभी तक मुझे कलेवा देने भी नहीं आई।" यह कहकर कन्हैयाजी ने मथानी पकड़ ली तथा हाँड़ी में से मक्खन निकाल-निकालकर पृथ्वी पर फेंकने लगे। उस समय यशोदाजी ने झुँझलाकर कहा—"हे पुत्र! तू यह क्या कर रहा है? चल उठ, मैं तुझे कलेवा दूँ।" यह सुनकर कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे माँ! तूने पहिले कलेवा क्यों नहीं दिया? अब मेरी बलाय कलेवा लेगी।" जब यशोदा ने उन्हें बहका-फुसलाकर गोद में उठाया तथा खाने के लिए माखन-मिश्री दिया तब वे उसे प्रसन्न होकर खाने लगे। यशोदा अंचल की ओट कर उन्हें खिलाने लगीं। उस समय श्री कृष्णजी अपनी माता के रत्न-जटित आभूषणों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर प्रसन्न हो रहे थे तथा यशोदाजी उनका मुख-कमल देखकर आनन्द से भर रही थीं। तदुपरान्त श्री कृष्णजी ने अपनी माया से चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफान दिया। यह देख यशोदाजी उन्हें गोद से नीचे उतारकर, दूध देखने चली गईं। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने यह कहकर कि माता को दूध मुझसे अधिक प्यारा है, सब बर्तन फोड़ डाले तथा दही-मट्ठे को पृथ्वी पर गिराकर, मक्खन-भरी मटुकी को लिये अपने सखाओं में जा बिराजे। एक जगह ऊखल औंधा पड़ा था, उसी पर बैठकर, माखन बाँट-बाँटकर खाने लगे। उधर जब यशोदा ने लौटकर दही-मट्ठे को बिखरा देखा तो वे हाथ में छड़ी लेकर मुरलीमनोहर के पास जा पहुँचीं। उन्हें क्रोध में भरे हुए आते देखकर श्री कृष्णचन्द्रजी अपने सखाओं-सहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूर भाग चले। उस समय यशोदा भी उन्हें पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ने लगीं। हे परीक्षित! उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो श्याम मेघ के साथ-साथ बिजली दौड़ रही हो। अस्तु, जब यशोदाजी उन्हें नहीं पकड़ सकीं, तब अन्य गोपियाँ उठ-उठकर उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करने लगीं; परन्तु वे किसी के हाथ नहीं आये। जब यशोदाजी भागते-भागते थक गईं, उस समय श्रीहरि माता को दुखी जानकर स्वयं ही उनके पास आकर खड़े हो गये। तब यशोदा ने क्रोध करके उन्हें बाँधने के निमित्त एक रस्सी मँगवाई। फिर श्री श्यामजी को सुनाते हुए इस प्रकार कहा—"हे मोहन! मैं तुझे समझा-समझाकर हार गई, परन्तु तूने चुरा-चुराकर माखन खाना नहीं छोड़ा। अब मैं तुझे ऊखल में बाँधूँगी।" इतना कहकर जब वे श्री कन्हैयाजी को रस्सी से बाँधने लगीं, तब अन्य गोपियों ने हँसते हुए इस प्रकार कहा—"हे नन्दरानी! अब तक तुम हमें झूठा समझती थी, परन्तु आज अपना नुकसान देखकर तुम्हें भी पता चल गया। इस माखनचोर को ऊखल से बाँधकर तुम ठीक ही कर रही हो।"

हे परीक्षित! जब यशोदाजी श्री श्यामसुन्दर को बाँधते समय रस्सी में गाँठ देने लगीं, उस समय उनकी माया से वह रस्सी दो दो अंगुल छोटी हो गई। तब यशोदाजी ने अन्य गोपियों से दूसरी रस्सी लाने के लिए कहा। उस समय गोपियों ने हँसकर कहा—"इन्होंने हमारा माखन बहुत खाया है, अतः हम इन्हें बाँधने के लिए रस्सी अवश्य लायेंगी।" इस प्रकार कहकर जब सब गोपियाँ अपने-अपने घर से एक-एक रस्सी ले आईं और यशोदाजी उन सब रस्सियों में गाँठ लगाकर कृष्णजी को बाँधने लगीं तो वह रस्सी भी दो अंगुल छोटी रह गई। श्रीहरि की इस महिमा को देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् जब यशोदा तथा अन्य सब गोपियाँ हार मान बैठीं उस समय श्री वैकुण्ठनाथजी एक छोटी-सी रस्सी में ही बँध गये। तब यशोदा ने क्रुद्ध होकर रस्सी का दूसरा छोर ऊखल से बाँध दिया और सब गोपियों को यह शपथ खिला दी कि कान्हा को कोई रस्सी से न खोले। इसके बाद श्री कृष्णजी को उसी प्रकार बँधा हुआ छोड़कर यशोदा तथा अन्य गोपियाँ अपना-अपना काम करने घर चली गईं।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिन श्री नारायणजी की कृपा से संसाररूपी बन्धन कट जाता है, वे ही भक्ति के वश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में होकर इस प्रकार एक छोटी-सी रस्सी में बँध गये। श्री नारायणजी की माया ऐसी प्रबल है कि यशोदा ने उनके मुख में दो बार सम्पूर्ण सृष्टि को देखा था, फिर भी उन्हें न पहिचानकर ऊखल से बाँध दिया।

चौ०—भक्ति विवश है सुरमुनिराई। सन्तत रहे भक्त सुखदाई॥
ते नर पुण्यमूर्ति बड़भागी। जो हरि-भक्ति रहे अनुरागी॥

हे राजन्! जिस समय यशोदाजी श्री श्यामसुन्दर को ऊखल से बाँध रही थीं, उस समय तो सब गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं, परन्तु जब वे ऊखल से बाँधे जा चुके तब वे उन्हें बँधा हुआ देख, अत्यन्त उदास होकर पछताने लगीं। कुछ देर बाद उन्होंने यशोदाजी के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे नन्दरानी! तुमने माखन तथा दही को खाने-लुटाने के कारण श्री श्याम-सुन्दर को ऊखल से बाँधा है, सो यह तो हमीं से अपराध हुआ था, जो हम तुम्हें उलाहना देने के लिए आईं। अब तुम हमारे ऊपर कृपा कर उनका बन्धन खोल दो। हे यशोदा! इस समय हमारे मनमोहन हिचकी भर-भर-कर रो रहे हैं, सो हमसे वज्र का हृदय बनाकर उनका रोना नहीं देखा जाता है।" गोपियों की बात सुनकर यशोदाजी ने झुँझलाकर उत्तर दिया—"हे गोपियो! तुम झूठी प्रीति दिखाने के लिए यहाँ क्यों आई हो? प्रतिदिन तुम्हीं उलाहना देने के लिए आया करती थीं, अतः अब जो हो चुका सो हो चुका; तुम सब अपने-अपने घर को लौट जाओ।" यह सुनकर सब गोपियाँ उदास होकर अपने घर को चली गईं। हे राजन्! उसी समय एक बालक ने बलरामजी के पास जाकर यह समाचार दिया कि आज यशोदाजी ने मनमोहन को ऊखल से बाँध दिया है, सो वे बैठे-बैठे रो रहे हैं। यह सुन-कर बलरामजी श्री श्यामसुन्दर के पास जा पहुँचे और उन्हें बँधा हुआ देखकर रोते हुए कहने लगे—"हे भाई! मैं तुम्हें प्रतिदिन समझाता था कि तुम माखन चुराने के लिए गोपियों के घर मत जाया करो, परन्तु तब तुमने मेरा कहना नहीं माना। अब मैं तुम्हारा बन्धन छुड़ाने के लिए यशोदा मैया को बुलाकर लाता हूँ।" इतना कहकर बलरामजी यशोदा के पास पहुँच, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे माता! तुम मेरे भाई को छोड़ दो। उसके बदले में चाहो तो मुझे ऊखल से बाँध दो। वे तो न जाने तुम्हारे किन जन्मों की तपस्या के कारण अपने बालचरित्र का आनन्द दिखाते हैं और तुम हो कि उन्हें पहिचाने बिना ऊखल से बाँध दिया है।" यह सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यशोदाजी ने उत्तर दिया–"हे बलभद्र ! तू मेरी बात सुन। मुझे आज अच्छी तरह से उसे दण्ड दे लेने दे। मैंने उसे बहुत समझाया, तो भी उसने गोपियों के घर जाना तथा उनका माखन चुराकर खाना नहीं छोड़ा। गोकुल-वासियों ने उसका नाम 'माखनचोर' रख लिया है। अब तू ही बतला कि कौन-सी ऐसी वस्तु है जो उसे घर में खाने को नहीं मिलती है ? इतने पर भी वह पराये घर की चीजों को चुराकर खाता है तथा मेरे कहने पर कुछ ध्यान नहीं देता है। जिस समय गोपियाँ मुझे उलाहना देने आती हैं, उस समय मैं लज्जा के मारे पृथ्वी में गड़ जाती हूँ। वह हर समय, हर स्थान पर, ऊधम मचाता रहता है, कभी घड़ी भर के लिए घर में बैठता ही नहीं। आज मैंने उसे धमकाने के लिए ऊखल से बाँध दिया है, ताकि वह अपनी बुरी आदतों को छोड़ दे। हे बलराम ! मुझे दूध और माखन कन्हैया से अधिक प्यारे नहीं हैं।" तब बलरामजी बोले–"हे मैया ! गोपियाँ तो झूठा उलाहना देने को आती हैं। गोकुल की सभी नारियाँ श्यामसुन्दर से प्रेम करती हैं, सो वे उन्हें देखने के लिए उलाहना देने का बहाना बनाकर तुम्हारे पास आती हैं। हे माता ! यह दही-माखन सब कन्हैया के ही हैं। मुझे तो उसी का बल है, अतः तू उसे छोड़ दे।" यशोदा ने कहा–"तुम दोनों भाइयों की एक-सी सम्मति रहती है, इसीलिए तू उसे छोड़ने के लिए कह रहा है।" इस प्रकार बलरामजी के कहने पर जब यशोदाजी ने श्री कृष्ण-चन्द्र को नहीं छोड़ा तो वे वहाँ से लौटकर श्री श्यामसुन्दर के पास आ पहुँचे और उनसे इस प्रकार कहने लगे–"हे भाई ! तुम्हारी लीला को तुम्हारे बिना अन्य कोई कैसे जान सकता है ? तुम नन्दरानी की भक्ति के हाथों बिक गये हो। तुम पापी तथा अधर्मियों को मारने एवं अपने भक्तों का दुःख दूर करने के लिए अवतार लेते हो। तुम्हारा भक्तों के ऊपर कोई वश नहीं चलता।" इतना कहकर जब बलरामजी चले गये, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में यह विचार किया कि नारद मुनि के शाप के कारण कुबेर देवता के पुत्र 'नलकूबर' तथा 'मणिग्रीव' नन्दजी के द्वार पर आँवले के वृक्ष बनकर खड़े हुए हैं, अतः अब मुझे उनका उद्धार करना चाहिए। उन्हीं के लिए मैंने स्वयं को बँधवाया है।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दसवाँ अध्याय

नलकूबर तथा मणिग्रीव के उद्धार की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! आप उन दोनों वृक्षों का हाल विस्तारपूर्वक वर्णन करने की कृपा करें तथा यह बतावें कि नारदजी ने उन्हें शाप क्यों दिया था?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! पूर्वजन्म में नलकूबर तथा मणिग्रीव कुबेर के पुत्र थे। वे श्री शिवजी की भक्ति से धनाढ्य होकर, कैलाश पर्वत पर रहा करते थे। एक समय वे दोनों अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर वन-विहार करने के लिए गये। वहाँ वे मदिरा पीकर, मतवाले बन, अपनी स्त्रियों सहित नंगे होकर, गङ्गाजी में जल-क्रीड़ा करने लगे। उसी समय वहाँ अचानक नारद ऋषि आ पहुँचे। धन के गर्व में मदान्ध होने के कारण उन्होंने नारदजी को दण्डवत् भी नहीं किया। इतना ही नहीं नारदजी का आगमन भी उन्हें बुरा लगा। यह देखकर नारदजी ने क्रुद्ध होकर अपने मन में विचार किया कि ये धन पाने के कारण काम-क्रोध के वशीभूत होकर किसी को कुछ नहीं समझते हैं। धन पाने से मनुष्य की बुद्धि फिर जाती है, तब वह परस्त्री-गमन, हिंसा एवं जुए में मग्न होता है। वह अपने शरीर को अजर-अमर समझकर यह विचार नहीं करता कि एक न एक दिन उसका नाश अवश्य होगा तथा मृत्यु के उपरान्त उसे या तो कुत्ते अथवा कीड़े-मकोड़े खायेंगे अथवा जलकर राख बन जायगा। धनवान् मनुष्य को उचित है कि वह छोटे-बड़े का विचार रक्खे। गरीब मनुष्यों को अहंकार नहीं होता, क्योंकि उन्हें सदैव अपने पेट भरने की चिन्ता लगी रहती है। मूर्ख मनुष्य संसारी मोह-माया में पड़कर शरीर, धन तथा परिवार का गव करते हैं परन्तु हरि के भक्तजन धनी-दरिद्र तथा सुख-दुःख को एक समान समझते हैं। यह सोचकर नारदजी ने उन दोनों का अभिमान दूर करने के लिए यह विचार किया कि तुम दोनों आँवले के वृक्ष बनकर मर्त्य-लोक में जन्म पाओ, तभी तुम्हें धन का गर्व करने एवं मदिरा पीने का फल प्राप्त होगा। हे मूर्खो! जब तक मनुष्य को स्वयं दुःख नहीं मिलता, तब तक उसे दूसरे जीव का दुःख देखकर दया नहीं आती है। युवावस्था की शोभा धर्म, शील एवं लज्जा से है, सो तुमने इन्हें त्याग रक्खा है। इस कारण तुम्हें इसका दण्ड भोगना पड़ेगा।" हे परीक्षित! नारद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषि के मुख से यह शाप सुनते ही उनका अभिमान दूर हो गया। तब ये दोनों अत्यन्त दीन होकर मुनि के चरणों में गिर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे देवर्षि! इस शाप से हमारा उद्धार किस प्रकार होगा, यह आप हमें बताने की कृपा करें।" उस समय मुनि ने दया करके कहा—"जब श्री कृष्णचन्द्रजी पृथ्वी का भार उतारने के लिए मथुरा में जन्म लेकर, नन्द-यशोदा के घर बाललीला करेंगे, उस समय तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

हे परीक्षित! इस शाप के कारण वे दोनों 'यमलार्जुन' नामक आँवले के वृक्ष बनकर गोकुल में उत्पन्न हुए थे। अस्तु, ऊखल-बन्धन के समय श्री कृष्णचन्द्रजी उन दोनों के उद्धार का स्मरण करके, ऊखल को घसीटते हुए उनके पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने दोनों वृक्षों के बीच में ऊखल को अड़ाकर इस प्रकार का झटका दिया कि वे दोनों जड़ से उखड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन वृक्षों के गिरने का बड़ा भारी शब्द हुआ। तदुपरान्त उनके भीतर से अत्यन्त सुन्दर तथा तेजस्वी दो मनुष्य (कुबेर के पुत्र) प्रकट होकर श्री कृष्णचन्द्रजी को दण्डवत् करने के उपरान्त इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे दीनबन्धो! आपके अतिरिक्त हम अधर्मियों का उद्धार करनेवाला और कौन है? आप जन्म-मरण से परे हैं। आप अपने भक्तों को सुख देने के लिए ही अवतार ग्रहण करते हैं। आपकी माया से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा ब्रह्मा आदि देवता अपने हृदय में आपका ही ध्यान धरते रहते हैं। हे प्रभो! नारदजी ने शाप देकर हमारे ऊपर अत्यन्त कृपा की, जो हमें आपके श्रीचरणों का दर्शन प्राप्त हुआ। जिस प्रकार सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रकाश में सम्पूर्ण वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उसी प्रकार आपका स्मरण करनेवाले व्यक्ति के ज्ञान रूपी नेत्र खुल जाते हैं। जो मनुष्य आपसे विपरीत रहते हैं, उन्हें अन्धा समझना चाहिए।" इस प्रकार स्तुति सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने उनसे कहा—"हे कुबेर-पुत्रो! नारदजी की कृपा से ही तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। अब जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो।" श्रीहरि की अपने ऊपर ऐसी कृपा देखकर वे दोनों हाथ जोड़कर बोले—"हे प्रभो! आपका दर्शन प्राप्त होने पर हमें कोई इच्छा नहीं रही है। अब आप हमें यही वरदान दीजिए कि हमारे हृदय में आपके चरण-कमलों की नवधा भक्ति निरन्तर बनी रहे।" यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उन्हें इच्छित वरदान देकर प्रसन्न किया। तदुपरान्त वे दोनों विमान में बैठकर कुबेरलोक को चले गये।"

ग्यारहवाँ अध्याय

नन्दजी का गोकुल छोड़कर वृन्दावन में निवास करना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जिस समय वे दोनों वृक्ष गिरे, उस समय उनके गिरने का भारी शब्द सुनकर यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ती हुई उस स्थान पर पहुँची, जहाँ वे श्री श्यामसुन्दर को बाँध आई थीं। जब उन्होंने कन्हैयाजी को वहाँ नहीं देखा तो अत्यन्त घबड़ाकर उनका नाम ले-लेकर पुकारने लगीं। तब यशोदाजी का चिल्लाना सुनकर नन्दजी भी दौड़े-दौड़े वहाँ आ पहुँचे। तत्पश्चात् वे श्रीकृष्णजी को ढूँढ़ते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ वे दोनों वृक्ष टूटे पड़े थे। वहाँ जाकर देखा कि उन दोनों वृक्षों के बीच में ऊखल से बँधे हुए श्री कन्हैयाजी एक ओर सिकुड़े हुए बैठे हैं। यह देखकर नन्दजी ने उन्हें ऊखल से खोलकर अपनी गोद में उठा लिया तथा यशोदा के ऊपर क्रोध करते हुए इस प्रकार कहा कि तूने मेरे मनमोहन को ऊखल से क्यों बाँधा था? वह तो आज श्री-नारायणजी ने प्राण बचा लिए अन्यथा न जाने क्या से क्या अनर्थ हो जाता! जब नन्दजी यह कह रहे थे, उस समय श्री श्यामसुन्दर यशोदाजी की ओर कनखियों से देखते हुए अपनी आँखें मलते जा रहे थे। यह देखकर यशोदाजी ने गद्गद होकर, उन्हें नन्दराय की गोदी से लेकर अपनी छाती से चिपटा लिया, मानों किसी सर्प ने अपनी खोई हुई मणि वापिस पा ली हो। उस समय नन्द, उपनन्द तथा अन्य गोपी-ग्वाल वहाँ इकट्ठे होकर इस प्रकार कहने लगे कि ये इतने पुराने वृक्ष बिना आँधी आये ही जड़ से उखड़कर किस प्रकार गिर पड़े? हमें तो यह बड़ा आश्चर्य होता है। उस समय एक ग्वाले ने, जिसने यह चरित्र अपनी आँखों से देखा था, सब लोगों को कह सुनाया; परन्तु किसी ने भी उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। वे सब इस प्रकार कहने लगे कि हमारे नन्हें से मनमोहन इतने बड़े वृक्ष कैसे गिरा सकते हैं? उस समय किसी ग्वाले ने उत्तर दिया—"हो सकता है, ऐसा ही हुआ हो। श्री नारायणजी की माया को उनके अतिरिक्त दूसरा कौन जान सकता है?" उस समय नन्दराय ने ब्राह्मणों तथा याचकों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुलाकर बहुत दान दिया। फिर वे श्री कृष्णजी को अपने कण्ठ से लगाकर इस प्रकार पूछने लगे–"हे बेटा! क्या तुमने भी इन वृक्षों से दो मनुष्यों को निकलते हुए देखा था।" श्री श्यामसुन्दर ने उत्तर दिया–"हे बाबा! मैंने तो किसी को नहीं देखा है।" यह उत्तर पाकर नन्दजी ने उन्हें शरीर की धूल पोंछकर, अपने कण्ठ से लगा लिया। तब श्री कन्हैयाजी कहने लगे–"हे मैया! मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है; क्योंकि आज सबेरे से ही मैंने कुछ नहीं खाया है।" यह सुनकर यशोदाजी ने हँसते हुए माखन, मलाई, मिश्री, मेवा आदि उनके सामने लाकर रख दिये, तब वे अपने सखाओं के साथ प्रसन्न होकर उन्हें खाने लगे।

हे परीक्षित! जब श्री कन्हैयाजी की वर्षगाँठ का दिन आया, तब नन्दजी ने गोकुलवासियों, ब्राह्मणों तथा अपने कुटुम्बियों को बुलाकर सबको बड़े प्रेम से भोजन कराया। तदुपरान्त उपनन्द आदि सभी ग्वालों से इस प्रकार कहा कि हे भाइयो! गोकुल में प्रतिदिन नये-नये उत्पात खड़े होते हैं अतः हमें यहाँ से हटकर किसी दूसरे ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ घास तथा जल का सुख हो। नन्दजी की बात सुनकर उपनन्द ने उत्तर दिया–"हे नन्दराय! यदि हम लोग वृन्दावन में, जहाँ गोवर्द्धन पर्वत है, चलकर रहें तो बहुत अच्छा हो वहाँ सब प्रकार का आराम उपलब्ध है।" जब सब लोगों की इस प्रकार सम्मति हो गई, तब दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में नन्दजी अपने कुटुम्बियों तथा अन्य गोकुल-वासियों के सहित घर की सब वस्तुएँ लेकर वृन्दावन को चल दिए। वहाँ जाकर सन्ध्या के समय सबने वृन्दादेवी का पूजन किया। तत्पश्चात् सब लोग सुखपूर्वक वहीं रहने लगे। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से वृन्दावन में चारों ओर वृक्ष फल-फूलों से भर गये तथा हरी-हरी घास उग आई। सब लोगों ने वहाँ अपने रहने के लिए अच्छे-अच्छे मकान बनवा लिये। वहाँ गौओं के चरने का बहुत अच्छा साधन था। अतः सब लोग आनन्द से रहकर प्रतिदिन श्री कन्हैयाजी की नई-नई लीलाओं को देखकर प्रसन्न हुआ करते थे।

चौ०–नन्द-यशोदा कौ सुख जैसौ। मिल्यौ न काहू कों जग तैसौ।
व्रजवासी सब हाइँ सुखारी। देखत वृन्दा विपिन विहारी॥

हे परीक्षित! जब श्री कृष्णचन्द्रजी पाँच वर्ष के हुए तो उन्होंने यशोदाजी से यह कहा कि हे मैया! हम भी बछड़ा चराने के लिए वन में जायँगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री परशुराम-सहस्रार्जुन-युद्ध

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम बलदाऊ से यह कह दो कि वे मुझे वन में कभी अकेला नहीं छोड़ें। यह सुनकर यशोदा ने उत्तर दिया–"हे कन्हैया ! हमारे घर में चाकरों की कमी नहीं है, सो तुझे बछड़े चराने के लिए वन में जाने की क्या पड़ी है ? तू मेरी आँखों के सामने से एक पल के लिए भी दूर मत हो।" उस समय श्री मनमोहन रूठते हुए यह बोले–"हे मैया ! यदि तू मुझे बछड़े चराने को वन में नहीं जाने देगी, तो मैं माखन-रोटी नहीं खाऊँगा।" उनका यह हठ देखकर नन्दरानी ने ब्राह्मणों को बुलवाकर शुभ साइत दिखाई। फिर ग्वाल-बालों को बुलाकर इस प्रकार कहा कि तुम लोग श्यामसुन्दर और बलराम को अपने साथ गैया चराने के लिए ले जाया करो। परन्तु तुम किसी समय वन में दूर मत निकल जाया करना और साँझ होने से पहिले ही दोनों भाइयों को लेकर घर लौट आया करना। इन दोनों को कभी अकेला मत छोड़ना, हर समय अपने साथ ही रखना।" इतना कहकर नन्दरानी ने श्याम-बलराम को उनके साथ कर दिया। तब वे प्रतिदिन यमुना-तट पर पहुँचकर गौएँ चराने तथा खेलने लगे।

चौ०–गौ चरावें नटवर नागर। जो हैं चौदह भुवन उजागर॥
मोर मुकुट मस्तक पर सोहै। कर मुरली सबके मन मोहै॥
पीताम्बर की छटा सुहावै। नील गगन सम बदन दिखावै॥
माखन रोटी छाक लुटावैं। सब ग्वालन सँग मोद मनावैं॥

हे परीक्षित ! जब कंस को यह समाचार मिला कि नन्दराय सब गोप-ग्वालों सहित गोकुल छोड़कर, वृन्दावन में रहने लगे हैं, तो उसने 'वत्सासुर' नामक राक्षस को बड़ी विनय करके श्री कन्हैया जी को मारने के हेतु वृन्दावन भेजा। वह राक्षस बछड़े का रूप बनाकर वृन्दावन में जा पहुँचा तथा उन सब गौ-बछड़ों के साथ मिलकर चरने लगा जिन्हें श्री कन्हैयाजी चराया करते थे। जब अन्य गौ-बछड़ों ने उस राक्षस को अपने बीच में देखा तो वे भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उस समय श्री कन्हैयाजी ने उसे पहिचानकर बलरामजी को संकेत से समझाते हुए इस प्रकार कहा कि "हे भाई ! यह कंस का भेजा हुआ राक्षस बछड़ा बनकर मुझे मारने के लिये यहाँ आया है।" यह समझकर बलरामजी उस समय चुप हो रहे। तदुपरान्त वह राक्षस अपनी घात लगाकर चरता हुआ श्री कृष्णजी के पास आ पहुँचा। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने उसका पिछला पाँव पकड़कर, घुमाते हुए एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृक्ष की जड़ पर ऐसा पटका कि वहीं उसके प्राण निकल गये। उस समय सब देवता आकाश में आकर श्री बाँकेविहारी के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। उस घटना को देखकर सब ग्वालबालों ने कृष्णजी के पास आकर इस प्रकार कहा कि हे नन्दलाल! तुमने यह बहुत अच्छा किया जो इस कपटरूपधारी राक्षस को मार डाला, अन्यथा यह हम सब लोगों को खा जाता। इतना कहकर सबके सब फिर खेलने में मग्न हो गये। जब कंस ने वत्सासुर के मरने का हाल जाना, तो बहुत चिंता करके उसके भाई 'बकासुर' को वृन्दावन में भेजा। सो वह बगुले का रूप बनाकर यमुना नदी के तट पर पर्वत के समान इस घात में आ बैठा कि यदि इधर कन्हैयाजी आ जायँ तो मैं उन्हें मछली के समान निगल जाऊँ। उस राक्षस को किसी ग्वालबाल ने नहीं पहिचाना परन्तु भगवान् त्रिलोकीनाथ उसके भेद को जान गये। तदुपरान्त सब ग्वालबालों ने श्री कृष्णजी से इस प्रकार कहा—"हे भैया कन्हैया! हमने अपने जीवन में इतना बड़ा बगुला कभी नहीं देखा। यह कौन है? तुम जानते हो तो बताओ?" श्री बाँकेबिहारी ने उत्तर दिया—"हे भाइयों! तुम लोग धैर्य रक्खो, मैं इस बगुलेरूपी राक्षस को मार डालूँगा।" इतना कहकर श्री मुरलीमनोहर ग्वालबालों के रोकने पर भी उस बगुले के पास चले गये, तब उसने श्री कन्हैयाजी को अपनी चोंच से उठाकर पेट के भीतर रख लिया, फिर प्रसन्न होकर इस प्रकार सोचने लगा कि आज मैंने अपने भाई का बदला चुका लिया। उस समय सब गोप-ग्वाले कन्हैयाजी के निगले जाने पर अत्यन्त विलाप करते हुए आपस में इस प्रकार विचार करने लगे कि हम लोगों को यशोदाजी के पास जाकर सब हाल कह देना चाहिए। इस समय बलराम का भी कहीं पता नहीं है। वे होते तो कोई न कोई उपाय अवश्य करते। यह सोचकर वे सभी भयभीत होकर वहाँ से भाग चले। मार्ग में उनकी भेंट बलरामजी से हो गई। तब ग्वालों ने उन्हें सब समाचार सुनाते हुए यह कहा कि हमारे रोकने पर भी कन्हैया उस बगुले के पास चले गये, वह उन्हें निगल गया है। यह सुनकर बलरामजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"तुम लोग भयभीत मत होओ। कन्हैया उसको मारकर अभी तुम्हारे पास लौट आते हैं।" यह सुनकर ग्वाले ठहर गये। उस समय श्री-कृष्णजी ने उन्हें दुखी देखकर बकासुर के पेट के भीतर ऐसी ज्वाला उत्पन्न कर दी कि उसका सम्पूर्ण शरीर जलने लगा। तब उसने व्याकुल होकर श्री-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरि को अपने पेट से उगल कर बाहर निकाल दिया। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने बाहर आकर उसकी चोंच का निचला भाग तो अपने पैर से दबा लिया और ऊपर के भाग को हाथ से पकड़कर उसे बीच में से चीर दिया। इस प्रकार देखते-देखते ही उस राक्षस की मृत्यु हो गई। उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर बाजे बजाते हुए श्रीहरि के ऊपर पुष्प वर्षा की।

हे परीक्षित! बकासुर ने मरते समय बड़ा भारी शब्द किया था, उसे सुनकर बलरामजी ने सभी ग्वालों से कहा कि कन्हैया ने उस बगुलेरूपी राक्षस को मारकर गिराया है, अतः अब हमें उसके पास चलना चाहिए। यह सुनकर जब सब ग्वाले वहाँ पहुँचे, तो श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें बताया कि मैंने इसे चोंच फाड़कर मार गिराया है। उसे देखकर सब ग्वालबाल श्री नारायणजी की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभु! आज आपने ही कृपा करके कन्हैयाजी के प्राण बचाये हैं। ये जब से पैदा हुए हैं, तब से इन्होंने अनेक राक्षसों को मार गिराया है, इससे पता चलता है कि इन्हें मारनेवाला तीनों लोकों में कोई नहीं है। हमारे धन्य भाग्य हैं जो हम लोग इनके सखा कहलाते हैं। तदुपरान्त सन्ध्या होने पर श्री श्यामसुन्दर सब ग्वालबालों तथा बछड़ों को साथ लेकर बलरामजी सहित हँसते-खेलते हुए घर को लौट आये। उस समय उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर सब व्रजबालाएँ अपने-अपने घर से बाहर निकल कर श्री श्यामसुन्दर की छबि देखकर प्रसन्नता प्राप्त करने लगीं। घर आकर ग्वालबालों ने अपनी माताओं तथा यशोदाजी आदि से वन में वत्सासुर तथा बकासुर के मारे जाने का सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर यशोदा मैया श्री कन्हैयाजी की बार-बार बलैया लेकर प्रभु से इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं कि हे स्वामी! आप ही मेरे कन्हैया के रक्षक हैं। जब से यह जन्मा है, तभी से राक्षस इसके पीछे पड़े हैं। अतः जिस प्रकार आप इसे अब तक बचाते रहे हैं, उसी प्रकार आगे भी कृपादृष्टि बनाये रहें।

हे परीक्षित! इस घटना को सुनकर नन्दजी ने ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत-सा दान देकर कहा कि हम लोग गोकुल छोड़कर वृन्दावन चले आये, उस पर भी राक्षस हमें चैन नहीं लेने देते हैं। अब इस गाँव को भी छोड़कर कहाँ चले जायँ। श्रीहरि की कृपा तथा कुल देवताओं के आशीर्वाद से आज मेरे प्राणप्यारे के प्राण बचे, अन्यथा राक्षस न जाने क्या कर बैठते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय यशोदाजी ने श्री कृष्णजी को समझाते हुए कहा—"हे बेटा! तुम्हारी घात में अनेक राक्षस लगे रहते हैं, सो तुम वन में मत जाया करो।" यह सुनकर कन्हैयाजी ने उत्तर दिया—"हे मैया! साथ के ग्वालबाल मुझे वन में अकेला छोड़ देते हैं तथा मैं उनके साथ रहकर बहुत दुःख पाता हूँ, सो अब वन में बछड़ा चराने मेरी बलाय जाय। तू मुझे चकई-भँवरा मँगा दे, मैं उसे लेकर गाँव में ही खेला करूँगा।" इस प्रकार के तोतले व मीठे वचन कहकर श्री कन्हैयाजी ने पलभर में ही माता के हृदय की चिन्ता दूर कर दी। तब यशोदा ने प्रसन्न होकर उनके लिए चकई-भँवरा मँगवा दिया। उन्हें लेकर श्री कृष्णजी ग्वालबालों के साथ खेलने लगे।

हे परीक्षित! गोपियों को श्री कृष्णजी से ऐसी प्रीति थी कि वे उन्हें देखे बिना एक क्षण भी नहीं रहती थीं। अतः जब कन्हैयाजी चकई खेलते थे, उस समय वे उनके पास जाकर खड़ी हो जाती थीं। जब कभी नन्दलालजी अपनी चकई को गोपियों के गले के आभूषणों में फँसाकर उन्हें खींचते थे, तब वे प्रकट में तो उन्हें गालियाँ देती थीं, परन्तु मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होती थीं। श्री कृष्णजी जब किसी अहिरिन से अन्न के बदले में जामुन अथवा फल लेते थे तो वह अन्न उनकी कृपा से मोती तथा रत्न आदि हो जाता था। अतः अनेक व्रजबालाएँ अपनी चीजें बेचने के लिए उन्हीं के पास आया करती थीं। इस प्रकार श्री श्यामसुन्दर नित्य नवीन लीलाएँ करके व्रजवासियों को प्रसन्न बनाये रहते थे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! उन ग्वालबालों ने अपने पूर्वजन्म में बड़ा पुण्य किया था, इसी लिए ब्रह्मा तथा शिवजी के ध्यान में भी शीघ्रता से न आनेवाले श्री परब्रह्म प्रभु उनके साथ सखा बनकर खेलते रहते थे तथा अपनी लीलाओं से हर समय उन्हें आनन्द पहुँचाया करते थे।"

बारहवाँ अध्याय

अघासुर-वध की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! एक दिन श्री कन्हैयाजी यमुना नदी के तट पर खेलने गये। उस समय वे पीताम्बर पहने, उपरना ओढ़े, मस्तक पर कीट-मुकुट धारण किए, कुण्डल पहने तथा हाथ में लकुटिया लिए, अपना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक हाथ सखा के कन्धे पर रक्खे, नटवर रूप बनाये खड़े थे। उसी समय वृषभानु की दुलारी, लक्ष्मीजी की अवतार, परम सुन्दरी, आठ वर्ष की आयु-वाली 'राधिका' लली भी स्नान करने के लिए यमुना नदी पर आई। जब उसकी श्री श्यामसुन्दर से आँखें मिलीं तो पूर्व जन्म की प्रीति याद करके वह श्री कृष्णजी के ऊपर मोहित हो गई तथा नन्दनन्दन के हृदय में भी उसके प्रति प्रीति जाग उठी। इस प्रकार जब दोनों के हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ तो बाँकेविहारी ने उससे हँसकर पूछा—"हे सुन्दरी! तुम्हारा नाम क्या है, और तुम किसकी पुत्री हो? हमने तुम्हें आज से पहिले यहाँ कभी नहीं देखा।" श्री नटवर नागर की ऐसी प्रीति भरी बातें सुनकर उसने उत्तर दिया—"हे ललाजू! मैं वृषभानु की पुत्री हूँ। मेरा नाम 'राधिका' है। मैं अपने सखियों के साथ ही खेलती रहती हूँ। कभी घर से बाहर नहीं निकलती, इसी लिए तुमने मुझे नहीं देखा होगा। मैंने बहुत दिनों से यह सुन रक्खा था कि नन्दरायजी का बेटा माखन चुराकर खाता है, सो आज मैंने तुम्हें देख लिया। तुम्हीं तो नन्द के बेटे हो न?" इस पर श्री कृष्णजी ने हँसकर कहा—"परन्तु मैंने तुम्हारा क्या चुराया है? हे राधे! मेरा मन तुम्हारे साथ खेलने को चाहता है, सो तुम घड़ी दो घड़ी के लिए यहाँ आकर मेरे साथ खेला करो।" श्री घनश्याम की ऐसी मीठी-मीठी प्यारी बातें सुनकर राधिका लली अन्तः-करण से तो उन पर आसक्त हो ही गई, परन्तु प्रकट में कुछ नहीं कहा। फिर वह सैन चलाती हुई, मनमोहन से बिदा होकर चली गई।

हे परीक्षित! सन्ध्या होने पर राधिका अपनी माता से दूध दुहने का बहाना करके अपने प्यारे श्यामसुन्दर से भेंट करने के लिए खिरके में आ पहुँची। जब वहाँ पर उसकी भेंट श्री कृष्णजी से हुई तब श्री मनमोहन ने अपनी माया से बादल की घटा उत्पन्न करके, अँधेरे में उससे प्रेमपूर्वक बातें कीं। जब राधा विलम्ब हुआ जानकर घबड़ाती हुई, अपने घर को लौटने को हुई तब श्री कन्हैयाजी ने उसकी चुनरी तो आप ओढ़ ली और अपना पीताम्बर उसे दे दिया। जब श्री कृष्णजी उस चुनरी को ओढ़े हुए अपने घर आये, तब यशोदाजी ने उसे देखकर यह समझा कि यह किसी गोपी से प्रीति करके उसकी चुनरी ले आया है। उस समय अन्तर्यामी प्रभु ने अपनी माता के मन का हाल जानकर इस प्रकार कहा—"हे मैया! आज जब मैं यमुना तट पर गौओं को पानी पिलाने के लिए गया, उस समय वहाँ एक गोपी अपनी चुनरी किनारे पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रखकर नदी में स्नान कर रही थी। तभी एक गौ वहाँ से भागने लगी। जब मैं उस गौ को घेरने के लिए गया, तब उस गोपी ने डर के मारे जल्दी में मेरे पीताम्बर को, जो वहीं किनारे पर रक्खा हुआ था, स्वयं ओढ़ लिया और अपनी यह चुनरी वहीं छोड़कर चली गई। हे मैया! मैं उस गोपी को जानता हूँ, सो मैं अभी उसे यह चुनरी लौटाकर अपना पीताम्बर लिए आता हूँ।" इतना कहकर श्री कृष्णजी घरसे बाहर निकल आये। फिर अपनी माया से उस चुनरी को पीताम्बर बनाकर कुछ देर बाद घर लौट आये। फिर यशोदाजी के पास जाकर बोले कि हे मैया! मैं अपना पीताम्बर ले आया हूँ। यशोदाजी उनकी बात सच मानकर चुप रह गईं।

हे परीक्षित! उधर जब राधा श्री कृष्णचन्द्रजी का पीताम्बर ओढ़े हुए अपने द्वार पर पहुँची तो उसने घबड़ाई हुई आवाज में अपनी माता 'कीर्ति' को पुकारा। उसका बोल सुनकर कीर्ति दौड़ी हुई बाहर निकली तथा अपनी पुत्री को घबड़ाई हुई देखकर कहने लगी—"हे बेटी! अभी तो तू अपने घर से अच्छी-भली गई थी, अभी हाल ही में तुझे क्या हो गया है?" यह सुनकर राधा ने उत्तर दिया—"हे मैया! एक लड़की, जिसका नाम मैं नहीं जानती, मेरे साथ-साथ चली आ रही थी, उसे मार्ग में साँप ने काट लिया, अतः वह अचेत होकर वहीं गिर पड़ी। उसके भय से मैं भी भयभीत हो गई। जब नन्द के बेटे ने वहाँ आकर उसकी झाड़-फूँक की, तब वह अच्छी हो गई। फिर मैं भागती हुई यहाँ चली आई हूँ।" यह सुनकर कीर्ति ने राधा को अपने कण्ठ से लगाते हुए कहा—"हे बेटी! तेरे भाग्य अच्छे थे, जो श्री नारायणजी ने तुझे मृत्यु के हाथ से बचा लिया। मैं तुझे बार-बार टोकती हूँ कि तू यमुना किनारे नहाने अथवा खेलने के लिए मत जाया कर, परन्तु तू कभी नहीं मानती। कभी खिरक में दूध दुहने के लिए जाती है, तो कभी यमुना पर पहुँच जाती है। तू खेलते समय धरती को देखकर अपने पाँव नहीं रखती। अब तू बाहर खेलने के लिए कहीं मत जाया कर।" माता के ऐसे वचन सुनकर राधा अपने मन में सोचने लगी कि आज मैंने अपनी माता से छल किया है। फिर उसने श्री श्यामसुन्दर का ध्यान हृदय में रखकर कीर्ति से कहा—"हे माता! अब मैं कहीं बाहर न जाकर अपने घर और गाँव में ही खेला करूँगी।

हे परीक्षित! राधा के मन में श्री बाँकेविहारी की छवि ऐसी बस गई थी कि उन्हें बिना देखे चैन ही नहीं पड़ता था, इसलिए वह तीसरे दिन फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूध दुहने का बहाना करके श्री कन्हैयाजी के घर जा पहुँची तथा उन्हें बाहर ही से आवाज देकर बुलाने लगी। लज्जा के कारण भीतर नहीं गई। उस समय राधा की आवाज सुनकर श्री बाँकेविहारी ने यशोदाजी से कहा–"हे मैया! मैं कल यमुना किनारे मार्ग भूल गया था, उस समय एक गोपी मेरा हाथ पकड़कर मुझे गाँव में पहुँचा गई। यदि वह न मिलती तो न जाने मैं कहाँ पहुँच जाता। वही गोपी आज मेरे साथ खेलने को आई है, परन्तु तुम्हारे भय से घर के भीतर नहीं आ रही है। अतः तुम उसे यहाँ बुलाकर देखो।" इतना कहकर श्री श्यामजी ने यशोदा के ऊपर ऐसी माया फैला दी कि उसे भी राधिका के प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई। तब उन्होंने कन्हैयाजी से इस प्रकार कहा–"हे बेटा! तू उसे भीतर बुला ला।" यह सुनकर बाँकेविहारी राधा को घर के भीतर ले आये। उस समय उसकी सुन्दरता को देखकर यशोदाजी ने उसे अपने पास बैठाकर पूछा–"हे बेटी! तू किस गाँव में रहती है? मैंने तुझे आज से पहिले कभी नहीं देखा। तेरे माता-पिता का क्या नाम है? कल मेरा कन्हैया जब राह भूल गया था, उस समय तू उसे गाँव में ले आई। यह तूने बहुत अच्छा किया। मैं तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ।" नन्दरानी के ऐसे वचन सुनकर राधा ने उत्तर दिया–"हे मैया! मेरा नाम 'राधा' है। मैं वृषभानु की पुत्री हूँ। मैंने तुम्हें यमुना के तट पर कई बार देखा है और वहीं तुमसे भेंट भी की है, परन्तु इस समय तुम मुझे पहिचान नहीं रही हो।" यह सुनकर नन्दरानी ने कहा–"हे बेटी! अब मैं समझ गई। तेरी मा बड़ी कुलवन्ती है तथा तेरा पिता वृषभानु बहुत खोटा है।" यह सुनकर राधा ने पूछा–"मेरे पिता ने तुम्हारे साथ क्या बुराई की?" राधा के ऐसे मीठे वचन सुनकर यशोदा ने प्रसन्न होकर उसे अपने कंठ से लगा लिया और मन में इस प्रकार विचार करने लगीं कि यदि इस कन्या का विवाह मेरे मनमोहन के साथ होता तो बहुत ठीक होता। तत्पश्चात् नन्दरानी ने राधा के बाल गूँथकर शृङ्गार किया तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर, उसकी गोद में मेवा, मिठाई, तिल-चावली आदि डाल कर कहा–"हे राधा! तू मेरे कन्हैया के साथ खेला कर।" यह सुनते ही राधा प्रसन्न होकर श्री श्यामसुन्दर के साथ खेलने लगी।

हे परीक्षित! राधा तथा कृष्ण ऐसे सुन्दर थे कि उनकी सुन्दरता का वर्णन शेषजी तथा गणेशजी भी नहीं कर सकते हैं। अस्तु, जब यशोदा ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें खेलते हुए देखा तो अत्यन्त प्रसन्न होकर राधा से इस प्रकार कहा–"हे बेटी ! तू प्रतिदिन यहाँ आकर मेरे कन्हैया के साथ खेला कर।" उस समय श्री श्यामसुन्दर भी हँसते हुए राधिका से बोले–"हे राधे ! तू लाज छोड़कर यहाँ खेलने आया कर। तेरे साथ खेलने से मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न होता है।" यह बात सुनकर, राधारानी कुछ देर बाद मुस्कुराती हुई अपने घर चली गई। जब वह शृङ्गार किए हुए अपने घर पहुँची, उस समय उसकी माता कीर्ति ने इस प्रकार कहा–"हे राधा ! तू कहाँ चली गई थी ? तेरा यह शृङ्गार किसने किया है ?" राधा ने उत्तर दिया–"हे मैया ! मैं नन्दरानी के घर गई थी। उन्होंने तुम्हारा तथा पिता का नाम पूछकर मुझे बहुत प्यार किया तथा मेरा इस प्रकार शृङ्गार कर दिया है। हे माँ! उन्होंने मेरी गोद में तिल-चावली तथा मेवा-मिठाई डालकर मुझे विदा कर दिया। उन्होंने तुम्हारे प्रति हँसी करते हुए तुम्हें गाली भी दी थी।" राधा के मुख से यह वचन सुनकर कीर्ति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस समाचार को पाकर बरसाने की अन्य गोपियाँ यशोदा के प्रति हँसी करती हुई उन्हें गा-बजाकर गाली देने लगीं। उस समय नन्दरानी के मन का हाल जानकर कीर्ति ने सब गोपियों से कहा–"हे सखियो ! मेरी बेटी राधा दामिनी के समान है और नन्दरानी का पुत्र मनमोहन घनश्याम के समान सुन्दर है। ये दोनों ही परस्पर विवाह योग्य हैं।" कीर्ति के ऐसे वचन सुनकर अन्य सब गोपियों को भी यह अभिलाषा हुई कि यदि राधा का विवाह श्यामसुन्दर के साथ हो जाय तो बहुत अच्छी जोड़ी रहेगी। तदुपरान्त कीर्ति ने अपने पति वृषभानु से इस प्रकार कहा–"हे स्वामी ! मेरी सम्मति में यदि राधा का मोहन के साथ विवाह कर दिया जाय तो बहुत अच्छा रहेगा।" यह सुनकर वृषभानु को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

हे परीक्षित ! इस प्रकार राधा प्रतिदिन नन्दजी के घर जाकर श्री श्याम-सुन्दर के साथ खेला करती थी। वे दोनों परस्पर अत्यन्त प्रीति रखते थे। जब कभी राधा श्री कृष्णचन्द्रजी से अपनी गायों का दूध दुह देने के लिए कहती, तो वे दुह दिया करते थे। जिस समय श्री कृष्णजी गौओं का दूध दुहते थे, उस समय की शोभा किसी भी प्रकार नहीं कही जा सकती। एक समय श्यामसुन्दर से दूध दुहवा कर जब राधा अपने घर को जा रही थी, उसी समय श्री कृष्णजी उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिये। उस मुस्कान पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राधा अपना तन-मन निछावर कर बैठी। जब मार्ग में अन्य सखियों ने राधा से यह पूछा कि गौ दुहनेवाले ग्वाले कहाँ चले गये, जो तूने श्री कृष्ण से दूध दुहाया है, तब श्री श्यामसुन्दर का नाम कानों में पड़ते ही राधा अचेत होकर पृथ्वी पर ऐसी गिरी कि उसके हाथ से दूध का बर्तन छूटकर नीचे गिर पड़ा। उन्होंने गिरते समय गोपियों से यह कहा कि मुझे काले साँप ने काट खाया है। यह देखकर गोपियाँ उसे उठाकर कीर्ति के पास ले आईं और उसे साँप द्वारा काटे जाने का हाल कह सुनाया। कीर्ति ने बहुत झाड़-फूँक करनेवाले गुणियों को बुलाया, परंतु राधा को तो मोहनरूपी साँप ने डसा था, इसलिए उनके यन्त्र-मन्त्र कुछ काम न कर सके। यह देखकर राधा की कुछ सखियों ने, जो राधा-कृष्ण की प्रीति का हाल जानती थीं, कीर्ति से यह कहा कि नन्दरानी का बेटा श्यामसुन्दर बड़ा गुणी है, वह साँप के काटे का पलभर में ठीक कर देता है, सो तुम उसे बुलवा लो। वह राधा को ठीक कर देगा। यह सुनकर कीर्ति ने कहा—"हे गोपियो! एक दिन राधा ने भी मुझे यह बताया था कि एक बार जब किसी लड़की को साँप ने काट खाया था, उस समय नन्द के बेटे ने उसे ठीक कर दिया था।" इतना कहकर कीर्ति दौड़ती हुई यशोदा के पास जा पहुँची तथा उससे इस प्रकार कहने लगी—"हे नन्दरानी! मेरी बेटी को काले साँप ने काट खाया है, सो तुम अपने बेटे कन्हैया को मेरे साथ कर दो, वह उसे मन्त्र पढ़ कर ठीक कर देगा।" यह सुनकर यशोदा ने उत्तर दिया—"हे बहिन! वह अज्ञानी बालक यन्त्र-मन्त्र को क्या जाने? तुम किसी गुणी को बुलाकर दिखाओ। मैंने तो आज तक कभी भी उसके यन्त्र-मन्त्र की कोई बात नहीं सुनी है।" तब कीर्ति ने कहा—"हे नन्दरानी! मैंने एक बार राधा के मुख से एक लड़की को सर्प द्वारा काटे जाने तथा तुम्हारे पुत्र द्वारा उसे ठीक कर दिए जाने का हाल सुना था; इसलिए मैं जानती हूँ कि तुम्हारा बेटा बहुत गुणी है। तुम उसे दया करके मेरे साथ भेज दो।"

हे परीक्षित! 'ललिता' नामक एक सखी श्री श्यामसुन्दर और राधा की प्रीति का हाल जानती थी। अतः वह कीर्ति की बातें सुनकर उस स्थान पर जा पहुँची, जहाँ श्री कृष्णजी खेल रहे थे। उसने मनमोहन के पास पहुँचकर इस प्रकार कहा—"हे नन्द के लला! आज सबेरे तुमने जिसकी गौ दुही थी, वह इस समय अचेत पड़ी हुई है। जब कोई तुम्हारा नाम लेता है, तब वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ देर को आँखें खोलती है। उसने अचेत होकर गिरते समय यह कहा था कि मुझे काले साँप ने काटा है, परन्तु किसी भी गुणी का कोई यन्त्र-मन्त्र उसके ऊपर असर नहीं कर रहा है। इसलिए अब तुम चलकर अपनी कृपा-दृष्टि से उसका विष उतार दो। हे श्याम! तुम्हारे श्याम रंग को देखकर मैं यह समझती हूँ कि तुम्हारे इस रंग की विष-लहर ही उसे चढ़ रही है। अब तुम शीघ्रतापूर्वक चलकर उसका वह विष उतार दो। उसके हृदय में तुम्हारे विरह की आग जल रही है। अतः तुम अपने चन्द्रमुख की शीतलता से उसे शान्त कर दो। यदि तुम उसे नहीं जिलाओगे तो हम नन्दजी के द्वार पर जाकर अपने प्राण दे देंगी। उस डसी हुई राधा की माँ कीर्ति तुम्हें बुलाने के लिए तुम्हारे घर आई है।" ललिता के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री नन्दनन्दन ने मुस्कुराते हुए इस प्रकार उत्तर दिया—"हे सखी! राधा को यदि काले सर्प ने काटा है तो मैं उसे चंगा कर दूँगा। तुम चिन्ता मत करो।" इतना कहकर श्री मुरलीमनोहर ने सखी को तो बिदा कर दिया और आप अपने घर चले आये। उन्हें देखकर यशोदा ने हँसते हुए पूछा—"अरे कन्हैया! क्या तू साँप के काटे का मन्त्र भी जानता है?" बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे मैया! मैं तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ। मैं ऐसा मन्त्र जानता हूँ कि यदि साँप के काटे हुए को देख लूँ तो वह कभी मरने न पाये।" यह सुनकर यशोदा बोलीं—"हे पुत्र! राधा को साँप ने काट खाया है, अतः तुम कीर्ति के साथ जाकर उसे ठीक कर आओ।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर प्रसन्न होकर कीर्ति के साथ चल दिये। जब कीर्ति उन्हें लेकर अपने घर पहुँची तो उसने प्रार्थना करते हुए श्री नन्दनंदन से इस प्रकार कहा—"हे नंदनंदन! तुम मुझे अपने ऊपर न्यौछावर समझकर राधा को चंगा कर दो।" उस समय राधा के कानों में ज्यों ही यह भनक पड़ी कि श्री कृष्णचन्द्र आ गये हैं, त्योंही उसका हृदय शीतल हो गया तथा आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे। तदनन्तर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उसके पास पहुँचकर कुछ पढ़ते हुए राधा के शरीर से अपनी मुरली का स्पर्श करा दिया। मुरली के लगते ही राधा ने चैतन्य होकर अपने शरीर को वस्त्रों से ढाँक लिया। इस प्रकार जब श्री श्यामजी के आने पर वह चंगी हो गई, तब उसने उठकर अपनी माता से इस प्रकार कहा—"हे मैया! आज इतने लोग यहाँ इकट्ठे क्यों हुए हैं!" यह सुनकर कीर्ति ने उत्तर दिया—"हे बेटी! साँप के काटने से तू मृतक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुल्य हो गई थी। अतः तुझे नन्दकुमार ने अपने मन्त्र से जीवित किया है। तुझे इनसे लज्जा नहीं करनी चाहिए।" इतना कहकर कीर्ति ने श्री श्यामसुन्दर को अपनी गोद में उठा लिया तथा बार-बार दुलार करके उनका मुख चूमती हुई इस प्रकार कहने लगी—"हे नन्दनन्दन ! तुम धन्य हो, जो तुमने मेरी बेटी को अच्छा कर दिया। तुम्हारे माता-पिता भी धन्य हैं, जो उन्होंने तुम्हारे जैसा पुत्र पाया।" इतना कहकर कीर्ति ने श्री श्यामजी को मेवा-मिष्ठान्न खिलाकर, पान देकर बिदा कर दिया।

हे परीक्षित ! श्री मुरलीमनोहर के चले जाने के उपरान्त कीर्ति तथा वृषभानु ने परस्पर यह कहा कि राधा तथा कन्हैया दोनों विवाह करने योग्य हैं, अतः इनका विवाह कर देना चाहिए। तदुपरान्त ललिता नामक सखी ने, जो राधा-कृष्ण की प्रीति का हाल जानती थी, श्री कृष्णजी के पास जाकर इस प्रकार कहने लगी—"हे प्यारे मनमोहन ! तुम बड़े गुणी हो गये हो, जो तुमने राधा का विष एक क्षण में ही उतार दिया। तुम इस मन्त्र को कभी मत भूलना। मैं तुम्हारे भेद को भली भाँति जानती हूँ। तुमने राधा के ऊपर मोहिनी डालकर, उसे अपने वश में कर लिया है।" यह सुनकर श्यामजी हँसते हुए अपने घर लौट आये। यशोदाजी ने जब राधा के अच्छे होने का हाल सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो, मनमोहन श्यामसुन्दर को अपनी गोद में बैठाकर प्यार करने लगीं।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! एक दिन प्रातःकाल के समय श्री मुरलीमनोहर छाछ-कलेवा ले, ग्वालबालों के साथ गौ चराने के लिए वन में गये। वहाँ उन्होंने बछड़ों को चरने के लिए वन में छोड़ दिया। तत्पश्चात् सब ग्वालबालों ने अपने शरीर पर खड़िया तथा गेरू से चित्रकारी कर, फूलों के गहने पहिन, पशु-पक्षियों की बोली बोलते हुए खेलने लगे। वहाँ श्री श्यामसुन्दर कभी अपनी बाँसुरी बजाते थे और कभी धौली, धूमरी आदि नाम ले-लेकर गौओं को पुकारते थे। उसी समय कंस का भेजा हुआ 'अघासुर' नामक एक राक्षस अजगर का रूप धर कर भगवान् श्यामसुन्दर को मारने के लिए वहाँ आ बैठा। उसका नीचे का होठ पृथ्वी से तथा ऊपर का होठ आकाश से लगा हुआ था। कुछ देर बाद जब मुरली-मनोहर अपने सखाओं-सहित उधर होकर निकले तो उस समय श्री कृष्णजी ने अपने साथियों से यह कहा कि हे भाइयो ! जिस ओर यह पर्वत की-सी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुफा दीख रही है, उस ओर तुम लोग मत जाना। हे परीक्षित! श्री बाँके-विहारी के इस प्रकार कहने पर भी वे ग्वालबाल अपने बछड़ों-सहित उसी ओर को चल दिये। वह अजगर चार कोस लम्बा तथा एक कोस चौड़ा था। जब सब लोग उसके पास पहुँचे तो आपस में इस प्रकार कहने लगे कि यह पर्वत-सा क्या दिखाई दे रहा है। इस प्रकार कहते-सुनते जब वे उसके और अधिक समीप पहुँचे तब उस समय एक बालक ने यह कहा कि हे भाई! यह तो कोई बड़ी भयावनी कन्दरा-सी दिखाई दे रही है, इसके भीतर मत चलो। परन्तु 'तोष' नामक ग्वाले ने फिर भी यही कहा कि जब हमारे साथ कन्हैया हैं, तो हमें किसी से डरने की क्या आवश्यकता है, हम लोगों को इसके भीतर चलकर देखना चाहिए। यदि यह कोई राक्षस हुआ तो बकासुर के समान ही कृष्णचन्द्र द्वारा मारा जायगा। यह सुनकर सब लोग श्री कृष्णजी की ओर देखते हुए तथा ताली बजाते हुए उसके मुख में घुस गये। उस समय अघासुर ने एक ऐसी साँस खींची कि वे सब उसके पेट के भीतर जा पहुँचे। तब अघासुर अपने मन में प्रसन्न होकर यह सोचने लगा कि यदि आज मैं श्याम और बलराम को भी मार सकूँगा तो पूतना, बकासुर आदि सबका बदला लेकर भली भाँति तर्पण करूँगा। श्री कृष्णचन्द्रजी उस समय तक बाहर ही खड़े थे। जब उन्होंने यह देखा कि सब गोप-ग्वाल तथा बछड़े इसके पेट में चले गये हैं तथा मेरे अतिरिक्त उनका कोई रक्षक नहीं है तो वे स्वयं भी उसके मुख में चले गये। तब तो अघासुर ने अत्यन्त आनन्दित होकर अपना मुख बन्द कर लिया। यह दृश्य देखकर देवता अत्यन्त चिन्तित हो उठे तथा कंस के मित्र राक्षसों ने बहुत हर्ष मनाया।

हे परीक्षित! अघासुर के पेट में पहुँचकर श्री कृष्णजी ने अपना शरीर बढ़ाना आरम्भ कर दिया। कुछ देर में ही वे इतने विशाल हो गये कि अघासुर का श्वास चलना बन्द हो गया। तत्पश्चात् उसके प्राण मस्तक को तोड़ते हुए बाहर निकल गये। इस प्रकार जब वह राक्षस मर गया, तो आनन्दकन्द ब्रजचन्द्रजी भी सब ग्वालबालों-सहित बाहर आ गये। उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर आकाश से पुष्प-वर्षा की तथा श्रीहरि की ऐसी महिमा देखकर राक्षसों ने अत्यन्त शोक मनाया। उस अजगर के शरीर से एक प्रकाश निकल कर पहिले तो आकाश को गया, फिर श्री कृष्णजी के मुख में समा गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार उस राक्षस की मुक्ति देखकर देवताओं ने श्री बाँकेविहारी को परब्रह्म जानकर, उनकी विविध प्रकार से स्तुति की। उस समय सब ग्वालबाल प्रसन्न होकर कन्हैयाजी से इस प्रकार कहने लगे कि हे भैया ! आज तुम्हीं ने हम लोगों के प्राण बचाये अन्यथा हमारी मृत्यु में कोई सन्देह नहीं था। यह सुनकर श्री घनश्यामजी ने कहा—"हे सखाओ ! मैंने तो तुम्हारी सहायता से ही इस राक्षस को मारा है। यदि तुम लोग साथ न होते तो मैं इस राक्षस को कभी नहीं मार सकता था।" इतना कहकर श्री नन्दनन्दन सब सखाओं के साथ खेल खेलने लगे।

हे राजन् ! उस अजगर का शरीर सूखकर उसी स्थान पर पर्वत के समान पड़ा रहा। अतः कभी गोपग्वाले उसकी खाल के भीतर घुसकर तथा कभी उसके ऊपर चढ़कर क्रीड़ा किया करते थे। मृत्यु के समय उस राक्षस ने श्री हरि का ध्यान किया था, इसलिए श्री कृष्णजी ने उसे परमपद देकर कृतार्थ किया। हे परीक्षित ! तुम यह निश्चय समझो कि जो लोग अपनी मृत्यु के समय श्री हरि का स्मरण करते हैं, उनके मुक्त होने में कोई संशय नहीं रहता है। इस प्रकार पाँच वर्ष की आयु में श्री घनश्यामजी ने अघासुर का वध किया। गोपग्वालों ने एक वर्ष बाद अपने घर आकर उस राक्षस की मृत्यु का समाचार सब लोगों को सुनाया।"

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा द्वारा ग्वाल-बाल तथा बछड़ों को चुराकर ले जाने की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी ! एक वर्ष तक यह हाल न कहने का क्या कारण था ? वह मुझे बताने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! तू बहुत भाग्यवान् है, जो भगवान् श्री श्यामसुन्दर के चरण-कमलों में तेरी प्रीति निरन्तर बढ़ती चली जा रही है। अब आगे की कथा सुनो। अघासुर की मृत्यु के पश्चात् श्री कन्हैयाजी ने ग्वालबालों से कहा—"हे सखाओ ! यमुना-तट पर यह सर्प का शरीर खूब ऊँचा पड़ा है, अब इस पर चढ़कर खेलने तथा चरते हुए बछड़ों को देखने का सुख रहेगा।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! उन ग्वालबालों के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है, जो दिन-रात श्री मुरलीमनोहर के साथ उठते-बैठते, खाते-पीते तथा साथ रहते थे ? और श्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृष्णजी के शरीर का स्पर्श भी करते थे। अतः उन जैसा उच्च पद ब्रह्मादि देवताओं को भी मिलना दुर्लभ है। अघासुर के मारने के पश्चात् श्री मुरली-मनोहर ने ग्वालबाल तथा बछड़ों सहित यमुना में स्नान किया तथा कदम्ब के वृक्ष के नीचे पहुँचकर बाँसुरी बजाई। फिर ग्वालबालों से बोले—"हे भाइयो! यह स्थान पवित्र है, अतः यहाँ बैठकर कलेवा कर लो।" यह सुनकर सब लोग वहीं ठहर गये। तत्पश्चात् सब ग्वालबालों ने ढाक के पत्तों की पत्तलें तथा दोने बनाये और अपना-अपना कलेवा निकालकर उनमें रख दिया। श्री घन-श्यामजी बीच में बैठे तथा उनके चारों ओर ग्वाल-बाल बैठ गये। भोजन के समय श्री नन्दनन्दन ने बाँसुरी को कमर में खोंस लिया तथा लकुटी को बगल में दबा लिया। फिर सबसे पहिला ग्रास अपने मुँह में डाला। तब अन्य ग्वाल-बाल भी भोजन करने लगे। उस समय श्री बाँकेविहारी की ऐसी शोभा थी कि वे मस्तक पर मोर मुकुट पहिने, पीताम्बर तथा बनमाला धारण किए, हाथ में लकुटिया लिये अपने बायें हाथ में भोजन रक्खे, हँस-हँसकर अपने जूठे दाहिने हाथ से ग्वालबालों को भोजन खिला रहे थे। फिर ग्वालबालों की पत्तल से जूठा भोजन उठाकर खाते हुए, खट्टा-मीठा स्वाद बताते जाते थे। उस समय श्री कृष्णजी ने जो आनन्द मनाया, उसका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता।

दोहा—ग्वालबाल के संग में, माखन रोटी खायँ।
खाटो-मीठो स्वाद कहि, अति आनन्द मनायँ॥

हे परीक्षित! ग्वालबालों का समुदाय मानो तारागण के समान था और उसके बीच में बैठे हुए श्री श्यामसुन्दर चन्द्रमा के समान शोभायमान लग रहे थे। उस समय सब देवता अपने-अपने विमानों पर बैठे हुए इस प्रकार कहते थे कि इन ग्वालबालों के भाग्य धन्य हैं, जो सच्चिदानन्द प्रभु इन्हें अपना जूठा खिलाकर, उनका जूठा भोजन आप खा रहे हैं। इस सुख को हम लोग स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उस समय किसी देवता तथा मुनि ने ब्रह्माजी से इस प्रकार कहा—"हे पितामह! हमें बड़ा आश्चर्य है कि हम लोग यज्ञ आदि में बड़ी पवित्रता से सामग्री बनाकर श्रीहरि का भोग लगाते हैं, तो भी वे उसे शीघ्र स्वीकार नहीं करते, ऐसी अवस्था में हम यह कैसे मान लें कि इन ग्वालबालों के जूठन खानेवाले श्री कृष्ण-चन्द्रजी परब्रह्म प्रभु के अवतार हैं। देवताओं के ऐसे वचन सुनकर श्रीहरि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की माया से ब्रह्मा के मन में भी सन्देह उत्पन्न हो गया। तब वे देवताओं से बोले—"हे देवताओ ! मैं भी इन ग्वालबाल तथा बछड़ों को हरकर इनकी परीक्षा लेना चाहता हूँ।"

हे परीक्षित ! इतना कहकर ब्रह्मा वृन्दावन में चले आये तथा वहाँ उन्होंने चरते हुए बछड़ों को एक पर्वत की कन्दरा में ले जाकर बन्द कर दिया। जब ग्वालवालों ने अपने बछड़ों को नहीं देखा तब वे श्री श्यामसुन्दर से कहने लगे—"हे भाई ! हम लोग तो यहाँ बैठे हुए कलेवा करने में लगे रहे, उधर हमारे बछड़े न जाने कहाँ चले गये हैं।" यह सुनकर श्रीहरि ने उत्तर दिया—"तुम लोग यहीं बैठो। मैं उन्हें ढूँढ़कर अभी ले आता हूँ।" इतना कहकर जब श्री श्यामसुन्दर बछड़े ढूँढ़ने के लिए गये, तो उन्हें कहीं न देखकर यह जान लिया कि ब्रह्मा ने मेरी परीक्षा लेने के लिए उन्हें पर्वत की कन्दरा में छिपा दिया है। तब वे अपनी माया से दूसरे बछड़े बनाकर ग्वालबालों के पास लौट चले। जब वे कदम्ब के नीचे पहुँचे तब वहाँ बैठे हुए ग्वालबालों को भी उन्होंने नहीं पाया। फिर उन्होंने अपनी महिमा से यह जाना कि ब्रह्मा ने उनको भी हरण करके छिपा दिया है। यह जानकर श्री बाँकेविहारी ने अपने मन में विचारा कि यदि ग्वालबाल अपने घर नहीं पहुँचेंगे तो उनके माता-पिता को बहुत दुःख होगा। यह सोचकर उन्होंने अपनी माया द्वारा वैसे ही ग्वालबाल भी बना दिये। तदनन्तर सन्ध्या होने पर वे उन मायारूपी ग्वालबालों तथा बछड़ों को लेकर वृन्दावन में जा पहुँचे। वहाँ वे सब मायारूपी बछड़े तथा ग्वालबाल उसी प्रकार का व्यवहार करने लगे मानो वास्तविक हों। श्रीहरि की माया का भेद किसी को मालूम नहीं पड़ा। सब ग्वालबालों के माता-पिताओं तथा गौओं ने उन्हें अपना बालक तथा बछड़ा माना।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्मा ग्वालबालों तथा बछड़ों को हरने की बात भूल गये। उधर श्री बाँकेविहारी उन मायारूपी बछड़ों तथा ग्वालबालों के साथ नित्य नवीन लीलाएँ करते रहे। एक दिन श्री नटवरनागर उन मायारूपी ग्वालों के साथ बछड़ों को चराने के लिए गोवर्द्धन पर्वत के पास ले गये। वहाँ पर्वत के ऊपर बछड़ों की मातायें (गायें) चर रही थीं, वे अपने बछड़ों को देखते ही पर्वत से नीचे उतरकर उनके पास ऐसे चली आईं, जैसे सावन भादों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नदियाँ वेग से बहती हैं। दूसरे बछड़े उत्पन्न हो जाने पर भी वे अपने उन पहिले बछड़ों को अधिक प्रीति करके दूध पिलाने लगीं। ग्वालों ने उन्हें अपनी लाठी आदि से बहुत धमकाया परन्तु वे किसी प्रकार नहीं मानीं। उनकी ऐसी प्रीति देखकर बलरामजी ने, जो बछड़ों तथा ग्वालों को ब्रह्मा द्वारा चुराये जानेवाले दिन श्री कृष्णजी के साथ नहीं थे, अपने मन में यह विचार किया कि गौ तथा बछड़ों में ऐसी प्रीति हमने कभी नहीं देखी सो यह तो कुछ परमेश्वर की अनोखी लीला दिखाई देती है। यह सोचकर जब उन्होंने ध्यान से देखा तो सब बछड़े तथा ग्वालबाल श्री कृष्णरूप दिखाई देने लगे। उस समय उन्होंने श्री श्यामसुन्दर से कहा—"हे भाई! मुझे सब ग्वालबाल तथा बछड़े तुम्हारे ही रूप के दिखाई देते हैं। इसका क्या कारण है? उस समय श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे भैया! एक वर्ष से मेरी यही दशा है।"

हे परीक्षित! उधर एक वर्ष बाद ब्रह्माजी को जब बछड़े तथा ग्वालबालों के हरने की बात का ध्यान आया तो उन्होंने अपने मन में कहा कि मेरा तो अभी एक क्षण भी नहीं बीता परन्तु मनुष्यों का एक वर्ष बीत गया है, सो अब मुझे ब्रज में चलकर यह देखना चाहिए कि बालकों तथा बछड़ों के बिना वृन्दावनवासियों एवं ग्वालबालों की क्या दशा हो रही है। यह सोचकर ब्रह्माजी पहिले तो उस कन्दरा के पास गये, जहाँ वे ग्वालबालों तथा बछड़ों को बन्द कर गये थे। जब उन्होंने यह देख लिया कि वे सब उसमें अचेत सोये पड़े हैं तो फिर बाद में वृन्दावन गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि उसी रूप के ग्वालबाल तथा बछड़े श्री कृष्णजी के साथ भ्रमण कर रहे हैं। इस अचरज को देखकर ब्रह्माजी ने अपने मन में अचरज मानकर कहा कि कन्दरा में बन्द ग्वालबाल यहाँ कैसे आ गये? क्या इन्हें बाँकेविहारी ने अपनी माया से उत्पन्न किया है? ऐसा सोचकर जब वे फिर कन्दरा में पहुँचे तो वहाँ सबको पहिले की ही भाँति अचेत सोते हुए पाया। वहाँ से लौटकर जब फिर वृन्दावन में आये तो उन्होंने यह देखा कि श्री कृष्णचन्द्रजी के साथ जितने ग्वालबाल थे वे सब क्रीट-मुकुट पहिने वैजयन्ती माला धारण किए, पीताम्बर काछे, चतुर्भुज रूप में विराजमान हैं; तथा उनके सामने खड़े हुए ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवता हाथ जोड़कर स्तुति कर रहे हैं। आठों सिद्धियाँ, नवो निधियाँ तथा गङ्गा आदि नदियाँ अपना-अपना स्वरूप धारण किए, हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़ी हैं। उनमें अनेक ब्रह्मा चार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मस्तक, अनेक आठ तथा अनेक सोलह मस्तक धारण किए हुए थे। इन्द्र की अप्सराएँ तथा गन्धर्व नृत्य और गायन कर रहे थे। उस समय वहाँ के सब पशु-पक्षी भी चतुर्भुजी रूप धारण किए हुए थे। यह देखकर ब्रह्मा ने अपने मन में अत्यन्त घबराकर अपनी आँखें बन्द कर लीं तथा श्रीहरि की महिमा को जानकर भय के मारे थर-थर काँपने लगे। जब अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी ने यह जाना कि ब्रह्मा को अपने किए पर बहुत लज्जा आ रही है तथा हृदय में व्याकुलता बढ़ रही है, उस समय उन्होंने मायारूपी गोपग्वालों को तो अन्तर्धान कर दिया और केवल आप अकेले कृष्णरूप धारण किए, मोर मुकुट पहिने वहीं खड़े रहे।

हे राजन्! इस चरित्र को देखकर जब ब्रह्मा को ज्ञान उत्पन्न हुआ तो उन्होंने हंस से उतर कर अपने चारों मस्तकों को श्री कृष्णचन्द्रजी के चरण-कमलों में रख दिया। फिर साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे परब्रह्म श्री कृष्णचन्द्रजी! मैंने आपकी माया के वशीभूत होकर, आपको मनुष्य करके पहिचाना तथा ग्वालबालों एवं बछड़ों को हरण करके आपको कष्ट पहुँचाया सो आप मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए। हे दीनानाथ! आप देवताओं के स्वामी तथा सनातन हैं। आपका भेद कोई नहीं जान सकता।" इतना कहकर ब्रह्माजी रोने लगे। फिर अपने नेत्रों के जल से श्रीहरि के चरणारविंदों को धोकर इस प्रकार कहने लगे—"हे दीनबन्धो! आपने मेरा अभिमान नष्ट कर दिया। भला किस में इतनी सामर्थ्य है, जो वह आपके लीला-चरित्रों को जान सके। आपकी माया ने संसार को मोहित कर रक्खा है। आपको मोहित करने-वाला कोई नहीं है। हे प्रभो! मेरे जैसे न जाने कितने ब्रह्मा तथा ब्रह्माण्ड आपके रोम-रोम में बँधे हुए हैं। आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।" इस प्रकार जब ब्रह्मा ने बहुत प्रार्थना की तब श्री श्यामसुन्दर ने हँसकर इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा! तुम सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करते हो, फिर भी मेरी माया ने तुम्हें कैसे भुला दिया?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! आपके भेद को कोई नहीं जान पाया। आपकी माया ऐसी प्रबल है कि वह किसी को भी मोहित किए बिना नहीं छोड़ती है।" ऐसे दीन वचन सुनकर श्रीहरि ने ब्रह्मा को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया तथा अपने हाथों से उसके आँसू पोंछ कर कहा—"हे ब्रह्मा! अब तुम ग्वालबाल तथा बछड़ों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ले आओ।" यह सुनकर ब्रह्मा ने सब ग्वालबालों तथा बछड़ों को लाकर वृन्दावनविहारी के सामने उपस्थित कर दिया।"

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा द्वारा श्री कृष्ण की स्तुति

श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित! जब ब्रह्मा ने श्री श्यामसुन्दरजी को अपने ऊपर प्रसन्न देखा तब हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! मैं आपके श्याम घटा के समान उस सुन्दर स्वरूप की वन्दना करता हूँ, जो बिजली के समान चमकते हुए पीताम्बर को पहने तथा मोर मुकुट एवं वनमाला को धारण किए हुए हैं। मैं बाँसुरी तथा लकुटी को धारण किए हुए आपकी मोहिनी मूर्ति पर न्योछावर होता हूँ। आप संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाले हैं। हे परब्रह्म! आपका यह शरीर पाँच तत्त्वों द्वारा निर्मित नहीं है, आपने अपने इच्छानुसार यह स्वरूप धारण किया है। मैं ब्रह्मा होते हुए भी आपके इस स्वरूप की महिमा को नहीं जान सका, तब दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो वह आपके अनन्त भेदों को जान सके? हे प्रभो! कोई भी मनुष्य भक्ति के बिना केवल अपने ज्ञान के अभिमान द्वारा आपकी महिमा को नहीं जान सकता है। जो प्राणी मन, वचन, कर्म से आपकी शरण में आता है, आप उसे मुक्ति पदार्थ प्रदान करते हैं। हे प्रभो! मैं अग्नि की चिनगारी के समान हूँ तथा आप अग्निपुञ्ज हैं। मैंने अपने अज्ञान तथा आपकी माया के वशीभूत होकर ग्वाले तथा बछड़े चुराये थे। अतः आप मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए। चिनगारी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वह अग्निपुञ्ज की बराबरी कर सके। आप सबसे पृथक् तथा सबसे रहित हैं। संसारी वस्तुओं की उत्पत्ति आपकी माया से ही होती है। आदि, मध्य तथा अन्त सब में आपकी ही माया का प्रकाश भरा हुआ है। आपके अतिरिक्त सम्पूर्ण वस्तुएँ नाशवान् हैं। मैंने अपने अज्ञान के कारण आपकी परीक्षा लेनी चाही थी, सो आपके तथा ग्वालबालों के सम्मुख शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं को हाथ जोड़े खड़े देखकर, मैंने दण्ड पा लिया है। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कर दें। जिस प्रकार अज्ञानी बालक अपने पिता की गोद में बैठकर अनुचित कार्य कर बैठता है, परन्तु पिता अपने स्नेह के कारण कुछ बुरा नहीं मानता तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माता अपने पुत्र द्वारा पेट में लात मारे जाने पर भी विरोध नहीं करती है, उसी प्रकार आप मुझ अज्ञानी को अपना बालक समझकर मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए। हे स्वामी ! आपके विराट् स्वरूप में तीनों लोक, चौदहों भुवन विद्यमान हैं तथा आप अपने सूक्ष्म रूप से चिउँटी के शरीर में भी निवास करते हैं। मैंने अपने आपको संसार का उत्पन्न करनेवाला समझा था, इसी लिए मैं लज्जा को प्राप्त हुआ हूँ। यह संसारी व्यवहार स्वप्न के समान मिथ्या है, आप सच्चिदानन्द स्वरूप ही एक मात्र सत्य हैं। अतः आप मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान कीजिए। हे नाथ ! व्रज की गौओं तथा गोपियों के भाग्य धन्य हैं, जिनके बछड़े तथा बालक बनकर आप दूध पीते हैं। आपका पेट यज्ञ और हवन आदि से नहीं भरा था, परन्तु व्रज की गोपियों ने उसे अपना दूध पिलाकर भर दिया। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो मैं व्रज-वासियों के भाग्य की प्रशंसा कर सकूँ। हे महाप्रभो ! आप इतने दयालु हैं कि मैंने अपने अज्ञान में भरकर आपका अपराध किया था, परन्तु आपने फिर भी अपनी कृपा द्वारा मेरे हृदय में ज्ञान का दीपक प्रकाशित कर दिया है। संसारी प्राणियों के लिए आपकी भक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग भव-सागर से पार होने का नहीं है। अतः सब लोगों को यह चाहिए कि वे दिन-रात आपके नाम, गुण तथा लीला-चरित्रों का स्मरण करते हुए, आपको एक क्षण के लिए भी न भुलावें। तभी उनको ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। हे प्रभो ! आपकी कृपा के बिना किसी का चित्त आपके चरणों में नहीं लग सकता। अतः सबको सच्चे हृदय से आपकी कृपा प्राप्त करने का भरोसा रखना चाहिए। हे परब्रह्म ! वृन्दावन के जड़-चैतन्य जीवों की प्रशंसा कोई नहीं कर सकता है। मनुष्य इसलिए जप और तप करते हैं कि हम देवता हों तथा देवताओं को आठों प्रहर यह इच्छा बनी रहती है कि वे दिन-रात आपके चरण-कमलों की सेवा करें तथा आपके मुखचन्द्र को देख-देखकर अपने नेत्रों को आनन्द पहुँचाते रहें। अतः जो बात देवताओं को भी सुलभ नहीं होती, वह आपकी कृपा से वृन्दावनवासियों को सहज ही में प्राप्त हो गई है। इस प्रकार देवता भी वृन्दावनवासियों की समानता नहीं कर सकते हैं। हे दीनानाथ ! आपके आदि, मध्य तथा अन्त को वेद भी नहीं जानते। बड़े-बड़े योगी तथा ऋषि-मुनियों को भी आपके दर्शन ध्यान में भी शीघ्र प्राप्त नहीं होते। मैं, शिव तथा इन्द्र आदि सब देवता और ऋषि दिन-रात अपने हृदय में यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिलाषा रखते हैं कि यदि आपके चरणों की रज प्राप्त हो सके तो उसे अपने मस्तक पर धारण कर लें; परन्तु वह हमें शीघ्र प्राप्त नहीं होती। इसके विपरीत यशोदा आपको गोद में लेकर दिन-रात खिलाती रहती हैं। आप अपने भक्तों को सुख देने के लिए ग्वालबालों के साथ बछड़े चराकर लीलाएँ किया करते हैं। यदि मैं जन्मभर वृन्दावनवासियों के भाग्य की प्रशंसा करूँ, तो भी उसका पूर्ण वर्णन नहीं कर सकूँगा। सभी व्रजवासी आपके ऊपर अपना तन, मन, धन, सर्वस्व न्यौछावर करते हैं। आप उनकी सेवा के लिए केवल मुक्ति देकर ही उऋण न हो सकेंगे, क्योंकि वह मोक्ष तो आपने पूतना, अघासुर आदि राक्षसों को भी, जो आपको मारने के लिए आये थे, दी है। यदि आप मुझे भी व्रज में घास अथवा मिट्टी का जन्म देते, तो मैं आपका चरण पड़ने से धन्य हो जाता।"

हे परीक्षित! इतना कहकर ब्रह्मा प्रेम-विह्वल होकर श्री मनमोहन के चरणों में गिर पड़े। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने ब्रह्मा को अपने चरणों से ऊपर उठाते हुए कहा—"हे ब्रह्मा! अब तुम व्रजभूमि की परिक्रमा करके अपने लोक को चले जाओ।" तब श्रीहरि की आज्ञा पाकर ब्रह्माजी व्रज चौरासी कोस की दाहिनी ओर से परिक्रमा करके अपने लोक को चले गये। तब श्री श्यामसुन्दरजी बछड़ों को साथ लेकर ग्वालबालों की मण्डली में जहाँ पहिले उन्हें भोजन करते हुए छोड़ गये थे, आ पहुँचे। श्री नारायणजी की माया से एक वर्ष का समय बीतने पर भी इस रहस्य को कोई नहीं जान सका। तब वे लोग श्री बाँकेविहारी से इस प्रकार कहने लगे—"हे भैया! तुम तो इतनी जल्दी बछड़ों को ढूँढ़कर ले आये कि हम लोग अपना भोजन भी समाप्त नहीं कर सके।" श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे सखाओ! सब बछड़े पास में ही चर रहे थे, अतः मैं उन्हें लेकर चला आया हूँ।" इतना कहकर श्री कृष्णजी ने सब ग्वालबालों के साथ बैठकर भोजन किया। सन्ध्या होने पर सब लोग घर को लौट चले। जब वृन्दावन के समीप पहुँचे तो आनन्दकन्द श्री नन्दनन्दन ने ऐसी बाँसुरी बजाई कि उसकी ध्वनि सुनकर सब व्रजबालाएँ अपना-अपना काम छोड़कर घर से बाहर निकल, दौड़ी हुई चली आईं। सबने श्री कृष्णजी के दर्शन पाकर अपने नेत्रों को सुख पहुँचाया। हे परीक्षित! गोपियों का यह नियम था कि जब श्री श्यामसुन्दर गाएँ चराने को वन में जाते थे, तब वे दिन भर उनकी चर्चा करती रहती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थीं और जब सन्ध्या समय लौटकर आते थे, तब उनकी मनमोहिनी मूरत को देखकर अपने हृदय को शीतल करती थीं।

हे परीक्षित! उस दिन सब ग्वालबालों ने अपने घर जाकर अघासुर के मारे जाने का समाचार कह सुनाया। उस समय यशोदाजी पछताती हुई कहने लगीं कि देखो, मेरा लाल वन में जाना नहीं छोड़ता है। कई बार राक्षसों के हाथ से इसके प्राण बचे हैं, फिर भी यह अपने मन में भय नहीं मानता। तदनन्तर उस दिन यशोदा ने ब्राह्मणों को बहुत दान-दक्षिणा देकर खुशी मनाई। हे परीक्षित! श्री श्यामसुन्दर ने पाँच वर्ष की अवस्था तक जो बाल-चरित्र किए थे, उनका ध्यान धरनेवाला मनुष्य चिन्तारहित हो जाता है तथा संसार में अपने मनोरथ को पाकर अन्त में मुक्ति-पद को प्राप्त होता है।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे शुकदेवजी! भगवान् श्यामसुन्दर के प्रति गोपियों के हृदय में इतनी प्रीति क्यों थी, जो वे उन्हें अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करती थीं?" श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! संसार में सभी प्राणियों को अपने पुत्र तथा धन से प्रेम होता है, परन्तु अपने स्वयं के प्राणों को उनसे भी अधिक प्रिय माना जाता है। जिस घर में आग लगती है, उस घर का निवासी अपने पुत्र तथा धन को अपनी शक्ति भर बचाना चाहता है, परन्तु जब उनकी रक्षा नहीं कर पाता तो अपने प्राण बचाकर भाग जाता है। उसी प्रकार श्री बाँकेविहारी सब जीवों के प्राण थे, इसलिए सभी व्रजवासी उन्हें सबसे अधिक प्रिय समझते थे। अपनी माया द्वारा उन्होंने सबके हृदय को मोहित कर लिया था।"

पंद्रहवाँ अध्याय

श्री बलरामजी द्वारा धेनुक राक्षस का वध

श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! जब श्री कृष्णचन्द्रजी आठ वर्ष के हुए, तब उन्होंने एक दिन यशोदाजी से इस प्रकार कहा–"हे मैया! अब मैं गौ चराने के लिए वन में जाऊँगा, सो तुम नन्द बाबा से कह दो, जिससे वे मुझे चले जाने दें।" यशोदा ने जब यह बात नन्दजी से कही, तब उन्होंने शुभ मुहूर्त पूछकर दस सहस्र श्यामवर्ण गौ श्री कृष्णजी के हाथ से दान कराई तथा उन्हें कार्तिक शुक्ला अष्टमी को गौ चराने के लिए भेजा। जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्यामजी गौ चराने के लिए जाने लगे, तब नन्दरायजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे कन्हैया ! तुम वन में ग्वालबालों के साथ ही रहना।" फिर वे ग्वालबालों से बोले—"हे भाइयो ! आज से तुम लोग अपने साथ गौ चराने के लिए श्याम तथा बलराम को भी ले जाया करो, परन्तु इन्हें वन में अकेला मत छोड़ देना।" इतना कहकर नन्दजी ने दोनों भाइयों को दही का तिलक लगाकर बिदा किया। जब श्री श्यामजी ग्वालबाल तथा गौओं-सहित वन में पहुँचे तो वहाँ एक स्थान पर निर्मल जल से भरा हुआ एक तालाब देखकर, गौओं को तो चरने के लिए छोड़ दिया और आप सखाओं-सहित खेल खेलने लगे। वे कभी सखाओं से कहते कि मैं तुम्हारी हथेली पर अपना हाथ मारकर भागता हूँ, तुम लोग मुझे पकड़ो। तो कभी किसी ग्वाले को हाथी, किसी को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर चढ़ जाते और उससे कहते कि तुम वैसी ही बोली बोलो। कभी वे गौओं के समीप पहुँच सिंह की बोली बोलकर उन्हें डरा देते थे। इस प्रकार अनेक लीलाएँ करके सबको सुख पहुँचाते थे। तदुपरान्त वन की शोभा को देखकर उन्होंने श्रीदामा आदि गोप-ग्वालों से इस प्रकार कहा—"तुम लोग चैतन्य शरीर पाकर भी बलरामजी की महिमा को नहीं जानते हो। देखो, इस स्थान पर जड़रूप वृक्ष भी बलरामजी को देख, झुककर दण्डवत् करते हैं। वे यह चाहते हैं कि श्री बलरामजी की कृपा से जड़रूप से छूटकर चैतन्य शरीर प्राप्त करें। संसार की यह रीति सदा से चली आई है कि जिसके पास जो श्रेष्ठ वस्तु होती है, उसे वह अपने स्वामी का भेंट करता है। इसलिए ये परोपकारी वृक्ष भी बलरामजी को अपने फल-फूलों की भेंट देते हैं। तुम जिन भँवरों को फूलों पर गूँजते हुए देख रहे हो, वे वास्तव में श्री बलरामजी का यश गा रहे हैं। वन के मोर उन्हें अपना नृत्य दिखाते हैं तथा कोकिल आदि पक्षी अपनी बोली से उनका अभिनन्दन करते हैं। ये वृक्ष अपने फल तथा फूलों से बटोहियों की सेवा करते हैं; इसलिए इन्हें सबसे बड़ा दानी तथा परोपकारी समझना चाहिए। हे मित्रो ! वृन्दावन में जितने जड़चैतन्य जीवों को तुम देखते हो, वे सब बलरामजी के चरणों में स्नेह रखते हैं। व्रज की चौरासी कोस की धरती को धन्य है, इसकी प्रशंसा कोई नहीं कर सकता; क्योंकि बलरामजी के चरण पड़ने के कारण यहाँ सदैव वसन्त ऋतु का निवास रहता है। वृन्दावन के सब जड़-चैतन्य जीवों को जीवनमुक्त समझना चाहिए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार वृन्दावन तथा बलरामजी की प्रशंसा करने के उपरान्त जब श्री कृष्णचन्द्रजी एक ऊँचे टीले पर चढ़कर बैठे और काली, धूमरी, धौरी आदि नाम लेकर गौओं को पुकारने लगे, तब सब गौएँ दौड़कर हाँफती हुई उनके पास आ पहुँचीं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा के चारों ओर रंग बिरंगी घटा घिर आई हो। कुछ देर बीतने पर श्री श्यामजी ने गौओं को तो हाँक दिया और आप बलरामजी-सहित कलेवा करके कदम्ब के वृक्ष के नीचे एक सखा की जाँघ पर मस्तक रखकर सो गये। जब निद्रा भंग हुई तो बलरामजी से कहने लगे–"हे भैया ! हम और तुम ग्वालों की अलग-अलग टोली बनाकर परस्पर फूलों से लड़ाई लड़ें तो आनन्द आयेगा।" यह बात सबने स्वीकार की। तब सब ग्वालबाल तथा तथा गौ दोनों भाइयों के साथ आधे-आधे बँट गये और रंग-बिरंगे फूल तोड़ कर झोली में भर लिये। तदुपरान्त अपने-अपने मुख से भाँति-भाँति के बाजों की बोली निकालते हुए एक-दूसरे को फूलों से मारकर खेलने लगे। कुछ देर इस भाँति खेलने के पश्चात् फिर अपनी-अपनी गौएँ लेकर अलग-अलग चराने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! योगियों तथा देवताओं को जिन प्रभु का ध्यान में भी सहज दर्शन नहीं मिलता, वे ही ग्वालबालों के साथ वन में गौ चराते हुए इस प्रकार नाचा करते थे। उनकी महिमा तथा लीलाओं को जानने की सामर्थ्य किसमें है ? अस्तु, जब गौ चराते समय बलरामजी सब ग्वालबालों तथा गायों को साथ लेकर वन में एक ओर चले गये तथा कृष्णजी दूसरे वन में जा पहुँचे, उस समय एक ग्वाले ने बलरामजी से इस प्रकार कहा–"हे बलदाऊ भैया ! यहाँ से कुछ दूरी पर ताड़ का एक ऐसा वन है, जिसमें अमृत के समान मीठे फल लगे हुए हैं। वहाँ धेनुक नामक एक राक्षस गदहे के रूप में रहकर उन फलों की रखवाली करता रहता है। वह न तो आपही उन फलों को खाता है और न किसी दूसरे को खाने देता है। अतः आज हम लोग तुम्हारे बलबूते पर उन फलों को खाना चाहते हैं।" यह बात सुनकर बलरामजी ने उत्तर दिया–"तुम लोग अभी मेरे साथ चलकर उन फलों को खाओ वह राक्षस तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा।" यह सुनकर सब ग्वाले निर्भय हो, दाऊजी को साथ लेकर उस स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ जब बलरामजी ने एक वृक्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को जोर से पकड़कर हिलाया तो उसके फल टूटकर नीचे गिर पड़े। उस समय फलों के गिरने का शब्द सुनकर धेनुक राक्षस चिल्लाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर और सब ग्वाले तो भाग गये, परन्तु बलरामजी वहीं खड़े रहे। जब उस गदहेरूपी राक्षस ने बलरामजी को दुलत्ती मारी तब उन्होंने उसे एक टाँग पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया। जब वह फिर उठकर खड़ा हुआ तथा कान दबा, धरती को सूँघता हुआ बलरामजी को दुलत्ती मारने लगा, उस समय बलदाऊजी ने उसकी दोनों टाँगें पकड़कर एक ऊँचे वृक्ष की डाली पर ऐसा फेंका कि वह उसी समय नीचे गिरकर मर गया तथा उसके साथ ही वृक्ष भी टूट गया। उसे मरा हुआ देखकर अन्य अनेक राक्षस बलरामजी को मारने आये, परन्तु उन्होंने सब राक्षसों को पलभर में मार गिराया। उस समय देवता दुन्दुभी बजाकर प्रसन्न होते हुए, बलरामजी के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगे।

हे परीक्षित! उन दिनों ब्रह्मा, शिव इत्यादि देवता ध्यान-पूजा त्याग-कर श्री त्रिलोकीनाथजी के दर्शन प्राप्त करने के लिए वृन्दावन में आया करते थे। अस्तु, धेनुक राक्षस के मारे जाने पर सब ग्वालबालों ने इच्छा-पूर्वक उन फलों को खाया तथा घर लाने के लिए अपनी झोलियों में भी भर लिया। फिर वे निर्भय होकर गौ चराने लगे। सन्ध्या होने पर जब श्री कृष्णजी तथा बलरामजी हँसते-खेलते हुए अपने घर लौटे तो सब गोपग्वालों ने वृन्दावन वासियों को ताड़ के फल बाँटते हुए वन में बलरामजी द्वारा धेनुक आदि राक्षसों के वध का समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर सब लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन श्री कृष्णजी ग्वालबालों के साथ गौ चराने के लिए वन में गये, परन्तु बलरामजी घर पर ही रह गये। उस दिन वन में चरते समय सब गौएँ इधर-उधर छिटक गईं। यह देखकर सब गोपग्वाले श्री कृष्णजी को छोड़कर उन्हें ढूँढ़ने चल दिए। गौएँ तो मिल गईं परन्तु प्यास के मारे उनका बुरा हाल हो गया। उस समय वे पानी की तलाश में कालीदह के निकट जा पहुँचे। उस कुण्ड में 'कालीनाग' का निवास था, इसलिए उसका पानी विषैला हो गया था। जब प्यास के मारे ग्वालों तथा गायों ने उस कुण्ड का पानी पिया तब वे सब मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उधर श्री बाँकेविहारी ने जब यह देखा कि बहुत देर हो जाने पर भी वे लौटकर नहीं आये हैं, तो उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ सबके सब अचेत मरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़े थे। उनकी यह दशा देखकर श्री श्यामजी ने अपने मन में यह जान लिया कि कालीदह का पानी पीने के कारण ही इनकी ऐसी दशा हुई है। फिर उन्होंने यह सोचा कि अब मैं इनके माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? वे इनकी मृत्यु का समाचार सुनेंगे तो अत्यन्त व्याकुल होंगे। यह विचार आते ही श्री कृष्णजी ने जैसे ही अपनी अमृत-दृष्टि से उनकी ओर देखा, वैसे ही वे सबके सब जीवित होकर उठ खड़े हुए। जिस प्रकार कोई आदमी नींद से जागे, उसी प्रकार वे सब अपनी आँखें मलने लगे तथा अपने सामने खड़े हुए श्री कृष्णचन्द्रजी को देखकर उनके कण्ठ से लिपट गये। उस समय श्री-श्यामसुन्दरजी ने उनसे इस प्रकार कहा—"हे भाइयो ! तुम लोगों ने मुझसे अलग होकर कालीदह का जल पी लिया था, इसी लिए तुम अचेत हो गये थे। श्री नारायणजी ने ही तुम्हारे प्राण बचाये हैं।" यह सुनकर ग्वालों ने उत्तर दिया—"कन्हैया ! यमुना का विषैला जल पीने के कारण हमारी ऐसी दशा हुई, परन्तु तुमने हमें जिला दिया। हम व्रजवासियों की रक्षा करने का भार तुमने अपने ऊपर ले लिया है, सो हम तुम्हारी बड़ाई किस मुख से करें ?" तदुपरान्त सन्ध्या होने पर जब श्री मुरलीमनोहर ग्वालबाल तथा गायों को साथ ले, मुरली बजाते हुए वृन्दावन आये तो सब गोपियाँ अपना काम-काज छोड़कर उनके दर्शन करने के लिए घर से बाहर निकल आईं तथा श्याम-सुन्दर के दर्शन पाकर अपने नेत्रों को सुख पहुँचाया। घर पहुँचने पर ग्वाल-बालों ने यशोदा आदि को सुनाया कि आज हम लोग कालीदह का जल पीने के कारण मर गये थे सो कन्हैया ने हमें फिर से जीवित कर दिया। ऐसे श्री कृष्णचन्द्र को अपना साथी पाकर अब हमें किसी का भय नहीं रहा है। इस समाचार को सुनकर यशोदा, रोहिणी तथा अन्य सब गोपियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय नन्दजी कहने लगे—"जो बात गर्गजी ने बताई थी, वह अब आँखों से दिखाई दे रही है। मेरे बड़े भाग्य हैं जो श्रीहरि ने कृष्ण-रूप में मेरे घर अवतार लिया है।" अस्तु, जब यशोदा ने कन्हैयाजी को पलँग पर सुलाया, उस समय उन्होंने कालीनाग को मारने का विचार करके इस प्रकार कहा—"हे मैया ! आज मैंने ऐसा स्वप्न देखा है मानो किसी ने मुझे यमुनाजी में गिरा दिया हो।" श्री कृष्णजी के मुख से ऐसे वचन सुन-कर यशोदाजी ने उनके हाथ से ब्राह्मणों तथा याचकों को कुछ दान दिला-कर तथा स्वप्न की बात को मिथ्या मानकर अपने हृदय को धैर्य पहुँचाया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोलहवाँ अध्याय

कालीनाग की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि कालीनाग का यहाँ रहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो मनुष्य अथवा पशु इस दह का जल पियेंगे, वे मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे। दूसरे कालीनाग के रहने से यमुना को भी दोष लगता है, इसलिए इसको भी यहाँ से निकाल देना चाहिए। हे राजन् ! उस कालीनाग के विष की ज्वाला के कारण चार कोस तक यमुना का जल खौलता रहता था। कोई जीव, पशु, पक्षी आदि वहाँ नहीं जा सकता था। यदि धोखे से चला भी जाता था तो उस दह में जलकर गिर पड़ता था। उस स्थान पर कोई वृक्ष भी नहीं था। केवल एक अविनाशी कदम्ब का वृक्ष ही वहाँ जीवित बचा था।" इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी ! उस वृक्ष के नाश न होने का क्या कारण था ?" शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! किसी युग में उस वृक्ष के ऊपर गरुड़जी अपनी चोंच में अमृत लेकर बैठे थे, उस समय अमृत की एक बूँद उसके ऊपर गिर पड़ी थी, जिसके कारण वह वृक्ष अविनाशी हो गया था और सदैव हरा बना रहता था। उस वृक्ष पर कालीनाग के विष का कोई असर नहीं होता था। अस्तु, जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने कालीनाग को वहाँ से निकालने का विचार किया, तब उनके इच्छानुसार नारद मुनि कंस के पास जा पहुँचे। कंस ने उन्हें देखकर बड़ा आदर सत्कार किया। उस समय उन्होंने कंस से पूछा—"हे राजन् ! तुम उदास क्यों दिखाई दे रहे हो ?" कंस ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो ! गोकुल के नन्दराय के यहाँ दो बालक अत्यन्त बलवान् उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने अघासुर आदि अनेक राक्षसों को मार डाला है, सो मुझे हर समय उनसे अपने प्राणों का खटका बना रहता है। हे मुने ! वे बालक कोई अवतारी-से दीखते हैं। उनकी गति कुछ समझ में नहीं आती। अब आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं उन्हें मार डालूँ।" यह सुनकर नारदजी बोले—"हे राजन् ! तुम सत्य कहते हो, वे दोनों बालक अवतारी हैं। वे तुम्हारे काल बनकर व्रज में प्रकट हुए हैं, सो तुम उन्हें पहिले ही मार डालो।" इतना कहकर नारदजी फिर बोले—"हे राजन् ! उनको मारने के लिए मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। तुम नन्दजी को यह कहला भेजो कि हमें कालीदह के कमल के फूलों की आवश्यकता है। जब वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालक कमल के फूल लेने के लिए वहाँ जायगा, तो कालीनाग उसे डँस कर मार डालेगा।" इतना कहकर जब नारदजी चले गये तो कंस ने उसी समय नन्दजी के पास यह संदेशा भेज दिया कि तुम कल एक करोड़ कालीदहवाले कमल के फूल हमारे पास भिजवा दो, अन्यथा हम तुम्हारा घर-द्वार लूटकर तुम्हें व्रज से बाहर निकाल देंगे और तुम्हारे दोनों पुत्रों को कैद कर लेंगे।"

हे परीक्षित! उस दिन अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी इस हाल को जानकर गौ चराने के लिए वन में नहीं गये थे। जब नन्दजी के पास कंस का संदेशा पहुँचा, तब उन्होंने घबराते हुए उपनन्द आदि गोपों को यह समाचार सुनाया, उस समय सब वृन्दावनवासी गोपी-गोप परस्पर यह कहने लगे कि कालीदह में से फूल निकालना तो असम्भव काम है। हमें अपने प्राणों का तो कोई भय नहीं है; परन्तु कंस इसी कारण से श्याम-बलराम को कैद कर लेगा। यही सोच हमारे जी को जलाये देता है। अब कोई ऐसा ठिकाना भी दिखाई नहीं देता, जहाँ इन दोनों बालकों को छिपा दिया जाय। उस समय एक गोप ने यह सलाह दी कि राजा कंस ने ऐसा क्रोध पहिले कभी नहीं किया था, अतः अब हमें उसके पास चलकर विनती करनी चाहिए तथा फूलों के बदले जो दूसरा दण्ड दे, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

हे परीक्षित! जिस समय नन्द-यशोदा इस सोच में बैठे हुए रो रहे थे, उसी समय अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रजी घर के भीतर आ पहुँचे। तब यशोदाजी उन्हें गोद में उठाकर अत्यन्त विलाप करने लगीं। यह देखकर श्री बाँकेविहारी ने पूछा—"हे मैया! तू इस तरह क्यों रो रही है, अपने मन का हाल मुझे बतला?" यशोदा ने उत्तर दिया—"हे बेटा! तू मेरे रोने का हाल अपने पिता से पूछ ले।" तब श्री कृष्णजी नन्दजी के पास जा पहुँचे और उन्हें उदास तथा रोते हुए देखकर कहने लगे—"हे बाबा! तुम ऐसे व्याकुल क्यों हो रहे हो?" नन्दजी बोले—"हे कन्हैया! जब से तुम्हारा जन्म हुआ, तभी से राजा कंस ने तुम्हें मारने के लिए अनेक राक्षसों को भेजा, परन्तु अभी तक कुल देवताओं की कृपा से तुम्हारे प्राण बचे रहे। हे बेटा! अब कंस ने कालीदह के फूल मँगवाये हैं और यह कहलवाया है कि यदि कल तक फूल नहीं आये तो वह तुम्हें तथा बलदाऊ को कैद करके हम लोगों को व्रज से बाहर निकाल देगा। सो कालीदह से फूल आना कठिन समझकर ही मैं चिन्ता कर रहा हूँ।" यह सुनकर श्रीश्यामजी ने उत्तर दिया—"हे बाबा! तुम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिन्ता मत करो। जिन देवताओं ने तुम्हारी अभी तक सहायता की है वे ही आगे भी कृपा करेंगे।" कृष्णजी के इस प्रकार समझाने पर नन्द आदि सभी ब्रज-वासियों ने अपने कुल-देवता का ध्यान धरकर पूजन आदि किया। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दरजी ग्वालबालों-सहित यमुना के तट पर पहुचकर गेंद खेलने लगे। खेल ही खेल में श्री कृष्णचन्द्रजी ने श्रीदामा की गेंद को जान-बूझ-कर कालीदह में फेंक दिया। उस समय श्रीदामा ने उनकी कमर में हाथ डालते हुए कहा—"हे कन्हैया! तू मुझे और ग्वालों की तरह मत समझना। अब मैं अपनी गेंद लिए बिना तुझे यहाँ से नहीं जाने दूँगा।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे सखा! तू मेरी फेंट छोड़ दे। छोटे बड़े का विचार किए बिना तूने मेरी कमर में हाथ डाल दिया, यह कोई अच्छी बात नहीं है। यों झगड़ा बढ़ाने से कुछ न होगा। तू मेरी समानता मत कर। क्या तू मेरे प्रताप को नहीं जानता कि मैंने बकासुर आदि राक्षसों को मार डाला था? इतने पर भी तू मेरी बराबरी क्यों करता है?" तब श्रीदामा बोला—"हे कन्हैया! बड़े आदमी का बेटा होने से तुम कोई राजा नहीं हो गये हो। यहाँ हम-तुम दोनों बराबर के हैं। बिना गेंद दिए किसी तरह काम नहीं चलेगा। तुमने राक्षसों को मारा सो क्या बड़ी बात की। अब राजा कंस ने कालीदह के फूल मँगाये हैं। यदि कल तक नहीं पहुँचे तो वह तुम्हें पकड़वा कर कैद में डाल देगा, तब तुम्हारी ताकत अच्छी तरह मालूम हो जायगी।"

हे परीक्षित! श्रीदामा के ऐसे कठोर वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"अरे मूर्ख! तू मुझे क्या समझता है? मुँह सँभालकर बात क्यों नहीं करता? तू मुझे कंस का भय मत दिखा। मैं यहाँ कालीदह के फूल लेने के लिए ही आया हूँ। मैं आज कंस के पास कमल के फूल भेजकर ब्रजवासियों की चिन्ता दूर करूँगा। फिर कभी तेरे सामने ही कंस के सिर के बाल खींच कर उसे जान से मार डालूँगा।" इतना कहकर श्री कृष्णचन्द्रजी उसके हाथ से फेंटा छुड़ाकर कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये। यह देखकर श्रीदामा रोते हुए बोला—"मैं तुम्हारे माता-पिता से गेंद फेंकने का हाल कहता हूँ।" उस समय श्री कृष्णजी ने उसे ललकारते हुए कहा—"तू घबरा नहीं, मैं तेरी गेंद अभी लाये देता हूँ।" इतना कहकर आनन्दकन्द श्री यशोदानन्दन कालीदह में कूद पड़े। हे परीक्षित! जिस समय श्री कृष्णजी कालीदह में कूदे, उस समय सब ग्वालबाल हाय-हाय कहकर श्रीदामा को गाली देते हुए, यमुना के तट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर हाथ फैलाकर बैठ गये तथा उच्च स्वर से रोने लगे। गाएँ भी डकराकर चिल्लाने लगीं। उनमें से दो बालक रोते हुए यह समाचार देने के लिए घर की ओर चल पड़े। उस समय वृन्दावन में अनेक प्रकार के अशकुन होने लगे, जिससे नन्द-यशोदा को बड़ा सोच हुआ। नन्दजी ने यशोदा से कहा—"आज कन्हैया के साथ बलदाऊ भी नहीं गया है, सो श्री नारायणजी मेरे लाड़ले को राजी-खुशी रक्खें। इतना कहकर नन्दजी श्री कृष्णजी को ढूँढ़ने के लिए चल दिये। यशोदा भी उनके पीछे-पीछे चलीं। जब वे दोनों मार्ग में कुछ दूर पहुँचे, तभी वे दोनों ग्वाले रोते हुए उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने सिसकियाँ लेते हुए कहा—"हे यशोदा मैया! आज गेंद खेलते समय कन्हैया कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये थे, सो वे वहाँ से गिरकर कालीदह में डूब गये हैं।" यह समाचार सुनते ही नन्द-यशोदा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय यशोदाजी रो-रोकर कहने लगीं—"मेरे प्राणप्यारे ने कल रात को जो स्वप्न में देखा था, वह सत्य हो गया। जिस समय यह समाचार वृन्दावन पहुँचा उस समय रोहिणी, वृषभानु आदि सभी गोप-गोपी व्याकुल हो, छाती पीटकर रोते हुए, नन्द-यशोदा को साथ ले, यमुना-तट पर जा पहुँचे। जब उन्होंने वहाँ श्री कृष्णजी को नहीं देखा तब बालकों से सब वृत्तान्त पूछा। उन्होंने वह स्थान दिखला दिया, जहाँ से मुरलीमनोहर कालीदह में कूदे थे। उस समय जब नन्द-यशोदा ने व्याकुल हो, यमुना में डूबकर प्राण दे देने की इच्छा प्रकट की तो सब लोगों ने उन्हें पकड़कर रोक लिया।

हे परीक्षित! उस समय यशोदा पागलों के समान रोती हुई इस प्रकार कहती थीं—"हे लाल! मैं तुम्हारे खाने के लिए मक्खन-मलाई लिये बैठी हूँ, आज तुमने इतनी देर कहाँ लगा दी? हे कन्हैया! तुम दोनों भाई साथ बैठकर भोजन क्यों नहीं करते हो? अब मैं तेरे बिना किस तरह जीवित रहूँगी तथा किस प्रकार अपना कलेजा ठण्डा करूँगी? हे बेटा! जब तू अपनी साँवली सूरत तथा मोहिनी मूरत दिखाकर मुझे अपनी तोतली बोली सुनाता था, उस समय मैं तीनों लोकों का सुख भूल जाती थी। अब मैं तेरा वह स्वरूप कहाँ देखूँ? हे कन्हैया! हम लोगों पर जब कोई संकट पड़ता था, तब तूही हमारी रक्षा करता था। अब हम सब लोग तेरे विरहरूपी समुद्र में डूब रहे हैं, सो तू शीघ्र आकर हमें इससे बाहर क्यों नहीं निकालता?" इस प्रकार अनेक बातें कह-कहकर यशोदा शोक-मग्न हो रही थीं। उनके वचन सुनकर अन्य गोपियाँ भी अधीर होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रो उठीं। वृन्दावनवासी सभी स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध तथा युवा अपना-अपना घर छोड़, कालीदह के किनारे खड़े हुए श्रीहरि की याद कर-करके रो रहे थे, किसी को अपने शरीर का कुछ भी ध्यान नहीं था। वृन्दावन की सभी गोपियाँ अपना मस्तक और छाती पीट-पीटकर इस प्रकार कह रही थीं—"हे प्राणप्यारे! तुम हम लोगों को इस दुःख में डालकर, स्वयं जल-विहार करने कहाँ चले गए? तुम्हारे बिना यह सारा व्रजमण्डल सूना हो जायगा। अब हमारा दही चुरा-कर कौन खाया करेगा तथा हम यशोदा के पास कौन-सा उलाहना लेकर जाया करेंगी? इस समय हम सब तुम्हारे विरह में मरी जा रही हैं, सो तुम शीघ्र ही जल के बाहर आकर हमारे प्राण बचा लो।" नन्दजी अत्यन्त विलाप करके कहते थे—"हे बेटा! तेरे ही कारण मैं गोकुल छोड़कर वृन्दावन में आया, अब तू यहाँ मुझे अकेला छोड़कर कहाँ चला गया है? तेरे बिना मुझे सम्पूर्ण संसार अन्धकारमय दीखता है। अब मैं किस तरह जीवित रहूँ। हे आँखों के तारे! जिस प्रकार तूने बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर हम लोगों को सुख पहुँचाया था, उसी प्रकार आज भी तू मेरे बुढ़ापे की लाज रखने के लिए अपनी मोहिनी मूरत शीघ्र दिखला, अन्यथा मैं जीवित न बचूँगा।" नन्द-राय के ऐसे दीन वचन सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग रोने लगे। उसी समय यशोदा मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। जब बलरामजी ने उनके मुख पर पानी के छींटे मारे और उन्हें कुछ होश आया तब वे उन्हें अपने सामने खड़ा हुआ देखकर इस प्रकर कहने लगीं—"हे बेटा बलदाऊ! कन्हैया तेरे बिना घड़ीभर को अकेला नहीं रहता था, पर आज तूने उसे कहाँ छोड़ दिया? तू मेरे प्राणप्यारे को जल्दी बुला ला। उसने अभी तक कुछ नहीं खाया है, सो उसे भूख लग रही होगी।" इतना कहकर यशोदा जब फिर कन्हैया-कन्हैया पुकारने लगीं, उस समय बलरामजी ने उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा—"हे मैया! तुम इतनी दुखी मत होओ। कन्हैया तुम लोगों को चिंतित देखकर फूल लाने के लिए कालीदह में गये हैं, सो वे फूल लेकर अभी लौटे आते हैं। वे त्रिलोकीनाथ अविनाशी पुरुष हैं, अतः उन्हें यमुना में डूबने अथवा कालीनाग के काटने का कोई भय नहीं है। तुम देख ही चुकी हो कि पुतना को उन्होंने पलभर में मार गिराया था। मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तीनों लोकों में कोई ऐसा जीव उत्पन्न नहीं हुआ है जो उन्हें तनिक भी दुःख पहुँचा सके।" इस प्रकार बलभद्रजी के समझाने पर जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ धैर्य हुआ, उस समय यशोदा उन्हें हाथ पकड़कर अपने सामने बैठा लिया तथा उनकी बलैया लेने लगीं। उस समय सब व्रजवासी टकटकी लगाये हुए यमुना की ओर देख रहे थे कि देखें श्री कृष्णचन्द्रजी कब बाहर निकलते हैं।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! उस दिन नन्द, यशोदा तथा गोप-गोपियों को जो शोक हुआ, उसका वर्णन कैसे किया जाय? अब श्री कृष्णचन्द्रजी का हाल सुनो। जब वे नटवर रूप बनाये हुए कालीदह के भीतर पहुँचे, तब उनके मनोहर स्वरूप को देखकर काली-नाग की पत्नी मोहित होकर इस प्रकार कहने लगी—"हे मनोहर स्वरूप! तुम अपने कोमल शरीर को लेकर यहाँ किस लिए आये हो? इस समय कालीनाग सो रहा है। उसके जागते ही तुम्हारा शरीर उसके विष से भस्म हो जायगा। इसलिए तू अभी भाग जाओ। मुझे तुम्हारा ऐसा सुन्दर स्वरूप देखकर दया आती है; इसी लिए मैं तुमसे यह कह रही हूँ।" नागपत्नी के यह वचन सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे नागिन! मुझे राजा कंस ने एक करोड़ फूल लाने के लिए यहाँ भेजा है। अतः तू अपने पति को शीघ्र जगा दे।" नागपत्नी बोली—"हे सुन्दर बालक! तुम कालीनाग से क्या बात करोगे? उसकी एक ही फुंकार से तुम्हारा शरीर भस्म हो जायगा। राजा कंस मर जाय, जिसने तुम-जैसे स्वरूपवान को यहाँ भेजा है। तुम भी बड़े पागल हो जो यहाँ चले आये। मैं कहती हूँ कि तुम अपने प्राण बचाकर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारे माता-पिता बहुत दुःख पावेंगे।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"हे नागपत्नी! तू मुझे बालक समझकर क्यों डरा रही है? मैं जैसा बालक हूँ, वह तुझे अभी मालूम हो जायगा। तू नाग को शीघ्र जगा दे। मैं इसे नाथकर तथा इसी के ऊपर कमल लदवा-कर ले जाऊँगा। हे नागिन! सोये हुए को मारना अधर्म कहा गया है, इसी लिए मैं तुझसे इसे जगा देने को कह रहा हूँ।" नागपत्नी ने उत्तर दिया—"हे बालक! तुझे छोटे मुँह से बड़ी बात कहना उचित नहीं है। इस कालीनाग ने गरुड़ से युद्ध किया था, सो तेरी क्या बिसात है, जो तू इसके सामने पलभर को भी ठहर सके। अब मुझे यह लगता है कि तेरी मृत्यु ही तुझे खींचकर यहाँ ले आई है। यदि तू मेरा कहना नहीं मानता और तुझमें कालीनाग से लड़ने की सामर्थ्य भी है, तो तू स्वयं ही इसे जगा ले।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! नागपत्नी के मुख से ऐसे वचन सुनकर जैसे ही श्री कृष्णजी ने उसे झिड़कते हुए अपने पाँव से उसकी पूँछ को दबाया, वैसे ही वह गरुड़जी के भय से चौंककर उठ खड़ा हुआ। जब उसने यह देखा कि मेरे सामने एक बालक खड़ा हुआ है तो यह सोचकर अपने मन में आश्चर्य करने लगा कि मेरे विष की गर्मी को अक्षयवट भी सहन नहीं कर सकता है तथा कोसों दूर तक के पशु-पक्षी भस्म हो जाते हैं, तब यह कैसा बालक है, जिसने यहाँ तक जीवित आकर मुझे सोते से जगा दिया है ? यह विचारकर वह क्रोध से पूँछ पटकता हुआ श्री कृष्णचन्द्रजी की ओर झपटा तथा अपने एक सौ एक फणों से उनके शरीर को काटने लगा। हे परीक्षित ! उस कालीनाग के विष की गर्मी से यमुना का जल सदैव खौलता रहता था, परन्तु श्री श्यामसुन्दर के शरीर पर उस विष का कोई असर नहीं हुआ। उस समय नागपत्नी ने अपने पति से इस प्रकार कहा—"हे स्वामी ! यह बालक बड़ा तेजस्वी है। यह कोई मन्त्र जानता है, इसीलिए आपका विष इसके शरीर में प्रवेश नहीं करता है।" जब कालीनाग ने यह देखा कि यह बालक मेरे काटने से नहीं मरता तो उसने श्री श्यामसुन्दर को अपने शरीर से लपेट कर कस लिया। उस समय नागपत्नी पछिताती हुई अपने मन में यह कहने लगी कि देखो यह सुन्दर बालक यहाँ अपनी खुशी से आया तथा मेरे कहने पर भी वापस लौटकर नहीं गया, अब इसका बचना कठिन दिखाई दे रहा है। उस समय कालीनाग ने अत्यन्त अभिमान में भरकर श्री मुरलीमनोहर से इस प्रकार कहा—"हे बालक ! तू मुझे नहीं जानता, मैं सर्पों का राजा हूँ, अब तुझे यहाँ से जीवित नहीं जाने दूँगा।" यह वचन सुनकर गर्वहारी श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपना शरीर ऐसा फुलाया कि कालीनाग के सब अंगटूटने लगे। तब उसने व्याकुल होकर श्री घनश्यामजी को छोड़ दिया तथा एक ओर जाकर चुपचाप खड़ा हो गया। उस समय श्री बाँकेविहारी ने उसके फण को अपने पाँव के नीचे दबाकर शीघ्रतापूर्वक नाथ डाला। फिर उसके नाक की डोरी को पकड़कर, उसके मस्तक पर जा विराजे। हे परीक्षित ! जिस समय श्री कृष्णचन्द्रजी अपने शरीर में तीनों लोकों का बोझ लेकर, कालीनाग के मस्तक पर बंशी बजाते हुए नृत्य करने लगे, उस समय उस आनन्दमय नृत्य को देखने के लिए देवता, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर आदि अपने-अपने विमानों में बैठकर आकाश में छा गये। गन्धर्वों ने वाद्य बजाकर, ताल-स्वर-सहित श्री त्रिलोकीनाथ के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यश का गान किया, अप्सराओं ने नृत्य आरम्भ कर दिया तथा देवता पुष्प-वर्षा करने लगे।

हे परीक्षित! उस नृत्य, गायन तथा मुरली-ध्वनि की ऐसी शोभा थी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब भार के कारण कालीनाग के फणों से खून गिरने लगा और मृतक-तुल्य होकर अपने विष का घमण्ड भूल गया तथा फण पटक-पटक कर जिह्वा निकाल बैठा, उस समय श्रीहरि की कृपा से उसे ज्ञान प्राप्त हुआ तथा यह बात स्मरण आई कि एक समय ब्रह्माजी ने मुझसे व्रज में श्रीहरि के कृष्णावतार होने की बात कही थी। यह स्मरण आते ही उसे यह निश्चय हुआ कि यह बालक वही अवतार है, अन्यथा और किसमें इतनी सामर्थ्य है, जो कोई मेरे विष से जीवित बच सके? उस समय कालीनाग अपने मन में पछताकर कहने लगा कि मुझसे बहुत बुरा कर्म हुआ जो मैंने श्री त्रिलोकीनाथ के शरीर पर अपने फण चलाये। यह बात मन में समझने के पश्चात् कालीनाग ने श्री कृष्णजी के शरणागत हो, पुकारकर इस प्रकार कहने लगा—"हे महाप्रभु! मैंने आपके स्वरूप को नहीं पहचाना था, सो आप मेरा अपराध क्षमा करके मुझे अपनी शरण में ले लीजिए और जीवन-दान देकर कृतार्थ कीजिए।" इतना कहकर कालीनाग चुप रह गया तथा श्री कन्हैयाजी की अधीनता स्वीकार कर ली। वह अपने कर्म का स्मरण करके लज्जावश कुछ स्तुति भी नहीं कर सका। जब श्री बैकुण्ठनाथ ने यह देखा कि कालीनाग का अभिमान टूट गया है, तब उन्होंने कृपा करके उसे चतुर्भुजीरूप से अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। उस समय सब नागपत्नियाँ रुदन करती हुई उनके सामने आ, हाथ जोड़कर स्तुति करती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे दीनानाथ! आप तीनों लोकों के सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करनेवाले हैं। आपने अधर्मियों को मारने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया है। संसार में जो मनुष्य आपका ध्यान धरता है अथवा आपकी भक्ति करता है या शत्रुता रखता है, तो वह भी संसार-सागर से पार उतर कर मुक्ति-पद को पा लेता है। जिस प्रकार अनजाने में अमृत पीने से मनुष्य अमर हो जाता है, उसी प्रकार आपके ध्यान की महिमा भी समझनी चाहिए। हे प्रभो! हमारे पति ने अपने अभिमान तथा अज्ञान के वशीभूत होकर आपको पहिचाना नहीं था, इसलिए उसे अपने किए का दण्ड भोगना पड़ा है; परन्तु आपका दर्शन पाने के कारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह भी कृतार्थ अवश्य हुआ है। जप, तप, यज्ञ, हवन करने पर भी आपके जिन श्रीचरणों का दर्शन सहज ही प्राप्त नहीं होता, उसे इसने घर बैठे पाया है। हे दीनदयालु! आपने इसका गर्व नष्ट करके बहुत अच्छा कार्य किया है। इसने पूर्वजन्म में कोई बड़े पुण्य किए थे, जिनके कारण आपके चरण-कमल इसके मस्तक पर सुशोभित हो रहे हैं। जिन चरणों की धूलि को पाने के लिए लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि देवता; योगी, ऋषि तथा मुनिजन आदि अभिलाषा रखते हैं, वही धूलि इसके मस्तक पर विराजित हुई। अतः इसके समान भाग्यशाली होना अन्य को दुर्लभ है। आपकी चरण-धूलि की भक्ति अपने हृदय में रखने के कारण नारदजी तथा सनकादिक तीनों लोकों के सुख को तुच्छ समझते हैं। इस धूलि की भक्ति रखनेवाले के समक्ष इन्द्रासन, मुक्ति-पद, अष्ट सिद्धि एवं वैकुण्ठलोक का सुख सब तुच्छ है। जिसे पारस पत्थर मिल जाता है, उसे स्वर्ण की इच्छा नहीं रहती है। हे प्रभो! अब यह नाग आपके भय से मृतक-तुल्य हो गया है। शूरवीर कभी किसी भयभीत के ऊपर हाथ नहीं उठाते हैं, अतः हे त्रिभुवनपति! आप इसे या तो छोड़ दीजिए अन्यथा हम सबको भी इसी के साथ मार डालिये। हम पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, अतः अपने प्राणों को पति के अधीन ही समझती हैं। वेद तथा शास्त्रों में यह लिखा है कि पतिव्रता स्त्री उसी को समझना चाहिए जो अपने पति को कोढ़ी, दरिद्री तथा रोगी होने पर भी श्री नारायणजी के समान समझे। आज से हमें अपने पति पर इसलिए और अधिक विश्वास हुआ कि उसके कारण हमें आपका दर्शन सुलभ हो सका है।"

हे परीक्षित! जब नाग-पत्नियों ने इस प्रकार स्तुति की तब श्री श्याम-सुन्दरजी प्रसन्न हो कालीनाग के अपराध को क्षमा करके, उसके मस्तक से नीचे कूद पड़े। उस समय कालीनाग ने उन्हें दण्डवत् करते हुए इस प्रकार प्रार्थना की—"हे महाप्रभु! मुझसे अनजान में जो अपराध बन पड़ा है, उसके लिए आप क्षमा कर देने की कृपा करें, मैं विष से परिपूर्ण तामसी स्वभाव का प्राणी हूँ, इसी लिए मैंने आपके ऊपर अपना फण चलाया था। हे प्रभो! ब्रह्मा आदि देवता भी आपके भेद को शीघ्र नहीं पहिचान पाते हैं, फिर भला मैं मूर्ख आपको किस प्रकार जान लेता? आपने मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया है। वेद और पुराण आप ही के गुण गाते रहते हैं। यदि आप विचार करके देखें तो मेरा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि आपने मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाति का स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। यदि कोई मुझे दूध पिलावे, तो भी मेरे शरीर में विष ही उत्पन्न होगा, जब कि गौ को भूसा खिलाने पर वह दूध ही देती है। हे नाथ! मैंने अपने स्वभाव के अनुसार आपके ऊपर फण चलाया था। अब आप मुझे अपनी शरण में रखिए। मेरा मस्तक धन्य है, जिसके ऊपर आपके चरण-कमल सुशोभित हुए हैं, लक्ष्मीजी जिन चरणों को आठों पहर अपने हृदय से लगाए रहती हैं, ब्रह्मा आदि देवता जिनका दिन-रात ध्यान धरते रहते हैं, जिनके द्वारा तीनों लोकों को कृतार्थ करनेवाली गंगाजी की उत्पत्ति हुई है वे चरण मेरे मस्तक पर विराजे, इससे अधिक धन्य भाग्य क्या होगा? हे दीनानाथ! आप शेषनाग के एक मस्तक पर शयन करते हैं, तो उन्होंने इतनी प्रशंसा पाई है। परन्तु जब आपने मेरे एक सौ एक फणों पर नृत्य किया है तो मैं अपने समान भाग्यशाली किसी दूसरे को नहीं समझता हूँ। अब मेरा भय दूर हो गया है।"

हे परीक्षित! कालीनाग की स्तुति सुनकर श्री श्यामसुन्दरजी ने कहा—"हे काली! अब तू यहाँ से हटकर अपने परिवार-सहित रमणकद्वीप में जाकर निवास कर। मैं यहाँ जल-विहार किया करूँगा। जो मनुष्य इस कालीदह में स्नान करके पितरों का तर्पण करेगा, उसके सम्पूर्ण जन्मों के पाप नष्ट हो जायँगे। मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तेरा अपराध क्षमा किए देता हूँ। महाप्रलय पर्यन्त संसार में तेरा नाम स्थिर रहेगा। जो देवता तथा मनुष्य मेरी तथा तेरी इस कथा को कहेंगे अथवा सुनेंगे, उन्हें सर्प के काटने का भय नहीं रहेगा। हे सर्पराज! राजा कंस ने कालीदह के एक करोड़ कमल के पुष्प माँगे हैं, सो तू उन्हें अपने ऊपर लादकर शीघ्रतापूर्वक व्रज में पहुँचा दे।" श्री घनश्यामजी के ऐसे वचन सुनकर कालीनाग ने भय से काँपते हुए कहा—"हे महाप्रभो! कमल के पुष्प तो मैं अभी पहुँचाये देता हूँ, परन्तु रमणकद्वीप में जाने से मुझे गरुड़जी खा जायँगे। उन्हीं के भय से भागकर मैं यहाँ आया था। तब श्री घनश्यामजी ने कहा—"हे काली! तेरे मस्तक पर मेरे चरणों का चिह्न बन गया है, सो इसे देखकर गरुड़जी तुझे कोई दुःख नहीं पहुँचायेंगे, फिर भी मैं गरुड़ को यहाँ बुलाकर उनसे तेरा भय दूर कराये देता हूँ।" इतना कहकर श्रीहरि ने उसी समय गरुड़ को बुलाकर कालीनाग का भय दूर करा दिया। उस समय कालीनाग ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी स्त्रियों-सहित श्री कृष्णचन्द्रजी की विधिपूर्वक पूजा की तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत से मणि-रत्न आदि भेंट में दिये। तत्पश्चात् वह अपने ऊपर तीन करोड़ कमल के फूल लादकर तथा मस्तक पर श्री श्यामसुन्दर को बैठाकर जल के बाहर आ पहुँचा।

हे परीक्षित! उधर तो यह हुआ, इधर यशोदाजी रो-रोकर बलरामजी से यह कह रही थीं कि इतनी देर हो जाने पर भी मेरा कन्हैया अभी तक क्यों नहीं आया? उस समय बलरामजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे मैया! तुम कुछ देर तक और धीर धरो। मुरलीमनोहर श्री कृष्णचन्द्र अभी ही आनेवाले हैं।" बलरामजी के इस प्रकार समझाने पर भी सब व्रजवासी अत्यन्त व्याकुल हो, रो-रो कर इस प्रकार कहने लगे—"हे मनमोहन! तुम हमारा मोह त्यागकर कहाँ चले गये हो? दो पहर से यमुना के भीतर बैठे-बैठे तुम क्या कर रहे हो। तुम्हारे बिना हमारी दुर्गति हो रही है सो तुम शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आओ। इस समय नन्द-यशोदा की ऐसी गति हो रही है, जैसे मणि के बिना सर्प छटपटा रहा हो, अतः तुम हमारी प्रार्थना पर शीघ्र ध्यान दो।" उस समय यशोदाजी भी फिर रो-रोकर इस प्रकार कह उठीं—"मुझे धिक्कार है कि मेरा कन्हैया तो यमुना में डूब गया और मैं अब तक जीवित बैठी हुई हूँ।" फिर नन्दरायजी से बोलीं—"हे महर! घन-श्यामलाल के बिना जीने का क्या सुख है, सो तुम मुझे मारकर स्वयं भी क्यों नहीं मर जाते हो?" यशोदाजी के ऐसे दुःखभरे वचन सुनकर नन्दजी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय बलरामजी ने उन्हें चैतन्य करते हुए कहा—"हे पिता! श्री कृष्णचन्द्र को मारनेवाला तीनों लोकों में कोई नहीं है, तुम इतना सोच क्यों कर रहे हो? वे क्षीरसमुद्र में लक्ष्मीजी के सहित निवास करनेवाले अविनाशी प्रभु हैं। इस यमुना में उनके कूदने से तुम्हें इतना सोच क्यों हो रहा है?" इस प्रकार जब बलरामजी धीरज बँधा रहे थे, तभी यमुना-जल में लहरें उठने लगीं। उस समय बलरामजी ने सबको पुकार कर कहा—"देखो श्री श्यामसुन्दर जल से बाहर आ रहे हैं।" यह सुनकर सब लोग यमुना-जल की ओर देखने लगे। उसी समय श्री कन्हैयाजी कालीनाग को नाथे हुए जल के ऊपर प्रकट हुए।

हे परीक्षित! श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन पाते ही नन्द-यशोदा तथा अन्य सब वृन्दावनवासी ऐसे प्रसन्न हुए, मानो मृतक-शरीर में प्राण लौट आये हों। तभी कालीनाग ने श्री श्यामसुन्दर को यमुना के तट पर उतार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर वहीं कमल के फूलों को भी रख दिया। उस समय श्रीहरि ने उसे बिदा करते हुए कहा—"हे काली! अब तुम निर्भय होकर रमणकद्वीप में निवास करो।" तब कालीनाग उनके आज्ञानुसार अपने परिवार-सहित रमणकद्वीप को चला गया। हे परीक्षित! इस प्रकार भगवान् श्री मुरलीमनोहर ने दुःख-सागर में डूबे हुए व्रजवासियों से मिलकर सबके हृदय में हर्ष उत्पन्न किया। उसी दिन से कालीदहवाला यमुना का जो जल विष के समान था, वह अमृत के तुल्य हो गया। यह चरित्र देखकर सब देवता पुष्प बरसाते हुए तथा श्री कृष्णचन्द्रजी का जय-जयकार करते हुए अपने-अपने लोक को चले गये।"

सत्रहवाँ अध्याय

कालीनाग का पूर्व वृत्तान्त

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! रमणक-द्वीप जैसे उत्तम स्थान को छोड़कर कालीनाग यमुनाजी में आकर क्यों रहता था? उसने गरुड़ का क्या अपराध किया था? यह वृत्तान्त मुझे विस्तार-पूर्वक सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अब हम तुम्हें वह कथा सुनाते हैं कि जिस कारण कालीनाग ने गरुड़ के भय से यमुना में वास किया था, सुनो। हे राजन्! कश्यपजी ब्रह्मा के पुत्र हैं। उनकी अनेक पत्नियाँ हैं। उनमें एक 'कद्रू' तथा दूसरी 'विनता' नाम की भी हैं। कद्रू के गर्भ से 'कालीनाग' आदि बहुत से सर्प उत्पन्न हुए तथा विनता के गर्भ से दो पुत्रों ने जन्म लिया। उनमें एक का नाम 'गरुड़' और दूसरे का 'अरुण' हुआ। गरुड़ श्री नारायणजी के वाहन बने और अरुण सूर्य देवता का सारथी बना। गरुड़ तथा कालीनाग आदि सर्प रमणकद्वीप में रहा करते थे। एक दिन कद्रू तथा विनता—दोनों सौतें बैठी हुई थीं। उस समय कद्रू ने विनता से पूछा—"हे बहिन! सूर्य के रथ में किस रंग के घोड़े जुते हुए हैं?" विनता ने श्वेत रंग के बतलाये परन्तु कद्रू ने काले रंग के कहे। इसी बात पर झगड़ा करके दोनों ने यह प्रतिज्ञा की कि जिसकी बात मिथ्या हो वही दूसरी की दासी बनकर रहे। जब सर्पों ने यह समाचार सुना तो उन्होंने कद्रू से कहा—"हे माता! सूर्य के रथ में श्वेत रंग के घोड़े जुते हुए हैं, इसलिए तू हार जायगी। तूने हम लोगों से पूछे बिना प्रतिज्ञा कैसे कर डाली?" यह सुनकर कद्रू ने उत्तर दिया—"हे पुत्रो! अब तो मैं वचन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हार चुकी हूँ। तुम लोग कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मेरा कहना सत्य सिद्ध हो; अन्यथा मुझे विनता की दासी बनना पड़ेगा। सर्पों ने कहा—"हम लोग उन घोड़ों के शरीर से लिपट जाते हैं, इससे वे काले दिखाई देने लगेंगे तब तू जीत जायगी।" इतना कहकर वे सर्प सूर्य के घोड़ों से लिपट गये, तब वे काले दिखाई देने लगे। उसी समय कद्रू विनता को साथ लेकर घोड़ों को देखने के लिए गई तो सर्प लिपटे होने के कारण वे काले दिखाई दिये। इस प्रकार विनता के हार जाने पर कद्रू उसे अपनी दासी बनाकर घर ले गई।

हे परीक्षित! जब गरुड़जी ने यह हाल सुना तो उन्होंने कद्रू से जाकर यह कहा—"तुमने छल करके मेरी माता को दासी बनाया है, सो ऐसा अधर्म तुम्हें उचित नहीं था। अब तुम हमारी माता को मुक्त कर दो और उसके बदले जो वस्तु चाहो वह माँग लो, हम ला देंगे।" यह सुनकर सर्पों ने परस्पर सम्मति करके यह उत्तर दिया—"हे गरुड़! यदि तुम हमें अमृत का कलश ला दो, तो हम तुम्हारी माता को दासी नहीं बनावेंगे।" यह सुनकर गरुड़ ने उसी समय अमृत का कलश लाकर सर्पों को दे दिया। फिर वे अपनी माता को साथ लेकर घर लौट आये। यह समाचार जब देवताओं ने सुना तो उन्होंने विचार किया कि अमृत पीने से जब सर्प अमर हो जायँगे तो अन्य प्राणियों को बहुत दुःख पहुँचाने लगेंगे। उस समय कोई किस प्रकार जीवित बचेगा? यह सोचकर उन्होंने गरुड़ के पास जाकर कहा—"हे गरुड़! सर्पों ने तुम्हारे साथ जैसा छल किया है, उसी प्रकार तुम भी किसी उपाय से उनसे अमृत का कलश ले आओ।" यह बात गरुड़ ने स्वीकार कर ली। तदुपरान्त जिस समय सर्प लोग अमृत का कलश तालाब के किनारे रख, इस विचार से स्नान करने लगे कि हम लोग पवित्र होकर अमृत पियें, उसी समय गरुड़ वहाँ पहुँचकर अमृत का कलश उठा लाये और उसे देवताओं को दे दिया। देवता उसे पाकर अपने लोक को चले गये। इसी कारण से सर्पों ने गरुड़ से शत्रुता ठान ली। तब एक दिन गरुड़ ने अपने स्वामी श्रीहरि की बहुत प्रकार से स्तुति करने के उपरान्त उनसे यह वरदान माँगा कि युद्ध में कोई भी सर्प हमें जीत न सके तथा हम सर्पों का भोजन किया करें। उनका विष भी हमें न व्यापे। यह वरदान जब नारायणजी ने उन्हें दे दिया, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो, सर्पों को पकड़-पकड़कर खाने लगे। जब सर्पों ने अपने में गरुड़जी से जीतने की सामर्थ्य नहीं देखी तो उन्होंने ब्रह्माजी के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाकर यह प्रार्थना की–"हे प्रभो ! हमें तथा गरुड़ को आपने ही उत्पन्न किया है। अब गरुड़ वरदान पाने के कारण हमें पकड़-पकड़कर खा जाते हैं, ऐसा अनर्थ उन्हें नहीं करना चाहिए।" यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने गरुड़ तथा सर्पों में यह समझौता करा दिया कि गरुड़ प्रत्येक महीने में एक सर्प अपने खाने के हेतु ले लिया करें तथा सबको दुःख न पहुँचावें। जब गरुड़ ने यह बात स्वीकार कर ली तो सर्प उनके लिए प्रत्येक पूर्णमासी के दिन एक सर्प पीपल के वृक्ष के नीचे रख आने लगे। ब्रह्माजी के आज्ञानुसार गरुड़ ने भी केवल उसी सर्प को खाकर अन्य सर्पों को दुःख देना बन्द कर दिया। जब कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ, तब एक दिन कद्रू के पुत्र कालीनाग की पारी आई। उस समय कालीनाग अपने विष के घमण्ड में भरकर यह कहने लगा कि मैं तथा गरुड़ दोनों ही कश्यपजी के पुत्र होने के कारण परस्पर भाई-भाई हैं तथा हम दोनों की माता आपस में बहिनें हैं। ऐसी स्थिति में यदि मैं गरुड़ से भयभीत होकर उन्हें सर्प खाने दूँ, तो इसमें मेरा बड़ा उपहास होगा। सो मैं गरुड़ से युद्ध करके उन्हें नीचा दिखाऊँगा। यह निश्चय करके कालीनाग वृक्ष पर सर्प रखने के लिए नहीं गया। यह देखकर जब गरुड़ उसके द्वार पर आये तो उसने बड़ा भारी युद्ध किया। परन्तु गरुड़ ने उसे अपनी चोंच तथा पंखों से घायल करके नीचे गिरा दिया। गरुड़ जिस समय युद्ध करते थे, उस समय उनके पंखों से ऋग्, यजुः, साम और अथर्व वेद के स्वर निकलते थे, उस शब्द को सुनकर कालीनाग का तेज क्षीण हो जाता था। जब कालीनाग ने यह देखा कि गरुड़ मुझसे अधिक शक्तिशाली हैं तो उसने विचार किया कि यहाँ से भागे बिना मेरी मुक्ति न होगी, अतः मुझे यहाँ से चलकर वृन्दावन के पास यमुना में रहना चाहिए। क्योंकि 'सौभरि' ऋषि के शाप के कारण गरुड़ वहाँ नहीं जा सकते हैं। ऐसा निश्चय करके कालीनाग अपनी पत्नियों तथा बच्चों-सहित वहाँ से भागकर यमुनाजी में आ बसा। अन्य सर्पों को सौभरि ऋषि के शाप का कुछ पता नहीं था, इसलिए वे अपने स्थान पर ही बने रहे। कालीनाग ने उस शाप का हाल नारद मुनि के मुख से सुना था।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे शुकदेवजी ! गरुड़जी वृन्दावन के समीप यमुना-तट पर क्यों नहीं जा सकते थे, आप मुझे यह बताने की कृपा करें।" शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! एक समय सौभरि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषि यमुना-तट पर बैठे हुए तपस्या कर रहे थे, उसी समय वहाँ गरुड़ ने आकर एक बहुत बड़े मत्स्य को यमुना नदी में से पकड़कर खा लिया। यह देखकर सौभरि ऋषि ने क्रोध करके कहा—"हे गरुड़ ! जहाँ हम तप कर रहे हों, वहाँ किसी जीव को यह न चाहिए कि वह किसी दूसरे जीव को दुःख पहुँचाये। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो अपने स्वामी से जाकर इस सम्बन्ध में पूछ लो। अतः मैंने आज तो तुम्हारा अपराध क्षमा किया, परन्तु भविष्य के लिए यह शाप देता हूँ कि यदि तुम फिर कभी इस स्थान पर आओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।" हे राजन् ! इसी शाप के कारण गरुड़ वहाँ नहीं जा सकते थे। अस्तु, जब से कालीनाग वहाँ आकर रहने लगा, तब से उस स्थान का नाम 'कालीदह' पड़ गया।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! कालीनाग को विदा करने के उपरान्त श्री कृष्णजी बालकों के समान काँपते हुए भयभीत बने-से, दौड़कर यशोदा की गोद में जा छिपे। उस समय यशोदा ने उन्हें बड़े प्रेमपूर्वक अपने हृदय से लगा लिया। रोहिणी आदि सभी गोपियाँ तथा गोप आनन्द-मग्न होकर उनका जय-जयकार कर उठे तथा जो गौ एवं बछड़े श्यामसुन्दर के बिना रो रहे थे वे प्रसन्नता में भरकर पागुर करने लगे। श्री श्यामसुन्दर के इस चरित्र को देखकर बलदेवजी हँसने लगे। उस समय नन्दजी ने उन्हें हँसते हुए देखकर, क्रोधपूर्वक यह कहा—"वसुदेवजी का पुत्र बलराम हमारा जाति-भाई नहीं है, इसी लिए दुःख के समय भी इस प्रकार हँस रहा है।" यह सुनकर बलरामजी ने उत्तर दिया—"हे पिता ! मेरे हँसने का कारण यह है कि जो कन्हैयाजी कालीदह में कूदकर परम शक्तिशाली कालीनाग को नाथ लाये और अपने मन में तनिक भी भयभीत नहीं हुए, वे ही इस समय माता की गोद में आकर बालकों के समान काँप रहे हैं। हे नन्द बाबा ! संसार में इन्हें किसी का भय नहीं है। ये आततायियों को दण्ड देनेवाले हैं। बलरामजी के ऐसे वचन सुनकर नन्दजी भी हँसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने श्री कृष्णचन्द्रजी को अपने कण्ठ से लगाते हुए कहा—"हे पुत्र ! अब तुम गौ चराने के लिए न जाकर मेरे नेत्रों के सम्मुख रहा करो।" इतना कहकर नन्दजी ने उनके हाथों से स्वर्ण, गौ आदि का दान कराया। हे परीक्षित ! उस दिन सभी व्रजवासियों ने श्री श्यामजी का नवीन जन्म हुआ जानकर अत्यन्त आनन्द मनाया। उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसन्नता का वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। जब यशोदाजी ने श्री बाँकेविहारी से यह कहा कि मैं तुझसे नित्य मना करती थी कि तू यमुना-तट पर खेलने मत जाया कर, तो भी तूने उसे न मानकर हमें इतना दुःख पहुँचाया। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने यह उत्तर दिया—"हे माता! रात को मैंने जो स्वप्न देखा था, वह सत्य हो गया। अब आगे तुम्हारी बात माना करूँगा।" फिर कालीनाग का वृत्तान्त सुनाते हुए उन्होंने कहा—"हे माता! जब मैं जल के नीचे पहुँचा तो कालीनाग को देखकर अपने मन में अत्यन्त भयभीत हुआ। जब मैंने कालीनाग से यह कहा कि मुझे राजा कंस ने कमल के फूल लेने के लिए भेजा है, तो वह भयभीत होकर मुझे फूलों-सहित यहाँ पहुँचा गया।" उस समय श्रीदामा आदि ग्वालबालों ने श्री कृष्णजी से यह कहा—"हे कन्हैया! तुमने हमसे जो कुछ कहा था, वह करके दिखला दिया। इससे हमें निश्चय हुआ कि तुम कंस को अवश्य मारोगे। अब तुम हमारा अपराध क्षमा कर दो।" यह सुनकर श्री कन्हैयाजी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हे भाई! तुम सब तो मेरे सखा हो। मेरी-तुम्हारी लड़ाई घड़ीभर की थी। अब मैं तुम लोगों से बहुत प्रसन्न हूँ।" इतना कहकर श्यामजी बलराम-सहित हँसने लगे।

हे परीक्षित! उस दिन वृन्दावनवासी सभी लोग श्री श्यामसुन्दर के विरह में प्रातःकाल से ही भूखे बैठे थे, अतः श्री कृष्णजी ने उन सबसे यह कहा कि आज रात को सब लोग यहीं निवास करो। कल प्रातःकाल होने पर घर चलेंगे। यह सुनकर सब लोग वहीं ठहर गये। तब नन्दजी ने वृन्दावन से पकवान-मिठाई आदि मँगवाकर सब लोगों को भोजन कराया। उसी दिन नन्दजी ने कमल के फूल गाड़ियों में लदवाकर राजा कंस के पास मथुरा भेज दिया। नन्दजी ने फूल ले जानेवाले लोगों से इस प्रकार समझाकर कहा कि हे भाइयो! राजा कंस से प्रार्थना करते हुए यह कहना कि मेरा पुत्र फूल लेने के लिए कालीदह में गया था सो वह तुम्हारे प्रताप से फूलों को ले आया है। तदनन्तर जिस समय उन ग्वालबालों ने राजा कंस के पास पहुँचकर नन्दजी का पत्र तथा कालीदह के फूल दिए, उस समय वह उन फूलों को देखकर तथा नन्दजी के पत्र को पढ़कर अपने मन में अत्यन्त भतभीत हुआ। उसे यह भी विश्वास हो गया कि श्री कृष्णचन्द्रजी परब्रह्म प्रभु के अवतार हैं, सो अब उनके हाथ से मेरे प्राण किसी प्रकार नहीं बचेंगे। तत्पश्चात उसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नन्दजी के लिए शिरोपाव देकर, ग्वालों को बिदा करते हुए इस प्रकार कहा—"हे गोपग्वालो ! तुम नन्दजी से जाकर यह कह देना कि एक दिन हम उनके पुत्रों को अपने यहाँ बुलाकर देखेंगे।" जब ग्वालों ने कंस का यह सन्देश वृन्दावन जाकर कहा तो नन्दजी आदि सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय श्री श्यामजी ने हँसते हुए बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे भाई ! अब तो कंस हमें-तुम्हें देखने के लिए बुला रहा है।"

हे परीक्षित ! व्रजवासियों को उस दिन इसलिए अधिक प्रसन्नता थी कि एक तो श्री कृष्णचन्द्रजी कालीनाग के हाथों से बचे थे, दूसरे कंस को कमल भेजने के कारण सबका भय जाता रहा था। अस्तु, उस दिन सब लोग यमुना-तट पर सरहरी के वन में सो गये। जब कंस को यह संवाद मिला तो उसने 'धुन्धुक' नामक राक्षस को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तू आज वृन्दावन में जाकर, यमुना-तट पर सोते हुए नन्द, बलराम, श्याम आदि सब लोगों को वन में आग लगाकर भस्म कर दो। कंस की आज्ञा सुनकर वह राक्षस प्रसन्न होकर वहाँ जा पहुँचा तथा आधीरात के समय उसने वन में चारों ओर से आग लगा दी। जब दावानल की प्रचण्ड लपटों ने चारों ओर से वन को घेर लिया तथा पशु-पक्षी, वृक्ष आदि जलकर भस्म होने लगे, उस समय नन्द-यशोदा आदि सभी व्रजवासियों की नींद खुल गई। जब उन्होंने यह देखा कि आग की लपटें चारों ओर से दौड़ी चली आ रही हैं तथा कहीं से भी निकल भागने का मार्ग नहीं बचा है तो यशोदा ने अत्यन्त घबड़ाकर श्री कृष्ण से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! हम लोगों के ऊपर जब-जब सङ्कट पड़ता है, तब-तब तुम्हीं हमारी रक्षा करते हो, इस समय इस अग्नि से हम लोगों को जल्दी बचाओ, अन्यथा सभी लोग इसमें जलकर भस्म हो जायँगे। हम लोग अग्नि के भय से तुम्हारी शरण छोड़कर भाग नहीं सकते हैं।" जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने अग्नि के कारण सब लोगों को अत्यन्त व्याकुल देखा तब उन्होंने यह कहा कि तुम सब अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लो। अग्नि अपने आप बुझ जायगी। यह सुनकर जब सब लोगों ने अपनी आँखें बन्द कर लीं उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी अनेक स्वरूप धारण कर, उस अग्नि का अपने मुख में रखकर खा गये। उन्होंने धुन्धुक राक्षस को भी मार डाला। श्री नारायणजी की इच्छा से जब अग्नि बुझ गई तब जो पशु-पक्षी, वृक्ष आदि जल गये थे, वे सब पूर्ववत् ज्यों के त्यों हो गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदुपरान्त श्री कृष्णजी के कहने पर जब सब लोगों ने अपनी आँखें खोलीं तब उन्हें कहीं एक चिनगारी भी दिखाई नहीं दी। इस अद्भुत लीला को देखकर सब लोग आश्चर्यान्वित हो परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि यहाँ तो एक बूँद जल भी नहीं बरसा, फिर यह आग कैसे बुझ गई? उस समय श्री कृष्णजी ने यह उत्तर दिया—"हे भाइयो! कास की आग बहुत जल्द जलती है तथा उसे बुझने में भी कोई अधिक देर नहीं लगती। यह सुनकर सब वृन्दावनवासी श्री बाँकेविहारी की स्तुति करने लगे। तब श्री त्रिलोकी-नाथजी ने उनके ऊपर अपनी ऐसी माया फैला दी कि किसी को यह भी ज्ञान नहीं रहा कि वह अग्नि अपने आप बुझ गई है। कालीनाग को नाथने का दृश्य भी उन्हें एक स्वप्न के समान प्रतीत होने लगा। तदुपरान्त प्रातःकाल होने पर वृन्दावनवासी सब लोग मङ्गलाचार करते हुए वहाँ से लौटकर अपने-अपने घर आ गये। उस दिन सब छोटे-बड़े गोप-गोपियों ने अपने घर आनन्द मनाये तथा श्री श्यामसुन्दरजी के प्रति दिन-प्रति-दिन अधिक स्नेह करने लगे।"

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्ब राक्षस के वध का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! श्री बाँकेविहारी ने वृन्दावन में ग्वालबालों के साथ, जिस प्रकार खेल खेला था, अब वह कथा मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। जिस समय ग्रीष्म ऋतु आई तथा सूर्य के ताप से सम्पूर्ण संसार व्याकुल हुआ, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से वृन्दावन में वसन्त ऋतु जैसा आनन्द बना रहा तथा किसी भी जीव को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। वहाँ सब वृक्षों पर फूल खिलते रहे, भँवरे गूँजते रहे तथा आम की डालियों पर कोयलें कूकती रहीं। वृक्षों की शीतल छाया के नीचे मोर नृत्य किया करते थे तथा शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन हर समय बहती रहती थी। वहाँ श्री बाँकेविहारी बलरामजी तथा अन्य ग्वालबालों को साथ लेकर गौएँ चराते तथा अनेक प्रकार के खेल खेला करते थे। जिस समय वे चरखी के समान घूमते, उस समय उन्हें पृथ्वी तथा आकाश घूमते हुए जान पड़ते थे। कभी एक बालक दूसरे बालक के हाथ पर ताली मारता तो वे उसे पकड़ने के लिए दौड़ते थे। कभी परस्पर आँखमिचौनी खेलते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनेक प्रकार के स्वरों में गीत गाया करते थे तो कभी मुख से अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए सिंह, गृद्ध, लोमड़ी आदि जीव-जन्तुओं की बोलियाँ बोलते थे। कभी वे वंशी बजाकर ग्वालों को आनन्दित करते तो कभी नृत्य करते हुए सबको सुख पहुँचाते थे।

हे परीक्षित! ऐसे आनन्द के अवसर पर एक दिन कंस का भेजा हुआ 'प्रलम्ब' नामक राक्षस ग्वाले का रूप बना, भगवान् श्री मुरलीमनोहर को मारने के लिए वहाँ आ पहुँचा। उस राक्षस को श्री श्यामजी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं पहिचान सका। जब वह राक्षस बहुत से ग्वालों को उठाकर पर्वत की कन्दरा में छिपा आया, तब श्री बाँकेविहारी ने संकेत करके बलरामजी को यह बताया—"हे भाई! यह ग्वाला अपना साथी नहीं है। यह प्रलम्ब नामक राक्षस कपट वेश धारण करके, मुझे मारने के लिए यहाँ आया है। इस समय यह ग्वाले का रूप धारण किये है, अतः इसे इस रूप में नहीं मारना चाहिए; क्योंकि ग्वालबाल मेरे सखा हैं। जब यह अपने वास्तविक रूप को प्रकट करे तभी तुम इसे मार डालना।" यह सुनकर बलरामजी चुप रहे। तत्पश्चात् वे दोनों भाई उस कपटरूपी ग्वाले के पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगे—"हे मित्र! हमें तुम्हारा स्वरूप सबसे सुन्दर प्रतीत होता है, परन्तु जो लोग कपटी होते हैं, उन्हें हम अपने साथ नहीं रखते, अतः तुम भी कपट छोड़कर हमारे साथ प्रेमपूर्वक खेलो।" इतना कहकर श्री श्यामजी ने अपने सब सखाओं को बुलाकर प्रलम्बासुर-सहित आधे ग्वालों को तो अपनी ओर कर लिया और आधे ग्वालों को बलरामजी की ओर करके खेल खेलने लगे। तदुपरान्त पहेली बुझौवल का खेल खेलते हुए यह निश्चय किया कि जिस ओर का कोई बालक पहेली का अर्थ न बूझ सके, उस ओर के सब लड़के दूसरी ओर के सब लड़कों को अपनी पीठ पर बैठाकर भाण्डीर वन तक ले जायँ तथा वहाँ से फिर लौटकर वापस आवें। इतना कहकर उन्होंने एक-एक ग्वाले की जोड़ तय कर दी। श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी जोड़ श्रीदामा नामक ग्वाले के साथ रक्खी तथा बलरामजी की जोड़ प्रलम्बासुर के साथ निश्चित कर दी। जब खेल खेलते समय श्री कृष्णचन्द्रजी हार गये, तब श्री श्यामजी ने श्रीदामा को अपनी पीठ पर बैठाया और प्रलम्बासुर ने बलरामजी को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। इस प्रकार श्री मुरलीमनोहर की ओर के सब ग्वालों ने बलरामजी की ओर के सब लड़कों को अपनी-अपनी पीठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर बैठा लिया। तत्पश्चात् वे भाण्डीर वन की ओर चल दिये। उस समय प्रलम्ब राक्षस सब लोगों से आगे निकलकर बलरामजी को लेकर आकाश की ओर उड़ चला। वहाँ उसने एक योजन के आकार का अपना राक्षसी स्वरूप प्रकट कर दिया। उस समय उसके काले शरीर पर गौर वर्ण बलरामजी ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो श्यामघटा में चन्द्रमा शोभा पा रहा हो। उनके कानों के कुण्डल बिजली के समान चमक रहे थे तथा शरीर से जो पसीना गिरता था वह जल के समान बरसता दिखाई दे रहा था। तदुपरान्त बलरामजी ने उसके राक्षसी रूप को देखकर अपना शरीर ऐसा भारी बना लिया कि प्रलम्बासुर उस भार को न उठा सकने के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसने श्री बलरामजी को मारने का विचार किया, तब उन्होंने उसके मस्तक पर एक ऐसा मुक्का मारा, जिसके कारण उसका सिर इस प्रकार फट गया, मानो इन्द्र के वज्र के प्रहार से पर्वत टूट गया हो। उस मुक्के की चोट से उसके मस्तक से नदी की धार के समान शोणित बहने लगा, तब कुछ देर में ही वह चिल्लाता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके मृतक शरीर के गिरने पर तीन कोस तक के सब वृक्ष टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

हे परीक्षित! जब ग्वालबालों ने उसके चिल्लाने की आवाज सुनी तो वे सब दौड़ते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ वह राक्षस मरा हुआ पड़ा था तथा श्री बलरामजी उसके समीप खड़े थे। उसे देखकर सब ग्वालबालों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर बलदाऊजी की बहुत प्रशंसा की तथा इस प्रकार कहा कि हे भाई! तुम्हारे माता-पिता को धन्य है जो तुमने इस कपटरूप राक्षस को मारकर हमारे प्राण बचा लिए। उस समय देवताओं ने आकाश में आकर बलरामजी के ऊपर पुष्प वर्षा की। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दरजी उन सब ग्वालों को भी ले आये जिन्हें राक्षस ने कन्दरा में छिपा दिया था।"

उन्नीसवाँ अध्याय

मूँजवन में आग लगने से ग्वालबालों का व्याकुल होना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जिस समय ग्वालबाल प्रलम्बासुर के मृतक शरीर का तमाशा देख रहे थे, उसी समय सब गौएँ चरती हुई मूँजवन में पहुँच गईं। जब दूर तक ढूँढ़ने पर भी उनका कोई पता नहीं चला,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब सब ग्वालबाल अलग-अलग टोलियाँ बनाकर, उनका नाम पुकारते हुए, वृक्षों पर चढ़कर दुपट्टा फिराते हुए, उन्हें ढूँढ़ने लगे। उसी समय एक ग्वाल ने आकर श्री कृष्णचन्द्रजी से यह कहा कि हे भाई ! सब गौएँ मूँज के घने वन में घुस गई हैं तथा सब ग्वालबाल उन्हें ढूँढ़ते हुए इधर-उधर व्यर्थ ही भटक रहे हैं। यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने कदम्ब के वृक्ष पर चढ़कर ऐसी बाँसुरी बजाई कि उसके स्वरों को सुनते ही सब गौएँ मूँज के वन से निकलकर श्री कृष्णचन्द्रजी की ओर भागती हुई इस प्रकार चलीं, जैसे वर्षा-ऋतु में नदी-नाले का वेग बढ़ता है। उसी समय कंस का भेजा हुआ एक राक्षस श्री श्यामसुन्दरजी को मारने के लिए उस वन में आ पहुँचा। उसने अपनी माया से ऐसी आँधी चलाई कि उससे चारों ओर धूल भरने के कारण घना अँधेरा छा गया। तत्पश्चात् उसने उस वन में भी आग लगा दी। जिस समय गौओं तथा ग्वालबालों का शरीर उस अग्नि के तेज से जलने लगा, उस समय उन्होंने श्री श्याम तथा बलरामजी को पुकारते हुए इस प्रकार कहा—"हे दुःखहारी ! हम लोग इस अग्नि में जले जा रहे हैं; अतः तुम हमारे प्राणों की रक्षा करो। हे कृष्णचन्द्रजी ! हम लोगों पर जब-जब कोई सङ्कट पड़ता है, तब-तब आपही हमारी सहायता करते हैं। इस समय आपके अतिरिक्त अन्य कोई हमारा रक्षक नहीं है। जिस प्रकार श्री नारायणजी अपने भक्तों को संसाररूपी अग्नि से बचाकर उनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी इस अग्नि से हमारे प्राण बचावें।"

हे परीक्षित ! उस समय ग्वालबालों तथा गौओं की ऐसी दशा देखकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने बलरामजी से कहा—"हे भैया ! इन लोगों ने हमारे लिए अपने माता-पिता तक को छोड़ दिया है, अतः हमारे सिवाय इनका और कौन रक्षक है ?" बलरामजी से यह कहकर वे ग्वालवालों को पुकारते हुए बोले—"हे भाइयो ! तुम लोग अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लो तो इस अग्नि से बच जाओगे।" यह सुनकर सब लोगों ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। तब श्री मुरलीमनोहर ने उस राक्षस को मार डाला। राक्षस के मरते ही अग्नि बुझ गई तथा आँधी भी दूर हो गई। तब सब ग्वालबाल अपनी गायों-सहित आँखें बन्द किए हुए ज्यों के त्यों वहाँ से निकलकर भाण्डीर वन के पास आ पहुँचे। उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने उन्हें आँखें खोल देने के लिए कहा। जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तथा अपने को भाण्डीर वन के समीप खड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाया, तब सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ तथा सब लोगों ने प्रसन्न होकर श्री मुरलीमनोहर के साथ यमुना-तट पर पहुँचकर जल पिया। फिर सन्ध्या होने पर अपने घर को लौट चले। वृन्दावन के समीप जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी मुरली बजाई, उस समय सब गोपियाँ अपने-अपने घरों से निकलकर उनका दर्शन करने के हेतु बाहर आ पहुँचीं। उन गोपियों का यह नियम था कि वे दिनभर व्रत रखकर, संध्या समय श्री कृष्णचन्द्रजी के मुख-कमल का दर्शन करने के उपरान्त पारण करती थीं। अस्तु, जब श्री कृष्णचन्द्रजी घर पहुँचे तथा यशोदाजी ने ग्वालबालों से यह पूछा कि आज तुम लोगों को इतनी देर क्यों हो गई, तब सब ग्वालों ने वन में आग लगने तथा राक्षस को मारने का समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर यशोदा तथा रोहिणी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समाचार को पाकर वृन्दावनवासी सब लोग भी श्री श्याम-बलराम को देखने के लिए वहाँ आ पहुँचे तथा उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—"हे मनमोहन! आज तुम्हारी ही कृपा से हमारे बालक जीवित बच गये, अन्यथा सब के सब उसी अग्नि में जलकर भस्म हो जाते। तदुपरान्त सब लोगों ने अपने-अपने बालकों के हाथों से दान दिलवाया। श्री नारायणजी की माया से फिर किसी को भी यह ज्ञान नहीं रहा कि यह सब चरित्र श्री कृष्णचन्द्रजी ने किया है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार श्री श्यामसुन्दरजी नित्य नवीन लीलाएँ करके सब लोगों को आनन्दित करते रहते थे। व्रज की गोपियाँ उनके ऊपर ऐसी मोहित थीं कि श्री कृष्णजी को देखे बिना उन्हें पलभर को भी चैन नहीं पड़ती थी। वे पानी भरने तथा दही-दूध बेचने के बहाने यमुना-तट पर तथा वन में पहुँचकर श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन करके अपने हृदय की तपन बुझाती थीं। उन्हें अपनी सास तथा माताओं की सीख नहीं सुहाती थी। अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्र उन्हें अपनी प्रेमिणी जानकर, अपनी चितवन तथा मुस्कान द्वारा सुख प्रदान किया करते थे। एक दिन श्री कृष्णचन्द्रजी नटवर-स्वरूप धारण किए अपने सब सखाओं-सहित कदम्ब के वृक्ष के नीचे खड़े होकर बाँसुरी बजा रहे थे। उसी समय श्री राधारानी अपनी सब सखियों-सहित जल भरने के बहाने श्री श्यामसुन्दर को देखने के लिए घर से चलीं। जब उन्होंने यमुना-तट पर ग्वालबालों की भीड़ देखी तो अपनी सखियों से यह कहा कि हे सखियो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगे माखनचोर खड़ा हुआ है, वह हम लोगों को अवश्य छेड़ेगा। उस समय राधारानी के हृदय की बात पहिचानकर अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी अपने सब सखाओं-सहित दूसरी ओर चले गये। तब राधिकाजी ने सखियों-सहित यमुना-तट पर पहुँचकर जल भरा। जब वे जल के घड़ों को अपने मस्तक पर रखकर घर को लौटीं, तब श्री कृष्णचन्द्रजी ने गोपियों के निकट जाकर राधाजी की गगरी में एक कङ्कड़ी मारी तथा अपनी मुस्कान से राधा-सहित सब सखियों का मन हरने लगे। उस समय श्री राधिकाजी ने अपनी सखियों से कहा—"हे आली! मार्ग में जिधर देखो, वहीं श्री श्यामसुन्दर खड़े दिखाई देते हैं। सो मैं आगे कैसे बढ़ूँ?" यह सुनकर एक चतुर गोपी ने श्री बाँकेविहारी से इस प्रकार कहा—"हे नन्दनन्दन! हम लोगों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुम अपनी मुस्कान तथा नशीली चितवन से हमारा मन हर लेते हो? तुम्हारे मनमोहन स्वरूप को देखकर तथा मुरली की ध्वनि को सुनकर हमारा चित्त ठिकाने पर नहीं रहता। तुमने चित्त चुराने की कला कब से सीखी है?" उसकी ऐसी प्रीतिभरी बातें सुनकर श्री श्यामसुन्दरजी ने उत्तर दिया—"हे सखियो! तुम मुझे दोष क्यों देती हो? तुम्हींने तो अपनी छबि दिखाकर मेरा मन चुरा लिया है।" तब एक गोपी ने कहा—"हे श्यामसुन्दर! तुम किसी का चीर खींचकर धक्का देते हो तथा किसीकी गगरी में कङ्कड़ी मार कर फोड़ देते हो। तुम्हारे मारे कोई यमुना में जल भी नहीं भर सकता। हम सब नन्दरानी के पास जाकर तुम्हें फिर ऊखल में बँधवायेंगी।" यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने कहा—"जब तुम चुगली खाने ही जाना चाहती हो तो मैं तुम्हारी गगरी को भी फोड़े डालता हूँ।" इतना कहकर श्री मनमोहन ने एक सखी की इँडुरी (जिस पर घड़ा रक्खा जाता है) यमुना में बहा दी। उस समय सब गोपियों ने नन्दरानी के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे यशोदा मैया! तुम्हारे कान्हा के मारे हम सब यमुना में जल भी नहीं भर पातीं, वह हमारी ऐसी दुर्दशा करते हैं कि मुख से नहीं कही जाती। तुम इसका उपाय करो।" यशोदाजी बोलीं—"हे गोपियो! जब मैंने उसे ऊखल से बाँधा था, तब तुम्हीं उसे छोड़ देने के लिए कहती फिरती थीं। अच्छा, अब आज जब वह घर लौट कर आयेगा, तब मैं उसे खूब मारूँगी। मेरे कहने से तुम आज उसका अपराध क्षमा कर दो।" इस प्रकार समझाकर यशोदाजी ने गोपियों को बिदा कर दिया। तदुपरान्त जब श्री श्यामसुन्दर घर लौटकर आये तो उन्होंने ओट में छिपकर यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुना कि यशोदा मैया गोपियों के उलाहने का हाल रोहिणीजी से कह रही हैं। जब उन्होंने यशोदाजी को यह कहते सुना कि आज कन्हैया के घर लौटने पर मैं उसे मारूँगी, तब वे अपनी माता के पास पहुँचकर भोली सूरत बनाकर कहने लगे—"हे मैया! तू मुझे मारने को क्यों कहती है? तुझे गोपियों का हाल मालूम नहीं है, इसी लिए उनकी सब बातों पर विश्वास कर लेती है। वे मुझे कदम्ब के पेड़ के नीचे से जबर्दस्ती पकड़ ले जाती हैं तथा मेरे गालों में मुक्का मारती हैं। मटककर चलने के कारण जब उनकी गगरी गिरकर फूट जाती है, तब वे तेरे पास आकर मेरा उलाहना देती हैं।" श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे मीठे वचन सुनकर यशोदाजी ने उन्हें प्यार करके अपनी गोद में उठा लिया। फिर उनके चन्द्रमुख की ओर देख, अपना सब क्रोध बिसरा, इस प्रकार कहने लगीं—"हे कन्हैया! सचमुच तू अभी छोटा-सा है। वे यौवन मदमाती गोपियाँ तुझे झूठा दोष लगाकर उलाहना देने आती हैं। मैंने तुझसे कई बार कहा कि तू उनके पास मत जाया कर; परन्तु तू मानता क्यों नहीं है?" इतना कहकर यशोदाजी श्री श्यामसुन्दर को प्यार करने लगीं। इस प्रकार श्री श्यामसुन्दरजी नित्य नवीन लीलाएँ करते हुए, व्रजवासियों को सुख पहुँचाया करते थे।

हे परीक्षित! पूर्वजन्म के संस्कार के कारण राधिकाजी श्री मनमोहन के ऊपर अपार स्नेह रखती थीं, अतः एक दिन वे अपनी सखियों से बोलीं—"हे अली! तुम सब जल भरने के लिए यमुनातट पर फिर चलो, जिससे मैं श्यामसुन्दर को देखकर अपने नेत्रों को शीतल कर लूँ। हे सखी! जब मैं वहाँ जाती हूँ, तो वे अपनी मन्द मुस्कान तथा चंचल चितवन से मेरा मन मोहित कर लेते हैं। उन्हें देखे बिना मुझे पलभर को चैन नहीं मिलता। मैं लोक-लाज के भय से अपने मन का हाल किसी के आगे नहीं कह सकती। यदि बाहर निकलूँ तो माता-पिता का भय सताता है और घर में बैठी रहूँ तो मेरा शरीर तो यहाँ रहता है, परन्तु मन श्री मनमोहन के पीछे-पीछे दौड़ता रहता है। मैं अपने चित्त को बहुत समझाती हूँ पर वह किसी प्रकार नहीं समझता।

चौपाई—मनमोहन मेरे चितचोर। छाये रहत नयन की कोर॥
उन बिन कोऊ नहीं सुहावै। विरह-अनल दिन-रैन जरावै॥

"हे सखी! अब मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जग में चाहे मेरी भलाई हो अथवा बुराई, मैं श्री श्यामसुन्दर से प्रीति अवश्य प्रकट करूँगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन घनश्याम सलोने के बिना मुझे कुल-परिवार कुछ अच्छा नहीं लगता। जब उनके विरह में मेरे प्राण ही निकल जायँगे तो मैं लोक-लाज को लेकर क्या करूँगी। हे अली! मैं मनमोहन प्यारे को अपना पति बनाना चाहती हूँ, इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है, वह मुझसे कहो?" राधाजी के ऐसे वचन सुनकर ललिता आदि सखियों ने, जो स्वयं भी श्री कृष्णचन्द्र के स्वरूप पर मोहित थीं, इस प्रकार कहा—"हे राधारानी! जो तुम्हारी दशा है, वही हमारी भी है। हम अपने मन का हाल तुमसे कैसे कहें? उस चितचोर की छवि को देखकर हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता। उसकी मुरली की ध्वनि हमारे मन को व्याकुल कर देती है। न जाने उसने हम लोगों पर कैसी मोहिनी डाल दी है कि हमें उसके बिना संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। हे प्यारी! तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। संसार में जितने भी जड़-चैतन्य जीव हैं, वे सब श्यामसुन्दर की छवि देखकर मोहित हो जाते हैं। यदि वे हमारे पति बनकर, हमें अङ्गीकार करना स्वीकार करें तो संसार की लाज-मर्यादा चाहे भाड़ में चली जाय, हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है।" हे परीक्षित! राधारानी आदि सभी व्रजबालाओं की यह दशा थी कि वे दिन के समय तो श्री श्यामसुन्दर के मिलने का उपाय सोचती रहतीं और सन्ध्या समय उनके दर्शन पाकर अपने हृदय की तपन बुझाती थीं। उन्हें अपने घरवालों की सीख कुछ भी नहीं सुहाती थी।

बीसवाँ अध्याय

वृन्दावन की शोभा का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! ग्रीष्म अधिक पड़ने से जब संसारी जीव दुखी हुए तो वर्षाऋतु उनके ऊपर कृपा करके, अपने बादलों की सेना साथ ले, सब जड़-चैतन्य जीवों को सुख पहुँचाने के निमित्त ग्रीष्म ऋतु से युद्ध करने के लिए धूमधाम से चढ़ आई। उसकी सेना में मेघों की गर्जन मारू बाजे के समान, अनेक रंगों की घटा योद्धाओं के समान, बिजली की चमक नंगी तलवारों के समान, मोरों की बोली कड़खा गानेवालों के समान, पानी की बूँदें तीरों के समान, मेढ़क की बोली भाटों द्वारा कवित्त पढ़े जाने के समान तथा श्वेतवर्ण बगुलों की पंक्ति ध्वजा के समान, प्रतीत होती थी। वर्षा ऋतु की ऐसी शक्तिशाली सेना को देखकर ग्रीष्म ऋतु हार मानकर भाग गई। तब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृथ्वी पर जल बरसने से वृक्ष आदि सभी जड़-चैतन्य जीवों को सुख प्राप्त हुआ। आठ महीने तक सूर्य ने जिस जल को सोखा था, उसे वर्षा ऋतु ने इस प्रकार बरसाया जैसे राजागण ग्रीष्म तथा शीत ऋतु में प्रजा से कर लेकर, वर्षा ऋतु में उसके द्वारा सब लोगों का पालन करते हैं। पृथ्वी ने जो आठ मास तक कष्ट उठाया था, वह शोक वर्षा होने पर दूर हो गया। वृक्षों में अनेक प्रकार के फल-फूल लग गये तथा लताएँ पुष्पों से सुसज्जित होकर वृक्षों से ऐसे लिपट गईं जैसे सोलह शृङ्गार किए हुए स्त्री अपने पति के साथ सुशोभित होती है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर हरियाली छा गई तथा नदी-नाले उमंग में भरकर बहने लगे। वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी बैठकर मीठी बोली बोलने लगे। हे परीक्षित! उस समय वृन्दाबन की जो शोभा थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जहाँ साक्षात् परब्रह्म प्रभु का निवास हो, वहाँ के आनन्द को शेष, महेश, शारदा आदि भी वर्णन करने में सकुचाती हैं।

हे राजन्! उस सुहावने समय में गोपी-ग्वाल रंग-विरंगे वस्त्र पहिने हुए झूलों पर झूल-झूलकर, मल्हार तथा अन्य बरसाती गीत गाते थे। श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो, अपनी विविध लीलाओं द्वारा सबको सुख पहुँचाते थे। इस प्रकार वर्षा ऋतु बीतने पर जब शरद् ऋतु आई, तब एक दिन श्री नन्दनन्दन ने बलरामजी तथा श्रीदामा आदि सब गोपग्वालों के साथ वृन्दा विपिन में पहुँचे, गौओं को तो चरने के लिए छोड़ दिया और आप सबके साथ एक वृक्ष के नीचे बैठकर इस प्रकार कहने लगे—"हे भाइयो! अब शरद् ऋतु के शुभ दिन आ गये। वर्षा बीत जाने पर आकाश इस प्रकार उज्ज्वल हो गया है, जैसे साधु-सन्तों के हृदय निर्मल होते हैं। इन दिनों भोजन करने में भी स्वाद आता है तथा सब छोटे-बड़े लोगों को सुख प्राप्त होता है। गृहस्थ लोग अपने घरों में रहकर आनन्द उठाते हैं। इन्हीं दिनों राजा लोग अपने शत्रुओं पर चढ़ाई करते हैं तथा वैश्यों को अपना व्यापार करने एवं वैष्णव को तीर्थयात्रा में जाने से आनन्द प्राप्त होता है। हे भाई! मुझे वृन्दावन के समान सुख तीनों लोकों में कहीं दिखाई नहीं देता, इसीलिए मैं मनुष्य रूप धारण करके यहाँ आया हूँ। मैं इसे वैकुण्ठ लोक से भी अधिक प्रिय समझता हूँ। यहाँ वृक्षों को कल्पवृक्ष से कम नहीं समझना चाहिए। वृन्दावनवासी सभी जीव मुझे अपने प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। मैं भी उनके वश में होकर अपनी प्रभुता को त्याग बैठा हूँ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर बलरामजी ने कहा—"हे दीनबन्धु! मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि आप जहाँ कहीं भी जन्म लें, वहाँ मुझे अपने साथ अवश्य रक्खें।" श्री श्यामसुन्दर ने उत्तर दिया—"हे भाई! तुम विश्वास रक्खो कि मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी कभी अपने से दूर नहीं रक्खूँगा। तुम्हारे ही कारण मैं मनुष्य रूप धारण करके इस व्रज में लीलाएँ करता रहता हूँ।" श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे प्यारे वचन सुनकर सब सखाओं को अत्यन्त आनन्द हुआ। तदुपरान्त वे सब उनकी बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे कन्हैयाजी! इस समय हमारा मन तुम्हारी मुरली की ध्वनि सुनने को चाहता है, सो तुम बाँसुरी बजाकर हमारी मनोभिलाषा पूर्ण करो।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी अपने हाथ की लकुटिया रखकर ऐसी ध्वनि से मुरली बजाने लगे कि उसे सुनते ही सब जड़-चैतन्य जीव मोहित हो गये। उस समय मृग आदि वन के पशु-पक्षी उनके चारों ओर आकर खड़े हो गये। पक्षियों को उड़ना भूल गया, यमुना का जल स्थिर हो गया, गौएँ घास चरना छोड़कर चित्र-लिखी-सी खड़ी रह गईं, झरनों का पानी बहना बन्द हो गया। श्री नन्दनन्दन मुरली में छः राग तथा छत्तीसों रागिनी निकालकर ग्वालबालों को सुख देने लगे। बाँसुरी बजाते समय उन्होंने अपने नेत्र एवं भौंहों से ऐसा भाव प्रकट किया कि देखनेवाले सब लोग मोहित हो ठगे से रह गये। उस समय देवतागण अपनी स्त्रियाँ सहित विमानों पर बैठकर, आकाश से पुष्प-वर्षा करने लगे तथा इस प्रकार कहने लगे कि व्रजवासियों के धन्य भाग्य हैं, जो सच्चिदानन्द प्रभु उन्हें ऐसा सुख प्रदान करते हैं। यदि हम लोग वृक्षादि का जन्म लेकर भी वृन्दावन में उत्पन्न होते तो हमारा बड़ा भाग्य था। उस समय हम भी श्री त्रिलोकीनाथ की कुछ सेवा करके अपना जन्म सफल बनाते।

हे परीक्षित! श्री श्यामसुन्दर की वंशी की ध्वनि को सुनकर सब व्रजबालाएँ मोहित होकर अपने-अपने घर से उठ वन को चल दीं तथा आपस में इस प्रकार कहने लगीं कि जब हमें मोहनप्यारे का दर्शन होगा, तब हम अपनी आँखों को शीतल करके हृदय की तपन बुझायेंगी। अभी तो हमारे चितचोर वन में ग्वालबालों के साथ बैठे हुए उन्हें आनन्द प्रदान कर रहे हैं। उस समय एक दूसरी गोपी ने कहा—"हे आली! जब हमारे मनमोहन वन से लौटकर ग्वालबाल तथा गायों के साथ घर आयेंगे तब हमारे मन का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनोरथ भली भाँति पूर्ण होगा।" तीसरी ने कहा—"हे सखी! इस बाँसुरी में न जाने क्या गुण भरा है, जो श्री नन्दकुमार उसे अत्यन्त प्रिय जानकर दिन-रात अपने हृदय तथा अधरों से लगाये रहते हैं? यह मुरली श्री मनमोहन के अधरामृत का पान करके बादल के समान बोलती है।" चौथी बोली—"हे आली! यह बाँस मेरे ही सामने बोया गया था, सो उसका भाग्य ऐसा चमका कि अब बाँसुरी बनकर दिन-रात श्री श्यामसुन्दर की छाती पर चढ़ा रहता है। यह बाँसुरी तो हमारी सौत से भी अधिक है।" जिस समय गोपियाँ इस प्रकार की बातें कर रही थीं उसी समय श्री कृष्ण प्यारे गोपग्वालों तथा गायों को साथ लिये, बाँसुरी बजाते हुए उनके पास आ पहुँचे। तब सब गोपियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—"हे आली! देखो तो सही, यह मुरली श्री श्यामसुन्दर के होठों के बीच कैसी सुशोभित हो रही है। इसकी ध्वनि कान में पड़ते ही मुर्दे जीवित हो जाते हैं। इस मुरली का बाँस जिस वन में उत्पन्न हुआ था, उस वन के अन्य वृक्ष इसे बड़भागी जानकर यह कहते रहते हैं कि यह बाँसुरी हमारी जाति की बहिन है। इस मुरली की ध्वनि को सुनकर, आकाश में विमानों पर चढ़कर बैठी हुई देवताओं की स्त्रियाँ ऐसी मोहित हो जाती हैं कि उनके पैर से घुँघरू खुलकर नीचे गिर पड़ते हैं, और उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता। गौएँ चरना भूल जाती हैं तथा हरिण आदि चित्रलिखे-से खड़े रह जाते हैं। छोटे-छोटे बछड़े भी इसकी ध्वनि को सुनकर दूध पीना भुला देते हैं तथा वृक्षों से मद बहने लगता है।" यह सुनकर एक दूसरी सखी ने कहा—"हे प्यारी! इस मुरली ने पहिले बाँस का जन्म लेकर वर्षा, धूप, शीत आदि का दुःख उठाया तथा एक पाँव से खड़ी रहकर श्री नारायणजी का तप किया। फिर इसने अपने अङ्ग-अङ्ग को कटवाकर अग्नि की गर्मी सही, तब कहीं जाकर टेढ़ी से सीधी हुई है। इससे अधिक तपस्या और कौन करेगा?" तब तीसरी सखी बोली—"हे आली! यदि श्रीहरि मुझे बाँस का जन्म देते तो मैं भी बाँसुरी बनकर श्री श्यामसुन्दर के अधरों से आठों प्रहर लगी रहती और उनका अमृत पीकर अपने जन्म को सफल बनाती।" हे परीक्षित! इस प्रकार श्री श्यामसुन्दर जब तक गौ चराकर वन से नहीं लौटते थे, तब तक प्रतिदिन गोपियों की ऐसी ही दशा बनी रहती थी।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इक्कीसवाँ अध्याय

गोपियों की प्रीति का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! एक दिन श्री कृष्णचन्द्रजी से अनन्य प्रेम रखनेवाली गोपियाँ, उनकी बाँसुरी की ध्वनि सुनकर मोहित हो, परस्पर इस प्रकार कहने लगीं कि इस वन के जीवों के धन्य भाग्य हैं, जो ये प्रतिदिन श्री मुरलीमनोहर की छवि देखकर प्रसन्न होते हैं। हे सखी ! संसार में इन्हीं का जन्म सफल है, क्योंकि ये श्री नन्दनन्दन को गौ चराते, बाँसुरी बजाते तथा वन-विहार करते हुए देखकर, उनकी रूप-माधुरी को आँखों की राह पीते हैं। जो हिरणियाँ अपने हिरणों सहित श्री नटवर नागर की बाँकी छवि को टकटकी लगाए देखती रहती हैं, उनके भाग्य देव-कन्याओं से बढ़कर समझना चाहिए। जिन्हें श्री श्यामसुन्दर मुरली बजाते हुए चराते हैं, उन बछड़ों के भी धन्य भाग्य हैं। इस वृन्दावन के पक्षी भी भाग्यशाली हैं जो वृक्षों पर बैठे हुए श्री कृष्णचन्द्रजी की बाँकी छवि देखते हैं तथा उनकी मुरली की धुन सुनकर, अपने जीवन को सफल मानते हुए, सुहावनी बोलियाँ बोलकर, उनका अभिनन्दन करते हैं। उन भीलनियों के भाग्य भी धन्य हैं, जो घास छीलते समय भगवान् बाँकेविहारी के शरीर से छूटकर पृथ्वी पर गिरे हुए चन्दनादि को उठाकर अपने मस्तक पर धारण करती हैं। जब वृन्दावनविहारी गौएँ चराते हैं, तब उन्हें देखकर गोवर्धन पर्वत इस प्रकार कहता है कि मेरे समान धन्य भाग्य किसी का न होगा, क्योंकि श्री नटवर-नागर अपने चरण-कमल मेरे ऊपर रखते हैं और मैं कन्द, मूल, फल, घास आदि के द्वारा उनका, ग्वालबालों का तथा गौओं का सम्मान करता हूँ। वृन्दावन के नदी-नालों के भाग्य धन्य हैं जो श्री कृष्णचन्द्रजी की बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर अपना बहाव भूलकर ठहर जाते हैं। यमुना भी श्री नन्दनन्दन के चरणों का स्पर्श करके कृतार्थ हो जाती है, और श्रीकृष्ण-चन्द्रजी भी नित्य जल-क्रीड़ा करके उसे सुख पहुँचाते हैं। उन वृक्षों के धन्य भाग्य हैं जिनकी छाया में मुरलीमनोहर विश्राम करते हैं तथा उस घास एवं पृथ्वी का भी सौभाग्य समझना चाहिए जिसके ऊपर चलते-फिरते समय श्री कृष्णचन्द्रजी अपने चरण-कमलों को रखते हैं। हे आली ! हमारे भी बड़े भाग्य हैं, जो हम सब उन बाँकेविहारी के चरण-कमलों का ध्यान अपने हृदय में निरन्तर धरती रहती हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार गोपियाँ अपने ज्ञान के कारण श्री कृष्णचन्द्रजी को परब्रह्म प्रभु का अवतार समझती थीं, परन्तु जब यशोदाजी के ऊपर श्रीहरि की माया का प्रभाव पड़ता था, तब वे उन्हें अपना पुत्र करके ही मानती थीं। इस प्रकार सभी वृन्दावनवासी स्त्री-पुरुष दिन-रात श्री मुरली-मनोहर के चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखकर, उन्हीं का यश गाया करते थे। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! संसार के किसी भी जीव में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वह श्रीकृष्णजी की महिमा तथा भेद को पा सके। वे स्वयं ही जिसके ऊपर कृपा करते हैं, वही उनके प्रताप को कुछ जान सकता है।"

बाईसवाँ अध्याय

चीर-हरण की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित बोले—"हे मुनिश्रेष्ठ ! श्री कृष्णजी ने व्रजबालाओं की इच्छा किस प्रकार पूर्ण की, वह वृत्तान्त मुझे सुनाने की कृपा करें।" यह सुनकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! मार्गशीष मास आने पर जब शीत अधिक हो गई, उस समय सब गोपियों ने परस्पर इस प्रकार कहा कि हमने बड़े-बूढ़ों के मुख से यह सुना है कि मार्गशीर्ष (अगहन) मास में प्रातःकाल यमुना-स्नान करने से अनेक जन्मों के पाप छूटकर मनोकामना पूर्ण होती है, सो यदि हम सब नियमपूर्वक यमुना-स्नान करें तो उसके प्रताप से श्री कृष्णचन्द्र हमारे पति होंगे। राधा आदि गोपियों ने यह निश्चय करके मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा से यमुना-स्नान करना आरम्भ कर दिया। प्रतिदिन प्रातःकाल राधा आदि सब व्रजाङ्गनाएँ उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनकर स्नान करने के लिए जातीं तथा स्नान के पश्चात् सूर्य-नारायण को अर्घ्य देकर, धूप, दीप, नैवेद्य आदि द्वारा पार्वतीजी की मिट्टी की बनी प्रतिमा का पूजन करके हाथ जोड़कर यह वरदान माँगती थीं कि हे देवी! आप यह कृपा करें कि हमारे हृदय में बसनेवाले चितचोर श्री नन्दनन्दन हमारे पति हों। अन्य किसी वस्तु की हमें कामना नहीं है।" इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त वे दिन भर व्रत रखतीं तथा सन्ध्या होने पर दही-चावल का भोजन करके पृथ्वी पर सो जाती थीं। मन, वचन, कर्म से उनकी यही इच्छा थी कि हमें अपना मनोरथ शीघ्र प्राप्त हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! राधिकाजी ने सोलह सहस्र कम आयु की ब्रजबालाओं के साथ इस प्रकार व्रत रखकर पार्वतीजी का पूजन किया। उनकी सखियों में चार प्रकार की स्त्रियाँ थीं—पहिली जनकपुरवाली स्त्रियाँ तथा दूसरी दण्डक-वन की ऋषि-पत्नियाँ जो त्रेतायुग में श्रीहरि के रामचन्द्र-रूप पर मोहित हुई थीं, तीसरी वेद की ऋचाएँ एवं चौथी गोलोक की स्त्रियाँ जिन्होंने गोपियों के रूप में शरीर धारण किया था। अस्तु, जब पूरे मार्गशीर्ष मास तक सब ने व्रत तथा पूजन किया, तब अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी उन पर विशेष दयालु हुए। एक दिन सब ब्रजबालाएँ यमुनाजी में स्नान करते समय श्री कृष्ण-चन्द्रजी की प्रशंसा कर रही थीं, उस समय श्री श्यामसुन्दर अपने सोलह सहस्र रूप धारण कर, उनकी पीठ के पीछे खड़े होकर, उसे मलने लगे। उस समय वे सब अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने मन में यह कहने लगीं कि देखो जिनके लिए हम व्रत-पूजन करती थीं, उन्होंने आज इस प्रकार दयालु होकर हमें अपना दर्शन दिया है। तदुपरान्त वे अपने अंग को पानी में छिपाकर श्री कृष्णजी से यह कहने लगीं कि हे कृष्ण प्यारे ! हमें नंगी देखकर क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती है ? उस समय श्रीहरि की ऐसी माया फैली हुई थी कि किसी भी गोपी को एक दूसरी का हाल नहीं मालूम होता था। सब यही समझ रही थीं कि श्री बाँकेविहारी केवल उन्हीं के पीछे खड़े हुए हैं। इस कारण वे सब अपने मन में प्रसन्न होती हुईं, अपना हाल किसी अन्य सखी से नहीं कहती थीं। अस्तु, इस प्रकार जलक्रीड़ा करने के पश्चात् श्री श्यामजी बाहर निकल आये। फिर एक रूप में प्रकट होकर गोपियों के वस्त्राभूषणों को जो यमुना-तट पर रक्खे हुए थे, तोड़-फाड़कर एक ओर फेंक दिया। यह दशा देखकर जब गोपियों ने यशोदा के पास जाकर कृष्णजी की बुराई की, तब वे इस प्रकार कहने लगीं—"हे गोपियो ! तुम आकाश के तारे को पकड़ना चाहती हो। तुम मेरे कन्हैया को अपना पति बनाने के लिए यह सब ढोंग रचती हो, तो क्या तुम्हें ऐसा करते और कहते हुए लज्जा नहीं आती ? तुम्हें मेरे अज्ञानी बालक को इस दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।" यह सुनकर सब गोपियाँ प्रसन्न होकर अपने घर लौट गईं।

हे परीक्षित ! जब दूसरे दिन वे फिर यमुना-स्नान करने के लिए गईं तथा वस्त्राभूषणों को किनारे पर रखकर जल के भीतर पैठीं, उस समय श्री कृष्ण-चन्द्रजी ने अपने मन में यह विचार किया कि इन्होंने मुझसे मिलने के लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बड़ा कष्ट उठाया है, अतः इन्हें कुछ सुख पहुँचाना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने उस दिन श्री बलरामजी से इस प्रकार कहा कि हे भैया ! आज तुम गाय चराने के लिए वन में अकेले चले जाओ, मैं कलेवा करके पीछे से आऊँगा। यह सुनकर जब बलदाऊजी सब सखाओं को साथ लेकर बन को चले गये तब श्री नटवर नागर चुपचाप यमुनातट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह देखा कि सब व्रजबालाएँ अपने-अपने वस्त्राभूषणों को नदी के किनारे पर रखकर, आप नंगी हो यमुना जल में स्नान कर रही हैं तथा उनकी (श्री कृष्णजी की) चर्चा करती जाती हैं। उनकी इस प्रीति को देखकर श्री श्यामसुन्दर बहुत प्रसन्न हुए। तदुपरांत जब वे सब अपनी आँखें बन्द करके सूर्य को अर्घ्य देने लगीं, उस समय श्रीहरि ने यह विचार किया कि यमुना में नंगे होकर स्नान करने से दोष लगता है, अतः इन गोपियों को भविष्य के लिए ज्ञान सिखा देना चाहिए। ऐसा विचार करके श्री श्यामसुन्दर ने सब गोपियों के वस्त्राभूषणों को उठाकर एक गठरी में बाँध लिया। फिर उस गठरी को लेकर आप एक कदम्ब के वृक्ष के ऊपर चढ़, प्रसन्न होकर बैठ गये। जब गोपियाँ स्नान करके बाहर निकलीं और अपने वस्त्राभूषणों को नहीं देखा, तब वे चारों ओर दृष्टि दौड़ाती हुई इस प्रकार कहने लगीं कि यहाँ तो कोई चिड़िया भी नहीं आई, फिर हमारे वस्त्राभूषणों को कौन उठा ले गया है। हमें मालूम होता है कि यह सब काम माखनचोर का ही है, क्योंकि वे ही ऐसा छल का व्यवहार किया करते हैं। इतना कहकर सब गोपियाँ दीन बनकर ऐसे पुकारने लगीं कि हे श्री मनमोहन ! यदि आप कहीं हों, तो हमें अपना दर्शन दीजिए।

हे परीक्षित ! गोपियों की यह विनती सुनकर कदम्ब पर बैठे हुए श्री कन्हैयाजी ने धीरे से अपनी बाँसुरी को बजा दिया। उस समय एक सखी ने चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाने के बाद यह देखा कि मनमोहन प्यारे मस्तक पर मुकुट पहिने, लकुटिया लिये, केशर का तिलक लगाये, गले में वनमाला डाले, पीताम्बर धारण किए हुए कदम्ब के वृक्ष पर छिपे बैठे हैं और उनके सामने ही वस्त्राभूषणों की गठरी बँधी रक्खी है। यह देखते ही उस सखी ने सबको पुकार कर कहा—"हे आली ! उधर देखो, वे माखनचोर आज हमारी धोतियाँ चुराकर गठरी बाँधे हुए उस कदम्ब के वृक्ष पर विराज रहे हैं।" यह वचन सुनते ही जब सब व्रजबालाओं ने कदम्ब के वृक्ष की ओर देखा, तो उस समय श्री मनमोहन को वहाँ बैठे देख लज्जित हो, कण्ठ के बराबर पानी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जा वहाँ से हाथ जोड़कर विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगीं—"हे मनमोहन दुःखहारी श्यामजी! आप हमारे वस्त्र हमें दे दें। हे प्रभु! हम आपकी बिना दाम की दासी हैं, सो आपको हमारे साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं है। हम लोग लज्जा के मारे मरी जा रही हैं।" गोपियों के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे गोपियो! तुम लोग अपने-अपने वस्त्राभूषण फेंककर स्नान करने के लिए यमुना में घुस गई थीं, सो मैंने तुम्हारे वस्त्रों की रखवाली की है, अब बिना मेहनताना दिए, तुम अपने कपड़ों को नहीं पाओगी।" तब गोपियाँ बोलीं—"हे प्यारे! क्या आपको हमारे ऊपर दया नहीं आती है? हमने तो आपको अपना तन, मन सभी कुछ पहिले से ही सौंप रक्खा है, अब और अधिक क्या दें? आप कृपा करके हमारे कपड़े दे दीजिए। इस पर श्री कृष्णजी ने कहा—"अच्छा तो अब तुम एक-एक करके जल से बाहर निकलकर आओ, तब मैं तुम्हें कपड़े दूँगा, अन्यथा नन्द बाबा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुम्हें कपड़े नहीं मिलेंगे।" श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर राधिकाजी ने कहा—"हे मनमोहन! हम तरुण स्त्रियाँ इस नग्नावस्था में तुम्हारे सामने कैसे आवें? तुम्हें ज्ञान किसने सिखाया है, जो तुम हमें नंगी देखना चाहते हो? हे प्यारे! तुम अपने इस हठ को छोड़कर हमारे कपड़े दे दो। हम इस शीत में ठिठुरी जा रही हैं। स्त्री के नग्न शरीर को देखने से पुरुष को भारी दोष लगता है, सो तुम इस तरह की बातें मत करो।" यों प्रार्थना करने पर भी जब श्री श्याम-सुन्दर ने वस्त्र नहीं दिये तो गोपियाँ कुछ रुष्ट-सी होकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे कृष्ण! तुम्हारे बाबा नन्द कहीं के राजा नहीं हैं, जो उनकी दुहाई फिर गई हो। तुम जो हमारी धोतियाँ चुराकर हमें नंगी देखना चाहते हो, यह बर्ताव हमें अच्छा नहीं लगता। अभी हम अपने पिता अथवा भाई से जाकर कहें तो वे लोग तुम्हें चोरी में पकड़, नन्द-यशोदा के पास ले जाकर दण्ड दिलवायेंगे।" गोपियों के इन कठोर वचनों को सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"हे गोपियो! अब तो तुम जब अपने हिमायती को ले आओगी, तभी वस्त्र पाओगी।" कृष्णजी के ऐसे क्रोध भरे वचनों को सुनकर गोपियाँ अपने मन में कुछ भयभीत होकर बोलीं—"हे प्यारे! तुम्हारे अतिरिक्त हमारी पति रखनेवाला और कोई नहीं है, तब हम किसे बुलाकर लावें? हम सब तो तुम्हारी ही चरणों की दासी बनने के लिए यह स्नान, व्रत और पूजन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करती हैं। अतः अब तुम निर्दयता त्यागकर हम दासियों पर दया करो और हमारे वस्त्र हमें दे दो। हे श्यामसुन्दर! तुम्हारे ऊपर हमारा कोई वश नहीं चलता। तुमने हमारे ऊपर न जाने ऐसी कौन-सी मोहिनी डाल दी है कि हमें तुम्हारी साँवली सूरत के सिवाय अपना घर-द्वार आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुम हमें अबला समझकर, हमारे अपराध को क्षमा करो। यह सुनकर दीनदयालु श्री कृष्णजी ने अपने क्रोध को क्षमा करके कहा—"हे गोपियो! यदि तुम सच्चे मन से मुझे प्राप्त करने के लिए स्नान, व्रत आदि करती हो, तो तुम लज्जा तथा कपट को यमुना-जल में डुबाकर, मेरे पास नंगी चली आओ और अपने वस्त्रों को ले जाओ। बिना अंग दिखाये तुम्हें कपड़े नहीं मिलेंगे।" यह सुनकर गोपियों ने परस्पर विचार किया कि सारा गाँव हमें नंगी देखे इससे तो यही उत्तम है कि अकेले श्री मनमोहन प्यारे ही हमें देख लें। ये हमारे अन्तःकरण का सब हाल जानते हैं, अतः हमें इनसे लज्जा नहीं करनी चाहिए। बिना वस्त्रों के हम लोग घर भी नहीं जा सकती हैं। अतः श्यामसुन्दर जो कह रहे हैं, वह हमें मान लेना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके सब गोपियाँ एक हाथ से भग तथा दूसरे हाथ स्तनों को छिपाये हुए यमुना से बाहर निकल आईं तथा श्री कृष्णचन्द्रजी के सम्मुख पहुँच अपना मस्तक नीचा किये हुए खड़ी हो गईं। यह देखकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा—"हे गोपियो! अभी तक तुम्हारे हृदय में कपट वर्तमान है सो जो जीव कपटी होता है, वह मुझे कभी नहीं पा सकता। तुम लोग एक-एक करके मेरे सामने खड़ी होकर सूर्य देवता को हाथ जोड़ो, तब मैं तुम्हें तुम्हारे वस्त्र दूँगा, क्योंकि तुमने व्रत में नंगी स्नान करके सूर्यनारायण का अपराध किया है।" यह सुनकर गोपियाँ कहने लगीं—"हे चितचोर! तुम हम भोली-भाली गोपियों से कपट क्यों करते हो? हम तुम्हारी बात मानकर नंगी निकल आईं, पर अब तुम इस बहाने हमें अपने गुप्त अंगों पर से हाथ हटा देने को क्यों कहते हो? अच्छा, इस समय हम सब तुम्हारे अधीन हैं, अतः तुम जो कहोगे वही करेंगी।" इस प्रकार कहकर सब गोपियों ने अपने स्तनों से एक हाथ हटाकर सूर्य देवता को दण्डवत् किया। तब श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा—"हे गोपियो! एक हाथ से दण्डवत् करने पर दोष लगता है, इसलिये दोनों हाथों से दण्डवत् करो।" यह सुनकर गोपियाँ हँसकर बोलीं—"अच्छा, मनमोहन! इस समय तुम जो कहोगे, हम वही करेंगी। कभी समय आने पर हम तुमसे अपना बदला चुका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

लेंगी। इतना कहकर सब गोपियों ने अपने दोनों हाथों से सूर्य देवता को दण्डवत् किया। उस समय श्री मुरलीमनोहर उनकी ऐसी निश्छल प्रीति को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा वृक्ष से नीचे उतरकर, सब धोतियों को अपने कन्धे पर डालते हुए बोले—"हे गोपियो! अब मैंने तुम्हारा सब बोझा अपने कन्धे पर उठा लिया, तुम चिन्ता मत करो। मनुष्य-शरीर पाने का यही सबसे बड़ा फल है कि वह परोपकार करे।" इतना कहकर श्री घनश्यामजी ने सब गोपियों को वस्त्राभूषण लौटा दिये।

हे परीक्षित! वस्त्राभूषण पहिनने के पश्चात् सब गोपियाँ श्री कृष्णचन्द्रजी के प्रेम में ऐसी मग्न हो गईं कि उनका मन घर लौटने को नहीं चाहता था। उस समय श्री कृष्णचन्द्र ने उन्हें सम्बोधन करते हुए इस प्रकार कहा—"हे गोपियो! जल में वरुण देवता का निवास रहता है, अतः नंगे होकर स्नान करने से सब धर्म-पुण्य नष्ट हो जाते हैं। अब तुम्हें यमुना-स्नान तथा व्रत रखने का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो गया। तुम सब मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हो। अब मैं आश्विन शुक्ल पूर्णमासी को तुम्हारे साथ रासलीला करके तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। तुम व्रत रखना छोड़कर अपने-अपने घर में सुखपूर्वक रहो।" श्री कन्हैयाजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर सभी व्रजबालाएँ अत्यन्त प्रसन्न होती हुईं, अपने-अपने घर को लौट गईं तथा आश्विन शुक्ल पूर्णिमा का दिन आने की प्रतीक्षा करने लगीं। तदुपरान्त श्री कृष्णचन्द्रजी वहाँ से वंशीवट जाकर, सब ग्वालबालों के साथ गौ चराने लगे।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! श्री परब्रह्म प्रभु के अवतार श्री कृष्णचन्द्रजी को तो सबकी लज्जा रखनी चाहिए, फिर उन्होंने शास्त्र के विपरीत पराई स्त्रियों की लज्जा क्यों छुड़ाई? यह मेरे मन में बड़ा सन्देह है, सो आप इसे दूर करने की कृपा करें।" यह सुनकर श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित! स्त्री को जल में नग्न स्नान करने से भारी पाप लगता है। जल में नंगी स्नान करनेवाली स्त्री जब तक उसी नग्नावस्था में पर-पुरुष के सामने न जाय, तब तक उसका वह पाप नष्ट नहीं होता। इसीलिए श्री कृष्णचन्द्रजी ने ऐसा करके, उनको दोष दूर कर दिया था। अस्तु, हे राजन्! वन में पहुँचकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने वृक्षों की शीतल छाया देखकर श्रीदामा आदि ग्वालबालों से इस प्रकार कहा—"हे भाइयो! देखो ये वृक्ष शीत, ग्रीष्म, वर्षा आदि का दुःख अपने ऊपर उठाते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए, एक पाँव से खड़े रहकर अपनी छाया तथा फल-फूलों से सब जीवों को सुख पहुँचाते हैं। ये किसी भी प्राणी से विमुख नहीं रहते। मनुष्य इतना सुख पाने पर भी, जब इनके पत्तों तथा डालियों को तोड़ता है तब भी ये कुछ बुरा नहीं मानते। जब इनमें फल-फूल लगे रहते हैं तब ये उनके द्वारा बटोहियों का आतिथ्य-सत्कार करते हैं और जब वे समाप्त हो जाते हैं, तब लज्जा से अपना मस्तक झुकाकर, इस प्रकार कहते हैं कि हमसे तुम्हारी कोई सेवा नहीं बन पड़ती, इसीलिए हम तुम्हारे सम्मुख लज्जित होकर नतमस्तक हैं। ये धनवान् तथा निर्धन दोनों को बराबर जानकर, योगियों के समान तप करते रहते हैं। अतः संसार में उसी का जन्म सफल समझना चाहिए, जो स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों का उपकार करता रहे।" इस प्रकार वृक्षों की प्रशंसा करने के पश्चात् श्री श्यामसुन्दर साँझ होने पर ग्वालबाल तथा गौओं सहित घर को लौट आये।

तेईसवाँ अध्याय

ग्वालबालों का मथुरा के चौबों से भोजन माँगना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! एक दिन श्याम-बलराम वन में गौ चराते हुए ग्वालबालों सहित खेल रहे थे, उसी समय कुछ ग्वालों ने श्री श्यामसुन्दरजी से कहा—"हे भैया कृष्णचन्द्रजी! हम लोग अपने घर से जो कलेवा लाये थे, वह तो खा चुके, पर अभी हमारी भूख नहीं गई है, इसलिए आप हमें कुछ खिलाने की कृपा करें।" यह सुनकर अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में यह विचार किया कि मथुरावासी ब्राह्मणों की स्त्रियों को मेरे दर्शन की लालसा है, सो उनकी इच्छा आज पूर्ण करनी चाहिए। यह सोचकर श्री श्यामसुन्दरजी ने ग्वालबालों से इस प्रकार कहा—"हे भाइयो! वह देखो, वन में जहाँ धुआँ उठ रहा है, वहाँ मथुरिया ब्राह्मण राजा कंस के भय से छिपकर यज्ञ तथा हवन करते हैं, सो तुम चार-पाँच जने वहाँ जाकर दण्डवत् करके, उनसे मेरा नाम लेना तथा यह कहना कि हमें भूख लग रही है सो आप कुछ भोजन दे दें।" यह सुनकर कई ग्वाले उनके पास जाकर, दण्डवत् करने के उपरान्त इस प्रकार कहने लगे—"हे महाराज! हमें श्री कृष्णचन्द्रजी ने भोजन के लिए भेजा है, सो आप कृपा करके हमें कुछ खाने के लिए दे दीजिए।"

हे परीक्षित! वे अज्ञानी ब्राह्मण अपने कर्म के अभिमान में भरे रहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी की महिमा को नहीं जानते थे, इसलिए ग्वालबालों की बात सुनकर उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—"अरे मूर्खो ! हमने यह भोजन देवताओं के नाम पर यज्ञ के लिए तय्यार किया है। अतः जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हो जाता, तब तक तुम्हें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलेगा। यज्ञ सम्पूर्ण हो जाने पर तुम्हें प्रसाद मिल सकता है। तुम्हारे श्याम तथा बलराम अहीरों के घर में पले हैं। हम ब्राह्मण उनसे ऊँचे कुल के हैं। अतः तुम्हें पहिले भोजन नहीं दे सकते।" यह सुनकर ग्वालबाल निराश हो श्री कृष्णजी के पास लौट आये तथा इस प्रकार कहने लगे—"हे व्रजेन्द्र ! हम लोग अपना मान छोड़कर भीख माँगने के लिए गये, फिर भी हमें भोजन नहीं मिला। इधर भूख बराबर बढ़ती ही चली जा रही है।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने हँसते हुए बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे भैया ! भक्ति के बिना ब्राह्मण भी हमारे भेद को नहीं जानते हैं। वे ऐसे अज्ञान में पड़े रहते हैं कि उन्हें यह भी पता नहीं होता कि यज्ञ तथा हवन का स्वामी कौन है ?" इतना कहकर श्री कृष्णचन्द्रजी ग्वालबालों से बोले—"हे भाई ! अब तुम लोग उनकी स्त्रियों के पास जाओ। वे बड़ी धर्मात्मा तथा हरिभक्त हैं। तुम उनसे कहना कि श्याम तथा बलराम गौ चराने के लिए वन में आये हुए हैं। इस समय उन्हें भूख लग रही है, सो तुमसे भोजन मँगाया है। वे तुम्हें बड़े सम्मान-सहित भोजन देंगी।" यह सुनकर ग्वालों ने चौबाइनों के पास जाकर कहा—"हे माता ! श्री श्याम तथा बलराम ने तुमसे भोजन मँगाया है, सो तुम क्या उत्तर दे रही हो ?" ग्वालों के ऐसे वचन सुनकर सब चौबाइनें प्रसन्न होकर बोलीं—"हमारे धन्य भाग्य हैं, जो आज श्री श्यामसुन्दर ने हमसे भोजन मँगाया है। हम अभी उनके लिए भोजन लेकर चलती हैं।"

हे राजन् ! उन सब स्त्रियों के मन में यह अभिलाषा लगी हुई थी कि कभी कोई दिन ऐसा आये, जब हमें श्री श्यामसुन्दर के दर्शन प्राप्त हों। अतः उस दिन वे मेवा, मिठाई, पकवान, दूध, दही, माखन आदि सोने-चाँदी के थालों में रख, अपने हाथों में ले, श्री श्यामसुन्दर को भोजन कराने के लिए चल पड़ीं। कुछ सामान उन्होंने ग्वालबालों को ले चलने के लिए भी दे दिया। उस समय उनके पतियों ने उन्हें बहुत समझाया कि तुम इन ग्वालों के साथ मत जाओ, परन्तु वे किसी प्रकार नहीं मानीं। भला, जिनके हृदय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में श्री श्यामसुन्दर बसे हुए हों, वे कब किसका भय मानते हैं ? अस्तु, जब वे घर से बाहर निकल आईं, तो उन्होंने ग्वालबालों से पूछा—"हे ग्वालबालो ! श्री श्यामसुन्दर कहाँ बैठे हैं ?" ग्वालों ने उत्तर दिया—"आगे कुछ दूर पर बैठे हैं।" यह सुनकर जब वे प्रेम-मग्न होकर आगे चलीं, उस समय एक मथुरिया ब्राह्मण अपनी पत्नी को मार्ग में से जबर्दस्ती पकड़कर घर ले आया। उस समय ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा—"हे स्वामी ! मेरे मन में श्री श्यामसुन्दर को देखने की बड़ी लालसा है, सो तुम मुझे उनके दर्शन कर आने दो। वे नन्दनन्दन परब्रह्म प्रभु के अवतार हैं तथा अपने भक्तों को सुख देने के लिए मनुष्य-शरीर धारणकर, पृथ्वी पर भाँति-भाँति की लीलाएँ कर रहे हैं। तुम वेदपाठी होते हुए भी उन्हें नहीं पहिचानते, यह बड़े आश्चर्य की बात है। तुम मुझे रोककर अपयश मतलो। मेरे प्राण श्री नन्दलालजी से जा मिले हैं। अतः इस मिथ्या शरीर को रोककर क्या करोगे ? यदि मेरी मृत्यु हो गई तो तुम्हें पछताने के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा। जिस मनुष्य को श्री नारायणजी से प्रीति नहीं होती, उसका कोई काम नहीं बनता है, अतः तुम मुझे उनके पास जाने दो।" ब्राह्मणी के इस प्रकार कहने पर भी उस मथुरिया ने उसे श्री कृष्णचन्द्रजी के पास नहीं जाने दिया तथा उसे कोठरी में बन्द करके ताला लगा दिया। तब श्री श्यामसुन्दर के ध्यान में उस ब्राह्मणी के प्राण निकल गये और वह सब स्त्रियों से पहिले ही उनके पास इस प्रकार जा पहुँची, जैसे वर्षा का पानी शीघ्रतापूर्वक बहता हुआ नदी अथवा समुद्र में जा मिलता है। अस्तु, जिस समय अन्य सब स्त्रियाँ भोजन लिए श्रीहरि के पास जा पहुँचीं, श्री श्यामसुन्दर कदम्ब के वृक्ष की छाया में एक सखा के कन्धे पर हाथ रक्खे, मोहिनी मूरत बनाये, दूसरे हाथ में कमल का फूल लिए खड़े थे। ब्राह्मणियों ने उनके समीप पहुँचकर, भोजन के थाल उनके सामने रख दिए तथा उनकी मोहिनी मूर्ति को देख, अत्यन्त प्रसन्न हो, परस्पर इस प्रकार कहने लगीं कि हे सखी ! ये ही वे श्री कृष्णचन्द्रजी हैं, जिनकी प्रशंसा सुनकर हम लोग सदैव स्मरण किया करती थीं। आज हमारे बड़े भाग्य उदय हुए, जो हमने अपने नेत्रों से इनका दर्शन प्राप्त किया। अब इनके चन्द्रमुख का दर्शन करके अपने जीवन को धन्य बना लो।

हे परीक्षित ! श्री श्यामसुन्दर की कृपा से उन सब स्त्रियों को दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गई, उस समय वे हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगीं—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परब्रह्म प्रभु ! आपकी कृपा के बिना आपके इस मनमोहन स्वरूप का दर्शन किसी को प्राप्त नहीं होता है। न जाने हमारे किस जन्म के पुण्य उदय हुए, जो हमने आज आपका दर्शन प्राप्त किया है। आज हमारे अनेकों जन्म के पाप नष्ट हो गये। हे प्रभो ! हमारे पति अपने अज्ञान तथा अभिमान के कारण संसारी मोह-माया में डूबकर ऐसे अन्धे हो रहे हैं कि जिन श्री नारायणजी के नाम पर यज्ञ किया जाता है, उन्हें मनुष्य समझकर उन्होंने भोजन देना अस्वीकार कर दिया। हे श्यामसुन्दरजी ! उसी शरीर तथा धन को उत्तम समझना चाहिए, जो आपके काम आता रहे। जो लोग मनुष्य का शरीर पाकर भी आपकी सेवा से वञ्चित रहते हैं उनका जन्म अकारथ समझना चाहिए। मनुष्य-जन्म का फल आपकी सेवा तथा भक्ति करना ही है। उसी यज्ञ, तप, ध्यान तथा ज्ञान को श्रेष्ठ जानना चाहिए, जिससे आपके चरणों में प्रीति निरन्तर उत्पन्न होती रहे।" ब्राह्मणियों के इन प्रेम तथा भक्ति से भरे हुए वचनों को सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उनके कुशल-क्षेम को पूछने के उपरान्त कहा—"हे माताओ ! मैं नन्द महर का पुत्र हूँ, अतः तुम ब्राह्मणी होकर मुझे दण्डवत् मत करो। इससे मुझे दोष लगेगा। जो लोग ब्राह्मणों अथवा उनकी स्त्रियों से अपनी सेवा कराते हैं, उन्हें संसार में कुछ बड़ाई नहीं मिलती तथा पाप का भागी होना पड़ता है। तुमने हमें भूखा जानकर हमारे ऊपर दया की तथा इस वन में आकर भोजन दिया, इसके बदले में तुम्हारा क्या सम्मान करूँ ? यहाँ से मेरा घर वृन्दावन दूर है। यदि मैं अपने घर पर होता तो सम्भवतः अपनी सामर्थ्यानुसार तुम्हारा कुछ आदर-सत्कार भी करता। यहाँ मैं तुम्हारा कोई स्वागत नहीं कर सका, यही पछतावा मेरे मन में हो रहा है। अब तुम अपने-अपने स्थान को लौट जाओ। क्योंकि तुम्हें यहाँ आये बहुत देर हो चुकी है। स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी होती है, अतः तुम्हारे बिना तुम्हारे पति ब्राह्मणों का यज्ञ-हवन देवताओं को स्वीकार नहीं होगा।" श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर उन स्त्रियों ने उत्तर दिया—"हे त्रिलोकीनाथ ! आपके दर्शन करके तथा आपके चरण-कमल की भक्ति प्राप्त करके हमारी संसारी मोह-माया दूर हो गई है। अब हमें घर, द्वार, शरीर तथा परिवार का कोई मोह नहीं है। इसके अतिरिक्त हम सब पति की आज्ञा के बिना तुम्हारा दर्शन करने के लिए चली आईं, अतः यदि वे लोग हमें अब अपने घर में न रक्खें, तो हम कहाँ भटकती फिरेंगी ? इससे अच्छा तो यही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि हम सब आपके चरणों के समीप ही बनी रहें। हे प्रभो! हमारे साथ ही एक और स्त्री आपके दर्शन करने के लिए आ रही थी, परन्तु उसका पति उसे मार्ग में से ही जबर्दस्ती पकड़कर ले गया। पता नहीं उस बेचारी की क्या दशा हुई होगी?" चौबाइनों के मुख से यह बात सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी कुछ हँस दिये। तत्पश्चात् सबको उस स्त्री का स्वरूप दिखाकर कहने लगे—"हे चौबाइनो! वह स्त्री तुमसे भी पहिले मेरे पास आ पहुँची है। जिस प्राणी को मेरे चरणों में प्रीति होती है, उसका कभी नाश नहीं होता।"

हे परीक्षित! उस स्त्री को श्री कृष्णचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित देखकर पहिले तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, फिर वे उसे श्री श्यामसुन्दरजी की कृपा समझकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे प्रभो! आप धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पदार्थों को देनेवाले हैं, अतः अब हमें अपने श्रीचरणों से अलग मत कीजिये। आपकी शरण छोड़कर अब हम कहीं नहीं जायँगी। यह सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"हे ब्राह्मणियो! सुनो, तुम सब मेरे प्रेम में मग्न हो, यह अच्छी बात है, परन्तु गृहस्थ लोगों को अपना सब काम वेद के अनुसार करना चाहिए। शास्त्रों में यह लिखा है कि प्रत्येक स्त्री अपने पति को परमेश्वर के समान समझकर उसकी आज्ञा का पालन करे तथा पराये पुरुष को पाप की दृष्टि से कभी न देखे। जो पतिव्रता ऐसा करती है उसे योगी तथा ज्ञानियों से बढ़कर समझना चाहिए। ऐसी पतिव्रता स्त्री अपने मुख से जो शुभ-अशुभ वचन कहती है, वह सत्य हो जाता है। स्त्री को अपने स्वामी के द्वारा चारों पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है। अतः तुम लोग भी अब अपने घर को लौट जाओ। तुम्हारे पति क्रोध न करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न ही होंगे।" यह सुनकर सब चौबाइनें श्री श्यामसुन्दरजी को दण्डवत् कर तथा उनसे भक्ति-वरदान प्राप्त करके अपने घर को चल दीं। उधर जिस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री को कोठरी में बन्द कर दिया था, उसने जब ताला खोला तो अपनी स्त्री को मरी हुई देखकर बहुत प्रकार से विलाप करने लगा। जिस समय वह उसके मृतक-शरीर को जलाने का उपक्रम करने लगा, उसी समय अन्य स्त्रियाँ लौटकर अपने घर जा पहुँचीं।

हे परीक्षित! जिस समय स्त्रियाँ श्री श्यामसुन्दर से मिलने जा रही थीं, उस समय ब्राह्मणों ने उनके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया, परन्तु जब वे लौट कर वापस आईं, तब उनके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Kosha

वे दुःखी होकर इस प्रकार कहने लगे कि देखो, जिन प्रभु का दर्शन ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषिमुनियों को भी ध्यान में शीघ्र नहीं मिलता, उनका दर्शन पाकर इन स्त्रियों ने अपना जन्म सफल बना लिया। परन्तु हमने अपने अज्ञान के कारण यह भी नहीं पहिचाना कि इस यज्ञ तथा हवन का वास्तविक स्वामी कौन है। हमने वेद तथा पुराण में ऐसा सुना था कि परब्रह्म प्रभु यदु-कुल में अवतार लेकर नन्द-यशोदा को अपने बाल-चरित्रों का सुख दिखा-येंगे, सो इस समय वे ही श्री नारायणजी अपनी बाल-लीलाएँ कर रहे हैं। उन्होंने भोजन माँगने के लिए हमारे पास ग्वालबालों को भेजा था, परन्तु हमसे ऐसी चूक बन पड़ी, जो हमने उन सच्चिदानन्द प्रभु को भोजन तक नहीं दिया। हम जिन्हें प्रसन्न करने के लिए दिन-रात यज्ञ-तप तथा ध्यान आदि शुभ कर्म करते हैं, उन्हें मनुष्य समझकर हम उनके पास दर्शन करने के लिए भी नहीं गये। हाय, यह कैसी भूल बन पड़ी जो हमने श्री परब्रह्म प्रभु को भी नहीं पहिचाना? हमसे अधिक उत्तम तो इन स्त्रियों को समझना चाहिए, जिन्होंने अपने ज्ञान से श्रीहरि को पहिचान लिया तथा उनके दर्शन प्राप्त करके अपने जन्म को सफल बनाया। इस प्रकार पछताते हुए उन ब्राह्मणों ने अपनी स्त्रियों से यह कहा कि तुम्हारे समान धन्य अन्य कोई नहीं है, जो तुमने श्रीहरि के दर्शन प्राप्त किये। तदुपरान्त वे श्री श्यामसुन्दर का ध्यान धर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! आप हमारा अप-राध क्षमा कर दीजिये तथा हमारे हृदय में जो अज्ञानरूपी काई जम रही है, उसे ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म कर दीजिये।" इस तरह जब ब्राह्मणों ने बहुत स्तुति की तो श्री श्यामसुन्दर ने उनका अपराध क्षमा कर दिया। फिर सब चौबाइनों ने उस ब्राह्मणी के मृतक-शरीर को देखकर उसके पति से इस प्रकार कहा कि हमने तेरी स्त्री को भी श्यामसुन्दर की सेवा में उपस्थित देखा था। यह सुनते ही वह ब्राह्मण रो-रोकर इस प्रकार कहने लगा कि यदि मैं भी तुम्हारे साथ अपनी स्त्री को चली जाने देता तो यह दशा क्यों होती? इतना कहकर वह दौड़ता हुआ वन में श्री कृष्णचन्द्रजी के पास जा पहुँचा। वहाँ अपनी स्त्री को चतुर्भुजी रूप में श्री कृष्णचन्द्रजी की सेवा करते देख, अत्यन्त विलाप करने लगा। उस समय श्री कृष्णजी ने कहा—"अपनी स्त्री की भक्ति के प्रताप से तू भी चतुर्भुजी रूप का हो जा।" श्री नन्दनन्दन के मुख से यह शब्द निकलते ही वह ब्राह्मण चतुर्भुजीरूप हो गया। तब श्री त्रिलोकीनाथजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने उन दोनों को विमान पर बैठाकर वैकुण्ठ लोक में भेज दिया। तदुपरान्त चौबाइनें भोजन के जो पदार्थ दे गई थीं, उन्हें श्री मुरलीमनोहर ने आपस में बाँटकर, ग्वालबालों सहित बड़े प्रेमपूर्वक खाया। उस समय श्रीदामा ने यह कहा—"हे नन्दलाल! गौएँ चरती हुई बहुत दूर चली गई हैं, अब क्या करें?" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने ऐसी बाँसुरी बजाई कि उसकी धुन को सुनकर सब गौएँ दौड़ती हुई वहाँ अपने-आप चली आईं। इस प्रकार गौओं को एकत्रित कर, श्री कृष्णचन्द्रजी सन्ध्या होने पर बलरामजी तथा अन्य ग्वालबालों के साथ अपने घर को चल दिये। जब वे वृन्दावन के समीप पहुँचे, तब सब व्रजबालाएँ उनके दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हो परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखी! देखो, हमारे प्राणप्यारे आँखों के तारे श्री नन्दनन्दन सिर पर मोरमुकुट बाँधे, वन से गौएँ चराकर लौट आये हैं। इनके दर्शन करके अपना जीवन सफल बना लो।" अस्तु, हे परीक्षित! जिस समय आनन्द-कन्द श्री कृष्णचन्द्रजी गायों की पीठ पर हाथ फेरते हुए अपने पीताम्बर से उनके शरीर को पोंछते थे, उस समय स्वर्गलोक में कामधेनु अपने मन में पछताकर यह कहती थी कि यदि श्री नारायणजी मुझे भी वृन्दावन में जन्म देते तो मैं भी श्यामसुन्दर के साथ रहकर अपने को परम धन्य मानती। ये व्रज की गाएँ धन्य हैं, जिन्हें श्री कृष्णचन्द्रजी वन में ले जाकर प्रतिदिन चराते हैं तथा अपने हाथ से उनका पसीना पोंछते और दूध दुहते हैं।"

चौबीसवाँ अध्याय

गोवर्द्धन पूजा की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! अब हम तुमसे वह कथा कहते हैं कि जिस प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी ने गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाया था, सुनो। गोकुल तथा वृन्दावन में प्रति वर्ष कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को सब व्रजवासी छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन बनाकर देवताओं के राजा इन्द्र की पूजा किया करते थे। अतः जब वह दिन आया, तब व्रजवासियों ने इन्द्र की पूजा के लिए अपने-अपने घर भाँति-भाँति के मेवा-मिष्टान्न बनवाये। यशोदाजी भी सब पदार्थों को बड़ी पवित्रता से बना-बनाकर अलग रखती जा रही थीं, ताकि उन्हें कोई जूठा न कर दे। उन्हें सबसे बड़ा भय श्री श्यामसुन्दर का लग रहा था। हे परीक्षित! जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

तय्यारियाँ देखीं तो अपने मन में यह विचार किया कि इन्द्र की पूजा छुड़वाकर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करानी चाहिए। यह निश्चय करके उन्होंने यशोदाजी से पूछा—"हे मैया! आज सब व्रजवासियों के घरों में भाँति-भाँति की मिठाइयाँ बन रही हैं, सो इसका क्या कारण है?" यह सुनकर यशोदा ने उत्तर दिया—"हे पुत्र! इस समय मुझे बात करने का अवकाश नहीं है, अतः तू अपने पिता के पास जाकर पूछ ले।" यह सुनकर श्री मुरली मनोहर बलरामजी सहित नन्दरायजी के पास जा पहुँचे और उनसे इस प्रकार कहने लगे—"हे बाबा! आज यह किसकी पूजा का सामान हो रहा है? भला, वे देवता कौन-से हैं, जिनकी पूजा करने से भक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। आप मुझे उनका नाम तथा गुण बतावें। बड़ों को यह उचित है कि वे छोटों को अपने कुल की रीति बता दिया करें, क्योंकि लड़कपन की सीखी हुई बातें सदैव याद बनी रहती हैं।" नन्दजी ने उत्तर दिया—"हे पुत्र! क्या तुमने अब तक इस पूजा का हाल नहीं सुना था? यह सब सामान मेघों के राजा इन्द्र की पूजा के लिए बन रहा है। उनकी पूजा करने से वर्षा अच्छी होती है, जिससे सब जीवों को सुख मिलता है। हमारे कुल में बहुत दिनों से यह पूजा होती चली आ रही है।" यह सुनकर श्री कृष्णजी कहने लगे—"हे बाबा! अब तक हमारे पूर्वजों ने जान-अनजान में इन्द्र की पूजा की सो तो ठीक रहा, परन्तु अब आप जान-बूझकर भी कुराह क्यों चलते हैं। संसार में धर्म तीन प्रकार के कहे गये हैं। पहिला वेद-शास्त्रों में वर्णित, दूसरा लोक व्यवहार का तथा तीसरा अपनी इच्छा का। इनमें वेद के प्रमाण से जो धर्म किया जाता है, उसी का फल प्राप्त होता है, शेष निष्फल हो जाते हैं। अब आपही बताइये कि इन्द्र की पूजा करने से क्या लाभ प्राप्त होगा। इन्द्र किसी को भक्ति, मुक्ति अथवा ऋद्धि-सिद्धि नहीं देता। वह स्वयं भी सौ यज्ञ करने के कारण इन्द्र-पद को प्राप्त करता है, तभी देवता लोग उसे अपना राजा स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में वह परमेश्वर नहीं हो सकता। जिस समय वह युद्ध में दैत्यों से हार जाता है, उस समय श्रीहरि उसकी सहायता करके उसे फिर इन्द्रासन पर बैठाते हैं। अतः ऐसे निर्बल की पूजा करने से क्या फल निकलेगा? आप अपना धर्म पहिचानकर श्री नारायणजी की पूजा क्यों नहीं करते? इन्द्र के करने से कुछ नहीं हो सकता। जो लोग अपने अज्ञान के कारण इन्द्रादि सब देवताओं के स्वामी श्री नारायणजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को छोड़कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं उन्हें महामूर्ख जानना चाहिए। श्री नारायणजी की कृपा से ही इन्द्र अपनी गद्दी पर स्थिर रहता है। ईश्वर ने भाग्य में जो लिख रक्खा है, वही होता है, उसमें कोई तिल भर भी घटा-बढ़ा नहीं सकता। वर्षा होने का हाल इस प्रकार समझना चाहिए कि सूर्य देवता आठ महीने तक पृथ्वी का जल सोखते हैं, वही जल चार महीने बरसात में बरसता है। उसी के द्वारा अन्न, घास आदि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा ने संसार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण बनाये हैं। इन सब वर्णों के लिए एक-एक कार्य भी निश्चित कर दिया है। वह इस प्रकार है कि ब्राह्मण वेदविद्या पढ़ें, क्षत्रिय सबकी रक्षा करें, वैश्य व्यापार तथा खेती करें एवं शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा करें। अतः हे पिता! हम वैश्य वर्ण के हैं तथा हमारे यहाँ बहुत-सी गौएँ हैं। गोकुल हमारी जन्म-भूमि है, अतः हमारा नाम ग्वाला पड़ा है। हमारा कर्म खेती-व्यापार तथा गौ-ब्राह्मण की सेवा करने का है। वेद-शास्त्रों की यह आज्ञा है कि अपने वर्ण का धर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जो लोग अपने धर्म को छोड़कर दूसरे का धर्म ग्रहण करते हैं, उन्हें इस प्रकार समझना चाहिए, मानो कुल-वती स्त्री अपने पति को छोड़कर पराये पुरुष के पास रहे। अतः हे बाबा! यदि आप मुझ बालक का कहना सत्य मानें तो इन्द्र की पूजा छोड़कर गोवर्द्धन पर्वत, गौ-ब्राह्मण एवं वन की पूजा करना आरम्भ करें। गोवर्द्धन पर्वत को यहाँ का राजा समझना चाहिए, क्योंकि उसी पर्वत तथा वन में चरकर हमारे बछड़े तथा गौ पलते हैं। उन्हीं का दूध-घी बेचने से हमारी आजीविका चलती है। अपने पालनकर्ता को राजा तथा पूज्य समझना चाहिए। इसलिए आप इस मिठाई आदि पकवानों को गोवर्द्धन पर्वत पर ले जाकर, उन्हीं का पूजन कीजिए तथा उन्हें भोग लगाकर गौ, ब्राह्मण एवं याचकों को भोजन करायें। इसके प्रताप से अन्य वर्षों की अपेक्षा इस बार अधिक वर्षा होगी।"

श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर नन्द, उपनन्द, वृषभानु आदि ने प्रसन्न होकर परस्पर इस प्रकार कहा—"हे भाई! कृष्ण ने जो बात कही है, वही उपाय करना चाहिए। हम सब लोग कल प्रातःकाल उठकर गोवर्द्धन की पूजा करने चलेंगे। इस प्रकार का निश्चय करके नन्दरायजी ने सब गाँव में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन हम सब लोग गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने के लिए चलेंगे। अतः सब लोग मिठाई, पकवान आदि ले चलें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! नन्द-उपनन्द की इस आज्ञा को सुनकर सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब सब ग्वालबालों ने अपनी-अपनी गायों तथा बछड़ों के सींग-पूँछ रँगकर, उनके गले में घंटे बाँध दिये तथा अन्य अनेक प्रकार से उन्हें सजा दिया। तदनन्तर कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन सब व्रजवासियों ने स्नान कर, बैलगाड़ी में सामग्री भरवा दी। फिर सब स्त्री-पुरुष-बालक रंग-बिरंगे उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिन, नन्द तथा वृषभानु आदि के साथ गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने के लिए चल दिये। हे परीक्षित ! गोवर्द्धन पर्वत पर पहुँचकर सब लोगों ने श्री कृष्णचन्द्रजी के आज्ञानुसार मेवा-पकवान आदि से पर्वत का पूजन किया। मिठाई आदि का वह ढेर इतना ऊँचा हुआ कि एक दूसरा पर्वत-सा दिखाई देने लगा। गोवर्द्धन पर्वत पर फूल-मालाएँ तथा वस्त्र आदि इतने चढ़ाए गये कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने व्रजवासियों से इस प्रकार कहा कि तुम लोग अपनी आँखें बन्द कर लो। तब गोवर्द्धन महाराज प्रत्यक्ष उपस्थित होकर इस सामग्री का भोजन करेंगे। यह सुनकर जब सब लोगों ने अपनी आँखें बन्द करके गोवर्द्धन पर्वत का ध्यान किया, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी एक विशाल चतुर्भुजी तेजस्वी तथा परमसुन्दर स्वरूप धारण कर, गोवर्द्धन के रूप में प्रकट हो गये। उधर एक रूप से तो श्री श्यामसुन्दर इस प्रकार प्रकट हुए, इधर सब व्रजवासियों को पुकार कर कहने लगे कि देखो श्री गोवर्द्धनजी तुम्हें दर्शन देने के लिए साकार रूप में प्रकट हुए हैं। यह सुनकर जब सब लोगों ने अपनी आँखें खोलीं और उस मनोहारी रूप को सम्मुख देखा तो मन में अत्यन्त प्रसन्न हो, उन्हें दण्डवत कर, परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि देखो, इन्द्र ने तो हमें आज तक कभी दर्शन नहीं दिया, परन्तु ये तो आज पहिली बार ही प्रत्यक्ष प्रकट हो गये हैं। हमारे पुरुषाओं ने बड़ी भूल की जो ऐसे प्रत्यक्ष देवता को छोड़कर, अब तक इन्द्र की पूजा करते रहे।

उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने सब गोपग्वालों से यह कहा कि तुम लोग इनके सामने भोजन रख दो, ये स्वयं हाथ बढ़ाकर खा लेंगे। यह सुनकर जब ग्वालबालों ने भोजन सामने रक्खा तो गोवर्द्धन महाराज अपने हाथ बढ़ाकर उसे उठा-उठाकर खाने लगे। यह देखकर नन्द, उपनन्द, वृषभानु आदि सभी गोपग्वाले अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका जय-जयकार करने लगे। तदुपरान्त श्री गोवर्द्धन महाराज ने नन्दरायजी से इस प्रकार कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे नन्दराय ! तुमने मेरी अत्यन्त सेवा की है, इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, अब तुम जो चाहो, वह वरदान मुझसे माँग लो।" तब नन्दरायजी ने कहा—"हे प्रभु ! आप मुझे यही वरदान दीजिए कि सब व्रजवासी गोपग्वाल तथा गौएँ आपकी कृपा से आनन्दित रहें तथा आपके चरणों में हमारी भक्ति बनी रहे।" यह सुनकर गोवर्द्धन महाराज ने इच्छित वरदान देकर कहा—"अब तुम लोग आनन्दपूर्वक अपने घर जाओ।" इतना कहकर जब श्री गोवर्द्धन महाराज अन्तर्धान हो गये तब सब व्रजवासी अत्यन्त आनन्द मनाने लगे। उस समय ललिता सखी ने राधिकाजी से कहा—"हे प्यारी! यह सब श्री श्याम-सुन्दर प्यारे की लीला है, जो अपना दूसरा स्वरूप पर्वत में प्रकट करके सब सामग्री का स्वयं भोग लगा रहे हैं।" हे परीक्षित! भोजन करने के पश्चात् जब गोवर्द्धन महाराज अन्तर्धान हो गये, तब नन्दजी ने उस स्थान पर हवन, परिक्रमा करने के पश्चात् ब्राह्मणों, गायों तथा पथिकों को भोजन कराया, फिर सब ग्वालबालों-सहित आप भी भोजन किया। जिस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने एक ग्रास उठाकर अपने मुँह में रक्खा, उस समय ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि सब देवताओं तथा संसार के सभी जीवों का पेट भर गया। हे राजन्! उस दिन सब व्रजवासी रात को वहीं रहकर गा-बजाकर आनन्द मनाते रहे। दूसरे दिन अत्यन्त प्रसन्न हो मङ्गलाचार करते हुए गौ तथा बछड़ों-सहित अपने घर लौट आये। उसी दिन से संसार में गोवर्द्धन-पूजा (अन्नकूट) प्रसिद्ध हुई।"

पच्चीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! जब उस वर्ष व्रजवासियों ने इन्द्र की पूजा नहीं की तो इन्द्र ने अपनी सभा के देवताओं से यह पूछा कि कल व्रज में किस देवता की पूजा हुई थी ?" यह सुनकर किसी देवता ने उसे बताया कि प्रतिवर्ष सभी व्रजवासी तुम्हारी पूजा किया करते थे, परन्तु इस वर्ष नन्दराय के कृष्ण नामक बालक के कहने पर सबने तुम्हारा पूजन छोड़कर गोवर्द्धन पर्वत का पूजन किया है। यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर की महिमा को न जाननेवाले इन्द्र ने अत्यन्त क्रोध करके कहा कि व्रजवासियों के पास धन अधिक हो जाने से उन्हें अभिमान उत्पन्न हो गया है, इसीलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने मेरी पूजा करना छोड़ दिया है। अब मैं उन्हें काल के मुख में डालकर दरिद्र बना दूँगा। जिस कृष्ण के कहने से व्रजवासियों ने मेरा अपमान किया है, वह मेरा सबसे बड़ा शत्रु है। अतः मैं उस बालक का गर्व भी नष्ट कर दूँगा। अब तक तो व्रज का स्वामी मैं था, परन्तु अब वह बालक उनका स्वामी बन बैठा है; यह मुझे सहन नहीं हो सकता। इतना कहकर इन्द्र ने प्रलयकाल के सब मेघों को अपने पास बुलवाया।

हे परीक्षित! जब इन्द्र की आज्ञा सुनकर मेघों का स्वामी डरता-काँपता हुआ उसके पास पहुँचा, तब इन्द्र ने यह आज्ञा दी कि तुम सब मेघों को साथ लेकर व्रज के ऊपर चले जाओ तथा वहाँ इतना पानी बरसाओ कि गोवर्द्धन पर्वत-सहित सब व्रजवासी बह जायँ। इतना कहकर इन्द्र ने उनचासों पवन को भी उसके साथ कर दिया, जिससे सर्दी तथा पानी के कारण कोई भी जीवित न बचे। उस समय इन्द्र की आज्ञा से सभी मेघ उनचासों पवन-सहित व्रजमण्डल के ऊपर जाकर घनघोर वर्षा करने लगे। सब ओर जोर की आँधी चलने लगी तथा बादलों के छा जाने से अन्धकार भर गया। आँधी, पानी तथा बिजली के अतिरिक्त कहीं भी और कुछ दिखाई नहीं देता था। यह दशा देखकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने हँसते हुए बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे भाई! देखो, अपनी पूजा न पाने के कारण इन्द्र ने क्रोध करके महाप्रलय का पानी बरसाना आरंभ कर दिया है। मेरे कहने से सब व्रजवासियों ने गोवर्धन की पूजा की थी, इसलिए अब हमें इन्द्र का गर्व भी नष्ट कर देना चाहिए।" इधर श्यामजी तो इस प्रकार की बातें कर रहे थे, उधर नन्द, यशोदा आदि सब गोपी-ग्वाल मन में बहुत पछताते हुए यह कहते थे कि इन्द्र का निरादर करने का फल अब हम लोगों को भोगना पड़ रहा है। भला, इस संकट से हमारे प्राण कैसे बचेंगे?

हे परीक्षित! प्रलय के समान घोर वर्षा होने के कारण जब सब व्रजवासी अत्यन्त दुखी हुए, तब वे श्री कृष्णचन्द्रजी के पास आ, पुकारकर इस प्रकार कहने लगे—"हे श्यामसुन्दर! तुमने इन्द्र की पूजा छुड़वाकर, गोवर्द्धन पर्वत को पुजवाया, सो उसी के कारण इन्द्र क्रोध करके महाप्रलय के समान जल बरसा रहा है। अब तुम गोवर्द्धन महाराज को शीघ्र बुलाकर हमारे प्राणों की रक्षा करो; अन्यथा क्षणभर में ही सब लोग गौ-बछड़ों सहित पानी में डूबकर मर जायेंगे।" इस प्रकार जब सब लोग अत्यन्त व्याकुल हुए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब श्री मुरलीमनोहर ने उन्हें धीरज बँधाते हुए कहा—"हे भाइयो ! तुम लोग भयभीत मत होओ। तुम सब अपनी-अपनी वस्तुएँ, गौ-बछड़े आदि को साथ लेकर गोवर्द्धन महाराज के समीप चलो, वे इन्द्र का अभिमान तोड़कर तुम्हारी रक्षा करेंगे।" यह सुनकर सब लोग गोवर्द्धन पर्वत के समीप जा पहुँचे, तब श्री त्रिलोकीनाथजी ने अपने पीताम्बर को कड़ा करके बाँधा, और उसमें अपनी मुरली खोंस, गोवर्द्धन पर्वत को अपने बायें हाथ की कनिष्ठ उँगली (सबसे छोटी) पर इस प्रकार उठा लिया, जैसे किसी फूल को उठाये हों। फिर सब व्रजवासियों को गौ-बछड़ों सहित उसके नीचे खड़ा करके सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी की तुम इस पर्वत के चारों ओर घूमते रहो तथा जितना पानी बरसे उन सबको ऐसे सोखते चले जाओ कि पृथ्वी पर एक बूँद भी न गिरने पाये। श्री श्यामसुन्दर की आज्ञा पाकर सुदर्शन चक्र ने ऐसा ही करना आरम्भ कर दिया। उस समय सब व्रजवासी श्री श्यामसुन्दर की प्रभुता को देखकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि श्री मुरलीमनोहर नारायणजी के अवतार प्रतीत होते हैं, अन्यथा किस मनुष्य में इतनी सामर्थ्य है, जो वह इतने बड़े पर्वत को अपनी उँगली पर फूल के समान उठा ले ?

हे परीक्षित ! उस समय श्री त्रिलोकीनाथजी एक हाथ पर पर्वत उठाये तथा दूसरे हाथ से बाँसुरी बजाते हुए सब लोगों को आनन्दित कर रहे थे। परन्तु यशोदा मैया अपने अज्ञान तथा पुत्र-प्रेम के कारण नन्दरायजी से इस प्रकार कहती थीं कि हमने अपने अज्ञान के कारण इन्द्र की पूजा को छोड़कर गोवर्द्धन को पूजा था, उसका फल यह दिखाई दे रहा है। इस समय यदि मेरे लाल के ऊपर पर्वत गिर पड़े तो मैं क्या कर लूँगी ? इतना कहकर यशोदाजी श्री श्यामसुन्दर की भुजाओं को दाबने लगीं तथा बार-बार बलैया लेकर श्री नारायणजी की प्रार्थना करती हुई, इस प्रकार कहने लगीं कि हे प्रभु ! आप मेरे कान्हा की रक्षा कीजिए, मैं आपकी मिठाई, मेवा तथा पकवानों से पूजा करूँगी। तत्पश्चात् वे बलरामजी से इस प्रकार बोलीं—"हे बलदाऊ ! मेरा कान्हा तुम्हारी सहायता किया करता था, सो इस समय तुम भी उसकी कुछ सहायता करो।" इस तरह की बातें करते हुए यशोदाजी अपने कुल देवता तथा श्री नारायणजी को बार-बार दण्डवत् करके यह मनाती थीं कि इस पर्वत को उठाने में मेरे मनमोहन को कोई कष्ट न पहुँचे। जब श्री वैकुण्ठनाथ ने अपने माता-पिता को अधिक व्याकुल देखा तो उन्हें धैर्य बँधाने के हेतु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्य लोगों से इस प्रकार कहा कि तुम सब भी पर्वत में अपनी-अपनी लाठी लगाकर मेरी सहायता करो। श्री श्यामजी के ऐसे वचन सुनकर सब ग्वालबालों ने भी पर्वत के नीचे अपनी-अपनी लाठियाँ तथा हाथ लगा दिये। इस कौतुक को देखकर पास खड़े हुए बलरामजी यह सोचकर हँसने लगे कि देखो, भगवान् श्री त्रिलोकीनाथ कैसी लीला रच रहे हैं?

हे परीक्षित! उस समय बहुत-सी गोपियाँ हँसती हुई श्री नन्दनन्दन से इस प्रकार कह रही थीं कि हे लाल! तुमने साँझ-सकारे हमारे दूध, माखन तथा दही आदि को चुरा-चुराकर बहुत खाया है, उसी की सामर्थ्य से तुम इस पर्वत को उठाये हुए हो। आज तुम्हारा वह दूध-माखन खाना सफल हो गया। जिस समय गोपियाँ ऐसी बातें कह रही थीं, उसी समय वहाँ श्री राधिकाजी भी आ पहुँचीं। उन्हें देखकर श्री मुरलीमनोहर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब श्री बाँकेविहारी उनसे बातें करने लगे, तब वह पर्वत थोड़ा-सा हिल गया। यह देखकर सब गोपी-ग्वालों को बड़ा भय लगा और उन्होंने अपने मन में यह समझा कि आज यह पर्वत गिरनेवाला है। इसी बात को सोचकर एक सखी राधा को पकड़कर उनकी माता कीर्ति के पास ले गई, तब कीर्ति ने क्रोध कर के उसे अपने पास बैठा लिया। श्री कृष्णजी के पास नहीं जाने दिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इधर तो श्री कृष्णचन्द्रजी गोवर्द्धन पर्वत को उठाये व्रजवासियों की रक्षा कर रहे थे, उधर मेघ मूसलाधार पानी बरसाये चले जा रहे थे। जब बिजली चमकती थी, तब सब लोगों की आँखें झप जाती थीं। उस समय सुदर्शन चक्र पर्वत के चारों ओर घूम-घूमकर सब पानी को सोख रहा था, इसलिए पृथ्वी के ऊपर एक बूँद पानी भी नहीं गिर पाता था। जब इन्द्र ने यह हाल सुना तो वह मेघों की सहायता करने के लिए स्वयं भी आ पहुँचा। इस प्रकार सात दिन और सात रात तक निरन्तर पानी बरसता रहा, परन्तु किसी भी व्रजवासी को कोई दुःख न हुआ। सब लोग गोवर्द्धन पर्वत के नीचे, अपने घर की भाँति आनन्द से बैठे रहे। श्री बाँकेविहारी हर समय गोप-गोपियों से यह पूछते रहते थे कि हमारे माता-पिता तथा सखा लोग तो अच्छी तरह हैं? वे कहाँ बैठे हैं? उनसे कहो कि वे किसी प्रकार की चिन्ता न करें। यह सुनकर गोप-गोपी उन्हें उत्तर देते हुए कहते थे—"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नटवर ! तुम्हारी दया से सब लोग कुशलपूर्वक हैं। वे बैठे-बैठे बादल और पानी का कौतुक देख रहे हैं। हे परीक्षित ! सात दिन तक सभी ब्रजवासी श्री श्यामसुन्दर के मुखारविन्द के दर्शनरूपी अमृत को पीते रहे, इसलिए किसी को कुछ भूख-प्यास नहीं लगी। अस्तु, जब मेघों का सब पानी चुक गया और उसने इन्द्र से अपनी असफलता का सब हाल कहा, उस समय इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो अपने स्थान को लौट गया। जब उसने देवताओं को यह हाल सुनाया तो उन्होंने उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! जब पृथ्वी पर पापियों का बोझ बढ़ जाता है तथा वह दुखी होती है, उस समय श्रीहरि अवतार लेकर उसका दुःख दूर करते हैं। अतः इस समय भी श्री नारायणजी ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया है। वे ब्रज में रहकर अपनी लीलाएँ कर रहे हैं।" देवताओं के मुख से ऐसे वचन सुनकर इन्द्र अपने मन में बहुत पछताने लगा। उसे निश्चय हो गया कि श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य किसी मनुष्य में इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती, जो सात दिन तक गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाकर ब्रजमण्डल की रक्षा करता रहे।

हे राजन् ! मेघों के हट जाने पर जब वर्षा बन्द हो गई तथा धूप निकल आई, तब सब ब्रजवासियों ने श्री कृष्णचन्द्रजी से कहा—"हे मनमोहन ! मेघ भाग गये, सो अब आप पर्वत को अपनी उँगली से उतारकर नीचे रख दीजिए।" यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पर्वत को उतारकर उसी स्थान पर रख दिया। उस समय देवताओं ने आकाश में आकर उन पर पुष्प-वर्षा की, अप्सराओं ने नृत्य दिखाया। गन्धर्वों ने गीत गाये तथा ऋषियों ने जय-जयकार किया। यशोदाजी श्री श्यामसुन्दर को गोद में उठाकर बारम्बार मुख चूमने लगीं तथा उनके हाथ और उँगलियों को चटकाती हुई रो-रोकर इस प्रकार पूछने लगीं—"हे बेटा ! सात दिन तक पर्वत उठाये रहने से तेरा हाथ दुख उठा होगा ?" तब श्री श्यामजी ने यह उत्तर दिया—"हे मैया ! गोवर्द्धन पर्वत तो तुम सब लोगों की रक्षा करने के लिए अपने आप ऊपर उठ रहा था। मैंने तो उँगली का थोड़ा-सा सहारा लगाया था। इसलिए मेरे हाथ में दर्द नहीं हो रहा है।" तदुपरान्त श्रीदामा आदि ग्वालबालों ने उन्हें अपने कण्ठ से लगाते हुए कहा—"हे मोहन भैया ! तुमने अपने कोमल हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत कैसे उठाया ? हमें तो यह बड़ा अचरज मालूम होता है।" तब श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे भाइयो ! तुम लोग अपनी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी लाठी लगाकर पर्वत को उठाये हुए थे, इसलिए मुझे तो उसका बोझ कुछ लगा ही नहीं।" अस्तु, उसी दिन से श्री कृष्णचन्द्रजी का नाम 'गिरिधारी' पड़ गया। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दर ने सब लोगों को सुनाकर कहा—"हे भाइयो! गोवर्द्धन महाराज ने व्रज को डूबने से बचाया है, इसलिए अब सब लोग प्रसन्नतापूर्वक इनका पूजन करो।" यह सुनकर सब लोगों ने अत्यन्त आनन्दित हो, गोवर्द्धन पर्वत का फिर पूजन किया। उस समय श्री नन्दराय ने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया तथा सब लोगों ने मंगल-गीत गाये। फिर श्री श्यामसुन्दर, बलरामजी, नन्दजी तथा अन्य सभी गोपी-ग्वाल प्रसन्नतापूर्वक लौटकर अपने घर चले आये। वृन्दावन में आकर सब लोगों ने अत्यन्त आनन्द मनाया तथा श्री कृष्णचन्द्र का जय-जयकार किया। इस प्रकार आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्री बाँकेविहारी ने इन्द्र का मान घटाकर व्रजवासियों की रक्षा की तथा गोवर्द्धन पर्वत की महिमा बढ़ाई।"

छब्बीसवाँ अध्याय

व्रजवासियों द्वारा श्री कृष्ण-स्तुति

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब श्री श्यामसुन्दरजी ने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर अपनी महिमा प्रकट की, उस समय सब गोपी-ग्वाल आश्चर्यचकित हो, परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि जिस प्रकार हाथी कमल के फूल को उठा लेता है, उसी प्रकार नन्दनन्दन ने गोवर्द्धन पर्वत को उठा लिया। यह मनुष्य जैसा काम नहीं है। आठ वर्ष की अवस्थावाले श्री कृष्णचन्द्र इतने भारी पर्वत को सात दिन तक अपनी उँगली पर उठाये खड़े रहे, इससे ये श्री नारायणजी के अवतार प्रतीत होते हैं। इन्होंने महाप्रलय के समान बरसनेवाले जल से हम व्रजवासियों के प्राण बचाये हैं, सो हम इन्हें नन्दजी का पुत्र किस प्रकार कहें? प्रत्येक बालक अपने माता-पिता जैसा उत्पन्न होता है, सो नन्द-यशोदा में ऐसा पराक्रम नहीं कि वे कृष्णचन्द्र जैसे प्रतापी पुत्र को जन्म देते। इससे यह मालूम होता है कि यशोदा से किसी देवता अथवा दैत्य ने भोग किया होगा, जिसके कारण उसके गर्भ से ऐसे प्रतापी ने जन्म लिया है। यह बालक नन्दजी के वीर्य से उत्पन्न प्रतीत नहीं होता। ऐसा सोचकर उपनन्द आदि सभी ग्वालबाल एकत्रित होकर नन्दजी के पास जा पहुँचे। तदुपरान्त जो उनमें बड़े-बूढ़े थे, उन्होंने सर्वप्रथम नन्द-यशोदा तथा कृष्ण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्रजी की अत्यन्त प्रशंसा की, फिर इस प्रकार कहा—"हे नन्दराय! श्री नारायणजी की कृपा से श्यामसुन्दर सदैव अमर बने रहें। ये विपत्ति के समय हम सब लोगों की रक्षा करते हैं। परन्तु हे नन्दजी! हम लोगों को ये तुम्हारे पुत्र मालूम नहीं होते, क्योंकि जब यह बहुत छोटे थे, तब भी उन्होंने पूतना नामक राक्षसी को मार डाला था। इन्होंने एक वर्ष की आयु में तृणावर्त राक्षस को मारा तथा जब यशोदाजी ने इन्हें ऊखल में बाँधा, उस समय इन्होंने यमलार्जुन नामक दोनों वृक्षों को उखाड़ दिया। वत्सासुर, बकासुर तथा अघासुर नामक राक्षसों को मार कर, कालीनाग को यमुनाजी से बाहर निकाला, फिर प्रलम्ब तथा धेनुक राक्षसों को मारकर व्रजवासियों को अग्नि में भस्म होने से बचाया। इन्होंने इतने बड़े पर्वत गोवर्द्धन को कुकुरमुत्ते के समान अपनी उँगली पर उठाकर रख लिया तथा प्रलयकाल के जल से हम लोगों की रक्षा करके इन्द्र का अभिमान नष्ट किया। ये सब आश्चर्य की बातें देखकर, हमें यह विश्वास नहीं होता कि श्री कृष्णचन्द्र तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न हुए हैं। अतः तुम हमें यह सत्य-सत्य बतलाओ कि यशोदा ने किस राक्षस अथवा दैत्य के वीर्य से इन्हें उत्पन्न किया है? यदि तुम ठीक-ठीक नहीं बताओगे तो हम तुम्हें जाति से बाहर कर देंगे।"

हे राजन्! अपने जाति-भाइयों के ऐसे वचन सुनकर नन्द तथा यशोदा ने अपने मन में घबराते हुए यह उत्तर दिया—"हे भाइयो! श्री कृष्ण हमारा पुत्र है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु जो हाल गर्गजी ने बताया था, उसमें से एक बात हमने तुमसे छिपाई थी, उसे आज सुन लो। कृष्णचन्द्र का नाम रखते समय गर्गजी ने यह कहा था कि तुम इन्हें अपने द्वारा उत्पन्न किया हुआ मत समझना। ये परब्रह्म प्रभु हैं। तुम्हारे पूर्व जन्म के तप के कारण इन्होंने तुम्हारे घर में अवतार लिया है। ये प्रतिदिन तुम्हें अपनी लीलाएँ दिखाएँगे। अतः अब जो बातें हमें अपनी आँखों से दीखती हैं, उन्हें देखकर हमें भी यह विश्वास होता है कि श्यामसुन्दर वास्तव में श्रीहरि के अवतार हैं। क्योंकि इन्होंने जैसे कार्य किये हैं, वे किसी मनुष्य द्वारा होने सम्भव नहीं हैं। हे भाइयो! गर्गजी ने यह भी कहा था कि एक बार इन्होंने वसुदेवजी के यहाँ जन्म लिया था सो इनका नाम 'वासुदेव' भी होगा। ये गोपी-ग्वालों का दुःख दूर करेंगे तथा जो व्यक्ति इनके चरणों में ध्यान लगायेगा, वह मुक्ति-पदार्थ को प्राप्त करेगा। इन्होंने पिछले युगों में जब अवतार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिया था, उस समय इनके शरीर का रंग श्वेत तथा लाल था, परन्तु इस युग में ये श्यामल शरीर धारण करके उत्पन्न हुए हैं।" हे परीक्षित! जब व्रजवासियों ने नन्द-यशोदा के मुख से ऐसे वचन सुने, तो उनका सन्देह दूर हो गया। तब तो सब लोग श्री कृष्णचन्द्रजी को नारायणजी का अवतार जानकर उनकी भक्ति तथा पूजा करते हुए नन्द-यशोदा के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। इससे पूर्व ग्वालबालों के बालक श्री कृष्णचन्द्रजी के सम्बन्ध में जो बातें कहते थे उन पर कोई विश्वास नहीं करता था, परन्तु अब सब लोग उन बातों को सत्य मानने लगे। हे परीक्षित! जो मनुष्य श्री कृष्णचन्द्रजी के लीला-चरित्रों को सुनते हैं तथा उनके चरणों में प्रीति रखते हैं, उन्हें निस्संदेह मुक्ति-पद की प्राप्ति होती है।"

सत्ताईसवाँ अध्याय

इन्द्र का श्री कृष्णचन्द्रजी की शरण में आना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! श्री कृष्णचन्द्रजी से शत्रुता करके इन्द्र ने अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर इस प्रकार कहा कि मुझसे बड़ी भूल हुई, जो मैंने परब्रह्म प्रभु को मनुष्य जानकर उनसे शत्रुता की। अब मुझे उनकी शरण में जाकर अपना अपराध क्षमा कराना चाहिए, जिससे मेरा कल्याण हो। यह सोचकर इन्द्र ऋषि-मुनियों तथा देवताओं को साथ ले, ऐरावत हाथी पर बैठ, कामधेनु गौ को आगे करके, अपना अपराध क्षमा कराने के लिए वृन्दावन को चला। वन में गौ चराते समय अन्तर्यामी श्री श्यामसुन्दरजी ने जब यह जाना कि इन्द्र अपना अपराध क्षमा कराने के लिए देवताओं-सहित हमारे पास आ रहा है, उस समय वे ग्वालबालों से अलग होकर वन में एक ओर जा बैठे। जब इन्द्र ने दूर से ही वहाँ पहुँचकर श्री श्यामसुन्दर को बैठे हुए देखा तो वह ऐरावत हाथी से उतर, नंगे पाँवों, देवताओं तथा ऋषि-मुनियों को साथ ले, कामधेनु गौ को आगे कर, हाथ जोड़े, गले में दुपट्टा डाले तथा दाँतों में तिनका दबाये हुए, श्री कृष्णजी के पास पहुँच, थरथर काँपता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा। फिर बड़ी अधीनता से प्रार्थना करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे दीनबन्धु परब्रह्म, आदिनिरङ्कार प्रभु! आप मेरी सहस्रों दण्डवत् स्वीकार कीजिए। हे स्वामी! मैंने अपनी मूर्खतावश आपको साधारण मनुष्य समझकर परीक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेनी चाही थी, सो मैंने अपनी करनी का फल प्राप्त किया। जिस प्रकार अज्ञानी बालक शीशे में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उसे पकड़ना चाहता है, तब जो हाल उसका होता है, वही हाल आपके भेद को न जाननेवाले का होता है। जब ब्रह्मा, शिव आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भी आपके भेद को नहीं जान पाते हैं, तब मेरी क्या सामर्थ्य है, जो मैं आपके भेद को पाता? हे प्रभो! मैंने अपने राज्य तथा धन के अहङ्कार में भरकर व्रजवासियों के प्राण लेने के निमित्त महाप्रलय के पानी को बरसाया था, परन्तु आपने गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाकर मेरा वह गर्व नष्ट कर दिया। मैं अपने कर्तव्य पर बहुत लज्जित हूँ। हे नाथ! मैं अब अपना अपराध क्षमा कराने के लिए कामधेनु गौ के पीछे-पीछे चलकर आपकी शरण में आया हूँ, सो आप मुझ अज्ञानी का अपराध क्षमा कर दें। आप सबके स्वामी तथा गुरु हैं। आपसे बड़ा कोई नहीं है। आप सम्पूर्ण सृष्टि के पिता हैं। आपही सबकी उत्पत्ति तथा पालन करते हैं। ब्रह्मा एवं शिव आदि देवता आपके ही द्वारा प्रदान की गई प्रशंसा को प्राप्त कर, अपने हृदय में आपके चरण-कमलों का ध्यान धरते हैं। लक्ष्मीजी आपके चरणों की दासी हैं। आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए तथा अपने भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए अपनी इच्छानुसार अवतार धारणकर, दुष्टों का संहार करते हैं। जब-जब पृथ्वी पर पापियों तथा अधर्मियों का बोझ बढ़ जाता है, तब-तब आप सगुण अवतार ग्रहण करते हैं। आपकी कृपा प्राप्त करने के कारण ही मैं देवलोक का स्वामी हुआ हूँ। जब मैं भी आपके भेद को नहीं जानता, तब और किसी में क्या सामर्थ्य है जो आपको पहिचान सके। हे दीनदयालु! मेरा अपराध बड़ा दण्ड देने योग्य है, परन्तु आप ऐसे कृपालु हैं कि जो व्यक्ति आपकी शरण में आता है, आप उसे दया करके क्षमा कर देते हैं। मुझे तो इस अपराध ने भी जप-तप का फल दिया है, जो मैं इसके कारण आपके श्री चरणों के दर्शन प्राप्त कर सका हूँ। हे नाथ! आप मेरा अपराध क्षमा करके मेरे ऊपर दयालु हों।"

हे परीक्षित! इस प्रकार विनय करके जब इन्द्र नतमस्तक हो खड़ा हुआ, उस समय कामधेनु गौ ने श्री मुरलीमनोहर से इस प्रकार कहा—"हे कमलनयन श्यामजी! मैं ब्रह्मा द्वारा भेजी हुई आपके पास आई हूँ। बड़े लोग छोटों का अपराध सदा से क्षमा करते आये हैं, सो आप कृपा करके इन्द्र का अपराध भी क्षमा कर दीजिए। इस समय यह आपकी शरण में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आया है। हे दीनानाथ! तीनों लोक में किसी प्राणी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो कोई आपके भेद को पा सके। आप गौ तथा अन्य सब जीवों के स्वामी हैं, इसलिए मैं आपको अपने दूध से स्नान कराने के लिए आई हूँ। ऐरावत हाथी भी अपने सूँड़ में आकाश-गंङ्गा का जल भरकर, आपको स्नान कराने के लिए आया है। यदि आप आज्ञा दें तो हम स्नान करा दें।"

हे परीक्षित! जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने इस प्रकार की स्तुति सुनी, तब उन्होंने दयालु होकर इन्द्र से इस प्रकार कहा—"हे इन्द्र! तू कामधेनु गौ को लेकर हमारी शरण में आया है, सो हमने तेरा अपराध क्षमा किया। सुन, अभिमान करने से धर्म नष्ट होकर अज्ञान की वृद्धि होती है, उस समय दुःख के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता। संसारी मनुष्य तो थोड़ा साधन पाकर ही स्वयं को भूल जाते हैं, फिर तेरे पास तो अपार सम्पत्ति है। उसके मद में यदि तू ऐसी भूल कर बैठा तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मैंने कृपा करके तेरे राज्य तथा धन का गर्व नष्ट करने के लिए ही तेरा पूजन बन्द कराकर गोवर्द्धन पर्वत को पुजवाया था। मैं जिसके ऊपर अपनी कृपा करता हूँ, उसका अहंकार नष्ट कर देता हूँ।" इतना कहकर श्री मुरली-मनोहर ने इन्द्र को भय से व्याकुल देख, अपने चरणों से उठाकर हृदय से लगा लिया, उस समय इन्द्र अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री बाँकेविहारी की विविध प्रकार से स्तुति करता हुआ बोला—"हे प्रभो! आपने मुझ दीन को अपनाकर अत्यन्त कृपा की है। आज आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।"

हे राजन्! इसके उपरान्त कामधेनु गौ ने अपने दूध से तथा ऐरावत हाथी ने आकाश-गङ्गा के जल से श्री मुरलीमनोहर को स्नान कराया। देवराज इन्द्र ने उनके चरणों को धोकर चरणामृत का पान किया तथा धूप, दीप, नैवेद्य आदि से विधिपूर्वक पूजन किया। तदुपरान्त कामधेनु गौ ने श्री कृष्णचन्द्रको 'गोविन्द' नाम से पुकारकर, उन्हें तीनों लोक तथा चौदहों भुवनों का स्वामी कहा। देवताओं ने पुष्प बरसाये तथा नारद आदि ऋषि-मुनियों ने स्तुति की। अप्सराओं ने अपने-अपने विमान पर बैठकर नृत्य दिखलाया तथा गन्धर्वों ने गीत गाये। उस समय यमुना का जल भी प्रसन्नता में भरकर हिलोरें ले उठा। इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त जब इन्द्र हाथ जोड़कर सामने खड़ा हुआ, उस समय श्री बाँकेविहारी ने उससे कहा—"हे इन्द्र! भविष्य में तुम मेरी लीलाओं तथा कार्यों में कभी अपना दखल मत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देना। अब तुम कामधेनु गौ के साथ अपने लोक को जाओ।" यह सुनकर इन्द्र आदि सब देवता तथा ऋषि-मुनि श्री नटवरनागर को दण्डवत् कर, कामधेनु के साथ देवलोक को चले गये। उन्हें बिदा करने के उपरान्त श्री गोविन्दजी महाराज फिर अपने ग्वालबालों के बीच में आ पहुँचे। जब सन्ध्या हुई, तब गोप-ग्वालों एवं गौ-बछड़ों को साथ ले, मुरली बजाते हुए घर आये। उस समय गोपियों ने उनके दर्शन पाकर अपने नेत्रों को शीतल किया। हे परीक्षित! श्री गोविन्दजी के अभिषेक की कथा को जो सुनता है, उसे चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का वरुणलोक जाने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! कार्तिक शुक्ला दशमी को नन्द-रायजी ने सन्ध्या-वन्दन करके एकादशी का व्रत रक्खा। दिनभर तो पूजन आदि में व्यतीत किया और रात्रि को जागरण किया। दूसरे दिन द्वादशी केवल एक घड़ी थी, अतः द्वादशी में पारण करना आवश्यक जानकर, वे एक प्रहर रात शेष रहने पर उठ बैठे तथा अकेले ही यमुना-स्नान करने को चल दिए। जिस समय वे यमुनाजी में स्नान करने के लिए घुसे, उस समय जल की रक्षा करनेवालों ने वरुण देवता के पास जाकर यह सूचना दी कि हे स्वामी! इस समय एक मनुष्य यमुना-जल में स्नान कर रहा है। उस समय वरुण देवता ने उन्हें पकड़ लाने की आज्ञा दे दी। उस आज्ञा को पाकर वरुण देवता के सेवक नन्दजी को नागपाश में बाँधकर अपने स्वामी के पास ले चले। उस समय नन्दजी ने श्याम-बलराम को बहुत पुकारा, परन्तु न तो उनकी आवाज ही वहाँ तक पहुँची और न उन सेवकों ने ही उस पर कोई ध्यान दिया। अस्तु, जब वे वरुण देवता के पास पहुँचे तब वरुण देवता नन्दजी का श्री त्रिलोकीनाथजी का पिता पहिचानकर अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा यह विचार किया कि श्री वैकुण्ठनाथ जब इन्हें लेने के लिए यहाँ आवेंगे तब मैं उनके दर्शन प्राप्त करके अपना जन्म सफल बनाऊँगा। यह सोचकर वरुण देवता ने नन्दजी को अपने महल में ले जाकर सम्मान-सहित ठहरा दिया तथा श्री मुरलीमनोहर के पधारने की आशा में एक अत्यन्त सुन्दर रत्नजटित सिंहासन बिछा रक्खा। उस समय वरुण देवता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की स्त्रियों ने नन्दजी की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—"हे नन्दरायजी! आपके बड़े भाग्य हैं जो भगवान् वैकुण्ठनाथ आपके पुत्र कहलाते हैं।" इस प्रकार वहाँ तो देव-स्त्रियाँ नन्दजी का आदर-सत्कार कर रही थीं। इधर जब बहुत देर बीतने पर भी नन्दजी स्नान करके घर वापस नहीं लौटे, उस समय यशोदाजी ने मन में अत्यन्त घबराकर ग्वालबालों को उनकी सुधि लेने के लिए यमुनातट पर भेजा। जब ग्वालों ने उन्हें वहाँ नहीं देखा, तब वे यमुना-तट पर रक्खे हुए नन्दजी के कपड़ों को उठाकर यशोदाजी के पास लौट आये। उस समय यशोदाजी अत्यन्त विलाप करती हुई कहने लगीं कि रात को स्नान करते समय कोई घड़ियाल आदि जल-जीव उन्हें निगल गया होगा। इस प्रकार जब यशोदाजी अत्यन्त व्याकुल हुईं तब सब गोप-ग्वाल नन्दजी को ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर घूमने लगे।

हे परीक्षित! गोप-ग्वाल के ढूँढ़ने पर भी जब नन्दजी का कोई पता न चला, तब यशोदा तथा रोहिणी आदि स्त्रियाँ अत्यन्त विलाप करके रोने लगीं। यह देखकर श्री मुरलीमनोहर ने यशोदाजी को धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे मैया! मैं नन्द बाबा को ढूँढ़कर ले आता हूँ, तू चिन्ता मत कर।" यह सुनकर यशोदा आदि को कुछ धैर्य हुआ। तब श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह पहिचाना कि वरुण देवता के सेवक नन्दजी को पकड़कर ले गये हैं और वहाँ वरुण देवता उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाये हुए मेरे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह जानकर श्री कृष्णचन्द्रजी वरुणलोक में जा पहुँचे। उस समय उनका मुख-कमल सहस्रों सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था। जब वरुण देवता ने श्री कृष्णचन्द्र को आते देखा, तब वह आगे बढ़कर मार्ग में पीताम्बर बिछाता हुआ श्रीश्यामसुन्दर को सम्मानपूर्वक अपने घर ले आया। फिर उनका विधिवत् पूजन कर चरणामृत ले, हाथ जोड़-कर स्तुति करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो आप तीनों लोकों के स्वामी ने यहाँ पधारकर मेरा घर पवित्र किया तथा मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। हे दीनानाथ! इसी लाभ को प्राप्त करने के लिए मैंने नन्दजी को अपने घर में ठहराये रक्खा है, अन्यथा पल भर में ही उन्हें उनके स्थान पर पहुँचा देता। हे स्वामी! हम लोग आपको तीनों लोकों का स्वामी जानकर, आपका पिता किसी को नहीं समझते हैं, इसीलिए मेरे सेवकों से यह अपराध अनजाने में हो गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यपि उन्होंने दण्ड पाने योग्य अपराध किया है, परन्तु मैंने इसलिए उनका गुण माना है कि उस अपराध के कारण मुझे आपके दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मिल गया। अब आप तथा नन्दजी मेरा दण्डवत् स्वीकार करें। हे त्रिलोकीनाथ! मुझसे जो अपराध हुआ, उसे आप क्षमा कर दीजिए; क्योंकि आप क्षमा के सागर हैं।" वरुण द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त वरुण की स्त्रियों ने श्री कृष्णचन्द्रजी को दण्डवत् करते हुए, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! नन्द-यशोदा तथा व्रजवासियों के बड़े भाग्य हैं, जिनके घर आप परब्रह्म प्रभु लीलाएँ किया करते हैं। व्रज तथा व्रजवासियों की प्रशंसा किसी प्रकार नहीं की जा सकती।"

हे परीक्षित! इस प्रकार विनय करने के उपरान्त वरुण देवता नन्दजी को श्री मुरलीमनोहर के पास ले आये। उस समय श्री कृष्णजी को वहाँ उपस्थित देखकर नन्दरायजी को जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब नन्दजी ने श्री गोविन्दजी की ऐसी महिमा देखी कि वरुण आदि देवता भी उनके चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करते हैं, तो वे मन में कहने लगे कि मेरे धन्य भाग्य हैं, जो श्री त्रिलोकीनाथजी ने मेरे घर अवतार लिया है। अस्तु, जब वरुण देवता ने श्रीहरि तथा नन्दजी को रत्न-मणि आदि की बहुत-सी भेंटें दीं, तब श्री कृष्णचन्द्रजी उनका अपराध क्षमा करके नन्दजी को साथ लेकर अपने स्थान पर लौट आये। सब गोप-ग्वालों ने अत्यन्त आनन्द मनाया। उस समय यशोदाजी ने नन्दजी से इस प्रकार कहा—"तुम मेरे मना करने पर भी रात के समय नहाने के लिए चले गये थे सो आज श्री नारायणजी ने ही तुम्हारे प्राण बचाये।" यह सुनकर नन्दजी ने यशोदाजी को उत्तर दिया—"अरी बाउली! मैं भगवान् वैकुण्ठ-नाथ का पिता हूँ, मुझे कोई भी दुःख नहीं पहुँचा सकता।" यह सुनकर यशोदा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। तत्पश्चात् नन्दजी ने ब्राह्मणों तथा याचकों को दान देकर अपने जाति-भाइयों को मिठाई बँटवाई। उस समय उपनन्द आदि गोपग्वाल नन्दजी के पास आकर इस प्रकार पूछने लगे कि तुम्हें पकड़कर कौन ले गया था? नन्दजी ने उन्हें बताया—"हे भाइयो! रात्रि को यमुनाजी में स्नान करते समय मुझे वरुण देवता के दूत पकड़कर ले गये थे। अतः जब श्री श्यामसुन्दर मुझे लेने के लिए वहाँ पहुँचे तो सब देवताओं ने उनका पूजन करके चरणोदक लिया। मेरे धन्य भाग्य हैं जो परब्रह्म प्रभु ने मेरे घर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवतार लिया है तथा उन्हीं के प्रताप से मुझे देवताओं के दर्शन प्राप्त हुए। हे भाइयो! गर्ग मुनि जो बात कह गये थे, वह मैंने वहाँ पहुँचकर अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा।" यह सुनकर सब व्रजवासी बोल उठे—"हे नन्दरायजी! हम लोग तो उसी दिन कन्हैयाजी को श्रीहरि का अवतार समझ गये थे, जिस दिन उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर इस व्रज की रक्षा की थी। यह हमारे-तुम्हारे पूर्वजन्मों के पुण्यों का ही फल है, जो त्रिलोकीनाथ ने यहाँ आकर अवतार ग्रहण किया है।" इतना कहकर सब व्रजवासी गोविन्दजी के पास पहुँच, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! अब तक हम लोग अपने अज्ञान के कारण, आपकी महिमा को नहीं पहिचानते थे तथा नन्दराय भी आपको अपना पुत्र करके मानते थे, परन्तु अब हमें विश्वास हुआ कि आप सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले तथा अपने भक्तों का दुःख दूर करनेवाले साक्षात् श्री त्रिलोकीनाथ हैं।" इस प्रकार स्तुति करने के उपरान्त सब लोगों ने अपने मन में यह विचार किया कि जिस प्रकार श्री श्यामसुन्दर ने अपने पिता को वरुणलोक दिखाया, उसी प्रकार यदि ये हमें वैकुण्ठलोक दिखाते तो बहुत अच्छा रहता। जब अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी ने उनके मन की ऐसी अभिलाषा देखी तो रात्रि को जब सब लोग सो गये, उस समय उन्होंने अपनी माया से सब लोगों को दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी। तब सब लोगों को वैकुण्ठलोक का इस रूप में दर्शन हुआ कि वहाँ की सम्पूर्ण पृथ्वी स्वर्ण से निर्मित है तथा मणि-रत्नादिक के भवन बने हुए हैं। वन, उपवन, वापी, तड़ाग आदि सब अत्यन्त सुन्दर हैं। वहाँ के निवासी सभी स्त्री-पुरुष उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों को धारण किये चतुर्भुजी रूपवाले हैं। वहीं एक स्थान पर रत्नजटित सिंहासन रक्खा हुआ है, जिस पर श्री मुरलीमनोहर अपने चतुर्भुजी स्वरूप को धारण किये लक्ष्मीजी-सहित विराजमान हैं। उनके चारों ओर पार्षद खड़े हुए हैं। कहीं अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं, गन्धर्व गीत गा रहे हैं तथा तैंतीस करोड़ देवता उनके सम्मुख खड़े हुए हाथ जोड़कर स्तुति कर रहे हैं।

हे परीक्षित! इस आनन्द को देखकर जब व्रजवासियों ने अपने प्रिय श्री श्यामसुन्दर के निकट जाने की इच्छा प्रकट की, तब किसी ने उन्हें उनके पास जाने नहीं दिया। उस समय वे सब अपने मन में विचार करने लगे कि जो मुरलीमनोहर हम लोगों के बीच दिन-रात उठते-बैठते तथा खाते-पीते हैं, यहाँ उनके पास तक हमें कोई जाने भी नहीं देता, इस वैकुण्ठ से तो वृन्दावन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही अधिक उत्तम स्थान है; जहाँ श्री मनमोहन प्यारे हमारे बीच में तो रहते हैं। हे परीक्षित! यह सोचकर जब सब व्रजवासी उस स्वप्न में श्री कृष्णजी का ध्यान धरने लगे, उसी समय उनकी नींद खुल गई और सबेरा हो गया। तब सब व्रजवासी श्री कृष्णजी के समीप आ उनके चरणों में गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! आपकी महिमा अपरम्पार है। हम लोगों में इतनी शक्ति नहीं है, जो हम आपकी प्रशंसा कर सकें। आज हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि आप पूर्णब्रह्म हैं तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने इस रूप में जन्म लिया है।" व्रजवासियों के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने उनके ऊपर अपनी ऐसी माया फैला दी, जिसके कारण वे इस ज्ञान को भूल गये। तब वे सब बातों को स्वप्न के समान समझकर अपने-अपने घर को लौट आये।

हे राजन्! श्री कृष्णचन्द्रजी की माया से सब गोपों को यह ज्ञान भूल गया कि श्री मुरलीमनोहर नारायणजी के अवतार हैं तथा नन्दराय ने भी वरुणलोक में जाने का हाल स्वप्न के समान समझकर श्री कृष्णजी को अपना पुत्र करके माना। इस प्रकार श्री कृष्णजी अपने विचित्र चरित्रों द्वारा व्रजवासियों को भाँति भाँति से सुख देते थे।

चौपाई—लीला नित्य करें सुखदाई। नन्दनंदन श्री कृष्ण कन्हाई॥
गोपग्वाल सब बलि-बलि जावैं। नन्द यशोदा कण्ठ लगावैं॥
शिव सनकादि भेद नहिं पावैं। सो प्रभु व्रज में नृत्य दिखावैं॥
करें अपार चरित सुखदाता। मनभावन सबके दोउ भ्राता॥

हे परीक्षित! जब अन्तर्यामी श्री मुरलीमनोहरजी ने गोपियों का सच्चा प्रेम देखा, तब श्रीदामा आदि सब ग्वालबालों से इस प्रकार कहा कि भाई! सब व्रजबालाएँ सोलह शृङ्गार करके, वृन्दावन के मार्ग से मथुरा में दूध-दही बेचने जाया करती हैं, अतः हम लोगों को उन्हें वन में रोककर गोरस का दान लेना चाहिए। श्री श्यामसुन्दर की यह बात सब ग्वालबालों को बहुत पसन्द आई, तब एक दिन श्री कृष्णचन्द्रजी श्रीदामा आदि पाँच सहस्र ग्वाल-सखाओं को साथ लेकर, वन में पहुँच, वृक्षों की ओट में छिपकर खड़े हो गये। उसी समय व्रजबालाएँ सोलहों शृङ्गार किए, दधि-माखन की मटुकी सिर पर धरे, उधर से आ निकलीं। तब नन्दलालजी ने उन्हें अपने सखाओं-सहित चारों ओर से घेर लिया। फिर उनसे इस प्रकार कहने लगे—"हे गोपियो!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम लोग प्रतिदिन गोरस बेचने के लिए इस मार्ग से जाती हो, अतः तुम जब हमारा दान दोगी, तभी यहाँ से जाने पाओगी।" यह सुनकर गोपियों ने उत्तर दिया—"हे नन्दलाल! दान (कर) लेना राजाओं का धर्म है। हम तुम तो दोनों ही कंस की प्रजा हैं, सो तुम हमसे किस प्रकार दण्ड माँगते हो? तुम्हारे पिता नन्दजी ने तो आज तक कभी ऐसी बात नहीं कही; तब तुम्हें क्या हो गया है। कल तक तुम दधि-माखन चुराकर खाया करते थे और जब कोई पकड़ता था, तब चुपचाप भाग जाते थे। अब आज वन में हम स्त्रियों को सब ओर से घेरकर तुम लूटते हो, सो यह अच्छी बात नहीं है।" नन्दलालजी ने कहा—"हे गोपियो! तुमने बचपन में हमें बहुत खिझाया था, अब हम सयाने हुए; सो बिना दण्ड लिये, नहीं जाने देंगे। हम नन्द बाबा की शपथ खाकर कहते हैं कि तुम हमें दण्ड दिये बिना यहाँ से नहीं जा सकती हो।" इस पर गोपियाँ बोलीं—"हे कृष्ण! यदि तुम्हारे मन में दूध-दही खाने की इच्छा हो तो हमसे थोड़ा-बहुत वैसे ही ले लो, परन्तु हम दण्ड नहीं देंगी। तुम्हें छोटे मुँह से ऐसी बड़ी बात नहीं कहनी चाहिए। यदि हम राजा कंस से यह बात कह दें तो वह तुम्हें पकड़कर भारी दण्ड देगा। हम कौन लौंग-इलायची ले जा रही हैं जो तुम्हें दण्ड दें?" श्री कृष्णजी ने कहा—"हे गोपियो! तुम हमें राजा कंस का नाम लेकर डराती हो, परन्तु हम उसे कुछ नहीं समझते हैं। अब या तो तुम सीधी तरह से दण्ड दे दो, अन्यथा हम तुम्हारे सब गोरस को छीन लेंगे। फिर तुम भले ही रोती हुई यशोदा मैया के पास जा पहुँचना। तुमने बहुत दिनों तक चोरी करके हमारा दण्ड बचाया है, सो आज सब दिनों की कसर निकाल ली जायगी।" यह सुनकर गोपियों ने उत्तर दिया—"हे श्यामसुन्दर! तुम्हारे बड़ों ने जो काम नहीं किए, उन्हें अब तुम करने लगोगे तो हमारा यहाँ निर्वाह किस प्रकार होगा?" श्री मनमोहन ने उत्तर दिया—"हे गोपियो! हमें तुम्हारी इस धमकी का भय नहीं है, यदि तुम वृन्दावन छोड़कर चली जाओ तो इसमें हमारा कोई नुकसान नहीं है; परन्तु हम अपना दण्ड नहीं छोड़ेंगे।"

हे राजन्! इस प्रकार वे व्रजबालाएँ ऊपर से तो झगड़ा कर रही थीं, परन्तु मन ही मन श्री श्यामसुन्दरजी की छवि देखकर प्रसन्न होती थीं। अतः जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने उनका सब गोरस छीनकर ग्वालबालों-सहित खा लिया तथा जो बचा उसे लुढ़काकर बर्तनों को फोड़ डाला और गोपियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के वस्त्र फाड़ दिये, उस समय सब गोपियाँ यशोदाजी के पास पहुँचकर, उन्हें अपने फटे हुए वस्त्र दिखाकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे नन्दरानी! तुमने अपने पुत्र को अच्छा उपाय सिखाया है, जो वे सब ग्वालबालों को साथ ले, वन में हम लोगों को रोककर गोरस का दण्ड माँगते हैं। जब हमने नई बात समझकर दण्ड नहीं दिया तब उन्होंने हमारा सब गोरस छीनकर वस्त्रों को फाड़ डाला। तुम्हारे वंश में आज तक तो कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने कभी गोरस का दण्ड लिया हो।" ग्वालिनों के ऐसे वचन सुनकर यशोदाजी ने उत्तर दिया—"हे गोपियो! मैं तुम्हारे मन की सब बात जानती हूँ, तुम उसे पाप की दृष्टि से देखती हो, इसीलिए उसका पीछा नहीं छोड़तीं। तुम अपने हाथों से अपने वस्त्र फाड़कर, मेरे पास झूठा उलाहना देने के लिए चली आई हो।" तब गोपियों ने इस प्रकार कहा—"हे नन्दरानी! तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है, जो बिना समझे-बूझे हमें दोष लगा रही हो। दस गौ अधिक रखने से तुम कोई बड़ी नहीं बन गई हो। जाति में हम-तुम बराबर हैं। तुम्हारा बेटा ऐसा उत्पात मचाता रहेगा तो हम अपना गाँव छोड़कर चली जायँगी। तुम उसका हाल नहीं जानती, यदि वन में चलकर देखो तो तुम्हें कुछ जान पड़े। वह घर में तो बालक बना हुआ आता है, परन्तु वन में पहुँचकर तरुण हो जाता है।" यशोदाजी बोलीं—"तुम लोग गाँव छोड़ने की धमकी क्या दे रही हो? तुम्हारा जहाँ जी चाहे, वहाँ जाकर रहो, मैं तुम्हारे लिए अपने बेटे को घर से बाहर नहीं निकाल दूँगी। तुम सब नित्य आकर अटपटी बातें करती हो, मुझे तुम्हारा यह स्वभाव अच्छा नहीं लगता।" नन्दरानी के ऐसे वचन सुनकर सब गोपियाँ लज्जित होकर अपने-अपने घर को चली गईं। तदुपरान्त व्रज में चारों ओर यह चर्चा फैल गई कि नन्द के बेटे ने गोपियों के ऊपर गोरस का दण्ड लगाया है। यह समाचार सुनकर अन्य गोपियों को इच्छा हुई कि यदि हम लोग भी गोरस बेचने के लिए वन में होकर जावें, तो वन में प्राणप्यारे श्यामसुन्दर की छवि को देखकर नेत्रों को सुख पहुँचावें। यह विचारकर दूसरे दिन राधा आदि सात सहस्र गोपियाँ गोरस बेचने के लिए मथुरा की ओर चल दीं। श्री कृष्णचन्द्रजी तो अपने सखाओं-सहित वृक्षों पर छिपे बैठे ही थे, अतः जब वे पास आईं तो नीचे उतरकर उन्हें चारों ओर से घेरकर यह कहने लगे कि तुम लोग बिना दण्ड दिये आगे नहीं जाने पाओगी। उस समय श्री कृष्ण की बात सुनकर राधिकाजी ने हँसकर अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सखियों को सुनाकर यह कहा कि हे अली ! श्यामसुन्दर से यह पूछो कि हमारे पास क्या वस्तु है, जो हम तुम्हें दान में दें ? श्री राधिका प्यारी के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे गोपियो ! आज मैं तुम्हारे यौवन का दान लूँगा।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार कुछ देर तक तो गोपियाँ श्री श्यामसुन्दर से झगड़ा करती रहीं, तदुपरान्त श्रीहरि ने उनके ऊपर ऐसी माया फैलायी कि वे सब काम के वशीभूत हो मतवाली बन गईं। उस समय वे अपने नेत्र बन्द-कर, श्री श्यामसुन्दर का ध्यान धरती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे प्राण-प्यारे ! हम तुम्हारे चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित करती हैं, तुम्हें जिस वस्तु की इच्छा हो, उसे ले लो। हे मनमोहन ! यह सब धन तुम्हारा ही है।" जब श्री कृष्णजी ने गोपियों की ऐसी दशा देखी, तब उन्होंने उन सबकी इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने अनेक स्वरूप ऐसे धारण किये, जो किसी को दिखाई नहीं देते थे। तदुपरान्त उन्होंने सब व्रजबालाओं से ध्यान में भेंट करके उनका कामरूपी रोग दूर कर दिया। तत्पश्चात् सब गोपियाँ हँस-कर इस प्रकार कहने लगीं—"हे चितचोर ! तुम हमारे यौवन का दान ले चुके। अतः अब यदि आज्ञा दो तो हम लोग अपने-अपने स्थान को जावें ?" श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे गोपियो ! तुम्हारे यौवन का दान तो मिला, अब तुम गोरस का दण्ड और चुका दो, फिर अपने स्थान को चली जाना।" यह सुनकर सब व्रजबालाओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री कृष्णजी तथा ग्वालबालों को अपना सब दूध-दही आदि खिला दिया, परन्तु श्री श्यामसुन्दर की माया से उनके सभी बर्तन फिर ज्यों के त्यों भर गये।

हे परीक्षित ! जिस समय गोपियाँ ग्वालबालों-सहित श्री कृष्णचन्द्रजी को भोजन करा रही थीं, उस समय सब देवता आकाश में आकर, अपने-अपने विमानों पर बैठे उन गोपियों की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कह रहे थे कि इन व्रजबालाओं के धन्य भाग्य हैं जिनसे श्री वैकुण्ठनाथजी गोरस माँग-माँग कर खा रहे हैं। अस्तु, गोरस खाते समय श्री श्यामसुन्दर ने यह कहा कि मैंने सबके गोरस का स्वाद तो लिया, परन्तु अभी तक राधाप्यारी का दही नहीं चखा है। यह सुनकर राधिका रानी हँसती हुई अपना दही अपने ही हाथों से मुरलीमनोहर को खिलाने लगीं। उस समय श्री कृष्णजी ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि यह दही सबसे अधिक मीठा है। अस्तु, गोरस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाने के उपरान्त श्री श्यामसुन्दर अपनी तिरछी चितवन तथा मनोहर मूर्ति से गोपियों का चित्त चुराते हुए इस प्रकार कहने लगे–"हे गोपियो ! आज हम अपना दान लेकर तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अतः यह विश्वास दिलाते हैं कि अब घाट-वाट में तुमसे कोई रोक-टोक नहीं करेगा। अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ, क्योंकि अधिक देर हो जाने पर तुम्हारे घरवाले चिन्तित हो उठेंगे।" यह सुनकर सब गोपियों ने कहा–"हे कृष्णप्यारे ! दान माँगते समय हमने तुमसे कठोर वचन कहे थे, सो उसके लिए हम तुमसे क्षमा माँगती हैं। तुम हमारा अपराध अपने चित्त में न रखना। हे मनमोहन ! तुम्हारी माधुरी मूर्ति को देखे बिना हमें एक पल को भी चैन नहीं पड़ती है, सो हम किस तरह अपने घर को लौटकर जावें ? तुम्हारे स्नेह के बिना घर-परिवार आदि सब व्यर्थ हैं।" तब श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया–"हे प्यारी गोपियो ! मैं तुम्हारे प्रेम के कारण तुमसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं रहता हूँ। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ही मैं वैकुण्ठ छोड़कर अपनी इच्छा से तुम्हारे दुर्वचन सुनता हूँ। तुमने मुझे अपना हृदय देकर प्राप्त किया है। जब तुम अपना हृदय लौटा लोगी, तब मैं भी विलग हो जाऊँगा।" इतना कह-कर श्री मुरलीमनोहर सब गोप-ग्वालों को साथ ले, वन में दूसरी ओर चले गये। उस समय वे व्रजबालाएँ अपने घर न जाकर पागलों के समान वन के वृक्षों से इस प्रकार पूछने लगीं कि क्या तुम गोरस खरीदोगे ? कभी वे दूध के बदले बेचने के लिए श्री कृष्णचन्द्रजी का नाम लेकर पुकारती थीं।

चौपाई–तन-मन की सब सुरति भुलाई। बोलीं सब कहाँ गये कन्हाई ॥
किन्हैं दान दीजै यह जाय। को अब अपनी करै सहाय ?
जिनने लिन्हौं है चितचोर। कहाँ गये वे नन्दकिशोर ?
हे वन-विटप लेहु तुम दान। मनमोहन के होहु समान ॥

हे परीक्षित ! इस प्रकार अटपटी बातें कहती हुई सब गोपियाँ जैसे-तैसे अपने घर जा पहुँचीं। उनके हृदय तथा आँखों में आठों प्रहर श्री मुरली-मनोहर का स्वरूप बसा रहता था। उनकी दशा देखकर घरवाले बहुत प्रकार से समझाते थे, परन्तु वे किसी की बात नहीं मानती थीं।

चौपाई–सीख न मात-पिता की भावै। श्याम बिना कछु नाहिं सुहावै ॥
आठ पहर औ, चौंसठ घड़ी। मनमोहन के फन्दे पड़ी ॥
कुल की कान सबै बिसराई। जपैं दिवस निशि कृष्णकन्हाई ॥
औचक चितइ निहारैं पंथ। आवैं कान्ह हमारे कंथ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे राजन् ! श्री राधारानी लक्ष्मीजी की अवतार थीं, अतः श्री कृष्णचन्द्रजी उन पर अत्यन्त प्रीति रखते थे। वे भी श्री मनमोहन पर मोहित थीं। जब वे दूसरे दिन गोरस बेचने के लिए गाँव में गईं तो अपने मस्तक पर दही की मटुकी रक्खे हुए नन्दरायजी के घर के चारों ओर घूमती हुई सब लोगों से यह पूछने लगीं कि मेरे चित्त को चुरानेवाले श्यामसुन्दर कहाँ रहते हैं ? मैं उन्हें बड़ी दूर से ढूँढ़ने आई हूँ सो उनका घर इस गाँव में है या नहीं ? नन्दभवन कहाँ है, यह मुझे बता दो तथा नन्दकुमार के दर्शन करा दो। तदुपरान्त जब वे दही के बदले श्री श्यामसुन्दर का नाम बेचने के लिए पुकारने लगीं, उस समय उनकी प्रेम-मग्न दशा देखकर गोपियों ने इस प्रकार पूछा—"हे राधा ! तू क्या बेच रही है ?" राधा ने कहा—"मेरे सम्पूर्ण शरीर में श्री-श्यामसुन्दर की मोहिनी मूर्ति इस प्रकार बस रही है, जिस प्रकार मेंहदी के पत्तों में लाली छिपी रहती है, सो मैं उन्हीं श्यामसुन्दर को बेच रही हूँ।" यह सुनकर गोपियाँ बोलीं—"हे राधे ! तू तो औरों को ज्ञान सिखाती थी, सो आज तेरी यह क्या दशा हो गई है ? तुझे ऐसी निर्लज्जता धारण नहीं करनी चाहिए, अन्यथा गाँव की सभी स्त्रियाँ तुझे गँवारिन कहकर पुकारने लगेंगी। तेरे माता-पिता सुनेंगे तो वे तुझे मारेंगे। तू श्री श्यामसुन्दर जैसे स्वरूपवान् पुरुष को पाकर अपनी प्रीति प्रकट क्यों कर रही है ? हे आली ! तुम्हें इस प्रीतिरूपी रत्न को अपने मन में इस प्रकार छिपाकर रखना चाहिए, जैसे सर्प मणि को छिपाये रहता है।" तब राधिका ने उत्तर दिया—"हे आली ! तुम मुझे क्या समझाती हो ? मेरा मन मनमोहन ने चुरा लिया है। उसके स्थान पर वे स्वयं आ बैठे हैं। उनकी माधुरी मूर्ति को देखे बिना मुझे एक पल को भी चैन नहीं पड़ती। हाथ पर मेरा वश नहीं चलता, तब घूँघट कौन काढ़े ? अब तो यह बात सारे व्रज में फैल चुकी है कि मैं मनमोहन प्यारे के हाथ बिककर उनकी दासी हो गई हूँ।"

चौपाई—लोक लाज ना मोहिं सतावै। सखि पिय बिनु नहिं कछू सुहावै॥
मेरे मन में बसे मुरारी। मोहिं बतावो नहीं गँवारी॥
मैं चेरी वे मेरे स्वामी। घट-घटवासी अन्तर्यामी॥
अब चाहे जग होइ हँसाई। पर ना छूटे कृष्ण कन्हाई॥

"हे आली ! नन्दकिशोर के चरणों में मेरा चित्त ऐसा लगा है कि मेरी लोक-लाज सब छूट गई है। अब तो मेरे मन ने यह निश्चय कर लिया है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार दूध में पानी मिल जाता है, उसी प्रकार मैं मनमोहन प्यारे में मिलकर, संसार में अपना नाम श्यामा धराऊँगी। हे सखी! यदि तुमसे हो सके तो तुम मेरी भेंट श्यामसुन्दर प्यारे से करा दो, अन्यथा उनके विरह में मेरे प्राण निकल जायँगे।" गोपियों को इस प्रकार उत्तर देकर राधारानी फिर उच्च स्वर से पुकारने लगीं—"हे यशोदा के लाला! तुम्हारे वियोग का दुःख अब मुझसे और अधिक नहीं सहा जाता, सो तुम अपने दर्शन देकर दही का दान ले लो।"

हे परीक्षित! जब सखियों ने यह देखा कि राधा के रोम-रोम में श्री श्यामसुन्दर बसे हुए हैं, अतः हमारा समझाना उस पर कोई प्रभाव नहीं करता और इसका दुःख श्री कृष्णचन्द्रजी से भेंट किए बिना दूर न होगा, तब एक सखी ने श्री मुरलीमनोहर के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे नन्द-नन्दन! एक चन्द्रमा के समान गोरी सुन्दरी नारी अपने सिर पर दही की मटुकिया रक्खे, तुम्हारा नाम ले-लेकर चारों ओर पुकारती हुई तुम्हें ढूँढ़ने के लिए वंशीवट की ओर चली गई है, सो तुम शीघ्रतापूर्वक उसके पास पहुँच-कर अपनी अमृतमय दृष्टि द्वारा उसके हृदय की अग्नि को शीतल कर दो; अन्यथा वह तुम्हारे विरह में पागल होकर मर जायगी।" श्री कृष्णचन्द्रजी ने जब यह समाचार सुना तो वे अत्यन्त व्याकुल हो, उस सखी को बिदाकर, शीघ्रतापूर्वक वंशीवट पर जा पहुँचे और वहाँ राधा से भेंट करके उसकी इच्छा पूर्ण कर दी। जब राधारानी का चित्त ठिकाने पर आया, तब उन्होंने श्री कृष्णजी से इस प्रकार कहा—"हे चितचोर! उस दिन तुमने खिरक में गौ दुहकर मेरा हृदय ऐसा मोहित कर लिया है कि अब तुम्हें देखे बिना एक पल को भी चैन नहीं मिलती। गाँव के लोग तो मुझे तुम्हारे साथ बदनाम करते ही हैं, अतः अब मेरे मन में भी यह आता है कि मैं माता, पिता, कुल आदि की लाज छोड़कर तुम्हारे साथ प्रीति प्रकट करूँ। हे श्यामसुन्दर! मैंने यह प्रण कर लिया है कि अब मैं तुम्हारे ही चरण-कमलों की दासी बनकर तुम्हारे ही साथ अपना जीवन बिताऊँगी।" राधा प्यारी के ऐसे प्रेममय वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने हँसकर कहा—"हे प्यारी! हमारी-तुम्हारी पूर्वजन्म की प्रीति है, सो उसको इस प्रकार प्रकट नहीं करना चाहिए, कि जिसमें तुम्हारे माता-पिता की बदनामी हो और संसारी लोग तुम्हें भी नाम धरें। मैं अकेले में भेंट करके तुम्हारे मन की सब इच्छाएँ पूरी कर दिया करूँगा।" श्री श्यामसुन्दर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के ऐसे वचन सुनकर राधिकाजी प्रसन्न हो गईं। तब श्यामजी ने उनसे यह कहा कि हे राधा! अब बहुत देर हो गई सो तुम अपने घर को लौट जाओ। तुम अपनी पुरानी प्रीति को गुप्त रखकर, संसारी व्यवहार के अनुसार आचरण करो। इतना कहकर श्री श्यामजी ने राधिकाजी को हृदय से लगाकर बिदा किया।

हे राजन्! जिस समय राधिकाजी अपना मनोरथ प्राप्त करके घर को चली जा रही थीं, उस समय मार्ग में उसी सखी से उनकी भेंट हो गई जिसने श्री श्यामसुन्दर को राधिकाजी का हाल कह सुनाया था। जब उस सखी ने राधारानी के मुख पर प्रसन्नता देखी, तब यह अनुमान कर लिया कि अब यह अपनी मनोकामना पाकर लौट रही है। तब उसने राधाजी के पास जाकर इस प्रकार पूछा—"हे सखी! जिनके दर्शनों के लिए तू व्याकुल बनी घूम रही थी, वे नन्दलाल तुझे कहाँ मिले? अरी सलोनी! जिन श्यामसुन्दर को योगी, यती तथा ऋषि-मुनिजन यज्ञ, योग, तप आदि द्वारा ध्यान में भी प्राप्त नहीं कर पाते, उन्हें तूने अपने वश में किस प्रकार कर लिया है?" यह सुनकर राधिकाजी ने नाक-भौंह चढ़ाकर उत्तर दिया—"अरी गोपी! तू मुझे व्यर्थ बदनाम क्यों करती है। यदि कोई जाति-भाई इस बात को सुन लेगा तो फिर मेरा कहीं भी ठिकाना न रहेगा। तू जिस नन्दकुमार के लिए कह रही है, उसे तो मैंने आज तक कहीं नहीं देखा है।" राधिकाजी का यह चरित्र देखकर चतुर सखी हँसती हुई कह उठी—"अरी राधा! हम-तुम दोनों व्रज में ही रहती हैं, सो मुझसे तेरी यह चतुराई नहीं चलेगी। दो घड़ी पहिले तू गली-गली में मोहनप्यारे का नाम लेती हुई घूम रही थी और अब कहती है कि मैं उन्हें जानती भी नहीं? ऐसी चतुराई तूने कहाँ से सीख ली है? अरी! तू श्यामसुन्दर से मिलकर ऐसी चतुर कैसे बन गई? तू कुंजवन में मनमोहन प्यारे से भेंट करके चली आ रही है, फिर मुझसे उल्टी बातें क्यों कहती है? तेरी आँखें यह साफ-साफ बता रही हैं कि आज मनमोहन तुझ पर अच्छी तरह रीझे हैं।" इस प्रकार बहुत कुछ कहने पर भी जब राधारानी ने उससे श्यामसुन्दर के मिलने का हाल नहीं कहा, तब वह हँसकर कहने लगी—"हे राधे! तू मेरे सामने छोटी होकर भी ऐसा छल करती है, ठीक है? अब तू अपने घर जा। मैं किसी समय सच-झूठ सब प्रकट कर दूँगी।" इतना कहकर जब वह सखी चली गई तो राधारानी भी अपने घर लौट आईं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! जब कीर्ति ने राधा को देखा तो इस प्रकार पूछा—"हे राधा ! तू दही बेचने के बहाने घर से जाकर दिनभर कहाँ रहती है ? आज तेरा भाई यह कह रहा था कि तू नन्दलाल के प्रेम में पड़कर उनके पीछे-पीछे फिरा करती है। अरी ! क्या तुझे लाज नहीं आती कि सब गाँववाले श्यामसुन्दर के साथ तुझे बदनाम करते हैं ? तू ऐसा काम मत कर, जिसमें माता-पिता की भी बदनामी हो।" यह सुनकर राधिकाजी ने उत्तर दिया—"हे माता ! क्या तुम यह कहती हो कि मैं खेलने के लिए न जाऊँ ? मुझसे ये सब झूठी बातें नहीं सही जातीं। अन्य सभी गोपग्वालों की लड़कियाँ भी खेलने को जाती हैं, परन्तु उनके माता-पिता इस प्रकार की बातें कभी नहीं करते। फिर तू मुझ पर इतना क्रोध क्यों करती है ?" इस प्रकार की झूठी-सच्ची बातें करके राधारानी ने अपनी माता को प्रसन्न कर लिया तथा अपने मन का भेद किसी को नहीं बताया। अस्तु, उस सखी ने (जिसका हाल पहिले कहा है) ललिता आदि सब गोपियों के पास जाकर यह समाचार कहा कि आज राधा ने श्री कृष्णचन्द्र से भेंट करके अपनी इच्छा-पूरी कर ली है। जिस समय वह वंशीवट से अपना मनोरथ प्राप्त करके चली आ रही थी, उस समय उसके मुख पर प्रसन्नता देखकर मैंने उससे भेंट करने का हाल पूछा था। तब उसने मुझे यह उत्तर दिया था कि श्यामसुन्दर किसका नाम है और वे कहाँ रहते हैं, मैं इन बातों को नहीं जानती, इससे प्रतीत होता है कि उसकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण हुई है। उस गोपी की बात सुनकर ललिता आदि अन्य गोपियों ने उत्तर दिया—"हे सखी ! राधिका में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वह हमारे सामने भी इस प्रकार कर सके।" तब पहिली गोपी बोली—"हे आली ! अब राधा पहिले जैसी नहीं रही है। तुम जब उससे मिलोगी तो तुम्हें सब हाल मालूम हो जायगा। अब तो वह बड़े गुरु से विद्या पढ़कर किसी का विश्वास नहीं करती। एक के स्थान पर सौ-सौ सौगन्ध खाती है।"

हे परीक्षित ! उसकी बात सुनकर ललिता आदि सब सखियाँ इस सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने के लिए राधिकाजी के पास जा पहुँचीं। जब श्री राधाजी ने यह जाना कि ये मेरा भेद लेने के लिए आई हैं, तब उन्होंने चतुराई करके किसी का आदर नहीं किया तथा निष्ठुर बनकर कोई बातचीत भी नहीं की। यह देखकर ललिता आदि सखियाँ उनके पास बैठकर इधर-उधर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की बातें करने लगीं। फिर कुछ देर बाद एक सखी ने श्री राधा से कहा—"हे राधे! तुमने यह मौन-व्रत कब से धारण किया है, हमें भी इसका हाल बतलाओ। हम भी इस व्रत को धारण करना चाहती हैं, सो तुम यह बताओ कि यह किस गुरु का दिया हुआ मन्त्र है? अच्छा, रहने दो हम तुम्हीं को अपना गुरु माने लेती हैं, तुम हमें व्रत का उपदेश करो। अरी लाडिली! यह इतनी चतुराई तुमने कहाँ से सीखी है?" यह सुनकर राधा-रानी ने उत्तर दिया—"हे ललिता! मेरे-तुम्हारे बीच में कोई भेद नहीं है, जो मैं तुमसे कोई बात छिपाऊँ। मुझसे झूठी बात नहीं कही जाती, यह तो तुम जानती ही हो। कल मार्ग में आते समय इस सखी ने मुझसे यह कहा था कि तेरी भेंट मुरलीमनोहर से हुई है, परन्तु मैंने तो उन्हें आज तक कभी स्वप्न में भी नहीं देखा। इस तरह इसने मुझे व्यर्थ ही पाप लगाया। हे आली! मुझे यह हँसी अच्छी नहीं लगती, क्योंकि इसमें मेरी बदनामी होती है। बिना देखे हुए कोई भी बात मुँह से नहीं कहनी चाहिए। भला, इसने मुझे श्यामसुन्दर से भेंट करते हुए कब देखा था, सो इसने ऐसी बात कही? अभी कोई जाति-भाई ऐसी बात सुन ले तो मेरा कहीं ठिकाना ही नहीं रहेगा। हे आली! कोई पराया ऐसी बात कहे तो कुछ शोक न हो परन्तु तुम अपनी होते हुए भी ऐसी बातें करोगी तो क्रोध क्योंकर नहीं आवेगा? यही कारण है जो इस सखी के साथ तुम सबको आते देखकर मैं क्रोध करके बैठ गई थी और बोली नहीं थी।" राधिकाजी के ऐसे वचन सुनकर सब सखियाँ उनके मुँह की ओर देखने लगीं। तदुपरान्त ललिता ने इस प्रकार कहा—"हे राधे! इस सखी ने हमसे कुछ नहीं कहा। यदि यह कुछ कहती तो हम इससे झगड़ा करतीं। तेरी अलोनी देह पर कोई लोन क्या लगावे? तू तो बड़ी पतिव्रता है? भला तेरे श्यामसुन्दर को हमने कहाँ देखा होगा? बिना भाग्य के उनका दर्शन कभी नहीं मिलता। हमारा भाग्य तेरे समान कहाँ है, जो हम उनके दर्शन प्राप्त कर सकें?" यह सुनकर राधा ने उत्तर दिया—"हे आली! तुम झूठी बातें बना-बनाकर मुझसे झगड़ा क्यों करना चाहती हो? ऐसी हँसी अच्छी नहीं होती। मैं तो इसी सोच में दिन-रात व्याकुल बनी रहती हूँ।" तब ललिता बोली—"हे आली! श्यामसुन्दर जब कभी इधर आयेंगे तो हम उन्हें तुझको दिखाएँगी।" इतना कहकर सब सखियाँ उठकर खड़ी हो गईं। वे सब अपने मन में जीतने का गर्व लेकर आई थीं, परन्तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हारकर चल दीं। मार्ग में सब परस्पर इस प्रकार कहती जाती थीं कि अब राधा निडर हो गई है, परन्तु कभी तो वह हमारे पल्ले पड़ेगी ही? सब गोपियों के मन में यही बात बस गई कि राधा तथा कृष्ण प्रतिदिन मिलते हैं। सबके सामने यही एक चर्चा का विषय रह गया। अस्तु, जब बहुत पूछ-ताछ करने पर भी राधा ने कुछ नहीं बताया तो उन सबों ने आपस में यह सम्मत किया कि किसी समय राधा-मोहन को भेंट करते हुए पकड़ना चाहिए। जिससे राधा का झूठ बोलना सिद्ध हो सके।

हे परीक्षित! श्यामा-श्याम में ऐसी प्रीति बढ़ी कि उन्हें एक-दूसरे को देखे बिना पलभर को चैन नहीं पड़ती थी। दूसरे दिन श्री राधिकाजी ने मुरलीमनोहर का दर्शन प्राप्त करने की इच्छा से ललिता आदि सखियों के घर जाकर यह कहा कि हे आली! चलो यमुना-तट पर स्नान कर आवें। राधारानी के ऐसे वचन सुनकर सखियों ने उन्हें विशेष आदर-सहित अपने पास बैठाया। यह देखकर राधाजी ने पूछा—"क्या आज मैं तुम्हारे घर नयी आई हूँ, जो तुम ऐसा बर्ताव कर रही हो?" तब ललिता ने उत्तर दिया—"हे राधे! तुमने अपने गुरु के सिखाये अनुसार हमारे जाने पर जैसा मौन-मन्त्र साध लिया था, वह हमें नहीं आता। हम तो जैसा तुम्हारा सम्मान प्रतिदिन करती थीं, वैसा ही आज भी कर रही हैं।" यह सुनकर राधा ने हँसकर कहा—"ठीक है, आज तुम सबने मुझसे उस दिन का बदला चुका लिया।" इस प्रकार हास-विलास करने के उपरान्त राधिकाजी सब सखियों के साथ यमुना-तट पर जा पहुँचीं तथा श्री कृष्णचन्द्रजी के चरणों में ध्यान लगाकर स्नान करने लगीं। स्नान करने के उपरान्त जब वे जल से बाहर निकलीं तो यह देखा कि श्री बाँकेविहारी नटवर रूप बनाये, कदम्ब के वृक्ष के नीचे खड़े हुए बाँसुरी बजा रहे हैं। उन्हें देखते ही राधाजी सखियों की लाज छोड़कर प्रेमपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगीं। श्री कृष्णचन्द्रजी का दर्शन पाते ही वे चित्रलिखी-सी खड़ी रह गईं। उधर श्री मनमोहन भी प्यारीजू का रूप देखकर उस पर मोहित हो गये। उस समय ललिता आदि सखियाँ राधा से इस प्रकार कहने लगीं—"हे आली! कल जिन श्यामसुन्दर के लिए तू यों कह रही थी कि मैंने उन्हें स्वप्न में भी नहीं देखा है, उन्हीं को आज सामने खड़ा देखकर तूने टकटकी क्यों बाँध रक्खी है? आज तू इन्हें अच्छी तरह देख ले, जिससे यह मोहिनी मूर्ति कभी विस्मरण न हो जाय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तूझे दिखाने के लिए ही हमने इन बाँकेविहारी को यहाँ बुलवाया है। इन्हें खूब अच्छी तरह पहिचान लेना। ये सबके मनभावन हैं। आज हम अच्छे शकुन से चली थीं जो तुम्हारा काम बन गया। अब जब ब्रजराज को तुमने देख लिया तो तुम्हें हमसे दबना भी पड़ेगा।"

हे परीक्षित! सखियों के यह वचन सुनकर राधारानी अपने मन में पछताती हुई इस प्रकार कहने लगीं कि हाय, कल मैं अपनी सखियों के सामने मुकर गई थी, परन्तु आज अपने प्रियतम को देखते ही मेरी ऐसी दशा क्यों हो गई? अब तो सखियों ने मेरी चोरी पकड़ ली, सो मुझे इनके सामने बहुत लज्जित होना पड़ा। यह सोचकर राधाजी का मुख उदास हो गया। तब ललिता सखी ने उन्हें सम्बोधन करते हुए इस प्रकार कहा—"हे सखी! तू अपने मन में पछता मत। हाँ, यह बता कि श्यामसुन्दर के दर्शन तो हो गये, परन्तु अब तेरा घर चलने का भी विचार है अथवा नहीं?" यह सुनकर राधाजी अपने मन में कुछ सकुचाकर तथा श्री श्यामसुन्दर की मनोहर मूर्ति को हृदय में धारणकर सखियों के साथ घर को चल दीं। उस समय सखियों ने फिर कहा—"हे राधा प्यारी! तू अपनी चोरी पकड़ी गई जानकर, सोच मत कर। प्राणप्यारे मनमोहन का रूप ही ऐसा है कि इसे देखकर किसी भी ब्रजबाला का चित्त ठिकाने नहीं रहता। पूर्वजन्म के पुण्य के कारण तेरा बड़ा भाग्य है, जो श्री वैकुण्ठनाथ बाँकेविहारी तुझे इतना प्यार करते हैं। तूने श्री मुरलीमनोहर को अपने वश में कर लिया है।" सखियों के ऐसे वचन सुनकर राधारानी मन में तो अत्यन्त प्रसन्न हुईं, परन्तु लज्जा के कारण मुख से कुछ नहीं बोलीं। उस समय सखियाँ हँसकर फिर इस प्रकार कहने लगीं—"देखो, ऐसा जान पड़ता है कि राधा ने हम पर रिसाकर फिर मौनव्रत धारण कर लिया है।" यह सुनकर राधाजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"हे आली! श्यामसुन्दर का स्वरूप कैसा था? मैं तो उसे अच्छी तरह देख भी नहीं सकी? तुमने अपनी इन दो आँखों से उनका सम्पूर्ण शरीर कैसे देख लिया? मेरी दृष्टि तो उनकी भृकुटी पर ही गड़ी रह गई, फिर मैं उनके अन्य अङ्गों को किस प्रकार देख पाती?

चौपाई—मन में सोच यही अधिकाय। फिर नटवर को देखूँ जाय॥
नहिं पहिचान भई सखि पूरी। मनोभिलाषा रही अधूरी॥
अब मैं उन्हें कौन विधि पाऊँ। अपने उर की आस पुजाऊँ॥
गये कहाँ वे माखनचोर। क्यों लीन्हो मेरो मन चोर॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सुनकर सखियों ने कहा–"हे राधा ! तेरे धन्य भाग्य हैं, जो तू श्री त्रिलोकीनाथ से ऐसी प्रीति रखती है। संसार में तेरे समान भाग्यशाली अन्य कोई नहीं है। हे सखी ! तेरे माता-पिता धन्य हैं। तूने श्री श्याम-सुन्दर को पहिचान लिया है, जब कि हम सब अभी अचेत पड़ी हुई हैं। तेरे यौवन, स्वरूप, भाग्य तथा गुण सभी धन्य हैं। हम श्री जगदीश्वर से यही चाहती हैं कि मनमोहन प्यारे के साथ तेरी जोड़ी अचल बनी रहे।" इस प्रकार हँसती-बोलती सब गोपियाँ अपने-अपने घर लौट आईं; परन्तु राधा और मोहन की ऐसी अनन्य प्रीति देखकर उनकी आँखों में हर समय सौतियाडाह की अग्नि भरी रहती थी। अस्तु, एक दिन श्री राधिकाजी नटवरनागर के विरह में व्याकुल हो, पानी भरने के लिए यमुना-तट पर अकेली जा पहुँचीं। मार्ग में जब श्री कृष्णचन्द्रजी से उनकी भेंट हुई तो उनका हाथ पकड़कर इस प्रकार कहने लगीं–"हे मदनमुरारि ! तुमने मेरा मन क्यों चुरा लिया है ? उसे लौटा दो न। मेरा शरीर तो घर में रहता है और चंचल मन दिन-रात तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ता रहता है।" श्यामा के ऐसे वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें अपने कण्ठ से लगाते हुए कहा– "हे प्यारी ! मैं भी तुम्हें देखने के लिए दिन-रात व्याकुल बना रहता हूँ।"

हे परीक्षित ! जिस समय श्री श्यामा और श्याम परस्पर इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय ललिता आदि सब सखियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं। उन्हें देखते ही श्री बाँकेविहारी ग्वालों को पुकारते हुए दूसरी ओर चले गये। उस समय ललिता ने राधारानी से कहा–"हे सखी ! आज तो तेरी चोरी पकड़ी गई। तू प्रतिदिन हमें झूठी ठहराकर एकान्त में आनन्द उठाया करती थी; सो आज हमने यह अपनी आँखों से देख लिया है। तू हमसे दिन-रात यही कहती रहती थी कि तुम कभी मुझे श्यामसुन्दर के साथ देखो तब कहना, सो आज हमने तुझे ठीक समय पर पकड़ लिया है।" यह सुनते ही राधिकाजी लज्जित होकर अपने घर लौट आईं। परन्तु उनका मन श्री बाँकेविहारी से भेंट करने को अकुलाता रहा। इसलिए सारी रात तारे गिनते ही बीत गई। प्रातःकाल होने पर उन्होंने अपने मोतियों के हार को धोती के अञ्चल में बाँधकर, अपनी माता कीर्ति से इस प्रकार कहा कि हे माता ! कल यमुना-तट पर मेरा हार कहीं गिर पड़ा, सो न जाने किस गोपी ने उठा लिया होगा ? उसी चिन्ता में मुझे रातभर नींद नहीं आई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सुनकर कीर्ति ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"हे राधे ! मुझे तेरा विश्वास नहीं रहा, सो अब मैं तुझे हार आदि कोई आभूषण नहीं पहिनाऊँगी।" तब राधिका बोली—"हे माता ! तुम इतना क्रोध क्यों करती हो ? मैं उस हार को ढूँढ़ने के लिए जाती हूँ, यदि लौटने में कुछ देर लग जाय, तो घबराना नहीं।" इतना कहकर राधिकारानी अपने घर से निकलकर, नन्द-जी के घर के पीछे जा पहुँचीं तथा वहाँ ललिता का नाम लेकर झूठ-मूठ को पुकारती हुई कहने लगीं—"हे ललिता ! मैं वंशीवट को जा रही हूँ। तू भी शीघ्र चली आ।" उस समय श्री नटवरनागर श्यामसुन्दर ने भोजन करने के लिए पहिला ही ग्रास उठाया था कि तैसे ही उन्होंने राधारानी की बोली सुनी, वैसे ही वे उठकर खड़े हो गये। यह देखकर यशोदाजी ने पूछा—"हे कन्हैया ! तू इतना घबड़ाकर कहाँ को चल दिया ?" तब कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे मैया ! एक ग्वाला मुझसे यह कह गया था कि वन में मेरी गौ के बछिया हुई है, सो मैं उसी के पास जा रहा हूँ।" इतना कहकर कन्हैयाजी वंशीवट को चल दिये। उस समय जो अन्य गोपग्वाल वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने यशोदाजी से यह कहा कि हे मैया ! वन में गौ तो कोई नहीं ब्याई है, परन्तु वहाँ राधा अवश्य पहुँच गई होगी, इसीलिए श्यामसुन्दर उठकर चले गये हैं। ग्वालों की इस बात पर यशोदाजी को विश्वास नहीं हुआ, परन्तु श्री श्यामसुन्दर के भूखे चले जाने के कारण वे उदास अवश्य हो गईं। उधर श्री कन्हैयाजी वंशीवट में जाकर राधारानी के साथ आनन्दपूर्वक भोग-विलास करने लगे।

हे परीक्षित ! जब सन्ध्या का समय हुआ, तब श्री श्यामसुन्दर ने राधाजी से कहा—"हे प्यारी ! अब तुम घर को लौट जाओ।" राधा बोलीं—"हे प्यारे ! मुझसे तुमको छोड़कर जाया नहीं जाता है। मैं तुम्हारे कारण प्रतिदिन अपने माता-पिता की गाली तथा मार सहती हूँ, फिर भी तुम्हें क्षण-भर को नहीं भुला सकती।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने उत्तर दिया—"हे राधे ! मैं भी तुम्हारे लिए हाथ का ग्रास फेंककर चला आया हूँ।" इस प्रकार की प्रेमभरी बातें करने के उपरान्त दोनों अपने-अपने घर को लौट आये। राधा ने अपने घर पहुँचकर कीर्ति को हार देते हुए कहा—"हे माता ! तू जिस हार के लिए सोच करती थी, मैं उसे यमुना-तट से ढूँढ़कर ले आई हूँ, सो तू अपना हार ले ले।" यह सुनकर कीर्ति अपने मन में समझ गई कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राधा ने श्री श्यामसुन्दर से मिलने के लिए हार खो जाने का झूठा बहाना बनाया था। श्री कृष्णचन्द्र श्रीहरि के अवतार हैं, अतः कोई व्रजबाला उन्हें देखे बिना पलभर को नहीं रहती है।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! श्री श्यामसुन्दर को भी राधा के प्रति ऐसा प्रेम बढ़ा कि वे प्रतिदिन किसी-न-किसी स्थान पर उनसे भेंट करके सुख प्राप्त करते थे। एक दिन श्री मुरलीमनोहर उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनकर एक घड़ी रात बीतने पर राधा के घर जा पहुँचे तथा रात्रिभर विहार करके प्रातःकाल घर लौट आये। उस समय राधिकाजी अपने मन में बार-बार यह सोचकर पछताने लगीं कि अब प्यारे के बिना दिन किस प्रकार व्यतीत होगा? हे राजन्! ललिता आदि गोपियों ने, जो दिन-रात श्रीहरि को पकड़ने की घात लगाये रहती थीं, श्री मुरलीमनोहर को जब राधारानी के घर से निकलते हुए देखा, उस समय उन सबको बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हुई। श्रीहरि के चले जाने पर राधिकाजी भी अपने द्वार पर आकर खड़ी हो गईं। वहाँ जब उन्होंने सब ओर गोपियों को खड़े हुए निहारा तो यह सोचा कि इन्होंने मोहनप्यारे को मेरे घर से निकलते हुए अवश्य देखा होगा। यह ध्यान आते ही उन्हें बड़ी लज्जा प्रतीत हुई। तब वे अपने मन में यह विचार करने लगीं कि मेरी और श्यामसुन्दरजी की जो प्रीति अब तक छिपी हुई थी, वह आज पूर्णतः प्रकट हो गई सो अब मैं इन्हें क्या उत्तर दूँगी? इसी सोच में कभी तो राधाजी का मुख उदास हो जाता था और कभी श्रीहरि की याद आ जाने पर प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती थी। उसी समय ललिता आदि सखियाँ राधारानी के घर आ पहुँचीं। उन्हें देखते ही राधाजी ने बड़ी चतुराई से उनके कुछ कहने से पहले ही इस प्रकार पूछना आरम्भ कर दिया–"हे सखी! आज प्रातःकाल श्री श्यामसुन्दर मेरे द्वार के पास से होकर जाने कहाँ को चले जा रहे थे? मैं तो उन्हें तभी से देखकर व्याकुल हो रही हूँ।" यह सुनकर सखियों ने आपस में कहा–"देखो, यह राधा कैसी चतुर हो गई कि हमारे कुछ पूछने से पहिले ही ऐसी बात कह रही है, जिससे हम आगे न बोल सकें।" इतना कहकर वे राधारानी से बोलीं–"हे राधे! तू बड़ी चतुर है, जो हमें अपने मन का भेद भी नहीं बताती। तूने रातभर तो मनमोहन के साथ विहार किया और अब हमें इस प्रकार बहका रही है। अरी सखी! कुछ दिनों से तेरा यह क्या स्वभाव हो गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, कुछ बता तो सही ? तू अपने मन की प्रीति को हमारे सामने प्रकट क्यों नहीं करना चाहती ?" सखियों के ऐसे वचन सुनकर जब राधारानी ने हँस दिया तो वे सब सौतियाडाह करके ईर्ष्यावश इस प्रकार कहने लगीं—"हे राधे ! तू बड़े घर की बेटी है, सो तनिक सम्हल-सम्हल के पाँव रख। बदनामी की गैल अच्छी नहीं है।" तब राधारानी बोलीं—"अरी आली! मनमोहन से मेरी साँची प्रीति है। कोई चुगली करके भी क्या कर लेगा ? अब तो व्रज में सर्वत्र बदनाम हो चुकी, सो मुझे किसी का भय नहीं रहा है। तुम तो अपने काम से काम रक्खो। दूसरा कोई चाहे कुएँ में गिरे या भाड़ में, तुम्हें क्या मतलब ?" राधा के ऐसे वचन सुनकर सब सखियाँ अपने-अपने घर लौट गईं।

हे परीक्षित ! उस समय राधारानी के मन में यह अहङ्कार हुआ कि श्री-बाँकेविहारी मुझे बहुत प्यार करते हैं, अतः अब यदि वे किसी अन्य सखी की ओर आँख उठाकर देखेंगे तो मैं उनसे कलह करूँगी। जिस समय राधा-रानी अपने मन में इस प्रकार सोच रही थीं, उसी समय श्री मुरलीमनोहर झरोखे में से ताकने लगे। यह देखकर राधिकाजी ने उनसे कहा—"हे मोहन! मुझे तुम्हारी घर-घर ताकने-झाँकने की आदत अच्छी नहीं लगती है, अब तुम अपनी इस कुचाल को छोड़ दो।" इतना कहकर राधिकाजी अभिमान में भरकर बैठी रहीं, उन्होंने श्री कृष्णजी को बुलाया तक नहीं। यह देखकर अन्तर्यामी गर्वप्रहारी श्रीहरि उनके मन का भाव समझकर वहाँ से अपने घर चले गये। जब राधा ने यह देखा कि कन्हैयाजी घर के बाहर से ही लौट गये हैं, तब अपने अभिमान पर अत्यन्त लज्जित होकर द्वार पर दौड़ी चली आईं; परन्तु जब श्री मनमोहन वहाँ भी दिखाई नहीं दिये, तब उनके विरह में अचेत होकर गिर पड़ीं। जब होश आया तो वे मन ही मन श्री श्यामसुन्दर की याद करके अत्यन्त विलाप करने लगीं। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि श्रीहरि को देखे बिना चित्त को चैन नहीं पड़ेगा, तब वे ललिता आदि सखियों के घर इस अभिलाषा से गईं कि वे श्री श्यामसुन्दर को समझा-बुझाकर लौटा लावें। अस्तु, ललिता ने राधिकाजी को उदास देखकर इस प्रकार कहा—"हे राधे ! आज तुम इतनी चिन्तित क्यों हो ?" तभी राधिकाजी ने हँसकर इस प्रकार उत्तर दिया—"हे सखी ! तुमसे यह बात छिपाऊँ भी तो कहाँ तक छिपाऊँ ? लो सुनो, अब बताती हूँ कि श्री नन्दनन्दन मुझे बहुत प्यार करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे, परन्तु हे सखी ! आज जिस समय वे झरोखे से झाँककर मुझे देख रहे थे, उस समय मैंने अपने अज्ञान के वशीभूत हो, अहङ्कार में भरकर, उन्हें घर के भीतर नहीं बुलाया। इस पर वे बुरा मानकर लौट गये हैं। हे सखी ! अब तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मुझे उनका दर्शन प्राप्त हो; अन्यथा उनके विरह में मेरे प्राण निकल जायँगे।"

दोहा—मनमोहन के तनिक मोहिं, दर्शन देहु कराय।
नाहिं त निकसैं प्राण ये, साँची कहूँ सुनाय॥

राधा के ऐसे वचन सुनकर ललिता आदि सखियों ने सौतियाडाह करके कहा—"हे राधा ! यदि वे तुझसे भेंट किए बिना चले गये हैं, तो तू भी मान करके बैठ जा। यदि वे तुझे प्यार करते होंगे, तो फिर अपने आप तेरे घर आ जायँगे।" तब श्री राधाजी बोलीं—"हे सखी ! एक बार अभिमान करने से तो उनके विरह में मेरी यह दशा हुई, अब और अधिक मान करने की शक्ति मुझमें नहीं है।" इतना कहकर वे अपने मन में सोचने लगीं कि देखो, ये सखियाँ मुझसे मान करने के लिए कह रही हैं, परन्तु यह नहीं जानतीं कि जब मेरा मन ही मेरे हाथ में नहीं है, तो मैं मान किस प्रकार करूँ। फिर उन्होंने सखियों को सुनाकर कहा—"हे आली ! मैं नटवरनागर के लिए घर-द्वार की प्रीति छोड़कर वन-वन भटकूँगी। चाहे लोग मुझे बाउली ही क्यों न कहें, परन्तु मैं किसी की बात नहीं सुनूँगी। मैं अपने माता-पिता को त्याग दूँगी, परन्तु कन्हैया को किसी प्रकार न छोड़ सकूँगी।" इतना कहकर जब राधा अत्यन्त विलाप करने तथा रोने लगीं, उस समय सब सखियों ने उन पर दया करके इस प्रकार कहा कि अब हमें राधाप्यारी का दुःख छुड़ाना चाहिए; अन्यथा श्री मुरलीमनोहर के विरह में यह अपने प्राण दे बैठेगी। इसके तो रोम-रोम में श्याम बस रहे हैं, अतः उन्हें देखे बिना इसे चैन नहीं पड़ेगी। यह सोचकर सब सखियों ने राधाजी से इस प्रकार कहा—"हे राधे ! तू धैर्य धरकर यहीं बैठी रह। हम तेरे चितचोर को यहाँ बुलाकर तेरी भेंट कराये देती हैं।" यह कहकर ललिता सखी वंशीवट जा पहुँची तथा वहाँ श्री मोहनप्यारे को देख, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी—"हे प्राण-प्यारे ! राधा ने प्रेम के वश होकर तुमसे अभिमान किया था, सो तुम उसका अपराध क्षमा कर दो। इस समय वह तुम्हारे विरह की अग्नि में जल रही है, अतः तुम उसके पास चलकर अपने चन्द्रमुख की शीतलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा उसका हृदय शीतल कर दो, अन्यथा वह तुम्हारे दर्शन पाये बिना अपने प्राण दे बैठेगी। हे श्यामसुन्दर! मैं उस दुखियारी की दीन दशा देखकर तुम्हें बुलाने के लिए आई हूँ। सो तुम अब और अधिक विलम्ब मत लगाओ।" ललिता सखी के ऐसे वचन सुनते ही श्री मुरलीमनोहर व्याकुल होकर उठ खड़े हुए; तदुपरान्त उसके साथ चलकर राधिकाजी के समीप जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह देखा कि राधारानी अपने कर्म पर लज्जित होकर रो रही हैं। यह दशा देखते ही श्री श्यामसुन्दर प्यारे ने उनके मुख से घूँघट हटाकर, अपनी मोहिनी मूर्ति का दर्शन दिया। तब राधारानी भी प्रेम-मग्न होकर श्री श्यामसुन्दर से लिपट गईं।

दोहा—ज्यों तरु सों लिपटै लता, त्यों लिपटी वह बाल।
कहाँ गये तुम त्यागिके, नटवर नंदगुपाल॥
अब नहिं जावो मोरि मुख, शरन गहे की लाज।
रखिए हे चितचोर नित, करिए नहीं अकाज॥

हे परीक्षित! उस समय ललिता सखी ने अन्य सब सखियों को बुलाकर श्री श्यामा-श्याम का वह प्रेम दिखाया तो वे सब राधा का ऐसा स्नेह देखकर उसकी प्रशंसा करने लगीं। उस समय श्री श्यामसुन्दर भी राधाराना पर ऐसे मोहित हो रहे थे कि वे अपने वस्त्राभूषण तथा मुरली को बारम्बार उनके ऊपर न्यौछावर करने लगे। उसी स्नेह में डूबे होने के कारण श्री मनमोहन ने राधारानी के सब आभूषण उतारकर स्वयं पहिन लिये, फिर उनकी आँखों से काजल निकालकर अपने नेत्रों में लगा लिया। तदुपरान्त पीताम्बर की साड़ी बनाकर पहिन लेने से स्त्री के समान प्रतीत होने लगे। राधारानी भी श्री श्यामसुन्दर के क्रीट-मुकुट पहिनकर पुरुषरूप हो गईं। तब वे श्री मनमोहन से कहने लगीं—"हे प्यारे! अब तुम स्त्री की भाँति मान करके बैठो, तब मैं तुम्हें मनाऊँगी।" यह सुनकर स्त्री-वेशधारी नटवरनागर मान करके बैठ गये, उस समय राधिकाजी उनके चरणों पर बारम्बार गिरकर उन्हें मनाने लगीं। श्री श्यामसुन्दर ने उनके ऊपर ऐसी माया फैला दी कि उन्हें यह ज्ञान नहीं रहा कि मैं स्त्री हूँ। वे अपने को पुरुष समझकर, श्री-मनमोहन लाल के चरणों पर मस्तक रखकर रोने लगीं। यह देख श्री कृष्णजी ने अपनी माया हटा ली और राधारानी से इस प्रकार कहा—"हे प्राणप्यारी! मैं तो तेरे कहने से रूठकर बैठा था, तू इतनी घबरा क्यों गई?" यह सुन-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर जब राधारानी का चित्त ठिकाने हुआ और उन्होंने शीशे में अपना मुँह देखा तो उन्होंने लज्जित होकर क्रीट-मुकुट उतार डाला तथा स्त्रियों के आभूषणों को पहिन लिया। जब थोड़ा दिन शेष रहा तब श्री श्यामा-श्याम वहाँ से उठकर वंशीवट को चल दिए।

हे परीक्षित! जिस समय श्री राधा-गोविंद वंशीवट को जा रहे थे, उस समय मार्ग में 'चन्द्रावली' नामक सखी से उनकी भेंट हो गई। तभी उस सखी ने उन्हें पहिचानकर अपने मन में कहा कि देखो ये दोनों स्त्रीरूप बनाये हुए विहार करने के हेतु वंशीवट में जा रहे हैं। तब वह हँसकर राधारानी से इस प्रकार कहने लगी—"हे राधाप्यारी! यह नई साँवली सलोनी सखी कहाँ से आई, जो तेरे साथ विहार करने को जा रही है?" यह सुनकर राधारानी ने उत्तर दिया—"हे आली! यह सखी मथुरा में रहती है, जब मैं ललिता सखी के साथ गोरस बेचने के लिए मथुरा गई थी, तब वहाँ मेरी इससे जान-पहिचान हो गई। अतः आज यह मुझसे भेंट करने को आई है।" हे राजन्! उस समय श्री नन्दलालजी ने अपने मन में यह सोचकर कि चन्द्रावली ने यदि मुझे पहिचान लिया तो सब सखियाँ मेरी हँसी करेंगी, सो अपने मुख को घूँघट से छिपा लिया। यह देखकर चन्द्रावली सखी ने मुस्कुराते हुए राधारानी से इस प्रकार कहा—"हे राधे! तुम दोनों परम सुन्दरी तथा तरुणावस्था की हो, सो तुम श्री मनमोहन से प्रीति करके उन्हें सुख पहुँचाना। हे आली! इस समय तू मुझे अपनी इस सखी का मुखचन्द्र भी देख लेने दो, जिससे मेरी आँखें ठण्डी हो जायँ।" यह सुनकर श्री श्यामजी ने गौने-वाली स्त्री की भाँति सकुचाते हुए अपने मुख-कमल को घूँघट में और अधिक छिपा लिया। उस समय चन्द्रावली उनके समीप पहुँच, घूँघट उठाती हुई इस प्रकार कहने लगी—"हे आली! तुम मुझसे लज्जा क्यों करती हो, मैं तो तुम्हें पहिले से ही पहिचानती हूँ।" इतना कहकर चन्द्रावली श्री मनमोहन की आँखों में अपनी आँखें डालकर उनके गालों को मलने लगी। उस समय श्री मुरलीमनोहर ने लज्जित होकर अपनी आँखें नीची कर लीं। उनका यह हाल देखकर चन्द्रावली ने राधाप्यारी से कहा—"हे राधे! जब से तूने इस सखी से प्रीति बढ़ाई है, तब से इसने हम सबको भुला दिया है। अस्तु, अब तुम दोनों कुञ्ज में जाकर आनन्दपूर्वक विहार करो। तुम्हें अपने अतिरिक्त और किसी का भला क्यों सुहाने लगा?" यह सुनकर जब कृष्णजी ने यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखा कि चन्द्रावली मुझे पहिचान गई है, अतः अब इससे छिपाव करना व्यर्थ है, तब उन्होंने हँसते हुए चन्द्रावली को अपने गले से लगा लिया। फिर दाहिने हाथ से चन्द्रावली तथा बायें हाथ से राधारानी को पकड़े हुए, प्रसन्न होकर वंशीवट में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने रातभर राधाप्यारी के साथ भोग-विलास किया। तत्पश्चात् प्रातःकाल पुरुषरूप धारणकर अपने घर को चले आये। श्री राधा तथा चन्द्रावली भी लौटकर अपने घर को गईं।

हे परीक्षित! शिव-सनकादि को भी जो सुख दुर्लभ है, उसे व्रजबालाएँ इस प्रकार नित्य प्राप्त करती थीं। एक दिन श्री राधारानी सोलहों शृङ्गार करके जब शीशे में अपना मुँह देख रही थीं, उस समय श्री श्यामजी की माया से उन्हें यह भ्रम हुआ कि यह कोई दूसरी चन्द्रमुखी नारी व्रज में आ गई है। यह ध्यान आते ही वे मन में इस प्रकार सोचने लगीं कि श्री मुरली-मनोहर इसे देख लेंगे तो मुझसे प्रीति करना छोड़ देंगे। ऐसी सुन्दरी स्त्री तो व्रज में कभी भी दिखाई नहीं दी, फिर यह कहाँ से आ पहुँची है? इस प्रकार विचार करके उन्होंने अपने प्रतिबिम्ब से कहा—"हे सखी! तू यहाँ कहाँ से आ पहुँची? इस गाँव का श्यामसुन्दर बड़ा ढीठ है। वह सब व्रजबालाओं को नंगी कर दिया करता है, सो तू यहाँ से लौटकर अपने घर चली जा, अन्यथा उसके हाथों बहुत दुःख पायेगी। हे आली! मैं तेरे हित की बात कहती हूँ कि उस जैसा ढीठ तीनों लोक में कोई नहीं है।" जब राधा ने इस प्रकार कहा और उस दर्पण की छवि ने कोई उत्तर नहीं दिया तब राधा यह विचार करने लगी कि यह स्त्री तो बड़ी गर्वीली है, जो मुझसे बात तक नहीं करती है। यदि इसे मनमोहन ने देख लिया तो वे निश्चय ही इस पर रीझ जायँगे। यह विचार आते ही, सौतियाडाह के कारण उनके हृदय में ईर्ष्या होने लगी। हे राजन्! जिस समय श्री राधिकाजी अपनी परछाईं से बातें कर रही थीं, उसी समय श्री मनमोहन ने वहाँ पहुँच, झरोखे में से झाँककर उनका यह हाल देखा। राधारानी अपनी परछाईं से ज्यों-ज्यों बातें करती जाती थीं, त्यों-त्यों उनके हृदय में प्रसन्नता बढ़ती थी। उधर जब राधिकाजी ने यह देखा कि वह सुन्दरी (दर्पण की स्त्री) न तो कोई उत्तर देती है और न वहाँ से जाती ही है तो वे उसे अपनी सौत समझकर अधिक चिन्तित होने लगीं। उस समय श्री राधिकाजी की ऐसी दशा देखकर श्री व्रजचन्द्रजी ने चुपचाप उनके पीछे जाकर, अपने दोनों हाथों से उनकी आँखें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बन्द कर लीं तथा दर्पण को उलटकर रख दिया। तब श्री राधाप्यारी अपने प्यारे को पहिचानकर इस प्रकार कहने लगीं कि हे मनमोहन! मैं तो सखियों के धोखे में थी, पर तुम खूब आ पहुँचे। अस्तु, दर्पण उलट देने के कारण जब राधा को वह स्त्री दिखाई नहीं दी, तो वे उसे अपना प्रतिबिम्ब समझकर मन में अत्यन्त प्रसन्न हो गईं। तदुपरान्त श्री मोहनप्यारे के साथ विहार करने लगीं। कुछ समय व्यतीत होने पर जब श्री कृष्णचन्द्रजी अपने घर चले गये, उस समय ललिता आदि सखियाँ श्री राधाजी के पास आ पहुँचीं। राधारानी ने उन्हें बड़े सम्मान से बैठाया। यह देखकर ललिता ने पूछा—"हे राधे! क्या आज श्री श्यामसुन्दर से तेरा मिलन हुआ है, जो तू हमारा इतना आदर कर रही है?" यह सुनकर श्री राधिकाजी ने श्री बाँकेविहारी के पधारने तथा दर्पण उलट देने का हाल बताते हुए इस प्रकार कहा—"हे ललिता! तुम सब की दया के कारण ही मुझे इतना सुख मिलता है।" यह सुनकर ललिता ने श्री राधा-रानी के भाग्य की अत्यन्त प्रशंसा की। जिस समय सब सखियाँ राधारानी के साथ वार्तालाप कर रही थीं, उसी समय श्री मुरलीमनोहर नटवर रूप बनाये, वनमाला धारण किए, बाँसुरी बजाते हुए वहाँ फिर आ पहुँचे, परन्तु वहाँ सखियों की भीड़ देख, भीतर न जाकर, बाहर से ही आँखें मटकाते हुए दूसरी ओर निकल गये। इस प्रकार जब वे अपनी बाँकी चितवन से सखियों को मोहित करके चले गये, उस समय सब गोपियाँ कामातुर होकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखी! यह सब दोष हमारी ही आँखों का है, जो वे मुरलीमनोहर को देखते ही मोहित हो जाती हैं। इन्होंने हमारी लोक-लाज छुड़ाकर कुल तथा परिवार को बदनाम कर दिया। परन्तु स्वयं उनकी छवि निहारकर प्रसन्न होती रहती हैं। हमें दिन-रात उनके विरह में तड़पते रहने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता। जब अपना ही पैसा खोटा हो तो दूसरे को दोष क्यों दिया जाय? हमें चिन्ता है तो केवल इसी बात की कि श्री श्यामसुन्दर के विरह में हमारे प्राण क्यों नहीं निकल जाते?" इस प्रकार कहकर सभी सखियाँ अपने-अपने घर को चली गईं। उनके हृदय में आठो प्रहर श्री श्याम-सुन्दर की मोहिनी मूर्ति बसी रहती थी।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्तीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का वंशी-वादन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! श्री मुरलीमनोहर ने कामदेव का गर्व नष्ट करने के लिए जिस प्रकार गोपियों के साथ रासलीला की थी, वह कथा हम अपनी बुद्धि के अनुसार तुमसे कहते हैं, ध्यानपूर्वक सुनो। चीर-हरण के समय जब श्री श्यामसुन्दर ने गोपियों से यह कहा था कि हम शरद्-पूर्णिमा को तुम्हारे साथ रासलीला करेंगे, उसी दिन से सब गोपियाँ एक-एक दिन को वर्ष के समान गिनकर काटती हुई, परस्पर इस प्रकार कहती थीं कि कब आश्विन का महीना आये और कब हम अपने प्राणप्यारे के साथ रास-लीला करके अपना जन्म सफल बनावें। अस्तु, वर्षा ऋतु व्यतीत होने के पश्चात् जब शरद् ऋतु आई, उस समय श्री बाँकेविहारी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि गोपियों को दिए गये वचन के अनुसार हमें रासलीला करनी चाहिए। ऐसा विचारकर वे शरद्-पूर्णिमा को तीन घड़ी रात बीतने पर, मस्तक पर क्रीटमुकुट तथा अन्य अङ्गों पर रत्नजटित आभूषण पहिने, पीताम्बर काछे, मनमोहन स्वरूप बनाये, घर से निकलकर वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह देखा कि उस दिन चन्द्रमा अपनी उस एक कला को भी लाकर, जो श्री शिवशङ्कर के पास रहती है—अपनी सम्पूर्ण सोलहों कलाओं से प्रकाश फैलाये हुए है तथा यमुना का जल भी मोती के समान निर्मल हो गया है। चारों ओर पुष्प खिल रहे हैं तथा वृक्षों की हरियाली के कारण चाँदनी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है। आकाश में तारागण दमक रहे हैं तथा शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही है।

हे परीक्षित ! उस समय श्री श्यामसुन्दर ऐसे मनभावने प्रतीत हो रहे थे कि उनके ऊपर सहस्रों कामदेवों को न्योछावर कर दिया जाय। तदुपरान्त श्री श्यामजी ने एक ऊँचे वृक्ष पर बैठकर योगमाया से संयुक्त मुरली को अत्यन्त प्रेमपूर्वक बजाया तथा उसी के स्वरों में राधा आदि गोपियों का नाम ले-लेकर, उन्हें अपने पास आने का आह्वान किया। उस समय श्री बाँके-विहारी ने अपनी ऐसी माया फैलाई कि जिन गोपियों ने उन्हें (श्री कृष्णजी को) अपना पति बनाने की अभिलाषा से व्रत तथा पूजन किया था, केवल उन्हीं को मुरली की ध्वनि सुनाई पड़ी और किसी को सुनाई नहीं दी। हे राजन् ! श्री श्यामसुन्दर ने अपनी मुरली में काम को उत्तेजित करनेवाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा मन को हर लेनेवाला ऐसा राग बजाया कि उसे सुनते ही राधारानी आदि सोलह सहस्र व्रजबालाएँ कामातुर हो, मुग्ध हो गईं तथा अपने मन-मोहन से मिलने के लिए उल्टा-सीधा शृङ्गार करके, वन की ओर इस प्रकार दौड़ चलीं, जिस प्रकार श्रावण के महीने में नदी-नालों का जल समुद्र की ओर वेग से जाता है।

चौपाई—मुरलीध्वनि सुनि के सब धाईं। सखि टेरत हैं कृष्ण कन्हाई॥
चलहु आज जीवन फल लैहैं। हरि के चरनन में चित दैहैं॥
अब ना सजनी करौ अबार। वन में ठाढ़े नन्दकुमार॥
यों कहि-कहि सब चलीं पराई। मन में कछू न शंका खाई॥

हे राजन्! उस समय जो गोपी दूध दुह रही थीं, उनके हाथ से दूध का पात्र गिर पड़ा। जो भोजन कर रही थीं, उन्होंने अपने हाथ भी नहीं धोये। जो भोजन बना रही थीं अथवा चूल्हे पर दूध चढ़ाये थीं, उन्होंने उसे वैसा ही छोड़ दिया। जो सुरमा अथवा काजल लगा रही थीं, वे उसे दूसरी आँख में बिना लगाये ही चल पड़ीं। जो अपने पति के पास अचेत सोई पड़ी थीं, वे उसी प्रकार नंगी ही उठ दौड़ीं। जो बालक को दूध पिला रही थीं, वे उसे दूध पिलाए बिना ही छोड़कर चल दीं। जो अपने पति को भोजन करा रही थीं, वे उसे बिना खिलाये ही उठ बैठीं। उस घबराहट में किसी ने एक दूसरे से यह भी नहीं पूछा कि तू कहाँ जा रही है? शीघ्रता में उन्होंने हाथ के आभूषण पाँव में तथा कण्ठ के आभूषण भुजाओं पर बाँध लिये। लहँगे के स्थान पर चादर पहिन ली तथा साड़ी ओढ़ ली। हाथों में चोली उठाये हुए वे शीघ्रतापूर्वक वन की ओर दौड़ चलीं। जब घरवालों ने रोकना चाहा तो किसी ने भी उनका कहना नहीं माना। एक गोपी अपने पति के साथ सो रही थी, जब वह उठकर चलने को हुई तो उसके पति ने उसे जबर्दस्ती रोक लिया। उस समय वह श्री श्यामसुन्दर के ध्यान में अपना शरीर वहीं त्यागकर, दिव्यरूप धारणकर सब गोपियों से पहिले श्री श्यामसुन्दर के पास जा पहुँची। उसकी ऐसी प्रीति देखकर श्री बाँकेविहारी ने उसे मुक्ति देकर कृतार्थ कर दिया।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! उस गोपी ने श्री कृष्णचन्द्रजी को नारायण समझकर स्नेह नहीं किया था, उसने तो काम के वशीभूत होकर अपने प्राण त्यागे थे, फिर उसे मुक्ति किस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त हुई ?" राजा परीक्षित के ऐसे वचन सुनकर शुकदेवजी ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—"हे राजन् ! हमने तुझे कई बार समझाया, परन्तु तू विश्वास नहीं करता। अच्छा अब फिर सुन ले। सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी श्री नारायणजी सदैव एक रस तथा निर्विकार रहते हैं। जिस प्रकार लोहा जान-अनजान में किसी भी प्रकार यदि पारस पत्थर से छू जाय तो वह सोना हो जाता है तथा धोखे से अमृत पी लेने पर भी मनुष्य अमर हो जाता है, उसी प्रकार श्री नारायणजी के चरणों में किसी भी भाव से मन लगानेवाला जीव मुक्त हो जाता है। देख, जिस शिशुपाल ने श्री कृष्णचन्द्रजी के प्रति दुर्वचन कहे थे तथा जो पूतना, वत्सासुर आदि दैत्य उन्हें मारने के लिए आये थे, वे सभी मुक्ति-पद को प्राप्त हुए। श्री त्रिलोकीनाथजी मित्रता अथवा शत्रुता से कोई प्रयोजन नहीं रखते, वे तो अपनी ओर किसी भी भाव से मन लगाये रखनेवाले पर प्रसन्न ही होते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि किसी भी प्रकार से जो उन्हें याद करता है, वे उसे मुक्ति-पद देते हैं। मृत्यु के समय जो जीव उनका ध्यान करता है, उसकी मुक्ति में तो किसी प्रकार का संशय करना ही नहीं चाहिए। जो लोग ऊपरी ढोंग से तो अपने को हरि-भक्त दिखाते हैं, परन्तु अन्तःकरण से उनसे प्रीति नहीं रखते, उनका मुक्त होना असम्भव है। सच्चे हृदय से प्रीति करनेवाला मनुष्य ही मुक्त होता है। श्री श्यामसुन्दर की भक्ति करने के प्रताप से जिन लोगों ने मुक्ति प्राप्त की, अब उनका थोड़ा-सा हाल सुनो। हे राजन् ! नन्द-यशोदा ने उन्हें अपना पुत्र करके माना था तथा गोपियों ने उनके सौन्दर्य को देखकर पतिरूप में वरण किया था। राजा कंस ने उन्हें अपना शत्रु माना तथा गोप-ग्वालों ने मित्र पहिचाना। पाण्डवों ने उन्हें अपना रिश्तेदार समझा तथा योगी, यती एवं ऋषि-मुनियों ने परब्रह्म के भाव से स्मरण किया। इन सबको श्री मुरली-मनोहर ने मुक्ति प्रदान करके कृतार्थ किया। ऐसी स्थिति में यदि एक गोपी की मुक्ति हो गई तो क्या बड़ी बात है ?"

श्री शुकदेवजी के मुख से यह वचन सुनकर राजा परीक्षित ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे प्रभो ! मेरा सन्देह नष्ट हो गया; अब आप दया करके आगे की कथा सुनाइये।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! राधा-रानी आदि सोलह सहस्र व्रजबालाएँ अत्यन्त उमङ्ग में भरकर श्री कृष्ण-चन्द्रजी के पास जा पहुँचीं। उस समय श्री श्यामजी ऐसे सुशोभित हो रहे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे, जैसे तारागणों के बीच चन्द्रमा शोभायमान होते हैं। सब गोपियाँ उनकी रूप-माधुरी को आँखों की राह पीने लगीं। तब श्री वृन्दावनविहारी ने उनकी कुशल-क्षेम पूछकर इस प्रकार कहा—"हे गोपियो! तुम्हारे आने से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। अब तुम जो कहो, मैं वही कार्य करूँ? परन्तु पहिले यह बता दो कि इस आधीरात के समय तुम सभी युवती स्त्रियाँ अपने कुल-परिवार की लाज छोड़, उल्टा-सीधा शृङ्गार किए, पागलों के समान यहाँ किसलिए आ पहुँची हो? इस समय तुम्हारे घरवाले तुम्हें ढूँढ रहे होंगे। यदि तुम्हें चाँदनी रात में भोग-विलास करने की इच्छा थी तो अपने पति के साथ करतीं। यदि तुम केवल स्नेह के कारण तुम मेरे पास आई हो तो मैं भी अपने स्नेह करनेवाले से प्रीति रखता हूँ। हे गोपियो! स्त्री के लिए अपने पति की आज्ञा का पालन करना तथा लोक-लाज की मर्यादा रखना तपस्या करने के समान कहा गया है। वेद तथा शास्त्रों में यह लिखा है कि अपना पति अन्धा, काना, लूला, लँगड़ा, कोढ़ी, कुरूप, कुबड़ा, दरिद्र, लम्पट, चोर, जुआरी, रोगी अथवा अवगुणों से भरा हुआ, कैसा ही क्यों न हो—उसे ईश्वर के समान समझकर, पूजा-सेवा करनी चाहिए। जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, वे संसार में इच्छित आनन्द उठाकर अन्त में मुक्ति-पद को प्राप्त करती हैं। उन्हीं को कुलवन्ती तथा पतिव्रता कहा जाता है। जो स्त्री अपने पति को परमेश्वर के समान न जानकर उसकी निन्दा करती है तथा उसे दुर्वचन कहकर पर-पुरुष से प्रीति करती है उसकी लोक-निन्दा तो होती ही है, साथ ही मृत्यु के उपरान्त उसे नरक की घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। तुम्हारी भक्ति तथा प्रेम को दूर से देखकर मुझे जो प्रसन्नता थी, वह तुम्हारे यहाँ आने पर नहीं रही, क्योंकि तुम्हारे इस प्रकार चले आने से सभी व्रजवासी मेरी तथा तुम्हारी निन्दा करेंगे। अस्तु, तुमने जो किया—वह तो ठीक रहा, परन्तु अब तुम चाँदनी रात्रि तथा यमुना-तट की शोभा को देख चुकी हो, सो अपने-अपने घर जाकर प्रेमपूर्वक अपने पति की सेवा करो। जिससे तुम्हारे दोनों लोक सुधरें। उसी से तुम्हें सुख प्राप्त होगा।"

हे परीक्षित! इस ज्ञानोपदेश को सुनकर सभी गोपियाँ चिन्तित हो, ठण्ढी-ठण्ढी श्वासें लेकर अपने पाँव के नख से पृथ्वी को कुरेदने लगीं तथा ज्यो की त्यों चित्रवत् खड़ी रह गईं। उस समय आँखों से आँसू बहने के कारण उनका सुरमा तथा काजल बहकर कपोलों पर आ गया। किसी की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बेसर टूटकर गिर पड़ी। कुछ देर पूर्व तक उनके मुख पर जो प्रसन्नता विद्यमान थी, उसका कहीं चिह्न भी नहीं रहा। तब उनमें जो व्रजबालाएँ चतुर थीं, वे श्री मनमोहन की विरहाग्नि में जलती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे कृष्णचन्द्र! तुम बड़े ठग हो, पहिले तो तुमने अपनी मुरली में हमारे नाम भर-भरकर हमें पुकारा और यहाँ बुला लिया, अब तुम ऐसी बातें करते हो? हे प्राणप्यारे! इस समय तुम शास्त्रों की बातें कहकर हमारे प्राण क्यों लेना चाहते हो? हे मोहन! जिस प्रकार तुमने हमें इस रात्रि के समय यहाँ बुलाया है, उसी प्रकार अब हमारे मन की अभिलाषा भी पूर्ण कर दो। हम वेद-शास्त्र की मर्यादा तथा कुल-परिवार की लज्जा को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर चुकी हैं। तुम परब्रह्म प्रभु हो, तुम्हारे चरणों का ध्यान ऋषि-मुनि तथा देवता करते हैं, अतः हम ऐसा धर्म नहीं सीखना चाहतीं जो तुम्हें छोड़कर संसारी माया-मोह को स्वीकार करें। हमारा मन तुम्हारे प्रेम के रंग में रँगा हुआ है, अतः अब वह गृहस्थी में नहीं लग सकता। आपके चरणों को त्याग कर लौट जाना हमें स्वीकार नहीं है।"

चौपाई—ऐसे वचन न हमें सुनावौ। उर अन्तर की आस पुजावौ॥
तुम बिन कोई न हमरौ स्वामी। तुमहीं सर्वस अन्तर्यामी॥
वेद-शास्त्र कछु हम नहिं जानैं। जो मन कहै वही हम मानैं॥
तुम बिन गति दूजो नहिं कोई। तव बिछोह स्वीकृत नहिं होई॥

हे प्रभो! हम अबलाएँ झूठ-कपट आदि को नहीं जानतीं। हम तो मन, वचन तथा कर्म से आपको ही अपना पति समझती हैं। आपकी मन्द-मधुर मुस्कान ने हमारे हृदय को मोहित कर लिया है। फिर आपकी मुरली की यह दशा है कि उसकी ध्वनि सुनते ही हमारा चित्त ठिकाने पर नहीं रहता। हे स्वामी! जिस प्राणी को आपके चरणों में प्रेम होता है, उसे लोक-लाज, कुल-कानि की कोई चिन्ता नहीं रहती। हे प्रभो! अब शरणागत की लाज तुम्हारे हाथ है। हमने अपने बड़ों के मुख से यह सुना था कि जो प्राणी तुमसे स्नेह करता है, तुम भी उसे प्रेमपूर्वक अपनाते हो। परन्तु आज हमें वह बात मिथ्या प्रतीत हो रही है, क्योंकि हम तो स्नेह करके आपके पास आईं और आप हमें इस प्रकार ठुकरा रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि प्रीति करनेवाले परस्पर एक दूसरे के मन का हाल जान लेते हैं, परन्तु यह बात भी हमें इसलिए मिथ्या लगती है कि इस समय आप हमारी प्रीति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का हाल कुछ भी नहीं जान पा रहे हैं। इसके अतिरिक्त वेद-शास्त्रों के कथनानुसार जब तक मनुष्य अपना मन संसारी मोह-माया से दूर नहीं करता, तब तक वह आपको प्राप्त नहीं कर पाता। उस प्रमाण के अनुसार ही हम सब घरवालों की प्रीति छोड़कर, आपके पास आई हैं। यदि आप शास्त्र को झूठा करके, हमारे चाहने पर भी, हमसे प्रीति नहीं रखते, तो आप हमें हमारा वह मन लौटा दीजिए, जिसे आपने चुरा लिया है। यदि ऐसा नहीं करते तो फिर आपको हमें अपनी दासी बनाना ही पड़ेगा। यदि आप हमें प्रकट रूप से ठुकरा भी दें, तो हमारे हृदय के भीतर जो आप बस रहे हैं, वहाँ से निकल कर कहाँ जा सकेंगे? हे प्राणप्यारे! जिस प्रकार वैकुण्ठलोक में लक्ष्मीजी आपके चरणों की पूजा करती हैं, उसी प्रकार हमें भी आपके चरणारविन्द प्रिय हैं। आपके जिन चरण-कमलों की धूलि को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा, शिव आदि देवता लालायित रहते हैं, उन्हें हम किस प्रकार त्याग दें? हम सब आपके इस मनमोहन स्वरूप की चेरी हैं तथा अपना तन, मन, धन सर्वस्व इसी पर न्यौछावर करती हैं। भला, तीनों लोकों में ऐसा कौन-सा जड़-चैतन्य जीव है, जो आपकी इस छवि को देखकर तथा आपकी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर मुग्ध न हो जाय? हे व्रजेन्द्र! आपका नाम दीनानाथ है, तो हमसे अधिक दीन संसार में कोई नहीं है। इन सब बातों पर विचार करके आप हमारी मनोभिलाषा पूर्ण कीजिए, अन्यथा हम सब आपके विरह में अपने प्राण त्याग देंगी तथा मृत्यु के समय भी यही इच्छा करेंगी कि हम सहस्रों वर्ष तक आपकी ही दासी बनकर जन्म लें। उस स्थिति में हमारी मृत्यु का दोष भी आपको ही लगेगा।"

हे परीक्षित! जब श्री श्यामसुन्दर ने गोपियों की ऐसी सच्ची प्रीति देखी तब वे उन्हें अपने पास बैठाकर कहने लगे—"हे गोपियो! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो तुम मेरे साथ रास करो।" यह वचन सुनते ही सब गोपियाँ इस प्रकार प्रसन्न हो गईं, जैसे उष्ण बालू पर तपती हुई मछली को किसी ने उठाकर शीतल जल में डाल दिया हो। तदुपरान्त श्री बाँकेविहारी ने योगमाया को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम हमारे रास करने के लिए यमुना-तट पर एक सुन्दर स्थान बनाकर, वहीं बनी रहो तथा इन गोपियों को वस्त्राभूषण आदि जिस वस्तु की इच्छा हो, वह दे दो। यह सुनकर योगमाया ने उसी समय एक रत्नजटित गोल चबूतरा बनाकर तैयार कर दिया तथा उस चबूतरे के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चारों ओर केले के खम्भे गाड़कर, उन पर मोतियों तथा फूलों की झालरें लटका दीं। जब चबूतरा तैयार हो गया, तब श्री श्यामसुन्दर राधा आदि सभी व्रजबालाओं के साथ वहाँ जा पहुँचे। चाँदनी रात के कारण उस चबूतरे की शोभा सौ गुनी अधिक हो गई थी। श्री श्यामसुन्दर की इच्छा से उस चबूतरे के पास ही वस्त्राभूषणों का एक ढेर लग गया, जिन्हें सभी गोपियों ने इच्छानुसार धारण कर लिया। फिर वे सब सोलह शृङ्गार करके श्यामजी के निकट आ, काम के वशीभूत हो, नृत्य गायन करने लगीं। उस समय श्री श्यामजी ने राधिकाजी के साथ वास्तविक रूप में रहकर, अन्य सब दो-दो गोपियों के बीच अपना एक-एक रूप प्रकट कर दिया। उस समय श्री श्यामसुन्दर की शोभा ऐसी लग रही थी, जैसे स्वर्ण की माला के दानों में नीलमणि जड़ी हुई हो। जिस समय श्री मनमोहन ने व्रजबालाओं के कण्ठ में हाथ डालकर उनका मुख चूमा तथा कपोल छूकर, उन्हें अपने कण्ठ से लगाते हुए, वंशी में अनेक राग-रागिनियाँ भरीं, उस समय उन सबके हृदय में धधक रही विरह की ज्वाला शान्त हो गई तथा अपने प्राणप्यारे का स्पर्श पाकर सबका शरीर शीतल हो गया। जिस समय श्री बाँकेविहारी व्रजबालाओं के सङ्ग-सङ्ग परछाईं की भाँति घूमते थे, उस समय गोपियाँ उनकी अनुपम छवि पर मोहित हो-होकर रह जाती थीं। श्री श्यामसुन्दर कभी तो अपनी भौंहें चलाकर उन्हें प्रसन्न करते थे और कभी उनके गीतों को सुनकर स्वयं आनन्दित होते थे। कभी कोई गोपी उनकी मुरली को छीनकर स्वयं बजाने लगती तो कभी कोई उसके स्वर में स्वर मिलाकर गा उठती थी।

हे परीक्षित! उस समय उस रास-विलास का ऐसा आनन्द छाया हुआ था कि ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी उसे देख-देखकर व्रजबालाओं के भाग्य की बड़ी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहते थे कि देखो, जिन त्रिलोकीनाथ का दर्शन हमें ध्यान में भी शीघ्र नहीं मिलता, वे ही इन गोपियों के साथ कैसा रास-विलास कर रहे हैं? इससे बढ़कर धन्य भाग्य और क्या होगा? अस्तु, जिस समय श्री बाँकेविहारी ने ऐसी कृपा दिखलाई, उस समय सब गोपियाँ अपने मन में अभिमान करके यह सोचने लगीं कि हमारे समान सुन्दर कोई अन्य स्त्री नहीं है, तभी तो श्री श्यामसुन्दर हमारे वशीभूत होकर हमें प्यार करते हैं। हमने साक्षात् वैकुण्ठनाथ को अपनी ताल पर नचाया है। अब ये हमारी आज्ञा लिये बिना कोई काम नहीं करेंगे। यही सोचकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक गोपी ने श्रीकृष्णजी की ओर कटाक्ष करते हुए कहा–"हे प्यारे ! अब नाचते-नाचते मेरे तो पाँव दुखने लगे हैं।" उस गोपी के इतना कहते ही अन्य गोपियाँ भी, कोई तो श्रीकृष्णजी का हाथ पकड़कर खड़ी हो गईं और कोई उनके कन्धे का सहारा लेकर खड़ी हो गईं।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! जिस समय वे गोपियाँ लज्जा तथा धर्म का ध्यान भुलाकर श्री श्यामसुन्दर को पापमयी वासनापूर्ण दृष्टि से देखने लगीं, उस समय गर्वहारी श्री कृष्णजी ने यह विचार किया कि ये सब गोपियाँ अज्ञान के वशीभूत हो, मुझे अपना पति मानकर, मेरे अङ्ग से लिपट रही हैं तथा इनके मन में यह अभिमान भी उत्पन्न हुआ है कि मैं इनकी सुन्दरता पर रीझ गया हूँ। अतः इनका गर्व नष्ट करने के लिए मुझे यहाँ से अन्तर्धान हो जाना चाहिए। मेरा प्रण अपने भक्तों के हृदय से अभिमान हटा देने का है, अतः इस प्रकार जब इनका गर्व नष्ट हो जायगा, तब मैं इन्हें फिर अपना लूँगा। तब तक मैं यह भी देख लूँगा कि मेरे चले जाने पर ये क्या करती हैं ? ऐसा निश्चय करके श्री मुरलीमनोहर सब गोपियों को वहीं छोड़, राधारानी को साथ ले, अन्तर्धान हो गये।"

तीसवाँ अध्याय

गोपियों द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रजी की खोज

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे शुकदेवजी ! श्री मुरलीमनोहर के अन्तर्धान हो जाने पर गोपियों की क्या दशा हुई ?" शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! श्यामसुन्दर राधारानी के साथ रासमण्डल से अन्तर्धान हो गये, तब गोपियों का सुख-विलास स्वप्न के समान अदृश्य हो गया। उस समय सब गोपियाँ इस प्रकार व्याकुल हो गईं, जैसे अपने झुण्ड से अलग हो जाने पर हिरनी घबड़ा जाती है। वे सब व्याकुल होकर परस्पर इस प्रकार कहने लगीं–"हे सखी ! अभी-अभी तो श्री नटवरनागर हमारे साथ रास कर रहे थे, परन्तु अब देखते ही देखते कहाँ अदृश्य हो गये ?" एक गोपी जो श्रीहरि के अन्तर्धान हो जाने से अत्यन्त व्याकुल थी, इस प्रकार बोली–"हे आली ! अभी वे मेरे कण्ठ में अपनी भुजाएँ डाले हुए थे। यदि तुमने उन्हें जाते देखा हो तो मुझे बता दो ?" तब दूसरी गोपी ने, जो श्रीहरि के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरह में उससे भी अधिक व्याकुल थी, यह उत्तर दिया—"अरी बाउली ! यदि मैं उन्हें देख पाती तो जाने ही क्यों देती ? अरी ! हम तो मन, वचन, कर्म से उनकी सेविका थीं, फिर न जाने हमसे ऐसा कौन-सा अपराध बन पड़ा, जो वे हमें वन में अकेली छोड़कर इस प्रकार चले गये ?" इसी भाँति सब व्रजाङ्गनाएँ अपना-अपना दुःख एक-दूसरी से कहती थीं। जब सब बहुत अधीर हुईं तो इस प्रकार कहने लगीं—"हे प्राणप्यारे ! आप हम अनाथ अबलाओं को इतना दुःख क्यों दे रहे हैं ? हम तुम्हारे ऊपर अपना तन, मन न्योछावर कर चुकी हैं। अतः हमें बिना दाम की दासी समझकर, शीघ्र दर्शन देकर कृतार्थ करें।" हे राजन् ! इस प्रकार बहुत विलाप करने तथा ढूँढ़ने पर भी उन्हें श्यामसुन्दर नहीं मिले तो वे सब रोती हुई परस्पर इस प्रकार बोलीं—"हे सखी ! अब हम उन्हें ढूँढ़ने कहाँ जायँ ? यहाँ कोई बटोही भी तो नहीं दीखता, जिससे हम उनका पता ज्ञात कर सकें।" उसी समय एक सखी कह उठी—"हे आली ! इस वन में जितने वृक्ष तथा पशु-पक्षी दिखाई देते हैं, वे सब पूर्व जन्म के ऋषि, मुनि तथा देवता हैं। श्री बाँकेविहारी की लीलाओं को देखने के लिए ही इन्होंने व्रज में जन्म लिया है। इन्होंने हमारे प्राण-प्यारे को अवश्य देखा होगा, सो इनसे पता पूछ लो।" यह सुनकर सब गोपियाँ पागलों के समान वृक्षों तथा पशुओं से श्री मुरलीमनोहर का पता पूछती हुई कहने लगीं—"हे मौलश्री, कटहल, आम्र, जामुन, बेल, इमली तथा कदम्ब आदि वृक्षो ! तुमने मर्त्यलोक में परोपकार के लिए जन्म धारण किया है, सो तुम हमें यह बताओ कि क्या तुमने हमारे श्यामसुन्दर को कहीं जाते देखा है ?" दूसरी सखी बोली—"हे कचनार तथा चम्पा के वृक्ष ! तुमने कहीं नन्दकुमार को देखा हो तो हमें बता दो।" तीसरी ने कहा—"हे तुलसी ! तुम श्रीनटवरनागर की अत्यन्त प्रिय हो, वे तुम्हारे बिना भोजन भी नहीं करते, अतः तुम्हें उनका पता अवश्य मालूम होगा।" चौथी बोली—"हे अनार ! तेरे दाँत बाहर निकल रहे हैं, इससे प्रतीत होता है कि तूने मनमोहन प्यारे को अवश्य देखा है।" पाँचवीं ने कहा—"हे कदली ! तेरे मुलायम पत्तों पर श्री बाँकेविहारी भोजन किया करते थे, सो यदि तूने उन्हें देखा हो तो हमें बता दे ?" छठवीं बोली—"हे अशोक ! तेरा नाम अशोक इसीलिए है कि तू पराये के शोक को दूर करता है, अतः तू हमारा भी शोक दूर कर दे। हम सब श्री श्यामसुन्दर के विरह में डूब रही हैं, यदि तूने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें देखा हो तो हमें बता दे।" सातवीं कहने लगी–"हे जुही, मालती तथा चमेली के पुष्प ! क्या तुमने मनमोहन को जाते हुए देखा था? तुम्हारा स्वरूप देखने से यह अनुभव होता है कि वे जाते समय तुम्हारे ऊपर अपना हाथ फेरते गये हैं, इसी लिए तुम प्रसन्नता से फूल रहे हो।" आठवीं बोली–"हे केतकी ! तेरी सुगन्ध प्राप्त करने के लिए अनेक देश के भौंरे आते हैं, सो तू हम दुखियाओं पर दया करके, उनसे श्यामसुन्दर का पता पूछ कर हमें बता दे।" नवीं ने कहा–"हे पृथ्वी ! श्यामसुन्दर तेरे ऊपर विशेष स्नेह रखते आये हैं। जिस समय हिरण्याक्ष दैत्य तुझे उठाकर पाताल में ले गया था, उस समय वे वाराहरूप धरकर तुझे अपने दाँतों पर उठा लाये थे तथा वामन अवतार में राजा बलि से तेरा ही दान लिया था। तेरे समान बड़भागी और कोई नहीं है। अतः उनके चरण रखने के कारण तुझे उनका पता अवश्य मालूम होगा सो तू हमें भी शीघ्र बता दे।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार सर्वत्र पूछते फिरने पर भी जब उनका कोई पता न मिला, तो सब गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो विलाप करने लगीं। उनके दुःख को देखकर, वन के पशु-पक्षी तथा वृक्षादि भी इतने दुखी हुए कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। उसी समय एक गोपी ने एक स्थान पर श्रीकृष्णचन्द्रजी का चरण-चिह्न देखकर सबको बताया। उसे देखकर सब गोपियाँ उस स्थान की धूलि उठाकर अपनी आँखों से लगाने तथा मस्तक पर रखने लगीं। तदुपरान्त उस पृथ्वी को चूमती हुई इस प्रकार बोलीं–"उस चितचोर का यह तो पता लगा कि वह किस ओर गया।" हे परीक्षित ! उसी चरण-चिह्न को आधार बनाकर जब गोपियाँ आगे बढ़ीं तो उन्हें कुछ दूरी पर एक स्त्री का चरण-चिह्न और दिखाई दिया। उस चिह्न को देखकर सबके हृदय में सौतियाडाह उत्पन्न हुआ तथा परस्पर इस प्रकार कहने लगीं कि हे सखी ! राधा उन्हें बहुत प्यारी हैं, इसलिए वे उसे ले गये हैं। राधा ने पूर्व जन्म में शिव-पार्वती का बड़ा तप किया था, इसीलिए अब इस जन्म में उनके साथ अकेली रहकर स्वयं तो खूब आनन्द उठाती है तथा हमें उनके विरह में भटकाती रहती है। यह सुनकर एक दूसरी ने कहा–"हे आली ! श्री श्यामसुन्दर का ध्यान धरनेवाला प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है; परन्तु राधा की समानता वह भी नहीं कर सकता, क्योंकि वह श्री नन्दलाल का मुख चूमकर अपना जीवन धन्य बनाती रहती है।" इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार वार्तालाप करती हुई जब वे कुछ दूर और बढ़ीं तो उन्होंने देखा कि राधारानी के चरण-चिह्न लुप्त हो गये हैं। उस समय सबने परस्पर यह कहा—"हे आली! ऐसा ज्ञात होता है कि इस स्थान से आगे श्री बाँके-विहारी राधा को काँधे पर चढ़ाकर ले गये हैं।" अस्तु, कुछ दूर और आगे चलकर, घास के कारण जब उन्हें कोई चरण-चिह्न दिखाई नहीं दिया तो वे अत्यन्त व्याकुल हुईं। जिस समय वे विलाप करती हुई, इधर-उधर घूम रही थीं, उस समय एक स्थान पर उन्होंने मुलायम पत्तों का बिछौना तथा उसके ऊपर पड़ा हुआ राधारानी का रत्नजटित शीशा देखा। उसे पहिचानकर एक गोपी ने कहा—"हे आली! हमारे चितचोर ने यहाँ बैठ-कर राधारानी का शृङ्गार करने के पश्चात् अपने हाथों से उसकी चोटी को फूलों से गूँथा होगा। उस समय मनमोहन प्यारे के पीछे बैठने के कारण राधारानी को जब उनका मुखारविन्द दिखाई नहीं दिया होगा, तब उसने इस शीशे को अपने सामने यह सोचकर रख लिया होगा ताकि वह मुरली-मनोहर की छवि देखती रहे और श्यामसुन्दर उसके चन्द्रमुख को देखते रहें।" यह बात सुनकर सभी व्रजबालाएँ और अधिक सौतियाडाह में भरकर उन्हें ढूँढ़ती हुई आगे चलीं। कुछ दूर आगे जाकर उन्होंने यह देखा कि राधा-रानी वन में अकेली खड़ी, हाथ पसारे, इस प्रकार रो रही हैं, जैसे मणि खो जाने पर सर्प व्याकुल हो जाता है। उनका विलाप सुनकर उस वन के सभी पशु-पक्षी तथा वृक्ष भी रो रहे थे। वे रो-रोकर इस प्रकार कह रही थीं—"हे प्राणप्यारे! तुम मुझे इस रात्रि के समय वन में अकेली छोड़कर कहाँ चले गये हो?" अस्तु, वहाँ राधारानी को खड़ी देखकर सब गोपियों को ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसे किसी का खोया हुआ आधा धन लौट कर मिल जाय। सभी गोपियाँ दौड़कर उनके गले से जा लगीं तथा बार-बार यह पूछने लगीं कि हमारे प्राणप्यारे नन्दनन्दन कहाँ चले गये हैं? सखियों की बात सुनकर राधारानी पहिले तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, फिर जब ललिता आदि सखियों ने उन्हें उठाकर बहुत प्रकार से समझाया तो वे ठण्ढी श्वास लेती हुईं इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखियो! निष्ठुर मनमोहन का पता तुम मुझसे क्या पूछती हो? मुझे तो स्वयं ही यह नहीं मालूम कि वे मुझे छोड़कर कहाँ चले गये हैं?"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! श्री श्यामसुन्दर का राधारानी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोड़ जाने का यह कारण था कि जब श्री बाँकेविहारी उन्हें साथ लेकर गोपियों के बीच से अन्तर्धान हुए तथा उन्हें पुष्पों के गहने पहिनाकर उनके साथ भोग-विलास करके सुख पहुँचाया, उस समय राधिकाजी ने अभिमान करके अपने मन में यह विचार किया कि कोई अन्य नारी मेरे समान सुन्दर नहीं है। मैंने श्री मुरलीमनोहर को अपने वश में कर लिया है। उन्होंने केवल मेरे ही कारण अन्य गोपियों को बुलाकर रासमण्डल रचाया था, अतः इसी लिए मुझे वहाँ से लेकर चले आये हैं। ऐसा विचार करके राधिकाजी ने श्री-श्यामसुन्दर से कहा—" हे प्यारे ! नृत्य करने तथा मार्ग में चलने के कारण मेरे पाँव दुखने लगे हैं सो तुम मुझे अपने कन्धे पर बैठाकर ले चलो।" जब मुरलीमनोहर ने यह वचन सुने तो उन्होंने जान लिया कि अब राधा ने भी मेरी महिमा को न जानकर गर्व किया है। तब उन्होंने सोचा कि अब इसका गर्व भी नष्ट कर देना चाहिए। यह विचार करके श्री बाँकेविहारी ने अपनी पीठ नीचे झुका, मुस्कुराते हुए उनसे कहा—"आओ, तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ।" यह सुनकर जैसे ही राधारानी हाथ बढ़ाकर उनके कन्धे पर बैठने को हुईं तैसे ही श्री गिरधरगोपाल वहाँ से अन्तर्धान हो गये और वे जैसी की तैसी हाथ पसारे खड़ी रह गईं। अस्तु—

हे परीक्षित ! जब गोपियों ने राधारानी को धैर्य देकर सब वृत्तान्त पूछा और उन्होंने अपने मन के अभिमान का सब हाल कह सुनाया, उस समय सभी गोपियाँ श्री मनमोहन के विरह में व्याकुल होकर विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे नन्दकिशोर ! आपके विरह में हमें एक-एक क्षण कल्प के समान प्रतीत हो रहा है, हमारे प्राण निकलना ही चाहते हैं; अतः अब आप दया करके हमें अपना दर्शन दीजिए।" इसका भी जब कोई परिणाम नहीं निकला, तब एक सयानी गोपी ने इस प्रकार कहा—"हे सखियो ! इस प्रकार रोने तथा भागने-दौड़ने से कार्य सिद्ध नहीं होगा। श्री श्यामसुन्दर जब स्वयं दयालु हों, तभी हमें उनके दर्शन मिल सकते हैं। अतः मेरी सम्मति में हम सबको एक स्थान पर बैठकर उनका स्मरण करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने से वे हमें अपना दर्शन अवश्य देंगे।" उस गोपी की बात सबको ठीक लगी। तब वे सब उसी यमुना-तट पर आ, जहाँ से श्री श्यामसुन्दर अन्तर्धान हुए थे, बैठकर उनकी परस्पर चर्चा करने लगीं तथा उस चबूतरे की ओर देखती हुई इस प्रकार कहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगीं कि हे चितचोर ! तुमने जब से जन्म लिया है, तभी से हमारी रक्षा करके, हमें सुख पहुँचाया है, फिर आज इतने कठोर बनकर हमें दुःख-सागर में क्यों डुबा रहे हो ? यदि तुम्हें हमारे प्राण ही लेने थे, तो हमारे ऊपर गोवर्द्धन पर्वत क्यों नहीं गिरा दिया ? इतना कहकर गोपियों ने योगमाया को, जो अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार के स्वरूप धारण कर लेती थी, साथ लेकर परस्पर श्री कृष्णचन्द्रजी की बाल-लीलाओं का अभिनय आरम्भ कर दिया। एक व्रजबाला ने अपना रूप कृष्ण का बनाया तथा योगमाया को पूतना बना दिया। तदुपरान्त दधि-माखन-लीला, ऊखल-बन्धन आदि के चरित्र किए। फिर योगमाया को यमलार्जुन बनाकर, उसका चरित्र किया। इसी प्रकार उसे वत्सासुर, बकासुर, तृणावर्त, अघासुर आदि बनाकर, कृष्ण-रूपी गोपी ने मार गिराया। जब योगमाया ने वहाँ बहुत-सी गौएँ प्रकट कर दीं तब कृष्णरूपी गोपी उन्हें चराने लगी। तत्पश्चात् काली-दमन, गोवर्द्धन आदि की लीलाएँ कीं। उस समय सब गोपियाँ पुकारती हुई यह कहती जाती थीं कि हे मनमोहन ! देखो, हम तुम्हारे चरित्र का स्मरण करके अपने मन को धैर्य बँधा रही हैं, अब तुम शीघ्र ही अपना दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो। हे परीक्षित ! श्री श्यामसुन्दर के बालचरित्रों की लीला में गोपियाँ ऐसी मग्न हुईं कि अपने शरीर एवं वस्त्रों का ध्यान भी भुला बैठीं।"

इकतीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी के वियोग में गोपियों का विलाप

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! जब गोपियों का चित्त ठिकाने पर आया तो वे यमुना-तट पर बैठकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे प्रियतम ! तुम जब से व्रज में आये हो, तभी से तुमने हमें प्रतिदिन नये-नये सुख प्रदान किये हैं। हे प्रभो ! आपने जिन हाथों से लक्ष्मी को स्वीकार कर, उन्हें अपने हृदय में स्थान दिया, वे ही हाथ अब आप हमारे मस्तक पर रख दीजिए। हे चितचोर ! हमने जब से आपकी मोहनी मूर्ति देखी है, तब से हम संसारी व्यवहारों का ध्यान भुलाकर केवल तुम्हारे ही चरणों की दासी बन गई हैं। अतः इस समय हमें रोते हुए देखकर, अपना दर्शन दे, प्रसन्न कर दीजिए। यदि आपको अपने विरह में हमें मारना ही था तो फिर दैत्यों, काली-नाग, दावाग्नि तथा इन्द्र के कोप से हमारी रक्षा क्यों की ? यदि आप नन्द-यशोदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पुत्र होते तो ऐसी कठोरता कभी न करते। न जाने आप किसके द्वारा उत्पन्न हुए हैं? हम जो आपके प्रति ऐसे कठोर वचन कह रही हैं, इनसे आप हमारे मन की गति भली भाँति जान सकते हैं।" इसी बीच एक दूसरी सखी ने सबको सुनाकर कहा—"हे सखियो! सुनो, हमारे चितचोर का एक नाम दीनदयालु भी है, सो वे ताना मारने से प्रसन्न न होंगे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए तो उनकी विनय ही करनी चाहिए।" यह सुनकर सब व्रजाङ्गनाएँ इस प्रकार कहने लगीं—"हे दीनानाथ! आप केवल नन्द-यशोदा के पुत्र ही नहीं हैं। आपको ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं ने प्रार्थना करके पृथ्वी का भार उतारने के लिए इस संसार में भेजा है। हे प्राणेश्वर! हमें बड़ा आश्चर्य लग रहा है कि जब आप हम अबलाओं के साथ ऐसा व्यवहार करके, हमारे प्राण ले रहे हैं, तो किसी की रक्षा क्या करेंगे? हे श्यामसुन्दर! जिस समय हमें आपकी बंकिम भ्रू की तथा हृदय-हारिणी बातों का स्मरण होता है, उस समय हमारा चित्त ठिकाने पर नहीं रहता। हे प्रभु! जिस समय आप गौ चराने के लिए वन में जाते थे, उस समय आपके लौटने के समय तक के चार प्रहर हमें चार युगों के समान प्रतीत होते थे तथा सन्ध्या समय आपका दर्शन प्राप्त करके हम यह कहा करती थीं कि ब्रह्माजी बड़े मूर्ख हैं, जिन्होंने आँखों पर यह पलक बना दिये हैं, जिनके कारण हमें—जितनी देर तक पलक भँजते हैं—उतनी देर तक आपके दर्शनों का लाभ नहीं मिलता। हे जगदीश्वर! ब्रह्मा, शिव आदि देवता आपके चरण-कमलों का ध्यान निरन्तर धरते रहते हैं, उन्हीं अपने चरणों का दर्शन देकर आप हमारी इच्छा पूर्ण कीजिए। हे मनमोहन! जब आपके विरह में हमारे प्राण निकल जायँगे, तब बाद में आप हमें अमृत पिलाकर क्या कीजिएगा? हे मुरलीमनोहर! अब तक हम आपके दर्शन प्राप्त करने की अभिलाषा में ही अपने प्राण बचाये हुए हैं, सो आप शीघ्र ही प्रकट होकर हमारी मनोकामना पूर्ण कीजिए तथा अपनी वंशी की ध्वनि सुनाकर हमारी चिन्ता नष्ट कीजिए। हे स्वामी! रात्रि के समय स्त्रियों को अकेली कोई नहीं छोड़ता। जिस प्रकार आप लक्ष्मीजी को दिन-रात अपने हृदय से लगाये रहते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपने चरणों से पृथक् मत कीजिए। हे प्रभो! संसार में आपका नाम 'गोपीनाथ' प्रसिद्ध हो चुका है। अतः अब आप अपने नाम की लज्जा बचाइये। हे नाथ! आप अपने शरीर के श्याम रंग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के समान अपने हृदय को भी काला क्यों बना रहे हैं ? आपको ढूँढ़ते हुए हमारे पाँवों में काँटे चुभ रहे हैं, फिर भी आपको हमारे ऊपर दया क्यों नहीं आती ? हे व्रजेन्द्र ! हमें अपने दुःख पाने की उतनी चिन्ता नहीं है, जितना शोक रात्रि को भागते समय आपके चरण-कमलों में काँटे चुभने का अनुभव करके हो रहा है। हे मनमोहन ! आपके चरणों में जो काँटे चुभे होंगे, वे हमारे हृदय में कसक रहे हैं, क्योंकि हमारे हृदय में आपके चरण-कमलों का वास है। अब आप यहाँ शीघ्रतापूर्वक आकर हमारे कोमल हृदय पर अपने चरणों को मलिए, जिससे हमें शान्ति प्राप्त हो सके। यदि आप आना न चाहते हों तो किसी एक स्थान पर बैठकर रात्रि व्यतीत कर दीजिए, जिससे आपको कष्ट न पहुँचे। हे प्रभो ! हमने अपने जान में कोई अपराध नहीं किया है, फिर आप ऐसी कठोरता क्यों दिखा रहे हैं। यदि आप यों कहें कि इस रात्रि के समय हम अपने पति की आज्ञा लिये बिना आपके पास क्यों चली आईं तो इसका उत्तर यह है कि आपकी मुरली की ध्वनि को सुनकर देवता एवं ऋषियों का चित्त भी ठिकाने नहीं रहता तथा देवकन्याएँ मुग्ध होकर अपने को सँभाल नहीं पाती हैं, तब हम में ऐसी सामर्थ्य कहाँ से आई, जो हम उसे सुनकर मूर्च्छित न हो जायँ ? हे नाथ ! यदि आप कहें कि तुम्हारी कामाग्नि अपने पतियों से भेंट करने पर बुझ जायगी, तो हमारा यह उत्तर है कि यदि वे हमारी कामाग्नि को शान्त करने योग्य होते तो हम उन्हें छोड़कर आपके पास आती ही क्यों ? हे प्रभो ! इस प्रकार हमारे मन, वचन तथा कर्म की प्रीति पर विचार करके आप हमें अपना दर्शन देकर कृतार्थ कीजिए।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार अत्यन्त विलाप करने पर भी जब श्री कृष्णचन्द्र ने दर्शन नहीं दिये तो सभी गोपियाँ उनके मिलने की आशा त्याग, व्याकुलता से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। तदुपरान्त अत्यन्त अधीरता से रोती हुई इस प्रकार बोलीं—"हे मुरलीमनोहर ! अब आपके विरह में हमारे प्राण निकले जा रहे हैं, अतः आप जो उचित समझें, वह करें।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बत्तीसवाँ अध्याय

गोपियों के बीच श्री कृष्णचन्द्रजी का प्रकट होना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इस प्रकार जब सभी गोपियाँ विलाप करती हुई मृतक-तुल्य हो चलीं, उस समय दीनदयालु श्री कृष्णचन्द्रजी उनकी सच्ची प्रीति देखकर वैजयन्ती माला तथा पीताम्बर धारण किए हुए, उनके बीच इस प्रकार प्रकट हो गये, जिस प्रकार नट अपनी चतुराई से अन्तर्धान होकर फिर प्रकट हो जाते हैं। जब गोपियों ने उन्हें अपने बीच इस प्रकार उपस्थित देखा तो वे सबकी सब सचेत हो, इस तरह उठकर खड़ी हो गईं, जैसे मृतक-शरीर में नूतन प्राणों का संचार हो गया हो। उस समय उन्हें जो प्रसन्नता प्राप्त हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस आनन्द को वही मनुष्य कुछ अनुभव कर सकता है, जिसका बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ मित्र फिर से आ मिला हो। जिस प्रकार कमल का फूल रात्रि में मलिन रहता है तथा प्रातःकाल सूर्य को देखकर प्रस्फुटित हो उठता है, उसी प्रकार श्री बाँकेविहारी के सूर्य रूपी कुण्डलों को देखकर कमलरूपी व्रज-बालाएँ प्रसन्न हो उठीं। हे राजन्! उस समय उन्होंने अपने मनमोहन प्यारे को चारों ओर से घेर लिया तथा उनके अंगों से लिपटकर अपने हृदय को शीतलता प्रदान की। उस समय राधारानी इस प्रकार कहने लगीं—हे प्राणेश्वर! हम सब आपकी प्रीति में लोकलाज को त्यागकर यहाँ आई हैं, परन्तु आप हमें छोड़कर अन्तर्धान हो गये, यह कहाँ का न्याय है?" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे प्यारी! तुम्हें रात्रि के समय घर से यहाँ आना उचित नहीं था। यदि तुम वहीं बैठकर मेरा ध्यान करती तो मैं अधिक प्रसन्न होता।" इतना कहकर श्री श्यामसुन्दर ने राधारानी को अपने कण्ठ से लगा लिया तथा अन्य व्रजबालाओं को भी मीठी-मीठी बातें सुनाकर प्रसन्न कर दिया। उस समय एक व्रजबाला ने उनके हाथ से कमल का फूल छीन लिया तथा दूसरी उन्हें सुनाती हुई, इस प्रकार कहने लगी—"हे प्राण-प्यारे! आप इतनी देर तक कहाँ रहे?" इतना कहकर गोपी ने श्री श्याम-सुन्दर के मुख से अपना मुख मिलाकर, उनका जूठा पान बड़े प्रेम से खा लिया। तब तक दूसरी गोपी ने कहा—"हे मनमोहन! आप आँखों के आगे से तो भागकर चले गये, परन्तु हृदय से निकलकर भाग जाओ तब तो मैं जानूँ कि आप बड़े बलवान् हैं।" इस प्रकार कह-कहकर सभी गोपियाँ अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाग्य को सराहने लगीं। तब श्री कृष्णचन्द्रजी उनके अनन्य प्रेम को देख, उन्हें यमुना-तट पर ले गये। वहाँ एक गोपी ने अपनी चूनर बिछाकर, उस पर श्री श्यामसुन्दर को बैठा दिया तथा सभी गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गईं। उस समय एक गोपी रोष-सा दिखाती हुई इस प्रकार कह उठी—"हे मनमोहन! तुम ऐसे छलिया हो कि दूसरे का चित्त चुपचाप चुरा लेते हो तथा किसी पराये का गुण नहीं मानते हो, अतः अब या तो तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो, नहीं तो हम तुम्हारे ऊपर अपने प्राण दे देंगी।" इस प्रकार कहकर, जब सब गोपियों ने उस चाँदनी की शोभा को देख, कामातुर हो, श्री कृष्णचन्द्रजी से भोग करने की इच्छा प्रकट की, उस समय अन्तर्यामी श्रीहरि ने उनका मनोरथ पूर्ण करने के लिए—जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही स्वरूप धारण कर लिये। उस समय सभी व्रजबालाओं ने अपनी-अपनी चुनरी बिछाकर, उनके ऊपर मनमोहन प्यारे को बैठा दिया तथा उनसे कामपूर्ण वार्तालाप करने लगीं। तब श्री श्यामजी ने पहिले तो उन्हें अपनी बाल-लीला का सुख दिखाया, फिर किशोर अवस्था धारणकर, सब गोपियों से अलग-अलग गान्धर्व विवाह किया। तदुपरान्त सबके मन की अभिलाषा पूर्ण की। उस समय एक व्रजबाला ने आनन्द में भरकर तिरछी चितवन किये इस प्रकार कहा—"हे चितचोर! तुम बड़े कपटी हो जो हम भोली बालाओं को छल कर धोखा देते हो। यद्यपि हमारा मन तुमसे बोलने को नहीं चाहता, परन्तु तुम्हारी साँवली सूरत को देखकर हम ऐसी विवश हो जाती हैं कि तुमसे बातें किये बिना भी किसी प्रकार काम नहीं चलता है। इसलिए तुम्हें भी अपने हृदय से इस कपट तथा अवगुणों को त्याग देना चाहिए।" यह सुनकर एक दूसरी गोपी बोली—"हे आली! मैं मनमोहन प्यारे के मुख से ही उनकी कठोरता का वर्णन कराये देती हूँ।" इतना कहकर उस परम चञ्चल गोपी ने श्री कृष्णजी की ओर देख, मुस्कुराते हुए पूछा—"हे चितचोर! संसार में मनुष्य चार प्रकार के होते हैं। पहिले वे जो परस्पर प्रीति रखकर आपस में एक दूसरे की नेकी के बदले भलाई करते हैं। दूसरे वे जिनमें एक के हृदय में तो प्रीति होती है; परन्तु दूसरे के हृदय में नहीं होती। तीसरे वे जो बुराई करनेवाले के साथ भी भलाई करते हैं तथा चौथे वे जो नेकी करनेवाले के साथ जान-बूझकर बुराई करते हैं। अब तुम यह बताओ कि इन चारों में कौन भला है और कौन बुरा है?" यह सुनकर श्री श्यामजी ने उत्तर दिया—"हे प्यारी! मैं स्वयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह चाहता था कि तुमसे संसारी मनुष्यों के सम्बन्ध में कुछ कहूँ, अतः अब तुम अपने प्रश्न का उत्तर मन लगाकर सुनो। जो मनुष्य परस्पर भलाई के बदले भलाई करते हैं, उन्हें संसार में उत्तम समझना चाहिए। जिस प्रकार कि लोग विवाह आदि में दूसरे के घर खाने-पीने आदि की वस्तुएँ भेजते हैं; परन्तु ऐसी प्रीति सदैव स्थिर नहीं रहती। दूसरे लोग वे हैं जिनमें एक ओर तो प्रीति होती है, परन्तु दूसरी ओर नहीं होती, जिस प्रकार कि माता-पिता अपने पुत्र पर अत्यन्त प्रेम रखते हैं, परन्तु पुत्र उन्हें उतना प्यार नहीं करता। तीसरे मनुष्य जो बिना किसी प्रयोजन के भलाई करते हैं, उन्हें वर्षा के समान जानना चाहिए। जिस प्रकार वर्षा का पानी छोटे-बड़े सब लोगों को सुख पहुँचाता है तथा उसके बदले में स्वयं किसी से कुछ नहीं चाहता। इस श्रेणी में परमहंस तथा महात्माओं को ही समझना चाहिए, क्योंकि वे भी दूसरे का भला करके, उससे कोई इच्छा नहीं रखते हैं। चौथे मनुष्य, जो जान-बूझकर बुराई करते हैं, उन्हें कृतघ्नी तथा अधर्मी जानना चाहिए।"

हे परीक्षित ! श्री कृष्णजी के मुख से ऐसे वचनों को सुनकर सब व्रज-बालाएँ संकेत करती हुई, एक-दूसरे को यह जताने लगीं कि श्री मोहनप्यारे उसी चौथी श्रेणी के लोगों में से हैं। उस समय श्री बाँकेविहारी ने उनके मन के भावों को पहिचानकर इस प्रकार कहा—"हे गोपियो ! तुम आपस में हँसकर इस प्रकार क्या कहती हो ? मैं तो निर्गुणरूप हूँ, अतएव किसी के साथ कुछ प्रीति नहीं रखता हूँ, इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति मुझसे किसी प्रकार की कामना रखता है, तो मैं उसका मनोरथ पूर्ण कर देता हूँ। मैं अपने विश्वम्भर नाम द्वारा संसार के सभी जीवों का भरण-पोषण करता हूँ। मैं किसी से कुछ भी नहीं माँगता, परन्तु जो व्यक्ति मेरे अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा न रखकर, केवल मेरे ही चरणों में अपना ध्यान लगाए रहता है, उससे मैं अत्यन्त स्नेह करता हूँ। यदि तुम यह कहो कि हम तुम्हारे चरणों में मन, वचन, कर्म से ध्यान लगाए रहती हैं, फिर भी तुम हमें छोड़कर क्यों चले गये, तो उसका उत्तर यह है कि मैंने तुम्हारी प्रीति की परीक्षा ली थी। यह जानकर तुम्हें अपने मन में बुरा नहीं मानना चाहिए। मैं प्रेम बढ़ाने के लिए ही तुम्हारे बीच से अन्तर्धान हो गया था। जिस प्रकार जाड़ों में धूप अच्छी लगती है, उसी प्रकार अपने प्रिय से अलग रहने में विशेष आनन्द प्राप्त होता है। हे गोपियो ! तुम्हारे प्रेम तथा ध्यान करने के कारण मैं अत्यन्त प्रसन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहता हूँ, परन्तु तुम जो इस रात्रि के समय अपने कुल की लोकलाज को त्यागकर यहाँ चली आई हो, यह मुझे अच्छा नहीं लगा है। तुम्हारे इस कार्य से न तो मुझे प्रसन्नता हुई और न अन्य लोग ही तुम्हें यश देंगे। मनुष्य को चाहिए कि जब तक वह जीवित रहे, तब तक कोई बुरा काम करके अपना उपहास न करावे। यदि मन में अशुभ कर्म करने की इच्छा बलवती हो उठे, तो उसे अपने ज्ञान द्वारा रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं यह बात जानता हूँ कि कामावेश में लज्जा की बेड़ियाँ टूट जाती हैं तथा किसी के उपदेश का मन पर प्रभाव नहीं पड़ता। तुम्हारी प्रीति को मैंने अलक्ष होकर देखा है, जिससे मैंने यह जाना कि तुमने मायारूपी सांसारिक बन्धनों को त्यागकर मुझसे सच्चा स्नेह किया है। इसलिए मैं तुम सबका ऋणी हूँ। हे प्राणप्रिये! यदि मैं ब्रह्मा की आयु के बराबर समय तक तुम सबकी अलग-अलग सेवा करूँ तो भी मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।"

तेंतीसवाँ अध्याय

महारासलीला का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! जब श्री कृष्णजी ने इस प्रकार प्रेम भरे वचन कहे, तब सब गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न हो, श्री मुरलीमनोहर का हाथ पकड़कर नृत्य करने लगीं।" इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे प्रभो! रासलीला के समय श्रीहरि जिस गोपी का हाथ पकड़े रहते थे, उसी की मनोकामना पूर्ण होती होगी, फिर अन्य सब गोपियों की अभिलाषा किस प्रकार पूरी हुई?" यह सुनकर श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया–"हे परीक्षित! श्रीहरि की महिमा को कोई नहीं जान सकता। उन्होंने प्रति दो गोपियों के बीच में एक स्वरूप प्रकट करके तथा अपने दायें-बायें हाथ से एक-एक गोपी का हाथ पकड़कर, गोलाकार रास-मण्डल बाँधे हुए सभी को सुख पहुँचाया था। उस समय सब गोपियाँ उनकी माया में मोहित हो, उनके अनेक स्वरूप धारण करने का भेद न जानकर, यही समझती थीं कि श्री कृष्णचन्द्रजी मेरे ही साथ नाच रहे हैं। अस्तु, उस आनन्दमय रास-मण्डल में नृत्य करते हुए, हाथ तथा पाँवों की ठोकर देकर, अङ्ग से अङ्ग रगड़ते हुए, कटाक्ष तथा भँवों को मटकाते हुए एवं गर्दन टेढ़ी करके कुण्डलों को हिलाते हुए श्री बाँकेबिहारी ने अपनी मीठी-मीठी बातों द्वारा सभी गोपियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का मन वश में कर लिया। वे सब भी अपने तन-मन की सुधि बिसरा कर, उनके साथ रास-नृत्य कर रही थीं। उस समय गोपियों के बीच में श्री श्यामसुन्दर की शोभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो स्वर्ण के आभूषणों में नीलमणि जड़ी हुई हो।

हे परीक्षित! उस आनन्द को देखकर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवताओं एवं ऋषि-मुनियों आदि ने श्रीहरि का ध्यान करना छोड़ दिया। वे सब अपनी-अपनी स्त्रियों सहित विमानों पर बैठकर श्री मुरलीमनोहर की रास-लीला का आनन्द देखने के लिए आकाश में घिर आये तथा पुष्पवर्षा करते हुए गोपियों के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। देव-कन्याएँ तथा अप्सराएँ उस लीला को देख, काम के वशीभूत हो, ऐसी मोहित तथा अचेत हो गईं कि उनकी कमर के घुँघरू खुलकर गिर पड़े और तन-मन की सुधि भूल गईं। गन्धर्वों ने अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए गीत गाना आरम्भ कर दिया। उस समय आकाश-मण्डल में चन्द्रमा तारागणों सहित चित्र लिखे-से खड़े रह गये तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर रासमण्डल के ऊपर अपनी किरणों द्वारा अमृत की वर्षा करने लगे। हे परीक्षित! चन्द्रमा के स्थिर रह जाने से वह रात्रि छः महीने के समान हो गई, परन्तु श्रीहरि की माया से किसी को भी रात्रि बढ़ने के हाल का पता न चला। उस दिन से संसार में उस रात्रि का नाम 'प्रेम-रात्रि' प्रकट हुआ।

हे परीक्षित! नृत्य करते समय व्रजाङ्गनाओं के मुख से पसीना निकल-कर बिखरे हुए बालों में ऐसी शोभा दे रहा था, मानो काले सर्प ओस की बूँदें चाटने के लिए आये हों। उस समय श्री मुरलीमनोहर अपने पीताम्बर से उनका पसीना पोंछ दिया करते थे। जिस समय कोई गोपी नृत्य करते समय श्री श्यामसुन्दर का हाथ पकड़कर नीचे बैठ जाती थी, उस समय भी नृत्य की गति, ताल और स्वर भङ्ग नहीं होता था। उस समय कोई व्रजबाला श्रीहरि से यह कहती थी कि हे प्राणप्यारे! नृत्य करते-करते मेरे पाँव दुखने लगे हैं सो थोड़ा-सा विश्राम लेकर फिर नाचूँगी तथा कोई यह कहती थी कि हे बाँकेविहारी! तुम्हारे कण्ठ में पड़ा हुआ यह हार अत्यन्त सुन्दर लग रहा है। कोई श्रीहरि के कण्ठ से लगकर यह कहती थी—"हे चितचोर! मैं तुम्हारी शरण में आ पड़ी हूँ, अब तुम कभी मुझे अपने चरणों से अलग मत करना। कोई उनके हाथ से कमल का फूल छीनकर इस प्रकार कहती थी कि हे साँवरे!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम तनिक मेरे हृदय पर हाथ रखकर तो देखो कि वह कैसा धड़क रहा है? हे प्यारे! तुम मेरे हृदय में आठों प्रहर निवास करते हो, इसीलिए मैं यह चाहती हूँ कि इस धड़कन से तुम्हें कोई कष्ट न पहुँचे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार छः राग तथा छत्तीस रागिनी अलापते हुए श्री श्यामसुन्दर व्रजबालाओं के साथ नृत्य करते हुए, उन्हें आनन्द पहुँचा रहे थे। उस रास-रंग में सभी गोपियाँ कामदेव के मद में भरकर ऐसी मोहित हो गईं कि उन्हें अपने शरीर का कोई ध्यान नहीं रहा। कभी-कभी नृत्य में घूमते समय जब उनका आँचल उड़ जाता था, उस समय उनके स्तनों की सुन्दरता को देखकर देवता भी मोहित हो जाते थे। कभी श्री बाँकेविहारी का मुकुट खुलकर गिरने लगता था, तो गोपियाँ उसे अपने हाथों से बाँध देती थीं। कभी गोपियों का कंठहार टूटकर गिर पड़ता था तो कभी श्री बाँकेविहारी की वनमाला सरक जाती थी, परन्तु उन्हें उठाने का किसी को ध्यान ही नहीं आता था। कभी कोई गोपी श्री बाँकेविहारी के स्वर में अपना स्वर मिलाकर इस प्रकार गा उठती थी कि उसे सुनकर श्री मुरलीमनोहर अपनी वंशी बजाना भी भूल जाते थे।

हे परीक्षित! जिस तरह बालक अपना मुख दर्पण में देखकर भूल जाता है, उसी प्रकार सब गोपियाँ भी रास-रंग में मतवाली बनकर अपने वस्त्र तथा आभूषण एक दूसरी पर न्योछावर कर रही थीं। उस समय ऐसी समाँ बँधी कि यमुना नदी का जल बहना छोड़कर स्थिर हो गया। उस वन के पशु-पक्षी भी ऐसे मोहित हुए कि चलना, फिरना तथा उड़ना त्यागकर चित्र-लिखे की भाँति खड़े होकर उस आनन्द को निर्निमेष दृष्टि से देखने तथा सुख प्राप्त करने लगे। उस रास-मण्डल के मध्य भाग में श्री राधिकाजी को नाचते हुए देखकर सभी गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न हो उन पर बलि-बलि जाती थीं। उसी समय एक गोपी ने नन्द बनकर दूसरी गोपी को वृषभानु का स्वरूप बनाया। तत्पश्चात् उन्होंने राधारानी का श्री श्यामसुन्दर से विवाह करके समधियों के समान आपस में शिष्टाचार किया। फिर राधारानी के हाथ में कङ्कण बाँधकर श्री श्यामसुन्दर से उसे खोलने के लिए कहा। जब कङ्कण नहीं खुला तो सभी गोपियाँ हँस-हँसकर सुख प्राप्त करने लगीं। तदनन्तर वे श्री कृष्णजी की पूजा करते हुए इस प्रकार कहने लगीं कि हमारे प्यारे नन्दकुमार तथा वृषभानुलली की यह जोड़ी अमर बनी रहे। हे परीक्षित! गोपियों द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किये गये इस अभिनय को देखकर श्री राधा-माधव अत्यन्त प्रसन्न होते थे। नृत्य करते समय गोपियों के अङ्गों से जो पुष्प टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके ऊपर ऋषि-मुनि भौंरों का स्वरूप धरकर उड़ने तथा उन्हें सूँघने लगे। परन्तु जब उन्होंने गोपियों के घुँघरू तथा पायजेबों के गूँजने का शब्द सुना, उस समय अपना गुंजन भुलाकर स्तम्भित-से खड़े रह गये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! गोपियों के भाग्य की प्रशंसा करने की सामर्थ्य किसमें है?" उन्होंने स्वयं मुक्ति पाकर अपने माता-पिताओं की तीन पीढ़ी तक को मुक्त कर दिया। परमात्मारूपी पुरुष श्री कृष्णचन्द्रजी ने, जीवात्मारूपी गोपियों के साथ रासलीला करके, उन्हें जैसा सच्चा सुख प्रदान किया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार अबोध बालक दर्पण में अपना मुख देखकर अपनी ही परछाईं से खेलने लगता है, उसी प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी ने भी उन सब गोपियों के साथ रासलीला की। नृत्य करते समय जब कभी गोपियों के शरीर से चन्दन तथा केशर छूटकर श्री कृष्णजी के अङ्ग तथा माला से लग जाता था, उस समय श्री श्यामसुन्दर उनसे इस प्रकार कहते थे कि आज मैंने चन्दन नहीं लगाया था सो वह अब तुम्हारे शरीर से लगकर मेरे शरीर को सुगन्धित बना रहा है। जिस समय गोपियाँ कूदती हुई नीचे गिर पड़ती थीं, उस समय श्री मुरलीमनोहर उन्हें अपनी भुजाओं में भर कर ऊपर उठा लिया करते थे। उस दृश्य को देखकर देवतागण ईर्ष्यावश इस प्रकार कहते थे कि यदि हमारा जन्म भी वृन्दावन में हुआ होता तो हम भी इस आनन्द को प्राप्त करते।

हे राजन्! रासलीला करते समय श्री बाँकेविहारी को इच्छा हुई तो वे जगने की गर्मी मिटाने के लिए, सब गोपियों सहित यमुना-जल में पैठ गये। वहाँ वे गोपियों के साथ इस प्रकार जल-क्रीड़ा करने लगे, जिस प्रकार कोई मतवाला हाथी अपनी हथिनियों के साथ करता है। यमुना-स्नान करने पर जब गर्मी तथा थकान दूर हो गई तो वे सबके साथ जल से बाहर निकले। उस समय योगमाया ने सभी गोपियों को उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाये तथा केशर, इत्र आदि की सुगन्ध लगाकर सबको ऐसी मालाएँ पहिनाईं, जिनके पुष्प कभी न मुरझाएँ। गोपियों ने जो गीली धोतियाँ उतार दी थीं, उन्हें देवताओं ने प्रसादस्वरूप एक-एक टुकड़ा बाँटकर अपने पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रख लिया। तदुपरान्त श्री मनमोहन ने गोपियों से इस प्रकार कहा—"हे प्राणप्यारियो! अब चार घड़ी रात्रि शेष रह गई है तथा स्नान करने के कारण तुम्हारी थकान भी दूर हो चुकी है, इसलिए अब तुम सब अपने-अपने घर को चली जाओ।" तब मुरलीमनोहर के मुख से ऐसे वचन सुनकर सभी व्रजबालाओं ने उदास होकर कहा—"हे प्राणप्यारे! हम लोग आपके चरणारविन्दों को त्याग कर अपने घर किस प्रकार जायँ।" श्री व्रजमोहन ने उत्तर दिया—"हे गोपियो! जिस प्रकार ऋषि-मुनिगण अपने हृदय में मेरा ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार तुम भी अन्तःकरण से मेरा स्मरण किया करो तो मैं सदैव ही तुम्हारे पास बना रहूँगा।" यह सुनकर सब गोपियाँ अपने मन में धैर्य धारणकर आनन्दकन्द श्री व्रजचन्द्रजी से बिदा होकर अपने-अपने घर लौट आईं। हे राजन्! जब सब गोपियों ने अपने घरवालों को घोर निद्रा में मग्न देखा तो सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रीहरि की माया से उनके घरवालों को भी यह पता नहीं चला कि हमारी स्त्रियाँ रात्रि में कहीं बाहर रही थीं। इसीलिए उन्होंने श्री कृष्णजी के प्रति अपने मन में कुछ बुरा नहीं माना। इस भाँति श्री नन्दनन्दन कभी-कभी गोपियों को बुलाकर उनके साथ रासलीला तथा वन-विहार किया करते थे।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मन में एक सन्देह यह है कि श्री श्यामसुन्दर ने तो पृथ्वी का भार हटाने तथा धर्म की रक्षा करने के लिए अवतार लिया था, फिर उन्होंने वेद-शास्त्रों की मर्यादा के विपरीत पराई स्त्रियों के साथ विहार क्यों किया?" यह सुनकर श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित! हम तुमसे गोपियों के जन्म का वृत्तान्त पहिले कह चुके हैं कि वे सब वेद की ऋचाएँ थीं तथा श्री लक्ष्मीजी ने राधारानी का अवतार लेकर श्री बाँकेविहारी के साथ लीलाएँ की थीं, इसलिए उन्हें श्री कृष्णजी से पृथक् नहीं समझना चाहिए। श्रीहरि निर्गुण-स्वरूप हैं, उन्हें संसारी बातों से कोई प्रयोजन नहीं रहता। अतः उन्हें कोई दोष न लगाकर, संसारी मनुष्यों को वेद-शास्त्रों में वर्णित धर्म के अनुसार ही चलना चाहिए। श्री नारायणजी की लीलाओं में सन्देह करना उचित नहीं है, ऐसा करने से मनुष्य को पाप लगता है। जिन श्रीहरि का ध्यान लगाने के कारण बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कृतार्थ हो जाते हैं, उन्हें इस प्रकार मनुष्य समझकर दोष लगाना उचित नहीं है। जिस प्रकार अशुद्ध वस्तु भी अग्नि में जलने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से पवित्र हो जाती है, उसी प्रकार समर्थ व्यक्ति क्या नहीं करते ? ये सब लीलाएँ श्री श्यामसुन्दर ने संसारी जीवों को भव-सागर से पार उतारने के लिए की थीं, ताकि मनुष्य उनका ध्यान धरकर तथा वर्णन करके मुक्ति-पदार्थ प्राप्त करें। जो मनुष्य श्रीहरि के लीला-चरित्रों का स्मरण करता है, उसका मनोरथ अवश्य पूरा होता है। वे प्रभु सब में रमे हुए रहकर भी सबसे पृथक् हैं। बिना ज्ञान प्राप्त हुए किसी को दिखाई नहीं देते। सब तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल श्री गोपीनाथ का स्मरण करने से सहज सुलभ हो जाता है। हे राजन् ! गोपियों के जो पति थे, उनके शरीर में भी श्रीहरि का प्रकाश था। अतः सब गोपियों का वास्तविक पति श्री मुरलीमनोहर को ही समझना चाहिए। हे परीक्षित ! जो प्राणी इस रासपंचाध्यायी की कथा को पढ़ता, सुनता अथवा कहता है, वह सब पापों से छूटकर मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। श्रीहरि की कथा में किसी प्रकार का सन्देह न करके वेद तथा पुराणों के वचनों का विश्वास करना चाहिए। हे राजन् ! अब तू भविष्य में कभी ऐसा सन्देह अपने हृदय में मत लाना। भला, अज्ञानी मनुष्य को क्या सामर्थ्य है, जो वह अपनी बुद्धि के प्रयोग द्वारा श्रीहरि के कार्यों में हस्तक्षेप कर सके ? श्री कृष्णचन्द्रजी के इस लीला-चरित्र का जो मनुष्य सच्चे मन से ध्यान धरता है, उसे निस्सन्देह मुक्ति-पदार्थ प्राप्त होता है।"

चौंतीसवाँ अध्याय

शंखचूड़ की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! जिस प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी ने 'सुदर्शन' नामक विद्याधर को सर्प की योनि से मुक्त किया तथा 'शंखचूड़' नामक दैत्य को मारा, अब हम वह कथा कहते हैं, ध्यानपूर्वक सुनो। एक बार नन्दरायजी ने सब ग्वालबालों तथा गोपियों से यह कहा कि जब कन्हैया का जन्म हुआ था, उस समय मैंने यह मनौती मानी थी कि जब इसकी उम्र बारह वर्ष की होगी, तब मैं अपने सब भाई-बन्धुओं सहित बाजे-गाजे से अम्बिका देवी का पूजन करूँगा। श्री देवीजी की कृपा से मुझे वह दिन अब दिखाई दिया है, अतः हम सब लोगों को उनका पूजन करने के लिए चलना चाहिए। नन्दजी के ऐसे वचन सुनकर सभी गोपी-ग्वालों को अत्यन्त प्रस-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्नता हुई। तब एक दिन नन्द, यशोदा, श्याम, बलराम तथा अन्य सभी छोटे-बड़े गोप-ग्वाल दूध-दही, मेवा आदि सामग्रियों को छकड़ों में भर-भरकर गाते-बजाते हुए देवी का पूजन करने के लिए चल दिये। फिर सरस्वती नदी के तीर पर पहुँचकर सबने स्नान किया तथा पुरोहित बुलाकर विधि-पूर्वक देवी का पूजन करने के उपरान्त हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए, इस प्रकार कहने लगे—"हे अम्बिके! तुम्हारी कृपा से हमारी मनोभिलाषा पूर्ण हुई है।" तदुपरान्त नन्दराय ने ब्राह्मणों को बहुत-सी गौएँ तथा स्वर्ण का दान देकर, एक सहस्र ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन कराया। उस दिन शिवजी भी अन्य देवताओं सहित वहाँ दर्शन करने के लिए गये हुए थे। अस्तु रात्रि के समय सब लोग थककर वहीं सो रहे। उस समय उन्हें ऐसी नींद आई कि किसी को अपने शरीर का ध्यान भी नहीं रहा।

हे परीक्षित! उसी निद्रा में आधी रात के समय एक अजगर ने आकर नन्दजी का पाँव निगल लिया। उस समय नन्दजी ने जगकर रक्षा करने के लिए श्री कृष्णजी को पुकारना आरम्भ कर दिया। उनकी आवाज को सुनकर अन्य सभी गोपी-ग्वाल भी जग पड़े। जब उन्होंने नन्दजी की ऐसी दशा देखी तो वे जलती हुई लकड़ियों से उस सर्प को मारने लगे; परन्तु वह फिर भी वहीं ज्यों का त्यों बना रहा। अन्त में सब लोगों ने हारकर श्री कृष्णजी को जगाया। हे राजन्! जिस समय श्री श्यामसुन्दर ने उस सर्प के पास पहुँचकर उसे अपने बायें पैर के अँगूठे का स्पर्श कराया, उसी समय वह अजगर नन्दजी के पाँव को छोड़कर दिव्य वेशधारी वस्त्राभूषणों से अलंकृत एक राजा के समान प्रकट हो, हाथ जोड़कर श्री मुरलीमनोहर की स्तुति करने लगा। इस आश्चर्य को देखकर नन्द आदि सभी गोप-ग्वाल स्तम्भित-से रह गये। जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने उससे यह पूछा कि तुम कौन हो? अपना हाल कहो। तब उसने उत्तर दिया—"हे त्रिलोकीनाथ! आपसे क्या बात छिपी हुई है? मैं सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ। पहिले मैं हंसपुर में रहता था तथा अपनी बुद्धि, सुन्दरता तथा धन के अभिमान में किसी को कुछ नहीं समझता था। सब देवता लोग भी मेरा अत्यन्त सम्मान करते थे। एक समय मैं विमान पर बैठकर घूमने के लिए निकला। मार्ग में 'अङ्गिरा' ऋषि के कुरूप को देखकर मुझे हँसी आ गई। तब मैं कई बार अपने विमान को उनके ऊपर उड़ाकर ले गया। उस समय ऋषि ने विमान की परछाईं अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर पड़ने के कारण यह शाप दिया कि तू सर्प हो जा। उनके शाप को सुनकर जब मेरा अभिमान दूर हुआ और उनसे क्षमा माँगकर बहुत विनती की, तब ऋषि ने दयालु होकर यह कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता, परन्तु कुछ दिनों बाद पृथ्वी पर जब श्री कृष्णचन्द्रजी का अवतार होगा, तब तू उनका चरण-स्पर्श करके फिर अपने विद्याधर-स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। अतः हे स्वामी ! उसी शाप के कारण मैं अजगर बनकर आपके दर्शनों की अभिलाषा रखता था। इसीलिए मैंने आज नन्दजी के चरणों को पकड़ा था, जिससे आपका दर्शन शीघ्र प्राप्त हो सके। अब आपने अपना दर्शन देकर मुझे कृतार्थ कर दिया है। यह मेरा अहोभाग्य है कि आपके जिन चरण-कमलों का दर्शन ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं को ध्यान में भी शीघ्र नहीं मिलता, मैंने अङ्गिरा ऋषि के प्रताप से आज उन्हीं का स्पर्श पाया है। इस सौभाग्य के कारण मैं अङ्गिरा ऋषि का उपकार जन्मभर नहीं भूलूँगा।"

हे राजन् ! इस प्रकार स्तुति तथा दण्डवत् करके जब वह गन्धर्व बिदा हो गया तो सभी गोपी-गोप भी अम्बिका देवी का दर्शन करके अपने घर लौट आये। एक दिन श्री श्यामसुन्दरजी यमुना-तट पर व्रजबालाओं के साथ रास-विलास करके बाँसुरी बजा रहे थे तथा सभी गोपियाँ मुरली की ध्वनि पर तन-मन की सुधि भूलकर उनके आगे-पीछे नृत्य कर रही थीं, उसी समय कुबेर का सेवक तथा तृणावर्त आदि दैत्यों का मित्र 'शङ्खचूड़' नामक एक यक्ष घूमता-फिरता वहाँ आ पहुँचा। जब उसने यह देखा कि मुरलीमनोहर बैठे-बैठे बाँसुरी बजा रहे हैं तथा गोपियाँ नृत्य कर रही हैं तो उससे यह आनन्द न देखा गया। तब उसने यह किया कि वह कुछ गोपियों को अपने कमन्द में फाँसकर उत्तर की ओर ले चला। उस समय तक सब गोपियाँ ऐसी अचेत थीं कि उन्हें अपने बन्धन का भी कोई पता नहीं चला। जब तक बाँसुरी की ध्वनि उनके कानों में पड़ती रही, तब तक वे वैसी ही बनी रहीं, परन्तु जब दूर पहुँचने के कारण बाँसुरी की ध्वनि सुनाई देनी बन्द हो गई उस समय उन्हें अपने शरीर का होश हुआ। तब वे अपने को कमन्द में फँसा हुआ देखकर विलाप करती हुई श्री कृष्णचन्द्रजी को पुकारने लगीं।

हे परीक्षित ! जिस समय श्री बाँकेविहारी के कानों में उनकी करुण पुकार पड़ी, उस समय उन्होंने तथा बलरामजी ने एक-एक वृक्ष उखाड़ कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस यत्न का इस प्रकार पीछा किया, जिस प्रकार हाथी को मारने के लिए सिंह झपटता है। उन्होंने गोपियों को पुकारते हुए धैर्य बँधाया कि अब चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। हम इस दुष्ट को अभी देख लेते हैं। अस्तु, जिस समय शङ्खचूड़ ने दोनों भाइयों को आते देखा तथा उनकी ललकार सुनी तो वह भयभीत हो उन गोपियों को छोड़कर भागने लगा। यह देखकर श्री कृष्णजी ने बलरामजी को तो गोपियों की रक्षा के लिए वहीं छोड़ा और अपने आगे बढ़कर शङ्खचूड़ को पकड़कर एक ऐसा मुक्का मारा कि वह वहीं ढेर होकर गिर पड़ा। उसकी मृत्यु हो जाने पर श्री कृष्णजी ने उसके मस्तक में रहनेवाली मणि निकाल ली तथा उसे लाकर बलरामजी को दे दिया। तत्पश्चात् गोपियों को साथ लेकर अपने स्थान को लौट आये। इस प्रकार आनन्दकन्द श्री बाँकेविहारी नित्य नवीन लीलाएँ करते हुए ब्रजवासियों को आनन्द पहुँचाया करते थे।"

पैंतीसवाँ अध्याय

गोपियों के विरह का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! एक दिन ग्वालबालों के साथ गौ चराते समय श्री कृष्णजी ने अपनी बाँसुरी में से राग-रागिनीयुक्त ऐसी ध्वनि निकाली कि उसे सुनकर ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों-सहित मोहित हो गये। वे अपनी बाँसुरी से जैसा राग निकाल रहे थे, वैसा गायन ब्रह्मा, शिव तथा नारद आदि कोई भी नहीं गा सकते थे। हे राजन्! राधारानी आदि सब गोपियाँ अपने परिवारवालों के भय के कारण श्री कृष्णजी के समीप वन में प्रतिदिन नहीं पहुँच पाती थीं, इसलिए उनके विरह में व्याकुल बनी रहती थीं। उनका चित्त अपने घर के कामों में एक क्षण को भी नहीं लगता था। कोई गोपी मार्ग में, कोई यशोदा के पास, तो कोई अन्य स्थानों पर बैठकर श्री श्यामसुन्दर की चर्चा में अपना दिन व्यतीत करती थी। कोई सूर्य के सम्मुख हाथ जोड़कर इस प्रकार कहती थी कि हे सूर्य! तुम शीघ्र अस्त हो जाओ, जिससे सन्ध्या होने पर जब मोहन लौटें तो हम उनके मुखारविन्द के दर्शन प्राप्त कर अपने हृदय की तपन बुझा सकें। एक समय सब गोपियाँ एक स्थान पर बैठी हुई श्रीहरि की चर्चा कर रही थीं, उस समय किसी गोपी ने यह कहा कि हे सखियो! बाँसुरी के धन्य भाग्य हैं, जो वह हर समय श्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृष्णजी के अधरों से लगी रहती है। मनमोहन प्यारे भी उसे प्रेमपूर्वक बजाकर ऐसी ध्वनि निकालते हैं, जिससे तीनों लोक मोहित हो जाते हैं। यह सुनकर दूसरी सखी ने कहा—"अरी अली! केवल बाँसुरी की प्रशंसा ही क्यों करती है। श्री बाँकेविहारी तो जिस किसी का हाथ पकड़ लें, वही तीनों लोकों का स्वामी हो जाता है। जिस प्रकार हम तुम उस बाँसुरी की ध्वनि सुनकर झूम उठती हैं, उसी प्रकार सब देवता तथा ऋषि-मुनि भी अपनी स्त्रियों-सहित उसकी ध्वनि पर मोहित हो जाते हैं।"

दोहा—सुर नर मुनि सब रँगत हैं वा मुरली के रङ्ग।
ऐसी है वह मोहिनी, बूझि परै ना ढङ्ग॥

यह सुनकर एक अन्य सखी ने कहा—"हे प्यारी! देवता तो ज्ञानवान् होते हैं, वे यदि मुरली की ध्वनि पर मोहित हो जायँ तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु सबसे बड़ा अचरज तो यही है कि उस बाँसुरी की ध्वनि सुनकर पशु-पक्षी भी चित्रलिखे से खड़े रह जाते हैं।" यह सुन एक और गोपी बोली—"हे सखी! उस बाँसुरी को बड़ी चतुर तथा कुंटनी समझो। जिस समय श्री श्यामसुन्दर को किसी की चाह होती है तो वे उसे बाँसुरी को बजाकर अपने पास बुला लेते हैं। उसकी ध्वनि सुनकर यमुना का जल भी स्थिर हो जाता है। इसीलिए उसके पाँवों में लहरों की बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। वृक्षों की जो डालियाँ ऊपर नीचे एक के ऊपर एक पड़ी दीखती हैं, उन्हें भी मुरली की ध्वनि सुनने के कारण अचेत हुआ समझो। उसकी ध्वनि पर मस्त होकर कमल का फूल भी आठों प्रहर अपना मस्तक हिलाता रहता है। उसी के शब्द को सुनकर बादल विरही के समान अपनी आँखों से पानी बरसाता है।" यह सुनकर एक अन्य सखी ने कहा—"मैं अब तक यही समझती थी कि मनमोहन प्यारे केवल बचपने के खेल दिखाने में ही चतुर हैं, परन्तु अब देखती हूँ कि गाने-बजाने में भी उनकी समानता कोई नहीं कर सकता।" यह सुनकर एक गोपी ने कहा—"हे अली! उस बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर देवता तथा ऋषि-मुनियों का ध्यान भी इस प्रकार भंग हो जाता है, जैसे कोई नींद से जग पड़े।" तब एक दूसरी व्रजबाला ने कहा—"हे सखी! हमें उस बाँसुरी को अपनी सौत समझना चाहिए, क्योंकि श्री श्यामसुन्दर हमें छोड़कर उसे दिन-रात अपने हृदय से लगाये रहते हैं। इस बाँसुरी ने अपने पूर्वजन्म में कोई ऐसा भारी तप किया होगा जिसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रताप से उसने हमारे श्यामसुन्दर को अपने वश में कर लिया है।" यह सुनकर एक अन्य गोपी बोली–"हे सखियो! इसमें उस बाँसुरी का कोई अपराध नहीं है। यह सब कठोरता तो श्री कृष्णचन्द्रजी की है, जो उन्होंने नीच जाति की वंशी को अपनी रानी बना रक्खा है।" तब एक अन्य व्रजबाला ने इस प्रकार कहा–"हे अली! इस मुरली ने बाँस के वंश में जन्म लेकर ग्रीष्म, शीत तथा वर्षा का ताप सहा तथा एक पाँव से खड़ी रहकर श्री नारायणजी का तप किया, फिर अपना पोर-पोर कटवाया तथा अग्नि की गर्मी सहकर अपने शरीर में छेद कराया, इसी तपस्या के कारण श्रीहरि उसे अपने हाथों में दिन-रात लिए रहते हैं।" दूसरी गोपी बोली–"हे अली! मुरली से प्रीति रखना हमारे लिए सौभाग्य की ही बात है। उससे डाह करने से कोई फल नहीं निकलेगा।" तब एक सखी ने इस प्रकार कहा–"वह बाँसुरी श्री श्यामसुन्दर के अधरों का अमृत पीकर अमर हो गई है, इसीलिए हमें अपने बोल सुनाकर ज्ञानोपदेश करती है।" यह सुनकर राधारानी श्री बाँकेविहारी के विरह में व्याकुल होकर रोने लगीं। श्री राधिकाजी की ऐसी दशा देखकर एक सखी ने उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा–"हे राधे! तू व्याकुल मत हो। श्री श्यामसुन्दर तो तेरे ही ऊपर मोहित होकर उस बाँसुरी को बजाते हैं। तू रानी है। मुरली तो तेरी दासी है। हम लोग मुरली को अपनी सौत समझकर व्यर्थ ही डाह करती हैं।" यह सुनकर एक अन्य सखी बोली–"हे प्यारी! इस समय हमारा मनमोहन अपने ग्वालसखाओं के कन्धे पर हाथ रखकर वन में गायें चराता हुआ बाँसुरी बजा रहा होगा। उस वंशी की ध्वनि सुनकर सभी गाएँ उसके पास आकर खड़ी हो गई होंगी। हे आली! उस बाँसुरी का शब्द ही ऐसा है कि वह सब जीवों के पाँवों में ऐसी बेड़ी डाल देता है कि उसके कारण किसी को चलने-फिरने की सामर्थ्य भी नहीं रह जाती।"

हे परीक्षित! इस प्रकार सभी गोपियाँ श्री बाँकेविहारी की चर्चा में अपना दिन व्यतीत किया करती थीं। तब सन्ध्या समय श्री मनमोहन, बलरामजी तथा ग्वाल-बालों के सहित वन से लौटकर अपने दर्शनों से उनकी प्यास बुझाते थे। जिस समय श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी घर पहुँचते थे, उस समय यशोदा तथा रोहिणी बड़े प्रेम से उबटन लगाकर उन्हें स्नान करातीं तथा छत्तीसों प्रकार के भोजन खिलाती थीं। श्री मनमोहन ग्वाल-बालों-सहित भोजन करते थे। नित्य का यही नियम था। एक दिन श्री कृष्ण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्द्रजी ने अपने मन में यह विचार किया कि मैंने रासलीला के समय अन्तर्धान होकर राधारानी आदि गोपियों को अपने विरह का बहुत कष्ट दिया, अतः अब उसके बदले मुझे राधारानी को मान कराके तथा स्वयं उनके पैरों पड़कर सबको सुख प्रदान करना चाहिए। ऐसा करने से मैं उनको दुःख पहुँचानेवाले ऋण से उऋण हो जाऊँगा। अस्तु, एक दिन जब राधारानी सोलहों शृङ्गार किए अपने घर में बैठी हुई थीं, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने वहाँ पहुँचकर उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया। उस समय श्री मुरलीमनोहर की माया में भ्रमित होकर राधारानी ने श्री कृष्णजी के कण्ठ में पड़े हुए रत्न-जटित आभूषणों के नगों में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर यह समझा कि अब मुरलीमनोहर ने इस दूसरी सुन्दरी से प्रेम कर लिया है, अतः इस समय उसे दिखाने के लिए ही मेरे पास आये हैं। यह विचार आते ही राधिकाजी के हृदय में सौतियाडाह उत्पन्न हुआ। तब उन्होंने अपनी रोनी सूरत बनाकर श्री मनमोहनलालजी से इस प्रकार कहा—"हे श्यामसुन्दर! अब मैं समझी कि तुम मुझसे झूठी प्रीति दिखाकर इस परम सुन्दरी को आठों प्रहर अपने हृदय से लगाये रखते हो। इस सुन्दरी के बड़े भाग्य हैं जो दिन-रात तुम्हारे हृदय से लगी रहती है। मैं भला तुम्हारे योग्य कहाँ हूँ?" राधारानी के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री नन्दलालजी ने कहा—"हे राधे! मैं तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं चाहता, इसका विश्वास रखो।" इतना कहकर जब श्री श्यामसुन्दर ने श्री राधारानी को हाथ पकड़ अपने पास बैठाना चाहा तो वे सौतियाडाह के कारण बैठीं तो नहीं, परन्तु इस प्रकार कहने लगीं—"हे केशव! अब तो तुम अपनी उसी प्यारी से बातें करो, जिसे हर समय अपने हृदय में बिठाये रहते हो। मुझसे बातें करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर राधिकाजी अपनी परछाईं को गाली देने लगीं। उस समय श्री मनमोहन ने उन्हें कई बार यह समझाया कि यह तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है, कोई अन्य स्त्री नहीं है, परन्तु राधारानी को उन पर विश्वास नहीं हुआ।

हे परीक्षित! जिस समय श्याम और श्यामा उदास बैठे थे उसी समय एक सखी वहाँ आ पहुँची। उसने दोनों को उदास देखकर इस प्रकार पूछा—"हे श्यामसुन्दर! आज क्या बात है, जो तुम दोनों इस प्रकार उदास और व्याकुल दिखाई दे रहे हो?" यह सुनकर श्यामजी ने उत्तर दिया—"हे प्यारी! आज राधिका मेरे आभूषणों के रत्नों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसे दूसरी स्त्री समझकर मान कर बैठी है, सो तू इसे समझा दे।" इतना कहकर जब नन्दलालजी ने अपनी आँखों में आँसू भर लिये, तब उस सखी ने यह कहा—"हे मनमोहन ! तुम वृन्दावन में चलो। मैं राधा प्यारी को समझा-बुझाकर अभी वहीं लिए आती हूँ।" यह सुनकर जब श्री कृष्णजी वृन्दावन के कुञ्ज में जा पहुँचे, तब उस सखी ने राधारानी के पास जाकर कहा—"हे प्यारी ! तुम्हें श्यामसुन्दर ने बुलाया है।" राधारानी ने उत्तर दिया—"हे सखी ! वे मुझसे प्रीति नहीं रखते तब मैं उनके पास जाकर ही क्या करूँगी ?" सखी बोली—"हे राधे ! तू जिनके वस्तु को मँगनी माँगकर ले आई है, वे वन में श्री श्यामसुन्दर को घेर कर खड़े हुए हैं। ऐसी स्थिति में तुझे यहाँ मान करके नहीं बैठना चाहिए।" यह सुनकर राधारानी ने पूछा—"मैं किसकी क्या वस्तु माँग कर ले आई हूँ, तनिक बता तो सही ?" तब सखी कहने लगी—"हे राधे ! तू हिरणी की आँख, चीते की कमर, हाथी की चाल तथा अनार के दाँत माँग लाई है, सो वे सब अपनी वस्तुएँ इस समय श्री श्यामसुन्दर से वापिस माँग रहे हैं।" सखी के ऐसे वचन सुनकर राधारानी हँस दीं। उस समय सखी ने इस प्रकार फिर कहा—"हे आली ! तू बड़ी अज्ञान है, जो श्री श्यामसुन्दर से क्रोध करती है। एक बार पहिले भी तूने दर्पण में अपने मुख को देखकर उस प्रतिबिम्ब को अपनी सौत समझा था। उसी प्रकार आज भी उनके रत्नजटित आभूषणों में अपनी परछाईं देखकर उसे अपनी सौत मान बैठी है, सो तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। श्री मुरलीमनोहर तेरे विरह में व्याकुल हो रहे हैं, अतः तू उनके पास चलकर, उनका दुःख दूर कर दे।"

हे परीक्षित ! सखी की ऐसी बात सुनकर श्री राधिकाजी का सन्देह दूर हो गया, तब वे पछताती हुई इस प्रकार कहने लगीं कि हे सखी ! तू प्राणप्यारे के पास जाकर यह कह दे कि मैं शृङ्गार करके अभी उनके पास पहुँचती हूँ। यह सुनकर जब वह सखी श्री बाँकेविहारी के पास राधिकाजी का सन्देश लेकर पहुँची तब उसने यह देखा कि श्री मुरलीमनोहर राधारानी के विरह में व्याकुल हो, खड़े-खड़े रो रहे हैं। उनकी ऐसी दशा देखकर सखी ने पास जाकर कहा—"हे मनमोहन ! तुम इतने दुखी क्यों हो रहे हो ? राधारानी अभी क्षणभर में तुम्हारे पास आई जाती है। यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर उठ बैठे तथा फूलों की शय्या बिछाकर चारों ओर देखने लगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब राधारानी के आने में विलम्ब हुआ तो वह सखी राधा के पास फिर जाकर इस प्रकार कहने लगी—"हे प्यारी! तेरे विरह में श्यामसुन्दर रो रहे हैं, तू शीघ्र क्यों नहीं चलती?" यह सुनकर श्री राधारानी अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके साथ वन में जा पहुँचीं। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सखी की प्रशंसा की तथा श्री राधिकाजी को हृदय से लगाकर कामदेव की तपन बुझाई।

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! देखो, जिन वैकुण्ठनाथ के दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता ध्यान लगाते हैं, फिर भी शीघ्र नहीं पाते, वे ही व्रजबालाओं के लिए इतने चिन्तित रहते थे। उनकी लीला के भेद को कौन जान सकता है? एक दिन ललिता सखी मार्ग में जा रही थी तो श्री कृष्णचन्द्रजी ने उसे बीच में ही जा रोका। यह देखकर ललिता कहने लगी—"हे श्यामसुन्दर! तुम मिथ्या प्रेम प्रदर्शन करते हो, क्योंकि मुझ गरीबिन के घर कभी नहीं आते?" यह सुनकर श्री श्यामजी बोले—"हे प्यारी! मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ? अच्छा, आज रात्रि को तुम्हारे ही घर आकर विश्राम करूँगा। यह सुनकर ललिता सखी अत्यन्त प्रसन्न हो, घर आ, सोलह शृङ्गार कर, शय्या बिछा, श्री कृष्णचन्द्रजी के आने की प्रतीक्षा करने लगी, परन्तु श्री कृष्ण उसके यहाँ न जाकर शैला सखी के घर चले गये। उस समय ललिता सखी अत्यन्त उदास होकर यह कहने लगी कि देखो, आधी रात होने को आई, परन्तु मनमोहन नहीं आये। इसका क्या कारण है? क्या वे किसी दूसरी गोपी के घर चले गये? मुझसे ऐसा क्या अपराध बन पड़ा जो उन्होंने मेरी याद भुला दी?" इसी सोच में सारी रात व्यतीत हो गई।

हे राजन्! दूसरे दिन जब श्री श्यामसुन्दर को ध्यान आया तो वे अपना वचन याद करके ललिता सखी के घर जा पहुँचे। उस समय उन्हें देखकर ललिता ने यह कहा—"हे मनमोहन! अब तुम्हारा यहाँ क्या काम है? जिसके घर रात भर रहे वहीं फिर चले जाओ।" ललिता सखी के ऐसे वचन सुनकर श्री नन्दनन्दन ने मुस्कुरा दिया। तदुपरान्त ललिता ने उन्हें स्नान कराके भोजन कराया। श्री मुरलीमनोहर कुछ देर वहाँ रहकर उसकी इच्छा पूर्ण करने के उपरान्त अपने घर लौट आये। इसी प्रकार श्री बाँकेविहारी कभी श्यामा, कभी चन्द्रावली और कभी सुषमा अदि सखियों के घर रात भर रह-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर उनकी इच्छा पूर्ण किया करते थे। जब वे एक गोपी को वचन देकर किसी दूसरी गोपी के घर चले जाते थे, तब उस समय उस गोपी द्वारा मान किए जाने पर, उसे खूब मनाते थे। हे राजन्! इस प्रकार वे अपना एक रूप तो नन्द-यशोदा के पास रखते थे और कभी-कभी अनेक रूप धारण कर व्रजबालाओं की इच्छा पूर्ण किया करते थे। एक बार जब श्री बाँकेविहारी रात में किसी अन्य सखी के घर में रहकर दूसरे दिन प्रातःकाल श्री राधा-रानी के पास गये तो राधिकाजी रूठकर बैठ गईं। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने उनकी बहुत विनय करके यह शपथ खाई कि हे प्राणप्रिये! अब मैं किसी अन्य गोपी के घर नहीं जाऊँगा। उस समय राधा को बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु श्री वृन्दावनविहारी शपथ खाने के बाद भी अन्य व्रजबालाओं के घर बराबर जाते रहे। एक रात को श्री मनमोहन कौमुन्दा सखी के घर रहे। प्रातःकाल जब वे वहाँ से लौटकर आ रहे थे, उसी समय राधारानी कौमुन्दा सखी को यमुना-स्नान के लिए बुलाने उसके घर गईं। वहाँ पहुँचकर जब उन्होंने श्री श्यामसुन्दर को उसके घर से निकलते देखा, तो वे क्रुद्ध हो, बिना स्नान किये ही घर लौट आईं। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने भयभीत होकर अपने मन में यह विचार किया कि देखो, आज राधारानी ने हमारी चोरी को पकड़ लिया है। अस्तु, जब श्री कृष्णजी को राधाजी से भेंट किये बिना नहीं रहा गया, तब वे कई सखियों को साथ लेकर उनके घर मनाने के लिए जा पहुँचे। उस समय श्री राधिकाजी ने क्रोध करके कहा—"हे श्यामसुन्दर! तुम रात के समय घर-घर घूमते हो, फिर मुझसे प्रीति दिखाने क्यों आये हो? तुम्हें तो लज्जा नहीं आती, परन्तु मैं तुम्हारी आदतों से बाज आ गई हूँ।" हे राजन्! श्री श्यामसुन्दर के विनय करने तथा सखियों के समझाने पर भी जब राधारानी नहीं मानीं तो सखियों ने इस प्रकार कहा—"हे राधे! तू अपने चार दिन के जीवन पर अभिमान मत कर। देख, श्री श्यामसुन्दर अपना अपराध क्षमा कराने के लिए तेरे पास आये हैं। अतः तू हँसकर बोल। घर आये हुए का इस प्रकार अपमान नहीं किया जाता है।" यह सुनकर राधारानी ने उत्तर दिया—"हे गोपियों! जिसके घर ये रातभर रहे उसी के यहाँ जायँ। मेरे पास अब इनका क्या काम है? अभी चार दिन पूर्व इन्होंने यह शपथ खाई थी कि मैं किसी के घर नहीं जाऊँगा। परन्तु आज ही मैंने अपनी आँखों से इन्हें कौमुन्दा सखी के घर से निक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लते देखा है। अतः अब ऐसे लम्पट मनुष्य से प्रीति करके कौन अपना जीवन नष्ट करे?" इस प्रकार जब सखियों के मनाने पर भी राधारानी नहीं मानीं, तब उन्होंने श्री श्यामजी से कहा—"हे प्यारे! हम तो समझाते-समझाते हार गईं। अब तुम स्वयं ही उसे मनाओ।" इतना कहकर जब सखियाँ अपने-अपने घर चली गईं, तब श्री नन्दनन्दन भी राधा के घर से निकलकर बाहर चले आये। परन्तु जब उनका मन किसी प्रकार नहीं माना तो वे स्त्रीरूप बनाकर राधाजी के पास जा, इस प्रकार कहने लगे—"हे राधे! मैं भी तुझे देखने के लिए वन के कुञ्ज में गई थी सो मैंने वहाँ जाकर यह देखा कि श्री श्यामसुन्दर तेरे विरह में व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप कर रहे हैं, अतः तू अपना मान छोड़कर उनके पास चली चल।" इतना कहकर गोपी वेशधारी श्री कृष्णजी राधाजी के पाँओं पर गिरकर विनती करने लगे कि हे राधे! तू अपने श्यामसुन्दर का दुःख दूर करने के लिए उनके पास शीघ्र चल। यह सुनकर जब राधिकाजी प्रसन्न होकर चलने को तैयार हुईं, तभी श्री कृष्णजी ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करके उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया। उस समय दोनों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर एक ही थाली में भोजन किया तथा अपने मिलनरूपी जल द्वारा कामदेव की अग्नि को शान्त किया। हे राजन्! इस प्रकार श्री मनमोहन राधा आदि गोपियों के मनारथों को पूर्ण करते रहते थे।"

छत्तीसवाँ अध्याय

वृषासुर-वध की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! वर्षाऋतु के आगमन पर राधारानी ने श्री कृष्णचन्द्रजी से यह कहा कि यदि तुम हिंडोला झूलने की लीला करो, तो हम सभी सखियाँ तुम्हारे साथ झूला झूलकर वर्षा के गीत गायें।" यह सुनकर श्री मनमोहन ने कुञ्जवन में रत्नजटित हिंडोला डलवा दिया। तब राधारानी आदि सभी गोपियाँ उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण धारणकर, उनके साथ झूला झूलने तथा गीत गाने लगीं। उस आनन्द को देखने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवता एवं गन्धर्व अपनी-अपनी पत्नियों-सहित विमान पर बैठकर आकाश में छा गये तथा पुष्प-वर्षा कर व्रजबालाओं के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार श्री श्यामजी ने वर्षाऋतु में गोपियों के साथ विहार कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें सुख पहुँचाया। तदुपरान्त जब फाल्गुन का महीना आया तो सभी व्रज-बालाओं ने श्री श्यामसुन्दर के साथ होली खेलने की इच्छा प्रकट की। तब श्री श्यामजी ने उनसे यह कहा कि तुम लोग अपने-अपने घर जाकर होली खेलने की तैयारी करो। मैं अपने सब सखाओं को साथ लेकर खेलने आऊँगा। अस्तु, यह निश्चित हो जाने पर श्री नन्दनन्दन ग्वालबालों को साथ ले, केसरिया वस्त्र पहिने, रंग-अबीर, इत्र आदि लगाये, फूलों के गजरे कण्ठ में डाले, डफ, बाँसुरी, खंजरी बजाते, फगुआ गाते, गोपियों को गालियाँ देते, अबीर उड़ाते तथा अनेक प्रकार के स्वाँग-तमाशे, नृत्य आदि करते हुए होली खेलने के लिए चल दिए। उस समय सब गोपियाँ अपने-अपने घरों, छज्जों तथा चौबारों से श्री मनमोहन पर रंग तथा गुलाल की वर्षा कर प्रसन्न होती थीं तथा नन्दलाल भी उन पर रंग की पिचकारियाँ मार-मारकर हँसते थे। इस प्रकार होली खेलते हुए जब वे श्री राधिकाजी के गाँव बरसाने में पहुँचे तो श्री राधिकाजी भी अपनी सब सखियों-सहित सोलह शृङ्गार किए हुए, रंग भरी पिचकारियाँ ले-लेकर होली खेलने के लिए आ पहुँचीं। जिस समय दोनों ओर से पिचकारियाँ चलने लगीं तथा अबीर-गुलाल उड़ने लगी, उस समय श्री राधाजी ने अपनी सहेलियों से कहा कि हे सखियो! आज श्यामसुन्दर को पकड़कर इनसे चीर-हरण करने का बदला लेना चाहिए। यह सुनकर एक सखी बलदाऊजी का वेष बनाकर, श्री श्यामसुन्दर को धोखे से पकड़ लाई। उस समय सब गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गईं तथा इस प्रकार कहने लगीं कि हे चितचोर! तुमने हमारे वस्त्रों की चोरी करके हमें बड़ा दुःख पहुँचाया था, सो आज हम तुमसे अपना बदला चुकाये बिना न मानेंगी। इतना कहकर एक सखी ने उनका पीताम्बर खींच लिया तथा दूसरी ने आँखों में काजल लगाकर उनके मस्तक पर बेंदी तथा सिन्दूर लगा दिया। तदुपरान्त अन्य आभूषण पहिनाकर उन्हें स्त्रीरूप बना दिया। हे राजन्! यह देखकर श्री मनमोहन वहाँ से छिटककर अपने सखाओं में आ मिले। उस समय गोपियाँ तो यह सोचकर पछताने लगीं कि ये हमारे हाथ से बचकर निकल गये और ग्वालबाल उनके स्त्रीरूप को देख, ताली दे-देकर हँसने लगे। तब श्री कृष्णजी ने एक ग्वाल को सखीरूप बनाकर गोपियों के बीच भेज दिया तथा किसी प्रकार अपना पीताम्बर मँगवा लिया। यह देखकर श्री राधिकाजी ने हँसते हुए कहा—"हे मनमोहन! आज तो तुम अपनी चतुराई से भाग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये, पर फिर किसी दिन बदला लिये बिना न मानूँगी।" यह सुनकर श्री श्यामजी ने उत्तर दिया—"हे राधे! मैं तुम्हारा ही कुछ संकोच करता हूँ, अन्यथा कहो तो अभी अपने ग्वाल-सखाओं से तुम सबकी दुर्गति करा दूँ।" उस समय सब गोपियाँ नन्दलालजी से इस प्रकार कह उठीं कि हे श्यामप्यारे! तुम्हें नन्दबाबा की सौगन्ध है, जो तुम ऐसा न करो। अस्तु, जब राधा-कृष्ण तथा अन्य गोप गोपी खूब होली खेल चुके, तब ललिता सखी ने आकर श्री कृष्णजी से इस प्रकार कहा कि हे कृष्णप्यारे! कल हम सब तुम्हारे गाँव में होली खेलने के लिए आयेंगी। श्री कन्हैयाजी इस पर अपनी स्वीकृति देकर सखाओं-सहित अपने घर लौट गये।

हे परीक्षित! दूसरे दिन पुनः प्रातःकाल होने पर श्री राधारानी अपनी सब सखियों को साथ ले सोलह शृङ्गार कर, कंचन-थालों में अबीर-गुलाल भरे, फगुआ गाती हुई, नन्दगाँव में यशोदाजी के घर जा पहुँचीं। उस समय श्री श्याम-बलराम भी अपने सखाओं-सहित फगुआ खेलने आ पहुँचे तथा राधा आदि व्रजबालाओं के साथ होली खेलने लगे। जब अबीर-गुलाल उड़ने पर चारों ओर लाल ही लाल हो गया, उस समय ललिता आदि कई सखियाँ श्री श्यामसुन्दर को पकड़ने के लिए दौड़ीं, परन्तु जब वे छिटककर दूर चले गये तब बलरामजी को ही पकड़ ले गईं। उस समय राधारानी आदि सखियों ने बलरामजी को काजल की बेंदी लगा दिया। जब बलरामजी ने बहुत विनय की तब कहीं जाकर उन्हें छोड़ा। उस समय बलरामजी के रूप को देख श्री मनमोहन सब सखाओं-सहित हँसने लगे। तभी व्रजबालाओं ने घात लगाकर श्री नन्दलाल को भी पकड़ लिया। उस समय चन्द्रावली सखी ने उन्हें सुनाकर इस प्रकार कहा—"हे प्यारे! आज चीर-हरण के बदले तुम्हें नंगा किये बिना न मानूँगी।" तभी ललिता सखी ने श्री श्यामसुन्दर की मुरली छीन ली और उसे बजाने लगी। एक सखी ने आगे बढ़कर श्री नन्दलाल को रंग-अबीर से नहलाकर आँखों में काजल तथा माथे पर बिन्दी लगा दी। दूसरी ने उनका पीताम्बर छीन लिया तथा उन्हें लहँगा, साड़ी और अँगिया आदि पहिना दिया। तीसरी सखी ने मोतियों से माँग भर दी। इस प्रकार उन्हें पूर्णतः स्त्रीरूप बनाकर राधारानी के पास बैठा दिया। उस समय श्री राधिकाजी ने उनके गालों पर बड़े प्रेम से इत्र तथा अबीर लगा-कर मुख चूम लिया। तदुपरान्त सखियों ने राधा-कृष्ण की परस्पर गाँठ बाँध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी तथा प्रसन्नता में भरकर इस प्रकार कहने लगीं कि यह युगल जोड़ी चिरजीवी बनी रहे। कुछ देर बाद श्री यशोदाजी ने ललिता सखी को अपने पास बुलाकर यह कहा कि अब भोजन का समय हो गया है, अतः तू सबको भीतर बुला ला। अस्तु, जब ललिता आदि सखियाँ भोजन करने के लिए भीतर घर में गईं, उस समय श्री नन्दलाल छूटकर अपने साथियों के बीच आ पहुँचे। तब सब गोप-ग्वाल उन्हें शपथ खिला, कान पकड़, उसी रूप में नन्द-यशोदा के पास ले पहुँचे। उस समय नन्द-यशोदा उनके स्वरूप को देख, अत्यन्त प्रसन्न हो, उन्हें गोद में बैठाकर पूछने लगे—"हे लाल! तेरा यह स्वरूप किसने बनाया है?" श्री श्यामसुन्दर ने उत्तर दिया—"हे बाबा! ललिता आदि गोपियों ने मेरा ऐसा रूप कर दिया है। उन्हींने मुझे वस्त्राभूषण पहिनाए हैं।" यह सुनकर सब पुनः प्रसन्न हो उठे। तदुपरान्त यशोदाजी ने राधा आदि सभी व्रजाङ्गनाओं को भोजन करा, पान-इलायची खिलाई तथा राधा को उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिना दिये। तब नन्दरानी ने उनसे पूछा—"हे गोपियो! फगुआ में तुम्हें क्या दूँ?" गोपियों ने उत्तर दिया—"हे नन्दरानी! हम तो फगुआ में तुम्हारे श्यामसुन्दर को ही लेंगी।" यह सुनकर नन्दरानी सब लोगों के साथ हँसने लगीं। तदुपरान्त श्री नन्दनन्दन ग्वाल-बाल एवं व्रजबालाओं को साथ लेकर स्नान करने के लिए गये। वहाँ स्नान करने के उपरान्त श्रीहरि ने फूलडोल लीला की, उस समय देवताओं ने उन पर पुष्प-वर्षा की।

हे परीक्षित! इस प्रकार श्री श्यामसुन्दर सब व्रजवासियों को आनन्दित करते रहते थे। अस्तु, एक दिन राजा कंस ने 'वृषासुर' नामक एक दैत्य को अपने पास बुलाकर यह कहा कि हे वृषासुर! हम तुझे सब दैत्यों से अधिक शक्तिशाली तथा अपना परम मित्र समझते हैं। यदि तुम नन्द के पुत्र कृष्ण को मार डालो तो हम तुम्हारे अत्यन्त आभारी हों। यह सुनकर वह वृषासुर नामक दैत्य कंस को विश्वास दिला, पर्वत के समान ऊँचे बैल का स्वरूप बना, बादल की भाँति गरजता हुआ सन्ध्या के समय वृन्दावन में जा पहुँचा। वहाँ वह अपने मुँह से आग निकाल, सींग पूँछ फटकारता हुआ ऐसा चिल्लाया कि उस शब्द को सुनकर व्रज की स्त्रियों के गर्भ गिर पड़े। वह अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता हुआ, सींगों पर पर्वत उठाकर पलटने लगा। उसे देखकर दिक्पाल दहल गये तथा पृथ्वी थर-थर काँपने लगी। उस समय सब व्रज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वासी उसे काल के समान कराल देखकर श्री कृष्णजी को पुकारने लगे। उधर सन्ध्या होने पर गोप-ग्वालों तथा गौ-बछड़ों के साथ घर लौटते हुए श्री श्यामसुन्दर जैसे ही उसके निकट पहुँचे, वैसे ही गौ-बछड़े तो उसे देख, पूँछ उठाकर भागने लगे तथा ग्वाल-बाल रोने लगे। यह देखकर श्री कृष्णजी सबको धैर्य बँधा, वृषासुर के सम्मुख पहुँचकर इस प्रकार कहने लगे—"अरे, कपटी दैत्य! तू ग्वालों तथा गायों को क्या डराता है? मेरे सामने आ! मैंने तुझ जैसे न जाने कितने राक्षसों का मारा है।" यह सुनकर वह दैत्य प्रसन्न हो, अपने मन में सोचने लगा कि चलो अच्छा हुआ जो यह स्वयं ही मेरे सामने आ पहुँचा। अब मैं इसे मारकर अभी राजा कंस के पास पहुँचाये देता हूँ। यह विचारकर जैसे ही उसने श्री श्यामसुन्दर की ओर झपटकर उन्हें अपनी सींगों पर उठाना चाहा, वैसे ही श्री मनमोहन ने सींग पकड़कर उसे अठारह पग पीछे हटा दिया। तदुपरान्त वह जब-जब आगे बढ़ा, तभी-तभी श्री मनमोहन ने उसे पीछे हटा दिया। इस प्रकार कुछ देर में जब वह थक गया, तब श्रीहरि ने उसे एक दम पृथ्वी पर दे मारा। फिर उसके सींग पकड़कर ऐसा ढकेला कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तत्पश्चात् श्री श्यामसुन्दर ने उसके सींग तथा पैरों को पकड़कर इस प्रकार उमेठा, जैसे कोई गीले कपड़े को नोचता है। उस समय उस दैत्य के मुख, नाक तथा मूत्र की राह से शोणित बहने लगा और कुछ देर में ही उसका प्राणांत हो गया। उस समय सब देवता आकाश में आकर श्री बाँकेविहारी के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगे तथा सभी व्रजवासी उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे कृष्ण-प्यारे! आज तुम्हींने हमारे प्राण बचाये हैं। हम तो इस दैत्य को बैल समझ रहे थे, हमें क्या पता था कि यह दुष्ट राक्षस है। इसे मारकर तुमने सभी व्रजवासियों का बड़ा उपकार किया है।"

हे परीक्षित! वृषासुर की मृत्यु हो जाने पर राधिकाजी ने श्री श्यामसुन्दर से इस प्रकार कहा—"हे मनमोहन! इस बैलरूपी दैत्य को मारने से तुम्हें पाप लगा है, इसलिए तुम पहले सब तीर्थों की यात्रा कर आओ, तत्पश्चात् किसी को स्पर्श करना।" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी ने कहा—"हे राधे! मैं सब तीर्थों को यहीं बुलाये लेता हूँ।" यह कहकर श्री नटवरनागर ने गोवर्द्धन पर्वत पर दो कुण्ड खुदवाये तथा अपनी इच्छा से गंगा, यमुना, सरस्वती आदि सभी तीर्थों को वहाँ बुला लिया। वे सब अपना-अपना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम कह, उन कुण्डों को अपने जल से भरकर चले गये। तब श्री कृष्णजी उन कुण्डों में स्नान कर पवित्र हुए। उस समय श्री नन्दराय ने याचकों को बहुत-सा द्रव्य दान में दिया। वे दोनों कुण्ड 'राधाकुण्ड' तथा 'कृष्णकुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध होकर, सब तीर्थों में सर्वोपरि हुए।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! वृषासुर की मृत्यु का समाचार सुनकर कंस को यह विश्वास हो गया कि मैं इस बालक के हाथों एक न एक दिन अवश्य मारा जाऊँगा। तब श्रीहरि के इच्छानुसार एक दिन नारदजी कंस के पास गये। कंस ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार से बैठाया। उस समय नारदजी ने कंस से कहा—"हे राजन्! क्या तुम जानते हो कि वृषासुर आदि बड़े-बड़े दैत्यों को किसने मारा है? तुम मेरी इस बात पर विश्वास करो। देवकी की जिस कन्या को तुमने पत्थर पर पटककर मारा था, वह कन्यारूपिणी योगमाया थी, जो यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। देवकी के गर्भ से तो श्री कृष्ण का जन्म हुआ था, जिसे वसुदेव रात ही रात नन्द के घर पहुँचा आये थे और बदले में उस कन्या को ले आये। बलराम भी वसुदेव के ही पुत्र हैं, उन्हें योगमाया ने देवकी के गर्भ से निकालकर रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया था। उसके सम्बन्ध में वसुदेव ने तुमसे गर्भ-पात होने का बहाना बना दिया था। वसुदेव ने अपनी पत्नी रोहिणी को तुम्हारे भय के कारण पहले से ही नन्दजी के यहाँ भेज रक्खा था। हे कंस! जब देवकी के गर्भ से पहले पुत्र ने जन्म लिया था, तभी हमने तुमसे यह कहा था कि तुम वसुदेव की प्रत्येक संतान से चैतन्य रहना, परंतु तुम असावधान ही बने रहे। तुम्हारा भी कोई विशेष दोष इसलिए नहीं है कि भाग्य का लिखा किसी प्रकार मिट नहीं सकता है।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर कंस थर-थर काँपने लगा। तदुपरान्त वसुदेव-देवकी को वहीं बुलवाकर उनसे इस प्रकार कहने लगा—"अरे वसुदेव! तुम बड़े ठग हो, तुमने पहला पुत्र मुझे देकर मेरे मन में विश्वास उत्पन्न कर दिया परन्तु आगे चलकर तुमने मुझसे कपट किया। तुम्हारा मुख तो मीठा है परन्तु हृदय में विष भरा हुआ है, अतः आज मैं तुम दोनों को जान से मारकर इसका दण्ड दूँगा।" ऐसा कहकर जब कंस ने वसुदेव-देवकी को मारने के लिए तलवार उठाई, उस समय नारदजी ने उसका हाथ पकड़कर इस प्रकार कहा—"हे राजन्! इन्हें मारने से तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न होगा। तुम्हें जिससे अपने प्राणों का भय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, उसे मारने का उपाय करना चाहिए।" यह सुनकर कंस ने वसुदेव-देवकी को जान से तो नहीं मारा, बन्दी बनाकर फिर बन्दीगृह में डाल दिया। तदुपरान्त जब नारदजी चले गये, तब कंस ने 'केशी' नामक दैत्य को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे केशी! तू अत्यन्त बलवान् तथा मेरा सच्चा मित्र है, अतः तू एकबार व्रज में जाकर कृष्ण तथा बलराम को मार आ। मैं तेरा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगा।" कंस के ऐसे वचन सुन केशी दैत्य तो वृन्दावन को चला, इधर कंस ने चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल आदि बड़े-बड़े पहलवान दैत्यों को बुलाकर यह कहा कि हम वसुदेव के पुत्र श्याम-बलराम को यहाँ किसी बहाने से बुलवाये लेते हैं, सो तुम कुश्ती लड़कर उन्हें मार डालना। इस कार्य के बदले हम तुम्हें बहुत-सा धन देंगे। तदुपरान्त कंस ने अपने मन्त्रियों से कहा कि तुम लोग भी कोई ऐसा उपाय करो, जिससे कृष्ण-बलराम मारे जायँ। उस समय मन्त्रियों ने यह उत्तर दिया कि हे महाराज! आप ऐसे प्रतापी तथा शक्तिशाली होते हुए भी उन बालकों से क्यों डरते हैं? हमारी राय यह है कि आप एक उत्तम रङ्गभूमि बनवाइये तथा धनुष-यज्ञ के बहाने राम-श्याम को यहाँ बुलवा लीजिए, उस समय कोई मल्ल अथवा कुवलयापीड़ हाथी उन्हें मार डालेगा।" कंस को मन्त्रियों की यह सम्मति पसन्द आई तब उसने कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को धनुष-यज्ञ का मुहूर्त्त ठहराकर एक अति उत्तम रङ्गशाला बनवाई तथा सेवकों को यह आज्ञा दी कि तुम रंगभूमि में पहलवानों के लड़ने के लिए एक अखाड़ा बनवाओ तथा वहीं हमारे बैठने के लिए एक इतना ऊँचा तथा चौड़ा मचान तैयार करो, जहाँ किसी का हाथ न पहुँच सके। उसी प्रकार का एक दूसरा मचान हमारे इष्ट-मित्रों के बैठने के लिए भी बनवाओ। फिर पहली ड्योढ़ी पर महादेवजी का धनुष रखवाकर नगर में यह ढिंढोरा पिटवा दो कि अमुक दिन राज-मन्दिर में धनुष की पूजा होगी सो सब लोग उसमें भाग लें। जिस समय राम-कृष्ण आवें उस समय हमारे शूरवीर उन दोनों से यह कहें कि तुम लोग धनुष चढ़ाये बिना भीतर न जाने पाओगे। यह सुनकर जब वे अपने अहंकार में भरकर धनुष उठाने को बढ़े उसी समय सब शूर-वीर मिलकर उन्हें मार डालें। जो शूर उन्हें मारकर मेरी मृत्यु का खटका मिटा देगा, उसे मैं मुँहमाँगा इनाम दूँगा। दूसरे द्वार पर दस हजार हाथियों का बल रखनेवाले कुवलयापीड़ हाथी को खड़ा कर दिया; इसलिए कि यदि वे पहली ड्योढ़ी जीत आवें तो दूसरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Siddhanta Kosha

ड्योढ़ी पर कुवलयापीड़ हाथी उन्हें अपने पैरों से रौंदकर मार डाले। तीसरी ड्योढ़ी पर रंगभूमि के स्थान पर अनेक शूर-वीर अस्त्र-शस्त्र लिए सावधान बैठे रहें, ताकि यदि वे भीतर आ पहुँचें तो सब लोग उन्हें एक साथ टूटकर मार डालें।"

हे परीक्षित! इस प्रकार आज्ञा देकर कंस अपनी सभा में आ बैठा तथा सब लोगों की ओर देखता हुआ यह विचार करने लगा कि कृष्ण को बुलाने के लिए किसे भेजा जाय। उस समय कंस को 'अक्रूर' से अधिक बुद्धिमान और कोई दिखाई नहीं दिया। तब उसने अक्रूर की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—"हे अक्रूर! मैं तुम्हें बुद्धिमान् तथा अपना मित्र जानकर यह बात कहता हूँ कि वसुदेव के पुत्र राम-कृष्ण से मुझे अपने प्राणों का भय हर समय लगा रहता है। इस बात को तुम भी जानते ही होगे। अतः जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने देवताओं की रक्षा करने के लिए वामन-स्वरूप धरकर राजा बलि से दान लिया तथा इन्द्र की रक्षा की, उसी प्रकार इस समय तुम्हें भी हमारी सहायता करनी चाहिए। तुम वृन्दावन जाकर धनुषयज्ञ देखने के लिए बलराम तथा कृष्ण को नन्द, उपनन्द आदि गोप-ग्वालों सहित यहाँ लिवा लाओ। इससे मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूँगा। तुम मेरे रथ में बैठकर चले जाओ। हे अक्रूर! मैं तुम्हें यह भी बता दूँ कि मैंने राम-कृष्ण को मारने के लिए पहिले द्वार पर शूरवीर तथा दूसरे द्वार पर कुवलया-पीड़ हाथी को नियुक्त कर दिया है। यदि वे उनके हाथों से बचते हुए भीतर आ पहुँचे तो मुष्टिक तथा चाणूर आदि उन्हें मार डालेंगे। यदि वे सबसे बच गये तो अन्त में मैं स्वयं ही उन्हें मार कर बाद में वसुदेव, देवकी, उग्र-सेन तथा यदुवंशियों को मार डालूँगा। इन सबके बाद संसार से सभी हरि-भक्तों को नष्ट करके अपने श्वशुर जरासन्ध तथा बाणासुर, दन्तवक्र आदि मित्रों सहित सुखपूर्वक राज्य करूँगा। तुम नन्द से यह भी कह देना कि वे यज्ञ के लिए बकरे, भैंसे आदि की भेंट लेकर शीघ्र आवें। तब तक इसी बहाने मैं अपने इष्टमित्रों को भी यहाँ बुलाये लेता हूँ।"

हे परीक्षित! कंस के ऐसे अभिमानपूर्ण वचन सुनकर अक्रूर ने उत्तर दिया—"हे राजन्! यदि आप क्रोध न करें तो मैं आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ।" यह सुनकर कंस बोला—"कहो, हम क्रोध नहीं करेंगे।" तब अक्रूर ने कहा—"हे राजन्! आपने जो आज्ञा दी है, वह कार्य तो मैं करूँगा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही, परन्तु आपको यह समझा देना आवश्यक समझता हूँ कि जो रावण काल को अपना बन्दी बनाकर कैद में डाले हुए था, जब वह भी मृत्यु के मुख से न बच सका, तो अन्य लोगों के बारे में कहा ही क्या जा सकता है ? परमेश्वर की जो इच्छा होती है, उसे कोई तिलभर भी घटा-बढ़ा नहीं सकता है। मनुष्य सोचता कुछ है, परन्तु होता वही है, जो श्री नारायणजी चाहते हैं। अस्तु, मैं आपकी आज्ञानुसार राम-कृष्ण को यहाँ ले तो आऊँगा परन्तु मेरी सम्मति में आपका उनसे विरोध करना ठीक नहीं होगा।"

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी तथा व्योमासुर-वध की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! जिस प्रकार श्री कृष्णचन्द्रजी ने केशी तथा व्योमासुर दैत्य को मारा तथा जिस प्रकार नारदजी ने श्री मनमोहन की स्तुति की, अब हम वह कथा सुनाते हैं, सुनो। जब कंस ने श्याम-बलराम को मारने के लिए केशी दैत्य को भेजा, तब वह बड़ा लम्बा-चौड़ा घोड़े का स्वरूप धरकर प्रातःकाल वृन्दावन में जा पहुँचा। वहाँ जब वह पूँछ फटकारने तथा लाल आँखें निकालकर अपनी टापों से पृथ्वी को खोदने लगा उस समय सभी गोप-ग्वालों ने भयभीत होकर अपने मन में यह विचार किया कि इस महाप्रलयरूपी घोड़े के हाथ से हमारे प्राण किसी प्रकार नहीं बचेंगे। तदुपरान्त उन्होंने अत्यन्त भयभीत हो श्री कृष्णजी के पास जाकर उस घोड़े का हाल कह सुनाया। उस समय श्री कृष्णजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए यह कहा कि मैं अभी उसे मारकर तुम्हारी चिन्ता नष्ट किये देता हूँ। इतना कहकर श्री मुरलीमनोहर केशी के पास जाकर, ललकारते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे कपटी राक्षस ! तू मुझे मारने आया तो और लोगों को क्यों भयभीत कर रहा है ? यदि तुझमें कुछ शक्ति हो तो मुझसे लड़, मैं भी आज तेरा बल-पराक्रम देखूँगा।" यह सुनकर केशी अत्यन्त क्रुद्ध हो उनकी ओर झपटा। तब श्री श्यामसुन्दर ने आगे के दोनों पाँव पकड़कर उसे इस प्रकार घुमाकर फेंका, जिस प्रकार गरुड़जी सर्प को पकड़कर फेंक देते हैं। दो सौ पग की दूरी पर गिरने से जब घोड़ा कुछ देर मूर्छित रहा तथा चैतन्य होने पर फिर श्री मनमोहन की ओर झपटा तो श्री श्यामजी ने अपने हाथ को लोहे के समान कठोर बनाकर उसके मुँह में इस प्रकार डाल दिया, जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार सर्प बिल में घुस जाता है। केशी द्वारा बहुत काटने पर भी उनके हाथ में कोई घाव नहीं हुआ। तदुपरान्त श्री कृष्णजी ने अपना हाथ इतना मोटा किया कि उसके मुख में श्वास लेने को स्थान भी न रहा। उस समय केशी अपने मन में यह सोचने लगा कि जिस प्रकार मछली वंशी को निगलने के लोभ में अपने प्राण दे देती है उसी प्रकार आज श्यामसुन्दर से वैर करने के कारण मेरी मृत्यु निश्चित दिखाई देती है। यह विचारकर उसने श्री नन्दलाल के हाथों को अपने मुख से बाहर निकालना चाहा, परन्तु जब वे नहीं निकले, तब वह चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका पेट खरबूजे के समान फट गया, जिससे उसके प्राण निकल गये तथा शरीर से नदी के समान रक्त बहने लगा। उसके मारे जाने पर देवताओं ने प्रसन्न होकर श्री कृष्णचन्द्रजी के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। उस समय सभी व्रजवासी श्री श्यामसुन्दर से इस प्रकार कहने लगे कि हे प्रभो! आज तुम्हीं ने इस दैत्य को मारकर हमारे प्राणों की रक्षा की है, अन्यथा यह हम सबको मार डालता। नन्द और यशोदा ने श्री कृष्णजी को गोद में उठाकर बार-बार मुख चूमा तथा उनके हाथ से बहुत-सा दान दिलवाया।

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब कंस ने केशी राक्षस के मारे जाने का समाचार सुना तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उधर श्री कृष्णचन्द्रजी केशी को मारने के उपरान्त वहाँ से कुछ दूर कदम्ब के नीचे जाकर खड़े हो गये। उसी समय नारदजी वहाँ पहुँचकर श्री श्यामसुन्दर की इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे त्रैलोक्याधिपति! आपने केशी राक्षस को मारकर श्रेष्ठ कार्य किया है। हे ज्योतिःस्वरूप! मुझे चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल आदि मल्ल तथा राजा कंस एवं उसके 'दन्तवक्र' आदि मित्र मरे हुए-से दिखाई देते हैं। हे प्रभो! आप मेरा दण्डवत् स्वीकार करें। हे अविनाशी! आप जरासन्ध, शिशुपाल आदि अधर्मी राजाओं को मारकर, महाभारत में अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार करा देंगे। हे दीनानाथ! आपको मेरा नमस्कार स्वीकार हो। हे गोपीवल्लभ! आप समुद्र के बीच द्वारकापुरी बसाकर पाण्डवों को इहलोक तथा परलोक का सुख प्रदान करेंगे। हे लक्ष्मीरमण! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे दीनबन्धो! आप कालयवन तथा भौमासुर आदि को मार कर सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं के साथ, जिसे उसने अपने विवाह के लिए एकत्र किया है, अपना विवाह करेंगे। हे दुष्टदलन!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप शिशुपाल को जीतकर, रुक्मिणी का विवाह अपने साथ करेंगे तथा उसकी मनोभिलाषा को पूर्ण करेंगे। हे नाथ! आज के तीसरे दिन मैं आपके हाथ से कंस को मरा हुआ देखूँगा। हे जगदाधार! आप इन्द्रलोक से पारिजात का वृक्ष लाकर 'सत्यभामा' के घर में स्थापित करेंगे। आपही राजा 'नृग' को गिरगिट की योनि से मुक्ति प्रदान करेंगे। स्यामन्तक मणि लाने के समय आप 'जाम्बवान्' नामक भालू की पुत्री, 'जाम्बवती' के साथ अपना विवाह करेंगे। हे जगदीश्वर! इस समय कंस के घोर अधर्म के कारण पृथ्वी पर हा-हा-कार मचा हुआ है तथा गो, ब्राह्मण एवं ऋषि-मुनियों को बहुत कष्ट हो रहा है, अतः आप दया करके पृथ्वी का भार उतारिए। हे रमाकान्त! मैं आपकी दया से आपको पहिचान कर आपकी शरणागत हुआ हूँ, अन्यथा आपके लीला-चरित्रों के सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं कह सकता। आप गो, ब्राह्मण, पृथ्वी तथा धर्म की रक्षा एवं अधर्मी राजाओं तथा दैत्यों का संहार करने के लिए सगुण अवतार ग्रहण करते हैं। हे महाप्रभो! आप मेरा कोटि-कोटि नमस्कार स्वीकार करें।" हे परीक्षित! इस प्रकार त्रिकालदर्शी नारदमुनि श्री मनमोहन की स्तुति करने के उपरान्त ब्रह्मलोक को चले गये। तब श्री गिरिवरधारी भाण्डीर वन में अपने सखामण्डल के बीच आ, स्वयं तो राजा बने तथा किसी को मंत्री, किसी को सेनापति आदि बनाकर पहेली बुझौवल खेलने लगे।

हे परीक्षित! उधर जब राजा कंस चैतन्य हुआ तो उसने अपने मित्र 'व्योमासुर' को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे बन्धु! मुझे श्याम तथा बलराम से अपनी मृत्यु का खटका हरदम लगा रहता है। मैंने उन्हें मारने के लिए अभी तक अनेक दैत्य भेजे, परन्तु उन्होंने सबको मार डाला। अब तुम जाकर मेरा कार्य सिद्ध कर सको तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।" यह सुनकर व्योमासुर राजा कंस को धैर्य बँधा, ग्वालरूप धर, जिस स्थान पर श्री कृष्णजी अपने सखाओं सहित खेल रहे थे, वहाँ जा पहुँचा तथा श्री कृष्णचन्द्रजी से इस प्रकार कहने लगा कि मैं भी आपके साथ खेलना चाहता हूँ। उस समय बाँकेविहारी ने उसे पहिचानकर यह उत्तर दिया कि तुम जो खेल खेलना चाहो, हम वही खेल खेलें। वह बोला—"जिस प्रकार भेड़िया अपनी पीठ पर भेड़ों को उठाकर भागता है उसी प्रकार एक बालक दूसरे बालक को अपनी पीठ पर चढ़ाकर भागे, यही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खेल खेलना चाहिए। जब श्री कृष्णजी इसे स्वीकार कर खेलने लगे, तब वह राक्षस बहुत से लड़कों को अपनी पीठ पर चढ़ाकर पर्वत की एक कन्दरा में बन्द कर आया। इसी प्रकार जब वह सब बालकों को बन्द कर चुका तथा श्यामजी अकेले रह गये, उस समय उन्हें ललकारता हुआ इस प्रकार बोला—"अरे कृष्ण! आज मैं तुझे सब व्रजवासियों तथा यदुवंशियों सहित मारकर राजा कंस की आज्ञा का पालन करूँगा।" ऐसा कहकर जब व्योमासुर ग्वाले का रूप त्यागकर तथा अपने वास्तविक रूप में आकर श्री कृष्णजी को मारने के लिए झपटा, तभी उन्होंने उसे गला दबाकर लात तथा मुक्कों से मार डाला। फिर कन्दरा में जाकर सब ग्वालबालों को भी निकाल लाये। उस समय देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। सन्ध्या के समय वे सबके साथ मुरली बजाते हुए घर वापस लौट आये। उस रात को यशोदाजी ने ऐसा स्वप्न देखा था कि आज बलराम तथा श्यामसुन्दर वृन्दावन में नहीं हैं। अतः जब तक श्री कृष्णजी वन में रहे, तब तक तो यशोदाजी अपने मन में दिन भर सोच करती रहीं परन्तु जब वे शाम को सकुशल घर लौट आये तो उन्होंने स्वप्न की बात को मिथ्या समझकर अपने हृदय में धैर्य धारण कर लिया।"

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूर का वृन्दावन में पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! चैत कृष्ण द्वादशी के दिन केशी तथा व्योमासुर का संहार हुआ। उसी दिन प्रातःकाल जब अक्रूर कंस के रथ पर बैठकर वृन्दावन को चले तो मार्ग में अपने मन में यह विचार करने लगे कि अब तक मेरा सम्पूर्ण जीवन अधर्मी कंस की संगति में ही व्यतीत हुआ। परन्तु पूर्वजन्म में न जाने मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य-कर्म किया था, जिसके फल से आज मैं श्री बाँकेविहारी के उन चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त करूँगा, जिसका ध्यान ब्रह्मादिक देवता तथा सनकादिक ऋषि हर समय धरते रहते हैं। आज मैं उन चरण-कमलों की रज को अपने मस्तक पर धारण करके अपना जीवन सफल बनाऊँगा। जिस प्रकार पापी लोग सत्सङ्ग के द्वारा कृतार्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार आज मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। राजा कंस ने मुझ पर बड़ी कृपा की, जो उसने मुझे इस कार्य के लिए भेजा। जिन परब्रह्म प्रभु ने कालीनाग के मस्तक पर नृत्य किया, जिन्होंने नन्दराय की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गौएँ चराकर गोपियों के साथ रासलीला की, जिन्होंने देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान लिया, वे ही आदि पुरुष भगवान् इस समय व्रजवासियों को अपनी बाल-लीलाएँ दिखाकर कृतार्थ कर रहे हैं। जिनके दर्शनों की कामना लक्ष्मी, नारद, मार्कण्डेय ऋषि तथा अम्बरीष जैसे महात्मा निरन्तर करते रहते हैं, उनका दर्शन तथा स्पर्श व्रज के गोपी-ग्वालों को हर समय प्राप्त होता रहता है, इससे बढ़कर उनका सौभाग्य और क्या होगा? आज मुझे शुभ शकुन दिखाई दे रहे हैं, इससे विश्वास होता है कि मुझे श्रीहरि के दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे। हे मन! वे आदि-निरंकार प्रभु सर्वप्रथम थे तथा सबसे अन्त में भी वे ही रहेंगे। यदि तू यह सन्देह करे कि उन्होंने संसार में जन्म क्यों लिया, तो तू ऐसा विचार कभी भी अपने समीप मत आने देना। उन्होंने अपने भक्तों को सुख देने तथा संसार के अधर्मी जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए ही अपनी इच्छा से जन्म लिया है। उनके भेद को कोई प्राप्त नहीं कर सकता। वे संसारी माया से रहित तथा तीनों गुण से पृथक् हैं। दैत्यों के भी बड़े भाग्य हैं कि जब नारायणजी उनका संहार करते हैं, तब वे उस पद को प्राप्त करते हैं, जहाँ मनुष्य सहस्रों वर्षों तक तपस्या करने पर भी नहीं पहुँच पाता। मेरा भाग्योदय हुआ जो मैं आज ऐसे प्रभु के पावन चरण-कमलों के दर्शन प्राप्त कर अपना जन्म सफल करूँगा। मैं सर्वप्रथम उन ग्वालबालों को दण्डवत् करूँगा, जो दिन-रात श्री श्यामसुन्दर का दर्शन प्राप्त करते हैं। तदुपरान्त मैं उन श्री दीनदयालु की चरण-रज को अपने मस्तक पर धारण करूँगा, जिनकी पद-रज को पाने के लिए ब्रह्मा आदि देवता भी लालायित बने रहते हैं। मुझे यदि कोई संकोच है तो केवल यही है कि वे मुझे कंस का भेजा हुआ जानकर कहीं सन्देह न कर बैठें। परन्तु जिस प्रकार मैं मन, वचन, कर्म से उन्हें अपना स्वामी समझता हूँ, उसी प्रकार वे अन्तर्यामी भी मुझे अपना दास जानकर अवश्य अपनायेंगे। जब वे कृपानिधान मेरा हाथ पकड़कर घर के भीतर ले जायँगे, उस समय मैं उन्हें कंस का सब सच्चा हाल बता दूँगा।"

इस प्रकार विचार करता हुआ अक्रूर तीन कोस का मार्ग दिनभर में समाप्त करके सन्ध्या के समय वृन्दावन में जा पहुँचा। जिस समय उसने वहाँ की पृथ्वी पर शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा ध्वजा अङ्कित श्री कृष्णजी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

चरण-चिह्नों को देखा तो उसने रथ से उतरकर उस धूलि को अपने मस्तक पर चढ़ा लिया। उस समय जब प्रेममग्न होने के कारण अक्रूर की आँखों से आँसू बहने लगे, तब सब गोपी-ग्वाल उसके सच्चे स्नेह को देखकर अपनी प्रीति का गर्व भुला बैठे। वे सब परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि देखो हमारे बड़े भाग्य हैं कि जिनके चरण-कमलों की रज को अक्रूर अपने मस्तक पर चढ़ा रहे हैं, वे ही श्यामसुन्दर हर समय हमारे साथ रहते हैं।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! उसी समय श्री श्यामसुन्दर पीताम्बर पहिने तथा वनमाला गले में डाले हुए, बलराम एवं अन्य गोपग्वालों के साथ वन से गौ चराकर, वृन्दावन को लौटे। तब उन्हें दूर ही से देखकर अक्रूर उनके चरणों पर जा गिरा तथा अनन्य प्रेम के कारण फूट-फूट कर रोने लगा। कुछ देर बाद जब हृदय हल्का हुआ, तब वह हाथ जोड़कर श्री कृष्णचन्द्रजी से इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! मैं आपका दास अक्रूर नामक यादव हूँ।" यह सुनते ही श्री कृष्णजी उसे बड़ा जानकर, अपने पाँवों पर से उसका मस्तक उठाने लगे, परन्तु वह ऐसा प्रेममग्न हो रहा था कि किसी भी प्रकार उनके चरण-कमल छोड़ने को तैयार न था। यह दशा देखकर श्याम तथा बलरामजी ने प्रेमपूर्वक उसका मस्तक पकड़कर ऊपर उठाया तथा उसे 'चाचा' कहकर घर ले गये। जिस समय नन्दरायजी ने अक्रूर को देखा तो वे उनसे गले मिले। तदुपरान्त जब श्री कृष्णचन्द्रजी उसे आसन पर बैठाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसके चरण धोने लगे; उस समय वह लज्जित होकर अपने पाँव खींचने लगा। यह देखकर श्री श्याम-सुन्दर ने कहा—"हे चाचा! आप हमारे पिता तुल्य हैं। अतः आपकी सेवा करना हमारा धर्म है।" इतना कहकर श्री बाँकेविहारी ने उसके चरण धोये। तत्पश्चात् छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाकर पान-सुपारी दी। जब वह पलंग पर लेटा तो श्यामजी तथा बलरामजी, दोनों ही उसके पाँव दाबने लगे। उस समय नन्द, उपनन्द आदि ने अक्रूर के पास आकर पूछा—"हे अक्रूर! हमारे वसुदेव-देवकी किस प्रकार रह रहे हैं? तथा राजा कंस प्रजा का पालन किस प्रकार कर रहा है? हमारी समझ में तो जब तक कंस जीवित है, तब तक गौ, ब्राह्मण तथा प्रजा को सुख प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि जहाँ का राजा अधर्मी तथा निर्दयी हो, वहाँ की प्रजा सुख से नहीं रह पाती। कंस से अधिक निर्दयी तथा अधर्मी और कौन होगा, जिसने अपनी बहिन के छः पुत्रों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निरपराध मार डाला? ऐसे मनुष्य को तो हत्यारा ही कहना चाहिए।" नन्दजी के ऐसे वचन सुनकर अक्रूर ने उत्तर दिया—"हे नन्दराय! कंस जब से उत्पन्न हुआ है, तभी से सब यदुवंशी तथा प्रजा लोग कष्ट पा रहे हैं। जिस प्रकार बकरियों के झुण्ड में एक भेड़िया हो, तो सबको अपने प्राणों का भय बना रहता है, उसी प्रकार जब तक कंस जीवित है, तब तक मथुरा-वासियों को सुख प्राप्त नहीं होगा। उसका हाल हम तुमसे क्या कहें? तुम तो स्वयं ही सब जानते हो।"

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्याम तथा बलराम का अक्रूर के साथ मथुरा जाना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! मथुरा का समाचार पूछने के बाद जब नन्द, उपनन्द आदि चले गये तो श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी ने अक्रूरजी का वैसा स्वागत किया, जैसा वे मार्ग में विचार करते हुए आये थे। तदुपरान्त इस प्रकार कहने लगे—"हे चाचा! आप हमें देखने के लिए यहाँ पधारे, यह बहुत अच्छा किया; परन्तु आपने बालकों के समान हमारे पाँवों पर पड़कर हमें दोष क्यों लगाया? हमें तो आपकी सेवा करनी चाहिए। अब आप यह बताइये कि मथुरावासियों के दिन किस प्रकार कट रहे हैं? हमारे पिता-माता वसुदेव-देवकी तो अच्छी तरह हैं? यदुकुल में हमारा मामा कंस बड़ा पापी उत्पन्न हुआ है। वह गो, ब्राह्मण तथा यदुवंशियों को कष्ट पहुँचाता है। हे चाचा! हमें अपने माता-पिता के फिर बन्दी होने का समाचार सुन-कर बहुत दुःख हुआ है। सच पूछो तो वे हमारे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। यदि वे हमें गोकुल में लाकर न छिपा जाते तो इतना दुःख क्यों उठाते? अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि हमारे छः भाइयों को मारने तथा इतना पाप करने के बाद भी उसकी बुद्धि ठिकाने पर नहीं आई है। अब यह भी बताइये कि आप यहाँ किस काम से आये हैं?" श्री कृष्ण-बलराम के मुख से ऐसे वचन सुन, अक्रूर ने खड़े हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे अन्तर्यामी! कंस की अनीति का हाल तो आपको मालूम ही है, मैं उसे और क्या कहूँ? वह वसुदेव तथा उग्रसेन के प्राण लेने का प्रयत्न करता रहता है, परन्तु आपकी कृपा से वे लोग बच जाते हैं। हे प्रभो! जब आपके हाथ से वृषासुर दैत्य मारा गया तो नारदजी ने कंस के पास आकर उसे यह बताया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि तेरी मृत्यु श्यामसुन्दर के हाथ है। वे नन्द-यशोदा के नहीं बल्कि वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं। यह सुनकर उसने आपके माता-पिता को बन्दीगृह में डाल दिया तथा अब आपको मारने की घात लगाये हुए है। उसने धनुष-यज्ञ के बहाने आप दोनों भाइयों को तथा नन्दजी को मथुरा बुलाया है, सो मैं आप लोगों को लेने के लिए आया हूँ।"

हे परीक्षित! अक्रूर के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी बलरामजी की ओर देखकर हँस दिये, तदुपरान्त उन्होंने नन्दजी से यह कहा—"हे बाबा! यदुकुल में अक्रूरजी बड़े महात्मा उत्पन्न हुए हैं। वे कंस की आज्ञा से हम लोगों को धनुष-यज्ञ का उत्सव देखने के हेतु, बुलाने के लिए यहाँ आये हैं। इनके साथ जाने में ठीक रहेगा। आप भी सब गोप-ग्वालों सहित घी, दही, माखन आदि भेंट लेकर मथुरा चलें।" हे परीक्षित! नन्द-राय अनेक बार श्री कृष्णचन्द्रजी के कथन की परीक्षा ले चुके थे, अतः उनकी बात टालना उन्होंने उचित नहीं समझा। उस समय पहिले तो नन्द-यशोदा ने स्वप्न की बात सोचकर कुछ दुःख किया, फिर श्री मुरलीमनोहर की इच्छा जानकर वृन्दावन में ढिंढोरा पिटवाकर सब गोप-ग्वालों को यह कहला भेजा कि राजा कंस ने हम लोगों को धनुषयज्ञ देखने के लिए बुलाया है, अतः कल प्रातःकाल सब लोग भेंट के लिए दूध, दही, माखन आदि लेकर मथुरा चलें। जिस समय गोपियों ने यह समाचार सुना कि श्री बाँके-विहारी मथुरा जा रहे हैं, तो उनके वियोग का अनुमान कर मृततुल्य हो गईं। उस समय सबके घरों में ऐसा रुदन तथा हाहाकार मचने लगा, जैसे किसी के यहाँ कोई मर गया हो। सब गोपियाँ परस्पर एक-दूसरे को पूछती हुईं इस प्रकार कहने लगीं—"हे बहिन! हमारे ऊपर यह क्या प्रलय आया है कि जिन मनमोहन के बिना हम एक क्षण को भी जीवित रहने में असमर्थ हैं, वे अब मथुरा जा रहे हैं? उनके विरह में हम किस प्रकार जीवित रह सकेंगी? इस मूर्ख अक्रूर को क्या आवश्यकता थी, जो हमारे प्राण लेने के लिए यहाँ चला आया? हे आली! यदि सच पूछो तो श्री नन्दकुमार ने ही हमारे स्नेह से अपना मुख मोड़ लिया है, अन्यथा उन्हें मथुरा जाने की क्या आवश्यकता है?" उस समय एक गोपी ने कहा—"हे आली! यदि हमारे मनमोहन मथुरा न जायँ तो कंस उनका कर ही क्या सकता है?" यह सुनकर दूसरी ने कहा—"ईश्वर की कृपा से आज के दिन वृन्दावन में यदि कोई हमारा बड़ा-बूढ़ा मर जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा अन्य ऐसा ही कारण उपस्थित हो जाता तो हमारे श्यामसुन्दर कल मथुरा तो न जाते।" तभी एक अन्य सखी अपनी छाती पीटती हुई कहने लगी–"मेरा प्राणप्रिय मुझसे अलग हो रहा है, यह मुझे बड़ा सोच है।" चौथी ने कहा–"श्री बाँकेविहारी की सलोनी सूरत को देखकर हमें तीनों लोक का सुख मिलता था, अब उन्हें देखे बिना हमें किस प्रकार चैन पड़ेगा?" पाँचवीं बोली–"हे विधाता! तुम बड़े निष्ठुर हो, पहिले तो तुमने मनमोहन से हमारी प्रीति कराई, अब उनके विरह-सागर में हमें डुबा देना चाहते हो! श्याम और राम हमारी दो आँखें हैं, जब वे ही चले जायँगे, तो हम जीकर क्या करेंगी? उनके बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकतीं।"

हे परीक्षित! इस प्रकार सभी गोपियाँ अपने हृदय का दुःख एक दूसरी से कह-कहकर विलाप कर रही थीं। सारी रात उन्हें मछली के समान तड़पते हुए बीती। दूसरे दिन सबेरा होने पर सभी गोप-ग्वाल बैलगाड़ियों में गोरस लादे तथा भैंसे, बकरे साथ लिये नन्दजी के द्वार पर आ पहुँचे। उस समय वृन्दावन के सब स्त्री-पुरुष श्री श्यामसुन्दर के समीप आकर खड़े हो गये तथा उनके वियोग में आँखों से आँसुओं की धारा बहाने लगे। उनके आँसुओं से पृथ्वी पर कीचड़ हो गई। वे परस्पर इस प्रकार कह रहे थे कि इस अधर्मी कंस के राज्य में तो सुख तथा आनन्द स्वप्न के समान हो गया है! उस समय सभी व्रजबालाएँ श्री श्यामसुन्दर के चारों ओर खड़ी होकर, रो-रोकर इस प्रकार कहने लगीं–"हे प्राणप्यारे! तुम हम अबलाओं को अपने विरह-सागर में डुबाकर प्राण क्यों लेना चाहते हो? हम सभी व्रजबालाएँ तुम्हारे ही अधीन हैं। जिस प्रकार हाथ की रेखाएँ कभी मिटती नहीं, उसी प्रकार भले आदमी की प्रीति भी कभी घटती नहीं है तथा जिस प्रकार बालू की भीत कभी नहीं टिकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य की प्रीति भी नहीं निभती है। हे गोपीवल्लभ! हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जो तुम हमें पीठ दिखाकर जा रहे हो। तुम्हें इतना कठोर बनना उचित नहीं है।"

हे परीक्षित! श्री मुरलीमनोहर से इस प्रकार कहने के पश्चात् गोपियों ने अक्रूर से कहा–"हे अक्रूर! तुम हम लोगों के दुःख को जानकर हमारे प्राणेश्वर को अपने साथ लिये जा रहे हो। अब हमारा जीवन कैसे कटेगा? तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। इससे तो तुम हमें मार डालते तो अच्छा रहता। अक्रूर का अर्थ दयावान् अर्थात् क्रूरता से रहित होता है, परन्तु तुम अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Kosha

नाम के विपरीत ऐसी कठोरता क्यों दिखा रहे हो ? राजा कंस ने हमें जैसा दुःख दिया है, उसका बदला वह श्री कृष्णचन्द्रजी से पायेगा।" दूसरी बोली—"ब्रह्माजी भी हमें स्त्री का शरीर देकर हमारे ऊपर कुछ दया नहीं करते। भला, अब हम श्री श्यामसुन्दर की साँवली सूरत को देखे बिना किस प्रकार जीवित रहेंगी ?" तीसरी ने कहा—"हे आली ! इसमें अक्रूर अथवा ब्रह्मा का कोई दोष नहीं है, यह सब कठोरता तो श्याम प्यारे की ही समझनी चाहिए। उनका हृदय भी शरीर के समान काला है। हमने अपने कुल-परिवार की लाज त्यागकर उनसे प्रेम किया, तो भी वे हमें इस दुःखरूपी समुद्र में निराधार छोड़कर चले जा रहे हैं। मथुरा की स्त्रियाँ श्री श्याम प्यारे के दर्शन पाने के लिए दिन-रात हरि-भजन किया करती थीं सो नारायणजी ने अब उनकी प्रार्थना सुन ली है। चौथी गोपी बोली—"हे सखी ! मथुरा की स्त्रियाँ रूप-गुण से भरी हुई हैं, सो मोहन प्यारे उनकी प्रीति में फँसकर वहीं रह जायेंगे। हमारा ध्यान भुलाकर अब यहाँ नहीं लौटेंगे। उन स्त्रियों के बड़े भाग्य हैं, जो वे हमारे कृष्ण प्यारे के साथ सुख भोगेंगी।" पाँचवीं ने कहा—"श्री श्यामसुन्दर को मथुरा में किसी ने नहीं बुलाया। उनका अपना मन ही वहाँ की स्त्रियों को देखना चाहता है। इसलिए वे बहाना बनाकर जा रहे हैं।" छठी बोली—"इस चितचोर ने हमारे साथ ही कौन-सी भलाई की, जो अब उन स्त्रियों के साथ जाकर करेंगे। जो लोग सुन्दर होते हैं, वे अपने सौन्दर्य के अभिमान में किसी को कुछ नहीं समझते।" सातवीं ने कहा—"अब वृन्दावनवासियों के बुरे दिन आये तथा मथुरावासियों का भाग्योदय हुआ है। इसी लिए मनमोहन वहाँ जा रहे हैं।" आठवीं बोली—"हे आली ! अक्रूर हमारे लिए यमराज का दूत बनकर आया है। जिस प्रकार कोई किसी भूखे के सामने से भोजन की थाली उठा ले, उसी प्रकार यह हमसे श्यामसुन्दर का वियोग करा रहा है। यह क्या भली बात है कि मछलियों को पानी से निकालकर गर्म बालू पर डाल दिया जाय ?" नवीं ने कहा—"हे सखी ! इसमें किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए। यह तो हमारे ही खोटे दिन आये हैं, जो श्री बाँकेविहारी हमसे विलग हो रहे हैं।"

हे परीक्षित ! जिस समय गोपियाँ परस्पर एक-दूसरी से अपना दुःख कह रही थीं, उसी समय श्रीकृष्ण तथा बलरामजी रथ पर आरूढ़ हुए। यह देखकर गोपियाँ बोलीं—"हे सखी ! देख रही हो न, हमारे इतना विलाप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने पर भी, मनमोहन प्यारे हमारे ऊपर कुछ दया न करके मथुरा जाने को तैयार हो गये हैं ?" दूसरी ने कहा—"हे सखी ! हम लोग अपने कुल की आन को तो पहिले ही छोड़ चुकी हैं, अतः अब चलकर श्री मनमोहन प्यारे की फेंट पकड़ लो जिससे वे जाने न पायें।" यह सुनकर तीसरी बोली—"हे आली ! तू ठीक कह रही है। जिस लज्जा के कारण श्रीहरि से वियोग हो, उसे त्याग देना ही अच्छा है, अन्यथा इस समय लज्जा करने से पीछे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा।" चौथी ने कहा—"हम लोग यहाँ पगली के समान पड़ी रहें तथा मथुरा की स्त्रियाँ श्री नन्ददुलारे के साथ आनन्द उड़ावें, यह हमें सहन नहीं है। अतः हमें लाज छोड़कर अपना कार्य-साधन करना चाहिए।" पाँचवीं बोली—"हमें श्री बाँकेविहारी को देखकर सुख मिलता था। हम दिन-भर यह आस लगाये बैठी रहती थीं कि सन्ध्या के समय जब वे गौ चराकर लौटेंगे, तब उनका मुख-कमल देखकर अपना हृदय शीतल करेंगी—सो अब सन्ध्या होने पर हमारे प्राण कैसे जीवित बचेंगे ?" छठीं ने कहा—"हे सखी ! उस रात की बात तुझे याद है अथवा नहीं, जब श्री मोहन प्यारे ने रास-लीला करके हमें सुख दिया था ?" सातवीं बोली—"हे आली ! इनकी लीलाओं को जो भुला दे, उसे पशु समझना चाहिए।" तब एक अन्य सखी बोली—"हे सखियो ! जिस समय श्री कृष्णचन्द्र प्यारे गौ चराकर वन से लौटते थे, उस समय की शोभा कुछ कही नहीं जाती। हम सब उनके दर्शन पाकर तथा मुरली की ध्वनि को सुनकर प्रफुल्लित हो उठती थीं। अब भला, वह सुख हमें किस प्रकार प्राप्त होगा ?"

हे परीक्षित ! इस प्रकार सभी व्रजबालाएँ अक्रूर, श्यामसुन्दर तथा बलराम को अपने हृदय का हाल सुनाकर विलाप कर रही थीं तथा सब लोक-लाज त्याग कर उच्च स्वर से हे माधव, हे मुकुन्द, हे गोपीवल्लभ, हे दीनानाथ, हे मुरलीमनोहर आदि श्री श्यामसुन्दर के नामों को पुकारती हुई उन्हें अपना दुःख सुना रही थीं। उस समय उनकी व्यथा को देखकर सभी जड़-चैतन्य जीव अश्रुवर्षा करने लगे। वह दुःख वृक्षों को भी ऐसा व्याप्त हुआ कि वे दुःख के मारे डाली से लेकर जड़ तक काँपने लगे। उनकी ऐसी हालत को देखकर अक्रूर कंस की आज्ञा तथा अपने शरीर की सुधि को भूल गया। जब उससे वह करुण दृश्य और अधिक नहीं देखा गया, तब उसने रथ पर चढ़कर उसे आगे बढ़ाना चाहा; परन्तु उस समय सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्रजबालाओं ने आगे बढ़कर उस रथ को पकड़ लिया तथा अत्यन्त करुणा-पूर्ण हृदय से विनय करते हुए इस प्रकार कहा—"हे गोपीवल्लभ ! तुम अपनी अबला अनाथ गोपियों को अपने विरह-सागर में डुबाकर उनके प्राण क्यों लेना चाहते हो ? तुम हमें भी अपने साथ ले चलो । हम भी राजा कंस को तथा धनुषयज्ञ के उत्सव को देख आयेंगी । हमने अपने कुल-परिवार की लज्जा त्यागकर तुमसे प्रीति लगाई है, फिर तुम ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार क्यों कर रहे हो ? यदि तुम अक्रूर के साथ न जाओ तो कंस तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है । अक्रूर अपना काला मुख लेकर लौट जायगा ।"

हे परीक्षित ! एक ओर गोपियों की तो यह दशा थी, दूसरी ओर उसी समय श्री यशोदाजी रोती हुई वहाँ आ पहुँचीं तथा अक्रूर से इस प्रकार कहने लगीं—"हे अक्रूर ! तुम मेरे प्राणप्यारों को किसलिए लिये जा रहे हो ? भला, मैं इनके बिना किस प्रकार जीवित रहूँगी ?" तभी रोहिणी ने भी आकर इस प्रकार कहा—"हे अक्रूर ! ये श्याम और बलराम व्रज-वासियों के जीवनाधार हैं, इनके बिना हम लोग किस प्रकार जीवित रहेंगी।" तदुपरान्त यशोदाजी ने अत्यन्त विलाप करते हुए श्री कृष्णचन्द्रजी से इस प्रकार कहा—"हे मनमोहन ! तुम मेरी प्रीति छोड़कर क्यों जा रहे हो ? मैं तुम्हारे ऊपर न्यौछावर होकर कहती हूँ कि तुम इस प्रकार अपनी माता को त्यागकर मत जाओ ।" इस प्रकार यशोदाजी द्वारा कहने पर भी जब श्री श्यामसुन्दर रथ से नीचे नहीं उतरे, तब वे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं तथा अत्यन्त विलाप करके इस प्रकार कहने लगीं—"हे प्राणप्यारे ! तुम इतने कठोर बनकर मेरे प्राण क्यों लेना चाहते हो ? हे अक्रूर ! तू मेरी वृद्धावस्था के समय प्राण लेने के लिए वृन्दावन में क्यों आया है ? तू मेरी बुढ़ापे की लकड़ी का सहारा क्यों छीने ले जा रहा है ? हे कन्हैया ! क्या तुझे भी मेरे ऊपर कुछ दया नहीं आती जो इस प्रकार निर्मोही बनकर मुझे त्यागे दे रहा है ?"

हे परीक्षित ! इस प्रकार यशोदा, रोहिणी तथा गोपियों ने जब अत्यन्त विलाप किया, तब श्री कृष्णचन्द्रजी हँसते हुए रथ से नीचे उतर आये तथा इस प्रकार कहने लगे—"तुम लोग चिन्तित मत होओ । मैं तुम्हारे पास एक मनुष्य को (अपनी सुधि पहुँचाने के लिए) भेजूँगा ।" यह सुनकर यशोदा जी श्री श्यामसुन्दर को अपने कंठ से लगाकर अत्यन्त करुणा भरे स्वर में बोलीं—"हे पुत्र ! तुम धनुष-यज्ञ देखकर सीधे यहीं चले आना, वहाँ किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्य से प्रीति लगाकर अपनी माता को मत भूल जाना।" यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने यशोदाजी को बहुत ढाढ़स बँधाया तथा श्रीदामा से यह कहा कि तुम गोपियों से यह कह दो कि वे चिन्ता न करें, मैं फिर उनसे मिलूँगा। इतना कहकर श्री कृष्णचन्द्रजी यशोदा मैया को दण्डवत् कर सबको धैर्य बँधा, रथ पर बैठ गये। उस समय नन्दजी ने यशोदा तथा अन्य गोपियों को धैर्य बँधाते हुए कहा—"तुम लोग चिन्ता मत करो। मैं धनुष-यज्ञ दिखाकर श्याम-बलराम को अपने साथ ही लौटा लाऊँगा। मुझे कुछ भय है तो केवल इसी बात का कि राजा कंस श्याम-बलराम के साथ कहीं कुछ कपट न कर बैठे।" नन्दजी के ऐसे वचन सुनकर एक ज्ञानवान् वृद्ध ने उत्तर दिया—"हे नन्द! श्याम-बलराम श्री नारायणजी के अवतार हैं, इन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार ग्रहण किया है, सो इन्हें राजा कंस से क्या भय हो सकता है? ये तो मृत्यु को भी अपने हाथ में रखते हैं।" यह सुनकर नन्दराय को अपने हृदय में धैर्य हुआ।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! मुझे आश्चर्य है कि यशोदा तथा गोपियों के ऐसे विलाप को सुनकर अक्रूर ने उन्हें कुछ धैर्य क्यों नहीं बँधाया?" यह सुनकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! उस समय अक्रूर ने गोपियों से यह कहा था कि तुम चिन्ता मत करो। श्री बाँकेविहारी फिर भेंट करके तुम्हें सुख पहुँचायेंगे। अस्तु, जब अक्रूर ने सबको रोते छोड़कर, श्याम-बलराम को बैठा, रथ को मथुरा की ओर हाँका तथा नन्दजी सहित सब ग्वाल-बाल बैलगाड़ियों में बैठकर चलने लगे, उस समय यशोदाजी अत्यन्त विलाप करके इस प्रकार कहने लगीं—"हे लाल! तू हमारी ओर फिर कर भी तो देख ले। तेरे बिना व्रज में अन्धकार छा रहा है।" इतना कहकर यशोदाजी फिर रोने लगीं, उनकी ऐसी दशा देखकर सबको अपार कष्ट हुआ। हे परीक्षित! जब तक रथ की ध्वजा तथा धूलि उड़ती हुई दिखाई देती रही, तब तक यशोदा तथा गोपियों को यह आशा बनी रही कि शायद हमारे प्राणेश्वर अब भी लौटकर घर चले आवें। इसीलिए वे उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रहीं, परन्तु जब रथ की धूलि दीखनी बन्द हो गई तथा गोपियों का शरीर व्रज में एवं मन श्री श्यामसुन्दर के साथ चला गया, उस समय यशोदाजी सहित सभी गोपियाँ मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। कुछ देर बाद जब होश आया तो वे रोती-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पीटती अपने घर को लौट चलीं। श्री श्यामसुन्दर के विरह में उन्हें मार्ग भी दिखाई नहीं देता था। घर आकर सभी गोपियाँ अक्रूर तथा कंस को गाली दे-देकर श्री श्यामसुन्दर के चरित्रों का स्मरण तथा वर्णन करती हुई अत्यन्त शोक में डूब गईं।"

हे परीक्षित! इस प्रकार यशोदाजी तथा अन्य गोपियाँ श्री कृष्णजी की चर्चा में समय व्यतीत करने लगीं। उधर अक्रूर अपने मन में यह विचार करने लगा कि मैंने अधर्मी कंस के कहने से यह बहुत बुरा काम किया जो श्याम-बलराम को मारने के लिए कंस द्वारा रचाये गये सभी षड्यन्त्र की जानकारी रखते हुए भी मैं इन्हें अपने साथ मथुरा लिये जा रहा हूँ। कदाचित् कंस ने इन्हें मार डाला तो सभी व्रजबालाएँ जिन्हें मैं रोते-तड़पते छोड़ आया हूँ अत्यन्त दुःख प्राप्त करेंगी। इस अधर्म के बदले मुझे न जाने कौन-सा दुःख भोगना पड़ेगा? इस प्रकार अक्रूर जब अपने मन में यह विचार कर रहा था, उस समय अन्तर्यामी श्री श्यामसुन्दर ने उसके मन का हाल जानकर यह विचार किया कि अक्रूर इतना ज्ञानी होने पर भी मुझे बालक समझकर मेरे मारे जाने की चिन्ता कर रहा है। अतः मुझे अपनी कुछ महिमा दिखाकर इसका सन्देह नष्ट कर देना चाहिए। अस्तु, जब अक्रूर यमुना-तट पर पहुँचा तो श्री श्यामसुन्दर ने अपना रथ एक वृक्ष के नीचे खड़ा कराया और आप बलरामजीसहित स्नान करने के लिए गये। उस समय श्री मनमोहन ने नन्दरायजी से यह कहा कि तुम सब ग्वालबालों को साथ लेकर आगे चलो, हम अक्रूरजी के साथ स्नान तथा पूजन करके पीछे से आते हैं। यह सुनकर नन्दजी ग्वालबालों को साथ लेकर आगे चल दिए। इधर अक्रूर ने जैसे ही यमुना में स्नान करने के लिए गोता लगाया, वैसे ही उन्हें जल के भीतर श्री बाँकेविहारी के दर्शन दिखाई दिए। इस आश्चर्य को देखकर जब उन्होंने अपना मुँह जल के बाहर निकाला, तो उन्हें श्री कृष्णजी रथ पर बैठे हुए दिखाई दिए। दूसरी तथा तीसरी बार उन्होंने जब फिर पानी में गोता लगाया तो उन्होंने यह देखा कि श्री श्यामसुन्दर लक्ष्मीजीसहित रत्नजटित आभूषण पहिने, गले में वैजयन्ती माला तथा कौस्तुभ मणि डाले, मस्तक पर तिलक-चन्दन लगाये, पीताम्बर तथा यज्ञोपवीत धारण किए, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथों में लिये, चतुर्भुजी स्वरूप बनाये, शेषजी की शय्या पर विराजमान हैं। श्वेत वर्ण के शेषजी अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्र मस्तकों पर रत्नजटित मुकुट बाँधे, तथा नीलाम्बर पहिने, अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। श्री श्यामसुन्दर भी अपने घुँघुरुवे बालों पर क्रीट-मुकुट धारण किए, कानों में मकराकृत कुण्डल पहिने, सुन्दर कपोल, नासिका, दशन-युक्त मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए, विशाल वक्षःस्थल एवं भुजाओंवाले, गहरी नाभि, पतली कमर तथा मोटी जंघाओं युक्त अत्यन्त सौन्दर्यवान् प्रतीत हो रहे थे। उनके चरणों के तलवों में यव, अंकुश तथा वज्र आदि के चिह्न वर्तमान थे। तदुपरान्त अक्रूरजी ने यह देखा कि ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवता, नौ योगीश्वर, नारद, मार्कण्डेय, भृगु आदि मुनि, सनकादिक, गरुड़, आठों वसु, काल, चौबीस तत्त्व, ध्रुव, प्रह्लाद आदि भक्तगण, वेदव्यास, उनचास पवन, आठों दिग्पाल, सातों द्वीप, अग्नि, सातों समुद्र, बारहों सूर्य, चन्द्रमा, वालखिल्य, ऋषि, धर्मराज, कामधेनु, कामदेव, सप्तपुरी, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, दिव्यपितर, गंगा, सरस्वती आदि नदियाँ, अरुन्धती, वशिष्ठ, यक्ष, राक्षस, कंस, देव-कन्याएँ, सभी व्रत, तीर्थ तथा कल्पवृक्ष आदि अपना-अपना स्वरूप धारण किए उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हुए स्तुति कर रहे थे। अप्सराएँ नृत्य दिखा रही थीं तथा गन्धर्वगण गीत सुना रहे थे। ब्रह्मा आदि देवता स्तुति करने के पश्चात् श्री कृष्णचन्द्रजी के तेज को सहन करने की सामर्थ्य न रखने के कारण चित्रलिखे-से मौन खड़े थे। श्री नन्दनन्दन जिसकी ओर अपनी कृपादृष्टि से देखते थे, वही अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका गुणानुवाद करने लगता था। उनमें कोई तो आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी के ऊपर चँवर डुला रहा था और कोई धूप-दीप आदि अनेक सुगन्धित वस्तुएँ चढ़ाकर पुष्प-मालाएँ पहिना रहा था। कुछ लोग अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेंट करके उन्हें बारम्बार दण्डवत् कर रहे थे।

हे परीक्षित! जब अक्रूर ने जल के भीतर श्री कृष्णचन्द्रजी की यह महिमा देखी, तो उसे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि ये पूर्णब्रह्म के अवतार हैं। तदुपरान्त वह अपने मन का सन्देह त्यागकर उस चतुर्भुजी रूप के समक्ष जा, हाथ जोड़कर दण्डवत्-प्रणाम तथा विनय करने लगा। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जो मनुष्य इस अध्याय की कथा को प्रेमपूर्वक कहता-सुनता है, उसे भगवान् मुरलीमनोहर के दर्शन प्राप्त होने का फल मिलता है।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण के चतुर्भुजी स्वरूप की स्तुति

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब अक्रूर ने यमुना-जल के भीतर श्री कृष्णचन्द्रजी के चतुर्भुज रूप का दर्शन प्राप्त किया तथा उन्हें पूर्णब्रह्म जाना, उस समय वह उनके समक्ष खड़ा हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगा—"हे निरङ्कार ज्योतिःस्वरूप स्वामी! आप तीनों लोकों के स्वामी तथा आवागमन से रहित हैं। किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो कोई भी आपकी लीला के आदि-अन्त को जान सके, आप मेरा दण्डवत् स्वीकार कीजिये।" इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! जब श्री परब्रह्म प्रभु के भेद को कोई नहीं जान सकता, तब उनकी महिमा को जाननेवाला किसे समझना चाहिए?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित! श्रीहरि की महिमा को जानना अत्यन्त कठिन है। जितने भी जड़-चैतन्य जीव दिखाई देते हैं, उन सब में श्रीहरि का ही तेज तथा प्रकाश समझना चाहिये। और प्राणी तथा सभी वस्तुएँ उन्हीं की इच्छा या महिमा से उत्पन्न होती हैं तथा उन्हीं का स्वरूप हैं। जो ज्ञानी तथा तपस्वी मनुष्य श्रीहरि का स्मरण एवं ध्यान करते हैं, वे ही उनकी कृपा प्राप्त करके उनके भेद को कुछ जान सकते हैं। अस्तु, हे परीक्षित! अक्रूर ने यमुना-जल के भीतर श्री कृष्णजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं तथा तीनों लोकों के स्वामी हैं। जिस प्रकार सब नदी-नालों का पानी बहकर समुद्र में गिरता है, उसी प्रकार संसारी मनुष्य जो अन्य देवताओं के नाम पर पूजन तथा स्मरण आदि करते हैं, वह सब आपका ही पहुँचता है। मृत्यु के पश्चात् सभी प्राणी आपके ही स्वरूप में लीन हो जाते हैं। आपकी महिमा तथा गुणों को ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जान सकते; फिर किसी अन्य की क्या सामर्थ्य है, जो वह आपको पहिचान सके? हे निर्विकार! चारों वेद आपकी श्वास होने पर भी आपके आदि-अन्त को नहीं जानते हैं। आपके विराट् स्वरूप के रोम-रोम में अनेक ब्रह्माण्डों का निवास है; अतः मैं आपके उस विराट् स्वरूप को दण्डवत् करता हूँ। हे पूर्णब्रह्म! आप निर्मल, परमोज्ज्वल, चौदहों भुवनों के प्रतिपालक हैं। आप गौ, ब्राह्मण एवं हरि-भक्तों का उद्धार करने तथा अधर्मी, अत्याचारियों का संहार करने के लिए संसार में अवतार ग्रहण करते हैं। हे दीनबन्धो! अपने मत्स्यरूप धारण करके वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को पाताल से निकाला, हयग्रीव-रूप धारण करके मधुकैटभ नामक दैत्य को मारा, समुद्रमन्थन के समय आपने उसमें से चौदह रत्न उत्पन्न किए तथा कच्छपस्वरूप धारण कर मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर रखा। आपने वाराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष नामक दैत्य का वध किया तथा पृथ्वी को पाताल से निकाला। हिरण्यकशिपु को मारने तथा भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए आपने नृसिंह अवतार धारण किया। देवताओं के हित-साधन के हेतु आपने वामन अवतार लेकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान लिया। परशुराम अवतार लेकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन किया। रामचन्द्र अवतार लेकर राक्षसराज रावण का संहार किया तथा लंका का राज्य अपने भक्त विभीषण को सौंपा। हे प्रभु! तीनों लोकों को तारनेवाली श्री गङ्गाजी आपके चरणों की धोवन हैं। बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भी आपही के स्वरूप हैं। मैं आपके इन सब अवतारों को श्रद्धापूर्वक दण्डवत् करता हूँ।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी! उस समय तक अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न का तो जन्म भी नहीं हुआ था, फिर अक्रूर को उनका नाम किस प्रकार ज्ञात हुआ?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! अक्रूर श्री कृष्णजी के भक्तों में से थे, अतः उनकी दया से वे तीनों कालों का हाल जान गये थे। जिस प्रकार नारदजी को भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों समय का हाल ज्ञात रहता है, उसी प्रकार अन्य हरिभक्तजन भी तीनों काल का हाल जानते हैं।" अस्तु, इतनी स्तुति करने के उपरान्त अक्रूर ने आगे कहा—"हे महाप्रभु! आप बुद्ध अवतार लेकर दैत्यों को यज्ञ करने से रोकेंगे तथा कलियुग के अन्त में निष्कलङ्क अवतार धारणकर, सत्य-युग के धर्म का पुनः प्रचार करेंगे। हे प्रभु! कोई मनुष्य तो आपका तप एवं ध्यान करने से भवसागर के पार उतर जाता है तो किसी को आप इस संसारी मायाजाल में फँसाकर उनका कौतुक इस प्रकार देखते हैं, जिस प्रकार कोई दर्पण में अपना मुँह देखता है। आपकी कृपा के बिना इस मोह-जाल से छूटना अत्यन्त कठिन है। हे स्वामी! कोई आपकी मूर्ति बनाकर पूजा करता है तो कोई आपके चरण-कमलों का ध्यान अपने हृदय में रखता है तथा कुछ लोग आपके नाम पर यज्ञ करते हैं। जो लोग ज्ञानी होते हैं, वे सब जीवों में आपका ही स्वरूप देखते हैं। कुछ लोग वन में जाकर आपका तप करते हैं तो कुछ लोग गृहस्थी में ही रहकर आपका स्मरण एवं ध्यान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करके बारम्बार सुख प्राप्त करते हैं। कुछ लोग आपके अतिरिक्त अन्य किसी देवता का स्मरण भी नहीं करते। वे केवल आपको ही बारम्बार प्रणाम करते हैं तथा अन्य संसारी व्यवहारों को मिथ्या समझते हैं। हे प्रभो! ब्रह्मा, शिव, शारदा, गणेश तथा बड़े-बड़े ऋषि-मुनि सदैव आपकी सेवा-पूजा एवं स्मरण किया करते हैं। आपके गुणों का वर्णन करने की सामर्थ्य उनमें भी नहीं है, तो मैं अज्ञानी क्या कर सकता हूँ? हे त्रिभुवनपति! आपका नाम दीनानाथ भी है, अतः आप मुझे दीन जानकर मेरे अज्ञान तथा अभिमान को ज्ञान-रूपी अग्नि में भस्म कर दीजिए। आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं आठों प्रहर आपके ही चरणों के समीप बना रहूँ तथा आपको ही अपना उत्पन्न करनेवाला जान कर, आपकी ही सेवा में सदैव संलग्न रहूँ।"

इकतालीसवाँ अध्याय

अक्रूर तथा श्याम-बलराम का मथुरा पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब अक्रूर ने यमुना-जल में स्नान करते समय श्री कृष्णचन्द्रजी को चतुर्भुजी स्वरूप में, सब देवताओं से सेवित भली भाँति देख लिया, तब श्री श्यामसुन्दर ने जल के भीतर से अपना वह स्वरूप अदृश्य कर लिया। उस समय अक्रूर अपने मन में अत्यन्त आश्चर्य मानकर जल से बाहर निकला तथा श्री श्याम-बलराम को रथ में बैठे हुए देखकर भयभीत होता हुआ उनके पास जा पहुँचा। उसकी ऐसी दशा देख-कर श्री मुरलीमनोहर ने हँसते हुए कहा—"हे चाचा! तुम इस समय घबराए हुए से क्यों हो? तुम यमुना में स्नान करते समय अपना मुख बारम्बार पानी से बाहर निकालकर हमारी ओर क्यों देख रहे थे? तुमने चलने का ध्यान भुलाकर इतनी देर क्यों लगा दी? कहीं तुमने यमुना-जल के भीतर कोई आश्चर्य की बात तो नहीं देखी थी?" यह सुनकर अक्रूर ने हाथ जोड़कर कहा—"हे अन्तर्यामी! यमुना-जल के भीतर मैंने आपकी जो महिमा देखी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आपने वहाँ मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। आपकी कृपा से मैंने अन्य सब देवताओं को भी वहाँ आपकी स्तुति करते हुए देखा। मैं अज्ञानी आपकी महिमा को किस प्रकार कहूँ?" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी हँसते हुए बोले—"अच्छा, अब रथ पर चढ़ो। हमें अभी दूर चलना है।" यह सुनकर अक्रूर ने पहिले तो उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरणों पर अपना मस्तक रखा, फिर रथ पर बैठकर उसे आगे चलाया। नन्द आदि जो ग्वाल आगे चले गये थे वे मथुरा के समीप एक बाग में डेरा डाले हुए श्री कृष्ण तथा बलरामजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर श्याम-बलराम भी रथ से उतर पड़े। उस समय अक्रूर ने उनसे हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा कि हे प्रभु! आज की रात आप मेरे घर चलकर वहीं निवास कीजिए तथा अपने चरणों की रज से मेरी कुटी को पवित्र कीजिए। हे दीनानाथ! आपके चरण जिसके घर में पहुँचते हैं उसके पुरखा कृतार्थ होकर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। जिन चरणों ने गौतम-पत्नी अहिल्या को शाप-मुक्त किया, जिन्होंने बलि को सुतल लोक का राज्य दिया तथा जिनके द्वारा गंगाजी की उत्पत्ति हुई है, उन्हीं का चरणोदक पीकर तथा मस्तक पर चढ़ाकर मैं अपने परिवार-सहित कृतार्थ होना चाहता हूँ। हे प्रभो! मैं आपके चरणों का दास हूँ, अतः इन्हें छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा।" ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्णजी ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक अक्रूर का हाथ पकड़कर कहा—"हे चाचा! आज रात को तो हम यहीं रहेंगे, परन्तु कल राजा कंस को मारने के बाद हम बलरामजी सहित तुम्हारे घर आवेंगे। आज यहाँ सब लोगों को छोड़कर जाना उचित नहीं है।" श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर अक्रूर प्रसन्न हो, बिदा लेकर, राजा कंस की सभा में चला गया। वहाँ कंस ने उसे अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाकर कहा—"हे अक्रूर! तुम जहाँ गये थे, वहाँ का समाचार कहो।" यह सुनकर अक्रूर ने उत्तर दिया—"हे राजन्! व्रज की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। नन्दरायजी की प्रशंसा मैं कैसे करूँ? वे तुम्हारी आज्ञा को मस्तक पर धरकर श्याम-बलराम तथा अन्य व्रजवासियों-सहित यहाँ आ पहुँचे हैं तथा साथ में भारी भीड़-भाड़ होने के कारण नगर के बाहर ठहरे हुए हैं।" यह समाचार सुनकर राजा कंस ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अक्रूर से कहा—"हे अक्रूर! तुमने हमारा बड़ा काम किया, अब तुम आनन्द-सहित घर जाकर विश्राम करो।" कंस की आज्ञा सुनकर अक्रूरजी तो बिदा होकर अपने घर आये और वह श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी को मारने का उपाय सोचने लगा।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इधर श्याम-बलराम ने नन्दरायजी से इस प्रकार कहा—"हे बाबा! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम मथुरापुरी को देख आवें।" यह सुनकर नन्दरायजी ने उन्हें घूम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आने की स्वीकृति दे दी तथा पकवान मेवा आदि खिलाकर बिदा किया। तदुपरान्त चार घड़ी दिन शेष रहने के समय श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी ग्वालबालों को साथ लेकर मथुरापुरी को देखने के लिए चल दिए। मथुरा नगर का दुर्ग तथा अन्य स्थान बिल्लौरी पत्थर के बने हुए अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। रत्नजटित स्वर्ण के द्वारों पर मोतियों की झालरें लटक रही थीं। किले के चारों ओर गहरी खाईं खुदी हुई थी। जिसमें हर समय पानी भरा रहता था। किले की दीवालों के झरोखों में बैठे हुए तोता, मैना, कोकिल, कबूतर आदि भाँति-भाँति के सुन्दर पक्षी मीठी बोलियाँ बोल रहे थे। नगर की सभी गलियाँ तथा मार्ग अत्यन्त सुन्दर तथा साफ-सुथरे थे। उन पर इत्र तथा गुलाबजल का छिडकाव हो रहा था। प्रत्येक स्थान पर छोटे-छोटे उद्यान बने हुए थे, जिनमें सुन्दर सुगन्धित फूल खिल रहे थे तथा फल लग रहे थे। वृक्ष पर बैठे हुए अनेक रंगों के पक्षी चहचहा रहे थे। सुन्दर तालाब, बावड़ी, कुण्ड आदि जलाशयों में मोती के समान निर्मल पानी भरा हुआ था, जिनमें कमल के फूल खिल रहे थे तथा भँवरे गूँज रहे थे। जलाशयों में अनेक प्रकार के जल-पक्षी किलोलें कर रहे थे। चारों ओर सौन्दर्य, पवित्रता तथा आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था।

हे परीक्षित! मथुरापुरी की ऐसी शोभा को देखते हुए जब श्री श्याम-बलराम अपने सखाओं-सहित मार्ग में होकर निकले तो मथुरावासियों ने उनके दर्शन करके अपने जीवन का फल प्राप्त किया। जब यह समाचार वहाँ की स्त्रियों ने सुना कि श्याम-बलराम मथुरापुरी में आये हैं तो वे उनके दर्शन प्राप्त करने के लिए अपने-अपने घरों से बाहर निकलकर द्वार, चौबारे, छज्जों, अटारियों तथा चबूतरों पर आ बैठीं। उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलराम-जी को देखकर उन्हें जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे उनके दर्शन पाकर अपने नेत्रों तथा हृदय को शीतल करती हुई परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखी! ये ही वे दोनों सुन्दर बालक हैं, जिन्होंने केशी आदि दैत्यों को मारकर, गोकुल तथा वृन्दावन में अनेक लीलाएँ की हैं। हमने अपने पूर्वजन्म में कोई बड़े पुण्य किये थे, जिनके प्रताप से हमें इनका दर्शन प्राप्त हुआ है।"

"हे परीक्षित! मथुरा की स्त्रियाँ इस प्रकार आपस में अनेक तरह की बातें कहतीं तथा श्री श्याम-बलराम के दर्शन प्राप्त करके हर्षित होती थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय जो भी स्त्री उनके आने का समाचार पाती थी, वही अपना उल्टा-सीधा शृङ्गार कर, गोद के बालक को रोता छोड़, शीघ्रता में ऐसी दौड़ी आती थी कि उसे अपने शरीर तथा वस्त्रों का ध्यान भी नहीं रहता था। जिस समय मथुरा की स्त्रियाँ श्री श्यामसुन्दर के रूप-रस का पान कर रही थीं, उस समय वे भी त्रिभंगी छवि किए अपनी मन्द मुस्कान तथा बङ्किम चितवन से उन सबको सुख पहुँचाते थे। अस्तु, सभी स्त्रियाँ उन्हें देखकर तन, मन से निछावर हो गईं।"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! इस प्रकार मथुरावासी सब स्त्री-पुरुषों को अपना दर्शन देकर श्री मनमोहन तथा बलदाऊजी सर्वत्र आनन्द बिखरा रहे थे। उस समय ब्राह्मण लोग उनके मस्तक पर तिलक करके आशिवाद दे रहे थे तथा जहाँ-जहाँ भी वे जाते थे, वहीं के सब स्त्री-पुरुष उनके ऊपर पुष्प, रत्न, अक्षत, फल आदि की वर्षा कर अपना जन्म सफल बनाते थे। उस समय उस नगर की शोभा तथा भारी भीड़-भाड़ को देखकर घनश्यामजी ने अपने साथी गोपग्वालों से कहा कि यहाँ मार्ग मत भूल जाना। यदि कोई भूल ही जावे तो वह अपने डेरे पर चला जावे। इस प्रकार कहते हुए जब मनमोहन और आगे बढ़े तो उन्होंने यह देखा कि राजा कंस के धोबी, मदिरापान किए, कंस के गुण गाते, कपड़ों की गठरी लादे हुए चले आ रहे हैं। उन्हें देखकर श्री श्यामजी ने बलरामजी से यह सलाह की कि हमें इन धोबियों के कपड़े छीनकर स्वयं तथा अन्य ग्वालों को पहिन लेने चाहिएँ। जब बलरामजी ने स्वीकृति दे दी, तो श्री श्यामजी ने उन सब धोबियों के सरगना के पास पहुँचकर कहा—"हे रजक! तुम हमें पहिनने के लिए कुछ कपड़े दे दो। उन्हें पहिनकर जब हम राजा कंस से भेंट कर आवेंगे, तो तुम्हें फिर लौट कर वापिस कर देंगे। इसके बदले यदि हमें राजा से कुछ पुरस्कार मिलेगा, तो उनमें से तुम्हें भी हिस्सा दे देंगे।" श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर उस मूर्ख धोबी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"अरे मूर्खो! तुम वन के रहनेवाले गँवार लोग इन कपड़ों का पहिनना क्या जानो, जो हमसे इस प्रकार की बातें कर रहे हो? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि ये वस्त्र राजा कंस के हैं। यदि तुमने ऐसी बात फिर कही तो राजा तुम्हें भारी दण्ड देगा।"

चौपाई—अब तक वन में गाय चराई। कारी कामर शीश चढ़ाई॥
माँगत वसन न आवत लाज। बनिबो चहैं ग्वाल महराज॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धोबी के ऐसे वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने कहा—"अरे रजक! हम तो सीधी तरह से कपड़े माँग रहे हैं, और तू उल्टी-सीधी बातें कर रहा है? वस्त्रों को मँगनी देने में तेरी कोई हानि नहीं है। इससे तेरा यश संसार में सदा बना रहेगा।" अब श्री कृष्णजी के मुख से यह सुनकर धोबी ने उत्तर दिया—"अरे बालक! अभी तूने राजा कंस के क्रोध तथा प्रताप का हाल नहीं सुना है। तुझ जैसे गँवार राजसी व्यवहार को क्या जानें, जो तू इन वस्त्रों को पहिनने के लिए माँग रहा है? अब या तो तू मेरे सामने से हट जा अन्यथा मैं तुझे अभी मार डालूँगा।" धोबी के मुख से ऐसे दुर्वचन सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उसके मुख पर एक ऐसा तमाचा मारा कि उसका मस्तक भुट्टा के समान टूटकर पृथ्वी पर आ गिरा। यह देखकर उसके सब साथी कपड़ों की पोटली छोड़कर, भयभीत हो, भागते हुए राजा कंस के पास जा पहुँचे तथा उसे सब समाचार कह सुनाया। इधर श्री मनमोहनलालजी ने सब वस्त्रों को ग्वालों में बाँटकर, जो शेष बचे उन्हें लुटा दिया। वे ग्वालबाल तो राजसी वस्त्र पहिनना जानते ही न थे। अतः उन्होंने वस्त्रों को—अँगरखे में पाँव तथा पाँव के वस्त्रों में हाथ डालकर उल्टा-सीधा पहिन लिया। श्री श्यामसुन्दर ने भी उसी प्रकार पहिना।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! यदि तुम्हें इस बात का सन्देह हो कि श्री कृष्णजी को तो सब वस्तुओं का ज्ञान था, फिर उन्होंने उल्टे-सीधे वस्त्र क्यों पहिने तो उसका उत्तर यह है कि उनकी लीलाओं का रहस्य कोई नहीं जान सकता। वे परब्रह्म प्रभु संसारी व्यवहारों से अपना कोई प्रयोजन नहीं रखते। उनके भक्तगण प्रेमपूर्वक उन्हें जो भोग लगा देते हैं तथा वस्त्राभूषण पहिना देते हैं, उन्हीं को वे कृपापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। इसी कारण उन्होंने वस्त्र पहिनने में अपना अज्ञान प्रकट किया था। वे यह चाहते थे कि मेरा कोई भक्त आकर इन वस्त्रों को ठीक से पहिना दे। अतः उनके इच्छानुसार ही वहाँ एक दर्जी 'बायक' नामक उनका भक्त वहाँ आ पहुँचा। उसने श्री मुरलीमनोहर से यह प्रार्थना की—"हे प्रभु! मैं राजा कंस का सेवक हूँ, परन्तु आठों प्रहर आपके ही चरण-कमलों में अपना ध्यान लगाये रहता हूँ। इसलिए यदि आप मुझे अपना दास जानकर आज्ञा दें तो मैं आप सबको ठीक से वस्त्र पहिना दूँ।" यह सुनकर जब श्री श्याम-सुन्दर ने कृपापूर्वक आज्ञा दे दी, तो उसने कृष्ण-बलराम-सहित सब ग्वाल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालों को ठीक से वस्त्र पहिना दिये। उस समय श्री बाँकेविहारी ने प्रसन्न होकर उससे इस प्रकार कहा—"हे बायक ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। तू बड़ा धनवान् होगा तथा अन्त समय में मुक्ति को प्राप्त करेगा। तेरे वंश में सभी लोग हरि-भक्त उत्पन्न होंगे। हे बायक ! तूने जैसी सेवा की है, वैसा फल हम तुझे नहीं दे सके, इसके लिए हम स्वयं पर लज्जित हैं।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी ! उस दर्जी की थोड़ी सी सेवा के बदले श्री श्यामसुन्दर ने जब इतना बड़ा वरदान दे दिया तो भी वे लज्जित क्यों रहे ?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित ! दर्जी को कपड़े पहिनाते हुए देखकर श्री मुरलीमनोहर ने अपने मन में यह विचार किया था कि इस समय इसने सब ओर से अपना मन हटाकर हमारी सेवा में तन मन लगाया है, अतः हमने इसे जो कुछ दिया है, वह इसकी सेवा की बराबरी नहीं रखता है। हे राजन् ! देखो, एक बार वस्त्र पहिनाने के कारण जब वह दर्जी इस पद को प्राप्त हुआ, तो जो लोग प्रतिदिन श्री श्यामसुन्दर को वस्त्र आदि पहिनाकर उनका पूजन एवं ध्यान करते हैं, वे न जाने कैसा फल प्राप्त करते होंगे ? अस्तु, जब वस्त्र पहिनने के बाद श्री कृष्णजी आगे चले तो उनका भक्त 'सुदामा' नाम माली आकर उनके चरणों में गिर पड़ा। तदुपरान्त वह उन्हें अत्यन्त स्नेहपूर्वक ग्वाल-बालों-सहित अपने घर लिवा ले गया। वहाँ उसने सबको उत्तम आसन पर बैठा, चरण धोकर, चरणामृत का पान किया तथा विधिवत् पूजन करके, सबको सुगन्धित पुष्प-मालायें पहिनाकर हाथ जोड़कर स्तुति करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो ! आप सबके प्रतिपालक तथा दीनदयालु हैं। आपके पवित्र चरण-कमलों ने शत्रु-मित्र आदि सभी का उद्धार किया है। आप मुझ पर कृपा करके कुछ आज्ञा दीजिये, जिसे मैं करूँ।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह उत्तर दिया—"हे सुदामा ! हम तेरे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, अतः तेरी जो इच्छा हो, वह वर हमसे माँग ले।" उस समय सुदामा माली हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे प्रभो ! मैं यही चाहता हूँ कि आपके चरण-कमलों की भक्ति मेरे हृदय में सदैव बनी रहे तथा मुझे साधु-सन्तों एवं ज्ञानियों का सत्सङ्ग प्राप्त होता रहे।" यह सुनकर श्री घन-श्याम श्यामसुन्दर ने उसे इच्छित वरदान देते हुए कहा—"हे सुदामा ! तू सदैव धनवान् तथा सुखी रहेगा। तेरे वंश के लोग भी हरिभक्त तथा धनवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होंगे।" इतना कहकर श्री कृष्ण तथा बलरामजी सब गोप-ग्वालों के साथ वहाँ से उठकर आगे चल दिये।"

बयालीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी का शिव-धनुष को तोड़ना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! सुदामा माली को वरदान देने के बाद जब श्री कृष्णचन्द्रजी बाजार में पहुँचे तो उन्होंने यह देखा कि 'कुब्जा' मालिन कटोरियों में चन्दन भरे, थाल में रक्खे चली जा रही है। उसे देखकर श्री कृष्णजी ने हँसी से पूछा—"हे सुन्दरी! तुम यह चन्दन कहाँ लिये जा रही हो? हमें दोगी?" यह सुनकर उस कुबड़ी ने कहा—"हे मोहन! मैं 'कुब्जा' नामक कंस की दासी हूँ। मैं प्रतिदिन उसको चन्दन लगाने जाती हूँ सो वह इस सेवा से प्रसन्न होकर मेरा पालन करता है। हे श्यामसुन्दर! मैं प्रतिदिन अपने हृदय में तुम्हारा ध्यान धरकर, तुम्हारे ही गुण गाया करती थी, सो आज तुम्हारे दर्शन पाकर मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। राजा कंस के चन्दन लगाने से मेरा परलोक नहीं बनेगा, अतः मेरी यह इच्छा है कि यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं तुम्हारे चन्दन लगाकर अपना जीवन सफल बनाऊँ।" कुब्जा के सच्चे प्रेम को देखकर श्री बाँकेविहारी ने स्वीकृति दे दी। तब उस कुबड़ी ने श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी के मस्तक पर चन्दन लगाया। उस समय श्री मनमोहन ने प्रसन्न होकर बलरामजी से यह कहा कि इस सेवा के बदले कुब्जा का अङ्ग सीधा कर देना चाहिए। इतना कहकर श्री बाँकेविहारी ने कुब्जा के पाँव पर अपना पाँव रखकर तथा दो उँगलियाँ उसकी ठोड़ी में लगाकर उसे ऐसा उचकाया कि उसका कूबड़ तो बैठ ही गया, साथ ही वह सीधी तथा परम सुन्दरी हो गई।

हे परीक्षित! जब कुब्जा ने अपने को अत्यन्त सुन्दर देखा तो वह अंचल से अपना मुख ढाँपकर, मुस्कुराती हुई इस प्रकार कहने लगी—"हे प्रियतम! जब आपने प्रसन्न होकर मुझे सौन्दर्य तथा युवावस्था प्रदान की है, तो अब मुझ सेविका के घर चलकर मेरी मनोभिलाषा भी पूर्ण कर दीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे प्यारी! तू अपने मन में धैर्य रख। जिस प्रकार तूने चन्दन लगाकर हमारा हृदय शीतल किया है, उसी प्रकार राजा कंस को देखने के बाद हम भी तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे।" यह वर पाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुब्जा प्रसन्न हो अपने घर लौट आई तथा चन्दन का चौक पुरवाकर, वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत हो मोहनप्यारे के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। जब अन्य स्त्रियों ने उसकी तरुणाई तथा सौन्दर्य को देखा तो वे कुब्जा को सराहती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे कुब्जा ! तेरे अहोभाग्य हैं जो श्री गोपीनाथजी तुझसे भुजा पसार कर मिले हैं। अब जिस समय वे तेरे घर आवें, तब तू हमें भी उनके दर्शन कराना।"

हे राजन् ! इधर श्याम तथा बलरामजी सब ग्वालबालों-सहित हँसते हुए चले जा रहे थे। बाजार में जो व्यक्ति जिस वस्तु का व्यापार करते थे, वे सब अपनी-अपनी वस्तुएँ श्री श्यामसुन्दर को भेंट देते थे तथा श्री मनमोहन भी उनकी कुशल-क्षेम पूछकर उन्हें सुख पहुँचाते थे। मथुरा की स्त्रियाँ अपने वस्त्राभूषणों को श्री श्यामसुन्दर पर न्यौछावर करती हुई यह कहती थीं कि इनके वियोग में व्रज की गोपियों की न जाने क्या दशा हुई होगी ? इनके दर्शन पाये बिना वे अपने प्राणों को किस प्रकार रखती होंगी ? इस प्रकार घूमते-घामते श्री श्यामसुन्दर उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ शिवजी का धनुष रक्खा हुआ था तथा उसकी रक्षा के लिए बड़े शूर-वीर नियुक्त थे। जिस समय श्री श्याम-बलराम को उन रक्षकों ने देखा, तो दूर से ही चिल्लाकर कहने लगे—"तुम लोग यहाँ मत आओ, दूर खड़े रहो।" यह सुनकर श्री श्यामजी निर्भय हो, उस स्थान पर जा पहुँचे तथा तीन ताड़ लम्बे, मोटे तथा भारी शिवजी के धनुष को जो चबूतरे पर रक्खा हुआ था, अपने बायें हाथ से उठाकर, इस प्रकार सहज ही में दो टुकड़े कर डाला, जिस प्रकार हाथी ऊख को तोड़ गिराता है। जब कंस ने उस धनुष के टूटने का शब्द सुना तो वह श्री कृष्णजी को महाबली समझकर भय के मारे थरथर काँपने लगा। इधर श्री श्याम तथा बलरामजी ने धनुष तोड़ने के उपरान्त उन सभी शूर-वीरों को धनुष के टुकड़ों से मार-मारकर निर्जीव बना दिया, जो उसकी रक्षा के लिए नियुक्त थे। उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर श्री श्याम तथा बलरामजी पर पुष्प बरसाये। तदुपरान्त श्री कृष्णजी ने बलरामजी से कहा कि हे भाई ! अब हम लोगों को बहुत देर हो गई, अतः डेरों पर लौट चलना चाहिए, क्योंकि नन्दबाबा बहुत चिन्ता कर रहे होंगे। यह कहकर सब ग्वालबालों-सहित अपने डेरे पर आये। हे राजन् ! शिवजी के धनुष के टूटने का हाल सुनकर सब मथुरा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वासी परस्पर चर्चा करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि ये बालक तो कोई देवता प्रतीत होते हैं। राजा कंस ने बड़ी मूर्खता की, जो घर बैठे अपनी मृत्यु को बुलावा लिया है। उधर श्याम-बलराम तथा गोपग्वालों को सुन्दर वस्त्र पहिने हुए देखकर नन्दजी ने अनुमान किया कि कृष्ण ने इन वस्त्रों को किसी से छीन लिया होगा। यह सोचकर वे श्री मनमोहन से इस प्रकार कहने लगे—"हे श्यामसुन्दर! मथुरा हमारा गाँव नहीं है, अतः तुम्हें यहाँ ऐसे उपद्रव नहीं करने चाहिए।" उस समय श्री श्यामजी ने बात को बदलते हुए उत्तर दिया—"हे बाबा! हमने यहाँ बड़े उत्सव देखे हैं। अब भूख लग रही है। सो भोजन खिलाओ।" यह सुनकर नन्दजी ने उन्हें दूध, दही, पकवान आदि खिलाये।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब कंस को अपने शूर-वीरों के मारे जाने का समाचार मिला तो वह अत्यन्त उदास होकर अपने मन में विचार करने लगा कि अब मेरा पाला बड़े शक्तिशाली शत्रु से पड़ा है। अतः मेरे प्राण नहीं बचेंगे। इसी सोच में कंस चुपचाप पलंग पर जा लेटा। करवट बदलते-बदलते एक प्रहर रात्रि रहने पर जब उसकी आँख लगी तो उसने स्वप्न में अपने शरीर को बिना मस्तक का देखा तथा चन्द्रमा के दो टुकड़े दिखाई दिये। उसने यह भी देखा कि वह स्वयं अपने गले में लाल फूलों की माला पहिने, नंगे शरीर, रेत में स्नान करके, तेल लगाये, गदहे पर चढ़ श्मशान के भूत-प्रेतों के साथ मुर्दों के गले से मिल रहा है। उसे सोने के समान वृक्ष, अपनी परछाईं में छेद तथा वन में लगी हुई अग्नि दिखाई दी। इन बुरे स्वप्नों को देखकर वह घबराकर उठ बैठा, परन्तु श्री श्यामसुन्दर के भय के मारे उसे फिर नींद नहीं आई। प्रातः काल अपनी सभा में पहुँचकर सेवकों को यह आज्ञा दी कि रंगभूमि में बिछौने बिछवा कर, सब राजाओं को सम्मानपूर्वक बैठाओ तथा जितने यदुवंशी आये हैं, उन्हें भी बुलाकर आदर-सहित बैठाओ। कुश्ती के लिए अखाड़ा तैयार करो। मैं भी शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँचता हूँ। राजा कंस की आज्ञा पाकर सेवकों ने यथोचित प्रबन्ध करके सब लोगों को यथास्थान बैठा दिया। तदुपरान्त चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल, कूट आदि मल्ल अखाड़े में आकर, बड़े अभिमान से ढोल बजाते हुए ताल ठोकने लगे। कुछ देर पश्चात् राजा कंस भी वहाँ आकर, सबसे ऊँचे मचान के ऊपर जहाँ रत्न-जटित सिंहासन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रक्खा हुआ था, अभिमानपूर्वक बैठ गया। तब नन्द, उपनन्द आदि अन्य राजा गण भी कंस को भेंट देकर एक स्थान पर जा बैठे। उस समय कंस ने चाणूर तथा मुष्टिक आदि मल्लों को बुलाकर इस प्रकार कहा कि आज तुम श्याम तथा बलराम के साथ कुश्ती लड़कर उन्हें मार डालो। तब मल्लों ने भी उसे विश्वास दिलाया कि हम लोग अपनी शक्ति भर धोखा न देंगे। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! उस समय ब्रह्मा इत्यादि देवता श्री मुरलीमनोहर का दर्शन प्राप्त करने तथा उनकी विजय का दृश्य देखने के लिए अपने-अपने विमानों पर बैठकर वहाँ आ पहुँचे। उस स्थान पर मथुरावासी इतने स्त्री-पुरुष उपस्थित थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती!"

तेतालीसवाँ अध्याय

श्री श्यामजी तथा बलरामजी द्वारा कुवलयापीड़ हाथी का संहार

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब सब लोग एकत्रित हो गये, तब श्री श्याम तथा बलरामजी ग्वालबालों के साथ उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कुवलयापीड़ हाथी झूम रहा था। उसे देखकर बलरामजी ने फीलवान (महावत) से यह कहा कि तुम द्वार से हाथी को हटाकर हमें राजा कंस के पास जाने दो अन्यथा हम तुम्हें हाथीसहित मार डालेंगे। तू श्री श्यामसुन्दर को साधारण बालक न समझ, ये तीनों लोक के स्वामी हैं तथा पृथ्वी का भार हटाने के लिए इस रूप में प्रकट हुए हैं।" यह सुनकर महावत ने हँसकर उत्तर दिया—"अरे लड़को! गौ चराने के कारण ही तुम लोग तीनों लोक के स्वामी नहीं हो गये। मैं जानता हूँ कि दैत्यों को मारने तथा शिव-धनुष को तोड़ने के कारण तुम्हें अभिमान उत्पन्न हो गया है, परन्तु मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है, जब तक तुम इससे युद्ध न करोगे, तब तक मैं तुम्हें भीतर न जाने दूँगा। आज इस हाथी के सम्मुख तुम्हारा प्राण बचना कठिन है।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने बालों का जूड़ा लपेट, कमर से रेशमी दुपट्टा बाँध लिया। उस समय श्री बलरामजी फीलवान से बोले—"अरे मूर्ख! तूने यह दुर्वचन किस प्रकार कहे? मैं तुझे अभी हाथी-सहित मारे डालता हूँ। यह सुनकर जैसे ही फीलवान ने हाथी को अंकुश मारकर बलरामजी की ओर बढ़ाया तथा कुवलयापीड़ बादल के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गरजता हुआ उनकी ओर बढ़ा वैसे ही श्री बलदाऊजी ने उस हाथी के शरीर में एक ऐसा घूँसा मारा कि वह अपनी सूँड़ लपेटकर चिल्लाता हुआ पीछे को हट गया। बलरामजी का ऐसा बल देखकर वहाँ उपस्थित अन्य शूरवीर आपस में यह कहने लगे कि भला इन बलवानों को कौन जीत पायेगा ? उस समय फीलवान ने अपने मन में यह विचार किया कि यदि ये लड़के हाथी द्वारा नहीं मारे गये तो कंस मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा इसलिए इन्हें हाथी से मरवा ही डालना चाहिए। यह सोचकर उसने हाथी को फिर अंकुश मारकर श्यामजी तथा बलरामजी की ओर बढ़ाया। तब हाथी ने आगे बढ़कर श्री कृष्णचन्द्रजी को अपनी सूँड़ में लपेटकर पृथ्वी पर पटक दिया तथा उन्हें दोनों दाँतों से दबाने लगा। यह दृश्य देखकर सब देवता, मथुरावासी तथा ग्वालबाल श्री बाँकेविहारी की कुशल मनाने लगे। उस समय श्री कृष्णजी ने अपना स्वरूप अत्यन्त छोटा बनाकर स्वयं को हाथी के दोनों दाँतों के बीच में जाने से बचा लिया तथा उसके सामने खड़े हो, ताल ठोंककर ललकारने लगे। श्री मुरलीमनोहर की इस कुशलता को देखकर छोटे-बड़े सभी लोग हँसने तथा प्रशंसा करने लगे। उनकी ललकार सुनकर जब कुवलयापीड़ फिर उनकी ओर झपटा तो उन्होंने पेट के नीचे से निकलकर पीछे से उसकी पूँछ पकड़ ली तथा उसे पीछे खींचते हुए सौ पग की दूरी तक इस प्रकार ले गये, जिस प्रकार गरुड़ सर्प को खींचते हुए ले जाते हैं। तदुपरान्त जब वह हाथी पीछे की ओर घूमा तो उसे बलरामजी ने पूँछ पकड़कर घसीट लिया। इस प्रकार बहुत देर तक दोनों भाई उसे पूँछ पकड़कर घसीटते रहे और उसकी सूँड़ और पीठ पर इस प्रकार घूँसे मारते रहे जिस प्रकार बिल्ली चूहे को खेल खेलाती हुई मारती है। वे कभी उसके आगे-पीछे हो जाते और कभी नीचे जाकर, कभी दोनों दाँतों के बीच में पड़कर तथा कभी सामने से घूँसे मारकर अलग हो जाते थे। इस प्रकार घूँसे खाते-खाते जब कुवलयापीड़ थक गया, उस समय श्री मुरलीमनोहर ने उसकी सूँड़ पकड़कर एक ऐसा झटका मारा, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब श्री मनमोहन ने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिए तथा वही दाँत उसके मस्तक पर इस प्रकार मारा कि थोड़ी ही देर में वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। तदुपरान्त श्री श्यामजी ने एक दाँत तो बलरामजी को दे दिया तथा दूसरा स्वयं ले लिया। हाथी की मृत्यु देखकर, जब राजा कंस के अन्य शूर-वीर तथा फीलवान आदि उनसे लड़ने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये आये तो दोनों ने उन्हीं दाँतों से प्रहार करके सबको मार डाला। उस समय देवतागण आकाश से पुष्प-वर्षा करके जय-जयकार करने लगे।

हे परीक्षित! हाथी के शरीर से निकले हुए रुधिर के छींटे दोनों भाइयों के वस्त्रों पर ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे, जैसे वर्षाऋतु में वीरबधूटियों के कारण पृथ्वी शोभायमान होती है तथा उनके मुखकमल पर पसीना ऐसा लग रहा था, जैसे कमल के पुष्प पर ओस की बूँदें पड़ी हों। इस प्रकार कुवलयापीड़ को मारकर दोनों भाई सब गोप-ग्वालों के साथ राजा कंस की सभा में जा पहुँचे। हे राजन्! श्री कृष्णजी ने गीता में अर्जुन को यह बताया है कि जो व्यक्ति मेरे जिस रूप का ध्यान धरता है, मैं उसे उसी स्वरूप में दर्शन देता हूँ। अतः वे रंगभूमि में पहुँचने पर चाणूर आदि मल्लों को तो बड़े मल्ल के समान प्रतीत हुए तथा मथुरा की स्त्रियों को कामदेव से भी अधिक सुन्दर जान पड़े। ग्वालबालों ने उन्हें अपना बन्धु तथा नन्द आदि ने पुत्रवत् देखा। कंस के मित्र राजाओं को वे भयानक शत्रु के रूप में दिखाई दिए, जिसके कारण वे भयभीत हो गये। यदुवंशियों ने उन्हें रक्षक तथा योगियों ने पूर्णब्रह्म के रूप में देखा। अन्य लोगों ने उन्हें श्यामसुन्दर जानकर यह समझा कि ये वही बालक हैं, जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था में पूतना नामक राक्षसी को मारा तथा यमलार्जुन का उद्धार किया। तत्पश्चात् गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर रक्खा और अघासुर, धेनुक, प्रलम्ब, केशी आदि राक्षसों को मारकर कालीनाग को यमुना से बाहर निकाल दिया।

इन्होंने वृन्दावन में ऐसे-ऐसे कार्य किये, जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता है। उस समय कुछ लोग श्री कृष्ण बलराम को बालक समझकर यह कहते थे कि देखो यह राजा कंस कैसा निर्दयी है जो इन सुकुमार बालकों को ऐसे-ऐसे कठिन मल्लों से लड़वा कर इनके प्राण लेना चाहता है। हम इस अधर्म को अपनी आँखों से नहीं देख सकते, अतः हमें यहाँ से उठकर चले जाना चाहिए, ऐसा विचार कर वे लोग वहाँ से उठ गये। कुछ लोग अपना अंचल फैलाकर श्रीहरि से यह प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभु! जिस प्रकार इन्होंने शिव के धनुष को तोड़कर, कुवलयापीड़ को मारा है, उसी प्रकार ये मल्ल भी इनके हाथ से मारे जावें।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिस समय श्री कृष्णचन्द्रजी उस अखाड़े में जाकर खड़े हुए उस समय विविध रंग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लँगोट पहिने हुए चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों ने आकर, उन्हें चारों ओर से घेर लिया। तदुपरान्त चाणूर ने श्री कृष्णजी के पास जाकर कहा—"हे कन्हैया! आज हमारे महाराज कंस का चित्त कुछ उदास है, सो वे तुम्हारे साथ हमारी कुश्ती का खेल देखना चाहते हैं। इसीलिए तुम्हें यहाँ बुलाया गया है। सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिए, अतः आओ तुम हमसे कुश्ती लड़ो। हे कृष्ण! हमने यह सुना है कि तुम वन में ग्वाल-बालों के साथ कुश्ती लड़ा करते थे, अतः कुश्ती लड़ना भली भाँति जानते हो। आज हम लोग तुम्हारे बल की परीक्षा लेना चाहते हैं। तुम अपने मन में किसी प्रकार का भय मत मानो।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे चाणूर! कंस जैसे प्रतापी राजा को हम क्या प्रसन्न कर सकते हैं, परन्तु यदि तू अपने स्वामी की आज्ञा पालन करना चाहता है, तो हम भी तेरे साथ कुश्ती लड़ने को प्रस्तुत हैं। यद्यपि तू बल में अधिक है, तो भी हम तेरी बात नहीं टालेंगे। तेरे राजा ने हमें बुलाया है, अतः न्याय की बात स्वयं उसी को सोचनी चाहिए थी। तेरा राजा बड़ा निर्दयी तथा अधर्मी है जो हम जैसे बालकों को तुम जैसे तरुण तथा शक्तिशालियों से लड़वाता है। हे चाणूर! वैर, प्रीति, विवाह तथा कुश्ती समान से होनी चाहिए। परन्तु राजा कंस पर हमारा कोई वश नहीं चलता, इसलिए हम तेरे साथ लड़ेंगे। तू हमें बचाते हुए कुश्ती लड़ना, ताकि हमारा हाथ-पैर न टूट जाय। तू ऐसा कार्य करना जिससे हमारा तथा तेरा तो धर्म बना रहे और राजा को भी अप्रसन्नता न हो।" यह सुनकर चाणूर बोला—"हे कृष्ण! तुम देखने में तो बालक प्रतीत होते हो, परन्तु तुम्हारे कार्य एवं कीर्ति को सुनकर तथा कुवलयापीड़ हाथी की मृत्यु देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो तुम कोई अवतार हो। यद्यपि मुझे तुम्हारे साथ कुश्ती लड़ना उचित प्रतीत नहीं होता, परन्तु यदि अपने स्वामी की आज्ञा न मानूँ तो धर्म नष्ट होता है, इसलिए मैं तुम्हारे साथ कुश्ती लड़ने को बाध्य हूँ।"

चौवालीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी द्वारा चाणूर आदि मल्ल एवं राजा कंस का वध

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इस प्रकार वार्तालाप करने के उपरान्त जब श्री श्यामसुन्दर चाणूर से तथा बलरामजी मुष्टिक से कुश्ती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लड़ने लगे, उस समय उन बालकों तथा जवानों की बेमेल कुश्ती को देखकर मथुरावासियों ने परस्पर इस प्रकार कहा कि यह कार्य अधर्मपूर्ण हो रहा है। यदि हम राजा कंस से ऐसा न होने देने के लिए कहें तो वह हमें मार डालेगा, अतः ऐसे अधर्म को देखने से पूर्व हमें यहाँ से उठकर चले जाना चाहिए। ऐसा विचार कर जो लोग श्री बाँकेविहारी को बालक समझते थे, वे सभा से उठकर बाहर चले गये तथा जाते समय कंस को यह श्राप देते हुए कहते गये कि तू इस अधर्म का दण्ड अवश्य प्राप्त करेगा। हे राजन्! तदुपरान्त श्री श्याम-बलराम ने अपना शरीर हीरे के समान ऐसा कठोर बना लिया जो किसी भी शस्त्र के काटने से न कट सके। जब चाणूर ने हाथ से हाथ, मस्तक से मस्तक, छाती से छाती, ठोढ़ी से ठोढ़ी तथा पाँव से पाँव मिलाकर अनेक दाँव-पेंचों द्वारा श्री कृष्णजी को पकड़ना चाहा तो वे उसके हाथ नहीं आये। उस समय वह उदास होकर अपने मन में यह सोचने लगा कि इस बालक को पहलवानों के न जाने कितने दाँवपेंच मालूम हैं तथा इसमें न जाने कितनी शक्ति भरी हुई है? इसके ऊपर मेरा कोई वश नहीं चलता। इसके विपरीत यदि यह अपनी एक उँगली से भी मुझको मारता है तो मैं अपने हृदय में घबड़ाने लगता हूँ।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिन पर-ब्रह्म प्रभु को ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता भी नहीं पकड़ सकते तथा जिन्होंने राजा बलि से दान लेते समय अपने केवल दो ही पगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप लिया था, उन्हें भला चाणूर किस प्रकार पकड़ लेता? यद्यपि चाणूर तथा मुष्टिक श्री श्याम-बलराम की महिमा से अपरिचित थे, परन्तु उन्होंने अपने पूर्वजन्म में बड़ा तप किया था, उसके प्रभाव से उनके शरीर का स्पर्श श्री त्रिलोकीनाथजी के शरीर से हो जाता था। जिस समय चाणूर छल-बल दिखाकर श्री श्यामसुन्दर पर झपटता था, तब वे उछलकर अलग हो जाते थे। अस्तु, जिस समय चाणूर ने श्री कृष्णजी की छाती पर एक जोर का घूँसा मारा तो उन्हें कुछ भी चोट नहीं लगी, परन्तु उसके बाद जब श्री श्यामजी ने उसे दोनों हाथ पकड़कर चारों ओर घुमाते हुए पृथ्वी पर पटका तो उसका शरीर अखाड़े की मिट्टी में धँस गया तथा प्राणपखेरू उड़ गये। तदुपरान्त जिस प्रकार कोई बालक चींटी को पकड़कर मार डालता है, उसी प्रकार श्री बलभद्रजी ने भी मुष्टिक नामक मल्ल को कुश्ती लड़ते हुए मार डाला।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वे दोनों वैकुण्ठ को प्राप्त हुए। उनकी मृत्यु के पश्चात् जब शल, तोशल तथा कूट नामक मल्ल अपने हाथ में खड्ग लेकर श्री श्याम-बलरामजी से लड़ने को आये तो श्री श्यामसुन्दर ने अपने बायें पाँव की लात से शल-तोशल को तथा श्री बलरामजी ने अपने बायें पाँव के घूँसे से कूट को मार डाला। इन पाँचों के मरते ही अन्य पहलवान अपने-अपने प्राण बचाकर भाग गये। उस समय मथुरावासी हरिभक्त लोग प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे कि उस पृथ्वी के धन्य भाग्य हैं, जहाँ इन बालकों के चरण पड़ते हैं। जो गोपग्वाल इनके साथ दिन-रात रहते हैं, उनके भाग्य की प्रशंसा भी कोई नहीं कर सकता तथा जो गोपियाँ दिन-रात इन्हें अपने हृदय में बैठाये रहती हैं, वे सब भी परम धन्य हैं। व्रज के उन सब जीवों को भी, जो इनका दर्शन प्राप्त करते हैं, बड़ा पुण्यात्मा जानना चाहिए। यद्यपि राजा कंस पापी है, परन्तु उसने हमारे साथ यह भलाई ही की है कि उसके कारण हमें भी इनके दर्शन पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्यथा इनके दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ हैं।

हे परीक्षित! इस प्रकार सोच-समझकर सभी मथुरावासी श्री कृष्णजी तथा बलरामजी की स्तुति करने लगे। उस समय देवताओं ने भी प्रसन्न होकर आकाश से पुष्प-वर्षा की। कंस के अतिरिक्त रंगभूमि में उपस्थित अन्य सभी लोग श्री कृष्णचन्द्रजी का जयजयकार करने लगे। उस समय चाणूर, मुष्टिक आदि के मारे जाने के कारण राजा कंस उदास होकर मथुरा-वासियों से इस प्रकार कहने लगा कि तुम लोग कृष्णचन्द्र की विजय पर प्रसन्न होकर बाजा क्यों बजाते हो? परन्तु उसकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। तब कंस ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने साथी दैत्यों तथा योद्धाओं को यह आज्ञा दी कि तुम इन दोनों लड़कों को बाहर ले जाकर तलवार से मार डालो तथा गोपग्वालों को बन्दी बना लो। इसके बाद वसुदेव, देवकी तथा राजा उग्रसेन को भी मार डालो, रंगभूमि का फाटक भीतर से बन्द करके इन सब कार्यों को पूर्ण करने में विलम्ब मत लगाओ। राजा कंस की ऐसी आज्ञा सुनकर कंस के साथी दैत्य तथा योद्धाओं ने तलवारें ले-लेकर श्री कृष्ण तथा बलरामजी को घेर लिया। यह देखकर दोनों भाइयों ने क्षणभर में ही बहुत से दैत्यों को काल का ग्रास बना दिया। तब जो दैत्य शेष बचे वे अपने-अपने प्राण बचाकर भाग गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! जिस समय वसुदेव-देवकी को श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी के मथुरा आगमन का समाचार मिला तो वे व्याकुल होकर, उनकी कुशल के लिए श्री नारायणजी से प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो ! मेरे दोनों पुत्रों की अब आप ही रक्षा करें। अस्तु, जब अन्तर्यामी श्री कृष्णजी ने अपने माता-पिता को दुखी जाना तथा कंस की उपर्युक्त आज्ञा सुनी तो उन्होंने यह निश्चय किया कि आज कंस को मारकर माता-पिता का दुःख दूर करना चाहिए। यह विचार कर, वे छोटा-सा रूप बना, कूदकर कंस के मचान पर जा चढ़े। तब उन्हें अपने पास आया हुआ देखकर कंस ने अत्यन्त भयभीत होकर पहिले तो यह विचार किया कि मैं यहाँ से भागकर अपनी जान बचा लूँ परन्तु फिर लोक-लज्जा का ध्यान करके, धैर्य धारण कर, उनके ऊपर अपने खड्ग का प्रहार करने लगा। उस समय देवतागण आकाश में आकर श्री कृष्णजी से यह प्रार्थना करने लगे कि हे महाप्रभु ! आप इस महापापी का संहार शीघ्र कर डालिए। देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर श्री कृष्णजी ने अपने शरीर से ऐसा प्रकाश प्रकट किया, जिसे देखने से कंस की आँखें बन्द हो गईं। तब श्री कृष्णजी ने अपने पाँव की ठोकर से उसका मुकुट गिरा दिया और उसके बाल पकड़कर मंच से नीचे पटक दिया, तदुपरान्त अपने शरीर में तीनों लोकों का बोझ लेकर स्वयं भी उसके ऊपर कूद पड़े। हे परीक्षित ! श्री कृष्णजी के ऊपर गिरते ही कंस के प्राण-पखेरू उड़ गये। कंस की आँखों में सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, हर समय श्री कृष्णजी ही बसे रहते थे, अतः उसे मोक्ष-पद की प्राप्ति हुई। जो लोग श्री श्यामसुन्दर का प्रतिदिन स्मरण करते हैं, उनकी प्रशंसा किस प्रकार कही जा सकती है ? अस्तु, कंस को मरा हुआ देखकर जब उसके आठ भाई अपने-अपने शस्त्रास्त्र लिये हुए श्री कन्हैयाजी को मारने के हेतु झपटे, तो श्री बलरामजी ने अपने हल-मूशल से उन सबको मार डाला। उस समय कंस की मृत्यु देखकर सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। देवता-गण आकाश से पुष्पवर्षा करने लगे तथा मथुरावासी एवं व्रजवासी सभी लोग श्री कृष्ण तथा बलरामजी का जय-जयकार करने लगे। तदुपरान्त श्री कृष्णजी कंस के मृतक शरीर को, शिर के बाल पकड़कर घसीटते हुए यमुनातट पर ले गये। हे परीक्षित ! कंस ने वसुदेव-देवकी को बहुत कष्ट पहुँचाया था। इसीलिए श्री श्यामसुन्दर उसकी लोथ को घसीटते हुए लेकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये। वहाँ यमुना-तट पर दोनों भाइयों ने कुछ देर विश्राम किया। तब से उस स्थान का नाम 'विश्राम घाट' प्रसिद्ध हुआ। कंस की मृत्यु का समाचार जब रनिवासों में पहुँचा तो उसकी स्त्रियाँ भी रोती-पीटती, केश बिखराये हुए अपने पति के मृत शरीर के पास जा पहुँचीं।

हे परीक्षित! उस समय कंस की रानियाँ अपने मृत पति के मस्तक को गोद में रखकर, रोती हुई इस प्रकार कहने लगीं—"हे राजन्! तुम इतने बड़े प्रतापी तथा शक्तिशाली होते हुए भी ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुए? यदि तुम श्री कृष्णचन्द्रजी से बिना अपराध के विरोध न करते तो तुम्हारी यह दशा क्यों हुई होती? इसीलिए हरिभक्तों तथा सन्तों को दुःख देना अच्छा नहीं कहा गया है। अब तुम हाथी, घोड़े, धन आदि सब वस्तुओं को यहीं छोड़कर चले गये। तुम संसार में किसी को अपने बराबर नहीं समझते थे। अब तुम्हारा वह गर्व कहाँ चला गया, जो आज तुम्हारा मृत शरीर बिना कफन के पृथ्वी पर इस प्रकार पड़ा हुआ है? अब तुम्हारे रत्न-जटित सिंहासन पर बैठकर मथुरावासियों का न्याय कौन करेगा तथा हम लोग किसके सहारे जीवित रहेंगी?" इस प्रकार रानियों ने जब बहुत विलाप किया, उस समय श्री कृष्णजी ने कृपा करके उन्हें समझाते हुए इस प्रकार कहा—"हे मामियो! भाग्य का लिखा किसी प्रकार मिट नहीं सकता। कंस ने जो-जो पाप किये, उनसे तुम सब भली भाँति परिचित हो। अतः ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी, यह जानकर तुम अपने मन में धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ, तुम्हारी यथाशक्ति सेवा करूँगा। अब तुम इनके क्रिया-कर्म का प्रबन्ध करो।" श्री कृष्णचन्द्रजी के समझाने पर कंस की रानियों तथा उसके भाइयों की पत्नियों को जब कुछ ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने-अपने पति के मृतक शरीर का यथाविधि दाह-संस्कार किया। श्री कृष्णचन्द्रजी ने राजा कंस का दाह-संस्कार, उसके पिता राजा उग्रसेन के हाथों से कराया। हे राजन्! कंस-वध की लीला को जो लोग ध्यान से सुनते हैं तथा श्री कृष्णजी के चरणों में प्रीति रखते हैं, उन्हें कहीं भय प्राप्त नहीं होता।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी का उग्रसेन को राज्यसिंहासन पर बैठाना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! कंस आदि का क्रिया-कर्म हो जाने पर श्री कृष्णचन्द्र तथा बलरामजी अक्रूर को साथ लेकर, बंदीगृह में अपने माता-पिता वसुदेव-देवकी के पास जा पहुँचे। जिस समय उन्होंने उनके हाथ-पाँवों की हथकड़ी-बेड़ी कटवा कर, उनके चरणों पर अपना मस्तक रक्खा, उस समय देवकी ने रोते-रोते कहा—"हे प्राणप्यारे! तुम बारह वर्ष तक कहाँ रहे! मैं तो तुम्हें अपनी गोदी में भी नहीं खेला सकी।" माता के ऐसे करुण वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे माता-पिता! मैं आपके घर में ऐसा अभागा जन्मा कि मेरे कारण आप लोगों को इतना कष्ट उठाना पड़ा। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि जब आप मुझे गोकुल में नन्दरायजी के घर पहुँचा आये तो मैं परवश हो गया, इसीलिए अब तक आपके पास नहीं आ सका। मुझे सदैव यह इच्छा बनी रहती थी कि देखो जिस माता ने मुझे दस महीने अपने पेट में रक्खा, वह मेरा बाल-चरित्र भी नहीं देख सकीं। मैंने भी बाल्यावस्था में अपने माता-पिता का कोई सुख नहीं उठाया। मेरे इतने दिन पराये घर में रहकर व्यर्थ बरबाद चले गये तथा जिन्होंने मेरे लिए इतना कष्ट उठाया, उनकी मैं कोई सेवा नहीं कर सका। मुझे आपकी सेवा करना तथा अपने बाल-चरित्रों द्वारा सुख पहुँचाना उचित था, सो वह सुख नन्द-यशोदा को प्राप्त हुआ। हे माता! जिस पुत्र के माता-पिता दुःख पाते हैं, वह अवश्य ही नरक में जाता है। संसार में उन्हीं को सामर्थ्यवान् समझना चाहिए, जो मन, कर्म तथा वचन से अपने माता-पिता की सेवा करते हैं। जो व्यक्ति मनुष्य शरीर पाकर अपने माता-पिता, गुरु एवं अन्य बड़े-बूढ़ों की सेवा नहीं करता तथा स्त्री एवं बालकों-का पालन नहीं करता उसके लोक तथा परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। हे पिता! यदि मैं ब्रह्मा की आयु के बराबर समय तक भी आपकी सेवा करूँ तो भी कभी आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकता हूँ। अब मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे अपराध क्षमा कर दें तथा सब सुख-दुःखों को अपने कर्मानुसार समझें। अब आप सम्पूर्ण शोक त्यागकर आनन्द मनाइये। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए स्वर्ग अथवा पाताल में जाने से भी कभी न डरूँगा। अब आठों सिद्धियाँ तथा नवों निधियाँ आपकी दासी बनी रहेंगी।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! श्री कृष्णजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर जब वसुदेव-देवकी का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उन्होंने समझ लिया कि ये हमारे पुत्र के स्वरूप में त्रिलोकीनाथ हैं तथा इन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया है। यह जानते ही वे दोनों श्री कृष्णजी की स्तुति करने लगे, परन्तु श्री श्यामसुन्दर संसार में और भी बहुत सी लीलाएँ करना चाहते थे, अतः उन्होंने थोड़ी देर बाद ही अपनी माया द्वारा उनका ज्ञान हर लिया। उस समय वसुदेव-देवकी उन्हें अपना पुत्र समझ, गोद में बैठाकर प्यार करने लगे। उन्होंने श्री कृष्ण-बलराम का मुख तथा मस्तक चूमकर अपना पिछला दुःख भुला दिया। तदुपरान्त वे श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी को साथ लेकर अपने घर आ पहुँचे।

हे परीक्षित ! घर पहुँचकर वसुदेवजी ने दस सहस्र गौएँ विधिपूर्वक पूजन करके, जो उन्होंने श्री कृष्णचन्द्रजी के जन्म के समय मन में संकल्प किया था, ब्राह्मणों को दान कीं तथा ग्वालबालों सहित दोनों भाइयों को छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाकर, उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाये। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दर ने बलरामजी से यह कहा—"हे भाई ! जब राजा के बिना प्रजा को कष्ट पहुँचेगा, तब सब लोग वसुदेवजी को राज्य-सिंहासन पर बैठाने को कहेंगे। यदि ऐसा किया गया तो लोग यह कहेंगे कि इन्होंने राज्य के लोभ के कारण कंस को मारा है। इसलिए उग्रसेन को राज्य-सिंहासन पर बैठा देना चाहिए।" जब बलरामजी ने यह बात स्वीकार कर ली तो दोनों भाई वसुदेवजी को साथ लेकर उग्रसेन के पास जा पहुँचे तथा उन्हें दण्डवत् करके इस प्रकार कहने लगे—"हे नाना ! अब आप राज-सिंहासन पर बैठकर राज्य कीजिए तथा हमें अपना सेवक समझकर हृदय से सब प्रकार के सन्देह दूर कर दीजिए। पृथ्वी के सभी राजा आपको 'कर' देकर आपके अधीन बने रहेंगे। जो राजा आपकी आज्ञा नहीं मानेगा, उसे हम क्षणभर में बाँधकर आपके सामने ले आयँगे। इस प्रकार आप निर्भय होकर राज्य कीजिए।" श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर उग्रसेन ने हाथ जोड़कर कहा—"हे श्यामसुन्दर ! यह तुमने बहुत अच्छा किया जो पापी कंस को उसके भाइयों सहित मार डाला तथा यदुवंशियों का दुःख दूर किया। जिस प्रकार तुमने दैत्यों, राक्षसों तथा अधर्मी लोगों को मारकर हरिभक्तों को सुख दिया है, अब उसी प्रकार तुम्हीं राजसिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करो।" यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने कहा—"हे नाना! आपने यह सुना होगा कि राजा ययाति के शाप के कारण उनके पुत्र यदु आदि राजगद्दी प्राप्त करने के अधिकार से वंचित हो गये थे, अतः हम लोग उसी वंश में उत्पन्न होने के कारण राज-सिंहासन पर बैठने के अधिकारी नहीं हैं, इसलिए आप सिंहासन पर बैठकर गौ-ब्राह्मण तथा हरिभक्तों की रक्षा करते हुए, प्रजा को सुख पहुँचाइये तथा जो यदुवंशी कंस के भय के कारण अपनी जन्मभूमि मथुरा को छोड़कर अन्यत्र जा बसे हैं, उन्हें यहाँ बुलाकर फिर से बसाइये।"

हे परीक्षित! जब राजा उग्रसेन ने श्री कृष्णचन्द्रजी की बात मान ली तब उन्होंने उग्रसेन को विधिपूर्वक सिंहासन पर बैठाकर तिलक कर दिया। उस समय श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी ने अपने हाथों से चँवर डुलाया तथा सब छोटे-बड़ों ने मङ्गलाचार किये। सभी मथुरावासी प्रसन्न होकर श्री बाँकेविहारी की जय-जयकार करने लगे। तदुपरान्त राजा उग्रसेन की आज्ञा से सब यदुवंशी भी मथुरा में लौट आये। उनमें श्री कृष्णजी ने जिन्हें दुःखी तथा दरिद्र देखा, उन्हें उनके इच्छानुसार वस्त्र-आभूषण, द्रव्य तथा गाँव आदि देकर ऐसा प्रसन्न किया कि फिर किसी को किसी वस्तु की आकांक्षा न रही। उस समय वसुदेव तथा देवकी को भी अत्यन्त आनन्द हुआ। जो लोग वृद्ध तथा दुर्बल हो गये थे, वे सब श्री कृष्णजी की अमृत-दृष्टि को प्राप्त कर, पुनः तरुण तथा स्वस्थ हो गये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इस प्रकार सब लोगों को सुख देने के उपरान्त श्री कृष्णजी ने बलरामजी से कहा—"हे भाई! यशोदा मैया ने हम दोनों भाइयों को इतने समय तक बड़े स्नेहपूर्वक पाला है, अतः वे हमारे लिए बड़ी चिन्तित हो रही हैं। नन्दबाबा भी सब व्रजवासियों सहित मेरे वृन्दावन लौटने की आस लगाये टिके हुए हैं, अतः अब हमें चलकर उन सब लोगों को बिदा करना चाहिए। उन्होंने हमसे अत्यन्त स्नेह किया है तथा हमें विविध भाँति के सुख दिये हैं। हम उनसे कभी उऋण नहीं हो सकते, अतः आज उन्हें बिदा करते समय मेरा हृदय भरा आ रहा है।" इतना कहकर श्री कृष्णजी तथा बलरामजी व्रजवासियों को देने के लिए द्रव्य, रत्न, वस्त्र, आभूषण आदि तथा राजा उग्रसेन एवं वसुदेवजी को अपने साथ लेकर नन्दरायजी के डेरे को चल दिये। वहाँ नन्दजी यह सोच रहे थे कि हमें वृन्दावन से आये कई दिन हो गये, अतः अब यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्याम और बलराम आ जायँ तो हम भी अपने घर पहुँचे। उसी समय श्री श्यामसुन्दर वहाँ पहुँचकर उनके चरणों में गिर पड़े। नन्दजी ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। तदुपरान्त वे वसुदेवजी तथा राजा उग्रसेन से प्रेमपूर्वक गले मिले। उस समय श्री नन्दजी अपने मन में यह समझ रहे थे कि अब श्री कृष्ण-बलराम मेरे साथ वृन्दावन लौट चलेंगे, इसी लिए ये आये हैं। तब श्री मुरलीमनोहर ने सब वस्तुयें नन्दजी के सामने रखकर इस प्रकार कहा—"हे बाबा! आपने अब तक मेरा पालन-पोषण किया है, अतः मैं आपसे किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता।" यह सुनकर नन्दजी चौंकते हुए बोले—"हे कन्हैया! यह तू क्या कह रहा है? तू मुझे अपना प्रतिपालक बता रहा है, अथवा किसी अन्य को?" श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे बाबा! मुझे कहते हुए बड़ा सङ्कोच होता है कि आपने गर्ग पुरोहित का कहना भी सच न मानकर, अपने पुत्र के समान मेरा प्रतिपालन करके सुख पहुँचाया है। अस्तु, मैं कहीं भी रहूँ, सदैव आपका ही पुत्र कहलाऊँगा। मेरे पिता ने मेरी माता रोहिणी को विपत्ति के समय आपके घर पहुँचा दिया था, सो आपने उसे भी अपने यहाँ सम्मानपूर्वक रक्खा। मैं व्रजवासियों के गोरस आदि को खाकर जो उपद्रव मचाता रहा, उसे भी आप दया करके सदैव क्षमा करते रहे। मेरे शत्रु कंस से कुछ भी न डरकर, आपने मेरा प्रतिपालन किया। यशोदा मैया ने भी मुझे अपना पुत्र समझकर पालन किया, अतः आप दोनों के ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ। हे बाबा! अब मैं एक बात कहता हूँ, उसे सुनकर आप दुःखी मत होइएगा। वह बात यह है कि अब मैं कुछ दिनों तक मथुरा में रहकर, यदुवंशी आदि सजातियों तथा अपने माता-पिता को सुख देना चाहता हूँ। उन्होंने भी आज तक मेरे लिए अत्यन्त कष्ट उठाया है, यदि वे मुझे आपके यहाँ नहीं पहुँचाते तो इतना कष्ट क्यों उठाते? अतः अब आप घर जाकर यशोदा मैया तथा अन्य सब व्रजवासियों को धैर्य बँधाइयेगा। यशोदा माता से यह कह दीजिएगा कि वे जिस प्रकार मेरे लिए माखन रख छोड़ती थीं, उसी प्रकार अब भी रख छोड़ा करेंगी। मैं प्रकट में तो आप लोगों से अलग हो रहा हूँ, परन्तु अन्तःकरण से सदैव आपके ही पास रहा करूँगा। आप भी दया करके मुझे कभी भुलाइयेगा नहीं।"

हे परीक्षित! श्री बाँकेविहारी के मुख से इन वचनों को सुनकर नन्दजी अत्यन्त विलाप करते हुए इतना रोये कि हिचकियाँ बँध गईं, तदुपरान्त वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूर्छित होकर गिर पड़े। उस समय सब ग्वालबाल भी शोकाकुल होकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि हे भाई! कन्हैयाजी तो अब हमसे कपट करके यहीं रह जाना चाहते हैं, अन्यथा ऐसे कठोर वचन कभी नहीं कहते। तब श्रीदामा नामक ग्वाल ने श्री कृष्णजी से इस प्रकार कहा—"हे श्यामसुन्दर प्यारे! अब मथुरा में तुम्हारा क्या काम शेष है, जो तुम निर्दय बनकर, अपने बूढ़े पिता को इस प्रकार रोते हुए देखकर भी स्वयं यहीं रहकर उन्हें बिदा कर देना चाहते हो? तुमने कंस को मारा यह तो ठीक रहा, परन्तु अब तुम्हें वृन्दावन चलकर वहाँ का राज्य करना चाहिए। तुम्हें मथुरा की राजधानी देखकर लोभ करना उचित नहीं है। हाथी, घोड़े तथा द्रव्य आदि का लोभ मूर्ख मनुष्य करते हैं। वृन्दावन के समान सुख तुम्हें कहीं प्राप्त नहीं होगा। यदि तुम निर्दय बनकर यहीं रह जाओगे तो राधा आदि सोलह सहस्र गोपियाँ, जो केवल तुम्हारे ही चन्द्रमुख को देखकर जीवित रहती हैं, तथा पाँच सहस्र ग्वालबाल, जो तुम्हारे साथ गौएँ चराते हुए तुम्हारी मुरली की ध्वनि को सुनकर अपना जन्म सफल बनाते हैं, अपने प्राण त्याग देंगे। हे नन्दलाल! यदि तुम मेरा कहा न मानकर, इतने लोगों की प्रीति को ठुकरा दोगे, तो तुम्हें कोई यश प्राप्त न होगा। यहाँ रहकर तो तुम्हें उसी राजा उग्रसेन की सेवा में जीवन बिताना पड़ेगा, जिसे तुम्हीं ने राज्य दिया है। भला, इस अपमान को तुम किस प्रकार सह सकोगे?" इस प्रकार अनेक ग्वालों ने अनेक बातें कहीं, परन्तु जब श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें नहीं माना, तब कुछ ग्वालबाल श्री मुरलीमनोहर के साथ मथुरा में ही रहने का विचार करके नन्दजी से इस प्रकार कहने लगे कि हे बाबा! अब आप निश्चिन्त होकर घर चले जाइये। हम लोग पीछे से इन्हें साथ लेकर वृन्दावन आवेंगे। यह सुनकर नन्दजी श्री कृष्णजी के वियोगरूपी समुद्र में डूबकर चित्रवत् मौन खड़े हो, टकटकी बाँधकर श्री कृष्णजी का मुख देखने लगे तथा चिन्ता के कारण ऐसे घबरा गये, जैसे कोई मनुष्य सर्प के काटने पर व्याकुल हो जाता है। उनकी ऐसी दशा देखकर बलरामजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे पिता! आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं? हम लोग कुछ दिन यहाँ का काम करने के बाद फिर वृन्दावन लौट आयँगे, वृन्दावन के समान सुख कहीं अन्यत्र मिलना असम्भव है, अतः मैं आपका घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। हमारी माता वहाँ अकेली तथा व्याकुल हो रही होंगी, इसी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Seva

लिए हम आपको बिदा करते हैं, ताकि आप जाकर उन्हें धीरज बँधावें।" यह सुन, नन्दजी अत्यन्त व्याकुल होकर श्री कृष्णचन्द्रजी के चरणों पर गिर पड़े तथा इस प्रकार कहने लगे—"हे पुत्र! एक बार तुम दोनों भाई वृन्दावन चलकर अपनी माता को धैर्य बँधा आओ, उसके बाद फिर यहाँ लौट आना। मैं तुम्हारे चरणों को त्यागकर अकेला वृन्दावन नहीं जा सकता। तुम्हारी मैया तुम्हारे लिए माखन-रोटी लिये प्रतीक्षा कर रही होगी, अतः तुम शीघ्रता-पूर्वक घर को चलो। हे पुत्र! हमने बारह वर्ष तक पालन-पोषण करके तुम्हें बड़ा किया, परन्तु तुम्हारी महिमा को कभी नहीं जाना। अब तुम वसुदेव के पुत्र बनकर गर्गजी के वचनों को सत्य सिद्ध कर रहे हो। हे कन्हैया! हमारे ऊपर जब-जब कष्ट आते थे, तब-तब तुम्हीं हमारी रक्षा करते थे। यदि तुम्हें हम लोगों को अपने विरह में ही मारना था, तो हमारे ऊपर उस दिन गोवर्द्धन पर्वत ही क्यों नहीं गिरा दिया। हम लोग यदि उसी दिन मर जाते तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता?"

हे परीक्षित! इस प्रकार कहकर नन्दजी तथा अन्य व्रजवासी जब बहुत रोने तथा व्याकुल होने लगे, उस समय श्री कृष्णजी ने यह विचार कर कि ये लोग मेरे वियोग में अपने प्राण दे बैठेंगे, अपनी माया को उनके ऊपर फैला दिया, तदुपरान्त हँसकर इस प्रकार कहा—"हे बाबा! इतना चिन्तित होने की क्या आवश्यकता है? मैं तुमसे केवल तीन कोस की दूरी पर ही तो हूँ। मैं तुम्हें बिदा केवल इसीलिए कर रहा हूँ ताकि तुम वहाँ जाकर यशोदा मैया तथा अन्य वृन्दावनवासी स्त्री-पुरुषों को धैर्य बँधा सको।" श्री कृष्णजी के ऐसे वचन सुनकर माया में मोहित नन्दरायजी ने अपने हृदय में धैर्य धारण करके कहा—"हे जगदीश्वर! यदि तुम मथुरा में ही रहना चाहते हो तो फिर मेरा क्या वश चल सकता है? मैं तुम्हारी आज्ञा से वृन्दावन लौटा तो जाता हूँ, परन्तु तुम कहीं हम व्रजवासियों को भूल मत जाना।" यह सुनकर वसुदेवजी ने नन्दरायजी को बहुत से द्रव्य तथा रत्न आदि की भेंट देकर इस प्रकार कहा—"हे नन्दरायजी! आपने मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ। आप इन दोनों बालकों को अपना ही जानकर, यहाँ अथवा वहाँ रहने के कारण कुछ भेद मत मानना।"

हे परीक्षित! वसुदेवजी के ऐसे वचन सुनकर नन्दजी ने श्री कृष्णचन्द्रजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को दण्डवत् की, तदुपरान्त पाँच-सात गोपग्वालों को वहीं छोड़कर, आप सब लोगों के सहित रोते-पीटते हुए वृन्दावन को चल दिये। मार्ग में सब लोग लौट-लौटकर मथुरा की ओर इस आशा से देखते जा रहे थे कि कहीं कृष्ण-चन्द्रजी हमारे प्रेम के कारण लौट आवें तो अच्छा है। अस्तु, नन्दजी को बिदा करने के उपरान्त जब श्री श्यामजी तथा बलरामजी वसुदेव तथा राजा उग्रसेन के साथ राजमन्दिर में पहुँचे, तब सब लोग व्रजवासियों के स्नेह की प्रशंसा करने लगे। उधर नन्दरायजी मार्ग में चलते हुए श्री कृष्णजी के चरित्रों को याद कर-करके व्रजवासियों से यह कहते जाते थे कि हम लोगों से बड़ी भूल हुई जो हमने परब्रह्म प्रभु से अपनी गौएँ चरवाईं तथा थोड़े से मक्खन के कारण यशोदा ने उन्हें ऊखल से बाँध दिया। परन्तु हे भाइयो! इतने पर भी श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी प्रभुता नहीं त्यागी। उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर व्रजवासियों की रक्षा की तथा मुझे लेने के लिए वरुण लोक में जा पहुँचे; परन्तु हम लोग अपने अज्ञान के कारण उन्हें अन्त तक नहीं पहिचान पाये।

हे परीक्षित! इस प्रकार कहते-सुनते हुए जब वे वृन्दावन के समीप पहुँचे तो श्री बाँकेविहारी की याद करके मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़े। आठों प्रहर श्रीकृष्णचन्द्रजी की प्रतीक्षा में मथुरा के मार्ग की ओर टकटकी लगाकर देखती रहनेवाली यशोदाजी ने जब गोपग्वालों को वृन्दावन की ओर आते देखा तो श्री श्यामसुन्दर से मिलने के लिए वे अत्यन्त हर्ष तथा प्रेम में भरकर उनकी ओर इस प्रकार दौड़ीं, जिस प्रकार बछड़े को देखकर गौ दौड़ती है। परन्तु जब वे नन्दजी के पास पहुँचीं और वहाँ श्यामजी तथा बलरामजी को नहीं देखा, तो घबराकर इस प्रकार पूछने लगीं—"हे स्वामी! तुम मेरे श्याम-बलराम को खोकर उनके बदले में वस्त्राभूषण कहाँ से ले आये हो? जिस प्रकार अन्धा मनुष्य पारस को नहीं पहिचानता तथा उसे पत्थर समझकर फेंक देने के बाद रोता-पछताता रह जाता है, उसी प्रकार तुम अनमोल रत्न खोकर इस काँच को उठा लाये। भला उनके बिना इन पत्थरों का क्या होगा? अरे मूर्ख पति! जिनके एक क्षण के वियोग से हमारी छाती फट जाती थी उनके बिना अब हमारा जीवन कैसे कटेगा? तुम मेरे मना करने पर भी उन्हें जबर्दस्ती मथुरा लिवा ले गये। अब हम अन्धे होकर किस प्रकार जीवित रहें?" यशोदाजी के ऐसे वचन सुनकर नन्दजी लज्जित हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आँखें नीचे किए, रोते हुए बोले–"हे यशोदा ! तू सत्य कहती है। ये आभूषण आदि कृष्णजी ने ही दिए हैं, परन्तु मुझे यह पता नहीं कि इन्हें लिया किसने है ? मैं तुझसे कन्हैया की कठोरता क्या कहूँ ? उनकी बातें सुनकर तुझे भी बहुत दुःख होगा। जिस समय वे कंस को मारकर मेरे पास आये तथा अपने को वसुदेवजी का पुत्र बताकर प्रीति हरनेवाली बातें करने लगे, तब मैं आश्चर्य-चकित होकर रोने लगा। उस समय उन्होंने मुझे बहुत धैर्य बँधाकर बिदा कर दिया। हे प्रिये ! गर्ग मुनि के कथनानुसार मैंने तो उन्हें तभी पूर्णब्रह्म परमेश्वर समझ लिया था, फिर भी मायावश उन्हें पुत्र मानकर प्रीति करता रहा। अब हमें पुत्र का भाव तजकर उन्हें परमेश्वर समझकर भजना चाहिए।"

हे परीक्षित ! जब यशोदा ने यह समाचार सुना तो वह माया के वशीभूत हो और अधिक रोने लगीं तथा श्री कृष्णजी को अपना पुत्र समझती हुई इस प्रकार बोलीं–"हे कन्त ! तुम्हें धिक्कार है कि तुम उनके मुख से आधी बात सुनकर ही चुपचाप लौट आये। श्यामसुन्दर तथा बलराम को मथुरा में छोड़कर और अब यहाँ आकर, मुख कैसे दिखा रहे हो ? उनसे बिदा होते समय तुम्हारा हृदय क्यों नहीं फट गया ? तुम मेरे प्राणप्यारे को कहाँ छोड़ आये ? मैं तुम्हारे साथ न जाकर यहाँ बैठी रही, यह और भी बुरा हुआ। कदाचित् मैं भी तुम्हारे साथ जाती तो उन्हें इस प्रकार छोड़कर अकेली लौटकर न आती ?

चौपाई–कौन सँदेसौ तुम्हें सुनायौ। का कहि के तुमकौ समुझायौ॥
सो सब हाल कहौ भरतार। क्यों त्यागे वे प्राणाधार॥

यशोदाजी के ऐसे वचन सुनकर श्री नन्दजी ने कहा–"हे प्रिये ! श्यामसुन्दर ने तुम्हें प्रणाम कहने के उपरान्त यह कहा कि कुछ देवताओं के कार्य करने के उपरान्त में आपके पास फिर लौट आऊँगा; इसलिए आप चिन्ता न करें तथा बलराम ने यह कहा कि यशोदा मैया चिन्ता न करें, आप उन्हें जाकर धीरज बँधाना। कुछ दिनों बाद हम फिर वृन्दावन में आ पहुँचेंगे।" श्री श्याम तथा बलरामजी के इस सन्देश को सुनकर यशोदाजी चिन्ता में डूब गईं। तदुपरान्त सभी व्रजवासी श्री मुरलीमनोहर के बाल-चरित्रों की चर्चा करते हुए, रोते-पीटते अपने-अपने घर गये। श्री श्यामसुन्दर के बिना सब लोगों को वृन्दावन उजाड़-सा मालूम देता था। श्रीहरि के वियोग में वहाँ के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी पशु, पक्षी, ग्वालबाल, गोपी तथा गौ आदि मुरझा गये। नन्द-यशोदा कभी तो उन्हें अपना पुत्र मानकर रोते थे और कभी ईश्वर जानकर ध्यान धरते थे। वृन्दावन के कुञ्जों के सभी वृक्ष तथा फल-फूल मुरझा गये।

हे परीक्षित! जो ग्वालबाल मथुरा में रह गये थे, उन्हें भी कुछ दिनों के बाद श्री कृष्णजी ने वस्त्राभूषण देकर बिदा कर दिया। तब उन्होंने वृन्दावन आकर श्री श्यामसुन्दर के सब चरित्र जो उन्होंने कुब्जा आदि के साथ किए थे, व्रजवासियों को आ सुनाये। उन्हें सुनकर सब गोपियों ने सौतिया-डाह करके, अपने मन में यह विश्वास कर लिया कि अब श्री मुरलीमनोहर लौटकर कभी वृन्दावन नहीं आयेंगे। वे परस्पर एक-दूसरी से इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखी! देखो, श्री बाँकेविहारी त्रिलोकीनाथ ने ऊँच-नीच जाति का कुछ विचार किए बिना, कुब्जा की सुन्दरता देख, उसे अपनी प्राणप्यारी बना लिया।" यह सुनकर दूसरी सखी ने कहा—"हे आली! अब कुब्जा ने श्री श्यामप्यारे को अपने वश में ऐसा किया है कि वे उसकी आज्ञा के बिना कोई भी काम नहीं करते हैं। अब वह उन्हें यहाँ क्यों आने देगी?" तब तीसरी बोली—"हे प्यारी! अक्रूर ने यहाँ आकर हमारे चित-चोर से उस कुबड़ी का सन्देश ही कहा था, इसी लिए वे मथुरा चले गये और अब वहीं रह गये हैं।" यह सुनकर एक अन्य सखी ने पूछा—"क्या तूने कुब्जा को कभी देखा भी है?" वह बोली—"हाँ, एक दिन मैं मथुरा में दही बेचने के लिए गई थी, तब उसे देखा था। उस समय वह मालिन की लड़की बड़ी कुबड़ी थी। लोग उसे देख-देखकर हँसा करते थे, परन्तु अब तो मोहनप्यारे ने सब लाज-धर्म त्यागकर उस दासी को ही अपनी रानी बना लिया है।" यह सुनकर एक अन्य सखी ने कहा—"हे प्यारी! हमें तो यह बात सुनकर ही लज्जा आती है।" दूसरी ने कहा—"हे सखी! क्या तुमने यह बात नहीं सुनी कि उस कुबड़ी ने अपने कूबड़ में सौन्दर्य को इस प्रकार छिपा रखा था, जिस प्रकार सीप में मोती छिपा रहता है। उसी कारण श्यामजी ने हम व्रजबालाओं को भुला दिया है।" यह सुनकर तीसरी गोपी बोली—"क्या अब श्यामसुन्दर उन दिनों को बिलकुल भूल गये, जब वे कंस के भय से यहाँ आये थे और छिप-छिपकर हमारा माखन चुराकर खाया करते थे, जो अब बड़े हो जाने पर हमें भूल बैठे हैं।" तब चौथी गोपी ने उत्तर दिया—"हे सखी! जिस प्रकार कोयल के अण्डे को कौआ सेता है, परन्तु उसमें से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बच्चा उत्पन्न होते ही अपने जाति-भाइयों में मिल जाता है, उसी प्रकार श्री श्यामसुन्दर भी नन्द-यशोदा तथा हम सबकी ऐसी दशा करके अब वसुदेव-देवकी के पास चले गये हैं।" पाँचवीं बोली—"हे सखी! अब तो वे राजा के सिंहासन के समीप बैठते हैं, अतः उन्हें व्रजवासियों तथा मुरली का नाम लेने तथा मोर का पङ्ख देखने में भी लज्जा आने लगी होगी।"

चौपाई—अब ब्रजराज भये महराज। मोर-मुकुट सों आवै लाज॥
कुब्जा सों नित प्रीति दिखावैं। हम सब याद उन्हें क्यों आवैं?

छठवीं सखी ने कहा—"हे आली! तुम उनकी चर्चा क्यों करती हो? देखो वे हमारे जाति-भाई नहीं हैं। यहाँ उनके नाम गोपीनाथ, कन्हैया, श्री कृष्ण तथा नन्दलाल थे, अब वहाँ जाकर उनका नाम वासुदेव हो गया। हाँ, उन्होंने कुछ दिन व्रजवासियों से प्रीति करके उन्हें आग-पानी से अवश्य बचा दिया था।" सातवीं गोपी बोली—"क्या ही उचित होता यदि कोई मनुष्य मथुरा में जाकर उनसे यह कहता कि सब व्रजबालाएँ तुम्हारे विरह में प्राण दे रही हैं सो तुम वृन्दावन लौट चलो। अब वहाँ कोई तुम्हें गौ चराने को नहीं कहेगा और न कोई दधि-माखन चुराने से ही बरजेगा।" आठवीं बोली—"हे सखी! अब उन्हें राजसी सुख-विलासों को त्यागकर यहाँ गौ चराने तथा ग्वाल कहाने से क्या प्रयोजन है?" नवीं ने कहा—"हे आली! वह साँवलीसलोनी मूर्ति मुझे क्षणभर के लिए भी नहीं भूलती, स्वप्न में जब कभी वे दीख जाते हैं तो फिर रातभर नींद नहीं आती।" दसवीं कहने लगी—"हे सखी! मुरलीमनोहर के बिना मुझे अपना घर तथा गाँव उजाड़-जैसा लगता है। वृन्दावन की सूनी कुञ्जों को देखकर रोना आता है। वहाँ जो फल अमृत के समान स्वादिष्ठ थे, वे अब विष के समान प्रतीत होते हैं। जिन पक्षियों की बोली सुनकर हृदय प्रसन्न होता था उन्हीं का शब्द अब शूल की भाँति चुभता है।"

हे परीक्षित! इस प्रकार सभी व्रजबालाएँ आठों प्रहर पागलों के समान वार्तालाप करती रहती थीं। यदि कोई उस मार्ग से मथुरा की ओर जाता हुआ दीखता था, तो वे उसके पाँव पकड़कर इस प्रकार कहती थीं—"हे बटोही! श्यामसुन्दर प्यारे हमारे हृदय को चुराकर अब मथुरा के राजा बन बैठे हैं, सो तुम उनके पास जाकर हमारा यह सन्देश कह देना कि तुमने जिन व्रजबालाओं की रक्षा गोवर्द्धन पर्वत उठाकर तथा वन की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्नि बुझाकर की थी, वे अब तुम्हारे विरह में आठों प्रहर अपनी आँखों से आँसू बहाती रहती हैं। जिस प्रकार उस समय आँधी चला करती थी, उसी प्रकार अब उनका ऊर्ध्वश्वास चलता है। वे तुम्हारे विरहरूपी समुद्र में डूब कर मर जाना चाहती हैं। केवल तुम्हारे पुनर्मिलन की प्रतीक्षा में ही अब तक जीवित हैं, अतः अब तुम उन्हें दीन तथा अपनी दासी जानकर शीघ्र दर्शन दिखाओ, अन्यथा जब हम प्राण ही दे बैठेंगी, तब फिर बाद में आकर क्या करोगे ?" दूसरी सखी ने कहा—"हे बटोही ! तुम्हें परमेश्वर की शपथ है, जो तुम उनसे इस प्रकार न कहो, यह भी कह देना कि तुम्हारे विरह में राधा ऐसी दुर्बल हो गई है कि अब उसमें उठने-बैठने तथा चलने-फिरने की सामर्थ्य भी नहीं रही है। दो-चार दिन में उसकी मृत्यु भी हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। अतः तुम अपनी पिछली प्रीति का स्मरण करके उसे शीघ्र दर्शन देकर प्राण-दान दो।" इस प्रकार सभी गोपियाँ अपने-अपने मन की व्यथा बटोहियों से कहा करती थीं। साँझ हो जाने पर भी वे अपनी बातें कहती रहने के कारण उन्हें जाने नहीं देती थीं। जब कभी पपीहा बोलता था तो वे उसकी आवाज सुनकर इस प्रकार कहती थीं कि अरे पपीहा ! हम तो श्यामसुन्दर के विरह में वैसे ही मरी जा रही हैं, तू अपनी बोली से हमें और अधिक दुःख क्यों पहुँचाता है ? जिस प्रकार पपीहा को स्वाती-बूँद की चाहना रहती है, उसी प्रकार सब गोपियाँ भी श्री कृष्णजी से मिलने के लिए आकुल रहती थीं।

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! इसी प्रकार सभी वृन्दावनवासी श्री कृष्णचन्द्रजी के ध्यान, स्मरण एवं चर्चा में अपने दिन काट रहे थे। उनके विरह-दुःख का वर्णन करने की सामर्थ्य हम में नहीं है। अब हम मथुरा का हाल कहते हैं, सुनो। जब श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी नन्द आदि को बिदा करके घर लौटे, तब वसुदेव-देवकी को ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ, जैसे तपस्या करनेवाला अपना मनोरथ पाकर सन्तुष्ट होता है। मथुरा नगरी में घर-घर मङ्गलाचार होने लगे। तदुपरान्त वसुदेवजी ने देवकी से इस प्रकार कहा कि श्याम-बलराम व्रज के ग्वालों में रहने के कारण अपने कुल का व्यवहार नहीं जानते हैं, अतः इनका यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिए। जब देवकी को यह बात अच्छी लगी तो वसुदेवजी ने अपने पुरोहित गर्ग मुनि तथा जाति भाइयों को बुलाकर अपना मन्तव्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बताया उस समय गर्गजी ने प्रसन्न होकर कहा–"अब इन्हें गायत्री मन्त्र देकर क्षत्रिय बनाना चाहिए।" यह सुनकर वसुदेवजी ने आनन्दित हो अपने इष्टमित्रों तथा सभी यदुवंशियों को निमन्त्रण भेजकर बुलवा लिया। तदनन्तर सब तीर्थों का जल मँगवाकर श्री घनश्याम-राम को स्नान कराया, उस समय गर्गजी ने शास्त्र की विधि से गायत्री मन्त्र का उपदेश करके दोनों भाइयों को यज्ञोपवीत पहिनाया। वसुदेवजी ने विधि-विधान सहित ब्राह्मणों को स्वर्ण, रत्न तथा गौ आदि का दान दिया तथा उन्हें अपने सजातियों सहित छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाकर सम्मान सहित बिदा किया। मंगला-मुखी तथा याचकों को मुँहमाँगा दान देकर सन्तुष्ट किया। उस समय देवतागण आकाश से पुष्प-वर्षा करने लगे। श्री कृष्णजी की कृपा से मथुरा में घर-घर लक्ष्मी का निवास हो गया।

हे परीक्षित! यज्ञोपवीत हो जाने के बाद वसुदेवजी ने दोनों भाइयों को रथ पर चढ़ाकर विद्याध्ययन करने के लिए सांदीपन नामक पण्डित के पास, जो काशीपुरी से हटकर उज्जैन में जा बसे थे, भेजा। मार्ग में सुदामा ब्राह्मण को जाते हुए देखकर जब श्री कृष्णजी ने उससे पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो तब उसने यह उत्तर दिया कि विद्या पढ़ने के लिए जा रहा हूँ। सो उन्होंने सुदामा को भी अपने रथ पर बैठा लिया। तदुपरान्त सुदामा को साथ लिये दोनों भाई सान्दीपन पण्डित के पास जा पहुँचे। वहाँ जब उन्होंने गुरु के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया तथा विद्याध्ययन करने की अभिलाषा प्रकट की तब गुरु दया करके उन्हें अपने घर में ही रखकर पढ़ाने लगे।

हे राजन्! एक दिन पण्डितजी की पत्नी ने श्री श्यामजी तथा सुदामा को चने का कलेवा देकर, लकड़ी लाने के लिए वन में भेजा। श्री कृष्णजी का भी कलेवा सुदामा के ही पास बँधा हुआ था। अस्तु, जब ये दोनों लकड़ी का बोझ लेकर वन से लौटकर घर आने लगे, उसी समय मार्ग में आँधी चलकर ऐसा पानी बरसा कि उन्हें घर तक न पहुँच कर रात्रि में वन में ही रह जाना पड़ा। उस समय जब सुदामा को बहुत भूख लगी तो वह श्यामसुन्दर का कलेवा उन्हें न देकर, स्वयं ही खाने लगा। चना खाते समय जब कुटुर-कुटुर का शब्द हुआ तो श्री बाँकेविहारी ने उससे पूछा–"हे भाई! तुम क्या खा रहे हो? यदि तुम्हारे पास कोई खाने की वस्तु हो तो हमें भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो, जिससे हम अपनी भूख बुझावें।" उस समय सुदामा ने लोभ के वशीभूत होकर परब्रह्म प्रभु से इस प्रकार मिथ्या वचन कहा कि शीत के कारण मेरे दाँत कटकटा रहे हैं। मेरे पास खाने के लिए कुछ भी नहीं है। इस झूठ बोलने के पाप के कारण सुदामा परम दरिद्री हुआ। तदुपरान्त श्याम तथा बलरामजी ने अपनी सेवा द्वारा गुरु को ऐसा प्रसन्न किया कि वे चौंसठ दिन में ही चारों वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, राजनीतिशास्त्र, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कोकविद्या एवं धनुर्वेद आदि सब विद्याओं को पढ़कर पण्डित हो गये। उस समय गुरु ने आश्चर्य-चकित होकर अपने मन में यह विचार किया कि कोई मनुष्य पूरे एक वर्ष में भी एक विद्या नहीं पढ़ सकता, परन्तु ये दोनों बालक केवल चौंसठ दिन में ही सब कुछ पढ़ गये, इससे प्रतीत होता है कि ये कोई अवतारी हैं।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! देखो, जिन परब्रह्म प्रभु की श्वास से चारों वेद प्रकट हुए हैं, उन्हींने गुरु के घर में रहकर विद्याएँ पढ़ीं, अस्तु, उनके लीला-चरित्रों को कोई नहीं जान सकता। विद्या पढ़ने के अनन्तर श्री श्यामसुन्दर ने गुरु से हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि हे गुरु! मैं आपकी कृपा से सब विद्याएँ पढ़कर अपने मनोरथ को प्राप्त हुआ हूँ। इसके बदले यदि अनेक जन्मों तक मैं आपकी सेवा करूँ तो भी उऋण न हो सकूँगा। अब आप जो आज्ञा दें, वह गुरु-दक्षिणा भेंट करके हम अपने घर को जायँ; जिससे हमें विद्या पढ़ने का फल प्राप्त हो। यह सुनकर सांदीपन पण्डित ने उत्तर दिया—"मुझे तो कुछ अभिलाषा नहीं है, परन्तु तुम्हारी गुरुआइन को यदि कोई इच्छा हो, तो तुम उनसे पूछ देखो।" इतना कहकर सांदीपन पण्डित अपनी पत्नी के पास जाकर बोले—"हे प्रिये! इन दोनों बालकों ने केवल चौंसठ दिन में सब विद्याएँ पढ़ लीं, इससे ये मुझे अवतारी मालूम होते हैं। इनसे जो भी गुरु दक्षिणा माँगी जाय, उसे ये सहज में दे सकते हैं। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो वह इनसे माँग लो।" यह सुनकर पण्डित की स्त्री ने कहा—"हे स्वामी! यदि ये दोनों बालक अवतारी हैं, तो इनसे यह कहिए कि मेरा जो पुत्र समुद्र में डूब गया है, उसे ये वापिस ला दें; क्योंकि उसके वियोग में मैं सदैव दुखी रहती हूँ। यही इनकी सम्पूर्ण गुरु-दक्षिणा होगी।" तदुपरान्त पण्डित तथा पण्डिताइन ने श्री कृष्ण तथा बलरामजी से कहा—"हे शिष्यो! हमारे केवल एक ही पुत्र था। उसे साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेकर जब हम एक पर्व के समय समुद्र में स्नान करने गये तो वह बालक समुद्र में डूब गया। उस समय से हमें उसके वियोग का दुःख एक क्षण को भी नहीं भूलता है। अतः यदि तुम हमें इच्छित गुरु-दक्षिणा दिया चाहते हो, तो हमारे उस बालक को लौटाकर ला दो।" गुरु के मुख से ऐसे वचन सुनकर दोनों भाई उसी समय रथ पर चढ़कर समुद्र के किनारे जा पहुँचे। उस समय समुद्र मनुष्य का रूप धरकर अत्यन्त भयभीत हो, हाथ जोड़े हुए उनके पास आ पहुँचा तथा रत्न आदि की भेंट देकर, दण्डवत् करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे महाप्रभु! आप साक्षात् परब्रह्म तथा तीनों लोकों को उत्पन्न करनेवाले हैं, सो आप मेरा दण्डवत् स्वीकार करें। हे स्वामी! आपके चरणों की धोवन गंगाजी तीनों लोक को कृतार्थ करने-वाली हैं। आप अपनी दया के कारण राजा बलि के द्वार पर सदैव उपस्थित रहते हैं। आप पृथ्वी का भार उतारने तथा हरि-भक्तों को सुख देने के लिए सगुण अवतार ग्रहण करते हैं। आप सदैव शेषनाग की छाती पर शयन करते हैं तथा सम्पूर्ण गुण एवं विद्याओं के भण्डार हैं। हे नाथ! शेषनाग अपनी दो सहस्र जिह्वाओं से आपकी निरन्तर स्तुति करते रहते हैं। फिर भी वे आपके आदि-अन्त को नहीं जानते। हे प्रभु! आपके वाहन श्री गरुड़जी हैं। आपकी महिमा के भेद को ऋषि-मुनि ज्ञानी तथा वेद भी नहीं पा सके हैं, तब मेरी क्या सामर्थ्य है जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। हे नाथ! मेरे धन्य भाग्य हैं, जो आज आपने दया करके मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है।"

हे परीक्षित! समुद्र के मुख से ऐसी स्तुति सुनकर श्री श्यामजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे समुद्र! यहाँ हमारे गुरु सांदीपन पण्डित एक दिन अपने परिवार-सहित स्नान करने के लिए आये थे। उस समय तू उनके पुत्र को बहा ले गया था, सो उसे शीघ्र ला दे।" यह सुनकर समुद्र ने हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभु! वह बालक मेरे पास नहीं है। हाँ, एक 'पाञ्चजन्य' नामक बलवान् असुर शङ्खरूप से मेरे जल में रहकर सभी जलजीवों को बहुत कष्ट पहुँचाता रहता है, यदि वह उस बालक को ले गया हो तो मुझे पता नहीं।" यह सुनकर श्री श्याम तथा बलरामजी पानी में कूदकर शंखासुर के पास जा पहुँचे। परन्तु उस दैत्य को मारने के बाद भी जब बालक का कोई पता नहीं लगा तो पछताकर बलरामजी से इस प्रकार कहने लगे कि हे भाई! हमने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस दैत्य को व्यर्थ ही मारा, उस बालक का तो कुछ पता नहीं लगा। यह सुनकर बलरामजी ने कहा—"हे प्रभो! अब आप इस चिन्ता को त्यागकर उस दैत्य का उद्धार कर दीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उस दैत्य को मुक्ति देकर उसका शरीर, जो "पाञ्चजन्य" नामक शङ्ख प्रसिद्ध हुआ, अपने हाथ में उठा लिया। तदुपरान्त उन्होंने यमपुरी के द्वार पर पहुँचकर उस शङ्ख को बजाया। जिस समय नरकवासियों ने उस शङ्ख का शब्द सुना, उस समय वे सब नरक से निकलकर वैकुण्ठलोक में जा पहुँचे। यह देखकर यमराज दौड़े हुए बाहर आये तथा श्रीहरि के चरणों में गिरकर, दोनों भाइयों को बड़े सम्मान-सहित अपने घर ले गये। वहाँ विधि-विधान से पूजन-भेंट आदि करके हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! आप सदैव आनन्दमूर्ति हैं। आप चिन्ताओं से रहित पूर्णब्रह्म हैं। लक्ष्मीजी आठों प्रहर आपकी सेवा करती रहती हैं तथा आप अपने भक्तों की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। हे स्वामी! जब आपकी नाभि से कमल का फूल निकला, तब उससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने आपकी कृपा से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की, परन्तु आपके भेद को वे भी नहीं जान सके। आप सब जीवों को उत्पन्न करनेवाले तथा आदि-अन्त से रहित हैं। अतः आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। हे त्रिलोकीनाथ! आपकी स्तुति करने की सामर्थ्य शेष, महेश तथा गणेश में भी नहीं है, फिर मैं भला आपकी प्रशंसा कैसे कर सकता हूँ? पहिले तो मेरे किसी पूर्वजन्म के पुण्य उदय हुए हैं जो आपने अत्यन्त कृपा करके मुझे यहाँ दर्शन दिया। अब बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" यमराज की इस स्तुति को सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने कहा—"हे यमराज! हमारे गुरु का पुत्र समुद्र में डूबकर मर गया था, सो मैं उसे लौटाने के लिए आया हूँ। यदि तुम यह कहो कि मरे हुए जीव को यमपुरी से लौटाया नहीं जाता, तो उस सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि यह व्यवस्था भी हमारी ही बनाई हुई है, अतः तुम हमारी आज्ञा का पालन करो।" श्रीहरि के मुख से ऐसे वचन सुनते ही यमराज ने सांदीपन पण्डित का पुत्र वहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आपकी कृपा से मुझे यह पहिले से ही ज्ञात था कि आप इसे लेने के लिए आवेंगे। अतः मैंने इसे अभी तक बड़े यत्न से यहीं रखकर किसी दूसरी योनि में जन्म नहीं दिया है।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहरजी यमराज को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्ति का वरदान देकर, गुरुपुत्र को साथ ले, बलरामजी सहित वहाँ से लौटकर गुरु के पास जा पहुँचे तथा उस बालक को उन्हें सौंपकर इस प्रकार कहने लगे–"हे गुरु! आपकी कृपा से हमने सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़ीं, परन्तु हम आपकी कोई सेवा नहीं कर सके, अब यदि आप कोई और आज्ञा दें तो हम उसे भी करें।" उस समय अपने पुत्र को सामने देख सांदीपन पण्डित ने उन्हें श्री नारायणजी का अवतार जानकर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! जिसके शिष्य आपके समान हों, उसे और कौन अभिलाषा शेष रहेगी? मैं प्रसन्न होकर आपको यह आशीर्वाद देता हूँ कि आपकी सम्पूर्ण विद्याएँ चिर-नवीन बनी रहेंगी तथा समस्त संसार में आपका यश छाया रहेगा।" तदुपरान्त सांदीपन पण्डित तथा पण्डिताइन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री श्याम तथा बलरामजी को बिदा किया। वे दोनों भाई उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करके मथुरा लौट आये। उनके आगमन के समाचार को सुनकर राजा उग्रसेन तथा वसुदेवजी सब यदुवंशियों तथा मथुरावासियों सहित प्रसन्न होकर, गाते-बजाते हुए आगे जाकर, उन्हें घर ले आये। उस समय सभी छोटे-बड़ों ने श्री श्याम-बलराम की जय-जयकार करते हुए आनन्द मनाया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित! देखो, गुरु की सेवा करने के लिए श्री त्रिलोकीनाथ यमपुरी में जा पहुँचे अतः गुरु का पद अत्यन्त श्रेष्ठ समझना चाहिए। संसार में गुरु तीन प्रकार के होते हैं। एक वह जो मन्त्र का उपदेश करे, दूसरा वह जो विद्या पढ़ावे तथा तीसरा वह जो धर्म की बात सिखावे। इन तीनों को ईश्वर के समान जानकर सेवा करनी चाहिए।"

छियालीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिए उद्धव को वृन्दावन भेजना

श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! जिस प्रकार श्री श्यामसुन्दर ने गोपियों को ज्ञान सिखाने के हेतु 'उद्धव' को वृन्दावन भेजा, अब हम वह कथा कहते हैं, सुनो। श्री मुरलीमनोहर जब कभी नन्द-यशोदा तथा राधा आदि की प्रीति के सम्बन्ध में उद्धव से बातें करते थे, तो उद्धव अपने ज्ञान के अभिमान के कारण मित्र के रूप में उनकी हँसी उड़ाया करते थे। अतः एक दिन गर्व-हारी श्री श्यामसुन्दर ने रासलीला आदि की चर्चा करके बलरामजी से यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा कि हे भाई ! हमने अपने कथनानुसार किसी आदमी को वृन्दावन नहीं भेजा। वे लोग अत्यन्त चिन्तित हो रहे होंगे, अतः किसी को वहाँ भेजकर उन्हें धैर्य बँधाना चाहिए। यह बात जब श्री बलरामजी ने स्वीकार की, तब श्री श्यामसुन्दर ने अपने मन में यह बिचार किया कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान है, अतः गोपियों को ज्ञानोपदेश करने के लिए उसे ही भेजकर यह देखना चाहिए कि मेरी प्रीति के समक्ष उसका ज्ञान ठहरता भी है अथवा नहीं। वहाँ जाने से उद्धव का अभिमान भी दूर हो जायगा। यह निश्चय करके उन्होंने उद्धव को अपने पास बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे मित्र ! जिस समय मैंने राधा आदि गोपियों के साथ रासलीला की थी, उस समय शिवजी आदि देवताओं को कामदेव ने ऐसा पीड़ित किया था कि शिवजी गोपेश्वर तथा चन्द्रमा चन्द्रकला स्त्री का रूप धारण कर मेरे साथ रासलीला करने के लिए आये थे। अन्य देवताओं ने भी स्त्री-स्वरूप धरकर रासलीला का सुख उठाया था। अस्तु, नन्द-यशोदा एवं राधा आदि व्रज के सभी गोपी-ग्वाल इस समय मेरे विरह में बड़े दुखी हो रहे हैं। मैंने उन्हें यह कहकर बिदा किया था कि मैं फिर लौटकर तुम्हारे पास आऊँगा, सो इसी आशा में वे अपने प्राण बचाये हुए आज तक मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे मित्र ! उनकी सच्ची प्रीति को देखकर मुझे भी उनका ध्यान एक क्षण को नहीं भूलता। अतः मैं तुम्हें ज्ञानी तथा शान्त स्वभाव का अपना परम प्रिय मित्र जानकर वृन्दावन भेजना चाहता हूँ। तुम वहाँ जाकर नन्द-यशोदा तथा गोपियों को ऐसा ज्ञानोपदेश करो, जिससे वे लोग मेरे वियोग का दुःख भुला दें। लौटते समय रोहिणी माता को भी अपने साथ लेते आना।" यह सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो ! मनुष्य को संसारी प्रेम को स्वप्नवत् तथा मिथ्या समझकर केवल परब्रह्म प्रभु का ही ध्यान धरना चाहिए।" उद्धव का ऐसा ज्ञानपूर्ण उत्तर सुनकर श्री कृष्णजी ने हँसकर कहा—"हे उद्धव ! तुम्हारा कहना सत्य है परन्तु मैं क्या करूँ ?" देखो, गोपियाँ मेरे विरह में अत्यन्त व्याकुल रहती हैं, सो तुम उन्हें ऐसा ज्ञानोपदेश करना कि वे मुझे पति-भाव से स्मरण करना छोड़कर ईश्वर-भाव से स्मरण किया करें। तुम नन्द-यशोदा को सबसे पहिले यह समझाना कि वे भी मुझे पुत्र-भाव से भूलकर परमेश्वर-भाव से भजें।" उद्धव ने कहा—"अच्छा, मैं आपके आज्ञानुसार वृन्दावन जाकर उन्हें समझाऊँगा; यदि वे मान जायँ तो ठीक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही है।" यह सुनकर श्री श्यामजी तथा बलरामजी ने उद्धव को नन्द-यशोदा तथा राधा आदि सभी गोपी-ग्वालों को भेंट देने के लिए बहुत से वस्त्राभूषण देकर एक पत्र ऐसा लिखा, जिसमें सभी छोटे-बड़ों को दण्डवत्-आशीष कहकर गोपियों को ज्ञानोपदेश किया गया था। उस पत्र को देकर श्री मुरली-मनोहर ने उद्धव से यह कहा कि तुम इस पत्र को पढ़कर सब लोगों को सुना देना तथा जिस तरह भी बन सके, उस तरह उन्हें धैर्य बँधाकर शीघ्र लौट आना। इतना कहकर श्रीहरि ने उद्धव को अपने वस्त्राभूषण पहिना, रथ में बैठाकर बिदा किया तथा चलते समय अपनी आँखों में आँसू भरकर यह और कहा—"हे उद्धव! यशोदा मैया से मेरा यह "देशा और कह देना कि वे अच्छी तरह रहें, कुछ दिनों में हम दोनों भाई उनके पास फिर आयेंगे। जिस दिन से मैं उनसे बिदा हुआ हूँ उस दिन से मुझे कन्हैया कहकर कोई नहीं पुकारता। मुझे अपनी कुटी, घुँघरू तथा कामरी की याद एक क्षण को भी नहीं भूलती है। जिस दिन से दधि-माखन तथा छाछ खाना छूटा है, उस दिन से मुझे कोई भी भोजन अच्छा नहीं लगता। हे उद्धव! तुम मेरी मैया से यह कहना कि मैं तुम्हारा बहुत बड़ा ऋणी हूँ। तुम्हारी याद मुझे एक क्षण को भी नहीं भूलती।" इस प्रकार जब श्री श्यामसुन्दरजी कह चुके तो बलदेवजी ने भी रोते हुए कहा—"हे उद्धव! तुम मेरी ओर से नन्द-यशोदा से हाथ जोड़कर यह कह देना कि हमें व्रज का सुख किसी प्रकार नहीं भूलता है। हम दोनों भाई शीघ्र ही आकर उनसे भेंट करेंगे। वे हमें अपना पुत्र जानकर कभी बिसरावें नहीं।"

हे परीक्षित! जब वसुदेवजी को यह ज्ञात हुआ कि उद्धव वृन्दावन जा रहे हैं तब उन्होंने नन्दजी तथा यशोदाजी के लिए बहुत से उपहार देकर एक पत्र ऐसा लिखकर दिया कि तुमने हमारे पुत्रों का जो पालन किया है, उसका ऋण हम अनेक जन्म लेकर भी कभी नहीं चुका पायेंगे। तुम श्याम-बलराम के लिए चिन्ता न करके, उन्हें यहाँ आकर देख जाओ। अस्तु, जिस समय उद्धव वृन्दावन को चले, उस समय वृन्दावन की गोपियों ने अपने अन्तःकरण की निर्मलता के कारण यह जान लिया कि आज या तो कोई आदमी श्री मोहनप्यारे का सन्देशा लेकर आवेगा अथवा वे स्वयं ही आवेंगे। ऐसा समझकर एक गोपी ने अपने आँगन में कौवा को बोलते हुए देखकर कहा—"अरे काग! मैं तुझे दूध-दही खिलाऊँगी, यदि श्री मोहनप्यारे यहाँ आ रहे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हों तो तू उड़ जा।" दूसरी गोपी बोली–"हे सखी! आज बाईं आँख फड़कने के कारण मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि श्री श्यामसुन्दर यहाँ आ रहे हैं, अतः तुम सब चिन्ता त्यागकर प्रसन्न हो जाओ। आज उनके चन्द्रमुख का दर्शन पाकर अपने नेत्रों को शीतल करना।"

हे परीक्षित! सन्ध्या के समय जब उद्धव वृन्दावन में पहुँचे तो उन्होंने यह देखा कि सघन वृक्षों पर अनेक प्रकार के पक्षी बैठे हुए मीठी बोलियाँ बोल रहे हैं तथा चारों ओर धौरी, धूमरी, पीली, काली गायें घूम रही हैं। जहाँ भी दृष्टि जाती है, वहाँ की शोभा को देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। अस्तु, उस वन तथा स्थान को उद्धव ने श्री मुरलीमनोहर का लीला-स्थान जानकर दण्डवत् किया। तदुपरान्त वे गाँव के और समीप जा पहुँचे। हे राजन्! जिस समय नन्दराय तथा अन्य ब्रजवासियों ने उद्धव को श्री श्यामसुन्दर का वेश बनाये तथा उन्हीं के रथ पर बैठे हुए दूर से देखा तो वे उन्हें श्री बाँकेविहारी समझकर भेंट करने के लिए दौड़ते हुए उनके पास आ पहुँचे। परन्तु जब श्री श्यामसुन्दर के स्थान पर उन्हें उद्धव दिखाई दिये तो वे पहिले तो कुछ उदास हुए फिर उन्हें श्रीहरि का भेजा हुआ जानकर बड़े प्रेमपूर्वक अपने घर लिवा ले गये। नन्दजी ने उनके पाँव धोकर छत्तीस प्रकार के भोजन कराये तथा पान-इलायची देकर, उनके लिए एक उत्तम शैया बिछा दी। कुछ देर विश्राम करने के बाद जब उद्धव उठे तो नन्द-यशोदा उनसे वसुदेव, देवकी, श्याम तथा बलरामजी की कुशल पूछकर कहने लगे–"हे उद्धव! क्या कभी श्यामसुन्दर हमारी भी याद करते हैं? न जाने हमसे ऐसी क्या चूक बन पड़ी जो वे आज तक लौटकर यहाँ नहीं आये? हे उद्धव! वसुदेव-देवकी बड़े भाग्यशाली हैं, जो श्री श्यामसुन्दर तथा बलराम उन्हें अपना माता-पिता जानकर हमें पराया समझते हैं। यह अच्छा हुआ जो अधर्मी कंस अपने भाइयों-सहित मारा गया तथा वसुदेव-देवकी को मुक्ति मिली। भला यह तो कहो कि क्या कभी राम-कृष्ण मेरी तथा यशोदा की भी याद करते हैं? जिस दिन से उन्होंने मुझे बिदा किया, उस दिन से हमारा खाना-पीना, हँसना-बोलना सब छूट गया है। यशोदा भी दिन-रात उन्हीं का ध्यान करती हुई, उन्हीं की प्रतीक्षा में माखन-रोटी लिये बैठी रहती हैं। हे उद्धव! मैं प्रतिदिन उन्हें देखने के लिए मथुरा जाने की इच्छा करता हूँ, परन्तु इस काम-काज से कभी छुट्टी ही नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिलती। जब कभी वन में जाकर श्री मोहनप्यारे के चरण-चिह्न देखता हूँ तो यह जान पड़ता है कि वे किसी कुञ्ज में राह भूल गये हैं। उस समय मैं उन्हें ढूँढ़ने लगता हूँ, पर जब वे नहीं मिलते तो हारकर घर लौट आता हूँ। हे उद्धव! श्री कन्हैयालाल की मुरली तथा लकुटिया को देखकर मेरी जो दशा होती है, उसे मैं किसी भी प्रकार कह नहीं सकता। उन्होंने मुझ से वृन्दावन आने का कौल किया था सो यह बताओ कि वे यहाँ आवेंगे या नहीं? देखें, अब हमारा भाग्योदय कब होता है? वे मुझे पिता कहते थे और मैं भी उन्हें अपना पुत्र समझता था। उन्होंने विपत्ति-काल में हम सभी व्रजवासियों की रक्षा की। हे उद्धव! उन्होंने बाल्यावस्था में ही पूतना राक्षसी तथा वत्सासुर आदि बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर कालीनाग को यमुना से बाहर निकाल दिया था। उन्होंने गोरस चुराकर गोपियों के साथ रासलीला की तथा अपने बाल-चरित्रों से हमें बहुत सुख पहुँचाया। यह कहो कि क्या वे इन बातों की चर्चा कभी वसुदेव-देवकी से भी करते हैं अथवा नहीं? हे उद्धव! गर्ग मुनि के कहने से मैं यह समझता हूँ कि वे परब्रह्म प्रभु के अवतार हैं तथा उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार ग्रहण किया है।"

हे परीक्षित! जब नन्दराय इस प्रकार कह चुके, तब यशोदाजी रोती हुई बोलीं—"हे उद्धव! तुम जिनके साथ सदैव रहते हो, उन हमारे पुत्रों की कुशल हमें सुनाओ। क्या वे कभी मेरी भी याद करते हैं? उनके बिना मैं अत्यन्त दुःख पाती हूँ। वे सबसे आने को कह गये थे, परन्तु बहुत दिन बीत जाने पर भी अभी तक लौटकर नहीं आये। हे उद्धव! जिन परब्रह्म प्रभु का दर्शन ब्रह्मा आदि देवताओं को ध्यान में भी प्राप्त नहीं होता, वे मेरे घर में रहे, परन्तु मैं उन्हें सदैव अपना पुत्र ही समझती रही। अब न जाने वह भाग्य कब प्राप्त होगा, जब मैं श्यामसुन्दर को फिर से गोद में लेकर उनके शरीर की धूल को अपने आँचल से झाड़कर गले से लगाऊँगी? हाय, अब मैं किसका मुख चूमकर बलैया लूँ? वह मोहिनी मूरत क्षणभर को भी मेरी आँखों से दूर नहीं होती। अब तुम यह बताओ कि जो मनमोहन यहाँ दिन-रात ऊधम मचाया करते थे, वे अब वहाँ सीधे बनकर किस प्रकार रहते हैं? वे मेरे बिना इतने दिनों तक वहाँ कैसे ठहरे हुए हैं। मैं गोवर्द्धन पर्वत को देखकर यह समझती रहती हूँ कि वे अभी आ रहे होंगे। भला, बताओ तो सही कि वे कब आयेंगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार कहकर, जब नन्द तथा यशोदा श्री कृष्ण-चन्द्रजी के विरह-दुःख में रोते-रोते व्याकुल हो गये, तब उन्हें धैर्य देने के लिए उद्धव ने इस प्रकार कहा—"हे नन्द-यशोदा ! तुम धैर्य मत खोओ। श्यामसुन्दर भी मेरे पीछे-पीछे आ रहे हैं।" यह सुनकर जब नन्द-यशोदा को धीरज हुआ, तब उद्धव ने सब भेंटें उनके सामने रखकर श्री श्यामसुन्दर तथा वसुदेवजी के भेजे हुए पत्र पढ़कर सुना दिये। फिर इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द-यशोदा ! जिनके घर में रहकर पूर्णब्रह्म परमेश्वर ने अपनी बाल-लीलाएँ कीं, उनकी प्रशंसा भला कौन कर सकता है ? तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो तुम्हारे हृदय में आठों प्रहर श्री श्यामसुन्दर की प्रीति बनी रहती है, इसीलिए वे भी तुमसे एक क्षण को अलग नहीं होते हैं। मैं तो तुम दोनों को 'जीवनमुक्त' समझता हूँ।" यह सुनकर यशोदा ने उस चिट्ठी को बड़े प्रेमपूर्वक अपने मस्तक तथा आँखों से लगाया, फिर रोते हुए इस प्रकार कहा—"हे उद्धव ! तुम इन ज्ञान की बातों को छोड़कर यह सच-सच बताओ कि श्री श्यामसुन्दर यहाँ कब आयेंगे। यदि वे मुझे अपनी माता समझकर एक बार आकर दर्शन दे जाते तो मैं अपना जीवन धन्य मानती। हे उद्धव ! मैं अपने कन्हैया को प्रतिदिन प्रातःकाल ही माखन-रोटी खिला देती थी। अब उन्हें इतने सबेरे कौन भोजन कराता होगा ? मुझे दिन-रात यही चिन्ता लगी रहती है कि ठीक से भोजन न मिलने के कारण मेरा लाल दुर्बल हो गया होगा।" यह सुनकर उद्धव ने कहा—"हे यशोदा ! तुम मेरी बात पर विश्वास करके श्री कृष्णचन्द्रजी को परमेश्वर समझो। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार उनके निर्गुण स्वरूप का प्रकाश संसार के सभी जीवों में व्याप्त हो रहा है। वे दिखाई न देने पर भी सर्वव्याप्त हैं। अतः तुम भी उन्हें आठों प्रहर अपने समीप ही जानकर इतनी चिन्ता मत करो। उन्होंने पृथ्वी का भार हटाने तथा अपने भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए ही अवतार लिया है। जिस प्रकार भृङ्गी अपने रंग में अन्य कीड़ों को रँग लेती है, उसी प्रकार वे अपना ध्यान करनेवाले को अपने ही स्वरूप का कर देते हैं। यदि तुम उन्हें घट-घट में व्याप्त समझकर अन्तःकरण में उनका ध्यान धरोगी, तो तुम्हारा स्वरूप भी उन्हीं के समान हो जायगा। वे न किसी के पुत्र हैं और न कोई उनका माता-पिता है। यह तो तुम्हारे पूर्वजन्म के पुण्यों का फल है, जो तुम उनसे इतना स्नेह रखती हो। हे नन्द-यशोदा ! यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम श्री श्यामसुन्दर को अन्तर्यामी नारायण समझकर ईश्वर-भाव से भजोगे तो वे तुम्हें ध्यान में अपना दर्शन देकर दुःख से छुड़ा देंगे।" उद्धव के मुख से यह शब्द सुनकर यशोदा ने कहा—"हे उद्धव ! तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु मैं अपने मन को बहुत समझाती हूँ, फिर भी वह किसी प्रकार नहीं मानता है।" इस प्रकार परस्पर बातें करते हुए सारी रात व्यतीत हो गई।

हे परीक्षित ! जब चार घड़ी रात्रि शेष रही, तब उद्धव नन्दरायजी से पूछकर यमुना-स्नान करने के लिए चले। मार्ग में उन्होंने यह देखा कि सभी स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में दीपक जलाकर श्री कृष्णजी के बाल-चरित्रों का गान करती हुई दही मथ रही हैं। वे जिस द्वार के समीप होकर निकलते थे, उसी घर में श्रीहरि की चर्चा होते हुए देखकर उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था। जब उद्धव यमुना-तट पर पहुँचकर स्नान करने के उपरान्त सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य-कर्म करने लगे, उसी समय सबेरा हो जाने के कारण सब गोपियाँ भी घर-गृहस्थी के कामों से छुट्टी पाकर जल भरने के लिए वहाँ आ पहुँचीं। वे सब परस्पर श्री श्यामसुन्दर की चर्चा कर रही थीं। कोई कहती थी—"हे सखी ! मुझे मार्ग में श्री मनमोहन प्यारे मिले थे।" कोई कहती थी—"वे कहीं छिपे हुए हैं।" किसी ने कहा—"देखो, वे वंशी बजा रहे हैं।" कोई बोली—"नहीं, वे गौ चरा रहे हैं !" कोई कह उठी—"वे इस मार्ग में हमसे दान माँगने के लिए आ रहे हैं।" इसी प्रकार परस्पर श्री कृष्णजी की चर्चा करती हुई वे सब जब यमुना-तट पर पहुँचीं तो मार्ग में श्री श्यामसुन्दर के रथ को खड़ा हुआ देखकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखी ! मालूम होता है कि वह अक्रूर यहाँ फिर आ पहुँचा है। एक बार तो उसने राजा कंस को मरवा डाला, अब न जाने वह क्या करेगा ?" यह सुनकर दूसरी सखी ने कहा—"हे आली ! क्या पता, श्री श्यामसुन्दर ने हमारी ही सुधि लेने के लिए किसी को भेजा हो !" इस प्रकार बातें करती हुई वे व्रजबालाएँ जब यमुना-तट पर पहुँचीं तो उद्धव उनकी प्रीति को देखकर अपने मन में यह सोचने लगे कि देखो इन्हें श्री कृष्णचन्द्रजी से कैसी प्रीति है कि इन्हें अपने पति, घर तथा लोक-लज्जा का भी कुछ ध्यान नहीं है।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सैंतालीसवाँ अध्याय

उद्धव का गोपियों को ज्ञानोपदेश करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब उद्धव पूजा-पाठ से निवृत्त होकर नन्दराय के घर लौटने लगे, तब गोपियों ने उन्हें श्री श्यामसुन्दर का पीताम्बर, मुकुट तथा माला धारण किए हुए देखकर परस्पर इस प्रकार कहा—"हे सखी! श्री मोहनप्यारे ने यहाँ से जाते समय एक मनुष्य को भेजने के लिए कहा था, सो प्रतीत होता है कि यह वही मनुष्य है जिसे हमारे प्राण-प्यारे ने हमारी सुधि लेने को भेजा है।" यह सुनकर दूसरी गोपी बोली—"हे आली! इनका नाम उद्धव है। ये कल से नन्द-यशोदा के घर ठहरे हुए हैं तथा श्री मोहनप्यारे का संदेशा लेकर आये हैं। यह सुनते ही राधा आदि गोपियाँ उद्धव को श्री श्यामसुन्दर का सन्देशवाहक जानकर उनके पास जा पहुँचीं तथा उन्हें आदरपूर्वक बैठने के लिए कह उठीं। उनकी सच्ची प्रीति देखकर उद्धव भी बैठ गये। तब सब गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठ गईं तथा कुशल-क्षेम पूछने के उपरान्त इस प्रकार कहने लगीं—"हे उद्धव! हमने यह सुना है कि तुम्हें श्री गोपीनाथजी ने नन्द-यशोदा को धैर्य बँधाने के लिए भेजा है। यह बड़ी अच्छी बात है; परन्तु उन्होंने तुम्हें केवल अपने माता-पिता के पास ही सँदेशा देकर भेजा और हमारे लिए कुछ नहीं कहलाया इससे हमें बड़ा दुःख होता है। हम तो उनकी बिना दाम की चेरी हैं फिर वे हमें क्यों भूल गये।" दूसरी गोपी बोली—"हे उद्धव! मनमोहन बड़े कपटी तथा निर्दयी हैं। जिस प्रकार वेश्या को केवल धन लेने से ही मतलब होता है, वह किसी पुरुष से सच्ची प्रीति नहीं रखती, अथवा जिस प्रकार पक्षी केवल फले-फूले वृक्ष पर ही बैठते हैं, सूखे पर नहीं; अथवा जिस प्रकार भँवरा फूलों से रस लेकर उड़ जाता है तथा दण्डी साधु भिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् देने-वाले के पास नहीं खड़ा रहता, उसी प्रकार श्री कृष्णप्यारे भी मर्त्यलोक में जन्म लेने के कारण पहिले तो संसारी मनुष्य की भाँति यहाँ रास-विलास करते रहे और अब हम सबसे विमुख हो बैठे हैं। जिस प्रकार उनकी मन्द मुस्कान, बंकिम चितवन तथा मधुरी बातों पर देवकन्याएँ तथा लक्ष्मीजी मोहित रहती हैं, उसी प्रकार हम सब भी उनके कमलरूपी चन्द्रमुख का रस भँवरे के समान पीकर उसी के मद में आठों प्रहर मतवाली बनी बैठी रहती हैं, परन्तु वे हमारी याद भी नहीं करते।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार श्यामसुन्दर की चर्चा करते समय सब गोपियाँ उनके प्रेम में ऐसी मग्न हो गईं कि उन्हें अपने शरीर तथा वस्त्रों का भी कुछ ध्यान नहीं रहा। उसी समय एक श्याम रंग का भ्रमर (भँवरा) उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर एक गोपी इस प्रकार कहने लगी—"हे सखी ! श्यामसुन्दर के लिए जो सँदेशा तुम उद्धव से कह रही हो, वही इस भँवरे से कहलाकर उनके पास भेज दो; क्योंकि यह भी उन्हीं के समान काले रंग का है।"

हे परीक्षित ! उस समय गोपियों ने उस भ्रमर को सम्बोधित करके जो बातें कहीं थीं, उन्हें 'भ्रमरगीत' कहा जाता है। अस्तु, पहली सखी की बात सुनकर दूसरी ने यह कहा—"हे सखी ! क्या तुझे यह विश्वास होता है कि यह भँवरा श्री श्यामसुन्दर के पास हमारा सन्देश ले जायगा ? क्योंकि मैं तो यह समझती हूँ कि जितने भी जीव श्याम वर्ण के होते हैं, उनमें किसी से भी अपने स्वार्थ की आशा नहीं करनी चाहिए।" यह सुनकर तीसरी सखी बोली—"हे आली ! कृष्ण वर्ण के सभी जीव एक-जैसे होते हैं। इनसे प्रीति कभी नहीं करनी चाहिए। मेघ तथा सर्प भी काले रंग के होते हैं, जो सबको बड़ा दुःख पहुँचाते हैं, इसी प्रकार भँवरे को भी समझना चाहिए।" चौथी बोली—"हे भ्रमर ! मुझे किसी श्याम रंगवाले पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि अपने चितचोर श्याम-सुन्दर की बातें तथा सौन्दर्य याद आने पर मैं अपनी सुध-बुध भूल जाती हूँ।" अस्तु, जब वह भँवरा गोपियों के शरीर पर लगी हुई केशर, चन्दन आदि की सुगन्ध को सूँघकर उनके पास आया तो उसे देखकर एक सखी इस प्रकार कहने लगी—"हे भ्रमर ! तू हमारे पास मत आ। तेरे समान श्याम वर्ण के श्यामसुन्दर मथुरा की स्त्रियों के साथ विहार कर रहे हैं, अतः तू उन्हीं के पास चला जा। वे स्त्रियाँ श्री मनमोहन प्यारे को रिझाने के लिए अपने शरीर पर विविध प्रकार की सुगन्ध लगाती हैं, अतः तू उन्हीं की सुवास का रस-पान कर।" एक अन्य सखी बोली—"हे आली ! इस भ्रमर की नाक मथुरावासी स्त्रियों के शरीर की सुगन्ध सूँघकर भर गई है, अतः यह ऐसा बेपरवाह हो गया है कि कहीं एक स्थान पर नहीं बैठता है।" दूसरी गोपी बोली—"हे भ्रमर ! तू मथुरा में जाकर हमारे चितचोर से यह सन्देश कह देना कि अपने प्रेमियों की प्रीति को भुलाकर उन्हें दुःख देना कहाँ का न्याय है ? जिस प्रकार कोई भँवरा एक फूल पर क्षणभर से अधिक नहीं ठहरता, उसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार तुम्हारी भी गति है। लक्ष्मीजी अपने अज्ञान के कारण तुम्हारा स्वभाव न जानकर ही तुम्हारे ऊपर मोहित हैं। यदि वे तुम्हारी कठोरता का हाल जानतीं तो तुमसे कभी प्रीति नहीं करतीं। मथुरा की स्त्रियाँ भी तुम्हारी कठोरता का हाल नहीं जानतीं। हम तो यह चाहती हैं कि उनकी प्रीति तथा तुम्हारा निर्दयीपन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जावे, जिससे उनका हाल भी हमारे समान हो जाय।" तीसरी सखी ने कहा—"हे भ्रमर! श्री श्यामसुन्दर सब गुणों से पूर्ण हैं। उन जैसा स्वरूप त्रिभुवन में किसी और का न होगा। यही कारण है जो देवलोक तथा मर्त्यलोक की स्त्रियाँ उनके ऊपर मोहित हो जाती हैं। उनके समक्ष हम गँवारिनों की क्या गिनती है?" चौथी गोपी ने कहा—"हे भ्रमर! तूने श्री मनमोहन के चरण-कमलों का रस-पान किया है, इसी से तेरा नाम मधुकर है। तू कपटी श्यामसुन्दर का मित्र तथा दूत बनकर हमारे पास आया है। परन्तु श्यामवर्ण के सभी जीव कपटी होते हैं, इसलिए तू हमें स्पर्श मत कर।" अन्य सखी कहने लगी—"हे भ्रमर! तू कुब्जा के अंग पर लगी हुई केशर का तिलक अपने मस्तक पर लगाकर श्री श्यामसुन्दर के आज्ञानुसार हमें लेने को आया है, परन्तु हम केवल तेरी विनती से ही उनके पास नहीं जायँगी। जब हम कुब्जा दासी के समान भी नहीं हैं तो उनके पास जाकर ही क्या करेंगी? इसलिए तू भी मथुरा में जाकर उन कृष्णचन्द्रजी के सम्मुख कुबड़ी के यश का गान कर। जिस प्रकार बहेलिया अलगोजा बजाकर हिरन को पकड़ लेता है, उसी प्रकार श्री बाँकेविहारी ने भी मुरली बजाकर हमें अपने प्रेम-जाल में फँसा लिया है।"

हे परीक्षित! जिस समय गोपियाँ भँवरे से इस प्रकार कह रही थीं, उस समय ललिता सखी ने यह कहा—"हे सखियो! सुनो, श्री मोहनप्यारे ने कोई इसी जन्म में ही कठोरता नहीं दिखाई है, वे सदा से ऐसा ही करते आये हैं। उन्होंने रामावतार में 'बालि' नामक वानर को निरपराध मारा तथा रावण की बहिन शूर्पणखा के नाक-कान कटवा लिये। वामन अवतार के समय उन्होंने राजा बलि से केवल तीन पग पृथ्वी का दान माँगा और जब उसने ब्राह्मण समझकर संकल्प कर दिया, तो विराट स्वरूप धारण करके अपने दो ही पगों में चौदहों भुवनों को नाप बैठे। फिर तीसरे पग में राजा बलि जैसे धर्मात्मा तथा ज्ञानी को बाँधकर पाताल में भेज दिया। इनके अतिरिक्त उन्होंने जो और भी कपट के कार्य किए हैं, उन्हें कहाँ तक कहूँ। यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम यह कहा कि मैं ऐसे कपटी से प्रीति कर दुखी क्यों हो रही हूँ, तो उसका उत्तर यह है कि अकेली मैं ही क्या, बड़े-बड़े राजा भी अपने घर-द्वार, राज-पाट, स्त्री-पुत्र आदि को त्यागकर उनकी भक्ति करने के लिए वन में चले जाते हैं तथा उनके सुन्दर स्वरूप को देखकर देव-कन्याओं का हृदय भी डाँवाडोल हो जाता है। इसे तुम सब अपनी आँखों से भी देख चुकी हो।" दूसरी गोपी बोली–"हे सखी ! मैं नहीं समझती कि श्यामसुन्दर को अपने वियोग में हमारे प्राण लेने से क्या लाभ होगा ? जो वे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं।" तीसरी ने कहा–"हे भ्रमर ! हम लोगों ने यह सोचकर ही श्री श्यामसुन्दर से प्रीति लगाई थी कि वे कुछ दिनों तक उसे निभायेंगे, परन्तु वे तो अपनी मन्द मुस्कान से हम लोगों के हृदय को चुराकर इस प्रकार अलग हो गये, जैसे वे कभी हमें जानते ही नहीं थे। यदि मैं उन्हें ऐसा निष्ठुर जानती तो उनसे कभी भी प्रेम नहीं करती।" तब एक अन्य सखी बोली–"हे आली ! क्या तूने यह नहीं सुना कि कुब्जा दैत्यों की जूठन खाती थी तथा उनकी दासी कहलाती थी ? अब मनमोहनप्यारे ने उसे अपनी पटरानी बना लिया है। इस बात को सुनकर हम लोग तो लज्जावश किसी को मुँह भी नहीं दिखापातीं।" दूसरी गोपी बोली–"हे आली ! देखो, जिसे दीनदयालु तथा परमेश्वर का अवतार कहा जाता है, वह अब अपने धर्म को भुलाकर ऐसा कठोर बन गया है कि हमारा दुःख दूर करने के लिए तीन कोस चल-कर यहाँ तक भी नहीं आ सकता। इसके विपरीत सँदेशा भिजवाकर हमारे जले पर नमक छिड़क रहा है।" तीसरी गोपी ने कहा–"हे भ्रमर ! तू उस चितचोर से यह अवश्य पूछना कि वे अपनी निर्दयता त्याग कर कभी हमें दर्शन देंगे भी अथवा नहीं ?" तब एक सखी ने उद्धव से कहा–"हे उद्धव ! श्री बाँकेविहारी तथा बलदाऊजी बचपन की प्रीति को समझकर कभी हम लोगों को भी याद करते हैं अथवा नहीं ?" यह सुनकर दूसरी गोपी उत्तर देने लगी–"हे आली ! अब तो वे मथुरा की परम सुन्दरी तथा चतुर स्त्रियों के साथ वहाँ विहार कर रहे हैं, सो भला हम गँवारिनों को याद क्यों करने लगे ? यदि हम पहिले ऐसा जानती, तो उन्हें जाने ही नहीं देती। हे सखी ! जिस प्रकार आठ मास तक पृथ्वी, वन, पर्वत आदि ग्रीष्म का दुःख उठाते हैं तथा वर्षाऋतु में मेघ उनके हृदय को शीतल करता है, उसी प्रकार क्या कभी श्यामसुन्दर भी यहाँ आकर हमारे हृदय की तपन को मिटायेंगे ? इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात को सुनकर एक दूसरी सखी ने कहा–"इन बातों से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। तुम्हें उद्धव से यह पूछना चाहिए कि वे यहाँ किस लिए आये हैं।" तब एक सखी उद्धव से पूछने लगी–"हे उद्धव ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? कृष्णजी भी कभी यहाँ आना चाहते हैं अथवा नहीं ?" दूसरी सखी ने उसे बीच में टोकते हुए कहा–"अरी यह क्यों नहीं पूछती कि श्याम-बलराम ने गुरु के द्वारा कपट के अतिरिक्त कुछ दया-धर्म भी सीखा है अथवा नहीं ?" तब तीसरी सखी बोली–"हे आली ! वसुदेवजी ने कृष्ण-बलराम को हम अहीरों की संगति में रहने के कारण तीर्थजल से स्नान करवा कर जनेऊ पहिनाया है, अब वे भला उन्हें यहाँ क्यों आने देंगे ?" उस समय एक अन्य गोपी ने जो श्री श्यामसुन्दर के विरह-सागर में मग्न हो रही थी झुँझलाकर इस प्रकार कहा–"अरी सखियो ! जब वह निष्ठुर तुम्हारी सुधि नहीं लेता, तब तुम उसके सम्बन्ध में बार-बार पूछताछ क्यों कर रही हो ?" उसके ऐसे कठोर वचन सुनकर दूसरी गोपी कहने लगी–"इस गँवारिन के मुँह में आग लगे, जो यह ऐसी बात कह रही है। हे उद्धव ! तुम सच-सच बताओ कि वे यहाँ कब आयेंगे ?" तब तीसरी गोपी ने पूछा–"हे उद्धव ! तुम हमारे प्राणेश्वर के पास से आ रहे हो, अतः जहाँ तुम्हारे चरण पड़ते हैं, उस स्थान की धूलि हमें अपनी आँखों में लगानी उचित है।"

हे परीक्षित ! गोपियों की ऐसी दशा देखकर उद्धव अपने मन में विचार करने लगे कि श्री त्रिलोकीनाथ से ऐसी प्रीति किसी अन्य की न होगी। ऐसा सोचकर उद्धव ने श्री राधारानी को जो सब गोपियों से अलग मौन खड़ी थीं तथा सबकी बातें सुन रही थीं, श्री श्यामसुन्दर द्वारा उनके लिए भेजी गई एक रत्नों की माला देते हुए कहा–"हे गोपियो ! तुम्हारे समान भाग्यशाली होना किसी दूसरे का कठिन है, जो तुम श्री मुरलीमनोहर के चरणों में ऐसी प्रीति रखती हो। संसार में मनुष्य श्रीहरि के चरणों की भक्ति प्राप्त करने के लिए जप, तप, व्रत, हवन, पुण्य, दान, तीर्थ आदि करते हैं, परन्तु वे भी तुम्हारे जैसी उच्च पदवी को प्राप्त नहीं कर सकते। तुम मुझे ऐसा आशीर्वाद दो, जिससे मुझे भी तुम्हारे ही समान श्रीहरि के चरणों में प्रेम प्राप्त हो सके। मेरे ऊपर श्री कृष्णचन्द्रजी ने बड़ी कृपा की जो उन्होंने मुझे यहाँ भेजा। मैं तुम्हारे दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया हूँ। अब मैं तुम्हारे लिए श्री कृष्णजी का जो पत्र तथा संदेशा लाया हूँ, उसे सुनो।" इतना कहकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Seva Sadan

जब उद्धव ने श्री श्याम-बलराम की कुशल सुनाने के उपरान्त चिट्ठी दी तो उसे राधा आदि सभी गोपियों ने अपनी-अपनी छाती से लगाकर अत्यन्त सुख प्राप्त किया। तदुपरान्त जब उद्धव चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगे, उस समय गोपियों ने यह देखा कि उस पत्र में एक स्थान पर हरताल द्वारा कुब्जा का नाम मिटाकर उसके ऊपर गोपियों शब्द लिखा गया था। उसे देखकर गोपियाँ कहने लगीं—"हे सखी! देखो, अब बाँकेविहारी का चित्त हर समय कुब्जा में लगा रहता है, इसीलिए उन्होंने पहिले उसका नाम लिखकर फिर उसे हरताल से मिटाकर हमारा नाम लिखा है। उसके नाम पर यह हरताल ऐसी लगती है, जैसे उसे पीताम्बर उढ़ा दिया गया हो।"

हे परीक्षित! पत्र सुनाने के उपरान्त उद्धव ने गोपियों से इस प्रकार कहा—"हे गोपियो! श्री मुरलीमनोहर ने मुझे तुम्हारे पास आत्मज्ञान सिखाने के लिए भेजा है तथा यह कहा है कि यदि तुम लोग मुझसे भोग की आशा छोड़कर योग-साधन करो तो तुम्हें वियोग का दुःख प्राप्त न होगा। तुम मेरा ध्यान हर समय धरती हो, इसलिए मुझे तुमसे अधिक प्रिय अन्य कोई नहीं है। अतः हे गोपियो! तुम सबको यह चाहिए कि तुम तीनों लोकों के सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति एवं स्थिति करनेवाले श्री कृष्णचन्द्रजी को अपना पति न मानकर परमेश्वर समझो। पाँच तत्वों से बने इस मनुष्य-शरीर में जो शुभाशुभ कर्म करने तथा चलने-फिरने आदि की सामर्थ्य है, सो सब उन्हीं की कृपा से है। उनकी माया का आवरण पड़ा होने के कारण वे किसी को दिखाई नहीं देते हैं, यदि तुम उनके निर्गुण स्वरूप का ध्यान धरकर उनसे प्रीति करो तो वे सदैव तुम्हारे पास ही बने रहेंगे। सगुण रूप रहने से ज्ञान तथा ध्यान में विघ्न पड़ने के कारण ही वे मथुरा में जा बसे हैं। यदि तुम गोप-गोपी, गौ, वानप्रस्थ, गृहस्थ, संन्यासी आदि सभी प्राणियों को उन्हीं का स्वरूप समझने लगो, तो तुम्हें उनके वियोग का दुःख नहीं उठाना पड़ेगा। हे गोपियो! वे परब्रह्म जन्म-मृत्यु तथा घटने-बढ़ने से परे हैं। जिस प्रकार किसी पतिव्रता का पति परदेश गया हो, तो वह सोते-जागते, उठते-बैठते सब समय उसी का ध्यान धरे रहती है, उसी प्रकार यदि तुम भी श्री श्यामसुन्दर को अपने से पृथक् न समझकर उन्हीं का ध्यान धरती रहोगी तो तुम्हारे मन में किसी प्रकार का दुःख शेष न रह जायगा। श्री कृष्णजी ने यही कहा है कि जिस प्रकार तुमने रासलीला के समय मुझे पाप की दृष्टि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

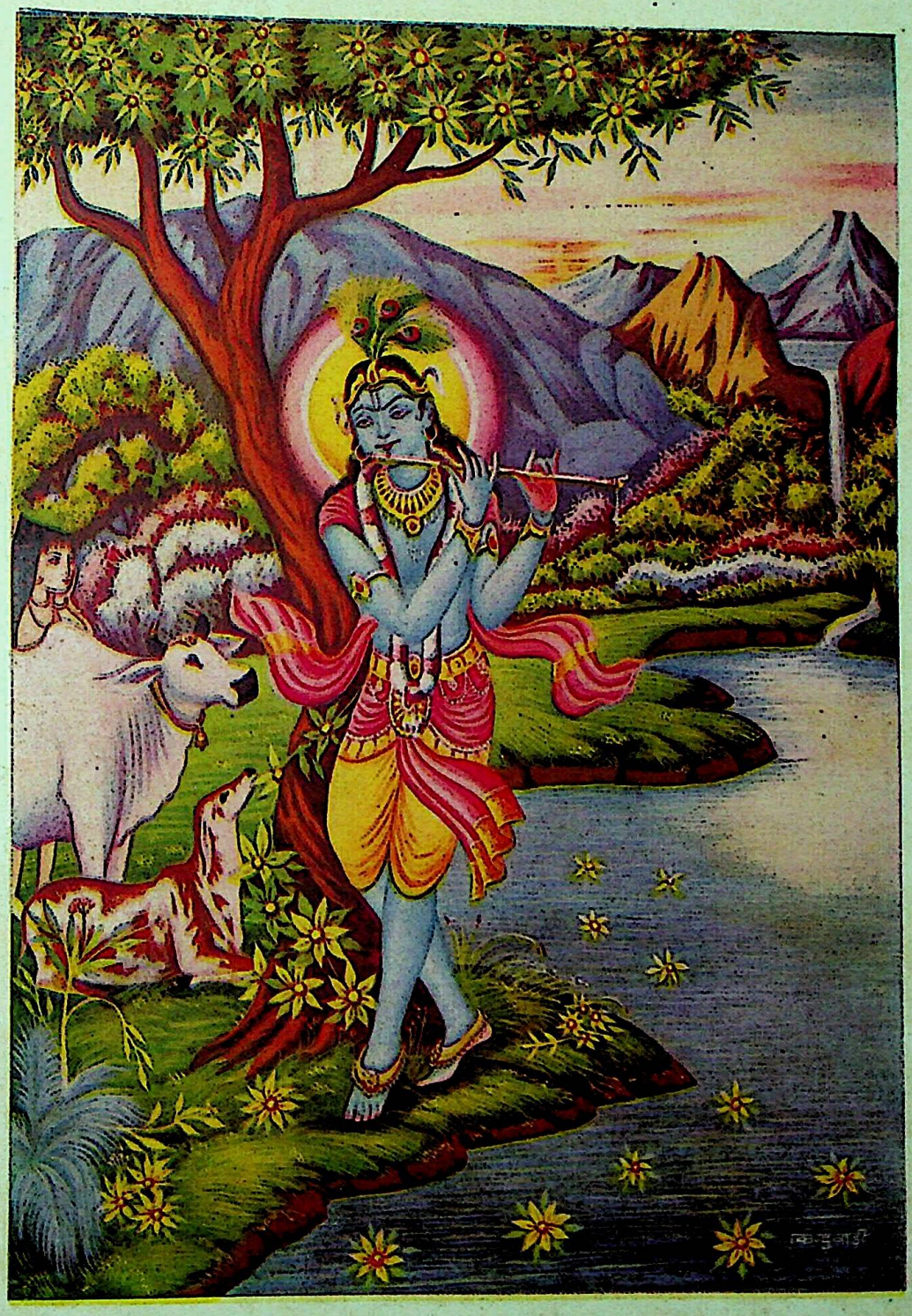

यमुना-तट पर श्रीकृष्ण द्वारा वंशी-वादन

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखा था, तब मैं अन्तर्धान हो गया था तथा फिर जब तुमने परमेश्वर जानकर मेरा ध्यान किया तो मैंने प्रकट होकर तुम्हें दर्शन दिया। उसी प्रकार अब यदि तुम मेरे निर्गुण स्वरूप का ध्यान धरोगी तो मैं आठों प्रहर तुम्हारे ही पास बना रहूँगा।"

उद्धव के इस ज्ञानोपदेश को सुनकर श्री राधिकाजी ने कहा—"हे उद्धव! तुम जहाँ से इन रत्नाभूषणों को लाये हो, वह मेरा अनमोल रत्न कहाँ है? उसके बिना हमें त्रैलोक्य की सम्पत्ति तुच्छ लगती है। तुम यह आभूषण उसी को जाकर लौटा देना। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है, मैं तो केवल उन मनमोहन के दर्शन ही प्राप्त करना चाहती हूँ।" उसी समय दूसरी सखी बोली—"हे उद्धव! यह कहाँ की न्याय की बात है कि वे हमें तो योग-साधन का उपदेश करते हैं और स्वयं कुब्जा तथा मथुरा की अन्य स्त्रियों के साथ भोग-विलास करते हैं? तुम हमें केवल यह बता दो कि उनकी उस मोदसभा में कभी हमारी भी चर्चा होती है अथवा नहीं?" यह सुनकर एक अन्य सखी बोली—"हम लोग तो दिन-रात उनके ध्यान में मग्न रहने के अतिरिक्त अन्य कोई काम भी नहीं करतीं और वे योग तथा वैराग्य की पाती लिख-लिखकर हमारे हृदय की दबी-दबाई अग्नि को और अधिक प्रज्वलित कर रहे हैं? हे उद्धव! जो सदैव नरलीला दिखाते रहे हम उन्हें नारायण किस प्रकार मान लें? जिन्होंने हमें बचपन से सुख दिया वे अलख-अगोचर कैसे हो गये? हमारे जिन प्राणों में प्राणप्यारे श्यामसुन्दर बसे हुए हैं, वे तुम्हारी सीख क्यों सुनने लगे?" फिर एक गोपी उठकर इस प्रकार कहने लगी—"हे आली! उद्धव से कुछ कहने की क्या आवश्यकता है? इनकी बातें सुनकर चुप रह जाना ही ठीक है।" एक अन्य गोपी बोली—"हे सखी! अब तो कुब्जा जैसी सिखाकर भेजती है, लोग वैसा ही सीखे हुए यहाँ आकर बातें बनाते हैं। जप, तप, संयम और नियम—ये सब तो विधवाओं के करने के काम हैं। हमारे कन्हैया तो युग-युग जीवित बने रहें। वे ही हमारे सुखदाता तथा शीश पर हैं। हमारे लिए तो एक ही नियम और एक ही व्रत है कि हम सदैव नन्द-नन्दन के चरण-कमलों की सेवा करती रहें। हे उद्धव! हम तुम्हें क्या दोष दें? यह तो कुब्जा ही सबको नाच नचा रही है। तुम हम युवतियों को सुनाने के लिए योग कहाँ से ले आये? इसे सुनकर हमारे हृदय में वियोग का दुःख और अधिक बढ़ गया है।" तदुपरान्त राधिकाजी ने इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा–"हे उद्धव ! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर चाहे यहाँ रहें अथवा मथुरा में रहें, परन्तु वे अपने हृदय में हमारा प्रेम बनाये रहें, हम तो केवल यही चाहती हैं। हम इस बात को भी जानती हैं कि वे कुब्जा से कितना भी प्रेम क्यों न करें, परन्तु दुनिया के लोग 'राधाकृष्ण' के नाम से ही पुकारेंगे। कुब्जाकृष्ण कोई नहीं कहेगा।" फिर एक दूसरी गोपी बोली–"हे उद्धव ! अब तक हमें श्री मुरलीमनोहर के लौट आने की आशा थी, परन्तु अब तुमने योग का सँदेशा सुनाकर निराश कर दिया। अरे, हम तो गोरस को बेचनेवाली सीधी-सादी गँवारिन हैं, हम योग आदि को क्या जानें ? अच्छा हो कि तुम हमें अबला तथा अनाथ समझ, दया करके, श्री मुरलीमनोहर के पास ले चलो। हे उद्धव ! तुम्हारा योग सिखाना भले ही अच्छा हो, परन्तु हमें न तो मुक्ति की आवश्यकता है और न वैकुण्ठ को प्राप्त करना चाहती हैं। हमें तो केवल श्यामसुन्दर की दासी बने रहना ही स्वीकार है।"

हे परीक्षित ! गोपियों के इन वचनों को सुनकर उद्धव अपने ज्ञान के अभिमान को भूल गये तथा कोई उत्तर न दे सकने के कारण शीश नवाकर चुपचाप बैठे रहे। उस समय वे अपने मन में यह भी समझ गये कि श्री श्यामसुन्दर ने मेरे ज्ञान के अभिमान को चूर करने के लिए ही मुझे यहाँ भेजा है। अस्तु, कुछ देर पश्चात् उद्धव फिर गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिए इस प्रकार कहने लगे–"हे गोपियो ! जिस तरह पानी पर रेखा खींच देने से वह स्थिर नहीं रह सकती, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसारी व्यवहार भी स्वप्न के समान मिथ्या समझना चाहिए। इसलिए तुम्हें उचित है कि तुम अपनी आँखें बन्द करके श्रीहरि के चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान किया करो, उससे तुम्हें अपने हृदय में श्री नारायणजी का दर्शन प्राप्त हुआ करेगा।" यह सुनकर एक सखी ने उत्तर दिया–"हे उद्धव ! यदि श्री श्यामसुन्दर रूप तथा रेखा से परे थे तो उन्हें यशोदाजी ने पालने में किस प्रकार झुलाया तथा ऊखल से किस प्रकार बाँधा ? फिर उन्होंने हमारे गोरस को भी चुराकर किस प्रकार खाया ? तुम्हारा यह मिथ्या ज्ञान हमारे ओढ़ने-बिछाने के मतलब का भी नहीं है। हम अनाथ अबलाओं को ज्ञानोपदेश करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती ?" एक अन्य गोपी ने कहा–"हे उद्धव ! हम तो अपने प्राणप्यारे के लिए व्याकुल हो रही हैं और तुम ऐसी प्रपंच की बातें करके घाव पर नमक छिड़कते चले जा रहे हो ? श्री श्यामसुन्दर तो मानो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमें इस प्रकार छोड़ गये हैं, जिस प्रकार साँप अपनी कचुली को छोड़कर फिर उससे कोई अर्थ नहीं रखता।" दूसरी सखी बोली–"हे उद्धव ! श्याम-सुन्दर प्यारे ने हमें दावानल तथा इन्द्र के कोप से बचाया है तथा दैत्यों को मारकर यहाँ अनेक लीलाएँ दिखाई हैं। ऐसे श्री नारायण के अवतारी ने राजा कंस को मारकर कुब्जा को अपनी रानी बनाया, यह सुनकर हमारा मस्तक लज्जा से नीचे झुक जाता है। क्या उन्हें चेरी (दासी) का स्वामी कहाने में लाज नहीं लगती ?" तब एक और गोपी ने कहा–"हे उद्धव ! यदि श्री श्यामसुन्दर को कूबड़ ही प्यारा हो तो हम लोग भी कुबड़ी बनकर मथुरा ही चली चलें ? हम उन्हें अपनी टेढ़ी चाल दिखाकर फिर यहाँ लौटा लावेंगी, ताकि किसी प्रकार उस कुबड़ी से तो पीछा छूटे। हे ऊधो ! वह दिन कब आयेगा जब श्री मुरलीमनोहर यहाँ आकर हमारा दुःख दूर करेंगे ?" उस समय एक सखी ने उत्तर दिया–"हे आली ! मुझे तो अब उनके यहाँ लौट-कर आने की आशा ही नहीं रही क्योंकि यहाँ तो वे नन्दमहर की गौएँ चराते थे और वहाँ राजा बने बैठे हैं।" तब एक और गोपी बोली–"हे उद्धव ! जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने हम गोपियों को त्याग ही दिया, तो फिर उन्होंने अपना नाम 'गोपीनाथ' क्यों रख छोड़ा है तथा जब उन्होंने कुब्जा से प्रीति ही कर ली है, तब दुनिया को दिखाने के लिए हमारे पास चिट्ठी तथा सँदेशा भेजकर दबी हुई आग को कुरेदने का काम क्यों किया है ? हे उद्धव ! तुम उनसे जाकर कह देना कि वे अब भी उस दासी को त्याग दें, क्योंकि हमसे यह दुःख नहीं सहा जाता कि वह कूबड़ी हमारी सौत कहलावे। हे ऊधो ! तुम कुब्जा से भी यह अवश्य कह देना कि तू जिस पर मोहित हुई है, उसकी कठोरता का यह हाल भी सुन ले कि वह जिसकी कोख से उत्पन्न हुआ पहिले तो उस माता तथा पिता को ही उसने बन्दीगृह में डलवा दिया फिर ब्रज की इतनी गोपियों को भी दुःख देकर दूर हो गया है।" एक अन्य गोपी बोली–"हे ऊधो ! हम तुमसे अपना दुःख कहाँ तक कहें ! वे अपने जिन माता-पिता अर्थात् वसुदेव-देवकी से उत्पन्न हुए थे, यदि उन्हीं के पास रह जाते तो हमें इतना दुःख क्यों उठाना पड़ता ? अब तो वे जिस दिन से गये हैं, उसी दिन से हमारा खाना-पीना, हँसना-बोलना सब छूट गया है। हम दिन-रात उन्हीं के आने की राह देखा करती हैं। ऐसे जीने से तो मर जाना ही सब प्रकार से श्रेष्ठ था।" दूसरी गोपी ने कहा–"हे ऊधो !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिले तो अक्रूर यहाँ आकर श्यामसुन्दर को मथुरा ले गया, अब तुम यहाँ आकर हमसे उनका सगुण रूप छुड़ाकर निर्गुण रूप का ध्यान करने के लिए कह रहे हो। यह तो उसी प्रकार की बात है, जैसे कोई भूखे के सम्मुख रक्खी हुई भोजन की थाली उठाकर उससे मिट्टी खाने की बात कहे। यदि कन्हैयाजी को ज्ञान ही सिखाना था तो वे हमें वंशी बजाकर घर से क्यों बुलाया करते थे तथा रासलीला करके उन्होंने हमारा मन क्यों चुरा लिया? अब मथुरा में जाकर ऐसे ज्ञानी बन बैठे हैं कि तुमसे योग का सँदेशा भेजवा रहे हैं? जब तुम और श्यामसुन्दर एक ही मत के हो तो फिर तुम हमारी क्या सहायता कर सकोगे?" एक अन्य गोपी कहने लगी—"हे उद्धव! शास्त्रों के अनुसार गुरु अपने शिष्य के कान में स्वयं मन्त्र फूँकता है, किसी अन्य से कहलाकर मंत्र नहीं देता। यदि श्री मोहनप्यारे हमसे योग ही सधवाना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे वृन्दावन के कुञ्जों में आकर हमें स्वयं ज्ञानोपदेश करें।" फिर एक और सखी ने कहा—"हे उद्धव! श्री श्यामसुन्दर स्वयं अपने हाथों से जिन गोपियों के केशों में सुगन्धित तेल डालकर फिर उन्हें अपने हाथों से गूँथते तथा पुष्प-मालाओं से सजाते थे तथा जिन गोपियों को वे स्वयं अपने हाथों से उत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर सजाते थे, क्या उन्हीं गोपियों को जटा रखने तथा योग-साधन करने की बात उन्होंने कहला भेजी है? जिन कानों में वे स्वयं रत्नजटित कर्णफूल पहिनाया करते थे, क्या अब वे उन्हीं में मिट्टी की मुद्रा डालने को कहते हैं? जिन गोपियों के शरीर पर वे स्वयं गोटे किनारी की रँगी हुई साड़ियाँ बाँधते थे, क्या अब उन्हीं को गेरुआ वस्त्र पहिनने का उपदेश किया है? जिन कण्ठों में वे अपना हाथ डालकर गले से लगाते थे, क्या अब उन्हीं में सेल्ही पहिनने की उन्होंने आज्ञा दी है? क्या सचमुच यह उनका ठीक न्याय है?"

चौपाई—जो भुज भरि भेंटीं ब्रजबाला। तिनकौं यह उपदेश कराला॥
ऊधौ का तुम्हरे मन भाई। किमि यह कहिहैं कृष्ण कन्हाई॥

एक अन्य गोपी बोली—"हे उद्धव! जिस प्रकार बटमार तथा ठग बटोही के साथ पहिले तो प्रीति दिखलाकर वश में कर लेते हैं, फिर उसका सब धन छीनकर मार डालते हैं, उसी प्रकार श्री श्यामसुन्दर ने पहिले तो प्रीति दिखलाकर हमारा तन, मन, धन सब छीन लिया, अब योग, ज्ञान तथा वैराग्य की छुरी मारकर हमारे प्राण क्यों लेते हैं?" फिर एक अन्य गोपी इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार कहने लगी—"हे ऊधो ! एक तो मनमोहन प्यारे पहिले से ही निष्ठुर थे, फिर उन्हें तुम्हारे जैसे कठोर मित्र और मिल गये, तब वे ऐसा सँदेशा क्यों नहीं भेजेंगे ? तुम जो हमसे ज्ञान-वैराग्य की बातें करते हो, सो हमें ऐसा कठोर योग साधने की क्या आवश्यकता है ? यह कर्म तो योगियों को करने चाहिए ? जो तुम यह कहते हो कि सब जीवों में उन्हीं का प्रकाश रहता है, तब उसके अनुसार तो तुम भी कृष्ण हो गये। अतः यदि ज्ञानदृष्टि से तुम भी कृष्ण हो तो तुम कृष्ण के समान गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाकर दिखा दो, तब हम तुम्हारे इस ज्ञान को सच्चा मान लेंगी अन्यथा तुम्हारा ज्ञानोपदेश करना व्यर्थ है। हे उद्धव ! हम इस बात को भलीभाँति जानती हैं कि उन जैसा कोई अन्य नहीं हो सकता, तुम मिथ्या बातें करके हमें धोखे में क्यों डालना चाहते हो ? यदि तुमसे हो सके तो तुम हमारे चितचोर को यहाँ ले आओ। हमारा हृदय तो उन्हीं की साँवली मनमोहिनी मूर्ति से भर रहा है। तुम्हारे इस ज्ञान-वैराग्य के लिए उसमें कोई स्थान खाली नहीं। तुम इस चिट्ठी को जहाँ से लाये हो वहीं ले जाओ। वे यह सब योग-वैराग्य अपनी कुब्जारानी को सिखावें। जिस प्रकार अन्धे मनुष्य का शीशा देखने से तथा रोगी को भोजन करने से कोई गुण तथा सुख नहीं होता, उसी प्रकार हमें योग सिखाने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।" दूसरी गोपी ने कहा—"हे ऊधो ! पहिले तुम व्रजबालाओं की दशा देखो, फिर उन्हें अपना ज्ञान सिखाना। जिस प्रकार डूबता हुआ मनुष्य पानी के फेन को पकड़कर नहीं बच सकता, उसी प्रकार हम श्याम की वियोगिनियों को तुम्हारा ज्ञानोपदेश अच्छा नहीं लग रहा है।" एक अन्य गोपी बोली—"हे उद्धव ! तुम जिस योग तथा ज्ञान की गठरी को अपने सिर पर रखकर मथुरा से यहाँ लाये हो, उसे लेने की इच्छा हम व्रजवासियों को नहीं है। तुम इसे काशीजी में ले जाओ। वहाँ के लोगों को मुक्ति पाने की बड़ी अभिलाषा लगी हुई है। जिस प्रकार ओस चाटने से प्यास दूर नहीं होती, उसी प्रकार श्री श्यामसुन्दर के दर्शन के बिना हमारी आँखें अकुला रही हैं। हे ऊधो ! मन तो एक ही है। वह हमारा मन श्री मुरलीमनोहर के चरणों में लगा हुआ है, तब योग-ज्ञान साधने के लिए दूसरा मन कहाँ से लावें ? हम तो तुम्हें भी श्री श्यामसुन्दर का भक्त समझती थीं, परन्तु तुम तो उनके सगुणरूप तथा लीला-चरित्र को छोड़कर निर्गुण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वरूप का वर्णन करके आकाश-पाताल का अन्तर किये दे रहे हो। इससे पता चलता है कि तुम्हें उनसे प्रीति अथवा भक्ति कुछ नहीं है। अरे, जिस प्रकार कमल की नाल द्वारा हाथी को नहीं बाँधा जा सकता, उसी प्रकार हमारा वियोगरूपी समुद्र तुम्हारे ज्ञानरूपी चिनगारी से न सूख सकेगा। जहाँ श्री श्यामसुन्दर के साथ रास-लीला करने के समय छः महीने की रात एक पल के समान प्रतीत हुई थी, वहाँ अब उनके वियोग का प्रत्येक क्षण युग के समान व्यतीत हो रहा है। वे हमसे वृन्दावन आने की बात कह गए थे उसी आशा पर हम लोग अभी तक जीवित हैं, अन्यथा कभी की मर जातीं। हमसे अधिक उत्तम तो उन मछलियों को समझना चाहिए, जो पानी से पृथक् होते ही अपने प्राण त्याग देती हैं।"

हे परीक्षित! इस प्रकार अनेक बातें कहकर गोपियाँ श्री श्यामसुन्दर के वियोग में व्याकुल हो अपने आँसुओं द्वारा उद्धव के चरण धोकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे मुरलीमनोहर! अब हमसे तुम्हारे वियोग का दुःख और अधिक नहीं सहा जाता है, अतः या तो तुम हमें अपना दर्शन दो अन्यथा हमारे प्राण ले लो। इस दुःखदायी आशा से तो यदि निराशा प्राप्त हो जाय तो हमारा सोच दूर हो जाय।" इतना कहकर गोपियों ने उद्धव का हाथ पकड़, रास-लीला का स्थान दिखलाते हुए कहा—"हे उद्धव! इन सब स्थानों को देखते रहने के कारण हम श्री श्यामसुन्दर के विरह-दुःख को एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पाती हैं। तुम श्यामप्यारे से हमारा इतना संदेशा कह देना कि हे प्रभु! अब तुम्हारे विरहरूपी समुद्र की लहरों से हमारा शरीररूपी घर गिरना चाहता है, सो शीघ्र आकर इसकी रक्षा करो।" इस सन्देश को देकर जब गोपियाँ पागलों के समान मूर्छित हो गईं, तब उद्धव ने उन्हें दण्डवत् करते हुए कहा—"हे गोपियो! मनुष्य-शरीर का वास्तविक फल तुम्हीं ने प्राप्त किया है, जो हर समय उन आदिपुरुष भगवान् के चरणों में अपना चित्त लगाये रहती हो। वेद-शास्त्रों में स्त्री को निषिद्ध कहा गया है, परन्तु तुम्हारा पद तथा ज्ञान देवताओं से भी अधिक ऊँचा है। श्री त्रिलोकीनाथ जितना प्रेम तुम्हारे ऊपर रखते हैं, उतना लक्ष्मीजी के ऊपर भी नहीं रखते हैं। हे व्रजाङ्गनाओ! यदि श्रीहरि मुझे भी एक गोपी का जन्म दे देते तो अधिक श्रेष्ठ रहता। मैं वृक्षादि का जन्म लेकर भी यहाँ रहना चाहता हूँ, जिससे मेरे मस्तक पर तुम्हारे चरणों की धूलि पड़ती रहे। तुम्हारी अनन्य प्रीति को देखकर देवता भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मोहित रह जाते हैं, फिर मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ है जो मैं तुम्हारी प्रशंसा कर सकूँ। मैं जिस प्रकार श्री श्यामसुन्दर को परमेश्वर समझता हूँ, उसी प्रकार तुम्हें भी उनसे पृथक् नहीं मानता। जिस पद को ब्रह्मा इत्यादि देवता बड़े परिश्रम से प्राप्त करते हैं, उसे तुमने सहज ही प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार तुम भी उन्हीं का स्वरूप हो।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जो मनुष्य श्रीहरि के चरणों में अनन्य प्रीति रखता है, उसे उन्हीं के समान जानना चाहिए। देखो, गोपियाँ ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नहीं हुई थीं, न उन्होंने वेद-पुराण सुने थे और न तीर्थाटन, जप, तप, यज्ञ आदि ही किया था, फिर भी वे श्री श्यामसुन्दर के चरणों की अनन्य भक्त होने के कारण इस पद पर जा पहुँची। अस्तु, जिस प्रकार रूई का ढेर अग्नि की एक छोटी-सी चिनगारी से भस्म हो जाता है, उसी प्रकार गोपियों की भक्ति एवं प्रेम के सन्मुख उद्धव का सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया। उस समय उद्धव उन गोपियों के चरणों पर बार-बार अपना मस्तक रखकर इस प्रकार कहने लगे—"हे देवियो! मैं तुम्हारे दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया। मनुष्य यदि एक क्षण भी सच्चे मन से श्री कृष्णचन्द्रजी का ध्यान धरे तो मुक्ति-पद को पा लेता है, परन्तु तुम तो आठों प्रहर उन्हीं के ध्यान में डूबी रहती हो। मैं तुम्हें ज्ञान सिखाने आया था, परन्तु मैंने उल्टे तुमसे भक्ति सीखी है। तुम मुझे अपना दास जानकर मेरी भी कभी-कभी सुधि करती रहना।"

हे परीक्षित! यह कहकर उद्धव प्रेम-मग्न हो, उस व्रज की पवित्र भूमि पर लोटने लगे तथा वृन्दावन के वृक्षों से गले लगकर यह कहने लगे कि तुम्हारे तथा यहाँ के सभी पशु-पक्षियों के बड़े भाग्य हैं, जो तुमने यहाँ जन्म पाया है। ब्रह्मा तथा शिव को भी जिन श्री नारायणजी के दर्शन ध्यान में भी शीघ्र नहीं मिलते, उन्हीं को तुमने जी भरकर देखा है। इस प्रकार उद्धव गोपियों के साथ श्री श्यामसुन्दर की चर्चा करते हुए दो-दो, चार-चार दिन उन सब स्थानों पर रहे जहाँ श्री मुरलीमनोहर ने अपनी बाललीलाएँ की थीं। इस प्रकार जब ऊधो को वृन्दावन में रहते हुए छः महीने व्यतीत हो गये, तब एक दिन उन्हें यह ध्यान आया कि श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें दूसरे दिन लौट आने को कहा था। अस्तु, जिस समय उद्धव ने लौटने का निश्चय किया और गोपियों से विदा माँगी उस समय गोपियों ने उनसे इस प्रकार कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे उद्धव ! तुमने हमारे भले के लिए ही ज्ञानोपदेश किया था, परन्तु हमने प्रेम-विवश उसके बदले तुमसे जो दुर्वचन कहे उनके लिए हम तुमसे क्षमा माँगती हैं। बड़े तो छोटों पर सदैव से दया करते आये हैं। तुम हमारी दशा अपनी आँखों से देखे जा रहे हो, सो अब दया करके ऐसा उपाय करना जिससे हमें श्री मोहनप्यारे का दर्शन प्राप्त हो सके। तुम श्री श्यामसुन्दर से यह भी कह देना कि वे हमारे अपराध क्षमा करके शरण गहे की लाज को रक्खें। इतना कहकर राधा आदि गोपियाँ उद्धव को अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने घर ले आईं। तब उद्धव ने भी श्रीहरि के चरणों में उनका सच्चा प्रेम देखकर उनके घर भोजन किया। तदुपरान्त गोपियों ने कहा—"हे ऊधो ! तुम मोहनप्यारे से यह अवश्य कह देना कि पहले तुम हमारे हाथ पकड़कर वन-कुंजों में घूमते-फिरते थे, परन्तु अब राजगद्दी प्राप्त कर कुब्जा के कहने से जो तुमने ज्ञान-वैराग्य लिख भेजा है, सो वह हमारे मतलब का नहीं है, क्योंकि हम तो अभी गुरुमुख भी नहीं हुई हैं।" गोपियों के मुख से ऐसे वचन सुनने के उपरान्त उद्धव ने नन्द-यशोदा से यह कहा—"हे नन्द-राय ! आप सब व्रजवासी परम धन्य हैं, जो श्री त्रिलोकीनाथ ने आपको अपनी बाललीला का सुख दिखाकर कृतार्थ किया है। मैं भी आप सबके प्रेम के कारण इतने दिनों तक यहाँ रुका रहा अब मैं मथुरा जा रहा हूँ, सो आप मुझे बिदा दीजिए, जिससे मैं आपका संदेशा श्री मनमोहनलालजी को सुनाऊँ।" यह सुनकर यशोदाजी ने श्याम-बलराम के लिए माखन, मिठाई, घी आदि अनेक वस्तुएँ देती हुई इस प्रकार बोलीं—"हे ऊधो ! तुम देवकी बहिन से यह कह देना कि वे मेरे श्याम-बलराम को और अधिक दिनों तक फुसलाकर वहाँ न रक्खे रहें। यहाँ शीघ्र भेज दें। मैं उनके बिना रात-दिन व्याकुल रहती हूँ। फिर दोनों पुत्रों को मेरी ओर से बहुत आशीष देकर यह कहना कि तुम्हारे बिना तुम्हारी मैया बहुत दुःख पा रही है।" फिर नन्दजी ने इस प्रकार कहा—"हे उद्धव ! आप स्वयं बुद्धिमान हैं तथा यहाँ की दशा देखकर जा रहे हैं, अतः मैं अधिक क्या कहूँ ? परन्तु आप मेरी ओर से श्री श्यामसुन्दर से यह कह दीजिएगा कि वे यहाँ शीघ्र आकर व्रजवासियों का दुःख दूर करें।" जब इस प्रकार कहकर नन्द-यशोदा रोने लगे, तब उद्धवजी उन्हें धैर्य बँधा, रोहिणी को साथ लेकर वहाँ से चल दिए। उस समय सब ग्वालबालों ने उन्हें श्याम-बलराम के लिए अनेको प्रकार की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेंट देते हुए यह कहा—"हे उद्धवजी ! आप उन दोनों भाइयों को हमारा प्रणाम कहकर तथा हाथ जोड़कर यह सँदेशा कह दीजिएगा कि हमारा मन आठों प्रहर आपके ही चरणों में लगा रहता है; अतः आप दया करके हमें ऐसा वरदान दीजिए कि आपका ध्यान जन्म-जन्मान्तरों तक हमारे हृदय से दूर न हो।" यह सुनकर उद्धवजी बोले—"हे भाइयो ! तुम्हारे हृदय में श्री नारायणजी की ऐसी प्रीति विराजमान है कि संसारी मनुष्य तो केवल तुम्हारा ही नाम लेकर भवसागर से पार हो सकते हैं। तुम सब जीवन्मुक्त हो।" इस प्रकार सब छोटे-बड़ों को समझाने-बुझाने के बाद उद्धव वृन्दावन से बिदा होकर मथुरा में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्री श्यामसुन्दर के सामने पहुँच, दण्डवत् कर, मुरली आदि सब वस्तुएँ उनके सम्मुख रख दीं। उन्हें देखते ही कृष्ण-बलराम उठकर खड़े हो गये तथा बड़े प्रेम से गले मिलकर कहने लगे—"हे उद्धव ! वृन्दावन में तुम्हें बहुत दिन लगे। अब बताओ कि सब व्रजवासी आनन्दित तो हैं और कभी हमारी याद भी करते हैं अथवा नहीं ? तुमने हमारे नन्द बाबा तथा यशोदा मैया को कैसा देखा ? व्रज की जो गोपियाँ सदैव मुझी से प्रीति रखती थीं, वे अब किस प्रकार रहती हैं ?"

हे परीक्षित ! श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर उद्धव ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो ! व्रजवासियों के प्रेम तथा वृन्दावन की महिमा का मुझसे वर्णन नहीं किया जाता। आपने बड़ी कृपा की जो मुझे वृन्दावन भेजा। मैं उनके दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया हूँ। वहाँ सभी गोपीग्वाल अपने हृदय में आठों प्रहर आपके ही चरणों का ध्यान धरते हैं तथा आपके लौटने की आशा में ही प्राणों को बचाये हुए हैं। हे दीनबन्धो ! सन्ध्या के समय जब मैं वृन्दावन में पहुँचा तो सब लोग मेरे रथ को देख, आपको आया हुआ जानकर मेरे पास दौड़े चले आये। परन्तु जब उन्हें मैं दिखाई दिया, तब आँखों में आँसू भरकर मौन खड़े रह गये। हे स्वामी ! यशोदाजी यह विचार करके सदैव पछताती रहती हैं कि उन्होंने आपको त्रिलोकीनाथ न जानकर ऊखल में बाँध दिया था, इसीलिए उनका व्रज सूना हो गया है। हे वैकुण्ठाधिपति ! प्रातःकाल होने पर जब मैं यमुना-स्नान करने के लिए गया तो राधा आदि गोपियों ने मुझे आपका दास जानकर बड़े प्रेम तथा आदर से बैठाया। फिर जब मैंने आपका पत्र पढ़ा तथा उन्हें ज्ञान-योग का उपदेश दिया, तो उस समय उन्होंने मेरा कथन सत्य न मानकर सम्पूर्ण दोष कुब्जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को लगाया। तदुपरान्त वे सब आपके प्रेम में डूबकर पागलों के समान इस प्रकार रोने लगीं कि मैं अपने सम्पूर्ण योग तथा ज्ञान को भूल गया। तब मैंने उसके बदले में उनसे प्रेम तथा भक्ति को प्राप्त किया। हे दीनबन्धो! जिस प्रकार हिरन अपने झुण्ड से अलग होकर चौकड़ी भूल जाता है, उसी प्रकार उनके प्रेम को देखकर मेरे ज्ञान को अभिमान भी नष्ट हो गया। मैंने व्रज में छः मास तक रहकर सभी व्रजवासियों को आपका स्मरण एवं ध्यान करते हुए ही पाया। हे नाथ! आपने उनके साथ ऐसा कठोर व्यवहार क्यों किया है? हे प्रभो! आपकी माया को आपके अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता। हे जगदीश्वर! श्री राधिकाजी की दशा को मैं किस प्रकार कहूँ? वे सब शृङ्गार त्यागकर मलिन वस्त्र पहिने हुए आपके विरह में दिन-रात रोती रहती हैं। वे पागलों के समान कभी आपका नाम पुकारती हैं तो कभी अपने नखों से पृथ्वी खोदने लगती हैं। घरवालों द्वारा अनेक प्रकार से समझाये जाने पर भी उन्हें कुछ ध्यान नहीं होता। आपके विरह में उनके प्राण कभी के निकल जाते, परन्तु आप जो फिर आने की बात कह आये हैं, उसी आशा में वे अब तक जीवित हैं। हे अन्तर्यामी! और अधिक हाल मैं कहाँ तक कहूँ? आप सबके हृदय की बात जानते हैं। मेरी सम्मति में तो आपका इतना कठोर तथा निर्मोही बनना उचित नहीं है।"

हे परीक्षित! उद्धव के मुख से यह वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दर व्रजवासियों के स्नेह को याद करके रोने लगे। बलरामजी की भी वही दशा थी। तदुपरान्त श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी मुरली को उठाकर हृदय से लगा लिया। फिर व्रजवासियों के ध्यान में पुनः मग्न हो गये। कुछ समय इसी प्रकार बीतने पर उन्होंने ठण्ढी श्वासें लेते हुए तथा पीताम्बर से आँसू पोंछते हुए कहा—"हे उद्धव! तुम सबको भलीभाँति ज्ञान सिखा आये न?"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! उस समय ब्रह्माजी ने नारदजी से इस प्रकार कहा कि देखो, श्री परब्रह्म प्रभु व्रज की गोपियों की याद करके किस प्रकार रुदन कर रहे हैं?" हे राजन्! वेद की ऋचाओं ने ही व्रज में आकर गोपियों का जन्म लिया था। अस्तु, उन लोगों के बड़े भाग्य समझने चाहिये जो वृन्दावन की रज को अपने मस्तक पर धारण करते हैं। इस प्रकार व्रजवासियों का समाचार पाकर श्री श्यामजी तथा बलरामजी उदास हो गये। तदुपरान्त उद्धव उनसे विदा होकर वसुदेव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवकी के पास जा पहुँचे तथा उन्हें नन्द-यशोदा का सँदेशा सुनाकर अपने घर चले गये। रोहिणीजी श्याम-बलराम से भेंट करने के पश्चात् राजभवन में चली गईं। तत्पश्चात् श्री श्याम तथा बलरामजी ने उस दूध, मक्खन आदि को, जिसे नन्द-यशोदा ने उद्धव के हाथ भेजा था बड़े प्रेम से स्वयं खाया तथा कुछ उद्धव के घर भी भेजवा दिया।

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी का कुब्जा तथा अक्रूर के घर जाना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जिस दिन श्री श्यामसुन्दर ने कुब्जा को उसके घर आने का आश्वासन दिया था, उस दिन से वह प्रतिदिन फूलों की सेज बिछाकर श्री बाँकेविहारी के आगमन की प्रतीक्षा किया करती थी। अन्तर्यामी श्रीहरि ने एक दिन अपने हृदय में उसका प्रेम देखकर यह विचार किया कि हमने कुब्जा को यह वचन दिया था कि कंस को मारकर हम तेरे घर आवेंगे, सो अब तक तो उसके घर नहीं जा सके, परन्तु अब उसके यहाँ अवश्य चलना चाहिए।" ऐसा निश्चय करके श्री बाँकेविहारी उद्धव को साथ ले कुब्जा के घर जा पहुँचे। सूर्य से भी अधिक तेजस्वी स्वरूप-धारी श्री कृष्णचन्द्रजी जिस समय उस घर में पहुँचे तो उसका रत्नजटित स्थान जगमग-जगमग कर उठा। कुब्जा ने अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री श्यामसुन्दर को रत्नजटित चौकी पर बैठाया तथा उद्धव के बैठने के लिए भी आसन बिछाया। तदुपरान्त वह श्री मुरलीमनोहर के चरण-कमलों को अपनी गोद में रखकर बड़े प्रेम से दबाने लगी। फिर चरणामृत ले, उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिना, शरीर में सुगन्ध लगाई तथा छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन सामने रखकर भोजन कराया। इसके उपरान्त उन्हें रत्नजटित पुष्पशैया पर शयन कराकर स्वयं भी सोलहो शृङ्गार कर, उनके समीप जा पहुँची। उस समय श्री मुरलीमनोहर ने उसके हृदय का भाव पहिचानकर प्रीतिपूर्वक अपनी शैया पर लिटा लिया तथा उसका मनोरथ पूर्णकर लोक-परलोक का सुख प्रदान किया।

हे परीक्षित! जिस पद को बड़े-बड़े जोगी तथा ऋषि-मुनि भी सहज में प्राप्त नहीं कर पाते, उसे कुब्जा ने केवल एक दिन चन्दन लगाकर ही सहज में प्राप्त कर लिया। तब जो लोग नित्य नियमपूर्वक श्री नारायणजी का पूजन करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, उन्हें न जाने कौन-सा पद प्राप्त होता होगा। अस्तु, अपना मनोरथ प्राप्त करने के उपरान्त कुब्जा ने श्री कृष्णचन्द्रजी से हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे वैकुण्ठनाथ! आपकी इस मोहिनी झाँकी को देखने की अभिलाषा मुझे हर समय बनी रहती है, अतः मैं यह चाहती हूँ कि आप कुछ दिनों तक यहीं रहकर मुझे सुख प्रदान कीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"हे कुब्जा! तू धैर्य रख, तू जब भी मुझे स्मरण करेगी तभी मैं तेरे पास आ जाया करूँगा।" कुब्जा से इस प्रकार कहकर श्री मनमोहन लाल अपने घर लौट आये। जब मथुरावासियों ने इस समाचार को सुना, तो उन्होंने कुब्जा के भाग्य की अत्यन्त प्रशंसा की।

हे परीक्षित! कुछ दिन पश्चात् श्रीहरि ने उद्धव से यह कहा कि तुम एक स्त्री की भक्ति को तो देख चुके। अब चलो, हम तुम्हें एक पुरुष का प्रेम और दिखा लावें। उद्धव से इतना कहकर श्री श्यामजी ने बलभद्रजी से कहा—"हे भैया! हमने अक्रूर के घर जाने का वचन दिया था, परन्तु आज तक नहीं गये, अतः आज उसके घर चलकर इसे हस्तिनापुर भेजें तथा वहाँ से युधिष्ठिर आदि अपने भाइयों का समाचार मँगावें।" यह सुनकर बलभद्रजी भी साथ चलने को तैयार हो गये। तब उद्धव को साथ लेकर दोनों भाई अक्रूर के घर जा पहुँचे। अक्रूर ने जब उन्हें देखा तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उस समय श्री बाँकेविहारी ने उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। तदुपरान्त अक्रूर उन्हें घर के भीतर ले गया। वहाँ उन्हें रत्नजटित चौकी पर बिठाकर चरण धोये तथा अपनी स्त्री सहित चरणामृत लेकर उनका विधिवत् पूजन किया। फिर घर में सुगन्ध इत्यादि जलाकर छत्तीस प्रकार के भोजन सामने रक्खे। उसकी अनन्य प्रीति को देख उद्धव सहित दोनों भाइयों ने बड़े प्रेम से भोजन किया। तदुपरान्त पान-इलायची आदि देकर वह दोनों भाइयों पर चँवर डुलाने लगा। उस समय श्री श्यामजी को टकटकी बाँधकर देखते रहने के कारण उसके हृदय में ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ कि वह श्री मनमोहन के चरण पकड़कर अपनी आँखों से इस प्रकार मलने लगा, जैसे कोई दरिद्री बहुत-सा धन पाकर प्रसन्न होता है। उस समय परम प्रेम के कारण उसकी आँखों से आँसू बह निकले। तदुपरान्त उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप जन्म-मरण से रहित हैं। आपके आदि-अन्त के भेद को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई नहीं जानता। मैं आपको दण्डवत् करता हूँ। आप रजोगुण द्वारा संसार की उत्पत्ति, सतोगुण द्वारा पालन एवं तमोगुण द्वारा विनाश करते हैं। आप अपनी माया द्वारा तीनों लोक को उत्पन्न करके स्वयं सबसे निर्लिप्त रहते हैं। हे दीनानाथ! संसारी माया-मोह में फँसनेवाला मनुष्य भवसागर से पार नहीं हो पाता। आपकी कृपा के बिना मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है। आपकी भक्ति के कारण ही नारद मुनि, सनकादि ऋषि तथा ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि भक्त इतने उच्च पद को प्राप्त कर सके हैं। सब पक्षियों के स्वामी गरुड़जी आपके वाहन हैं। आप सदैव शेषनाग की शैया पर शयन करते हैं। तीनों लोक को तारनेवाली गङ्गाजी आपके चरणों से प्रकट हुई हैं। पाँचों तत्त्व की उत्पत्ति भी आपसे ही हुई है। चारों वेद आपकी श्वास हैं। आपकी कृपा के बिना आपको कोई पहिचान नहीं पाता है। आपने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से सगुण अवतार धारण किया है। आपने अधर्मियों को मारा है तथा आगे भी मारेंगे। मुझमें आपकी स्तुति करने की सामर्थ नहीं है। यह मेरे बड़े भाग्य हैं जो आपने यहाँ पधारकर, मुझे अपने दर्शन देकर कृतार्थ किया तथा इस घर को पवित्र बनाया। जो मनुष्य संसारी मोह-माया से विरक्त होकर आपका स्मरण एवं ध्यान करता है, आप उस पर दया करके उसे चारों पदार्थ देते हैं। हे दीन-बन्धो! जिस प्रकार आपने कुब्जा को सुन्दर रूप देकर उसकी अभिलाषा पूर्ण की, उसी प्रकार मैं यह चाहता हूँ कि आप मुझे ऐसा ज्ञान प्रदान करें, जिससे मैं आठों प्रहर आपके चरण-कमलों का ध्यान धरता रहूँ तथा आवा-गमन से मुक्त हो जाऊँ।"

हे परीक्षित! इस प्रकार की स्तुति सुनकर जब श्री श्यामसुन्दर ने उससे वर माँगने के लिए कहा तो वह हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला कि हे महाप्रभु! मैं यही चाहता हूँ कि अपने स्त्री-पुत्रों सहित मेरे हृदय में आपके चरण-कमलों की भक्ति बनी रहे। तब श्री मुरलीमनोहर ने उसे इच्छित वरदान देते हुए कहा—"साधु-सन्तों के सत्संग से तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, तब तुम मुक्ति पद को प्राप्त करोगे। इतना कहकर श्री श्याम-सुन्दर ने अक्रूर के ब्रह्मज्ञान को हर लिया तथा अपनी माया फैलाकर फिर इस प्रकार कहा—"हे चाचा! तुम यदुकुल में श्रेष्ठ तथा हमारे पिता के समान हो, सो तुम हमारी इस प्रकार प्रार्थना क्यों करते हो? सेवा-स्तुति तो मुझे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हारी करनी चाहिए। मैं यहाँ तुम्हारा दर्शन करने के लिए आया हूँ।" श्री नटवरनागर के ऐसे वचन सुनकर अक्रूर ने माया में लोहित हो, श्री श्याम-बलराम को वसुदेवजी का पुत्र जानकर अपनी गोद में उठा लिया तथा प्रसन्न होकर प्यार करने लगा। उस समय श्री कृष्णजी ने कहा—"हे चाचा! तुम्हारे पुण्य-प्रताप से सभी दैत्यों का संहार हुआ, परन्तु मुझे अभी तक एक चिन्ता लगी है, उसे आप दूर कर दीजिए। वह चिन्ता यह है कि जब से हमारे फूफा महाराजा पाण्डु वैकुण्ठ लोक को सिधार गये हैं, तब से राजा दुर्योधन हमारी बुआ (फूफी) तथा भाइयों को बहुत कष्ट देता है, अतः तुम वहाँ जाकर उन्हें धैर्य बँधा आओ तथा उनका कुशल-समाचार ले आओ। उनकी चिन्ता में मेरा मन सदैव उदास रहता है।" श्री कृष्णजी के ऐसे वचन सुनकर अक्रूर तो पाण्डवों की सुधि लेने को हस्तिनापुर गया और श्री श्याम तथा बलरामजी उद्धव को साथ लेकर अपने स्थान को लौट आये।"

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूर का हस्तिनापुर पहुँचकर पाण्डवों का समाचार लाना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! कुन्ती और युधिष्ठिर आदि को देने के लिए श्री श्यामसुन्दर ने बहुत सी वस्तुएँ अक्रूर को दीं। वह उन्हें लेकर रथ पर चढ़, कई दिन की यात्रा करने के उपरान्त हस्तिनापुर में जा पहुँचा। वहाँ नगर के बाहर राजा पाण्डु तथा उनके पुरखाओं के बनवाए हुए वापी, कूप, तड़ाग, उद्यान, मन्दिर आदि को देखकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब वह रथ से उतरकर राजा दुर्योधन तथा विदुर आदि के पास गया, तो सब लोगों ने उसे यादवकुल में श्रेष्ठ जानकर अत्यन्त सम्मान प्रदान किया। तदुपरान्त अभिमानी राजा दुर्योधन उन्हें सुनाकर इस प्रकार व्यंग वचन कहने लगा—"हे अक्रूर! राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्याम तथा बलराम अच्छी तरह तो हैं? उग्रसेन तो जब से अपने पुत्र को मरवाकर राजा बने हैं, तब से किसी की सुधि भी नहीं लेते।" दुर्योधन के ऐसे वचन सुनकर, अक्रूर यह विचार करके कि इन अधर्मियों की सभा में बैठकर मैं ऐसे कठोर वचन नहीं सहूँगा। वहाँ से चुपचाप उठ खड़ा हुआ तथा विदुर को साथ लेकर युधिष्ठिर के घर जा पहुँचा। उस समय कुन्ती राजा पाण्डु के शोक में उदास बैठी हुई थी। अक्रूर ने उनके चरणों पर मस्तक रखकर श्री बाँकेविहारी की भेजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुई सब वस्तुएँ उनके सामने रख दीं तथा युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों को गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उस समय कुन्ती ने बड़े आदर सहित अक्रूर को अपने पास बैठाया। तदुपरान्त अक्रूर ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए इस प्रकार कहा—"हे कुन्ती! संसार में कोई सदैव अमर नहीं रहता। यहाँ जन्म लेकर प्रत्येक प्राणी को सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः तुम विधाता की इच्छा ऐसी ही जानकर चिन्ता मत करो।" यह सुनकर कुन्ती के मन को जब धैर्य हुआ तो उसने वसुदेव आदि की कुशल पूछकर कहा—"हे अक्रूर! श्याम और बलराम कभी मुझे तथा युधिष्ठिर आदि अपने पाँचों भाइयों को भी स्मरण करते हैं अथवा नहीं? दुःख समुद्र में पड़े हुए मेरे पुत्रों की रक्षा करने के लिए वे यहाँ कब आवेंगे? हे अक्रूर! मेरे पुत्रों के तेज तथा बल की प्रशंसा सुनकर दुर्योधन सदैव कुढ़ता रहता है तथा हर समय उनके प्राण लेने का उपाय करता रहता है। उसने एक बार भीमसेन को खाने के लिए विष का लड्डू भेजा तथा फिर लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न किया। श्रीहरि की कृपा से इन दोनों बार तो मेरे पुत्रों के प्राण बच गये, परन्तु यदि ऐसा ही व्यवहार चलता रहा तो वे किस प्रकार जीवित बचेंगे? जिस प्रकार हिरनी अपने झुण्ड से अलग होकर सुख नहीं पाती तथा घर में सर्प का निवास होने से हर समय भय बना रहता है वैसी ही हालत मेरी भी हो रही है। श्री श्यामसुन्दर ने तो सब जीवों का दुःख हरने के लिए अवतार लिया है, फिर वे मेरे अनाथ पुत्रों का दुःख क्यों नहीं दूर करते हैं? अब तक मैं अपने को बिना संरक्षक का समझती थी, पर अब श्री कृष्णचन्द्र द्वारा तुम्हें सुधि लेने के लिए भेजा हुआ देखकर अब मैं यह समझ रही हूँ कि कोई मेरा भी सहायक है। जिस प्रकार श्री बाँकेविहारी ने कंस को मारकर अपने माता-पिता को सुख दिया, उसी प्रकार उन्हें मेरी भी रक्षा करनी चाहिए। हे अक्रूर! जिस प्रकार राहु एवं केतु सूर्य तथा चन्द्रमा को ग्रस लेते हैं, उसी प्रकार मेरे पुत्र भी अधर्मी दुर्योधनादि के घेरे में पड़े हुए हैं। अतः तुम श्री कृष्ण-बलराम को मेरा आशीर्वाद देकर, यह कह देना कि तुम जैसा भतीजा पाकर भी यदि मेरी चिन्ता तथा कष्ट दूर न हो तो इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी?"

हे परीक्षित? हरि-भक्त होने के कारण अक्रूर भविष्यदर्शी था। अतः कुन्ती की बात सुनकर, उसने अपनी आँखों में आँसू भरकर इस प्रकार कहा—"हे बहिन! तुम चिन्ता मत करो। श्री श्यामसुन्दर की कृपा से तुम्हारे पाँचों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र बड़े प्रतापी राजा होंगे। श्री श्याम-बलराम ने तुम्हारे लिए यह सन्देश भेजा है कि तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, हम तुम्हारे पास बहुत शीघ्र आ रहे हैं।" इस प्रकार कुन्ती को धैर्य बँधाकर, अक्रूर विदुर को साथ ले, हस्तिनापुर-वासियों से यह पूछने गया कि प्रजा के साथ पाण्डवों का व्यवहार कैसा है। उस समय सब लोगों ने उससे यह कहा कि वे सर्वगुणनिधान हैं। अतः राजसिंहासन उन्हीं को मिलना चाहिए। यह सुनकर अक्रूर ने विदुर के साथ राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे महाराज! तुम कौरव-कुल में परम श्रेष्ठ हो, फिर भी तुम अपनी ख्याति को क्यों खो रहे हो? तुम अपने भाई पाण्डु की गद्दी लेकर अपने अनाथ भतीजों को कष्ट क्यों दे रहे हो? तुम्हारे जैसे ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान् व्यक्ति दुर्योधन जैसे अधर्मी पुत्रों की सम्मति से पापकर्म करें तो इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या होगी? तुम जिनके लिए यह पाप बटोर रहे हो, वे परलोक में कोई काम न आवेंगे तथा इस अकर्म के बदले तुम्हें नरक का दुःख भोगना पड़ेगा। हे धृतराष्ट्र! जो राजा अपनी प्रजा तथा पारिवारिक जनों के साथ समान तथा धर्मपूर्ण व्यवहार नहीं करता उसे नरक प्राप्त होता है। मरने के बाद मनुष्य का केवल यश-अपयश ही रह जाता है। अतः तुम्हें अपने पुत्रों तथा भतीजों में कोई भेद न मानकर युधिष्ठिर आदि को दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। अन्यथा तुम्हारे ये पुत्र तुम्हें नरक में डाल देंगे। अब भी समय है कि तुम धर्म की राह पर चलो, अन्यथा पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।"

अक्रूर के ऐसे वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने उसका हाथ पकड़कर उत्तर दिया—"हे भाई! मैं यह समझता हूँ कि तुम मङ्गलकारी बात कह रहे हो तथा मैं यह भी जानता हूँ कि श्री कृष्णचन्द्र ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया है। भला-बुरा करने की सब सामर्थ्य उन्हीं में है। परन्तु हे अक्रूर! मैं क्या करूँ, तुम्हारा उपदेश हृदय में एक क्षण ठहरकर फिर बिजली की भाँति अदृश्य हो जाता है। ये दुर्योधन आदि मेरा कहना नहीं मानते; इसी लिए मैं भी उनसे कुछ नहीं कहता हूँ। यहाँ अकेला बैठा हुआ श्री नारायणजी का भजन करता रहता हूँ। तुम श्री श्यामसुन्दर से मेरा दण्डवत् कह देना।" यह सुनकर अक्रूर बोला—"हे राजन्! श्रीहरि की माया बड़ी बलवान् है, जो तुम्हें मेरा उपदेश भी अच्छा नहीं लगता। क्या पता श्री नारायणजी क्या करनेवाले हैं?" इतना कहकर अक्रूर वहाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से चला आया। तत्पश्चात् कुन्ती का धैर्य बँधा, बिदा हो, रथ पर चढ़, मथुरा लौट आया।

हे परीक्षित! मथुरा आकर अक्रूर ने राजा उग्रसेन, वसुदेवजी तथा श्याम-बलराम के सम्मुख खड़े हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा कि हे प्रभो! मैंने हस्तिनापुर में जाकर तुम्हारी बुआ कुन्ती तथा युधिष्ठिर आदि भाइयों को अत्यन्त दुखी देखा है। आप तो अन्तर्यामी हैं, अतः अधिक हाल क्या कहूँ। कौरवों का अधर्म आपसे कुछ छिपा नहीं है।" इतना कहकर जब अक्रूर अपने घर चला गया तब श्री कृष्णजी पहिले तो संसारी मनुष्यों के समान उदास हो गये, फिर बलदेवजी से सम्मति लेकर उसी समय यह प्रण किया कि मैं महाभारत कराकर पृथ्वी का सब भार हटाऊँगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अब तक हमने तुम्हें वृन्दावन तथा मथुरा की लीलाएँ सुनाईं। यह कृष्ण-चरित्र का पूर्वार्द्ध रहा, अब हम श्री द्वारकानाथ की कृपा से तुम्हें उत्तरार्द्ध कथा सुनाते हैं।"

पचासवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी तथा जरासन्ध के युद्ध की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जिस प्रकार श्री मुरलीमनोहर ने जरासन्ध की सेना को मारकर कालयवन का संहार किया तथा राजा मुचुकुन्द को भवसागर से पार उतारकर 'द्वारका' में जा बसे, अब हम तुम से वह कथा कहते हैं, सुनो। राजा उग्रसेन धर्मपूर्वक मथुरा का राज्य करते थे तथा श्री श्याम-बलराम उनके आज्ञाकारी सेवक थे। उनके राज्य में कोई प्राणी दुखी नहीं था। परन्तु कंस की 'अस्ति' एवं 'प्राप्ति' नामक दोनों स्त्रियाँ अपने पति के वियोग में अत्यन्त दुखी रहती थीं। एक दिन उन्होंने परस्पर यह विचार किया कि यहाँ अनाथ बनकर पड़े रहने से तो अपने पिता 'जरासन्ध' के घर चलकर रहना उचित है। ऐसा निश्चय करके वे दोनों रथ पर चढ़ जरासन्ध के पास जा पहुँचीं तथा उन्होंने रो-रोकर सब समाचार उसे सुना दिया। राजा कंस की मृत्यु का हाल सुनकर अभिमानी जरासन्ध ने अत्यन्त क्रोध करके अपने सभासदों से यह कहा कि यदुकुल में ऐसा वीर कौन उत्पन्न हुआ जिसने कंस जैसे परम शक्तिशाली को सब दैत्यों सहित मार डाला? मैं आज यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कंस का प्रतिशोध लेने के लिए यदि मैं राम-कृष्ण को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवित बाँधकर न ले आऊँ तथा सब यदुवंशियों को जलाकर भस्म न कर दूँ तो मेरा नाम जरासन्ध नहीं। वे श्याम-बलराम इस योग्य नहीं कि मैं अपनी सेना को साथ लेकर उन पर चढ़ाई करने जाऊँ, अतः मैं अपनी गदा से ही उन्हें मार डालूँगा।

हे परीक्षित! राजा जरासन्ध को यह वरदान प्राप्त था कि वह अपने सिर के चारों ओर जितनी बार घुमाकर गदा को फेंकता था, उतने ही योजन तक की दूरी पर जाकर वह गदा शत्रुओं को नष्ट कर देती थी। अतः उसी घमण्ड में जरासन्ध ने अपनी एक सहस्र मन भारी गदा को सौ बार घुमाकर अपने मगध देश से चार सौ कोस (सौ योजन) दूर बसी हुई मथुरा-पुरी पर फेंका। यह देखकर अन्तर्यामी श्री कृष्णजी ने अपनी गदा फेंककर उसकी गदा को मथुरापुरी के बाहर ही गिरा दिया, जिससे वह बिना अपना काम किये ही मगध देश में वापस लौट आई। यह देखकर जरासन्ध आश्चर्य-चकित हो विचार करने लगा कि जिसने मेरी गदा को इस प्रकार रोक दिया वह युद्ध किए बिना नहीं मारा जायगा। ऐसा निश्चय करके उसने अपने अधीनस्थ सभी राजाओं को बुला भेजा। तदुपरान्त तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरी पर चढ़ाई कर दी। हे परीक्षित! अक्षौहिणी दल का प्रमाण यह है कि एक अक्षौहिणी दल में दस सहस्र आठ सौ हाथी, तेईस सहस्र आठ सौ रथ, छियासठ सहस्र घुड़सवार तथा एक लाख नौ सहस्र तीन सौ पचास पैदल सिपाही, इस प्रकार दो लाख, नौ सहस्र, तीस शूरवीर होते हैं। इस प्रकार तेईस अक्षौहिणी सेना तथा अन्य अनेक बड़े-बड़े शूर-वीरों को साथ लेकर कई दिन की यात्रा के उपरान्त जरासन्ध ने मथुरा नगरी को चारों ओर से घेर लिया। उस समय दशों दिक्पाल, सम्पूर्ण देवता तथा पृथ्वी भय के मारे थर-थर काँपने लगे। उस भयानक सेना को देखकर सब मथुरावासी अत्यन्त भयभीत हो, श्री कृष्णजी के समीप जा पहुँचे तथा उनसे हाथ जोड़-कर इस प्रकार कहने लगे—"हे दीनबन्धो! जरासन्ध ने मथुरापुरी को चारों ओर से घेर लिया है, अब हम लोग कहाँ जाकर अपने प्राण बचावें?" उस समय श्री कृष्णजी अपने मन में कुछ विचार करने लगे तथा बलरामजी ने उनसे इस प्रकार कहा—"हे दीनानाथ! आपने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया है, अतः आप अग्नि-स्वरूप धारण करके इन सब दुष्टों को भस्म कर दीजिए।" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे भाई!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यपि इन लोगों को मारने में कोई कठिनाई नहीं है, परन्तु मैं यह सोचता हूँ कि पहिले अन्य कार्यों को कर लूँ, तदुपरान्त जरासन्ध को मारने का उपाय करूँगा।" इतना कहकर श्री श्यामजी बलरामजी को साथ ले, राजा उग्रसेन के समीप जाकर कहने लगे—"हे राजन्! आप मुझे आज्ञा दें तो मैं जरासन्ध से युद्ध करूँ और आप यदुवंशियों सहित नगर की रक्षा करें।" जब राजा उग्रसेन को यह बात स्वीकार हुई तो श्याम-बलराम नगर से बाहर आ पहुँचे। उस समय उनकी इच्छानुसार चन्द्र तथा सूर्य के समान प्रकाशमान दो रथ आकाश से उतरकर उन दोनों भाइयों के समक्ष उपस्थित हो गये। श्री श्यामसुन्दर के रथ पर सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, नन्दक तलवार तथा कौमोदकी गदा रखी हुई थी। उसकी ध्वजा पर गरुड़ की मूर्ति बनी हुई थी तथा शैव, सुग्रीव, मेघपुष्प एवं बलाहक नामक चार अत्यन्त सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। उस पर 'दारुक' नामक सारथी बैठा हुआ था। बलरामजी के रथ में हल तथा मूशल रक्खा था और उसकी ध्वजा में ताड़-वृक्ष का चिन्ह बना हुआ था। तब दोनों भाई अपने-अपने रथ पर बैठे, थोड़ी-सी सेना साथ ले युद्ध-भूमि में आ पहुँचे।

हे परीक्षित! जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने जरासन्ध की सेना में मारूबाजे की ध्वनि सुनी तो उन्होंने अपने 'पाञ्चजन्य' नामक शङ्ख को बजाया। उस शङ्ख की ध्वनि को सुनकर पृथ्वी तथा आकाश काँप उठे एवं जरासन्ध की सेना के योद्धाओं के हृदय हिल गये। उस समय जरासन्ध अपना रथ बढ़ाकर श्याम-बलराम के सम्मुख आ पहुँचा तथा श्री मुरलीमनोहर से इस प्रकार कहने लगा—"हे कृष्ण! तू अपने मामा को मारकर, अभिमानी बन, मेरे सामने युद्ध करने के लिए आया है, परन्तु तू बालक है, इसलिए मैं तुझसे युद्ध न करके बलराम से युद्ध करूँगा। तू मेरे सामने से भाग जा, इसी में तेरा कल्याण है।" फिर बलभद्रजी से बोला—"हे बलभद्र! आज मैं तुझे मार डालूँगा। यदि तुझे अपने प्राण प्यारे हों तो तू मेरे सामने से हट जा।" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे जरासन्ध! तू बलरामजी की महिमा को नहीं जानता, इसी लिए ऐसा प्रलाप कर रहा है। शूर-वीर अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते। जिस मनुष्य की मृत्यु समीप आ पहुँचती है, उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता है। यदि तू मुझे मामा को मारनेवाला कहता है तो जिस प्रकार वह अपने पाप-कर्मों के कारण दण्ड को प्राप्त हुआ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसी प्रकार की गति तेरी भी होगी।" श्री मुरलीमनोहर के ऐसे वचन सुनकर जरासन्ध उन दोनों भाइयों के ऊपर अपने बाणों को बरसाता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"अरे बालको! अब तुम मेरे सामने से जीवित नहीं जाने पाओगे। जिस स्थान पर राजा कंस आदि सब दैत्य गये हैं, वहीं मैं तुम्हें भी सब यदुवंशियों सहित पहुँचाये देता हूँ।" इतना कहकर उसने तथा उसकी सेना के योद्धाओं ने सावन-भादों की वर्षा के समान बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। उस बाण-वर्षा से श्री श्यामजी तथा बलरामजी के रथ इस प्रकार ढँक गये, जिस प्रकार कि बादलों में सूर्य छिप जाते हैं। उस समय जो स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़कर युद्ध का दृश्य देख रही थीं, वे सब अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगीं। तदुपरान्त जब जरासन्ध ने श्री कृष्णचन्द्रजी की सेना का संहार करना चाहा, उस समय दोनों भाई अपने-अपने रथ दौड़ाकर उसकी सेना पर इस प्रकार टूट पड़े, जिस प्रकार हाथियों के झुण्ड पर सिंह टूटता है। जिस समय श्री श्यामजी तथा बलरामजी अपने रथ को चाक की भाँति घुमाते हुए जरासन्ध की सेना के सैनिकों का संहार करने लगे, उस समय युद्धस्थल में चारों ओर हाहाकार मच गया। जरासन्ध की सेना उन दोनों भाइयों को बादलों की घटा के समान घेरे हुए थी तथा उनके कानों के कुण्डल बिजली के समान चमक रहे थे, उस समय देवतागण आकाश-मण्डल में खड़े होकर यह दृश्य देखते हुए श्री मुरलीमाधव की विजय की कामना कर रहे थे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब श्री त्रिलोकीनाथ ने मथुरावासियों को अत्यन्त व्याकुल देखा, उस समय उन्होंने अपने धनुष पर चढ़ाकर एक ऐसा बाण छोड़ा जिसमें से सहस्रों बाण निकलकर जरासन्ध की सेना का संहार करने लगे। तदुपरान्त बलरामजी ने भी अत्यन्त क्रोध करके अपने हल-मूशल को उठाकर दैत्यों को मारना आरम्भ कर दिया। उस समय जब दोनों भाइयों की भृकुटि टेढ़ी हुई तो ढाई घड़ी के भीतर ही जरासन्ध की सम्पूर्ण सेना, वाहनों-सहित मृत्यु को प्राप्त हो गई। जरासन्ध के अतिरिक्त कोई भी शूर-वीर जीवित न बचा, युद्धस्थल में शोणित की नदी बहने लगी। हाथियों के शरीर तथा मस्तक से निकलता हुआ रुधिर ऐसा प्रतीत होता था, मानो काले पर्वतों से झरने झर रहे हों। रथियों के मारे जाने के कारण खाली रथ उजड़े हुए घर के समान प्रतीत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते थे तथा नौका के समान उस शोणित की नदी में बह रहे थे। कटे हुए मस्तक कच्छप के समान दिखाई देते थे तथा कटे हुए हाथ-पाँव सर्प एवं मछली के समान प्रतीत होते थे। रथ के टूटे हुए पहिए ऐसे लगते थे मानो नदी में भँवर पड़ रहे हों तथा सैनपों के रत्नजटित आभूषण ऐसे चमक रहे थे, जैसे नदी के किनारे की बालू चमका करती है। उस समय श्री श्याम-सुन्दर ने वहाँ यह देखा कि श्री महादेवजी अपनी भूत-प्रेतों की सेना लिए, मुण्डमाल पहिने घूम रहे हैं तथा योगिनियाँ एवं भूतनियाँ खप्पर भर-भरकर शोणित पी रही हैं। गिद्ध, कौवे तथा गीदड़ आदि लोथों पर बैठे हुए मांस खाने के लिए एक-दूसरे से झगड़ते थे। तब श्री श्यामसुन्दर की महिमा से हवा ने सब मृतक शरीरों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया तथा अग्नि ने सबको जलाकर भस्म कर डाला। फिर बादलों ने जल बरसाकर भस्म तथा हड्डियों को बहा दिया। इस प्रकार पाँचों तत्त्व अपने-अपने रूप में लीन हो गये। उस सेना को आते हुए तो सबने देखा, परन्तु फिर यह पता किसी को न चला कि वह कहाँ विलीन हो गई। अस्तु, जब जरासन्ध अकेला रह गया, तब वह बलभद्रजी से गदायुद्ध करने लगा। उस समय श्री बलरामजी ने उसके गले में अपना हल डालकर उसे खींच लिया तथा श्री कृष्णजी से यह कहा कि यदि आप कहें, तो मैं इसका अभी वध कर दूँ। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने यह उत्तर दिया—"हे भाई! अभी इसकी मृत्यु का समय नहीं आया है। हमने पृथ्वी के भार को उतारने तथा अधर्मी राजाओं एवं दैत्यों को मारने के लिए अवतार लिया है। अतः तुम जरासन्ध को जीवित छोड़ दो, जिससे यह कई बार दैत्यों तथा अधर्मी राजाओं को एकत्रित करके हमसे युद्ध करने के लिए आवे तथा हम उन सबका संहार करें।" श्री श्याम-सुन्दर के ऐसे वचन सुनकर बलरामजी ने जरासन्ध को छोड़ दिया। तब वह अत्यन्त लज्जित होकर अपने देश को लौट गया। उस समय जरासन्ध ने अपने मन में यह विचार किया—"मैं राजपाट त्यागकर वन में चला जाऊँ; परन्तु उसी समय उसके अन्य मित्र राजाओं ने उसके पास आकर यह समझाया कि युद्ध में हार-जीत तो सदा से होती आई है, अतः योद्धाओं एवं ज्ञानियों को उसका हर्ष-विषाद न मानकर अपने हृदय में धैर्य धारण करना चाहिए। शत्रु से दुबारा युद्ध करना कोई बुरी बात नहीं है, अतः आज यदि श्याम-बलराम जीत गये हैं, तो किसी दिन हम लोग भी उन्हें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युद्ध में मारकर राजा कंस के पास पहुँचा देंगे।" अपने मित्रों की ऐसी सम्मति सुनकर जरासन्ध ने अपने हृदय का शोक दूर कर दिया तथा धैर्य धारणकर, श्याम-बलराम से युद्ध करने के लिए पुनः अपनी सेना को एकत्रित करने लगा। इधर जब श्री कृष्ण-बलराम जरासन्ध की सेना को मारकर नगर में लौटे तो सभी मथुरावासियों ने अत्यन्त आनन्द मनाकर मङ्गलाचार किया। स्त्रियाँ अपनी अटारियों पर खड़ी होकर, उनके ऊपर पुष्प-वर्षा करने लगीं। तदुपरान्त श्री श्याम-बलरामजी राजा उग्रसेन के पास पहुँच, उनके चरणों पर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे पृथ्वीनाथ! आपके पुण्य-प्रताप से हमने शत्रु को मारकर भगा दिया। अब आप निश्चिन्त होकर प्रजा को सुख दीजिए।" इस समाचार को सुनकर राजा उग्रसेन को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। फिर वे प्रसन्नतापूर्वक राज्य करने लगे। हे परीक्षित! इस प्रकार जरासन्ध सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर मथुरा पर चढ़ाई करने आया, परन्तु श्री श्याम-बलराम ने हर बार उसकी पहिले जैसी ही गति की। जब जरासन्ध सत्रहवीं बार भी हार गया तो उसने अपने मन में यह विचार किया कि अब मुझे अपने राज्य में जाकर मुँह नहीं दिखाना चाहिए; इससे अच्छा तो यह है कि मैं किसी देवता का तप करके उससे वरदान प्राप्त करूँ; तदुपरान्त दोनों भाइयों से युद्ध करने के लिए फिर आऊँ। यदि ये दोनों एक बार भी मेरे सामने युद्धभूमि से भाग जावें तो मैं अपने को विजयी मान लूँगा। ऐसा निश्चय करके जरासन्ध तपस्या करने के लिए वन को चला गया। श्रीहरि की इच्छा से मार्ग में ही उसकी भेंट नारदजी से हो गई। उस समय नारदजी ने उसे चिन्तित देखकर इस प्रकार पूछा—"हे राजन्! तुम इतने उदास क्यों दिखाई देते हो?" तब जरासन्ध ने उन्हें दण्डवत् करके इस प्रकार उत्तर दिया—"हे मुनिराज! मैं श्याम तथा बलराम से युद्ध करने के लिए सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी दल साथ लेकर गया, परन्तु वे हर बार मुझ पर विजय प्राप्त करते रहे। इस लज्जा से मैं किसी को अपना मुख नहीं दिखा सकता। यदि वे एक बार भी मेरे सम्मुख युद्धभूमि से भाग जायँ, तो मेरी मनोकामना पूर्ण हो जाय।" यह सुनकर नारदजी ने कहा—"हे राजन्! काबूल देश में अत्यन्त बलवान् 'कालयवन' नामक एक म्लेच्छों का राजा रहता है। वह अकेला ही युद्ध करने की अभिलाषा रखता है, सो तुम उसे अपनी सहायता के लिए बुलवाकर श्याम-बलराम से युद्ध करने के लिए ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आओ। इससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।" तब जरासन्ध बोला—"हे प्रभो! काबुल देश यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ तक किसी दूत को भेजने में बहुत समय लग जायगा। इसके विपरीत आप सब स्थानों पर एक क्षण में ही पहुँच सकते हैं, अतः आप मेरे ऊपर कृपा करें, वहाँ जाकर, उसे मेरी सहायता के लिए बुला लाइये तो मैं आपका बड़ा अनुगृहीत होऊँगा।" यह सुनकर नारदजी तो कालयवन के यहाँ गये और जरासन्ध अपने घर आकर फिर सेना एकत्रित करने लगा।

हे परीक्षित! जब नारदजी कालयवन की सभा में पहुँचे तो वह मुनि को दण्डवत्-प्रणाम कर, सिंहासन पर बैठा, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे महामुने! जिस प्रकार आपने कृपा करके मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब अपने पधारने का कारण भी कहिए।" यह सुनकर नारदजी बोले—"हे राजन्! मुझे राजा जरासन्ध ने तुम्हारे पास यह सन्देशा देकर भेजा है कि मथुरा में कृष्ण-बलराम नामक दो ऐसे प्रतापी बालक उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने मुझे सत्रह बार युद्ध में हराया है। अब अठारहवीं बार उनसे युद्ध करने के लिए मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ, अतः अब उसके लिए तुम जो उत्तर देना चाहो, वह मुझसे कह दो। हे राजन्! जिस बालक का नाम कृष्णचन्द्र है, वह श्याम शरीर तथा कमल के समान नेत्रोंवाला है। वह हर समय पीताम्बर ओढ़े रहता है, अतः तुम उसका पीछा मत छोड़ना।" नारदजी के ऐसे वचन सुनकर कालयवन ने जो कि जरासन्ध के प्रताप को पहिले ही से सुन चुका था, अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सोचा कि देखो, ऐसे शक्तिशाली राजा ने हमें अपनी सहायता के लिए बुलाया है, अतः हमें उसका साथ अवश्य देना चाहिए। यह निश्चय करके कालयवन ने नारदजी से कहा—"हे मुने! आप जरासन्ध से जाकर यह कह दीजिए कि मैं अपनी सेना लेकर मथुरा पहुँच रहा हूँ, उधर वह भी अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँच जाय।" यह सुनकर नारदजी ने जरासन्ध के पास आकर सब हाल कह सुनाया; तदुपरान्त वे ब्रह्मलोक को चले गये।

हे परीक्षित! कालयवन अपने साथ तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर, जिनके शरीर बहुत मोटे थे तथा दाँत बड़े-बड़े और नेत्र लाल थे, लेकर मथुरापुरी में जा पहुँचा। उधर जरासन्ध ने भी तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर फिर मथुरा को जा घेरा। जब मथुरावासियों ने कालयवन की सेना को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS and eGangotri

देखा तो सब लोग भयभीत होकर थर-थर काँपने लगे। उस समय श्री मुरलीमनोहर ने द्वारकापुरी बसाने का विचार करके, बलरामजी से यह कहा कि हे भाई! अब हम क्या उपाय करें? कालयवन ने अपनी सेना लेकर मथुरापुरी को घेर लिया है तथा जरासन्ध भी अपनी सेना लेकर यहाँ आना चाहता है। जब तक एक राजा से युद्ध किया जायगा, तब तक दूसरा राजा नगर को लूट लेगा। यह सुनकर श्री बलरामजी बोले—"आप जो उचित समझें, वह करें।" तब श्रीहरि ने समुद्र का स्मरण किया। जब वह आ गया तब उसे यह आज्ञा दी कि तुम बारह योजन पृथ्वी को अपने बीच में से खाली कर दो, हम वहाँ एक पुरी बसावेंगे। श्री कृष्णजी के आज्ञानुसार जब समुद्र ने स्थान खाली कर दिया तो फिर श्री मुरलीमनोहर ने विश्वकर्मा को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम समुद्र के टापू पर एक ऐसा नगर बनाओ जिसमें मथुरावासियोंसहित सभी व्रजवासी सुखपूर्वक रह सकें। यह सुनकर विश्वकर्मा ने उस टापू में 'द्वारका' नामक एक ऐसी पुरी बसा दी जिसका परकोटा सोने का बना हुआ था तथा सभी भवन स्वर्ण-निर्मित एवं रत्नजटित थे। श्री श्यामसुन्दर के रहने के लिए सोलह सहस्र एक सौ आठ ऐसे रत्न-जटित महल बनाये, जिनका प्रकाश सहस्रों सूर्य से अधिक दमकता था। वापी, तड़ाग, कूप, सरोवर, उद्यान आदि सब वस्तुएँ बनाकर चारों वर्णों के रहने के लिए अलग-अलग मुहल्ले बनाये तथा सेना, रथ, हाथी, घोड़े आदि के बाँधने के स्थान भी बना दिये। उस समय वरुण देवता ने श्यामकर्ण घोड़े, कुबेर ने श्रेष्ठ रथ तथा रत्न आदि एवं इन्द्र ने 'सुधर्मा' नामक सभा को द्वारकापुरी में पहुँचा दिया। इतना हो जाने पर श्री कृष्णजी ने योग-माया को बुलाकर यह आज्ञा दी कि मथुरावासियों को गौ, घोड़े, हाथी आदि सब पशुओं तथा सब वस्तुओं-सहित रातोरात द्वारकापुरी में इस प्रकार पहुँचा दो कि किसी को इस भेद का पता न लगे। श्री बाँकेविहारी के आज्ञानुसार योगमाया ने सब लोगों को, जो रात में नींद में सो रहे थे, एक क्षण में ही मथुरापुरी से उठाकर द्वारकापुरी में पहुँचा दिया। वहाँ समुद्र का शब्द सुनकर जब मथुरा-वासी चौंक कर नींद से जगे तो वे अत्यन्त अचम्भा मानकर आपस में इस प्रकार कहने लगे कि यहाँ समुद्र कहाँ से आ गया? जब उन्होंने भली भाँति विचार किया तो यह पता चला कि श्रीहरि की इच्छा से ही यह कोई दूसरा नगर समुद्र में बस गया है। जब उन्होंने उस स्थान को मथुरा की अपेक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

श्री महा रास लीला

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक उत्तम देखा तो सब लोग प्रसन्न होकर श्री मुरलीमनोहर की प्रशंसा करने लगे ।

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवन एवं मुचुकुन्द की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! जब श्री बाँकेविहारी सब लोगों को द्वारका भेज चुके तो प्रातःकाल आप अकेले ही, बलभद्रजी को छोड़कर, चतुर्भुज स्वरूप धारण किए, पीताम्बर पहिने, वैजयन्ती माला धारण किए, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिए, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कालयवन के सम्मुख पहुँचे । नारद मुनि के कथनानुसार जब कालयवन ने उनमें सम्पूर्ण लक्षण देखे तो उन्हें अत्यन्त बलवान जानकर, अपने मन में यह विचार किया कि इसी पुरुष ने राजा जरासन्ध की सेना को मार डाला था । परन्तु यह इस समय बिना शस्त्र लिये, पैदल मेरे सम्मुख आया है, अतः स्वयं शस्त्र धारण कर, रथ पर चढ़े हुए इससे युद्ध करना उचित नहीं है ।" यह विचार-कर कालयवन अपने रथ से कूद पड़ा तथा अपने सैनिकों को पुकारकर यह कहने लगा कि इनके ऊपर कोई शस्त्र न चलावे । इतना कहकर वह श्री श्यामसुन्दर के पास जा पहुँचा । उस समय श्री कृष्णजी ने एक तो उसे म्लेच्छ जानकर स्पर्श करना उचित न समझा, दूसरे उन्हें देवताओं का वर-दान सिद्ध करने के लिए राजा 'मुचुकुन्द' को भव-सागर से पार उतारना था । इसलिए वे कालयवन को अपने पास आते देखकर, वहाँ से भागने लगे । यह देखकर कालयवन अत्यन्त अभिमानपूर्वक उन्हें पकड़ने के लिए पीछे दौड़ते हुए इस प्रकार कहने लगा—"मुझे कंस अथवा जरासन्ध मत समझना । मैं संसार में यदुवंशियों का वंश तक नष्ट कर दूँगा । हे कृष्ण ! क्षत्रियों तथा योद्धाओं को रणभूमि से भागना मृत्यु-तुल्य होता है । मैं तुझसे युद्ध करने के लिए आया हूँ, अतः क्षणभर ठहरकर मुझसे युद्ध कर ।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार कालयवन ने बहुत दुर्वचन कहे, परन्तु श्री श्यामसुन्दर उसकी किसी बात का उत्तर न देकर इस प्रकार भागते रहे कि वह निराश भी न हो पावे और उन्हें पकड़ भी न सके । इस प्रकार श्री कृष्णजी के पीछे-पीछे कालयवन बहुत दूर तक दौड़ा चला गया । तदुपरान्त श्री कृष्णजी गन्धमादन पर्वत की उस कन्दरा में घुस गये, जहाँ राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुचुकुन्द सो रहा था। फिर उसे अपना पीताम्बर उढ़ाकर एक ओर छिपकर खड़े हो गये। जब कालयवन पीछे-पीछे दौड़ता हुआ आया और पीताम्बर ओढ़े मुचुकुन्द को सोते देखा तो उसने यह समझा कि कृष्ण ही यहाँ आकर छिपकर सो गया है। यह समझ में आते ही कालयवन ने अत्यन्त क्रोध करके एक लात राजा मुचुकुन्द को मारी तथा यह कहते हुए उसका पीताम्बर खींच लिया कि अरे मूख ! उठ सो क्यों रहा है ? मैं तुझे अभी मारे डालता हूँ। हे परीक्षित ! कालयवन द्वारा झटका देने पर जब राजा मुचुकुन्द की निद्रा भङ्ग हुई और उसने कालयवन की ओर देखा तो उसकी दृष्टि पड़ते ही, कालयवन वहीं का वहीं जलकर भस्म हो गया। कालयवन ने मरते समय श्रीहरि का दर्शन पाया था इसलिए उसे मुक्ति प्राप्त हुई।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे प्रभो ! वह परम तेजस्वी मुचुकुन्द कौन था और वहाँ कन्दरा में किस लिए सो रहा था ?" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! राजा इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न राजा मुचुकुन्द, राजा युवनाश्व का पौत्र तथा राजा 'मान्धाता' का पुत्र था। उसने चक्रवर्ती राजा होकर अपने पुण्य तथा तेज के प्रताप से सब राजाओं को अपने वशीभूत किया था। उन्हीं दिनों देवासुर संग्राम होने पर दैत्यों ने देवताओं का सिंहासन छीन लिया। तब इन्द्र तथा वरुण आदि देवताओं ने राजा मुचुकुन्द के पास पहुँचकर यह कहा कि हे राजन् ! हम आपके बल की प्रशंसा सुनकर आपकी शरण में आये हैं। यह बात परंपरा से चली आई है कि जब देवता तथा ऋषि-मुनि दुर्बल पड़ते हैं, तब क्षत्रिय राजा उनकी रक्षा करते हैं। अतः इस समय दैत्यों ने हमारा सिंहासन छीन लिया है सो आप उसे हमें वापिस दिलवा दीजिए। यह सुनकर राजा मुचुकुन्द ने देवताओं के साथ जाकर दैत्यों से युद्ध किया। जब राजा को लड़ते-लड़ते कई युग बीत गये और स्वामि कार्तिकेयजी देवताओं की सहायता करने के लिए आ गये, उस समय देवताओं ने राजा मुचुकुन्द से यह कहा कि हे राजन् ! आपने हमारे लिये बड़ा परिश्रम किया। अब हमारी रक्षा करने के लिए स्वामि कार्तिकेयजी आ गये हैं, अतः आप अब विश्राम कीजिए तथा मुक्ति के अतिरिक्त और जो वर चाहें, वह हमसे माँग लीजिए। यह सुनकर राजा ने कहा—"मैं अपने स्त्री-पुत्रों के पास जाना चाहता हूँ।" तब देवताओं ने उसे यह बताया कि अब आपके वंश में कोई नहीं रहा। सब लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मर चुके हैं, यह सुनकर मुचुकुन्द ने कहा—"आप मुझे कोई ऐसा एकान्त स्थान बताइये जहाँ जाकर मैं आराम से रह सकूँ तथा मुझे कोई जगाने के लिए न आवे।" तब देवताओं ने प्रसन्न होकर यह कहा कि आप गन्धमादन पर्वत की कन्दरा में जाकर शयन करें। हम आपको ऐसा वरदान देते हैं कि जो व्यक्ति आपको आकर जगावेगा वह आपकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जायगा तथा हमारे आशीर्वाद से आपको परब्रह्म प्रभु का दर्शन भी प्राप्त होगा। अस्तु, त्रेतायुग में इस वरदान को पाकर राजा मुचुकुन्द उस कन्दरा में जाकर सो गया। श्री मुरलीमनोहर इस भेद को जानते थे इसलिए उन्होंने देवताओं का वरदान सत्य सिद्ध करने के लिए कालयवन को मुचुकुन्द की दृष्टि से भस्म करवा दिया। तत्पश्चात् स्वयं प्रकट होकर चतुर्भुजी रूप को धारण किए हुए मुचुकुन्द को दर्शन देकर कृतार्थ किया। उन्हें देखकर मुचुकुन्द ने दण्डवत् करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! जिस प्रकार आपने इस महा अँधेरी गुफा में आकर तम को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार अब अपना नाम तथा भेद बताकर मेरे अन्तःकरण का अन्धकार भी नष्ट कर दीजिए। यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा—"हे राजन् ! मेरे नाम, जन्म, कर्म तथा गुण बहुतेरे हैं। वे किसी भी प्रकार गिने नहीं जा सकते। परन्तु मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ कि इस बार मैंने वसुदेव के यहाँ जन्म लिया है, इसलिए मेरा नाम वासुदेव पड़ा है। मैंने मथुरापुरी में अधर्मी कंस को उसके सभी दैत्यों-सहित मारकर पृथ्वी का भार उतारा है। राजा जरासंध तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मुझसे युद्ध करने के लिए आया, परन्तु मैं उसे बराबर हराता रहा। यह कालयवन भी, तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर मुझसे लड़ने के लिए आया था, सो तुम्हारी दृष्टि से जलकर भस्म हो गया।" श्रीहरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर जब मुचुकुन्द को ज्ञान प्राप्त हुआ तो उसने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आपकी माया अत्यन्त प्रबल है। उससे सुध-बुध ठिकाने पर नहीं रहती। आप निर्गुण तथा निराकार होने पर भी अपने भक्तों को सुख देने के लिए सगुण स्वरूप धारण करते हैं। हे प्रभो ! मैं अब तक अपने राज्य तथा धन के मद एवं स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़े रहने के कारण आपका कुछ भी ध्यान नहीं धर पाया, सो मुझे यही चिन्ता लगी रहती है कि मैं इस संसाररूपी अंधकूप से किस प्रकार बाहर निकल सकूँगा। हे दीनबन्धु ! मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह इच्छा है कि मैं आपकी कृपा से इस भवसागर से पार उतर जाऊँ।" राजा मुचुकुन्द के ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने हँसकर कहा—"हे राजन्! तेरे ज्ञान को धन्य है। तूने हमें पहिचान लिया, अतः हम तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। अब हम तुझे भवसागर से पार उतरने का उपाय बताते हैं। हे राजन्! तूने पृथ्वी को लेने तथा परस्त्रीगमन करने में बहुत पाप कमाया है, अतः बिना तप किए तेरा पाप दूर न होगा। अब तू उत्तर दिशा में जाकर मेरा ध्यान करके तप कर, उसके प्रताप से तू इस शरीर को त्यागकर एक ब्राह्मण के घर में जन्म लेगा, तब तेरी मुक्ति हो जायेगी।" यह सुनकर राजा मुचुकुन्द श्रीहरि को दण्डवत् करके जब गुफा से बाहर निकला तो लक्षणों को देखकर उसे यह ज्ञात हुआ कि अब कलियुग निकट आ पहुँचा है। तदुपरान्त वह बदरिकाश्रम में जाकर सच्चे हृदय से श्री नारायणजी का तप करने लगा। उसके प्रभाव से उसने वह शरीर त्यागकर एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया। फिर वहाँ हरि-भक्ति की महिमा से मृत्यु के उपरान्त मुक्ति को प्राप्त हो गया। हे राजन्! कालयवन ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न हुआ था, इसी लिए श्री कृष्णजी ने उसे अपने हाथ से नहीं मारा था।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे मुने! कालयवन तो म्लेच्छ था, वह ब्राह्मण के वीर्य से किस प्रकार उत्पन्न हुआ?" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! एक दिन गर्ग मुनि के साले 'गौड़' ने हँसी करते हुए उनसे यह कहा कि तुम नपुंसक हो। यह बात सुनकर अन्य यदुवंशी भी हँस पड़े तथा गर्ग ऋषि को नपुंसक कहने लगे। उस समय गर्ग मुनि ने यदुवंशियों को नीचा दिखाने के लिए श्री शिवजी का तप करना आरम्भ कर दिया। जब शिवजी ने प्रगट होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा, तब गर्ग मुनि ने हाथ जोड़कर यह विनय की कि हे प्रभो! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिए, जिसके भय से सब यदुवंशी भाग जावें, यह सुनकर श्री शिवजी ने गर्ग मुनि को एक फल देकर यह कहा कि यह फल स्त्री को खिला देने से उसके गर्भ से ऐसा ही बालक उत्पन्न होगा। वह फल गर्ग मुनि ने अपने पास रख लिया। उन्ही दिनों काबुल के एक निस्सन्तान तथा प्रतापी राजा तालजंघ क्षत्रिय ने सन्तान प्राप्ति के लिए गर्ग मुनि की बहुत सेवा की। उससे प्रसन्न होकर मुनि ने उसकी पत्नी को वीर्य-दान देकर वह फल खाने को दे दिया। उस स्त्री ने अपनी सौतों के भय से उस फल को बिना स्नान किए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही शीघ्रतापूर्वक खा लिया। उस समय गर्ग मुनि ने यह कहा कि तेरा पुत्र अत्यन्त प्रतापी होगा। परन्तु वह म्लेच्छों के समान कार्य करेगा। इसी कारण तालजंघ क्षत्रिय का पुत्र कालयवन म्लेच्छ हो गया था।" यह कथा सुनकर राजा परीक्षित का सन्देह दूर हो गया।

बावनवाँ अध्याय

जरासन्ध की इच्छा पूर्ण करने के हेतु श्याम-बलराम का पलायन तथा रुक्मिणी की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! राजा मुचुकुन्द को बिदा करके श्री मुरलीमनोहर मथुरा लौट आये तथा कालयवन के भस्म होने का समाचार सुनाकर बलरामजी से इस प्रकार कहने लगे कि हे भाई! राजा मुचुकुन्द को तो हमने तप करने को भेज दिया। अब हमें कालयवन की सेना का संहार करना चाहिए। यह निश्चय करके दोनों भाई कालयवन की सेना में पहुँचकर म्लेच्छों का संहार करने लगे। उसी समय राजा जरासन्ध भी अपनी सेना लेकर वहाँ आ पहुँचा। तब श्री श्यामसुन्दर उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए बलरामजी-सहित उसके सामने से युद्धभूमि छोड़कर पैदल भागने लगे। उस समय जरासन्ध के मन्त्री ने जरासन्ध से इस प्रकार कहा कि हे राजन्! आपके प्रताप के सम्मुख ऐसा कौन शक्तिशाली है, जो क्षण-भर को भी ठहर सके। वह देखिए, दोनों भाई राम-कृष्ण आपके भय से भयभीत हो, घर-द्वार छोड़कर नंगे पाँव भागे चले जा रहे हैं। जब जरासन्ध ने भी उन्हें भागते हुए देखा तो अपनी सेना सहित उनका पीछा करता हुआ दौड़ा तथा इस प्रकार कहने कहा—"अरे! तुम डरकर भागे क्यों जा रहे हो? तनिक रुको तो सही। आज तुम्हारी मृत्यु निकट आ पहुँची है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार जब श्री कृष्ण तथा बलरामजी ने युद्ध से भागकर नारद मुनि का वचन सत्य किया, तब जरासन्ध के हृदय का पिछला सब शोक दूर हो गया और ऐसा प्रसन्न हुआ कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। तब दोनों भाई भागते-भागते ग्यारह योजन ऊँचे एक प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ़ गये। यह देखकर जरासन्ध ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि तुम इस पर्वत को जलाकर भस्म कर दो, फिर देखें कि ये किस प्रकार बचकर निकल जाते हैं? यह सुनकर उसके सब सैनिकों ने उस पर्वत को घेर लिया तथा नगर-नगर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँव-गाँव से लकड़ी, घृत, तेल आदि इकट्ठा कर उस पर्वत को चारों ओर से ढँक कर सब ओर से अग्नि लगा दी। जब अग्नि की लपटें पर्वत की चोटी तक पहुँचने लगीं, तब दोनों भाइयों ने वहाँ से इस प्रकार द्वारका का मार्ग लिया कि किसी ने उन्हें जाते हुए नहीं देखा। दोनों भाइयों के चले जाने पर वह अग्नि भी अपने आप बुझ गई तथा पर्वत ज्यों का त्यों हो गया। उस समय जरासन्ध श्री श्याम-बलराम को अग्नि में भस्म हुआ जानकर अपनी सेना साथ ले, मथुरा में आ पहुँचा तथा वहाँ के राज्य पर अपना अधिकार कर, सब ओर ढिंढोरा पिटवा दिया। उग्रसेन, वसुदेव आदि के समय में जो पुराने भवन थे, उन सबको ढहवाकर उसने नये भवन निर्मित कराये। उधर तो श्री कृष्णजी द्वारका में पहुँचे और इधर जरासन्ध भी अपने देश को लौट गया।

हे परीक्षित! जब श्री कृष्ण तथा बलराम द्वारका में पहुँच गये तो सब लोगों को बड़ा आनन्द हुआ। अस्तु, कुछ समय बीतने पर राजा 'रेवत' ने ब्रह्माजी के आज्ञानुसार अपनी पुत्री 'रेवती' का विवाह बलरामजी के साथ कर दिया। तदुपरान्त श्री कृष्णजी राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को, जिसकी सगाई शिशुपाल के साथ हो गई थी, जबर्दस्ती हरण करके ले आये तथा उसके साथ अपना विवाह किया। यह सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! श्री कृष्णजी रुक्मिणी को बहुत से राजाओं के बीच से किस प्रकार जीतकर लाये, वह कथा मुझे सुनाने की कृपा कीजिए।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! विदर्भ देश का रजा 'भीष्मक' कुण्डिनपुर में रहकर धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था। 'रुक्माग्रज' आदि उसके पाँच पुत्र थे। तदुपरान्त जब उसके घर परम सुन्दरी 'रुक्मिणी' नामक कन्या ने जन्म लिया तो राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर उसका लग्न-फल पूछा। उस समय ज्योतिषियों ने यह कहा कि हे राजन्! यह कन्या रूप, गुण तथा शील की भण्डार है। इसका विवाह श्री परब्रह्म प्रभु के साथ होगा। यह सुनकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई तथा उसने पण्डितों को बहुत दान-दक्षिणा देकर ससम्मान बिदा किया। तत्पश्चात् वह कन्या चन्द्रकला के समान बढ़ने लगी। जब वह सयानी हुई तो एक दिन नारदजी कुण्डिनपुर में गये। वहाँ उन्होंने रुक्मिणी का हाथ देखकर कहा कि तेरा विवाह आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी के साथ होगा। यह सुनकर रुक्मिणीजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त नारदजी ने द्वारका-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरी में जाकर श्री श्यामसुन्दरजी से इस प्रकार कहा कि हे प्रभु! राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी लक्ष्मी के समान सुन्दर तथा गुण-सम्पन्न है। वह आपके विवाह योग्य है। यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर के हृदय में भी रुक्मिणी की प्रीति उत्पन्न हुई। उन्हीं दिनों कुछ याचकों ने भी कुण्डिनपुर में जाकर श्री-कृष्ण-चरित्र का गान किया। उसे सुनकर वहाँ के निवासियों को श्री मुरली-मनोहर के दर्शनों की अभिलाषा हुई। उन याचकों की चर्चा जब राजा भीष्मक के पास पहुँची तो उन्होंने याचकों को राजमन्दिर में बुलवाकर उनके द्वारा श्री कृष्ण-चरित्र सुना। उसे सुनकर राजा तथा रानी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय अपनी अटारी पर बैठी हुई रुक्मिणी ने भी वह चरित्र सुना था, सो उसके हृदय में श्री कृष्णजी के प्रति प्रेम और अधिक बढ़ गया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! याचकों के मुख से श्री श्यामसुन्दर का यशोगान सुनकर रुक्मिणी श्री श्यामसुन्दर के ध्यान में ऐसी डूबी कि वह दिन-रात आठों प्रहर उन्हीं का स्मरण किया करती थी तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए श्री पार्वतीजी का पूजन करके यह वर माँगती थी कि—

दोहा—गौरी कृपा करहु तुम ऐसी। मिलै मधुर मूरति, हिय जैसी॥
नन्दनंदन पतिदेव कहावैं। दासी जानि मोहि अपनावैं॥

इस प्रकार श्री श्यामसुन्दर का ध्यान धरकर रुक्मिणी ने यह प्रण किया कि मैं श्री मनमोहन के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना पति नहीं बनाऊँगी। रुक्मिणी के माता-पिता भी रुक्मिणी के इस निश्चय से अत्यन्त सन्तुष्ट थे। जब कभी रुक्मिणी श्री श्यामसुन्दर के विरह में उदास होकर रोने लगती थी, उस समय उसकी सखियाँ श्री कृष्णचन्द्रजी की चर्चा करके उसे प्रसन्न कर लिया करती थीं। अस्तु, एक दिन जब रुक्मिणी अपनी सखियों के साथ खेलती हुई राजा भीष्मक के निकट पहुँची, तो राजा ने उसे विवाह योग्य देखकर यह विचार किया कि अब मुझे रुक्मिणी का विवाह शीघ्र कर देना चाहिए, अन्यथा संसारी लोग मेरी निन्दा करेंगे। यह सोचकर राजा ने अपने पाँचों पुत्रों, मंत्री तथा इष्ट-मित्रों को सभा में बैठाकर यह कहा कि अब रुक्मिणी विवाह योग्य हो चुकी है, सो तुम लोग कोई श्रेष्ठ तथा योग्य वर बताओ। यह सुनकर सभासदों ने अनेक राजकुमारों के नाम बताये, परन्तु वे राजा को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

पसन्द नहीं आये। उस समय रुक्माग्रज नामक राजा के बड़े पुत्र ने यह कहा कि हे पिता! चँदेरी नगर का राजा शिशुपाल अत्यन्त बलवान् तथा कुलीन है। अतः आप रुक्मिणी का विवाह उसके साथ करके संसार में सुयश प्राप्त करें। जब राजा को उसकी बात भी ठीक नहीं लगी, तब 'रुक्मकेश' नामक छोटे पुत्र ने इस प्रकार कहा—"हे पिता! आप रुक्मिणी का विवाह कृष्ण-चन्द्रजी के साथ करिए।" यह सुनकर राजा भीष्मक को अत्यन्त प्रसन्नता हुई तथा यह कहा कि निश्चय ही यदुवंशियों में राजा शूरसेन अत्यन्त प्रतापी हैं तथा उनके पुत्र वसुदेव भी ऐसे धर्मात्मा हैं कि उनके यहाँ श्री नारायणजी ने कृष्ण नाम से अवतार लिया है। उन श्री कृष्णचन्द्रजी ने कंस आदि अधर्मियों को मारकर सब यदुवंशियों तथा प्रजा को आनन्द पहुँचाया है। उनके साथ रुक्मिणी का विवाह करने से मुझे अवश्य ही यश प्राप्त होगा।" राजा भीष्मक के ऐसे वचन सुनकर तीनों छोटे पुत्र तथा सभासदों ने प्रसन्न होकर यह कहा कि हे महाराज! आपका विचार अत्यन्त श्रेष्ठ है। श्री कृष्णचन्द्रजी के समान श्रेष्ठ वर अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। उस समय राजा के बड़े पुत्र रुक्माग्रज ने झुँझलाकर यह कहा कि हे सभासदो! तुम सब गँवार हो, जो ऐसी बातें कह रहे हो। तुम कृष्ण को नहीं जानते। हे पिता! उस गँवार ग्वाले की जाति-पाँति का भी कोई ठिकाना नहीं है। कोई उसे वसुदेव का पुत्र कहता है तो कोई नन्द का बेटा बताता है। यदुवंशी भी कोई पुराने राजा नहीं हैं। वे अभी कुछ दिनों से यदि बढ़ गये हैं, तो भी उनकी गणना श्रेष्ठ कुलवालों में नहीं हो सकती। इसलिए उनके घर में रुक्मिणी का विवाह करने से संसार में सर्वत्र अपयश मिलेगा। लोग मुझे ग्वाल का साला कहेंगे, तब मैं किसी को अपना मुँह किस प्रकार दिखाऊँगा? अतः हे राजन्! आप रुक्मिणी का विवाह श्रेष्ठ कुलवाले राजा शिशुपाल के साथ ही करिए, जिसके प्रताप तथा बल के सम्मुख अन्य राजा थर-थर काँपते हैं।"

हे परीक्षित! रुक्माग्रज के ऐसे वचन सुनकर सब सभासद मन में पछताकर चुप रह गये तथा राजा भीष्मक भी उसे अपना बड़ा पुत्र जानकर मौन रह गये। यह देखकर रुक्माग्रज ने ज्योतिषियों से शुभ लग्न पूछकर एक ब्राह्मण के हाथों रुक्मिणी के विवाह का टीका शिशुपाल को भेज दिया। जब ब्राह्मण चँदेरी पहुँचा तब शिशुपाल ने बड़े सम्मान तथा हर्षपूर्वक उस टीके को चढ़ा लिया तथा ब्राह्मण को दान-दक्षिणा देकर, सत्कार करके बिदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया। तब ब्राह्मण ने कुण्डिनपुर में लौटकर राजा भीष्मक तथा रुक्माग्रज को टीके का हाल सुनाकर यह कहा कि राजा शिशुपाल बड़ी धूमधाम से बारात लेकर आ रहे हैं, अतः आप विवाह की तैयारियाँ कीजिए। इस समाचार को सुनकर राजा भीष्मक पहिले तो बहुत उदास हुए, फिर धैर्य धरकर रानी से सब हाल कहा तथा विवाह की तैयारियाँ कराने लगे। उस समय कुण्डिनपुर में घर-घर यह समाचार फैल गया कि राजा भीष्मक रुक्मिणी का विवाह श्री श्यामसुन्दर के साथ कर रहे थे, परन्तु रुक्माग्रज ने ऐसा नहीं होने दिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! राजमन्दिर में स्वर्ण-कलश रखकर केले के खम्भ तथा मँड़वा गाड़ा गया और स्त्रियाँ मङ्गलाचार करने लगीं। राजा भीष्मक ने निमन्त्रण भेजकर अपने सब इष्ट-मित्रों को भी बुलवा लिया। उस समय कुछ सखियों ने रुक्मिणी के पास जाकर इस प्रकार कहा कि हे रुक्मिणी! तेरे भाई रुक्माग्रज ने तेरा विवाह शिशुपाल के साथ करना निश्चित किया है, अतः तू अब उसकी रानी होगी। यह सुनकर रुक्मिणी अपने मन में विचार करने लगी कि मैंने तो श्री श्यामसुन्दर को अन्तःकरण से अपना पति मान लिया है, अतः उनके बिना किस प्रकार जीवित रहूँगी। हे परीक्षित! बहुत कुछ सोच-विचार करने के उपरान्त रुक्मिणी ने यह निश्चय किया कि किसी आदमी को श्री कृष्णजी के पास भेजकर उन्हें अपने मन की अभिलाषा से परिचित कराना चाहिए। तब रुक्मिणी ने अपने माता, पिता तथा भाइयों से छिपाकर एक बुद्धिमान ब्राह्मण को अपने पास बुलाकर अपना मनोरथ सुनाया तथा एक चिट्ठी देकर यह कहा—"हे द्विज! आप इस पत्र को लेकर द्वारका चले जाइये तथा श्री कृष्णजी से मेरा समाचार कहकर उन्हें यहाँ लिवा लाइये। इस उपकार के लिए मैं आपकी जन्म भर ऋणी रहूँगी।" यह सुनकर वह ब्राह्मण श्री श्यामसुन्दर का ध्यान धरकर वहाँ से द्वारका को चला तथा श्री मुरलीमनोहर की कृपा से कुछ देर में ही वहाँ जा पहुँचा। जिस समय द्वारपालों ने उससे यह कहा कि हे ब्राह्मण देवता! आप निर्भय होकर हमारे स्वामी के पास चले जाइये, वे आपका अत्यन्त सम्मान करेंगे; तो वह श्री वासुदेवजी के राजभवन में पहुँचकर उनके सम्मुख जा खड़ा हुआ। जिस समय श्री बाँकेविहारी ने उस ब्राह्मण को अपने सामने देखा तो उन्होंने सिंहासन से उतरकर पहिले तो उसे दण्डवत् किया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाकर इस प्रकार पूछा—"हे महाराज ! आप कहाँ से पधारे हैं ? आप जिस देश में रहते हैं, वहाँ का राजा ब्राह्मणों की सेवा तथा प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करता है अथवा नहीं ?" यह सुनकर उस ब्राह्मण ने रुक्मिणी की चिट्ठी को देते हुए इस प्रकार कहा—"हे दया-सिन्धो ! कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी दिन-रात आपका ध्यान धरती हुई स्वयं को आपके ही चरणों की दासी समझती है। उसका पिता उसका विवाह आपके साथ करना चाहता था, परन्तु उसके बड़े भाई रुक्माग्रज ने उसकी सगाई शिशुपाल के साथ कर दी है। हे प्रभो ! वह राज-कुमारी मन, वचन, कर्म से आपके ही साथ विवाह करने का संकल्प कर चुकी है, अतः उसने यह पत्र भेजकर आपको बुलाया है सो आप कुण्डिनपुर चलने की कृपा कीजिए।" ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उस पत्र को पढ़ा, जिसमें लिखा था—"हे त्रिलोकीनाथ ! मैं आपकी प्रशंसा सुनकर मन, वचन, कर्म से आपकी ही दासी हो चुकी हूँ। आपके अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं चाहती। यद्यपि मैं इस योग्य नहीं कि आपके चरणों की दासी बन सकूँ फिर भी आप मेरी प्रीति को देखकर मुझे यह सौभाग्य प्रदान करने की कृपा कीजिए। मेरा बड़ा भाई मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता है परन्तु मैं तो केवल आपको ही चाहती हूँ। हे प्रभो ! यदि आप यह सोचें कि मैं ऐसी कुलीन कन्या होते हुए भी अपने विवाह का सँदेशा क्यों भेज रही हूँ तो उसका कारण यह समझिये कि आपकी स्तुति को सुनकर मेरी लज्जा दूर हो गई है। हे नाथ ! ब्रह्मा, शिव आदि देवता तथा ऋषि-मुनिजन आपके चरणों की धूलि का प्राप्त करने की सदैव इच्छा रखते हैं, सो मैं भी उन चरणों की सेवा करके, उस पद-रज को अपने मस्तक पर लगाना चाहती हूँ। यदि वह पद-रज मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मैं आपके चरणों में ध्यान लगाकर अपना यह शरीर त्याग दूँगी। हे प्रभो ! शिशुपाल बारात सजाकर कुण्डिन-पुर में आ रहा है, सो आप शीघ्र ही यहाँ आकर, शत्रुओं को जीतिये तथा मुझे ले जाइये। यदि आप नहीं आयेंगे तो मैं अपने प्राणों को आपके चरणों पर न्यौछावर कर दूँगी ! हे दीनानाथ ! कहीं ऐसा न कर बैठियेगा कि सिंह के आहार को गीदड़ ले जाय। हे नाथ ! आप विवाह से एक दिन पूर्व ही इन ब्राह्मण देवता के साथ आ जाइये। उस दिन मैं देवीजी की पूजा करने के लिए नगर से बाहर जाऊँगी, अतः वहाँ से जब घर लौटने लगूँ, तभी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप मार्ग में मुझे अपने साथ ले जाइयेगा। हे दीनदयालु! आप अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझ दीन अबला पर दया दिखाने की कृपा अवश्य कीजिएगा।"

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणी-हरण की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इस चिट्ठी को पढ़कर श्रीहरि ने अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मण का हाथ पकड़ लिया। तदुपरान्त उसे एकान्त में ले जाकर कहा—"हे ब्राह्मण देवता! मैंने जब से नारदजी के मुख से रुक्मिणी के रूप तथा गुणों को सुना है, उसी दिन से मैं भी उससे मिलने की अभिलाषा रखता हूँ। मुझे यह मालूम है कि रुक्माग्रज मेरे साथ शत्रुता रखकर रुक्मिणी का विवाह मेरे साथ नहीं होने दे रहा है। अतः अब आप रात्रि को तो यहीं विश्राम कीजिए, प्रातःकाल मैं आपके साथ चलकर रुक्मिणी की इच्छा पूर्ण करूँगा। हे ब्रह्ममूर्ति! जिस प्रकार काष्ठ में रगड़ द्वारा अग्नि उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण वन भस्म हो जाता है, उसी प्रकार मैं शत्रुओं की सम्पूर्ण सेना को जीतकर रुक्मिणी को ले आऊँगा।" श्री मुरलीमनोहर की बात सुनकर उस ब्राह्मण को धैर्य हुआ। अस्तु, प्रातःकाल होने पर श्री कृष्णचन्द्रजी ने दारुक सारथी द्वारा रथ मँगवा, उस पर ब्राह्मण देवता-सहित स्वयं बैठ, कुण्डिनपुर को प्रस्थान किया। उस समय अनेक प्रकार के शुभ शकुन होने लगे। जब बलभद्रजी ने यह समाचार सुना कि श्री श्यामसुन्दर अकेले ही कुण्डिनपुर गये हैं तो उन्होंने राजा उग्रसेन के पास जाकर यह कहा कि हे महाराज! हमने सुना है कि राजा शिशुपाल जरासन्ध आदि बहुत-से राजाओं को साथ लेकर रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर पहुँचेगा तथा श्री श्यामसुन्दर का उनसे भयंकर युद्ध होगा, अतः यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग भी उनकी सहायता को जावें। राजा उग्रसेन बोले—"हे बलभद्र! तुम मेरी सम्पूर्ण सेना को साथ लेकर ऐसी शीघ्रता से जाओ कि श्री कृष्णचन्द्र तुम्हें मार्ग में ही मिल जायँ।" यह सुनकर बलभद्रजी सब सेना को साथ ले मार्ग में श्री कृष्णजी से जा मिले तथा उनसे यह पूछने लगे कि आप इस प्रकार अकेले ही क्यों चले आये? उस समय मनमोहनलालजी ने यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर दिया–"हे भाई ! रुक्मिणी की व्याकुलता के कारण मुझे ऐसा करना पड़ा।" अस्तु, जिस दिन शिशुपाल की बारात आनेवाली थी, उस दिन वे भी कुण्डिनपुर जा पहुँचे। वहाँ जाकर यह देखा कि सब ओर मंगलाचार तथा सजावटें हो रही हैं तथा स्त्री-पुरुष उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिने हुए शिशुपाल की बारात देखने के लिए बैठे हैं। उस शोभा को देखते हुए श्री कृष्णजी राजा भीष्मक के बाग में जाकर ठहर गये तथा उस ब्राह्मण से यह बोले कि तुम रुक्मिणी के पास जाकर हमारे आगमन का समाचार कह दो, जिससे उसे धैर्य बँध जावे। यह सुनकर ब्राह्मण रुक्मिणी को समाचार देने के लिए चल दिया। उधर बारात के आगमन का समाचार सुनकर राजा भीष्मक अपनी सब सेना साथ लेकर बारात की अगवानी करने के लिए चले तथा राजमंदिर में स्त्रियाँ मंगलाचार करने लगीं। राजा ने बारात को सुन्दर जनवासे में ठहराकर भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ भेज दिये तथा इधर महलों में पुरोहित ने रुक्मिणी के हाथ में कंगन बाँध दिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित ! तब तक रुक्मिणी को श्री श्यामसुन्दर के आने का समाचार प्राप्त नहीं हुआ था, अतः वह इन सब दृश्यों को देखकर अपने मन में चिन्ता करके यह विचार करने लगी कि क्या कारण हुआ जो श्री श्यामसुन्दर अभी तक यहाँ नहीं पधारे हैं? क्या वे मेरे पत्र को पाकर, मुझे निर्लज्ज समझकर नहीं आये अथवा ब्राह्मण ही कहीं मार्ग भूलकर उनके पास नहीं पहुँच सका है? कहीं वे मुझे कुरूप तो नहीं समझ बैठे अथवा जरासन्ध का आगमन सुनकर नहीं आये हैं? यदि कल विवाह हो जाने के उपरान्त शिशुपाल मुझे हाथ पकड़कर अपने घर ले गया तो मैं अबला फिर क्या कर सकूँगी? अब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? किसका भरोसा रक्खूँ?" रुक्मिणी की इस व्याकुलता को देखकर एक सखी ने, जो रुक्मिणी की प्रीति का हाल जानती थी, इस प्रकार कहा–"हे रुक्मिणी ! तुम घबराकर अपने प्राण क्यों दे रही हो? वे भला, अपने माता-पिता तथा भाई आदि से पूछे बिना किस प्रकार आ सकते हैं?" दूसरी सखी बोली–"हे राजकुमारी ! वे अन्तर्यामी तुम्हारे मन का हाल भी जानते हैं। मेरी समझ में तो अब वे यहाँ आ भी चुके होंगे। तुम अपने मन में इस प्रकार मत अकुलाओ।" जिस समय रुक्मिणीजी सखियों से इस प्रकार वार्तालाप कर रही थीं, उसी समय वह ब्राह्मण वहाँ जा पहुँचा तथा आशी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाद देकर यह कहने लगा कि हे रुक्मिणी ! श्री श्यामसुन्दर यहाँ आकर बाग में ठहरे हुए हैं। उनके पीछे-पीछे बलरामजी भी अपनी सब सेना को साथ लिये चले आ रहे हैं। ब्राह्मण के मुख से यह वचन सुनकर रुक्मिणी को ऐसी प्रसन्नता हुई, जिस प्रकार किसी तपस्वी ने अपने मनोरथ को प्राप्त कर लिया हो। तब वह अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मण से इस प्रकार कहने लगीं—"हे देवता ! आपने श्री श्यामसुन्दर के आगमन का समाचार सुनाकर मुझे जो प्रसन्नता प्रदान की है, उसके बदले यदि मैं तुम्हें तीनों लोकों की सम्पत्ति दूँ, तो भी इस ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकती हूँ।" इतना कहकर जैसे ही रुक्मिणी ने उस ब्राह्मण की ओर कृपा-दृष्टि से देखा, वैसे ही उसके घर लक्ष्मी का निवास हो गया। तदुपरान्त वह ब्राह्मण आशीर्वाद देकर वहाँ से लौटकर राजा भीष्मक के पास जा पहुँचा तथा उन्हें भी श्री श्यामसुन्दर के आगमन का समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो, रत्नाभूषणों की भेंट लेकर, अपने चारों छोटे पुत्रों-सहित श्री कृष्णजी के समीप जा पहुँचे तथा उन्हें भेंट आदि दे, दण्डवत् कर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! आपने यहाँ पधारकर मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ कर दिया है। आप अन्तर्यामी हैं, अतः मेरे मन का सब हाल जानते हैं। अधिक क्या कहूँ ?" इतना कहकर राजा ने उनके ठहरने आदि का उत्तम प्रबन्ध किया; फिर लौटकर घर चले गये तथा उनके लिए भोजन आदि की सामग्री भिजवाई। जब कुण्डिनपुर वासियों ने उन दोनों भाइयों के आगमन का समाचार सुना तब सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हो, भेंट ले-लेकर, उनके पास गये तथा उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करके, परस्पर इस प्रकार चर्चा करने लगे—"हे भाइयो ! रुक्मिणी के योग्य सुन्दर वर तो श्री कृष्णचन्द्रजी ही हैं, वह अधम शिशुपाल तो किसी योग्य नहीं है। ईश्वर करे कि इन्हीं के साथ रुक्मिणी का विवाह हो, तभी हम सबके हृदय को भी प्रसन्नता होगी। अस्तु, जब चार घड़ी दिन शेष रहा तो श्री श्यामजी तथा बलरामजी कुण्डिनपुर की शोभा को देखने के लिए रथ में बैठकर नगर में जा पहुँचे। वे जहाँ-जहाँ भी पहुँचते थे, वहीं के सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शन कर, नेत्रों का लाभ पा, पुष्प-वर्षा करते हुए इस प्रकार कहते कि इन दोनों भाइयों ने अपनी सुन्दरता से सम्पूर्ण विश्व की छवि को जीत लिया है। यदि श्री श्यामसुन्दर के साथ रुक्मिणी का विवाह हो तो हम सब भी इन जैसे सम्बन्धी को पाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धन्य हो जायँगे। सन्ध्या होने पर दोनों भाई शिशुपाल आदि की सेना को देखकर अपने डेरे पर लौट आये।

हे परीक्षित! जब रुक्माग्रज ने उन दोनों भाइयों के आने का समाचार सुना तो अत्यन्त क्रोध करके अपने पिता के पास जाकर यह कहा—"हे पिता! तुम हमें यह सत्य बतलाओ कि इस विवाह में विघ्न डालने के लिए कृष्ण-बलराम को यहाँ किसने बुलवाया है?" यह सुनकर राजा भीष्मक ने उत्तर दिया कि मैंने उन्हें नहीं बुलवाया है। तब रुक्माग्रज ने शिशुपाल तथा जरासन्ध के पास जाकर यह कहा कि यहाँ श्याम तथा बलराम भी आये हुए हैं, अतः तुम अपने सेनापतियों से यह कह देना कि वे सदैव सावधान रहें। हे परीक्षित! श्री कृष्णचन्द्र तथा बलरामजी का नाम सुनकर राजा शिशुपाल तो भयभीत हो चित्रवत् मौन रह गया, परन्तु जरासन्ध ने रुक्माग्रज का यह उत्तर दिया—"हे मित्र! इन दोनों भाइयों ने कंस आदि बड़े-बड़े योद्धाओं को सहज ही में मार लिया है, अतः ये यहाँ भी उपद्रव किए बिना नहीं मानेंगे। तुम इन्हें साधारण बालक मत समझो। इन्होंने मेरे तेईस-तेईस अक्षौहिणी दल का सत्रह बार संहार किया है। जब मैं अठारहवीं बार फिर इनसे युद्ध करने गया, उस समय ये दोनों भाई बिना युद्ध किए ही, मेरे सामने से भागकर एक पर्वत पर जा चढ़े। जब मैंने उस पर्वत में आग लगवा दी तो ये वहाँ से किसी प्रकार बचकर निकल गये तथा अब द्वारका में जाकर रह रहे हैं। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे हमारी लज्जा न जाने पावे।" जरासन्ध के ये वचन सुनकर रुक्माग्रज ने अभिमानपूर्वक कहा—"हे जरासन्ध! तुम इनसे इतने भयभीत क्यों हो रहे हो?" मैं इन्हें भली भाँति जानता हूँ। ये वृन्दावन में उछल-कूदकर गौएँ चराया करते थे। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। उन्हें तो अकेले हम ही हटा देंगे।"

हे परीक्षित! शिशुपाल तथा जरासन्ध को धैर्य बँधाकर रुक्माग्रज अपने घर लौट आया, परन्तु उन दोनों ने बड़ी चिन्ता में रात काटी। प्रातःकाल उधर तो बारात निकलने की तैयारियाँ हुईं और इधर राजा भीष्मक के घर मंगलाचार होने लगे। जब चार घड़ी दिन रहा, तब एक सहस्र सहेलियाँ गाती-बजाती हुईं, रुक्मिणी को साथ लेकर, देवी-पूजन करने के लिए चल दीं। उस समय शिशुपाल ने यह विचार करके कि कहीं श्री कृष्णचन्द्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जी रुक्मिणी को जबर्दस्ती उठाकर न ले जावें, अपने पचास सहस्र शूर-वीर उसकी रक्षा करने के लिए साथ कर दिये। उस समय सहेलियों के मध्य में चलती हुई रुक्मिणी ऐसी सुशोभित हो रही थी, जैसे तारागणों के बीच में चन्द्रमा शोभित होता है। उन्हें चारो ओर से घेरे हुए, काले वस्त्र पहिने, शिशुपाल तथा जरासन्ध के सैनिक ऐसे लगते थे मानो काली घटा ने उन सबको घेर रक्खा हो। अस्तु, देवी के मन्दिर में पहुँचकर रुक्मिणी ने उनका विधिपूर्वक पूजन किया तथा हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की कि हे गौरी! मैंने बाल्यकाल से ही आपकी सच्चे मन से पूजा की है, अतः आप आज मुझे मनोवांछित फल प्राप्त होने का वरदान दीजिए। तब अन्य सखियों ने भी हाथ जोड़कर देवी से इस प्रकार प्रार्थना की कि हे अम्बिके! आप ऐसी कृपा कीजिए, जिससे हमारी राजकुमारी का मनोरथ पूर्णता को प्राप्त हो। तदुपरान्त पूजा-परिक्रमा करके रुक्मिणी जब मन्दिर से बाहर निकली उस समय वह श्री श्यामसुन्दर से मिलने की आशा किये हुए हाथी के समान मन्द गति से राजमन्दिर की ओर लौटने लगी। उसी समय आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी त्रिभंगी छवि किये, रथ पर सवार हो, वहाँ आ पहुँचे। तब उनके रथ की ध्वजा देखते ही एक सखी ने प्रसन्न होकर रुक्मिणी से इस प्रकार कहा—"हे सखी! देखो, श्री श्यामसुन्दर आ पहुँचे हैं।" सखी के मुख से यह वचन सुनकर जब रुक्मिणी ने प्रसन्न हो अपने मुख से घूँघट उठाया तो उन्हें श्री मुरलीमनोहर अपने सामने ही खड़े हुए दिखाई दिये। उस समय श्री रुक्मिणी की सुन्दरता की झलक देखने के कारण जरासन्ध तथा शिशुपाल के शूर-वीरों के हाथ से अस्त्र-शस्त्र छूटकर पृथ्वी पर जा गिरे। यह देखकर श्री वृन्दावनविहारी ने हँसते हुए अपना रथ रुक्मिणी के बिलकुल समीप ले जाकर खड़ा कर दिया। तदुपरान्त जैसे ही रुक्मिणी ने अपने मोहनप्यारे से भेंट करने के लिए लजाते हुए हाथ बढ़ाया वैसे ही श्री श्यामसुन्दर ने रुक्मिणी को अपने बायें हाथ से पकड़कर रथ में बैठा लिया तथा शङ्ख बजाते हुए आगे बढ़ चले।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! उस समय रुक्मिणी अपने व्रत-पूजन आदि का सम्पूर्ण फल प्राप्त करके पिछले सब शोक भूल गई। जरासन्ध तथा शिशुपाल के शूर-वीर मुँह ताकते ही रह गये तथा श्री श्यामसुन्दर उन सबके बीच में से रुक्मिणी को उठाकर इस प्रकार ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये, जैसे सिंह गीदड़ों के झुण्ड में निर्भयतापूर्वक घुसकर अपना आहार उठा लाता है। अस्तु, जब श्री श्यामसुन्दर का रथ वहाँ से बारह कोस दूर निकल गया, तब सब योद्धागण भी चैतन्य होकर उनके पीछे-पीछे दौड़े। उस समय बलरामजी भी यह देखकर कि श्री कृष्णजी रुक्मिणी को रथ पर बैठाकर द्वारका की ओर चले जा रहे हैं, अपनी सेना को साथ लेकर उनकी रक्षा करने के लिए समीप जा पहुँचे। उस समय रुक्मिणी को घबराई हुई देखकर श्रीहरि ने इस प्रकार कहा—"हे रुक्मिणी! तू चिन्तित मत हो। मैं द्वारका पहुँचकर पहिले तो तेरे साथ शास्त्रानुसार विवाह करूँगा तत्पश्चात् तेरा मनोरथ पूर्ण करूँगा।" इतना कहकर श्री मुरलीमनोहर ने अपने कण्ठ की माला उतारकर रुक्मिणी को पहिना दी, तब उसके मन का सम्पूर्ण भय नष्ट हो गया।"

चौवनवाँ अध्याय

जरासन्ध तथा रुक्माग्रज आदि का श्री श्याम-बलराम से युद्ध

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जब श्री श्यामसुन्दर रुक्मिणी को हर ले गये तथा शिशुपाल आदि को यह समाचार मिला, उस समय जरासंध, दन्तवक्र आदि बराती राजा अपनी-अपनी सेना लेकर श्री मुरलीमनोहर के पीछे दौड़े। उन्होंने परस्पर यह कहा कि हमारे सामने यादव का पुत्र रुक्मिणी को हरकर ले जाय, इससे अधिक लज्जा की बात और कोई नहीं हैं, अतः हमें इसका बदला लेना चाहिए। ऐसा कहते हुये वे श्री कृष्णजी के रथ के समीप जा पहुँचे तथा ललकार कर, इस प्रकार कहने लगे कि पीठ दिखाकर जाना शूर-वीर का धर्म नहीं है, सो तुम रथ को रोककर हमसे युद्ध करो। यों भागे कहाँ चले जा रहे हो? यह सुनकर श्री कृष्णजी ने रथ रोक लिया तथा बलरामजी अपनी सेना-सहित उनसे युद्ध करने लगे। उस घोर युद्ध को देखकर जब रुक्मिणी अपने मन में बहुत घबराने लगीं, उस समय श्री कृष्णजी ने धैर्य बँधाते हुए इस प्रकार कहा कि हे रुक्मिणी! तू चिन्ता मत कर, ये सब शत्रु एक क्षण में मार डाले जायेंगे। इतने पर भी जब रुक्मिणी को धैर्य नहीं हुआ तब श्री श्यामजी तो रथ को एक ओर खड़ा करके युद्ध का कौतुक देखने लगे और बलरामजी ने अपने हल-मूसल द्वारा सम्पूर्ण शत्रु-सेना को पलभर में ही इस प्रकार काट डाला जिस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसान खेत को काट डालते हैं। उस समय अपनी सेना का संहार देखकर जरासन्ध तथा दन्तवक्र आदि रणभूमि से भागकर शिशुपाल के पास लौट आए।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! रण में विजय प्राप्त होने पर देवताओं ने आकाश से श्री बलरामजी पर पुष्पों की वर्षा की। उस समय शिशुपाल ने अपने साथी राजाओं से इस प्रकार कहा कि इस लज्जापूर्ण जीवन से तो मृत्यु अच्छी है। कृष्णचन्द्र द्वारा रुक्मिणी के हर लिये जाने पर मैं तो संसार में कहीं मुख दिखाने योग्य भी नहीं रहा। तब शिशुपाल की बात सुनकर जरासन्ध ने यह कहा—"हे राजन्! बुद्धिमानों को जय-पराजय का हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए। यह सुख-दुःख आदि सम्पूर्ण संसारी व्यवहार स्वप्न के समान मिथ्या है। देखो, मैं स्वयं भी इन लड़कों से सत्रह बार हारा परन्तु मुझे उसका कोई दुःख नहीं हुआ। अठारहवीं बार जब ये मेरे सामने युद्ध भूमि से भाग गये तो मैंने उसका कोई हर्ष भी नहीं मनाया। ये दोनों बालक न जाने किनके अवतार हैं कि इनकी लीला ही कुछ समझ में नहीं आती। अतः तुम्हें भी अपने समय को देखते हुए इस समय चिन्ता को त्याग देना चाहिए। फिर कभी अवसर मिले तो कसर निकाल लेना।" जरासन्ध के इस प्रकार समझाने पर शिशुपाल ने अपने मन में धैर्य धारण किया। तदुपरान्त वह तथा उसके साथी सभी राजा बची-खुची सेना को साथ लेकर अपने-अपने घर लौट गये।

हे परीक्षित! जब रुक्माग्रज ने यह समाचार सुना तो उसने अत्यन्त क्रोध करके अपनी सभा में बैठकर यह कहा कि यादव का लड़का मेरी बहिन को उठाकर ले जाय, इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या होगी? मैं अभी उन दोनों ढीठ भाइयों को पकड़कर लिये आता हूँ, अन्यथा कभी यहाँ आकर अपना मुख नहीं दिखाऊँगा। इतना कहकर वह एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर श्री श्यामसुन्दर से लड़ने के लिए चल दिया। वहाँ उसने अपनी सेना को तो बलभद्रजी तथा उनकी सेना से लड़ने के लिए छोड़ा और आप श्री कृष्णजी के पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगा—"अरे अहीर! तू मेरी बहिन को लेकर कहाँ भागा चला जा रहा है? एक क्षण को ठहर तो सही। तू मुझे जरासन्ध अथवा शिशुपाल मत समझना। वे क्षत्रिय नहीं थे। अब मेरे सामने से तेरा जीवित बचकर जाना अत्यन्त कठिन है।" इतना कह-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रुक्माग्रज ने श्री श्यामसुन्दर के ऊपर अपने तीरों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। परन्तु श्री मुरलीमनोहर ने अपने बाणों से उसके सब प्रहारों को निष्फल कर दिया। तदुपरान्त श्री श्यामजी ने अपने चार बाणों से उसके रथ के चारों घोड़ों को मार डाला तथा एक बाण से सारथी को मूर्च्छित कर दिया। फिर एक बाण से उसके रथ की ध्वजा काटकर दूसरे बाण से उसके धनुष को काट गिराया। तदुपरान्त उसने गदा आदि जितने शस्त्र चलाये वे सब भी निष्फल कर दिये। फिर श्री मुरलीमनोहर हाथ में ढाल तलवार ले रथ से नीचे कूद पड़े तथा रुक्माग्रज को पकड़कर जैसे ही उसका वध करने को तत्पर हुए, वैसे ही रुक्मिणी ने उनका हाथ रोकते हुए कहा—"हे स्वामी! जिस प्रकार आपको श्री बलरामजी प्रिय हैं उसी प्रकार मुझे भी अपना यह भाई प्यारा है। अतः जिस प्रकार ज्ञानी लोग पागलों तथा बालकों की बातों पर कुछ ध्यान नहीं देते, उसी प्रकार आप इसे भी मूर्ख जानकर, इसका अपराध क्षमा कीजिए। यदि आप इसका वध कर डालेंगे तो मेरे पिता को, जो आपके भक्त हैं, बहुत दुःख होगा तथा इसकी पत्नी भी अत्यन्त दुखी होगी। अतः हे नाथ! राजा भीष्मक आपके श्वशुर होकर अपने पुत्र को कष्ट उठावें, ऐसा करना आपको उचित नहीं है।" रुक्मिणी के ऐसे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने रुक्माग्रज को जान से न मारकर, उसे अपने रथ से बाँध लिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इधर तो श्री कृष्णजी ने रुक्माग्रज की यह दशा की, उधर बलरामजी उसकी सब सेना को मार-भगाकर, श्रीहरि के पास इस प्रकार आ पहुँचे, जिस प्रकार ऐरावत हाथी कमल-वन को रौंदता हुआ बढ़ा चला आता है। जब रुक्माग्रज को बँधा देखा तो अन्य यदुवंशी तो हँसने लगे, परन्तु बलरामजी ने श्री मन-मोहन प्यारे से यह कहा कि हे भाई! तुमसे बड़ी भूल हुई जो तुमने अपने साले को इस प्रकार बाँध रक्खा है। इससे तो इसे मार डालना ही उचित था। इष्ट-मित्रों तथा सम्बन्धियों के अपराधी होने पर भी उन्हें मारना अथवा बाँधना उचित नहीं है। अतः अब तुम इसे शीघ्र छोड़ दो।" बलरामजी की बात सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने रुक्माग्रज को बन्धन से मुक्त कर दिया। उस समय बलरामजी ने रुक्मिणी को सन्तोष देने के लिए यह कहा—"हे राजपुत्री! तुम्हारे भाई की जो दशा हुई, उसमें मुरलीमनोहर का कोई दोष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं है। यह सब इसके पूर्वजन्म के कर्मों के कारण ही हुआ है। रुक्माग्रज के भाग्य में जो लिखा था, वह हुआ, ऐसा जानकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।" तब रुक्माग्रज बिदा होने के समय श्री कृष्णचन्द्रजी के चरणों में अपना मस्तक रखकर इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! मैं आपकी महिमा नहीं जानता था, इसी लिए मुझसे ऐसा अपराध हुआ। अब आप कृपा कर मुझे क्षमा कर दीजिए। आपको तो ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी नहीं पहिचान पाते हैं, फिर भला मैं अज्ञानी आपको किस प्रकार जान सकता हूँ?" इस प्रकार स्तुति करके जब रुक्माग्रज बिदा हो गया तब श्री कृष्णजी ने भी अपना रथ द्वारका की ओर बढ़ा दिया। हे परीक्षित! रुक्माग्रज अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार लौटकर कुण्डिनपुर नहीं गया। उसने कुण्डिनपुर के पास ही 'भोजकट' नामक एक अन्य नगर बसा लिया तथा अपनी पत्नी तथा पुत्रों को भी वहीं बुलाकर राजा भीष्मक से मन में शत्रुता रख, वहीं रहने लगा। उधर जब श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी द्वारकापुरी के समीप पहुँचे तो राजा उग्रसेन तथा वसुदेव, सब लोगों को साथ लेकर, उनकी अगवानी करने आये तथा अत्यन्त सम्मानपूर्वक राजमन्दिर में लिवा ले गये। रुक्मिणी की सुन्दरता को देखकर सब स्त्रियों को अपार आनन्द हुआ तथा घर-घर मङ्गलाचार हुए। तदुपरान्त वसुदेवजी ने अपने पुरोहित गर्ग मुनि को बुलाकर विवाह का मुहूर्त्त निश्चित किया तथा दुर्योधन आदि अनेक राजाओं को निमन्त्रण भेजकर श्री श्यामसुन्दर के विवाह के लिए द्वारका में आमन्त्रित किया। जब राजा भीष्मक ने अपनी कन्या के विवाह का समाचार सुना तो उन्होंने कन्यादान का संकल्प कर दहेज में बहुत से रत्न, आभूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, पालकी, दास, दासी, द्रव्य आदि को अपने पुरोहित के द्वारा वसुदेवजी के पास भिजवा दिया। जब द्वारकापुरी में देश-देश के राजा आकर एकत्रित हुए तथा राजा भीष्मक का पुरोहित भी दहेज लेकर पहुँच गया, तब गर्ग मुनि ने शास्त्रानुसार शुभ लग्न में बड़ी धूम-धाम तथा आनन्दपूर्वक श्री कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह करा दिया। उस समय के सुख तथा शोभा का वर्णन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। स्त्रियों ने मंगल-गीत गाए, देवताओं ने पुष्प बरसाये, अप्सराओं ने आकाश में आकर नृत्य किया। गन्धर्वों ने गीत सुनाए तथा त्रिभुवन के सब जीवों ने जय-जयकार किया। जब विवाह सम्पूर्ण हो चुका तो राजा उग्रसेन ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मणों तथा याचकों को दान-दक्षिणा एवं मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर पूर्णतः सन्तुष्ट कर दिया। किसी को कोई इच्छा शेष न रही। फिर सब राजाओं को सम्मानपूर्वक बिदाई दी।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! रुक्मिणी के द्वारका में आने पर प्रत्येक घर में लक्ष्मी का निवास हो गया तथा सब राजा श्री श्यामजी के अधीन रहकर अपने-अपने देश की भेंटें भेजने लगे। रुक्मिणी-मङ्गल की इस कथा को जो कोई सच्चे मन से कहता, सुनता अथवा पढ़ता है, उसे मुक्ति एवं तीर्थस्नान का फल प्राप्त होता है।"

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्न के जन्म का वृत्तान्त

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! शिवजी ने कामदेव को जिस प्रकार भस्म किया था, वह कथा अब मुझे सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! एक दिन श्री शिवजी कैलाश पर्वत पर बैठे हुए श्री नारायणजी का ध्यान धर रहे थे, उसी समय कामदेव ने आकर उन्हें ऐसा सताया कि अचानक ही उनका ध्यान भङ्ग हो गया। उस समय जब उन्होंने क्रोध करके अपने तीसरे नेत्र को खोला तथा कामदेव पर दृष्टि डाली तो वह वहीं जलकर भस्म हो गया। यह देखकर कामदेव की पत्नी 'रति' अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करने लगी। उस समय श्री शिवजी ने दयालु होकर उससे यह कहा कि हे रति! तू चिन्तित मत हो। कुछ समय बाद द्वापर युग में जब कृष्णावतार होगा, तब तेरा पति रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर, शम्बरासुर के घर पहुँचेगा। अतः तू शम्बरासुर के यहाँ जाकर रसोई बनाने का कार्य कर। वहाँ तुझे तेरा पति मिल जायगा। यह सुनकर रति 'मायावती' नामक एक वृद्धा स्त्री का स्वरूप बनाकर उस दैत्य के घर जाकर रसोई बनाने का कार्य करने लगी। कुछ समय बाद रुक्मिणी के गर्भ से कामदेव ने जन्म लिया। वह बालक ऐसा सुन्दर था कि उसके तेज को देखकर सूर्य देवता को भी लज्जा आती थी। जब राजा उग्रसेन तथा वसुदेव ने ज्योतिषियों एवं पण्डितों को बुलाकर उसके ग्रह दिखवाये तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि यह बालक रूप, गुण तथा बल में श्री कृष्णजी के ही समान होगा तथा कुछ दिन जल में निवास करके,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने शत्रु को मारकर, फिर अपने माता-पिता के पास आ जायगा।" इतना कहकर ब्राह्मण उस बालक का नाम 'प्रद्युम्न' रख दान-दक्षिणा लेकर चले गये। तदुपरान्त श्री नारायणजी की इच्छा से नारद मुनि ने 'शम्बर' नामक दैत्य के पास जाकर यह कहा कि तेरे शत्रु कामदेव ने प्रद्युम्न नाम से श्री कृष्णचन्द्रजी के घर अवतार लिया है। सो वह बारह वर्ष की आयु का होने पर तुझे मार डालेगा। जब इतना कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये, उस समय शम्बर ने अपने मन में यह विचार किया कि यदि मैं अभी प्रद्युम्न को उठाकर समुद्र में फेंक दूँ, तो मेरी चिन्ता दूर हो जायगी। यह विचार कर एक दिन वह वायु का स्वरूप बनकर रुक्मिणी के भवन में जा घुसा तथा अठारह दिन की अवस्थावाले प्रद्युम्न को उठाकर उड़ गया। उसे आते-जाते किसी ने भी नहीं देखा। अस्तु, जब रुक्मिणी ने बालक को शय्या पर नहीं देखा तो वे रोने लगीं तथा अन्य सब लोग भी बड़ा आश्चर्य करने लगे। उधर शम्बरासुर प्रद्युम्न को ले जाकर समुद्र में डाल आया। वहाँ श्री नारायणजी की इच्छा से एक मछली उसे निगल गई तथा तीन वर्ष तक अपने पेट में ही पालती रही। तदुपरान्त एक केवट उस मछली को पकड़ लाया तथा उसे भेंट देने के लिए उसी शम्बरासुर के पास ले पहुँचा। शम्बर ने उस मछली को अपने रसोई घर में भिजवा दिया। वहाँ जब उस मछली का पेट चीरा गया तब उसमें से एक अत्यन्त सुन्दर बालक निकला। तब रसोई घर के सब लोग उसे मायावती के पास ले पहुँचे। मायावती ने उसे प्रसन्नतापूर्वक लेकर तथा शम्बरासुर से छिपाकर पालन करना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद जब शम्बरासुर की दृष्टि उस पर पड़ी तो उसने उस बालक की सुन्दरता पर मुग्ध होकर मायावती से यह कहा कि तू इसका अच्छी तरह पालन-पोषण कर। उन्हीं दिनों नारदजी ने मायावती के पास पहुँचकर उसे यह बता दिया कि यह बालक तेरा पति कामदेव है। इसके माता-पिता द्वारकावासी रुक्मिणी तथा कृष्ण हैं। इसे शम्बर दैत्य ने रुक्मिणी के पास से चुराकर समुद्र में डाल दिया था, परन्तु श्री शिवजी की कृपा से यह तेरे पास आ पहुँचा है। यहाँ अपनी बाल्यावस्था व्यतीत करने के पश्चात् यह शम्बरासुर को मारकर तुझे द्वारका ले जायगा। यह सुनकर मायावतीरूपी रति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब वह उस बालक के प्रति अपने मन में पति-भाव रखकर उसका बड़े प्रेम से पालन-पोषण करने लगी। वह ज्यों-ज्यों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सयाना होता जाता था, त्यों-त्यों रति अपने पति को प्राप्त करने की आशा में अधिक प्रसन्न होती थी। जब प्रद्युम्न नौ-दस वर्ष का हुआ तथा कुछ-कुछ सांसारिक बातों को समझने लगा, तब एक दिन वह मायावती को शृङ्गारित एवं कटाक्ष करते हुए देखकर इस प्रकार कहने लगा—"हे माता! तुम मेरी माता होकर, मुझे पति-भाव से क्यों देखती हो?" यह सुनकर रति ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"हे पति! मैं तुम्हारी पत्नी रति हूँ।" इतना कहकर उसने प्रद्युम्न को सब हाल सुना दिया। उस दिन से प्रद्युम्न मायावती को अपनी पत्नी जानकर शम्बरासुर को अपना शत्रु मानने लगा। एक दिन रति (मायावती) ने उससे इस प्रकार कहा—"हे पति! शम्बर दैत्य माया-युद्ध बहुत जानता है, अतः तुम्हें भी यह उचित है कि तुम उसको मारकर अपने माता-पिता के समीप पहुँचने के लिए मुझसे सब विद्याएँ सीख लो, जिससे तुम्हें कोई कष्ट न उठाना पड़े। जब प्रद्युम्न ने इस बात को स्वीकार किया, तब मायावती ने उसको बारह वर्ष की अवस्था तक उसे सब विद्याएँ सिखा दीं। तदुपरान्त एक दिन वह खेलता हुआ शम्बरासुर की सभा में जा पहुँचा। उस समय शम्बर ने किसी से यह कहा कि मैंने इस बालक को अपने पुत्र के समान पाला है। यह सुनकर प्रद्युम्न ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, ताल ठोंककर, इस प्रकार कहा—"अरे शम्बर! तू मुझे अपना पुत्र मत समझ, मैं तेरा शत्रु हूँ। तू मुझसे युद्ध करके अपनी शक्ति को देख ले।" यह सुनकर शम्बर ने हँसते हुए अपने सभासदों से इस प्रकार कहा कि देखो, जिसे मैंने दूध पिलाकर पाला है, वह मेरे लिए दूसरा प्रद्युम्न बन रहा है। फिर उसने प्रद्युम्न से कहा—"हे पुत्र! क्या तेरी मृत्यु आ पहुँची है, जो तू मुझसे ऐसी कठोर बातें कहता है?" प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—"अरे दुष्ट! मैं ही प्रद्युम्न हूँ। तूने मुझे समुद्र में फेंककर मेरे प्राण लेने चाहे थे परन्तु श्री नारायणजी की कृपा से मैं तुझसे अपना बदला चुकाने के लिए फिर आ पहुँचा हूँ।" यह सुनकर शम्बरासुर अत्यन्त चिन्ता तथा क्रोध करके अपनी सेना साथ लेकर, प्रद्युम्न से युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकल आया तथा अपने हाथ में गदा उठाकर, ललकारता हुआ, इस प्रकार कहने लगा कि देखें, अब तेरे प्राण कौन बचाता है? इतना कहकर शम्बरासुर ने ज्योंही गदा चलाई, त्योंही प्रद्युम्न ने उसे अपनी गदा मारकर गिरा दिया। यह देखकर शम्बरासुर ने अग्निबाण छोड़ा तो उसे प्रद्युम्न ने वारि-बाण चलाकर बुझा दिया। निदान शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को मारने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए अनेक प्रयत्न किए, परन्तु प्रद्युम्न ने उसे हर बार पराजित करके अन्त में अपनी तलवार से उसका सिर काट डाला तथा सम्पूर्ण सेना को भी पलभर में मार दिया। उस समय देवतागण आकाश से पुष्प-वर्षा करने लगे। अस्तु, जब प्रद्युम्न ने शम्बरासुर को मारकर उस नगर में श्री कृष्णचन्द्रजी के नाम की दुहाई फेर दी, तब रति भी अत्यन्त सुन्दर बारह वर्ष की आयु का स्वरूप धारण कर, अपने पति के साथ विमान पर बैठकर द्वारका जा पहुँची। जिस समय वे दोनों रुक्मिणी के भवन में विमान से उतरकर खड़े हुए, उस समय वे स्त्रियाँ, जिनका विवाह श्री कृष्णजी के साथ, प्रद्युम्न के जन्म के बाद हुआ था, प्रद्युम्न को श्री कृष्ण समझकर, अपने मन में यह सोचने लगीं कि श्री श्यामसुन्दर यह कोई नई सुन्दरी लेकर आये हैं। परन्तु किसी ने यह भेद न जाना कि यह प्रद्युम्न है। जब प्रद्युम्न ने उन स्त्रियों से यह पूछा कि हमारे माता-पिता कहाँ हैं तो सबको बड़ा अचरज हुआ। फिर जब उन्होंने प्रद्युम्न के वक्षस्थल पर भृगुलता के चिह्न को देखा तो उसे वहाँ न पाकर, उन्हें यह ज्ञान हुआ कि यह श्री कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष है। उस समय प्रद्युम्न के मुख को देखकर रुक्मिणी ने अन्य स्त्रियों से यह कहा कि उस स्त्री के धन्य भाग्य हैं, जिसने इस बालक को जन्म दिया है। यह स्त्री भी इसी के समान सुन्दर है। यदि आज मेरा पुत्र जीवित होता तो वह भी इतना ही बड़ा होता। क्या पता मेरे भाग्य से यह वही बालक जीवित लौट आया हो? यह सोचकर रुक्मिणी ने प्रद्युम्न से पूछा—"हे बालक! तुम कहाँ के रहनेवाले हो और तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम है?" इतना कहते-कहते रुक्मिणी के स्तनों से दूध बहने लगा तथा बायाँ नेत्र फड़कने लगा। यह चिह्न देखकर उन्हें मन में विश्वास हुआ कि यह मेरा ही पुत्र है परन्तु पति की आज्ञा के बिना, इच्छा होते हुए भी उसे गोद में लेने का साहस नहीं हुआ। उसी समय वहाँ श्री कृष्णचन्द्रजी भी वसुदेव-देवकी के साथ आ पहुँचे परन्तु उन्होंने भी कोई हाल नहीं कहा। तदुपरान्त नारदजी ने वहाँ आकर सब हाल कह सुनाया। उस समय रुक्मिणी ने अत्यन्त प्रेममग्न हो दौड़कर प्रद्युम्न को अपने हृदय से लगा लिया तथा बार-बार उसका मुख एवं मस्तक चूमने लगीं। उस समय उन्हें जो आनन्द मिला वह कहा नहीं जा सकता। तदुपरान्त रति को भी अपनी गोद में बैठाकर बहुत प्यार किया। पुत्र तथा पुत्र-वधू को देखकर श्री कृष्णजी को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि वे सब हाल जानते थे, फिर भी उन्होंने अब तक रुक्मिणी को कुछ नहीं बताया था। तदुपरान्त प्रद्युम्न के हाथ से बहुत दान दिलवाया गया। उस समय द्वारकावासी सभी लोग आनन्दित होकर मङ्गलाचार करने लगे। फिर एक दिन शुभ मुहूर्त्त में वसुदेवजी ने बड़ी धूमधाम से प्रद्युम्न का विवाह रति के साथ कर दिया।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार कामदेव ने पुनर्जन्म लेकर अपनी पत्नि रति को सुख पहुँचाया।"

———

छप्पनवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का जाम्बवन्ती तथा सत्यभामा से विवाह करने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिन दिनों प्रद्युम्न शम्बरासुर के यहाँ पल रहा था, उन्हीं दिनों 'सत्राजित्' नामक एक यादव ने पहिले तो श्री कृष्णजी को मणि-चोरी करने का मिथ्या दोष लगाया, फिर लज्जित होकर उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।" यह सुनकर परीक्षित ने कहा—"हे कृपासिन्धो! सत्राजित् ने वह मणि कहाँ से पाया तथा श्री श्यामसुन्दर को उसकी चोरी लगाकर फिर उनके साथ अपनी कन्या का विवाह क्यों कर दिया, यह वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! द्वारकापुरी में सत्राजित् नामक एक यादव रहता था। उसने बहुत दिनों तक श्री सूर्यनारायण का ध्यान एवं तप किया, जिससे प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उसे 'स्यमन्तक' नामक एक मणि देकर यह कहा कि यदि तुम इस मणि को मेरे समान जानकर नित्य प्रति सच्चे मन से पूजन एवं ध्यान किया करोगे तो तुम्हें अत्यन्त सुख प्राप्त होगा। जिस नगर अथवा घर में यह मणि रहेगी, वहाँ कोई दरिद्र न होगा। सभी ऋद्धि-सिद्धियाँ वहाँ सदैव उपस्थित रहेंगी। इतना कहकर जब श्री सूर्यनारायण अन्तर्धान हो गये, तब सत्राजित् उस मणि को अपने गले में बाँधकर अपने घर लौट आया। तदुपरान्त ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त पूछ, उसे रत्नजटित सिंहासन पर रखकर नियम तथा श्रद्धापूर्वक पूजने लगा। हे परीक्षित! उस मणि का यह प्रभाव था कि जो कोई श्रद्धा तथा नियमपूर्वक उसकी पूजा करता था, उसे वह मणि बीस मन सोना प्रतिदिन देती थी। अस्तु, उस मणि के प्रभाव से सत्राजित् कुछ दिन में ही इतना धनाढ्य हो गया कि वह अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामने किसी को कुछ न समझने लगा। एक दिन वह अत्यन्त अभिमान-पूर्वक उस मणि को गले में बाँधकर श्री श्यामसुन्दर की सभा में जा पहुँचा। जब यदुवंशियों ने सूर्य के समान प्रकाश फैलाते हुए उसे दूर से आते देखा तो वे श्री कृष्णजी से यह कहने लगे कि हे श्री कृष्णचन्द्रजी ! ऐसा प्रतीत होता है कि श्री सूर्यनारायण आपके दर्शन करने के लिये यहाँ चले आ रहे हैं। यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें बतलाया कि यह सूर्यनारायण नहीं; अपितु, अपने कण्ठ में श्री सूर्यनारायण की दी हुई मणि बाँधकर सत्राजित् यदुवंशी आ रहा है। अस्तु, जब सत्राजित् सभा में आकर बैठ गया, उस समय श्री श्यामसुन्दर उसकी मणि की ओर देखने लगे। यह देखकर सत्राजित् अपने मन में कुछ विचार करके वहाँ से उठकर चल दिया। इसी प्रकार कभी-कभी यह श्री कृष्णजी की सभा में जाया करता था। एक दिन सब यदुवंशियों ने परस्पर सम्मत करके श्री कृष्णजी से यह कहा—"हे प्रभो ! आप इस मणि को सत्राजित् से लेकर राजा उग्रसेन को दीजिए, क्योंकि यह उसे शोभा नहीं देती है।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने एक दिन हँसते हुए सत्राजित् से इस प्रकार कहा—"हे सत्राजित् ! राजा को सब मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है, अतः जिस व्यक्ति के पास जो श्रेष्ठ वस्तु हो, उसे वह वस्तु राजा को दे देनी चाहिए। तुम्हारे पास एक श्रेष्ठ वस्तु मणि है, अतः तुम भी उसे राजा उग्रसेन को भेंट करके संसार में यश प्राप्त करो।" श्रीकृष्णजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर सत्राजित् कुछ उत्तर न दे, उदास हो, अपने घर लौट आया। तब श्रीहरि की कृपा से उस मणि का गुण भी नष्ट हो गया। अस्तु, घर जाकर सत्राजित् ने अपने भाई 'प्रसेन' से यह कहा कि हे भाई ! आज श्री कृष्णचन्द्रजी ने मुझसे यह कहा था कि तुम अपनी मणि राजा उग्रसेन को दे दो परन्तु मैंने नहीं दी। यह सुनकर प्रसेन ने श्री श्यामसुन्दर के प्रति क्रोध करके वह मणि सत्राजित् से लेकर अपने गले में बाँध ली। तदुपरान्त जब एक दिन शिकार खेलने के लिए वन में गया तो वहाँ अपने साथियों से दूर होकर एक पर्वत की कन्दरा के समीप जा पहुँचा। उस कन्दरा में एक सिंह रहता था। उसने जब प्रसेन को देखा तो घोड़े सहित उसे मारकर उसकी मणि छीन ली। उसी समय श्री रामचन्द्रजी के परम भक्त 'जाम्बवान्' नामक रीछ ने उस स्थान पर पहुँचकर उस सिंह को भी मार डाला तथा मणि को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेकर अपनी कन्दरा में चला गया। उस मणि के प्रकाश से जाम्बवान् की अँधेरी कन्दरा में सर्वत्र प्रकाश फैल गया।

हे परीक्षित! प्रसेन के साथियों ने घर लौटकर जब सत्राजित् को यह समाचार दिया कि तुम्हारा भाई एक हिरन के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ वन में न जाने कहाँ जा पहुँचा तथा बहुत ढूँढ़ने पर भी उसका हमें कोई पता नहीं लगा है, तो सत्राजित् ने अपने मन में यह विचार किया कि उस दिन श्री कृष्णचन्द्र के माँगने पर मैंने उन्हें मणि नहीं दी थी, अतः यह सम्भव है कि उन्हींने मणि पाने के लिए मेरे भाई को वन में मार डाला होगा। यह सोचकर वह दिन-रात उदास रहने लगा। जब एक दिन उसकी स्त्री ने उदासी का कारण पूछा तो सत्राजित् ने उसे यह उत्तर दिया कि हे प्रिये! स्त्रियों के पेट में कोई बात पचती नहीं है, इसलिए मैं तुम्हें अपनी चिन्ता का कारण बताने में असमर्थ हूँ। यह सुनकर जब उसकी स्त्री बहुत झुँझलाई और यह बोली कि मैंने अब तक तुम्हारी कौन-सी बात अन्य लोगों से कही है?—तब सत्राजित् ने उससे इस प्रकार कहा कि हे प्रिये! सच-झूठ की तो परमेश्वर जानें, परन्तु मेरे मन में यह सन्देह होता है कि श्री कृष्णचन्द्र ने ही मणि पाने के लिए मेरे भाई प्रसेन को मार डाला है। इसी चिन्ता के कारण मैं सदैव चिन्तित रहता हूँ। यह सुनकर सत्राजित् की स्त्री उस समय तो चुप हो रही, परन्तु प्रातःकाल होते ही उसने अपनी सभी सखी-सहेलियों से यह कहा कि हे आली! तुम किसी से कहना तो नहीं, परन्तु मैं तुम्हें एक बात यह बताती हूँ कि मेरे स्वामी के कहे अनुसार श्री कृष्णचन्द्रजी ने ही प्रसेन को मारकर उससे स्यमन्तक मणि छीन ली है।

हे परीक्षित! स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं ठहरती। सो उन स्त्रियों ने यह बात सबसे कह सुनाई। धीरे-धीरे घर-घर में जब बात फैल गई तो यह चर्चा श्री कृष्णजी के कानों में भी पड़ी। इस मिथ्या कलङ्क को सुनकर श्री श्यामसुन्दर पहिले तो कुछ उदास हुए, फिर राजा उग्रसेन तथा वसुदेव आदि अन्य यदुवंशियों के पास जाकर इस प्रकार कहने लगे कि महाराज! मुझे सब लोग यह मिथ्या कलङ्क लगाते हैं कि मैंने प्रसेन को मारकर सत्राजित् की स्यमन्तक मणि ले ली है, अतः यदि आप आज्ञा दें तो मैं प्रसेन तथा उस मणि का कुछ पता लगाकर अपने को इस कलङ्क से छुड़ाऊँ। यह सुनकर जब उग्रसेन ने कोई उत्तर नहीं दिया तब श्री कृष्णजी दस-पन्द्रह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदुवंशियों तथा प्रसेन के साथ शिकार खेलने के लिए गये हुए कुछ सेवकों को साथ लेकर, उसे ढूँढ़ने के लिए वन में जा पहुँचे।

हे परीक्षित! वन में जाकर वे प्रसेन के घोड़े तथा हिरण के पाँव के चिह्नों को देखते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ प्रसेन को सिंह ने मार डाला था। उस स्थान पर सिंह के पंजों के निशान देखकर यह तो निश्चित हो गया कि प्रसेन को सिंह ने मार डाला है, परन्तु मणि का वहाँ कोई भी पता नहीं चला। तदुपरान्त वे लोग सिंह के पंजों के निशान देखते हुए उस कन्दरा के समीप पहुँच गये, जहाँ जाम्बवान् ने सिंह को मार डाला था तथा उसकी लाश पड़ी हुई थी। परन्तु जब वहाँ भी मणि का कोई पता नहीं लगा, तब सब लोग आश्चर्यचकित होकर इस प्रकार कहने लगे कि इस वन में सिंह से भी अधिक शक्तिशाली ऐसा कौन-सा पशु आ गया जो इसे मार कर, मणि को ले, इस कन्दरा में घुस गया है। तब सब लोगों ने श्री कृष्णजी से यह कहा—"हे प्रभो! यहाँ आने से सिद्ध हो गया कि प्रसेन को सिंह ने मारा तथा सिंह को कोई अन्य जन्तु मारकर, उस मणि को ले गया है। इस प्रकार आपका कलङ्क दूर हो गया, सो आप अब घर को लौट चलिए।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने उन्हें उत्तर दिया कि घर लौटने से पहिले हमें इस कन्दरा में घुस कर देखना चाहिए कि अन्ततः उस मणि को कौन ले गया है? यह सुनकर यदुवंशी बोले—"हे प्रभो! हमें तो इस अँधेरी कन्दरा के मुख को देखकर ही भय लग रहा है, अतः इसमें घुसकर प्राण देने की हिम्मत हममें नहीं है। हम आपसे भी यही कहते हैं कि आप इस अँधेरी कन्दरा में न जाकर द्वारका लौट चलिये। वहाँ हम सब लोगों को जाकर यह बता देंगे कि प्रसेन की मृत्यु का हाल हम अपनी आँखों से देख आये हैं, तब आपको कोई कलङ्क नहीं लगायेगा। इतना कहकर जब कोई भी उस कन्दरा में जाने को प्रस्तुत नहीं हुआ, तब श्री श्यामजी ने उनसे यह कहा कि मेरा मन स्यमन्तक मणि को ढूँढ़ने में लगा है, इसलिये मैं अकेला ही इस कन्दरा के भीतर जाता हूँ। तुम लोग बारह दिन तक यहीं बाहर ठहर-कर मेरे लौटने की प्रतीक्षा करना। यदि इस अवधि के भीतर मैं न आ सकूँ तो तुम यहाँ का सब समाचार घर जाकर कह देना।

हे परीक्षित! इतना कहकर श्री कृष्णजी तो कन्दरा के भीतर घुस गये तथा यदुवंशी आदि सबलोग बाहर बैठे रहे। भीतर जाकर श्री कृष्णजी ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाम्बवन्त के रहने का सुन्दर स्थान देखा तथा यह भी देखा कि उसकी परमसुन्दरी कन्या जाम्बवती उस मणि को अपने हाथ में लिए हुए पालने में झूल रही है। यह देखकर जैसे ही श्री कृष्णजी ने मणि को उसके हाथ से छीनना चाहा, वैसे ही एकदासी ने जाम्बवन्त को पुकारा। उस पुकार को सुन, जाम्बवन्त नींद से जगकर श्री श्यामजी के समीप आ, मल्ल-युद्ध करने लगा। अस्तु, निरन्तर सत्ताईस दिन एवं सत्ताईस रात तक वह युद्ध चलता रहा, परन्तु जब भूख-प्यास से व्याकुल एवं श्रमित होकर जाम्बवन्त ने यह देखा कि श्री कृष्णजी के ऊपर उसका कोई बल नहीं चल रहा है तथा उसी समय उनके मुष्टिक-प्रहार करने से वह घुटने टेक कर पृथ्वी पर भी बैठ गया, तो उसने अपने मन में यह विचार किया कि श्री रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण जी के अतिरिक्त किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो कोई मुझे युद्ध में जीत सके, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह श्यामल स्वरूप भी रामचन्द्रजी का ही अवतार है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब जाम्बवन्त को यह ज्ञान प्राप्त हुआ, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने रामचन्द्रजी का स्वरूप धारण कर, जाम्बवन्त को अपना दर्शन दिया। उस स्वरूप का देखते ही जाम्बवन्त गद्गद होकर उनके चरणों में गिर पड़ा तथा हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करते हुए इस प्रकार बोला—"हे प्रभो! आपने बड़ी कृपा की जो पृथ्वी का भार उतारने के लिए यह अवतार ग्रहण करके, मुझे अपना दर्शन दिया है। मुझसे नारदजी यह कह गये थे कि रामचन्द्रजी श्रीश्यामसुन्दर का अवतार लेकर, तेरे स्थान पर आवेंगे, अतः मैं त्रेतायुग से अब तक इस स्थान पर रहकर आपके दर्शन प्राप्त करने की आशा लगाये हुए था, इसलिये आज आपने मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया। हे जगत्पति! आप अव्यक्त, अगोचर, अनादि एवं अनन्त हैं। आपही ने रामचन्द्र का अवतार लेकर अन्यायी रावण का वध करके पृथ्वी का भार उतारा था। आज आपके दर्शन पाकर मैं अपने समान सौभाग्यशाली किसी अन्य को नहीं समझता। हे स्वामी! आपने जिस प्रकार यहाँ पधार कर, मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब आप अपने आने का कारण बताने की कृपा भी करें। इस प्रकार जब जाम्बवन्त ने बहुत स्तुति की, तब श्री मुरलीमनोहर प्रसन्न होकर बोले—"हे जाम्बवन्त! हम तेरी प्रार्थना सुन-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। अब तू हमारे आने का कारण सुन। तेरी पुत्री के हाथ में जो मणि है, उसकी चोरी का कलंक सत्राजित् यादव ने हमें लगाया है। उस कलंक को छुड़ाने के लिए ही हम यहाँ आये हैं, इसलिये तू यह मणि हमें दे दे।" श्री कृष्णजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर जाम्बवन्त ने प्रसन्न होकर कहा—"हे प्रभो! मेरे पास 'स्यमन्तक' तथा 'जाम्बवन्ती' नामक दो मणियाँ हैं। मैं इन दोनों को आपकी भेंट करता हूँ सो आप कृपापूर्वक स्वीकार कीजिए।" यह सुनकर जब श्री श्यामसुन्दर ने स्वीकृति दे दी, तो जाम्बवन्त ने अत्यन्त आनन्दित होकर अपनी कन्या जाम्बवन्ती का विवाह उनके साथ करके, वह मणि दहेज में दे दी।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इधर श्री कृष्णजी तो सत्ताइसवें दिन जाम्बवन्त से युद्ध करने के उपरान्त स्यमन्तक मणि तथा उसकी कन्या को लेकर अपने घर चले, उधर वे यदुवंशी, जिन्हें श्री कृष्णजी कन्दरा के द्वार पर बैठा गये थे। बाहर के स्थान पर चौबीस दिन तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त रोते-पीटते हुए द्वारका में लौट आये। वहाँ पहुँचकर जब उन्होंने सब समाचार राजा उग्रसेन तथा अन्य सभी लोगों को सुनाया तब छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुष श्री मुरलीमनोहर की याद में अत्यन्त विलाप करके सत्राजित् को गालियाँ देने लगे। तदुपरान्त जब उन्होंने क्रोध करके सत्राजित् को मारना चाहा, उस समय बलरामजी ने सबको धैर्य बँधाते हुए कहा कि तुम ऐसा मत करो, श्री श्यामसुन्दर उस मणि का पता लगाकर सकुशल घर लौट आवेंगे। उन्हें मारनेवाला तीनों लोकों में कोई नहीं है। इतने पर भी जब किसी को धैर्य नहीं हुआ तो रुक्मिणी आदि सभी स्त्रियाँ श्री मनमोहन को ढूँढ़ने के लिए घर से बाहर निकल पड़ीं तथा नगर के बाहर एक देवी के मन्दिर में पहुँच श्री श्यामसुन्दर के सकुशल लौटने के लिए मनौती मनाने लगीं। उसी समय श्री मुरलीमनोहर स्यमन्तक मणि तथा जाम्बवन्ती को साथ लिए हँसते हुए राजा उग्रसेन की सभा में जा पहुँचे। उनके दर्शन पाते ही सब लोगों में नये प्राणों का संचार हो गया। तदुपरान्त उन्होंने सत्राजित् को बुलाकर, उसे सब कथा समझाते हुए उसकी मणि उसे वापिस दे दी। उस समय सत्राजित् मणि लेकर अत्यन्त उदास हो अपने घर लौट आया तथा मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि यह मुझसे बड़ा पाप हुआ, जो मैंने श्री त्रिलोकीनाथ को मिथ्या कलंक लगाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब मुझे उचित है कि इस अपराध से अपनी मुक्ति पाने के लिए मैं कन्या 'सत्यभामा' का विवाह श्री कृष्णजी के साथ कर दूँ तथा दहेज में यह मणि उन्हें लौटा दूँ। ऐसा निश्चय करके जब उसने अपनी स्त्री से सलाह ली, तो वह भी अत्यन्त प्रसन्न हुई। तब सत्राजित् ने अपने पुरोहित को बुलाकर सत्यभामा के विवाह का तिलक वसुदेवजी के यहाँ भेज दिया तथा बड़ी धूम-धाम से विवाह करके वह मणि तथा अन्य अनेक रत्नाभूषण आदि दहेज में दिये। परन्तु श्री श्यामसुन्दर ने अन्य सब वस्तुओं को स्वीकार करके, वह मणि सत्राजित् को ही लौटा कर यह कहा कि हमसे इसकी पूजा नहीं बन पड़ेगी अतः यह हमारे काम की नहीं है। तुमने हमें जो कलंक लगाया था, उसका कुछ भी सोच अब हमारे मन में नहीं है, अतः तुम प्रसन्न होकर इसे अपने ही पास रक्खो। हे राजन्! यह सुनकर सत्राजित् ने उस मणि को अपने ही पास रख दिया। तदुपरान्त श्री कृष्णजी धूमधाम सहित सत्यभामा को साथ लेकर अपने घर लौट आये। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी! त्रिलोकीनाथ श्री श्यामसुन्दरजी को ऐसा मिथ्या कलङ्क क्यों लगा?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे राजन्! श्री बाँकेविहारी ने भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी का चन्द्रमा देख लिया था। इसी कारण उन्हें यह मिथ्या कलङ्क लगा। जो लोग भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को चन्द्रमा देख लेते हैं, वे यदि इस मणि-चरित्र को श्रवण करें, तो उन्हें कलङ्क नहीं लगता।"

सत्तावनवाँ अध्याय

सत्राजित् एवं शतधन्वा के मारेजाने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिस प्रकार शतधन्वा ने सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि छीन ली थी तथा वह श्री श्यामसुन्दर के भय से द्वारका छोड़कर भाग गया था। उस वृत्तान्त को हम तुमसे कहते हैं, सुनो। एक दिन किसी ने द्वारका में आकर श्री श्याम-बलराम को यह समाचार सुनाया कि दुर्योधन ने पाण्डव आदि पाँचो भाइयों को लाक्षागृह में सुलाकर, अग्नि लगवा दी, जिससे वे सबलोग अपनी माता सहित जलकर भस्म हो गये। इस समाचार को सुनकर श्री श्याम-बलराम अत्यन्त चिन्तित हो अपनी बुआ (फूफी) कुन्ती तथा फुफेरे भाइयों (पाण्डवों) की सुधि लेने के लिए, रथ पर चढ़कर हस्तिनापुर में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने दुर्योधन की सभा में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाकर यह देखा कि—राजा दुर्योधन, धृतराष्ट्र आदि सब उदास बैठे हैं तथा भीष्मपितामह एवं द्रोणाचार्य की आँखों से आँसू बह रहे हैं। गान्धारी आदि कौरवों की स्त्रियाँ भी पाण्डवों की याद करके रो रही हैं। यह दशा देखकर जब श्री कृष्णजी ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के बारे में पूछा तो किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु विदुर ने उनके पास जाकर धीरे से यह बताया कि दुर्योधन आदि ने उन पाँचों भाइयों के प्राण लेने में कुछ उठा नहीं रक्खा था, परन्तु आपकी कृपा से वे सब बच गये हैं। यह सुनकर श्री श्याम-बलराम अपने बाग के डेरे में लौट आये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब श्याम-बलराम हस्तिनापुर चले गये तो इधर द्वारका निवासी 'शतधन्वा' नामक यादव के पास जाकर, जिसके विवाह की मँगनी 'सत्यभामा' के साथ हुई थी अक्रूर तथा कृतवर्मा ने यह कहा कि हे शतधन्वा! सत्यभामा की मँगनी तुम्हारे साथ हुई थी, परन्तु सत्राजित् ने पहिले तो श्री कृष्णजी को मणि की चोरी का मिथ्या कलङ्क लगाया, फिर उन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी, इससे सजातियों में तुम्हारी बड़ी बदनामी हुई है। अस्तु, इस समय श्याम-बलराम हस्तिनापुर गये हैं, सो तुम सत्राजित् से अपना बदला ले लो। हमारी समझ में यह उचित है कि हम तीनों सत्राजित् के घर चलकर उसे मार डालें तथा उसने स्यमन्तक मणि के प्रताप से जो सोना इकट्ठा किया है, उसे छीन लें। यह सुनकर शतधन्वा अक्रूर तथा कृतवर्मा को साथ ले रात्रि के समय सत्राजित् के घर जा पहुँचा तथा उन दोनों को द्वार पर पहरेदारी के लिए खड़ा करके, सोते हुए सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि तथा स्वर्ण आदि को लेकर बाहर निकल आया। तब तीनों व्यक्ति अपने-अपने घर चले गये। घर आकर शतधन्वा को यह विचार आया कि मैंने अक्रूर तथा कृतवर्मा के कहने से सत्राजित् को मारकर श्री श्यामसुन्दर से वैर लिया है, सो न जाने अब मेरी क्या दशा करेंगे? इधर सत्राजित् की मृत्यु पर उसकी स्त्री ने अत्यन्त विलाप किया तथा सत्यभामा को बुला भेजा। जब सत्यभामा ने अपने पिता को मरा हुआ देखा तो वह उसी समय रथ पर चढ़कर श्री कृष्णजी के पास हस्तिनापुर जा पहुँची। जब श्री श्यामसुन्दर ने सत्यभामा को हस्तिनापुर में देखा तो यह पूछा कि तुम यहाँ किस लिये आई हो? घर की कुशल-क्षेम कहो? उस समय सत्यभामा ने हाथ जोड़कर उन्हें यह बताया कि हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामी ! आपके पीछे शतधन्वा ने मेरे पिता को सोते हुए मार डाला है तथा स्यमन्तक मणि तथा धन आदि को ले गया है। यह सुनकर दोनों भाई सत्यभामा को धैर्य बँधा, उसी समय द्वारका को चल दिए। जब शतधन्वा ने यह समाचार सुना कि श्री श्याम-बलराम हस्तिनापुर से लौट कर आ रहे हैं तो वह अपना द्वारका में रहना उचित न जान कर, स्यमन्तक मणि को ले कृतवर्मा तथा अक्रूर के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा कि "हे भाई ! मैंने तुम्हारी सम्मति मानकर श्री श्यामसुन्दर से वैर लिया, अतः अब उनके हाथ से मेरे प्राण बचना कठिन है। वे मुझे मारने के लिए हस्तिनापुर से आ रहे हैं सो या तो तुम मुझे शरण देकर कहीं छिपा दो, अन्यथा हे अक्रूर ! तुम मेरा रथ हाँको, तो मैं श्री कृष्णजी से युद्ध करूँगा।" उस समय शतधन्वा की बातें सुनकर उन्होंने उत्तर दिया—"हे शतधन्वा ! अब तुम हमसे क्या कह रहे हो ? तुमने सत्राजित् को मारते समय पहिले ही यह विचार क्यों नहीं कर लिया था कि श्री कृष्णजी सत्यभामा का पक्ष लेंगे। हम लोग श्री श्यामसुन्दर के भक्त हैं, अतः तुम्हारी रक्षा अथवा सहायता नहीं कर सकेंगे। जिन प्रभु ने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठा लिया तथा अपनी बाल्यावस्था में ही बड़े-बड़े दैत्यों को संहार कर दिया, उनसे भला युद्ध कौन कर सकता है ? मनुष्य को चाहिए कि वह कोई भी काम करने से पहिले अपने हानि-लाभ को भली भाँति सोच लिया करे।" हे परीक्षित ! अक्रूर तथा कृतवर्मा के मुख से ऐसे रूखे वचन सुन कर शतधन्वा अपने जीवन से निराश हो वह मणि तो अक्रूर के सामने फेंक दी तथा स्वयं चार सौ कोस प्रतिदिन की गति से चलनेवाले एक घोड़े पर सवार हो, जनकपुर की ओर भाग चला। उधर श्यामसुन्दर ने द्वारका पहुँचकर जब शतधन्वा के भागने का समाचार सुना तो वे दोनों भाई सत्यभामा को वहीं छोड़, अपना रथ लेकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले तथा जनकपुर के समीप जाकर उसे घेर लिया। उसी स्थान पर जब शतधन्वा का घोड़ा भी मर गया तो वह श्री श्यामसुन्दर के रथ की आहट सुनकर पैदल भागने लगा। यह देखकर श्रीहरि बलरामजी को रथ पर छोड़कर स्वयं उसके पीछे-पीछे पैदल दौड़ चले तथा पास पहुँचकर, अपने सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट लिया। हे राजन् ! जब श्री कृष्णजी को उसके पास मणि नहीं मिली तो उन्होंने बलरामजी के पास जाकर यह कहा कि हमने शतधन्वा को व्यर्थ ही मारा। उसके पास मणि तो मिली ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं है। उस समय श्री नारायणजी की माया से बलरामजी ने श्री मुरली-मनोहर के वचन सुनकर अपने मन में यह समझा कि श्री श्यामसुन्दर को मणि तो मिल गई है, परन्तु वे उसे मुझसे छिपाकर सत्यभामा को देना चाहते हैं। यह विचार आते ही उन्होंने श्री बाँकेविहारी से यह कहा—"हे भाई! वह मणि किसी अन्य के पास है। तुम द्वारका जाकर उसकी तलाश करो। मैं जनकपुर देखने के बाद लौटूँगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अन्तर्यामी श्री मुरलीमनोहर तो द्वारका लौट गये और बलरामजी जनकपुर में जा पहुँचे। वहाँ के राजा ने जब बलभद्रजी के आगमन का समाचार सुना तो वह अपने मन्त्रियों सहित आगे आकर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने घर ले गया। जब राजा दुर्योधन ने यह समाचार सुना कि बलरामजी आजकल जनकपुर में ठहरे हुए हैं तो वह वहाँ जाकर उन्हें बड़े आदरभाव से अपने घर लिवा लाया तथा अत्यन्त सत्कार करके हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—हे प्रभो! मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ। अब आप कुछ दिनों यहीं रहकर, मुझे अपना शिष्य बनाकर गदायुद्ध सिखाइये। राजा दुर्योधन की सच्ची प्रीति देखकर बलरामजी वहीं रहकर, उसे अपना शिष्य मानकर गदायुद्ध सिखाने लगे। उधर श्री मुरलीमनोहर ने सत्यभामा के पास जाकर यह कहा कि मैंने शतधन्वा को तो मार डाला, परन्तु वह मणि उसके पास नहीं मिली है। यह सुनकर सत्यभामा ने अपने मन में यह समझा कि श्री श्यामसुन्दर ने वह मणि बलरामजी को दे दी है तथा मुझसे बहाना कर रहे हैं। अस्तु, जब अक्रूर तथा कृतवर्मा ने शतधन्वा के मारे जाने का हाल सुना तो वे भी अपने प्राणों के भय से द्वारका से निकल भागे। कृतवर्मा तो दक्षिण दिशा में चला गया तथा अक्रूर प्रयाग क्षेत्र में जा पहुँचे। वहाँ स्नान-दान करने के उपरान्त फिर वे गयाजी गये तथा वहाँ पितरों का श्राद्ध आदि करके, काशी में आकर रहने लगे। स्यमन्तक मणि के प्रताप से वे प्रतिदिन बीस मन सोना प्राप्त करके उसे दान आदि शुभ कर्म में व्यय कर दिया करते थे। अन्तर्यामी श्री श्यामजी इस भेद को जानते थे, परन्तु उन्होंने किसी अन्य को यह हाल नहीं बताया। उधर द्वारकावासी यह समझते थे कि कृतवर्मा तथा अक्रूर ने शतधन्वा को यह सम्मति दी थी कि तू सत्राजित् को मार डाल, इसलिए अब वे दोनों भी अपने प्राणों के भय से कहीं भाग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये हैं। अस्तु, दुर्योधन को गदायुद्ध सिखाने के बाद कुछ समय पीछे जब बलरामजी द्वारका में आये, तब श्री श्यामसुन्दर ने सत्राजित् के मृत शरीर को तेल में से निकलवा कर उसका दाह-कर्म आदि कराया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अक्रूर जिस ग्राम अथवा नगर में रहते थे, वहाँ की प्रजा धन-धान्य से परिपूर्ण रहती थी तथा किसी को किसी प्रकार का दुःख नहीं होता था। अस्तु, जब श्री मुरलीमनोहर ने यह विचार किया कि अब अक्रूर को अपने पास बुलाना चाहिए, तब उनकी इच्छानुसार द्वारका में अनावृष्टि एवं महामारी आदि का प्रकोप होने लगा, जिससे सम्पूर्ण प्रजा कष्ट पाने लगी। यह दशा देखकर एक दिन सब लोगों ने श्री श्यामसुन्दर से इस प्रकार कहा—"हे प्रभु! न जाने क्या कारण है जो हमारे देश में अनावृष्टि एवं महामारी आदि का प्रकोप बढ़ रहा है? अतः आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे हमारा दुःख दूर हो।" श्रीहरि ने उत्तर दिया—"हे भाइयो! जब से अक्रूर द्वारका छोड़कर गये हैं, तभी से यह व्याधियाँ यहाँ आई हैं।" यह सुनकर द्वारकावासी बोले—"हे प्रभु! वे तो आपके ही भय से भाग गये हैं, अतः अब आपही दया करके उन्हें यहाँ बुलाइये, जिससे हमें सुख प्राप्त हो।" तब श्री कृष्णजी ने यह आज्ञा दी कि तुम लोग अक्रूरजी को ढूँढ़कर सम्मानपूर्वक यहाँ लिवा लाओ। श्रीहरि की आज्ञा पाकर कुछ यदुवंशी अक्रूरजी को ढूँढ़ते हुए काशी में जा पहुँचे तथा उनसे मिलकर इस प्रकार कहने लगे कि हे अक्रूरजी! जबसे आप द्वारकापुरी को छोड़कर आये हैं, तब से ईतियाँ-भीतियाँ हम सब लोगों को कष्ट पहुँचा रही हैं, सो श्री मुरलीमनोहर ने यह आज्ञा दी है कि तुम यदि उनके प्रति भक्ति रखते हो तो सम्पूर्ण सन्देह त्याग कर, द्वारकापुरी को लौट आओ। यह सुनकर अक्रूरजी अत्यन्त प्रसन्न होकर द्वारकापुरी को चल दिए। उनके आने का समाचार सुनकर श्री कृष्ण-बलराम सब लोगों को साथ ले, नगर के बाहर जाकर, उन्हें सम्मानपूर्वक द्वारका में ले आये। उनके आते ही द्वारकावासियों का कष्ट दूर हो गया।

हे परीक्षित! एक दिन श्री कृष्णचन्द्रजी ने अक्रूर को अपने पास बुलाकर यह कहा—"हे चाचा! हमने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया, अतः अब तुम प्रसन्न रहा करो। तुम्हारे पास जो स्यमन्तक मणि है, उसे तुम हमारे पास ले आओ, जिससे सत्यभामा तथा बलरामजी का सन्देह दूर हो जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे अक्रूर ! शास्त्रों में यह कहा गया है कि जिसकी वस्तु ले, उसी को लौटा देनी चाहिए। यदि वह न हो तो उसके पुत्र को दे, पुत्र भी न हो तो उसकी स्त्री को दे, स्त्री भी न हो तो उसकी कन्या के पुत्र को दे और यदि वह भी न हो तो उसके भाई को दे देनी उचित है। जिसके वंश में कोई भी न हो तो वह वस्तु उसके गुरु को दे देनी चाहिये, गुरु न हो तो गुरु के पुत्र को दे और यदि वह भी न हो तो किसी ब्राह्मण को दे दे। परन्तु पराई वस्तु को अपने पास कभी नहीं रखनी चाहिए। अस्तु, सत्राजित् के कोई पुत्र नहीं है, इसलिए उस मणि को सत्यभामा का पुत्र लेगा।" श्री मुरलीमनोहर के मुख से ऐसे वचन सुनकर, अक्रूर ने उस मणि को लाकर, राजसभा में पहुँच, सबके सामने श्री कृष्णचन्द्रजी के समीप रख दिया तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की कि हे दीनबन्धो ! आप मेरे अपराध को क्षमा करें। इस मणि द्वारा मुझे जितना स्वर्ण प्राप्त हुआ था, वह सब मैंने शुभ कर्मों में व्यय कर दिया है। उस समय उस मणि को देखकर श्री बलरामजी तथा सत्यभामा सन्देहमुक्त तथा लज्जित होकर श्री मनमोहनलाल के चरणों पर गिर पड़े। श्री बलदेवजी ने रोते हुए कहा—"हे प्रभो ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, जो आपके ऊपर मिथ्या सन्देह किया, अब मैं आपको मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा, इसलिए वन में जाकर अपने प्राण त्याग दूँगा।" यह सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें अपनी छाती से लगाकर बहुत धैर्य प्रदान किया तथा यह कहा कि मैंने तुम्हारे सन्देह करने से कोई बुरा नहीं माना है, अतः तुम इतनी चिन्ता मत करो। इस प्रकार बलभद्रजी को समझाकर श्री मुरलीमनोहर ने वह मणि सत्यभामा को दे दी, तब उसके हृदय का शोक भी दूर हो गया।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे प्रभो ! जब अक्रूर ऐसा गुणी था तो उसने शतधन्वा को, सत्राजित् को मारने की सम्मति क्यों दी तथा स्वयं द्वारका से क्यों भाग गया ?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! जिस दिन अक्रूर ने शतधन्वा को ऐसी सम्मति दी, उसी दिन से उसके सम्पूर्ण गुण नष्ट हो गये थे।" राजा परीक्षित ने कहा—"हे मुनिनाथ ! यह सत्य है कि कुसङ्गति से हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं होता, परन्तु आप यह बताने की कृपा करें कि अक्रूर को ऐसे गुण किस प्रकार प्राप्त हुए थे ?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित ! एक बार अनावृष्टि के कारण काशी में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। उन दिनों 'सुफलक' नामक एक बड़ा हरिभक्त, सत्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वादी तथा धर्मात्मा यादव किसी प्रकार वहाँ जा पहुँचा। उसके पहुँचते ही श्री नारायणजी की इच्छा से वहाँ खूब वर्षा हुई तथा प्रजा को सुख प्राप्त हुआ। यह देखकर काशी-नरेश ने प्रसन्न होकर अपनी 'गांदिनी' नामक कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। उसी कन्या के गर्भ से अक्रूर ने जन्म लिया था। अतः उसमें सुफलक के सब गुण प्रकट हुए थे।"

अट्ठावनवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का कालिन्दी, सत्या, भद्रा तथा लक्ष्मणा आदि से विवाह करने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! सत्राजित् की मृत्यु का समाचार पाकर श्री श्यामजी युधिष्ठिर आदि को बिना देखे ही द्वारका लौट आये थे, अतः उनके मन में उनसे भेंट करने की प्रबल आकांक्षा थी। अस्तु, जब राजा दुर्योधन ने कुन्ती सहित पाँचों पाण्डवों को लाक्षागृह में ठहराकर आग लगवा दी थी, तब वे एक सुरंग के मार्ग से जिसे विदुर ने पहिले ही से बनवा रक्खा था, बाहर निकल कर, संन्यासियों का भेष बना, छिपकर रहने लगे थे। उस लाक्षागृह में एक भीलनी अपने पाँच पुत्रों सहित जलकर भस्म हो गई थी, इसलिये उनकी हड्डी तथा भस्म को देखकर दुर्योधन को यह विश्वास हो गया था कि पाँचों पाण्डव अपनी माता सहित जलकर भस्म हो गये हैं। अस्तु, उन्हीं दिनों राजा 'द्रुपद' ने अपनी पुत्री 'द्रौपदी' का स्वयंवर रचाया। उसमें दुर्योधनादि सभी राजा एकत्रित हुए। तदुपरान्त 'वेदव्यास' एवं 'धूम्र' ऋषि के कहने से पाँचों पाण्डव भी अपनी माता को एक स्थान पर ठहरा कर, उस स्वयम्वर में संन्यासी के वेश में सम्मिलित हो गये। जिस समय परम सुन्दरी द्रौपदी रत्नजटित आभूषण तथा वस्त्रों को पहिने, पुष्पों की वरमाला हाथ में लिए स्वयम्वरस्थल में आई। उस समय सभी राजा उसके स्वरूप पर मोहित हो गये। तब द्रौपदी के भाई 'धृष्टद्युम्न' ने खड़े होकर यह कहा कि जो व्यक्ति तेल की कड़ाही में, चक्र के ऊपर घूमती हुई मछली की परछाईं देखकर, मस्तक नीचा किए हुए उसे अपने बाण से वेध देगा, उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होगा। यह सुनकर शिशुपाल ने मत्स्य का भेदन करने के लिए रक्खे हुए धनुष को उठाना चाहा, परन्तु जब यह उससे नहीं उठा, तब वह लज्जित होकर बैठ गया। राजा जरासन्ध की भी यही दशा हुई। तब 'कर्ण' ने उस धनुष को चढ़ाकर ज्योंही मत्स्य को भेदना चाहा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्यों ही द्रौपदी ने उसे सुनाकर यह कहा कि तू सूत-पुत्र होकर मेरे साथ विवाह करने की आकांक्षा कैसे रखता है ? यह सुनकर कर्ण ने द्रौपदी की ओर देखकर धनुष को नीचे रख दिया तथा अपने स्थान पर आ बैठा। उसके अतिरिक्त जब अन्य सभी राजा मत्स्यभेदन में निराश हो गये, तब अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर अर्जुन ने उस मत्स्य को बेध दिया। उस समय द्रौपदी ने भी उसे वर-माला पहिना दी। यह देखकर अन्य राजाओं ने परस्पर ईर्ष्यावश इस प्रकार कहा कि यह बड़े लज्जा की बात है जो हम लोगों के समक्ष इस राजपुत्री को एक संन्यासी विवाह करके ले जावे। यह सोचकर जब उन मूर्खों ने अर्जुन का सामना किया तब पाँचों भाई उन सबको पराजित करके द्रौपदी को लेकर अपनी माता कुन्ती के पास चले आये। तदुपरान्त कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी हुई। अस्तु, जब राजा दुर्योधन को यह पता चला कि पाँचों भाई मरे नहीं हैं, तब उसने विदुर द्वारा उनका अपने पास बुलाकर आधा राज्य दे दिया। तब वे पाँचों भाई हस्तिनापुर के समीप 'इन्द्रप्रस्थ' नामक एक नगर बसाकर आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे। उन्होंने अनेकों राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया। इस समाचार को सुनकर श्रीकृष्णजी अनेक यदुवंशियों को साथ लेकर उनसे मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे। उनके आगमन का समाचार पाकर पाँचो भाई नगर के बाहर आकर उन्हें सम्मान सहित राजभवन में लिवा ले गये। तदुपरान्त जब श्री कृष्णजी ने कुन्ती के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया, उस समय कुन्ती ने उन्हें अपनी गोद में बैठा कर बहुत प्यार किया तथा आशीर्वाद देकर सब लोगों की कुशल क्षेम पूछी। उस समय द्रौपदी ने आकर घूँघट काढ़े हुए श्री कृष्णचन्द्रजी को प्रणाम किया। तब श्रीहरि ने उसे मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। जब श्री कृष्णजी भोजन आदि से निवृत्त हो चुके, तब कुन्ती ने उनसे इस प्रकार कहा—"हे त्रिलोकीनाथ ! आपही हम सबकी रक्षा करनेवाले हैं। जिस प्रकार अपनी शरण में आनेवाले भक्तों का दुःख दूर कर देते हैं, उसी प्रकार मेरे पुत्रों को भी अपनी शरण में आया हुआ जानकर, उनकी रक्षा कीजिए। हे प्रभो ! जिस प्रकार हिरणी अपने झुण्ड से अलग होकर भेड़ियों के भय से भयभीत रहती है, उसी प्रकार मेरे अनाथ पुत्र भी दुर्योधनादि से हर समय डरते रहते हैं। अतः आप उनके ऊपर अपनी दयादृष्टि रक्खें। इस प्रकार जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुन्ती विनय कर चुकी, तब युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! मैंने पूर्वजन्म में कोई शुभ कर्म किया था, जिसके पुण्य से आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, अन्यथा ब्रह्मा, शिव आदि को भी आपका दर्शन ध्यान में भी प्राप्त करना कठिन होता है। हे दीनानाथ ! जिस प्रकार आपने मुझे अपना सेवक जानकर यहाँ पधारने की कृपा की है, उसी प्रकार अब आप वर्षाऋतु के चार महीने यहीं बिताकर अपने सेवकों को आनन्द प्रदान कीजिए।" कुन्ती तथा युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने उन्हें बहुत धैर्य बँधाया तथा चार-पाँच मास तक उन्हीं के पास रहकर उन्हें नित्य नया सुख प्रदान करने लगे।

हे परीक्षित ! एक दिन श्री कृष्णचन्द्रजी युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर अर्जुन के साथ शिकार खेलने के लिए वन में गये। वहाँ उन्होंने सिंह, हिरन, शूकर, व्याघ्र, रीछ आदि अनेक पशुओं का आखेट किया तथा उनका मांस सेवकों द्वारा राजमन्दिर को भेज दिया। तदुपरान्त जब अर्जुन को प्यास लगी तो वे उसे साथ लेकर यमुनातट पर जा पहुँचे। वहाँ जल पीने के उपरान्त एक वृक्ष की छाया में सो गये। कुछ देर बाद जब अर्जुन उठकर घूमता हुआ यमुना-तट पर फिर पहुँचा तो उसने यह देखा कि यमुना-जल के बीच में एक रत्नजटित स्वर्ण-मन्दिर बना हुआ है तथा उसमें बैठी हुई एक परम सुन्दरी राजकन्या तपस्या कर रही है। यह दृश्य देखकर अर्जुन ने उस कन्या के पास जाकर पूछा—"हे सुन्दरी ! तुम्हारा नाम क्या है, तुम किसकी पुत्री हो तथा तुम अकेली बैठी हुई तपस्या किस लिए कर रही हो ?" यह सुनकर उस परम सुन्दरी कन्या ने उत्तर दिया—"हे वीर ! मैं सूर्य की पुत्री 'कालिन्दी' हूँ। जब श्री कृष्णचन्द्रजी वृन्दावन में विहार करते थे, तभी से मैंने उनके सुन्दर स्वरूप पर रीझकर उन्हें अपना पति बनाने का निश्चय किया है। मेरी मनोभिलाषा को जानकर मेरे पिता सूर्य ने तपस्या करने के लिए यह मन्दिर बनवा दिया है। अतः मैं अपने पिता के आज्ञानुसार यहाँ रहकर श्री मुरलीमनोहर के नाम का जप करती हुई उन्हीं को प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। यदि वे कृपा करके मुझे अपना दर्शन दें, तो मेरी मनोभिलाषा पूर्ण हो सकती है।" यह सुनकर अर्जुन वहाँ से हँसता हुआ श्री श्यामजी के पास लौट आया तथा उनसे इस प्रकार कहने लगा—"हे बाँकेविहारी ! तुम ऐसे भाग्यवान् हो कि तुम्हारे पीछे परम सुन्दरी स्त्रियाँ पागल बनी रहती हैं। देखो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहाँ भी यमुना-जल के बीच मन्दिर में बैठी हुई एक परम सुन्दरी स्त्री तुम्हें प्राप्त करने के लिए तपस्या में मग्न है।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर उस स्त्री के पास जा पहुँचे। जब अर्जुन ने कालिन्दी के पास जाकर यह कहा कि श्री बाँकेविहारी आये हैं, तो वह अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके चरणों पर जा गिरी तथा परिक्रमा करके हाथ जोड़ सम्मुख खड़ी हो गई। उस समय श्रीहरि ने भी प्रसन्न होकर उसका हाथ पकड़ लिया। यह देखकर कालिन्दी ने प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! यों तो मैं मन, कर्म, वचन से आपकी दासी हूँ परन्तु आपने वेद-शास्त्रों के अनुसार जो मर्यादाएँ बाँध दी हैं उनका पालन करना उचित है।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उसी समय सूर्य देवता के पास जाकर यह कहा कि तुम अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर दो। तब सूर्य ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर उसी समय कालिन्दी का विवाह श्री कृष्णजी से कर दिया। फिर श्री मुरलीमनोहर कालिन्दी को रथ पर बैठा-कर इन्द्रप्रस्थ में आ गये। वहाँ विश्वकर्मा ने उनके लिए पहिले ही से एक सुन्दर भवन निर्मित कर रखा था, सो कालिन्दी को उसी में ठहराकर स्वयं एक रूप से तो वहीं रह गये और दूसरे रूप से अर्जुन के साथ कुन्ती के पास चले गये।

हे परीक्षित! एक दिन राजा युधिष्ठिर ने बाँकेविहारी से प्रार्थना करते हुए यह कहा कि आप ऐसी कृपा कीजिए जिससे हमारे रहने के लिए एक अत्यन्त सुन्दर स्थान तैयार हो जाय। यह सुनकर श्रीहरि ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी, तब उसने इन्द्रप्रस्थ में भी ऐसे सुन्दर भवन निर्मित कर दिए, जैसे द्वारकापुरी में बनाये थे। तब पाँचों भाई उसी में रहने लगे। कुछ समय बीतने पर एक दिन अग्नि देवता ने श्री कृष्णजी के पास आकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! अजीर्ण का रोग हो जाने के कारण मेरी यह इच्छा है कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं खाण्डव वन को जहाँ अनेक प्रकार की जड़ी बूटियाँ लगी हैं, जलाकर भस्म कर दूँ। ऐसा करने से मेरा रोग दूर हो जायगा। परन्तु हे दीनानाथ! उस वन की रक्षा इन्द्र करता है, अतः यदि मैं अकेला जाऊँगा तो वह पानी बरसा कर मुझे शान्त कर देगा, इसलिए आप मेरे साथ किसी को रक्षा करने के लिए और भेज दें। अग्नि की इस विनय को सुनकर श्रीहरि ने अर्जुन को यह आज्ञा दी कि हे भाई! तुम अग्नि के साथ जाकर इसे खाण्डव वन को भस्म करने दो, जिससे इसका अजीर्ण दूर हो जाय। यदि इन्द्र कोई उत्पात करे तो तुम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसकी रक्षा करना। श्री मुरलीमनोहर की आज्ञा पाकर अर्जुन अग्नि के साथ चल दिया तथा उस स्थान पर पहुँच कर अग्नि से यह कहने लगा कि तुम वन को भस्म करो, मैं तुम्हारी रक्षा को प्रस्तुत हूँ।

हे परीक्षित! अर्जुन द्वारा यह आश्वासन पाकर अग्नि ने खाण्डव वन को जलाना आरम्भ कर दिया। जब उसका धुआँ आकाश में पहुँचा, तब इन्द्र ने मेघपति को यह आज्ञा दी कि तुम पानी बरसा कर अग्नि को बुझा दो, जिससे सभी पशु-पक्षियों को सुख प्राप्त हो। इन्द्र की आज्ञा पाकर जब बादलों ने जल बरसाना आरम्भ किया, उस समय अर्जुन ने वायु-बाण चलाकर सब मेघों को तितरबितर कर दिया तथा बाणों द्वारा उस वन के चारों ओर एक ऐसा घेरा बना दिया, जिससे वन का पशु-पक्षी आदि कोई भी जीव भागकर बाहर न निकलने पावे तथा वहाँ जल की एक भी बूँद न पहुँच सके। यह देखकर जब अग्नि प्रसन्नतापूर्वक, उस वन को जलाने लगा, उस समय उस वन में रहनेवाले 'मय' नामक दानव ने अर्जुन के पास आकर यह प्रार्थना की कि हे राजपुत्र! आप मुझे अपनी शरण में आया हुआ जानकर मेरी रक्षा करें। यह सुनकर अर्जुन ने अग्नि को यह आज्ञा दी कि तुम मय दानव का स्थान मत जलाओ। अर्जुन के आज्ञानुसार जब अग्नि ने मय दानव के स्थान को छोड़कर सम्पूर्ण वन को जला दिया, तब मय ने अर्जुन से मित्रता करके अपनी माया द्वारा युधिष्ठिर आदि को बैठने के लिए इन्द्रप्रस्थ में एक ऐसी सभा का निर्माण किया, जिसे देखनेवाले सब लोग मोहित हो जाते थे। उसमें जल के स्थान पर स्थल तथा स्थल के स्थान पर जल दिखाई देता था। एक दिन राजा दुर्योधन उस स्थान को देखने के लिए गया तो वहाँ स्थल के धोखे में वह एक पानी के कुण्ड में गिर पड़ा। उस समय दुर्योधन की दुर्गति देखकर भीससेन तथा द्रौपदी आदि स्त्रियाँ हँसने लगीं। इस कारण दुर्योधन उनसे अप्रसन्न होकर अपने घर लौट आया तथा मन में शत्रुता रखने लगा। हे परीक्षित! अर्जुन की सहायता से जब अग्नि देवता का रोग दूर हो गया, तो उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर अर्जुन को गाण्डीव नामक एक धनुष, एक दिव्य कवच, एक रथ, चार श्वेतवर्ण के घोड़े, दो अक्षय तूणीर, एक तलवार तथा एक ढाल भेंट में दी। हे राजन्! चार महीने इन्द्रप्रस्थ में रहने के उपरान्त जब श्री मुरलीमनोहर ने पाण्डवों से विदा माँगी, उस समय युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई, कुन्ती तथा द्रौपदी सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

यमुना जी में अक्रूर जी को शेषशायी भगवान् का दर्शन

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदास हो गये। श्री कृष्णचन्द्रजी उन्हें धैर्य बँधा, कालिन्दी को साथ लेकर द्वारकापुरी लौट आये। उस समय द्वारका में घर-घर मंगलाचार हुए। कुछ दिन व्यतीत होने पर श्री कृष्णजी के कहने से राजा उग्रसेन ने कालिन्दी का विवाह उनके साथ बड़ी धूमधाम से कर दिया। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिस प्रकार श्री श्यामसुन्दर ने 'मित्र-विन्दा' के साथ विवाह किया, अब वह कथा सुनो। श्री कृष्णचन्द्रजी की 'राजदेवी' नामक एक बुआ उज्जैन के राजा को विवाही गई थी। उसकी परम सुन्दरी पुत्री, 'मित्रविन्दा' जब विवाह के योग्य हुई, तब उसके भाई 'मित्रसेन' ने देश-देश में निमन्त्रण भेजकर उसका स्वयं-वर रचा। उस समय अनेक देशों के राजा वहाँ जा पहुँचे। तब अन्त-र्यामी श्री कृष्णजी भी मित्रविन्दा का अपने प्रति भक्ति एवं अनुराग पहिचानकर, उसके स्वयंवर में जा पहुँचे। अस्तु, जिस समय राजकन्या ने श्री कृष्णजी को देखा, उस समय अन्य राजाओं को छोड़कर उन्हीं के गले में वरमाला डाल दी। यह देखकर अन्य राजा बहुत पछिताने लगे। राजा दुर्योधन भी अपने भाइयों-सहित उस स्वयंवर में गया हुआ था, सो उसने मित्रविन्दा के भाई 'मित्रसन' तथा 'विन्दसन' से यह कहा कि यदि तुम्हारे मामा का लड़का कृष्ण तुम्हारी बहिन को ब्याह ले जायगा तो संसार में तुम्हारी बड़ी हँसी होगी। इससे तुम अपनी बहिन को समझा दो कि वह इससे विवाह न करे। यह सुनकर मित्रसेन ने जैसे ही अपनी बहिन को समझाया वैसे ही वह श्रीहरि के समीप से अलग हटकर खड़ी हो गई। यह देखकर अर्जुन ने श्री श्यामसुन्दर के कान में कहा कि हे प्रभु! यदि इस समय आप लज्जा करेंगे तो सब बात बिगड़ जायगी, अस्तु, जो कुछ करना हो वह शीघ्र कीजिए। यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने मित्रविन्दा का हाथ पकड़ लिया तथा उसे शीघ्रतापूर्वक अपने रथ पर बैठाकर द्वारका को चल दिये। यह देखकर जब अन्य राजाओं ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया, तब उन्होंने बाण मारकर सबको भगा दिया। द्वारका पहुँचकर श्रीहरि ने मित्र-विन्दा के साथ शास्त्रानुसार विवाह कर लिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जिस प्रकार श्री कृष्णजी ने 'सत्या' नामक राजकुमारी से विवाह किया, अब वह कथा सुनो। अयोध्या के राजा 'नग्नजित्' ने अपनी पुत्री सत्या का विवाह करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए यह प्रण किया था कि जो कोई मेरे सात बैलों को एक साथ नाथ देगा, उसी के साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा। यह समाचार सुनकर श्री मुरलीमनोहर अर्जुन को साथ लेकर अयोध्या जा पहुँचे। राजा नग्नजित् ने जब उनके आने का समाचार सुना तो वह बड़े आदर-सत्कार से आगे जाकर उन्हें घर ले आया तथा पूजा-स्तुति करने के उपरान्त उन्हें सम्मान-पूर्वक ठहराया। वहाँ अब 'सत्या' नामक राजकुमारी ने उन्हें देखा तो वह उन पर मोहित होकर यह विचार करने लगी कि यदि मुझसे पूर्वजन्म में कोई पुण्य बने हों तो मैं श्री कृष्णचन्द्रजी को ही अपने पति के रूप में प्राप्त करूँ। अस्तु, दूसरे दिन जब राजा श्री कृष्णजी के पास पहुँचा तो उसने हाथ जोड़-कर यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप मुझे कोई सेवा बताइये, जिसे करके मैं अपने हृदय में संतोष प्राप्त कर सकूँ। यह सुनकर श्री कृष्णजी बोले—"हे राजन् ! यद्यपि माँगना क्षत्रियों का धर्म नहीं है फिर भी तुम्हारी प्रीति एवं भक्ति को देखकर हम यह चाहते हैं कि तुम अपनी कन्या 'सत्या' का विवाह हमारे साथ कर दो।" राजा ने उत्तर दिया—"हे त्रिलोकीनाथ ! आपकी सेवा में लक्ष्मीजी आठों प्रहर बनी रहती हैं, फिर मेरी कन्या क्या वस्तु है ? हे प्रभो ! मैंने सत्या के विवाह के लिए यह प्रण किया है कि जो व्यक्ति मेरे सात बैलों को एक साथ नाथ देगा मैं उसी के साथ उसका विवाह करूँगा। परन्तु यह प्रण अभी तक किसी से पूरा नहीं हुआ, इसलिये आप दया करें तो मेरी भी लाज बच सकती है।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने अलग-अलग सात रूप धरकर, जो किसी को दिखाई न पड़े, राजा के सातों बैलों को एक साथ नाथ दिया। तब राजा नग्नजित् ने अत्यन्त प्रसन्न होकर शास्त्रानुसार 'सत्या' का विवाह श्री मुरलीमनोहर के साथ कर दिया तथा दस सहस्र गौ, तीन सहस्र वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित दासियाँ, नौ लाख हाथी, नौ करोड़ घोड़े, नौ लाख रथ, नब्बे सहस्र दास तथा अपार द्रव्य, रत्नादि दहेज में देकर श्रीबाँके-विहारी को अपनी कन्या-सहित बिदा किया। यह देखकर अन्य राजाओं ने क्रोध करके जब श्री कृष्णजी को मार्ग में जा घेरा तब अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष पर बाण चढ़ाकर उन सबको मार-मार कर भगा दिया। जब श्री कृष्णजी द्वारका में पधारे तो छोटे-बड़े सभी लोगों ने अत्यन्त आनन्द मनाया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! अब श्री कृष्णजी ने 'भद्रा' के साथ जिस प्रकार विवाह किया, वह कथा सुनो। 'गय'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामक नगर के 'ऋतु सुकृत' नाम के राजा ने अपनी पुत्री 'भद्रा' के विवाह के लिए स्वयंवर रचाया। उसमें भाग लेने के लिए अनेक राजा आये तथा श्री कृष्णजी भी अर्जुन को साथ लेकर वहाँ जा पहुँचे। जब राजकुमारी अपने हाथों में वरमाला लिये हुए आई, तब उसने श्री श्यामसुन्दर की मोहिनी मूर्ति पर प्रसन्न होकर उनके गले में माला डाल दी। तब राजा ऋतुसुकृत ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भद्रा का विवाह श्री कृष्णचन्द्रजी के साथ कर दिया तथा उन्हें बहुत-सा दहेज देकर अपनी कन्या-सहित बिदा किया। जब श्रीहरि भद्रा को साथ लेकर द्वारका पहुँचे, तब सब लोगों को अत्यन्त आनन्द हुआ।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन्! अब वह कथा सुनो, जिस प्रकार कि श्री मुरलीमनोहर ने 'लक्ष्मणा' के साथ विवाह किया था। भद्र देश के राजा ने अपनी पुत्री का स्वयंवर करने के लिए देश-देश के राजाओं को आमन्त्रित किया। श्री बाँकेविहारी भी अर्जुन को साथ लेकर वहाँ जा पहुँचे। जब वह राजपुत्री सोलह शृङ्गार किये, हाथों में वर-माला लिए, स्वयंवर-स्थल में आई तब उसने श्री मनमोहन के मोहिनी रूप पर मोहित होकर उन्हें माला पहिना दी। यह देखकर राजा ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक अपनी कन्या का विवाह श्री कृष्णजी के साथ करके उन्हें बहुत-सा दहेज बिदा किया। जब अन्य राजाओं ने ईर्ष्यावश उन्हें मार्ग में जा घेरा तो श्री कृष्णजी एवं अर्जुन ने बाण चलाकर उन सबको मार भगाया। तदुपरान्त जब वे द्वारकापुरी में पहुँचे, तब घर-घर मङ्गलाचार होने लगा तथा सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। हे परीक्षित! इस प्रकार श्री मुरली-मनोहर अपना विवाह करके आठों प्रहर आनन्द मनाते हुए द्वारका में निवास करने लगे। सभी स्त्रियाँ उनकी प्रेमपूर्वक सेवा किया करती थीं। रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रवृन्दा, सत्या, भद्रा तथा लक्ष्मणा ये आठों उनकी पटरानियाँ कहलाती थीं।"

उनसठवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का भौमासुर को मारकर सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं के साथ विवाह करने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! एक दिन नारदजी ने नन्दनवन से कल्पवृक्ष का एक फूल लाकर श्री मुरलीमनोहर को भेंट किया। श्रीहरि ने वह फूल रुक्मिणी को दे दिया। उस समय नारदजी ने सत्यभामा के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाकर यह कहा कि हे सत्यभामा ! आज मुझे ज्ञात हुआ कि श्री कृष्णजी तुमसे अधिक प्रेम रुक्मिणी से करते हैं, क्योंकि उन्होंने मेरे द्वारा लाये हुए कल्पवृक्ष के फूल को तुझे न देकर रुक्मिणी को दे दिया। इतना कहकर जब नारदजी चले गये, तब सत्यभामा उदास होकर कोपभवन में जा बैठी। उस समय श्री कृष्णजी ने उसे यह विश्वास दिलाकर मनाया कि मैं तेरे लिए इन्द्रलोक से कल्पवृक्ष को ही ला दूँगा। अस्तु, हे परीक्षित ! एक बार जब पृथ्वी ने स्त्री का रूप बनाकर घोर तप किया, तब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीनों देवताओं ने उसे अपना दर्शन देकर यह पूछा कि तू ऐसा घोर तप किस लिए कर रही है ? उस समय पृथ्वी ने उनसे यह कहा कि आप कृपा करके मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिए जो तीनों लोकों में सबसे अधिक बलवान् हो तथा जो किसी के भी हाथ से न मारा जाय। यह सुनकर तीनों देवताओं ने वरदान देते हुए यह कहा कि हे पृथ्वी ! तेरा एक पुत्र नरकासुर, जिसे लोग भौमासुर भी कहेंगे, नाम का होगा। वह पृथ्वी के सब राजाओं को जीतकर देवताओं को भी हरा देगा। तदुपरान्त वह अदिति के कानों के कुण्डल लेकर स्वयं पहिनेगा एवं इन्द्र के छत्र को छीनकर स्वयं अपने मस्तक पर धारण करेगा। वह संसारी राजाओं की सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं को छीनकर अपने घर ले आवेगा। तब श्री त्रिलोकीनाथ कृष्णावतार लेकर उसे मारने पहुँचेंगे। उस समय जब तू अपने मुख से उनसे यह कहेगी कि तुम मेरे पुत्र को मारो, तब वे उसे मार डालेंगे। इतना कहकर जब तीनों देवता अन्तर्धान हो गये, तब पृथ्वी ने अपने मन में यह विचार करके कि मैं अपने पुत्र को मारने के लिए क्यों कहूँगी, तप करना छोड़ दिया।

हे परीक्षित ! कुछ समय पश्चात् उसका भौमासुर अथवा नरकासुर नामक पुत्र उत्पन्न होकर, प्राग्यज्योतिषपुर को अपनी राजधानी बना, सात किलों के भीतर रहकर राज्य करने लगा। वह पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतकर उनकी सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं को अपने घर ले आया तथा उन्हें बिना विवाह किये ही एक स्थान में लाकर बन्द कर दिया और अपने मन में यह निश्चय कि जिस समय इनकी संख्या बीस सहस्र हो जायगी उस समय मैं एक साथ इन सबसे विवाह करूँगा। वे सब कन्यायें उस असुर के पञ्जे पड़कर दारुण विलाप करने लगीं; तब एक दिन श्री नारायणजी के इच्छानुसार नारदजी ने उनके पास जाकर उन्हें यह समझाया कि तुम किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार की चिन्ता मत करो। त्रिलोकीनाथ श्री कृष्णचन्द्रजी कुछ दिनों के भीतर ही तुम्हें यहाँ से छुड़ाकर तुम्हारे साथ स्वयं विवाह करेंगे। यह सुनकर वे राजकन्यायें अपने मन में धैर्य धरकर श्रीहरि-चरणों का स्मरण करने लगीं। अस्तु, एक दिन भौमासुर पुष्पक विमान में बैठकर, जिसे वह लङ्का ले आया था, देवलोक में जा पहुँचा तथा वह इन्द्र आदि सब देवताओं को जीत कर अपिति के कुण्डल तथा इन्द्र का छत्र छीन लाया। फिर उनको धारण करके देवता, ऋषि-मुनि एवं हरि-भक्तों को दुःख देने लगा। यह दृश्य देखकर एक दिन इन्द्र अत्यन्त व्याकुल हो, द्वारकापुरी में श्री कृष्णचन्द्रजी की सभा में जा पहुँचा तथा उनसे हाथ जोड़कर विनय करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे त्रिभुवनपति! 'भौमासुर' नामक एक महाबली दैत्य उत्पन्न होकर सब देवताओं तथा हरि भक्तों को दुःख दे रहा है। वह मेरी माता के कुण्डल तथा मेरा छत्र छीन लाया है, सो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उसे मारकर हरिभक्तों की रक्षा करने की कृपा करें।" यह सुनकर श्री आनन्द-कन्द ने इन्द्र को तो धैर्य बँधाकर बिदा कर दिया तथा सत्यभामा के पास जाकर यह कहा—"हे सत्यभामा! हम गरुड़ पर बैठकर भौमासुर से युद्ध करने के लिए जाते हैं, सो तुम भी युद्ध का कौतुक देखने के लिए हमारे साथ चलो। वहीं से हम इन्द्रलोक में जाकर तुम्हारे लिए कल्पवृक्ष ला देंगे तथा उसे तुम्हारे आँगन में लगा देंगे। तब तुम उस वृक्ष-सहित मुझे नारद मुनि को दान कर देना। फिर उन्हें शास्त्रानुसार स्वर्ण, धेनु आदि देकर मुझे क्रय कर लेना। ऐसा करने से मैं तुम्हारे वश में रहकर तुमसे सब स्त्रियों से अधिक स्नेह करूँगा। हे सत्यभामा! इसी प्रकार एक बार इन्द्राणी ने भी अपने पति इन्द्र को तथा अदिति ने अपने पति कश्यपजी को दान में देकर फिर मोल ले लिया था, जिसके कारण वे भी अपनी स्त्रियों से अधिक प्रीति करते हैं।" यह सुनकर सत्यभामा प्रसन्न होकर उनके साथ चलने को तैयार हो गई। तब श्री कृष्णजी उसे गरुड़ पर बैठाकर भौमासुर के पास चल दिये।

हे परीक्षित! भौमासुर का नगर छः किलों के भीतर इस प्रकार से बना हुआ था कि पहिला किला पर्वत का था, उसके भीतर दूसरा किला शस्त्रों का बना हुआ था, तीसरा किला पानी से भरा हुआ था, चौथे किले में चारों ओर अग्नि जलती रहती थी, पाँचवाँ किला वायु से भरा हुआ था छठवाँ किला रस्सों के जाल का बना हुआ था, इन सब के भीतर सातवें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किले में जो अष्टधातु का बना हुआ था, भौमासुर के रहने का स्थान था। अतः श्री कृष्णजी अपने सुदर्शन चक्र, कौमेदकी गदा तथा गरुड़जी द्वारा उसके सब किलों को नष्ट करते हुए जब सातवें द्वार पर पहुँचे, तब उसके रक्षकों ने घमासान युद्ध करना आरंभ कर दिया। जब उन्हें गरुड़जी ने अपनी चोंच तथा पंखों के प्रहार से मार गिराया, तब श्रीहरि ने भीतर पहुँचकर अपना पांचजन्य शङ्ख बजाया। उस समय भौमासुर निद्रा से जाग-कर यह विचार करने लगा कि तीनों लोकों में कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है जो यहाँ आकर मुझसे युद्ध करने की शक्ति रक्खे। फिर यह कौन व्यक्ति है, जिसने यहाँ आकर अपनी शङ्खध्वनि से मुझे जगाया है? जिस समय भौमासुर यह सोच रहा था, उसी समय 'मुर' नामक पाँच मस्तकवाले एक राक्षस मन्त्री ने उसके पास पहुँचकर यह कहा कि हे महाराज! आप कष्ट न करें मैं उस व्यक्ति को जाकर अभी देख लेता हूँ। इतना कहकर मुर अत्यन्त क्रोधित हो, त्रिशूल हाथ में लेकर श्री कृष्णजी के सामने जा पहुँचा तथा उनके ऊपर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा। उस समय सत्यभामा को अत्यन्त भयभीत देखकर श्री कृष्णजी ने अपने सुदर्शन चक्र से उसके पाँचों मस्तक काट कर प्राण हर लिये। उस दिन से संसार में श्री कृष्णचन्द्रजी का नाम 'मुरारि' प्रसिद्ध हुआ। हे परीक्षित! मुर की मृत्यु का समाचार सुनकर 'ताम्र' आदि उसके सात पुत्र अस्त्र-शस्त्र बाँधे हुए श्री कृष्णजी से युद्ध करने के लिए अपनी सेना-सहित आ पहुँचे; तब श्रीहरि ने अपने सुदर्शन चक्र से उन सबका भी संहार कर दिया। जब भौमासुर को यह समाचार मिला कि उसका सेनापति अपने पुत्रों तथा सेना-सहित मारा गया है, तब वह स्वयं गदा, त्रिशूल, भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर श्री कृष्णजी से युद्ध करने जा पहुँचा। जब श्री कृष्णजी ने उसके सब अस्त्र-शस्त्र काट दिये, तब वह अत्यन्त क्रोध करके अपना त्रिशूल उठाकर उनकी ओर दौड़ा। उस समय सत्यभामा ने भयभीत होकर श्री मुरलीमनोहर को पुकार कर यह कहा कि हे प्रभु! आप इस पापी को शीघ्र मार डालिए। सत्यभामा के मुख से यह वचन निकलते ही श्रीहरि ने उसका मस्तक सुदर्शन चक्र से काट गिराया। उस समय सब देवतागण पुष्प बरसा कर श्री द्वारकानाथ की जय जयकार करने लगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित ! सत्यभामा पृथ्वी की अवतार थीं, अतः उनके कहने पर ही भौमासुर को मारकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने तीनों देवताओं के वरदान की रक्षा की, अस्तु, जब भौमासुर मारा गया तब पृथ्वी अपनी पुत्रवधू (भौमासुर की पत्नी) तथा पौत्र 'भगदत्त' (भौमासुर का पुत्र) को साथ लेकर श्री कृष्णचन्द्रजी की शरण में आई तथा भौमासुर द्वारा छीने गये कुण्डल, छत्र एवं रत्नादि को श्री मुरलीमनोहर के सामने रखकर, हाथ जोड़, स्तुति करती हुई इस प्रकार कहने लगी–"हे प्रभो ! आपकी माया अपरम्पार है। आपकी महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। ब्रह्मा, शिव आदि देवता आपकी सदैव स्तुति करते हैं आप मेरी दण्डवत् स्वीकार करें।" इस प्रकार बहुत स्तुति करने के उपरान्त पृथ्वी ने अपने पौत्र भगदत्त को श्रीहरि के चरणों में डालकर इस प्रकार कहा–"हे प्रभो ! आपने मुझे यह वरदान दिया था कि मैं तेरे कहे बिना भौमासुर को नहीं मारूँगा, सो आपने आज उसका वध क्यों किया ?" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने सत्यभामा की ओर संकेत करते हुए कहा–"हे पृथ्वी ! सत्यभामा तेरा अवतार है, अस्तु इसके कहे अनुसार ही मैंने भौमासुर को मारा है।" यह सुनकर जब पृथ्वी ने सत्यभामा को देखा तो अत्यन्त लज्जित होकर इस प्रकार कहने लगी–"हे प्रभो ! मेरा पुत्र आपको न पहिचान कर अधर्म करने लगा था सो वह अपने किये को प्राप्त हुआ। अब आप उसके पुत्र को, जो आपकी शरण में आया हुआ है, अभयदान दीजिए।" यह सुनकर श्रीहरि ने भगदत्त के मस्तक तथा पीठ पर हाथ फेरकर उसे अभयदान दिया। उस समय भौमासुर की स्त्री ने श्री मुरलीमनोहर की स्तुति करते हुए इस भाँति कहा–"हे प्रभो ! जिस प्रकार आपने कृपा करके अपने दर्शनों से हमें कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब अपने श्रीचरणों से हमारे घर को भी पवित्र कर दीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णजी उसकी सच्ची प्रीति को देखकर उसके घर जा पहुँचे। तब उसने श्री श्यामसुन्दर एवं सत्यभामा को रत्नजटित सिंहासन पर बैठा कर, पूजन कर, चरण धोये तथा चरणामृत लेकर उन्हें छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाये। तदुपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की–"हे प्रभो ! आपसे वैर रखनेवाला कभी जीवित नहीं रहता है। रावण एवं कंस आदि परम शक्तिशाली दैत्य भी आपसे शत्रुता रखने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए। अस्तु, अब आप भगदत्त को अपना सेवक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानिए तथा इसके पिता ने जिन सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं को एकत्रित कर रक्खा है, उन्हें स्वीकार करने की कृपा कीजिए।" यह प्रार्थना सुनकर श्रीहरि प्रसन्न हो उस स्थान पर गये, जहाँ भौमासुर ने उन राजपुत्रियों को बन्द कर रक्खा था। जब श्री श्यामजी ने अपनी कृपादृष्टि से उन्हें देखा तो वे सब अत्यन्त प्रसन्न हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगीं– "हे द्वारकाधीश! जिस प्रकार आपने हमें अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब हमें अपनी दासी बनाकर अपने साथ ले चलिए। अब हम आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहती हैं।" यह दीन वचन सुनकर श्री कृष्णजी उन्हें साथ लेकर द्वारका को चलने लगे। उस समय उन्होंने भगदत्त को भौमासुर के सिंहासन पर बैठाकर धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करने का आदेश दिया तथा भगदत्त ने श्रीहरि को अनेक प्रकार के रत्न, रथ, अश्व, श्वेतवर्ण तथा चार दाँतवाले ऐरावत वंशी साठ हाथी एवं अन्य वस्तुएँ भेंट में दीं। फिर उसने सभी राज कन्याओं को उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर सुखपाल, रथ, पालकी आदि में बैठाकर श्री कृष्णजी के साथ बिदा किया। जिस समय श्री बाँकेविहारी उन्हें साथ लेकर चले, उस समय उनकी शोभा ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे तारागणों के बीच में चन्द्रमा सुशोभित होता है। अस्तु, श्रीहरि ने सेना-सहित सब राजकन्याओं को तो द्वारका भेज दिया और आप सत्यभामा के साथ गरुड़ पर बैठकर इन्द्रलोक को चल दिए।

हे परीक्षित! भौमासुर की मृत्यु होने से जब इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होकर आनन्द मना रहा था, उसी समय श्री मुरलीमनोहर इन्द्रपुरी में जा पहुँचे। उन्हें देखकर सब देवताओं ने उनके चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया तथा अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक इन्द्रासन पर बैठा दिया। तब श्रीहरि ने इन्द्र की स्तुति से प्रसन्न होकर अदिति का कुण्डल तथा इन्द्र का छत्र लौटा दिया। श्री कृष्णजी के इन्द्रपुरी में आने का समाचार सुनकर जब नारदजी उनके दर्शन के लिए वहाँ पहुँचे उस समय श्री बाँकेविहारी ने नारदजी को प्रणाम करके यह कहा–"हे मुनि! आप इन्द्र से यह कहें कि सत्यभामा तुमसे कल्पवृक्ष माँग रही है।" अस्तु, नारदजी ने जब यह बात इन्द्र से जाकर कही तो इन्द्र उसे सुनकर उदास होकर चुप रह गया। फिर उन्होंने इन्द्राणी के पास जाकर यह समाचार कह सुनाया। उस समय इन्द्राणी ने अत्यन्त क्रुद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर इन्द्र से यह कहा—"हे पति! इसी कृष्ण ने व्रज में तुम्हारी पूजा छुड़वा कर गोवर्धन पर्वत की पूजा कराई थी तथा सात दिन तक उस पर्वत को अपनी अँगुली पर धारण करके तुम्हारा अभिमान नष्ट किया था। अब वह अपनी स्त्री की बात मानकर तुमसे कल्पवृक्ष लेने आया है, परन्तु तुम मेरी कोई बात नहीं मानते। अतः उसे कल्पवृक्ष देना उचित नहीं है।" यह सुनकर अज्ञानी इन्द्र ने नारदजी के पास जाकर, उन्हें यह उत्तर दिया कि आप श्री कृष्णजी से यह कह दें कि कल्पवृक्ष इन्द्रपुरी को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जायगा। इन्द्र का यह उत्तर जब नारदजी ने श्री कृष्णजी को सुनाया तो उन्होंने नन्दनवन में जा, रक्षकों को मार, कल्पवृक्ष को उखाड़ कर गरुड़ की पीठ पर रख लिया। तदुपरान्त वे द्वारकापुरी की लौट चले। यह समाचार पाकर जब इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो, ऐरावत हाथी पर बैठ, देवताओं की सेना साथ लेकर श्री बाँकेविहारी से युद्ध करने के लिए चला, उस समय नारदजी ने उसके पास पहुँचकर इस प्रकार समझाया—"हे इन्द्र! तू बड़ा मूर्ख है जो अपनी स्त्री की बात मानकर त्रिलोकीनाथ श्री कृष्णचन्द्रजी से युद्ध करने के लिए जा रहा है। क्या तुझे ऐसा करते लज्जा नहीं आती? यदि तुझमें इतनी सामर्थ्य थी तो तू भौमासुर को मारकर उससे अपना छत्र तथा अदिति के कुण्डल क्यों नहीं ले आया? क्या तू वह दिन भूल गया जब तूने श्री कृष्णचन्द्रजी के पाँवों पर गिरकर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया था?" नारदजी के मुख से यह वचन सुनकर जब इन्द्र को अपनी भूल मालूम हुई, तब वह युद्ध का विचार त्यागकर अपने घर को लौट आया। उधर श्री कृष्णजी ने द्वारकापुरी में पहुँचकर कल्पवृक्ष को सत्यभामा के आँगन में गाड़ दिया। तदुपरान्त, राजा उग्रसेन की आज्ञा से उन सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं से विधिपूर्वक विवाह करके वे अपने सोलह सहस्र एक सौ रूपों में उनके पास पृथक्-पृथक् रहने लगे। वे सब स्त्रियाँ आठों प्रहर भगवान् श्यामसुन्दर का ध्यान धरकर, उनकी सेवा किया करती थीं; परन्तु श्री त्रिलोकीनाथ किसी के वशीभूत नहीं होते थे। हे परीक्षित! उन स्त्रियों की सुन्दरता का वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। वे सब ऐसी स्वरूपवान् थीं कि सूर्य का प्रकाश भी उनके मुख की शोभा को देखकर मलिन पड़ जाता था। एक दिन श्री शिवजी ने द्वारकापुरी में जाकर जब उनकी सुन्दरता को देखा तो कामदेव के शत्रु होने पर भी, उनके ऊपर मोहित हो गये।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साठवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर का रुक्मिणीजी से विनोद

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! एक दिन श्री श्यामसुन्दर रुक्मिणीजी के घर में थे। वह स्थान सब प्रकार से सुसज्जित था। वहाँ सब ओर रत्नजटित बन्दनवारें लटक रही थीं तथा पारिजात पुष्प के अनेक हार अपनी सुगन्ध उड़ा रहे थे। श्री मुरलीमनोहर जिस शैया पर शयन कर रहे थे, उसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री कृष्णचन्द्रजी के दिव्य स्वरूप को देखकर सबका मन मोहित हो जाता था। हे राजन्! उसी समय श्री नारायणजी की माया से रुक्मिणी के मन में यह अहङ्कार उत्पन्न हुआ कि मैं सब स्त्रियों में अधिक सुन्दर हूँ, इसीलिए श्री कृष्णजी मुझसे अधिक स्नेह रखकर मेरे ही पास बने रहते हैं। तब अन्तर्यामी प्रभु ने उनके मन का हाल जानकर अपने मन में यह विचार किया कि मैं इस समय रुक्मिणी को क्रोध दिलाकर इसके प्रेम की परीक्षा लूँ। यह सोचकर उन्होंने रुक्मिणी से कहा—"हे रुक्मिणी! तुम राजा भीष्मक की कन्या हो, अतः तुम्हें मेरे साथ विवाह करना उचित नहीं था। नीति-शास्त्र में यह कहा गया है कि ब्याह, वैर और प्रीति समान से करनी चाहिए, सो तुम तो एक राजा की कन्या हो और मैं राजा उग्रसेन का सेवक हूँ। जरासन्ध के भय से मैं इस टापू में छिपकर रह रहा हूँ। जब से मैंने जन्म लिया, तब से कोई शुभ कर्म भी नहीं किया है। इसके अतिरिक्त जो मुझसे प्रीति करता है, मैं उसे विरक्त तथा निर्धन बना देता हूँ। इतने पर भी तुमने चँदेरी के राजा शिशुपाल से विवाह न करके मुझे स्वीकार क्यों किया? हे सुन्दरी! तुमने मुझ गौ चरानेवाले के साथ विवाह करके अपने कुल में कलंक लगाया तथा ब्राह्मण द्वारा संदेशा भेजकर लज्जा को भी त्याग दिया। वह तो ईश्वर ने ही मेरी लाज रक्खी, जो मैं बलरामजी के पराक्रम से सब राजाओं को हराकर तुम्हें जीत लाया। परन्तु यह ध्यान रक्खो कि मैंने अपनी इच्छा से तुम्हारे साथ विवाह नहीं किया है, इसलिए यदि तुम्हारा मन अब भी किसी राजा के साथ विवाह करने का हो तो तुम मुझे छोड़कर उसके पास जा सकती हो।"

हे परीक्षित! श्री कृष्णजी के मुख से ऐसे कठोर वचन सुनकर रुक्मिणी अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगीं। जब श्री कृष्णजी ने यह देखा कि अब मेरी प्राणप्यारी अपने प्राण त्याग देना चाहती है, उस समय उन्होंने रुक्मिणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बड़े प्रेम से उठाकर अपनी सेज पर बैठा लिया तथा चतुर्भुजी रूप धारण करके एक हाथ से तो उनके बाल सँवारने लगे, दूसरे से आँसू पोछने लगे, तीसरे से पंखा झलने लगे तथा चौथे को उनके हृदय पर रखकर उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया। जब रुक्मिणी का चित्त कुछ ठिकाने हुआ, तब श्री कृष्णजी ने इस प्रकार कहा–"हे प्राणप्रिये! गृहस्थ व्यक्ति के पास कुछ न कुछ पृथ्वी अवश्य होनी चाहिए, जिससे वे आनन्दपूर्वक अपने कुटुम्ब का पालन कर सकें। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। इसलिए मैंने तुमसे हँसी की थी, परन्तु तुमने उसे सत्य मानकर दुःख उठाया। अब तुम उस सोच को त्यागकर अपने मन में धैर्य रक्खो तथा मुझसे हँसकर बोलो।" श्री श्याम-सुन्दर के ऐसे वचन सुनकर रुक्मिणीजी का शोक नष्ट हो गया। उस समय अपने को श्रीहरि की गोद में देखकर लज्जित होकर उठ खड़ी हुईं। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगीं–"हे प्राणेश्वर! आप मुझे किसी राजा के पास रहने के लिए कहते हैं, सो आपके समान परम प्रतापी पृथ्वी पर दूसरा कौन है? ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी सदैव आपके चरणों का ध्यान किया करते हैं तथा आपकी कृपा प्राप्त करके इतनी सामर्थ्य रखते हैं कि वे चाहे जिसको राजा बना दें। हे महाप्रभु! आपका स्मरण एवं ध्यान करने से सच्चा सुख प्राप्त होता है। आपके चरणों की भक्ति प्राप्त करने लिए बड़े-बड़े राजा अपने राज-पाट को त्याग, वन में जाकर तपस्या करते हैं। हे प्रभु! आप तीनों गुणों से परे हैं तथा अपने भक्तों को सुख देने एवं पृथ्वी का भार उतारने के लिए सगुणरूप धारण करते हैं। मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ है, जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ? हे दीनबन्धो! मैंने अपनी आँखों से यह देखा है कि आपने जरासन्ध तथा शिशुपाल आदि बड़े-बड़े राजाओं को एक ही क्षण में मार कर भगा दिया। आपसे अधिक बलिष्ठ अन्य कोई नहीं है। आप अपनी कृपा से चाहे जिसको तीनों लोकों का राज्य प्रदान कर सकते हैं। राजा अम्बरीष, प्रह्लाद, प्रियव्रत तथा जड़ भरत आदि आदि ज्ञानी राजाओं ने आपकी भक्ति प्राप्त करने के हेतु सातों द्वीपों का राज्य इस प्रकार छोड़ दिया, जैसे सर्प अपने केंचुल को छोड़ देता है। अस्तु, आपने जो यह कहा कि आप अपनी इच्छा से नहीं, अपितु मेरी इच्छा से ही मुझे यहाँ लाये हैं, सो इसमें कुछ सन्देह नहीं है, क्योंकि जब साक्षात् लक्ष्मीजी आठों प्रहर आपके चरणों की दासी बनी रहती हैं, वहाँ मेरी क्या गिनती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, जो मैं आपके योग्य हो सकूँ? हे प्रभो! चँदेरी के राजा शिशुपाल को तो आपने ही उत्पन्न किया है, तब क्या मुझे यह उचित न था कि मैं उसके उत्पन्नकर्त्ता को छोड़कर उसे स्वीकार करती? हे नाथ! जिस प्रकार राजा अम्बरीष आकर आपके चरणों की सेवा करके संसार से मुक्त हुए हैं, उसी प्रकार मैं भी आपके चरणों को धोकर भवसागर से पार उतर जाऊँगी। हे त्रिलोकीनाथ! जो स्त्रियाँ आपके भजन से विमुख हों, उन्हीं को शिशुपाल तथा दन्तवक्र जैसे पति प्राप्त हों। जिस प्रकार काशीनरेश की कन्या 'अम्बा' राजा 'शाल्व' को चाहती थी, इसलिए विचित्रवीर्य ने उसे छोड़ दिया, उसी प्रकार आपने भी यह विचार क्यों कर लिया कि मैं राजा शिशुपाल को चाहती हूँ? हे प्रभो! मैं तो मन, वचन, कर्म से आपकी ही दासी हूँ। शिशुपाल तो मेरा शत्रु है। जो स्त्री निष्कपट भाव से अपने पति की सेवा करती है, उसे संसार में मनोरथ प्राप्त होता है तथा अन्त समय में मोक्ष मिलता है। हे प्राणेश्वर! जिस प्रकार राजा 'इन्द्रदमन' की कन्या ने तपस्या करके दूसरे जन्म में 'शिखण्डी' का जन्म पाकर भीष्मपितामह से अपना बदला लिया, वैसा मैं नहीं कर सकती, क्योंकि मैं तो आपकी जन्म-जन्मान्तरों की दासी हूँ। आपने जो यह कहा कि मैंने याचकों के मुख से आपकी प्रशंसा सुनकर ब्राह्मण के हाथ अपना सन्देश भेजा। सो उस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि केवल याचकों के मुख से ही क्यों, मैंने तो वेद, शास्त्रों से भी केवल आपकी ही प्रशंसा सुनी है। ब्रह्मा आदि देवता तथा नारद आदि मुनि सदैव आपके ही गुण गाया करते हैं। उसी प्रशंसा को सुनकर मैंने आपके पास ब्राह्मण को भेजा था। अतः जिस प्रकार उस समय दया करके आप मुझे ले आये, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर तक आप मुझे अपनी दासी बनाये रहिये। हे प्रभो! आप तो अन्तर्यामी हैं, फिर ऐसे कठोर वचन कहकर मेरे हृदय को क्यों दुखाते हैं?"

हे परीक्षित! रुक्मिणी के मुख से यह वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दर ने कहा—"हे प्रिये! तुम्हारे प्रेम में मेरा अत्यन्त विश्वास है। यह तो मैंने परीक्षा लेने के लिए ही तुमसे इस प्रकार कहा था। हे रुक्मिणी! जैसे, मेरे निष्काम भक्त होते हैं, उसी प्रकार मैंने तुम्हें भी देखा है। मैं तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करता हूँ। पतिव्रता स्त्रियों का यही धर्म है कि वे अपने पति के आज्ञानुसार आचरण करें। मैं तुम्हारी सुन्दरता देखकर तुम्हें लेने के लिए कुण्डिनपुर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं गया था, अपित सच्चा प्रेम देखकर ही गया था। अब तुम कोई चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। हे प्रिये! जो कोई हमारे-तुम्हारे इस वार्तालाप को प्रेमपूर्वक सच्चे मन से कहेगा-सुनेगा, उसे भी पति-पत्नी का सच्चा प्रेम प्राप्त होगा।" हे राजन्! श्री मुरलीमनोहर के ऐसे वचन सुनकर रुक्मिणी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। तदुपरान्त वे श्रीहरि की सेवा करके आनन्द प्राप्त करने लगीं।"

इकसठवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी के वंश का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इस प्रकार श्री मुरलीमनोहर सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों से भोग-विलास करते हुए सुखपूवक गृहस्थ-धर्म का पालन करने लगे। सभी स्त्रियाँ उनकी मन, वचन, कर्म से सेवा करती थीं। श्री नारायणजी की इच्छा से उन सभी स्त्रियों के गर्भ से दस-दस पुत्र जो अत्यन्त सुन्दर श्यामवर्ण तथा अत्यन्त बलवान् थे एवं एक-एक कन्या, जो परम सुन्दरी थीं, उत्पन्न हुईं। वे सब अपने बाल-चरित्रों द्वारा माता-पिता को सुख पहुँचाते थे। इस प्रकार श्रीहरि के एक लाख इक्कीस सहस्र पुत्र तथा सोलह सहस्र एक सौ आठ कन्याएँ हुईं। फिर उनसे इतना वंश बढ़ा कि उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती।

हे परीक्षित! अब हम श्री मुरलीमनोहर की सन्तानों के नाम कहते हैं, सुनो। रुक्मिणी के गर्भ से 'प्रद्युम्न' आदि, सत्यभामा के 'भान' आदि, जाम्बवती के 'साम्ब' आदि, कालिन्दी के 'सुरति' आदि, सत्या के 'श्रीमान्' आदि, लक्ष्मणा के 'वरघोष' आदि, मित्रविन्दा के 'बरक' आदि तथा भद्रा के गर्भ से 'संग्रामजित्' आदि पुत्रों का जन्म हुआ। बलभद्रजी की रेवती नामक पत्नी के गर्भ से 'ताम्रकेतु' तथा 'दत्तमान्' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। प्रद्युम्न के पुत्र का नाम 'अनिरुद्ध' हुआ तथा अनिरुद्ध के 'बलराम' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

हे परीक्षित! जब रुक्माग्रज ने अपनी बहिन रुक्मिणी के पुत्र होने का समाचार सुना तो उसने अपनी पत्नी से यह कहा कि मैं अपनी पुत्री 'रुक्मवती' का विवाह, जिसकी माँग कृतवर्मा के पुत्र के साथ हुई है, वहाँ न करके, उसका स्वयंवर करूँगा। तू पत्र भेजकर मेरी बहिन रुक्मिणी को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी उसके पुत्रों-सहित बुलवा ले। यह सुनकर उसने एक ब्राह्मण के हाथ पत्र भेजकर रुक्मिणी को अपने यहाँ बुलवाया। तब वसुदेवजी से आज्ञा लेकर रुक्मिणी अपने पुत्र प्रद्युम्न-सहित रुक्माग्रज के नगर भोजकट में जा पहुँची। रुक्माग्रज ने रुक्मिणी को देखकर बहुत प्रसन्नतापूर्वक स्वागत सम्मान किया तथा उसकी पत्नी ने रुक्मिणी के पाँवों पर अपना मस्तक रखकर इस प्रकार कहा कि हे ननद ! जब से हमारे ननदोई तुम्हें हर कर ले गये। तब से तुम आज यहाँ आई हो, सो अब कृपा करके अपने पुत्र प्रद्युम्न के साथ मेरी पुत्री का विवाह करना स्वीकार कर लो। यह सुनकर रुक्मिणी ने उत्तर दिया—"हे भाभी! तुम भाई का हाल तो जानती ही हो, फिर ऐसी बातें कहकर झगड़ा क्यों कराना चाहती हो ?" अस्तु, जब रुक्माग्रज ने अपनी पत्नी के मुख से यह बात सुनी तो उसने रुक्मिणी के पास जाकर यह बात कही—"हे बहिन ! अब तुम पिछली बातों का ध्यान मत करो। वेद के आज्ञानुसार भानजे को कन्यादान दिया जाता है। अतः मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे लड़के के साथ करके नया संबंध स्थापित करूँगा, जिससे पिछली शत्रुता दूर हो जाय।" इतना कहकर रुक्माग्रज अपनी सभा में चला गया। तदुपरान्त जब स्वयंवर आरंभ हुआ तो उसकी पुत्री रुक्मवती ने प्रद्युम्न के स्वरूप पर मोहित होकर उसके गले में वरमाला डाल दी। यह देखकर अन्य राजाओं ने अपने मन में यह विचार किया कि जिस समय प्रद्युम्न राजकुमारी को लेकर अपने घर लौटेगा, उस समय हम युद्ध करके राजपुत्री को छीन लेंगे। ऐसा विचार करके वे मार्ग में जाकर खड़े हो गये। इधर रुक्माग्रज ने विधिपूर्वक रुक्मवती का विवाह प्रद्युम्न के साथ कर दिया तथा दहेज में बहुत से वस्त्राभूषण आदि देकर बिदा किया। जब रुक्मिणी प्रद्युम्न तथा अपनी पुत्रवधू को साथ लेकर घर को लौटीं, उस समय मार्ग में सब राजाओं ने उन्हें घेर लिया। यह देखकर प्रद्युम्न ने अपने बाणों द्वारा उन सबको मारकर भगा दिया। फिर वे प्रसन्नतापूर्वक द्वारका में जा पहुँचे। उस समय घर-घर मङ्गलाचार होने लगे तथा वसुदेवजी ने ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत-सा दान दिया।

हे परीक्षित ! कुछ समय बाद रुक्मवती के गर्भ से 'अनिरुद्ध' नामक एक परम सुन्दर तथा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके जन्म के अवसर पर वसुदेवजी ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों तथा याचकों को दान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया। फिर जब ज्योतिषियों को बुलाकर उसके ग्रह पूछे तो उन्होंने यह बताया कि हे वसुदेवजी! यह बालक परम तेजस्वी तथा चौदह विद्या-निधान होगा। इसका नाम 'अनिरुद्ध' प्रसिद्ध होगा। इतना कहकर ज्योतिषी चले गये। तब वह बालक चन्द्रमा की कला के समान प्रतिदिन बढ़ने लगा। जब रुक्म को यह समाचार मिला कि उसके धेवता हुआ है तो उसने एक ब्राह्मण के हाथों बहुत-सा धन, आभूषण आदि द्वारका में भेजकर श्री कृष्णजी को यह पत्र लिखा कि मैं अपनी पौत्री का विवाह आपके पौत्र के साथ करूँगा। श्री वसुदेवजी तथा श्रीश्यामसुन्दर उस पत्र को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उस ब्राह्मण को धन आदि देकर सम्मानपूर्वक बिदा किया। तदुपरान्त कुछ समय बीतने पर श्री कृष्णजी बलरामजी को साथ ले अनिरुद्ध का विवाह करने के हेतु बड़ी धूमधाम से भोजकट नगर में जा पहुँचे। वहाँ रुक्माग्रज ने अन्य राजाओं को साथ ले, आगे जाकर उन सबका स्वागत किया तथा सभी बरातियों को सम्मानपूर्वक जनवासे में ठहराया। जब वह विधि-विधान-सहित कन्यादान कर चुका, तब रुक्माग्रज के पिता राजा भीष्मक ने श्री कृष्ण-जी के पास एकान्त में जाकर यह समझाया कि हे प्रभो! विवाह तो हो ही चुका, परन्तु अब आपको यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं है, क्योंकि रुक्मा-ग्रज ने जिन राजाओं को अपने यहाँ बुलाया है, उनमें से अधिकांश राजा आपसे शत्रुता रखते हैं, सो वे कहीं कुछ उत्पात न कर बैठें। इतना कहकर जब राजा भीष्मक अपने घर चले गये, तब श्री श्यामसुन्दर ने रुक्मिणी को सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय रुक्मिणी ने रुक्माग्रज के पास जाकर कहा—"हे भाई! अब विवाह तो हो चुका, अतः तुम हम लोगों को शीघ्र बिदा कर दो, जिससे शुभ कार्य में कोई विघ्न न उठ खड़ा हो। तुम्हारे यहाँ आये हुए राजागण मेरे स्वामी से शत्रुता रखते हैं, इसीलिए मैं ऐसा कह रही हूँ।" यह सुनकर रुक्माग्रज ने उत्तर दिया—"हे बहिन! तुम चिन्ता मत करो। मैं पहिले अन्य राजाओं को बिदा कर आऊँ, तब तुम्हें भी बिदा कर दूँगा।" इतना कहकर जब वह सब राजाओं को बिदा करने के लिए उनके डेरे पर गया, उस समय कलिङ्ग देश के राजा तथा अन्य कई राजाओं ने उससे यह कहा—"हे रुक्माग्रज! देखो, तुमने श्याम-बलराम को इतना दहेज दिया है, फिर भी उन्होंने अपने अभिमान के कारण उसे कुछ नहीं समझा है। अतः हमें एक तो इसी बात का सोच है, दूसरे हमारे मन से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस दिन की कसक भी नहीं जाती, जब बलराम ने रुक्मिणी-हरण के समय तुम्हारी दुर्दशा की थी। इसलिए तुम बलराम को हमारे स्थान पर बुला दो, तो हम चौपड़ खेलकर उनका सब धन जीत लें। हमें श्री कृष्णचन्द्र से कोई प्रयोजन नहीं है।"

हे परीक्षित! उन राजाओं के ऐसे वचन सुनकर रुक्माग्रज को भी पिछली बात याद करके अपने मन में कुछ क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने बलरामजी के पास जाकर इस प्रकार कहा—"हे बलभद्रजी! सब राजाओं ने आपको दण्डवत् कहकर चौपड़ खेलने के लिए बुलाया है, सो आप उनकी अभिलाषा पूर्ण कीजिए।" यह सुनकर जब बलरामजी राजाओं के पास पहुँचे तो सबने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। तदुपरान्त चौपड़ बिछाकर रुक्म तथा बलरामजी जुआ खेलने लगे। उस खेल में बलभद्रजी दस बाजी हारते चले गये। तब रुक्माग्रज ने अभिमान में भरकर उनसे यह कहा कि तुम सब धन तो हार बैठे, अब क्या खेलोगे? उस समय कलिंगदेश का राजा भी बलरामजी के ऊपर हँसने लगा। यह देखकर बलरामजी ने दस करोड़ रुपये की बाजी लगाई। जब वे उस बाजी को जीत कर रुपया उठाने लगे, तब अन्य राजाओं ने अधर्म से यह कहा कि यह बाजी रुक्माग्रज ने जीती है। तब बलरामजी ने एक अरब रुपये की बाजी लगाई। उन्होंने उस बाजी को भी जीता, परन्तु राजाओं ने फिर अधर्मपूर्ण बात कहकर रुक्माग्रज को जिता दिया। यह देखकर जब बलरामजी को क्रोध हुआ, उस समय रुक्माग्रज ने अभिमान में भरकर यह कहा कि हे बलरामजी! तुमने ग्वालों के साथ वन में रहकर गौएँ चराई हैं सो तुम राजसी खेल खेलना क्या जानो? सत्य बात में क्रोध क्यों दिखा रहे हो? यह सुनकर बलरामजी ने उस समय अपने क्रोध को मन में दबाकर सात अरब रूपयों की एक और बाजी लगा दी। उस बाजी को भी उन्होंने जीता, परन्तु राजाओं ने झूठ बोलकर रुक्माग्रज को जिताना चाहा, उस समय यह आकाशवाणी हुई कि हे राजाओ! तुम लोग झूठ क्यों बोलते हो, यह बाजी बलरामजी ने जीती है। अस्तु, इतने पर भी जब वे राजा बलरामजी को ही झूठा ठहराने लगे, उस समय बलभद्रजी ने क्रोध करके यह कहा—"हे रुक्माग्रज! तूने रिस्तेदारी करके भी हम से शत्रुता नहीं त्यागी। अब चाहे रुक्मिणी भला माने या बुरा, मैं तुझे मारे बिना नहीं छोड़ूँगा।" इतना कहकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलभद्रजी ने अपने हल-मूशल द्वारा रुक्माग्रज को मार डाला। यह देखकर जब कलिंगदेश का राजा उठकर भागने लगा, तब बलरामजी ने घूँसे मारकर उसके भी दाँत तोड़ डाले। इसी प्रकार किसी के हाथ, किसी के पाँव तथा किसी की नाक पर घूँसे मारकर उन्हें तोड़ दिया। उस समय सब राजा अपने प्राण बचाकर भाग खड़े हुए। तदुपरान्त बलरामजी ने श्री मुरली-मनोहर के पास आकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीहरि ने रुक्म को अधर्मी जानकर उनसे कुछ नहीं कहा। फिर वे दोनों भाई दूल्हा, दुलहिन, रुक्मिणी तथा बरातियों को साथ लेकर द्वारका लौट आये। उस समय सब द्वारकावासियों ने अत्यन्त आनन्द मनाया। तदुपरान्त श्री कृष्ण तथा बलरामजी ने राजा उग्रसेन के पास जाकर यह कहा कि हे महाराज! हम आपके प्रताप से अनिरुद्ध का ब्याह कर लाये तथा अधर्मी रुक्माग्रज को मार आये। यह सुनकर राजा उग्रसेन को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।"

बासठवाँ अध्याय

अनिरुद्ध तथा उषा की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे शुकदेवजी! अब आप कृपा करके अनिरुद्ध-हरण की कथा सुनाइये।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से मैं उस कथा को सुनाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। ब्रह्माजी के वंश में कश्यप ने जन्म लिया तथा उनका पुत्र हिरण्यकशिपु अत्यन्त बलवान् हुआ। हिरण्यकशिपु का पुत्र हरि-भक्त प्रह्लाद हुआ। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन एवं विरोचन का राजा बलि हुआ। राजा बलि के सौ पुत्र हुए। जिनमें बड़ा पुत्र 'बाणासुर' अत्यन्त बली, सत्यवादी तथा धर्मात्मा था। शोणितपुर उसकी राजधानी थी।

वह ब्रह्मचर्यपूर्वक रह, नित्य कैलाश पर्वत जाकर श्री शिवजी की पूजा करता था। एक दिन वह अत्यन्त प्रेम-मग्न हो, मृदङ्ग लेकर नाचने-गाने लगा। तब श्री शिवजी ने प्रसन्न होकर पार्वती-सहित उसे दर्शन दिया तथा वर माँगने के लिए कहा। उस समय बाणासुर ने उन्हें साष्टांग दण्डवत् करते हुए यह प्रार्थना की—"हे प्रभो! आप मुझे पहिले तो अमर कर दें, फिर चौदहों भुवनों का राज्य देकर ऐसा पराक्रमी बना दें कि मुझे युद्ध में कोई न जीत सके।" यह सुनकर शिवजी ने उसे एक सहस्र भुजाएँ देकर यह कहा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हे बाणासुर ! तू अपनी मनोकामना प्राप्त करके निश्चल राज्य करेगा तथा तुझे युद्ध में कोई नहीं जीत सकेगा।" तब बाणासुर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने घर लौट आया। उसने अपनी सहस्र भुजाओं के प्रताप से तीनों लोकों को जीत लिया तथा सुखपूर्वक राज्य करने लगा। इतने पर भी वह प्रतिदिन कैलाश पर्वत पर जाकर श्री शिवजी की पूजा किया करता था। उसकी निष्ठा देखकर शिवजी ने यह वरदान और दिया कि हम तेरे नगर की सदैव रक्षा किया करेंगे। उस दिन से शिवजी शोणितपुर में रहकर उसकी रक्षा करने लगे।

हे परीक्षित ! जब बाणासुर से लड़ने के लिए चौदहों भुवनों में कोई योद्धा नहीं रहा, तब वह बड़े-बड़े पर्वतों को उठाकर एक-दूसरे के ऊपर पटकने लगा। फिर भी जब उसके लड़ने की अभिलाषा पूरी नहीं हुई, तब उसने शिवजी के पास जाकर यह कहा कि हे महाप्रभु ! अब तीनों लोकों में मुझे अपने समान योद्धा कोई दिखाई नहीं देता है। सभी दिक्पाल मुझसे हार चुके हैं तथा बड़े-बड़े पर्वतों को मैंने ध्वस्त कर दिया है। अतः अब आप या तो मुझे कोई ऐसा योद्धा बताइये जिससे युद्ध करके मैं अपनी भुजाओं को शान्ति दे सकूँ, अन्यथा आप स्वयं ही मुझसे युद्ध करिए। उस समय बाणासुर के मुख से ऐसे शब्द सुनकर शिवजी ने अपने मन में विचार किया कि मैंने तो इसे भक्त जानकर वरदान दिया था, परन्तु अब यह अभिमान में भरकर मुझी से लड़ना चाहता है। अतः इसका गर्व नष्ट करना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने बाणासुर से कहा—"हे मूर्ख ! इस समय तो तुझसे युद्ध करने योग्य कोई नहीं है, परन्तु कुछ दिनों बाद जब श्री कृष्णजी का अवतार होगा, तब वे तेरी युद्ध-पिपासा शान्त करेंगे।" यह सुनकर बाणासुर ने प्रसन्न होकर कहा—"हे महाप्रभु ! मुझे उनके अवतार का पता किस प्रकार लगेगा?" तब श्री शिवजी उसे एक ध्वजा देकर इस प्रकार बोले—"हे बाणासुर ! तू इस ध्वजा को अपने राजभवन पर बाँध देना। जब यह ध्वजा अपने आप टूट कर गिर पड़े, उस समय तू यह समझ लेना कि मेरा शत्रु उत्पन्न हो गया है।" यह सुनकर बाणासुर उस ध्वजा को लेकर अपने घर लौट आया तथा उसे राजमन्दिर पर बाँध कर उसके टूटकर गिरने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिनों बाद बाणासुर की 'बाणावती' नामक स्त्री के गर्भ से 'उषा' नामक एक कन्या ने जन्म लिया। उस समय बाणासुर ने अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा याचकों को दान दिया एवं मङ्गलाचार करवाये। जब यह कन्या सात वर्ष की हुई तब बाणासुर ने उसे सहेलियों के साथ विद्याभ्यास करने के लिए कैलाश पर्वत पर, शिव-पार्वती के पास भेज दिया। वहाँ रहकर उषा शिवजी से विद्या पढ़ने लगी। कुछ ही दिनों में वह सम्पूर्ण शास्त्र एवं गान विद्या में अत्यन्त प्रवीण हो गई। एक दिन उषा वीणा बजाती हुई पार्वतीजी के साथ किसी रागिनी को गा रही थी। उस समय शिवजी ने पार्वतीजी से यह कहा कि हे प्रिये! मैंने जिस कामदेव को भस्म कर दिया था, अब उसने प्रद्युम्न नाम से श्री कृष्णजी के यहाँ जन्म लिया है। इतना कहकर शिवजी पार्वतीजी को साथ लेकर गङ्गा में जल-विहार करने चले गये। जब लौटकर आये तो श्री पार्वतीजी वीणा बजाकर संगीत द्वारा शिवजी को प्रसन्न करने लगीं। उस समय भोलानाथ ने भी आनन्दित होकर उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया। उस दृश्य को देखकर उषा के हृदय में भी यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि यदि मेरे भी पति होता तो मैं भी उसे इसी प्रकार अपने गले से लगाकर प्रसन्न होती। जब पार्वतीजी को उसकी मनोभिलाषा का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उषा को अपने पास बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे पुत्री! तुझे तेरा स्वामी स्वप्न में आकर मिलेगा। फिर तू उसे ढुँढ़वा कर उसके साथ भोग-विलास करना।" इतना कहकर पार्वतीजी ने उषा को बिदा कर दिया। तब वह अपनी सहेलियों-सहित घर लौट आई। बाणासुर ने उसके रहने के लिए एक अलग रत्नजटित भवन बनवा दिया, जिसमें वह अपनी सखियों के साथ रहने लगी। जब उषा बारह वर्ष की हुई, तब एक दिन उसने सोलह शृङ्गार करके अपने माता-पिता के पास जाकर दण्डवत् किया। उस समय उसे विवाह योग्य देखकर बाणासुर ने उसके विवाह का निश्चय किया। तदनन्तर उसने उषा के महल की रक्षा करने के लिए दैत्यों तथा राक्षसों का एक दल नियुक्त कर दिया, जिससे कोई पुरुष वहाँ न जा सके।

हे परीक्षित! पार्वतीजी के कहे अनुसार एक दिन उषा अपने पति का ध्यान करती हुई जब सोई, तो उसने स्वप्न में यह देखा कि एक श्यामवर्ण सुन्दर पुरुष, कमलनयन, पीताम्बर पहिने, रत्नजटित क्रीट-मुकुट तथा आभूषण धारण किए, रेशमी उपरना ओढ़े उसके सामने खड़ा हुआ है। उषा उसे देखकर जब लज्जित हुई तो उसने हँसकर उसे अपने कण्ठ से लगा लिया। तदुपरान्त जैसे ही उसने हाथ फैलाकर उससे भेंट करनी चाही, वैसे ही स्वप्न भङ्ग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर आँख खुल जाने के कारण उसकी मन की इच्छा मन में ही रह गई। जब उषा ने जगने पर उस पुरुष को नहीं देखा तब वह अत्यन्त व्याकुल होकर यह कहने लगी कि उस प्राणप्यारे के बिना मेरी रात किस प्रकार कटेगी? इस प्रकार जब वह स्वप्न में अनिरुद्ध को देखकर व्याकुल हुई तथा दूसरे दिन एक प्रहर दिन चढ़ आने पर भी शैया से नहीं उठी तो उसकी सहेलियाँ आपस में यह विचार करने लगीं कि क्या कारण है जो उषा अभी तक सोकर नहीं उठी है। अस्तु, जब सहेलियों ने उसके कमरे में जाकर उसे व्याकुल देखकर समझाया, तब उसने विरह के कारण किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। तदुपरान्त 'कुम्भाण्ड' की पुत्री 'चित्ररेखा' ने उससे इस प्रकार कहा—"हे राजपुत्री! तुम्हें ऐसा कौन-सा दुःख है, जिसके कारण तुम इतनी व्याकुल हो रही हो? मैं तुम्हारी कृपा से इतनी सामर्थ्य रखती हूँ कि चौदहों भुवनों में जाकर प्रत्येक कार्य करके ला सकती हूँ। श्री ब्रह्माजी के वरदान से मेरे साथ आठों प्रहर श्री शारदाजी रहती हैं। उनकी कृपा से मैं सबको अपने वश में किए रहती हूँ। यदि तुम मुझे अपने मन का हाल बता दो तो मैं तुम्हारी पूरी सहायता करूँगी।" चित्ररेखा के मुख से ऐसे शब्द सुनकर उषा ने शय्या से उतरकर उसके समीप जा, धीरे से यह कहा—"हे सखी! आज रात्रि को स्वप्न में एक श्यामवर्ण अति सुन्दर पुरुष मेरी शय्या पर आ बैठा था। उसने अपनी प्रेम भरी बातों से मेरा हृदय हर लिया, परन्तु जब मैं लज्जा त्याग-कर उससे भेंटने के लिए भुजा बढ़ा उठी तो अचानक नींद खुल जाने से वह अदृश्य हो गया। तब से मैं उसके विरह में छटपटा रही हूँ। हे आली! जब मैं कैलाश पर्वत पर विद्या पढ़ती थी, उस समय एक दिन पार्वतीजी ने मुझसे यह कहा था कि तेरा पति तुझे स्वप्न में आ मिलेगा, तब तू उसे ढुँढ़वा लेना। सो वही मेरा पति आज रात्रि को स्वप्न में मेरे पास आया था, परन्तु अब मैं उसे किस प्रकार ढुँढ़वाऊँ और किससे अपने मन का हाल कहूँ?" इतना कहकर जब उषा ठण्डी श्वासें लेने लगी, तब चित्ररेखा ने उससे इस प्रकार कहा—"हे सखी! तुम घबराओ नहीं। तुम्हारे चित्त को चुरानेवाला जहाँ कहीं भी होगा, मैं उसे वहाँ से ढूँढ़ लाऊँगी। यदि तुम मुझे आज्ञा दो तो इस संसार में जितने भी सुन्दर पुरुष हैं, मैं उन सबकी तस्वीर खींचकर तुम्हें दिखा दूँ। उनमें जो तुम्हारा प्राणप्यारा हो, उसे तुम पहिचान लेना। तत्पश्चात् मैं उसे तुम्हारे पास ला दूँगी।" यह सुनकर जब उषा ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आज्ञा दे दी तो चित्ररेखा ने चित्र बनाना आरम्भ कर दिया। देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा राजाओं की तस्वीरों में जब उषा को अपना प्राणप्यारा नहीं मिला तब चित्ररेखा ने श्री कृष्णजी एवं पद्युम्न की तस्वीरें खींचकर दिखाईं। उन्हें देखकर उषा इस प्रकार लज्जित हो गई, जैसे कोई स्त्री अपने श्वशुर को देखकर हो जाती है। तदुपरान्त उसने चित्ररेखा से यह कहा कि हे सखी ! मेरा प्राणप्यारा इसी वंश में होगा। यह सुनकर जब चित्ररेखा ने अनिरुद्ध का चित्र खींचा, तो उषा उसे देखकर अचेत हो गई। कुछ देर बाद जब उसे होश आया तो इस प्रकार कहने लगी—"हे आली ! इसी ने स्वप्न में आकर मेरे चित्त को चुराया है, अब यदि यह मुझे नहीं मिला तो इसके विरह में मेरे प्राण चले जायँगे।" तब चित्ररेखा ने उत्तर दिया—"हे उषा ! यह श्री कृष्णजी के पौत्र तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का चित्र है। यह द्वारकापुरी में रहता है, जहाँ श्री कृष्णजी का सुदर्शन चक्र हर समय नगर की रक्षा करता रहता है। श्री कृष्णजी की आज्ञा के बिना उस नगर में कोई प्रवेश नहीं कर सकता।" यह सुनकर उषा उदास होकर कहने लगी—"हे सखी ! जब ऐसी बात है तो तू वहाँ जाकर मेरे प्राणनाथ को किस प्रकार ला सकेगी ?" चित्ररेखा बोली—"मैं तुम्हारे लिए एक बार उपाय करके देखती हूँ। श्रीहरि की इच्छा हुई तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायगी।" इतना कहकर चित्ररेखा चील का रूप बनाकर वहाँ से उड़ चली और द्वारकापुरी के पास जा पहुँची। वहाँ जब उसने यह देखा कि सुदर्शन चक्र पुरी की रक्षा कर रहा है तो एक स्थान पर खड़ी होकर अपने मन में यह विचार करने लगी कि अब मैं पुरी के भीतर किस प्रकार जाऊँ ? उसी समय श्री नारायणजी की इच्छा से वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उन्होंने चित्ररेखा को खड़ी देखकर जब उसके आने का कारण पूछा तो उसने मुनि को दण्डवत् करके सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर नारदजी ने उसे एक मन्त्र बताकर यह कहा कि तू वैष्णव का रूप धरकर पुरी के भीतर चली जा। ऐसा करने से तुझे सुदर्शन चक्र नहीं रोकेगा। तब चित्ररेखा वैष्णव का स्वरूप धरकर द्वारकापुरी में घुस गई। सुदर्शन चक्र ने भी उसे वैष्णव समझकर नहीं रोका। तदुपरान्त चित्ररेखा अनिरुद्ध के महल में पहुँचकर उसे शैया-सहित सोते हुए उठाकर उषा के पास ले आई। अनिरुद्ध को देखते ही उषा अत्यन्त प्रसन्न हो गई तथा चित्ररेखा की प्रशंसा करती हुई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार कहने लगी कि हे सखी ! आज तूने मुझे जीवन-दान दिया है, सो मैं तेरा अहसान जीवन भर नहीं भूलूँगी।

हे परीक्षित ! जब अनिरुद्ध की आँख खुली और उसने अपने को पराये घर में सोते हुए पाया तो अत्यन्त चकित होकर मन में यह विचार करने लगा कि मुझे अपने घर से उठाकर कौन ले आया है ? जब उसने अपने सामने बैठी हुई परम सुन्दरी उषा का आँखों की राह अपनी रूप-माधुरी को पीते हुए देखा तो यह पूछने लगा—"हे परम सुन्दरी ! तुम कौन हो तथा मुझे यहाँ किस प्रकार ले आई हो ?" यह सुनकर उषा लज्जा के कारण उसकी बात का कोई उत्तर न दे सकी तब अनिरुद्ध ने उसे हाथ पकड़कर अपनी शैया पर बैठा लिया और प्रेम भरी बातें करके उसके संकोच को दूर कर दिया। जब दोनों को एक-दूसरे का परिचय प्राप्त हुआ, तब उन्होंने गन्धर्व विवाह करके अपनी इच्छा पूर्ण की। इस प्रकार दोनों वहीं रहकर अपनी इच्छा पूर्ण करने लगे। सखियों ने भी उस बात को छिपाये रक्खा।

हे परीक्षित ! एक दिन उषा और अनिरुद्ध बैठे चौपड़ खेल रहे थे। उसी समय उषा की माता उसे देखने के लिए वहाँ आई। जब उसने अनिरुद्ध को उसके पास बैठे देखा तो उसकी सुन्दरता पर प्रसन्न हो चुपचाप वहाँ से लौट गई। उषा और अनिरुद्ध को उसका कुछ पता न चला। इस प्रकार जब चार महीने बीत गये तो एक दिन उषा ने अपने मन में यह विचार किया कि मेरे निरन्तर घर में रहने से लोग सन्देह करने लगेंगे, इसलिए मुझे कुछ देर के लिए बाहर चलना चाहिए। ऐसा विचार करके जब वह महल से बाहर निकली तो उसी समय अपने प्राणप्यारे का ध्यान आ जाने से उल्टे पाँव फिर भीतर लौट गई। यह देखकर रक्षकों ने आपस में विचार किया कि हे भाई ! क्या कारण है जो इतने दिनों बाद तो यह राजकन्या बाहर निकली और एक क्षण में ही फिर भीतर लौट गई। उस समय एक रक्षक ने यह कहा कि मैं कई दिनों से राजकुमारी के भवन को आठों प्रहर बन्द रहते देखकर उसके भीतर किसी के साथ चौपड़ खेलने का शब्द सुना करता हूँ। अतः हमें राजा के पास चलकर यह समाचार कहना चाहिए। यह सुनकर दूसरे रक्षक ने उत्तर दिया—"हे भाई ! राजकन्या के सम्बन्ध में चुगली खाना अच्छी बात नहीं है। जो बात होगी, वह तो एक न एक दिन अपने आप प्रकट हो ही जायगी, इसलिए हमें किसी से कुछ न कहकर चुप रहना चाहिए।" हे परीक्षित !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस समय वे रक्षक आपस में इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय राजा बाणासुर अनेक शूरवीरों को अपने साथ लिये उसी स्थान पर आ पहुँचा। वहाँ जब उसकी दृष्टि महादेवजी की दी हुई ध्वजा पर गई और उसे अपने स्थान पर न पाया तो उसने सेवकों से पूछताछ की। तब सेवकों ने उसे यह बताया कि बहुत दिन हुए, वह ध्वजा अपने आप टूट कर गिर पड़ी है। यह सुनकर राजा बाणासुर ने जाना कि अब मेरा शत्रु उत्पन्न हो गया है। उसी समय एक रक्षक ने हाथ जोड़कर उससे यह कहा कि हे पृथ्वीपति! बहुत दिनों से मैं राजकन्या के भवन में किसी अन्य पुरुष के हँसने-बोलने का शब्द सुना करता हूँ, परन्तु यह नहीं जानता कि वह कौन है और कहाँ से आया है? यह सुनकर बाणासुर अत्यन्त क्रोध करके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए उषा के महल में जा पहुँचा। वहाँ उसने अनिरुद्ध को पलँग पर सोते हुए देखा तो उसकी सुन्दरता से प्रसन्न होकर अपने मन में यह विचार किया कि यह तरुण उषा से विवाह करने योग्य है। तब वह वहाँ से लौटकर बाहर आ गया और अपने साथियों से यह कहने लगा कि इस समय मेरा शत्रु सो रहा है। सोते हुए को मारना महापाप कहा गया है, इसलिए जब वह जग जाय तो तुम मुझे सूचना देना और उसे कहीं निकलकर मत जाने देना। यह आज्ञा देकर बाणासुर अपनी सभा में चला गया तथा उषा के महल के चारों ओर शूर-वीरों की एक बड़ी सेना नियुक्त करवा दी।

हे परीक्षित! जब अनिरुद्ध जगकर उषा के साथ चौपड़ खेलने लगा, तब रक्षकों ने बाणासुर को जाकर यह सूचना दी कि हे महाराज! अब आपका शत्रु जग गया है। यह सुनकर बाणासुर हाथ में तलवार तथा त्रिशूल लिये उषा के महल में जा पहुँचा तथा द्वार के बाहर से ही ललकारता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"अरे, चोर! तू कौन है, जो इस प्रकार राजमन्दिर में घुस आया है? तू बाहर निकल कर आ, जिससे मैं तुझे दण्ड दूँ।" यह सुनकर उषा ने अत्यन्त भयभीत होकर अनिरुद्ध से कहा—"हे प्राणेश्वर! मेरा पिता महाबली दैत्यों को साथ लेकर आपको पकड़ने के लिए आया है, अब आपके प्राणों की रक्षा किस प्रकार होगी?" तब अनिरुद्ध ने उत्तर दिया—"हे प्रिये! तुम चिन्तित मत हो। मैं क्षणभर में सबको मारे डालता हूँ।" इतना कहकर जैसे ही अनिरुद्ध ने कुछ मन्त्र पढ़ा, वैसे ही एक सौ आठ हाथ की एक पत्थर की शिला वहाँ आ पहुँची। तब उस शिला को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाथ में लेकर अनिरुद्ध बाहर निकल आया और बाणासुर को ललकारने लगा। उस समय बाणासुर की आज्ञा पाकर सब शूर-वीर उसके ऊपर एक साथ अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे, परन्तु अनिरुद्ध ने उनमें से बहुतों को मार डाला और बहुतों को घायल कर दिया। जो शेष बचे वे अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। जब बाणासुर ने यह देखा कि यह पुरुष महाबली है, तब उसने श्री शिवजी द्वारा प्राप्त नागफाँस को फेंककर अनिरुद्ध को बन्दी बना लिया तथा उसे उसी प्रकार अपनी सभा में ले जाकर यह कहने लगा कि हे बालक! अब मैं तेरे प्राण लूँगा, अतः तेरा जो रक्षक हो, उसे तू अपनी सहायता के लिए बुला ले। उस समय अनिरुद्ध ने अपने मन में यह विचार किया कि यदि मैं नागफाँस को तोड़कर बाहर निकल जाऊँ तो इसमें शिवजी का अपमान होगा। यह विचारकर वह मौन हो, ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा।

हे परीक्षित! इधर तो अनिरुद्ध बन्दी बना, उधर उषा ने व्याकुल होकर चित्ररेखा से इस प्रकार कहा—"हे सखी! मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है, जिसमें मेरा प्राणप्यारा ऐसा कष्ट उठावे। अब तू ही बता कि मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ?" यह सुनकर चित्ररेखा ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे उषा! तू चिन्ता मत कर, तेरे पति का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अभी कुछ ही समय में श्री कृष्णजी तथा बलरामजी अपनी सेना लेकर यहाँ आवेंगे तथा अनिरुद्ध को छुड़ाकर तुझे साथ लेकर द्वारका लौटेंगे।" परन्तु यह सुनकर भी जब उषा को धैर्य नहीं हुआ, तब वह लज्जा त्याग कर बाणासुर की सभा में जा पहुँची और वहाँ अनिरुद्ध के पास बैठ गई। यह देखकर बाणासुर ने अपने पुत्र 'स्कन्द' को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम अपनी बहिन को यहाँ से ले जाकर घर में बैठा दे। इसे बाहर मत निकलने देना। स्कन्द ने उषा के समीप जाकर अत्यन्त क्रोध से यह कहा कि हे उषा! तूने लोक-लज्जा त्याग कर संसार में अपने माता-पिता का नाम डुबाया है। मैं तेरा वध अभी कर देता, परन्तु पाप लगने के कारण डर जाता हूँ। यह सुनकर उषा बोली—"हे भाई! तुम कुछ भी क्यों न कहो, मैंने तो पार्वतीजी के वरदान से यह अपना पति पाया है, अब इसे छोड़कर किसी अन्य से विवाह करूँ तो संसार में मुझी को कलङ्क लगेगा।" उषा के मुख से यह शब्द सुनकर स्कन्द उसे जबर्दस्ती पकड़कर महल के भीतर ले गया तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री बृहत् नवीन सुखसागर

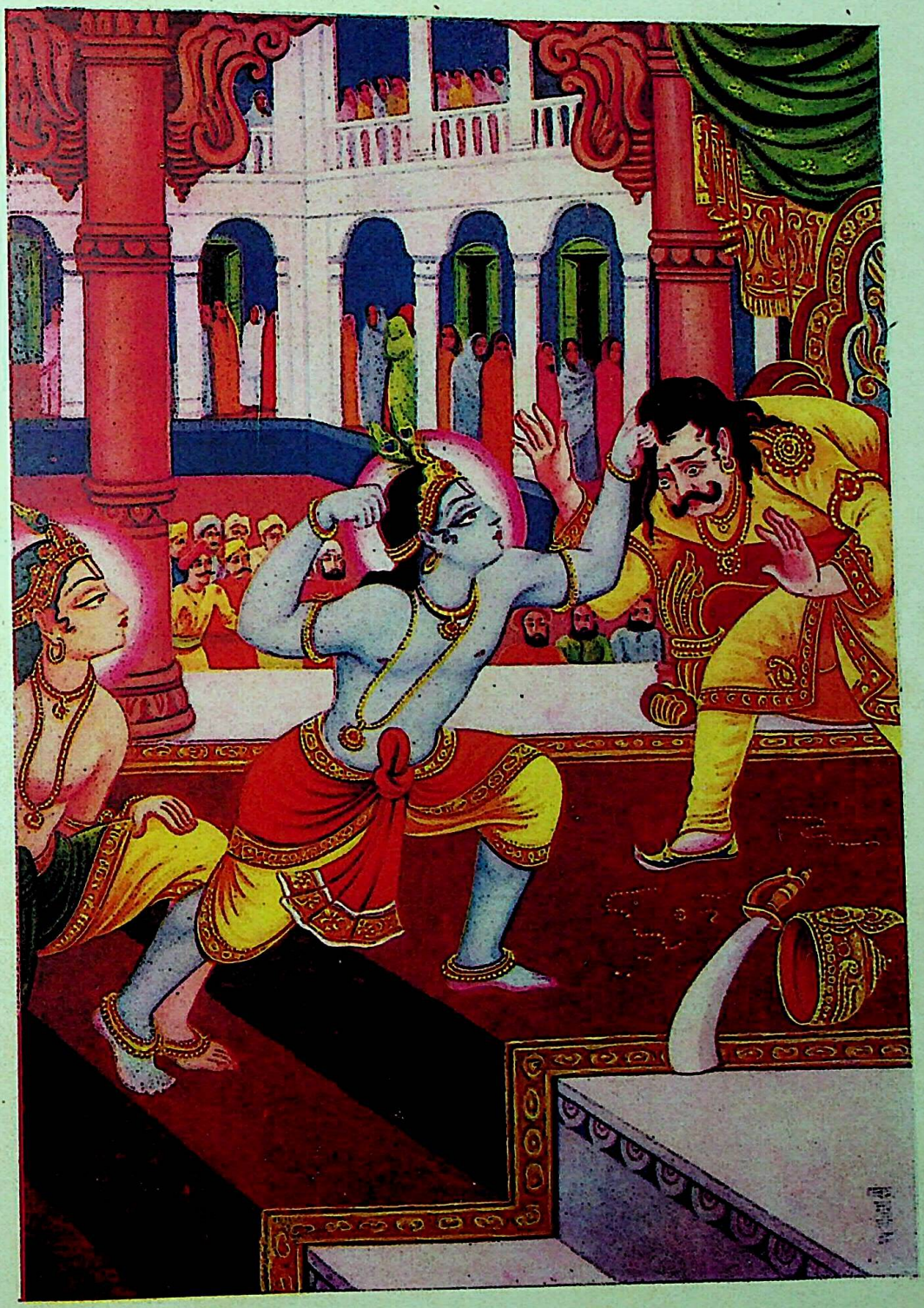

कंस-वध

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

वहाँ उसके ऊपर भारी पहरा बैठा दिया। तदुपरान्त अनिरुद्ध को हथकड़ी-बेड़ी लगाकर दूसरे मकान में कैद कर दिया।

हे परीक्षित! इस प्रकार इधर तो अनिरुद्ध उषा की याद में व्याकुल थे, उधर उषा अनिरुद्ध के विरह में दिन-रात रोया करती थी। अस्तु, कई दिन पश्चात् जब अनिरुद्ध ने चित्ररेखा का कथन याद करके नारदजी का ध्यान किया तो नारदजी ने उसी समय उसके पास पहुँचकर धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे पुत्र! तुम कुछ चिन्ता मत करो, श्री कृष्णचन्द्रजी बलरामजी तथा अन्य यदुवंशियों को साथ ले, यहाँ आकर तुम्हें छुड़ा ले जायँगे।" अनिरुद्ध को इस प्रकार धैर्य बँधाने के उपरान्त नारदजी ने बाणासुर के पास जाकर कहा—"हे राजन्! जिस अनिरुद्ध को तुमने अपने यहाँ बन्दी बनाकर रख छोड़ा है, वह प्रद्युम्न का पुत्र तथा श्री श्यामसुन्दर का पौत्र है। तुम यदुवंशियों के प्रताप से भलीभाँति परिचित हो, अतः मैं तुमसे यह कहने आया हूँ कि तुम जो उचित समझो, वह करो।" यह सुनकर बाणासुर ने अत्यन्त अभिमान में भरकर उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—"हे मुनिश्रेष्ठ! मैं सबको जानता हूँ तथा आपके आशीर्वाद से उन्हें भी देख लूँगा।" तब नारदजी मौन होकर वहाँ से चले आये।

तिरसठवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी तथा बाणासुर के युद्ध का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब अनिरुद्ध को गये चार महीने से अधिक हो गया, तब एक दिन प्रद्युम्न आदि यदुवंशी उदास हो, श्री श्यामजी तथा बलरामजी के समीप बैठकर अनिरुद्ध की चर्चा करने लगे। यद्यपि श्री कृष्णचन्द्रजी सब हाल जानते थे, फिर भी उन्होंने किसी को कुछ नहीं बताया। उसी समय श्रीहरि की इच्छा से वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्री कृष्णजी ने दण्डवत् करते हुए इस प्रकार कहा—"हे नारदजी! आप तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं, अतः यदि आपको अनिरुद्ध का कुछ हाल मालूम हो तो हमें बताने की कृपा करें।" यह सुनकर नारदजी बोले—"हे प्रभो! आप उसकी चिन्ता न करें। अनिरुद्ध शोणितपुर में भले-चंगे हैं। उन्होंने राजा बाणासुर की पुत्री उषा से भोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया था, इसलिए बाणासुर ने उन्हें नागफाँस में बन्दी बनाकर अपने यहाँ रख छोड़ा है। वह बिना युद्ध किए अनिरुद्ध को नहीं छोड़ेगा, अतः अब आप जो उचित समझें, वह करें।" इतना कहकर जब नारदजी चले गये तो श्री श्यामसुन्दर ने राजा उग्रसेन के पास जाकर अनिरुद्ध के बन्दी होने का समाचार कह सुनाया। उस समय राजा उग्रसेन ने यह कहा कि तुम हमारी सब सेना लेकर शोणितपुर जाओ तथा अनिरुद्ध को छुड़ा लाओ। यह सुनकर श्री श्याम-बलराम बारह अक्षौहिणी सेना लेकर शोणितपुर में जा पहुँचे। जिस समय वे बाणासुर के नगर को लूटते तथा तोड़ते-फोड़ते हुए आगे बढ़े, उस समय एक सेवक ने जाकर बाणासुर को श्री कृष्णजी द्वारा चढ़ाई करने का सब समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर बाणासुर ने अपने मंत्रियों तथा सेनापतियों को यह आज्ञा दी कि तुम सेना लेकर उनसे युद्ध करने चलो, मैं भी अभी आता हूँ। यह सुनकर बाणासुर का मन्त्री बारह अक्षौहिणी सेना साथ लेकर श्री श्यामसुन्दर के कटक के सामने जा पहुँचा। तदुपरान्त बाणासुर भी शिवजी का ध्यान करके अपनी सेना से जा मिला। जब शिवजी ने यह देखा कि मेरे भक्त पर सङ्कट आया हुआ है, तब वे भी भाँग-बूटी छान, धतूरा खा, मुण्डमाला पहिन, खप्पर ले, त्रिपुण्ड तथा भस्म लगा, अपने भूत-प्रेतों की सेना लिये, बाणासुर की सहायता के निमित्त युद्धस्थल में आ पहुँचे। उस समय बाणासुर ने श्री कृष्णजी को पुकारकर यह कहा कि हम तुमसे धर्म-युद्ध करना चाहते हैं, अतः एक-एक शूर अपने-अपने जोड़ से युद्ध करे। जब यह बात श्रीहरि ने स्वीकार कर ली तो एक-एक योद्धा आपस में जोड़ बनाकर युद्ध करने लगे। उस समय श्री कृष्णजी का शिवजी से, सात्यकी का बाणासुर से, प्रद्युम्न का स्वामि कार्तिकेय से, बलरामजी का कुम्भाण्ड नामक मन्त्री से, श्री कृष्णजी के पुत्र चारुदेष्ण का बाणासुर के पुत्र स्कन्द से तथा साम्ब का बाणासुर के दूसरे मन्त्री कुम्भकर्ण से युद्ध होने लगा। इसी प्रकार सब योद्धा आपस में भिड़ गये।

हे परीक्षित! जब मारू बाजा बजा और युद्ध आरम्भ हुआ, उस समय सब देवता अपने-अपने विमानों पर बैठकर उस युद्ध को देखने के लिए आकाश-मण्डल में आ पहुँचे। जब युद्ध-स्थल में शिवजी ने श्री कृष्णजी के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, उस समय श्री कृष्णजी ने उसे अपने बाण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से काट गिराया, तदुपरान्त शिवजी ने अपने बाण से आँधी उत्पन्न की, तो श्री श्यामसुन्दर ने उसे अपनी महिमा से नष्ट कर दिया। फिर जब महादेव-जी ने अग्निबाण चलाया तो श्री कृष्णजी ने वारि-बाण चलाकर उस अग्नि को बुझा दिया तथा एक ऐसा बाण चलाया जिससे शिवजी की सेना के सभी भूत-प्रेतों के दाढ़ी-मूँछ आदि के बाल जलने लगे। यह देखकर शिवजी ने अपने बाण द्वारा पानी बरसाकर उनकी जलन को शान्त किया। तदुपरान्त शिवजी ने श्री श्यामसुन्दर के ऊपर प्रयोग करने के लिए अपने तरकश से नारायणी अस्त्र निकाला, परन्तु फिर कुछ सोच-समझकर उसे तरकश में ही रख दिया। यह देखकर श्री मुरलीमनोहर ने आलस्य-बाण छोड़कर शत्रु-सेना को काटना आरम्भ कर दिया। तब शिवजी ने क्रुद्ध होकर उन पर तीन बाण चलाये, परन्तु श्री श्यामसुन्दर ने उन तीनों बाणों को काटकर एक ऐसा बाण चलाया जिसके लगने से शिवजी गिर पड़े और जमुहाइयाँ लेने लगे।

हे राजन्! इधर स्वामि कार्तिकेय तथा प्रद्युम्न के युद्ध का यह हाल था कि प्रद्युम्न ने स्वामि कार्त्तिकेय के वाहन मयूर पर तीन बाण ऐसे छोड़े, जिससे वह पृथ्वी को छोड़कर आकाश में उड़ गया। यह देखकर जब स्वामि कार्तिकेय यदुवंशियों पर आकाश से बाण-वर्षा करने लगे तब प्रद्युम्न ने श्री कृष्णजी की आज्ञा से अपने बाणों द्वारा मयूर-सहित स्वामि कार्तिकेय को पृथ्वी पर डाल कर मूर्च्छित कर दिया। उधर बलरामजी तथा साम्ब ने बाणासुर के दोनों मन्त्रियों को मार डाला। यह दशा देखकर, बाणासुर सात्यकी से लड़ना छोड़-कर श्री कृष्णजी के सामने जा पहुँचा तथा अपने एक सहस्र हाथों में पाँच सौ धनुष लेकर, उनके ऊपर बाण-वर्षा करने लगा। यह देखकर श्री मुरली-मनोहर ने एक बाण ऐसा मारा कि बाणासुर के पाँच सौ धनुष कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े तथा उसका सारथी घोड़ों-सहित अपने प्राणों से हाथ धो बैठा। यह दशा देखकर जब बाणासुर युद्ध-भूमि छोड़कर घर की ओर पैदल भागा तथा श्री कृष्णजी अपना पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए उसका पीछा करने लगे, उस समय बाणासुर की माता 'कोटरा' अपने पुत्र पर विपत्ति देखकर नंगी भागती हुई श्री कृष्णजी के सामने आ पहुँची।

हे परीक्षित! शास्त्रों के आज्ञानुसार पर-स्त्री को नङ्गी देखना महापाप है। यदि किसी पराई स्त्री को नंगी देख लिया जाय, तो तीन बार कड़ुवे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेल से आँख धोने पर ही उसका दोष छूटता है। अस्तु, श्री कृष्णजी ने कोटरा को नंगी देखना उचित न जानकर, अपना मस्तक झुकाकर आँखें बन्द कर लीं। तब तक बाणासुर एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर पुनः युद्धभूमि में आ पहुँचा। तब कोटरा तो घर को लौट गई और बाणासुर श्री बाँकेविहारी से युद्ध करने लगा। जब श्री कृष्णजी ने एक क्षण में उसकी वह सब सेना भी काट डाली तो वह भयभीत होकर शिवजी की शरण में गया। अपने भक्त को दुखी देखकर शङ्करजी ने श्यामवर्ण, तीन सिर, तीन पैर, तीन नेत्र, छः आँख तथा छः हाथवाले अत्यन्त कराल विषम ज्वर को श्री मुरलीमनोहर की सेना में भेजा, उसे देखकर जब सभी यदुवंशी व्याकुल होकर श्री कृष्णजी की शरण में गये, तब श्री त्रिलोकीनाथ ने शीतज्वर को उससे युद्ध करने को भेज दिया। जब विषमज्वर उस ज्वर के वार को न सह सका तो अत्यन्त भयभीत होकर श्री शिवजी के चरणों में जा गिरा तथा उनसे यह कहने लगा कि हे कैलाशपते! इस शीतज्वर के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, सो आप मेरी रक्षा करने की कृपा करें। यह सुनकर शिवजी ने उसे उत्तर दिया कि तुम श्री बाँकेविहारी की शरण में जाओ, वे ही तुम्हें अभय-दान दे सकेंगे। तब विषमज्वर श्री कृष्णचन्द्रजी की शरण में पहुँचकर इस प्रकार बोला—"हे प्रभो! इस समय आपके शीतज्वर के कारण मेरे प्राण कण्ठ में हैं, सो आप मुझे शरणागत जानकर मेरी रक्षा कीजिए।" उसकी प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने उसका अपराध क्षमा करते हुए यह कहा कि आज से तू किसी भी हरि-भक्त को दुःख मत देना। यह सुनकर विषमज्वर श्री श्यामसुन्दर के चरणों में मस्तक नवाकर शिवजी के पास लौट आया। तदुपरान्त बाणासुर ने अपने हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर श्री कृष्णजी के सम्मुख जाकर यह कहने लगा कि अभी तक मेरी युद्ध-पिपासा शान्त नहीं हुई है, सो तुम मुझसे युद्ध करो। उसके ऐसे अभिमानपूर्ण वचन सुनकर श्रीहरि ने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तुम बाणासुर की चार भुजाएँ छोड़कर शेष भुजाएँ काट डालो। अस्तु, जब सुदर्शन चक्र ने उसकी चार भुजाओं को छोड़कर शेष सब भुजाएँ काट डालीं, तब वह अत्यन्त लज्जित हो शिवजी की शरण में जाकर यह कहने लगा—"हे प्रभो! मुझे अपने अभिमान का फल मिल गया, अतः अब आप मेरे प्राण बचाने की कृपा करें। यह सुनकर श्री शिवजी उसे साथ ले, वेदस्तुति करते हुए श्री कृष्णजी के पास पहुँचे तथा बाणासुर को उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरणों में डालकर इस प्रकार कहने लगे–"हे दीनबन्धो ! आप सभी जड़-चैतन्य जीवों के स्वामी तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश के कारण हैं। आप अधर्मियों को मारने तथा हरि-भक्तों की रक्षा करने के लिए सगुण रूप धारण करते हैं। मैं आपके विराट् स्वरूप की वन्दना करता हूँ। हे कृपानाथ ! बाणासुर ने अपने अज्ञान के कारण आपसे शत्रुता की, सो उसका दण्ड वह प्राप्त कर चुका। अब वह मुझे साथ लेकर आपकी शरण में आया है, अतः आप इसका अपराध क्षमा कर दीजिए तथा इसे अपने भक्त प्रह्लाद के वंश में उत्पन्न जानकर अभयदान दीजिए।"

हे परीक्षित ! जब शिवजी ने इस प्रकार स्तुति की तो श्री मुरलीमनोहर बोले–"हे शिवजी ! आपमें और मुझमें भेद समझनेवाला जीव नरक में पड़ता है तथा आपका स्मरण करनेवाला मनुष्य अन्त समय में मुझे प्राप्त करता है। मैंने बाणासुर को आपका भक्त जानकर क्षमा किया। इसका अहंकार नष्ट करने के लिए ही मैंने इसकी सब भुजाएँ काटकर केवल चार भुजाएँ रहने दी हैं। आप जिसे वरदान देते हैं, उसका कल्याण करना मेरा कर्तव्य है। हे कैलाशी ! मैंने भक्त प्रह्लाद को यह वरदान दिया था कि तेरे वंश में जो उत्पन्न होंगे, मैं उनकी रक्षा करूँगा, इसलिए यदि आप न भी कहते तो भी मैं इसके प्राण न लेता। अब मैं बाणासुर के सब अपराध क्षमा करके इसे चतुर्भुजी रूप में आपका पार्षद बनाता हूँ।"

हे परीक्षित ! श्री श्यामसुन्दर के ऐसे वचन सुनकर बाणासुर उनके चरणों पर गिर पड़ा। तदुपरान्त हाथ जोड़कर, अत्यन्त अधीनता से इस प्रकार कहने लगा–"हे प्रभो ! जिस प्रकार आपने कृपा करके मुझे अपना दर्शन दिया, उसी प्रकार अब अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कीजिए तथा उषा के साथ अनिरुद्ध का विवाह करके उन्हें अपने साथ ले जाइये।" यह सुनकर जब श्री कृष्णजी प्रसन्न होकर बलरामजी आदि सब यदुवंशियों-सहित उसके घर गये तो उसने सबका पूजन-आतिथ्य करने के उपरान्त बड़ी धूम-धाम से शास्त्रानुसार अपनी पुत्री उषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह कर दिया तथा दहेज में स्वर्ण, आभूषण, रत्न, वस्त्र, गौ, रथ, हाथी, दास-दासी आदि बहुत-सा सामान दिया। तदुपरान्त श्री मुरलीमनोहर ने बाणासुर को धैर्य देकर, उसे अपनी ओर से राजसिंहासन पर बैठा दिया तथा दूल्हा-दुलहिन को साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक द्वारकापुरी में लौट आये। उन्हें देखकर सभी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारकावासियों ने बड़ा आनन्द मनाया तथा घर-घर मंगलाचार हुए।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल इस कथा को प्रेमपूर्वक पढ़ता-सुनता है वह युद्ध में शत्रु से कभी नहीं हारता।"

चौसठवाँ अध्याय

राजा नृग का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! नागवंश में 'नृग' नामक एक बड़ा धर्मात्मा राजा था। वह प्रतिदिन असंख्य गौएँ ब्राह्मणों को दान में दिया करता था। गङ्गाजी की रेणुका के कण, वर्षा की बूँदें अथवा आकाश के तारे भले ही गिन लिये जायँ, परन्तु उस राजा द्वारा दान की जानेवाली गायों की गणना नहीं की जा सकती। ऐसा परम धार्मिक राजा भी अनजान में थोड़ा-सा पाप करने के कारण गिरगिट हो गया। तब उसे श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपना दर्शन देकर मुक्त किया।" यह सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे शुकदेवजी ! वह धर्मात्मा राजा किस दोष के कारण ऐसी योनि को प्राप्त हुआ, वह वृत्तान्त मुझे सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! राजा नृग प्रतिदिन प्रातःकाल सहस्रों गौ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान करके भोजन करता था। एक दिन उसकी दान की हुई कोई गौ, बिना दान की हुई गौओं में आकर मिल गई। राजा ने उस गौ को फिर दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। जब दूसरा ब्राह्मण उस गौ को लेकर अपने घर चला, तब मार्ग में जाते समय पहिले ब्राह्मण ने अपनी गौ को पहिचान कर, उससे यह कहा कि तू मेरी गौ को कहाँ लिए जा रहा है ? इस बात पर जब दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ तो वे उस गौ को साथ लेकर राजा नृग के पास जा पहुँचे। उस समय राजा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए उनसे यह कहा कि आप दोनों में से कोई एक गौ के बदले एक लाख रुपये ले लीजिए।" यह सुनकर उन ब्राह्मणों ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"हे राजन् ! हमने इस गौ को 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया है, अतः इसके बदले हम रुपया नहीं लेंगे।" राजा के बहुत प्रार्थना करने तथा समझाने पर भी कोई ब्राह्मण नहीं माना। फिर वे दोनों ही उस गौ को राजा के पास छोड़कर अपने घर चले गये। उस समय राजा ने अनजाने में हुए इस पाप की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शान्ति के लिए अन्य ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया। कुछ दिनों बाद जब राजा की मृत्यु हुई और वह धर्मराज के पास पहुँचा, तब धर्मराज ने उससे यह कहा कि हे राजन्! तुम्हारा पुण्य बहुत है, परन्तु उसके साथ ही थोड़ा-सा पाप भी है। सो तुम हमें यह बताओ कि पहिले पुण्य का फल भोगोगे अथवा पाप का? यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया—"हे महाराज! मैं पहिले पाप का फल भोगूँगा।" तब धर्मराज ने यह कहा कि हे राजन्! एक बार दान की हुई गौ को दुबारा दान करने के पाप के कारण तुम कुछ दिनों तक गिरगिट बनकर एक अँधेरे कुएँ में पड़े रहोगे। जब द्वापर में कृष्णावतार होगा तब श्री कृष्णजी तुम्हें अपना दर्शन देकर मुक्त करेंगे। इतना कहकर धर्मराज ने उसे गिरगिट बनाकर एक अँधेरे कुएँ में डाल दिया, तब से वह वहीं श्री कृष्णजी के दर्शनों की लालसा लिए रह रहा था। अस्तु, बाणासुर को जीतने के बाद एक दिन जब प्रद्युम्न तथा साम्ब आदि यदुवंशी शिकार खेलने के लिए उसी कुएँ के पास पहुँचे, उस समय एक बालक प्यासा होकर कुएँ पर पानी भरने के लिए गया। वहाँ जब उसने बहुत बड़े गिरगिट को देखा, तब वह अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर उसे अपने अन्य साथी लड़कों को दिखाया। जब वे लड़के उस गिरगिट को कुएँ से बाहर निकालने में असमर्थ रहे तो उन्होंने श्री कृष्णजी के पास आकर उसका हाल कहा तथा यह प्रार्थना की कि उस गिरगिट को कुएँ से बाहर निकाल दीजिए। उनकी बात सुनकर अन्तर्यामी श्री कृष्णजी सब हाल जानकर उस कुएँ के पास जा पहुँचे। वहाँ जैसे ही उन्होंने अपना चरण गिरगिट के शरीर से स्पर्श कराया, वैसे ही वह उत्तम वस्त्राभूषणों से युक्त राजाओं के समान दिव्य स्वरूप में परिवर्तित होकर श्रीहरि के चरणों में गिर पड़ा तथा स्तुति करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! आपने इस घोर विपत्ति के समय मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है। आपके समान मुझ जैसे अधर्मी को सुख पहुँचानेवाला अन्य कोई नहीं है।" इस प्रकार राजा नृग ने जब बहुत स्तुति की, उस समय प्रद्युम्न आदि बालकों ने आश्चर्यचकित होकर श्री श्याम-सुन्दर से यह कहा कि हे प्रभो! यह दिव्य स्वरूप कौन है तथा किस अपराध के कारण गिरगिट हो गया था? आप कृपा कर इसका भेद कहिए, जिससे हमारा सन्देह दूर हो जाय।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने स्वयं कोई उत्तर न देकर राजा नृग से कहा—"हे दिव्याकृति! तुम अपना सब भेद समझाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहो।" उस समय राजा नृग ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी यदि आप पूछना ही चाहते हैं तो मैं बताता हूँ कि मैं पूर्व जन्म में राजा इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग था। उस जन्म में मैं दस सहस्र गौएँ प्रतिदिन दान करता था। एक दिन यह संयोग बना कि मैंने जो गौ एक ब्राह्मण को दान कर दी थी, वह किसी प्रकार फिर मेरे यहाँ लौट आई। तब दूसरे दिन मैंने उसे एक दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। जब दूसरा ब्राह्मण उस गौ को लेकर अपने घर चला, उस समय पहिले ब्राह्मण ने उसे पहचानकर झगड़ा किया। तदुपरान्त वे दोनों झगड़ते हुए मेरे पास आये। मैंने उन्हें बहुत समझाया कि तुम दोनों में से कोई एक लाख रुपये लेकर इस गौ को छोड़ दो। परन्तु उनमें से किसी ने भी मेरी बात नहीं मानी। तदनन्तर वे गौ को मेरे पास ही छोड़कर चले गये। हे अन्तर्यामी! कुछ दिनों बाद जब मेरी मृत्यु हुई तो धर्मराज ने उसी अपराध के कारण मुझे गिरगिट का जन्म देकर इस कुएँ में डाल दिया तथा यह कहा कि द्वापर युग में श्री कृष्णजी का दर्शन पाने से तेरी मुक्ति होगी। सो हे महाप्रभु! इस प्रकार आज आपके दर्शन प्राप्त कर मैं कृतार्थ हुआ हूँ। अब आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे आपके चरणों की भक्ति मेरे हृदय में सदैव बनी रहे।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने उसे इच्छित वरदान देकर बिदा किया। तब वह विमान पर बैठकर देवलोक को चला गया।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन्! जब राजा नृग देवलोक को चला गया, तब श्री कृष्णजी ने अपने सभी पुत्रों तथा यदुवंशियों को समझाते हुए यह कहा कि देखो, ब्राह्मणों की महिमा कितनी प्रबल है। यदि बिना अपराध के भी ब्राह्मण किसी के ऊपर क्रोध करें तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता है। ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि वह किसी ब्राह्मण का धन कभी न ले। विष खाने से तो एक ही व्यक्ति मरता है, परन्तु ब्राह्मण का अंश लेनेवाला अपने परिवारसहित नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य अनजान में भी ब्राह्मण की पृथ्वी अथवा धन आदि लेता है, उसके तीन पुरखा नरक में जाते हैं। जो ब्राह्मण की किसी वस्तु को जबर्दस्ती छीनता है उसके दस पुरखाओं को नरक भोगना पड़ता है। जो लोग ब्राह्मण को दिया हुआ दान वापिस लेते हैं, वे साठ सहस्र वर्षों तक नरक में कीड़ा बनकर रहते हैं। तदुपरान्त नीच योनि में जन्म लेते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि ब्राह्मण तलवार लेकर भी सामने आवे तो उसके चरणों में अपना मस्तक रख देना चाहिए। जो लोग मुझमें अथवा ब्राह्मणों में कोई भेद समझते हैं, उन्हें नरक अवश्य भोगना पड़ता है तथा ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले मेरे चरणों की भक्ति को पाकर परम पद को पहुँचते हैं।"

इतना कहकर श्री श्यामसुन्दर सबको साथ ले, घर लौट आये। जब उन्होंने राजा उग्रसेन से सब हाल कहा, तो उन्होंने ब्राह्मणों को श्रेष्ठ जानकर मन ही मन दण्डवत् किया। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे प्रभु! धर्मात्मा राजा नृग की अनजान में पाप करने के कारण ऐसी कठिन गति क्यों हुई?" श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया—"हे परीक्षित! राजा नृग अपने दान का बड़ा अभिमान करता था, इसी लिए उसने कड़ा दण्ड पाया। दान-धर्म आदि में अभिमान नहीं करना चाहिए।"

पैंसठवाँ अध्याय

बलरामजी का वृन्दावन में पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! एक समय श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी राजभवन में बैठे हुए थे, उस समय बलदेवजी ने नन्द-यशोदा आदि व्रजवासियों को याद करके श्री कृष्णचन्द्रजी से इस प्रकार कहा कि हे भाई! जब कंस ने हमें मथुरा बुलाया था, तब हम नन्द-यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों को यह वचन देकर आये थे कि कुछ दिन बाद हम फिर वृन्दावन लौटकर आवेंगे। परन्तु तब से इतने दिन बीत गये, हम वहाँ नहीं जा सके हैं। अस्तु, अब आप कहें तो हम वृन्दावन जाकर नन्द-यशोदा तथा गोपी-ग्वालों का धैर्य बँधा आवें तथा उनकी सुधि ले आवें। यह बात जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने सहर्ष स्वीकार की, तब बलरामजी हल-मूसल ले, रथ पर चढ़कर वृन्दावन को चल दिए। हे राजन्! बलभद्रजी जिस-जिस देश में होकर जाते थे, वहीं के राजा आगे आकर उनका सम्मान करके अनेक प्रकार की भेंटें देते थे। इस प्रकार कुछ दिनों की यात्रा करके वे उज्जैन में अपने गुरु सांदीपन पण्डित के दर्शन करते हुए वृन्दावन जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने यह देखा कि श्री श्यामसुन्दर के विरह में गायें मुँह बाये खड़ी हैं तथा बिना तृण खाये उन्हीं की याद में रँभा रही हैं। स्थान-स्थान पर गोपी-ग्वाल श्रीहरि के चरित्रों का कीर्तन कर रहे हैं तथा उन्हीं के ध्यान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में मग्न हैं। यह दशा देखकर बलरामजी की आँखों में आँसू भर आये और आगे जाने पर जब व्रजवासियों ने उनके रथ की पताका देखी तो सभी ग्वाल-बाल श्याम-बलराम का आगमन जानकर, दौड़ते हुए रथ के पास आ पहुँचे। उस समय बलरामजी ने रथ से उतरकर सबको अपने गले से लगाया तथा मिल-भेंट कर, उनकी कुशल-क्षेम पूछी। इसी समय किसी ग्वाल ने नन्द-यशोदा के पास जाकर यह सन्देश दिया कि श्री बलरामजी आये हैं, तब वे भी उठकर दौड़ते हुए उनके पास जा पहुँचे। जब बलरामजी ने दूर से ही नन्द-यशोदा को आते देखा तो वे आगे बढ़कर उनके चरणों पर गिर पड़े। उस समय नन्दजी ने उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया तथा वियोग का भार दूर किया। यशोदा ने भी उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। उस समय उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! तदनन्तर बलरामजी को घर लाकर नन्द-यशोदा ने कुशल-क्षेम पूछा।" नन्दजी बोले—"हे बलदाऊ! राजा उग्रसेन-सहित वसुदेवजी आदि सब यादव तथा हमारे प्यारे कृष्णचन्द्र तो सकुशल हैं? वे कभी हमारी भी याद करते हैं अथवा नहीं?" यह सुनकर बलरामजी ने उत्तर दिया—"हे बाबा! आपकी कृपा से सब लोग प्रसन्न हैं तथा सदैव आपका गुणगान किया करते हैं।" यह सुनकर जब नन्दजी चुप हो गये तब यशोदा ने पूछा—"हे बलदेव! मेरी आँखों के तारे कन्हैया तो आनन्दपूर्वक हैं? जब से वे यहाँ से गये हैं, तब से हमारी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। हम सब आठों प्रहर उन्हीं का ध्यान करते रहते हैं, परन्तु वे हमारी याद भुलाकर द्वारका में बस रहे हैं। देखो, देवकी तथा रोहिणी बहिन भी हमें भूल बैठी हैं। श्री श्यामसुन्दर ने मथुरा को गोकुल के समीप जाना, इसीलिए अब वे इतनी दूर द्वारका में जाकर रहने लगे हैं।" इतना कहकर जब यशोदा व्याकुल होकर रोने लगीं उस समय बलरामजी ने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर धैर्य बँधाया। तत्पश्चात् जब वे भोजन आदि से निवृत्त होकर घर से बाहर निकले तो यह देखा कि सभी गोपियाँ तन क्षीण, मन मलीन, बिखरे केश, श्रीहरि के प्रेम में मतवाली बनी उन्हीं के गुणों को गाती हुई इधर-उधर घूम रही हैं।

हे परीक्षित! जब गोपियों ने श्री बलरामजी को देखा तो वे अत्यन्त प्रसन्न होकर दौड़ती हुई उनके पास आ पहुँचीं तथा हाथ जोड़कर दण्डवत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करती हुई, इस प्रकार कहने लगीं—"हे बलरामजी! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर कुशल सहित तो हैं? वे कभी हमारी भी याद करते हैं अथवा नहीं? वे जब से यहाँ से गये हैं, तब से एक बार उन्होंने ऊधो के हाथ योग का सँदेशा अवश्य भेजा था, परन्तु उसके बाद फिर कोई सुधि नहीं ली। अब जब वे समुद्र में जाकर रहने लगे हैं तो भला, फिर किसी की सुधि क्यों लेंगे?" उस समय एक गोपी ने यह कहा—"हे सखी! श्री मुरलीमनोहर की प्रीति का भरोसा कौन करे? जिन्होंने उनसे प्रेम किया उसी को उन्होंने पीठ दिखाई। वे तो अब अपने माता-पिता को भी भूल गये। कहाँ तो वे राधा के बिना एक पल को भी नहीं रहते थे और कहाँ अब वह बिचारी बरसाने में पड़ी रहती है। हम सबने भी लोक-लाज त्यागकर, उनसे प्रीति करके क्या पाया? अब सुनती हूँ कि उन्होंने सोलह सहस्र एक सौ राज-कन्याओं के साथ भी, जिन्हें भौमासुर ने घेर कर रख छोड़ा था, अपना विवाह कर लिया है। ऐसी स्थिति में वे भला हमारी याद क्यों करने लगे? अब तो श्यामसुन्दर के पुत्र, पौत्र भी हो गये हैं, सो भला उन्हें छोड़कर यहाँ क्यों आवेंगे?" यह सुनकर एक अन्य गोपी ने कहा—"हे सखी! मुरलीमनोहर के अवगुण तो ऊधो ही आकर सुना गये, अतः उनके लिए पछतावा करना व्यर्थ है। अब यदि मेरी बात मानो तो इन श्री बलरामजी के चरण पकड़ लो। वे काले थे, परन्तु ये गोरे हैं, इसलिए ये कपट की बात नहीं करेंगे।" गोपियों के ऐसे वचन सुनकर श्री बलरामजी ने कहा—"हे गोपियो! मैं तुम्हारे ही लिए यहाँ आया हूँ। हम लोग तुमसे लौट कर आने की बात कह गये थे, इसी-लिए श्यामसुन्दर ने हमें यहाँ भेजा है। अब हम दो महीने तक यहीं रहकर रास करेंगे तथा तुम्हारे मन की अभिलाषा पूर्ण करेंगे।" इतना कहकर बलरामजी ने सब गोपियों को आज्ञा दी कि आज पूर्णिमा की रात है, अतः तुम सब शृङ्गार करके वन में आओ। वहाँ हम तुम्हारे साथ रास करेंगे। यह सुनकर सब गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चली गईं।

हे राजन्! सन्ध्या के समय जब बलरामजी वन में पहुँचे तो सब गोपियाँ भी सोलह शृङ्गार करके उनके पास जा पहुँचीं। उस समय की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री बलरामजी कुन्दन के समान शरीर पर नीलाम्बर को धारण किए, अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आभूषण पहिने, अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे। उनकी छवि को देखकर सब गोपियाँ चरणों में गिरकर रास-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लीला करने का अनुरोध कर उठीं। उस समय जैसे ही बलरामजी ने 'हूँ' कहा, वैसे ही रास-लीला की सब वस्तुएँ वहाँ उपस्थित हो गईं तथा यमुना-तट पर सुन्दर रास-मण्डल प्रकट हो गया। तब सब गोपियाँ सङ्कोच त्याग, प्रेमपूर्वक वीणा, मृदङ्ग, करताल, उपंग, मुरली आदि वाद्य-यन्त्र लेकर बजाने तथा थेई-थेई करके नाचती हुई श्री बलरामजी को रिझाने लगीं। इसके बाद बलरामजी भी वरुण देवता द्वारा भेजी गई वारुणी का पान करके उनके साथ रास-लीला करने और उन्हें सुख पहुँचाने लगे। उस समय उस शोभा तथा सुख को देखने के लिए देवता, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष आदि अपनी-अपनी स्त्रियों सहित विमानों पर बैठकर आकाश में आ पहुँचे तथा बलरामजी की प्रशंसा-स्तुति करते हुए उनके ऊपर पुष्प बरसाने लगे। चन्द्रमा भी उस रास-लीला की शोभा को देख, तन्मय हो, तारागणों सहित एक स्थान पर ठहर गया तथा अपनी किरणों से अमृत की वर्षा करने लगा। यमुना का जल तथा वायु भी थम गये।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! उसी आनन्द में श्री बलरामजी ने जल-विहार करने का निश्चय करके यमुना को यह आज्ञा दी कि तुम हमारे समीप आकर हमें स्नान कराओ। परन्तु जब यमुना ने उनकी आज्ञा नहीं मानी, तब बलरामजी ने अपने हल की नोंक को यमुना में डालकर उसे अपने पास खींचकर स्नान किया। तभी से उस स्थान पर यमुना अब तक टेढ़ी है। यह देखकर यमुना ने अत्यन्त भयभीत हो, स्त्रीरूप धारण करके श्री बलरामजी के पास आ, हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—"हे बलभद्रजी! मैंने आपको पहिचाना नहीं था कि आप शेषजी के अवतार हैं। अतः आप मुझे अपनी शरण में आई हुई जानकर मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।" यह स्तुति सुनकर बलरामजी ने यमुना का अपराध क्षमा कर दिया। तब वह तो चली गई तथा हलधरजी सब गोपियों सहित यमुना-जल में इस प्रकार विहार करने लगे जिस प्रकार गजराज हथिनियों के साथ जल-विहार करके प्रसन्न होता है। अस्तु, जल-विहार करने के उपरान्त जब वे बाहर आये, तब वरुण आदि देवताओं ने उनके सम्मुख मोतियों, मणियों तथा वस्त्राभूषणों का ढेर लगा दिया। उन्हें बलरामजी की आज्ञा पाकर सब गोपियों ने धारण किया। तब श्री हलधरजी ने उनके साथ वन-विहार किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! इस प्रकार बलरामजी ने चैत्र तथा वैशाख भर दो महीने वृन्दावन में रहकर रात्रि में रास-विलास करके गोपियों को सुख पहुँचाया और दिन में नन्द-यशोदा आदि को श्री श्यामसुन्दर की चर्चा करके आनन्द प्रदान किया। तदुपरान्त एक दिन जब श्री बलभद्रजी ने द्वारका जाने की इच्छा प्रकट की तो नन्द आदि सभी व्रजवासियों ने श्री श्यामसुन्दर आदि को देने के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएँ दीं। तब वे गोपियों तथा ग्वालों को समझा-बुझा, धैर्य बँधा, सब लोगों से बिदा लेकर द्वारका को चल दिए। कुछ दिनों बाद उन्होंने द्वारका पहुँचकर श्री श्यामसुन्दर से सब समाचार कह सुनाया।"

छियासठवाँ अध्याय

पुण्डरीक के मोक्ष की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! कन्तित देश का प्रतापी राजा 'पुण्डरीक' काशीपुरी में रहता था। जब उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं वासुदेव नाम रख कर स्वयं को हरि का अवतार घोषित करूँ तथा अपनी पूजा कराऊँ, तब उसने दो भुजाएँ काठ की बनवाकर अपने शरीर में लगवा लीं तथा श्री श्यामसुन्दर के समान पीताम्बर पहिन, वैजयन्ती माला गले में डाल, कुण्डल पहिन लिए, फिर वह अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म ले, काठ के गरुड़ पर सवार होकर चारों ओर घूम-घूमकर अपनी पूजा कराने लगा तथा अपना नाम भी वासुदेव रख लिया। जो लोग उसे वासुदेव जानकर पूजते थे, उनसे वह प्रसन्न रहता था तथा जो अधर्म का विचार करके उसे नहीं मानते थे, उन्हें भाँति-भाँति के कष्ट पहुँचाता था। उसकी यह दशा देख-कर लोग आपस में यह चर्चा करने लगे कि एक तो वासुदेव श्री कृष्ण हैं, जिन्होंने यदुकुल में अवतार लेकर कंस का संहार किया तथा अब द्वारका-पुरी में विराज रहे हैं, दूसरा यह वासुदेव उत्पन्न हो गया है। अतः हम इन दोनों में किसकी पूजा करें और किसको सच्चा मानें।

हे परीक्षित ! जब पुण्डरीक को अपने मन में बहुत अभिमान उत्पन्न हुआ तो एक दिन उसने अपनी सभा में बैठकर लोगों से यह कहा—"हे सभासदो ! मैंने यह सुना है कि कोई मनुष्य अपना नाम वासुदेव रखकर द्वारका में रह रहा है तथा अपनी पूजा कराता है। परन्तु सच्चाई यह है कि वास्तविक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

वासुदेव मैं हूँ। मैं ही अवतार धारण करके पृथ्वी का भार दूर करता हूँ तथा अपने भक्तों को सुख पहुँचाता हूँ, इसलिए यह आवश्यक है कि मैं उस कृष्ण नामवाले दूसरे वासुदेव से युद्ध करके उसे मार डालूँ, जिससे सब लोगों का भ्रम दूर हो जाय।" इतना कहकर पुण्डरीक ने एक ब्राह्मण को बुलाकर यह कहा कि तुम द्वारका में जाकर कृष्ण से यह कह दो कि वह हमारा वेश त्याग कर हमारी आज्ञा का पालन करे, अन्यथा यहाँ आकर हमारे साथ युद्ध करे। पुण्डरीक का यह सन्देश लेकर वह ब्राह्मण द्वारकापुरी में जा पहुँचा। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने उसे दण्डवत् करके यह पूछा कि हे द्विजश्रेष्ठ! आप कहाँ से आये हैं तथा हमारे लिए क्या समाचार लाये हैं। तब उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया—"हे महाप्रभु! मैं काशीपुरी के राजा पुण्डरीक का सन्देशा लेकर आया हूँ, परन्तु उसे कहते हुए मुझे लज्जा आती है। इसलिए यदि आप अभय दान दें तो मैं उसे कहूँ।" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी बोले—"हे ब्राह्मण! तुम निस्संकोच अपनी बातें कहो। तुम्हारे लिए भय मानने का कोई कारण नहीं है।" तब ब्राह्मण ने कहा—"हे जगत्पते! आपके लिए राजा पुण्डरीक ने यह कहलवाया है कि मैं सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला वास्तविक वासुदेव हूँ। मैं आठ पटरानियों से भोग-विलास करता हूँ तथा मैंने ही पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार ग्रहण किया है। मेरे पास शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म है तथा मैं गरुड़जी पर चढ़ता हूँ। तुम मेरा वेश बनाकर अपने को वासुदेव क्यों कहते हो? यदि तुम त्रिभुवन-पति होते तो जरासन्ध से भयभीत होकर द्वारका में क्यों रहते? अब तुम्हें उचित है कि तुम शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करना छोड़कर अपने वासुदेव नाम को त्याग दो। अन्यथा मैं सब यदुवंशियों सहित तुम्हें मारकर पृथ्वी का भार उतारूँगा। उस समय तुम यह जान जाओगे कि वास्तविक वासुदेव कौन है और झूठा कौन है? क्या तुम यह नहीं जानते कि अलख, अगोचर तथा निरंजन-स्वरूप त्रिलोकीनाथ मैं ही हूँ? ऋषि-मुनि आदि मेरे ही नाम का जप, तप तथा ध्यान करते हैं। मैं ही ब्रह्मा बनकर सृष्टि रचता हूँ, विष्णु बनकर पालन करता हूँ तथा शिव बनकर संहार करता हूँ। मैंने ही मत्स्य-रूप धारण कर वेद को समुद्र से निकाला तथा मैंने ही कच्छप-रूप धरकर मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर उठाया है। वाराह-रूप धरकर मैंने ही पृथ्वी को पाताल से निकाला तथा नृसिंह-रूप धारण करके मैंने ही हिरण्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कशिपु का संहार किया है। मैंने ही वामन-स्वरूप धरकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान लिया तथा मैंने ही रामचन्द्र का अवतार धारण कर अन्यायी रावण को मारा है। मेरा यही काम है कि जब-जब अधर्मी तथा अन्यायी दैत्य अथवा राजा लोग हरि-भक्तों को दुःख देते हैं, तब-तब मैं अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारता हूँ। इसी लिए ही मैंने अब वासुदेव के रूप में अवतार लिया है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! जब पुण्डरीक के दूत ने इस प्रकार की बातें कहीं तो श्री श्यामसुन्दर सहित सभी यदुवंशी हँसने लगे। उसी बीच एक यदुवंशी ने क्रोधित होकर इस प्रकार कहा–"हे ब्राह्मण! तुम मिथ्या बात कह रहे हो। यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसी बातें कहता तो हम उसे बिना मारे न छोड़ते।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने उसे उत्तर दिया–"हे भाई! दूत पर इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए। तदुपरान्त श्री कृष्णचन्द्रजी ने उस ब्राह्मण से कहा–"हे ब्राह्मण! तुम अपने राजा के पास जाकर यह कहो कि हम तुम्हारा सँदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अतः हम उससे युद्ध करने के लिए आ रहे हैं, वह अपनी सब तैयारी कर ले।" इतना सुनकर वह ब्राह्मण वहाँ से चलकर काशीपुरी में जा पहुँचा तथा राजा पुण्डरीक को सब समाचार कह सुनाया। कुछ दिन बाद श्री श्यामसुन्दर भी यदुवंशियों को साथ लेकर काशीपुरी में जा पहुँचे। जब उन्होंने वहाँ जाकर अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया, तब राजा पुण्डरीक युद्ध करने के लिए दो अक्षौहिणी सेना साथ लेकर उनके सामने आ पहुँचा। जब भौमासुर के भाई तथा पुण्डरीक के मित्र 'पारसंग्रह' नामक प्रयाग के राजा ने यह समाचार सुना तो वह भी पुण्डरीक की सहायता करने के लिए तीन अक्षौहिणी सेना अपने साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा। अस्तु, जब युद्ध आरम्भ हुआ तो श्री श्यामसुन्दर ने राजा पुण्डरीक के सामने जाकर उसका मुकुट उतार लिया और हँसते हुए यह कहा–"हे राजन्! हम तुम्हारे सन्देश को पाकर यहाँ आये हैं। अब तुम्हीं सच-सच बतलाओ कि पाखण्डी कौन है? यदि तुम हमारा वेश उतारकर सच्ची बात स्वीकार कर लो तो हम तुम्हें छोड़ देंगे अन्यथा जान से मार डालेंगे।" यह सुनकर भी जब उस अज्ञानी राजा ने श्रीहरि का कहना नहीं माना, तब उन्होंने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तुम इन दोनों राजाओं को सेना सहित काट डालो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब श्री मुरलीमनोहर के आज्ञानुसार सुदर्शन चक्र ने पहिले तो उस कपट वेश-धारी राजा की दोनों काठ की भुजाएँ उखाड़ दीं। फिर काठ के गरुड़ को नष्ट करके उसका मस्तक काट लिया। तदुपरान्त 'पारसंग्रह' का मस्तक काट कर सम्पूर्ण सेना को भी मार डाला। उस समय श्री बाँकेविहारी के आज्ञानुसार पुण्डरीक का मस्तक धड़ से कटकर नगर के द्वार पर जा गिरा तथा चैतन्य आत्मा मुक्ति को प्राप्त हो गई।

हे परीक्षित! जब नगरवासियों ने राजमन्दिर में जाकर राजा पुण्डरीक के मरने का समाचार कहा तो उसकी सब रानियाँ विलाप करती हुई उसके साथ सती हो गईं। उस समय पुण्डरीक के पुत्र 'सुदक्षिण' ने क्रुद्ध होकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं अपने पिता का प्रतिशोध लिए बिना नहीं मानूँगा। अस्तु, जब श्री श्यामसुन्दर यदुवंशियों सहित द्वारकापुरी को लौट गये, तब सुदक्षिण उन्हें मारने के लिए श्री शिवजी का तप करने लगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जब सुदक्षिण ने प्रेमपूर्वक शिवजी का तप किया तो श्री शिवजी ने प्रकट होकर उससे वरदान माँगने के लिए कहा। तब सुदक्षिण ने उन्हें दण्डवत् करते हुए यह प्रार्थना की—"हे प्रभो! मैं यही चाहता हूँ कि जिसने मेरे पिता को मारा है, उसे इसका बदला मिल जाय।" यह सुनकर श्री शिवजी ने उत्तर दिया—"हे सुदक्षिण! तेरे पिता की बुद्धि उल्टी हो गई थी, अतः यदि तू उसका बदला लेना चाहता है तो उल्टे मन्त्र पढ़कर दक्षिणाग्नि में हवन कर। उसके प्रताप से यज्ञ-कुण्ड से 'कृत्या' नामक एक राक्षसी प्रकट होकर तेरी आज्ञा का पालन करेगी। परन्तु तू यह ध्यान रखना कि जो लोग हरि-भक्त नहीं हैं, उन्हीं पर तेरा वश चलेगा। इसके विपरीत यदि तूने किसी हरि-भक्त महात्मा से विरोध किया तो तेरा प्राण भी जाता रहेगा।" इतना कहकर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब सुदक्षिण ने उल्टे मन्त्र पढ़कर यज्ञ किया। उसके सम्पूर्ण होने पर यज्ञ-कुण्ड से एक बड़े दाँतोंवाली, हाथ में त्रिशूल धारण किए, कृष्णवर्ण कृत्या नामक राक्षसी ने प्रकट होकर यह कहा—"हे सुदक्षिण! तेरा शत्रु कहाँ है, तू उसे मुझे बतला?" जब सुदक्षिण ने उसे यह बतलाया कि मेरा शत्रु द्वारकापुरी में है तो वह उसी समय मार्ग के वन तथा नगरों को जलाती हुई द्वारकापुरी में जा पहुँची तथा अपने तेज से उस पुरी को भी जलाने लगी। यह देखकर द्वारकावासियों ने अत्यन्त भयभीत हो, श्री श्यामसुन्दर के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाकर यह कहा—"हे प्रभो ! न जाने कहाँ से एक राक्षसी यहाँ आकर पुरी को जला रही है, अतः आप उसके हाथ से हमारे प्राण बचाइये।" यह सुनकर श्रीहरि बोले—"तुम लोग धैर्य रक्खो। वह राक्षसी काशीपुरी से आई है, सो मैं उसे अभी मार कर भगाये देता हूँ।" इतना कहकर श्री मुरलीमनोहर ने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तुम कृत्या को मारकर भगा दो तथा काशीपुरी को जलाकर लौट आओ। यह आज्ञा पाकर सुदर्शन चक्र ने जब कृत्या को भगाया, तब उसने काशीपुरी में लौटकर सुदक्षिण सहित यज्ञ करानेवाले सभी ब्राह्मणों को मार डाला। तदुपरान्त सुदर्शन चक्र ने भी वहाँ पहुँचकर काशीपुरी को जला दिया। उस समय सब प्रजा व्याकुल होकर सुदक्षिण को गालियाँ देने लगी। तदनन्तर सुदर्शन चक्र अपनी ज्वाला को मणिकर्णिका कुण्ड में शान्त करके द्वारकापुरी लौट आया तथा श्री त्रिलोकीनाथ को सब समाचार कह सुनाया।"

सरसठवाँ अध्याय

बलरामजी का द्विविद वानर को मारने की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! अब हम तुम्हें वह कथा सुनाते हैं, जिस प्रकार बलरामजी ने 'द्विविद' नामक वानर को मारा था, सुनो। द्विविद नामक वानर 'सुग्रीव' का मन्त्री 'मयन्द्री' नामक वानर का भाई तथा भौमासुर का मित्र था। उसके शरीर में दस सहस्र हाथियों का बल था। अस्तु, एक दिन जब उसने अपने मित्र भौमासुर के मारे जाने का समाचार सुना, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो, उसकी मृत्यु का बदला लेने के लिए मार्ग के नगर एवं गाँवों को उजाड़ता हुआ द्वारकापुरी को चला। वह अपनी माया तथा मन्त्रों द्वारा आग, पानी तथा पत्थरों की वर्षा करके लोगों को दुःख देता था। कभी वह किसी को पत्थर से मार डालता तो कभी किसी को समुद्र में डुबा देता था। जहाँ ऋषि-मुनियों को बैठे देखता, वहाँ मल, मूत्र, रुधिर आदि की वर्षा करके उनके तप तथा स्थान को भ्रष्ट कर देता था। इस प्रकार सबको दुःख पहुँचाता हुआ जब वह द्वारकापुरी में आया, तब छोटा-सा स्वरूप धारण कर श्री मुरलीमनोहर के भवन पर जा बैठा। उसे देखकर सब स्त्रियों ने भयभीत होकर अपने घरों के द्वार बन्द कर लिए। उन दिनों बलरामजी गन्धर्व तथा उनकी स्त्रियों के साथ विहार करने के लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

'रैवत' नामक पर्वत पर गये हुए थे। यह जानकर द्विविद ने अपने मन में विचार किया कि पहिले मैं बलभद्र को ही मार डालूँ; बाद में श्यामसुन्दर को आकर मारूँगा। यह विचार करके वह रैवत पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ उसने यह देखा कि बलरामजी मदिरा पान करके गन्धर्वों की स्त्रियों के साथ एक सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहे हैं। तब द्विविद छोटा-सा रूप बनाकर सरोवर के तट पर खड़े हुए एक वृक्ष पर जा चढ़ा तथा किलकारियाँ भरकर एक डाली से दूसरी डाली पर उछल-कूद मचाने लगा। उन स्त्रियों के जो कपड़े तट पर रक्खे हुए थे, उन्हें उसने अपने मल-मूत्र से नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् एक पत्थर मारकर मदिरा के पात्र को भी फोड़ डाला।

हे परीक्षित! यह दशा देखकर उन स्त्रियों ने बलरामजी को पुकार कर सब हाल बताया। तब उन्होंने तालाब से बाहर निकलकर उस वानर के ऊपर एक ढेला फेंका। यह देखकर द्विविद ने वृक्ष से नीचे उतरकर स्त्रियों के समस्त वस्त्रों को फाड़ डाला। उस समय जब बलरामजी ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया तो वह छोटा रूप बनाकर उनके हाथ से बाहर निकल गया। तदनन्तर वह पर्वत के समान विशाल रूप धरकर उनसे लड़ने के लिए सामने आया तथा बड़े-बड़े वृक्ष एवं शिलाखण्ड उठाकर उनके ऊपर प्रहार करने लगा। जब श्री बलभद्रजी उसकी ओर हल-मूशल उठाकर दौड़े, तब उसने एक वृक्ष को जड़ से उखाड़कर उनके ऊपर फेंका। अस्तु, जब बलरामजी ने यह देख लिया कि यह वानर तो अत्यन्त दुष्ट है, तब उन्होंने उसके मस्तक पर अपने मूशल की एक ऐसी चोट की, जिसके कारण उसका सिर फट गया तथा उससे शोणित की धारा इस प्रकार बहने लगी, जैसे गेरू के पर्वत से पानी बहता है। परन्तु इतना होने पर भी उस वानर ने एक दूसरा वृक्ष उखाड़कर बलरामजी के ऊपर फेंका, जिसे उन्होंने अपने मूशल से तोड़ गिराया। इस प्रकार युद्ध करते-करते जब वहाँ कोई वृक्ष तथा पत्थर नहीं रहा, तब वह बलरामजी से द्वन्द्व युद्ध करने लगा। उस युद्ध को देखकर सब स्त्रियाँ अपने मन में अत्यन्त घबरा गईं। हे राजन्! जब बलरामजी ने उन स्त्रियों की अकुलाहट को देखा तो उन्होंने द्विविद को पकड़कर अपने दोनों हाथों से उसका कण्ठ ऐसा दबाया कि उसके नाक, कान तथा आँखों की राह से रुधिर निकलने लगा। फलस्वरूप उसी क्षण उसकी मृत्यु हो गई। उस समय देवताओं ने पुष्प बरसा कर श्री बलभद्रजी की अत्यन्त प्रशंसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! वह द्विविद नामक वानर त्रेतायुग से किष्किन्धा में रह रहा था, अतः बलभद्रजी ने उसे इस प्रकार मारकर मुक्ति प्रदान की।"

अड़सठवाँ अध्याय

साम्ब तथा लक्ष्मणा के विवाह की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिस प्रकार श्री कृष्णजी का पुत्र साम्ब राजा दुर्योधन की पुत्री 'लक्ष्मणा' को हस्तिनापुर से विवाह लाया, अब हम वह कथा कहते हैं, सुनो। जब राजा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा विवाह के योग्य हुई तब उसने अनेक राजाओं को आमन्त्रित करके स्वयंवर किया। श्री कृष्णजी का पुत्र साम्ब भी इस समाचार को पा, हस्तिनापुर में जा पहुँचा। वहाँ जब लक्ष्मणा अपने हाथ में वरमाला लिये सब राजाओं के पास होती हुई साम्ब के पास आई, उस समय साम्ब ने उसके स्वरूप पर मोहित होकर यह विचार किया कि न जाने यह कन्या किसके गले में वरमाला डाल बैठे, अतः इसे जबर्दस्ती लेना चाहिये। यह सोचकर साम्ब ने लज्जा तथा भय को त्याग कर लक्ष्मणा का हाथ पकड़ लिया और उसे रथ पर बैठाकर, द्वारका को चल दिया। उस समय जो अन्य राजा वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि देखो, साम्ब ने हमारा कुछ भी भय नहीं माना और राजकन्या को स्वयंवर में से इस प्रकार जबर्दस्ती उठा ले गया। इन यदुवंशियों की हमेशा से यही रीति चली आई है कि ये जहाँ जाते हैं, वहीं उपद्रव खड़ा करते हैं। हमारी समझ में श्री कृष्णजी भी अपने पुत्र को अपराधी जानकर उसकी कुछ सहायता नहीं करेंगे और यदि अधर्मपूर्वक लड़ने भी आयेंगे, तो इस प्रकार हार जायँगे, जिस प्रकार कामी पुरुष रोग उत्पन्न होने से तुरन्त मर जाता है। कर्ण ने कहा—"इन जातिहीनों की यही गति है कि यह थोड़ा-सा राज्य पाकर हमारे माथे पर चढ़ते हैं अतः इन्हें इसका बदला अवश्य देना चाहिए।" इस प्रकार आपस में सम्मति करके कर्ण, विकर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु आदि राजा अपनी सेना लेकर साम्ब को पकड़ने के लिए चल दिये। मार्ग में जाकर जब उन्होंने साम्ब को चारों ओर से घेर लिया, उस समय साम्ब ने उनसे यह कहा कि मैं अकेला हूँ और तुम लोग इतने हो, अतः तुममें से कोई एक मेरे साथ युद्ध कर ले,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्यथा सभी मिलकर आ जाओ। साम्ब के ऐसे वचन सुनकर पहिले तो कर्ण ने अकेले ही साम्ब से युद्ध किया परन्तु जब साम्ब ने उसे अपने बाणों से विचलित कर दिया तब सब लोग मिलकर अपनी सेना के साथ उसके ऊपर टूट पड़े और अधर्म की राह से उसे बन्दी बनाकर दुर्योधन की सभा में ले आये। उस समय भीष्मपितामह ने दुर्योधन से यह कहा—"हे राजन्! साम्ब श्री कृष्णजी का पुत्र है, अतः इसे बन्धन-मुक्त कर लक्ष्मणा के साथ विवाह करके छोड़ देना चाहिए। अन्यथा श्रीकृष्णजी से शत्रुता लेने का परिणाम अच्छा न निकलेगा।" परन्तु जब दुर्योधन ने भीष्मपितामह की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और साम्ब को कैद कर लिया, उस समय नारदजी ने हस्तिनापुर में आकर दुर्योधन, कर्ण आदि को यह समझाया कि तुम द्वारकानाथ के पुत्र की भूल का ध्यान न करके उसे छोड़ दो। जब इतने पर भी वे लोग नहीं माने तो नारदजी ने द्वारका में जाकर राजा उग्रसेन को सब समाचार सुनाते हुए कहा कि कौरवों ने साम्ब को कैद कर रक्खा है, सो तुम उसे छुड़ाने का उपाय शीघ्र करो। यह सुनकर राजा उग्रसेन ने श्री श्याम-बलराम तथा सभी यदुवंशियों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम मेरी सेना लेकर हस्तिनापुर चले जाओ और साम्ब को छुड़ा लाओ। राजा उग्रसेन के आज्ञानुसार जब श्री कृष्णजी सेना लेकर हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए, उस समय बलरामजी ने उनसे यह कहा—"हे भाई! कौरव हमारे सम्बन्धी हैं। अतः छोटी-सी बात के लिए उनके पास सेना लेकर जाना उचित नहीं है। मैं अकेला ही वहाँ जाकर उन्हें समझाये देता हूँ तथा शाम्ब को लिए आता हूँ। यदि वे मेरे समझाने पर भी न मानें, तब तुम सेना लेकर जाना।" जब श्री कृष्णजी ने यह बात स्वीकार की, तब बलरामजी अक्रूर आदि थोड़े से यदुवंशियों तथा ब्राह्मणों को साथ लेकर हस्तिनापुर जा पहुँचे तथा नगर के बाहर एक उद्यान में डेरा डालकर ठहर गये और अक्रूर द्वारा अपने आगमन का समाचार राजा दुर्योधन के पास भिजवा दिया। जब दुर्योधन ने बलरामजी का आगमन सुना, तो वह भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर आदि सब लोगों को साथ ले उनके पास जा पहुँचा तथा बलरामजी के चरणों पर गिर कर दण्डवत् करते हुए यह बोला—"हे प्रभो! जिस प्रकार आपने यहाँ पधारकर मुझे अपना दर्शन दिया है, उसी प्रकार अब अपने आने का कारण कहिए तथा मेरे घर चलकर उसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पवित्र कीजिए।" यह सुनकर बलदेवजी ने उत्तर दिया—"हे दुर्योधन ! मैं राजा उग्रसेन का सँदेशा लेकर यहाँ आया हूँ। उन्होंने कहलाया है कि बालक साम्ब को तुम्हारे छः महारथियों ने पकड़कर अच्छा नहीं किया। यदि उस बालक से अज्ञान में कोई अपराध हो गया था तो तुम लोगों को हमारे सम्बन्ध का विचार रखकर उसे कैद नहीं करना चाहिए था। अतः अब भी उचित है कि तुम उसे कैद से छोड़कर लक्ष्मणा का विवाह उसके साथ कर दो।"

हे परीक्षित ! बलरामजी के मुख से यह वचन सुन दुर्योधन सभी कौरवों की सम्मति ले, क्रुद्ध होकर इस प्रकार बोला—"हे बलभद्रजी ! आप उग्रसेन की अधिक बड़ाई मत कीजिए। चार दिन पहिले उग्रसेन को कोई नहीं जानता था। जब से हमारे साथ नातेदारी हुई, तभी से उनका सम्मान बढ़ा है। अब उन्होंने हमारे अधीन होते हुए भी हमें इस प्रकार का सन्देश कहलाया है, जिस प्रकार प्रजा अपने राजा को आज्ञा दे रही हो। हमें इस बात का बड़ा अचरज है कि वे द्वारका में पहुँचकर पिछली सभी बातें भूल गये। हमारे ही राजगद्दी दिलाने के कारण वे राजा हुए हैं, अन्यथा उन्हें कौन पूछता था? अब रही बात साम्ब की। उसने ढिठाई करके हमारी कन्या को स्वयंवर से उठाकर ले जाना चाहा था। इस अपराध के कारण यदि हम उसे मार डालते तो कोई भी अनुचित बात न होती, परन्तु हमने नाते-दारी का ध्यान रखते हुए ही ऐसा नहीं किया। हे बलरामजी ! जब तक भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य जैसे शूर-वीर हमारे साथ हैं, तब तक संसार में किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं है जो हमसे युद्ध कर सके। यह तो यदुवंशियों की निरी हिमाकत है जो उन्होंने हमें ऐसा कहला भेजा है।"

हे परीक्षित ! दुर्योधन के मुख से ऐसे कठोर वचन सुनकर बलरामजी ने मन में हँसकर उद्धव आदि अपने साथियों से यह कहा कि इन कौरवों की मूर्खता तो देखो कि जिन राजा उग्रसेन के चरणों में श्री त्रिलोकीनाथ अपना शीश नवाते हैं, उन्हींके प्रति ये सब ऐसी बातें कर रहे हैं। अब मैं इन सबको यमुना में डुबाये बिना न मानूँगा। इतना कहकर श्री बलरामजी दुर्योधन से बोले—"हे दुर्योधन ! ज्ञानी और अज्ञानी की पहिचान यह है कि ज्ञानी मनुष्य सब आगे-पीछे की बातों का विचार करके कोई काम करते हैं और अज्ञानी मनुष्य बिना विचारे ही कर बैठते हैं, जिससे उन्हें अपने किए का दण्ड भोगना पड़ता है। तुमने अपने अभिमान में अज्ञानी बनकर यह विचार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं किया कि मैं कैसी बातें कह रहा हूँ। अतः अब तुम अपने कहे का दण्ड पाकर लज्जित होओगे।" इतना कहकर श्री बलरामजी ने अपने हल को पृथ्वी में गाड़ दिया तथा जब वे हस्तिनापुर को पृथ्वी समेत अपने हल से खींचकर यमुना नदी में डुबाने को हुए, उस समय भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र तथा अन्य ब्राह्मणों एवं ऋषियों ने उठ, हाथ जोड़कर बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे दीनबन्धो! आप अज्ञानी दुर्योधन की बात पर ध्यान दे, हस्तिनापुर को डुबाकर करोड़ों निरपराध मनुष्यों के प्राण मत लीजिए। आज से हम लोग सदैव राजा उग्रसेन की आज्ञा का पालन किया करेंगे।" यह प्रार्थना सुनकर बलरामजी ने क्रोध शान्त करके अपना हल पृथ्वी से बाहर निकाल लिया। उसी दिन से हस्तिनापुर यमुना नदी के तट पर है, पहिले वहाँ नहीं था। तदुपरान्त राजा दुर्योधन ने भी लज्जित होकर बलरामजी से क्षमा माँगी तथा साम्ब को कैद से छुड़ाकर उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाये। फिर विधिपूर्वक अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया तथा बारह सहस्र हाथी, दस सहस्र घोड़े, छः सहस्र रत्नजटित रथ, एक सहस्र परम सुन्दरी दासियाँ तथा बहुत-सा द्रव्य, वस्त्राभूषण आदि दहेज में देकर उन्हें बिदा किया। तब बलरामजी, साम्ब तथा लक्ष्मणा को साथ लेकर द्वारकापुरी में आ पहुँचे और राजा उग्रसेन तथा श्री कृष्णचन्द्रजी को सब हाल कह सुनाया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जब बलरामजी साम्ब का विवाह करके लक्ष्मणा को साथ लेकर लौट आये, तब सब द्वारकावासियों ने अत्यन्त आनन्द मनाया। उस दिन से अभी तक हस्तिनापुर दक्षिण की ओर ऊँचा तथा उत्तर की ओर नीचा दिखाई देता है।"

उनहत्तरवाँ अध्याय

नारद को श्री कृष्णजी की माया का दर्शन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! एक दिन नारदजी इन्द्रपुरी में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने यह देखा कि इन्द्र की दो स्त्रियाँ हैं, सो वे दोनों परस्पर झगड़ा कर रही हैं। यह देखकर नारदजी ने विचार किया कि जब इन्द्र की दो स्त्रियाँ परस्पर सौतियाडाह रखती हैं, तब श्रीकृष्णचन्द्रजी के तो सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियाँ हैं, उन्हें वे कैसे प्रसन्न रख पाते होंगे? यह सोचकर नारदजी श्री कृष्णजी की लीला देखने के लिए द्वारकापुरी में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा पहुँचे। उस द्वारकापुरी की शोभा ऐसी थी कि वहाँ सब ओर रत्न-जटित स्वर्ण-मन्दिर बने हुए थे तथा वापी, कूप, तड़ाग आदि अपनी छटा दिखा रहे थे। वृक्षों पर बैठे हुए विविध प्रकार के पक्षी सुहावनी बोलियाँ बोल रहे थे तथा शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बहकर सबके हृदय को आनन्दित बनाये रहता था। द्वार-द्वार पर मणियों तथा पुष्पों के बन्दनवार बँधे हुए थे तथा बाजार, हाट, चौराहे आदि सब एक से एक अधिक सुन्दर थे। उस शोभा को देखते हुए जब नारदजी रुक्मिणी के भवन में पहुँचे तो यह देखा कि श्री श्यामसुन्दर नटवर वेश बनाये रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए हैं तथा सहस्रों दासियाँ उपस्थित रहने पर भी रुक्मिणी स्वयं अपने हाथों से भगवान् वैकुण्ठनाथ पर पंखा झल रही हैं। अस्तु, जैसे ही श्री मुरलीमनोहर ने नारद-जी को आते हुए देखा, वैसे ही श्री कृष्णजी सिंहासन से उठकर उनके चरणों पर जा गिरे। तदुपरान्त उन्हें अपने सिंहासन पर बैठा, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! संसारी जीवों को आपका दर्शन मिलना अत्यन्त कठिन है, सो आज आपने कृपा करके मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया है। अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" यह सुनकर नारदजी ने उत्तर दिया—"हे त्रिलोकीनाथ! मैं तो आपके दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ। आप मुझे कृपा करके यही वरदान दीजिए, जिससे मेरे हृदय में आपके चरणों की भक्ति सदैव बनी रहे।" इतना कहकर जब नारदजी वहाँ से बिदा होकर सत्यभामा के घर गये तो वहाँ उन्होंने श्री मुरलीमनोहर को सत्यभामा के साथ चौपड़ खेलते हुए देखा। वहाँ भी श्रीहरि ने मुनिराज को दण्डवत्-प्रणाम किया तथा मुनि आशीर्वाद देकर विनय-स्तुति करने के उपरान्त बिदा हुए। फिर जब नारदजी जाम्बवन्ती के स्थान पर गये तो वहाँ उन्होंने श्री बाँके-विहारी को तेल-फुलेल लगवाते देखा। शास्त्रों में तेल लगवाते समय प्रणाम करने तथा आशीर्वाद देने का निषेध है, अतः नारदजी वहाँ से चुपचाप लौट आये। फिर कालिन्दी के महल में जाकर उन्होंने श्री श्यामसुन्दर को सोते हुए देखा। मुनिराज का आगमन देखकर जब कालिन्दी ने उनके पैर को दबाया, तो वे उसी समय उठकर नारदजी को प्रणाम करके कहने लगे—"हे प्रभो! साधुओं के चरण तीर्थ के समान होते हैं। आपने यहाँ पधारकर मेरे घर को पवित्र कर दिया है।" तदुपरान्त नारदजी मित्रविन्दा के घर गये। वहाँ श्री नटवरनागर को उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराते देखा। नारदजी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को देखते ही वे साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले–"हे मुने ! आपने यहाँ पधारकर बड़ी कृपा की। अब आप भी भोजन करके मुझे अपनी जूठन से कृतार्थ कीजिए।" यह सुनकर नारदजी ने कहा–"हे प्रभो ! पहिले आप ब्राह्मणों को भोजन करा दीजिए, मैं फिर आकर प्रसाद ले लूँगा।" इतना कहकर नारदजी भद्रा के घर गये। वहाँ उन्होंने श्री त्रिलोकीनाथ को भोजन करते देखा। तदुपरान्त सत्या के महल में जाकर जब उन्हें विहार करते पाया, तो चुपचाप वहाँ से लौटकर लक्ष्मणा के घर जा पहुँचे। वहाँ वे स्नान कर रहे थे। इस प्रकार नारदजी श्री नटवरनागर की परीक्षा लेने के लिए अनेक भवनों में गये। अतः कहीं तो उन्होंने श्रीहरि को पूजन करते देखा और कहीं ब्राह्मणों का भोजन कराते देखा। कहीं स्त्रियों के ऊपर फूल बरसाते, कहीं जल-विहार करते, कहीं रथ में बैठते, कहीं हाथियों को युद्ध देखते, कहीं बच्चों को खिलाते, कहीं द्रव्य गिनते, कहीं बलरामजी से अधर्मियों को मारने की सम्मति लेते, कहीं वसुदेव-देवकी के पास बैठे हुए, कहीं लड़कियों का बिदा करते, कहीं भाटों से कवित्त सुनते और कहीं चौपड़ खेलते हुए देखा। कहीं वे विविध प्रकार की बोलियाँ बोलकर स्त्रियों से हँसी कर रहे थे तो कहीं किसी रूठी हुई सुन्दरी को मना रहे थे। इस प्रकार नारदजी जितने भी घरों में गये, सभी जगह उन्होंने श्री बाँकेविहारी को विविध प्रकार की लीलाएँ करते हुए देखा। तब वे अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर यह विचार करने लगे कि देखो, श्री त्रिलोकीनाथ ने तो मेरे चरण धोकर चरणामृत लिया और मैं अपने अज्ञान के कारण उनकी परीक्षा लेता फिर रहा हूँ। यह सोचकर नारदजी भय से काँपने लगे। उस समय अन्तर्यामी श्रीहरि ने उनके मन की बात को पहिचानकर इस प्रकार पूछा–"हे नारदजी ! आपकी आज क्या दशा हो रही है ?" यह वचन सुनते ही नारदजी उनके चरणों में गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे–"हे दीनबन्धो ! मैंने अपने अज्ञान के कारण आपकी परीक्षा लेने का विचार किया था। सो आप मेरा अपराध क्षमा करके मुझे भवसागर से पार उतारिये।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने प्रसन्न होकर कहा–"हे मुने ! तुम अपने मन में कोई सन्देह मत करो। मेरी माया ऐसी बलवान है जो बड़े-बड़ों को भुलावे में डाल देती है। जब यह माया मुझे भी नहीं छोड़ती; तब औरों का क्या कहना है ? हे नारद ! मेरे कामों तथा भेदों को पाना अत्यन्त कठिन है। मुझे सब जीवों को उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं रक्षा करनेवाला समझो। मैं सगुण अवतार केवल इसी लिए लेता हूँ, जिससे लोग मेरे लीलाचरित्रों को सुनकर भवसागर से पार उतर जावें। हे मुने! तुम मेरे कार्यों की परीक्षा न लेकर मेरा भजन किया करो।" यह सुनकर नारदजी श्री वासुदेवजी से बिदा लेकर हरि-गुण गाते, वीणा बजाते हुए, दण्डवत् करके चल दिए। फिर सत्यभामा के पास जाकर इस प्रकार बोले—"हे सत्यभामा! श्री श्यामसुन्दर तुझसे अधिक प्रीति रुक्मिणी पर रखते हैं, सो तू उन्हें मुझे दान करके मुझसे फिर मोल ले ले तो वे तुझसे अधिक प्रीति करने लगेंगे। यह सुनकर सत्यभामा ने श्रीहरि से आज्ञा लेकर उन्हें नारद मुनि को दान कर दिया। तदुपरान्त उनके बराबर स्वर्ण देकर उन्हें मोल लेने लगी तो नारदजी ने केवल एक तुलसी-दल लेकर मुरली-मनोहर को उन्हें लौटा दिया और स्वयं ब्रह्मलोक को चले गये। उस दिन से श्री श्यामसुन्दर सत्यभामा से अधिक प्रीति करने लगे।"

सत्तरवाँ अध्याय

मगध तथा हस्तिनापुर से बुलावा आने का वृत्तान्त

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! श्री मुरलीमनोहर संसारी जीवों को मार्ग दिखाने के लिए जिस समय जो कार्य करते थे, अब हम उसका वर्णन करते हैं, सुनो। जब दो घड़ी रात रहने पर पक्षी बोलने लगते थे, तब श्रीहरि सब महलों में से उठकर स्नान करने के उपरान्त संसारी मनुष्यों की भाँति अपनी आत्मा का ध्यान करते थे। तदुपरान्त सूर्योदय होने पर रत्न-जटित चौकी पर बैठते थे। तब स्त्रियाँ तेल-फुलेल, उबटन आदि लगाकर गरम पानी से स्नान कराती थीं। फिर वे तुलसी के चबूतरे के समीप बैठकर सन्ध्या तथा तर्पण आदि करके गायत्री मन्त्र का जप करते थे। चार घड़ी दिन चढ़ने पर प्रत्येक भवन से चौदह सहस्र दूध देनेवाली गायों को विधि-पूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके भोजन करते थे। तदुपरान्त जब वे अनेक रूपों से एक रूप में परिवर्तित होकर द्वार पर आते थे, तब बन्दीगण उनकी स्तुति करते थे। फिर वे दारुक सारथी सहित रत्न-जटित रथ पर बैठकर घूमने जाते थे। उस समय सात्यकी उनके पीछे बैठा रहकर चँवर डुलाता रहता था। तदुपरान्त वे सुधर्मा सभा में जाकर यदु-वंशियों के बीच रत्नसिंहासन पर बैठते थे। फिर राजा उग्रसेन के साथ कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय तक कथा-पुराण सुनते थे। कभी भानुमती-नट आदि का खेल देखकर आनन्दित होते थे—सुधर्मा सभा से उठकर, फिर अनेक रूप धरकर सब महलों में जाते थे, तब नित्यकर्म करने के उपरान्त छत्तीस प्रकार के भोजन करके, शयन करते थे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार संसारी जीवों को मार्ग दिखाने के लिए त्रिभुवनपति परब्रह्म प्रभु गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सभी संसारी कर्म करते थे। अस्तु, एक दिन जब वे सुधर्मा सभा में बैठे हुए थे, उस समय द्वारपालों ने आकर उन्हें यह सूचना दी कि हे प्रभो! मगध देश से आया हुआ एक ब्राह्मण आपके दर्शनों की इच्छा लिये, द्वार पर खड़ा है। यदि आज्ञा हो तो वह भीतर आकर अपना मनोरथ पूर्ण करे। यह सुनकर जब श्री मुरलीमनोहर ने उसे सम्मान सहित भीतर ले आने की आज्ञा दी तब उस ब्राह्मण के आने पर श्री त्रिलोकीनाथ ने सिंहासन से नीचे उतरकर उसे प्रणाम किया, फिर अपने समीप बैठाकर, हाथ जोड़कर कहा—"हे ब्राह्मण देवता! आप यहाँ किसलिए पधारे हैं, यह बताने की कृपा करें।" तब ब्राह्मण ने कहा—"हे प्रभो! अभिमानी राजा जरासन्ध ने बीस सहस्र राजाओं को बन्दी बनाकर अपने यहाँ रख छोड़ा है सो मैं उनका सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। हे दीनानाथ! उन्होंने आपको दण्डवत् करते हुए यह कहलाया है कि हे प्रभो! जब-जब असुर तथा अधर्मी राजा आपके भक्तों को दुःख देते हैं, तब-तब आप सगुण रूप धारण करके उन्हें मारकर पृथ्वी का भार हटाते हैं। अस्तु, जिस प्रकार आपने हिरण्यकशिपु को मारकर अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की, उसी प्रकार अब आप हमें भी अत्यन्त दीन-दुःखी तथा अपनी शरण में आया हुआ जानकर राजा जरासन्ध के हाथों से बचाइये। हम लोग उसकी कैद में रहकर घोर दुःख उठा रहे हैं।" इतनी बात सुनाकर ब्राह्मण ने फिर कहा—"हे दीनबन्धो! अभिमानी जरासन्ध आपके सामने से सत्रह बार हारकर भागने के बाद भी अभी तक ठीक नहीं हुआ है। वह अपने अहङ्कार में भरकर किसी को कुछ नहीं समझता, अतः आप उसका घमण्ड नष्ट करके दीन-राजाओं की प्राण-रक्षा कीजिए। उन्हें आपके अतिरिक्त अन्य किसी का भरोसा नहीं है।"

हे परीक्षित! ब्राह्मण के मुख से यह वचन सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने दयार्द्र होकर उससे इस प्रकार कहा—"हे ब्राह्मण! तुम धैर्य रक्खो। मैं उन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजाओं का दुःख अवश्य दूर करूँगा।" यह सुनकर वह ब्राह्मण, अत्यन्त प्रसन्न हो, श्री बाँकेविहारी को आशीर्वाद देने लगा। उसी समय नारदजी भी वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्रीहरि ने दण्डवत् प्रणाम करने के उपरान्त अत्यन्त सम्मानपूर्वक रत्नजटित सिंहासन पर बैठाया। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आपको राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का कुछ हाल मालूम हो तो मुझे सुनाने की कृपा कीजिए। हमने बहुत दिनों से उनका कोई समाचार नहीं पाया है, सो यह जानने की चिन्ता लगी रहती है कि इन दिनों वे लोग क्या कर रहे हैं?" यह सुनकर नारदजी ने उत्तर दिया—"हे अन्तर्यामी श्री श्यामजी! मैं अभी पाण्डवों के पास से होकर ही आ रहा हूँ। वे लोग दिन-रात आपके चरणों का ध्यान धरते हुए, अपने मन में राजसूय यज्ञ करने की अभिलाषा रखते हैं और यह चाहते हैं कि आप इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर उनका मनोरथ पूर्ण करें।" उसी समय एक सेवक इन्द्रप्रस्थ से राजा युधिष्ठिर का निमन्त्रणपत्र लेकर आ पहुँचा। उसमें लिखा था—"हे दीनबन्धो! ब्राह्मणों ने यज्ञ का संकल्प तो करा दिया, परन्तु उसकी पूर्णता आपके हाथ है, अतः आप दया करके शीघ्र आइये।"

हे राजन्! उस पत्र को पढ़कर श्री कृष्णजी ने यदुवंशियों से पूछा—"हे भाइयो! एक ओर तो मगध में बन्दी राजाओं ने जरासन्ध की कैद से छुड़ाने के लिए मुझे बुलाया है, दूसरी ओर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण आया है, सो आप यह बताइये कि पहिले कहाँ चला जाय!" यह सुनकर किसी यदुवंशी ने तो पहिले मगध चलने की सलाह दी तथा किसी ने इन्द्रप्रस्थ चलने को कहा। उस समय श्री श्यामसुन्दर ने उद्धव भक्त से कहा—"हे उद्धव! सब लोग अपनी अलग-अलग सम्मति दे रहे हैं, अतः अब तुम यह बताओ कि पहिले क्या करना उचित है। जिस प्रकार तुम कहोगे, मैं उसी प्रकार कार्य करूँगा।" यह सुनकर उद्धव ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो! यह मेरा अहोभाग्य है, जो आप अन्तर्यामी होकर भी मुझसे इस प्रकार पूछ रहे हैं?"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इकहत्तरवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का पाण्डवों के पास पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन्! तदुपरान्त त्रिकालदर्शी हरि-भक्त उद्धव ने इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! मेरी सम्मति में पहिले आप इन्द्रप्रस्थ चलकर पाण्डवों को धैर्य प्रदान करें। फिर वहाँ से भीम तथा अर्जुन को साथ लेकर राजा जरासन्ध के पास जायँ। मेरी दृष्टि में जरासन्ध की मृत्यु भीमसेन के हाथ से होगी। हे प्रभो! जब आप उन राजाओं को कैद से छुड़ा देंगे, तब वे राजा आपके अत्यन्त कृतज्ञ होंगे। उस समय वे आपके आज्ञानुसार राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होकर, बड़े प्रेम से यज्ञ का कार्य करेंगे। इस प्रकार दोनों कार्य सहज ही सम्पन्न होंगे। हे त्रिलोकीनाथ! राजा युधिष्ठिर ने आपके ही बल-भरोसे पर यज्ञ करने का निश्चय किया है, अतः आप उनकी सहायता अवश्य करें। यदि आप पहिले इतने राजाओं को कैद से छुड़ा देंगे तो वे सब के सब राजा युधिष्ठिर के अधीन होकर उन्हें सहायता पहुँचावेंगे।" उद्धव के मुख से यह वचन सुनकर श्री श्यामसुन्दरजी ने नारदजी से कहा–"हे मुने! आप राजा युधिष्ठिर से जाकर यह कह दीजिए कि हम पहिले तुम्हारे यहाँ आ रहे हैं।" इतना सुनकर जब नारदजी चले गये, तब श्री नटवरनागर ने उस ब्राह्मण से कहा–"हे द्विजश्रेष्ठ! तुम मगध देश में जाकर सब राजाओं से कह दो कि हम उन्हें छुड़ाने के लिए शीघ्र आ रहे हैं। यह सुनकर वह ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न हो, दण्डवत् कर, अपने देश में जा पहुँचा तथा राजाओं को सब समाचार कह सुनाया। उस समय वे सब राजा प्रसन्न होकर भगवान् मुरलीमनोहर का ध्यान करने लगे। उधर नारदजी ने भी इन्द्रप्रस्थ में पहुँचकर राजा युधिष्ठिर से श्री बाँकेविहारी के आने का समाचार कह दिया।

हे परीक्षित! इसके अनन्तर श्री कृष्णजी ने राजा उग्रसेन के पास जाकर पाण्डवों के यहाँ जाने की आज्ञा ली। फिर बलरामजी को द्वारकापुरी की रक्षा के लिए छोड़ आप सब यदुवंशी शूर-वीरों की सेना को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को चल दिए। उनकी आठों पटरानियाँ सुन्दर जड़ाऊ रथों में बैठी आगे-आगे चल रही थीं तथा रथ, घोड़े, हाथी आदि सेना की जो शोभा थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मार्ग में वे जहाँ कहीं ठहरते थे, वहीं एक सुहावना नगर बस जाता था तथा उस देश का राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेंट लेकर उनकी सेवा में आ उपस्थित होता था। सब प्रजा भी श्री श्याम-सुन्दर के दर्शन पाकर अपने जीवन को धन्य बनाती थी। इस प्रकार सब लोगों को सुख देते हुए जब वे तीसरे दिन इन्द्रप्रस्थ के निकट पहुँचे, तब उनके साथ भारी भीड़-भाड़ देखकर एक सेवक ने राजा युधिष्ठिर के पास जाकर यह सूचना दी कि हे महाराज ! कोई राजा अपने साथ अनगिनती सेना लेकर इन्द्रप्रस्थ पर चढ़ आया है। यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने नकुल तथा सहदेव को समाचार लाने के लिए भेजा। जब उन्हें यह पता चला कि श्री मुरली-मनोहर आ रहे हैं, तो उन्होंने युधिष्ठिर को तुरन्त सूचना दी। उसे पाकर राजा युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों, ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को साथ लेकर श्रीहरि की अगवानी करने गये तथा उनके सम्मुख पहुँचकर जैसे ही चरणों में गिरने को हुए, वैसे ही श्री दीनानाथ उन्हें अपने से बड़ा जानकर स्वयं उनके चरणों पर गिर पड़े। तब राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने गले से लगा लिया। तदुपरान्त सब लोगों से मिल-भेंटकर नगर में आ पहुँचे। उस समय श्री बाँकेविहारी के दर्शन पाकर इन्द्रप्रस्थवासियों को जो आनन्द हुआ, उसे कहा नहीं जाता। सभी लोगों ने श्री श्यामसुन्दर को भेंटें देकर पुष्प-वर्षा की तथा स्त्रियों ने मङ्गल-गीत गाये।

हे परीक्षित ! जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने राजमहल में पहुँचकर आठों पटरानियों-सहित कुन्ती के चरणों में अपना मस्तक रक्खा, उस समय कुन्ती ने प्रेममग्न होकर सबको अपने हृदय से लगा लिया तथा बहुत आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त द्रौपदी एवं सुभद्रा आदि से भेंट करके सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान की। हे राजन् ! श्री कृष्णजी अर्जुन से विशेष स्नेह रखते थे। वे दोनों एक साथ रथ पर बैठकर शिकार खेलने जाया करते थे। श्रीहरि के इन्द्रप्रस्थ आने पर लोगों को जो सुख मिला, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रकाश राजा तथा दरिद्र दोनों के घर में एक समान पड़ता है, उसी प्रकार श्रीहरि वहाँ के सब छोटे-बड़े लोगों को प्रतिदिन सुख पहुँचाने लगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्ध-वध की कथा

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन राजा युधिष्ठिर ने श्री मुरलीमनोहर के सम्मुख खड़े हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे जगत्पते! ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवता आपका ध्यान धरते हैं। आपकी माया को कोई नहीं जान पाता। मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपने यहाँ पधारकर मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया। हे दीनबन्धो! आपकी कृपा प्राप्त करके संसार में मेरी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हुईं। अब एक यह इच्छा और शेष रह गई है कि एक बार राजसूय यज्ञ करके अपने जन्म को सफल बनाऊँ। आपकी कृपा के बिना यह कार्य होना अत्यन्त कठिन है, अतः आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके इस यज्ञ को सम्पन्न करा दीजिए, जिससे मैं उसका फल आपको अर्पित करके, भव-सागर से पार उतर जाऊँ। राजा युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर श्री मुरलीमनोहर ने हँसकर कहा—"हे राजन्! तुम्हारा विचार अत्यन्त उत्तम है। जब तुमने अपने प्रेम द्वारा स्वयं मुझे वश में कर लिया है, तब राजसूय यज्ञ पूर्ण करना कौन बड़ी बात है? अर्जुन आदि तुम्हारे चारों भाई ऐसे महाबली हैं कि उनसे कोई युद्ध नहीं कर सकता। अतः अब तुम अपने चारों भाइयों को यह आज्ञा दो कि वे चारों दिशाओं में जाकर सब राजाओं पर विजय प्राप्त करके बहुत-सा द्रव्य ले आवें, तदुपरान्त तुम प्रसन्न होकर यज्ञ करना।" यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने बहुत-सी सेना के साथ अर्जुन को उत्तर, भीमसेन को पूर्व, नकुल को पश्चिम तथा सहदेव को दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। वे उनके आज्ञानुसार चारों दिशाओं में जाकर श्री कृष्णचन्द्रजी की कृपा से सब राजाओं को जीत कर बहुत द्रव्य ले आये तब राजा युधिष्ठिर ने श्री कृष्णजी से कहा—"हे प्रभो! यह कार्य तो आपकी कृपा से पूर्ण हुआ, अब आप क्या आज्ञा देते हैं?" यह सुनकर उद्धव राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार कहने लगे—"हे राजन्! जब तक मगध का राजा जरासन्ध तुम्हारे वश में नहीं होता, तब तक यज्ञ निष्फल रहेगा, अतः तुम उसे जीतने का उपाय करो। हे युधिष्ठिर! राजा जरासन्ध ऐसा बलवान् तथा धर्मात्मा है कि संसार में उसे कोई जीत नहीं सकता है। उस पर विजय प्राप्त करने के लिए एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपाय मैं बताता हूँ। जरासन्ध तीनों लोकों में दानी प्रसिद्ध है, अतः यदि श्री कृष्णचन्द्रजी अर्जुन तथा भीम को साथ ले, ब्राह्मण का वेष धरकर, उसके पास जाकर भिक्षा माँगे तो वह अपना मस्तक देने में भी सङ्कोच नहीं करेगा। अस्तु, उससे अन्य कोई दान न माँगकर युद्ध करने का दान माँगा जाय, तो काम चल सकता है।" उद्धवजी के ऐसे वचन सुनकर जब युधिष्ठिर कुछ उदास हुए, तब श्री कृष्णचन्द्रजी ने उन्हें धैर्य बँधाकर यह कहा—"हे राजन्! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। हम, अर्जुन तथा भीमसेन को साथ ले जाकर, उसे छल-बल से मार आवेंगे।" यह सुनकर जब युधिष्ठिर ने अर्जुन तथा भीमसेन को त्रिभुवनपति के साथ जाने की आज्ञा दी, तब वे दोनों श्रीहरि के साथ ब्राह्मण-वेष बनाकर मगध देश में जा पहुँचे। उस समय उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण अपना स्वरूप धारण किए हुए हों। जब वे मध्याह्न के समय राजा जरासन्ध के द्वार पहुँचे, उस समय उन्हें देखते ही द्वारपाल ने राजा के पास जाकर यह सूचना दी कि हे पृथ्वीनाथ! तीन तेजस्वी ब्राह्मण आपके द्वार पर भेंट करने के लिए खड़े हुए हैं। यह सुनते ही जरासन्ध, अत्यन्त प्रसन्न हो, नङ्गे पाँवों द्वार पर चला आया तथा उन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर भीतर ले गया। फिर उन्हें सिंहासन पर बैठा, हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो! जिस प्रकार आपने यहाँ पधारकर मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया, उसी प्रकार घर चलकर भोजन कीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णजी बोले—"हे राजन्! हम लोग बहुत दूर से तुम्हारा यश सुनकर यहाँ आये हैं, अतः हमें जो इच्छा है, वह हमें प्रदान करो। हे नृपति! शूर-वीरों तथा दानियों को अपने प्राण तक देने में कोई संकोच नहीं होता। दान देने का ऐसा माहात्म्य है कि एक कबूतर एक व्याध के लिए अपने प्राण देकर भवसागर से पार उतर गया था। वह कथा हम तुम्हें सुनाते हैं, ध्यान देकर सुनो। एक बार माघ के महीने में एक व्याध पक्षी फँसाने के लिए वन में जा पहुँचा। वहाँ आँधी चलने तथा पानी बरसने के कारण जब उसे कोई पक्षी नहीं मिला तब वह भूख तथा शीत से अत्यन्त व्याकुल होकर अपने घर की ओर लौटने लगा। उसी समय उसे शीत से अचेत होकर एक कबूतरी पृथ्वी पर पड़ी दिखाई दी। व्याध ने उस कबूतरी को उठा लिया तथा रात्रि अधिक हो जाने के कारण, घर न जाकर, वहीं एक बरगद के नीचे ठहर गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब आधी रात्रि व्यतीत हुई, तब उस वृक्ष पर रहनेवाला कबूतर अपनी स्त्री की याद करके पुकार करने लगा। उसके शब्द को सुनकर वह कबूतरी, जो व्याध के पंजे में थी तथा उस कबूतर की स्त्री थी, चैतन्य हो गई। उस समय उसने अपने पति को यह उत्तर दिया—"हे स्वामी! अब आप मेरे लिए चिन्ता न करें, क्योंकि जो अतिथि भूख तथा शीत से व्याकुल हो, रात के समय अपने घर आया हो, उसकी सेवा करना हम गृहस्थों का धर्म है।" यह सुनकर जब उस कबूतर को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब वह कहीं से अपनी चोंच में अग्नि ले आया तथा उससे अपने घोंसले में अग्नि लगा दी, जिसके कारण उस व्याध की सर्दी छूट गई। तदुपरान्त वह कबूतर अपनी इच्छा से उस अग्नि में कूद पड़ा। जब वह भुन गया तो बहेलिए ने उसे खाकर अपनी भूख बुझा ली। उस समय कबूतरी ने बहेलिये से यह कहा—"हे व्याध! पति के बिना स्त्री का जीवित रहना व्यर्थ है, अतएव तू मुझे भी भूनकर खा ले।" यह सुनकर बहेलिया उसे भी भूनकर खा गया। उस समय उन दोनों का ऐसा त्याग देखकर श्री वैकुण्ठनाथ ने उन्हें विमान भेजकर वैकुण्ठलोक में बुलाया। तब वे दोनों पार्षदों से विनय करके उस बहेलिये को भी अपने साथ वैकुण्ठलोक को ले गये।

हे राजन्! इसके अतिरिक्त तुमने यह भी सुना होगा कि राजा हरिश्चन्द्र ऐसा दानी तथा धर्मात्मा था कि उसने अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को दान कर दिया था। उसकी कथा भी सुनो। एक बार राजा हरिश्चन्द्र के राज्य में अकाल पड़ने से लोग भूखों मरने लगे। उस समय राजा ने अपने वस्त्राभूषण आदि वस्तुएँ बेचकर प्रजा का पालन किया। एक दिन सन्ध्या के समय वे अपनी पत्नी-सहित भूखे बैठे थे, उसी समय विश्वामित्र ऋषि उनके धर्म की परीक्षा लेने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने राजा से कहा—"हे राजन्! तुम मुझे इच्छित द्रव्य दान करके कन्या-दान का फल प्राप्त करो। यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने स्त्री-पुत्र का जो कुछ वस्त्राभूषण बचा था, वह लाकर ऋषि को दे दिया। उसे देखकर विश्वामित्र ने कहा—"हे राजन्! इतने से मेरा काम नहीं चलेगा।" तब हरिश्चन्द्र ने अपने दास-दासियों को बेचकर जो कुछ मिला, वह ऋषि को दे दिया तथा स्वयं, अपनी पत्नी तथा पुत्र-सहित केवल एक-एक धोती पहिने रह गये। इतने पर भी विश्वामित्र ने राजा से यह कहा कि हे राजन्! मेरा काम अब भी नहीं चलेगा। मुझे तेरे समान धर्मात्मा और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई दिखाई नहीं देता, जिससे दान माँगूँ। हाँ, एक डोम अवश्य बड़ा दानी है, अतः यदि तुम कहो तो मैं उसी से दान माँग लाऊँ? परन्तु उसके पास जाते हुए मुझे यह सोचकर लज्जा आती है कि तुम-जैसे राजा को छोड़कर उस चाण्डाल से क्या माँगूँ? ऋषि के मुख से यह वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने उस डोम के पास जाकर कहा—"हे भाई! तुम हमें एक वर्ष के लिए गिरवी रखकर, ऋषि को मुँहमाँगा धन दे दो। हम तुम्हारी प्रत्येक सेवा करते रहेंगे।" यह सुनकर डोम ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तुम्हें श्मशान घाट पर खड़े होकर मुर्दा जलानेवालों से कर लेना होगा तथा हमारे घर की चौकीदारी करनी पड़ेगी। यदि तुम्हें यह स्वीकार हो तो मैं ऋषि को धन दे दूँगा।" जब हरिश्चन्द्र ने यह स्वीकार कर लिया, तब विश्वामित्र तो डोम से धन लेकर चले गये और राजा हरिश्चन्द्र श्मशान घाट पर रहकर मुर्दों से कर वसूल करके उस चाण्डाल को देने लगे। राजा की रानी तथा पुत्र उसी नगर में किसी गृहस्थ के घर रहकर सेवा करने लगे। हे राजन्! कुछ दिनों बाद श्री नारायणजी की माया से हरिश्चन्द्र का पुत्र मर गया, तब रानी उसका दाह-कर्म-संस्कार करने के लिए गङ्गा-तट पर जा पहुँची। वहाँ हरिश्चन्द्र ने अपनी स्त्री के पास जाकर यह कहा कि या तो तुम 'कर' दो अन्यथा इस मृतक को लेकर लौट जाओ। बिना कर दिये लाश को यहाँ नहीं जला सकोगी। रानी ने जब यह कहा कि मैं आपके ही पुत्र का शव जलाने के लिए लाई हूँ और मेरे पास एक धोती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तब हरिश्चन्द्र ने यह उत्तर दिया—"हे प्रिये! यदि तुमसे पैसा न लूँ तो मेरा धर्म नष्ट हो जायगा। इस लिए मैं बिना पैसा लिये तुम्हें शव नहीं जलाने दूँगा।" यह सुनकर जब रानी ने पैसे के बदले अपनी धोती को फाड़कर देना चाहा, वैसे ही श्री नारायणजी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया। तदुपरान्त राजा हरिश्चन्द्र आदि को दर्शन देकर उसके पुत्र रोहिताश्व को जीवित कर दिया। फिर जब श्रीहरि ने उन तीनों से वैकुण्ठलोक चलने के लिए कहा तो हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़कर यह कहा कि हे महाप्रभु! जिस प्रकार आपने मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया, उसी प्रकार मेरे स्वामी चाण्डाल को भी वैकुण्ठ ले चलिए, तभी मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। यह सुनकर श्रीहरि उस चाण्डाल को भी परिवार-सहित विमान में बैठाकर, सबको वैकुण्ठलोक ले गये।

हे भूपाल! धर्मात्मा राजा 'रन्तिदेव' की कथा यह है कि उसने अड़-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तालीस दिन तक भूखे रहने के उपरान्त जब कुछ अन्न भोजन के लिए पाया तो उसे भी एक ब्राह्मण को खिलाकर स्वयं भूखा सो गया। उस धर्म के कारण उसे मुक्ति मिली। राजा बलि वामन भगवान् को अपना सम्पूर्ण राज्य देकर जब अपना शरीर भी देने को प्रस्तुत हुआ, तब श्रीहरि ने उसे सुतल लोक का राज्य दे दिया। राजा शिवि ने कबूतर के बदले अपने शरीर का मांस काटकर दे डाला था। 'उद्दालक' नामक ऋषि छठवें महीने भोजन करने को बैठे तो एक अतिथि के आ जाने पर उन्होंने अपना भोजन उसे खिला दिया और स्वयं भूखे रह गये। उस अन्न-दान के प्रताप से वे विमान में बैठकर वैकुण्ठ-लोक जा पहुँचे। दधीचि ऋषि ने इन्द्र आदि देवताओं की रक्षा के लिए अपना शरीर ही दान में दे दिया था। इसी प्रकार ऐसे अनेक दानी हुए हैं, जिनका सुयश संसार में आज तक छा रहा है। हे नृपश्रेष्ठ! जिस प्रकार पिछले युगों में ये लोग दानी तथा धर्मात्मा होते आये हैं, उसी प्रकार इस युग में तुम दानी तथा धर्मात्मा उत्पन्न हुए हो। इसलिए तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो, इससे तुम्हारा सुयश भी संसार में स्थिर बना रहेगा।"

हे परीक्षित! श्री कृष्णजी के मुख से यह वचन सुनकर तथा सबों के मुख को देखकर जरासन्ध समझ गया कि ये ब्राह्मण नहीं, अपितु कोई राज-कुमार हैं। परन्तु ये ब्राह्मण वेष में आये हैं, इसलिए यदि ये प्राण भी माँगें तो दे देना चाहिए। उसने सोचा—राजा बलि ने शुक्राचार्य के मना करने पर भी वामन भगवान् को तीनों लोकों का राज्य दे दिया था, सो उसका सुयश तीनों लोकों में छा रहा है। यह विचारकर उसने श्री मुरलीमनोहर से कहा—"हे द्विजश्रेष्ठो! पहले आप निष्कपट भाव से अपना परिचय दीजिए, फिर जिस वस्तु की आकांक्षा हो, वह माँग लीजिए। मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं आपको अपने प्राण देने में भी संकोच नहीं करूँगा।" यह सुनकर श्री मुरली-मनोहर ने कहा—"हे राजन्! यदि तुम सच्चा परिचय चाहते हो तो सुनो। मैं यदुवंशी कृष्णचन्द्र हूँ तथा ये दोनों मेरे फुफेरे भाई अर्जुन और भीमसेन हैं। मैं तुमसे साधारण भिक्षा लेने नहीं, बल्कि युद्ध-दान माँगने आया हूँ। अतः तुम हम तीनों में से किसी एक के साथ युद्ध करना स्वीकार करो।" तब जरासन्ध प्रसन्न होकर बोला—"हे कृष्ण! मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है। सुनो, तुम तो मेरे सामने युद्ध-स्थल से भाग गये थे तथा अर्जुन की अवस्था छोटी है। इसके अतिरिक्त यह एक वर्ष तक राजा विराट् के यहाँ हिजड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनकर रहा है, अतः तुम दोनों से मैं युद्ध नहीं करूँगा। हाँ, भीमसेन से लड़ने के लिए मैं तैयार हूँ। वह मेरे बराबर का भी है। परन्तु पहिले आप लोग मेरे यहाँ भोजन कर लीजिए, तदुपरान्त धर्म युद्ध लड़िये।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन तथा भीमसेन के साथ राजा जरासन्ध के यहाँ भोजन किया। फिर जरासंध ने दो लोहे की गदा मँगवाईं तथा भीमसेन का ब्राह्मण-वेष छुड़ाकर, एक गदा उसे दी और दूसरी स्वयं ली। तब दोनों युद्ध करने के लिए एक स्थान पर जा खड़े हुए। कृष्ण तथा अर्जुन भी युद्ध का कौतुक देखने के लिए उनके पास जा खड़े हुए।

हे परीक्षित! उस समय जरासन्ध ने भीमसेन से यह कहा कि तुम मेरे यहाँ ब्राह्मण-वेष बनाकर आये थे, इसलिए पहिले तुम अपनी गदा चलाओ। यह सुनकर भीमसेन ने उत्तर दिया—"हे राजन्! अब धर्म-युद्ध के समय ज्ञान की चर्चा ठीक नहीं है। अतः जो चाहे वह पहिले वार करे।" तब दोनों एक दूसरे पर वार करने लगे। एक के प्रहार को दूसरा अपनी गदा से रोक लेता था। युद्ध करते-करते जब सन्ध्या हो गई और कोई नहीं हारा, तब दोनों वीर युद्ध बन्द करके श्री कृष्ण तथा अर्जुन के साथ राजमन्दिर में लौट आये तथा एक साथ भोजन करके सो रहे। दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ। युद्ध करते समय जब किसी की गदा टूट जाती थी, तो वह दूसरी गदा ले लेता था। इस प्रकार छब्बीस दिन तक युद्ध होता रहा। छब्बीसवें दिन दोनों की गदा टूट जाने पर जब मल्लयुद्ध ठहरा तो जरासन्ध ने भीमसेन के वक्षस्थल पर एक ऐसा घूँसा मारा कि वे व्याकुल हो गये। तब उन्होंने रात्रि के समय श्री कृष्णजी से कहा कि हे प्रभु! जरासन्ध अत्यन्त बलवान् है। उसके प्रहार से मेरी छाती में भयंकर पीड़ा हो रही है, अतः कल मैं (उससे युद्ध किए बिना ही) घर लौट जाऊँगा। यह सुनकर श्री कृष्णजी ने उन्हें बहुत धैर्य बँधाया तथा अपना हाथ फेरकर पीड़ा को दूर कर दिया। फिर यह कहा कि कल युद्ध के समय मैं तुम्हें जो संकेत करूँ उसके अनुसार कार्य करके तुम जरासंध को मार डालना। अस्तु, सत्ताईसवें दिन जब युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब श्रीहरि ने एक तिनका उठाकर उसे बीच में से चीर डाला। उसका भेद समझकर तथा श्री कृष्णजी द्वारा बल प्रदान किए जाने पर भीमसेन ने जरासन्ध की एक टाँग पर अपना पाँव रखकर तथा दूसरी टाँग को हाथ से ऊपर उठाकर उसका शरीर बीच में से चीर डाला। इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

जब जरासन्ध का जुड़ा हुआ शरीर अलग-अलग हो गया तो वह उसी क्षण मर गया। उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर भीमसेन आदि पर पुष्प बरसाये तथा श्री श्यामसुन्दर का जय-जयकार किया। श्री कृष्ण तथा अर्जुन ने भी भीमसेन की प्रशंसा की।

हे परीक्षित! जरासन्ध की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी रानी रोती-पीटती श्री मुरलीमनोहर के पास आकर कहने लगी—"हे प्रभु! जिसने आपको अपना सर्वस्व दिया, उसके प्राण लेकर आपने क्या भलाई की? आपने राजा बलि के साथ भी यही किया था।" इस प्रकार जब उसने बहुत विलाप किया, तब श्रीहरि ने उसे धैर्य प्रदान कर जरासन्ध के पुत्र 'सहदेव' को राजगद्दी पर बैठाया तथा अपने हाथ से उसका राज्याभिषेक किया। फिर जरासन्ध का क्रिया-कर्म कराने के उपरान्त, सहदेव को धर्म-पूर्वक प्रजा-पालन करने का उपदेश दिया।"

तिहत्तरवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का राजाओं को मुक्त करना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! सहदेव को राजतिलक करने के उपरान्त श्री कृष्णजी उसे साथ लेकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सभी राजा कैद थे। उन्होंने देखा कि पर्वत की कन्दरा के समान एक गड्ढा खुदा हुआ है, जिसके भीतर सब राजा बन्द हैं तथा उसके द्वार पर एक भारी पत्थर रक्खा है। तब श्रीहरि के आज्ञानुसार सहदेव ने उन सबको बाहर निकलवाया। उस समय वे श्री श्यामसुन्दर को अपने सम्मुख उपस्थित देख, हाथ जोड़कर, प्रार्थना करते हुए बोले—"हे दीनानाथ! आपकी दया से ही हमें मुक्ति मिली, अन्यथा हमको धीरज देनेवाला कोई नहीं था।" उन राजाओं की दीन दशा देखकर श्रीहरि ने जब संकेत किया, तब सहदेव ने उनकी हथकड़ी-बेड़ी कटवा क्षौर-कर्म कराया तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर छत्तीस प्रकार के भोजन खिलाये। फिर जब श्री मुरलीमनोहर ने चतुर्भुजी रूप में उनको दर्शन दिया, तब उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश भर गया। उस समय वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बोले—"हे दीनबन्धो! आप ही सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति करनेवाले हैं। आपके आदि-अन्त को कोई नहीं जानता। आप यदि चाहते तो अपनी इच्छा से ही जरासन्ध को मार-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर हमें छुड़ा देते। परन्तु आपने अपना दर्शन देने के लिए ही यहाँ पधार-कर हमें कृतार्थ किया है। हे प्रभो! हम सब आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार की स्तुति सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने उनसे कहा—"हे राजाओ! जैसा दुःख तुम्हें प्राप्त हुआ है, वैसा ही दुःख प्रत्येक अभिमानी राजा को मिलता है। जिस मनुष्य के मन में मेरे चरणों की भक्ति तथा प्रीति होती है, वही संसार में यश प्राप्त करके अन्त में मोक्ष-पद पाता है। जो लोग अभिमानी होते हैं वे अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। पिछले समय में राजा नहुष, वेणु तथा रावण आदि अभिमानी राजा अपना सिंहासन खो बैठे। जो लोग विभीषण, अम्बरीष, प्रह्लाद तथा हनुमान् के समान मेरी शरण पकड़ते हैं, वे ही मनोकामना को प्राप्त करते हैं। सहस्रबाहु को भी अपनी सहस्र भुजाओं का अभिमान हुआ था, अतः परशुरामजी ने उसकी भुजाओं को काट डाला। भौमासुर, बाणासुर, कंस आदि अनेक राजा इसी अभि-मान के कारण नष्ट हुए। यदि तुम लोग भी अभिमान को त्याग कर, मेरे चरणों में प्रीति रक्खोगे, तो तुम्हें कोई दुःख नहीं मिलेगा।"

हे परीक्षित! यह सुनकर राजाओं ने कहा—"हे प्रभो! आप कृपा करके हमें अपने जप एवं पूजा की विधि तथा ज्ञान बता दीजिए, जिसे करके हम भी भवसागर से पार उतर जायँ।" श्री कृष्णजी बोले—"हे राजाओ! सब वेद-शास्त्रों का सार-रूप ज्ञान यह है कि किसी भी क्षण मुझे न भूलकर सदैव मेरे ही लीला-चरित्रों को सुनो तथा मेरा ही स्मरण करो। संसारी व्यव-हारों को स्वप्नवत् मिथ्या समझकर मेरे ही नाम पर यज्ञ तथा हवन करो। धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए साधु-महात्माओं की सेवा करो तथा अकर्मों से मुख मोड़कर, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, असत्य, ईर्ष्या, पाखण्ड आदि को त्याग दो, इससे तुम्हें इस लोक में सुख तथा मृत्यु के अनन्तर परलोक में वैकुण्ठ का आनन्द प्राप्त होगा।" इस प्रकार ज्ञानोपदेश करके श्रीहरि ने फिर कहा—"हे राजाओ! राजा युधिष्ठिर ने तुम्हें राजसूय यज्ञ का निम-न्त्रण दिया है, सो तुम लोग हमारे पहुँचने से पूर्व ही अपने घर होते हुए, इन्द्रप्रस्थ में जाकर यज्ञ में भाग लो।"

हे राजन्! श्रीकृष्णजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर जब सब राजा अपने-अपने घर जाने को उद्यत हुए, तब सहदेव ने उन सब के लिए रथ, हाथी, घोड़े तथा सेवकों का प्रबन्ध कर दिया। श्रीहरि ने उनके कण्ठ में एक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मुक्तामाल पहिनाई तब वे सब अत्यन्त प्रसन्न हो श्री कृष्णचन्द्रजी का यश गाते हुए अपने-अपने देश को चले गये। तदुपरान्त सहदेव ने श्री कृष्णजी का विधिपूर्वक पूजन किया। फिर श्री कृष्णजी अर्जुन, भीमसेन तथा सहदेव को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को चल दिए। जब नगर के समीप पहुँचे तब श्रीहरि ने अपने पाञ्चजन्य शङ्ख का घोष किया। उस शब्द को सुनकर राजा युधिष्ठिर अपने सब भाइयों, मंत्रियों तथा ब्राह्मणों को साथ ले उनकी अगवानी को जा पहुँचे तथा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन सबको राजभवन में ले आये। हे परीक्षित! जब राजा दुर्योधन ने शंख का शब्द सुना तब वह बहुत उदास हुआ। जब श्री कृष्ण, अर्जुन तथा भीमसेन राजा युधिष्ठिर के चरणों पर गिरे तब उन्होंने प्रसन्न होकर सबको हृदय से लगा लिया तथा प्रेमाश्रुओं की वर्षा कर सुख प्राप्त किया। उस समय राजा जरासन्ध के मारे जाने का समाचार सुनकर सबको अत्यन्त आनन्द हुआ।"

चौहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के यज्ञ तथा शिशुपाल-वध की कथा

शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिस प्रकार राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ किया तथा शिशुपाल मारा गया, अब वह कथा हम तुमसे कहते हैं, सुनो। जरासन्ध के मारे जाने पर उन बीस सहस्र राजाओं के अतिरिक्त पृथ्वी पर और जितने सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी आदि राजा थे वे सब युधिष्ठिर के यज्ञ में भाग लेने के लिए इन्द्रप्रस्थ में आ पहुँचे। राजा युधिष्ठिर तथा श्री कृष्णजी ने उन सबका यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। फिर सब लोगों को एक-एक काम सौंप दिया। सातों द्वीप तथा नवों खण्डों के राजा वहाँ श्री कृष्णजी का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त नकुल जाकर भीष्मपितामह तथा दुर्योधनादि को अपने यहाँ लिवा लाये। वेदव्यास, शुकदेव, नारद, कश्यप, वशिष्ठ, वामदेव, अत्रि, परशुराम, धूम्र, भरद्वाज, च्यवन, कण्व, मैत्रेय आदि ऋषि तथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, लोकपाल आदि सभी निमंत्रण पाकर, अपनी-अपनी स्त्रियों-सहित उस यज्ञ में भाग लेने के लिए आये। तब शुभ लग्न में राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ करने के लिए अपने हाथों स्वर्ण के हल से पृथ्वी को जोता तथा साकल्य आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ मँगवाकर ऋषियों के समीप रख दीं। जब यज्ञ आरम्भ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुआ तो युधिष्ठिर द्रौपदी-सहित गाँठ जोड़कर बैठे तथा अग्निकुण्ड में आहुति देने लगे, जिसे सब देवता प्रत्यक्ष रूप धरकर ग्रहण करने लगे। इस प्रकार जब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ, उस समय सब लोगों ने राजा युधिष्ठिर के भाग्य की अत्यंत प्रशंसा की। अस्तु, जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि सबसे प्रथम किस देवता की पूजा की जाय, तब जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने उठकर राजा युधिष्ठिर से यह कहा—"हे राजन्! भगवान् वासुदेव से बड़ा और कोई नहीं है। ये सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी तथा उद्भव, स्थिति एवं प्रलय के कारण-स्वरूप हैं। इन्होंने पृथ्वी का भार उतारने तथा हरि-भक्तों को आनन्द देने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया है। ये साक्षात् परब्रह्म हैं, अतः आप सबसे पहिले इन्हीं की पूजा कीजिए।" सहदेव की बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी ऋषि-मुनियों, ब्राह्मणों तथा ज्ञानी राजाओं ने उसकी प्रशंसा करते हुए यह कहा—"हे युधिष्ठिर! सहदेव का कथन सत्य है, तुम सबसे पहिले श्री वासुदेव की ही पूजा करो।" यह सुनकर युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री कृष्णचन्द्र को सर्वोच्च आसन पर बैठाया तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर, उनकी विधिवत् पूजा करने के उपरान्त रत्न आदि की भेंट देकर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप तीनों लोकों की सम्पूर्ण वस्तुओं के स्वामी हैं, अतः आपको कुछ भेंट करते हुए हमें लज्जा आती है, सो आप इसे भक्ति की भावना जानकर स्वीकार करें।" युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर सब लोग धन्य-धन्य कहकर श्री कृष्णचन्द्र की प्रशंसा करने लगे। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! श्री मुरलीमनोहर की पूजा से सब छोटे-बड़े लोगों को प्रसन्नता हुई, परन्तु चँदेरी के राजा शिशुपाल को यह बहुत बुरा लगा। कुछ देर तक तो वह अपना सिर नीचा किए बैठा रहा तदुपरान्त खड़ा होकर इस प्रकार कहने लगा—"हे राजा युधिष्ठिर! इस सभा में भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र आदि सब बड़े-बड़े विद्वान् बैठे हुए हैं, परन्तु मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि इस समय सबकी बुद्धि विपरीत क्यों हो गई है, जो तुमने आज एक बालक के कहने पर कृष्णचन्द्र को सबसे बड़ा मानकर उनकी पूजा की। यह पूजा वैसी ही है, जैसे इन्द्र का भाग कौए को खिला दिया जाय। क्या तुम लोग यह नहीं जानते कि इस कृष्ण ने बहुत दिनों तक वन में गौ चराते हुए अहीरों के साथ रोटी खाई है। अभी तक यह भी पता नहीं चला कि यह नन्द का बेटा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है अथवा वसुदेव का ? अस्तु, जिसके माता-पिता तक का ठिकाना नहीं, उसे तुम अलख-अगोचर कैसे समझ बैठे हो ? इसने इन्द्र की पूजा छुड़ाकर गोवर्द्धन पर्वत को पुजवाया। जो इसके मन में आता है, वही यह करता रहता है। इसने गोपियों का चीर चुराया तथा शत्रु के भय से अपनी जन्म-भूमि को छोड़कर द्वारका में जा बसा। जिस प्रकार कुन्ती ने अपने पति के वीर्य को छोड़कर, दूसरों के वीर्य से युधिष्ठिर आदि को जन्म दिया; उसी प्रकार इस कृष्ण के बाप का भी कोई ठिकाना नहीं है।

हे परीक्षित ! इस प्रकार शिशुपाल ने श्री कृष्णजी के प्रति अनेक दुर्वचन कहे, परन्तु श्रीहरि उसका कोई उत्तर न देकर उसके प्रत्येक दुर्वचन पर एक-एक रेखा खींचते चले जा रहे थे। उस समय भीमसेन, द्रोणाचार्य तथा अर्जुन आदि ने अत्यन्त क्रोध करके शिशुपाल से कहा—"अरे नीच ! यदि तू हमारे सामने श्री मुरलीमनोहर के प्रति ऐसे शब्द कहेगा तो हम तुझे जान से मार डालेंगे।" तब श्री श्यामसुन्दर उन्हें रोकते हुए बोले—"तुम लोग चुपचाप खड़े रहो। यह जो कहता है, वह कहने दो, कुछ देर में यह स्वयं ही मारा जायगा।" यह सुनकर जब उन्होंने शिशुपाल को नहीं मारा, तब श्री कृष्णजी ने उन रेखाओं को गिना, जिन्हें वे पृथ्वी पर खींचते जा रहे थे। जब वे एक सौ एक हुईं, तब श्रीहरि ने पूजा की थाली को मन्त्र द्वारा सुदर्शन चक्र बनाकर, उससे शिशुपाल का मस्तक काट डाला। उस समय शिशुपाल के धड़ से एक ज्योति निकली, जो पहिले तो आकाश की ओर गई, फिर श्री कृष्णजी के मुख में आकर समा गई। यह देखकर देवता तथा ऋषि-मुनि श्री श्यामसुन्दर की स्तुति करने लगे। शिशुपाल जैसे अधर्मी की ऐसी मुक्ति देखकर अन्य राजाओं ने बड़ा आश्चर्य माना।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—"हे श्री शुकदेवजी ! श्री श्यामसुन्दर ने ऐसे कठोर वचन कहने पर भी शिशुपाल को मुक्ति क्यों दी, इसका कारण मुझे समझाकर कहिए।" श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! सनकादि के शाप के कारण श्रीहरि के पार्षद जय-विजय ने संसार में तीन बार जन्म लिया था तथा तीनों ही बार उन्होंने श्री नारायणजी से शत्रुता करके मुक्ति प्राप्त की थी। पहिले जन्म में वे दोनों हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष हुए। उस समय श्रीहरि ने नृसिंह तथा वाराह अवतार लेकर उनका वध किया। दूसरे जन्म में रावण तथा कुम्भकर्ण हुए तब श्रीहरि ने

CC-0,Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामचन्द्र अवतार लेकर उन्हें संहारा। वे ही दोनों तीसरे जन्म में शिशुपाल तथा दन्तवक्त्र हुए, उन्हें श्रीहरि ने कृष्णावतार में मार कर परमपद दिया। हे परीक्षित! श्री कृष्णजी द्वारा सौ रेखा खींचे जाने का कारण यह था कि शिशुपाल की माता 'महादेवी' वसुदेवजी की बहिन तथा श्री कृष्णजी की बुआ थी। वह चँदेरी के राजा 'दमघोष' को ब्याही गई थी। अस्तु, जब शिशुपाल का जन्म हुआ, उस समय उसके तीन नेत्र तथा चार भुजाएँ थीं। जब दमघोष ने ज्योतिषियों को बुलाकर उसके जन्म ग्रहों का फल पूछा, तब ज्योतिषियों ने यह बतलाया था कि यह बालक अत्यन्त प्रतापी एवं बलवान् होगा तथा जिस व्यक्ति के गले मिलने पर इसकी दो भुजाएँ तथा तीसरा नेत्र अदृश्य हो जायगा, उसीके हाथों यह मारा जायगा। अस्तु, उसी दिन से शिशुपाल की माता अपने बेटे को सब लोगों के गले से मिलाया करती थी। एक बार जब वह अपने पिता शूरसेन से मिलने के लिए द्वारका गई, तब उसने शिशुपाल को सब यदुवंशियों के गले से भी मिलाया। जब वह श्री कृष्णजी के गले से मिला, उस समय उसका तीसरा नेत्र तथा दो भुजाएँ अदृश्य हो गईं। उस समय महादेवी ने श्रीहरि से यह कहा—"हे कृष्ण! मैं तुझसे यह भीख माँगती हूँ कि तू कभी शिशुपाल को मत मारना। तब श्री कृष्णजी ने उसे यह उत्तर दिया—"हे बुआ! मैं इसके सौ अपराध क्षमा करूँगा, परन्तु जब यह इससे आगे बढ़ेगा, तब नहीं मानूँगा।" यह सुनकर महादेवी ने अपने मन में यह विचारकर धैर्य धारण किया कि शिशुपाल सौ से अधिक अपराध क्यों करेगा? हे परीक्षित! यही कारण था कि सौ दुर्वचन कहने तक श्री कृष्णजी ने कुछ नहीं कहा था एवं जब दुर्वचनों की संख्या बतानेवाली रेखाएँ सौ से अधिक हो गईं, तब श्रीहरि ने उसका मस्तक काट डाला।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिर का यज्ञ समाप्त हुआ तब उन्होंने सभी राजाओं तथा अन्य लोगों को उनकी स्त्रियों-सहित वस्त्राभूषणों की भेंट दे, सम्मानपूर्वक बिदा किया। वे सब राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर गये। परन्तु राजा दुर्योधन को राजा युधिष्ठिर की बड़ाई देखकर बहुत डाह हुआ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पचहत्तरवाँ अध्याय

दुर्योधन के मान-मर्दन का वृत्तान्त

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा–"हे मुनिश्रेष्ठ ! जहाँ सब राजा प्रसन्न हुए थे, वहाँ दुर्योधन की अप्रसन्नता का क्या कारण था, यह मुझे बताने की कृपा करें ?" श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! सुनो। राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सब राजाओं को श्री कृष्णजी की रुचि के अनुसार काम सौंपा गया था। भीमसेन ने भोजन कराने का काम लिया था। धृष्टद्युम्न ने भोजन बाँटने का काम लिया। धन का कोष राजा दुर्योधन को सौंपा गया तथा उसे व्यय करना कर्ण के जिम्मे रहा। अतिथियों के स्वागत का काम अर्जुन ने लिया। विदुर को सभा अलंकृत करने का काम दिया गया। सहदेव को ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों की सेवा का भार दिया गया तथा सब वस्तुओं को एकत्रित करने का काम नकुल ने लिया। ब्राह्मणों के चरण धोने तथा उनकी जूठी पत्तलें उठाने का काम श्री कृष्णजी ने स्वयं अपने जिम्मे रक्खा। द्रौपदी आदि ने स्त्रियों के आतिथ्य का भार लिया। इस प्रकार सभी राजा अपने-अपने काम को प्रसन्नतापूर्वक करते थे, परन्तु मन में द्वेष रखकर दुर्योधन एक स्थान पर दस रुपये इसलिए खर्च करता था ताकि कोष समाप्त हो जाने से राजा युधिष्ठिर की हँसी हो। परन्तु उसे यह नहीं पता था कि उसके हाथ में चक्र है, इसलिए यदि वह एक रुपया खर्च करेगा तो उस चक्र के प्रभाव से कोष दसगुना अधिक बढ़ता रहेगा। अस्तु, दुर्योधन द्वारा अधिक खर्च करने पर राजा युधिष्ठिर की ही प्रशंसा होती थी, जिससे वह मन ही मन और अधिक कुढ़ता था।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! यज्ञ समाप्त हो जाने पर राजा युधिष्ठिर गंगा-स्नान करने चले। वहाँ से लौटकर जब वे एक दिन मय दानव द्वारा निर्मित राजसभा में बैठे हुए नृत्य, संगीत आदि का आनन्द ले रहे थे, उसी समय राजा दुर्योधन भी अपने साथ बहुत-सी सेना लेकर उनके स्थान को देखने आया। वह सभा ऐसी थी जहाँ स्थल की जगह जल तथा जल के स्थान पर स्थल दिखाई देता था। अस्तु, जब राजा दुर्योधन वहाँ आया तो एक स्थान पर सूखी धरती को जल से भरी हुई जानकर अपने कपड़े उठाकर चलने लगा तथा जब वह जल से भरे हुए स्थान पर पहुँचा तो उसे स्थल समझकर साधारण गति से आगे बढ़ा जिसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण वह पानी के कुण्ड में गिर पड़ा तथा उसके सब कपड़े भींग गये। यह देखकर सभा में उपस्थित सब लोग तथा द्रौपदी, रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ हँसने लगीं। उस समय भीमसेन ने खिलखिलाते हुए कहा–"हे धृतराष्ट्र के पुत्र! तनिक सँभल कर चलो।" अस्तु, उन सबको हँसते हुए देखकर राजा दुर्योधन अपना अपमान समझ, क्रुद्ध हो वहाँ से वापस लौट आया तथा अपनी सभा में पहुँचकर अपने मित्रों, साथियों तथा भाइयों से यह कहने लगा कि श्री कृष्णचन्द्र का बल पाकर युधिष्ठिर आदि को अभिमान हो गया है, इसी लिए आज भीमसेन ने मेरी इतनी हँसी की है। अस्तु, जब तक मैं इसका बदला नहीं लूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे परीक्षित! दुर्योधन की पाण्डवों से अधिक शत्रुता बढ़ जाने का यही कारण था। उसी दिन से दुर्योधन ने पाण्डवों के पीछे पड़कर, उनका सब राज्य ले लिया तथा उन्हें वनवास आदि दिया। (इस कथा को 'महाभारत' नामक ग्रन्थ में विस्तार-पूर्वक कहा गया है।) श्री कृष्णजी पृथ्वी का भार उतारने के लिए महा-भारत कराना चाहते थे, अतः यह घटना भी उन्हीं की इच्छा से घटी।"

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व का द्वारका पहुँचकर उपद्रव करना

श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! जिस दिन राजा 'शाल्व' शिशुपाल की बारात में कुण्डिनपुर गया था तथा वहाँ श्री श्याम-बलराम से हार कर भागा था, उसी दिन उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं यदुवंशियों का वंश नाश कर दूँगा। अस्तु, शिशुपाल की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने अपने मन में यह विचार किया कि यदुवंशी बड़े बलिष्ठ हैं। अतः उन्हें नष्ट करने के लिए पहिले किसी देवता से वरदान प्राप्त करना चाहिए। यह सोचकर राजा शाल्व शिवजी की तपस्या करने लगा। उसने सब इन्द्रियों को वश में करके केवल एक मुट्ठी रेत खाकर, अत्यन्त उग्र तपस्या की। तब शिवजी ने प्रकट होकर उससे वर माँगने के लिए कहा। उस समय शाल्व ने श्री शङ्करजी को दण्डवत् करते हुए इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! आप मुझे आकाश में उड़नेवाला एक ऐसा विमान दीजिए, जिसके ऊपर किसी भी देवता अथवा दैत्य के अस्त्र-शस्त्र का प्रहार सफल न हो सके तथा उसे देखकर सभी यदु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वंशी भयभीत हो जायँ। यह सुनकर श्री शिवजी ने मयदानव को बुलाकर, राजा शाल्व को उसका मनोवांछित विमान बनाकर देने की आज्ञा दी। जब मयदानव ने वैसा विमान बनाकर दे दिया, तब राजा शाल्व अपनी सेना तथा अस्त्र-शस्त्रों सहित उस विमान पर सवार होकर द्वारकापुरी में जा पहुँचा। उन दिनों श्री कृष्णजी यज्ञ होने के उपरान्त स्वयं तो इन्द्रप्रस्थ में ही रह रहे थे, परन्तु उन्होंने प्रद्युम्न आदि को द्वारका भेज दिया था। अस्तु, जब राजा शाल्व द्वारकापुरी में पहुँचकर अस्त्र-शस्त्र एवं शिलाखण्ड आदि की वर्षा करने लगा उस समय सभी यदुवंशी व्याकुल होकर राजा उग्रसेन के पास जा पहुँचे तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगे कि हे महाराज! इस समय श्री श्यामसुन्दर को द्वारकापुरी से बाहर गया हुआ जानकर राजा शाल्व हम लोगों को दुःख देने आ पहुँचा है, सो आप हमारी रक्षा करें। यह सुनकर राजा उग्रसेन ने प्रद्युम्न तथा साम्ब को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम दोनों भाई हमारी सेना लेकर राजा शाल्व से युद्ध करने के लिए जाओ। तब वे दोनों सात्यकी, कृतवर्मा आदि बहुत से शूरवीरों को साथ लेकर नगर के बाहर राजा शाल्व से युद्ध करने के लिए जा पहुँचे। उस समय प्रद्युम्न को देखकर राजा शाल्व ने अपने बाणों द्वारा चारों ओर अन्धकार फैला दिया। तब प्रद्युम्न ने एक प्रकाशवान् बाण छोड़कर उस अन्धकार को नष्ट कर दिया। तदुपरान्त जब राजा शाल्व रथ पर चढ़ कर उनके सामने युद्ध करने के लिए आया तब प्रद्युम्न ने अपने एक बाण से तो उसके रथ की ध्वजा काट डाली तथा दूसरे तीसरे बाण से सारथी और घोड़ों को मार डाला। यह देखकर वह सामने ठहरने की सामर्थ्य न रख, माया-युद्ध करने लगा। कभी तो बहुत बड़ा स्वरूप धारण कर लेता और कभी छोटा रूप स्वरूप धरकर आकाश से अग्नि तथा पत्थरों की वर्षा करता था।

हे परीक्षित! इस प्रकार जब राजा शाल्व अपने माया-युद्ध द्वारा यदुवंशियों को कष्ट देने में तत्पर हुआ, तब उसके मंत्री 'देवमान' ने प्रद्युम्न पर बाण-वर्षा करनी आरम्भ कर दी। यह देखकर प्रद्युम्न ने देवमान को लक्ष्य करके एक ऐसा तीर छोड़ा, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चैतन्यता आई, तब अत्यन्त क्रोध करके उसने प्रद्युम्न के मस्तक पर अपनी गदा का एक ऐसा प्रहार किया जिसके कारण प्रद्युम्न मूर्च्छित होकर रथ में गिर पड़े। यह देखकर प्रद्युम्न का सारथी, जो दारुक का पुत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, उन्हें रणभूमि से अलग हटा ले गया। कुछ देर बाद जब प्रद्युम्न की मूर्च्छा भङ्ग हुई, तब उन्होंने अत्यन्त क्रोध करके सारथी से इस प्रकार कहा—"अरे मूर्ख! तू मुझे रणभूमि से अलग क्यों ले आया? क्या तू यह नहीं जानता कि यदुवंश का कोई योद्धा रणभूमि से पीठ दिखाकर नहीं भागता है? आज तूने मेरे मस्तक पर कलंक का टीका लगा दिया। अब मैं श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी को क्या मुँह दिखाऊँगा? संसारी लोग यह सुनकर मेरी बहुत निन्दा करेंगे तथा रुक्मिणी आदि माताएँ तथा भौजाइयाँ अत्यन्त दुःख मनायेंगी। मुझे रण में वीरगति प्राप्त हो जाती तो कहीं अधिक अच्छा रहता। उस स्थिति में कोई मुझे नपुंसक कहकर उँगली तो नहीं उठाता?" यह सुनकर 'धर्मपति' नामक सारथी ने उत्तर दिया—"हे स्वामी! राजनीति में यह कहा गया है कि जब रथी युद्ध करते समय घायल होकर अचेत हो जाय, उस समय सारथी को यह चाहिए कि वह उसे रणभूमि से अलग ले जाकर रथ खड़ा कर दे। इसी के अनुसार मैं आपके मूर्च्छित हो जाने पर आपको अलग ले आया। यदि रथ को दौड़ाते समय मेरा रथ पीछे रह जाता अथवा धुरी-पहिये में से कुछ टूट जाता तो आप मुझे दोष दे सकते थे। इस सम्बन्ध में तो मैं पूर्णतः निर्दोष हूँ, अतः आप सेवक पर बिना अपराध के क्रोध न करें। हे प्रभो! अब आप कुछ देर विश्राम भी कर चुके हैं, अतः मैं आपको फिर युद्ध भूमि में लिए चलता हूँ।" धर्मपति के ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्न बोले—"भले ही तूने नीति के अनुसार कार्य किया, परन्तु इसमें मेरी हँसी हुई है, अतः तुम यह शपथ खाओ कि यह हाल किसी से न कहोगे।" यह सुनकर जब धर्मपति ने शपथ खाई, तब वे अपना धनुष-बाण उठाकर पुनः रणभूमि में जा पहुँचे।

सतहत्तरवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का द्वारका में पहुँचकर राजा शाल्व को मारना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जो यदुवंशी प्रद्युम्न को मूर्च्छित देखकर उदास हो गये थे, वे उनके रथ को पुनः युद्ध भूमि में देखकर ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे मृतक-शरीर में प्राण लौट आये हों। उस समय प्रद्युम्न सारथी से कहकर अपने रथ को पुनः देवमान के सम्मुख ले गये तथा उसे ललकारते हुए कहने लगे—"अरे दुष्ट! तू यदुवंशियों से लड़ना छोड़कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

मुझसे युद्ध कर।" यह सुनकर देवमान उनसे युद्ध करने लगा। तब प्रद्युम्न ने अपने चार बाणों से देवमान के रथ के चारों घोड़ों को मारकर, फिर एक और बाण से उसके सारथी को मार गिराया। तदुपरान्त उन्होंने दो बाणों से उसके ध्वजा तथा छत्र को काटकर अपने धनुष पर तीन ऐसे तीखे तीर चढ़ाये, जिन्होंने छूटते ही देवमान के प्राण हर लिए। उस समय शाम्ब भी राजा शाल्व की सेना को इस प्रकार काटने लगे जिस प्रकार किसान खेत को काटता है। उस घोर युद्ध को देखकर राजा शाल्व के सैनिक भयभीत होकर भाग चले, जिनमें अधिकांश समुद्र में डूब जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। इस प्रकार सत्ताईस दिन तक वह घोर युद्ध निरन्तर चलता रहा। उस समय यदुवंशी भी परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि यह राजा महान् बली है, इसी लिए अब तक युद्ध क्षेत्र में डटा हुआ है।

हे परीक्षित! इधर तो राजा शाल्व माया-युद्ध करके यदुवंशियों को दुःख पहुँचा रहा था, उधर श्री मुरलीमनोहर ने इन्द्रप्रस्थ में यह स्वप्न देखा कि किसी ने द्वारकापुरी को जलाकर समुद्र में डुबा दिया है तथा सभी यदुवंशी मरे हुए पड़े हैं। यह देखकर उन्होंने प्रातःकाल राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे राजन्! हमने रात को एक अशुभ स्वप्न देखा है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि शिशुपाल के साथी दैत्य द्वारकापुरी में जाकर उपद्रव मचा रहे हैं, अतः अब आप हमें घर जाने की आज्ञा दीजिए।" यह सुनकर जब युधिष्ठिर ने उन्हें प्रेमपूर्वक बिदा किया, तब श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी रथ पर चढ़कर द्वारकापुरी को चल दिये। दूसरे ही दिन जब वे रणभूमि में पहुँचे तो श्री कृष्णजी ने बलरामजी से यह कहा कि तुम तो राजा उग्रसेन तथा प्रजा की रक्षा करने के लिए नगर में रहो और मैं राजा शाल्व को मारने के पश्चात् लौट आता हूँ। यह सुनकर जब बलरामजी नगर में चले गये, तब श्रीकृष्णजी अपने रथ को शीघ्रता से बढ़ाकर राजा शाल्व के समीप जा पहुँचे। जब शाल्व ने श्री कृष्णजी को देखा तो उसने अपने विमान पर चढ़कर, श्रीहरि के सारथी दारुक के ऊपर साँग का प्रहार किया। तब श्री कृष्णजी ने उसे अपने बाण से काटकर सोलह बाण ऐसे मारे, जिससे उसका विमान कुम्हार के चाक की तरह घूमने लगा। तदुपरान्त राजा शाल्व ने एक बाण मारकर श्रीहरि के हाथ के शार्ङ्गधनुष को नीचे गिरा दिया। उस धनुष के गिरने का शब्द तीनों लोकों में हुआ, जिसे सुनकर सभी देवता तथा यदुवंशी चिन्तित हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उठे। राजा शाल्व इसे अपनी विजय समझ कर, श्री कृष्णजी के प्रति दुर्वचन कहता हुआ इस प्रकार बोला–"हे कृष्ण! आज मैं अपने मित्र शिशुपाल का बदला तुमसे ले लूँगा। अब तक तुमने भौमासुर, शकटासुर आदि दैत्यों को ही छल-बल करके मार डाला है। मैं उनके समान नहीं हूँ।" यह सुनकर श्री कृष्णजी बोले–"अरे नीच! शूरवीर अपने मुख से अपनी प्रशंसा कभी नहीं करते हैं। यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो मुझे दिखला। अन्यथा जिस प्रकार तेरा मित्र शिशुपाल मारा गया, उसी प्रकार तू भी मृत्यु को प्राप्त होगा।" इतना कहकर श्रीहरि ने राजा शाल्व के मस्तक पर एक ऐसी गदा मारी, जिससे उसका शिर फट गया तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ देर बाद जब वह चैतन्य हुआ तो स्वयं अपनी माया द्वारा राजा उग्रसेन का दूत बनकर, रोनी सूरत बनाये हुए श्रीहरि के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा–"हे प्रभो! मुझे आपकी माता देवकी ने यह कहकर भेजा है कि आपके पिता वसुदेवजी को राजा शाल्व पकड़कर ले गया है, अतः आप शीघ्रतापूर्वक उनकी सुधि लें।" यह सुनकर श्रीहरि ने अपने मन में विचार किया कि क्या राजा शाल्व बलरामजी से भी अधिक शक्तिशाली है, जो उनके नगर में रहते हुए भी वह मेरे पिता को पकड़कर ले गया। जिस समय श्री श्यामसुन्दर इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय राजा शाल्व अपना स्वरूप धर कर, माया के वसुदेवजी बना, उन्हें अपने हाथ में पकड़े हुए फिर श्री मुरलीमनोहर के सम्मुख आ पहुँचा। मायारूपी वसुदेव ने श्री कृष्णजी के सामने आकर तड़फते हुए इस प्रकार कहा–"हे बेटा! राजा शाल्व हमें पकड़ लाया है, सो तुम हमारे प्राणों की रक्षा करो।" जिस समय मायारूपी वसुदेव इस प्रकार कह रहा था, उसी समय राजा शाल्व चिल्लाकर इस प्रकार बोला–"हे कृष्ण! देखो, मैं तुम्हारे पिता को पकड़ लाया हूँ, अब तुम इसकी रक्षा कर सकते हो तो करो।" इतना कह कर उसने मायारूपी वसुदेव का मस्तक तलवार से काट डाला तथा उसे भाले की नोक पर उठा कर सब लोगों को दिखाते हुए इस प्रकार कहने लगा–"देखो, मैंने कृष्ण के पिता को मार डाला है। अब मैं कृष्ण-बलराम सहित सब यदुवंशियों को भी मार कर समुद्र में डाल दूँगा। इस दृश्य को देखकर श्रीहरि को एक क्षण के लिए तो मूर्च्छा आ गई, परन्तु फिर चैतन्य होकर जब उन्होंने ध्यान किया तो सब माया उनकी समझ में आ गई। उस समय उन्होंने अत्यन्त क्रोध करके अपना पाञ्चजन्य शंख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बजाते हुए गदा का एक ऐसा प्रहार किया, जिसके लगने पर राजा शाल्व का विमान सौ टुकड़े होकर समुद्र में गिर पड़ा। तब शाल्व ने विमान से कूदकर श्रीहरि के ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया। उसे श्री मुरलीमनोहर ने अपनी गदा से तोड़ डाला। इस प्रकार कुछ देर तक गदा-युद्ध करने के पश्चात् श्री बाँकेविहारी ने अपने बाण द्वारा राजा शाल्व की उस भुजा को काट गिराया जिसमें वह गदा पकड़े हुए था। फिर सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक इस प्रकार काट लिया, जिस प्रकार इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था। शाल्व के मरने पर उसके धड़ से एक ज्योति निकलकर श्रीहरि के मुख में समा गई। उस समय देवताओं ने जय-जयकार करते हुए श्री द्वारकानाथ के ऊपर पुष्पों की वर्षा की तथा सब यदुवंशियों को भी अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।"

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र तथा विदूरथ वध की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! जिस प्रकार शिशुपाल के दोनों भाई 'दन्तवक्त्र' तथा 'विदूरथ' मारे गये अब वह वृत्तांत सुनो। जिस दिन से राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल का वध हुआ, उसी दिन से ये दोनों भाई श्रीहरि से बदला लेने का विचार किया करते थे। अस्तु, जिस समय तक श्री श्यामसुन्दर इन्द्रप्रस्थ से चलकर द्वारकापुरी में नहीं पहुँचे थे तथा राजा शाल्व वहाँ उपद्रव मचा रहा था, उसी समय वे दोनों भाई भी अपनी सेना लेकर शाल्व की सहायता करने के लिए द्वारकापुरी में जा पहुँचे। तदुपरान्त जब श्री कृष्णजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने शाल्व को मार डाला, उस समय इसके पहिले कि श्री श्यामसुन्दर नगर के भीतर जायँ, उन दोनों ने आकर श्री मुरलीमनोहर को चारों ओर से घेर लिया। उन्हें देखकर सब यदुवंशी घबरा गये। तब दन्तवक्त्र ने श्री मुरलीमनोहर के सामने पहुँचकर यह कहा कि हे कृष्ण! तुमने मेरे भाई तथा मित्र को मारा है, इसलिए मैं आज उन दोनों का बदला लेने के लिए तुम्हें मारने के बाद सब यदुवंशियों को मार डालूँगा। अस्तु, तुम पहिले मेरे ऊपर अपने शस्त्र का प्रहार कर लो, जिससे तुम्हारे मन में यह अभिलाषा शेष न रह जाय। इस प्रकार की बातें कहने के उपरान्त जब उसने श्रीहरि के ऊपर अपनी गदा का प्रहार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया, तब श्री कृष्णजी ने उसकी गदा तो काट गिराई और अपनी गदा का एक ऐसा प्रहार किया, जिसके लगने से उसी क्षण दन्तवक्त्र की मृत्यु हो गई। तब उसके धड़ से भी एक ज्योति निकलकर श्री द्वारकानाथ के मुख में समा गई। यह देखकर जब दूसरा भाई 'विदूरथ' ढाल-तलवार लेकर युद्ध करने के लिए आया तो श्री बाँकेविहारी ने सुदर्शन चक्र द्वारा उसका भी मस्तक काट गिराया। तब उनकी जो सेना शेष रही थी, वह अपने प्राण बचाकर भाग गई। उस समय देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक दुन्दुभी बजाते हुए पुष्प-वर्षा की तथा हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे त्रिलोकीनाथ! आपने अपने द्वारपाल जय-विजय का तीनों बार उद्धार करके उन्हें फिर अपना पद प्रदान किया है। भला, किसमें इतनी सामर्थ्य है, जो कोई आपकी महिमा का वर्णन कर सके? आपके समान दीनदयालु और कौन है?" इतना कहकर जब सब देवता दण्डवत् करके अपने-अपने स्थान को चले गये, उस समय श्री मुरलीमनोहर ने अपनी कृपादृष्टि द्वारा सभी घायल यदुवंशियों को अच्छा कर दिया तथा मृतकों को जिला दिया। फिर सबको साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक द्वारका में आये। उस समय राजा उग्रसेन ने बहुत-सा दान दिया तथा घर-घर मंगलाचार हुए। तदुपरान्त श्री श्यामजी ने विश्वकर्मा को बुलाकर टूटे हुए भवनों को फिर से ठीक करवा दिया। उसी दिन श्री मुरलीमनोहर ने यह प्रतिज्ञा की कि अब मैं कभी शस्त्र धारण नहीं करूँगा।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! कुछ समय बाद जब कौरव-पाण्डवों में युद्ध की तैयारी हुई, उस समय बलरामजी ने अपने मन में यह विचार किया कि श्री श्यामसुन्दर पृथ्वी का भार हटाने तथा पाण्डवों की इच्छा पूर्ण करने के लिए महाभारत करना चाहते हैं। अतः यदि मैं यहाँ रहा तो मुझे अपने शिष्य दुर्योधन की सहायता करनी पड़ेगी। उस समय ये अपने मन में बुरा मानेंगे। इसलिए मुझे तीर्थयात्रा करने के लिए चला जाना चाहिए। यह निश्चय करके बलभद्रजी ने श्री कृष्णजी से कहा—"हे भाई! आप तो हस्तिनापुर जाकर जो उचित समझें, वह करें; मैं तीर्थ-यात्रा करता हुआ वहाँ आ पहुँचूँगा।" यह सुनकर श्रीहरि ने भी बलरामजी को रोकना उचित न जानकर तीर्थयात्रा करने की अनुमति दे दी। तदुपरांत श्री कृष्णजी तो कुरुक्षेत्र में जा पहुँचे, जहाँ अठारह अक्षौहिणी सेना महा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत के लिए एकत्र हुई थी और बलरामजी प्रभास-क्षेत्र, स्वरस्वती, गङ्गा यमुना आदि अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए नैमिषारण्य में पहुँच गये। हे परीक्षित! वहाँ जाकर बलरामजी ने यह देखा कि एक स्थान पर ऋषि-मुनि एकत्र होकर यज्ञ कर रहे हैं तथा दूसरे स्थान पर वेदव्यासजी का पौराणिक शिष्य 'रोमहर्षण' नामक सूत व्यास-गद्दी पर बैठा हुआ शौनक आदि ऋषियों को कथा सुना रहा है। जब बलरामजी वहाँ पहुँचे तो सभी ऋषि-मुनि उनके सम्मान में उठकर खड़े हो गये। परन्तु रोमहर्षण नामक सूत अपनी विद्या के अभिमान के कारण ज्यों का त्यों बैठा रहा। यह देखकर बलभद्रजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर इस प्रकार कहा—"भला, इस मूर्ख को व्यास-गद्दी पर किसने बैठाया है? कथावाचक, हरिभक्त तथा ज्ञानी मनुष्य को तो अहङ्कार, लोभ आदि से रहित होना चाहिए। यह पुराणों का जानकार होते हुए भी, अभिमान में पड़कर अन्धा हो रहा है। जिस प्रकार कलियुग के ब्राह्मण दूसरे को उपदेश देकर स्वयं मर्यादा का पालन नहीं करते, वही दशा इसकी भी है। हमारा अवतार अधर्मी एवं अहंकारियों को नष्ट करने के लिए हुआ है, अतः हम इसका अपराध क्षमा नहीं करेंगे।" इतना कह-कर शेषावतार बलरामजी ने क्रुद्ध होकर एक कुशा उठा ली तथा उसे मंत्र पढ़कर सूत की ओर फेंक दिया। उस कुशा के लगते ही रोमहर्षण सूत का मस्तक कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय शौनक आदि ऋषियों ने बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे बलभद्रजी! यह सूत हमें हरि-चरित्र सुनाकर कृतार्थ करता था। अतः आपने उसे व्यासगद्दी पर बैठे हुए मारकर ठीक नहीं किया। हम लोग इस बात को जानते हैं कि आपने अपनी इच्छा से अवतार लिया है। परन्तु यह सूत, जिसका जन्म वैश्य तथा ब्राह्मण वर्ण के संयोग से हुआ, हमारे आज्ञानुसार व्यासगद्दी पर बैठा था; अतः इसे मारने से आपको ब्रह्महत्या का पाप लगा है। अब आप इसका प्रायश्चित्त करें, अन्यथा संसार में धर्म की मर्यादा नष्ट हो जायगी। देखिए, जब भृगु ऋषि ने श्री विष्णुजी के लात मारी थी, तब उन्होंने ऋषि का पाँव दबाकर यह कहा था कि मेरे कठोर हृदय से लगने के कारण आपके कोमल चरण को चोट तो नहीं पहुँची? अतः आपको ब्राह्मण का पद सबसे बड़ा समझना चाहिए।" ऋषियों के मुख से ऐसे वचन सुनकर बलरामजी ने कहा—हे ऋषियो! क्रोध के आवेश में मुझसे यह अपराध बन पड़ा है, अतः तब आप ही कृपा करके कोई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसा उपाय बताइये जिससे मैं इस ब्रह्महत्या के दोष से मुक्त हो सकूँ। रही व्यासगद्दी की बात, सो यदि इस सूत का कोई पुत्र हो तो आप उसे बुला दीजिए, उसे मैं व्यासगद्दी पर बैठा दूँगा।" यह सुनकर ऋषियों ने उत्तर दिया—"हे बलरामजी! तीर्थों में स्नान करने से आपका पाप नष्ट हो जायगा।" इतना कहकर उन्होंने रोमहर्षण के पुत्र 'उग्रशर्मा' को वहाँ बुला लिया। तब बलरामजी ने उसे व्यासगद्दी पर बैठाकर ऐसा वरदान दिया, जिसके प्रभाव से उसे छवाँ शास्त्र तथा अठारहों पुराण बिना पढ़े ही कण्ठस्थ हो गये। जब वह व्यासगद्दी पर बैठकर कथा बाँचने लगा, उस समय सब ऋषियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। फिर वे बलरामजी से इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! आपकी कृपा से सूत की मृत्यु का दुःख तो दूर हुआ, परन्तु 'इल्वल' नामक दैत्य, जो वानररूप में रहता है, प्रत्येक पूर्णिमा, अमावस्या तथा द्वादशी का यहाँ आकर हमारे यज्ञ तथा हवन के कुण्डों में रक्त, हड्डी, पीव आदि की वर्षा करता है। उससे हम लोग अत्यन्त दुखी रहते हैं, अतः आप दया करके उसे मार डालिये; जिससे सब ऋषि-मुनि निर्भय होकर हवन, यज्ञ आदि करें।" यह सुनकर बलरामजी ने कहा—"अच्छा, हम उस वानररूपी दैत्य को मारकर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।"

उन्यासीवाँ अध्याय

बलरामजी द्वारा इल्वल-वध

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! ऋषियों की प्रार्थना पर बलरामजी इल्वल दैत्य को मारने के लिए कई दिनों तक नैमिषारण्य में ठहरे रहे। जब पूर्णिमा आई उस दिन इल्वल दैत्य वहाँ आकर आँधी चला, रक्त, पीव आदि की वर्षा करने लगा। यह देखकर बलरामजी ने अपने हल तथा मूशल को याद किया। उसी समय वे दोनों शस्त्र वहाँ आ पहुँचे। तदुपरान्त जब वह दैत्य वानर-वेश बनाये काले पर्वत के समान विशाल शरीर धारण किये, लाल-लाल आँखें निकालकर गरजता हुआ वहाँ आया, तो बलरामजी को देख, अन्तर्धान हो, मल-मूत्र बरसाने लगा। यह देखकर श्री बलरामजी ने उसे हल की नोक पर उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया। तदुपरान्त उसके मस्तक पर ऐसा मूशल मारा कि वह उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गया। यह देख, ऋषि-मुनि प्रसन्न होकर बलरामजी का जयजयकार करने लगे। फिर उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलभद्रजी के गले में सुगन्धित पुष्पों की एक ऐसी माला पहिना दी जिसके फूल कभी मुरझावें ही नहीं।

हे परीक्षित! इल्वल दैत्य को मारकर, ऋषियों से बिदा माँग, श्री बलरामजी गढ़मुक्तेश्वर, गोमती, गण्डक, गङ्गा, व्यास, कौषिकी सरयू, पुष्कर, शोणभद्र, प्रयाग, काशी आदि तीर्थों में गये। वहाँ स्नान, दान आदि करने के उपरान्त गया, गङ्गासागर, गोदावरी, भागीरथी, सिंहलद्वीप, रामेश्वर, विन्ध्याचल, श्रीशैल आदि तीर्थों में गये। प्रत्येक तीर्थ में उन्होंने दस-दस सहस्र गौ-दान करके ब्राह्मणों को भोजन कराया। तत्पश्चात् स्वामिकार्त्तिकेय, अगस्त्य, परशुराम, अर्जुनबाला आदि के दर्शन करते हुए, लोगों को सुख देते हुए, सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके ठीक एक वर्ष बाद हरिद्वार में आ पहुँचे। वहाँ जब उन्होंने लोगों के मुख से यह समाचार सुना कि कौरव-पाण्डवों में युद्ध हो रहा है, तो वे कुरुक्षेत्र को चल दिये। महाभारत के अठारहवें दिन जब वे कुरुक्षेत्र में पहुँचे, उस ससय भीमसेन तथा दुर्योधन में गदा-युद्ध हो रहा था। उन्हें देखते ही पाँचों पाण्डवों तथा दुर्योधन ने दण्डवत् किया। तब वे आशीर्वाद देकर इस प्रकार कहने लगे—"हे भाई! बड़े दुःख की बात है जो श्री श्यामसुन्दर के यहाँ रहने पर भी कौरव-पाण्डवों ने रजोगुण तथा तमोगुण के वशीभूत होकर लाखों भाई-बन्धु तथा अन्य लोगों को मार डाला। भीमसेन तथा दुर्योधन बल में एक समान हैं, क्योंकि भीम-सेन का तो युद्ध करते समय श्वास नहीं फूलता है और दुर्योधन गदायुद्ध की विद्या का बड़ा पण्डित है। अतः अब इन दोनों को आपस में लड़ना बन्द कर देना चाहिए।" तब श्री नारायणजी के इच्छानुसार भीमसेन तथा दुर्योधन ने हाथ जोड़कर बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! अब तो बिना युद्ध किए हम लोग किसी प्रकार नहीं मानेंगे।" यह सुनकर बलरामजी श्री श्यामसुन्दर की ऐसी ही इच्छा जानकर चुप होकर खड़े रहे। उसी समय भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ में एक ऐसी गदा मारी, जिससे उसकी जाँघ टूट गई और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय दुर्योधन ने बलरामजी से इस प्रकार कहा—"हे गुरु! मैं झूठ नहीं कहता। तुम्हारे भाई श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा पाण्डवों का अनुचित पक्ष लिए जाने के ही कारण हम हारे हैं। इन्हें यह उचित नहीं था कि ये केवल पाण्डवों की सहायता करके हमसे शत्रुता रखते। अब आपही इस अधर्म को देखिए कि भीमसेन ने मेरी जाँघ में गदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मारकर मुझे गिरा दिया है। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ?" यह सुनकर बलरामजी श्रीहरि के पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे भाई ! यह तुमने क्या किया, जो इतने लोगों को महाभारत में मरवा दिया। तुमने अधर्मपूर्वक दुश्शासन की भुजा उखड़वाई तथा दुर्योधन की जाँघ तुड़वाई। धर्म-युद्ध में न तो भुजा उखाड़ी जाती है और न कमर के नीचे गदा ही मारी जाती है। फिर तुमने ऐसा क्यों होने दिया ?" यह सुनकर श्री बाँकेविहारी ने उत्तर दिया—"हे भाई ! ये सब कौरव बड़े पापी तथा अधर्मी हैं। देखो, पहिले तो इन्होंने जुआ खेलकर कपट से पाण्डवों का सब धन हर लिया। तदुपरान्त उन्हें तेरह वर्ष का वनवास दिया। दुर्योधन ने पतिव्रता द्रौपदी को दुश्शासन के हाथों केश पकड़वाकर अपनी सभा में बुलवाया, तदुपरान्त उसे अपनी जाँघ पर बैठने के लिए कहा। इस अधर्म के कारण ही उस समय भीमसेन ने यह शपथ खाई थी कि मैं दुश्शासन की भुजा उखाड़ूँगा तथा दुर्योधन की जाँघ तोड़ूँगा। उस प्रतिज्ञानुसार ही भीमसेन ने ऐसा कार्य किया है। अब तुम्हीं कहो कि अधर्म कहाँ रहा। इसके अतिरिक्त दुर्योधन ने जो अन्य अधर्म के कार्य किए हैं, उन्हें कहाँ तक कहा जाय ? तुम अपने मन में निश्चय समझो कि अब यह महाभारत की आग किसी भी प्रकार नहीं बुझेगी।"

हे परीक्षित ! श्री मुरलीमनोहर के मुख से ऐसे वचन सुनकर बलरामजी द्वारकापुरी लौट गये। फिर वहाँ से अपनी पत्नी रेवती तथा कुछ अन्य यदुवंशियों को साथ लेकर पुनः इस इच्छा से नैमिषारण्य में गये कि ऋषियों को यह दिखा आवें कि सूत का वध करने के कारण उन्हें जो ब्रह्महत्या लगी थी, वह पाप तीर्थस्नान करने से छूट गया है अथवा नहीं। जब वे नैमिषारण्य में पहुँचे तो शौनकादि ऋषियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा यह बताया कि अब आपकी ब्रह्महत्या छूट गई है। यह सुनकर बलदेवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ स्नान-दान आदि शुभ कर्म किए, तदुपरान्त ऋषि-मुनियों को ज्ञानोपदेश करके द्वारकापुरी में लौट आये। उस समय सब लोगों ने अत्यन्त आनन्द मनाया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्सीवाँ अध्याय

सुदामा की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे श्री शुकदेवजी ! श्रीहरि के लीला-चरित्रों को सुनने से मेरा मन अभी नहीं भरा है, अतः आप श्री श्यामसुन्दर के कुछ और चरित्र मुझे सुनाने की कृपा करें।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! तुम्हारी बुद्धि को धन्य है, जो तुम श्री नारायणजी के चरणों में इस भाँति प्रीति रखते हो। अब हम तुम्हें सुदामा ब्राह्मण की कथा सुनाते हैं, सुनो। दक्षिण दिशा में, 'द्राविड़' नामक देश में, 'विदर्भ' नामक एक नगर था। वहाँ का राजा अपनी प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करता था। उसी नगर में वेद-शास्त्रों का जानकार तथा श्री कृष्णजी का सहपाठी 'सुदामा' नामक एक दीन-दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वह इतना दरिद्र था कि उसे कभी भी पेट भरने के लिए पूरा भोजन तथा शरीर ढँकने के लिए वस्त्र नहीं मिलते थे। वह तथा उसकी पत्नी परम संतोषी थे। बिना माँगे ही जो कुछ मिल जाता, उसी को खाकर अपना पेट भर लेते थे। एक बार ऐसा संयोग हुआ कि सुदामा तथा उसकी पत्नी को अपने चारों पुत्रों सहित उपवास करते हुए दो दिन बीत गये। तीसरे दिन दो छोटे बालक भूख से अत्यन्त व्याकुल होकर रुदन करने लगे। उस समय सुदामा की पत्नी 'सुशीला' से उनका रोना नहीं देखा गया। तब वह अपने पति से हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी—"हे स्वामी ! मैंने यह सुना है कि लक्ष्मीपति श्री कृष्णचन्द्रजी आपके मित्र तथा गुरु-भाई हैं। उन्होंने ब्राह्मणों तथा हरि-भक्तों की रक्षा करने के लिए अवतार लिया है। अतः यदि आप उनके पास जायँ तो वे दया करके आपकी दरिद्रता दूर कर देंगे।" यह सुनकर सुदामा ने उत्तर दिया—"हे प्रिये ! तेरा ज्ञान क्यों नष्ट हो गया है, जो आज तू ऐसी लालच की बातें कर रही है ? ब्राह्मण को संतोष रखना चाहिए। यदि मैं श्री कृष्णजी के पास जाऊँगा तो संसारी लोग मेरा उपहास करेंगे। इसके अतिरिक्त स्वयं बिना भेंट दिए दूसरा भी कुछ नहीं देता है, सो मेरे पास उन्हें भेंट करने के लिए क्या वस्तु है, जिसे लेकर मैं वहाँ जाऊँ ? यदि उन्होंने दीन-दरिद्र जानकर मेरा आदर किया, तब तो और भी डूब मरने की बात होगी। यदि मैंने अपने पूर्व जन्म में किसी को कुछ दिया होता तो इस समय में स्वयं ही मिल जाता। जब मेरे भाग्य में ही नहीं है तो वहाँ जाकर भी क्या करूँगा ?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सुनकर ब्राह्मणी बोली—"हे प्रभो ! मैं केवल धन की इच्छा से ही ऐसा नहीं कह रही हूँ। उनके दर्शन करने से आपको मुक्ति प्राप्त होगी, इसी लिए मैंने यह कहा है। रही बात भेंट ले जाने की सो मैं थोड़ा-सा चावल पड़ोसिनों से माँग लाई हूँ, उसे लेकर आप चले जाइये।" जब कुछ देर विचार करने के उपरान्त सुदामा ने द्वारका जाना स्वीकार कर लिया, तब ब्राह्मणी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर एक पुराने फटे हुए कपड़े में वे थोड़े से चावल बाँध दिए। तदुपरान्त सुदामा उन चावलों की छोटी-सी पोटली को काँख में दबा, लाठी हाथ में ले, श्री गणेशजी का ध्यान धरकर अपने मन में यह सोचता हुआ चल दिया कि मेरे भाग्य में धन मिलना तो लिखा ही नहीं है, परन्तु मैं द्वारका जाकर श्री श्यामसुन्दर के दर्शन करके अपने जन्म को सफल अवश्य कर लूँगा। इसी प्रकार सोच-विचार करता हुआ, जब सुदामा तीन प्रहर बाद द्वारकापुरी में पहुँचा तो उसने यह देखा कि उस नगरी के सभी भवन स्वर्ण-निर्मित रत्नों से जड़े हुए हैं तथा सब ओर वैभव एवं आनन्द की अपूर्व शोभा छिटक रही है। उसे देखकर सुदामा अपने मन में यह चिन्ता करने लगा कि कोई मुझे श्रीहरि के पास जाने से रोक न दे। इसी लिए वह आगे-पीछे की ओर देखता हुआ धीरे-धीरे चलने लगा। श्री कृष्णजी की यह आज्ञा थी कि ब्राह्मणों को किसी भी समय उनके पास आने से न रोका जाय, इसलिए किसी भी द्वारपाल ने उसे श्री श्याम-सुन्दर के भवन में भीतर जाने से नहीं रोका। अस्तु, जब सुदामा तीन ड्योढ़ी पार करके चौथे द्वार पर पहुँचा तो यह देखा कि श्री मुरलीमनोहर रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए रुक्मिणी के साथ चौपड़ खेल रहे हैं। अस्तु, जब द्वारपाल ने उन्हें जाकर यह समाचार दिया कि सुदामा नामक कोई ब्राह्मण आपसे मिलने के लिए आया है, तो वे उसी समय खेल छोड़कर नंगे पाँव दौड़े चले आये तथा सुदामा को अपने कण्ठ से लगाकर बड़े प्रेम से भीतर ले गये। फिर वहाँ अपने सिंहासन पर बैठाकर अपने हाथों से उसके पैर की धूलि झाड़ने लगे। जब रुक्मिणी ने सुदामा के पाँवों में चुभे हुए काँटों को निकाल दिया, तब श्रीहरि ने उसके चरणों को धोया। तदु-परान्त चन्दन आदि लगा कर छत्तीसों प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन कराये। फिर उन्होंने रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों को यह आज्ञा दी कि तुम सब हमारे मित्र सुदामा की सेवा करो। यह सुनकर कोई तो उन पर चँवर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डुलाने लगी और कोई पाँव दाबने लगी। उस समय देवतागण विमानों पर बैठे हुए सुदामा के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जिस समय श्रीहरि ने सुदामा का ऐसा स्वागत-सत्कार किया, उस समय श्री श्यामसुन्दर की सभी पत्नियाँ तथा वहाँ उपस्थित यदुवंशी परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि देखो, इस ब्राह्मण ने पूर्व जन्म में न जाने कितने शुभ कर्म किये थे, जिनके कारण श्रीहरि अपने हाथ से उसकी इतनी सेवा कर रहे हैं। उस समय सत्यभामा ने अन्य स्त्रियों से यह कहा कि देखो, श्री मुरलीमनोहर हमारे सामने तो ऐसी अभिमान की बातें किया करते हैं, परन्तु उनके मित्र को देखो तो उनके पास पहिनने के लिए वस्त्र तथा खाने के लिए भोजन तक नहीं है। न जाने यह ब्राह्मण देवता कौन हैं जो ऐसे दरिद्र होते हुए भी श्री मुरलीमनोहर के परम मित्र हैं। सत्यभामा के मुख से ऐसे वचन सुनकर सुदामा ने अपने मन में यह विचार किया कि सम्भवतः श्री कृष्णजी ने मुझे पहिचाना नहीं है, इसी लिए वे किसी दूसरे के धोखे में मेरी इतनी सेवा कर रहे हैं। उस समय अन्तर्यामी श्री कृष्णजी उनके मन का हाल जानकर सन्देह छुड़ाने के लिए इस प्रकार कहने लगे—"हे मित्र सुदामा! तुम्हें स्मरण होगा कि हम-तुम दोनों सांदीपन गुरु के यहाँ एक साथ विद्या पढ़ा करते थे। उन्हीं दिनों तुम्हारा विवाह भी हुआ था। तुमने बड़ी कृपा की जो आज यहाँ आकर अपने दर्शनों से मुझे कृतार्थ किया। हे भाई! तुम जानते होगे कि एक बार गुरु की पत्नी ने हम दोनों को लकड़ी लाने के लिए वन में भेजा था। वहाँ तुमने मुझे लकड़ी न तोड़ने देकर स्वयं ही सब लकड़ी तोड़ी थी। वन में जब वर्षा होने लगी तथा आँधी चलने लगी, उस समय रात्रि होने के कारण हम-तुम दोनों रात को वन में ही रह गये थे। तब प्रातःकाल होने पर सांदीपन गुरु हमें ढूँढ़ते हुए वन में आ पहुँचे और हमें घर ले जाकर अपनी पत्नी पर बहुत क्रुद्ध हुए। उस समय तुम्हीं मेरी सहायता किया करते थे। हे सुदामा! जब हम गुरु के यहाँ से विद्या पढ़कर बिदा हुए उस समय गुरु ने हमें यह आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें पढ़ी हुई विद्या कभी नहीं भूलेगी। अस्तु, आज तुम्हें देखकर ऐसा लग रहा है, जैसे मुझे सांदीपन गुरु के ही दर्शन प्राप्त हुए हों। अब तुम यह बताओ कि हमारी भाभी तथा बच्चे तो अच्छी तरह हैं?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे परीक्षित ! श्री कृष्णजी के मुख से यह वचन सुनकर सुदामा का सन्देह दूर हो गया। तब उसने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक इस प्रकार कहा—"हे त्रिलोकीनाथ ! आप सर्वज्ञ होते हुए भी मुझे इस प्रकार लज्जित क्यों कर रहे हैं ? चारों वेद आपकी श्वास हैं। तीनों लोकों के सम्पूर्ण प्राणी आपकी सदैव स्तुति करते रहते हैं। आपने केवल संसारी जीवों को दिखाने के लिए ही गुरु के यहाँ रहकर विद्या पढ़ी है। आप सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्न-कर्त्ता तथा सबके रक्षक हैं। जो लोग आपका स्मरण करते हैं, वे संसार में यश प्राप्त करके अन्त समय वैकुण्ठ लोक को जाते हैं। शिव, ब्रह्मा, शेष, शारदा, इन्द्र आदि सभी देवता आपका निशिदिन स्मरण किया करते हैं। आप सर्वशक्तिमान् एवं सर्वज्ञ हैं। हे प्रभो ! मैं आपको कोटि-कोटि दण्डवत् करता हूँ। हे दीनानाथ ! मेरे पूर्व जन्मों के कोई पुण्य सहायक हुए जो आज मुझे आपके श्रीचरणों का दर्शन प्राप्त हुआ। अब मैं कोई अन्य अभिलाषा न रखकर केवल यही चाहता हूँ कि आपके चरण-कमलों की भक्ति मेरे हृदय में सदैव बनी रहे।"

इक्यासीवाँ अध्याय

सुदामा की श्री कृष्णजी से बिदाई

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन् ! इस प्रकार जब सुदामा ने बहुत स्तुति की, तब अन्तर्यामी श्री कृष्णजी ने हँसकर इस प्रकार कहा—"हे भाई ! तुम्हारी बातें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। अब तुम हमें वह सौगात दे दो, जिसे हमारी भाभी ने हमारे लिए भेजा है तथा जिसे तुम अभी तक छिपाये हुए हो।" यह सुनकर सुदामा ने लज्जित होकर अपने मन में सोचा कि मैं मुट्ठी भर चावल इनको क्या भेंट करूँ ? यह विचार कर जब वह चावलों की पोटली को छिपाने लगा, उस समय श्री द्वारकानाथ ने हँसते हुए उस पोटली को सुदामा की काँख में से निकालकर खोल लिया तथा उसमें से दो मुट्ठी चावल खाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे भाई ! भौजाई के भेजे हुए इन चावलों में जो स्वाद है, वह अन्यत्र मिलना कठिन है। ऐसी भेंट पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ।" इतना कहकर जैसे ही श्रीहरि ने तीसरी मुट्ठी भरकर, चावल खाना चाहा, वैसे ही रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आप दो लोक तो इस ब्राह्मण को दे चुके, अब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीसरा लोक भी देकर अपने तथा हमारे रहने के लिए भी कोई स्थान छोड़ेंगे अथवा नहीं?" यह सुनकर जब श्रीहरि ने देखा कि तीसरी मुट्ठी चावल खाने से रुक्मिणी उदास हो जायँगी, तब उसे न खाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे रुक्मिणी! यह ब्राह्मण मेरा परम-भक्त है तथा सुख-दुःख को एक जैसा समझता है। अतः यदि मैं इसे अपना शरीर भी दे दूँ तो इसकी भक्ति के आगे कुछ नहीं है।" यह सुनकर सब लोग श्रीहरि तथा सुदामा की प्रशंसा करने लगे। अस्तु, जब एक प्रहर रात्रि बीत गई, तब श्री श्यामसुन्दर ने सुदामा को ले जाकर रत्न-जटित शैया पर शयन कराया। उस समय रुक्मिणी तो उसके चरण दाबती रहीं तथा श्री कृष्णजी उससे बाल्यावस्था की बातें करते रहे। कुछ देर बाद जब सुदामा सो गया, तब श्री त्रिलोकीनाथ ने अपने मन में यह विचार किया कि यद्यपि इस ब्राह्मण को धन की अभिलाषा नहीं है, परन्तु इसकी पत्नी ने इसी आशा से इसे मेरे पास भेजा है। अतः अब मुझे सुदामा को इतना धन दे देना चाहिए, जितना देवताओं को भी प्राप्त न हो। यह सोचकर श्रीहरि ने उसी समय विश्वकर्मा को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम सुदामा के नगर में जाकर उसके रहने के लिए ऐसा रत्न-जटित स्वर्ण-मन्दिर बना दो, जिसके बराबर तीनों लोकों में कोई दूसरा न हो; तत्पश्चात् उसमें सभी ऋद्धि-सिद्धियों को स्थापित कर दो। यह सुनकर विश्वकर्मा ने उसी क्षण सुदामा के नगर में जाकर श्री वैकुण्ठनाथ के आज्ञानुसार सब कार्य सम्पन्न कर दिया।

हे परीक्षित! तीसरे दिन जब सुदामा अपने घर जाने को हुआ, उस समय श्री मुरलीमनोहर उसे विदा करने के लिए द्वार तक आये तथा अत्यन्त स्नेहपूर्वक, आँखों में आँसू भरे हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे मित्र! तुमने अत्यन्त कृपा करके मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया, सो अब यही कहना है कि तुम मुझे कभी भूल मत जाना।" इतना कहकर जब श्री कृष्णजी उसे दण्डवत् करके चले, तब सुदामा अपने घर की ओर जाते हुए मार्ग में यह विचार करने लगा कि देखो, श्री मुरलीमनोहर ने मेरा कितना सम्मान किया, जो अपने से भी अधिक बढ़कर माना। यह अच्छा ही हुआ जो मैंने उनसे किसी वस्तु की याचना नहीं की। यदि मैं कुछ माँगता तो वे दे तो देते, परन्तु लोभी समझते। मैं तो अपने जीवन को किसी न किसी प्रकार काट ही लूँगा, परन्तु श्रीहरि ने मुझे सन्तोषी समझा, यही मेरे लिए बहुत है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार सोचता-विचारता जब वह अपने स्थान पर पहुँचा तो वहाँ झोपड़ी की जगह रत्नजटित स्वर्ण-मन्दिर बने हुए देखकर अत्यन्त आश्चर्य में रह गया। वहाँ अनेक दास-दासी इधर से उधर घूमते हुए सेवा-टहल कर रहे थे तथा चारों ओर सुन्दर पुष्प लगे हुए थे। उसे देखकर सुदामा ने आश्चर्यचकित होकर सोचा कि मैं भूलकर किसी दूसरे स्थान पर तो नहीं आ गया हूँ? हाय, मेरी झोपड़ी कहाँ चली गई। मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैंने लोभ के वशीभूत हो, घर से बाहर निकलकर अपनी स्त्री को भी खो दिया। अब मैं उसे कहाँ जाकर ढूँढ़ूँ?

हे परीक्षित्! जिस समय सुदामा बाहर खड़ा हुआ इस प्रकार पछता रहा था, उसी समय उसकी पत्नी सुशीला ने सुदामा को द्वार पर खड़ा हुआ देखकर दास-दासियों को यह आज्ञा दी कि हमारे पति द्वार पर खड़े हुए हैं, सो तुम उन्हें सम्मानपूर्वक भीतर ले आओ। यह सुनकर उन्होंने सुदामा के पास जाकर दण्डवत् करते हुए भीतर चलने की प्रार्थना की। तब सुदामा अपने मन में अत्यन्त घबराकर उनसे इस प्रकार कहने लगा—"हे भाई! तुम मुझ दरिद्र ब्राह्मण को राजभवन में क्यों लिये जा रहे हो?" उस समय दास-दासियों ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! यह स्थान आपका ही है, अतः आप सन्देह त्यागकर भीतर चलिये।" यह सुनकर भी जब सुदामा भय के कारण भीतर नहीं गया, तब उसकी पत्नी सोलहों शृङ्गार किये, सखियों तथा दासियों को साथ लिये उसकी आरती करने के लिए द्वार पर स्वयम् आ पहुँची तथा अपने पति के चरणों में मस्तक रख, परिक्रमा कर, हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—"हे स्वामी! आपके पीछे यहाँ विश्वकर्मा आये थे, वे सब पल भर में इस स्थान को बदल गये हैं। यह सब आपके मित्र श्री कृष्णजी ने कृपा की है। अतः आप भीतर चलिये।" यह सुनकर जब सुदामा भीतर गया तो उसने यह देखा कि वह भवन इन्द्रपुरी की भाँति सब प्रकार से सुसज्जित है तथा सब ओर प्रकाश ही प्रकाश फैला हुआ है। उस वैभव को देखकर जब सुदामा का मन उदास हो गया, तब उसकी पत्नी ने आश्चर्य में भरकर इस प्रकार पूछा—"हे स्वामी! धन मिलने पर संसारी लोगों को प्रसन्नता होती है, परन्तु आप उदास क्यों हो गये?" यह सुनकर सुदामा बोला—"हे प्रिये! यह धन श्रीहरि की जड़-रूप माया है। यह इतनी शक्तिशालिनी है कि मनुष्य को अपने वशीभूत कर हरि-भजन से विमुख बना देती है। अतः मेरे समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दरिद्र व्यक्ति इस माया को पाकर हरि-भजन किस तरह कर सकेगा ? मैंने तो श्री मुरलीमनोहर से कोई भी वस्तु नहीं माँगी थी, फिर उन्होंने इतना सब कुछ क्यों दे दिया ?" तब सुशीला ने उत्तर दिया—"हे प्राणेश्वर ! आपको तो धन की कोई इच्छा न थी, परन्तु श्री वैकुण्ठनाथजी ने मेरे मन की अभिलाषा पहिचानकर यह सब वैभव प्रदान किया है। अस्तु, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करके, श्रीहरि का स्मरण कीजिए।" यह सुनकर सुदामा ने श्री नारायणजी की इच्छा जानकर धैर्य धारण किया तथा सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ समय बाद शरीर त्यागने पर दोनों पति-पत्नी मोक्ष को प्राप्त हुए। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! देखो, केवल दो मुट्ठी चावल के बदले श्रीहरि ने सुदामा को ऐसा वैभव तथा उत्तम गति दी, तब जो लोग छत्तीस प्रकार के व्यंजनों से श्री नारायणजी का भोग लगाते हैं, उन्हें न जाने कैसा उत्तम सुख प्राप्त होता होगा ?"

बयासीवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी की कुरुक्षेत्र यात्रा तथा वृन्दावनवासियों से मिलन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! अब हम श्री कृष्णजी के कुरुक्षेत्र जाने की कथा कहते हैं, सुनो। एक बार जब सूर्यग्रहण का अवसर आया, तब श्री कृष्णजी तथा बलरामजी ने राजा उग्रसेन से यह कहा कि महाराज ! सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में स्नान का बड़ा माहात्म्य है। इस अवसर पर जो वस्तु वहाँ दान की जाय, उसका सहस्रगुना फल मिलता है। अतः आप भी वहाँ चलने की कृपा कीजिए। यह सुनकर यदुवंशियों ने पूछा—"हे मुरलीमनोहर ! उस स्थान का ऐसा माहात्म्य क्योंकर हुआ, आप हमें यह बताने की कृपा करें ?" तब श्री कृष्णजी ने कहा—"हे भाइयो ! वह स्थान अत्यन्त प्राचीन तथा परम पवित्र है। पहिले उसका नाम 'स्यमन्तक क्षेत्र' था। जब से परशुरामजी ने क्षत्रियों को मार कर वहाँ रुधिर की नदी बहाई तथा उससे पितरों का तर्पण किया, तभी से वह स्थान कुरुक्षेत्र प्रकट हुआ है। वहाँ ऋषि-मुनि परमेश्वर की तपस्या एवं ध्यान करते हैं; इसलिए वहाँ सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है।" यह सुनकर राजा उग्रसेन ने कुरुक्षेत्र चलने की स्वीकृति दे दी। तब श्री श्याम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलरामजी अपने माता-पिता, राजा उग्रसेन, रुक्मिणी आदि स्त्रियों, पुत्रों एवं अन्य सब यदुवंशियों को साथ लेकर कुरुक्षेत्र को चल दिए तथा अपने पौत्र अनिरुद्ध तथा कृतवर्मा नामक यादव को द्वारकापुरी की रक्षा के लिए छोड़ गये। अस्तु, कुछ दिन की यात्रा करने के उपरान्त जब सब लोग कुरुक्षेत्र में पहुँचे तो वहाँ की भीड़-भाड़ तथा शोभा को देखकर सब लोगों को अत्यन्त आनन्द हुआ। श्रीहरि ने सर्वप्रथम लोगों को ब्रह्मकुण्ड के दर्शन कराये, जिसमें से वेद की उत्पत्ति हुई थी। तदुपरान्त वहाँ स्नान आदि करके ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दिया।

हे परीक्षित! कुरुक्षेत्र में स्नान करने के लिए दुर्योधन आदि अनेक देशों के राजा भी आये थे। वे सब श्री कृष्णजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके दर्शन करने गये। वहाँ भीष्मपितामह तथा धृतराष्ट्र ने राजा उग्रसेन की प्रशंसा करते हुए यह कहा कि हे महाराज! आपके बड़े भाग्य हैं जो तीन लोक तथा चौदहों भुवनों के स्वामी श्री कृष्णचन्द्रजी दिन-रात आपकी सेवा करते रहते हैं। इस प्रकार मिल-भेटकर जब वे लोग बिदा हुए तब राजा भीष्मक एवं नग्नजित् आदि भी जो वहाँ आये थे, भेंटें ले-लेकर श्री कृष्णजी के पास जा पहुँचे। उस समय कुन्ती ने श्री श्यामसुन्दर से इस प्रकार कहा—"हे श्री कृष्ण! तुम्हारे भाइयों के ऊपर दुर्योधन ने बहुत अत्याचार किए, परन्तु तुमने उनकी कोई सुधि नहीं ली, इसका मुझे बड़ा शोच है।" यह सुनकर श्रीहरि ने उत्तर दिया—"हे बुआ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं। श्रीहरि जो चाहते हैं, वही होता है। परन्तु अब मैं हर समय उन अपने भाइयों का ध्यान रक्खूँगा।" यह सुनकर कुन्ती ने अपने मन में धैर्य धारण किया।

हे परीक्षित! श्री मुरलीमनोहर जिस स्थान पर ठहरे थे, वहाँ से तीन कोस की दूरी पर नन्द-यशोदा तथा अन्य व्रजवासी भी अपने डेरे लगाये, टिके हुए थे। जब उन्होंने यह सुना कि श्री वृन्दावनविहारी अपने कुटुम्ब सहित यहाँ स्नान करने को आये हैं, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो उनके दर्शनों की इच्छा करने लगे। उसी समय किसी ने श्री श्यामसुन्दर के पास जाकर यह समाचार सुनाया कि नन्द-यशोदा तथा अन्य व्रजवासी भी यहाँ स्नान करने के लिए आये हुये हैं तथा कुछ दूरी पर ठहरे हैं। इस समाचार को पाते ही श्री मुरलीमनोहर उनके स्नेह को याद करके रोने लगे। जब वसुदेव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जी ने उनके रोने का कारण पूछा तथा यह जाना कि नन्द-यशोदा भी यहाँ आये हैं, तो उन्होंने सब व्रजवासियों को ले आने के लिए रथ, घोड़े, पालकी आदि भेज दिये।

हे परीक्षित! जिस समय श्री कृष्णजी नन्द-यशोदा की याद करके रो रहे थे, उस समय किसी सखी ने उन्हें रोते देखकर रुक्मिणी आदि को यह समाचार कह सुनाया; सो वे सब भी घबराई हुई देवकी के पास जा पहुँची तथा उनसे श्रीहरि के रोने का कारण पूछने लगीं। जब देवकी ने उन्हें यह बताया कि यहाँ नन्द-यशोदा तथा राधा आदि गोपी-ग्वाल आये हुए हैं, अतः उन्हीं के स्नेह को याद करके श्री कृष्ण रोने लगे थे। तब रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ हँसती हुई आपस में इस प्रकार कहने लगीं कि आज हमारे प्राणेश्वर राधा आदि गोपियों से भेंट करके अपना हृदय शीतल करेंगे। हम लोग राधारानी के सौन्दर्य की बड़ी प्रशंसा सुना करती हैं कि हमारे प्राणनाथ उनके पीछे-पीछे मोर मुकुट बाँधकर नाचा करते थे। आज भी यदि उनके साथ ये नाचें तो हमें बड़ा आनन्द आयेगा। रुक्मिणी आदि के मुख से ऐसी बात सुनकर श्री द्वारकानाथजी रोते-रोते मुस्करा दिये। तदुपरान्त नन्द-यशोदा की अगवानी करने के लिए चल दिए।

हे परीक्षित! जिस समय यशोदा ने श्रीहरि को सामने से आते हुए देखा, उस समय वह अपना जन्म सफल जानकर उनसे मिलने के लिए शीघ्रतापूर्वक दौड़ चलीं। यह देखकर श्रीहरि भी दौड़ते हुए उनके चरणों में जा गिरे। तब यशोदाजी ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया तथा आँखों के आँसू पोंछकर बहुत प्यार किया। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दर नन्दरायजी के चरणों पर गिर पड़े। यह देखकर उन्होंने श्रीहरि को गोद में उठा लिया तथा बहुत आशीर्वाद दिया। फिर श्रीदामा आदि ग्वालों से भेंट करके जब वे गोपियों के पास पहुँचे, उस समय श्री राधिकाजी उन्हें देखते ही रो-रोकर व्याकुल हो उठीं। यह देखकर ललिता आदि सखियों ने जब धैर्य बँधाया, तब उन्होंने चैतन्य होकर घूँघट काढ़ लिया। इसके अनन्तर वसुदेवजी ने नन्दरायजी के गले मिलकर उनकी बहुत स्तुति की तथा सब लोगों की कुशल-क्षेम पूछा। नन्दरायजी के साथ जो गौएँ आई थीं, वे भी श्रीकृष्णजी को देख-कर उनके पास आ पहुँची, तब श्रीहरि उनकी पीठ पर हाथ फेर कर उन्हें प्यार करने लगे। जब श्री कृष्णजी, बलराम, वासुदेवजी आदि सब व्रज-वासियों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिल-भेंट चुके, तब राजा उग्रसेन सब लोगों को डेरे के भीतर ले गये। वहाँ देवकी तथा रोहिणी ने यशोदाजी से भेंट करके उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—"हे नन्दरानी ! यदि हम आपकी जन्म भर सेवा करें तो भी कभी उऋण नहीं हो सकती हैं। यदि आपकी कृपा से श्याम-बलराम के प्राण न बचे होते, तो न तो कंस की ही मृत्यु होती और न हम लोगों का दुःख ही छूटता।" यह सुनकर यशोदाजी ने उत्तर दिया—"हे बहिन ! इन दोनों पुत्रों ने अपने बालचरित दिखाकर मुझे जो आनन्द दिया, वैसा आनन्द किसी को स्वप्न में भी नहीं मिल सकता है। इनके वियोग में मैंने जितना दुःख उठाया, वह मैं तुमसे कहाँ तक कहूँ, परन्तु आज तुम्हारी कृपा से इन्हें फिर अपनी आँखों के सम्मुख देखकर आनन्दित हुई हूँ।" इस प्रकार देवकी, रोहिणी तथा यशोदाजी में जब बातें हो चुकीं, तब राधा आदि गोपियों ने देवकी के चरणों में अपना मस्तक रखकर प्रणाम किया। वे सब गोपियाँ श्रीहरि की रुक्मिणी आदि सभी पटरानियों से अधिक सुन्दर थीं। जिस समय देवकी ने राधारानी के स्वरूप को देखा, उस समय आश्चर्य-चकित होकर मन में यह विचार किया कि ऐसी परम सुन्दरी को मेरे पुत्र ने किस प्रकार त्यागा होगा ? अस्तु, जब रुक्मिणी आदि पटरानियों ने श्री राधिकाजी का स्वरूप देखा तो उन्हें अपनी सुन्दरता का अभिमान भूल गया। उस समय रुक्मिणी आदि ने श्री कृष्णचन्द्रजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! यदि हम आपकी आज्ञा पावें तो राधारानी को अपने स्थान पर ले जाकर इनका स्वागत-सत्कार करें। यह सुनकर जब श्री श्यामजी ने आज्ञा दे दी, तब रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ राधारानी को अपने स्थान पर ले गईं। वहाँ उनका बहुत स्वागत-सत्कार करके छत्तीस प्रकार के भोजन कराये तथा विविध प्रकार के वस्त्राभूषण पहिनाये। उस समय रुक्मिणी ने सब रानियों को सुनाकर यह कहा कि तीनों लोकों में श्री राधारानी के समान भाग्यशालिनी और कोई नहीं है, जिसने श्रीहरि को इस प्रकार अपने वश में कर लिया हो। इधर तो राधारानी का स्वागत-सत्कार हो रहा था, उधर श्रीहरि ने सभी व्रजवासियों का स्वागत-सत्कार करके उन्हें छत्तीसों प्रकार के व्यञ्जन खिलाये। उस समय के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! जब सब लोग भोजन आदि से निवृत्त हुए, उस समय श्री श्यामसुन्दर ने नन्दजी से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार कहा—"हे बाबा ! मेरी भक्ति करनेवाले मनुष्य भवसागर से पार उतर जाते हैं। आप लोगों ने तो अपना तन, मन, धन सर्वस्व ही मेरे ऊपर न्यौछावर करके मुझसे प्रेम किया है। अतः आपके समान भाग्यशाली अन्य कोई नहीं है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मेरा दर्शन पाने के लिए लालायित रहते हैं, वहाँ मैं हर समय आपके हृदय में बसा रहता हूँ। इस प्रकार नन्द-यशोदा को समझाकर जब वे गोपियों के पास गये, उस समय एक गोपी ने इस प्रकार कहा—"हे बाँकेविहारी ! भला यह तो बताओ कि तुम्हें कभी हमारी भी याद आती है अथवा नहीं? तुम्हारे वियोग में हमारा एक-एक पल युग के समान बीतता है। जैसी कठोरता तुमने धारण की, वैसी किसी ने भी न की होगी। तुम्हारे जैसा निर्मोही संसार में और कोई न होगा। अब तुम्हें वे दिन याद नहीं रहे, जब तुम हमारे दधि-माखन को चुराकर खाया करते थे तथा रास-लीला करके सुख देते थे। अब तो तुम सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों को पाकर हमारी याद बिलकुल ही भुला बैठे हो।" ऐसे प्रेमभरे वचन सुनकर श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया—"हे गोपियो ! तुम्हारे साथ रहकर मैंने जो आनन्द प्राप्त किया, वह तीनों लोकों में कहीं नहीं मिल सकता। यदि अन्तर्दृष्टि से देखो तो मैं तुमसे एक क्षण को भी अलग नहीं रहता। यहाँ भी ग्रहण के बहाने केवल तुम्हीं लोगों से भेंट करने आया हूँ।" तब एक अन्य गोपी ने कहा—"हे प्रभो ! जिस समय उद्धव ने वृन्दावन आकर हमें ज्ञान का उपदेश किया था, उस समय वह अच्छा मालूम नहीं हुआ था, परन्तु अब उस ज्ञान के गुण को हमने पहिचाना है। केवल तुम्हारा ही ध्यान धरते रहने के कारण अब हम तुम्हें अपने से पृथक् नहीं समझतीं। तुम कृपा करके हमें यही वरदान दो कि हमारे हृदय में सदैव आपकी ही प्रीति एवं भक्ति बनी रहे।" यह सुनकर श्री मुरलीमनोहर उन्हें इच्छित वरदान देकर श्री राधारानी के पास जा पहुँचे।

हे परीक्षित ! उस समय रुक्मिणी आदि रानियाँ अपने मन में यह विचार कर रही थीं कि श्रीहरि से जितनी प्रीति हम रखती हैं, उतनी गोपियाँ नहीं रखतीं। अतः अन्तर्यामी श्री मुरलीमनोहर, उनके अभिमान को दूर करने के लिए, उन्हें गोपियों के पास ले आये, फिर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्यारियो ! तुममें से जो कोई मुझसे अधिक प्रीति करती होगी, उसके हृदय पर मेरे निवास करने का चिन्ह बना होगा; अतः तुम इसकी परीक्षा कर लो।" यह सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्रजबालाओं तथा रुक्मिणी आदि ने जब अपने-अपने अंचल को उघाड़कर देखा तो गोपियों के हृदयस्थल पर श्रीहरि की मूर्त्ति दिखाई दी, परंतु रुक्मिणी आदि के वक्षःस्थल पर वैसा कोई चिन्ह नहीं था। यह देखकर रुक्मिणी आदि रानियाँ अत्यन्त लज्जित होकर मन में यह सोचने लगीं कि इन गोपियों को श्री मुरलीमाधव से जितनी प्रीति है, उतनी हमें होना अत्यन्त दुर्लभ है।

हे परीक्षित! जब श्री कृष्णजी व्रजवासियों से भेंट करने के उपरान्त, शिष्टाचार के हेतु, कुरुक्षेत्र में आये हुए अन्य राजाओं के डेरे पर गये, तो सभी ने साष्टाङ्ग दण्डवत् करके अत्यन्त सम्मान किया। तदुपरान्त अनेक वस्तुएँ भेंट करके हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे त्रिलोकीनाथ! हम लोगों के हृदय में आपके दर्शनों की अभिलाषा सदैव बनी रहती थी, सो आज आपको देखकर हम अपने भाग्य को परम धन्य समझते हैं। हे प्रभो! जिस प्रकार आपने हमें अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया, उसी प्रकार अब कृपा करके यह वरदान भी दीजिए कि हमारे हृदय में आपके श्री-चरणों की भक्ति सदैव बनी रहे।" यह सुनकर श्रीहरि सबको इच्छित वरदान देकर अपने स्थान पर लौट आये।"

तिरासीवाँ अध्याय

द्रौपदी तथा रुक्मिणी आदि का वार्तालाप

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! द्रौपदी तथा रुक्मिणी ने परस्पर जिस प्रकार बातें की, अब वह कथा सुनो। एक दिन कौरव-पाण्डवों की स्त्रियाँ तथा श्री कृष्णचन्द्रजी की रानियाँ एकत्र बैठी हुई वार्तालाप कर रही थीं। उस समय सब अपने-अपने विवाह की चर्चा करने लगीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा आदि सब स्त्रियाँ जब अपने-अपने विवाह का वर्णन कर चुकीं, तब द्रौपदी ने अपने विवाह की चर्चा करते हुए यह कहा—"हे प्यारियो! मेरे पिता ने स्वयंवर रचाकर यह प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति तेल की कड़ाही में परछाईं देखकर मत्स्य को वेध देगा, मैं उसी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा। अस्तु, जब स्वयंवर के समय बहुत से राजा आये तथा दुर्योधन, जरासन्ध आदि सभी पराजित होकर लज्जित हुए, उस समय श्री अर्जुन ने उस प्रण को पूरा किया। तब मैंने उनके गले में वर-माला डाल दी। यह देखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्य राजा तो प्रसन्न हुए, परन्तु दुर्योधन आदि अधर्मी राजाओं ने पाँचों पाण्डवों से युद्ध किया, सो वे सब भी हारकर भाग गये। तदुपरान्त जब अर्जुन मुझे लेकर घर पहुँचे, उस समय उन्होंने अपनी माता से दूर ही से यह कहा—"हे माता! हम तुम्हारे लिए एक वस्तु लाये हैं।" उस समय कोई खाने की वस्तु समझकर माता कुन्ती ने यह उत्तर दिया कि तुम पाँचों भाई उसे आपस में बाँट लो। यह सुनकर पाँचों भाइयों ने मुझसे विवाह किया। तब से वे पाँचों मेरे पति हैं।"

हे परीक्षित! द्रौपदी के मुख से यह बात सुनकर रुक्मिणी आदि उनकी प्रशंसा करने लगीं। अस्तु, एक दिन श्री कृष्णजी की सभा में युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा यदुवंशी आदि अन्य राजा बैठे हुए थे; उसी समय श्रीहरि के दर्शन के लिए वहाँ नारद, वेदव्यास, विश्वामित्र, देवल, च्यवन, भरद्वाज, गौतम, शतानन्द, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, अगस्त्य, वामदेव, मार्कण्डेय, परशुराम तथा पाराशर आदि अनेक ऋषि-मुनि आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्री मुरलीमनोहर ने सब राजाओं-सहित उठकर दण्डवत् किया तथा सबको श्रेष्ठ आसनों पर बैठाकर यथाविधि पूजन कर चरण धोकर चरणामृत लिया। तदुपरान्त बहुत प्रकार से स्तुति की।"

चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवजी का यज्ञ करना

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! अब हम तुमसे वसुदेवजी के यज्ञ करने की कथा कहते हैं, सुनो। जब श्री मुरलीमनोहर ऋषि-मुनियों की पूजा-स्तुति आदि कर चुके, तब उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी लोगों से इस प्रकार कहा—"कि हमारे भाग्य धन्य हैं, जो आज इतने महात्माओं ने यहाँ स्वयं पधारकर हमें अपने दर्शनों से कृतार्थ किया है। सन्तों के दर्शन, तीर्थ-स्थान तथा देवदर्शनों से भी अधिक उत्तम हैं। सन्तों को साक्षात् परमेश्वर का स्वरूप समझना चाहिए। जो लोग ऋषि-मुनियों की पूजा नहीं करते वे कभी मुक्त नहीं होते तथा संसार में सुख प्राप्त नहीं करते हैं।" श्रीहरि के ऐसे वचन सुनकर नारदजी ने हाथ जोड़कर कहा—"हे त्रिभुवनपति! आप जितनी प्रशंसा कर रहे हैं, उसके योग्य हम नहीं हैं। आपने संसारी जीवों को उपदेश करने के लिए ही हमारी इतनी महिमा प्रतिष्ठापित की है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारा कल्याण तो इसी में है कि हम हर समय आपका ही ध्यान धरते रहें। हे महाप्रभु ! आपके भेद को कोई नहीं पा सकता। आप हरि-भक्तों को सुख देने तथा अधर्मियों को मारकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही बार-म्बार अवतार लेते हैं। यों, आप जन्म-मरण आदि से सर्वथा रहित हैं। हे जगदीश्वर ! हम तो आपकी यही कृपा चाहते हैं कि हमारे हृदय में आठों प्रहर आपके श्रीचरणों का ध्यान बना रहे तथा आपके लीला-चरित्रों को सुनने में हमारी प्रीति निरन्तर बढ़ती रहे।"

हे परीक्षित ! इस प्रकार स्तुति करके जब वे ऋषि-मुनि अपने आश्रम को लौटने के लिए तैयार हुए, उस समय वसुदेवजी ने खड़े होकर, उनसे इस प्रकार कहा—"हे महर्षियो ! आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें, जिससे मैं भवसागर से पार उतर जाऊँ।" उस समय वसुदेवजी की बात सुनकर नारदजी को हँसी आ गई। वे ऋषियों से बोले—"हे महा-त्माओ ! देखो, श्रीहरि की माया कैसी प्रबल है कि उसने वसुदेवजी को भी अपने वश में कर रक्खा है। तभी तो ये साक्षात् परब्रह्म को अपना पुत्र जानकर हम लोगों से मुक्ति का मार्ग पूछ रहे हैं।" ऋषियों से इतना कह-कर नारदजी ने वसुदेवजी से कहा—"हे वसुदेवजी ! अभी तुम्हारे सामने सब ऋषि-मुनियों ने श्री कृष्णचन्द्रजी की स्तुति की, क्या इतने पर भी तुम इन्हें नहीं पहचान सके ? हाँ, इसमें आश्चर्य की भी कोई बात इसलिए नहीं है कि बड़े-बड़े देवता भी इनकी माया के भेद को नहीं जान पाते हैं, फिर संसारी मनुष्यों अथवा तुम्हारी ही क्या गिनती है। अच्छा, मैं वेद के अनुसार तुम्हें एक उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम कुरुक्षेत्र में विधिपूर्वक यज्ञ करके उसका फल श्री कृष्णजी को अर्पण कर दो, इससे तुम्हारा अज्ञान दूर हो जायगा तथा तुम मुक्ति को प्राप्त कर सकोगे।"

यह सुनकर वसुदेवजी हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे प्रभो ! जब आपने उपाय बताया है तो इतनी कृपा और कीजिए कि आप सब यहीं ठहरकर मेरा यज्ञ पूर्ण करा दें।" यह सुनकर जब सब ऋषियों ने स्वीकृति दे दी, तब नारदजी ने कहा—"हे वसुदेवजी ! तुम 'सोमयज्ञ' की तैयारी करो। हम उसे पूर्ण करा देंगे।

हे परीक्षित ! नारदजी के आज्ञानुसार वसुदेव ने यज्ञ की सब तैयारियाँ कीं तथा शुभ मुहूर्त में यज्ञ आरम्भ हुआ। वहाँ जितने राजा तथा यदुवंशी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि आये हुए थे, उन सबों ने अपनी-अपनी स्त्रियों सहित यज्ञ की टहल की। जब नारद आदि ऋषियों को वरण करके, वसुदेव ने आहुति डालना आरम्भ किया, उस समय सब देवता प्रत्यक्षरूप धरकर अपना-अपना भाग लेने लगे। उर्वशी आदि अप्सराएँ वहाँ नृत्य करने के लिए आ पहुँचीं, गन्धर्वों ने गीत गाये तथा देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। उस समय वहाँ जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! जब यज्ञ सम्पूर्ण हुआ तो वसुदेवजी ने ब्राह्मणों तथा याचकों को बहुत दान दिया तथा यज्ञ करानेवाले ऋषियों का पीताम्बर, स्वर्ण, गौ, रत्न आदि वस्तुएँ भेंट कीं। सब ऋषि-मुनि, ब्राह्मण, याचक आदि उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। तदुपरान्त श्री मुरलीमनोहर ने कौरवों, पाण्डवों तथा अन्य राजाओं को भी वस्त्राभूषण आदि देकर सम्मान-सहित बिदा किया। उस समय वसुदेव ने आँखों में आँसू भरकर नन्दरायजी से इस प्रकार कहा—"हे नन्दजी! आपने श्याम-बलराम का पालन करके मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उससे मैं जन्म-जन्मान्तरों तक उऋण नहीं हो सकता। मेरी इच्छा है कि यदि आप सब पुरवासियों सहित कुछ समय तक यहीं रहें, तो मैं आपकी सेवा करके अपने मन को कुछ शान्ति दूँ।" यह सुनकर नन्दजी प्रसन्न होकर सब व्रजवासियों सहित चार महीने तक वहीं बने रहे। वसुदेवजी ने उनका प्रतिदिन अधिकाधिक स्वागत-सत्कार किया तथा श्री श्याम-बलराम ने प्रेमपूर्वक सेवा की। इस प्रकार चार महीने तक कुरुक्षेत्र में रहने के बाद जब राजा उग्रसेन ने द्वारकापुरी जाने की तैयारी की, उस समय श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी आँखों में आँसू भरकर नन्द-यशोदा से इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता! यद्यपि आपसे एक क्षण भी अलग रहने को जी नहीं चाहता, परन्तु लाचार होकर यह प्रार्थना करता हूँ कि अब आप भी वृन्दावन पहुँचकर गायों की सुधि लीजिए।" यह सुनकर नन्द-यशोदा व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े तथा गोपी-ग्वाल व्याकुल होकर इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्दलाल! हम तुम्हें छोड़कर वृन्दावन नहीं जायँगे। तुम हमें भी अपने साथ द्वारका ले चलो।" उस समय यशोदाजी ने रोते हुए देवकीजी से इस प्रकार कहा—"हे बहिन! तुम मुझे कन्हैया को दूध पिलानेवाली समझकर अपने साथ द्वारका ले चलो। मैं तुमसे भोजन वस्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लूँगी।" अस्तु, जब राधारानी ने यह समाचार सुना, तो अत्यन्त विलाप करके श्री मुरलीमनोहर से इस प्रकार बोलीं–"हे प्राणप्यारे ! एक बार तुम मुझे वृन्दावन छोड़कर चले आये, अब फिर वही दुःख देकर मेरे प्राण क्यों लेना चाहते हो? अब मैं तुम्हारे चरण-कमलों को किसी प्रकार नहीं छोड़ूँगी।" इस प्रकार श्री बाँकेविहारी ने जब सब लोगों को अत्यन्त व्याकुल देखा तब उन्होंने अपनी माया फैलाकर उनका मन ऐसा कर दिया कि वे वृन्दावन जाने को तैयार हो गये। तब श्रीहरि ने सब छोटे-बड़ों को वस्त्राभूषण, रत्न आदि देकर बिदा कया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा–"हे राजन् ! बिदा होते समय नन्द-यशोदा तथा राधा आदि गोपी-ग्वालों ने जैसा विलाप किया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तदनन्तर श्री मुरलीमनोहर भी सब लोगों को साथ लेकर द्वारकापुरी में जा पहुँचे, उस समय सब लोगों ने बड़ा आनन्द मनाया।"

पचासिवाँ अध्याय

वसुदेवजी द्वारा श्री कृष्णचन्द्र की स्तुति

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! अब हम वह कथा कहते हैं, जिस प्रकार श्री श्यामसुन्दर तथा बलरामजी अपने मरे हुए भाइयों को ले आये थे, सुनो। एक दिन प्रातःकाल दोनों भाई अपने माता-पिता को दण्डवत् करने गये और जब उन्होंने वसुदेवजी के चरणों पर अपना मस्तक रखना चाहा, तब उस समय वसुदेवजी ने स्वयं अपना मस्तक श्रीहरि के चरणों में डाल दिया। यह देखकर श्री कृष्णजी ने कहा–"हे पिता ! आप मुझे दोष क्यों लगाते हैं ?" तब वसुदेवजी हाथ जोड़कर बोले–"हे कृष्णचन्द्र ! तुम परब्रह्म के अवतार हो। मैं अब तक तुम्हारी महिमा नहीं जान सका था। परन्तु कुरुक्षेत्र में ऋषियों के कहने पर मुझे विश्वास हुआ कि तुम्हीं तीनों लोक के स्वामी हो तथा सब जीवों में तुम्हारा ही प्रकाश भरा हुआ है। तुम जन्म-मरण से रहित हो तथा अपनी इच्छा से अवतार लेते हो। तुम्हारी ही तेज से सूर्य तथा चन्द्रमा प्रकाशित हैं। संसार में जितने भी जड़-चैतन्य जीव दिखाई देते हैं, उन सबको ब्रह्मा ने तुम्हारी ही इच्छा से उत्पन्न किया है। तुम्हारी माया ऐसी बलवान है कि उसने सम्पूर्ण संसार को मोहित कर रक्खा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। तुम्हारी शरण में आये बिना किसी जीव का कल्याण नहीं होता। जिस प्रकार बाजा बजानेवाला बाजे में से मनचाही रागिनी निकालता है, उसी प्रकार तुम भी सब जीवों की बुद्धि को अपने अधीन रखकर उनसे मनचाहा कार्य कराते रहते हो। मैं आज तक अपने अज्ञान के कारण तुम्हें अपना पुत्र मानता रहा, परन्तु अब यह समझ गया हूँ कि तुम पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लेते हो। तुम्हारा माता-पिता कोई नहीं है। अब तुम मुझे ऐसा ज्ञान दो, जिससे मैं तुम्हें पुत्र न जानकर, परमेश्वर मानकर भजूँ।" इस प्रकार वसुदेवजी ने जब बहुत स्तुति की तो श्री बाँकेविहारी ने हँसकर कहा—"हे पिता! तुम्हें जो बात जान लेनी चाहिए थी, वह जान ली। अब तुम सब जीवों में मेरा ही प्रकाश समझो तब तुम्हें मेरी माया नहीं व्यापेगी।" यह सुनकर श्री वसुदेवजी को ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे वे श्री श्याम-बलराम को ईश्वर-भाव से जानने लगे।

हे परीक्षित! तत्पश्चात् एक दिन श्रीहरि ने देवकी से कहा—"हे माता! हमारे ऊपर तुम्हारा बहुत ऋण है, सो यदि तुम हमसे कुछ माँगो, तो हम तुम्हें दें।" यह सुनकर देवकी ने कहा—"हे पुत्र! तुम श्री नारायणजी के अवतार हो, अतः मैं तुमसे यही माँगती हूँ कि जिस प्रकार तुमने अपने गुरु का मरा हुआ पुत्र जीवित कर दिया था उसी प्रकार मेरे उन छहों पुत्रों को, जिन्हें अधर्मी कंस ने मार डाला था, ला दो, तो मेरी मनोभिलाषा पूर्ण हो जायगी।" यह सुनकर दोनों भाई 'बहुत अच्छा' कहकर सुतल लोक में जा पहुँचे। उन्हें देखते ही राजा बलि ने साष्टांग प्रणाम किया तथा अपने घर ले जाकर रत्न-जटित सिंहासन पर बैठाया। तदुपरान्त विधिवत् पूजा-स्तुति करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! जिस भाँति आपने यहाँ पधारकर मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब मुझे अपना दास समझकर यहाँ पधारने का कारण बताइये।" यह सुनकर श्री श्यामजी बोले—"हे बलि! एक समय मरीचि ऋषि के छह पुत्रों ने अपनी युवावस्था के अभिमान में भरकर ब्रह्माजी की हँसी की थी, उस समय ब्रह्माजी ने क्रुद्ध होकर उन्हें दैत्य-योनि में जन्म लेने का शाप दिया था। उस शाप के कारण पहिले तो वे हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु के घर में उत्पन्न हुए। फिर उन्होंने हमारी माता देवकी के गर्भ में जन्म लिया। वहाँ उन्हें कंस ने मार डाला। अब वे तुम्हारे घर आकर उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए हैं, सो हम अपनी माता के आज्ञानुसार उन्हें लेने के लिए आये हैं।" यह सुनकर राजा बलि ने उन छहों बालकों को लाकर श्रीहरि के सम्मुख उपस्थित कर दिया। तब दोनों भाई उन्हें साथ लेकर द्वारका लौट आये। जब देवकी ने उन्हें देखा तो बार-बार कण्ठ से लगाकर दूध पिलाने लगीं। उस समय वसुदेव-देवकी को यह पूर्ण विश्वास हुआ कि वास्तव में दोनों भाई श्री नारायणजी के अवतार हैं। अस्तु, श्रीहरि के आज्ञानुसार जब उन बालकों को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब वे अपने पूर्वजन्म के माता-पिता तथा श्याम-बलराम को दण्डवत् कर देवलोक को चले गये। उस समय श्रीहरि ने देवकी तथा वसुदेव को समझाकर धैर्य बँधा दिया।"

छियासीवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! श्री कृष्णचन्द्रजी की बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ जिस प्रकार हुआ था, अब वह कथा सुनो। कुन्ती के आज्ञानुसार जब द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी हुई, तब एक दिन नारदजी ने युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों के पास जाकर यह कहा—"हे युधिष्ठिर! स्त्री तथा धन के लिए पिता-पुत्र तथा भाई-भाई में भी झगड़ा होता आया है, अतः मैं तुम्हें एक उपाय बताये देता हूँ जिसके करने से द्रौपदी को लेकर तुम पाँचों भाइयों में कभी झगड़ा न होगा।" युधिष्ठिर ने पूछा—"हे मुने! वह उपाय क्या है?" तब नारदजी बोले—"हे युधिष्ठिर! सुनो, एक वर्ष में तीन सौ साठ दिन होते हैं, अतः तुम एक-एक भाई बहत्तर-बहत्तर दिन तक द्रौपदी को अपने पास रक्खा करो। यदि कभी एक भाई की पारी में दूसरा भाई द्रौपदी के महल में जा पहुँचे, तो उसे बारह वर्षों तक वनवास करने का दण्ड रखना चाहिए।" नारदजी का यह सुझाव सबने स्वीकार कर लिया। तब द्रौपदी एक भाई के पास बहत्तर दिन तक रहने लगी। एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि आधीरात के समय द्रौपदी राजा युधिष्ठिर के भवन में थी। उस दिन अर्जुन का धनुष बाण भी उसी स्थान पर रक्खा हुआ था। अस्तु, उसी समय एक ब्राह्मण ने अर्जुन के पास पहुँच कर यह कहा कि मेरी गौ को एक चोर लिये जा रहा है, उसे आप कृपाकर छुड़ा दीजिए। यह सुनकर अर्जुन ने अपने मन में विचार किया कि यदि मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस समय राजा युधिष्ठिर के भवन में धनुष-बाण लेने जाता हूँ तो मुझे बारह वर्षों तक वन में रहना पड़ेगा और नहीं जाता हूँ तो ब्राह्मण की गौ न छुड़ाने के कारण क्षत्रिय-धर्म नष्ट होगा, अतः उचित यही है कि चाहे वनवास भले ही करना पड़े, परन्तु धर्म की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा विचार कर अर्जुन युधिष्ठिर के भवन में चले गये तथा वहाँ से धनुष-बाण लाकर ब्राह्मण की गौ को छुड़ा लाये। इस प्रतिज्ञा-भंग करने के दोष के कारण दूसरे दिन प्रातःकाल वे सन्यासी का वेष धारणकर वन को चल दिए। कुछ दिनों बाद जब वे तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका पहुँचे, तो उन्होंने यह सुना कि श्री कृष्णचन्द्रजी की बहिन 'सुभद्रा' विवाह योग्य हो गई है। उस समय अर्जुन ने अपने मन में यह विचार किया कि श्री श्यामसुन्दर सुभद्रा का विवाह मेरे साथ करना चाहते हैं, परन्तु बलरामजी उसे दुर्योधन को देना चहते हैं, अतः यदि मैं उसे पा सकूँ, तो अधिक अच्छा रहे। यह विचारकर अर्जुन ने अपने को संन्यासी वेश में छिपाकर राजमन्दिर के निकट ही अपना आसन लगा दिया। उस समय द्वारकावासी उसे महापुरुष जानकर नित्यप्रति भोजन देने लगे। एक दिन बलरामजी ने उसे भोजन करने के लिए राजमन्दिर में बुलाया, उस समय जब सुभद्राने अर्जुन के सुन्दर स्वरूप को देखा तो अपने मन में उसे पति बनाने की अभिलाषा करके देवी-देवता मनाने लगी। अर्जुन भी सुभद्रा को देखकर पूर्णतः मोहित हो गया। अन्तर्यामी श्री श्यामसुन्दर ने जब दोनों के मन का भाव जाना तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई; परन्तु उन्होंने बलरामजी पर यह बात प्रकट नहीं होने दी। फिर एक दिन वे कथा सुनने के बहाने अर्जुन के पास जा पहुँचे। उस समय अर्जुन ने उन्हें आदर-भाव से अपने समीप बैठाकर यह कहा—"हे प्रभो! मेरी इच्छा सुभद्रा से विवाह करने की है, अतः जिस प्रकार आप मेरी अन्य इच्छाएँ पूर्ण करते आये हैं, उसी प्रकार इसे भी पूर्ण कर दीजिए।" यह सुनकर श्री मुरली-मनोहर ने उत्तर दिया—"हे अर्जुन! कुछ दिनों तक तुम यहीं रहो। शिव-रात्रि के दिन द्वारकावासी रेवत पर्वत पर शिव की पूजा करने जायँगे। सुभद्रा भी उनके साथ होगी। उस समय तुम भी मेरे रथ पर बैठकर वहाँ पहुँच जाना। फिर ज्यों ही अवसर मिले, त्यों ही सुभद्रा को उठाकर रथ में बैठा लेना तथा रथ को हस्तिनापुर दौड़ा ले जाना। यदि उस समय कोई सामना करने आये तो तुम उससे निर्भयतापूर्वक युद्ध करना। मेरा कोई भय न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानना।" यह सुनकर अर्जुन आनन्द-सहित वहीं ठहरा रहा। शिवरात्रि के दिन सुभद्रा-सहित जब सब द्वारकावासी रेवत पर्वत पर गये तो संन्यासी वेशधारी अर्जुन भी श्री श्यामसुन्दर के रथ में बैठकर वहाँ जा पहुँचा। वहाँ जब सुभद्रा पूजा करके सखियों-सहित लौट रही थी, उसी समय वह उसे जबर्दस्ती अपने रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर को चल दिया। जब बलरामजी ने यह समाचार सुना तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हो, यदुवंशियों को साथ ले अर्जुन का पीछा करने को तैयार हुए। उस समय श्री मुरलीमनोहर ने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे भाई! अर्जुन हमारी बुआ का लड़का, मित्र तथा कुलीन है, उसके समान तेजस्वी तथा बली यदुवंशियों में कोई नहीं है। यद्यपि उसने अनुचित कार्य किया है, फिर भी हमें उसके साथ युद्ध करना उचित नहीं है। सुभद्रा का विवाह तो करना ही था, अब वह यदि अर्जुन के साथ होता है, तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या होंगी? अब हमें यह चाहिए कि दहेज की सामग्री हस्तिनापुर को भेज दें। आप भी अपना क्रोध शान्त कर डालिये।" यह सुनकर बलरामजी हल-मूशल पटक, झुँझलाते हुए इस प्रकार कहने लगे कि जब मुरलीमनोहर ही यह चाहते हैं, तो फिर हम क्या करें? इन्होंने अर्जुन को पहिले से समझा दिया होगा, अन्यथा उसकी क्या सामर्थ्य थी, जो वह सुभद्रा को हरकर ले जाता? इतना कहकर बलरामजी ने बहुत-सा द्रव्य, वस्त्र, आभूषण, रत्न, दास-दासी आदि दहेजस्वरूप हस्तिनापुर को भिजवा दिये। तब वहाँ अर्जुन ने विधिपूर्वक सुभद्रा के साथ अपना विवाह कर लिया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! अब तुम श्री हरि की महिमा का दूसरा वृत्तान्त सुनो। मिथिलापुरी में हरिभक्त 'बहुलाश्व' नामक राजा राज्य करता था। उसके नगर में 'श्रुतिदेव' नामक एक ईश्वर-भक्त ब्राह्मण रहता था। वह बिना माँगे जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपने जीवन का निर्वाह करता तथा दिन-रात यही इच्छा रखता था कि श्रीहरि यदि यहीं पधारकर मुझे अपना दर्शन दें, तो बहुत अच्छा रहे। उस ब्राह्मण तथा राजा की भक्ति-भावना देखकर अन्तर्यामी श्री कृष्णचन्द्रजी नारद, वेदव्यास, वशिष्ठ, अगस्त्य, परशुराम, अत्रि, वामदेव, देवल आदि ऋषियों को साथ ले, उन्हें दर्शन देने के लिए मिथिलापुरी को चले। मार्ग में जो भी देश पड़ते थे, वहाँ के राजा आगे आकर उनका सम्मान कर, भेंट देते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा दर्शन पाकर अपना जन्म सफल बनाते थे। अस्तु, जब राजा बहुलाश्व तथा श्रुतिदेव ब्राह्मण ने श्री मुरलीमनोहर के आगमन का समाचार सुना, वैसे ही उन दोनों ने आगे पहुँचकर उन्हें दण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो! जिस प्रकार आपने दया करके हमें अपने दर्शनों से कृतार्थ किया, उसी प्रकार अब हमारे घर चलकर उसे पवित्र कर दीजिए।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने विचार किया कि यह राजा तथा ब्राह्मण दोनों ही मेरे परम भक्त हैं तथा मैं दोनों के प्रेम के कारण यहाँ आया हूँ। अब यदि मैं किसी एक के घर पहिले जाता हूँ तो दूसरा बुरा मानेगा कि पहिले मेरे यहाँ क्यों नहीं गये। यह विचारकर श्रीहरि ने रथ, सारथी तथा ऋषियोंसहित अपने दो स्वरूप बना लिये तथा दोनों के स्थान पर एक साथ जा पहुँचे। इस भेद को दोनों में से कोई नहीं जान सका। अस्तु, जब श्रीहरि राजा के घर गये तो उसने पाद्य-अर्घ्य आदि से उनका तथा ऋषियों का विधिवत् पूजन किया, तदुपरान्त हाथ जोड़कर स्तुति-प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो! मेरी यह अभिलाषा है कि आप कुछ समय तक यहीं निवास करके मेरे हृदय को आनन्दित करें।" यह सुनकर श्री त्रिलोकीनाथ राजा को अपना भक्त जानकर इक्कीस दिन तक उसके घर रहे तथा ब्रह्मज्ञान का उपदेश करके उसे कृतार्थ किया। इसी प्रकार जब वे श्रुतिदेव ब्राह्मण के यहाँ पहुँचे तो उसने भी यथाविधि पूजन आदि करके यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप कुछ समय तक यहीं निवास करें। अतः श्री वासुदेवजी इक्कीस दिन तक उसके घर भी रहे तथा उसे भी ज्ञानोपदेश किया। तदुपरान्त वे दोनों से बिदा होकर द्वारकापुरी को लौट आये। तब सब ऋषि भी अपने-अपने स्थान को चले गये।"

सत्तासीवाँ अध्याय

श्रीहरि-स्तुति

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे मुनिनाथ! आपने जो यह कहा था कि वेद ने श्री नारायणजी की स्तुति की थी, सो आप मुझे यह समझाइये कि वेद ने निर्गुण ब्रह्म की स्तुति किस प्रकार की?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! सुनो, जिस ईश्वर ने बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को बनाया है, वह सदैव निर्गुण स्वरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहता है, परन्तु जब वह सृष्टि की रचना करता है, उस समय सगुणरूप धारण करके शेषनाग की शैया पर शयन करता है। इस प्रकार निर्गुण तथा सगुण में कोई भेद नहीं है। हे राजन्! तुमने जो प्रश्न किया है, यही बात एक समय नारदजी ने श्री नरनारायण भगवान् से पूछी थी। वह कथा हम तुमसे कहते हैं, सुनो। एक समय नारदजी ने सत्यलोक में जाकर ऋषि-मुनियों के बीच बैठे हुए श्री नरनारायण भगवान् से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! वेद निर्गुण ब्रह्म की स्तुति किस प्रकार करते हैं, यह आप मुझे बताने की कृपा कीजिए।" यह सुनकर श्री नरनारायण भगवान् ने कहा—"हे नारद! जो बात तुम आज पूछ रहे हो, वही बात एक समय मर्त्यलोक में शौनकादिक ऋषियों ने सनकादि से पूछी थी। उस समय सनन्दन ने सबका समाधान किया था। तुम उस समय श्रीहरि के दर्शन करने के लिए श्वेतद्वीप गये हुए थे, अतः तुम उस वृत्तान्त को नहीं सुन पाये थे। अस्तु, हे नारद! सनन्दन ने शौनकादि ऋषियों से यह कहा था कि हे मुनियो! महाप्रलय होने पर जब चौदहों भुवन जलमय हो जाते हैं, उस समय पूर्णब्रह्म परमेश्वर शेषनाग की शय्या पर अकेले शयन करते रहते हैं। जब उन्हें सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा होती है, उस समय उनकी श्वास से वेद निकलकर श्रीहरि की स्तुति करने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार—जिस प्रकार कि कोई राजा शयन कर रहा हो और प्रातःकाल के समय बन्दीजन उसे इस आशय से जगावें कि वह चैतन्य होकर अपना कार्य आरम्भ करे।

हे नारद! श्री नारायणजी की श्वास से उत्पन्न होकर वेद स्तुति करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"हे महाप्रभु! अब आप चैतन्य होकर सृष्टि की रचना कीजिए तथा जीवों के हृदय से अपनी माया दूर कीजिए, जिससे वे आपके स्वरूप को पहिचान सकें। हे प्रभो! आपकी माया ने सभी जीवों को अज्ञानरूपी अन्धकार में भुला रक्खा है, यदि वे इससे मुक्ति प्राप्त कर सकें, तो आपके स्वरूप को भी पहिचान सकेंगे। आप सभी जीवों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश के कारण हैं। सब जीव आपसे ही उत्पन्न होकर आपमें ही इस प्रकर समा जाते हैं, जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तुएँ उत्पन्न होकर फिर उसी में मिल जाती हैं। किसी भी देवता की पूजा-स्तुति क्यों न की जाय, वह आपको ही प्राप्त होती है; क्योंकि सब देवता आपके ही स्वरूप हैं। हे प्रभो! आपकी माया अपरम्पार है। वह सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण को बनाकर, इन्हीं तीनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय करती है। आपकी माया का भेद अभी तक कोई नहीं पा सका है, अतः सब जीवों को यह उचित है कि वे सम्पूर्ण वासनाएँ त्यागकर केवल आपका ही ध्यान करें, तभी उनका कल्याण हो सकता है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर इन्द्रियों के वशीभूत रहता है तथा स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर आपकी भक्ति नहीं करता, वह चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करके महान् कष्ट उठाता है। परन्तु जिसके हृदय में आपकी भक्ति होती है, वह आपका प्राप्त कर, आपके ही स्वरूप का बन जाता है।" हे नारद! इस प्रकार सनन्दन मुनि ने प्राचीन कथा कहकर सबके मन का सन्देह दूर किया था। इस कथा को सुनकर शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषियों ने सनन्दन मुनि की अत्यन्त प्रशंसा की।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! इसी स्तुति का पाठ करते हुए वेद श्री नारायणजी को सृष्टि उत्पन्न करने के लिए जगाते हैं तथा सनकादिक आठों प्रहर इसी की चर्चा करते रहते हैं। यह कथा श्री नरनारायण ने नारदजी से कही थी तथा नारदजी ने हमारे पिता वेदव्यास को सुनाई थी; तदुपरान्त श्री व्यासजी ने यह कथा मुझे पढ़ाई। अब मैंने वही कथा तुम्हें सुनाई है। श्री मुरलीमनोहर ने राजा बहुलाश्व तथा श्रुतिदेव ब्राह्मण को भी इसी ज्ञान का उपदेश किया था।"

अट्ठासीवाँ अध्याय

भस्मासुर की कथा

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे प्रभो! संसार में यह बात बड़ी उल्टी दिखाई पड़ती है कि जो लोग हरि-भक्त होते हैं, उन्हें श्री नारायणजी अत्यन्त दरिद्र बना देते हैं। जिस प्रकार कि श्री शिवजी हरि-भक्त होने के कारण अपने गले में तो सर्पों एवं मुण्डों की माला पहिने रहते हैं और उनके सेवक धनवान् होकर अत्यन्त सुख उठाते हैं। इसका क्या कारण है, सो आप मुझे बताने की कृपा कीजिए।" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जो प्रश्न तुमने हमसे किया है, वही बात एक बार राजा युधिष्ठिर ने श्री श्यामसुन्दर से पूछी थी।" उसी समय श्री मुरलीमनोहर ने यह उत्तर दिया था—"हे युधिष्ठिर! धनरूपी लक्ष्मी के प्राप्त होने पर मनुष्य संसारी माया-मोह तथा इन्द्रियों के सुखों में ऐसा डूब जाता है कि वह मुझे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्मरण भी नहीं करता। इसलिए उसकी मुक्ति भी नहीं होती है। इसी कारण जो लोग मेरा ध्यान धरते हैं, उन्हें मैं संसारी मोह-माया से दूर रखने के लिए दरिद्र बना देता हूँ और इस प्रकार अपनी कृपा द्वारा उनका अभिमान नष्ट कर देता हूँ। निर्धन हो जाने पर जब सब लोग उसका निरादर कर उठते हैं, तब उसका हृदय साधु-महात्माओं के सत्संग में आनन्द-लाभ करने लगता है, तब उस सत्संग के कारण उन्हें मुक्ति-पद प्राप्त होता है।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! शंकर आदि देवता अपनी पूजा करने से प्रसन्न होते हैं तथा छोड़ देने पर बुरा मानते हैं, परन्तु श्री त्रिलोकीनाथजी सदैव सात्त्विकी स्वभाव अपनाये रहने के कारण किसी को शाप नहीं देते। देखो, शिवजी ने बहुत से राक्षसों को वरदान देकर स्वयं ही कष्ट उठाया। इस सम्बन्ध में बाणासुर की कथा तुम सुन ही चुके हो, अब 'भस्मासुर' नामक एक अन्य दैत्य का वृत्तान्त भी सुनो। हे परीक्षित! एक दिन 'शकुनि' नामक दैत्य का पुत्र 'वृकासुर' तपस्या करने की इच्छा लेकर घर से निकला। मार्ग में उसकी भेंट नारदजी से हो गई। तब उसने नारदजी को दण्डवत् करके यह कहा—"हे प्रभो! मैं तप करने की इच्छा लेकर घर से निकला हूँ, अतः आप कृपा करके यह बतलाइये कि मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीनों में से किस देवता का तप करूँ, जिससे मुझे शीघ्र वरदान प्राप्त हो?" यह सुनकर नारदजी ने उत्तर दिया—"हे वृकासुर! इन तीनों देवताओं में शिवजी शीघ्र वरदान दे देते हैं, परन्तु यदि थोड़ा-सा भी अपराध हो जाय तो फिर कभी क्षमा नहीं करते हैं। उन्होंने ही सहस्रार्जुन को एक सहस्र भुजाएँ दी थीं। अतः यदि तुम शीघ्र वरदान पाना चाहते हो तो शिवजी का तप करो।" इतना कहकर जब नारदजी चले गये तो वृकासुर बदरी-केदार में जाकर शिवजी का तप करने लगा। उसने तप करते समय हवन-कुण्ड में अपने शरीर का मांस काट-काटकर डालना आरम्भ किया। जब सात दिन में सब मांस हवन कर दिया तथा आठवें दिन अपना मस्तक काटने को हुआ, उस समय श्री शिवजी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया तथा अपने कमण्डल में से जल छिड़ककर, उसे दिव्य शरीर प्रदान किया। तदुपरान्त प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा—"हे वृकासुर! हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेरे तप से प्रसन्न हुए, अब तू हमसे कोई वरदान माँग ले।" यह सुनकर वृकासुर बोला—"हे प्रभो! आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि मैं जिसके मस्तक पर हाथ रख दूँ, वही भस्म हो जाय।" वृकासुर की बात सुनकर शिवजी ने उसे इच्छित वरदान दे दिया। जब वृकासुर वरदान प्राप्त कर चुका, तब उसने पार्वतीजी को परम सुन्दरी देखकर अपने मन में यह विचार किया कि सबसे पहिले मैं शिवजी के ही मस्तक पर हाथ रखकर, पार्वती को अपने घर ले जाऊँ। ऐसा सोचकर जब वह शिवजी के मस्तक पर हाथ रखने के लिए चला, तब शिवजी उसके मन की इच्छा जानकर वहाँ से भाग चले। उस समय जब ब्रह्मा आदि कोई भी देवता उनकी रक्षा न कर सके, तब वे भगवान् वैकुण्ठनाथ की शरण में जाकर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो! मैंने यह दुःख अपने आप पाया है। अब आप किसी प्रकार मेरी प्राण-रक्षा कीजिए।" यह सुनकर श्रीहरि ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे शिवजी! आप चिन्तित न हों, मैं अभी कोई उपाय करता हूँ।" इतना कहकर वे ब्राह्मण का रूप बना, मृगछाला हाथ में ले, भस्मासुर अर्थात् वृकासुर के सामने आ पहुँचे तथा उससे इस प्रकार पूछने लगे—"हे दैत्यराज! तुम घबराये हुए कहाँ भागे जा रहे हो?" यह सुनकर जब उस दैत्य ने अपने मन का हाल बताया, उस समय ब्राह्मणरूपी श्रीहरि ने उससे इस प्रकार कहा—"हे वृकासुर! तुम बड़े अज्ञानी हो जो शंकर जैसे नङ्ग-धड़ङ्ग, भाँग-धतूरा खानेवाले तथा मुण्डमालधारी की बात को सत्य मान बैठे हो। वे तो श्मशान पर बैठे हुए पागलों के समान नाचा-गाया करते हैं। भला वे किसी को वरदान या शाप क्या दे सकेंगे? जब से दक्ष प्रजापति ने उन्हें शाप दिया है, तब से उनमें कोई शक्ति शेष नहीं रही है। यदि तुम मेरी बात झूठ मानो तो पहिले अपने ही मस्तक पर हाथ रखकर विश्वास कर लो, फिर शंकर के पीछे दौड़ना।" हे परीक्षित! विप्र वेशधारी श्रीहरि के ऐसे वचन सुनकर, भस्मासुर ने उनकी माया में मोहित हो, वरदान की सच्चाई की परीक्षा करने के लिए अपने ही मस्तक पर हाथ रख लिया, जिसके कारण वह वहीं भस्म होकर मर गया। यह देखकर श्री शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगे तथा देवतागण पुष्प-वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं एवं गन्धर्व गीत गाने लगे। तदुपरान्त श्रीहरि ने शिवजी को समझा-बुझाकर बिदा किया और आप अपने स्थान को गये। इतनी कथा सुनाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! जो इस आख्यान को पढ़ेगा-सुनेगा, वह श्रीहरि की कृपा से सदैव आनन्द प्राप्त करेगा।"

नवासीवाँ अध्याय

भृगुऋषि का श्री नारायणजी के वक्षस्थल पर पद-प्रहार करने की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! एक समय भृगु आदि अनेक ऋषि सरस्वती नदी के तीर पर बैठे हुए परस्पर ज्ञान-चर्चा कर रहे थे। उस समय यह विषय छिड़ा कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीनों में कौन देवता बड़ा है ? किसी ने ब्रह्मा को बड़ा बताया, किसी ने विष्णु को और किसी ने शिव को, परन्तु सब एक मत न हो सके। उस समय वास्तविक निर्णय के लिए सब ऋषियों ने यह उपाय सोचा कि भृगुऋषि को भेजकर तीनों देवताओं की परीक्षा लेनी चाहिए कि इनमें कौन बड़ा है। अस्तु, तीनों देवताओं की परीक्षा लेने के हेतु भृगुऋषि सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सभा में जाकर बिना दण्डवत् किए बैठ गये। यह देखकर ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु उन्हें अपना पुत्र जानकर कुछ न बोले। इस प्रकार जब भृगुऋषि ने ब्रह्मा को रजोगुण-युक्त क्रोध से पूर्ण देखा तो वे वहाँ से उठकर कैलाश पर्वत पर शिवजी के पास जा पहुँचे। जब शिवजी ने उन्हें आते देखा तो वे उनसे मिलने के लिए अपनी भुजाएँ फैलाकर खड़े हो गये, परन्तु भृगुऋषि उन्हें यह कहकर दूर खड़े रहे कि तुम धर्म-कर्म त्यागकर श्मशान में बैठे रहते हो, अतः मुझे स्पर्श मत करो। यह सुनकर जब शिवजी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, अपना त्रिशूल उठाकर भृगुऋषि को मारना चाहा, उस समय पार्वतीजी ने उन्हें यह कहकर शान्त किया कि यह आपका छोटा भाई है, अतः इसका अपराध क्षमा कर दें। इस प्रकार शिवजी को तमोगुण-युक्त देखकर भृगुऋषि वहाँ से चलकर वैकुण्ठलोक में जा पहुँचे। जिस समय वे श्री नारायणजी के भवन में पहुँचे, उस समय श्रीहरि रत्नजटित शैय्या पर शयन कर रहे थे। उन्हें देखते ही भृगुऋषि ने उनके हृदय पर बायें पैर की लात का प्रहार किया। उस प्रहार के लगते ही श्रीहरि की नींद खुल गई। तब वे अपने कमल जैसे हाथों में भृगुमुनि का चरण पकड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके चरण कमल जैसे कोमल हैं तथा मेरी छाती वज्र के समान कठोर है, अतः कृपाकर यह बताइये कि आपको कहीं चोट तो नहीं लगी ? हे प्रभो ! यदि मुझे आपके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगमन का समाचार पहिले मिला होता तो मैं स्वयं ही आगे बढ़कर अगवानी करने के लिए जा पहुँचता। अस्तु, आपने मेरे हृदय पर जो लात मारी है उस चरण-चिह्न को मैं अपने हृदय पर सदैव धारण किए रहूँगा।"

हे परीक्षित! जिस समय भृगुऋषि ने श्री कमलापति के वक्षस्थल पर चरण-प्रहार किया था, उस समय लक्ष्मीजी ने क्रुद्ध होकर शाप देना चाहा था, परन्तु श्रीहरि के भय से कुछ कह न सकीं। अतः उस समय श्री नारायणजी को सतोगुण से युक्त देखकर भृगुऋषि अत्यन्त प्रसन्न होकर सरस्वती नदी के तट पर लौट आये तथा ऋषि-मुनियों को सब वृत्तान्त बताते हुए इस प्रकार बोले—"श्री नारायणजी से अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है।" यह सुनकर ऋषि-मुनियों ने अन्य देवताओं के निमित्त जप-तप करना छोड़ दिया तथा केवल श्रीहरि का ही स्मरण करने लगे।

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित! अब तुम श्रीहरि की महिमा का दूसरा आख्यान सुनो। एक समय द्वारकापुरी में किसी धर्मात्मा ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गई। तब वह उसके मृत-शरीर को लेकर राजा उग्रसेन के पास जाकर यह कहने लगा–"हे राजन्! जब राजा अधर्म करता है, तभी उसकी प्रजा कष्ट पाती है। अतः मेरे पुत्र की मृत्यु का कारण भी तुम्हीं हो। इस प्रकार अनेक दुर्वचन कहकर वह ब्राह्मण अपने पुत्र के शव को राजा उग्रसेन के ही द्वार पर रखकर चला आया। इस प्रकार उसके सात पुत्रों की मृत्यु और हुई, तो वह सभी को उसी प्रकार उग्रसेन के द्वार पर रखता चला गया। जब उसकी स्त्री को नवीं बार गर्भ रहा, तब उस ब्राह्मण ने राजा उग्रसेन की सभा में जाकर श्री कृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजी से इस प्रकार कहा–"हे दीनबन्धो! सर्वप्रथम तो राजा उग्रसेन को धिक्कार है जिसके पाप के कारण प्रजा को कष्ट मिलता है, दूसरे उन लोगों को धिक्कार है जो इस पापी राजा की सेवा में रहते हैं, तीसरे मुझे भी धिक्कार है जो मैं ऐसे पापी के देश में रहता हूँ, जिसके कारण मेरे पुत्र जीवित नहीं बचते।" इस प्रकार जब उस ब्राह्मण ने अनेक बातें कहीं, उस समय यदुवंशियों ने तो कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु अपनी धनुर्विद्या का गर्व रखनेवाले अर्जुन ने यह कहा कि राजा उग्रसेन इस ब्राह्मण का कष्ट दूर नहीं करते, यह बात वास्तव में बड़े लज्जा की है। जिस देश का राजा गौ-ब्राह्मणों का दुःख दूर नहीं करता, उसका यश तथा धर्म नष्ट हो जाता है। इतना कहकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्जुन ने ब्राह्मण से कहा–"हे देवता! अब समय ही ऐसा आ गया है कि राजा लोग स्वार्थी होकर प्रजा की चिन्ता भुला बैठे हैं। परन्तु तुम विश्वास रक्खो कि मैं तुम्हारा दुःख दूर करूँगा। जब बालक उत्पन्न होने का समय आवे तब तुम मुझे सूचना दे देना। मैं उस बालक की रक्षा करूँगा।" यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा–"हे अर्जुन! इस सभा में श्याम-बलराम तथा प्रद्युम्न जैसे शूर-वीर मेरे विषय में कुछ नहीं बोलते, तब तुम ऐसे अभिमानपूर्ण वचन क्यों कह रहे हो? भला तुम में क्या सामर्थ्य है, जो तुम मेरे बालक को बचा सको?" अर्जुन ने उत्तर दिया–"हे ब्राह्मण! मैं इन जैसा नहीं हूँ। मैं गाण्डीवधारी अर्जुन हूँ। मृत्यु में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो वह मेरे सम्मुख तुम्हारे बेटे का प्राण ले सके। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि तुम्हारे पुत्र को मृत्यु के हाथ से न बचा सका तो स्वयं भी अग्नि में प्रवेश करके प्राण दे दूँगा।" यह सुनकर ब्राह्मण अपने घर चला गया। तदुपरान्त जब बालक के जन्म का समय आया तो वह अर्जुन को अपने साथ घर बुला ले गया। उस समय अर्जुन ने उसका घर अपने बाणों से इस प्रकार ढँक दिया कि उसमें वायु का प्रवेश भी नहीं हो सकता था। तत्पश्चात् स्वयं हाथ में धनुष-बाण लेकर रक्षा के लिए चारों ओर घूमने लगा।

हे परीक्षित! जब इतने पर भी उस ब्राह्मण का बालक उस बार पेट से ही मरा हुआ निकला तो अर्जुन अत्यन्त लज्जित होकर श्री कृष्णचन्द्रजी के पास लौट आया। उसके पीछे ही ब्राह्मण भी वहाँ जा पहुँचा तथा इस प्रकार कहने लगा–"हे अर्जुन! तूने मेरे बालक को बचाने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु वह पूर्ण नहीं हुई। तेरे जैसे मिथ्यावादी को धिक्कार है। अरे नपुंसक! तू मेरे बालक को न बचा सका तो तूने ऐसी प्रतिज्ञा ही क्यों की थी कि मैं या तो तुम्हारे बालक को बचाऊँगा, अन्यथा अग्नि में जलकर मर जाऊँगा।" ब्राह्मण के ऐसे कठोर वचन सुनकर अर्जुन धनुष-बाण लेकर यम-पुरी में जा पहुँचा। धर्मराज ने जब अर्जुन को देखा तो उसका बहुत सत्कार किया तथा स्तुति करने के उपरान्त जब आने का कारण पूछा तो अर्जुन ने यह कहा कि मैं अमुक ब्राह्मण के पुत्र को लेने आया हूँ, अतः तुम उसे मुझे दे दो। यह सुनकर धर्मराज ने उसे यह उत्तर दिया कि यहाँ वह बालक नहीं आया है। तब अर्जुन ब्राह्मण के बालक को ढूँढ़ने के लिए अन्य स्थानों पर गया, परन्तु जब कहीं पता न चला, तब अत्यन्त पछताकर द्वारकापुरी में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

लौट आया और चिता बनाकर भस्म होने की तैयारी करने लगा। जब श्री कृष्णचन्द्रजी ने यह देखा कि अर्जुन का गर्व नष्ट हो चुका है, उस समय उन्होंने पास जाकर अर्जुन का हाथ पकड़ लिया तथा इस प्रकार कहा—"हे अर्जुन! तू अपना शरीर मत त्याग, हम तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे।" इतना कहकर श्रीहरि अर्जुन को अपने साथ रथ पर बैठाकर पूर्व दिशा की ओर चल दिए। जब सातों द्वीप तथा सातों समुद्रों को पार करने के उपरान्त, वे लोकालोक पर्वत के पार एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उस समय श्रीहरि ने सुदर्शन चक्र को यह आज्ञा दी कि तुम अपने प्रकाश से मार्ग को प्रकाशित करते चलो। यह सुनकर सुदर्शन चक्र सहस्रों सूर्य से भी अधिक प्रकाश फैलाता हुआ रथ के आगे-आगे चलने लगा। उस प्रकाश के कारण अर्जुन की आँखें बन्द हो गईं। इस प्रकार वह रथ बहुत दूर जाकर एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ पानी का वेग लहरों द्वारा स्वयं में इस प्रकार टकरा रहा था, जैसे दो पर्वत युद्ध कर रहे हों। जब श्रीहरि ने उस रथ को पानी में डाल दिया, उस समय अर्जुन ने अपनी आँखें खोलीं तो उसे वहाँ एक बहुत बड़ा रत्नजटित भवन दिखाई दिया। तब श्रीहरि रथ से उतर, अर्जुन को साथ लेकर उस भवन के भीतर जा पहुँचे। वहाँ यह दृश्य दिखाई दिया कि श्री विष्णु नारायणजी अष्टभुजी स्वरूप धारण किए, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए, वन-माला पहिने, शेषनाग की शैया पर शयन कर रहे हैं। सहस्र फणवाले शेष-नागजी अपने मस्तकों पर मुकुट तथा कानों में कुण्डल पहिने हुए थे। श्री नारायणजी का नाम लेने के अतिरिक्त उन्हें और कोई काम नहीं था। श्री विष्णुजी के सामने ब्रह्मा, शिव आदि देवता हाथ जोड़े खड़े हुए स्तुति कर रहे थे तथा नन्द, सुनन्द, पुण्य, शील, सुशील, गरुड़, विशुक, सेन तथा सनाभ ये नवों मन्त्री उनके चारों ओर बैठे थे। यह दृश्य देखकर अर्जुन अपने सम्पूर्ण अभिमान को भूल गया। तब श्री श्यामसुन्दर ने अर्जुन-सहित उस अष्टभुजी स्वरूप को इस प्रकार दण्डवत् किया, जैसे कोई अपनी परछाईं को नमस्कार करे। उस समय श्री विष्णु नारायण ने श्यामसुन्दर को देख-कर इस प्रकार कहा—"हे कृष्ण! तुमने मेरी शक्ति से औतार लेकर एक सौ पच्चीस वर्ष तक मर्त्यलोक में रहकर, पृथ्वी का बोझ उतारा तथा अधर्मियों को मारकर हरि-भक्तों को सुख दे, मुझे प्रसन्न किया। इन दिनों मुझे तुम्हें देखने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिलाषा थी, इसलिए मैंने ब्राह्मण के बालक को यहाँ मँगवा लिया तथा अर्जुन से ऐसे अभिमानपूर्ण वचन कहलवा दिये कि उसकी प्रतिज्ञा रखने के लिए तुम्हें यहाँ अवश्य आना पड़े। अब तुम उन बालकों को यहाँ से ले जाओ।"

हे परीक्षित! इतना कहकर जब श्री विष्णुजी ने श्री श्यामजी तथा अर्जुन को बिदा किया, तब वे ब्राह्मण के पुत्रों को लेकर द्वारकापुरी में लौट आये। तब अर्जुन ने वे बालक ब्राह्मण को सौंपकर अपनी लज्जा छुड़ाई तथा श्री श्यामसुन्दर के चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। हे राजन्! जो इस कथा को ध्यानपूर्वक सुनता है उसका सब प्रकार से कल्याण होता है।"

नब्बेवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर की सन्तानों का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! श्री श्यामसुन्दर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। मैं उन परब्रह्म प्रभु के चरण-कमलों में कोटानुकोटि प्रणाम करता हूँ। अस्तु, अब मैं उनकी थोड़ी-सी महिमा और कहता हूँ, सुनो। श्री त्रिलोकीनाथ ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही यदुवंश में अवतार लेकर ये सब लीलाएँ की थीं। श्री द्वारकानाथ की इच्छा से द्वारकापुरी का वैभव ऐसा था कि वहाँ के सब भवन स्वर्ण से निर्मित तथा रत्नों से जड़े हुए थे। स्थान-स्थान पर वापी, कूप, तड़ाग तथा उद्यान बने हुए थे। पक्षीगण अपनी मीठी बोलियों में श्रीहरि का यशोगान गाया करते थे। द्वार पर अनेक हाथी बँधे रहते थे तथा बड़े-बड़े पहलवान अखाड़ों में कुश्तियों के करतब दिखाया करते थे। हाट, बाट, गली, चौराहे सभी स्थानों पर इत्र-गुलाबजल आदि सुगन्धों का छिड़काव होता रहता था तथा बाहर के व्यापारी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करने के हेतु आते रहते थे। यदुवंशियों के घरों में आठों प्रहर ऋद्धि-सिद्धियों का निवास रहता था। सभी द्वारकावासी हरि-कथा सुनते तथा धर्म-कर्म का विधिवत् पालन करते थे। वहाँ के सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त सुन्दर, तेजस्वी तथा बलिष्ठ थे। श्री मुरलीमनोहर की सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियाँ रत्न-जटित भवनों में निवास करती हुई श्री आनन्द-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्द कृष्णचन्द्रजी के साथ भोग-विलास कर अपने जीवन को धन्य बनाती थीं। श्रीहरि इतने ही स्वरूप धरकर, उन सबकी इच्छा पूर्ण किया करते थे। वे सब श्री श्यामसुन्दर के चरणों में सच्ची प्रीति रखकर उन पर ऐसी आसक्त थीं, कि उन्हें श्रीहरि के दर्शन पाये बिना एक क्षण को भी चैन नहीं पड़ता था।

हे परीक्षित! एक दिन श्री बाँकेविहारी ने जल-क्रीड़ा करने का विचार करके जैसे ही समुद्र को आज्ञा दी, वैसे ही सर्वत्र घुटनों तक पानी रह गया। उस समय उन्होंने सोलह सहस्र एक सौ आठ स्वरूप धरकर, सब रानियों से विहार किया। उस समय की शोभा का वर्णन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। वहाँ जब एक चकवा-चकवी की बोली सुनाई दी तो सब स्त्रियाँ अपने तन-मन की सुधि भुलाकर इस प्रकार कहने लगीं—"हे चकवी! तू चिल्ला क्यों रही है? जिस प्रकार हम अपने प्रीतम प्यारे के साथ आनन्द मना रही हैं, उसी प्रकार तू भी क्यों नहीं मनाती?" तदुपरान्त समुद्र से बोलीं—"हे समुद्र! तू जो रात-दिन जागकर लम्बी साँसें लेता रहता है, सो क्या तू किसी के वियोग में अकुलाता रहता है?" फिर चन्द्रमा से बोलीं—"अरे चन्द्र! तू मलिन क्यों हो रहा? क्या तुझे कोई रोग हो गया है, जो प्रतिदिन घटता-बढ़ता रहता है अन्यथा हमारे ही समान तू भी श्री मनमोहन प्यारे के दर्शन पाकर अपनी मति-गति भुला बैठा है?"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! इस प्रकार सब युवतियों ने वायु, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदी, हंस आदि से अनेक बातें कहीं, तत्पश्चात् प्रभु सबके साथ घर लौट आये। श्री कृष्णचन्द्रजी धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रम का पालन करते और सब लोगों को सुख पहुँचाते थे। श्री श्यामसुन्दर की सन्तान की संख्या इतनी बढ़ी कि उनके पुत्र-पौत्रों को विद्या पढ़ाने के लिए तीन करोड़, अट्ठासी सहस्र, तीन सौ ब्राह्मण आते थे। इसीसे अनुमान लगा लो कि यदुवंशियों की गिनती नहीं गिनी जा सकती। देखो, जो श्री कृष्णचन्द्रजी अपने कुल की रक्षा के लिए प्रतिदिन सहस्रों गौएँ तथा अपार द्रव्य ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों को दान करते थे, वे ही दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण सब यदुवंशियों का नाश कराकर वैकुण्ठलोक को प्रस्थान कर गये। श्री मुरलीमनोहर के वंश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में केवल 'अनिरुद्ध' का पुत्र 'व्रजनाभ' ही जीवित बचा, वही अन्त में मथुरा तथा इन्द्रप्रस्थ का राजा हुआ। उसके वंश में आगे चलकर 'व्रतबाहु' तथा 'सत्यसेन' आदि अनेक प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा हुए।" इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे राजन्! जो मनुष्य इस दशम स्कन्ध की कथा को प्रीतिपूर्वक सच्चे मन से पढ़ता है, सुनता है अथवा सुनाता है, उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए। दशम स्कन्ध की कथा के प्रति प्रेम रखनेवाले प्राणी इस लोक में मनोकामना पाकर, अन्त समय में मुक्ति को प्राप्त करते हैं।"

दशम स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

एकादश स्कन्ध

नारदजी द्वारा वसुदेव को ज्ञानोपदेश

वन्दना

इस तरह घर में नहीं आओ कि जिससे—
जग उठें सोये हुए यह प्राण मेरे !!
है निशा निस्तब्ध, तारे मौन हैं सब,
नील-नभ पर पड़ गया परिधान श्यामल;
शान्त है वसुधा, दिशाएँ चुप खड़ी हैं;
लोचनों को बन गई है नींद सम्बल;
इस समय स्वर में नहीं छाओ कि जिससे—
तार मुखरित हो उठें ले गान मेरे !
तुम जिसे माया बताते हो, मुझे वह—
सत्य बन कर छल रही, पर दुख नहीं है;
त्याग इसको दूँ अगर तो आत्मा को—
खूब सोचा है—कहीं भी सुख नहीं है;
इस तरह मन को न समझाओ कि जिससे—
मुक्ति माँगें युगों के अभिमान मेरे !
रुक गया आवागमन का क्रम कहीं, तो—
कौन मायापति तुम्हें कहकर भजेगा ?
सृष्टि का संहार होगा इस तरह तब—
जो यहाँ आया, वही इसको तजेगा;
इसलिए वह कर न दिखलाओ कि जिससे—
व्यर्थ सब हो जायँ अनुसन्धान मेरे !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

दुर्वासा आदि ऋषियों का द्वारका जाना

दशम स्कन्ध की कथा सुनने के पश्चात् राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा—"हे प्रभो! यदुवंशी लोग तो धर्मात्मा एवं हरि-भक्त थे, फिर दुर्वासा ऋषि ने उन्हें शाप क्यों दिया?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! यह वृत्तान्त इस प्रकार है—एक दिन त्रिलोकीनाथ श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में यह विचार किया कि हमने पृथ्वी का भार उतारने तथा हरि-भक्तों की रक्षा करने के लिए अवतार लिया है, ताकि संसारी मनुष्य हमारे लीला-चरित्रों का ध्यान करके भवसागर से पार उतर जायँ। हमने कंस, जरासन्ध आदि अधर्मी राजाओं तथा दैत्यों का संहार एवं कौरव-पाण्डवों में महाभारत करा-कर पृथ्वी का भार भी दूर किया, परन्तु अभी तक छप्पन करोड़ यदुवंशियों का भार ज्यों का त्यों बना हुआ है। ये सभी यदुवंशी अत्यन्त बलवान्, धनी एवं मेरे कुटुम्बी हैं। यदि मैं इन्हें अपने हाथों से मारूँगा तो पाप लगेगा एवं लोक-निन्दा होगी, इसलिए इन्हें किसी ब्राह्मण से शाप दिलवाकर मरवा देना चाहिए। हे राजन्! जब श्रीहरि ने अपने मन में यह विचार किया, तभी उनकी इच्छा से दुर्वासा एवं वशिष्ठ आदि बहुत से ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए द्वारकापुरी में आ पहुँचे। श्री श्यामसुन्दर ने उन सबका अत्यन्त सत्कार किया तथा पूजन आदि करने के उपरान्त हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की कि जिस प्रकार आप लोगों ने यहाँ पधारकर हमें अपने दर्शनों से कृतार्थ किया है, उसी प्रकार अब कृपा करके कुछ दिनों तक यहीं निवास कीजिए। यह सुनकर ऋषि-मुनियों ने उत्तर दिया—"हे प्रभो! हम लोग यहाँ विधि-पूर्वक पूजन, जप, तप आदि न कर सकेंगे।" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे ऋषिगणो! यहाँ निकट ही 'पिण्डारक क्षेत्र' में रहकर आप अपना जप, तप आदि करें। वहाँ आपको कोई असुविधा न होगी।"

हे परीक्षित! श्रीहरि की बात मानकर वे ऋषि-मुनि पिण्डारक क्षेत्र में रहकर श्री परब्रह्म परमेश्वर का जप, तप एवं ध्यान आदि करने लगे। एक दिन का प्रसङ्ग है कि श्री मुरलीमनोहर की माया से प्रेरित होकर प्रद्युम्न तथा साम्ब आदि शिकार खेलते हुए, उसी स्थान पर जा पहुँचे जहाँ वे ऋषि-मुनि ठहरे हुए थे। उन लोगों ने जब ऋषि-मुनियों को समाधि लगाये हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखा, तो परस्पर यह कहना आरम्भ किया कि देखो, ये ब्राह्मण संसारी मनुष्यों को ठगने के लिए समाधि का ढोंग बनाये बैठे हैं। यदि ये सच्चे महात्मा होंगे तो इन्हें भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों का हाल मालूम होगा। अतः इनकी परीक्षा लेनी चाहिए। उस समय साम्ब ने प्रद्युम्न आदि से यह कहा—"हे भाइयो! तुम लोग मेरा वेश स्त्रियों जैसा बनाकर, मेरे पेट से कपड़े आदि की गठरी बाँध दो, जिससे मैं गर्भवती स्त्री के समान दिखाई देने लगूँ। तदुपरान्त तुम मुझे ऋषियों के पास ले जाकर यह पूछो कि यह गर्भवती स्त्री पुत्र को जन्म देगी अथवा कन्या को? देखें, उस समय ये लोग क्या उत्तर देते हैं?" साम्ब की यह बात सबको पसन्द आ गई। तदुपरान्त वे साम्ब को गर्भवती स्त्री के समान बनाकर ऋषि-मुनियों के पास जा पहुँचे तथा उनसे यह पूछने लगे कि हे ऋषियो! इस स्त्री के गर्भ से पुत्र होगा अथवा कन्या—यह आप हमें बताने की कृपा कीजिए। उन यदुवंशियों की ऐसी बात सुनकर ऋषियों ने उत्तर दिया—"हे राजपुत्रो! तुम लोग श्री कृष्ण-चन्द्रजी के वंश में उत्पन्न होकर, हमारे पास ऐसी हँसी करने के लिए क्यों आये हो?"

हे परीक्षित! ऋषियों द्वारा इस प्रकार कहने पर भी जब वे सब हठ करने लगे, उस समय हरि-इच्छा से दुर्वासा ऋषि ने क्रुद्ध होकर यह कहा—"अरे लड़को! यदि तुम नहीं मानते हो तो सुनो, इसके पेट से एक मूसल उत्पन्न होगा, वह श्री श्यामजी तथा बलरामजी को छोड़कर तुम्हारे सम्पूर्ण वंश को नष्ट करने का कारण बनेगा।" ऋषियों के मुख से यह वचन सुनते ही प्रद्युम्न आदि अत्यन्त उदास होकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि हमने यह बहुत बुरा किया, जो ब्राह्मणों को दुःख पहुँचाकर उनका शाप लिया। तदुपरान्त जब प्रद्युम्न ने साम्ब के पेट से बँधे कपड़े को खोला तो उसके भीतर से लोहे का एक छोटा-सा मूसल निकल पड़ा। इस आश्चर्य को देखकर वे सब अत्यन्त भयभीत हो, राजा उग्रसेन की सभा में आ पहुँचे, फिर सभी यदुवंशियों एवं श्री श्याम-बलरामजी को वह मूसल दिखाकर ऋषियों के शाप का वृत्तान्त कह सुनाया। उस घटना को सुनकर राजा उग्रसेन ने अन्य यदुवंशियों से विचार-विमर्श करने के उपरान्त यह निश्चय किया कि इस मूसल को लुहारों द्वारा रितवा कर, इसके चूरे को समुद्र में डाल देना चाहिए, जिससे शाप का कोई प्रभाव ही न हो सके। तत्पश्चात् जब उन्होंने श्री कृष्णचन्द्रजी की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्मति जाननी चाही, तब श्रीहरि ने भी मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर, इस उपाय को कार्यान्वित करने में अपनी स्वीकृति दे दी।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! आनन्द-कन्द श्री कृष्णचन्द्रजी यदि चाहते तो वे ऋषियों के शाप को छुड़ा सकते थे, परन्तु सभी कार्य उन्हीं की इच्छा से हुए थे, इसलिए उन्होंने उसका कोई उपाय नहीं किया। अस्तु, यदुवंशियों ने उस मूसल को समुद्र तट पर ले जाकर लुहारों से रितवा डाला तथा उसके चूरे को समुद्र के पानी में डलवा दिया। मूसल को रेतने पर अन्त में जो एक छोटा-सा टुकड़ा बच गया था, उसे भी समुद्र में फेंक दिया गया। इतना सब करके यदुवंशी तो अपने घर को लौट आये। उधर श्री मुरलीमनोहर की इच्छा से मूसल के शेष बचे टुकड़े को एक मछली निगल गई। कुछ समय बाद जब उस मछली को एक केवट ने जाल में फँसाकर समुद्र से बाहर निकाला, तब मछली के पेट को चीरने पर उसे मूसल का शेष बचा टुकड़ा मिल गया। केवट ने उस टुकड़े को अपने तीर की नोंक पर लगाकर अपने पास रख लिया। इस प्रकार मूसल का शेष बचा टुकड़ा तो तीर का फल बना और समुद्र के तट पर जहाँ वह मूसल रेता गया था, उस स्थान पर सरपत नामक एक तीक्ष्ण धारवाली घास की उत्पत्ति हुई।"

दूसरा अध्याय

नारदजी द्वारा वसुदेवजी को ज्ञानोपदेश

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण जब द्वारकापुरी में अपशकुन होने लगे, उस समय श्री मुरलीमनोहर ने अपने मन में यह विचार किया कि ऋषि के शाप के कारण सभी यदुवंशी कुछ दिनों में मारे जायँगे, अतः अब मुझे अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव को ज्ञानोपदेश देकर मुक्त कर देना चाहिए। फिर उन्होंने सोचा कि वसुदेव-देवकी मुझे अपना पुत्र समझते हैं, अतः मेरे कहने का उन्हें विश्वास न होगा, इसलिए यही उत्तम है कि इन्हें नारदजी द्वारा उपदेश कराना चाहिए। यह निश्चय करके श्री मुरलीमनोहर ने ज्यों ही नारदजी का स्मरण किया, त्यों ही वे उनके पास आ पहुँचे। उस समय मुनि ने श्री बाँकेविहारी से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! दक्ष प्रजापति के शाप के कारण मैं दो घड़ी से अधिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देर तक किसी एक स्थान पर नहीं ठहर सकता हूँ, अतः आप यह जानकर ही मुझे कोई आज्ञा प्रदान करें।" यह सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी बोले—"हे मुने! द्वारकापुरी में उस शाप का कोई प्रभाव न होगा, अतः आप यहाँ आनन्दपूर्वक रहें।" श्रीहरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक द्वारकापुरी में रहने लगे। एक दिन वे प्रसन्न हो, हरि-गुण गाते, वीणा बजाते हुए वसुदेवजी के भवन में जा पहुँचे। उस समय वसुदेवजी ने उन्हें सम्मान-सहित बैठाकर, पूजन आदि के उपरान्त, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे देवर्षे! मेरे धन्य भाग्य हैं, जो आप कृपाकर यहाँ पधारे हैं। हम संसारी मनुष्य स्त्री-पुत्रादि के मोह में जकड़े हुए, माया-रूपी अँधेरे कुएँ में पड़े हुए हैं। जब तक ज्ञानरूपी रस्सी का आश्रय प्राप्त न हो, तब तक इससे बाहर निकलना कठिन है। हे नारदजी! यदि आप यह कहें कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ, क्योंकि मेरे घर श्री परब्रह्म प्रभु ने अवतार लिया है, तो इस सम्बन्ध में मैं यह कहूँगा कि मुझसे बड़ी भूल हुई थी जो मैंने पूर्व-जन्म में श्रीहरि के दर्शन पाकर, उन्हें पुत्र-रूप में प्राप्त करने का वरदान माँगा। मुझे उस समय अपनी मुक्ति माँगनी चाहिए थी। अस्तु, हे ब्रह्मन्! अब मैं आपके श्रीमुख से भागवत धर्म सुनकर भव-सागर से पार उतर जाना चाहता हूँ।"

हे परीक्षित! श्री वसुदेवजी के मुख से यह शब्द सुनकर नारदजी ने कहा—"हे वसुदेवजी! नौ योगीश्वरों ने राजा जनक को भागवत धर्म का उपदेश किया था। वह प्राचीन इतिहास हम तुमसे कहते हैं, सुनो। ऋषभदेवजी की 'जयन्ती' नामक पत्नी के गर्भ से सौ बालकों का जन्म हुआ। उनमें नौ बालक नौ खण्डों के राजा हुए। इक्यासी बालक वेद तथा शास्त्रों को पढ़कर पारङ्गत हुए। 'भरत' नामक सबसे बड़ा पुत्र अपने पिता के सिंहासन पर बैठा तथा शेष नौ बालक—जो नौ योगीश्वर कहलाते हैं, संसारी मायामोह से विरक्त हो, परम ज्ञानी, बालयती तथा महात्मा हुए। वे अपने इच्छानुसार तीनों लोकों में भ्रमण करते रहते थे। एक समय वे नौ योगीश्वर राजा जनक की सभा में जा पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े ज्ञानी तथा महात्मा पुरुष उपस्थित थे। जिस समय वे नवों राजसभा में पहुँचे, उस समय उनके सूर्य के समान मुखमण्डल के दिव्य प्रकाश को देखकर राजा जनक समस्त सभासदों-सहित उठकर खड़े हो गये तथा उन्हें दण्डवत् कर, हाथ जोड़, इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार प्रार्थना करने लगे–"हे योगीश्वरो ! सम्भवतः आप सब विष्णुलोक से पधार रहे हैं, अतः मैं आपको श्रीहरि का पार्षद समझकर दण्डवत् करता हूँ। पूर्वजन्मों का पुण्य उदय होने के कारण ही मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। संसारी मनुष्य की मृत्यु अनिश्चित जानकर ही मैंने आप सबका एक साथ दण्डवत् किया है। हे प्रभो ! जिस प्रकार आप सबने यहाँ पधारकर अपने श्रीचरणों द्वारा मेरे घर को पवित्र किया है, उसी प्रकार अब मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर, मेरा सन्देह दूर करने की कृपा और कीजिए।" राजा जनक की प्रार्थना सुनकर योगीश्वरों ने कहा–"हे राजन् ! तुम जो कुछ पूछना चाहो, उसे प्रसन्नतापूर्वक पूछ लो।" राजा जनक बोले–"हे महात्मन् ! संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो सदैव स्थिर रहती है तथा जिसका कभी वियोग नहीं होता ? यदि कोई यह कहे कि जिसके घर में बहुत-सा द्रव्य तथा आज्ञाकारी स्त्री पुत्र हों, उसे सदैव सुख प्राप्त होता है, तो यह बात मेरी सम्मति में उचित नहीं है, क्योंकि जब द्रव्य की हानि होती है अथवा घर में किसी की मृत्यु हो जाती है, उस समय अपार दुःख मिलता है। सुख तो उसे कहना चाहिए–जो सदैव स्थिर रहे तथा जो प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता रहे, कभी घटे नहीं। अस्तु, आप यह बताइये कि ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसका कभी नाश नहीं होता ?" राजा जनक का प्रश्न सुनकर उन योगीश्वरों में सबसे बड़े 'कश्यप' नामक भाई ने कहा–"हे राजन् ! जो मनुष्य आठों प्रहर श्री नारायणजी का स्मरण करते हुए उन्हीं के चरणों में अपना ध्यान लगाए रहते हैं तथा स्त्री, पुत्र, धन आदि नाशवान् संसारी वस्तुओं से कुछ प्रीति नहीं रखते, उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है। आज्ञाकारी स्त्री-पुत्र तथा द्रव्य प्राप्त होने पर संसारी मनुष्य यह समझते हैं कि उन जैसा सुखी अन्य कोई नहीं है, परन्तु जब धन की हानि होती है अथवा घर का कोई प्राणी मर जाता है, उस समय वे शोक में ऐसे व्याकुल हो जाते हैं कि उनका चित्त ठिकाने नहीं रहता। इसलिए यदि कोई संसारी मनुष्य से यह पूछे कि तुम सुखी हो अथवा नहीं, तो उन दोनों को महामूर्ख समझना चाहिए। जो सुख स्थिर न रहे, उसका होना अथवा न होना एक समान है। हे राजन् ! तुम इस बात पर विश्वास करो कि जो मनुष्य श्रीहरि से विमुख रहकर अपने परलोक की चिन्ता नहीं करता, उसे कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता है। धर्म का स्वरूप वही है जो श्री कृष्णचन्द्रजी ने गीता में अर्जुन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के प्रति कहा है। उस ज्ञान का सार यह है कि मनुष्य को आठों प्रहर श्रीहरि के चरणों में अपना चित्त लगाये रहना चाहिए तथा किसी भी कार्य में यह न समझना चाहिए कि इसे मैंने किया है। दिन-रात सदैव यही समझते रहना चाहिए कि सम्पूर्ण कार्य श्री नारायणजी की इच्छा से ही होते हैं। तप, स्मरण एवं ध्यान किये बिना श्रीहरि की प्राप्ति नहीं होती है। अतः हम तुम्हें श्री नारायणजी के चरणों में प्रीति उत्पन्न होने का पहिला सरल मार्ग बताते हैं, उसे सुनो। उस मार्ग पर चलकर संसारी जीव भी सच्चे सुख के स्थान पर पहुँच जावेंगे। जिस प्रकार श्रीहरि ने कृष्णावतार लेकर गोवर्द्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठाया तथा कंस, जरासंध आदि राजाओं का मारकर गोपियों के साथ रास-विलास किया एवं रामावतार एवं वामन अवतार ग्रहण कर संसार में अनेक लीलाएँ कीं, उन कथाओं को सच्चे मन से सुनना चाहिए तथा अभिमान में पड़कर यह नहीं सोचना चाहिए कि जिस कथा को हम एक बार सुन चुके हैं, उसे दुबारा सुनने की क्या आवश्यकता है? हरि-चरित्रों का श्रवण एवं पाठ करने से मनुष्य संसारी माया-मोह से विरक्त होकर, अन्त में श्री नारायणजी के चरण-कमलों में जा पहुँचता है। ज्ञानी मनुष्य को यह उचित है कि वह सम्पूर्ण स्थानों में तथा समस्त प्राणियों में श्रीहरि को एक-जैसा व्यापक अनुभव करता रहे एवं यह समझता रहे कि श्री परब्रह्म प्रभु केवल इसीलिए सगुण अवतार ग्रहण करते हैं, जिससे संसारी मनुष्य उनके लीला-चरित्रों को सुनकर भव-सागर से पार उतर जाया करें। मनुष्य-शरीर पाकर किसी भी प्राणी को एक क्षण के लिए भी श्रीहरि से विमुख नहीं रहना चाहिए। यह चञ्चल मन एक बार भी श्री नारायणजी के चरण-कमलों में लग जाय, तो उस प्रेम को प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ाते जाना चाहिए। जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी स्थान पर पहुँचने के लिए प्रतिदिन एक-दो पग भी मार्ग चले तो कुछ दिनों में निश्चित स्थान पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार श्रीहरि के सूर्य-रूपी चरण-कमलों का ध्यान धरने तथा उनमें प्रतिदिन धीरे-धीरे प्रेम बढ़ाने से हृदय में ज्ञान का दीपक प्रकाशित हो उठता है तथा अज्ञान-रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। हे राजन्! जो मनुष्य अपने घर से ही नहीं चलता, उसका किसी दूसरे स्थान पर पहुँच जाना असम्भव है। जिस प्रकार तीन दिन का भूखा मनुष्य भोजन पाकर धीरे-धीरे ग्रास उठाता है तथा ज्यों-ज्यों ग्रास मुख में रखता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, त्यों-त्यों उसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होती जाती है, उसी प्रकार श्रीहरि का निरन्तर ध्यान करते रहने से मनुष्य का मन संसारी माया-मोह से छूटकर श्री परब्रह्म प्रभु के चरण-कमलों में अधिकाधिक लगता जाता है।"

हे परीक्षित ! जब इस प्रकार योगीश्वर ने ज्ञानोपदेश किया, उस समय राजा जनक ने उठकर उन्हें फिर दण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! जो मनुष्य भागवत धर्म को धारणकर, उसी के अनुरूप कार्य करते हैं उनका स्वरूप किस प्रकार का होता है तथा उन्हें किस प्रकार पहिचाना जा सकता है ?" यह प्रश्न सुनकर 'हरि' नामक दूसरे भाई ने कहा—"हे राजन् ! भागवत धर्म को धारण करनेवाले मनुष्य कभी हँसते हैं तथा कभी रोने लगते हैं। उनके हँसने का कारण यह है कि कभी तो वे प्रसन्न होकर यह कहते हैं कि हे प्रभु ! आपका निराकार स्वरूप किसी को दिखाई नहीं देता, इसलिए आप अपने भक्तों पर दया करके सगुण अवतार ग्रहण करते हैं, जिससे संसारी जीव आपका ध्यान धर कर मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं तथा कभी यह सोचकर रोते हैं कि हमारी इतनी आयु श्रीहरि का स्मरण किये बिना ही व्यर्थ नष्ट हो गई। हे जनक ! श्रीहरि के भक्त तीन प्रकार के होते हैं, १—उत्तम, २—मध्यम, ३—निकृष्ट। उत्तम भक्तों के लक्षण यह हैं कि वे जड़-चैतन्य सभी जीवों में श्रीहरि की शक्ति को एक-जैसा अनुभव करते हैं तथा किसी से मित्रता अथवा शत्रुता नहीं रखते। वे आठों प्रहर श्रीहरि-चरणों के ध्यान में ही मग्न रहते हैं। जिस प्रकार मद्यपी मनुष्य को अपने शरीर तथा वस्त्रों का ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार श्री नारायणजी के ध्यान में संलग्न रहने के कारण उन्हें भी अपने शरीर का ध्यान नहीं रहता। वे श्रीहरि के विराट् स्वरूप को संसार के सभी जीवों में एक-जैसा जानकर हरिभक्त तथा महात्माओं से प्रीति करते हैं। वे अपने-पराये में भेद नहीं समझते। स्त्री, पुत्र, धन आदि संसारी सुखों से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं रहता। सत्सङ्ग तथा हरि-भक्ति के सम्मुख वे तीनों लोकों के राज्य को भी तुच्छ समझते हैं। हे राजन् ! मध्यम भक्त के लक्षण ये हैं कि वे साधु-महात्माओं से प्रीति रखकर कभी कुसङ्ग का आश्रय नहीं लेते। वे किसी का बुरा नहीं चाहते तथा सभी प्राणियों पर दया का भाव रखते हैं। परन्तु ज्ञानी होने के कारण सभी जीवों में श्रीहरि की एक-जैसी शक्ति नहीं समझते। निकृष्ट भक्त के लक्षण ये हैं कि वे संसारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माया-मोह में फँसे रहने पर भी कभी-कभी श्रीहरि का पूजन एवं स्मरण कर लिया करते हैं। जब तक मनुष्य तृष्णा से विमुख नहीं होता, तब तक उसका मन भी संसारी माया-मोह से विरक्त नहीं होता है।"

तीसरा अध्याय

तीन योगीश्वरों द्वारा राजा जनक को ज्ञानोपदेश

श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! तीन प्रकार के भक्तों का वर्णन सुनने के उपरान्त राजा जनक ने उन योगीश्वर से कहा—"हे प्रभो! यह माया श्री नारायणजी से पृथक् है अथवा उन्हीं में मिली हुई है, यह आप मुझे बताने की कृपा करें।" यह सुनकर 'अन्तरिक्ष' नामक तीसरे भाई ने उत्तर दिया—"हे नृपश्रेष्ठ! सब जीवों की उत्पत्ति तथा विनाश श्री नारायणजी की माया के अधीन है। उस माया को श्रीहरि की इच्छा समझना चाहिए। माया के सात्विक, राजस तथा तामस ये तीन गुण हैं, इन्हीं से उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश होता है। संसारी मनुष्य माया के वशीभूत होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में फँसा रहता है। इसीलिए वह श्रीहरि का स्मरण नहीं कर पाता, जिससे आवागमन से मुक्ति पाकर भवसागर से पार हो सके। श्रीहरि की कृपा के बिना कोई भी मनुष्य माया-जाल से छुटकारा नहीं पाता। महाप्रलय के पश्चात् परब्रह्म प्रभु जब पुनः सृष्टि की उत्पत्ति करना चाहते हैं, उस समय वे माया की ओर दृष्टिपात करते हैं। उसी समय माया द्वारा महत्तत्व प्रकट होता है, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार जब श्रीहरि सृष्टि का संहार करना चाहते हैं, उस समय श्री प्रभु के इच्छानुसार माया द्वारा महाप्रलय का दृश्य उपस्थित होता है। उस समय ऐसी मूसलाधार वर्षा होती है कि जल के अतिरिक्त पृथ्वी पर और कुछ नहीं बचता। इस प्रकार ज्ञानी मनुष्य को सृष्टि की उत्पत्ति तथा विनाश को माया का खेल जानकर, आठों प्रहर भवसागर से पार उतरने का उपाय करते रहना चाहिए।"

यह सुनकर राजा जनक ने प्रार्थना की—"हे योगिराज! जब आप लोग माया को श्रीहरि की इच्छा बतलाते हैं, तब संसारी मनुष्य उससे किस प्रकार छुटकारा पा सकता है? इसका कोई उपाय बताने की कृपा कीजिए।" यह सुनकर 'प्रबुद्ध' नामक चौथे भाई ने उत्तर दिया—"हे राजन्! जब इस बात

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का विश्वास हो जाय कि माया श्रीहरि की इच्छा है तथा श्रीहरि की आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता, तब मनुष्य को यह चाहिए कि वह प्रत्येक कार्यों का कर्त्ता तथा कारण श्रीहरि को जानते हुए स्वयं को उस माया का खिलौना समझता रहे तथा जो भी कार्य आरम्भ करे उसे श्रीहरि की इच्छा पर छोड़कर, यह विश्वास कर ले कि यदि श्री त्रिलोकीनाथजी चाहेंगे तो यह कार्य पूर्ण हो जायगा। इस प्रकार स्वयं को किसी कार्य का करनेवाला न समझे। किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर भी अपने मन में खेद न माने तथा बिना प्रयोजन के किसी से अधिक बातचीत न करे। सम्पूर्ण जीवों में श्रीहरि का एक समान चमत्कार जानकर, सब पर दया रक्खे तथा किसी को भी कष्ट न दे। पराई स्त्री को अपनी माता के समान समझे तथा अपने प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ थोड़ा बहुत प्राप्त हो जाय, उसी पर सन्तोष रखकर, अधिक प्राप्त होने की कामना न करे। एकान्त में बैठकर श्रीहरि के चरणों का स्मरण करता रहे तथा दूसरों के समीप बैठने पर भी हरि-चर्चा के अतिरिक्त व्यर्थ वार्तालाप न करे। इस प्रकार अभ्यास करने से मन संसारी माया-मोह से छूटकर श्री त्रिलोकीनाथजी के चरणों में लग जाता है। हे राजन्! यदि कोई यह कहे कि मनुष्य अनेक उपाय तथा परिश्रम द्वारा ही अपनी कामना को प्राप्त करके प्रसन्न होता है, तो इस सम्बन्ध में तुम्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि बिना श्रीहरि की इच्छा के किसी को अपना मनोरथ प्राप्त नहीं होता। हर प्रकार का हानि-लाभ श्री नारायणजी के इच्छानुसार ही होता है। जो प्राणी संसार में उत्पन्न हुए हैं, वे एक न एक दिन अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होंगे। मृत्यु के समय उनसे स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा आदि का नाम लेने के लिए कोई नहीं कहेगा। उस समय सभी इष्ट-मित्र यही कहेंगे कि तुम श्री नारायणजी का नाम लो, जिससे तुम्हारा परलोक बने। अस्तु, जब ऐसी ही बात है तो उन श्रीहरि को पहिले से ही क्यों नहीं याद किया जाता, जिनसे अन्त समय में काम पड़ता है? उनके अतिरिक्त अन्य कोई सहायता नहीं कर सकता। यदि तुम यह कहो कि जीवन भर स्त्री-पुत्रादि में प्रेम रखकर तथा अन्त समय श्रीहरि का नाम लेकर अपना परलोक बना लेंगे, तो यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसका मन पहिले से स्त्री-पुत्र, धन आदि में लगा होता है, वह मृत्यु के समय भी श्रीहरि के चरणों में चित्त नहीं लगा पाता। जिस प्रकार किसी स्थान पर धन गाड़ देने से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आठों प्रहर उसी की चिन्ता लगी रहती है तथा चोर आदि के भय से बार-बार उस स्थान को देखने की इच्छा होती है एवं किसी अन्य व्यक्ति को उसका हाल नहीं बताया जाता, उसी प्रकार मनुष्य को उचित है कि वह दिन-रात श्री नारायणजी के चरणों में अपना चित्त लगाये रहे तथा उनसे प्रीति करने का हाल किसी से भी न कहे।"

यह सुनकर राजा जनक ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! आपने जो यह कहा कि श्रीहरि के लीला-चरित्रों को सुनने तथा स्मरण करने से संसारी माया दूर हो जाती है, अतः मेरी इच्छा त्रिलोकीनाथजी की स्तुति सुनने की हो उठी है, सो आप कृपा कर कुछ वर्णन करें।" तब 'पिप्पलायन' नामक पाँचवें भाई ने कहा—"हे पृथ्वीपति! तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाले श्री त्रिलोकीनाथजी ही हैं। चौरासी लाख योनियों में उन्हीं का प्रकाश वर्तमान है। किसी जीव के मरने पर उस प्रकाश का विनाश नहीं होता और न किसी के उत्पन्न होने पर उसका जन्म ही होता है। वे अविनाशी प्रभु अपने तेज से प्रकाशित रहकर सदैव एकरस रहते हैं तथा सब वस्तुओं में समाये रहने पर भी सबसे पृथक् हैं। उन्हीं की शक्ति द्वारा सम्पूर्ण जीवों को चलने-फिरने की सामर्थ्य एवं भले-बुरे का ज्ञान प्राप्त होता है। उनका प्रकाश अदृश्य रहता है। वे प्रत्येक प्राणी के हृदय में इस प्रकार छिपे रहते हैं, जिस प्रकार प्रस्तर अथवा काष्ठ में अग्नि छिपी रहती है। जिस तरह प्रयत्न करने पर प्रस्तर अथवा काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह ज्ञान की दृष्टि से उनकी शक्ति को अपने शरीर में देखना चाहिए। जिस प्रकार गूलर के फल में सहस्रों कीड़े भरे रहते हैं, उसी प्रकार श्रीहरि के रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड भरे हुए हैं। वे ही सम्पूर्ण जीवों का पालन करते हैं। उन त्रिलोकीनाथ को पहिचानना अत्यन्त कठिन है, जो प्राणी सच्चे हृदय से भक्ति तथा प्रीति करता है, वही उनकी महिमा को पहिचान पाता है। हे राजन्! मनुष्य की चार अवस्था होती है—१-जाग्रत, २-स्वप्न, ३-सुषुप्ति, ४-तुरीय। जाग्रत जगने को तथा स्वप्न नींद को कहा जाता है। सुषुप्ति अवस्था उसे समझना चाहिए, जैसे किसी समय मनुष्य नींद उचट जाने पर यह कहता है कि हम नींद में अचेत सोये पड़े रहे। तुरीय अवस्था वह होती है, जैसे कोई मनुष्य श्रीहरि के ध्यान में ऐसा मग्न हो जाय कि उसे अपने शरीर तथा वस्त्रों का भी कुछ ध्यान न रहे। इन चारों अवस्थाओं में जीवमात्र के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीर में श्रीहरि का प्रकाश विद्यमान रहता है। उन्हीं की शक्ति द्वारा मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है। इस बात को प्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार समझना चाहिए कि जब श्री नारायणजी किसी प्राणी के शरीर में से अपनी शक्ति खींच लेते हैं, तब वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उस समय उससे कोई भी काम नहीं हो सकता यदि कोई मनुष्य यह कहे कि जब ईश्वर सब जगह वर्तमान हैं, तो वे दिखाई क्यों नहीं देते—उसे यह उत्तर देना चाहिए कि श्री त्रिलोकीनाथ मूर्खों को दिखाई नहीं देते हैं और ज्ञानियों की दृष्टि से कभी छिपे नहीं रहते हैं।"

चौथा अध्याय

अवतारों का वर्णन

श्री नारदजी बोले—"हे वसुदेव ! इतनी कथा सुनकर राजा जनक ने कहा—"हे ऋषिश्रेष्ठ ! जब मैं बालक था, तब एक दिन सनकादि ऋषि मेरे पिता के समीप आये थे। उस समय मैंने उनसे पूछा था कि हे प्रभो ! भक्ति तथा तपस्या किस प्रकार करनी चाहिए ? तब मेरे प्रश्न को सुनकर वे ऋषि कोई उत्तर न देकर केवल हँस दिए थे तथा मुझे ज्ञानोपदेश करने के योग्य नहीं समझा था।" राजा जनक के मुख से यह वचन सुनकर 'उपविरहोत्र' नामक छठवें योगीश्वर ने कहा—"हे राजन् ! अब तुम ज्ञान सुनने के योग्य हो। उस समय तुम्हारी बाल्यावस्था के कारण ही सनकादिक ने तुम्हें ज्ञानोपदेश नहीं किया था। अब हम कहते हैं, उसे सुनो। कर्म तीन प्रकार के होते हैं, १—कर्म, २—विकर्म, ३—अकर्म। कर्म उसे कहा जाता है जिसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्ण के मनुष्य वेद-शास्त्रों में लिखे अनुसार करते हैं। एक वर्ण यदि दूसरे वर्ण के धर्म को ग्रहण कर लेता है तो उसे विकर्म कहा जाता है। अकर्म उसे कहते हैं, जो जानबूझकर चोरी आदि कुकर्म किया जाता है तथा जिससे संसारी जीवों को कष्ट पहुँचता है। मनुष्य को उचित है कि वह गुरूजी के आज्ञानुसार प्रतिदिन श्री रामचन्द्र, नृसिंहजी अथवा श्री कृष्ण अवतार में से किसी अवतार का पूजन एवं ध्यान किया करे तथा श्रीहरि का जो स्वरूप उसे पसन्द हो, उसी की भक्ति करे।"

यह सुनकर राजा जनक ने कहा—"हे प्रभो ! जिस प्रकार आपने पूजा करने की बात कही, उसी प्रकार अब कृपा करके श्रीहरि के अवतारों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथा भी कहिए।" तब 'दुर्मिल' नामक सातवें भाई ने कहा—"हे राजन्! श्रीहरि के सम्पूर्ण अवतारों का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। आकाश के तारे, बालू की रेणुका तथा वर्षा की बूँदें चाहे भले ही गिन ली जायँ, परन्तु श्रीहरि के अवतारों को नहीं गिना जा सकता। श्री नारायण-जी के विराट रूप में पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, दसो दिशाएँ, चौदहों भुवन तथा चौरासी लाख योनियाँ हैं। वे सम्पूर्ण वस्तुओं के स्वामी तथा उत्पन्नकर्त्ता हैं। जिस समय श्री परब्रह्म प्रभु के विराट् स्वरूप की नाभि से कमल का फूल प्रकट होता है, उस समय उस फूल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर तीनों लोकों की रचना करते हैं। श्रीहरि नर-नारायण का अवतार लेकर बदरी-केदार में बैठे हुए केवल इसीलिए तपस्या करते हैं, जिससे संसारी मनुष्य उन्हें तप करते हुए देखकर, स्वयं भी तप करें तथा भव-सागर से पार उतर जायँ। जिस समय उनकी तपस्या को देखकर देवराज इन्द्र को यह भय हुआ था कि कहीं ये मेरा इन्द्रासन लेने के लिए तप न कर रहे हों। अस्तु, उसने उनका तप भङ्ग करने की इच्छा से कामदेव, वसन्त ऋतु, दस अप्सराओं तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन को उनके समीप भेजा था। उस समय वसन्त ने पास पहुँचकर एक परम मनोहर उद्यान प्रकट कर दिया, वायु हिलोरें लेकर बहने लगा तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। कामदेव भी कोकिल का स्वरूप बना-कर एक वृक्ष पर बैठ, काम को जाग्रत करनेवाली बोली बोलने लगा। जब सूर्य के समान तेजस्वी नर-नारायण ने उन सबकी ओर आँख उठाकर देखा, तब वे इस भय से कि कहीं ये हमें शाप न दे डालें, थर-थर काँपने लगे। उस समय श्री नर-नारायण ने हँसकर कामदेव आदि से इस प्रकार कहा—"तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम्हें तो इन्द्र ने अपने हित-साधन के लिए यहाँ भेजा है, परन्तु तुम्हें यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि हमें इन्द्रलोक प्राप्त करने की कोई अभिलाषा नहीं है।" श्री त्रिलोकीनाथ के ऐसे वचन सुनकर कामदेव ने अपने साथियों-सहित श्री नर-नारायणजी को दण्डवत करने के उपरान्त, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! संसारी जीवों में ऐसा कोई नहीं है, जिसे हम अपने वश में न कर लेते हों, परन्तु आप तो साक्षात् त्रैलोक्याधिपति हैं, अतः आपको धोखा देने का सामर्थ्य हममें नहीं है। संसारी मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर अपनी तपस्या के फल को भी क्षण भर में नष्ट कर डालते हैं, परन्तु आप क्रोध-रहित हैं, अतः हम आपको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

सहस्रों दण्डवत् करते हैं।" यह प्रार्थना सुनकर श्री नर-नारायणजी ने अपना प्रभाव दिखाने के हेतु रम्भा आदि अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर एक सहस्र स्त्रियाँ वहाँ अपनी माया से उपस्थित कर दीं। वे उनकी सेवा करने के लिए हाथ जोड़कर चारों ओर खड़ी हो गईं। उनके स्वरूप को देखकर कामदेव आदि का अभिमान पल भर में नष्ट हो गया तथा वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि ऐसी सुन्दरियाँ तो हमने इन्द्रलोक में भी कभी नहीं देखी हैं। उस समय श्री नर-नारायण ने कामदेव से कहा–"तुम इन सुन्दरियों को इन्द्रलोक में ले जाओ।" कामदेव बोला–"हे महाप्रभु! यदि ये स्त्रियाँ इन्द्रपुरी में गईं तो वहाँ सब देवता इन्हें पाने के लिए परस्पर लड़ उठेंगे, अतः आप इन्हें यहीं रहने दीजिए।" तब नरनारायण ने कहा–"इनमें जो स्त्री सबसे अधिक कुरूप हो, उसे ले जाओ।" श्री नरनारायण की यह आज्ञा सुनकर कामदेव आदि उनमें से 'उर्वशी' नामक अप्सरा को लेकर इन्द्रलोक में जा पहुँचे तथा इन्द्र को सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय इन्द्र ने श्री नर-नारायणजी को परब्रह्म जानकर बहुत प्रकार से स्तुति की तथा उर्वशी को सम्पूर्ण अप्सराओं की स्वामिनी बना दिया। हे राजन्! तदुपरान्त श्री नारायणजी ने हंसावतार लेकर सनत्कुमार को उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। फिर हयग्रीव का अवतार धारण कर 'मधुकैटभ' नामक दैत्य का संहार किया एवं पाताल से वेद निकालकर ब्रह्मा को सौंपा। फिर मत्स्यावतार लेकर 'राजा सत्यव्रत' को ज्ञान सिखाया। कच्छप अवतार लेकर मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया। मोहिनी अवतार लेकर देवताओं को अमृत पान कराया। वाराह अवतार लेकर पृथ्वी को पाताल से निकाला। वामन अवतार लेकर राजा बलि से पृथ्वी का दान लिया। कपिलदेव अवतार लेकर अपनी माता देवहूती को सांख्य योग का उपदेश किया। परशुराम अवतार लेकर सहस्रबाहु आदि अनेक क्षत्रिय राजाओं का वध किया। रामावतार लेकर लङ्काधीश्वर रावण को मारा। नृसिंह अवतार लेकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की तथा हिरण्यकशिपु को मारा। कृष्णावतार लेकर कंस आदि राजाओं तथा दैत्यों को मारा एवं कौरव-पाण्डवों के बीच महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारा। बुद्ध अवतार लेकर दैत्यों को यज्ञ करने से रोका। कलियुग के अन्त में जब धर्म का लोप हो जायगा, उस समय श्री नारायणजी निष्कलङ्क अवतार लेकर सतयुग के धर्म की पुनः स्थापना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करेंगे। श्रीहरि के इन अवतारों में से जिस किसी स्वरूप पर मन लगे, उसी का पूजन एवं ध्यान करनेवाले मनुष्य को संसार में मनोरथ एवं अन्तकाल में मुक्ति की प्राप्ति होती है।"

पाँचवाँ अध्याय

आठवें तथा नवें योगीश्वरों का ज्ञानोपदेश

इतनी कथा सुनकर राजा जनक ने कहा—"हे योगिराज ! जो मनुष्य श्री नारायणजी के ध्यान एवं स्मरण से विमुख रहते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् किस दशा को प्राप्त होते हैं ?" तब 'चमस' नामक आठवें योगीश्वर ने कहा—"हे राजन् ! चौरासी लाख जड़-चैतन्य जीवों की उत्पत्ति श्री नारायणजी की इच्छा से ही होती है। मृत्यु के पश्चात् सबका जीवात्मा श्रीहरि के स्वरूप में ही मिल जाता है। अतः मनुष्य को उचित है कि वह उन्हें तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारण जानकर दिन-रात उन्हीं की सेवा में लगा रहे तथा उनकी प्रार्थना करता हुआ यह कहता रहे कि हे प्रभो ! आपके भजन के प्रताप से ही ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं को वरदान तथा शाप देने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है, आपके चरणों में भक्ति रखनेवालों का दुःख आपकी कृपा से छूट जाता है, अतः आप मुझ पर भी अपनी कृपा करें। हे जनक ! इस प्रकार का ज्ञान एवं ध्यान करनेवाले मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त होते हैं। जो लोग मनुष्य-शरीर पाकर भी श्रीहरि का स्मरण नहीं करते तथा संसारी माया-मोह में फँसे रहते हैं, जो अधर्म की कमाई से अपना तथा अपने परिवार का पेट पालते हैं, जो सब जीवों में श्रीहरि का एक-सा चमत्कार नहीं देखते, जो बिना प्रयोजन के दूसरों से शत्रुता रखते हैं, जो पराई स्त्री तथा धन को हरने की इच्छा रखते हैं, एवं जो जीवहिंसा आदि अकर्म करते हैं, उनका कभी भी कल्याण नहीं होता है। ऐसे मनुष्य बहुत समय तक नरक का दुःख भोगने के पश्चात् पुनः चौरासी लाख योनियों में जन्म लेते एवं अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। जो मनुष्य अपने उत्पन्न करनेवाले, पालन करनेवाले तथा संहार करनेवाले श्रीहरि को नहीं पहिचानता, उसे अधर्मी समझना चाहिए। जिस प्रकार पेट से पृथक् हो जाने के पश्चात् मल-मूत्र को अशुद्ध माना जाता है, उसी प्रकार श्रीहरि से विमुख रहनेवाला मनुष्य स्थानभ्रष्ट होकर, नरक को प्राप्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो ब्राह्मण अपने स्वार्थ-साधन के लिए अन्य मनुष्यों को वशीकरण, मारण तथा उच्चाटन बताता है तथा मुक्त होने की राह नहीं दिखाता, उसे पाखण्डी तथा अधर्मी कहना चाहिए। जो लोग सन्त, महात्मा तथा हरि-भक्तों को तुच्छ समझकर, सम्पूर्ण जीवों में श्रीहरि का एक-जैसा स्वरूप नहीं देखते तथा वेद के बताये हुए मार्ग पर न चलकर केवल अपना स्वार्थ-साधन करते हैं एवं जो लोग धन पाकर धर्म नहीं करते हैं, उन्हें अभागा तथा पापी जानना चाहिए। हे राजन्! धर्म करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा तृष्णाएँ नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य विरक्त हो जाता है, वही मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। मृत्यु के समय स्त्री, पुत्र आदि कोई भी अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकता, अतः उनके प्रेम में पड़कर नष्ट होना व्यर्थ है। जो मनुष्य अपने शरीर को पुष्ट करने के लिए पशु-पक्षियों को मारकर खाता है, दूसरे जन्म में वे ही पशु-पक्षी उसे मारकर अपना बदला चुकाते हैं। मद्यपान करनेवाले तथा साधु-सन्तों से विमुख रहनेवाले मनुष्यों को यम के दूत नरक में डालकर अत्यन्त कष्ट देते हैं।"

इतनी कथा सुनकर राजा जनक ने कहा—"हे प्रभो! सब युगों में श्री परब्रह्म प्रभु का अवतार किस प्रकार हुआ था?" तब 'करभाजन' नामक नवें योगीश्वर बोले—"हे राजन्! सतयुग में श्रीहरि का अवतार चतुर्भुजी तथा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्णवाला था। सतयुग के सभी मनुष्य धर्मात्मा, सत्यवादी तथा हरिभक्त थे। उस समय संसार में धर्म के चारों चरण वर्तमान थे, अतः सभी प्राणियों को वैकुण्ठ की प्राप्ति होती थी। त्रेतायुग में श्रीहरि का स्वरूप अग्नि के समान लाल तथा वेष ब्रह्मचारी-जैसा हुआ। उस समय संसार में धर्म के तीन चरण विद्यमान थे। द्वापरयुग में श्रीहरि का अवतार नीलमणि के समान श्याम वर्ण का हुआ। उस समय संसार में धर्म के दो चरण विद्यमान थे। कलियुग में श्रीहरि का अवतार कृष्ण रंग का तथा सूर्य के समान तेजस्वी होगा। कलियुग में धर्म का केवल एक चरण रह जाता है, अतः इस युग में मनुष्य निर्धन होते हैं। जो धनवान् होते हैं, वे भी कृपण बनकर दानादि शुभ कर्म नहीं करते। कलियुग में मनुष्य केवल श्रीहरि के चरणों का ध्यान धरने, उनके लीला-चरित्रों को कहने-सुनने तथा भक्ति करने मात्र से ही भव-सागर से पार उतर जाते हैं। जो मनुष्य श्री नारायणजी की शरण में जाते हैं, उन्हें अन्य किसी देवता का भय नहीं रहता तथा वे देव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण से उऋण हो जाते हैं। श्रीहरि के अधीन रहने के कारण कोई उन्हें दुःख भी नहीं पहुँचा सकता। श्रीहरि अपने भक्तों पर कृपा करके उन्हें अकर्मों से बचाये रहते हैं। हे राजन्! कलियुग में जो मनुष्य इस श्लोक को पढ़कर श्रीहरि को दण्डवत् करता है, उसे श्रीहरि संसार में मनोवांछित वस्तु प्रदान करके अन्त में मोक्ष देते हैं। उस श्लोक का यह अर्थ है—"हे प्रभु! मैं आपके चरण-कमलों का ध्यान अपने हृदय में धरता हूँ। आपके चरणों का ध्यान धरनेवाला परम भाग्यशाली होता है। उसे देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा पशु-पक्षी में से किसी का भय नहीं रहता। आपके चरणों में गंगा, यमुना, नर्मदा, सरस्वती आदि सभी तीर्थों का निवास है। आपके चरण-कमल अपने भक्तों के सम्पूर्ण दुःखों को नष्ट कर देते हैं। मैं आपको तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारण जानकर दण्डवत् करता हूँ।"

हे राजन्! सतयुग में दस सहस्र वर्षों तक तपस्या करने से श्री नारायणजी प्रसन्न होते थे। त्रेतायुग में एक सहस्र वर्ष तक तपस्या करने से प्रसन्न होते हैं तथा द्वापरयुग में सौ वर्षों तक पूजा एवं स्मरण करने से श्रीहरि मनुष्य का मनोरथ पूर्ण करते हैं, परन्तु कलियुग में यदि कोई मनुष्य एक दिन-रात ही सच्चे हृदय से श्री नारायणजी का स्मरण करे तो वे उसकी मनोकामना को पूर्ण कर देते हैं। यही कारण है कि बड़े-बड़े योगियों तथा ऋषि-मुनियों की सदैव यह इच्छा बनी रहती है कि यदि हमारा जन्म कलियुग में भरतखण्ड के बीच होता तो हम थोड़े ही परिश्रम से श्रीहरि की कृपा प्राप्त कर लेते। हे राजन्! हमें इसी बात का आश्चर्य है कि कलियुग में मनुष्य ऐसे सहज प्राप्त श्रीहरि का भजन एवं स्मरण भी नहीं करते। श्री त्रिलोकीनाथजी ने गीता में अपने मुख से यह कहा है कि जो व्यक्ति स्वयं को मन, वचन तथा कर्म से मुझे सौंप देता है, उसके सभी भय तथा क्लेश दूर हो जाते हैं।

इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले—"हे वसुदेवजी! इस प्रकार उन नौ योगीश्वरों ने जब राजा जनक को ज्ञानोपदेश किया, तब राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी विधि-पूर्वक पूजा की तथा परिक्रमा और स्तुति करने के उपरान्त उन्हें बिदा कर, अपने हृदय से राज्य, परिवार तथा धन के मद-मोह को त्याग दिया। उसी पुण्य के फल से वह सदेह वैकुण्ठलोक में जा पहुँचे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः तुम भी इस ज्ञान पर विश्वास रखकर श्रीहरि का भजन करो। उससे तुम्हारी भी मुक्ति हो जायगी। हे वसुदेव! तुम्हारे घर में साक्षात् श्री त्रिलोकीनाथजी ने अवतार लिया है तथा तुम उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय जानकर स्नेह करते हो, अतः तुम्हारी मुक्ति में कोई संशय नहीं है। अब तुम उन्हें, अपना पुत्र न मानकर, परब्रह्म प्रभु के रूप में समझो। उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए तथा अपने भक्तों को सुख देने के लिए इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण किया है। उनका दर्शन प्राप्त करने के लिए ही मैं भी यहाँ आता हूँ।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! नारदजी के मुख से यह ज्ञान सुनकर वसुदेव तथा देवकी को विश्वास हुआ कि श्री मुरलीमनोहर श्रीहरि के अवतार हैं, तब वे दोनों श्री श्यामसुन्दर के चरणों पर गिरकर, पुत्रभाव त्याग, उन्हें श्री नारायणजी मानकर भजने लगे। तदुपरान्त नारद भी उनसे बिदा होकर ब्रह्मलोक को चले गये। हे राजन्! जो मनुष्य इस अध्याय की कथा को सच्चे मन से सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से छूटकर मुक्ति-पद को प्राप्त करेगा।"

छठवाँ अध्याय

ब्रह्मादि देवताओं का श्री श्यामसुन्दर के पास पहुँचना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! नारदजी के जाने के पश्चात् एक दिन जब श्री मुरलीमनोहर सुधर्मा सभा में बैठे हुए थे, उसी समय ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, कुबेर, वरुण आदि देवता तथा ऋषि-मुनि श्री बाँकेविहारी के दर्शन प्राप्त करने के हेतु, आकाश-मार्ग से चलकर द्वारिकापुरी में आ पहुँचे तथा उनके ऊपर नन्दनवन के पुष्पों की वर्षा करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे परब्रह्म प्रभु! आपके जिन चरण-कमलों का ध्यान धरकर योगी, ऋषि-मुनि आदि मुक्ति-पद प्राप्त करते हैं, उन्हीं का दर्शन पाकर हम भव-सागर से पार उतरने की कामना रखते हैं। हे निर्गुण स्वरूप! आप सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश के कारण हैं। यज्ञ, तप, ध्यान तथा तीर्थ आदि करने पर भी, आपकी भक्ति के बिना किसी को इस लोक तथा परलोक में सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता है। जब तक आपकी कृपा से पूर्वजन्म के पुण्य सहायक न हों, तब तक आपके चरणों में मन नहीं लगता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

हे महाप्रभु ! आपने हम सबकी प्रार्थना स्वीकार कर, इस मर्त्यलोक में सगुण अवतार ग्रहण किया है। आपने एक सौ पचीस वर्ष तक इस संसार में निवास करके साधु-वैष्णवों को सुख दिया तथा अधर्मी एवं दुष्ट राजाओं का संहार किया है। हे त्रिलोकीनाथ ! अब दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण छप्पन करोड़ यदुवंशी भीतर ही भीतर इस प्रकार जल रहे हैं, जिस प्रकार कि कोई वृक्ष भीतर से खोखला हो जाता है। अतः अब आप जो उचित समझते हों, वह कार्य कीजिए।"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! ब्रह्मादि देवताओं की इस प्रार्थना को सुनकर श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा—"हे ब्रह्माजी ! मैंने आपकी इच्छा समझ ली है। मैं संसार में आकर कंस, जरासन्ध, कालयवन आदि अधर्मी राजाओं का संहार कर चुका तथा कौरव-पाण्डवों के बीच महाभारत कराके पृथ्वी का भार दूर कर चुका हूँ। अब केवल यदुवंशियों का विनाश करना शेष बच गया है, सो कुछ दिनों में उन्हें भी नष्ट करके मैं वैकुण्ठलोक में आ पहुँचूँगा। तुम लोग निश्चिन्त होकर अपने स्थान को जाओ।" श्रीहरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर ब्रह्मादि देवता प्रसन्न हो, अपने-अपने लोक को चले गये। तदुपरान्त श्री मुरलीमनोहर ने वैकुण्ठलोक जाने का विचार करके एक दिन राजा उग्रसेन की सभा में यदुवंशियों से इस प्रकार कहा—"हे भाइयो ! दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण द्वारकापुरी में प्रतिदिन नये-नये अपशकुन होते हैं, अतः हम लोगों को इन उपद्रवों की शान्ति के हेतु प्रभास क्षेत्र में चलकर स्नान, दान, यज्ञ, हवन आदि करके, इस दोष को दूर करना चाहिए। जिस प्रकार समुद्र में निवास करने के कारण चन्द्रमा का क्षयी रोग नष्ट हो गया था, उसी प्रकार प्रभास क्षेत्र में स्नान एवं दान करने से हम लोगों का दोष भी दूर हो जायगा।" श्री मुरलीमनोहर के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्रीहरि के बाल्यावस्था के साथी भक्तराज उद्धव ने अपनी आँखों में आँसू भरकर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! यदुवंशियों को प्रभास क्षेत्र में ले जाने का कारण मैं यह समझता हूँ कि आप वहाँ यदुवंशियों को नष्ट करके स्वयं भी वैकुण्ठ-लोक को पधार जायँगे, अन्यथा जब आपके तीर्थरूपी चरण-कमलों का ध्यान करने मात्र से ही सहस्रों शाप नष्ट हो जाते हैं, तब प्रभास क्षेत्र में जाने की क्या आवश्यकता है ? हे त्रिभुवनपति ! जिस प्रकार आपने मुझे बाल्यावस्था से अपने साथ रखा है, उसी प्रकार आप अब भी मुझे अपने साथ ही ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलें तथा ऐसा वरदान देने की कृपा करें कि जिस किसी योनि में मेरा जन्म हो, वहाँ मेरे हृदय में आपके चरण-कमलों की भक्ति सदैव बनी रहे।"

सातवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश

श्री शुकदेवजी बोले–"हे परीक्षित ! इस प्रकार उद्धव ने श्री मुरलीमनोहर की बहुत विनय की, तब श्रीहरि उसे अपना भक्त तथा मित्र जानकर इस प्रकार कहने लगे–"हे उद्धव ! यह सच है कि सभी यदुवंशी दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण जल रहे हैं तथा आज से सातवें दिन वे सब नाश को प्राप्त हो जायँगे। तब यह द्वारकापुरी भी समुद्र में डूब जायगी। हे मित्र ! ब्रह्मादि देवता मुझे बुलाने के लिए आये थे, अतः अब मैं भी अपना शरीर त्याग कर वैकुण्ठलोक को चला जाऊँगा। अब तुम्हें यह उचित है कि सर्व प्रथम तुम संसारी माया-मोह से विरक्त होकर मेरे चरणों में ध्यान लगाओ। मैं तुम्हें दुर्वासा ऋषि के शाप से मुक्त करता हूँ। मेरे जाने के पश्चात् इस पृथ्वी से धर्म भी उठ जायगा।" श्रीहरि के मुख से यह वचन सुनकर भक्तराज उद्धव ने रोते हुए कहा–"हे प्रभो ! यदि मैं ज्ञान प्राप्त किये बिना ही संसार से विरक्त हो जाऊँगा तो उससे कोई लाभ न होगा, अतः आप कृपा करके ऐसे ज्ञान का उपदेश कीजिए, जिसे मैं मृत्यु पर्यन्त न भुला सकूँ।" श्री बाँकेविहारी बोले–"हे उद्धव ! संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उस सबको मिथ्या समझकर, तुम अपना ध्यान मेरे चरणों में लगाओ। जब तुम संसारी वस्तुओं का मोह त्याग दोगे तथा मेरे अविनाशी स्वरूप का सच्चे हृदय से ध्यान धरोगे, उस समय तुम मुझे सदैव अपने पास पाओगे। जिस प्रकार प्याऊ पर अनेक मनुष्य एकत्रित होते हैं तथा पानी पीने के पश्चात् अलग-अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि भी किसी की मृत्यु होने पर साथ न जाकर, अपने घर को लौट आते हैं। अतः उन सबके प्रेम को मिथ्या समझना चाहिए। प्रत्येक प्राणी के साथ केवल ज्ञान, वैराग्य एवं पाप-पुण्य ही साथ जाता है। इसलिए मनुष्य को यह उचित है कि वह अपनी मृत्यु को सदैव निकट आया हुआ जानकर आठों प्रहर मेरा ध्यान धरता रहे तथा सभी जड़-चैतन्य जीवों में मेरा एक-सा प्रकाश जानकर, किसी को दुःख न दे। जिस प्रकार दिन-रात आते-जाते रहते हैं, उसी प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संसार में प्राणियों के जन्म-मरण का क्रम चलता रहता है। इस बात को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता कि मृत्यु के उपरान्त वह किस योनि में जन्म लेगा।"

श्री श्यामसुन्दर के श्रीमुख से यह उपदेश सुनकर भक्तराज उद्धव ने कहा—"हे अन्तर्यामिन्! स्त्री-पुत्रादि का मोह त्याग कर विरक्त होना अत्यन्त कठिन है। अतः आप मुझ अज्ञानी पर दया करके कोई ऐसा सरल उपाय बताइये, जिससे मैं संसारी माया-मोह से विरक्त होकर आपके चरण-कमलों की भक्ति प्राप्त कर सकूँ। आप मुझे ज्ञानरूपी नौका पर बैठाकर भवसागर से पार उतार दीजिये।" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! जिस प्रकार वायु सब वस्तुओं से पृथक् रहती है, उसी प्रकार तुम भी सब अच्छी-बुरी वस्तुओं को इस शरीर से पृथक् जानकर, संसारी माया का त्याग दो। जिस प्रकार चन्द्रमा की कला प्रतिदिन घटती-बढ़ती रहती है, उसी प्रकार यह शरीर भी बाल्यावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था को प्राप्त कर सदैव एक-सा नहीं रहता है। जिस प्रकार सूर्यनारायण पृथ्वी, पर्वत तथा जल—सब पर अपना प्रकाश समान रूप से फैलाते हैं तो भी किसी से कुछ प्रेम नहीं रखते, उसी प्रकार तुम भी सब वस्तुओं से अपने मन को विरक्त कर लो। जिस प्रकार कबूतर तथा कबूतरी अपने बच्चों के मोह में फँसकर स्वयं नष्ट हुए थे, उसी प्रकार संसारी मनुष्य भी स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर अत्यन्त कष्ट उठाते हैं।" यह सुनकर उद्धव ने कहा—"हे स्वामिन्! आप मुझे उन दोनों पक्षियों की कथा विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें।" श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! एक कबूतर अपनी पत्नी कबूतरी के साथ किसी वृक्ष पर रहता था। जिस प्रकार इन्द्र अपनी पत्नी इन्द्राणी के साथ विलास करता है, उसी प्रकार वह भी दाम्पत्य-जीवन का आनन्द उठाता था। एक दिन कबूतर अपनी पत्नी-सहित चारा लेने के लिए कहीं गया था उसी बीच एक बहेलिये ने उसके घोंसले के पास पहुँचकर उसके बच्चों को अपने जाल में फँसा लिया। उस समय बच्चों के प्रेम में व्याकुल होकर वे कबूतर तथा कबूतरी भी जाल में कूद पड़े। तब बहेलिया उन्हें भी लेकर अपने घर चला गया। हे उद्धव! जिस प्रकार कबूतर तथा कबूतरी ने अपने बच्चों की प्रीति में पड़कर अपने प्राण दिये तथा बच्चे उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सके, उसी प्रकार संसारी मनुष्य भी स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़कर नरक का दुःख भोगते हैं। वहाँ कोई भी उनकी सहायता नहीं कर पाता। अतः ऐसों के लिए स्वयं दुःख उठाना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा अपने परलोक को बिगाड़ना कभी भी उचित नहीं है। हे उद्धव ! इस सम्बन्ध में एक और इतिहास सुनो। पुरातन युग में 'यदु' नामक एक राजा ज्ञान प्राप्ति के हेतु अनेक ऋषि-मुनियों तथा योगियों के पास जाया करता था। एक दिन उसी अभिलाषा में वह गोदावरी नदी के तट पर जा पहुँचा। वहाँ दत्तात्रेय नामक एक परम तेजस्वी ब्राह्मण को बैठे देखकर, राजा अपनी पालकी से उतर पड़ा तथा उनके समीप जा, हाथ जोड़, परिक्रमा करने के उपरान्त इस प्रकार कहने लगा—"हे महापुरुष ! आपने तरुणावस्था में यह पद कैसे प्राप्त किया है ? आपका तेज देखने से यह प्रतीत होता है कि आप कोई बड़े ज्ञानी हैं जो अपने गुण को छिपाये हुए हैं, आप किसी भी वस्तु को अपने पास न रखकर संसार से ऐसे विरक्त दिखाई दे रहे हैं, जैसे कमल का फूल जल में उत्पन्न होकर भी जल से पृथक् रहता है। संसारी मनुष्यों को देखने पर यह पता चलता है कि वे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की अग्नि में पड़े रहकर एक क्षण को भी सुख प्राप्त नहीं कर पाते हैं। परन्तु आप तो इस प्रकार से आनन्दमूर्ति दिखाई पड़ते हैं, जैसे ज्येष्ठ मास की तपन से व्याकुल गजराज शीतल जल में स्नान करने के उपरान्त प्रसन्न हो जाता है। हे प्रभो ! इसलिए मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि श्रीहरि की कृपा से आपको जो ज्ञान प्राप्त हुआ हो, उसे मुझे भी सुनाने की दया करें।" यह सुनकर दत्तात्रेय ने राजा की ओर देखकर, हँसते हुए कहा—"हे राजन् ! मैंने अपने चौबीस गुरुओं से जो ज्ञान सीखा है, वह मैं तुमसे कहता हूँ। पचीसवाँ गुरु मेरा यह शरीर है। सुनो, जब मैंने अपने शरीर के सम्बन्ध में विचार किया तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि इसमें मल, मूत्र, रक्त, मांस आदि अपवित्र वस्तुएँ भरी हुई हैं। श्रीहरि का ध्यान धरने एवं शुभ कर्म करने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। तब मैंने यह सोचा कि मैं इस संसारी माया में पड़कर अपने जन्म को नष्ट क्यों करूँ ? ऐसा निश्चय करके मैं अकेला ही अपने घर से निकल पड़ा तथा बावलों के समान चारों ओर फिरने लगा। उस समय छोटे-छोटे बालक मुझे पागल समझकर मुझे पत्थर मारने तथा गाली देने लगे। हे राजन् ! जिस गुरु ने मुझे गायत्री मन्त्र का उपदेश किया था, उसे इन चौबीस गुरुओं से पृथक् समझो। अब मेरे चौबीस गुरुओं के विषय में सुनो। मेरा सबसे पहिला गुरु पृथ्वी है। इससे मैंने तीन बातें सीखी हैं। मैंने एक पर्वत को देखकर यह विचार किया कि यह पृथ्वी से ऊँचा रहकर असंख्य मनुष्यों तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पशु-पक्षियों को अपने ऊपर रहने को आश्रय देता है तथा आँधी, पानी में भी अपने स्थान से नहीं हिलता। उस समय मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को यह चाहिए कि वह संसारी माया-मोह से जो कि आँधी-पानी के समान है, दूर रहकर अपने स्थान से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य का शरीर मुट्ठीभर मिट्टी से बना हुआ है तथा उसकी आयु वायु के समान दूर होती चली जाती है। फिर मैंने पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले उन वृक्षों को देखा जो अपनी छाया तथा फल-फूलों से सब प्राणियों को सुख देते हैं तथा स्वयं एक पाँव से खड़े रहकर वर्षा, ग्रीष्म, शीत, वायु आदि का दुःख उठाते हुए भी कभी विचलित नहीं होते। एक दिन मैंने अपने घर से बाहर निकलकर यह देखा कि एक वृक्ष की छाया में बहुत से मनुष्य बैठे हुए थे। जब वे विश्राम करने के उपरान्त वहाँ से जाने लगे तो किसी ने उस वृक्ष की डाली को तोड़ लिया तथा किसी ने फल तथा पुष्पों को तोड़ा। इतने पर भी वृक्ष ने उनसे कुछ नहीं कहा। उस दृश्य को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि मनुष्य को अपना शरीर तथा धन परोपकार के निमित्त मिला हुआ जानकर अपने प्राणों तक का दान देने में भी कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। यह शरीर तो मिट्टी का पुतला है, जो सदैव बनता-बिगड़ता रहता है, अतः इससे अधिक उत्तम और कोई बात नहीं है कि यह किसी अन्य प्राणी के काम आ सके। तीसरी बात मैंने पृथ्वी में यह देखी कि संसारी जीव उसके हृदय पर पाँव रखकर चलते हैं, फिर भी वह किसी को भला-बुरा नहीं कहती। इससे मैंने अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को भी किसी के द्वारा निन्दा अथवा स्तुति किए जाने पर अप्रसन्न होना अथवा प्रसन्न होना नहीं चाहिए। हे राजन्! मेरा दूसरा गुरु वायु है। मैंने वायु को सुगन्धित पुष्पों एवं लहसुन आदि दुर्गन्धित पदार्थों के बीच समान रूप से बहते हुए देखकर यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को भी उचित है कि वह कर्मानुसार जो कुछ भी मीठा-कड़ुवा मिल सके, उसी को खाकर सन्तोष धारण करे तथा आनन्दपूर्वक श्रीहरि नाम का स्मरण करता रहे। किसी की स्तुति अथवा निन्दा न करे हे राजन्! मेरा तीसरा गुरु आकाश है। जिस प्रकार गूलर के फल के भीतर छोटे-छोटे मच्छर भरे रहते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी तथा आकाश की गोलाई के बीच सम्पूर्ण जड़-चैतन्य जीवों का निवास है। इस ब्रह्माण्ड रूपी आकाश के भीतर मैंने यह देखा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि सूर्य का प्रकाश स्वर्ण, चाँदी अथवा मिट्टी से निर्मित पात्रों के पानी में एक जैसा पड़ता है, उसे किसी मिश्रण का आश्रय प्राप्त नहीं है। यदि किसी बर्तन को तोड़कर पानी बहा दिया जाय तो वह प्रकाश पुनः सूर्य में मिल जाता है तथा यदि बर्तन में ही रहे तो सूर्य का तेज कुछ घटता भी नहीं है। यह देखकर मैंने अनुभव किया कि चौरासी लाख योनियों में परब्रह्म पुरुष का एक-सा प्रकाश समझना चाहिए। जीवों के जन्म-मरण से उन्हें कुछ लाभ-हानि नहीं होती। हे राजन्! मेरा चौथा गुरु मोती के समान निर्मल जल है। जहाँ कहीं वह जल मैला दिखाई देता है, वहाँ मिट्टी अथवा राख आदि के मिश्रण का कारण समझना चाहिए। अन्यथा वह अपनी उज्ज्वलता एवं पवित्रता से सम्पूर्ण विश्व को शुद्ध करता रहता है। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को भी जल के समान शुद्ध तथा निर्मल रहकर, अपने समीप बैठनेवालों को ज्ञानोपदेश द्वारा निर्मल तथा पवित्र बना देना चाहिए, जिससे सभी छोटे-बड़े लोग उसे श्रेष्ठ कहें। हे राजन्! मेरा पाँचवाँ गुरु अग्नि है, जिसमें डालने से सम्पूर्ण वस्तुएँ भस्म हो जाती हैं, दूसरे दिन के लिए नहीं बचतीं। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि जिस प्रकार अग्नि में यज्ञ तथा हवन करने से सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य को भी यह चाहिए कि जो कुछ मिले, उसे उसी दिन खर्च कर डाले, दूसरे दिन के लिए न रक्खे। यदि कोई कुछ खिलाये तो उसे खाकर, अपने आशीर्वाद द्वारा, खिलानेवाले के पाप को नष्ट कर दे। हे राजन्! मेरा छठवाँ गुरु चन्द्रमा है। जिस प्रकार चन्द्रमा सदैव एक रूप रहता है, परन्तु सूर्य के समीप तथा दूर आने-जाने के कारण उसका तेज घटता-बढ़ता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य संसार में जन्म लेता तथा मरता है। जिस आत्मपुरुष का प्रकाश चौरासी लाख योनियों में एक जैसा व्याप्त है वह सबसे पृथक् एवं सदैव एकरस रहता है। अतः मैंने परमात्मा को भी अपना गुरु माना। हे राजन्! मेरा सातवाँ गुरु सूर्य है। सूर्य से मैंने दो वस्तुएँ पाईं। पहिली तो यह कि जिस प्रकार सूर्य आठ मास तक समुद्र एवं नदियों के पानी को सोख कर वर्षा ऋतु के चार महीनों में उसे बरसा देते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य को भी यह उचित है कि उसे जो वस्तु प्राप्त हो, उसे अपने पास रखने का लालच न करके किसी दूसरे को दे डाले। दूसरी यह कि जिस प्रकार पानी से भरे हुए अनेकों बर्तन धूप में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रख दिए जायँ तो उन सब में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, फिर भी सूर्य एक से अधिक नहीं होता, उसी प्रकार परमात्मपुरुष केवल एक ही है तथा उसका प्रतिबिम्ब सभी जीवों में दिखाई देता है। हे राजन्! मेरा आठवाँ गुरु कबूतर नामक पक्षी है। जिस प्रकार वह अपने बच्चों के लिए जाल में दाना चुगने गया और बहेलिया उसे पकड़कर अपने घर ले गया, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य भी स्त्री-पुत्रादि की संसारी मोहमाया में पड़कर नष्ट हो जाता है। उस पक्षी ने एक दिन में जितना कष्ट उठाया, उतना सुख वह सहस्रों वर्षों में भी प्राप्त नहीं कर सकता था। अतः यह अनुभव करके मैं भी स्त्री-पुत्रादि का मोह त्याग कर सदैव अकेला तथा प्रसन्न बना रहता हूँ।"

आठवाँ अध्याय

दत्तात्रेय द्वारा राजा यदु को ज्ञानोपदेश

दत्तात्रेय बोले—"हे राजन्! मेरा नवाँ गुरु अजगर नामक एक सर्प है। उसने जहाँ जन्म लिया, वहीं पड़ा रहता था तथा अपना भोजन ढूँढ़ने के लिए कहीं नहीं गया। हिरण आदि पशु उसके अंग में जब अपने सींग चुभाते थे तो वह एकाध को उठाकर निगल जाता था। इस प्रकार श्रीहरि उसका पालन करते थे। यदि कभी वह भूखा रह जाता तो भी सन्तोष कर लिया करता था। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्यों को भिक्षा माँगने के लिए किसी के द्वार पर जाना अपनी मर्यादा खोना है। अतः उसी दिन से मैं किसी के द्वार पर भोजन माँगने के लिए नहीं जाता। श्री नारायणजी बिना माँगे ही जो कुछ भेज देते हैं, उसी को खाकर सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहता हूँ। हे राजन्! मेरा दसवाँ गुरु समुद्र है। वर्षाऋतु में अनेक नदियों का जल बढ़ जाने पर भी न तो वह अपनी सीमा को नाँघता है और न ग्रीष्म तथा शीतकाल में सूखता ही है। वह सदैव एक रस रहता है। उसके आदि-अन्त को भी कोई नहीं जानता। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को समुद्र की भाँति निश्चिन्त रहना चाहिए तथा लाभ-हानि होने पर हर्ष-विवाद नहीं करना चाहिए। हे भूपाल! मेरा ग्यारहवाँ गुरु पतङ्ग है। जिस प्रकार वह दीपक पर मोहित हो, उससे मिलने के लिए निर्भयतापूर्वक समीप जाकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार जो संसारी जीव अपनी स्त्री, पुत्र, धन आदि के मोह में फँस जाते हैं, वे अन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय नरक को प्राप्त होते हैं। अतः मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को अन्य मोह-माया में न पड़कर पतङ्ग के समान श्रीहरि से प्रेम करके अपने प्राण त्यागने चाहिए, जिससे उसे मुक्ति-पदार्थ की प्राप्ति हो। स्त्री रूपी दीप-शिखा से प्रेम करने पर मनुष्य रूपी पतङ्ग के ज्ञान-वैराग्यरूपी दोनों पंख जल जाते हैं, तब पंगु हो जाने के कारण वह वैकुण्ठ में नहीं पहुँच पाता, अतः माया रूपी स्त्री से पृथक् रहकर, उसके समीप एकान्त में कभी नहीं बैठना चाहिए। जो मनुष्य स्त्री तथा धन से सुख-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे पतङ्ग के समान जलकर नष्ट हो जाते हैं। यह बात अनुभव करके मैंने स्त्री की संगति को त्याग दिया है। हे पृथ्वीपति! मेरा बारहवाँ गुरु मधुमक्खी है। एक बार मैंने यह देखा कि मधुमक्खी ने बड़े परिश्रम से छत्ते में शहद एकत्रित किया तथा अत्यन्त कृपण बनकर उसे न तो स्वयं खाया और न किसी दूसरे को ही खाने दिया। कुछ समय बाद एक भील ने आकर उसके छत्ते को जला डाला तथा सम्पूर्ण शहद निकालकर स्वयं ले गया। इस दृश्य को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि द्रव्य-संचय करनेवालों की यही दशा होती है। उसी दिन से मैं अपने पास की सम्पूर्ण वस्तुएँ दूसरे दिन के लिए न रखकर, तत्काल व्यय कर देता हूँ। ज्ञानी मनुष्य को अपने भोजन से अधिक लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संचय की जानेवाली वस्तु मधुमक्खी के छत्ते के समान नष्ट हो जाती है। हे राजन्! मेरा तेरहवाँ गुरु हाथी है। एक बार मैंने यह देखा कि हाथी फँसानेवालों ने वन में एक गड्ढा खोदकर उसे सीकों से पाट दिया तथा काले कागज के एक हाथी तथा हथिनी को बनाकर उसके ऊपर खड़ा कर दिया। उसी समय एक जंगली हाथी उस कागज की हथिनी को वास्तविक हथिनी समझकर, काम के वशीभूत हो, दौड़ा हुआ वहाँ आ पहुँचा तथा उस गड्ढे में गिरकर असहाय बन गया। तब हाथी पकड़नेवालों ने उसे रस्सी में बाँध लिया। वह दृश्य देखकर मैंने अपने मन में यह विचार किया कि ज्ञानी मनुष्य को स्त्री की कामना कभी नहीं करनी चाहिए। यहाँ तक कि कठपुतली से भी प्रीति न रक्खे। जिस प्रकार हाथी ने अवास्तविक हथिनी के पीछे गड्ढे में पड़कर दुःख प्राप्त किया, उसी प्रकार परस्त्री गमन करनेवाले मनुष्य नरक में पड़कर अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। हे राजन्! मेरा चौदहवाँ गुरु मधुमक्खी के छत्ते से शहद निकालने-वाला किरात है, जो मधुमक्खियों द्वारा बहुत दिनों से संचय किए हुए शहद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को एक बार में ही निकालकर ले जाता है। उसे देखकर मैंने अनुभव किया कि यदि वे मक्खियाँ उस शहद को स्वयं खा लेतीं तो वह किरात उसे किस प्रकार ले जाता? इससे निष्कर्ष निकला कि जो लोग किसी वस्तु का संचय करते हैं, उन्हें दुःख के अतिरिक्त सुख प्राप्त नहीं होता। अतः ज्ञानी को उचित है कि वह धन-धान्य का सञ्चय करनेवाले गृहस्थ से केवल अपने प्रयोजन भर भोजन ग्रहण करे। झोली बाँधकर चलने से, उसे मार्ग में किसी के द्वारा अपहरण भी किया जा सकता है। हे पृथ्वीपति! मेरा पंद्रहवाँ गुरु हिरन है। जिस प्रकार वह संगीत की लय पर मुग्ध होकर ठिठक कर रह जाता है तथा उसी समय शिकारी का बाण लगने के कारण अपने प्राण गँवाता है, उसी प्रकार संसारी मनुष्य माया रूपिणी स्त्री के गायन तथा शब्द को सुनकर उसके वशीभूत हो जाते हैं, जिससे उन्हें नरक की प्राप्ति होती है। अतः ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह किसी स्त्री से संभाषण न करे तथा अपने स्थान से उठकर कहीं न जाय। हे नृपति! मेरा सोलहवाँ गुरु मछली है। मैंने एक मछली को वंशी (मछली पकड़ने की एक कटिया, जिसकी नोंक में आटा लगा रहता है) में फँसे हुए देखकर यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को सुस्वादु भोजन ढूँढ़ने और उसे प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। श्री नारायणजी जो कुछ भी रूखा-सूखा खाने को दे दें, उसी को खाकर सन्तुष्ट रहना चाहिए, पंचभूतात्मा तथा जिह्वा को वश में रखने से लोक में प्रशंसा तथा परलोक में सुख की प्राप्ति होती है। हे नृप श्रेष्ठ! मेरा सत्रहवाँ गुरु 'पिङ्गला' नामक एक वेश्या है। एक दिन मैंने राजा जनक के नगर में जाकर यह देखा कि वह पिङ्गला वेश्या सन्ध्या होते ही सोलह शृङ्गार करके किसी व्यसनी के आगमन की प्रतीक्षा में आधी-रात तक अपने द्वार पर बैठी रही, परन्तु जब फिर भी उसका कोई ग्राहक नहीं आया, तब वह अत्यन्त उदास हो, घर के भीतर जा, शैया पर लेट रही। उसी समय उसे नींद में ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ, जैसा दस सहस्र वर्षों तक तप-ध्यान करने पर भी उसे कभी नहीं मिल पाता। उस ज्ञान के मिलने पर वेश्या ने अपने मन में यह विचार किया कि मुझे धिक्कार है जो मैंने अब तक सच्चे प्रेमी श्री त्रिलोकीनाथजी का स्मरण त्याग कर, मिथ्या-प्रेमी संसारी मनुष्यों से अपनी प्रीति लगाई है। मेरे समान महामूर्ख अन्य कोई न होगा। मैंने अपने शरीर में वर्त्तमान जगत्पति की ओर भूल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर भी नहीं निहारा। मेरा यह शरीर वायु, मिट्टी, हड्डी, मांस आदि से निर्मित होकर नसों रूपी रस्सियों से उसी प्रकार बँधा हुआ है, जिस प्रकार काठ का चरखा डोरे से बँधा रहने के कारण दिन-रात घूमता रहता है, जिस प्रकार किसी मकान में अनेक दरवाजे होते हैं, उसी प्रकार इस शरीर में भी नाक, कान आदि नौ द्वार हैं। इन प्रत्येक द्वारों से अशुद्ध एवं अपवित्र वस्तुएँ बाहर निकलती रहती हैं। मैंने इस घर में रहकर स्वयं को प्रसन्न रखना चाहा, परन्तु अब यह ज्ञात हुआ है कि इस मिथ्या संसार में रहनेवाले प्राणी को दुःख के अतिरिक्त सुख कभी नहीं मिलता है। केवल श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करने से ही लोक-परलोक सुधर सकता है। जितना धन पाने के लिए मैं मृत्यु के पूर्व किसी काम न आनेवाले अपने व्यसनी को रिझाया करती थी, उतना शृङ्गार करके यदि मैं श्री त्रिलोकीनाथ को अपने प्रति आकर्षित करती तो मेरा परलोक कभी का बन जाता। दुःख है कि मैंने अब तक उन लोगों से सुख-प्राप्ति की आशा की, जो स्वयं ही मायारूपी रस्सी से बँधे हुए अपने दुःख से दुखी हैं। अब मुझे यह प्रण करना चाहिए कि मैं वैकुण्ठ लोक का सुख देनेवाले श्री नारायणजी के अतिरिक्त अन्य किसी भी संसारी मनुष्य से प्रीति नहीं करूँगी। जो लोग विपत्ति में किसी काम नहीं आ सकते, भला मैं उनकी ओर क्यों देखूँ? श्रीहरि से बढ़कर महादानी अन्य कोई नहीं है; अतः उनके अतिरिक्त किसी अन्य से कुछ क्यों माँगूँ? संसारी मनुष्य में इतनी सामर्थ्य कहाँ है, जो वह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर सके? यदि मैं यह कहूँ कि आज किसी व्यसनी के न मिलने के कारण ही मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो इसका उत्तर यह है कि आज के समान पहिले भी अनेक अवसर ऐसे आये हैं, जब मेरे पास कोई व्यसनी नहीं आया था; परन्तु तब मेरे हृदय में ऐसा ज्ञान कभी उत्पन्न नहीं हुआ था। आज तो न जाने पूर्व जन्म का कौन-सा पुण्य उदय हुआ है, जो मुझे इस ज्ञान की प्राप्ति हुई? हे राजन्! इस प्रकार वह वेश्या तीन प्रहर रात्रि बीतने तक ज्ञानपूर्ण बातों पर विचार करती रही। दूसरे दिन जब वह सोकर उठी तो उसने यह निश्चय कर लिया कि अब मैं वेश्यावृत्ति नहीं करूँगी तथा श्रीहरि के चरणों में ही आठों प्रहर अपना ध्यान लगाये रहूँगी।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित! उस पिङ्गला वेश्या को यह ज्ञान दत्तात्रेय के दर्शन प्राप्त होने के कारण ही मिला था,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु उसे इस रहस्य का आभास नहीं था। तदुपरान्त दत्तात्रेय ने राजा यदु से कहा—"हे नृपश्रेष्ठ! पिङ्गला वेश्या की ऐसी दशा देखकर मैंने भी उसी दिन से संसारी मोह-माया को त्याग दिया तथा अब दिन-रात श्री नारायणजी के ध्यान में ही मग्न रहता हूँ। हे राजन्! संसारी वस्तुओं की तृष्णा रखने पर मनुष्य को अत्यन्त दुःख उठाना पड़ता है। इसके विपरीत श्रीहरि का स्मरण करने से लोक में सुख तथा मृत्यु के उपरान्त मुक्ति-पद की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार वह वेश्या अपने संसारी प्रेमियों की प्रीति को त्याग कर मुक्त हो गई, उसी प्रकार सबसे विरक्त होकर श्रीहरि का स्मरण करनेवाले मनुष्य भी भवसागर से पार उतर जाते हैं।"

नवाँ अध्याय

दत्तात्रेय द्वारा अपने गुरुओं की कथा का वर्णन

दत्तात्रेय ने कहा—"हे राजन्! मेरा अठारहवाँ गुरु 'चील' नामक पक्षी है। एक दिन मैंने यह देखा कि एक चील अपने चंगुल में मांस का टुकड़ा दबाये उड़ी चली जा रही थी। उसे देखकर अन्य कई चीलें मांस का टुकड़ा छीनने के लिये उसके ऊपर झपट पड़ीं तथा उसे अपनी चोंच से घायल करने लगीं। उस समय उस चील ने अपने मन में यह विचार किया कि यद्यपि इन अन्य चीलों से मेरी कोई शत्रुता नहीं है, परन्तु ये सब मांस के टुकड़े के लिए ही मुझे मार रही हैं, अतः मुझे इस टुकड़े को छोड़ देना चाहिए। ऐसा निश्चय करके उस चील ने मांस का टुकड़ा गिरा दिया। तब अन्य चीलें उस टुकड़े को लेकर चली गईं और वह पहली चील एक वृक्ष के ऊपर आनन्द-सहित जा बैठी। इस दृश्य को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि धन आदि वस्तुएँ अपने पास रखने से पारिवारिक लोग तथा चोर-ठग आदि मेरे साथ शत्रुता करेंगे, अतः मैं सब वस्तुओं को त्याग कर प्रसन्नतापूर्वक यहाँ श्रीहरि का भजन करता रहता हूँ। हे राजन्! मेरा उन्नीसवाँ गुरु अज्ञानी बालक है। वह कभी भी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत नहीं होता। वह इतना विरक्त होता है कि यदि वह अपने हाथ में बहुमूल्य मणि लिए हुए हो और कोई अन्य मनुष्य उसे मेवा-मिष्टान्न के बदले माँगे तो उसे तुरन्त दे डालता है। वह अपने घर-द्वार से कुछ भी स्नेह न रखकर ज्ञानियों के समान निर्लिप्त एवं विरक्त बना रहता है। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को सदैव विरक्त तथा निर्लोभ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बना रहना चाहिए। इस संसार में ब्रह्मज्ञानी तथा अबोध बालक ये दो ही प्राणी सदा प्रसन्न रह पाते हैं। इनके विपरीत अन्य लोग सुख-दुःख के मायाजाल में फँसे रहते हैं। हे नृपति ! मेरा बीसवाँ गुरु कुमारी कन्या है। एक बार मैं एक गृहस्थ ब्राह्मण के घर भिक्षा माँगने के लिये गया। वहाँ मैंने यह देखा कि एक कुमारी कन्या अकेली बैठी हुई है तथा घर के अन्य लोग कहीं गये हुए हैं। उसी समय दूसरे नगर से तीन मनुष्य उसके विवाह का सन्देश लेकर वहाँ आ पहुँचे। उस बालिका ने तीनों मनुष्यों को बड़े आदरपूर्वक बैठाया तथा घर में चावल तैयार न होने के कारण, स्वयं एक कमरे में जाकर धान कूटने लगी। धान कूटते समय जब उसके हाथों की चूड़ियाँ खनकी, उस समय बालिका ने अपने मन में विचार किया कि घर पर आये हुए मेहमान अपने मन में यह सोचेंगे कि इनके यहाँ एक दिन खाने के योग्य भी चावल नहीं है। इस बात को लज्जापूर्ण समझकर उस बालिका ने अपने हाथों में दो-दो चूड़ियाँ रहने दीं तथा शेष चूड़ियाँ एक-एक करके तोड़ डालीं। हाथों में दो-दो चूड़ियाँ रहने पर भी जब उनका बोलना बन्द न हुआ, तब उसने एक-एक चूड़ी और तोड़ डाली। इस प्रकार जब चूड़ियों की आवाज बन्द हो गई तब उसने धान कूटकर मेहमानों को भोजन कराया। उस दृश्य को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि बहुतों की संगति में रहने से परस्पर विरोध होता है, यहाँ तक कि यदि दो मनुष्य भी एक साथ रहें तो पारस्परिक वार्तालाप के कारण हरि-स्मरण नहीं हो पाता। अतः ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह किसी की संगति अथवा प्रीति न करे। अकेला रहकर ही श्रीहरि के चरणों में अपने चित्त को लगाये। हे भूपाल ! मेरा इक्कीसवाँ गुरु एक तीर बनानेवाला है। एक बार मैंने बाजार में खड़े होकर एक तीर बनानेवाले की दूकान पर यह देखा कि वह तीर बनाने में संलग्न था, उसी समय राजा की सवारी बड़ी धूमधाम से निकलती हुई उसकी दूकान के सामने होकर एक दूसरी ओर को चली गई। कुछ देर पश्चात् राजा के एक सेवक ने जो पीछे रह गया था, उस तीर बनानेवाले के पास आकर यह पूछा कि राजा की सवारी किस ओर गई है। उस समय तीर बनानेवाले ने उससे यह कहा कि मैंने राजा की सवारी को नहीं देखा है, अतः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। यह सुनकर सेवक बोला कि अभी कुछ देर पूर्व ही राजा की सवारी बड़ी धूमधाम से तुम्हारी दूकान के सामने होकर गई है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब तुम इस प्रकार झूठ क्यों बोल रहे हो ? इस पर तीर बनानेवाले ने उत्तर दिया—"हे भाई ! मैं तो तीर बनाने में लगा हुआ था, अतः मुझे यह पता नहीं चला कि राजा की सवारी कब आई और कब चली गई।" उस दृश्य को देखकर मैंने अपने मन में अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को यह उचित है कि वह अपनी इन्द्रियों को वशीभूत कर सब ओर से मन हटा, श्रीहरि के चरणों का ही अहर्निश स्मरण एवं ध्यान किया करे। हे राजन् ! मेरा बाईसवाँ गुरु सर्प है। वह अपने रहने के लिए बिल नहीं बनाता। चूहों के बिल में ही रहा करता है। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को भी अपना घर नहीं बनाना चाहिए, अपितु रात्रि के समय जिस स्थान पर ठहर जाय, उसी को अपना घर समझना चाहिए। हे नृपाल ! मेरा तेईसवाँ गुरु मकड़ी है। वह सूत के समान तारों को अपने मुख से निकालकर फिर स्वयं ही उन्हें खा जाती है। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि श्री नारायणजी को ऐसा जानना चाहिए कि वे चौरासी लाख योनियों को उत्पन्न कर उनका पालन-पोषण करते हैं तथा अन्त समय में सबके जीवात्मा को अपने में आत्मसात् कर लेते हैं। अतः ज्ञानी मनुष्य को यह उचित है कि वह श्रीहरि को घट-घट में व्याप्त जानकर, सदैव उन्हीं के स्मरण में मग्न बना रहे। हे राजन् ! मेरा चौबीसवाँ गुरु भृङ्गी नामक कीड़ा है। उसके भय से अन्य कीड़े भी उसी के स्वरूप के हो जाते हैं। उसे देखकर मैंने यह अनुभव किया कि ज्ञानी मनुष्य को श्रीहरि के चरणों में इस प्रकार चित्त लगाना चाहिए कि वह उन्हीं के स्वरूप का हो जावे।"

इतना ज्ञानोपदेश करने के उपरान्त दत्तात्रेय ने कहा—"हे राजन् ! मैंने अपने चौबीस गुरुओं से जो थोड़ा-बहुत ज्ञान सीखा था, वह तुम्हें सुना दिया। अब तुम इस ज्ञान को अपने हृदय में धारण करके श्रीहरि का स्मरण एवं ध्यान करो। ऐसा करने से तुम्हें मुक्तिपद की प्राप्ति होगी। हे नृपश्रेष्ठ ! चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त यह मनुष्य-शरीर अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है, अतः इस शरीर को पाकर संसारी माया-मोह में फँसना उचित नहीं है। यह मनुष्य-शरीर श्री नारायणजी का ध्यान धरने के निमित्त ही प्राप्त होता है। इस शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी योनि में श्रीहरि का दर्शन प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी श्रीहरि का भजन नहीं करता, वह पुनः चौरासी लाख योनियों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चक्कर में पड़कर अत्यन्त कष्ट उठाता है। जिसने मनुष्य-शरीर को पा लिया उसे यह समझना चाहिए कि उसने संसाररूपी समुद्र से पार करनेवाली नौका पर अपना एक पाँव रख लिया है। यदि वह शुभकर्मों द्वारा अपना दूसरा पाँव भी रख लेता है, तब तो वह भवसागर से पार उतर जाता है, अन्यथा उसी मनुष्य-शरीररूपी नाव से नीचे गिर कर चौरासी लाख योनियों में पुनः घोर कष्ट प्राप्त करता है। यह शरीर कभी दुर्बल तथा कभी पुष्ट होता रहता है, अतः इस नाशवान् शरीर से किसी प्रकार का मोह नहीं रखना चाहिए। जो लोग स्त्री, पुत्र, धन, हाथी, घोड़ा आदि को अपना मानकर यह समझते हैं कि ये सब अन्त समय में मेरे काम आवेंगे, तो उन्हें नरक का घोर कष्ट अवश्य ही उठाना पड़ता है। यह चंचल मन वश में नहीं रहता, परन्तु मनुष्य को इसे अपने वश में रखने का उपाय करना चाहिए। अन्यथा जिस प्रकार छः चोरों ने मिलकर एक रत्न चुराया और बराबर का बाँट न हो पाने के कारण परस्पर झगड़ा करके फाँसी पाई, उसी प्रकार अपना-अपना सुख भोगने की इच्छुक इन्द्रियाँ मन को अपनी ओर खींचकर नरक में डाल देती हैं। उस समय अज्ञानी मनुष्य को घोर कष्ट उठाना पड़ता है। श्री नारायणजी ने पहिले पशु-पक्षी आदि की रचना की थी। परन्तु जब वे उनसे सन्तुष्ट नहीं हुए तो उन्होंने मनुष्य का निर्माण किया। मनुष्य बनने पर उन्हें यह सोचकर प्रसन्नता हुई कि यह शरीर ज्ञानवान् होने के कारण जीवन-मुक्त पद को प्राप्त करेगा। अस्तु, हे राजन्! यह मनुष्य-शरीर केवल श्रीहरि का भजन एवं स्मरण करने के लिए ही मिलता है। इसे प्राप्त करके संसारी मोह-माया में नहीं फँसना चाहिए। उदर भरना तथा भोग करना तो अन्य योनियों में भी होता है। अग्नि को बुझाने के लिए पहिले से भरकर रक्खा हुआ पानी ही काम देता है। जब आग लग जाय, तब कुआँ खोदने से काम नहीं चलता। हे नृपश्रेष्ठ! मैं सम्पूर्ण जीवों में श्री नारायणजी का एक-सा चमत्कार जानकर सदैव प्रसन्न रहता हूँ। तुम्हें तथा अन्य संसारी जीवों को भी मनुष्य का शरीर प्राप्त करके मुक्ति का उपाय करना ही हितकर है, अन्यथा पछतावे के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लग सकेगा।"

इतनी कथा सुनाकर श्री कृष्णचन्द्र ने कहा—"हे उद्धव! इस प्रकार राजा यदु को ज्ञानोपदेश करने के उपरान्त दत्तात्रेय तीर्थ-यात्रा करने के लिए चले गये। उस ज्ञान के प्रताप से राजा यदु को भी मुक्ति प्राप्त हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः तुम भी उसी ज्ञान को अपने हृदय में धारण करके संसारी माया-मोह से विरक्त हो जाओ।"

दसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश

श्री मुरलीमनोहर ने कहा—"हे उद्धव! संसारी मनुष्य को यह उचित है कि वह वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण करते हुए अपने हृदय में किसी वस्तु की कामना न रक्खे तथा श्राद्ध, देवकर्म, पितृकर्म आदि करता हुआ अपने गुरु के चरणों में सच्ची प्रीति लगाये रहे। जब तुम अपने हृदय को संसारी माया से विरक्त कर लोगे, तब तुम्हें गुरु के उपदेश का सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा। आत्मा को शरीर से पृथक् जानकर संसारी सुख तथा व्यवहारों को मिथ्या समझना चाहिए। आत्मा को शरीर से पृथक् जाने बिना तथा हरि-भक्ति किए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती। यह शरीर बाल्यावस्था, तरुणावस्था एवं वृद्धावस्था को प्राप्त होता रहता है, परन्तु आत्मा सदैव एक रस बनी रहती है। मनुष्य अपने अज्ञान के कारण ही दुःख-सुख का अनुभव करता है। हे उद्धव! जो लोग यज्ञ, तीर्थ आदि शुभ कर्म करते हैं, वे देवलोक आदि को प्राप्त करके स्वर्ग का सुख भोगते हैं तथा जो मर्त्यलोक में जन्म लेकर पाप-कर्म करते हैं, उन्हें नरक का दुःख उठाना पड़ता है। जब तक प्राणी मुक्त नहीं होता, तब तक वह आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है। इस संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिए श्रीहरि के स्मरण एवं सत्संग से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई उपाय नहीं है। तुम जो यह कह रहे हो कि मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँ, सो उस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि जब तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो जायगा, तब तुम्हें मेरे वियोग का दुःख भी नहीं होगा। हे उद्धव! ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जितने भी संसारी जीव हैं वे सब मृत्यु के ग्रास हैं, केवल मैं ही जन्म-मरण रहित हूँ। जब मैं पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेता हूँ, तब मुझे भी अपने निर्गुण स्वरूप को त्याग देना पड़ता है। अतः तुम्हें यह उचित है कि तुम मेरे स्मरण एवं ध्यान में अपना मन सदैव लगाये रहो। हे उद्धव! ज्ञानी मनुष्य इस शरीर को वृक्ष के समान जानकर उस पर दो पक्षी बैठे हुए समझते हैं। उनमें एक पक्षी थोड़ा भोजन करने से अधिक कार्य करने की सामर्थ्य रखता है, उसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमात्मा समझना चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा इन्द्रियों के सुख का कोई प्रयोजन नहीं होता। वह स्त्री-पुत्र, धन आदि के पाने पर न तो प्रसन्न होता है और न उनके वियोग के दुःख में दुखी ही होता है। दूसरा पक्षी जीवात्मा है, वह बहुत खाने पर भी निर्बल रहता है तथा संसारी सुख में सुख एवं दुःख में दुःख का अनुभव करता है। वह यह नहीं समझता कि संसार में जो कुछ भी होता है, वह श्री नारायणजी की इच्छा के अनुरूप ही होता है, उसमें अन्य किसी का वश नहीं चल सकता। हे उद्धव! भवसागर से पार उतरने के लिए संसारी मनुष्य को जो उपाय करना चाहिए, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। अपने हृदय में किसी प्रकार का अभिमान न रखना, किसी के प्रति दुर्वचन न कहना, पराये धन को देखकर ईर्ष्या न करना, बिना प्रयोजन के अधिक वार्तालाप न करना तथा स्त्री-पुत्रों से अधिक प्रीति न रखना उचित है। परमात्मा को शरीर से पृथक् जानना चाहिए। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि छिपी रहती है और उपाय करने से प्रकट होती है, तदुपरान्त काष्ठ को जलाकर पुनः उससे पृथक् हो जाती है, उसी प्रकार सब जीवों में परमात्मा का प्रकाश व्याप्त है। जब वे किसी प्राणी के शरीर से अपना प्रकाश खींच लेते हैं, तब वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उस मृतक शरीर को जला देने से आत्मा का कुछ भी कष्ट नहीं होता। सम्पूर्ण जीवों के शरीर में परमात्मा का एक-सा प्रकाश समझते रहने से कुछ भय नहीं होता, परन्तु भेद करने पर बहुत भय होता है। अतः आत्मा को सब प्राणियों में बसा हुआ जानकर, आठों प्रहर संसारी माया से छूटने का उपाय करते रहना चाहिए। हे उद्धव! जो मनुष्य इस प्रकार का ज्ञान रखता है, उसे अवश्य मुक्ति की प्राप्ति होती है।"

ग्यारहवाँ अध्याय

श्री मुरलीमनोहर द्वारा उद्धव को ज्ञानोपदेश

श्री श्यामसुन्दर ने कहा—"हे उद्धव! इस संसार में माया के गुणों के द्वारा ही सुख-दुःख उत्पन्न होता है। मैं उस माया से पृथक् हूँ। जिस प्रकार स्वप्न में मनुष्य अनेक प्रकार के सुख-दुःख देखकर जगने पर उन सबको मिथ्या समझता है, उसी प्रकार यह संसारी व्यवहार भी स्वप्न के समान झूठा है। श्री नारायणजी की माया से ही यह सत्य प्रतीत होता है। जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक जीव मुझे नहीं पहिचान पाता तब तक वह मुझसे पृथक् रहता है। जो मेरे भेद को जान लेता है, वह मेरे स्वरूप में लीन हो जाता है। मूर्ख मनुष्य ही अपने को मुझसे पृथक् समझते हैं, परन्तु ज्ञानी मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी अपना मन सबसे विरक्त रखकर संसारी माया-जाल में नहीं फँसते। ज्ञान तथा वैराग्य—ये दोनों ही मुक्ति को प्रदान करनेवाले हैं। अज्ञानी मनुष्य को दुःख के अतिरिक्त सुख प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार वायु दुर्गन्धित तथा सुगन्धित दोनों प्रकार की वस्तुओं में होकर बहती है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य को भी यह उचित है कि वह किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर न तो खेद माने और न किसी के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो। जो लोग मेरी माया के वशीभूत होकर स्त्री-पुत्रादि में अपना मन लगाते हैं, उन्हें महामूर्ख समझना चाहिए। सब लोगों को अपने कर्मानुसार ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अतः ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि वह हानि-लाभ, जीवन-मरण तथा सुख-दुःख को श्री नारायणजी की इच्छानुसार होते हुए जानकर अपने ऊपर उनका कोई प्रभाव न पड़ने दे। जो लोग वेद तथा शास्त्रों को पढ़कर उनके अनुसार आचरण नहीं करते, उनका पढ़ना व्यर्थ है। वृद्ध तथा बाँझ गौ का रखना एवं कर्कशा स्त्री तथा अधर्मी सन्तान का पालन करना धर्म है, क्योंकि उनसे कुछ प्राप्ति की आशा नहीं होती। जो लोग धन को दान आदि शुभ कर्मों में व्यय नहीं करते, उनके पास धन होना अथवा न होना बराबर है। अतः अज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह धन प्राप्त करने के उपरान्त उसे दान, तीर्थ आदि शुभ कर्मों में व्यय कर दे तथा जो भी पुण्य करे, उसका फल श्री नारायणजी को अर्पण कर दे। ऐसा करने से लोक तथा परलोक दोनों बनते हैं।"

इस ज्ञान को सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो! आप त्रिलोकीनाथ हैं। आपने अपने भक्तों को भव-सागर से पार उतारने के लिए ही मनुष्य-शरीर धारण किया है, अतः आप कृपा करके मुझे मुक्ति प्राप्त करने का उपाय बताइये।" श्री कृष्णचन्द्रजी बोले—"हे उद्धव! जो गृहस्थ मनुष्य संसारी कार्य करते हुए भी अपना चित्त मेरे ही चरणों में लगाये रहता है तथा मुझे ही अपना स्वामी समझता है, वह मुक्ति-पद को प्राप्त होता है। जो किसी का बुरा नहीं चाहता, जो तृष्णाओं पर नियन्त्रण रखता है, जो अपने शरीर के समान मुझे परमप्रिय समझता है, जो गुरु के बताये हुए मन्त्र का जप करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, जो मेरी भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की चाह नहीं रखता, जो किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर भी खेद नहीं मानता, जो सब जीवों में मेरी शक्ति बराबर समझता है, जो अपनी सामर्थ्य भर परोपकार करता है तथा मेरे लीला-चरित्रों को सुनने में मग्न रहता है, वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो मेरे सगुण रूप के ध्यान तथा स्मरण के अतिरिक्त कोई अन्य उद्यम नहीं रखता, जो देवस्थान एवं पुष्प-वाटिकाओं का निर्माण करता है, जो अपने धन को मेरा दिया हुआ जानता है, जो भोजन करने से पूर्व मेरा भोग लगाता है, जो ब्राह्मण आदि चारों वर्णों तथा परिवारवालों को थोड़ा-बहुत खिलाने के उपरान्त स्वयं भोजन करता है, जो प्रतिदिन सूर्य को दण्डवत् करता है, जो अग्नि में हवन करता है, जो ब्राह्मण को इच्छित भोजन कराता है, जो अपनी सामर्थ्य भर दान तथा दक्षिणा देता है तथा जो गौ की सेवा करता है, वह मुक्ति-पद को प्राप्त होता है। जो जल, पृथ्वी, आकाश आदि सब स्थानों में मेरे चतुर्भुजी स्वरूप को ध्यान धरकर देखता है, जो प्रतिदिन देवताओं के नाम पर हवन तथा पितरों के नाम पर तर्पण करता है, जो दरिद्रों तथा ब्राह्मणों के रहने के लिए स्थान बनवाता है तथा उनकी कन्याओं का विवाह करने के लिए धन देता है, जो साधु-महात्माओं की सेवा करता है तथा उनके खाने-पीने की सुधि लेता रहता है, जो शुभ कार्य करने का अभिमान अपने मन में नहीं रखता तथा दूसरों के सामने उसकी प्रशंसा नहीं करता, वह मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। हे उद्धव ! ऐसे मनुष्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न रहता हूँ। सत्सङ्ग के बिना कभी ज्ञान प्राप्त नहीं होता तथा साधु-महात्माओं की सङ्गति एवं मेरा स्मरण किए बिना मनुष्य कभी भी भवसागर से पार नहीं उतर पाता है।"

बारहवाँ अध्याय

श्री मुरलीमनोहर द्वारा सत्संग के माहात्म्य का वर्णन

श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव ! मैंने तुम्हें यज्ञ, तप, दान, धर्म एवं वैराग्य आदि का हाल सुनाया, अब तुम भक्ति को उत्पन्न करनेवाले सत्सङ्ग की महिमा को सुनो। मैं सत्सङ्ग से जितना प्रसन्न होता हूँ, उतना वेद के पढ़ने, योगाभ्यास करने एवं व्रत आदि के रखने से भी नहीं होता। सत्संग करने से मनुष्य को मेरे चरणों में भक्ति उत्पन्न होती है तथा जीव मुझे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिचानकर भवसागर से पार उतर जाता है। राजा बलि, बाणासुर, सुग्रीव, हनुमान्, जटायू, कुब्जा तथा व्रजवासी गोप-ग्वाल आदि मेरी भक्ति करने से मुक्त हो गये। शबरी तथा निषाद आदि नीच वर्णवालों को भी मेरी भक्ति ने मुक्त कर दिया। गोपियों ने न तो वेद पढ़ा था और न तीर्थ करने ही गई थीं; परन्तु उन्होंने पति-भाव रखकर मुझसे ऐसी प्रीति की कि मेरे वियोग में उन्हें एक क्षण कल्प के समान प्रतीत होता था। जिस समय उन्होंने मेरे साथ रास किया था, उस समय उन्हें छः महीने की रात्रि भी एक पल के समान प्रतीत हुई थी। अतः उन सबने मेरी भक्ति एवं प्रीति के प्रताप से लक्ष्मी-स्वरूपा बनकर वैकुण्ठ लोक को प्राप्त किया। जिस प्रकार अनजान में अमृत पी लेनेवाला मनुष्य भी अमर हो जाता है तथा उत्तम औषधि खानेवाला तरुण बना रहता है, उसी प्रकार जानकर अथवा अनजाने में मेरी भक्ति तथा प्रीति करनेवाला मनुष्य संसार में सुख प्राप्त करके अन्त समय में वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करता है तथा उसे जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है। जिस प्रकार सूत के धागे में काष्ठ, रुद्राक्ष, मोती अथवा स्वर्ण के दानों को पिरोकर माला बनाई जाती है, परन्तु वे सब दाने सूत के धागे के ही आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार सभी संसारी जीव मेरे स्वरूप में सन्निहित हैं। गुरु के मुख से सुने बिना अथवा सत्संग किए बिना यह बात मालूम नहीं होती।। अतः संसारी मनुष्यों को यह उचित है कि वे गुरु की सेवा, मेरी भक्ति तथा सतसंग द्वारा प्राप्त ज्ञानरूपी तलवार से मायारूपी सन्देह को काट दें तथा सभी जीवों में मेरी शक्ति को एक-सा समझें।"

श्रीहरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर उद्धव ने कहा—"हे त्रिलोकीनाथ! जब भक्ति का पद इतना बड़ा है, तब आपने अनेक प्रकार के धर्म एवं यज्ञ, तप आदि को क्यों बनाया है?" श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! यज्ञ, तप आदि श्रेष्ठ कर्म हैं। उनके करने से मनुष्य को मेरे चरणों में भक्ति उत्पन्न होती है। हाँ, जिसने भक्ति पदार्थ को प्राप्त कर लिया है, उसे किसी प्रकार के अन्य धर्म-कर्म, तप-दान आदि करने की आवश्यकता नहीं है।"

तेरहवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा उद्धव के प्रति धर्म-कर्म आदि का वर्णन करना

श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! माया के गुण तीन प्रकार के हैं, १—सात्त्विक, २—राजस, ३—तामस। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा इन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

तीनों गुणों से पृथक् है। जिस समय शरीर में सात्विक गुण की अधिकता होती है, उस समय मनुष्य का मन धर्म आदि शुभ कर्मों की ओर लगता है। सात्विक वृत्तिवाले को सभी लोग अच्छा बताते हैं। जिन मनुष्यों के शरीर में राजसी गुण की अधिकता होती है, वे सुख की बहुत इच्छा रखते हैं तथा जो मनुष्य तामसी स्वभाव के होते हैं, वे अपने मन में क्रोध अधिक रखकर अकर्मों में संलग्न रहते हैं। अतः ज्ञानी मनुष्य को यह चाहिए कि वह अपने हृदय को आठों प्रहर सात्विकी भाव में लगाये रहे तथा ऐसे कर्म करे, जिससे वह एक क्षण को भी मेरा ध्यान न भुला सके।"

यह सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो! जब मनुष्य यह जानता है कि अमुक कर्म अच्छा है और अमुक बुरा, तब वह जान-बूझकर कष्ट देनेवाले कर्मों को करके गर्भ तथा नरक का दुःख क्यों उठाता है? वह ऐसे शुभ कर्म क्यों नहीं करता, जिससे आवागमन से छूटकर मुक्त हो जाय? उसके ज्ञान को नष्ट करके कुकर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला कौन है?" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! मनुष्य की बुद्धि को नष्ट करनेवाली दो वस्तुएँ मुख्य हैं। उनमें पहिली तृष्णा है। जब मनुष्य को किसी वस्तु को पाने की इच्छा उत्पन्न होती है और उसमें कोई अन्य बाधक बन जाता है, तब दूसरी वस्तु क्रोध की उत्पत्ति होती है। ये तृष्णा तथा क्रोध ही सम्पूर्ण जीवों से अशुभ कर्म कराते हैं। ये ही प्राणी को मुझसे विमुख रखकर उसका परलोक नहीं बनने देते। जिस प्रकार चोर तथा लम्पट मनुष्य पराये धन का हरण करने तथा पर-स्त्री के साथ रमण करने के हेतु दूसरे के घर में जाकर पकड़े जाते हैं और कष्ट उठाते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य ईर्ष्या तथा क्रोध को वश में नहीं करता, वह मुक्ति-पद को प्राप्त न होकर, जन्म-मरण का दुःख उठाता रहता है। जो प्राणी ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि को जीत कर मुझे अपना स्वामी एवं उत्पन्न करनेवाला समझता है, उसी को ज्ञानी तथा भक्त कहना चाहिए।"

श्री हरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो! आपने सभी यदुवंशियों को मुक्त क्यों नहीं किया? इस प्रकार एक के ऊपर दया करना तथा दूसरे को छोड़ देने का क्या कारण है?" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! मैं तुम्हें पहिले बता चुका हूँ कि ज्ञान तथा अज्ञान के दो मार्ग हैं। यदि एक ही मार्ग होता तो किसी भी प्राणी को शुभ-अशुभ कर्म तथा स्वर्ग-नरक आदि का भय न होता। संसार में मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं—एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मदर्शी दूसरे मायामोहित। आत्मदर्शी उन्हें कहना चाहिए, जो आठों प्रहर मेरे ध्यान में मग्न रहते हैं तथा संसारी सुख-दुःख को पाकर कुछ हर्ष-विषाद नहीं करते। माया-मोहित वे होते हैं, जो स्त्री, पुत्र, धन आदि की प्राप्ति में प्रसन्न एवं इनके वियोग में दुखी होते हैं। ज्ञानी मनुष्य को यह उचित है कि वह अपने वर्णाश्रम धर्म का आचरण करते हुए अपने कर्त्तव्य को कभी न भूले। अपने धर्म का परित्याग कर देने से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है। हे उद्धव! एक समय सनकादिक ने अपने ज्ञान के अभिमान में भरकर ब्रह्मा से यह प्रश्न किया—"हे ब्रह्माजी! मनुष्य का मन पंचभूत आत्मा से किस प्रकार अलग होता है? हमने सभी तीर्थों में स्नान किया है तथा हम आठों प्रहर श्रीहरि की कथा कहते-सुनते एवं उनकी भक्ति में मन लगाये रहते हैं, फिर भी हमारा मन संसारी इच्छाओं से विरक्त नहीं हुआ है। इसका क्या कारण है, सो आप हमें बताने की कृपा करें?" हे उद्धव! जब ब्रह्मा इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके तथा वहाँ उपस्थित अन्य देवता ब्रह्मा की इस दशा पर हँसने लगे, तब ब्रह्मा ने अत्यन्त लज्जित होकर मुझे याद किया। उस समय मैं ब्रह्मा का सम्मान स्थिर रखने के लिए ब्रह्मा के वाहन श्वेतवर्ण हंस नामक पक्षी के शरीर में प्रवेश करके सनकादि के निकट जा पहुँचा तथा उनका अभिमान नष्ट करने के लिए इस प्रकार कहने लगा—"हे सनकादिक! तुम जो पूछना चाहते हो, वह मुझसे पूछो?" यह सुनकर सनत्कुमार ने मुझसे कहा—"तुम कौन हो?" मैंने उत्तर दिया—"हे सनत्कुमार! हम और तुम पृथक् नहीं हैं। शरीर से अलग होने पर भी मेरा और तुम्हारा पंचभूत आत्मा, जिसे प्राण कहा जाता है, एक ही है। अतः तुम्हारा इस प्रकार पूछना व्यर्थ है। तुम्हारे द्वारा बालक के समान ऐसे अज्ञानपूर्ण प्रश्न किए जाने के कारण ही, तीनों लोकों के रचयिता ब्रह्माजी तुम्हारे सम्मुख मौन रह गये हैं। भला, वे ऐसे ऊटपटांग प्रश्नों का उत्तर तुम्हें कैसे देते? हे सनत्कुमार! जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य अपने हृदय में सुख भोगने का विचार करता है, परन्तु उसे इच्छित सुख की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार यह संसारी व्यवहार तथा शरीर भी मिथ्या है, परन्तु श्री-नारायणजी की माया के कारण सत्य-सा लगता है। जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी को देखकर सर्प का भ्रम होता है, उसी प्रकार इस नाशवान् शरीर में जीवात्मा अलग-अलग दिखाई देता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण चौरासी लाख योनियों में श्री नारायणजी का प्रकाश ही प्रकाशित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। यदि वह प्रकाश अलग हो जाय तो फिर शरीर किसी काम का ही न रहे। जिस प्रकार बादल समुद्र का जल पहिले तो सोख लेते हैं, फिर उसे बरसाकर नदी-नालों की राह समुद्र में ही पहुँचा देते हैं, उसी प्रकार संसार के सभी जीव श्रीहरि की इच्छा से उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् उन्हीं में लीन हो जाते हैं। जो लोग संसारी व्यवहार को मिथ्या जानकर उसमें अपना मन नहीं लगाते तथा श्रीहरि के चरणों में सच्ची प्रीति रखते हैं, उन्हें वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार मदिरा के नशे में मतवाला मनुष्य अपने शरीर एवं वस्त्रों का भी ध्यान भूल जाता है, उसी प्रकार श्रीहरि के ध्यान में मग्न रहनेवाले भक्तजन भी अपने शरीर अथवा किसी अन्य वस्तु का ध्यान नहीं रखते हैं। यज्ञ, जप, तप आदि शुभ कर्मों का फल देनेवाले श्री नारायणजी ही हैं। वे सम्पूर्ण जीवों को उनके कर्मानुसार जन्म, भोजन तथा वस्त्र आदि देते हैं। हे सनत्कुमार! यह मन इच्छाओं को नहीं त्याग पाता, इसलिए मैंने पहिले मत्स्यावतार लेकर राजा सत्यव्रत को ज्ञानोपदेश किया था, जिससे संसारी मनुष्य मेरे लीला-चरित्रों को सुनकर मेरा स्मरण एवं ध्यान करें तथा सम्पूर्ण तृष्णाओं को त्यागकर मेरे चरणों में प्रीति लगावें। जिस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण ये चार दिशाएँ संसार में आवागमन के लिए बनी हुई हैं, उसी प्रकार मेरे पास पहुँचने के लिए यज्ञ, तप, दान, धर्म, तीर्थ, व्रत, सत्सङ्ग, भक्ति आदि अनेक मार्ग हैं। इनमें से मनुष्य सच्चे हृदय से किसी भी मार्ग पर क्यों न चले, वह मेरे निकट पहुँच जाता है।" हे उद्धव! इस ज्ञान को सुनकर सनकादिक अत्यन्त लज्जित हो, अपना अभिमान भूल गये तथा मन के सम्पूर्ण सन्देह को त्यागकर हंसरूपी श्री नारायणजी को दण्डवत् करने लगे। तदुपरान्त बहुत स्तुति विनय करके अपने स्थान को चले गये। उनका गर्व नष्ट करने के पश्चात् मैं भी वैकुण्ठ लोक में लौट आया।

चौदहवाँ अध्याय

उद्धव का श्री श्यामसुन्दर से वेद-शास्त्रों का हाल पूछना

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने श्री मुरलीमनोहर से कहा—"हे दीनबन्धो! अनेक ऋषि-मुनियों तथा योगियों ने वेद-शास्त्रों में, आपको प्राप्त करने के लिए यज्ञ, तप आदि के अनेक मार्ग बताये हैं। अतः उनमें आपके समीप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहुँचने का जो मार्ग सरल हो, वह मुझे बताने की कृपा करें।" श्री कृष्णजी बोले—"हे उद्धव ! जब कमल के फूल द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, तब उन्होंने मेरी श्वास, वेद को, मेरी इच्छा से भृगुऋषि आदि अपने पुत्रों को पढ़ाया। तदुपरान्त ऋषियों ने उसका अर्थ देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदि को सिखाया। उन सबने, जिसमें जितना ज्ञान था उसके अनुसार, उसे सम्पूर्ण संसार में प्रचारित किया, परन्तु वेद के वास्तविक अर्थ को कोई नहीं जान सका। कुछ लोग काम-क्रोध तथा स्त्री-पुत्र को, कुछ लोग यज्ञ-तप आदि को, कुछ लोग तीर्थ-व्रत को तथा कुछ लोग दान-धर्म आदि को उत्तम मानते हैं। परन्तु इन सब कर्मों के करने पर भी मनुष्य भवसागर से पार नहीं उतर सकता है। इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उनका एक न एक दिन विनाश अवश्यम्भावी है। जो मनुष्य परमपिता परमेश्वर के स्मरण-ध्यान को श्रेष्ठ मानकर उसी में अपना चित्त लगाये रहते हैं तथा संसारी वस्तु की कुछ भी कामना न रखकर इन्द्रलोक आदि के सुख को तुच्छ समझते हैं, जो लोग श्रीहरि के चरण-कमलों की भक्ति के अतिरिक्त मुक्ति पदार्थ की कामना भी नहीं रखते, जो लोग निष्काम भाव से मेरी सेवा तथा भक्ति करते हैं, जो लोग सबको अपना मित्र मानकर किसी के साथ शत्रुता नहीं रखते, उन लोगों के लक्षण मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

हे उद्धव ! ऐसे लोग आठों सिद्धियाँ प्राप्त होने पर भी उनकी ओर कभी नहीं देखते तथा आठों प्रहर मेरी ओर ही अपना मन लगाये रहते हैं। मैं उन्हीं को सातों द्वीप तथा तीनों लोकों का राज्य एवं मुक्ति पदार्थ देना चाहता हूँ, परन्तु वे उसे स्वीकार नहीं करते हैं। उस समय मैं अत्यन्त लज्जित होकर दिन-रात यह विचार करता रहता हूँ कि मैं उन्हें कौन-सी ऐसी वस्तु दूँ, जिससे उनके ऋण से उऋण हो जाऊँ ? मेरे भक्त जिस स्थान पर अपने चरण रखते हैं, वहाँ की धूलि को उठाकर मैं अपने शरीर पर इसलिए मल लेता हूँ, जिससे मेरे शरीर में निवास करनेवाले करोड़ों ब्रह्माण्डों के जीव उसका स्पर्श पाकर पवित्र हो जायँ। हे उद्धव ! मैं उन भक्तों के समान प्रिय अपने शरीर, लक्ष्मी तथा शिवजी को भी नहीं समझता हूँ। जब मेरा कोई भक्त संसारी माया में पड़कर नष्ट होना चाहता है, उस समय मैं उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके उसे कुकर्म करने से बचा लेता हूँ। जो लोग मेरी सुनते समय प्रेम-मग्न होकर रोने लगते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप आँसुओं की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राह बह जाते हैं तथा उनका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। अनजाने में मच्छर आदि के मर जाने का दोष उन्हें नहीं लगता।

हे उद्धव! मैं भक्ति के द्वारा जिस शीघ्रता से प्राप्त होता हूँ, वैसा सरल मार्ग मेरे पास तक पहुँचने का अन्य कोई नहीं है। जिस प्रकार अग्नि में डालने से स्वर्ण का सब मैल दूर हो जाता है, उसी प्रकार मेरी भक्ति करने से शरीर में पाप का लेश भी नहीं रहता; परन्तु इन सब बातों को मन के अधीन समझना चाहिए। यह मन संसारी माया-मोह में फँसकर नष्ट हो जाता है। जो लोग मेरा ध्यान करते हैं, वे संसार में अभीष्ट फल को पाकर, अन्त में वैकुण्ठ लोक में वास पाते हैं। अतः मनुष्य को उचित है कि वह स्त्री तथा लम्पट पुरुषों की संगति से अलग रहकर मेरे ही चरणों में अपना मन लगाये रहे, क्योंकि इनकी संगति करने से ज्ञान नष्ट हो जाता है।

हे उद्धव! अब मैं तुम्हें श्रीहरि के चरणों में मन लगाने का मार्ग बताता हूँ, उसे सुनो। सर्वप्रथम एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को एकाग्र करे, तत्पश्चात् अपने कमलरूपी हृदय में मेरे चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान धरे। जिस प्रकार आम की गुठली को बोने पर उसमें से जो फुनगी निकले और उसकी रक्षा न की जाय तो बकरी आदि द्वारा खा लिये जाने का भय बना रहता है, परन्तु समुचित उपाय से रक्षा करने पर वह वृक्ष बनकर तैयार हो जाता है, उस स्थिति में उसे हाथी भी नहीं उखाड़ सकता; उसी प्रकार मेरा प्रतिदिन ध्यान-स्मरण करने से संसारी माया छूट जाती है तथा वृक्षरूपी भक्ति हृदय में जड़ पकड़ लेती है। तब उसे कोई भी भ्रष्ट नहीं कर सकता। इस प्रकार योगाभ्यास साधने तथा इन्द्रियों को वश में करनेवाले के सम्मुख आठों सिद्धियाँ सदैव हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। अतः हे उद्धव! तुम हरि-भक्तों के पद को सबसे ऊँचा समझकर सच्चे हृदय से मेरी भक्ति करो। ऐसा करने से तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जायँगे।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर द्वारा अष्ट सिद्धियों का वर्णन

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो! आपने कहा कि योगाभ्यास एवं इन्द्रियों को वश में करने से आठों सिद्धियाँ बनी रहती हैं, सो आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि उन सिद्धियों के क्या गुण हैं।" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! आठ सिद्धियाँ बड़ी और दस सिद्धियाँ छोटी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। उनमें से एक सिद्धि ऐसा गुण रखती है कि यदि वृद्ध मनुष्य चाहे तो उस सिद्धि के प्रभाव से अपने को बालक के समान बना ले। दूसरी सिद्धि छोटे शरीर को बड़ा बना सकती है। तीसरी सिद्धि के प्रभाव से मनुष्य अपने शरीर को रुई के समान हल्का बनाकर चाहे जहाँ उड़ता हुआ जा सकता है। चौथी सिद्धि हल्की वस्तु को भारी बनाने की सामर्थ्य रखती है। पाँचवीं सिद्धि के प्रभाव से सहस्रों कोस दूर का हाल घर बैठे ही देखा जा सकता है। छठवीं सिद्धि के द्वारा सहस्रों कोस दूर की बात सुनी जा सकती है। सातवीं सिद्धि द्वारा मनचाही वस्तु को चाहे जहाँ मँगाया जा सकता है। आठवीं सिद्धि द्वारा देवताओं को अपने वश में किया जा सकता है। नवीं सिद्धि के प्रभाव से शरीर बुढ़ापे को प्राप्त नहीं होता। दसवीं सिद्धि द्वारा मन को क्षण भर में ही चाहे जहाँ पहुँचाया जा सकता है। ग्यारहवीं सिद्धि से अपने स्वरूप को दूसरे के समान बनाया जा सकता है। बारहवीं सिद्धि द्वारा अपने प्राण को किसी दूसरे शरीर में प्रविष्ट किया जा सकता है। तेरहवीं सिद्धि द्वारा मृत्यु वश में हो जाती है। चौदहवीं सिद्धि द्वारा चाहे जहाँ जाकर, चाहे जिसके साथ विहार करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। पन्द्रहवीं सिद्धि द्वारा मन में जिस वस्तु की इच्छा हो, वह वस्तु उसी समय आकर उपस्थित हो जाती है। सोलहवीं सिद्धि में यह गुण है कि उसके प्रभाव से जिसे जो आज्ञा दी जाय वह उसे मानकर भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान—तीनों कालों का हाल जान लेता है। सत्रहवीं सिद्धि द्वारा दूसरे के मन की बात जानी जा सकती है तथा ग्रीष्म, शीत का ताप नहीं रहता। अठारहवीं सिद्धि द्वारा प्रज्वलित अग्नि तथा वेगवान् जल को रोका जा सकता है एवं चाहे जिसमें विष के प्रभाव को प्रवृष्ट नहीं होने दिया जा सकता।

हे उद्धव! इन अठारह सिद्धियों के अतिरिक्त जन्म, औषध, तप तथा मन्त्र—ये चार अन्य सिद्धियाँ योगाभ्यास द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। जिसे जन्म-सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो, वह प्राणी चाहे जहाँ जन्म ले सकता है। औषध-सिद्धिवाला जिसे औषध दे वही अमृत के समान गुणकारक हो जाती है। मंत्र-सिद्धिवाला मन्त्र पढ़कर जो बात कहता है, वह सत्य बैठती है। इसी प्रकार जिसे तप-सिद्धि प्राप्त होती है, उसके तप में कोईविघ्न नहीं डाल सकता है। हे उद्धव! ये सभी सिद्धियाँ एक-एक गुण रखती हैं। इन सब सिद्धियों का फल देनेवाला मैं ही हूँ। इन सिद्धियों को वश में करने का जो उपाय है, अब उसे सुनो—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्नि में जलन, जल में शीत, पृथ्वी में कठोरता, वायु में स्पर्श तथा आकाश में शब्द, ये पाँचों बातें मेरी कृपा से हैं। जो व्यक्ति इन पाँचों वस्तुओं में मेरा ध्यान लगाकर, इनमें सच्चे मन से मेरी महिमा को समझता है, उसे पहिली सिद्धि प्राप्त होती है। जो प्राणी पंचभूतात्मा, आकाश तथा अग्नि आदि का ध्यान करता है, वह दूसरी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। मेरे विराट् स्वरूप का ध्यान करने से तीसरी सिद्धि मिलती है। जो प्राणी मेरे अंगुष्ठ प्रमाण चतुर्भुजीरूप का ध्यान करता है, उसे चौथी सिद्धि प्राप्त होती है। मेरे महत्तत्त्वरूप का ध्यान करने से छठी सिद्धि मिलती है। मेरे विष्णु-रूप का ध्यान करने से सातवीं सिद्धि एवं वासुदेव-रूप का ध्यान करने पर आठवीं सिद्धि प्राप्त होती है।

हे उद्धव ! जो लोग मेरे निराकार-रूप का ध्यान धरते हैं, वे संसारी तृष्णाओं से विरक्त होकर, परमानन्द को प्राप्त करते हैं। श्रीहरि के श्वेत-रूप का ध्यान धरनेवाला मनुष्य कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता। जो प्राणी अपने शरीर में स्थित परमात्मा का ध्यान धरता है, उसे सहस्रों कोस दूर की बातें सुनाई देती हैं। जो मनुष्य सूर्य-रूपी नारायण का ध्यान धरता है, उसे सहस्रों कोस दूर की वस्तुएँ दिखाई देती हैं। वायुरूपी परमेश्वर का ध्यान धरनेवाले मनुष्य क्षण भर में ही चाहे जहाँ आ-जा सकते हैं। जो योगाभ्यास द्वारा अपने हृदय में प्रदीप्त अग्नि का ध्यान धरता है, उसे चाहे जैसा स्वरूप धारण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। जो मनुष्य अपने हृदय में आत्मा का ध्यान धरता है, उसे पराये जी के शरीर में प्रवेश करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। मेरे सतोगुणी स्वरूप का ध्यान धरनेवाला मनुष्य चाहे जिसके साथ बिहार कर सकता है। जो प्राणी अपने हृदय में आठों प्रहर यह विचार रखता है कि सभी बातें श्री नारायणजी की इच्छा से होती हैं, वह छोटे-बड़े सभी लोगों द्वारा सम्मानित होता है। योगाभ्यास के द्वारा अपने श्वास को ब्रह्माण्ड में चढ़ानेवाले मनुष्य को भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों की बातें ज्ञात हो जाती हैं। अग्नि, जल आदि पाँच तत्त्वों का ध्यान धरनेवाले प्राणी प्रज्वलित अग्नि तथा बढ़ते हुए पानी को रोकने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं। जो प्राणी इन्द्रियों को अपने वश में करके सच्चे हृदय से मेरे चरणों का ध्यान धरता है, उसके सम्मुख अठारहों सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। परन्तु हे उद्धव ! जो मनुष्य उन सिद्धियों के मुख में जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फँसता है, वह नष्ट हो जाता है तथा मुझे कभी भी प्राप्त नहीं कर पाता। जो मनुष्य मेरे चरणों में ध्यान लगाये रहकर, किसी वस्तु की कामना नहीं रखते तथा संसारी सुख-दुःख के व्यवहारों को मिथ्या समझते हैं, वे इहलोक में मनोकामना पाकर, अन्त-समय में चतुर्भुजी स्वरूप हो, वैकुण्ठ लोक में वास करते हैं।"

सोलहवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के मुख्य ज्ञान का उपदेश

अठारह सिद्धियों का वर्णन सुनकर उद्धव ने श्री श्यामसुन्दर से कहा—"हे त्रिभुवनपति! देवता तथा वृक्षादि में आपका निवास कहाँ-कहाँ रहता है, यह बताने की कृपा करें।" श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! जिस समय महाभारत के हेतु कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी दल एकत्र हुआ था, तब अर्जुन ने द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह आदि गुरुजनों एवं दुर्योधन आदि अपने पारिवारिक जनों को देखकर उनसे युद्ध करना स्वीकार नहीं किया। उस समय मैंने अपनी थोड़ी-सी महिमा का वर्णन करके अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाकर, उसका मोह नष्ट किया था तथा महाभारत कराया था। हे उद्धव! वही ज्ञान मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो—

जो मनुष्य अपने अज्ञान के कारण सम्पूर्ण जीवों में मेरा प्रकाश न देख सके तो उसे जिन जीवों के नाम मैं सुनाता हूँ, उनमें मेरा चमत्कार अवश्य समझना चाहिए। हे उद्धव! सब जीवों में निवास करनेवाला आत्मा-रूपी बोलता पुरुष मैं हूँ। मुझी को सबका आदि, मध्य तथा अन्त समझना चाहिए। सूर्य देवता की बारह कलाएँ हैं। वे प्रत्येक मास अपने नवीन रूप से प्रकाश करते हैं। उनमें विष्णु नामवाला मैं हूँ। उनचास पवनों में मरीचि नामक वायु मैं हूँ। तारागणों में चन्द्रमा मैं हूँ। वेदों में सामवेद, देवताओं में ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, स्वामिकार्त्तिकेय तथा यमराज मैं हूँ। ग्यारहों रुद्रों में महादेव, पाचों तत्त्वों में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, गौओं में कामधेनु, दिव्य पितरों में अर्यमा नामक पितर, प्रजापतियों में दक्ष, चारों वर्णों में ब्राह्मण, चारों आश्रमों में संन्यासी, नदियों में गंगा, सम्पूर्ण रागों में दीपक राग, धातुओं में स्वर्ण, हाथियों में ऐरावत, घोड़ों में उच्चैःश्रवा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञों में ज्ञानयज्ञ, पुरोहितों में वशिष्ठ, स्त्रियों में शतरूपा, राजर्षियों में स्वायम्भुव मनु, चारों युगों में सत्ययुग, सेवकों में हनुमान, वक्ताओं में वेदव्यास, दानियों में राजा बलि, रत्नों में कौस्तुभ मणि, घासों में कुश, पंचगव्यों में घृत, दसों इन्द्रियों में ग्यारहवाँ मन, नवग्रहों में वृहस्पति, ऋषियों में भृगु, मन्त्रों में ओंकार, वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद तथा सनत्कुमार, वैष्णवों में कपिलदेव, सातों समुद्रों में क्षीरसागर, मनुष्यों में राजा, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, दैत्यों में भक्त प्रह्लाद, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, शूरों में परशुराम, वेदशास्त्रों में गायत्री, बारहों महीनों में आश्विन, ऋतुओं में वसन्त, पुष्पों में गुलाब, सत्य वक्ताओं में सत्य, गन्धर्वों में विश्वावसु, अप्सराओं में पूर्वचित्ती, पाण्डवों में अर्जुन, विद्वानों में शुक्राचार्य तथा यदुवंशियों में वासुदेव मैं हूँ।

हे उद्धव ! जिसमें मनुष्य सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा से अपनी स्त्री के साथ भोग करता है वह काम मैं हूँ। जो लोग अपनी प्रशंसा की कामना रखकर, ज्ञान द्वारा शुभ कर्म करते हैं, उनमें वह कामना तथा ज्ञान मैं हूँ। छल की बातों में मैं जुआ (द्यूत) हूँ तथा मायारूपी लक्ष्मी भी मैं ही हूँ। सम्पूर्ण जीवों का मूल मैं ही हूँ। मेरी शक्ति के बिना किसी भी जीव में चलने-फिरने अथवा हिलने की भी सामर्थ्य नहीं रहती है। कोई रेणुका (बालू) के कण, आकाश के तारे तथा वर्षा की बूँदों को भले ही गिन ले, परन्तु मेरी विभूतियों को नहीं गिना जा सकता। संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश मेरी विभूतियों द्वारा ही होता है। इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उन सबमें मैं विद्यमान हूँ, अतः मेरे भेद तथा मेरी महिमा तक पहुँचना दुष्कर है। जो संसारी मनुष्य अग्नि में अन्न, घृत आदि वस्तुओं का हवन करते हैं, उन्हें उचित है कि वे काम, क्रोध, लोभ, मोह जनित इच्छाओं को, जो कुकर्मों की ओर दौड़ती हैं, ज्ञानरूपी अग्नि में भस्म कर दें। ज्ञानी मनुष्य उसे कहना चाहिए, जो अपने गुणों के साथ सम्मानपूर्वक एक स्थान पर बैठा रहे। द्वार-द्वार घूमकर अपना अपमान न करावे। जिनके पास बहुत धन हो, उन्हें धनवान् नहीं समझना चाहिए। सच्चा धनी तो वह है, जो मेरे चरणों में प्रीति तथा भक्ति रखता है। जो लोग अपनी स्त्री को पर्दे में रखते हैं उन्हें लज्जावान् नहीं समझना चाहिए। सच्चा लज्जावान् तो वह है, जो कुकर्मों से रहित हो। जो मनुष्य बाण, खड्ग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि आयुधों द्वारा रणभूमि में युद्ध करते हैं तथा अपने शरीर पर घाव सहते हैं, उन्हें शूरवीर समझना व्यर्थ है। सच्चा शूर-वीर तो वह है जिसने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, इन्द्रिय, मन आदि बलवान् शत्रुओं को जीत लिया हो तथा कभी उनके वशीभूत न होता हो। हे उद्धव! मैंने तुम्हें अपना भक्त समझकर यह थोड़ा-सा ज्ञान सुनाया है। अब तुम्हें उचित है कि तुम अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में रखकर सदैव मेरा ही ध्यान और स्मरण करो। ऐसा करने से अठारहों सिद्धियाँ तुम्हारे सामने सदैव हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी।

सत्रहवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर द्वारा चारों युगों का वर्णन

इतना ज्ञान सुनकर उद्धव ने कहा—"हे दीनबन्धो! जिस प्रकार संसारी मनुष्य कालरूप सर्प के मुख में पड़े रहकर, सदैव अपने सुख की कामना करते हैं, उसी प्रकार आप मुझे भी जानकर, भवसागर से पार उतरने की कोई सीधी राह बताने की कृपा कीजिए।" श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! भीष्म पितामह ने जो ज्ञान राजा युधिष्ठिर से कहा था, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। इस संसार में मनुष्य को चार प्रकार से ज्ञान प्राप्त होता है। उनमें पहिला प्रकार कथापुराणों के सुनने का, दूसरा अन्य लोगों की मृत्यु देखकर अपनी मृत्यु को विचारने का, तीसरा साधु-महात्मा तथा विरक्तों की संगति करने का और चौथा संसारी व्यवहार को मिथ्या समझने का है। हे उद्धव! जो लोग मेरे निर्गुण-रूप ध्यान करते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त समझना चाहिए। ऐसे लोगों के लक्षण सुनो—

ऐसे लोग जिस कर्म को करने से मुझे प्राप्त करते हैं, उस कर्म का फल मुझे देकर स्वयं कुछ इच्छा नहीं रखते। संसार में भक्त चार प्रकार के होते हैं। पहिला विपत्ति पड़ने पर अथवा रोगी होने पर मेरी भक्ति करता है। दूसरा ज्ञान प्राप्त करने तथा भवसागर से पार उतरने की इच्छा से ध्यान करता है, तीसरा धन, सन्तान एवं अन्य संसारी सुखों को प्राप्त करने की इच्छा से मेरा स्मरण करता है तथा चौथा ज्ञानी मुझे परमेश्वर जानकर भजता है एवं बदले में किसी भी वस्तु की कामना नहीं रखता। इस चौथे भक्त से मैं अन्य भक्तों से अधिक स्नेह करता हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

हे उद्धव ! यज्ञ, तप, दान, धर्म, तीर्थ, व्रत आदि सभी शुभ कर्म अच्छे हैं, परन्तु वे भक्ति तथा ज्ञान के बराबर नहीं होते। तुम संसारी इच्छाओं को त्याग कर ज्ञान-मार्ग से मेरे चरणों में भक्ति रखते हो, अतः तुम्हारी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं है। अब मैं तुम से कुछ मुख्य ज्ञान और कहता हूँ, सुनो। मनुष्य को अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं है। अहंकार को त्याग देना ही उचित है। नाक, कान, जिह्वा, नेत्र और त्वचा—ये पाँचों ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ, पाँव, नाक, लिंग और गुदा ये पाँचों कर्मेन्द्रिय हैं। इनके अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन है। जो मनुष्य इन इन्द्रियों को संसारी सुखों की प्राप्ति में लगाता है, उसे अज्ञानी समझना चाहिए। ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह अपने मन को संसारी माया से विरक्त रखकर श्री नारायणजी के चरणों में अपनी प्रीति लगावे। वह संसार के आदि, मध्य तथा अन्त में परमेश्वर को ही विद्यमान जानकर, मेरी लीला-कथाओं को प्रेमपूर्वक सुने। खाने-पीने तथा पहिनने की जो भी वस्तु प्राप्त हो, उसे सर्व-प्रथम श्री नारायणजी के नाम पर अर्पण कर, बाद में स्वयं ग्रहण करे। कुँआ, बावड़ी, तालाब, उपवन आदि धर्म की राह बनवाकर उन सबका फल मुझे अर्पित कर दे तथा अपने मन में कभी भी यह अभिमान न रक्खे कि यह शुभ कर्म मैंने किये हैं।"

इतना वर्णन सुनकर उद्धव ने कहा—"हे त्रिलोकीनाथ ! अब आप तप, दान, नियम तथा संयम के विषय में वर्णन करने की कृपा करें। ज्ञानी किसे कहा जाता है तथा अज्ञानी कौन होता है ? शुभाशुभ कर्मों के ज्ञाता, स्वर्ग अथवा नरक प्राप्त करने के अधिकारी, धनी, दरिद्र, दानी तथा कृपण इन सबका हाल आप मुझे सुनावें।" उद्धव के मुख से ऐसे वचन सुनकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा—"हे उद्धव ! जीवहिंसा तथा चोरी आदि अन्य अकर्मों को त्यागकर, सत्य बोलना गुरु एवं परमेश्वर में प्रीति रखकर वेद-शास्त्रों के वचनों को सत्य जानना, बिना प्रयोजन के अधिक न बोलना तथा सब जीवों पर दया रखना, यह संयम के लक्षण हैं। हाथ-पावों को मिट्टी से मलकर धोना, स्नान, सन्ध्या, पूजन, यज्ञ, तप, श्राद्ध, तीर्थ व्रत आदि करने को नियम कहा जाता है। सबसे विरक्त हो, मन, वचन तथा कर्म से किसी का बुरा न चाहने का नाम दान है। गृहस्थ व्यक्ति को चाहिए कि वह भोजन, वस्त्र, पृथ्वी तथा स्वर्ण आदि वस्तुएँ ब्राह्मण को दान करे। स्त्री-भोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का सुख छोड़ देना ही सच्चा तप है। जो मनुष्य शास्त्रानुसार चलकर अपनी मुक्ति का चिन्तन करता है, उसे ज्ञानी समझना चाहिए। जो मनुष्य श्रीहरि को भुलाकर, अपने शरीर का पालन करने में ही संलग्न रहता है, उसे मूर्ख जानना चाहिए। मेरे कहे हुए कार्यों को करना ही सर्वोत्तम मार्ग है, उससे विपरीत आचरण करने को कुमार्ग समझना चाहिए। जो मनुष्य संसारी सुखों की अभिलाषा नहीं रखते तथा सदैव मेरे ही चरणों में अपना चित्त लगाये रहते हैं, उन्हें स्वर्ग प्राप्त करनेवाला समझना चाहिए। इस मिथ्या संसार से प्रीति रखनेवाले, लोभी तथा मिथ्यावादी मनुष्य नरकगामी होते हैं। जो ज्ञानी मनुष्य सच्चे मन से मेरी भक्ति करते हैं, उन्हें धनवान् समझना चाहिए तथा जो असन्तोषी हों, उन्हें दरिद्र जानना चाहिए। जो व्यक्ति किसी अन्य मूर्ख मनुष्य को भवसागर से पार उतारने की चिन्ता रखता हो, उसे दाता समझना उचित है। जो लोग अपने मन तथा इन्द्रियों के वशीभूत रहते हैं, उन्हें कृपण जानना श्रेष्ठ है। हे उद्धव! तुमने जो-जो बातें पूछी थीं, मैंने उन सबका उत्तर दे दिया है। जो मनुष्य मेरे इन वचनों को सत्य मानकर इनके अनुसार आचरण करेगा, उसे दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होगा तथा वह निश्चित रूप से भवसागर से पार उतर जायगा।"

अठारहवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का उद्धव से वानप्रस्थ आदि का वर्णन करना

श्री मुरलीमनोहर ने कहा—"हे उद्धव! वानप्रस्थ का धर्म यह है कि जब मनुष्य पचास वर्ष से अधिक अवस्था का हो जाय और उसका मन वैराग्य करने को चाहे तो उसे सपत्नीक या अकेले ही वन में जाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करना चाहिये। उसे सिर पर जटा बढ़ाकर केले के पत्तों से कौपीन बनाना चाहिये। प्रातःकाल, दोपहर और सन्ध्या इन तीनों कालों में स्नान करके पृथ्वी पर सोना, गर्मी में पंचाग्नि तापना और जाड़े में गर्दन भर पानी में खड़े रहकर तथा बरसात में मैदान के बीच ये बैठकर तपस्या करना चाहिए। पृथ्वी पर बोया हुआ अन्न भी उसे ग्रहण न करना चाहिये। जब इस तरह तप करने से शरीर निर्बल होकर बुढ़ापा आ जाय तब संन्यास लेकर दंड व कमण्डलु तथा कौपीन के सिवा और कुछ वस्तु अपने पास नहीं रखना चाहिये। सात घरों से अपने खाने भर को भोजन माँग ले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रास्ता चलते समय उसे पृथ्वी की ओर देखते रहना चाहिए, जिसमें चिउँटी आदि कोई छोटा जीव पाँव के नीचे दब न जाय। अपने मन और इन्द्रिय आदि को सर्वदा वश में रक्खे, परायी स्त्री व अच्छी वस्तु की ओर ध्यान न दे। सुस्वादु भोजन का सेवन न करे, जहाँ कहीं अच्छा भोजन प्राप्त हो जाय वहाँ कभी न जाय। झूठ न बोलना तथा संसारी सुख को स्वप्न के समान समझना, आठों प्रहर एकान्त में ईश्वर का ध्यान करते रहना, एक जगह अधिक न ठहरना तीर्थों में भ्रमण करना, पाखण्डी मनुष्यों की संगति न करना, किसी का डर न मानना, तथा सदा प्रसन्न रहना चाहिए।

"हे उद्धव! इस प्रकार संन्यासी को अपने सुख के लिए किसी से शत्रुता व मित्रता न रखकर अपना स्वभाव कोमल बनाये रखना चाहिए। वह अपने मन में किसी प्रकार का हर्ष अथवा विषाद न रक्खे। केवल भिक्षा प्राप्त करने के लिए ही उसे नगर या गाँव में जाना चाहिए। इस प्रकार के कर्मों को करने से जब उसके हृदय में मेरे निर्गुण स्वरूप का ध्यान आ जाय तभी उसको पूर्ण संन्यासी समझना चाहिए।

"हे उद्धव! केवल दण्ड-कमण्डलु धारण करने से संन्यास धर्म का फल नहीं मिलता। श्री त्रिलोकीनाथ का स्मरण करने में इन्द्र आदि देवता बहुत-सी बाधाएँ उपस्थित करते हैं। परन्तु उसमें मनुष्य को अडिग रहना चाहिए। जो लोग अपने धर्म-कर्म में अडिग रहते हैं तथा अपना धर्म नहीं छोड़ते उन्हें निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त होती है; इसलिये मेरी भक्ति चारों वर्णों व चारों आश्रमों के मनुष्यों को करनी चाहिए।"

उन्नीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी का उद्धव से चार प्रकार के भक्तों का वर्णन करना

श्री श्यामसुन्दरजी से इतनी कथा सुनकर उद्धव ने पूछा—"हे प्रभो! जिस प्रकार संसार के मनुष्य काल के गाल में रहकर भी प्रतिदिन अपना सुख चाहते हैं, उसी तरह मुझे भी समझकर भवसागर को पार करने के लिए कोई सरल मार्ग बताने की कृपा कीजिए।" श्री मुरलीमनोहर ने कहा—"हे उद्धव! जो ज्ञान भीष्म पीतामह ने राजा युधिष्ठिर से कहा था वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। संसारी मनुष्य को चार प्रकार से ज्ञान प्राप्त होता है:—(१) कथा-पुराण सुनने से, (२) दूसरे लोगों का मरना देखकर, (३) अपनी मृत्यु सोचने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से, (४) साधु, महात्मा तथा विरक्त पुरुषों की संगति करने से और संसारी व्यवहारों को झूठा समझने से। भगवान् की कथा को प्रेम-पूर्वक सुनकर उसमें विश्वास रखना चाहिए। हे उद्धव! मेरे निरंकार-रूप का ध्यान करनेवालों को जीवनमुक्त ही समझो तथा उनके लक्षण सुनो। वे लोग जो धर्म-कर्म आदि करते हैं, उनका फल मुझे समर्पित कर देते हैं। वे कोई कामना नहीं रखते। संसार में चार प्रकार के भक्त होते हैं—एक किसी प्रकार की विपत्ति पड़ने या रोगी होने पर मेरी भक्ति करता है, दूसरा ज्ञान प्राप्त करने तथा भवसागर से पार उतरने की इच्छा रखकर, तीसरा द्रव्य, संतान आदि पाने की इच्छा से, और चौथा ज्ञानी मनुष्य सिर्फ ईश्वर-भाव से मेरा ध्यान करता है और उसके बदले में कोई भी इच्छा नहीं रखता। ऐसे भक्त को मैं अन्य तीन प्रकार के भक्तों से अधिक प्यार करता हूँ।

"हे उद्धव! यज्ञ, तप, दान, धर्म, तीर्थ, व्रत आदि सभी शुभ कर्म हैं; परन्तु वे भक्ति तथा ज्ञान के समान श्रेष्ठ नहीं हैं। तुम ज्ञान से सांसारिक कामना को छोड़कर मेरी भक्ति करते हो, इसलिए अपनी मुक्ति में तनिक भी सन्देह मत समझो। इसके अतिरिक्त मैं तुमसे कुछ ज्ञान-चर्चा और करता हूँ, सुनो। अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना अनुचित है। मनुष्य को अहंकार नहीं करना चाहिए। नाक, कान, जीभ, आँख, त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पाँव, वाक्, लिंग, गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन है। जो मनुष्य इनको संसारी सुखों की ओर प्रवृत्त करता है उसको मूर्ख समझना चाहिए। ज्ञानी को मन व इन्द्रियों को माया-मोह से विरक्त रखकर मेरे चरणों में निरन्तर ध्यान लगाते रहना चाहिए। हे उद्धव! परमेश्वर को संसार का आदि, मध्य व अन्त समझकर उनके लीला-चरित्रों को प्रेम से सुने; उत्तम वस्तु प्राप्त होने पर उसे मुझे अर्पण कर सेवन करे; जो कुँआ, तालाब, बाग, बावली आदि धर्म के नाम पर बनवावे उसमें किसी प्रकार का अभिमान न कर उसका फल मुझे अर्पित करे।"

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे वैकुण्ठनाथ! तप, दान, नियम, संयम आदि का हाल मुझे बताने की कृपा करें। साथ ही यह भी बतावें कि ज्ञानी कौन है तथा मूर्ख किसे कहते हैं। शुभ-अशुभ कर्म करनेवाले, स्वर्ग जानेवाले, नरकगामी, धनी, कंगाल, उदार और कृपण आदि का भी हाल बताने की कृपा करें।" यह सुनकर श्री कृष्णजी ने कहा—"हे उद्धव! जीव-हिंसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और चोरी आदि कुकर्मों से बचे रहकर सच बोलना, गुरु और भगवान् में प्रीति रखकर वेद-शास्त्र जानना, आवश्यकता से अधिक न बोलना और सब जीवों पर दया करना यही संयम है। हाथ-पाँव मिट्टी से मलकर धोना, स्नान-सन्ध्या, पूजा, यज्ञ, तप, श्राद्ध तथा तीर्थ व्रत करना यही नियम है। दानी उसे कहते हैं, जो मनसा-वाचा-कर्मणा से किसी का बुरा न चाहे। गृहस्थाश्रमी उसे कहते हैं जो भोजन, वस्त्र, पृथ्वी, सोना आदि ब्राह्मणों को दान करे। तपस्वी वह है जो स्त्री-संभोग का सुख छोड़ दे। शास्त्रानुसार चलकर अपनी मुक्ति का उपाय सोच रखनेवाला मनुष्य ज्ञानी है। जो मनुष्य परमेश्वर को भूलकर अपना शरीर पालता है, उसे मूर्ख समझना चाहिये। मेरे बताये हुए राह पर चलना ही सुमार्ग है तथा इससे विपरीत आचरण करना ही कुमार्ग है। जो लोग संसार में अन्य वस्तुओं को तुच्छ समझकर मुझमें प्रेम रखते हैं, उनको स्वर्ग पहुँचानेवाला मुझे समझो। संसारी वस्तुओं से प्रेम करनेवाले लोभी और झूठे मनुष्यों को नरकगामी ही समझना चाहिए। जो ज्ञानवान् होकर मेरी भक्ति सच्चे हृदय से करते हैं, उनको धनी तथा जिनको सन्तोष नहीं होता उनको दरिद्र समझना चाहिए। जो मूर्ख मनुष्य को भवसागर तरने का उपाय बतावे उसे ज्ञानी समझना चाहिए। जो लोग मन व इन्द्रियों को वश में न रख सकें उनको कृपण समझना चाहिए। हे उद्धव! जो-जो बातें तुमने पूछीं उन सभी बातों का उत्तर मैंने दिया। जो कोई मेरे वचन को सत्य मानकर उसके अनुसार आचरण करेगा उसका लोक-परलोक दोनों ही बन जायगा।"

बीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा माया से छूटने के उपाय का वर्णन

इतना वर्णन सुनकर उद्धव ने कहा—"हे मुरलीमनोहर! आपसे सम्पूर्ण ज्ञान सुनकर, मैंने यह समझा है कि संसारी माया-मोह में पड़ना बुरा है तथा सबसे विरक्त रहना श्रेष्ठ है। अब आप कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें, जिससे मनुष्य संसारी माया में लिप्त न हो।" उद्धव के मुख से यह शब्द सुनकर श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! मैंने भवसागर से पार उतरने के लिए तीन मार्ग बताये हैं। पहिला ज्ञान का, दूसरा कर्म का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा तीसरा भक्ति का। जिसे ज्ञान प्राप्त होता है, वह संसारी माया-मोह में नहीं पड़ता। जो संसारी माया-मोह में पड़ा हुआ हो, उसे शुभ कर्म करना उचित है। जो लोग अपना मन कुछ तो ज्ञान की ओर लगाये हों और कुछ संसारी माया में लगाये हुए हों, उन्हें मेरी भक्ति करनी उचित है। जब तक मनुष्य को मेरे कथा-चरित्रों को सुनने में प्रीति न हो तथा जब तक संसारी माया-मोह से विरक्ति प्राप्त न हो, तब तक उसे शास्त्रानुसार शुभ कर्म करते रहना चाहिए। शास्त्रों में स्वर्ग-प्राप्ति के लिए जो धर्म लिखे हैं, उनका आचरण करना ही श्रेष्ठ है। किसी मनुष्य को जब संसारी सुख तथा स्वर्ग-प्राप्ति की कामना नहीं रहती, तब उसे कर्म करने मात्र से ही सब सुखों की प्राप्ति हो जाती है। अतः मनुष्य को उचित है कि वह आठों प्रहर श्री नारायणजी के चरणों में ध्यान रखकर शुभ कर्म करता रहे। जब तक हाथ, पाँव, नाक, कान, नेत्र आदि इन्द्रियों में सामर्थ्य रहती है, तब तक शुभ कर्म भली-भाँति बनते हैं। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर जब इन्द्रियों की सामर्थ्य घट जाती है, तब वे कर्म विधिपूर्वक नहीं हो सकते। अतः मनुष्य को उचित है कि वह अपने मन में कभी ऐसा विचार न करे कि युवावस्था में तो संसारी सुखों को उठा ले, तदनन्तर वृद्धावस्था आने पर परलोक सुधारने का उपाय कर लेंगे।

हे उद्धव! मनुष्य के शरीर को वृक्ष के समान समझना चाहिए। हम पर कालरूपी लुहार दिन-रात कुल्हाड़ा चलाता रहता है। क्या पता यह शरीररूपी वृक्ष किस दिन कटकर गिर पड़े? यह विचार कर मनुष्य को अपनी मृत्यु का हर समय स्मरण रखकर, मेरे चरणों का ध्यान करते रहना चाहिए, जिससे वह मुक्त हो सके।

हे उद्धव! अब मैं तुम्हें इस ज्ञान के सम्बन्ध में एक अन्य दृष्टान्त देता हूँ। एक वृक्ष पर दो पक्षी घोंसले बनाकर रहते थे। एक समय जब एक लुहार उस वृक्ष को काटने लगा, तब पहिले पक्षी ने दूसरे पक्षी से यह कहा कि हमें इस वृक्ष से उड़कर चल देना चाहिए। यह सुनकर दूसरे पक्षी ने उत्तर दिया कि हमें यहाँ से जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, अतः यहीं बैठे रहना चाहिए। परन्तु दूसरे पक्षी की बात पहिले पक्षी ने नहीं मानी, अतः वह उड़कर अन्यत्र चला गया और दूसरा पक्षी अपनी मूर्खता-वश मृत्यु को प्राप्त हुआ। अस्तु, हे उद्धव! जिस प्रकार उड़ जानेवाला पक्षी जीवित रह जाता है तथा बैठा रहनेवाला पक्षी दुःख प्राप्त करता है, उसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार संसारी माया-मोह को छोड़ देनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है और उसमें लिपटा रहनेवाला आवागमन में पड़ा रहता है।

हे उद्धव ! इस मनुष्य-शरीर को नौका के समान समझकर गुरु को मल्लाह के समान जानना चाहिए। यह नाव संसार-रूपी समुद्र में पड़ती है। जब इसमें बैठा हुआ व्यक्ति मेरे वायुरूपी चरणों का स्मरण करता है, तब वह अपने गुरु की कृपा से दूसरे किनारे पर पहुँच जाता है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर-रूपी नौका को पाकर इस भवसागर से पार उतरने का उपाय नहीं करता, उसे मूर्ख तथा आत्मघाती समझना चाहिए। जब तक मनुष्य ज्ञान का आश्रय लेकर अपने मन को कुमार्ग पर चलने को नहीं रोकता, तब तक उसे विविध प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। यदि इस चंचल हृदय को कुमार्ग पर चलने से धीरे-धीरे भी रोका जाय तो ऐसे साधन से एक न एक दिन चित्त कुमार्ग पर चलने से विरक्त हो जाता है। जब किसी मनुष्य का मन संसार से विरक्त होकर मेरे चरणों में लगता है, तब उससे संसारी माया अपने आप छूट जाती है। उस स्थिति में उसे मेरे चरणों से अधिकाधिक प्रीति उत्पन्न होती जाती है। जो कोई अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करता हुआ, मेरे चरणों में अपना मन लगाता है तथा इस बात का विश्वास रखता है कि मेरी भक्ति के प्रताप से उसका मन संसार माया से विरक्त हो जायगा, उसे मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है।

हे उद्धव ! इस संसाररूपी समुद्र से पार उतरने के लिए भक्ति के समान श्रेष्ठ उपाय अन्य कोई नहीं है। मेरे भक्तों को मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं होती। वे चारों प्रकार की मुक्ति को मुझसे न लेकर भक्ति को श्रेष्ठ समझते हैं। सो मैं जिस पर अत्यन्त कृपा करता हूँ, उसी को मेरी भक्ति प्राप्त होती है। जिस प्राणी को मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनके दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवता भी लालायित बने रहते हैं।"

इक्कीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा भक्ति उत्पन्न होने के ज्ञान का वर्णन

श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव ! मैंने तुमसे भक्ति तथा ज्ञान के जिस मार्ग को कहा है, उसे छोड़कर जो मनुष्य अपना मन कुकर्मों में लगाता है, वह चौरासी लाख योनियों के आवागमन से कभी छुटकारा नहीं पाता तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

बहुत समय तक नरक का दुःख भोगता है। जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी श्रीहरि का भजन नहीं करते, उन्हें परम अभागा तथा महामूर्ख समझना चाहिए। जो मनुष्य आठों प्रहर अपनी मृत्यु का ध्यान रखकर, शास्त्रानुसार वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं, उन्हीं का जन्म लेना सफल है। अपने धर्म को त्याग देने से बड़ा पाप अन्य कोई नहीं है। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के लिए वेद में जो धर्म लिखा है उसके अनुसार आचरण करने से ज्ञान तथा धर्म की वृद्धि होती है एवं मुझसे मिलने का मार्ग सुगम हो जाता है। धनी तथा निर्धन ये दोनों ही प्रकार के मनुष्य नियम तथा आचार का निर्वाह कर सकते हैं। जो मनुष्य सामर्थ्यवान् हों उन्हें मल-मूत्र करने के पश्चात् दूसरे वस्त्र धारण कर लेने चाहिएँ तथा जो दरिद्र हों अथवा जिनके पास पहिनने के लिए दूसरा वस्त्र न हो उन्हें गीले वस्त्र पहिनकर अपने नियम का पालन करना चाहिए। सूखा अन्न वायु लगने के कारण पवित्र बना रहता है। चाण्डाल द्वारा छुए जाने पर भी वह अपवित्र नहीं होता, सूती वस्त्र धोने से पवित्र रहता है। रेशमी वस्त्र को पहिन कर जब तक दिशा (मल-त्याग) के लिए न जावे एवं भोजन करते समय अथवा सूतक में न पहिने तब तक वह शुद्ध रहता है। उसे धोने की आवश्यकता नहीं रहती। ताँबे तथा पीतल के बर्तन खटाई अथवा राख द्वारा माँजने से, चाँदी के बर्तन धोने से तथा स्वर्ण से बने बर्तन केवल वायु लगने से ही पवित्र बने रहते हैं। यदि किसी बर्तन अथवा वस्त्र में मल-मूत्र लग जाय, तो जब तक उसकी दुर्गन्ध अथवा रङ्ग न छूटे, तब तक वह अपवित्र रहता है। प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, तर्पण तथा हवन करने से मनुष्य का शरीर शुद्ध बना रहता है। ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह प्रत्येक भोज्यवस्तु का भोग पहिले ठाकुरजी को लगावे तदुपरान्त स्वयं भोजन करे। जो मनुष्य श्रीहरि का भोग लगाए बिना किसी वस्तु को खा लेता है, उसे वह भोजन मांस-भोजन के समान समझना चाहिए। भोजन करते समय मनुष्य को अपना नाम लेना उचित नहीं है। उसे सदैव यही कहना चाहिए कि श्री नारायणजी के निमित्त भोजन बनाया जाय। इस प्रकार का अभ्यास रखने से सम्पूर्ण पापों का मूल अहङ्कार नष्ट हो जाता है। अज्ञानी बालक को नियम तथा सदाचार रखने की आवश्यकता नहीं है। पाँच वर्ष तक की आयु के बालक को किसी बात का पाप-पुण्य नहीं लगता। ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक की आयुवाले बालक से यदि कोई हत्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त बालक के पिता को करना चाहिये। १२ वर्ष से बड़ी आयु होने पर यदि कोई पाप बन पड़े तो उसका प्रायश्चित्त स्वयं करना उचित है। विपत्ति पड़ने पर यदि अधर्म द्वारा भी पेट पालन किया जाय तो कोई दोष नहीं लगता, परन्तु सामर्थ्यवान् होने पर धर्म त्याग देने से पाप लगता है। जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण को धर्म का विचार रखना उचित है, उसी प्रकार शूद्र वर्ण को आचार-विचार रखने की आवश्यकता नहीं है। कोठे पर सोनेवाला मनुष्य ही नीचे गिर सकता है, पृथ्वी पर सोनेवाला नहीं। मनुष्य को चाहिए कि जहाँ तक बन पड़े स्वयं को अधर्म से बचाये रहे। पाप जितना ही कम हो उतना ही अच्छा है। संसारी कामनायें दुखों की मूल हैं। इन्हें छोड़ देनेवाले अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। जिस प्रकार संसार में संसारी कामनायें दुःख देती हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में भी तीन वस्तुएँ दुःख देती हैं। दूसरे को अपने से ऊँचे सिंहासन पर बैठे देखकर ईर्ष्या करना, दूसरे को अपने बराबर बैठने देने में विरोध करना तथा अपने से नीचे बैठनेवाले के प्रति अहङ्कार द्वारा उसे छोटा समझने का भाव रखना, यह तीनों बातें स्वर्ग लोक में भी दुःख देती हैं। अतः ज्ञानी मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। जो मनुष्य संसारी सुख तथा स्वर्ग की कामना न रखकर, केवल मेरे ही चरणों में मन लगाये रहता है, वह महाप्रलय पर्यन्त मेरे साथ वैकुण्ठलोक में रहकर सुख-भोग करता है तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

हे उद्धव! जो लोग मुझे ईश्वर जानकर सच्चे मन से एक बार भी मेरा स्मरण तथा ध्यान करते हैं, मैं उन्हें कभी नहीं भुला पाता; अतः मनुष्य को चाहिये कि वह शास्त्रों में लिखे अनुसार अपने धर्म का पालन करे एवं मेरे चरणों में अपना मन लगाये रहे।"

बाईसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा तत्त्वों का वर्णन

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे त्रिलोकीनाथ! मैंने चौबीस तत्त्वों के विषय में सुना, परन्तु कोई ऋषि तीन तत्त्व, कोई छः तत्त्व, कोई नौ तत्त्व तथा कोई ग्यारह तत्त्व बताते हैं। अतः आप इस भेद का वर्णन करने की कृपा कीजिये, जिससे मेरा सन्देह दूर हो जाय।" श्री बाँकेविहारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बोले–"हे उद्धव ! इस संसाररूपी माया से कोई भी ऋषि, मुनि तथा योगी नहीं बच पाता, अतः जो बात मैं कहता हूँ, तुम उसी को सत्य मानो। मेरी इस माया में फँसे होने के कारण ही ऋषि, मुनि तथा योगियों को अनेक मार्ग दिखाई देते हैं। जब तक वे मेरे भेद को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक उनका चित्त किसी एक बात पर स्थिर नहीं हो पाता। जो व्यक्ति ज्ञान-मार्ग से मुझे पहिचान लेता है, उसके मन से सम्पूर्ण भेद नष्ट हो जाता है। मेरी माया के तीनों गुण–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा ही संसार की रचना होती है। इन तीनों गुणों के घटते-बढ़ते रहने के कारण ही संसारी प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

हे उद्धव ! तुमने जो-जो तत्त्व सुने हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं:– १–पुरुष, २–महत्तत्त्व, ३–अहङ्कार, ४–आकाश, ५–वायु, ६–अग्नि, ७–जल, ८–पृथ्वी तथा ९–माया। तुमने जो ग्यारह तत्त्व सुने हैं, उनमें त्वचा, नेत्र, नासिका, कान तथा जिह्वा–इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा हाथ, पाँव, लिंग, गुदा और वाक्; इन पाँच कर्मेन्द्रियों एवं ग्यारहवाँ मन को समझना चाहिये। त्वचा से शीत, उष्ण, कोमल तथा कठोर का अनुभव होता है। आँखों से देखा जाता है। नासिका से सूँघा जाता है। कानों द्वारा सुना जाता है। जिह्वा द्वारा कटु, तिक्त, कषाय आदि स्वादों को चखा जाता है। हाथों से शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं। पाँवों से चला-फिरा जाता है। लिंग से रति-भोग होता है। गुदा से मल त्यागा जाता है तथा वाक् अर्थात् वाणी से बोला जाता है। ये सम्पूर्ण कर्म मन के इच्छानुसार होते हैं। हे उद्धव ! इन सब इन्द्रियों, अहङ्कार तथा महत्तत्त्व से संसार की उत्पत्ति होती है। छः तत्त्व जो कहे जाते हैं उन्हें, १–पृथ्वी, २–जल, ३–अग्नि, ४–वायु, ५–आकाश। इन पंचभूतात्मा एवं ६–परमात्मा—पुरुष को जानना चाहिए। जब तक मनुष्य मेरी माया में फँसा रहता है, तब तक उसे अनेक प्रकार के भ्रम लगे रहते हैं। जब वह माया से छूटकर मुझे अपना स्वामी जान लेता है, तब उसका मन किसी दूसरी ओर नहीं लगता। वह सम्पूर्ण जीवों में मेरा एक-सा प्रकाश देखता है। संसारी माया में फँसा रहनेवाला मनुष्य मुझे नहीं पहिचान पाता, परन्तु जो अपने मन को मेरे चरणों में लगा देता है, वह भवसागर से पार उतर जाता है।

हे उद्धव ! मृत्यु के समय मनुष्य अपना मन जिस ओर लगाता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्यु के उपरान्त वह उसी शरीर को प्राप्त करता है। जो लोग श्रीहरि के चरणों का ध्यान धरकर अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेते हैं, वे वैकुण्ठ-लोक को प्राप्त होते हैं। जो लोग अपने शरीर का पुष्ट करने के लिए जीव-हिंसा करते हैं, उन्हें नरक में अवश्य जाना पड़ता है तथा चौरासी लाख योनियों का भोग भोगना पड़ता है। देखो, सोने के समय शरीर तो एक स्थान पर पड़ा रहता है, परन्तु मन अनेक स्थानों में भ्रमण करने के कारण स्वप्न देखा करता है। जाग्रतावस्था में भी वह सहस्रों कोसों तक दौड़ता है, अतः मन को शरीर से अलग समझना चाहिये। जिस व्यक्ति ने इस ब्रह्माण्ड को माया द्वारा निर्मित जानकर अपने मन को वश में कर लिया है, उसने सम्पूर्ण इन्द्रियों को जीत लिया है। जो लोग मन के वश में रहते हैं, वे संसारी माया में पड़कर नष्ट हो जाते हैं। आत्मा में मेरा प्रकाश शुद्ध भाव से रहकर सबसे पृथक् बना रहता है, परन्तु माया का संयोग होने के कारण उसे संसार की उत्पत्ति करनी पड़ती है। मैं सतोगुण के साथ मिलकर ऋषि एवं देवता, रजोगुण के साथ मिलकर दैत्य एवं मनुष्य तथा तमोगुण के साथ मिलकर भूत, प्रेत, पशु आदि को उत्पन्न करता हूँ। जिस प्रकार मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर फिर उसे स्वयं ही खा जाती है, उसी प्रकार मैं भी सम्पूर्ण जीवों के शरीर में अपनी शक्ति रखकर मृत्यु के उपरान्त उसे खींच लेता हूँ। जिस प्रकार जल में बहती हुई नौका पर चढ़ने से नदी-तट के वृक्ष चलते हुए दिखाई देते हैं तथा स्वयं घूमते समय पृथ्वी एवं आकाश घूमते हुये जान पड़ते हैं, उसी प्रकार संसार के सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म मेरी इच्छा तथा माया से होते हैं, परन्तु मनुष्य सदैव यही समझा करता है कि उन्हें मैंने किया है। अतः ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि काम, क्रोध आदि से विरक्त होकर मन को अपने वश में रखे तथा अपना परलोक बनाने का उपाय करता रहे। किसी के द्वारा दुर्वचन कहने पर भी कुछ बुरा न माने।"

तेईसवाँ अध्याय

श्री कृष्णजी द्वारा ब्राह्मण के इतिहास का वर्णन

श्री कृष्णजी के मुख से यह वचन सुनकर उद्धव ने कहा—"हे जगन्नाथ! यह बात तो अत्यन्त कठिन है कि किसी के द्वारा कठोर वचन सुनकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी उसे क्षमा कर दिया जाय।" भगवान् श्यामसुन्दर बोले—"हे उद्धव! तुम सत्य कहते हो। तीर तथा तलवार का घाव मरहम लगाने से अच्छा हो जाता है, परन्तु कठोर वचन का जो घाव हृदय पर पड़ता है, वह किसी भी प्रकार ठीक नहीं हो पाता। परन्तु इन सब बातों को मन के द्वारा उत्पन्न हुआ जानना चाहिये। जिसने अपने मन तथा अहंकार को वश में कर लिया है, उसे इन बातों का खेद नहीं होता। वह सम्पूर्ण जीवों में परमेश्वर का एक-सा चमत्कार देखता है तथा सम्पूर्ण बातों को श्री नारायणजी की इच्छा से हुआ जानता है। जो लोग अपने मन तथा इन्द्रियों के वश में रहते हैं, उन्हीं को कटु वचन सुनकर क्रोध उत्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में हम तुमसे एक इतिहास कहते हैं, उसे सुनो—

"उज्जैन नगर में एक ब्राह्मण बड़ा धनी तथा व्यापारी था। वह ऐसा कृपण, कामी तथा क्रोधी था कि उसने अपने मुख से कभी भी किसी ब्राह्मण अथवा जाति-भाई को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण नहीं दिया। वह एक कौड़ी के लिए ही मित्रता भुलाकर शत्रु बन जाता था। संसारी मनुष्य के पास यदि धन हो तो उसे आत्मा, परिवार, देवता, पितर तथा अतिथि का सुख प्राप्त होता है, परन्तु ये पाँचों ही उस ब्राह्मण के घोर शत्रु थे। उसने खाने-पीने में भी कृपणता का व्यवहार रक्खा था। यद्यपि उसने धन तो बहुत इकट्ठा किया, परन्तु परिवार के लोग एवं उसके अपने ही स्त्री-पुत्र भी उससे शत्रुता रखते थे। हे उद्धव! जब वह ब्राह्मण वृद्ध हो गया और उसमें व्यापार करने की भी सामर्थ्य न रही तब उपर्युक्त पाँचों के शाप से अग्नि लगने के कारण, चोरों द्वारा चुरा ले जाने के कारण, राजा द्वारा लूटने के कारण तथा देनदारों के पचा लेने के कारण उसका सब धन नष्ट हो गया। उसने जो धन पृथ्वी में गाड़ रक्खा था, वह भी अपने स्थान से टल गया। इस प्रकार सम्पूर्ण धन नष्ट हो जाने पर जब वह भोजन से भी दुखी हो गया तथा जाति के लोग उसका निरादर करने लगे, तब एक दिन उसने बैठकर अपने मन में यह विचार किया कि देखो, मैंने इतना धन एकत्रित करके भी न तो संसारी सुख उठाया और न अपना परलोक बनाने के लिए ही कोई कार्य किया। कृपण का धन इसी प्रकार नष्ट होता है। तृष्णा रखने से मनुष्य के सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं तथा संसार में अपयश प्राप्त होता है। जिस प्रकार किसी सुन्दर मनुष्य के मुख पर कोढ़ का दाग हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार लोभी मनुष्य का तेज भी नष्ट हो जाता है। संसार में उसे कोई भला नहीं कहता। जिस धन को लोग उत्तम बताते हैं वह इतना बुरा होता है कि पहिले तो उसे प्राप्त करने के लिए अपने परायों के साथ शत्रुता करनी पड़ती है और झूठ बोलना पड़ता है, फिर दिन-रात उसकी रक्षा करने के लिए चोर-डाकू, राजा तथा जाति भाइयों का भय लगा रहता है। इस कारण ठीक से नींद भी नहीं आ पाती। धन मिलने पर वेश्यागमन, जूआ, जीवहिंसा तथा जाति भाइयों से अभिमान उत्पन्न होता है। ऐसे अनेक प्रकार के पाप-कर्म करने पड़ते हैं जिससे संसार में अपयश मिलता है और मृत्यु के पश्चात् नरक भोगना पड़ता है। अस्तु, श्री नारायणजी ने बहुत अच्छा किया जो मेरा सब धन नष्ट हो गया। जिस धन में इतने अवगुण भरे हों, उसे शुभ कार्यों में ही खर्च कर डालना ठीक है। धन एकत्रित करने से दुःख के अतिरिक्त सुख नहीं मिलता। चार दिन के जीवन में इस मायारूपी धन तथा स्त्री के हेतु बहुत से लोगों से शत्रुता करना उचित नहीं है। जो लोग इस भरतखण्ड में मनुष्य का शरीर पाकर भी धन, स्त्री तथा पुत्रों के प्रेम में पड़कर नष्ट होते हैं, उनके जीवन को व्यर्थ समझना चाहिये। देवता लोगों के हृदय में भी यह इच्छा रहती है कि यदि हमारा जन्म भरतखण्ड में मनुष्य-शरीर में हुआ होता तो हम जितनी भी बड़ी पदवी चाहते, उसे प्राप्त कर सकते थे, अब वृद्धावस्था के कारण मेरी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो गई है। अतः यही उचित है कि मैं जितने दिन भी और जीवित रहूँ उतने समय तक श्री नारायणजी का ध्यान धर कर अपने परलोक को सुधारने का उपाय करूँ तथा अपनी आत्मा को कुछ कष्ट देकर श्री नारायणजी के स्मरण में मग्न रहूँ।"

हे उद्धव ! इस प्रकार विचार करके उस ब्राह्मण ने संसारी मोह-माया से विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर लिया तथा एक स्थान पर बैठकर श्री नारायणजी का भजन एवं स्मरण करने लगा। जब कभी वह ब्राह्मण भिक्षा लेने को नगर में जाता था तो लोग उसकी पिछली बातों को याद करके उसे बहुत दुःख देते थे। कोई गाली देकर उस पर थूक देता था तो कोई उसका दण्ड-कमण्डलु छीनकर तथा रस्सी से बाँधकर यह कहता था कि यह व्यक्ति अत्यन्त कृपण तथा कपटी था, परन्तु अब बगुलाभगत बनकर घूमता है। हे उद्धव ! इस प्रकार के अनेक दुःख पाने पर भी वह ब्राह्मण किसी से कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खेद नहीं मानता था तथा अपने मन में यह समझता था कि देवता, मनुष्य, नवग्रह, शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा आदि मुझे कोई दुःख नहीं देते हैं। यह सब जो दुःख मुझे मिल रहा है, वह मेरे प्रारब्ध तथा मन के कारण ही है। मन चलायमान होने के कारण संसारी मनुष्य जो शुभ-अशुभ कर्म करते हैं, उसी के अनुसार उन्हें सुख-दुःख भोगना पड़ता है। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह कभी दुखी नहीं रहता। इस मन के कारण ही दूसरे लोग शत्रु अथवा मित्र दिखाई पड़ते हैं। जो मनुष्य अपने मन को वश में नहीं कर सका, उसका धर्म-कर्म करना व्यर्थ है। अतः मन को संसारी माया से हटाकर श्री नारायणजी के चरणों में लगाना चाहिये।

हे उद्धव! इस प्रकार अपने मन पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण वह ब्राह्मण ऐसा ज्ञानी हो गया कि शत्रु-मित्र को बराबर मानकर न तो वह किसी के द्वारा गाली दिए जाने पर दुखी होता था और न किसी पर क्रोध ही करता था। अस्तु, इस भाँति का ज्ञान प्राप्त होने के कारण वह मृत्यु के पश्चात् मुक्त पद को प्राप्त हुआ। जो मनुष्य इस अध्याय की कथा को सच्चे मन से कहेंगे-सुनेंगे, वे भी काम-क्रोध आदि से छूटकर भवसागर से पार उतर जायँगे।"

चौबीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा माया एवं आदिपुरुष का वर्णन

श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! अब मैं आत्मपुरुष तथा माया का पृथक् वर्णन करता हूँ, उसे मन लगाकर सुनो। आत्मपुरुष निरंकार रूप है, अतः मन तथा वाणी की सामर्थ्य वहाँ तक पहुँचने की नहीं है। जब उन निरंकार पुरुष को संसार उत्पन्न करने की इच्छा होती है, तब वे सर्वप्रथम अपनी माया को जिसे प्रकृति भी कहते हैं, प्रकट करते हैं। तदुपरान्त उस माया से सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की उत्पत्ति होती है। ये तीनों गुण जब तक बराबर रहते हैं तब तक किसी जीव का जन्म नहीं होता। इनके घटने-बढ़ने से ही संसार की उत्पत्ति होती है। माया में मेरा प्रकाश रहने के कारण महत्तत्त्व प्रकट होता है, फिर उसमें से अहङ्कार उत्पन्न होता है। अहंकार से वैकारिक, तामस् तथा तैजस् का प्राकट्य होता है। वैकारिक से पंचभूत, तामस् से ग्यारह, इन्द्रियों तथा तैजस् से इन्द्रियों के स्वामी ग्यारह देवता उत्पन्न होते हैं। जब तक ये सब अलग-अलग रहते हैं, तब तक ब्रह्माण्ड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष का प्राकट्य नहीं होता। मेरी शक्ति द्वारा जब ये सब वस्तुएँ एकत्रित हो जाती हैं, तब वह मेरा ब्रह्माण्ड-पुरुष-रूप बहुत समय तक जल में शेष-नाग की शैया पर शयन करता है। तदुपरान्त उस स्वरूप की नाभि से एक कमल का फूल उत्पन्न होता है। उस फूल की डाल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर तपस्या करते हैं। तत्पश्चात् वे रजोगुण द्वारा सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करके तीनों लोकों की रचना करते हैं। देवता स्वर्गलोक में, दैत्य तथा दानव पाताल-लोक में, एवं मनुष्य आदि मर्त्यलोक में रहकर, अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग तथा नरक के सुख-दुःख का भोग करते हैं।

हे उद्धव! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। एक दिन बीतने पर जब ब्रह्मा की रात्रि होती है, तब वे सो जाते हैं। उस समय कोई भी लोक नहीं रहता। प्रातःकाल उठकर ब्रह्मा फिर से नई सृष्टि उत्पन्न करते हैं। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। ब्रह्मा की मृत्यु के पश्चात् पानी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु शेष नहीं रहती। फिर पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहङ्कार महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व माया में तथा माया मेरे निरङ्कार-स्वरूप में समा जाती है।"

पच्चीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा तीनों गुणों के लक्षणों का वर्णन

श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव! अब मैं तुमसे सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के लक्षणों का वर्णन करता हूँ, सुनो। अपनी इन्द्रियों के वशीभूत न होना, मन में दया रखना, शुभ कर्म करने का विचार करते रहना, किसी के द्वारा दुर्वचन कहे जाने पर भी खेद न मानना, सदैव श्री नारायणजी का स्मरण एवं ध्यान करना, सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, सन्तोष रखना, किसी वस्तु की इच्छा न करना तथा श्रीहरि की सेवा-पूजा में चित्त को लगाये रहना—ये सतोगुण के लक्षण हैं। सुन्दर स्त्री, उत्तम वस्त्राभूषण, श्रेष्ठ स्थान, उपवन आदि संसारी सुखों की इच्छा रखना, अभिमान के कारण किसी का कहना न मानना, यश-प्राप्ति के लिए शुभ कर्म करना तथा शक्ति एवं धन बढ़ाने का उपाय करते रहना, रजोगुण के लक्षण हैं। अधिक क्रोध, अधिक लोभ, मिथ्या वचन बोलना, जीवहिंसा करना, कुकर्म करना, माँगना, निर्लज्ज होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परस्पर कलह करना, आठों प्रहर आलस्य में भरे रहना तथा अधिक सोना—ये लक्षण तमोगुण के हैं। सम्पूर्ण वस्तुओं को अपना समझना, मेरे-तेरे का विचार करना तथा मन में अहंभाव रखना—यह बात तीनों गुणों के मिलने पर होती है। सतोगुण के प्रताप से मेरा ध्यान तथा स्मरण करनेवाले व्यक्ति को किसी वस्तु की कामना नहीं रहती।

हे उद्धव! ये तीनों गुण आठों प्रहर एक समान न रहकर, निरन्तर घटते-बढ़ते रहते हैं। सतोगुण की अधिकता में मन में हर्ष एवं ज्ञान की उत्पत्ति होती है, रजोगुण की अधिकता में संसारी सुखों की इच्छा होती है तथा तमोगुण की अधिकता में चिन्ता, क्रोध, नींद तथा आलस्य की वृद्धि होती है। उस समय चित्त जीवहिंसा तथा अधर्म करने की इच्छा भी रखता है। जगना सतोगुण, सोना अथवा स्वप्न देखना रजोगुण तथा उदास होकर चिन्तित बैठ जाना तमोगुण का लक्षण जानना चाहिए। थोड़ा भोजन सात्त्विकी, भोजन के लिए स्वादिष्ट पदार्थों की इच्छा रखना राजसी तथा अजीर्ण को उत्पन्न करनेवाला भूख से अधिक भोजन करना, तामसी गुण का लक्षण है। आत्मा इन तीनों गुणों में मिश्रित होते हुए भी सबसे भिन्न रहता है। सतोगुणी स्वभाववाले प्राणी स्वर्गलोक के सुख का उपभोग करते हैं। रजोगुणी स्वभाव के लोग अपने कर्मानुसार सुख-दुःख का भोग करते तथा जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहते हैं। तमोगुणी स्वभाव के लोग पशु आदि चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर अपने कर्मानुसार नरक का घोर दुःख उठाते हैं। जो लोग संसार से विरक्त तथा मेरे चरणों के भक्त होते हैं, वे मेरे पास वैकुण्ठ-लोक में निवास करते हैं। गार्हस्थ्य आश्रम का त्यागकर वन में रहना सतोगुण, गार्हस्थ्य आश्रम में रहकर संसारी सुखों की कामना करना रजोगुण तथा जीव-हिंसा, पाप आदि को तमोगुण का रूप समझना चाहिए। मेरी पूजा तथा स्मरण में लीन रहने को निर्गुण धर्म कहा जाता है। हे उद्धव! इस प्रकार सभी जीवों तथा सभी कार्यों में सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के लक्षण विद्यमान रहते हैं। संसार की कोई भी वस्तु इनसे बाहर नहीं है। अतः जो लोग इन तीनों से विरक्त होकर मेरी निर्गुण भक्ति तथा पूजा को अपनाते हैं, वे ही मेरे समीप पहुँचने के अधिकारी होते हैं।"

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छब्बीसवाँ अध्याय

राजा पुरूरवा को गन्धर्व-लोक में प्राप्त ज्ञान का वर्णन

श्री कृष्णचन्द्रजी बोले—"हे उद्धव ! जिस मनुष्य को मुझसे मिलने की इच्छा हो, वह कभी भी लम्पट, चोर, कृपण, जुआरी, इस संसार से प्रीति रखनेवाले एवं अधर्मियों के साथ रहनेवाले लोगों से प्रेम न रक्खे। उसे साधु-महात्माओं की संगति करनी चाहिये, जिससे श्री नारायणजी के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो। जिस प्रकार राजा पुरूरवा उर्वशी अप्सरा की प्रीति में पड़कर नष्ट हुआ था, उसी प्रकार संसारी मनुष्य स्त्री तथा लम्पटों से प्रीति करके अपना परलोक बिगाड़ बैठते हैं। अतः हे उद्धव ! तुम कभी भी ऐसे लोगों की संगति में मत बैठना।"

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे त्रिलोकीनाथ ! आप मुझे राजा पुरूरवा का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें।" श्री श्यामसुन्दर बोले—"हे उद्धव ! राजा पुरूरवा का जन्म इला नामक स्त्री द्वारा हुआ था। वह उर्वशी नामक अप्सरा से प्रीति करके गन्धर्व-लोक में रहा था, उसकी कथा नवम स्कन्ध में कही गई है। अब तुम वह कथा सुनो, जिस प्रकार उसे ज्ञान प्राप्त हुआ था। गन्धर्व-लोक में रहकर उर्वशी के साथ विवाह करते हुए राजा पुरूरवा को जब सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये तो भी उसका मन विषय-भोग से नहीं भरा, तब एक दिन उसे मेरे इच्छानुसार ज्ञान प्राप्त हुआ। उस समय उसने अपने मन में यह विचार किया कि मैंने इतने समय तक काम-देव के वशीभूत रहकर संसारी सुखों को भोगा, परन्तु अभी तक मेरी इन्द्रियों की वासना नष्ट नहीं हुई है। जिस प्रकार घृत डालने से अग्नि की ज्वाला निरन्तर बढ़ती चली जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों को जितना अधिक सुख दिया जाय, उतनी ही तृष्णा और बढ़ती रहती है। मैं बुध का पुत्र तथा अत्यन्त ज्ञानी एवं प्रतापी राजा था, परन्तु उर्वशी के प्रस्थान करते समय मैं उसके पीछे नग्नावस्था में ही उठकर इस प्रकार चल दिया, जिस प्रकार गधी के पीछे गदहा दौड़ता है। उर्वशी ने मुझे अपने वश में इस प्रकार कर लिया, जिस प्रकार कि मदारी बानर को वश में कर लेता है। उसके भोग-विलास में पड़कर मैं ऐसा अन्धा हो गया कि मुझे छोटे-बड़ों की लज्जा भी न रही। सातों द्वीपों के सहस्रों राजा, जो कि मेरे अधीन रहते थे वे मेरी इस मूर्खता पर निरन्तर हँसते रहे। यह सत्य ही है कि जो कामी पुरुष स्त्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के वशीभूत हो जाता है, उसे उचित-अनुचित तथा भले-बुरे का विवेक नहीं रहता। वह अपने तेज, बल, ज्ञान तथा धर्म को नष्ट कर बैठता है। मल, मूत्र, रक्त आदि से भरी मांस की पुतली-रूपी स्त्री पर मैं ऐसा बावला हो गया कि जहाँ एक ओर इन्द्रादि देवता भी मुझसे युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखते थे, वहीं एक स्त्री ने मुझको पराजित कर दिया। मैं उसकी प्रीति में पड़कर अपने को ऐसा भूल गया कि स्वयं उसी स्त्री के द्वारा उपदेश दिए जाने पर भी मैंने उसे ग्रहण नहीं किया। मनुष्य जिस शरीर को अपना समझता है, वह मृत्यु के उपरान्त किसी काम नहीं आता, अतः यही उचित है कि वह संसारी माया-मोह से विरक्त होकर, श्रीहरि के चरणों में ही अपना ध्यान लगाये रहे।

हे उद्धव! इस ज्ञान के प्राप्त होते ही राजा पुरूरवा उर्वशी के प्रेम को त्याग कर गन्धर्व-लोक से पृथ्वी पर आ गिरा। तदुपरान्त उसने श्री नारायणजी के चरणों में मन लगाकर मुक्ति-पद को प्राप्त किया। अस्तु, हे उद्धव! स्त्री में प्रीति रखते हुए यदि यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, दान, धर्म आदि कर्म किए जायँ तो उससे कोई लाभ नहीं होता। बिना सत्संग के ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। जो लोग अज्ञानरूपी समुद्र में पड़े हैं, उन्हें संत्सङ्ग को नौका के समान पार उतारनेवाला जानना चाहिए। सत्सङ्ग अन्धे को आँख के समान है, जिस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तान का भला चाहते हैं, उसी प्रकार सत्सङ्ग संसारी प्राणियों के कल्याण के निमित्त होता है। सत्सङ्ग द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर, अपने शरीर तथा स्त्री आदि का मोह दूर हो जाता है, उस स्थिति में मनुष्य सब प्रकार की वासनाओं से विरक्त होकर अपना मन श्री नारायणजी के चरणों में लगाता है तथा मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। जब तक इस मायारूपी स्त्री तथा धन आदि की तृष्णा का त्याग नहीं किया जाता, तब तक स्वप्न में भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। संसारी मनुष्यों का दुःख से उद्धार करनेवाली वस्तु मेरी भक्ति ही है। इससे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। जो प्राणी नरकवास से बचना चाहे, उसे सत्सङ्ग करना चाहिए। सत्सङ्ग से विरक्ति मिलती है तथा विरक्त पुरुष मेरा स्वरूप हो जाता है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्री मुरलीमनोहर द्वारा पूजा आदि की विधि का वर्णन

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे दीनबन्धो ! ब्रह्मचारी एवं वानप्रस्थ का धर्म तथा योग, तप आदि का साधन अत्यन्त कठिन है। फिर आपकी पूजा के बिना शरीर पवित्र नहीं होता। अस्तु, ब्रह्मा, नारद, बृहस्पति तथा वेदव्यासजी ने वेद तथा शास्त्रों में आपकी पूजा की अनेक विधियाँ लिखी हैं, सो आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि आपकी पूजा की सर्वोत्तम विधि कौन-सी है, जिसे करके संसारी मनुष्य भवसागर से पार उतर सके ?"

श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव ! मेरी पूजा का कोई अन्त नहीं है, परन्तु मैं तुम्हें उसके सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ बताता हूँ, सुनो। मेरी पूजा की एक विधि वेद में तथा दूसरी तन्त्रशास्त्र में लिखी हुई है। मनुष्य को उचित है कि वह प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम मेरा तथा अपने गुरु के चरणों का ध्यान करे। तदुपरान्त संध्या, तर्पण, जप आदि करके, मेरे सगुण रूप का पूजन करे। मेरे सगुण रूप की मूर्ति आठ प्रकार की होती है। पहली प्रस्तर (पत्थर) की, दूसरी काष्ठ की, तीसरी स्वर्ण की, चौथी रजत (चाँदी) की, पाँचवीं पीतल की, छठवीं ताँबे की, सातवीं पृथ्वी पर बने हुए चबूतरा आदि की तथा आठवीं मिट्टी की। इनमें से किसी भी प्रकार की मूर्ति का सम्यक् रूप से पूजन करना उचित है। उपर्युक्त प्रकार की मूर्तियों के भी दो भेद होते हैं। एक चल, दूसरा अचल। जिस मूर्ति को सिंहासन से उठाकर स्नान कराने के उपरान्त पुनः प्रतिष्ठित कर दिया उसे 'चल' समझना चाहिए तथा जो मूर्ति मन्दिर में इस प्रकार स्थापित की हुई हो कि फिर उठ न सके, उसे 'अचल' जानना चाहिए। अस्तु, इन दोनों प्रकार की मूर्तियों को स्नान कराने के उपरान्त चन्दन लगावे तथा वस्त्राभूषण पहिनाकर, धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजन करके दर्पण दिखावे। पृथ्वी पर जो चबूतरे आदि बने हों, उनका पूजन करते समय सर्वप्रथम मेरा ध्यान धरना चाहिए; तदुपरान्त उपर्युक्त अन्य क्रियाएँ करनी चाहिए। जो लोग मेरी मानसी पूजा करना चाहें, उन्हें उचित है कि वे अपने मन में मेरे चाहे जिस स्वरूप का ध्यान धर कर, मूर्ति-पूजा की ही भाँति ध्यान में धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजन करें।

हे उद्धव ! मेरा पूजन करते समय सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, गदा, पद्म, शार्ङ्ग धनुष, बाण, नन्द, सुनन्द, पुण्य, सुशील, गरुड़, विशुक, सेन,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनाम ये नवों पार्षद, दुर्गा, गणेश, वेदव्यास तथा इन्द्र आदि देवताओं का स्मरण करना चाहिए। भोजन की जो वस्तु स्वयं को अधिक प्रिय हो, उन सबको बनाकर मेरा भोग लगावे, यदि प्रतिदिन सब वस्तुएँ न बन सकें तो अन्नकूट आदि पर्व के दिनों में छत्तीसों प्रकार के सभी व्यञ्जन अवश्य बनाने चाहिए। जो लोग प्रतिदिन मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजन करते हों, उन्हें उचित है कि वे आह्वान तथा विसर्जन के मन्त्र का पाठ अवश्य करें। हवन करते समय अग्नि में भी मेरे ही स्वरूप को देखना चाहिए तथा जल एवं सूर्य को भी मेरा ही रूप जानना चाहिए। जब तक पूजन करे, तब तक मेरे ही चरणों में अपना मन लगाये रहे तथा पूजन से निवृत्त होने के उपरान्त मुझे साष्टांग दण्डवत् करके इस प्रकार प्रार्थना करे कि हे प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मुझे अपना दास जानकर मेरा उद्धार करें। इस प्रकार प्रतिदिन पूजन करने के पश्चात् चरणामृत का पान करे, तदुपरान्त जिस वस्तु का भोग लगाया जाय, उसी प्रसाद को ग्रहण करे। विष्णु सहस्रनाम का पाठ करना, मेरे लीला-चरित्रों को सुनना तथा दिन-रात मेरे ही भजन में लीन रहना सर्वोत्तम समझना चाहिए। जो मनुष्य धनी हों उन्हें उचित है कि वे अपने धन द्वारा मेरी मूर्ति के मन्दिर बनवायें तथा उसका व्यय चलाने के लिए पृथ्वी, गाँव, वन, बाग आदि को उसे समर्पित कर दें। मन्दिर के अर्थ में दान की हुई भूमि अथवा अन्य किसी वस्तु को बेचने अथवा किराये पर उठाने की इच्छा कभी भी न रक्खें।

हे उद्धव! मैं भक्ति एवं प्रेम द्वारा केवल जल मात्र चढ़ाने से ही जितना प्रसन्न होता हूँ, उतना भक्ति-हीनता की अवस्था में असंख्य द्रव्य लगाकर हरि-मन्दिर आदि का निर्माण कराने पर भी प्रसन्न नहीं होता। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रकार से मेरा पूजन तथा सेवा करते हैं, उनके सम्मुख अठारहों सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। देवस्थान आदि बनवानेवालों को पुण्य का जितना फल प्राप्त होता है, उतना ही फल उस देव-मन्दिर की पूजा करनेवालों एवं उसके निर्माण में सम्मति देनेवालों को प्राप्त होता है। जो लोग किसी दूसरे के द्वारा दान दी गई पृथ्वी को ब्राह्मण से छीन लेते हैं अथवा देवस्थान के चढ़ावे को जबर्दस्ती छीन लेते हैं अथवा ऐसा कार्य करने की सम्मति देते हैं, वे साठ सहस्र वर्षों तक कीड़ा बनकर विष्ठा में पड़े रहते हैं तथा उनका कभी भी उद्धार नहीं होता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अट्ठाईसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा विरक्ति के ज्ञान का वर्णन

श्री मुरलीमनोहर बोले—"हे उद्धव ! ज्ञानी मनुष्य को किसी की निन्दा अथवा स्तुति नहीं करनी चाहिए, उसे सब जीवों में परमेश्वर का एक-सा चमत्कार जानना चाहिए। पराई निन्दा करनेवालों को नरक का वास अवश्य मिलता है। ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि वह अपना चित्त एकाग्र करके हरि-पूजन करते समय अपना मन किसी दूसरी ओर न लगावे। शरीर में जिस शुद्ध आत्मपुरुष का निवास रहता है, उसी का सदैव स्मरण करता रहे। अपने हृदय में यह विश्वास बनाये रहे कि श्री नारायणजी अपनी माया के गुणों द्वारा इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश करते हैं। जब कोई मनुष्य केवल मुझे ही सत्य तथा संसारी व्यवहार को मिथ्या समझने लगता है, तब उसका मन सब ओर से विरक्त होकर मेरे चरणों में लग जाता है। इसके विपरीत यदि आत्मा मन तथा इन्द्रियों के साथ मिल जाता है तो वह संसारी प्रीति में पड़कर माया-मोह से अलग नहीं हो पाता। जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखता है, परन्तु जागने पर वे सभी मिथ्या प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार इस संसारी व्यवहार को भी मिथ्या जानकर, केवल श्रीहरि के नाम को ही सत्य समझना चाहिए। हर्ष, विषाद, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, प्रीति, वैर, जन्म-मरण आदि सभी माया के गुण हैं। आत्मा इनसे पृथक् रहती है। यह सम्पूर्ण संसार नट अथवा भानुमती के खेल के समान मिथ्या है। न तो यह आदि में था और न महाप्रलय में ही वर्तमान रहेगा, अतः मनुष्य को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा इस संसार की प्रीति तथा इन्द्रियों की तृष्णा को काट देना चाहिए। जिस प्रकार स्वर्ण से निर्मित आभूषणों के नाम अलग-अलग होते हैं, परन्तु उन सबको गलवा देने पर केवल स्वर्ण ही रह जाता है, उसी प्रकार इस संसार के आदि, मध्य तथा अन्त में स्वर्णरूपी श्रीहरि ही शेष रहते हैं। उन्हीं की इच्छा से विभिन्न नामधारी सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति होती है। महाप्रलय होने पर यह सम्पूर्ण संसार नष्ट होकर सभी जड़-चैतन्य जीव श्री नारायणजी के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। जिस प्रकार सड़क पर पड़े हुए सीप के टुकड़े को चाँदी समझकर कोई लोभी उठा लेता है तथा बाद में सीप जानने पर लज्जित होता है, उसी प्रकार इस संसार की गति को भी मिथ्या समझना चाहिए। जिस प्रकार आकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

में उड़ते हुए बादल, आकाश में किसी प्रकार की मिलावट नहीं कर पाते, उसी प्रकार निर्विकार आत्मा चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने पर भी सबसे पृथक् बना रहता है। मनुष्य को उचित है कि वह अपने मन को माया के गुणों से विरक्त रखकर, श्री नारायणजी के चरणों में इस प्रकार लगावे कि उसे किसी भी संसारी वस्तु की अभिलाषा शेष न रह जाय। जिस प्रकार औषधि का सेवन करने से रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार मन तथा इन्द्रियों को वश में रखने से संसारी तृष्णा एवं मोह नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता, उसका तप तथा स्मरण आदि करना व्यर्थ है। परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो जानेवाले जीव को अपने शरीर तथा संसार से कोई प्रेम नहीं रहता। अतः चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हर समय श्री नारायणजी के चरणों में ही अपना चित्त लगाये रहना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मेरी भक्ति से अज्ञान दूर हो जाता है।

हे उद्धव! योग तथा तप में विघ्न पड़ जाने पर गति नहीं होती, परन्तु मेरे भक्त से यदि कुछ अपराध बन जाय तो मैं उसका दूसरे जन्म में उद्धार कर देता हूँ। जब तक शरीर में आत्मा रहती है, तभी तक इन्द्रियों में चलने-फिरने आदि की सामर्थ्य रहती है। शरीर में जिन देवताओं का प्रकाश रहता है, उनसे भी आत्मा पृथक् रहती है, अतः ज्ञानी एवं योगियों को यह उचित है कि वे अपनी आत्मा में ध्यान लगाकर, संसारी माया-मोह से अलग रहें। ऐसे मनुष्यों से यदि पूर्वजन्म में कोई अधर्म भी हो गया होता है, तो मैं उसका निवारण कर देता हूँ। हे उद्धव! मेरे इन वचनों को सत्य मानकर इस नाशवान् शरीर से प्रीति रखना तथा इन्द्रियों को सुख देने का उद्योग करते रहना, कदापि उचित नहीं है।"

उन्तीसवाँ अध्याय

श्री कृष्णचन्द्रजी द्वारा मन को रोकने के सम्बन्ध में वर्णन

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने कहा—"हे प्रभो! आपने यह कहा कि मन को रोकना चाहिए, परन्तु यहाँ पर मेरा कहना यह है कि वायु से भी अधिक वेगवाले मन को रोकना अत्यन्त कठिन है, अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मन को वश में किया जा सके तथा आपके चरणों में प्रीति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हो सके। हे स्वामी! आपके अतिरिक्त अन्य कोई इस उपाय को नहीं बता सकता। आपकी माया ने सब जीवों को ऐसा मोहित कर रक्खा है कि आपकी कृपा के बिना कोई भी इस माया-जाल से छुटकारा नहीं पा सकता। हे त्रिलोकीनाथ! जब ब्रह्मादिक देवता भी आपके भेद को नहीं जान पाते, तब संसारी मनुष्यों में इतनी सामर्थ्य कहाँ से आई जो वे आपके चरित्रों को समझ सकें?"

उद्धव के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री बाँकेविहारी बोले—"हे उद्धव! जो प्राणी संसार में जन्म लेकर मेरे चरणों में प्रेम करता है, वह धीरे-धीरे संसारी माया से छूट जाता है। मनुष्य को उचित है कि वह उन तीर्थ-स्थानों पर जाकर, जहाँ मेरे भक्त तथा ज्ञानीजन निवास करते हों मेरा स्मरण एवं ध्यान करे तथा चौरासी लाख योनियों में मेरा एक-जैसा प्रकाश समझकर सभी जीवों पर दया रक्खे। किसी को दुःख न दे तथा मन-कर्म-वचन से जहाँ तक बन पड़े, परोपकार करता रहे। अपने मन में यह अभिमान कभी न रक्खे कि मैं उच्च वर्ण का अथवा धनी मनुष्य हूँ, अतः किसी शूद्र अथवा दरिद्र को पानी किस प्रकार पिलाऊँ तथा उसे स्पर्श किस प्रकार करूँ? जब तक प्राणी ब्राह्मण तथा चाण्डाल के शरीर में एक ही ईश्वर का प्रकाश नहीं देखता, तब तक वह अज्ञानी बना रहता है। इसके विपरीत जो प्राणी देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चौरासी लाख योनियों के जीवों को श्रीहरि का रूप समझता है, उसे कोई भी, कभी भी दुःख नहीं दे सकता। वह मुक्तिपद को अवश्य प्राप्त करता है। हे उद्धव! इस गुप्त ज्ञान को मैंने आज तक किसी से नहीं कहा था, परन्तु तुम्हें अपना भक्त जानकर सुनाया है। इसे स्मरण रखने पर तुम मुक्त हो जाओगे। जो लोग चोर, लम्पट, पाखण्डी, कृपण, मद्यपी, मिथ्यावादी, व्यभिचारी तथा जीव-हिंसक हों, जो कृतघ्न तथा उपकार को माननेवाले न हों, उनसे यह ज्ञान कभी नहीं कहना चहिए। जिस प्रकार अमृत पीनेवाले को किसी अन्य औषधि के सेवन करने की आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार जिस मनुष्य ने इन ज्ञान को समझ लिया है, उसे भवसागर से पार उतरने के लिए किसी अन्य उपाय का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य इस ज्ञान तथा कथा को सच्चे मन से सुनकर किसी अन्य जीव का कल्याण करने के निमित्त, उससे कहेगा, उसे मैं यमराज की फाँसी से छुड़ाकर परमपद प्रदान करूँगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने कहा—"हे परीक्षित ! इस ज्ञान को सुनकर भक्तराज उद्धव की आँखों में आँसू भर आये। तब वे अपने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की प्रशंसा करने के उपरान्त इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! आपने अत्यन्त कृपा करके, मेरे अन्धकार-पूर्ण हृदय में इस सच्चे ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश भर दिया है। जिस प्रकार सूर्य के निकलने पर कुहरा नहीं रहता, उसी प्रकार आपने मेरे मन के मायारूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया है। अब आपकी कृपा से मेरा हृदय संसार से विरक्त हो गया है तथा स्त्री-पुत्रों का मोह छूट गया है। आपकी इस कृपा से मैं किसी भी प्रकार उऋण नहीं हो सकता। हे नाथ ! मैं आपके चरण-कमलों को बार-बार दण्डवत् करके यही वर माँगता हूँ कि मेरा मन आपके चरणों को छोड़कर अन्यत्र कहीं न भटके।"

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! भक्तराज उद्धव के मुख से यह वचन सुनकर आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी ने उन्हें अपनी खड़ाऊँ देकर इस प्रकार कहा—"हे उद्धव ! अब तुम बदरी-केदार को जाओ। वहाँ प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करके, कन्द, मूल, फल का भक्षण करना तथा मेरे चरणों में अपना ध्यान लगाये रहना। ऐसा करने से तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी। अब मैं भी कलियुग के लोगों के कल्याण के हेतु, श्रीमद्भागवत-रूपी अपनी मूर्ति को संसार में छोड़कर, गोलोक को प्रस्थान करूँगा। श्रीमद्भागवत-कथा के पढ़ने-सुनने से संसारी मनुष्य भव-सागर से पार उतर जायँगे।" श्री मुरलीमनोहर के मुख से यह शब्द सुनकर, भक्तराज उद्धव उनसे वियोग होता हुआ जान-कर अत्यन्त दुखी हुए, परन्तु श्री बाँकेविहारी की आज्ञा को टालना उचित न समझकर मौन रह गये। उन्होंने श्रीहरि की चरण-पादुका अपने मस्तक पर धारण कर ली। तदुपरान्त उनके स्वरूप को नेत्रों के मार्ग से अपने हृदय में बसाकर, बिदा ले बदरिकाश्रम को चले गये। उद्धवजी बदरिकाश्रम में पहुँच-कर श्री श्यामसुन्दर के आज्ञानुसार गङ्गा-स्नान एवं ध्यान आदि करने लगे एवं कुछ समय पश्चात् अपना शरीर त्यागकर उस ज्ञान के प्रताप से मुक्तिपद को प्राप्त हुए। इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी ने मन ही मन श्री बाँके-विहारी को दण्डवत् कर राजा परीक्षित से कहा—"हे परीक्षित ! इस प्रकार त्रिभुवनपति श्री कृष्णचन्द्रजी ने सम्पूर्ण वेदों का साररूपी अमृतमय ज्ञान अपने भक्त उद्धव को पिला दिया। जिस प्रकार देवता तथा दैत्यों ने समुद्र को मथ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर चौदह रत्नों को निकाला था, उसी प्रकार भगवान् श्री वेदव्यासजी ने सम्पूर्ण वेद एवं शास्त्रों का सार निकालकर इस श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना की है।"

तीसवाँ अध्याय

यदुवंशियों का नाश एवं व्याध का श्री कृष्णचन्द्रजी के चरण में बाण मारना

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् मुरलीमनोहर को तो सब प्रकार के शाप-ताप छुड़ाने की सामर्थ्य प्राप्त थी, फिर उन्होंने यदुवंशियों पर दया करके उन्हें शाप-मुक्त क्यों नहीं कर दिया?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्रजी संसारी माया-मोह से परे सच्चिदानन्द परमेश्वर थे। उन्हें यदुवंशियों का संहार करना था। चूँकि उन्होंने ही यदुवंशियों का पालन किया था, अतः वे अपने हाथ से उन्हें मारना उचित नहीं समझते थे, इसलिए उन्होंने ब्राह्मण द्वारा शाप दिलवा दिया था। अस्तु, जब भक्तराज उद्धव बदरिकाश्रम को चले गये, तब श्री बाँकेविहारी ने अपने मन में यह विचार किया कि द्वारकापुरी में शाप का प्रभाव नहीं व्यापेगा; अतः सब यदुवंशियों को यहाँ से हटाकर अन्यत्र ले चलना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने सब यदुवंशियों को प्रभास क्षेत्र चलने के लिए कहा। श्री बाँकेविहारी की सम्मति के अनुसार राजा उग्रसेन तथा वसुदेवजी के अतिरिक्त अन्य सभी यदुवंशी हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों पर चढ़कर प्रभास क्षेत्र में जा पहुँचे तथा स्नान-दान आदि करने के उपरान्त, उस दिन व्रत रखकर वहीं ठहर गये। श्री नारायणजी के इच्छानुसार दूसरे दिन वे सब मद्यपान करके मतवाले हो गये तथा समुद्र के तट पर बैठकर अपनी-अपनी प्रशंसा करने लगे। इस आत्म-प्रशंसा के कारण उनमें परस्पर वाक्-युद्ध आरम्भ हो गया। तदुपरान्त वे एक दूसरे के ऊपर समुद्र के पानी से छींटे मार-मारकर लड़ने लगे। जब रार अधिक बढ़ गई तब वे बाण, खड्ग, गदा आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों द्वारा आपस में युद्ध कर उठे। जिस प्रकार अधर्मी मनुष्य वेद-शास्त्रों के वचनों को मिथ्या मानकर मनमाना पाप करते हैं, उसी प्रकार वे सब यदुवंशी भी श्री श्यामसुन्दर तथा बलराम की सीख न मानकर निरन्तर युद्ध करते रहे। उनमें कुछ लोग बलरामजी के ऊपर भी टूट पड़े। यह देखकर श्री बलरामजी तथा श्री श्यामसुन्दरजी अलग बैठकर उनका युद्ध देखने लगे। जब लड़ते-लड़ते उनके सब शस्त्र टूट गये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा हाथी-घोड़े आदि मारे गये, तब वे उस मूसल के रेत (जो ऋषि के शाप से प्रकट हुआ था) से उत्पन्न एक प्रकार की घास, जो उसी समुद्र के तट पर लगी हुई थी, को उखाड़-उखाड़कर, एक दूसरे को मारने लगे। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण उस घास की चोट से सबके शरीर में तलवार की धार के प्रहार के समान घाव होने लगे। तथा यदुवंशी अपने-अपने प्राण त्यागकर पृथ्वी पर गिरने लगे। जिस प्रकार कुलवंती स्त्री पर-पुरुष को देखकर छिप जाती है, उसी प्रकार मन में अहंकार तथा क्रोध उत्पन्न होने के कारण यदुवंशियों के हृदय से ज्ञान एवं सतोगुण जाता रहा। जिस प्रकार अग्नि उत्पन्न होने से बाँस का वन जल जाता है, उसी प्रकार दुर्बुद्धि उत्पन्न होने के कारण छप्पन करोड़ यदुवंशियों का वंश उस आपस की लड़ाई में नष्ट हो गया। जब श्री मुरलीमनोहर तथा बलरामजी के अतिरिक्त कोई जीवित न बचा, तब श्री बाँकेविहारी ने बलभद्रजी से इस प्रकार कहा—"हे भाई! अब पृथ्वी का सब भार उतर गया। अतः हमको और तुमको भी वैकुण्ठलोक को प्रस्थान करना चाहिए।"

हे परीक्षित! श्री बाँकेविहारी के मुख से यह वचन सुनकर बलरामजी ने अपने सब वस्त्र उतार दिये और एक कौपीन बाँधकर समुद्र के तट पर जा बैठे। तदुपरान्त वे योगाभ्यास द्वारा अन्तर्धान हो, गोलोक को चले गये। श्री बलरामजी के जाने के बाद श्री कृष्णचन्द्रजी अपना चतुर्भुजी स्वरूप धारणकर, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये, समुद्र के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठे। वहाँ जिस समय वे वृक्ष की पीठ का सहारा लिये, अपने बायें घुटने पर दाहिना पाँव रक्खे लेटे हुए थे, वैकुण्ठलोक जाने की कामना कर रहे थे, उसी समय उनकी इच्छा से 'जरा' नामक एक केवट, जो 'बालि' का अवतार था, धनुष-बाण लिये हुए घूमता-फिरता उधर आ निकला। उसने दूर से ही जब श्री बाँकेविहारी के चरण को चमकते हुए देखा, तो उसने उन्हें मृग समझकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर छोड़ दिया। वह बाण श्रीहरि के चरण में जा लगा। उस बाण में मछली के पेट से निकले हुए, उस (पूर्वोक्त) मूसल के शेष बचे टुकड़े का फल लगा हुआ था। अस्तु, जब वह केवट अपने शिकार को उठाने के लिए समीप पहुँचा, तो वहाँ मृग के स्थान पर श्री त्रिभुवनपति के चरण में अपना बाण लगा हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हो, काँपता हुआ, इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—"हे दीन-बन्धो! मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समान पापी दूसरा कौन होगा, जिसने आप महाप्रभु को अपने बाण का लक्ष्य बनाकर दुःख पहुँचाया ? भला, इस पाप से मेरा उद्धार किस प्रकार हो सकेगा ? हे स्वामी ! अब आप मुझे अपने हाथ से मार डालें, जिससे मेरे दण्ड को सुनकर, अन्य कोई भी मनुष्य सन्त-महात्माओं का अपराध करने का साहस न करे। हे त्रिलोकीनाथ ! आपकी महिमा को ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जान पाते, फिर मुझ अज्ञानी में इतनी सामर्थ्य कहाँ है कि मैं आपके भेद को पहिचान सकूँ ?"

हे परीक्षित ! इस प्रकार उस केवट ने जब बहुत विलाप किया, तब श्री बाँकेविहारी ने मुस्कुराते हुए उससे इस प्रकार कहा—"हे केवट! तू चिन्तित मत हो। तुझसे यह अपराध मेरे इच्छानुसार, अनजान में हुआ है। मैंने ब्राह्मण के शाप को सत्य सिद्ध करने के लिए ही यह सब लीला की है। तुझे लेने के लिए वैकुण्ठ से विमान आ रहा है, अतः तू धैर्य रख।" श्री श्याम-सुन्दर के मुख से यह वचन निकलते ही, उसी समय वहाँ एक विमान आ पहुँचा। तब श्री मुरलीमनोहर के आज्ञानुसार वह केवट दिव्य स्वरूप धारण-कर, उस विमान पर बैठ, वैकुण्ठलोक को चला गया।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! देखो, ऐसे दीनानाथ महाप्रभु की शरण को भुलाकर, जो व्यक्ति किसी दूसरे का आश्रय ढूँढ़ता है, उसे परम अज्ञानी समझना चाहिए। अस्तु, उस केवट के वैकुण्ठलोक जाने के पश्चात्, दारुक नामक सारथी श्री मुरलीमनोहर को ढूँढ़ता हुआ उस स्थान पर आ पहुँचा। सारथी ने जैसे ही श्रीहरि के पास पहुँचकर प्रणाम किया, वैसे ही श्री बाँकेविहारी के इच्छानुसार वह रथ घोड़ा-सहित उड़कर आकाश में चला गया। तदुपरान्त श्री श्यामसुन्दर ने दारुक से कहा—"हे दारुक ! तुम द्वारका में जाकर वसुदेवजी आदि को यदुवंशियों का सब हाल सुनाकर, यह समझा देना कि आज से सातवें दिन द्वारकापुरी समुद्र में डूब जायगी। अतः वे सब लोगों-सहित अपनी-अपनी वस्तुएँ लेकर अर्जुन के साथ हस्तिनापुर को चले जायँ। इसके अतिरिक्त मेरी ओर से अर्जुन से यह कह देना कि वह मेरे वैकुण्ठ जाने का कोई सोच न करे तथा सभी स्त्रियों, वृद्धों एवं बालकों को अपने साथ हस्तिनापुर ले जाकर, मैंने गीता में जो ज्ञान समझाया था उसे सत्य मानकर, सदैव मेरे चरणों का ध्यान धरता रहे। हे सारथी ! मेरा ध्यान एवं भजन करने तथा स्वधर्म का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पालन करने के कारण तुम भी मुक्त हो जाओगे।" हे परीक्षित! श्री मुरली-मनोहर के मुख से यह वचन सुनकर, दारुक उनसे बिदा हो, विलाप करता हुआ, द्वारकापुरी को चल दिया।"

इकतीसवाँ अध्याय

श्री श्यामसुन्दर का गोलोक-गमन एवं वसुदेव आदि की मृत्यु

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जिस समय देवताओं ने केवट को विमान पर बैठकर वैकुण्ठलोक को जाते हुए देखा, उस समय ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, वरुण आदि सब देवता तथा गन्धर्व, किन्नर, चारण, विद्याधर आदि अप्सराओं को साथ ले, अपने-अपने विमानों पर बैठ, गाते-बजाते, फूल बरसाते हुए, आकाश में इस इच्छा से एकत्रित हुए कि अब श्री द्वारकानाथजी वैकुण्ठलोक में आनेवाले हैं, अतः हम लोग इस समय चलकर उनकी अद्भुत छवि के दर्शन प्राप्त कर लें। अन्यथा उनका यह स्वरूप फिर कभी देखने को नहीं मिलेगा। इस प्रकार का निश्चय कर सभी देवता भगवान् श्री बाँकेविहारी के बठने के लिए अपने-अपने लोक से दिव्य विमान ले, आकाश में खड़े हो, आँखें बन्द करके उनका ध्यान करने लगे। जब श्री नटवरनागर ने उन सब देवताओं को आकाश में एकत्र देखा, तो वे विद्युत (बिजली) के समान चमककर, पलक मारते ही वैकुण्ठलोक में इस प्रकार जा पहुँचे कि कोई उनके स्वरूप को भी ठीक से नहीं देख सका।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! भगवान् श्री त्रिलोकीनाथजी की महिमा को पहिचानना अत्यन्त कठिन है। परन्तु सब लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उसका वर्णन करते हैं। देखो, जिन महाप्रभु ने एक से एक बड़े शूरवीरों को मारा तथा जो यमपुरी से अपने गुरु के मरे हुए पुत्र को लौटा लाये, वे ही त्रिलोकीनाथ मनुष्य-शरीर धारण करने के कारण, जरा नामक केवट के बाण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो, वैकुण्ठ लोक को चले गये। इससे यह समझना चाहिए कि जब इस संसार में भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी का वंश ही अमर न रह सका, तो भला संसार में जन्म पानेवाला अन्य कोई जीव किस प्रकार सदैव जीवित रह सकता है?"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! जब दारुक सारथी ने द्वारका में पहुँचकर यदुवंशियों के मरने तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

भगवान् कृष्णचन्द्र का स्वधाम-गमन

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री श्याम-बलराम के वैकुण्ठलोक पधारने का समाचार उग्रसेन, वसुदेव आदि से कहा, तो जो भी छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष वहाँ उपस्थित थे, वे सब रोते-पीटते व्याकुल हो प्रभास क्षेत्र को दौड़ पड़े। वहाँ जाकर जब उन्होंने समुद्र-तट पर यदुवंशियों के शव पड़े देखे तथा श्री श्याम-बलराम को कहीं नहीं पाया, तब वसुदेव-देवकी तथा राजा उग्रसेन शोक में व्याकुल हो, वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गये। तदुपरान्त रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्री श्यामसुन्दर की आठों पट-रानियाँ एवं श्री बलभद्रजी की अर्द्धांगिनी रेवती भी वहीं चिता जलाकर सती हो गईं। प्रद्युम्न आदि सब लोगों की पत्नियों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। उसी समय अर्जुन भी वहाँ जा पहुँचे। जब उन्होंने इस दृश्य को देखा तथा दारुक सारथी के मुख से श्री मुरलीमनोहर का सन्देश सुना तो उन्होंने ऐसा शोक किया कि उसका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। अन्त में, उन्होंने गीता-ज्ञान के अनुसार अपने मन को समझाकर धैर्य धारण किया।

हे ऋषियो ! इसके पश्चात् सब लोगों ने अपने-अपने घरवालों के मृत-शरीर का यथाविधि दाह-संस्कार किया। जिनके कुल में कोई भी शेष नहीं रहा था, उनका क्रिया-कर्म अर्जुन ने किया। इस प्रकार जब वहाँ तीन रात्रि व्यतीत हो चुकी तब अर्जुन अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ एवं बचे हुए स्त्री, बालक तथा वृद्धों को अपने साथ लेकर हस्तिनापुर को चल दिए। उसी समय श्री मुरलीमनोहर के निवासस्थान के अतिरिक्त सम्पूर्ण द्वारकापुरी समुद्र में डूब गई। जिस समय अर्जुन ने हस्तिनापुर पहुँचकर यह समाचार सब लोगों को सुनाया, तब सबने श्री मुरलीमनोहर के वियोग से व्याकुल हो, अत्यन्त विलाप किया। कुछ दिनों बाद राजा युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर के सिंहासन पर तो अपने पौत्र परीक्षित को बैठाया और इन्द्रप्रस्थ तथा मथुरा का राज्य श्री कृष्ण-चन्द्रजी के वंश में बचे वज्रनाभ को दे दिया। तदुपरान्त पाँचों भाई विरक्त हो, उत्तर दिशा को चले गये। वहाँ वे हिमालय में गलकर, मुक्तिपद को प्राप्त हुए।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित ! श्री मुरलीमनोहर जिस दिन वैकुण्ठलोक को पधारे, उसी दिन संसार से धर्म तथा सत्य उठकर उनके साथ चला गया, परन्तु जो व्यक्ति इस स्कन्ध की कथा को ध्यानपूर्वक पढ़ता-सुनता है, वह अनेक जन्मों के पाप से छूटकर मुक्तिपद को प्राप्त करता है।"

एकादश स्कन्ध समाप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री गणेशाय नमः

बृहत् नवीन

सुखसागर

द्वादश स्कन्ध

कलियुग के जीवों का वृत्तान्त, तक्षक का राजा परीक्षित को काटना एवं मार्कण्डेय ऋषि की कथा

वन्दना

मत कभी आओ निकट इतने कि जिससे—
आँख मुँद जायें तुम्हारी ज्योति पाकर !!
प्रीति अच्छी है वही—जो दूर की हो,
स्नेह घट जाता निकटता की परिधि में;
उन दिनों की याद ही रहती अमिट जो—
काटने पड़ते प्रतीक्षा की अवधि में;
इस तरह स्वर में बसो मत प्राण के प्रिय !
टूट जायें तार निशि-दिन झनझनाकर !!
नील नभ यह दीखता कितना मनोहर,
लग रहे कितने सुघर यह चाँद-तारे ?
किन्तु यह सच है कि सबने मान पाया,
इस जगत में, एक दूरी के सहारे;
इसलिए तुम भी पुकारो दूर से ही,
चल पड़ूँगा मैं स्वयं ही पग बढ़ाकर !!
जानता हूँ यह कि तुम सबमें रमे हो,
किन्तु मैं इसको भुलाना चाहता हूँ;
'छिप रहे हो तुम कहीं'—यह भाव रखकर,
अज्ञ बनकर ही बुलाना चाहता हूँ;
भक्ति में जो है अमृत 'राजेश' उसको—
दे न पाया है कभी यह ज्ञान लाकर !!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहिला अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा कलियुग के राजाओं का वर्णन

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे मुनिराज! आपने बताया कि श्री कृष्णचन्द्रजी जिस दिन से वैकुण्ठ को गये उसी दिन संसार से धर्म और सत्य उठ गया। क्या उनके बाद ऐसा कोई भी धर्मात्मा राजा नहीं हुआ जो धर्म की रक्षा करता? अब आप कृपा कर यह बताइये कि श्री कृष्णजी के बाद राजगद्दी किसके वंश में रही?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! श्री कृष्णचन्द्रजी के रहने तक द्वापर युग वर्तमान था, उनके बाद जो राजा हुए उन्होंने धर्म और सत्य को त्याग दिया। अल्पायु होने के कारण वे कुछ शुभ कर्म भी नहीं कर सकते थे। जब श्री श्यामसुन्दर वैकुण्ठ-धाम को पधारे, तब तुम पाण्डवों के वंश में चक्रवर्ती राजा हुए। तुम्हारे पश्चात् वज्रनाभ तथा जनमेजय नामक चक्रवर्ती राजा होंगे। जरासन्ध के पुत्र सहदेव के वंश में पुरुजित् नामक राजा होगा, उसे चाणक नामक मन्त्री मारकर अपने पुत्र प्रदेवत् को राजसिंहासन पर बैठायेगा। उसके वंश में ३६० वर्ष तक राज-गद्दी रहेगी। तत्पश्चात् महानन्द नामक राजा के बिन्दु नामक पुत्र शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होकर सब क्षत्रियों का धर्म बरजोरी नष्ट करेगा। उसके भय से समस्त कुलीन क्षत्रिय भागकर पंजाब में जा बसेंगे। पर्वत पर निवास करने-वाले क्षत्रिय शूद्र धर्म को ग्रहण करेंगे। राजा बिन्द के आठ पुत्र राज्य करेंगे। उन आठों को चन्द्रगुप्त नामक एक दास मारकर स्वयं राजसिंहासन पर बैठेगा। उसके वंश में बारिचारी एवं देवहूति आदि उत्पन्न होकर एक सहस्र वर्ष तक राज्य करेंगे। देवहूति का मंत्री कण्व अपने राजा को स्त्री के भोग में फँसा हुआ देखकर स्वयं उसे मार डालेगा। उस मन्त्री के कुल में वसुदेव, बहुमित्र तथा नारायण आदि पुत्र उत्पन्न होंगे। उनके वंश में तीन सौ पैंतालीस वर्ष तक राज्य स्थिर रहेगा। तदुपरान्त कमल नामक शूद्र नारा-यण नामक राजा को मारकर स्वयं राजगद्दी पर बैठेगा। उसके वंश में कृष्ण तथा पूर्णमास आदि उत्पन्न होकर तीस पीढ़ी तक अर्थात् साढ़े आठ सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। तदनन्तर उभरती शहर के निवासी सात अहीर राजा होंगे। उन्हें मारने के पश्चात् काबों का राज्य होगा। उनके बाद चौदह पीढ़ी तक मुसलमान राजा होंगे। वे बादशाह कहलावेंगे। वे एक सहस्र निन्यानबे वर्ष तक राज्य करेंगे। तदुपरान्त ग्यारह पीढ़ी तक अर्थात् निन्यानबे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्ष तक गोरखड राज्य करेंगे। उनके बाद ग्यारह पीढ़ी अर्थात् निन्यानबे वर्ष तक मौन का राज्य रहेगा। कलियुग में इतने लोग नामी राजा होंगे। इनके बाद अहीर, शूद्र और म्लेच्छ राज्य करेंगे। कलियुग के राजा अपना धर्म-कर्म त्याग कर स्त्री, बालक तथा गौ का वध करेंगे। वे पराये धन, पराई स्त्री और पराई पृथ्वी को जबर्दस्ती छीन लेंगे तथा काम, क्रोध, लोभ आदि में डूबे रहेंगे। उनकी दशा देखकर प्रजा भी अपने धर्म-कर्म से विमुख होकर पापाचार करने लगेगी।"

दूसरा अध्याय

शुकदेवजी का कलियुगवासियों का लक्षण कहना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! कलियुग में संसारी मनुष्य दया तथा सचाई को त्याग देने से शक्ति-हीन हो जायँगे तथा अल्प आयु होने के कारण उनसे शुभ कर्म न बन पड़ेंगे। राजा अपनी प्रजा को दुःख देकर अन्न के चारों भाग स्वयं ही ले लेंगे। वर्षा कम होगी, अन्न कम उत्पन्न होगा तथा महँगाई होने के कारण मनुष्य भोजन के बिना दुखी होकर अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम का धर्म त्याग देंगे। कलियुग में मनुष्यों की आयु एक सौ बीस वर्ष की कही गई है, परन्तु अधर्म करने के कारण वे पूरी आयु न भोगकर उसके बीच में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे। कलियुग के अन्त में पाप अधिक बढ़ जाने के कारण बीस-बाईस वर्ष से अधिक आयु तक कोई जीवित न रहेगा। कोई राजा भी ऐसा चक्रवर्ती तथा प्रतापी न होगा जिसकी आज्ञा का पालन सातों द्वीपों के राजा करें। जिन राजाओं के पास थोड़ा-सा भी राज्य अथवा देश होगा, वे अपने को बड़ा प्रतापी समझने लगेंगे। थोड़ी आयु होने पर भी वे पृथ्वी तथा धन को लेने के लिए परस्पर झगड़ा करेंगे तथा अपने धर्म एवं न्याय को त्यागकर जो मनुष्य उन्हें धन देगा, उसी का पक्ष लेंगे। उन्हें पाप-पुण्य का विचार न होगा। चोरी तथा कुकर्म एवं मिथ्या भाषण में वे अपनी आयु को बिताकर कौड़ी के लिए भी अपने मित्र से शत्रुता कर बैठेंगे। गायें बकरी के समान थोड़ा दूध देने लगेंगी। ब्राह्मणों में ऐसा कोई लक्षण न रहेगा, जिसे देखकर मनुष्य उन्हें पहिचान सके। पूछने पर ही उनकी जाति का पता लग सकेगा। सब लोग धनवानों की सेवा करेंगे तथा उत्तम मध्यम वर्ण का कोई विचार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न रहेगा। व्यापार में कपट-भाव बढ़ जायगा। स्त्री-पुरुषों का चित्त मिल जाने से ऊँच तथा नीच जाति के लोग आपस में भोग-विलास कर उठेंगे। ब्राह्मण अपना धर्म-कर्म छोड़कर, केवल जनेऊ पहनने से ही ब्राह्मण माने जायँगे। ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थ सिर पर जटा बढ़ाकर अपने आश्रम तथा आचार-विचार को त्याग देंगे। उत्तम वर्ण यदि दरिद्र हो तो लोग उसे छोटा मानकर, मध्यम वर्णवाले धनवान् को बड़ा समझेंगे। झूठी बातें करनेवाला मूर्ख सच्चा और ज्ञानी समझा जायगा। तीनों वर्णों के लोग जप, तप, सन्ध्या, तर्पण आदि त्यागकर स्नान करने के बाद भोजन कर लिया करेंगे। केवल स्नान को ही बड़ा आचार समझा जायगा। अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिए लोग अपने मस्तक पर बाल रखायेंगे। परलोक की चिन्ता त्याग दी जायगी। चोर तथा डाकू सब लोगों को दुःख देंगे। राजा भी उनसे मिल-कर प्रजा के धन की चोरी करायेंगे। दस वर्ष की कन्या के गर्भ से बालक का जन्म हो उठेगा। कुलीन स्त्रियाँ पराये पुरुषों की अभिलाषा रखेंगी। सब लोग अपने कुटुम्ब का पालन ही सबसे अच्छा समझेंगे। छोटे-बड़े लोग अपना पेट भरने से ही प्रसन्न हो जायँगे। बहुत लोग अन्न तथा वस्त्र का दुःख उठायेंगे। वृक्ष छोटे रह जायँगे। औषधियाँ गुणहीन होंगी। चारों वर्णों का धर्म शूद्रों के समान होगा। राजाओं को सामर्थ्य तो थोड़ी होगी, परन्तु वे सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना अधिकार जमाने की इच्छा करेंगे। गृहस्थ लोग अपने माता-पिता को त्यागकर ससुर, साले और पत्नी की आज्ञा का पालन करेंगे। लोग अपने पास के तीर्थों पर विश्वास न करके दूर के तीर्थों में स्नान करने और दर्शन करने के लिए जायँगे। हवन और यज्ञ आदि कम रह जायँगे। दो-चार ब्राह्मणों को भोजन करा देना ही गृहस्थों का परम धर्म होगा। दया और धर्म को त्यागकर सब लोग ऐसे कृपण और अधर्मी हो जायँगे कि वे अतिथि को भोजन तथा वस्त्र भी न दे सकेंगे। संन्यासी अपना धर्म-कर्म त्याग कर केवल गेरुआ कपड़ा पहनने से ही दण्डी मालूम होंगे।"

इतनी कथा सुनाकर श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! कलियुग के अन्त में इस प्रकार पाप बढ़ जाने पर श्री नारायणजी धर्म की रक्षा करने के हेतु सम्भल नामक देश में, गौड़ ब्राह्मण के घर, निष्कलंक, अवतार लेंगे। वे नीले घोड़े पर चढ़कर सहस्रों राजाओं, अधर्मियों तथा पापियों को अपने खड्ग से मार डालेंगे। उनके दर्शन मिलने से जब बचे हुए लोगों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ज्ञान प्राप्त होगा, तब वे अधर्म करना त्यागकर धर्म का पालन करने लगेंगे। हे परीक्षित! इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों का वंश बराबर चला आ रहा है। सतयुग के आदि में राजा देवापि चन्द्रवंशी जो बदरिकाश्रम में तथा राजा मरु सूर्यवंशी जो मन्दराचल पर्वत पर बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं, वे पुनः चन्द्रवंश तथा सूर्यवंश को उत्पन्न करेंगे। सतयुग के आने पर कलियुग का धर्म नष्ट हो जायगा। हे परीक्षित! इतने बड़े-बड़े राजा पृथ्वी पर उत्पन्न हुए और वे सब के सब मृत्यु को प्राप्त हो गये। भलाई-बुराई के अतिरिक्त किसी के साथ कुछ नहीं गया। यह शरीर मरने के बाद किसी काम नहीं आता है। इसे कौए तथा कुत्ते खा जाते हैं। कीड़े पड़ने तथा दुर्गन्ध आने के कारण इसके पास कोई खड़ा भी नहीं होता। जला देने के कारण यह राख हो जाता है। जो लोग इस नाशवान् शरीर को पुष्ट करने के लिए जीवहिंसा करते हैं, उन्हें महामूर्ख समझना चाहिए। लाखों उपाय करने पर भी यह शरीर किसी भी प्रकार स्थिर नहीं रहता। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अपने इस शरीर, संसार की प्रीति तथा अहंकार को त्यागकर श्री नारायणजी के चरणों में अपना ध्यान लगावे तथा उन्हीं को स्मरण करके भवसागर से पार उतर जाय। मनुष्य-शरीर पाने का यही लाभ है। अन्यथा पीछे बहुत पछताना पड़ता है। हे राजन्! तुम बड़े भाग्यशाली हो जो अन्त समय में तुम्हारा मन श्रीहरि की लीला तथा कथा को सुनने में लगा है।"

तीसरा अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा पिछले राजाओं का हाल कहा जाना

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! जो राजा दूसरे का राज्य और धन लेने की इच्छा से परस्पर लड़ते हैं, उन्हें देखकर पृथ्वी हँसती हुई यह कहती है कि देखो, यह सब लोग मृत्यु के भोजन होने पर भी मेरे स्वामी बनना चाहते हैं। यह सब अपने पिता और पितामहों की मृत्यु को देखकर भी संसारी मोह-माया को नहीं छोड़ते। ये लोग दूसरे की पृथ्वी, धन तथा स्त्री को लेने के लिए जितना परिश्रम करते हैं तथा अपने पराये को मार डालते हैं, उतना परिश्रम यदि वे काम, क्रोध, लोभ आदि बलवान् शत्रुओं को जीतने में करें, तो इनका परलोक सुधर जाय। जब राजा पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, सह-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्रार्जुन, मान्धाता, सगर, खट्वांग, धुन्धमार, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, सर्याति, कुवलयाश्व, बलि, नृग, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, वृत्रासुर, रावण तथा भौमासुर आदि प्रतापी, शूर-वीर, गुणी तथा योगी राजा मेरे ऊपर रहकर मुझे अपना कहते-कहते मृत्यु को प्राप्त हो गये और मैं किसी के साथ न जाकर, यहीं रह गई, तब यह कलियुग के छोटे-छोटे राजा, जो कुछ भी पराक्रम तथा धर्म नहीं रखते हैं, वे मुझे अपना मानकर परस्पर व्यर्थ ही लड़ते हैं। अतः मनुष्य-शरीर पाकर यह उचित है कि अपने मन को संसारी मोह-माया से अलग रखकर, श्रीहरि की लीला तथा कथा को सुने एवं उन्हीं के चरणों में प्रीति लगाये रहे। हे परीक्षित ! यदि तुम्हें अब भी कोई संसारी चाह रह गई हो तो अपने पहले के राजाओं की गति को समझकर उसे त्याग दो तथा श्री नारायणजी के चरणों में अपना ध्यान लगाओ। यह संसारी व्यवहार झूठा है। मनुष्य के साथ हरि भजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं जाता।"

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने कहा—"हे स्वामिन् ! चारों युगों के कौन-कौन धर्म हैं तथा कलियुग में कौन-सा उपाय करने से श्रीहरि के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, यह आप मुझे बताने की कृपा करें।" श्री-शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! सतयुग में सत्य, दया, तप और दान यह धर्म के चारों पैर थे, उसमें सब छोटे-बड़े लोग अपने-अपने धर्म-कर्म का पालन करते थे। वे सब आपस में प्रेम रखते थे और किसी की किसी से शत्रुता नहीं थी। त्रेतायुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने-अपने धर्म का पालन करके यज्ञ आदि शुभ कर्मों को करते थे, परन्तु पर-स्त्री-गमन करने के कारण धर्म का एक पैर टूट गया था। द्वापर युग में संसारी मनुष्य यश प्राप्त करने के लिए यज्ञ तथा पूजन आदि करते हैं, परन्तु पराये धन का हरण करने एवं पराई स्त्री के साथ गमन करने के कारण धर्म के दो चरण टूट गए हैं। कलियुग में धर्म के तीन चरण टूट जाते हैं। कलियुग में मनुष्य थोड़ा-सा दान देंगे तथा कुछ सच्चाई का पालन करेंगे, परन्तु कलियुग के अन्त में वह भी त्याग देंगे। कलियुग के मनुष्य लोभी, कुरूप तथा भाग्यहीन अधिक होंगे। वे थोड़ा-सा धन प्राप्त करने के लिए दूसरे मनुष्य को मार डालेंगे। कुलीन स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर पराये पुरुष से प्रेम करेंगी। जब तक पति के पास धन रहेगा, तब तक स्त्री उसकी आज्ञा का पालन करेगी, परन्तु विपत्ति पड़ने पर वह अपने पति को छोड़कर पराये पुरुष के पास चली जायगी। सुमधुर भोजन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा सुन्दर स्त्री की कामना में पड़कर सन्यासी लोग गृहस्थ बन जायँगे। सङ्कट पड़ने पर सेवक अपने स्वामी को त्यागकर दूसरे लोगों के यहाँ चाकरी करने लगेंगे। सब लोग अपने मतलब की प्रीति रखेंगे। राजा लोग अपने बूढ़े सेवकों को त्याग देंगे। बहुत-से लोग धन तथा सन्तान की कामना से भूत-प्रेतों का पूजन करेंगे। पुत्र धन लेने के लिए अपने माँ-बाप को दुःख देगा। माता-पिता भी धन के लोभ से अपने पुत्र को बेच देंगे। शूद्र लोग संन्यासी तथा वैरागी का वेष बनाकर दान ग्रहण करेंगे तथा ब्राह्मणों को मन्त्र का उपदेश करेंगे। वे स्वयं कथा बाँचने के लिए ऊँचे आसन पर बैठेंगे और ब्राह्मणों को नीचे बैठायेंगे। इस तरह संसार में अनेक प्रकार के पाप बढ़ जायँगे। श्री नारायणजी का भजन और स्मरण कम रह जायगा। हे राजन्! मनुष्य के शरीर में चारों युगों का फल प्रतिदिन प्रकट होता है। जिस समय जप, तप, ज्ञान तथा धर्म में मन लगे, उस समय सतयुग का धर्म समझना चाहिए। जब मन में लोभ और लालच अधिक उत्पन्न हो, तब त्रेतायुग का धर्म जानना चाहिए। जब मन में अभिमान, काम और ईर्ष्या प्रकट हो, उस समय द्वापर युग का धर्म जानो। जब मन में क्रोध, झूठ तथा जीवहिंसा उत्पन्न हो, उस समय कलियुग का धर्म जानना चाहिए।

कलियुग के इन लक्षणों को सुनकर राजा परीक्षित ने अत्यन्त भयभीत होकर पूछा—"हे श्री शुकदेवजी! जब कलियुग का ऐसा धर्म है, तो संसारी जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा?" श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! कलियुग में यज्ञ, तप तथा योग आदि कुछ नहीं बन पड़ता, परन्तु एक बात बहुत अच्छी है कि अन्य युगों में तो संसारी मनुष्य धर्मात्मा और दयावान् होने पर भी बहुत समय तक यज्ञ, तप, पूजा एवं तीर्थयात्रा करने से मुक्त होते थे, लेकिन कलियुग में केवल श्री नारायणजी का स्मरण करने, उनके लीला-चरित्रों को सुनने तथा गंगा-स्नान करने से ही भवसागर से पार उतर जाते हैं। जिस प्रकार महान् पापी अजामिल नामक ब्राह्मण अपनी मृत्यु के समय, अपने नारायण नामक पुत्र को पुकारने के कारण, वैकुण्ठ को चला गया था, उसी प्रकार कलियुग में श्रीहरि का नाम लेते ही मनुष्य सब पापों से छूटकर पवित्र हो जाते हैं। अन्य युगों में अधर्म कम था। जब किसी से कोई पाप बन जाता था, तो वह उसका प्रायश्चित्त कर लेता था। परन्तु कलियुग में अधर्म अधिक होने के कारण कोई प्रायश्चित्त नहीं कर पाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी लिए दीनदयालु श्रीहरि केवल नाम-स्मरण करने मात्र से ही सब लोगों को पापों से छुड़ाकर सहज में मुक्त कर देते हैं। इतने पर भी कलियुग के अज्ञानी मनुष्य दिन-रात संसारी मोह-माया में पड़े रहकर, कभी क्षण भर के लिए भी श्री नारायणजी का नाम नहीं लेते। कलियुग में श्री नारायणजी का नाम लेने, पूजा करने, ध्यान धरने, भजन करने तथा उनकी लीला को सुनने मात्र से ही मनुष्यों के सब दुःख, पाप और अज्ञान छूट जाते हैं। जब उनके हृदय में श्रीहरि की कृपा से ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश फैलता है, तब वे माया रूपी अन्धकार से मुक्ति पा लेते हैं। सतयुग में मनुष्य तप करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से, द्वापर युग में पूजा करने से और कलियुग में श्रीहरि का भजन तथा स्मरण करने से कृतार्थ हो जाता है। अतः हे परीक्षित! यदि तुम अपने हृदय में श्री कृष्णजी की साँवली मूर्ति का ध्यान धरोगे तो तुम भी मुक्ति पाकर उन्हीं के समान चतुर्भुजी रूप के हो जाओगे। तुमने जो कलियुग में उद्धार करने की बात पूछी थी सो हम तुम्हें बताते हैं कि संसार-रूपी समुद्र से पार उतरने के लिए श्री नारायणजी की लीला-कथाओं को सुनने एवं पढ़ने से अधिक सरल अन्य कोई उपाय नहीं है। इस श्रीमद्भागवत पुराण को नारदजी ने ब्रह्माजी से सुनकर वेदव्यासजी को बताया था। उसी पुराण को मैंने श्री व्यासजी से पढ़कर तुम्हें सुनाया है। यही कथा नैमिषारण्य में सूतजी शौनक आदि अट्ठासी सहस्र ऋषियों को सुनायेंगे। तब इस अमृत-रूपी कथा के कलियुग में प्रकट होने पर संसारी मनुष्य इसे सुनकर भव-सागर से पार उतर जायँगे।"

चौथा अध्याय

श्री शुकदेवजी द्वारा अग्नि, जल तथा वायु आदि का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे राजन्! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र राज्य करते हैं तथा रात्रि के समय प्रलय होने पर तीनों लोकों के सब जीवों का नाश हो जाता है। दिन के बराबर ही रात भी होती है। रात के समय ब्रह्मा सो जाते हैं। जब ब्रह्मा की आयु पूरा होकर महाप्रलय का समय आता है, तब उसके सैकड़ों वर्ष पहले से अवर्षण होकर अकाल पड़ता है। अन्न न होने के कारण सब जीव भूख से व्याकुल होकर मर जाते हैं। पाताल में शेषनागजी विष उगलते हैं तथा आकाश में श्री सूर्यनारायण अपने तेज से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चौदहों लोकों को भस्म कर देते हैं। इसके अनन्तर प्रलयकाल के मेघ इतना पानी बरसाते हैं कि पृथ्वी पर जल के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता, जल, अग्नि, वायु, आकाश में, आकाश शब्द में, यह पाँचों तत्त्व अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व माया में तथा माया ईश्वर के रूप में समा जाती है। केवल आदि-अन्त से परे, मन, शब्द, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि से रहित, अविनाशी पुरुष श्री नारायणजी ही वर्तमान रहते हैं। महा-प्रलय के यही लक्षण हैं। जगना, सोना तथा संसारी उत्पत्ति को माया का गुण समझना चाहिए। जब ज्ञान-रूपी नेत्रों द्वारा आदिपुरुष भगवान का देखा जाता है तब यह माया-रूपी संसार मिथ्या मालूम होता है। जिस प्रकार वस्त्र में सूत के तार होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों में श्री नारा-यणजी की शक्ति व्याप्त है। जिसने सूर्य-रूपी ज्ञान को समझ लिया है, उसके हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का अन्धकार नहीं रहता। वह प्राणी देवता, मनुष्य, दैत्य तथा पशु, पक्षी आदि चौरासी लाख योनियों के जीवों को एक-जैसा समझकर, किसी के साथ शत्रुता अथवा मित्रता नहीं रखता। जिस प्रकार बत्ती जलने से दीपक का तेल कम होता जाता है तथा तेल समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है, परन्तु तेल का जलना किसी को मालूम नहीं देता; उसी प्रकार कालपुरुष भी तेज, बल, आयु को प्रतिदिन क्षीण करके सब जीवों को मार डालता है। अज्ञानी मनुष्य को अपनी मृत्यु का स्मरण नहीं रहता। जो प्राणी कालपुरुष से बचना चाहता हो उसे श्री नारायणजी का स्मरण करके भव-सागर से पार उतर जाना चाहिए।"

पाँचवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी द्वारा श्री नारायणजी की महिमा का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—"हे परीक्षित! श्रीमद्भागत में श्री नारायणजी के लीला-चरित्रों का वर्णन है। श्रीमद्भागवत पुराण को उन परब्रह्म प्रभु का स्वरूप समझना चाहिए, जिनकी नाभि के कमल फूल द्वारा ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे। हे राजन्! तुम तक्षक सर्प के काटने के कारण अपनी मृत्यु का भय मत करो। तुम सब स्थानों पर उन्हीं परमात्मा पुरुष को वर्तमान जानो। वे अविनाशी पुरुषोत्तम जन्म-मरण, आदि, अन्त, मध्य से परे एवं सत्य हैं। संसार का सभी व्यवहार झूठा है। जब तुम इस बात को अपने मन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में भली भाँति जान लोगे, तब तुम्हें यह पता चलेगा कि कौन किस का काटता है ? अपने अज्ञान तथा श्रीहरि की माया में फँसे रहने के कारण संसारी लोग जन्म-मरण का सुख-दुःख मानते हैं। यदि सच पूछो तो सत्य बात यह है कि आत्मा सदैव अमर रहता है। यह शरीर तो माया के गुणों से बनता तथा बिगड़ता है, जिस प्रकार पानी भरे हुए पात्रों में सूर्य की छाया पड़ने से अनेक सूर्य दिखाई देते हैं तथा पात्रों को तोड़ डालने पर वह प्रतिबिम्ब फिर सूर्य में मिल जाता है, परन्तु पात्र को तोड़ने से सूर्य का नाश नहीं होता, उसी प्रकार इस शरीर के जन्म तथा मृत्यु को भी जानना चाहिए। परमात्मा को सूर्य के समान जानकर शरीर को बर्तन जैसा समझना चाहिए। यह शरीर पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच तत्त्व, मन तथा बुद्धि—इन सत्रह वस्तुओं से मिलकर तैयार होता है। बुद्धि को रथ के समान तथा मन को उस रथ के घोड़े के समान समझना चाहिये। श्री नारायणजी का प्रकाश प्राप्त होने के कारण शरीर को चलने-फिरने तथा खाने-पीने की शक्ति प्राप्त होती है। जब श्रीहरि का प्रकाश इस शरीर से अलग हो जाता है, तब मुर्दा शरीर सड़ने-गलने के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आता। हे परीक्षित ! चौरासी लाख योनियों में श्रीहरि की ही शक्ति है तथा इनसे बाहर वे ही कालरूप से वर्तमान रहते हैं। अतः तुम अपने शरीर को माया द्वारा बना हुआ जानकर, परमात्मा को उससे अलग समझो। हे राजन् ! ब्राह्मण के शाप के कारण आज तुम्हारा शरीर तक्षक नामक सर्प के काटने से मृत्यु को प्राप्त हो जायगा, परन्तु जो जीवात्मा शरीर से अलग रहता है, वह नहीं मरेगा। अब तुम्हारी मृत्यु का समय समीप आ पहुँचा है, अतः तुम श्री नारायणजी के चरणों में मन लगाकर उन्हीं का भजन करो तथा इस बात का विश्वास रक्खो कि उनका नाम लेने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। तुमने श्रीमद्भागवत महापुराण का श्रवण किया है, अतः अब तुम्हारी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं है। जब तुम भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी का स्मरण करोगे, तब उनके ध्यान में मग्न रहने के कारण तुम्हें इस शरीर के छूटने का न तो कोई दुःख होगा और न कोई ज्ञान ही रहेगा। हमने तुम्हें ऐसा मूल मन्त्र दिया है, जिससे अधिक उत्तम अन्य कोई वस्तु नहीं है। जो लोग इस अमृतरूपी कथा को सच्चे मन से पढ़ते तथा सुनते हैं, उन्हें मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छठवाँ अध्याय

तक्षक सर्प द्वारा राजा परीक्षित को काटने का वृत्तान्त

सूतजी बोले–"हे शौनक आदि ऋषियो ! श्री शुकदेवजी के मुख से सात दिन में श्रीमद्भागवत की कथा सुनकर, राजा परीक्षित का अज्ञान दूर हो गया। जब उन्हें सर्वत्र श्रीहरि के दर्शन होने लगे तथा शरीर का मोह जाता रहा, तब उन्होंने विधिपूर्वक श्री शुकदेवजी की पूजा की और उनके चरणों में गिर, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा–"हे प्रभु ! आपने मेरे सन्देह तथा शोक को नष्ट कर मेरा उद्धार किया है। आप जैसे महात्मा तथा परोपकारी लोग अज्ञानी मनुष्य को ज्ञानरूपी रस्सी के सहारे भव-सागर से पार उतार देते हैं। इस श्रीमद्भागवत पुराण को सुनकर, जिसके आदि, मध्य तथा अन्त में श्रीकृष्णचन्द्रजी का माहात्म्य लिखा है, मेरा हृदय श्री-हरि के चरणों में लीन हो गया है। अब मुझे तक्षक सर्प के काटने का तथा अपनी मृत्यु का कोई भय नहीं रहा। अब आज सातवें दिन तक्षक के काटने से मैं इस शरीर को त्यागूँगा। हे प्रभो ! यदि आप आज्ञा दें तो अब मैं बोलना छोड़कर, श्री कृष्णचन्द्रजी के स्वरूप का ध्यान धरूँ।"

श्री शुकदेवजी बोले–"हे राजन् ! तुम्हें निश्चय ही श्री कृष्णचन्द्रजी का स्मरण करना चाहिए।" यह सुनकर जब राजा परीक्षित भगवान् श्री श्याम-सुन्दर का ध्यान धरने लगे, तब श्री शुकदेवजी तथा अन्य सभी ऋषि-मुनि वहाँ से उठकर अपने-अपने स्थान को चले गये। तदुपरान्त एक प्रहर दिन रहने पर तक्षक सर्प ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर राजा परीक्षित को काटने के लिए अपने स्थान से चला। उसी समय कश्यपजी की आज्ञा पाकर धन्व-न्तरि वैद्य भी अपनी झोली में सब औषधियों को रखकर, राजा परीक्षित के प्राण बचाने के लिए अपने घर से निकले। मार्ग में जब ब्राह्मण-रूपी तक्षक की भेंट धन्वन्तरि से हुई, तब उसने पूछा–"हे वैद्यराज ! आप कहाँ जा रहे हैं ?" धन्वन्तरि ने उत्तर दिया–"आज हस्तिनापुर में तक्षक नामक सर्प राजा परीक्षित को काटेगा, अतः हम उसका विष उतारने के लिए जा रहे हैं।" यह सुनकर ब्राह्मण-रूपी तक्षक ने कहा–"क्या आप तक्षक के काटे हुए को अच्छा कर सकते हैं ?" धन्वन्तरि बोले–"केवल तक्षक ही क्या, हम किसी भी सर्प के काटे हुए को अच्छा कर सकते हैं।" यह सुनकर तक्षक बोला–"हे वैद्यराज ! वह तक्षक सर्प मैं ही हूँ। मैं एक वृक्ष को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काटता हूँ, यदि आप उसे फिर से हरा कर देंगे तो मुझे यह विश्वास हो जायगा कि आप राजा परीक्षित को भी अच्छा कर सकते हैं।" धन्वन्तरि बोले—"अच्छा, तुम वृक्ष को काटो, हम तुम्हें अपनी औषधियों का चमत्कार दिखाते हैं।" यह सुनकर तक्षक ने समीप के एक बरगद के वृक्ष को काटा, क्षणभर में ही वह वृक्ष एक बढ़ई सहित, जो कि उस वृक्ष पर चढ़ा हुआ लकड़ी काट रहा था, जलकर भस्म हो गया। यह देखकर धन्वन्तरि वैद्य ने संजीवन मन्त्र पढ़कर जैसे ही उसी वृक्ष की राख पर पानी का छींटा डाला, वैसे ही दो घड़ी के भीतर वह वृक्ष पहले के समान हरा-भरा हो गया तथा वह बढ़ई भी, जो वृक्ष के साथ जलकर भस्म हो गया था, फिर से जी उठा। यह दृश्य देखकर तक्षक ने अपने मन में अत्यन्त घबराकर धन्वन्तरि से पूछा—"हे वैद्यराज! आप राजा परीक्षित का विष उतारने के लिए क्यों जा रहे हैं?" धन्वन्तरि बोले—"हे तक्षक! हम उस धर्मात्मा तथा प्रतापी राजा को फिर से जीवित करके, मुँहमाँगा धन प्राप्त करेंगे।" यह सुनकर तक्षक ने फिर पूछा—"हे ब्राह्मण! क्या आप केवल विष उतारने का मंत्र ही जानते हैं अथवा और भी कुछ ज्ञान रखते हैं?" धन्वन्तरि बोले—"हम भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों का ज्ञान भी रखते हैं।" तक्षक बोला—"हे द्विजश्रेष्ठ! ऐसी बात है तो आप कृपा करके यह विचार और कीजिए कि राजा परीक्षित की आयु कुछ शेष है अथवा नहीं?" यह सुनकर धन्वन्तरि ने अपनी विद्या से विचार करने के बाद उत्तर दिया—"हे तक्षक! राजा परीक्षित की आयु पूरी हो चुकी है, अब उसकी मृत्यु में थोड़ा ही विलम्ब शेष रह गया है।" धन्वतरि के मुख से ऐसे वचन सुनकर तक्षक ने कहा—"हे महाराज! जब यही बात है तो आपका मंत्र राजा परीक्षित पर कुछ असर नहीं करेगा। यदि राजा की आयु शेष होती तो आप उसे बचा सकते थे। अतः यदि आपको धन की अभिलाषा है तो वह धन मुझसे लेकर आप अपने घर को लौट जाइये।" तक्षक की इस बात पर जब धन्वन्तरि सहमत हो गये, तब तक्षक ने उन्हें एक वृक्ष के नीचे गड़ा हुआ धन बता दिया। धन्वन्तरि वहाँ से जितना धन ले जा सकते थे, उसे लेकर अपने घर को लौट गये।

हे ऋषियो! तदुपरान्त तक्षक हस्तिनापुर में पहुँच, छोटे कीड़े का रूप बनाकर एक फूल में बैठ गया। जब ब्राह्मणों ने वह फूल उठाकर राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परीक्षित को दिया, उसी समय तक्षक ने फूल से निकलकर राजा परीक्षित को काट लिया। तक्षक के काटते ही राजा परीक्षित का शरीर जलकर भस्म हो गया तथा उनका चैतन्य आत्मा दिव्य विमान पर बैठकर वैकुण्ठ लोक में जा पहुँचा। तदनन्तर तक्षक सर्प भी वहाँ से उड़कर इन्द्रलोक को चला गया। इस दृश्य को देखकर जो लोग वहाँ उपस्थित थे, वे सब हाहाकार करने लगे। नगर-निवासियों ने जब इस समाचार को सुना तो उन्होंने भी अत्यन्त विलाप किया। राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने अपने पिता का शास्त्रानुसार दाहकर्म-संस्कार किया। तत्पश्चात् मन्त्रियों एवं ब्राह्मणों के आज्ञानुसार जनमेजय राजसिंहासन पर बैठा। जो बढ़ई वृक्ष के साथ जलकर फिर जीवित हो गया था, उसने जब हस्तिनापुर में आकर तक्षक तथा धन्वन्तरि का वृत्तान्त सब लोगों को सुनाया तो उसे सुनकर राजा के मंत्रियों तथा अन्य सब लोगों ने तक्षक के प्रति बहुत बुरा माना। जब जनमेजय को राजसिंहासन पर बैठे हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये, तब उसने मन्त्रियों द्वारा तक्षक तथा धन्वन्तरि के वार्तालाप को सुनकर, अत्यन्त क्रोध करके यह कहा कि शमीक ऋषि के श्राप के कारण तक्षक ने मेरे पिता को काटा, इसमें उसका कोई दोष नहीं है, परन्तु उसने मार्ग में धन्वन्तरि वैद्य को हस्तिनापुर आने से रोक दिया, इसलिए उसे मैं अपना शत्रु समझता हूँ। अब मैं अपने पिता के काटने का बदला सभी सर्पों से लूँगा और एक ऐसा यज्ञ करूँगा, जिसमें सर्पों का सम्पूर्ण वंश भस्म हो जाय तथा पृथ्वी पर कोई भी सर्प जीवित न बचे। यह निश्चयकर जनमेजय ने ब्राह्मणों तथा ऋषियों को बुलाकर यह प्रार्थना की कि आप लोग कोई ऐसा यज्ञ कराइये, जिसमें सब सर्प जलकर भस्म हो जायँ। ब्राह्मणों ने कहा—"हे राजन्! सर्प-सत्र-यज्ञ करने से सब सर्प स्वयं आकर जल जाते हैं, अतः आप उसी यज्ञ को करें।" यह सुनकर जनमेजय ने सारस्वत ब्राह्मण को आचार्य बनाकर सर्प-सत्र-यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। उस यज्ञ में मंत्रों के प्रभाव से सहस्रों सर्प अपने आप दौड़-दौड़कर आने और यज्ञ-कुण्ड में गिरकर भस्म होने लगे। इस प्रकार जब उस यज्ञ में करोड़ों सर्प जलकर मर गये, तब तक्षक अपने प्राणों का भय मानकर इन्द्र की शरण में जा पहुँचा और वहीं छिप गया। इधर जब यज्ञशाला में तक्षक सर्प नहीं पहुँचा, तब जनमेजय ने ब्राह्मणों से पूछा—"हे महानुभावो! इस यज्ञ में सभी सर्प आ-आकर भस्म हो गये, परन्तु अभी तक मेरा शत्रु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक्षक सर्प क्यों नहीं आया है ?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—"हे राजन्! तक्षक की रक्षा इन्द्र कर रहा है, इसी लिए वह अब तक नहीं आया है।" जनमेजय ने कहा—"हे ब्राह्मणो! मेरे शत्रु का रक्षक बनने के कारण अब इन्द्र भी मेरा वैरी बन गया है, अतः आप ऐसा मन्त्र पढ़कर आहुति दीजिये, जिससे तक्षक सहित इन्द्र भी यहाँ आकर भस्म हो जाय।" यह सुनकर ब्राह्मणों ने जैसे ही मन्त्र पढ़कर कर अग्नि-कुण्ड में आहुति डाली, वैसे ही देवराज इन्द्र का सिंहासन, जिसके नीचे तक्षक बैठा हुआ था, तक्षक इन्द्र सहित अपने स्थान से उड़कर यज्ञ-कुण्ड में गिरने के लिए चल दिया।

हे ऋषियो! यह दृश्य देखकर वासुकिनाग के पौत्र आस्तीक ने देवताओं के पुरोहित बृहस्पति से यह कहा कि यदि आप इस समय सहायता न करेंगे तो इन्द्र तथा तक्षक दोनों ही यज्ञ-कुण्ड में जलकर भस्म हो जायँगे। यह सुनकर बृहस्पतिजी आस्तीक को साथ लेकर राजा जनमेजय की यज्ञशाला में जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने अंगिरस गोत्री ब्राह्मणों से, जो कि उन्हीं के वंश के थे तथा राजा का यज्ञ करा रहे थे, यह कहा कि तुम लोग पूर्णाहुति में थोड़ा-सा विलम्ब लगाकर, राजा जनमेजय से अपनी दक्षिणा माँग लो, जिससे इन्द्र तथा तक्षक के प्राण बच सकें। उसी समय मंत्र के प्रभाव से इन्द्र का सिंहासन तक्षक सहित उड़ता हुआ उस यज्ञशाला में जा पहुँचा। यह देखकर बृहस्पति तथा आस्तीक ने बहुत कुछ प्रार्थना करने के बाद राजा जनमेजय से कहा—"हे राजन्! राजा परीक्षित की मृत्यु ब्राह्मण के शाप से होनी थी, उसमें तक्षक का कोई दोष नहीं है। तक्षक सब सर्पों का राजा है और अमृत पीने के कारण वह मर भी नहीं सकता है। तुम जो यह समझते हो कि तक्षक के काटने से हमारे पिता की मृत्यु हुई, यह भी तुम्हारा अज्ञान ही है। जीवन, मृत्यु, सुख, दुःख, हानि, लाभ यह सब श्री नारायणजी की इच्छा से तथा अपने भाग्य के अनुसार होते हैं। जिस प्रकार संसारी मनुष्य आग में जलने से, पानी में डूबने से, शस्त्र द्वारा मारने से, सर्प के काटने से, हिंसक जीवों के खाने से, किसी स्थान से गिरने से, विष देने से अथवा रोग आदि द्वारा अपने प्रारब्ध के अनुसार मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पिता भी अपने भाग्य में लिखे अनुसार तक्षक के काटने से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। हे राजन्! मृत्यु कोई न कोई बहाना लेकर आती है। तुमने एक तक्षक से बदला लेने के लिए करोड़ों निरपराध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पों को मार डाला। ज्ञानी तथा धर्मात्मा मनुष्यों को ऐसा नहीं करना चाहिए। उन श्रीहरि को दण्डवत् करना चाहिए, जिनकी माया के वशीभूत होकर मनुष्य को यह अभिमान उत्पन्न होता है कि हमने अपने शत्रु को मारकर विजय पाई है। हे जनमेजय! अब तुम अपना क्रोध त्यागकर इस यज्ञ को बन्द कर दो तथा परीक्षित की मृत्यु को प्रारब्ध का फल समझकर और अधिक सर्पों को मत जलाओ। सबका मरना-जीना श्री नारायणजी के अधीन है। किसी दूसरे में इतनी सामर्थ्य नहीं जो इस सम्बन्ध में अपना कुछ पराक्रम दिखा सके।"

हे ऋषिओ! सुरगुरु बृहस्पति तथा आस्तीक के मुख से यह शब्द सुनकर जब जनमेजय को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब उसने ब्राह्मणों से यह कहा कि आप लोग अग्नि में पूर्णाहुति न डालें। यह सुनकर जब ब्राह्मणों ने पूर्णाहुति नहीं डाली तब तक्षक ने राजा जनमेजय को यह वरदान दिया कि हे राजन्! जो लोग मेरे तथा तुम्हारे नाम का स्मरण करेंगे, उन्हें कोई सर्प नहीं काटेगा। तत्पश्चात् राजा जनमेजय ने ऋषियों एवं ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर बिदा किया। बृहस्पति भी इन्द्र तथा तक्षक को साथ लेकर चले गये। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने श्री कृष्णचन्द्रजी को मन ही मन दण्डवत् करके, शौनकादि ऋषियों से कहा—"हे ऋषियो! हमने अमृतरूपी श्रीमद्भागवत महापुराण की यह कथा तुम्हें सुनाई है, इसके प्रताप से तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे तथा तुम मुक्ति पद को प्राप्त करोगे।"

सातवाँ अध्याय

सूतजी द्वारा शुभाशुभ कर्मों के फल का वर्णन

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! इन्द्रादि देवताओं को श्री नारायणजी की यह आज्ञा है कि जो प्राणी जैसा पुण्य करे, उसको वैसा ही स्वर्ग का सुख देना चाहिए। पाप करनेवाले लोगों को धर्मराज उनके कर्मों के अनुसार नरक में भेजते हैं, जो लोग केवल श्री नारायणजी का भजन तथा स्मरण करते हैं, उन्हें इन्द्रपुरी से भी ऊपर ब्रह्मलोक में स्थान मिलता है। श्री परमेश्वर का निर्गुण पूजन तथा भजन करनेवाले प्राणी वैकुण्ठ को प्राप्त होकर, महाप्रलय तक वहाँ का सुख भोगते हैं। भागवत पुराण सुनने के कारण राजा परीक्षित भी श्री कृष्णचन्द्रजी का निर्गुण भजन करके वैकुण्ठ लोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्राप्त हुए। संसारी लोग जो भी यज्ञ, तप, भजन तथा स्मरण आदि करते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं–"पहला किसी फल की प्राप्ति के लिए और दूसरा बिना किसी इच्छा के। हमने तुम्हें दोनों प्रकार का हाल इस श्रीमद्-भागवत पुराण की कथा में सुना दिया है। अठारहों पुराणों में श्रीमद्भागवत महापुराण सर्वोत्तम है।"

यह सुनकर शौनकादि ऋषियों ने कहा–"हे सूतजी! आप हमें अठारह पुराणों के नाम सुनाइये।" सूतजी बोले–"हे ऋषियो! उन अठारहों पुराणों के नाम इस प्रकार हैं–ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, लिंग पुराण, गरुण पुराण, नारद पुराण, अग्नि पुराण, स्कंद पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, वाराह पुराण, नृसिंह पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण। इन सब पुराणों में श्री नारायणजी के गुण एवं लीला-चरित्रों का वर्णन है। किसी पुराण में सात्विकी, किसी में राजसी और किसी में तामसी धर्म लिखा हुआ है। श्रीमद्भागवत में श्री वेदव्यासजी ने केवल सात्विकी धर्म तथा श्री नारायणजी के गुणों का वर्णन किया है। वह हमने तुम्हें सुनाया। अब कहो और क्या सुनना चाहते हो?"

आठवाँ अध्याय

सूतजी द्वारा मार्कण्डेय ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने कहा–"हे सूतजी! आपने हमें श्री नारायणजी के लीला-चरित्रों को सुनाकर धन्य किया है। आप चिरंजीवि हों। अब हम यह सुनना चाहते हैं कि मार्कण्डेय ऋषि ने श्री नारायणजी की माया को किस प्रकार देखकर, श्रीहरि का दर्शन प्राप्त किया तथा श्री वेदव्यासजी ने सब वेदों के अलग-अलग विभाग किस प्रकार किये?" पौराणिक सूतजी बोले–"हे ऋषियो! जब ब्रह्माजी ने यह देखा कि कलियुग के मनुष्य अल्पायु होने के कारण सब वेद न पढ़ सकेंगे तो उन्होंने श्रीहरि से प्रार्थना की। उसे सुनकर श्री नारायणजी ने श्री वेदव्यास-रूप का अवतार लेकर, वेदों का सार निकाल लिया और उनके अलग-अलग नाम रखकर अपने सब शिष्यों को पढ़ाया। जो पुराण वेदों में से निकला था, उसका नाम उन्होंने 'मार्कण्डेय पुराण' रखा।" यह सुनकर ऋषियों ने कहा–"हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूतजी ! आप हमें पहले यह बताने की कृपा करें कि मार्कण्डेयजी ने इतनी बड़ी आयु किस प्रकार प्राप्त की थी ?"

सूतजी बोले–"हे ऋषियो ! मृकण्ड नामक एक ऋषि के कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने संतान की प्राप्ति के लिए देवताओं के नाम पर बहुत तप तथा हवन किया, तब देवताओं ने उन्हें दर्शन देकर यह कहा–"हे ऋषि ! तुम्हारे भाग्य में पुत्र नहीं लिखा है, परन्तु तुम्हारे तप तथा हवन के प्रताप से तुम्हें एक पुत्र की प्राप्ति होगी। वह बालक बारह वर्ष की आयु में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।" यह सुनकर ऋषि ने उत्तर दिया–"हे देवताओ ! मुझे तो सन्तान प्राप्त होने की अभिलाषा है, यदि वह बारह वर्ष का होकर भी मर जाय तो भी मैं सन्तोष कर लूँगा।" अस्तु, देवताओं के आशीर्वाद से जब मृकण्ड ऋषि को पुत्र की प्राप्ति हुई तो उन्होंने उस बालक का नाम 'मार्कण्डेय' रक्खा। जब उस बालक की आयु बारह वर्ष की हुई, तब उसके माता-पिता विलाप करने लगे। उन्हें रोते हुए देखकर मार्कण्डेय ने पूछा–"हे माता-पिता ! आप इस प्रकार क्यों रो रहे हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया–"हे पुत्र ! अब तुम्हारी मृत्यु का समय समीप आ पहुँचा है, इसीलिए हम लोग रो रहे हैं।" मार्कण्डेय ने कहा–"हे माता-पिता ! क्या कोई ऐसा उपाय भी है जिसके करने से मैं जीवित रह सकूँ?" वे बोले–"हे पुत्र ! श्रीनारायणजी की कृपा से मनुष्य के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।" यह सुनकर मार्कण्डेय वन में जाकर श्री नारायण-जी का ध्यान एवं तप करने लगे। जब उन्हें तपस्या करते हुए छह मन्वन्तर बीत गये, तब देवताओं के स्वामी इन्द्र ने भयभीत होकर अपने मन में यह विचार किया कि यह ब्राह्मण तपस्या द्वारा कहीं मेरे इन्द्रासन को न छीन ले। यह सोचकर इन्द्र ने मार्कण्डेय की तपस्या भंग करने के लिए कामदेव, वसन्त ऋतु, गन्धर्व तथा अप्सराओं को भेजा। वे सब उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ मार्कण्डेय बैठे तपस्या कर रहे थे। वह स्थान वृक्ष तथा पुष्पों से पूरित परम मनोहर था। उसे देखकर कामदेव आदि भी मोहित हो गये। प्रातःकाल जब मार्कण्डेय अग्निहोत्र करके पर्वत की शिला पर बैठे, तब अप्सराएँ उनके सामने पहुँचकर नृत्य एवं गायन करने लगीं। गन्धर्वगण बाजे बजाकर राग-रागिनियाँ अलापने लगे। वसन्त ऋतु द्वारा वहाँ एक सुन्दर बाग प्रकट हो गया, जिसमें भाँति-भाँति के पक्षी चहकने लगे और अनेक रंगों के पुष्प अपनी सुगन्ध फैलाने लगे। शीतल-मंद-सुगन्ध पवन बहने लगा। नाचते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय एक अप्सरा का वस्त्र हवा में उड़ गया, तब वह नग्नावस्था में ही गेंद उछालती हुई ऋषि के निकट जा पहुँची, परन्तु उससे भी मार्कण्डेय ऋषि का चित्त चलायमान नहीं हुआ।

हे ऋषियो! अनेक उपाय करने पर भी कामदेव तथा अप्सराओं का जब मार्कण्डेय ऋषि पर कोई वश न चला तब वे लोग शाप के भय से भयभीत होकर काँपते हुए राजा इन्द्र के पास जा पहुँचे तथा अत्यन्त लज्जित होकर इस प्रकार कहने लगे—"हे महाराज! मार्कण्डेय ऋषि पर हमारा कोई वश नहीं चलता है, अतः आप हमें क्षमा करें।" यह समाचार सुनकर इन्द्र आदि देवताओं को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तब सब देवता मार्कण्डेय ऋषि का दर्शन करने के लिए उनके पास गये और बहुत प्रकार से स्तुति आदि करके अपने स्थान को लौट आये। इस प्रकार तपस्या करते हुए मार्कण्डेय ऋषि को जब कुछ समय और व्यतीत हो गया, तब श्री नारायणजी गरुड़ पर बैठकर उनके पास जा पहुँचे तथा उन्हें अपने चतुर्भुजी स्वरूप का दर्शन देकर इच्छित वरदान माँगने के लिए कहा। भगवान् त्रिलोकीनाथ को देखते ही मार्कण्डेय ऋषि ने स्तुति तथा परिक्रमा करने के पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! मैं अपनी आयु को अधिक चाहता हूँ।" यह सुनकर श्रीहरि ने वरदान देकर कहा—"हे ऋषि! तुम कल्प के अन्तिम समय तक जीवित रहोगे।" इतना कहकर श्रीहरि वैकुण्ठ लोक को चले गये।"

नवाँ अध्याय

श्री नारायणजी का मार्कण्डेय ऋषि को महाप्रलय का दृश्य दिखाना

सूतजी बोले—"हे ऋषियो! जब ब्रह्मा के एक दिन-प्रमाण आयु पाने पर भी मार्कण्डेय ऋषि ने और अधिक तप तथा ध्यान किया, तब श्री नारायणजी ने उन्हें दुबारा दर्शन देकर यह पूछा कि अब तुम क्या चाहते हो? ऋषि ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभो! मुझे अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है, परन्तु मैं आपकी माया का थोड़ा-सा कौतुक देखना चाहता हूँ।" श्री हरि बोले—"हे ऋषि! आज के सातवें दिन हम तुम्हें अपनी माया दिखावेंगे, परन्तु तुम चैतन्य बने रहना। उस समय हमें भूल मत जाना।" इतना कहकर जब श्री नारायणजी वैकुण्ठ लोक को चले गये, तब मार्कण्डेय ऋषि भी वहाँ से उठकर अपने स्थान को चले आये। अस्तु, जब सातवें दिन मार्कण्डेय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषि ने नदी के तट पर बैठकर तपस्या करते समय महाप्रलय का दृश्य देखने की इच्छा की, तब उन्हें यह दिखाई दिया कि एक ओर से बड़े जोर की आँधी उठी चली आ रही है। उस आँधी के कारण चारों ओर धूल ही धूल भर गई, जिससे घोर अन्धकार छा गया। इस दृश्य को देखकर मार्कण्डेय ऋषि अपने मन में सोचने लगे कि ऐसी आँधी तो हमने आज तक कभी नहीं देखी थी। जिस समय ऋषि अपने मन में यह विचार कर रहे थे, उसी समय चारों ओर से पानी उमड़ता हुआ उनके समीप आ पहुँचा तथा जिस स्थान पर वे बैठे थे, वहाँ अथाह जल हो गया। अब तो ऋषि उस पानी में गोते खाने लगे। वे कभी जल में डूब जाते और कभी ऊपर उछल आते थे। कभी घड़ियाल आदि जलजीव उन्हें अपने मुँह में निगल जाते और कभी उगल देते थे। जब मार्कण्डेय ऋषि की समझ के अनुसार सहस्रों वर्षों तक यह क्रम चलता रहा, उस समय वे अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर यह विचार करने लगे कि मुझसे बड़ी भूल हुई, जो मैंने श्री नारायणजी से ऐसा वरदान माँगा और इस दशा को पहुँचा। अब मैं श्रीहरि से यही चाहता हूँ कि वे मुझे इस पानी से बाहर निकाल लें।

जिस समय ऋषि ने अपने मन में श्री नारायणजी का ध्यान किया उसी समय उस मायारूपी जल के भीतर एक टापू तथा उस पर एक बरगद का वृक्ष दिखाई देने लगा। ऋषि उस टापू को देखकर यह सोचने लगे कि यदि श्री नारायणजी कृपा करके मुझे किसी प्रकार इस टापू पर पहुँचा दें तो मैं बरगद के वृक्ष पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा कर लूँ। अस्तु, कुछ ही देर में श्री नारायणजी की दया से मार्कण्डेय ऋषि उस टापू तथा वृक्ष के पास जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने यह देखा कि बरगद का एक पत्ता दोने के समान बना हुआ है, उस दोने में बाहर-तेरह दिन की आयु का एक बालक श्यामरंग, चन्द्रमा के समान मुख तथा कमल के समान नेत्रोंवाला, अत्यन्त सुन्दर लेटा हुआ है। वह अपने पाँव के अँगूठे को हाथ में पकड़े, मुँह में डालकर चूस रहा है। जब मार्कण्डेय ऋषि समीप जाकर उस बालक की छवि को देखने लगे, उसी समय उन बालक रूपी भगवान् ने अपना श्वास खींचा तो उसके साथ ही मार्कण्डेय ऋषि मच्छर की भाँति उनकी नाक के छिद्र में घुस गये। ऋषि ने उन बालकरूपी भगवान् के शरीर के भीतर पहुँचकर सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, सातों-द्वीप, नवों खण्ड, दसों दिशाएँ, आठों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोकपाल, समुद्र, पर्वत, नगर, ग्राम, वृक्ष, तालाब, चाँदी-सोने की खानें, ऋषि-मुनियों के स्थान, अपने स्थान तथा सम्पूर्ण संसारी वस्तुओं को वर्तमान देखा। उन सबको देखकर ऋषि को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अस्तु, जब बालभगवान् ने पुनः श्वास छोड़ी तो ऋषि फिर बाहर निकल आये। बाहर आकर ऋषि ने फिर उन्हीं बालकरूपी भगवान् के दर्शन किये। जब ऋषि ने उस बालक को गोद में उठाकर प्यार करना चाहा, तभी ऋषि के हाथ बढ़ाने के साथ ही साथ वे बालभगवान् पानी, वृक्ष तथा टापू के सहित अन्तर्धान हो गये। मार्कण्डेय ऋषि अपनी समझ के अनुसार करोड़ों वर्षों तक इस माया के कौतुक को देखते रहे, परन्तु जैसे ही उनका चित्त चैतन्य हुआ, वैसे ही उन्हें यह अनुभव हुआ कि वे पहिले के ही समान नदी के तट पर ज्यों के त्यों बैठे हुए हैं। जब ऋषि ने विचार किया तो यह पता चला कि सम्पूर्ण घटना में दो घड़ी से अधिक समय का विलम्ब नहीं हुआ था।"

दसवाँ अध्याय

शिव तथा पार्वती का मार्कण्डेयजी के पास जाना

सूतजी बोले—"हे शौनकादि ऋषियो! मायारूपी महाप्रलय का कौतुक देखने के बाद मार्कण्डेय ऋषि ने ध्यान धरकर श्री नारायणजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! मुझसे यह बड़ा अपराध हुआ, जो मैंने आपकी माया को देखने का वरदान माँगा। हे स्वामी! आपकी माया को ब्रह्मा इत्यादिक देवता, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तथा योगी भी नहीं जान पाते हैं, फिर मेरी क्या सामर्थ्य है, जो मैं उसे पहिचान सकूँ? जिस प्रकार मच्छर पर्वत को उठाने की इच्छा करे तो वह उसमें सफलता नहीं पा सकता, उसी प्रकार मैं भी आपसे ऐसा वरदान माँगकर लज्जित हुआ हूँ। अब आप मुझे अपनी शरण में आया हुआ जानकर क्षमा प्रदान करें। इस प्रकार प्रार्थना करके मार्कण्डेय-जी पुनः श्रीहरि का ध्यान धरने लगे।"

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा—"हे ऋषियो! श्री नारायणजी की महिमा को जानने के लिए सब छोटे-बड़े जीव अपनी सामर्थ्य के अनुसार परिश्रम करते हैं, परन्तु कोई भी उनके भेद को नहीं पहुँच पाता। अब हम मार्कण्डेय ऋषि का एक और वृत्तान्त सुनाते हैं, मन लगाकर सुनो। एक दिन शिव-पार्वती नन्दी पर सवार हो, गणों को साथ लिए हुए चले जा रहे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। मार्ग में जब उन्होंने मार्कण्डेय ऋषि को श्री नारायणजी के ध्यान में मग्न बैठे हुए देखा, उस समय पार्वतीजी ने शिवजी से यह कहा कि हे प्रभो! इन ऋषि को तपस्या का कुछ फल अवश्य दीजिए। शिवजी बोले—"हे पार्वती! इनको किसी वस्तु की कामना नहीं है, हम इन्हें क्या दें? यह ऋषि श्रीहरि के ध्यान के अतिरिक्त हमें भी कुछ नहीं समझते हैं, परन्तु तुम्हारे कहने से हम इनके पास जाकर सत्संग करेंगे।" इतना कहकर श्री शिवजी पार्वती सहित मार्कण्डेय ऋषि के समीप जा पहुँचे, परन्तु ऋषि श्री नारायणजी के ध्यान में ऐसे मग्न थे कि उन्हें शिव-पार्वती के आने का भी कुछ आभास न हुआ। यह देखकर शिवजी ने उनके हृदय में प्रवेश करके श्रीहरि की चतुर्भुजी मूर्ति को अन्तर्धान करके, वहाँ अपना प्रकाश फैला दिया। जब मार्कण्डेय ऋषि को अपने हृदय में चतुर्भुजी स्वरूप के स्थान पर श्वेतवर्ण, दस भुजा, तीन नेत्र, बाघम्बर तथा मुण्डमाला पहिने, डमरू तथा त्रिशूल को धारण किये हुये पुरुष को स्थित देखा तो उन्होंने घबराकर अपने नेत्र खोल दिये। आँखें खोलने पर शिवजी का जो स्वरूप उन्हें अपने हृदय में दिखाई दे रहा था, वही स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। तब मार्कण्डेय ऋषि ने शिवजी को दण्डवत्-परिक्रमा करने के उपरान्त बड़े आदरपूर्वक आसन पर बैठाया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—"हे दीनबन्धो! आप सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण गुणों से युक्त हैं। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। हे स्वामी! जिस प्रकार आपने दया करके मुझे दर्शन दिया, उसी प्रकार मेरी सहस्रों दण्डवत् स्वीकार कीजिये तथा अपने आने का कारण बताइए।"

मार्कण्डेय ऋषि के वचन सुनकर श्री शिवजी हँसकर बोले—"हे ऋषि! जिस महाप्रलय में चौदहों भुवनों का नाश हो जाता है तथा कोई भी प्राणी जीवित नहीं बचता, उस महाप्रलय को तुमने अपनी आँखों से देखा है, अतः मैं तुम्हारे दर्शन करने को यहाँ आया हूँ। हे ऋषि! मुझे ब्राह्मण, हरिभक्त तथा साधु-महात्मा जितने प्रिय हैं, उतने प्रिय इन्द्र आदि देवता भी नहीं हैं। जिस प्रकार मुझे अपना भक्त प्रिय होता है, उसी प्रकार मैं श्री नारायणजी के सेवकों को भी समझता हूँ। जो लोग ज्ञानी हैं, वे मुझमें तथा नारायणजी में कोई अन्तर नहीं समझते। तुम्हारे समान हरि-भक्तों का दर्शन पाकर मनुष्य जितना पवित्र होता है, उतना तीर्थों में स्नान करने एवं देवताओं के दर्शन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त करने से भी नहीं होता। हे ऋषि! मेरा दर्शन निष्फल नहीं जाता, अतः तुम मुझसे जो चाहो, वह वरदान माँग लो।"

श्री शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर मार्कण्डेय ऋषि ने उन्हें तथा पार्वतीजी को दण्डवत् करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो! आप साक्षात् ईश्वर होकर भी मुझ अज्ञानी मनुष्य को इतना सम्मान दे रहे हैं। जिस प्रकार कल्पवृक्ष के नीचे पहुँचने पर मनुष्य के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार आपके दर्शन प्राप्त करके अब मुझे कोई इच्छा नहीं रह गई है। हे नाथ! मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि श्री त्रिलोकीनाथजी तथा आपके चरणों में मेरी भक्ति सदैव बनी रहे।" यह सुनकर शिवजी बोले—"हे ऋषि! तुम एक कल्प तक चिरजीवी रहकर कभी वृद्धावस्था को प्राप्त न होगे। तुम्हारे हृदय में मेरी तथा श्री नारायणजी की भक्ति सदैव बनी रहेगी एवं अठारह पुराणों में से एक पुराण तुम्हारे नाम से प्रकट होगा।" इतना वरदान देकर श्री शिवजी पार्वतीजी आदि के सहित वहाँ से चलकर कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ शिवजी ने मार्कण्डेय ऋषि के उत्पन्न होने, तपस्या करने तथा वरदान पाने का सब हाल पार्वतीजी को कह सुनाया।" इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले—"हे ऋषियो! तुमने हमसे मार्कण्डेय ऋषि का जो हाल पूछा था, वह हमने तुम्हें कह सुनाया है।"

ग्यारहवाँ अध्याय

सूतजी द्वारा शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि का वर्णन

इतनी कथा सुनकर शौनकादि ऋषियों ने कहा—"हे सूतजी! अब आप श्री नारायणजी के पूजन की विधि बताइये तथा यह समझाइये कि श्री नारायणजी शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि अस्त्र, वैजयन्ती माला तथा पीताम्बर को, जो आठों प्रहर धारण किये रहते हैं, ये वस्तुएँ क्या हैं?" सूतजी बोले—"हे ऋषियो! तुमने बड़ी गुप्त बात पूछी है, अतः मैं अपने गुरु वेदव्यासजी को दण्डवत् करके कहता हूँ, सुनो। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड श्री नारायणजी का स्वरूप है। पृथ्वी उनके पाँव, आकाश मस्तिष्क, सूर्य नेत्र, वायु नाक, दसो दिशायें कान, लोकपाल भुजा, चन्द्रमा मन, यमराज दाँत, वृक्ष शरीर के रोयें, मेघों की घटा मस्तिष्क के बाल, पर्वत शरीर की हड्डियाँ, समुद्र पेट तथा नदियाँ शरीर की नसें हैं। इस सम्पूर्ण संसारी व्यवहार को श्रीहरि का विराट् स्वरूप समझना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिए। जो मनुष्य श्री नारायणजी के विराट् स्वरूप का ध्यान लगाकर सम्पूर्ण जीवों में उनकी शक्ति को एक समान देखता है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत न होकर किसी से शत्रुता अथवा मित्रता नहीं रखता, वही मुक्ति-पद को प्राप्त होता है। कौस्तुभमणि श्री नारायणजी की ज्योति है, वैजयन्ती माला माया है, चारों वेद पीताम्बर, ओंकार यज्ञोपवीत, सांख्यशास्त्र कानों के कुण्डल, योगशास्त्र मुकुट, ब्रह्मलोक तथा शेषनाग उनके बैठने का सिंहासन, सतोगुण पद्म, पराक्रम गदा, जलतत्त्व शंख, अग्नितत्त्व सुदर्शन चक्र, आकाश-तत्त्व खड्ग, काल शार्ङ्ग धनुष है तथा श्रीहरि के तरकस में सब जीवों के कर्मरूपी बाण भरे रहते हैं। श्री नारायणजी का छत्र वैकुण्ठ है। वेद गरुड़ स्वरूप, शक्ति लक्ष्मी तथा उनकी विभूति नन्द-सुनन्द आदि पार्षद हैं। श्री नारायणजी अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर उन्हें शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारण किये हुए दर्शन देते हैं। उनकी महिमा को कोई नहीं जान पाता। मैंने अपने गुरु की कृपा से आप सब लोगों को यह कथा सुनाई है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्री नारायणजी का ध्यान धरता है, उसे श्रीहरि कृतार्थ कर देते हैं।"

इतनी कथा सुनकर ऋषियों ने कहा—"हे सूतजी! अब आप हमें यह बताइये कि बारहो महीने में श्री सूर्यनारायण के जो नये-नये रूप तथा अलग-अलग नाम होते हैं, उनका कारण क्या है?" सूतजी बोले—"हे ऋषियो! श्री सूर्यनारायण भी श्रीहरि के ही एक स्वरूप हैं। उनके प्रकाश द्वारा क्षण, घड़ी तथा प्रहर का ज्ञान होता है। चैत्र मास में सूर्य 'धाता' के नाम से प्रकाशित होते हैं। उस समय कृतस्थली नामक अप्सरा उनके आगे नाचती हुई चलती है तथा तुम्बुरु नामक गन्धर्व गीत सुनाता है। हेती नामक राक्षस उनके रथ को पीछे से ढकेलता है। वासुकिनाग उस रथ में रस्सी बाँधने के काम आते हैं और कृत नामक यक्ष रथ की मरम्मत करने के लिए साथ चलते हैं। पुलस्त्य नामक ऋषि उनके साथ रहकर स्तुति करते चलते हैं। वैशाख मास में सूर्य का नाम 'अर्यमा' होता है। उस समय पुलह नामक ऋषि, उरजा नामक यक्ष, प्रहेती नामक राक्षस, पुञ्जकस्थली नामक अप्सरा, नारद नामक गन्धर्व तथा कुक्षनीर नामक नाग उनके साथ रहकर अपना-अपना कार्य करते हैं। ज्येष्ठ मास में सूर्य का नाम 'मित्र' होता है। उस समय अत्रि नामक ऋषि, पौरुषेय नामक राक्षस, तक्षक नामक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाग, मेनका नामक अप्सरा, हाहा नामक गन्धर्व तथा रथस्व नामक यक्ष उनके साथ रहते हैं। आषाढ़ मास में सूर्य का नाम 'वरुण' होता है। उस समय वशिष्ठ नामक ऋषि, रम्भा नामक अप्सरा, हूहू नामक गन्धर्व, सहजन्य नामक यक्ष, सर्वज्ञ नामक नाग तथा चित्रसेन नामक राक्षस उनके साथ रहते हैं। श्रावण मास में सूर्य का नाम 'इन्द्र' होता है। उस समय विश्वावसु नामक गन्धर्व, परमलोचा नामक अप्सरा, श्रोता नामक यक्ष तथा वर्य नामक राक्षक उनके साथ रहते हैं। भाद्रपद मास में सूर्य का नाम 'विवस्वान्' होता है। उग्रसेन नामक गन्धर्व, व्याघ्र नामक राक्षस, असारन नामक यक्ष, भृगु नामक ऋषि, निम्लोचा नामक अप्सरा तथा शंखखाल नामक नाग उनके साथ रहते हैं। आश्विन मास में सूर्य का नाम 'त्वष्टा' होता है। उस समय जमदग्नि नामक ऋषि, कामल नामक नाग, तिलोत्तमा नामक अप्सरा, धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व, बृहद्वती नामक राक्षस तथा सत्यजित् नामक यक्ष उनके साथ रहते हैं। कार्तिक मास में सूर्य का नाम 'विष्णु' होता है। उस समय अश्वर नामक नाग, रम्भा नामक अप्सरा, सुवर्चा नामक गन्धर्व, सत्यजित् नामक यक्ष, विश्वामित्र नामक ऋषि तथा घृतापी नामक राक्षस उनके साथ रहते हैं। मार्गशीर्ष मास में सूर्य का नाम 'अंशुमान्' होता है। उस समय कश्यप नामक ऋषि, तार्क्ष नामक यक्ष, ऋतुसेन नामक गन्धर्व, उर्वशी नामक अप्सरा, बिन्दाछत्र नामक राक्षस तथा महा-शंख नामक नाग उनके साथ रहते हैं। पौष मास में सूर्य का नाम 'भग' होता है। उस समय सुवर्च नामक राक्षस, अरिष्टनेमि नामक गन्धर्व, परण नामक यक्ष, करकोट नामक नाग तथा पूर्वचित्ती नामक अप्सरा उनके साथ रहते हैं। माघ मास में सूर्य का नाम 'पुरुष' होता है। धनंजय नामक नाग, वात नामक राक्षस, सुषेण नामक गन्धर्व, सुरुचि नामक यक्ष, गौतम नामक ऋषि तथा घृताची नामक अप्सरा उनके साथ रहते हैं। फाल्गुन मास में सूर्य का नाम 'पर्जन्य' होता है। क्रतु नामक यक्ष, सुवर्चा नामक राक्षस, विश्व नामक गन्धर्व, ऐरावत नामक यक्ष तथा सेनजिता नामक अप्सरा सूर्य के साथ रहकर अपना-अपना कार्य करते हैं।" इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले—"हे ऋषियो! जो मनुष्य प्रातः तथा संध्या काल में श्री सूर्यनारायण का ध्यान धरकर, इन सब ऋषियों आदि के नाम लेता है, वह अनेक जन्मों के पापों से छूटकर परम गति को प्राप्त करता है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बारहवाँ अध्याय

सूतजी द्वारा श्रीमद्भागवत् की सम्पूर्ण कथा का वर्णन

सूतजी बोले—"हे ऋषियों ! हमने तुम्हें श्रीमद्भागवत की जो अमृत-रूपी कथा सुनाई है, उसमें प्रारम्भ से अन्त तक श्री नारायणजी के लीला-चरित्रों का वर्णन है। सर्वप्रथम श्री वेदव्यासजी तथा नारदजी का संवाद, तत्पश्चात् राजा परीक्षित की कथा—जिस प्रकार उन्हें शमीक ऋषि ने शाप दिया था। तदुपरान्त शुकदेवजी का राजा परीक्षित के पास आगमन, नारदजी तथा ब्रह्माजी का वार्तालाप, श्रीहरि के अवतारों का वर्णन, विदुर तथा उद्धवजी की भेंट, मैत्रेयजी का विदुर को ज्ञानोपदेश, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, श्रीहरि का वाराह अवतार धारणकर हिरण्याक्ष को मारना, कपिलदेवजी द्वारा अपनी माता देवहूति को सांख्ययोग का उपदेश, सती के शरीर-त्याग की कथा, दक्ष के यज्ञ विध्वंस होने का वर्णन, राजा ध्रुव, पृथु, प्राचीनबर्हिष, पुरञ्जन तथा प्रियव्रत का हाल, सातों द्वीप, नवों खण्ड तथा सातों समुद्रों का वर्णन, वृत्रासुर दैत्य की कथा, नृसिंह अवतार, भक्त प्रह्लाद तथा गजेन्द्र मोक्ष की कथा, कच्छप अवतार, समुद्र-मन्थन, राजा बलि तथा वामन अवतार की कथा, राजा पुरूरवा तथा उर्वशी नामक अप्सरा का हाल, सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन, परशुराम एवं रामचन्द्र की अवतार-कथा, राजा दुष्यन्त, रानी शकुन्तला, राजा ययाति, देवयानी, यदुवंश तथा वसुदेवजी का हाल, भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी का जन्म, उनका गोकुल में जाना तथा नन्द-यशोदा को सुख देना, गोपी और ग्वालों का हाल, श्री श्यामसुन्दर का मथुरा में आकर कंस को मारना, जरासन्ध आदि से युद्ध, द्वारकापुरी बसाना, रुक्मिणी आदि आठों परटरानियों के विवाह का वर्णन, भौमासुर को मारकर सोलह सहस्र एक सौ आठ राजकन्याओं के साथ विवाह की कथा, अधर्मी राजाओं तथा दैत्यों को मारने का हाल, कौरव-पाण्डवों द्वारा महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारने का वृत्तान्त, दुर्वासा ऋषि के शाप से छप्पन करोड़ यदुवंशियों का नाश कराने का वर्णन एवं श्रीहरि के परमधाम-गमन का हाल हमने तुम्हें सुनाया है।

हे ऋषियो ! हमने कलियुग के राजाओं का वर्णन, मार्कण्डेय ऋषि का हाल तथा सूर्यनारायण की कथा, इस प्रकार सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत तुम्हें सुनाई है। संसारी मनुष्यों का चाहिये कि वे अपनी जिह्वा से आठों प्रहर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री नारायणजी का नाम लें तथा कानों से उनके लीला-चरित्रों को सुनें। परस्पर श्रीहरि के गुणों तथा महिमा की चर्चा करते हुए, जहाँ तक बन सके श्री नारायणजी के चरणों में अपना ध्यान लगावें। सम्पूर्ण जीवों पर दया रक्खें तथा अपनी शक्ति के अनुसार मन, वचन, कर्म से परोपकार करते रहें। मनुष्य-शरीर पाने का यही फल है। भगवान् वेदव्यासजी ने श्री नारायणजी के निर्मल यश का जैसा वर्णन श्रीमद्भागवत महापुराण में किया है, वैसा अन्य किसी पुराण में नहीं किया। हे ऋषियो! जिन श्री शुकदेवजी की कृपा से मैंने तुम्हें यह अमृतरूपी कथा सुनाई है उनके चरणों में मैं बार-बार दण्डवत् करता हूँ। ब्राह्मणों को चारों वेद पढ़ने पर जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस श्रीमद्भागवत पुराण को पढ़ने से मिल जाता है। क्षत्रिय को श्रीमद्भागवत पढ़ने तथा सुनने से विजय मिलती है तथा वैश्य को व्यापार में लाभ होता है। शूद्र के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत की कथा चारों वर्णों को भुक्ति-मुक्ति देनेवाली है।"

तेरहवाँ अध्याय

अठारहों पुराणों का वर्णन

सूतजी बोले—"हे शौनकादि ऋषियो! ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, कुबेर आदि देवता, ऋषि, मुनि तथा योगीजन जिन श्री नारायणजी के चरणों का ध्यान अपने हृदय में दिन-रात धरते हैं, परन्तु फिर भी जिनके आदि-अन्त को नहीं जान पाते, उन श्रीहरि को मैं बार-बार दण्डवत् करता हूँ। हे ऋषियो! अठारहों पुराणों में जितने-जितने श्लोक हैं, उन सबका हाल सुनो। ब्रह्म पुराण में दस सहस्र, पद्म पुराण में पचपन सहस्र, विष्णु पुराण में तीस सहस्र, शिव पुराण में चौबीस सहस्र, श्रीमद्भागवत पुराण में अठारह सहस्र, नारद पुराण में पच्चीस सहस्र, मार्कण्डेय पुराण में नौ सहस्र, अग्नि पुराण में पन्द्रह सहस्र चार सौ, भविष्य पुराण में चौदह सहस्र पाँच सौ, ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह सहस्र, लिंग पुराण में ग्यारह सहस्र, वाराह पुराण में चौबीस सहस्र, स्कन्ध पुराण में इक्यासी सहस्र एक सौ, वामन पुराण में दस सहस्र, कूर्म पुराण में सत्रह सहस्र, मत्स्य पुराण में चौदह सहस्र, गरुड़ पुराण में उन्नीस सहस्र तथा ब्रह्माण्ड पुराण में बारह सहस्र श्लोक हैं। श्रीमद्भागवत के साररूप चार श्लोक श्री नारायणजी ने ब्रह्माजी से कहे थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्माजी ने उनका हाल नारदजी को बताया। नारदजी ने व्यासजी को सुनाया। तब श्री व्यासजी ने उन्हें अठारह सहस्र श्लोकों में विस्तारपूर्वक लिखा और उस ग्रन्थ का नाम श्रीमद्भागवत पुराण रक्खा। इस पुराण के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में श्री नारायणजी के सम्पूर्ण लीला-चरित्रों का वर्णन है। जो मनुष्य इस पुराण को भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा के दिन स्वर्ण सिंहासन पर रखकर वेद तथा पुराणों के ज्ञाता ब्राह्मण को दान करते हैं, उन्हें परमपद की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत महापुराण सत्रहों पुराणों का शिरमौर है। इसमें चारों वेदों का सार भरा हुआ है। जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियों में गंगा, सम्पूर्ण देवताओं में श्री नारायणजी तथा सम्पूर्ण तपस्वियों में श्री शिवजी अधिक श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण पुराणों में यह श्रीमद्भागवत महापुराण सर्वोत्तम है। इस पुराण को पढ़ने तथा सुनने से हमें तथा तुम्हें, दोनों को मुक्ति प्राप्त होगी। जिनका नाम स्मरण करने तथा दण्डवत् करने से सम्पूर्ण पाप तथा दुःख नष्ट हो जाते हैं, उन श्री नारायणजी, श्री वेदव्यासजी तथा श्री शुकदेवजी को मैं दण्डवत् करता हूँ। जिस प्रकार अमृत पीने के कारण स्वर्ग के देवता मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार इस संसार में जो मनुष्य अमृत-रूपी श्रीमद्भागवत महापुराण को सच्चे मन से सुनेंगे, पढ़ेंगे तथा विश्वास रक्खेंगे, उन्हें रोगादि का दुःख व्याप्त न होगा। भूत-प्रेत आदि का भय नष्ट हो जायगा तथा अशुभ ग्रहों का फल दूर हो जायगा। वे लोग संसार में सुख भोगकर अन्त समय में मुक्ति-पद को प्राप्त होंगे।"

द्वादश स्कन्ध समाप्त

सब प्रकार की पुस्तकों के मिलने का पता:-

श्री गंगा पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

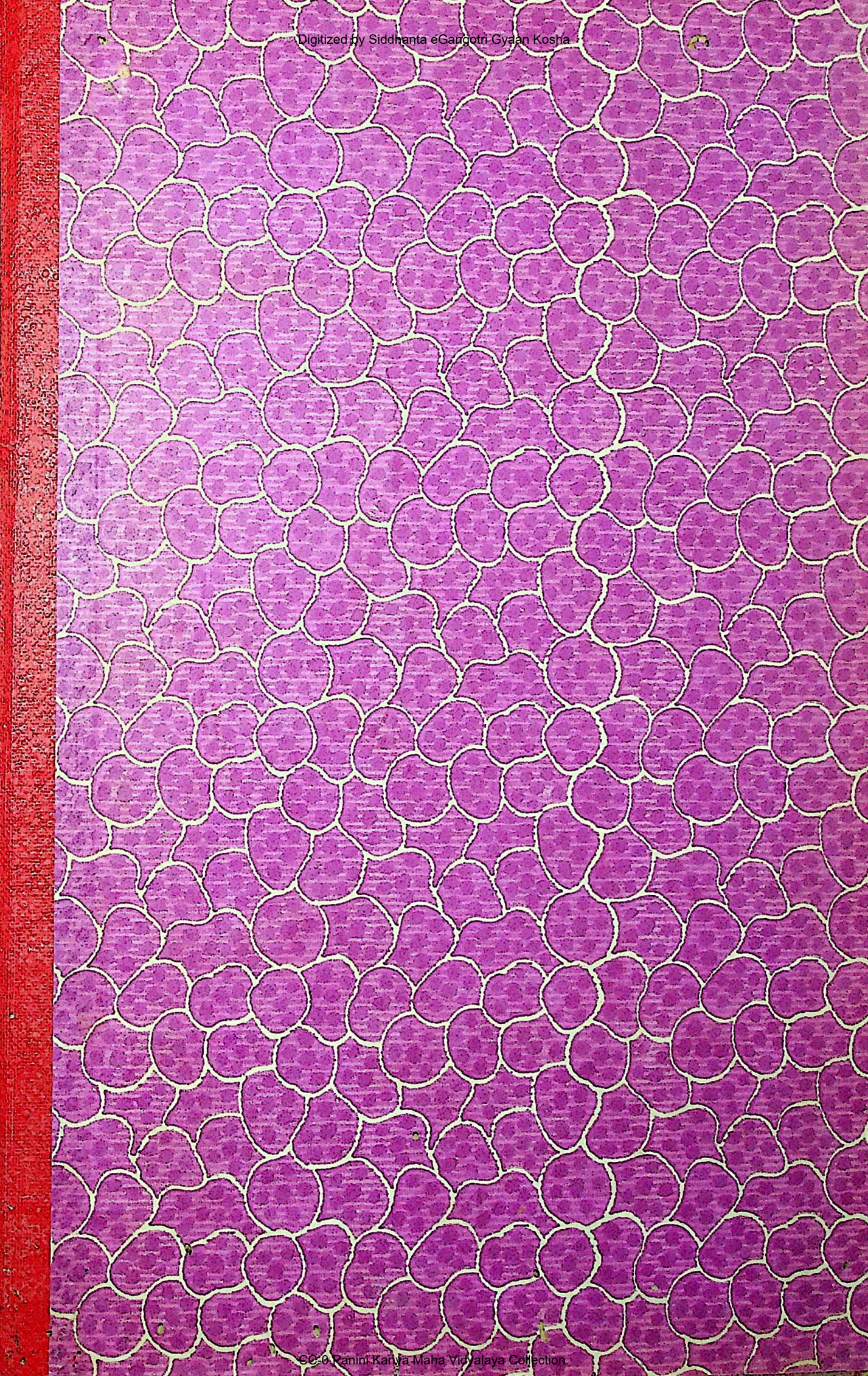

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

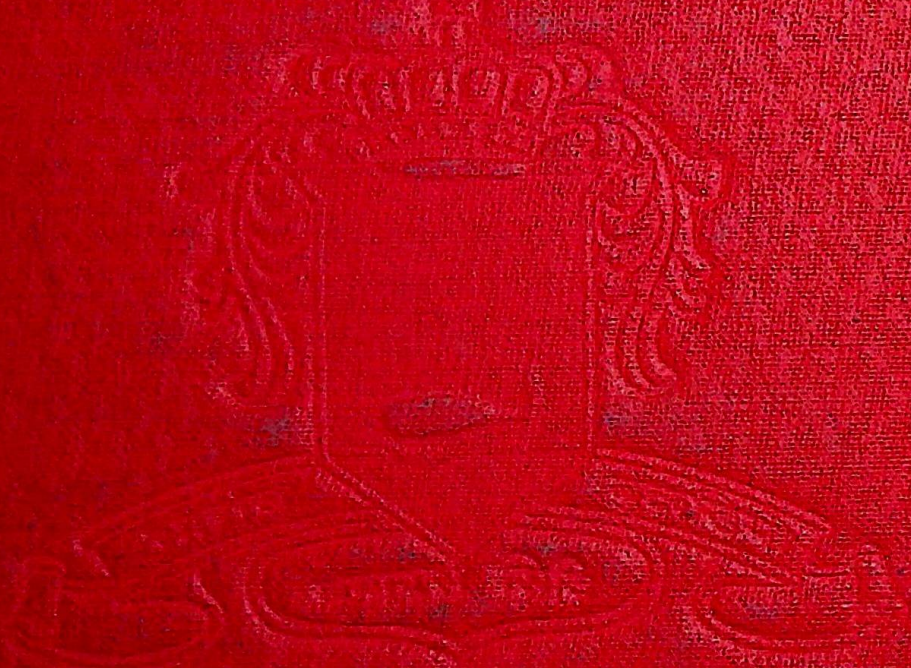

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.